श्री

प्रकरण-रत्नाकर

भाग १ लो

जिनवचनामृतमहोदधिजन्य

[illegible]

[illegible]

श्री मुंबापुरीमध्ये

शा० भीमसिंह माणक नामाख्य श्रावके

[illegible]

ज्ञान वृध्यर्थे

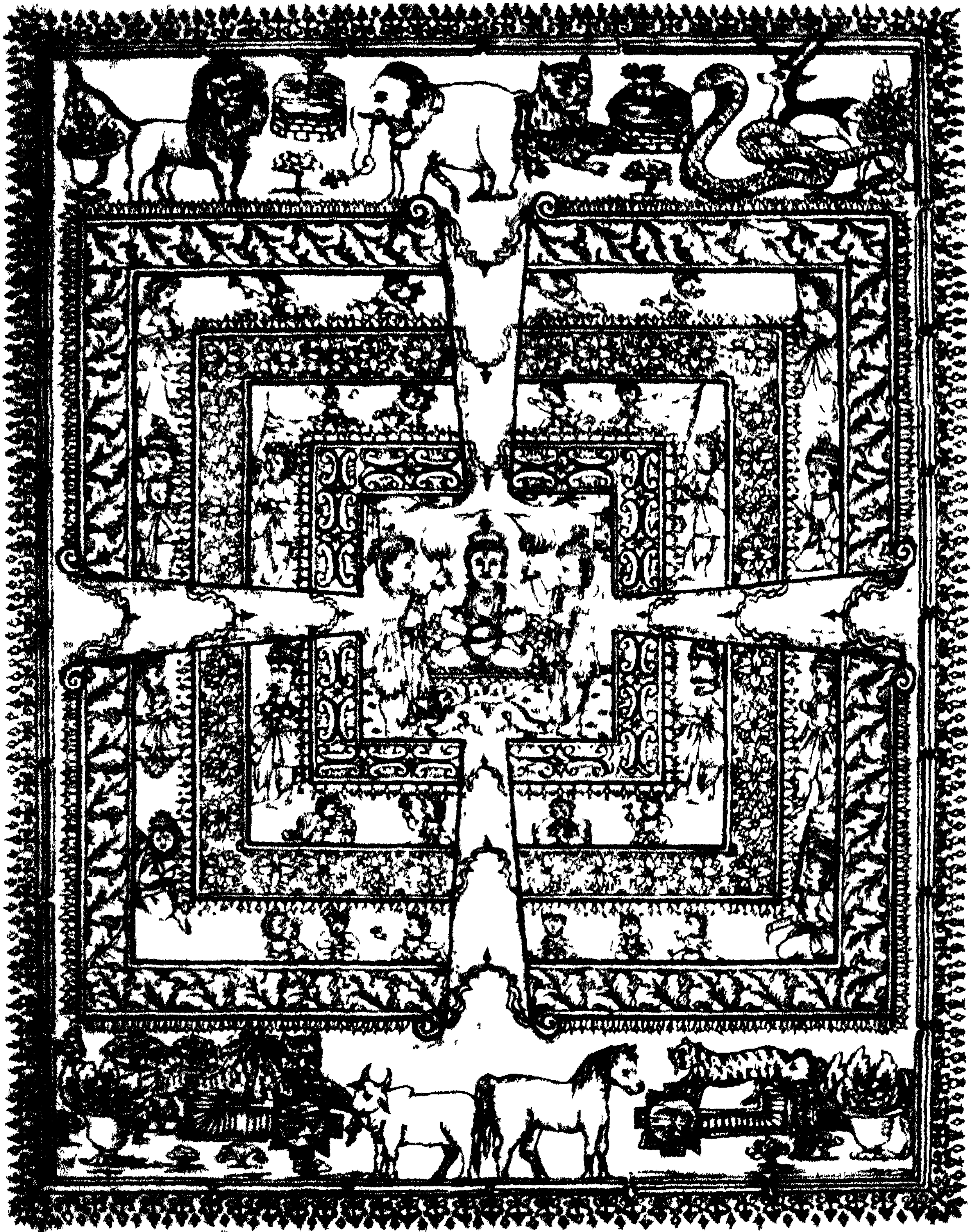
आ पुस्तक छपावी प्रसिद्ध कर्युं छे.

शाके १७९८ संवत् १९३३

पोष सुद ३ सोमवार [illegible] १८ डिसेंबर सने १८७६

[illegible]

٢



सुररचितश्रीजिनसमवसरण.

प्रस्तावना

आ पंचमकाल समाप्तिना अवसरे छेल्ला दुप्पसहनामा आचार्य थशे. तेमना निर्वाणसुधी जिनधर्मरूप मानससरोवरना साधु, साध्वी, श्रावक तथा श्राविका ए चतुर्विध संघरूप चार आरा खुल्ला रहेवा जोइये. एवुं परमेश्वरनुं वचन छे. कदाचित कालना प्रबल प्रभावथी कोई समये कोई आरो न्यूनता पाम्या जेवुं थाय तोपण बाकीना चालु रहेला बीजा आराने प्रभावे समय पाम्याथी ते आरो पण सुधरी जाय छे.

आ समयमां पूर्वना समयना करतां घणी न्यूनता थई गएली दीठामां आवे छे. चतुर्विधसंघमां साधु तथा साध्वी तो कचितज दीठामां आवे छे अने श्रावक तथा श्राविकाओनुं पण अल्प अस्तित्व छे. तेओनी उपरज धर्मवृद्धि आधार राखे छे. धर्म वृद्धि ज्ञाननी वृद्धिथी थाय छे. माटे ज्ञान वृद्धि अवश्य करवी जोइये. ज्ञाननी वृद्धि ज्ञानना साधनोनी वृद्धि उपर आधार राखे छे. ज्ञानना साधनो पूर्वाचार्य कृत ग्रंथोनो जीर्णोद्धार तथा अवलोकन, विद्याभ्यास, उत्सुकता, धर्मप्रीति, अभिरुचि, तथा उद्योग प्रमुख छे.

पूर्वाचार्यकृत ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कर्याथी ते समयना पंडितोनुं पांडित्य जाण्यामां आवे छे; मनुष्योनी धर्म उपर केटली रुचि हती ते जणाय छे. भूत कालथी ते आ वर्तमान कालसुधी वचगालामां धर्म तथा विद्या प्रमुखनी केटली अधिक न्यूनता थई छे ते दीठामां आवे छे. पूर्वाचार्यो अति श्रम वेठी विद्याभ्यास करी मोटा मोटा ग्रंथोनी रचना करता हता तेनो हेतु मात्र धर्मवृद्धि अथवा ज्ञानवृद्धि विना बीजो कोई हतो के शुं ते वात स्पष्ट देखाई आवे छे. ग्रंथनी रचना कर्यामां केवल परोपकार विना बीजो कोई पण स्वार्थ होय छे के शुं? ते कलाय छे. पूर्व कालना करतां हालना वखतमां विद्याभ्यासनो उद्योग केटलो अधिक अथवा न्यून थयो छे? ते जणाई आवे छे. इत्यादिक बीजा पण घणा हेतुओ दीठामां आवे छे. माटे अवश्य प्राचीन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार करवो जोइये. केमके, ए ज्ञानवृद्धिनुं मुख्य साधन छे. जो पुरातन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार नहीं थाय, तो कालांतरे विच्छेद थई जवानो संभव छे. अने तेवुं घणुं हाल दीठामां आवे छे, जुवो के हरिभद्रसूरिए चार सो ने चुमालीश ग्रंथो कर्या छे, ते बधाना जीर्णोद्धार नहीं थयाथी तेओमांना केटलाएक ग्रंथोनो हाल पत्तो पण मलतो नथी. एवा बीजा पण अनेक सुविहित आचार्योना करेला ग्रंथोनो शोध मली शकतो नथी तेनुं कारण पण एज छे. ते केटलुं लखियें! यद्यपि मारुं एम कहेवुं नथी के आज दिवससुधी कोईए ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कर्योज नथी, मोटा राजाओ तथा सहुकारो वगेरे घणा ज्ञान

भंडार करी राख्युं ते अद्यापि विद्यमान छे; अने तेथीज हाल केटलाएक पुरातन
ग्रंथोनुं आपणने दर्शन थाय छे. अत्यारे मात्र दर्शन करवाथीज कांई वळवानुं नथी. प
ण पोतपोताने उपयोग करवामां पण सिद्ध थवाना संभव छे. जेम पूर्वे धर्मात्माओए ग
णा वखतथी ज्ञान भंडार कर्या छे तेम पाछळ थयुं नथी. ए मोटी दिलगीरीनी वात
छे. आ तरफ बेदरकार थई गया होय तो पण ग्रंथ निश्चर गयो न होत अने आटलो
ज्ञाननो प्रचार पण थई न शकत. जुवोके, हस्तकना जीर्णोद्धार करवानो ख्याल पडी
गयाथी तो तेनी संतति विशुद्ध थाय तो ध्यान नथी. तेमज ग्रंथोविषे ख्याल पडवो
जोयेछे. केमके ग्रंथोनो जीर्णोद्धार ते ज्ञाननी वृद्धिनुं एक मुख्य कारण छे.

ज्ञानना समयमां ग्रंथोनो जीर्णोद्धार करवाना उत्तम साधनो मळी शकतां तथा आगळ
ज कांई बगडवा पण नहोतां. पहेलां प्रथम ग्रंथोना जीर्णोद्धार ताडपत्र उपर थएला
देखायछे. ते त्यार पछी कागळ उपर थयो छे ते अद्यापि सिद्ध छे. परंतु ते हस्तक्रिया
विना यंत्रादिकनी सहायताथी थएलो नथी. ते ज्ञान तो मुद्रायंत्रनी अति उत्कृष्ट स
हायता मळी आवेछे. तेनो उपयोग करवानुं मूकी दईने आपणे हवे बेशी रहीशुं तो
ग्रंथो केम कायम रहेशे ? हाल विद्याभ्यास करीने नवा नवा ग्रंथोनी रचना करवी
तो एक कोरे रही, पण वर्तमानसमये पुरातन ग्रंथोनी रक्षा करवानो पण नही करवुं
तो आपणाज ज्ञानना विरोधी ठरवुं. केमके जे जेनी रक्षा करे नहीं ते तेनो विरोधी
अथवा अहितकर होयछे. ए साधारण नियम आपणी उपर लागु पडशे.

श्रावक भाईयो, पुरातन ग्रंथोनो जीर्णोद्धार कर्याथी ते ग्रंथोनुं अवलोकन
थशे. प्रयासविना केटलाएक विद्याभ्यास थशे. रस उत्पन्न थईने ज्ञान संपादन
करवानी अंतःकरणमां उत्कंठा थशे. शुद्ध धर्म उपर प्रीति वधशे. अतिरुचि थइ
ने पुनःपुन ज्ञान मेळववानी इच्छा थशे. अने उद्योग प्रमुख सर्व ज्ञानना साधनोनो
सहज प्राप्त थशे. उद्योग ए सर्व पदार्थ मेळववानुं अथवा वृद्धि करवानुं मुख्य
साधन छे; परंतु असहाय उद्यमथीज कांई थई शकतुं नथी. तेनी साथे द्रव्यनी पण
सहायता जोयेछे. द्रव्य ज छे ते सर्वोपयोगी पदार्थ छे. माटे द्रव्यवान पुरुषोए अव
श्य ए काम उपर लक्ष देवुं जोयेछे. केमके, तेओनी ए फरज छे के, जेम बने तेम
ज्ञाननी वृद्धि करवी जोयेछे. ते आप्रमाणे:— सारा सारा पंडितोनी मारफते प्राचीन
ग्रंथो सुधारी लखावी अथवा छपावीने प्रसिद्ध करवा. तेनो भाविक लोकोने अभ्या
स कराववो. इत्यादिक शास्त्रोमां कह्या प्रमाणे सर्व प्रकारे ज्ञाननी वृद्धि करवी. एवा
हेतुथीज में आ ग्रंथो छपाववानुं काम हाथमां लीधुं छे. परंतु कोईनी सहायता विना
स्वतंत्र मारी मरजी प्रमाणे हुं ग्रंथो छपावी शकुं एवी मारीपासे द्रव्यनी शक्ति नही

होवाने लीधे आ 'प्रकरण रत्नाकर' नामनुं मोटुं पुस्तक कहाडवानी आगमज मारा स्वधर्मी भाइयोनी मने मदत लेवी पडीछे. मारा भाग्यजोगे योग्य रीते मदत पण मली आवी, तेथी आ पुस्तकनो प्रथम भाग समाप्त करी ते गया जेष्ट मासमां प्रसिद्ध कर्यो अने आ बीजो भाग पण हमणा पूर्ण थयो छे तेथी हुं मने कृतकृत्य समजुं छुं.

आ ग्रंथ प्रसिद्ध करवाने मुख्य मदत करनार शेठ. केशवजी नायकने.

हरेक पदार्थने सम योग्यतावान वा अधिक योग्यतावान रक्षण करी शकेछे एवुं बहुधा दीठामां आवेछे. जेम ग्रीष्म ऋतुना तापथी तप्त थएला पर्वतने मेघज रक्षण करेछे. तेम ज्ञाननुं रक्षण ते उत्तम योग्यतावान पुरुषथीज थइ शकेछे. यद्यपि सकल चतुर्विध संघने ज्ञाननी रक्षा करवानो अधिकार छे, तथापि सर्वने तेवुं सामर्थ्य होतुं नथी. माटे योग्यतावानज रक्षण करी शके छे. तेवी योग्यता कोइ विरलानेज होय छे. केमके, बाह्य सर्व लक्ष्म्यादि समृद्धि छतां अंतरंगनेविषे जिन वचन श्रद्धानरूप समृद्धि पण जोये छे. तेमांनी बाह्य समृद्धि तो घणाओने होयछे तेम छतां जिनवचन श्रद्धान होते नथी तो तेनाथी कांइ पण एवुं शुभ कृत्य थइ शकतुं नथी. तेथी बाह्य संपत्ति सहित प्रवचनश्रद्धान पण जोये छे. बाह्य उत्तम संपदा अने अंतर स्वधर्मनिष्ठा ए उत्कृष्ट पुण्यानुबंधीपुण्यनुं फल छे. तेवुं कोइएकनेज होय छे. एनुं प्रत्यक्ष उदाहरण आ वर्त्तमान दुःषमकालनेविषे श्रेष्ठ केशवजी नायक छे. केमके, एवी योग्यतावान बीजो कोइ पुरुष हाल दीठामां आवतो नथी. एओ बाह्य लक्ष्म्यादि संपत्तियुक्त छतां आंतर धर्म सम्यक्त्व श्रद्धानरूप अत्युत्तम संपत्तिए करीने पण युक्त छे. जेनेविषे पंच प्रकृतिरूप अंतराय कर्मनो क्षयोपशम आधुनिक सर्व संघ जनोना करतां अधिक दीठामां आवेछे; एमना जेवुं आतप नाम कर्म तो कोइ जगतने पण कचित् उदय थयलुं दृष्टि गोचर थशे! तेमज आदेय नामकर्म, अंगोपांग नाम कर्म, यशः कीर्त्तिनाम कर्म, प्रमुख शुभ प्रकृतिओनुं एमणे एवो तो उत्कृष्टबंध कर्यो छे के, तेवो हाल दक्षिणजगत्मां कोइ बीजानेविषे कचित् दीठामां आवशे एवा पुरुषने शुं अशक्य होय? अने कीयुं कार्य करवाने समर्थ न थाय! अर्थात् सर्व कार्य करवाने शक्तिमान छे. पूर्वे थएगएला संप्रति राजा तथा वस्तुपाल तेजपाल अने कुमारपाल प्रमुख महत् प्रभाविक पुरुषोनी पेठे एमणे पण वर्त्तमान कालानुसार धर्म दीपनार्थे तथा सत्श्रद्धान दर्शनार्थे श्री अर्हद्देवालयो तथा अंजन शलाका प्रमुख उत्तम धर्म कृत्यो कर्यां छे; ते बधाओथी पण अ

स्तुत्तम ज्ञानवृद्धिनी उत्कंठा पूर्वक सद्गृहस्थ पुरुषोने अतिशय आश्रय दीधेछे; माटे निश्चये करी एमने पूर्वोक्त धर्म प्रकाशक कुमारपाल राजा प्रमुखनी पंक्तिमां गणीएं न गणाय. किंतु तेमनी तुलना करवी ते वाजबी छे. आ लखाणमां कोईए अतिशयोक्ति समजवी नहीं, पण निष्पक्षपात बुद्धिथी विचार करी जोवुं के, शेठ केशवजी नायक ए सर्व उपमाने योग्य छे के नहीं? कारण के अमे अंकित करवाने आरंभ करेला आ एक लक्ष सत्याशी सहस्र चतुर्नागात्मक पुस्तकना अंकनीय स्वरूपविषे एवी युक्तियो आश्रय आप्याने के उपकारी कटलाएक समयो उदित पूर्व गीतार्थोए करी रचित प्रकरणोनुं सुस्वरूप पुनः जीर्णोद्धार थई शक्यो. माटे एमने जेटली उपमा दईये तेटली थोडीछे.

राजबहादुर बाबुसाहेब लक्ष्मीपति सिंहजी छत्रपति सिंहजी.

शेठ केशवजी नायकविषे लखतां आ प्रसंगे श्रीमकसुदाबाद निवासी स्वप्रांत नृप समान, लक्ष्म्यादि बाह्य अमित समृद्धि युक्त, उत्तम यश कीर्ति नाम कर्मोदयवान, ज्ञान वृद्ध्युत्कंठावान अतिशय प्रतापी स्वधर्म दीपक, पूर्वोक्त पंक्ति अधिराजनीय, सर्व संघ तिलक भूत तथा श्रावक गुण सहित्यादि अपूर्व कृत्यालंकार भूषित राजबहादुर नृपतिदत्त पदक धारक बाबुसाहेब लक्ष्मीपति सिंहजी छत्रपति सिंहजी पोताना नाम प्रमाणेज योग्यतावान होवाथी अधुना अनुपमेयज छे

जस्टिस आव् धि पीसाख्य नृपतिदत्त पदक धारक शेठ केशवजी नायक तथा रायबहादुराख्य नृपतिदत्त पदक धारक शेठ लक्ष्मीपतिसिंहजी छत्रपतिसिंहजी जेवा प्रभाविक धर्म दीपक पुरुषो श्रावक मंडलनेविषे हमेश उत्पन्न थता रहो; अने आवा ज्ञान वृद्धिरूप धर्मकृत्यो करता रहो एवो अमारो अंतःकरण पूर्वक आशिर्वाद छे.

आ ज्ञानवृद्धिक उत्तम कृत्यने सारो आश्रय आपनार प्रभाविक पुरुषोनी पंक्तिमां शोभित, अपेक्षा तथा उपेक्षा रहित, सारासार ग्राहक, परम रहस्यज्ञ, परोपकार मतिमान, करुणा, दया, कृपा तथा क्षमादि सुजगुण युक्त, श्री वीतरागपद कमल मकरंद लालसाय भ्रमरायमान्, महात्मा सद्गुरु मुनी महिमा सागरजी तथा सुमति सागरजी; एमनो अत्यंत प्रार्थना पूर्वक अत्युपकार युक्त नाम स्मरण अत्र गुंफित करुं छुं.

श्री मुंबईना श्रावक मंडळमांना शेठ हरजस नरसिंह; शेठ पेथा नाई पदमसी. शेठ वर्द्धमान पुनसी. शेठ भोजराज देवजी. एमणे ज्ञान वृद्धि विषयक पोतानी सारी उदारता दर्शावी छे माटे तेमना उपकार पूर्वक हुं नाम गुंफित करुं छुं.

श्रीमकसूदाबाद निवासी परम ज्ञान प्रसारोद्युक्त मतिमान स्वजोक्ष ज्ञाता गुरु जन जक्ती तथा गुण युक्त नृप दत्तक रायबहादूर पद धारक बाबुसाहेब धनपति सिंहजी तथा लक्ष्मीपति सिंहजी एमने पण पोतानी उत्कृष्ट ज्ञान वृद्धिक रुच्यने सारी उदारता दर्शावी छे तेथी तथा बीजो पण ज्ञान वृद्धिने अर्थे पुस्तक अंकित करवानो हमेश उद्योग चालुं राखेछे तेथी अति सत्कार पूर्वक तथा मान्यता युक्त नामस्मरण गुंथित करुंछुं.

श्री मुंबईना श्रावक मंडळमांना शेठ परबत जथा, शेठ मूळजी देवजी, शेठ जादव जी परबत, सा. जोजराज नरपाळ, तथा शेठ कीकाजाई फूळचंद तथा शा. ठाकरसी देवजी एओए पण यथाश्रद्धान प्रमाणे आ ज्ञानवृद्धिना रुच्यने आश्रय आप्योछे तेथी तेओनुं उपकार सहित नामस्मरण गुंथित करुं छुं.

श्री अहमदावादना श्रावक मंडळ माहेला शेठ दळपत जाई जगुजाई, तथा शेठ मयाजाई प्रेमाजाई, एउनी ज्ञाननी प्रशस्ति थवानेविषे अति उत्कंठा जोईने मोटा आजार सहित नामस्मरण गुंथित करुं छुं;

श्री माणसावाळा शेठ साकळचंद हुकमचंद तथा श्री जरूचवाळा शेठ अनूपचंद मलु कचंद, एओए पोतानी धर्मप्रजावना अधिक दर्शावबाने अर्थे ज्ञाननी वृद्धि थवा सारु जे उत्सुकता बतावी छे ते जोईने मोटा उपकार साथे नामस्मरण गुंथित करुं छुं.

श्री कच्छ मुंदराना रहेवाशी शेठ कस्तुरचंद सिंघजी पारेख एमनी अद्भुत धर्म प्री ति, वैराग्यना तथा ज्ञानवृद्धिनी अतिशय चाहना जोईने मोटा आदर पूर्वक आ पु स्तकनी साथे नाम गुंथित करुं छुं.

साधुमंडळ मार्गमार्गित संवेगी साधु वर्य, अति विवेकी, ज्ञान पीयूष बुभुत्सुक जिनप्रवचन श्रवण श्रद्धावान श्रावक जन मन कर्णने परमामृत रहस्य पान कराव नार; साधु गुण जूषणालंकृत; ज्ञानवृद्धि कर्त्ता पुरुषरूप वृक्षोने मेघवृष्टि समान अभ्यु दय साधन जूत, महाराज श्री मूळचंदजी तथा जवेर सागरजीना, नामस्मरण प्रेम पूर्वक गुंथित करुं छुं.

साधु मंडळमां साधु गुण संपन्न, ज्ञानरूप सूर्यना प्रकाशने आवरण करनारा जे नाना प्रकारना संशयो, कुतर्को, द्वेष, मान, ईर्षा तथा कुसंग प्रमुख वादळ समूहरूप घनघटानो सम्यक् प्रकारे विध्वंस करवाने बळवान पवन समान; धर्म तथा धर्मांग ज्ञानादिकनी वृद्धि करवाने पूर्वना अत्युत्तम सुविहित शास्त्रपारग आचार्यादि आर्य जन तुल्य स्याद्वाद सत्त्वीना जाण बहुधा पंजाबाख्य देश निवासी संवेगी साधु श्री आत्माराम समान आत्मारामजी एमनुं अति जावपूर्वक नामस्मरण गुंथित करुंछुं.

संवेगी साधु श्री विनीतविजयजी महाराज एओनां ज्ञान वृद्धि अर्थे सारो उद्योग होवाथी प्रथम भागनी पेठे नामस्मरण गुंथित करूं छुं;

संवेगी साधु साध्य वस्तु साधनायुक्त युक्त मतिमान् जिनवचन समुद्रमांथी जलद वत् अहोनिश धर्माकाशस्थित जलवृष्टिवत् ज्ञान वृद्धि कर्त्ता; संवेगी साधु शुद्ध सम्यक्त्व पक्षस्थ, परम सुविहित सुसाधु मंडन मात्र प्रोहान, ज्ञानादि शुद्ध जिनधर्मांगवृद्धि प्रयत्नवान. श्री शांति सागरजी महाराजनुं नामस्मरण गुंथित करूं छुं;

जन वृंद वंद्य अचल गच्छाचार्य भट्टारक श्री विवेक सागर सूरि, एमनुं पूर्वभागनी पेठे नाम स्मरण गुंथित करूं छुं;

मनुष्य पुंज पूज्य तप गच्छाधिपति भट्टारक श्री धरणेंद्रसूरि, एमनुं नाम स्मरण गुंथित करूं छुं;

श्री हुकमचंदजी महाराजनुं में प्रथम भागमां नाम स्मरण गुंथन कर्युं छे तेमज अत्रे पण गुंथित करूं छुं.

प्रवचन रहस्य ज्ञाता, कोविद मतिमान, अद्भुत चपल वक्तृत्वशक्तियुक्त, स्वरूपसागरवित् श्रीरूपसागरजीनुं नाम स्मरण गुंथित करूं छुं;

शुद्ध वीतराग प्ररूपित, जिनधर्म विभूति युक्त श्रीअहमदावाद नगर निवासी सर्व श्रावक मंडल जन नृप समान अत्यंत लक्ष्मी संपत्तिवान् पूर्वज परंपरा श्रेणि आगत श्रीमान परम श्रद्धान सद्वर्त्तमान तथा धर्मदीपक शेठ मयाभाई प्रेमाभाईनुं नामस्मरण पुनः गुंथित करूं छुं

बीजा पण जे जे महर्द्धिमान पुरुषोए धर्म प्रभावना दर्शाववा निमित्त स्वसामर्थ्यानुसार ज्ञानवृद्धि हेतुथी जे उदारता दर्शावी छे तेओनां नामस्मरणार्थे पुस्तकना अंत तेविषे गुंथित थशे.

क्षमापना.

प्रथम भाग मध्ये मतिदोषथी तत्वानुबोध नामनो ग्रंथ जे पृष्ठ १३१ थी ४५६ सुधीमां नाखवामां आव्युं छे ते स्थानकवासी रतनचंदनो करेलो हतो लखेली प्रतमां तेवुं न जणायाथी भूलथी छपाई गयो छे. एटला माटे हुं सर्व सुबुद्धिवान वाचको पासेथी क्षमा मागुं छुं के अंकित ग्रंथना मुख्य पृष्ठमां. सुविहित गीतार्थ रचित ग्रंथो ज नाखवानी मे प्रतिज्ञा करेली छे तेने कोई दूषण आपशो नहीं. केम के, हरेक

काम भूलथी थाय. ते क्षमा करवा योग्य छे. ढुंढिया यद्यपि जिनधर्मी नामधरावना रा तो छे पण जाते मूर्खज होय छे तेथी तेओ जिनोक्त मार्गनी विपरीत परूपणा करता डरता नथी एवात सर्व सुज्ञ जनोने सम्मत छे माटे ते मूर्ख होवाथी गीतार्थ कहेवाय नहीं तेथी ए ग्रंथ अवश्य जैन सैलीथी विपरीतजछे एवुं जाणी त्याग करवा योग्य छे; कोईए सुविहित गीतार्थकृत जाणीने वांचवो जणवो नहीं ए वात हुं श्री जावनगरमां साधु श्री आत्मारामजी महाराजने मलवा गयो हतो त्यारे तेमणे मारी पासे कही ए रतनचंद थानकवासी साथे आत्मारामजी महाराजनो मलाप ययेलो हतो इत्यादिक बहुवातो मे एमना मुखथी सांभलीने तेथी में घणो पश्चात्ताप कर्यो पण पछी थाय शुं? माटे भूलथी मारी प्रतिज्ञामां में भूल कीधी तेनी मुनि श्री आत्माराम जी महाराजना उपकार सहित सर्व सज्जनो पासेथी क्षमापना मागुं छुं.

शा. भीमसिंह माणक.

विनती.

समस्त जैन धर्म रागी, नाना ग्रंथ विचार कुतूहलक, जिनवचन पीयूषपान कर्त्ता, शास्त्र विमलवाला जनोने अति प्रार्थना पूर्वक विनति करुं छुं के, जेम जननी अथवा जनक स्वपुत्रना दोषविषे रंचमात्र विचार न करतां मात्र गुणनुंज ग्रहण करेछे, तेम आ अंकित पुस्तकनेविषे कोईने कांई दोष दृष्टिगोचर थाय तो मारा उपर रंचमात्र रोष करवो नहीं. केमके, सर्व प्रकारे निर्दोषपना एक केवलीविना बीजा कोईनेविषे पण संभवे नहीं. एटला माटेज पूर्वे थई गयेला महान् आचार्य प्रमुख श्रुतज्ञान पारग अत्युत्कृष्ट पंडितो पण स्वरचित ग्रंथोमां बुद्धि दोषनेविषे क्षमा मागी गयेला दीठामां आवेछे; त्यारे आधुनिक साधारण जननी वात शुं कहेवी? आ पुस्तकनुं शोधन करतां मति दोष अथवा दृष्टिदोष अवश्य दीठामां आवशे; ते जोईने रोष न करतां क्षमा करवी. केमके, वांचता अथवा लखतां भूल थायज छे एवो नियम छे. एविषे जे गर्व करे ते मूर्ख कहेवाय. माटे ए विषे हुं सर्व सत्पुरुषोनो विनय करुंछुं के, आपनी हंसना चंचू जेवी मतिथी सारासार विचार पूर्वक जलरूप दोषनुं निवारण करीने पयरूप गुणनुं ग्रहण करवुं. अने असत् पुरुषोनो पण अधिक विनय करुं छुं के, आपनी काकना चंचू जेवी मतिवडे गुण तजीने दोषनुं ग्रहण करीने ते सुखेथी प्रसिद्ध करवो; तेथी हुं

मोटो उपकार मानीश ? केमके, जो दोष दर्शावनार नही मळे तो दोष दीठामां केम आवे? गुणग्राहकनी कृपारूप अमृत धाराथी यद्यपि गुणनी पुष्टी थायछे, तथापि दोष ग्राहकनी कुमतिरूप कुठार धाराथी बुद्धि छिन्न भिन्न थइने तेने अदोषता करवाविषे घणा प्रयत्नमां प्रवृत्ति थायछे. तेथी तेनो पण उपकार मानवा योग्य छे. माटे सर्व सज्जन तथा वृद्ध पुरुषोनी विनति करुं छुं के, यथा स्वमति अनुसार गुणदोष विचार करीने क्षमादिक करवुं.

श्रा० भीमसिंह माणक.

प्रार्थना.

आ पुस्तक वांचनारा अने जाणनारा प्रमुख सर्व ज्ञानना रागी अने विवेकी सुज्ञ जनोने अति नम्रतापूर्वक हुं याचना करुंछुं के. आ प्रकरण रत्नाकरमांना कोइ प्रकरणमां अंतर्दृष्टिजन्य दोषथी. बाह्यदृष्टि दोषथी अथवा अज्ञान प्रक्रियाने लीधे कोइ जननी मतीथी विपरीतता अथवा सांशयिक दीठामां आवे तो तेविषे कोप न करतां सर्व लखी लइने ते मने मोकलावी देवुं, के जेथी ते सुधारीने कोइ प्रसंगे विरोधनो परिहार करवामां आवे. जेम के. प्रथम भागमां नाखेला उपमितिभवप्रपंचनी कथामां अनुसुंदरने अवधिज्ञान उत्पन्न थया पछी अनंत काळ निगोदमां रही आव्यो ते तो ते सर्व वात स्मरणमां आवी छे. ए सांशयिक युक्ति छे; इत्यादिकनी पेठे ज्यां ज्यां दीठामां आवे त्यां त्यांथी लखी लइने जो बने तो तेना विवेचनसुद्धां अथवा एमज मने सूचना करवी एवी हुं तेमनी प्रार्थना करुंछुं, अने एम कर्याथी मोटो उपकार मान्यामां आवशे.

श्रा० भीमसिंह माणक.

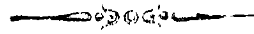
॥ श्री ॥

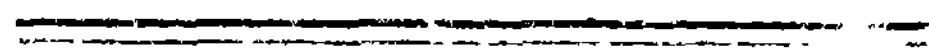
प्रकरणरत्नाकर नामाख्य पुस्तकना बीजाभाग मांहेला ग्रंथोनी स्थूल विषयानुक्रमणिका प्रारंभः

श्री जिनस्तोत्र संग्रह, श्री कल्याणसागर सूरिकृत.

विविधविषयिकस्तोत्र, जिनप्रभाचार्यकृत.







॥ अथ श्री महिम्नस्तोत्रप्रारंभः ॥

महिम्नः पारं ते परमजननमाना अपि विभो भवंति स्तोतारः समवसृतिभूमौ समुदिताः ॥ यदिंद्राद्यास्त्वां तज्जिनवृषजनतया स्तवयतो ममाप्येष स्तोत्रे हरनिरपवादः परिकरः ॥ १ ॥ स्वरूपं चिद्रूपं किमपि तदरूपं भगवत श्रुतरूपा ब्राह्मी यदि गदितुमीष्टे न भवतः ॥ ततः कस्य स्तुत्यं किमुपममिदं कस्य विषयः पदे त्ववीचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ २ ॥ यद्वा ॥ पदं शैवं केचित्परमम नपेक्षाक्षयसुखं स्तुवंति त्वां राज्यादिकपदकृते मंदमतयः ॥ न तेषां तत्वार्थे रतिरतितरां नैव भवतः पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥ ३ ॥ गुणानामानंत्यादविषयतया वाङ्मनसयोर्न शक्या तत्वज्ञैरपि तव विधातुं स्तुतिरियम् ॥ भवन्नामोच्चारात्पुनरपि ममैतां निजगिरं पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ ४ ॥ यद्वा ॥ जटालंकारालंकृतमथ वृषांकं च भगवन् पुनानं विश्वं त्वां प्रथमजिन मत्वा किमु ततः ॥ जटां धृत्वा श्रित्वा वृषमहमपि ख्यातममिदं पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥ ५ ॥ न कोपस्याटोपः स्वरिपुषु न च स्वेष्वपि तथा प्रशांतिर्नो कांतादिकपरिकरः कश्चिदिति ते ॥ त्रिलोक्यामालोक्याप्यहह परमां भारभरमां विहंतुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥ ६ ॥ ध्रुवं कश्चित्कर्त्ता निखिलभुवनस्यापि स पुन र्विभुर्नित्यश्चैकः सतनुरतनुर्वा स्ववशतः ॥ स्वयं सिद्धेन्यस्मिंस्तव मतमनाप्तान् हतधियः कुतर्कोयं कश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥ ७ ॥ विमुक्तैरागाद्यैरपि भवति किं सर्वविदहो विना वा सर्वज्ञं ननु जिन किमाप्तोपि स च किम् ॥ त्वदन्योपि क्वापि त्रिजगति बताप्तस्वविषये यतोमंदास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥ ८ ॥ त्वमेवार्हन् बुद्धो जगति परमेष्ठी च पुरुषो तमोलक्ष्म्या नास्वान्विबुधगुरुरादीश्वर इति ॥ विभो नानाख्याभिः समविषममार्गेषु चरतां नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥ ९ ॥ प्रसादात्ते पुत्रा विषयसुखसाम्राज्यमभजन् न के वा सेवातस्तव भवनवामृद्धिमगमन् ॥ तृणे स्त्रैणे स्वर्णे दृपदि च सदृक्षः पुनरहो न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥ १० ॥ भवन्तत्ताहृक्षातिशयमहिमेक्षावशसमुद्भवद्भक्तिव्यक्तया रणरणकितांतःकरणतः ॥ अधीरस्युद्युक्तोखिलजगदशक्यं स्तवमपि स्तुवन् जिन्हेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥ ११ ॥ न शस्यौ कस्यास्तां नमिविनमिपत्ती जिनपते त्वदेकस्वामित्वाक्रमकमलसेवासु रसिकौ ॥ प्रसादात्ते विद्याधरपतितति र्येत्सविनयं स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥ १२ ॥ तदा विद्याः प्राप्य ध्रुवमखिलविद्याधरमहा स्वयं प्राडुर्भाव्य प्रथमम

थ वैताढ्यविनुताम् ॥ यदेतौ ङुस्साध्यौ सुरनरवराणामनजतां स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रि पुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ १३ ॥ अथावाप्तैश्वर्यं मदनमदविध्वंसि च महाव्रतित्वं सर्वज्ञत्वमसमविनूतिश्च परितः ॥ शिवासंगश्चंगः सततमिति नो कस्य कृतिनः स्थि रायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥ १४ ॥ विवाहादौ नेतुर्मुहुरुपकृतो विप्र तिन्नवं त्वया पारंपर्यागतपरिचयान्मोहचरटः ॥ तथा दूरं नष्टः क्वचिदपि यथाकेव लकलाप्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥ १५ ॥ निजश्र्यां स्पर्द्धाभुर्नरत विनुरासीन्मघवता यदाऽपत्तस्याश्चासिनमथ सुखं केवलरमाम् ॥ तदेतस्मिन्सर्वे तव पदविनम्रे समुचितं न कस्याप्युन्नत्यै नवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १६ ॥ निनंसा यां पूर्वं क्षणमजगणस्त्वां नरतराट् समं चक्रेणाहो तदिह विषयाणां विषमता ॥ यदे तस्यार्चात्र प्रमितफलदैवाशिवसुखं न कस्याप्युन्नत्यै नवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥ १७ ॥ प्रनो त्वत्पुत्रस्यातुलबलवतो बाहुबलिनस्तपस्तीव्रं तादृक् शरदवधिमानाद पि कृतं ॥ निदानं ज्ञानस्य ध्रुवमनवदाश्चर्यमथवा विकारोपि श्लाघ्यो नुवनजयनंग व्यसनिनः ॥ १८ ॥ न सुत्रामा यत्र प्रनवति विधातापि न विनुः स वैकुंठः कुंठः किमपि न नवश्चानवदलम् ॥ जिगीषुः स त्वामप्यपरसुरमहुर्म्मेतिरनूत् स्मरः स्म र्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिनवः ॥ १९ ॥ प्रयुंजानः स्वामिन्स्वयमखिलशि ल्पान्यसुमतां कलाः पुंसां स्त्रीणामपि च सकलाः क्ष्मापतिरपि ॥ कुलालादींस्तांस्ता न् क्षणमपि नयन् शिक्षणविधौ जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विनुता ॥२०॥ प्रनो तैस्तैः सारैरणुनिरखिलैश्चामरवरैः कृतं रूपं सर्वोत्तमसुखगमंगुष्ठकमितम् ॥ त्वदंगुष्ठस्याग्रे शुनति किल नांगारकइवेत्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥२१॥ प्रजाः प्राज्यं राज्यं स्थविरजननी स्वस्य तनुजांस्तपस्यन्नासन्नावपि च विहरन्बा हुबलिनः ॥ उपेक्षिष्ठा आत्तव्रतनृपसहस्राश्च चतुरो विधेयैः क्रीडंत्यो न खलु परतंत्राः प्रनुधियः ॥ २२ ॥ यदा नो रत्नानां त्रयमखिलदौर्गत्यहरणं निदानं संपत्तेस्त्रिनुवनज नानामनुदिनम् ॥ नवान् योगक्षेमावपि विरचयन्मन्मथजये त्रयाणां रक्षायै त्रिपुर हर जागर्त्ति जगताम् ॥ २३ ॥ यथा पूर्वं मुग्धास्तवसडुपदेशाद्युगलिनः सदा स्वामि न्नीशाजनिषित सदाचारचतुराः ॥ तथा कस्कः संप्रत्यपि न विशदेषु त्वडुदितश्रुतौ श्र द्धां बध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥ २४ ॥ तपस्तीव्रं ब्रह्मव्रतनियमनिष्ठा बहुवि धाः क्रियाकष्टास्टष्टा अपि जिनप डुष्टाशयतया ॥ त्वदाज्ञावज्ञायां नियतमहितायै व नविनां ध्रुवं कर्त्तुः श्रद्धाविधुरमनिचाराय हि मखाः ॥ २५ ॥ क्षमानृन्मुख्याः के नियतमधिमात्रानपि सदा स्वयंस्थान् शास्त्रौघान्नवधतितरां यस्य हतये ॥ अविघ्नं तं

निघ्नन्नसमसमयस्तामसमृगं त्रसंतं ते ऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरजसः ॥ २६ ॥ परिभ्राम्य क्लेशार्जितमपि सहस्रेण शरदा मदाश्विड्राजत्वं सपदि मरुदेव्यै तदपि चेत्॥ प्रभो निस्नेहं सा व्रतसमयसर्वाविगणनादवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥ २७ ॥ महानंदे यद्यप्यसि जिन दवीयस्यपि पदे न रुष्टस्तुष्टश्च त्रिभुवनजनेषु क्व चिदपि ॥ भवन्नाम स्वामिन्स्वमनसि महामंत्रमनिशं तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ॥ २८ ॥ प्रभो प्राणायामाभ्यसनरसिकत्वान्निजमनः समाधावाधाया खिलविषयतोक्षाणि युगपत् ॥ धृतं प्रत्याहृत्य स्थिरनिहितनासाग्रनयना दधत्यंत स्तत्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्॥२९॥ सुरद्रुः स्वः कुंभस्त्रिदशसुरभिस्त्वं सुरम णिः पिता माता भ्राता विभुरपि सुहृत्त्वं च सुगुरुः ॥ परात्मा ब्रह्मापि त्वमसि पर मं दैवतमतो न विश्वस्तत्तत्वं ह्ययमिहहि यत्त्वं न भवसि ॥ ३० ॥ अकाराद्यैर्वर्णै स्त्वयि परिणतान् पंच परमेष्ठिनः स्पष्टं पंचाक्षररचनया नाभिनिगदन् ॥ कलाना दव्यक्तं किमपि परमब्रह्मविषयं समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥३१॥ न रागाद्यैर्ग्रस्तो न पुनरनुकंप्यो मदपरः कृपालु स्त्वत्तोन्यो न जगति न तेभ्यः पुनरलम्॥ स्वयं तैरत्यार्त्तैः किमितरसुरैश्चेति विमृशन् प्रियायास्मैधाम्ने प्रविहितनमस्योस्मि भवते ॥ ३२ नमो नासक्ताय क्वचिदपि विरक्ताय च नमो नमः संबुद्धाय प्रशमद मरुद्धाय च नमः ॥ नमः सर्वज्ञाय स्मरणपरतज्ञाय च नमोनमः सर्वस्मै ते तदि दमितिशर्वाय च नमः ॥ ३३॥ दलितरजसे शश्वद्विश्वार्चिताय नमोनमः प्रहततम से श्रीसर्वज्ञाधिपाय नमोनमः॥ जनहितकृते तुभ्यं सत्वाधिकाय नमोनमः प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमोनमः ॥३४॥ कुसुमबटुरिवाहं तद्गुतौ किंचनार्हे कृतिभि रुरसि कंठे वा गुणत्वादधार्यम् ॥ जिनवर जिनहर्षोत्कर्षतोकार्षमेवं वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारं ॥ ३५ ॥ प्रांशुश्रीसोमवंशेऽजनिषत मुनयोमौक्तिकानीव शुद्धास्ते ष्वप्येकावली च प्रगुणगुणवती श्रीमदाचार्यपंक्तिः ॥ जीयाद्राज्यं यदूनामिव गुरुज यचंद्राव्हयश्रीमुनींद्रस्तस्यामप्येष चिंतामणिरुचिररुचिर्नायकः कृष्णदेवः ॥ ३६ ॥ निहितचरमपादं श्रीमहिम्नः स्तवस्य त्रिभुवनमहितस्य श्रीयुगादीश्वरस्य ॥ भ्रमरइव सदा तत्पादपद्मोपजीवी रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतद्व्यधत्त ॥ ३७ ॥ एवं शारदसो मसुंदरयशःस्तोमं युगादीश्वरं चेतोभूजयचंद्रमौलिभिरभिष्टुत्यान्वहं योगिभिः॥ ज्ञानं प्राप्य विशालराजसद्दशल्हादं समाश्रीयते मुक्तयै मूर्द्धनि रत्नशेखररमा ब्रह्मैकतेजो मयी ॥ ३८ ॥ इतिश्रीयुगादिदेवमहिम्नः स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

॥ अथ क्षमाकल्याणजीकृत चतुर्विंशतिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥

शार्दूल विक्रीडितछंदः ॥ अथ ऋषभस्तुति प्रारंभः॥ तद्भक्तया नतमौलिनिर्जरवरभ्राजि ष्णुमौलिप्रभा संमिश्रारुणदीप्तिशोभिचरणांभोज द्वयःसर्वदा ॥ सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः सुच रितो धर्मार्थिनां प्राणिनां भूयाद्भूरिविभूतये मुनिपतिः श्रीनाभिसूनुर्जिनः॥ १ ॥ सद्बो धोपचिताः सदैव दधताप्रौढप्रतापश्रियो येनाज्ञानतमोवितानमखिलं विक्षिप्तमंतः क्षणं ॥ श्रीशत्रुंजयपूर्वशैलशिखरं भास्वानिवोद्भासयन् भव्यांभोजहितः स एष जयतु श्रीमारुदेवप्रभुः॥ २॥ योविज्ञानमयो जगत्त्रयगुरुर्यं सर्वलोकाश्रिताः सिद्धिर्येन वृता स मस्तजनता यस्मै नतिंतन्वते॥ यस्मान्मोहमतिर्गता मतिभृतांयस्यैव सेव्यं वचो यस्मि न्विश्वगुणास्तमेव सुतरां वंदे युगादीश्वरं॥३॥अथ अजितस्तुतिः प्रारंभः॥मालिनीछंदः॥ सकलसुखसमृद्धिर्यस्य पादारविंदे विलसति गुणरक्ता भक्तराजीव नित्यं ॥ त्रिभुवनज नमान्यः शांतमुद्राभिरम्यः स जयति जिनराजस्तुंगतारंगतीर्थे॥१॥प्रभवति किल भव्यो यस्यनिर्वर्णनेन व्यपगतदुरितौघः प्राप्तमोदप्रपंचः॥ निजबलजितरागद्वेषविद्वेषिवर्गं तमजितवरगोत्रं तीर्थनाथं नमामि ॥ २ ॥ नरपतिजितशत्रोर्वंशरत्नाकरेंदुः सुरपतिय तिमुख्यैर्भक्तिदक्षैः समर्च्यः॥ दिनपतिरिव लोकेऽपास्तमोहांधकारो जिनपतिरजितेशः पातुमां पुण्यमूर्त्तिः॥३॥ अथ संभवस्तुतिः ॥ स्रग्धराछंदः॥ यद्भक्तया सक्तचित्ताः प्रभु रतरभवभ्रांतिमुक्ता मनुष्याः संजाताः साधुभावोल्लसितनिजगुणान्वेषिणः सद्यएव॥स श्रीमान्संभवेशः प्रशमरसमयोविश्व विश्वोपकर्त्ता सद्भर्त्ता दिव्यदीप्तिः परमपदकृते से व्यतां भव्यलोकाः ॥ १ ॥ शुक्लध्यानोदकेनोज्वलमतिशयितस्वच्छभावाद्भृतेन स्वस्मादा हत्य वृत्तं शिवपदनिगमं कर्मपंकप्रपंचं॥ नीरंध्रं दूरयित्वा प्रकृतिमुपगतोनिर्विकल्पस्वरू पः सेव्यस्तार्क्ष्यध्वजोसौ जगति जिनपतिर्वीतरागः सदैव॥२॥ वार्द्धौ विद्योतिरत्नप्रकर इव परिभ्राजते सर्वकाले यस्मिन्निःशेषदोषव्यपगमविशदे श्रीजितारेस्तनूजे ॥ दुःप्रा पो दुष्टसत्वैः स्फुटगुणनिकरः शुद्धबुद्धिक्षमादिः कल्याणश्रीनिवासः स भवतिवद ताऽभ्यर्चनीयो न केषां ॥३॥ अथ अभिनंदनस्तुतिप्रारंभः ॥ द्रुतविलंबितछंदः॥ विश दशारदसोमसमाननः कमलकोमलचारुविलोचनः॥ शुचिगुणः सुतरामभिनंदन ज य सुनिर्मलतांचितभूघन ॥ १ ॥ जगति कांतहरीश्वरलांछितक्रमसरोरुह कामकृपा निधे॥ मम समीहितसिद्धिविधायकं त्वदपरं किमपीह न तर्कये ॥ २ ॥ प्रवरसंवर सं वरभूपतेस्तनय नीतिविचक्षण ते पदं ॥ शरणमस्तु जिनेश निरंतरं रुचिरभक्तिसुयुक्तिभृ तो मम ॥ ३ ॥ अथ सुमतिस्तुति प्रारंभः॥ उपेंद्रवज्राछंदः॥ सुवर्णवर्णो हरिणासव

र्णो मनोवनं मे सुमतिर्बलीयान् ॥गतस्ततो दुष्टकुदृष्टिरागद्विषेंद्र नैव स्थितिरत्र कार्या ॥ १ ॥जिनेश्वरो मेघनरेंद्रसूनुर्घनोपमो गर्जति मानसे मे॥ अहो गुरुद्वेषहुताशन त्वा मत्तो शमं नेष्यति सद्यएव ॥ २ ॥इतः सुदूरं व्रज दुष्टबुद्धे समं दुरात्मीयपरिच्छदेन ॥ सुबुद्धिजर्त्ता सुमतिर्जिनेशो मनोरमः स्वांतमितो मदीयं ॥ ३ ॥ अथ पद्मस्तुतिप्रारंभः भुजंगप्रयातछंदः ॥ उदारप्रभामंडलैर्भासमानः कृतात्यंतदुर्दांतदोषापमानः ॥ सुसीमांगजश्रीपतिर्देवदेव स्सदा मे मुदाभ्यर्चनीयस्त्वमेव ॥ १ ॥ यदीयं मनःपंकजं नित्यमेव त्वयालंकृतं ध्येयरूपेण देव ॥ प्रधानस्वरूपं तमेवातिपुण्यं जगन्नाथ जानामि लोके सुधन्यं ॥ २ ॥ अतो धीशपद्मप्रभानंदधाम स्मरामि प्रकामं तवैवांग नाम ॥ मनोवांछितार्थप्रदं योगिगम्यं यथा चक्रवाको रवेर्धाम रम्यं ॥ ३॥ अथ सुपार्श्वजिनस्तुतिप्रारंभः तोटकछंदः ॥ जयवंतमनंतगुणैर्निभृतं पृथिवीसुतमद्भुतरूपभृतं ॥ निजवीर्यविनिर्जितकर्मबलं सुरकोटिसमाश्रितपत्कमलं ॥ १ ॥ निरुपाधिकनिर्मलसौख्यनिधिं परिवर्जितविश्वदुरंतविधिं भववारिनिधेः परपारमिमं परमोज्वलचेतनयोन्मिलितं २॥कलधौतसुवर्णशरीरधरं शुभपार्श्वसुपार्श्वजिनप्रवरम् ॥ विनयावनतः प्रणमामि सदा हृदयोद्भवभूरितरप्रमुदा ॥ ३ ॥ अथ चंद्रप्रभाजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ वंशस्थछंदः॥ अनंतकांतिप्रकरेण चारुणा कलाधिपेनाश्रितमात्मसाम्यतः॥ जिनेंद्र चंद्रप्रभ देवमुत्तमं भवंतमेवात्महितं विभावये॥१ ॥उदारचारित्रनिधे जगत्प्रभो तवाननांभोजविलोकनेन मे ॥ व्यथा समस्तास्तमितोदितं सुखं यथा तमिस्त्रादिवमर्कतेजसा ॥२॥ सदैव संसेवनतत्परे जने भवंति सर्वेपि सुराः सुदृष्टयः॥समग्रलोके समचित्तवृत्तिना त्वयैव संजातमनोनमोस्तु ते ॥ ३॥अथ सुविधिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ वसंततिलकाछंदः ॥ विश्वाभिवंद्यमकरांकितपादपद्म सुग्रीवजात जिनपुंगव शांतिसद्म॥भव्यात्मतारणपरोत्तमपानपात्र मां तारयस्व भववाटिनिधेर्विरूपात् ॥ १ ॥ निःशेषदोषविगमोद्भवमोक्षमार्गं भव्याः श्रयंति भवदाश्रयतो मुनींद्र ॥ संसेवितः सुरमणिर्बहुधा जनानां किंनाम नोभवति कामितसिद्धिकारी॥२ ॥ विज्ञं कृपारसनिधिं सुविधे स्वयंभूमेत्वा भवंतमिति विज्ञपयामि तावत्॥ देवाधिदेव तव दर्शनवल्लभोहं शश्वद्भवामि भुवनेश तथा विधेहि ॥ ३॥ अथ शीतलजिनस्तुतिप्रारंभः॥शार्दूलविक्रीडितछंदः॥कल्याणांकुरवर्द्धने जलधरं सर्वांगिसंपत्करं विश्वव्यापियशःकलापकलितं कैवल्यलीलाश्रितं ॥ नंदाकुक्षिसमुद्भवं दृढरथक्षोणीपतेर्नंदनं श्रीमत्सूरतबिंदरे जिनवरं वंदे प्रभुं शीतलं॥१॥ विश्वाज्ञानविशुद्धसिद्धिपदवीहेतुप्रबोधं दधद्भव्यानां वरभक्तिरक्तमनसां चेतः सुमुल्लासयन् नित्यानंदमयप्रसिद्धसमयः सद्भूतसौख्याश्रयो दुष्टानिष्टतमःप्रणाशतरणिर्जीयाज्जिनः शीत

भः ॥ २ ॥ सद्भक्त्या त्रिदशेश्वरैः कृतनुतिर्भास्वद्गुणालंकृतिः सत्कल्याणसमद्युतिः शुभ
मतिः कल्याणकृत्संगतिः ॥ श्रीवत्सांकसमन्वितस्त्रिभुवनत्राणे गृहीतव्रतो भूयाद्भक्ति
भृतां सर्वेष्टवरदः श्रीशीतलस्तीर्थकृत् ॥ ३ ॥ अथ श्रेयांसजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ हरिणी
छंदः॥ चिरपरिचितागाढव्यामा सुबुद्धिपराङ्मुखी निजबलपरिस्फूर्त्योदग्रा समग्रतया
मम॥व्यपगतवती दूरं दुष्टा स्वनिष्टकुदृष्टिता अपचितसहा सद्योभूत्वा यदीयसुदृष्टितः १
निरुपमसुखश्रेणीहेतुर्निराकृतदुर्दशा शुचितरगुणग्रामावासो निसर्गमहोज्ज्वला॥हृदय
कमले प्रादुर्भूता सुतत्त्वरुचिर्मम विदलितभवभ्रांतिर्यस्याप्यजस्रमनुस्मृतेः॥ २॥उपकृ
तिमतिदाने दक्षो निरस्तजगद्व्यथः समुचितकृतिर्विज्ञानांशुप्रकाशितसत्पथः॥नृपगण
गुरोर्विष्णोर्वंशे प्रभाकरसन्निभः स भवतु मम श्रेयांसेनः प्रबोधसमृद्धये॥३॥अथ वासुपू
ज्यस्तुतिप्रारंभः ॥ रथोद्धताछंदः ॥ पूर्णचंद्रकमनीयदीधिति भ्राजमानसुखमद्भुतश्रि
यां॥शांतदृष्टिमभिरामचेष्टितं शिष्टजंतुपरिवेष्टितं परं॥ १ ॥नष्टदुष्टमतिभिर्यमीश्वरं संस्मर
द्भिरिह भूरिभिर्नृभिः॥क्षीणमोहसमयादनंतरा प्रापि सत्यपरमात्मरूपता ॥२॥ पार्थिवे
शवसुपूज्यवेश्मनि प्राप्तपुण्यजनुषं जगत्प्रभुं ॥वासुपूज्यपरमेष्ठिनं विशः के स्मरंति नहि
तं विपश्चितः ॥३॥ अथ विमलजिनस्तुतिप्रारंभः॥ मंदाक्रांताछंदः॥संसारेस्मिन्महतिम
हिमामेयमानंदिरूपं त्वां सर्वज्ञं सकलसुकृतिश्रेणिसंसेव्यमानं ॥ दृष्ट्वा सम्यग्विमलसद
सज्ज्ञानधाम प्रधानं संप्राप्तोहं प्रशमसुखदां संभृतानंदवीचिं॥१॥ येतु स्वामिन् कुमति
पिहितस्फारसद्बोधमूढाः सौम्याकारां प्रतिकृतिमपि प्रक्ष्यते विश्वपूज्यां॥द्वेषोद्भूतेः कलु
षितमनोवृत्तयः स्युः प्रकामं मन्ये तेषां गतशुभदृशां का गतिर्भाविनीति ॥ २ ॥ श्यामा
सूनो प्रतिदिनमनुस्मृत्य विज्ञानिवाक्यं हित्वानार्यं कुमतिवचनं ये भुवि प्राणभाजः॥पू
र्णानंदोल्लसितहृदयास्त्वां समाराधयंति श्लाघ्याचाराः प्रकृतिसुभगाः संति धन्या स्तए
व॥३॥अथ अनंतस्तुतिप्रारंभः ॥ स्रग्विणीछंदः॥यस्य भव्यात्मनो दिव्यचेतोगृहे सर्वदा
ऽनंतचिंतामणिर्द्योतते॥यांति दूरे स्वतस्तस्य दुष्टापदो विश्वविज्ञानवित्तं भवेदक्षयं॥१
यस्तु सर्वज्ञरूपं स्वरूपस्थितं वीक्ष्य सद्भावतः सिंहसेनात्मजं॥अद्भुतामोदसंदोहसंपूरि
तोमन्यतेधन्यमात्मीयनेत्रद्वयं ॥२॥ सोपवर्गानुगामिस्वभावोज्ज्वलां व्यूढमिथ्यात्ववि
द्रावणे तत्परां बंधुरान्माऽनुभूतिप्रकाशोद्यतां शुद्धसम्यक्त्वसंपत्तिमालंबते ॥ ३ ॥ यु
ग्मं ॥ अथ धर्मस्तुतिप्रारंभः ॥ कामक्रीडाछंदः ॥ भास्वज्ज्ञानं शुद्धात्मानं धर्मेशानं स
द्ध्यानं शक्त्यायुक्तं दोषोन्मुक्तं तत्त्वासक्तं सद्भक्तं॥शश्वच्छांतं कीर्त्या कांतं ध्वस्तध्वांतं वि
श्रामं क्षिप्तावेशं सत्यादेशं श्रीधर्मेशं वंदध्वं॥ १ ॥निःशेषार्थप्रादुष्कर्त्ता सिद्धेर्भर्त्ता संसर्त्ता
दुर्भावानां दूरेहर्त्ता दीनोद्धर्त्ता संस्मर्त्ता॥सद्भक्तेभ्योमुक्तेर्दाता विश्वत्राता निर्माता सुख्यो

भक्त्या वाचोयुक्त्या चेतोवृत्त्या ध्येयात्मा॥१॥सम्यग्दृग्भिः साक्षात्दृष्टोमो हास्पष्टो ना कृष्टः स्रोतोग्रामैः संपज्ज्येष्टः साधुश्रेष्टः सत्प्रेष्टः॥श्रद्धायुक्तस्वांतैर्जुष्टो नित्यंतुष्टो निर्दुष्ट स्त्याज्यो नैवश्रीवज्रांको नष्टार्तको निःशंकः॥३॥ युग्मं॥ अथ शांतिजिनस्तुतिप्रारंभः॥ डुतविलंबितछंदः॥ विपुलनिर्मलकीर्त्तिभरान्वितो जयति निर्जरनाथनमस्कृतः॥ लघु विनिर्जितमोहधराधिपो जगति यः प्रभुशांतिजिनाधिपः॥१॥ विहितशांतसुधारसमज्ज नं निखिलडुर्जयदोषविवर्जितं॥परमपुण्यवतां भजनीयतां गतमनंतगुणैः सहितं सतां ॥२॥तमचिरात्मजमीशमनीश्वरं भविकपद्मविबोधदिनेश्वरं॥ महिमधाम भजामि जग त्रये वरमनुत्तरसिद्धिसमृद्धये॥ ३ ॥ त्रिभिर्विशेषकं॥ अथ कुंथुजिनस्तुतिप्रारंभः॥गी तपद्धतिमाह॥ जयजय कुंथुजिनोत्तमसत्तम तत्वनिधान धर्मजनोज्वलमानसमानस हंससमान॥ज्ञानाल्हादकमुख्यमहोद्धतकर्मविमुक्त विषमविषयपरिभोगविरक्त शुभाश ययुक्त॥१॥ जयजय विश्वजनीन मुनिव्रजमान्य विशुद्ध चेतन चारुचरित्रपवित्रितलोक विबुद्ध निरुपममेरुमहीधरधीर निरंतरमेव गर्वविवर्जितसर्वसुपर्वविनिर्मितसेव॥ २॥ जयजय सुरनरेश्वर नंदनचंदनकल्प वासक विश्वविभावविनाशक वीतविकल्प॥ नि र्मलकेवलबोधविलोकितलोकालोक प्राडुर्भूतमहोदयनिर्वृतिनित्यविशोक॥ ३॥ अ थारजिनस्तुतिप्रारंभः॥ रामगिरिरागेण गीयते॥ दिव्यगुणधारकं भव्यजनतारकं डुरितमतिवारकं सुकृतिकांतं॥ जिनविषमसायकं सर्वसुखदायकं जगति जिननायकं परमशांतं दि०॥१॥स्वगुणपर्यायसंमीलतं व्याहतं विगतपरभावपरिणतिमखंडं॥सर्व संयोगविस्तारपारंगतं प्राप्तपरमात्मरूपं प्रचंडं॥ २॥ दि०॥ साधुदर्शनवृतं भाविकै प्रस्तुतं॥ प्रातिहार्याष्टकोद्भासमानं॥सततमुक्तिप्रदं सर्वदा पूजितं॥शिवमपरसार्वभौ मप्रधानं॥ ३॥ अथ मल्लिस्तुतिप्रारंभः॥ कुंभसमुद्भव संमदाकर सगुणवरहेममल्लिजि नोत्तम देव जयजय विश्वपते१ कृत्याकृत्यविवेकिता जिनसमुचिता हे त्वयि जागर्ति जि नेश ज०॥२॥नित्यानंदप्रकाशिका भ्रमनाशिका हे तव शुभदृष्टिरनीश ज०॥३॥शुद्धिनि बंधनसन्निधे सद्गुणनिधे हे वर्जितसर्वविकार ज०॥ ४॥ निजनिरुपाधिकसंपदा शो भित सदा हे निर्मलधर्मधुरीण॥ ५॥१९॥अथ मुनिसुव्रतस्तुति प्रारंभः॥अथान्या गेयपद्धतिः॥ उत्तमचेतनधर्मसमृद्धजगत्पते॥ नित्यानित्यपदार्थनिचयविलसन्मते॥नि जविक्रमजितमोहमहोद्भटभूपते॥ श्रीपद्मातनुजात सुजातहरियुते॥१॥ श्रीमुनिसु व्रत सुव्रतदेशक सज्जनाः कृतसद्गुरुशुभवाक्यसुधारसमज्जनाः हे प्रणमंति भवंतमनंतसु खाश्रितं॥ केवलमुज्वलभावमखंडमनिंदितं॥ २॥ तेनिःसंशयमेव जगत्रयवंदिताः॥ सद्भावेन भवंति शुभदृष्ट्यानंदिताः॥कृत्यं स्वोचितमेव यतः किल कारणं॥जनयति नात्म

विरुद्धमिद्धासाधारणं ॥ ३ ॥ अथ नमिजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ पंचचामरछंदः ॥ नमीश निर्मलात्मभूप सत्यरूप शाश्वतं परार्द्धसिद्धिसौधमूर्द्धिसत्स्वभावतः स्थितं ॥ विधाय मानसाब्जकोशदेशमध्यवर्त्तिनं स्मरामि सर्वदा भवंतमेव सर्वदर्शिनं॥१॥प्रफुल्लकाव लोकन प्रभूततेजसो य ते दिवाकरस्य वा महेश्वराभिदर्शनेन मे॥प्रमादवर्द्धिनी सुदुर्मतिर्निशेव दुर्भगा गता प्रणाशमाशु हृत्कजे विनिद्रिता भवतु ॥ २ ॥ निरस्तदोषदुष्टकष्टकार्यमर्त्यसंस्तवो भवे भवे भवत्पदांबुजैकसेवकः प्रभो ॥ भवेयमीदृशं भृशं मदीयचित्तचिंतितं तव प्रसादतोभवत्ववंध्यमेव सत्वरं॥३॥ अथ नेमिजिनस्तुतिप्रारंभः॥ उपजातिछंदः ॥ विशुद्धविज्ञानभृतां वरेण शिवात्मजेन प्रशमाकरेण ॥ येन प्रयासेन विनैव कामं विजित्य विक्रांतवरं प्रकामं ॥१॥ विहाय राज्यं चपलस्वभावं राजीमतिं राजकुमारिकां च ॥ गत्वा सलीलं गिरिनारशैलं भेजे व्रतं केवलमुक्तियुक्तं ॥२॥ निःशेषयोगीश्वरमौलिरत्नं जिनेंद्रियत्वे विहितप्रयत्नं॥ तमुत्तमानंदनिधानमेकं नमामि नेमिं विलसद्विवेकं ॥३॥ अथ पार्श्वजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ पंचचामरछंदः ॥ श्याम तं जिनं सदा मुदा प्रमादवर्जितं स्वकीयवाग्विलासतोजितोरुमेघगर्जितम् ॥ जगत्प्रकामकामितप्रदानदक्षमक्षतं पदं दधानमुच्चकैरकैतवोपलक्षितं ॥ १ ॥ सतामवद्यभेदकं प्रभूतसंपदां पदं वलक्षपक्षदक्षजापतीक्षणक्षणप्रदं ॥ सदैव यस्य दर्शनं विशांविमेदितं नसां॥निहंत्यशातजातमात्मभक्तिरक्तचेतसां ॥२॥ युग्मं॥अवाप्य यत्प्रसादमादितः पुरुश्रियो नरा भवंति मुक्तिगामिनस्ततः प्रभाप्रभास्वराः॥ भजेयमाश्वसेनिदेवदेवमेवसत्पदं तमुच्चमानसेन शुद्धबोधवृद्धिलाभदं ॥ ३ ॥ अथ वीरजिनस्तुतिप्रारंभः ॥ पृथ्वीछंदः ॥ वरेण्यगुणवारिधिः परमनिर्वृतः सर्वदा समस्तकमलानिधिः सुरनरेंद्रकोटिश्रितः ॥ तथापि गुणवर्जितो विगतभावसौख्यो धनः सुमुक्तजनसंगमस्त्वमसि वर्द्धमान प्रभो ॥ १ ॥ जिनेंद्र भवतोद्भुतं मुखमुदारबिंबस्थितं विकारपरिवर्जितं परमशांतमुद्रांकितं ॥ निरीक्ष्य मुदितेक्षणः क्षणमितोस्मि यद्भावनां सदैव जगदीश्वरोद्भवत सैव मे सर्वदा ॥ २ ॥ विवेकिजिनवल्लभं समदुरात्मनां दुर्लभं दुरंतदुरितव्यथाभरनिवारणे तत्परं ॥ तवांग पदपद्मयोर्युगमनिंद्यवीरप्रभो प्रभूतसुखसिद्धये मम चिराय संपद्यतां ॥३॥इत्थं चतुर्विंशतिसंख्ययैव प्रसिद्धिभाजां वरतीर्थराजां॥श्रीजैनवाक्यानुसृतप्रबंधा भक्तैरहीना प्रणुतिर्नवीना॥७५॥गणाधिपश्रीजिनलाभसूरिप्रभुप्रसादेनविनिर्मितेयं ॥ जिमप्रणीतामृतधर्मसेविक्षमादिकल्याणबुधात्मबुध्यै॥ ७६॥युग्मं॥यस्याःप्रसादात्परिपूर्णभावं भूतः सुनिर्विघ्नतया स्तवोयं॥ जगत्रयीजंतुहितैकनिष्ठा वाग्देवता सा जयतादजस्रं ॥ ७७ ॥ इतिश्रीमच्चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः समाप्ता ॥

॥ श्रीसर्वज्ञायनमोनमः ॥

अथश्री मुनिसुंदरसूरिकृत अध्यात्मकल्पद्रुमो

बालावबोधसहितः प्रारभ्यते

॥ प्रथम अर्थकर्त्तानुं मंगलाचरण ॥

श्रीशंखेश्वरपार्श्वेशं प्रणताभीष्टदायकं ॥
प्रणमामि परमप्रेम्णा सर्वाभीप्सितसिद्धये॥ १ ॥
सर्वज्ञं सर्वभाषाभिः सर्वसंसत्प्रबोधकं ॥
सर्वसत्वहितं वंदे वर्द्धमानजिनेश्वरं ॥ २ ॥
अध्यात्मकल्पद्रुमसंज्ञकस्य शास्त्रस्य संविज्ञहितावहस्य ॥
वार्त्ताभिरप्रौढमतिप्रतुष्ट्यै बालावबोधां विदधे विवृत्तिं ॥ ३ ॥

हवेग्रंथनेआदि ग्रंथकार प्रथमस्थापनानुं सूत्रकहेछे

अथायंश्रीमान् शांतनामा रसाधिराजः सकलागमादि सुशास्त्रार्णवोपनिषद्भूतसुधारसायमान ऐहिकामुष्मिका नंतानंदसंदोहसाधनतया पारमार्थिकोपदेश्यतया सर्वरस सारभूतत्वाच्च शांतरसभावनात्माध्यात्मकल्पद्रुमाभिधा नग्रंथांतरग्रंथननिपुणेन पद्यसंदर्भेण भाव्यते ॥

अर्थ ॥ पूर्वेंश्री मुनिसुंदरसूरियें त्रिदशतरंगिणी गुर्वावली प्रमुख ग्रंथकीधा ते वारपछी आग्रंथकीधो तेभणीइहां अथशब्दआण्यो तेमाटे अथकहेतां एटलाथकी अनंतर जेजैनशासननेविषे प्रत्यक्ष शांतनामाजे रसाधिराज रसजे १ शृंगार २ हा स्य ३ करुणा ४ रौद्र ५ वीर ६ भयानक ७ बीभत्स ८ अद्भुत ९ शांत एनवमध्येअ धिराजके० शिरोमणी तेहुं मुनिसुंदरसूरि पदके० काव्यतेहनो संदर्भजेरचना तेणेकरी ने भाव्यतेके० विचारुंछुं एटलेपूर्वेंमनमांधर्योछे तेकाव्यबंधे प्रगटकरीकहुंछुं के हेवोछेते रसाधिराज श्रीके० मोक्षरूपिणीलक्ष्मी तेछे फलजेहनुं एहवो वलीकेहेवोछे

आगमजे श्रीजिनेश्वरप्रणीत सिद्धांत तेआदेंदेइने सकलजे सुशास्त्रकहेतां धर्मशास्त्र तेरूपीउं अर्णवजे समुद्र तेहनुं उपनिषद्भूतके० सारभूत एहवो सुधारसायमानके० अमृतरसतुल्यछे हवेअन्यशृंगारादिक रसतजीने केवलशांतरसनेज शांवास्तेनावुं तेहनोहेतुकहेछे एकतोऐहिकामुष्मिकके० इहलोकसंबंधी अने आमुष्मिकके० परलोकसंबंधी जेअनंतआनंदनो संदोहके० समूह तेनुंसाधनछे तेहेतुयेंकरीने वली बीजोहेतुकहेछे परमार्थिकजे मोक्षार्थी तेहनाजेजाणनार तेहनेउपदेशदेवायोग्यछेए टलेमोक्षार्थीनाउपदेशकजे तीर्थंकर गणधरादिक तेआशांतरसनोज उपदेशकरे तेणेकरीने. वलीत्रीजोहेतुकहेछे जेआशांतरसते सर्वरसनेविषे सारभूतछे तेहेतुथकी. हवे पद्यसंदर्भकहेवुंछे तेकेहेछे शांतरसभावनास्वरूप अध्यात्मकल्पद्रुम एहवेनामेजेग्रंथ विशेष तेहनुं ग्रंथनजेरचना तेहेनेविषे निपुणछे मनइच्छित अध्यात्मज्ञान आपवाने कल्पवृक्षनीपेठेसमर्थ तेमाटेआग्रंथनुंनाम अध्यात्मकल्पद्रुम जाणवुं.

जयश्रीरांतरारीणां लेभे येन प्रशांतितः ॥
तं श्रीवीरजिनं नत्वा रसः शांतो विभाव्यते॥१॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनेआदें ग्रंथकर्त्ता मंगलाचरणकहेछे जेणेप्रशांतितके० उत्कृष्टशांतरसथी क्रोध मान माया लोभ राग द्वेष ए छए अंतरंगशत्रुछे तेओनेजीतीने जय लक्ष्मीपामीछे एहवाते श्रीवीरजिनप्रतें हुंमुनिसुंदरसूरि नमस्कारकरीने शांतनामाजे रस तेने भावुंछुं एटले समुचितेष्टदेवताने नमस्कारलक्षण ग्रंथारंभेमंगलिककह्युं॥१॥

सर्वमंगलनिधौ हृदि यस्मिन् संगते निरुपमं सुखमेति ॥
मुक्तिशर्म च वशीभवति द्राक् तं बुधा भजत शांतरसेंद्रं॥२॥

अर्थ ॥ हवेशांतरसनुं महात्म्यकहेछे बुधाके० हेविवेकीजनो तमें आ सर्वमांगल्यनुं निधान एहवोजे शांतनामारसाधिराज तेप्रतेंभजो केमके एशांतरस जेनाहृदयमांआव्यो तेप्राणी अनुपम सर्वार्थसिध्यादिकनाजेसुख तेप्रतेपामें वलीजे हृदयमां आवेथके जेमोक्षसुखतेपण द्राग्के० तत्काल थोडाकालमांज वशथाय ॥ २ ॥

समतैकलीनचित्तो ललनापत्यस्वदेहममतामुक् ॥ विषयकषायाद्यवशः शास्त्रगुणै र्दमितचेतस्कः ॥ ३ ॥ वैराग्यशुद्धधर्मा देवादिसतत्वविद्विरतिधारी ॥ संवरवान् शुभवृत्तिः साम्यरहस्यं भज शिवार्थिन् ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे साम्योपदेशयोग पुरुषनाविशेषण द्वारेंकरीने ग्रंथकर्त्ता ग्रंथमध्येक हेवाना सोल द्वारकहेछे हेमोक्षार्थिपुरुषतुं साम्यरहस्यजे समतानुंसार तेप्रतेंनज तेकहेवोथइनेनज जे एकतो समतासाथें लीनचित्तकरीने एटलेएपहेलुं द्वारपण कह्युं वली बीजुं ललनाजे स्त्रीनीममतामोचन द्वार त्रीजुं अपत्यजे पुत्रादिकसंततिनी ममतामोचन द्वार चोथुं स्वके० धननीममतामोचन द्वार पांचमुं देह तेहनीममतायें रहितथको एटलेपांचमुं देहममतामोचन द्वार छठुं विषयजे शब्दादिकनोनिग्रहकरवो सातमुं कषायजे क्रोधादिक तेनोनिग्रहकरवो इहां आदिशब्दथी राग द्वेष प्रमादादि क तेहुने अवश्यके० आधीननही एहवोथकोरहे तथा शास्त्रजे जैनागम तेहना गुणजे हेयोपादेयादिक तेणेकरीने दम्युंछेचित्तजेणे एटलेशास्त्रगुणते आठमुं द्वार अनेचित्तदमननामे नवमुं द्वार वली वैरागेंकरीने शुद्धनिर्दोषछे धर्मजेहनुं एमांदस मुं वैराग्य द्वार अने इग्यारमुं शुद्धधर्मनामा द्वार तथा देवजेश्रीअरिहंत गुरुजेसु साधु अनेकेवलिप्रणीतधर्म एत्रण तत्वनो जाणथयीने एटले ए देवादिकस्वरूपनाज्ञा ननुं बारमुं द्वार तथा विरतिजे पंचाश्रवनुंविरमण तेहनुंधारकथको एतेरमुंविरति धारी नामा द्वार वली संवरजेसत्तावनभेदें आश्रवनिरोधरूप तेणेकरीसहित तेचउद मुं संवर द्वार अने शुभउत्तम वृत्तिके० आचरणाछेजेहनी एहवोथको तुंसाम्यरहस्य नेभज एटलेइहां शुभवृत्तिनामापन्नरमुं द्वारथयुं अनेसोलमुं साम्यरहस्यनामा द्वार एग्रंथमांकहेवानासोल द्वारना नामबेश्लोकेंकरीकह्या ॥ ३।४ ॥

इति षोडशाधिकारे शास्त्रोपदेशपदसंग्रहो यथा

चित्तबालक मात्याक्षी रजस्त्रं भावनौषधीः ॥
यत्त्वां दुर्ध्यानभूता न छलयंति छलान्विषः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथम समताना अधिकारआश्री उपदेशकहेछे हेचित्तरूपीयाबाल क तुं सदाय भावनाजे अनित्यादिकबार तथामैत्र्यादिकचार तेरूपणीऔषधीप्रतें छां मीसनही केमकेएभावनाने नछांमवाथी शोगुणथायछे तेकहेछे जेथकीताहराछलना जोनाराजे आर्त्तरौद्रादिदुर्ध्यान तेरूपीआ भूतपिशाचते तुजनेछलकरीशकशेनही॥५

यदिंद्रियार्थैः सकलैः सुखं स्यान्नरेंद्रचक्रित्रिदशाधिपानां ॥
तद्बिंदवत्येव पुरोहि साम्यसुधांबुधेस्तेन तमाद्रियस्व ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेएशुभभावना ते समताविना नहोय तेकहेछे सघला इंद्रियार्थेंजे शब्द रूप रस गंध अनेस्पर्श तेणेकरीने राजाचक्रवर्त्ती अनेत्रिदशाधिपकहेतां इंद्

तेहनेजेसुखहोय तेसर्वेसुख समतारूपीयुंजे सुधांबुधिकहेतां अमृतसमुद्रछे तेथ्रा गळ बिंदुबराबरदेखाय एटलेसंसारिकसुख सघळुंमळीने बिंदुतुल्यछे अनेसमतानुं सुखछेते समुद्रतुल्यछे तेमाटेमोक्षार्थिजीवते समतारूपीआ सुधासमुद्रनेआदरे॥६॥

अदृष्टवैचित्र्यवशाज्जगज्जने विचित्रकर्माशयवाग्विसंस्थुले ॥

उदासवृत्तिस्थितचित्तवृत्तयः सुखं श्रयंते यतयः क्षतार्त्तयः॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसमताआदर्यानुं फळकहेछे जगतजे त्रिभुवनतेमां जनजे देवमनु ष्यादि तेमध्येयतीजेनिर्ग्रंथ तेजसुखीयाछे तेजगतजनकहेवाछे तेकहेछे अदृष्टजेपूर्वकृ तकर्म तेहनुंविचित्रजे नानारूपपणुं तेहनावशथकी नानाविधकर्मना विपाकथी सं सारीजीवना मननोअभिप्राय तथावचन अनेकायानीचेष्टापण नानाविधछे तेणेकरी व्याकुळछे. हवेयतीकहेवाछे उदासवृत्तिजे लाभालाभ सुखदुःख अने प्रियअप्रिय तेने विषेसमानवृत्तिछे तथाजेनी चित्तवृत्ति स्थिररहीछे वळीजेनीसर्वचिंता क्षयपामीछे ॥ ७

विश्वजंतुषु यदि क्षणमेकं साम्यतो भजसि मानस मैत्रीं ॥

तत्सुखं परममत्र परत्राप्यश्नुषे न यदभूत्तव जातु॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वळीसमतानुं विशेषफळकहेछे हेचित्त जोतुं समतायेंकरीने सर्वजीवने विषे एकक्षणमात्रपण मैत्रिता चिन्तवेतो तुं पूर्वेसंसारमांभ्रमणकरतां कोइवखतपा म्योनथी एवा इहलोक अने परलोकमांपण परमउत्कृष्टसुखप्रतेंपामें ॥ ८ ॥

न यस्य मित्रं न च कोपि शत्रु निंजः परो वापि न कश्चनास्ते ॥

न चेंद्रियार्थेषु रमेत चेतः कषायमुक्तं परमः स योगी ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेएसमताने योग्यजीवकोणहोय तेकहेछे जेहनेकोइमित्रनथी तथा कोइशत्रुपणनथी तेमजजेहने पोतानुं तथापारकुंकांइनथी वळीजेहनुं चित्त कषाय रहितथको इंद्रियार्थजे शब्दादिविषय तेनेविषे रमेनही तेप्राणीपरमयोगवंतहोय एटले ते समतावंतजाणवो ॥ ९ ॥

भजस्व मैत्रीं जगदंगिराशिषु प्रमोदमात्मन् गुणिषु त्वशेषतः ॥

भवार्तिदीनेषु कृपारसं सदाऽप्युदासवृत्तिं खलु निर्गुणेष्वपि ॥१०॥

अर्थ ॥ हवेसमताआव्याना कारणउपदेशेछे हेजीव जगतना अंगीके० जेजीवते हनीराशिकहेतां समूहनेविषे एटलेसामान्यथकीसर्वजीवनेविषे मैत्रिताप्रत्यें भजस्वके० आदरीने वळीसमस्तप्रकारें जेकोइ ज्ञानादिकगुणयुक्तहोय तेहनेविषे प्रमोदप्रत्यें भजि

अनुमोदनाकर तथाजवके० संसारनी आर्त्तिजेपीडा तेणेकरीदीनके० दुःखितप्राणिने विषेकृपारसप्रतेंजज वली निश्चेंनिर्गुण प्राणीनेविषेपण उदासवृत्तिप्रतेंजज ॥ १० ॥

मैत्री परस्मिन् हितधीः समग्रे जवेत्प्रमोदो गुणपक्षपातः ॥
कृपा जवार्त्ते प्रतिकर्त्तुमीहोपेक्षा च माध्यस्थ्यमवार्यदोषे ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेएमैत्र्यादि चारेजावनानुं स्वरूपकहेले समस्तपोताथी व्यतिरिक्तजेबीजाजीव तेनेविषेजे हितचिंतववानीबुद्धि तेनेमैत्रीकहियें तथागुणीजे ज्ञानादिकगुणवंत तेहनोपक्षपातजे प्रशंसा तेहनेप्रमोदकहियें तथाजवार्थिजे जन्ममरणादिक संसारनादुःख प्रतिकारकरवानीवांछा कोइअज्ञानीजीवने पापथकीनिवर्त्ताववानेअर्थें प्रतिबोधदेवो तेनेकृपाकहियें जेमश्रीवीरस्वामीयें शूलपाणीयक्ष चंडकोशिकसर्पप्रतें अपराधउपरपण कृपाकीधी. वलीजेप्राणीअवार्यदोषकहेतां वारतांथकापण दोषनेन ठांडे तथावारवायोग्यपणनहोय एहवोदोषवंत जेपुरुष तेनेविषे मध्यमजावें रागद्वेषरहितपणे समजावेंरहेवुं तेउपेक्षाजावनाकहियें ॥ ११ ॥

तथाचोक्तं तुर्यषोडशके॥परहितचिंता मैत्री परदुःखनिवारिणी तथा करुणा ॥परसुखतुष्टिर्मुदिता परदोषोपेक्षणमुपेक्षा ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ तेमजवलीकह्युंले श्रीहरिजद्रसूरियें चोथाषोडशकमध्ये जे परनेहितचिंतववुंतेमैत्री तथापरनादुःखने निवारणकरवानीजावना तेकरुणा अनेपरनुंसुखजे समतादिरूप तेदेखीने संतोषपामवो ते मुदिताके० प्रमोदजावना कहियें अने परनादोष देखी उवेखवुं उदास रहेवुं तेनेउपेक्षाजावना कहियें ॥ १२ ॥

तथाच योगशास्त्रे ॥ माकार्षीत्कोपि पापानि मा चाजूत्कोपि दुःखितः ॥ मुच्यतां जगदप्येषां मतिर्मैत्री निगद्यते ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ वलीयोगशास्त्रमध्येपण श्रीहेमचंद्रसूरियेंकह्युंले के कोइपापमकरो कोइ दुःखीथाओमां तथाजगतसर्व कर्मथीमुकाओ एवीजेमतितेने मैत्रीकहियें ॥ १३ ॥

अपास्ताशेषदोषाणां वस्तुतत्त्वावलोकिनां ॥ गुणेषु पक्षपातो यः स प्रमोदः प्रकीर्तितः ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ सकलदोषरहित तथा वस्तुतत्वजे स्वजाव अने परजाव तथा द्रव्य गुण पर्यायनाजाण एवाजेगुणवंत तथाउपलक्षणथकी सामान्यपणेपण जेगुणवंतहोय तेहना गुणनेविषे जेपक्षपात तेनेप्रमोदजावनाकहियें ॥ १४ ॥

दीनेष्वार्त्तेषु भीतेषु याचमानेषु जीवितं ॥ प्रती
कारपरा बुद्धिः कारुण्यमभिधीयते ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ वलीदीन असमर्थ अनेआर्त्तपीडावंत तथा भयेंकरी आकुल अनेजी वितव्यनेयाचतां एवाप्राणिनेविषेजे प्रतिकारकहेतां दुःख निवारवानीबुद्धि राखवी तेने कारुण्यके० करुणाभावना कहियें ॥ १५ ॥

क्रूरकर्मसु निःशंकं देवतागुरुनिंदिषु ॥ आ
त्मशंसिषु योपेक्षा तन्माध्यस्थ्यमुदीरितं ॥१६॥

अर्थ ॥ तथा शंकारहित क्रूरकर्मनाकरनार अने देवगुरुनानिंदक पोतानीप्रशं सानाकरनार एवाअधमपुरुषनेविषेजे उपेक्षा तेमध्यस्थभावनाकहियें ॥ १६ ॥

चेतनेतरगतेष्वखिलेषु स्पर्शरूपरवगंधरसेषु साम्यमे ॥
ति यदा तव चेतः पाणिगं शिवसुखं हि तदात्मन् ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेवली मूलसूत्रकार समताआदरवाथी मोक्षनी सुलभताकहेछे हेआ त्मन् जेवारें ताहारुंचित्त अखिलके० समग्रचेतनजे अनुक्रमें स्त्री देह स्त्रीकटाक्ष कोकिलनाद कस्तुरी पशुमांसप्रमुख तथाइतरजे अचेतनपदार्थ अनुक्रमें शय्या आभरणघरेणादिक कर्पूर वीणा शर्कराप्रमुख तेसंबंधी जेस्पर्श रूप रवके०श ब्द गंध रस तेहनेविषेतुं साम्यताके० इष्टानिष्टनेविषे समवृत्तिप्रतेंपामशे तेवारेंज नि श्चेंकरीने मुक्तिसुखते ताहरेहस्तगतथाशे ॥ १७ ॥

के गुणास्तव यतः स्तुतिमिच्छस्यद्भुतं किमकृथा मदवान् यत् ॥
कैर्गता नरकभीः सुकृतैस्ते किं जितः पितृपतिर्यदचिंतः ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माजे स्तुतिनेवांछेछे तेनोमदनिवारवाने कहेछे हेअत्माऔदार्य धै र्य गांभीर्य दान शील तप भावना उपशमादिक जेगुणछे तेमांहेलाताहरामां श्यागुण छे केजेहने माटेतुं स्तुतिकहेतां लोकनामुखें पोतानीप्रशंसा करावबावांछेछे तथावली तेंशुंसाधुआश्रीने राज्यादिमहर्द्धिकनेप्रतिबोध अथवासर्वशास्त्रप्रवीणता उग्रतप युगप्रधानपणुं इत्यादिक अथवाश्रावकआश्रीने जीर्णोद्धार बिंबप्रतिष्ठा संघपतिपणुं अमारपडह इत्यादिक अद्भुतके० आश्चर्यकारी कार्यश्यांकीधा केजेनाथी तुं मद वंतथायछे तथा कयासुकृतेंकरी ताहारीनरकभीतीकगइ अथवापितृपतिजे यम तेशुं

तेंजित्यो जेमाटेतुंअचिंतकहेतां निश्चिंतथकोरहेछे. एटले स्तुतिनीवांछा मदकरवो अने निश्चितरहेवुं ए तने युक्तनथी ॥ १७ ॥

गुणस्तवैर्यो गुणिनां परेषा माक्रोशनिंदादिभिरात्मनश्च ॥
मनः समं शीलति मोदतेवा खिद्येत च व्यत्ययतः स वेत्ता॥१८॥

अर्थ ॥ हवेजेवेत्तापणुंते शांतरसनुंकारणछे एमकहेछे जेप्राणी परके० अन्यजेगुणवंतपुरुषहोय तेनागुणस्तवजे गुणवर्णन अनेआत्मनःकहेतां पोतानाआक्रोशजे गालप्रमुख तथानिंदादिक सांजलीने पोतानुंमन समपरिणामेराखे पण अमर्षधरेनही उलटो मोदतेकहेतां हर्षपामे अनेएमविचारेजे गुणवंतना गुणस्तववाजबछे तथा हेआत्मातुं निर्गुणछो माटे निंदानेजयोग्यछो एमप्रमोदधरे तथाव्यत्ययकहेतां उपरकह्याथीविपरीतजे बीजागुणवंतपुरुषना आक्रोशके० निंदासांजलीअनेपोतानी प्रशंसादिकसांजलीने खेदपामे जेएएवागुणवंतपुरुषनी निंदाकांकरेछे तथामाहारामां तोगुणनथी तेमछतांएह्युंकहेछे एमचिंतवे तेहनेवेत्ताके० ज्ञानीकहियें ॥ १९ ॥

न वेत्सि शत्रून् सुहृदश्च नैव हिताहिते स्वं न परं च जंतोः॥ दुः
खं द्विषन् वांछसि शर्मचैत न्निदानमूढः कथमाप्स्यसीष्टं॥२०॥

अर्थ ॥हवेयथार्थने नहीजाणनारजीवनुं मूढपणुंकहेछे हेजीव तुंशत्रूजेरागादिक तथामित्रजेउपशमादिक तेहनेनथीजाणतो तथाहितजेसंवरादिक अने अहितजेआश्रवादिक तथावलीस्वजावजे ज्ञानदर्शनादिक अनेपरजावजे मिथ्यात्वरागादिक तेहने नथीओलखतो वली दुःखजेपरिसहादिक तेहथीउजग्योछे अनेशर्मजे इहलोकतथा परलोकादिकनुंसुख तेनेवांछेछे तेवारें तुं एसुखनुं निदानजे कारण तेहनुं तो मूढके० अजाणछो तेमछतां शीरीतेंवांछित पदार्थप्रतेंपामीश एटलेसुखनुंमूल निदानते संयमछे तेविनाइष्टसुखनी प्राप्तिनथाय॥ २० ॥

कृती हि सर्व परिणामरम्यं विचार्य गृह्णाति चिरस्थितीह ॥
जवांतरे ऽनंतसुखाप्तये तदात्मन्किमाचारमिमं जहासि ॥ २१॥

अर्थ ॥ हवेजाणपणानुं फलदेखाडीने उपदेशेछे कृतीजेमाह्योपुरुषहोय तेतोसर्ववस्तुमांजे वस्तुपरिणामेरम्य तथासुखदाइहोय अनेचिरस्थितिकहेतां घणोकालरहे एवुंविचारकरीने तेवस्तुनेतेग्रहणकरे तोहेआत्मा जवांतरेअनंतसुख आपवाने समर्थ एवाजेज्ञानादिक चारपदार्थ तेनेतुंकेमत्यजेछे एचारेंवस्तुपरिणामेरम्यछे अने चिरस्थितिछे एटलेघणाकालसुधी रहेएवीछे माटेतेतुंजनेत्यजवीघटेनही ॥ २१ ॥

निजः परो वेति कृतो विभागो रागादिभिस्ते त्वरय स्तवात्मन् ॥
चतुर्गतिक्लेशविधानतस्त त्प्रमाणयन्नस्यरिनिर्मितः किं ॥ २२ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्मा रागादिकने वशथको पोतानुंअने पारकुंलेखेछे तेआश्रीउपदे शेछे हेआत्मा निजकहेतां स्वजन कलत्र पुत्रादिक अथवा परजेशत्रुप्रमुख एवोवि भागजे भेदकरीजाणवो तेभेदसर्वेरागादिकनुं करेलुंछे माटेताहरे जेप्राणीसाथें राग छे तेहनेतुं स्वजनकरीजाणेछे अनेजेनाथीद्वेषछे तेनेशत्रुकरीजाणेछे पणतेरागादिक तो चारगतिनाक्लेश कष्टनाकरनार ताराशत्रुछे तोअरिनिर्मितके० तेशत्रुनुंजनीपजा व्युं जेभेद तेने शुंप्रमाणकरेछे एटलेराग द्वेषनावशथी निजपरविभागकरवुंतेजूठोछे.

अनादिरात्मा न निजः परो वा कस्यापि कश्चिन्न रिपुः सुहृद्वा ॥
स्थिरा न देहाकृतयोणवश्च तथापि साम्यं किमुपैषि नेषु ॥ २३ ॥

अर्थ ॥ हवेसर्ववस्तुनी अनित्यतादेखाडी आत्मानेसमतानी प्रेरणाकरेछे हेआ त्मा तुंआदिरहितछो अनेकोइनेकोइ पोतानुं तथापारकुंनथी वलीकोइनोकोइशत्रु अ नेमित्रपणनथी वलीहेआत्मन् देहजेपुरुष स्त्रीआदिकनुंशरीर तेआकारेंपरिणाम्या एवाअणुकहेतां पुद्गल तेपणस्थिरनथी केमके क्षणक्षणप्रत्यें उपचयके० शुभअशु भादिक अवस्थापालटेछे तेमछतां हेआत्मा आदेहाकारजे पुद्गलतेनेविषे तुंकेम सा म्यताकहेतां रागद्वेषरहिततापणुं नथीपामतो हेआत्मा तुंतोअनादीछे अनेएदेहाकृती तो अस्थिरछे माटेसमतानेआदर ॥ २३ ॥

यथा विदां लेप्यमया न तत्वा त्सुखाय मातापितृपुत्रदाराः ॥
तथा परेपीह विशीर्णतत्तदा कारमेतद्धि समं समग्रं ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ वलीएजअर्थ दृढकरेछे आसंसारमांजेम लेपमयकहेतां चित्रादिलिखित जे माता पिता पुत्र दारा कलत्रहोय ते तत्वथकी विचारीजोतां विवेकीपुरुषने सुखदाइ नहोय एटलेतेहने देखीविवेकीसुखमानेनही तेम अपरेके० बीजापणजे साक्षातदृश्य मान माता पिता पुत्र कलत्रादिक तेपणतत्वथकी विवेकीने सुखदाइनथाय केम के तेना तेतेआकारजांगाथकी ते लिप्यमय जेचित्रितपुतला तथाप्रत्यक्षदृश्यमानजे मातापितादिक तेसर्वसरखाथाय माटेतेनेविषे ममत्वकरवुं तेमिथ्याछे ॥ २४ ॥

जानंति कामान्निखिलाः ससंज्ञा अर्थं नराः कर्म च केपि धर्मं ॥
जैनं च केचिद् गुरुदेवशुद्धं केचित् शिवं केपि च केपि साम्यं ॥ २५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमताना धरनारप्राणिथोडाहोय तेकहेछे संसारमां मनग्रसंज्ञाधारक जीवमात्र तेकामकहेतां शब्दादिकविषयजाणेछे एटले कामनाअर्थी सर्वेजीवछे तेसर्वमनुष्य अर्थकहेतां धनउपार्जन तथाकर्मकहेतांकाम एबेपदार्थजाणेछे केमके मनुष्यना कामभोगते धननेआधीनछे तेमांवलीकोइकमनुष्यते सामान्यथकी मिथ्यादृष्ट्यादिक धर्मनेजाणेछे वलीतेमांपणकोइकज जैनधर्मनेजाणेछे वलीतेमांपण कोइकविरलाज शुद्ध अष्टादशदोषरहितदेव तथागुरु सुविहितसुसाधु एवोजैनधर्मजाणेछे वलीतेमांपण शिवजेमोक्षार्थ तेहनेतोकोइकज जाणेछे वलीतेमांपणसमताना जाणतो कोइकविरलाजछे एटले ए सर्वेथीअधिक तेसमताना जाणनेकह्यो ॥ २५॥

स्निह्यंति तावद्धि निजानिजेषु पश्यंति यावन्निजमर्थमेभ्यः ॥
इमां भवेऽत्रापि समीक्ष्य रीतिं स्वार्थे न कः प्रेत्य हिते यतेत ॥२६॥

अर्थ ॥ हवेस्वजनना संबंधते केवलस्वार्थनिष्ठितछे तेदेखाडेछे निश्चयथी निजके० पोतानास्त्रीपुत्रादिकतेसहु निजके० पोताना पतितादिक स्वजननेविषेतिहां लगें स्नेह धरें जिहां लगें ते स्वजनथी पोतानुंअर्थ जे भरण पोषणादिक थतुंदेखे तिहांलगें स्नेह धरेछे एम प्रत्यक्षआभवनेविषेपण स्वजनादिकनी एरीतछे तेजोइने प्रेत्यके० परलोकनेविषे हितकारी एवोस्वार्थजे आत्मार्थ संयमादिक तेहनेविषे कोणउद्यमनकरे॥ २६ ॥

स्वप्नेंद्रजालादिषुयद्वदाप्तै रोषश्च तोषश्च मुदा पदार्थैः ॥
तथा भवेऽस्मिन् विषयैः समस्तैरेवं विभाव्यात्मलयेऽवधेहि॥२७ ॥

अर्थ ॥ हवेजेरागद्वेषधरवो तेफोगटछे एमदेखाडेछे जेमस्वप्न तथाइंद्रजालादिक विषे पाम्याजे अशुभ तथा शुभपदार्थ तेणेकरीने रोषकहेतांद्वेष अने तोषकहेतां हर्षकरवो ते मुधाके० निरर्थकछे एटले जेमस्वप्न इंद्रजालादिकना पदार्थोथी अर्थसिद्धिकांइनथी तेमभवमांपण अशुभतथा शुभविषयेंकरीने रोषअनेतोषकरवो तेमुधाछे एमविचारीने हेआत्मातुं आत्मसमाधिनेविषे अवधेहिके० सावधानरहे ॥ २७ ॥

एष मे जनयिता जननीयं बंधवः पुनरिमे स्वजनाश्च ॥
द्रव्यमेतदिति जातममत्वो नैव पश्यसि कृतांतवशत्वं॥२८॥
नोधनैः परिजनैः स्वजनैर्वा दैवतैः परिचितैरपि मंत्रैः ॥
रक्ष्यतेऽत्र खलु कापि कृतांतान्नो विभावयसि मूढ किमेवं॥२९॥

अर्थ ॥ हवेबेकाव्यमां जीवने मृत्युनुं आधीनपणुं देखाडेछे हेआत्मा आमाह

रोपिता आमाहरीमाता आस्वजन आइव्य एम ममत्वमां मग्नथयोथकोतुं स्वकहे तांपोतेज यमनेवशपडयुं नथीदेखतोठतो ॥ २८ ॥ तोहेमूढ एसंसारनेविषे निश्च येंकरीने धनतथापरिजन सेवकादिक तथा स्वजन पुत्र कलत्रादिक बलिदेवता त था परिचितकहेतां विधिथीउपार्ज्या जेमंत्रतेएसर्वेमलीनेपण कृतांतजेमृत्यु तेथी कोइप्राणीरखायनही एवुंहेमूर्खतुं केमविचारतोनथी ॥ २९ ॥

तैर्भवेपि यदहो सुखमिछं स्तस्य साधनतया प्रतिभातैः ॥ मुह्य सि प्रतिकलं विषयेषु प्रीतिमेषि न तु साम्यसतत्वे ॥ ३० ॥

अर्थ ॥ अहोआत्मा जेमाटेतुंसंसारमांपण तेपूर्वोक्तजेधनादिक तेणेकरीने सु खवांठतो ठतो समयसमयविषे विषयमां मोहपामेठे पणतेधनादिक कहेवाठे तेतुज नेसुख साधन तयाके० कारणपणे प्रतिभास्यांठे पणतेधनादिक तोसुखनाकार णनथी मात्रतने एमभास्यांठे जे ए सुखनासाधनठे तेथी तुं समताना सतत्वस्वरू पनेविषे प्रीतिनथीपामतुं ॥ ३० ॥

अथैतोयुग्मं ॥ किं कषाय कलुषं कुरुषे स्वं केषु चिन्ननु मनोरिधि याऽत्मन् ॥ तेपि ते हि जनकादिकरूपैरिष्टतां दधुरनंतभवेषु ॥ ३१ ॥

अर्थ ॥ हवेस्वजनादिकनुं अनेकांतिकपणुं देखामेठे निश्चयथकी हेआत्मा कोइ कप्राणीनेविषे अरिधियाकहेतां एमाहाराशत्रुठे एवीबुद्धेंकरी पोतानुंमन कषायेंकरीक लुषितशुंकरेठे केमके तेप्राणीपण ताहरा पिता मातादिकस्वरूपेंकरीने अनंता भवमां अनंतासगपणोने धरताहवा तेमाटेतेओने केवल शत्रुकरीजाणवुं तेमिथ्याठे ॥ ३१ ॥

यांश्च शोचसि गताः किमिमे मे स्नेहला इति धिया विधुरात्मा ॥ तैर्भवेषु निहतस्त्वमनंतेष्वेव तेपि निहता भवता च ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ हवे जे स्वजनठे तेजशत्रुठे एवुंदेखाडेठे हेआत्मातुं एमाहारो स्नेहवंत स्वजन किहांगयो एवीबुद्धियें विधुरात्माके० दुःखेंव्याकुलथको मुवागयाजेस्वज नादिक तेप्रत्येंशोचेठे एमजेहनो शोककरेठे तेजस्वजनादिकें तुजनेअनंताभवनेवि षेहण्योठे वलीतेंपण तेहनेअनंताभवनेविषे हण्याठे तेटलामाटे स्वजनबुद्धियेंजे स्ने हराखवुं तेपणमिथ्याठे. ॥ ३२ ॥

त्रातुं न शक्या भवदुःखतो ये त्वया न ये त्वामपि पातुमीशाः ॥ ममत्वमेतेषु दधत् मुधात्मन् पदेपदे किं शुचमेषि मूढ ॥ ३३ ॥

अर्थ ॥ हवेकोइकोइने राखवासमर्थनथी एवुंदेखाडेछे नवके० संसारनाडुःखथ की जेप्राणीने तुं राखीशक्योनही अनेतेपण नवडुःखथीतुजने राखीशक्यानही तो जेनवडुःखथी राखवानेसमर्थनथी तेवारेंहेमूर्खआत्मा स्वजनादिकनेविषे मुधाके० फो कटममत्वकरतोथको पगेपगेंछुंशोकपामेछे माटेशोकतजीने समतानेभज ॥ ३३ ॥

सचेतनाः पुद्गलपिंडजीवा अर्थाः परे चाणुमया द्वयेपि ॥
दधत्यनंतान् परिणामनावान् तत्तेषु कस्त्वर्हति रागरोषौ॥३४॥

अर्थ ॥ हवेजीवना पुद्गलसाथें नानाविध परिणामछे तेकहेछे पुद्गलपिंडके० पुद्ग लनो समूहजेदेहलक्षण तेहनेआश्रीनेरह्या एवाजे सचेतनके० चेतनाधारक सर्व जीव अथवा अणुमयाके० पुद्गलमयजे बीजा अचेतन अर्थके० पदार्थ एटलेशरी रधारकजीव अने पुद्गल एबेपण अनंतागमे परिणामनावके० पर्यायप्रत्येंधरेछे तोते जीवअनेपुद्गलनेविषे रागअनेरोषकरवाने कोणयोग्य थाय निपुणपुरुषें तेउपर राग रोषकरवो युक्तनथी॥३४॥ इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे साम्योपदेशाख्यः प्रथमोधिकार;

अथस्त्रियः॥ मुह्यसि प्रणयचारुगिरासु प्रीतितः प्रणयिनीषु कृतिन् किं॥ किं न वेत्सि पततां नववार्द्धौ तानृणां खलु शिलागलबद्धाः॥१॥

चर्म्मास्थिमज्जांत्रवसास्त्रमांसामेध्याद्यशुच्यस्थिरपुद्गलानां ॥ स्त्री देहपिंडाकृतिसंस्थितेषु स्कंधेषु किं पश्यसि रम्यमात्मन् ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेबीजाअधिकारमां स्त्रीओनोममत्व त्यजवाआश्री उपदेशआपेछे हेकृ तिन् प्रणयचारुके० स्नेहेकरीमनोहरछे गिराके० वाणीजेहनी एहवी प्रणयिनीके० स्त्री ओनेविषें प्रेमेकरीने सुंमोहपामेछे पण एमकांनथीजाणतोजे नववार्द्धौके० सं सारसमुद्रमां पडतापुरुषनागलामां स्त्रीओते शिलाउंबांधेछे ॥ १ ॥ हवेएस्त्रीओना शरीरनुं अपवित्रपणुंकहेछे हेआत्मन् चामडी हाड चरबी आंत्रडां पांसली मेद रुधिर मांस विष्टा तथा आदिशब्दथी मूत्र कफ श्लेष्मादिक एहवाअपवित्र अने अस्थिरके० क्षणविनाशिक जे पुद्गल तेहना स्कंधके० समूहथी बन्यो जेस्त्रीनुंशरी र तेहनी पिंडाकृतिके० सांइ सुघटआकार तेरूपेंसंस्थितरह्याछे तेमां सुंतुंमनोहर पणुंदेखेछे एटलेएसर्व अपवित्र अस्थिरपुद्गलनो पिंडछे तेमोकांइसारनथी ॥ २ ॥

विलोक्य दूरस्थममेध्यमल्पं जुगुप्ससे मोटितनासिकस्त्वं ॥
नृतेषु तेनैव विमूढयोषावपुष्षु तत्किं कुरुषेऽनिलाषं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ वळीतेहिजकहेछे हेआत्मन् अल्पके० थोडुकपण अमेध्यके० विष्ठादि कदेखीने मोटितनासिकाके० नाकमचकोडीनेतुं जुगुप्ससेके० दुगंछाकरेछे तोहे मूर्ख विष्ठादिकेंजनर्या एहवाजे स्त्रिओनाशरीर तेहनेविषे सुं अभिलाषकरेछे ॥ ३ ॥

अमेध्यमांसास्त्रवसात्मकानि नारीशरीराणि निषेवमाणाः ॥
इहाप्यपत्यद्रविणादिचिंतातापान् परत्रेप्रतिदुर्गतीश्च॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेएस्त्रीओनाशरीरते इहलोकें अने परलोकेंपण दुःखदायीछे तेकहेछे अमेध्यजे विष्ठादिक ते मांस रुधिर मेद तेथीजबनेला तन्मय एहवाजे स्त्रीओनाश रीर तेहने सेवनाराजेपुरुष तेइहलोकेंपण अपत्यके० संतानपुत्रादिक तथा द्रविण के० धनइत्यादिकनी चिंतानासंतापप्रतें पामेछे अने परलोकेंपण दुर्गतिप्रतेंपामेछे४

अंगेषु येषु परिमुह्यसि कामिनीनां चेतः प्रसीद विश
च क्षणमंतरेषां ॥ सम्यक् समीक्ष्य विरमाशुचिपिंडके
भ्यस्तेभ्यश्च शुच्यशुचिवस्तुविचारमिछत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ वळीस्त्रीनादेहनी अपवित्रताकहेछे चित्तनीप्रसन्नतायेंकरीनेजे स्त्रीओनाअं गनेविषे मोहपामेछे तेहनेकहियेंछेयें जे तुं तेमांएकक्षणमात्र प्रवेशकरी एटलेसूक्ष्मद ष्टीयेंकरी तेहनुंसम्यक्प्रकारें स्वरूपविचारीने पवित्र अने अपवित्र एबेवस्तुनावि चारने वांछतुंथको होयतो जेजे स्त्रीनाअंगछे तेतेसर्व अपवित्रतानाज पिंडके० ढग लाछे तेहथीतुं विरमके० रागत्यजीने अलगोरहे ॥ ५ ॥

विमुह्यसि स्मेरदृशः सुमुख्या मुखेक्षणादीन्यभिवीक्षमाणः ॥
समीक्षसे नो नरकेषु तेषु मोहोद्भवा भाविकदर्थनास्ताः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेस्त्रीनाअंगनिरीक्षण तथाभोगनुंफलकहेछे हेआत्मातुं सुं मुखीके०चं द्रमुखी तथास्मेरके०विकसितछेनेत्रजेहुना एहवीस्त्रीओनामुख तथाईक्षणजेनेत्र आ दिशब्दथी स्तन जंघादिक तेहनाउपर सरागपणेजोतोथको मोहपामेछे पणजे महादुःखमयनरक तेहुनेविषे तथाविध मोहथकी उपनीओ एहवी भाविके० आ गामिककदर्थनाजे महापीडाओ तेप्रतेंतुंकेमविचारतोनथी ॥ ६ ॥

अमेध्यभस्त्रावहुरंध्रनिर्यन्मलाविलोद्यत्कृमिजालकीर्णा ॥
चापल्यमायानृतवंचिका स्त्री संस्कारमोहान्नरकाय भुक्ता॥७॥

अर्थ ॥ वळीतेहिजकहेछे विष्ठादिकेंभरीथकी भस्त्राके० धमणीसरिखी तथाघ

णारंध्रजे बारेद्वार तेह्थीनिकलता मलके० विष्टामूत्रश्लेष्मादिक तेणेकरी आविलके० मलिन तथा च्यवतके० उपजता कृमिजे योनीमाहेला सूक्ष्मजीव तेहना जालके० समूह तेणेकरी कीर्णके० व्याप्त वली चपलपणुं तथा कपटाइपणुं अने अनृतके० असत्यवचन तेणेकरी वंचिकाके० पुरुषनेठगनारी एह्वीजेस्त्री तेसंस्कार जे जन्मांतरनोसंबंध तेह्नावशथकी अथवा संस्कारजे स्नान तिलक आचरणादिक तेह्थी उपनोजेमोह तेह्नावशेंकरी नोगवीथकी नरकायके०नरकनीदेवावालीथाय ७

निर्भूमिर्विषकंदली गतदरी व्याघ्री निराव्हो महाव्या
धिर्मृत्युरकारणश्च ललनाऽनभ्रा च वज्राशनिः ॥ बंधु
स्नेहविघातसाहसमृपावादादिसंतापनूः प्रत्यक्षापि च
राक्षसीति विरुदैः ख्याताऽऽगमे त्यज्यतां ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीपणस्त्रीनुंज त्यजवुंकहेछे श्रीसिद्धांतमां स्त्रीनेएहवे बिरुदेंकरीवखाणीछे तेमाटेस्त्रीनेत्यजवी तेकिहांकिहांबिरुदेंत्यजवी तेबिरुदोनानामकहेछे एस्त्रीतेभूमिविना विषनी कंदलीके० नवाअंकुरनीसरीखाछे तथा कंदरीजेगुंफाथीरहितथकीपण वाघणसरिखीछे वलीकोइ नामविनापण महारोगरूपछे वली अकारणके० अपथ्य सेवन अजीर्णादिक कारणोविनाज मृत्युके० मरणतुल्यछे वली अभ्रवादलरहितते वज्रसरिखी वीजलीछे अने बंधुके० स्वजननो स्नेह तेहनो विघातके० नाशकरनारी छे तथा साहसके० अविचारितकार्यनुंकरवुं असत्यबोलवुं वली आदिशब्दथी अदत्त अब्रह्म परिग्रहादिक तेसंबंधी संतापनो नूके० उत्पतिनोस्थानकछे वली प्रत्यक्ष साक्षात् राक्षसीपणजाणवी एरीतें एमर्वेस्त्रीना एहवा अशुन बिरुदजाणीने विवेकी पुरुषने स्त्रीसंबंधी ममत्वत्यजवुं ॥ ८ ॥ इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे स्त्रीममत्वमोचनो नाम द्वतीयो ऽधिकारःसंपूर्णः ॥

अथापत्याधिकारः॥ मानूरपत्यान्यवलोकमानो मुदाकुलो मोहनृपारिणा यत्॥चिक्षिप्सया नारकचारकेऽस्मिन् दृढं निबद्धो निगडैरमीभिः॥१॥

अर्थ ॥ हवेत्रीजाअधिकारें पुत्रादिकनुं ममत्वमुकवाआश्री उपदेशकहेछे. तेमां प्रथम संतानउपरें मोहकरवुंनही तेकहेछे हेआत्मातुं अपत्यजेपुत्रपुत्रीप्रमुख तेने जोतोथको मुदाके० हर्षआकुलथाइस केमके मोहराजारूप शत्रुयें नरकरूपजे चारकके० बंदीखानुं तिहां चिक्षिप्साके० घालवानीइच्छायें अपत्यरूप निगडके० बिडियें दृढकरीने तुजने बांध्योछे ॥ १ ॥

आजीवितं जीव नवांतरेपि वा शल्यान्यपत्यानि न वेत्सि किं हृदि॥
चलाचलैयैर्विविधार्तिदानतोऽनिशं निहन्येत समाधिरात्मनः ॥ २॥

अर्थ ॥ हवेउपमानंतरेंकरी संतानतुं डुखदाइपणुंदेखाडेछे हेआत्मा आनव मां जावजीवलगें तथा नवांतरे परजवेंपण अपत्यजे संतानते शल्यके० शलरूप छे एमतुंताहराहृदयमां केमनथीजाणतो जेस्वल्पायुषवंत संतानादिक तेशोकरूप पीडाआपेछे अने दीर्घायुषवंतजे अपत्यते लग्नादिकद्रव्यव्ययप्रमुख विविधप्रकारनी पीडाआपेछे तथा नरणपोषणादिकनी चिंता रूपजेआर्त्ति तेहनेउपजावेकरीने अह र्निशके०निरंतर हेआत्माताहरी समाधी सुस्थताने हन्येतके० हणीछे ॥ २॥

कुक्षौ युवत्याः कृमयो विचित्रा अप्यस्रशुक्रप्रनवा नवंति ॥
न तेषु तस्या न हि तत्पतेश्च रागस्ततोऽयं किमपत्यकेषु
॥ ३ ॥ त्राणाशक्तेरापदि संबंधानंत्यतोमिथोऽगवनां ॥
संदेहाच्चापकृतेर्माऽपत्येषु स्निह्य जीव ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहीजकहेछे स्त्रीनीकुंखनेविषे अस्रजेस्त्रीनीयोनीनुंरक्त अने शुक्रजे पुरुषनुंवीर्य तेहनासंयोगथीउपना एहवाकृमीजे बेइंद्रियादिकजीव तेपणविचित्रप्र कारनाथायछे यदुक्तं इत्थीणजोणिमज्झे हवंतिबेंदियाउ जे जीवा ॥ इक्कोयदोवतिन्निव लरकपहुत्तं च उक्कोसा ॥ १ ॥ तथासंमूर्छिम अनेगर्नजपंचेंद्रीमनुष्यपणथायछे तो तेस्त्री तथानर्त्तार बेहुने किंनिश्चये स्युंके० तेकृमीजीवनेविषे केमरागस्नेहनथीहोतु अ नेअपत्यजेपुत्रपुत्रादिक तेहनाउपर रागकेमउपजेछे केमके एकजस्थानकनाउपना तेकृमी अनेअपत्य तेबेहुबराबरछे ॥ २ ॥ हवे अपत्यथकी कांइपणस्वार्थसिद्धिनी आशाराखवी जूठीछेतेदेखाडेछे हेआत्मातुं अपत्यउपर स्नेहकरीसनही शाहेतुमाटेके आपदाजे मरणरोगादिक आवेथके जेअपत्यते त्राणके० राखवानेसमर्थनथी तथाव लीपरस्परेंप्राणीने संबंधनुं अनित्यछे कारणकेनानाप्रकारना संबंधछे माटे उपकारनो पणसंदेहछे केमकेजोपुत्रादिकसाथें वैरानुबंधी संबंधहोयतो तेथकी उपकारकेमथा य श्रेणीकअने कोणीराजानीपरें तेमाटेस्नेहनुं धरवुंतेफोकटछे ॥ ४॥ इतिश्रीअध्या त्मकल्पद्रुमे पुत्रममत्वमोचनाख्यस्तृतीयोऽधिकारसमाप्तः ॥

अथधनाधिकारः ॥ याः सुखोपकृतिकृत्वधिया त्वं मेलयन्नसि रमा ममताजाक् ॥ पाप्मनोधिकरणत्वत एता हेतवो ददति संसृतिपातं॥१॥

अर्थ ॥ हवेचोथाअधिकारें धननीममत्वमूकवाआश्री उपदेशआपेळे तिहांपहेलुं धनथी सुखतथाउपकार नथाय तेकहेळे हेजीवतुं ममत्वने नजतोथको एममानेळे जे एलक्ष्मी ते मने तथामहाराकुटुंबने सुखकारीथासे तथा दिनादिकनो उपकारकरवा ने कामआवशे एहवीबुद्धियेंजे रमाके० लक्ष्मीनेमेलवेळे तेएलक्ष्मीतोकर्मादानादिक सावद्यव्यापारने करवेकरी अधिकरणपणाथकी पाप्मनःके० पापनीजहेतुळे तेमाटे संसृतिपातजे संसारमांभ्रमणकरवुं तेप्रतेंजआपे एहवीळे तेनणी लक्ष्मीथकी सुख तथा उपकारनीवांछाते फोकटळे ॥ १ ॥

यानि द्विषामप्युपकारकाणि सर्प्पोंदुरादिष्वपि यैर्गतिश्च ॥
शक्या च नापन्मरणामयाद्या हंतुं धनेष्वेषु क एव मोहः॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेधनथकी अनर्थनीपरंपराथाय तेकहेळे जेधनते द्विषांके० शत्रुनेपण उपयोगीथाय एटलेधनना संचयकरनारने हणीनेज शत्रुबलवंतथाय अनेतेहना धनजनेज नोगवे वली जेधननेसंच्याथका उंदिरइत्यादिकनीगतिप्राप्तथाय केमके धन नोलोनीजीव धननीमूर्छायेंमरीने तेधनउपरें सर्प्प तथा उंदिर इत्यादिकथयी अवत रे वलीजे धनेकरीमरण तथारोगइत्यादिक आपदाओतेपण सुभुमचक्रवर्तिप्रमुखनी परें निवारीशकायनही तोएहवाधनननेविषे मोहतेशीकरवी ॥ २ ॥

ममत्वमात्रेण मनःप्रसादः सुखं धनैरल्पकमल्पकालं ॥
आरंभपापैः सुचिरं तु दुःखं स्याद्दुर्गतौ दारुणमित्यवेहि ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेएधनथकीसुखथोडुंळे अने दुःखघणुंळे तेकहेळे केमके धनेकरी केव लममत्वना जन्मनोज प्रसादथाय कारणके महारापाशेंधनळे एमाचिंतवीचिंतवी ने धननोलोनिप्राणी हर्षपामेळे पणतेधनेकरी सुखतो अल्पकाल लेशमात्र थोडा काललगेंजहोय पणतेहना अतिनिमित्तक आरंभनापापेकरीने दुर्गतिनेविषे दारु णके० कठिणदुःखहोयज एहवुं नवनंदराजाने दृष्टांतें अवेहिके० जाण ॥ ३ ॥

द्रव्यस्तवात्मा धनसाधनो न धर्मोपि सारंभतया तिशुद्धः ॥
निःसंगतात्मा त्वतिशुद्धियोगा न्मुक्तिश्रियं यच्छति तद्भवेपि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेधनविना द्रव्यस्तवरूपधर्मनथाय तेमाटेधनउपार्जवुं एहवुंविचारपण निर्ग्रंथकी जोता अयुक्तळे तेदेखाडेळे धननेसाधियें एहवुंद्रव्यस्तवात्माके० द्रव्य स्तवरूप जिनभुवन बिंबप्रतिष्ठा दानशालादिक जेधर्मकरणीळे तेपण सारंभके०

इव्यारंजसहितपणेकरीने अतिनिर्मलनथी पणमात्रस्वर्गादिकगतिनाहेतुछे माटेतेध र्मनेपण मुक्तिनुंपरंपरा कारणजाणवुंनही अने निःसंगतारूपजे धर्मते अतिशुद्धछे० निर्मलता निरवद्यतानायोगथी तेहिजनवमांपण मोक्षरूप लक्ष्मीने आपे ॥ ४ ॥

क्षेत्रवास्तुधनधान्यगवाश्वैर्मेलितैः सनिधिनिस्तनुन्नाजां ॥
क्लेशपापनरकान्यधिकः स्यात् को गुणो यदि न धर्मनियोगः ॥५॥

अर्थ ॥ हवेघणुंपरिग्रहते पापनुंमूलछे तेकहेछे क्षेत्र क्यारडाप्रमुख तथावस्तुते घरप्रमुख धनधान्य गायो अश्वइत्यादिक तथानिधिजे नंडारतेणेसहित एहवोपरि ग्रहमेलवेथकेपण जो एक धर्मनियोगके० जिनबिंबादिक शात क्षेत्रमां ववरायन ही तो तेवारें तेपरिग्रहथकी क्लेश पाप अने नरक एत्रणविना अन्यधिकके० व्यति रेकबीजोशोगुणहोय एटले परिग्रहथकी अनुक्रमें कष्ट पाप अने नरक एत्रणवा नाजथाय पणबीजोगुणकोइनथाय ॥ ५ ॥

आरंनैर्नरितो निमज्जति यतः प्राणी नवाम्नोनिधावीहंते कुनृपादय श्च पुरुषा येन बलाद्बाधितुं ॥ चिंताव्याकुलताकृतेश्च हरते यो धर्म कर्मस्मृतिं विज्ञा नूरि परिग्रहं त्यजत तं नोग्यं परैः प्रायशः ॥६॥

अर्थ ॥ हवेपरिग्रहथकी इहलोकें तथा परलोकें दुःखथायतेकहेछे जेपरिग्रहमे लववाथकी प्राणी आरंनेके० आरंनेनरचुंथको संसारसमुद्रमांबुडेछे वलीतेपरिग्रहेंकरी दुष्टराजा तथाआदिशब्दथी मंत्रीप्रमुख अधिकारीओ अनेचोरादिक तेपुरुषने बले करी बाधितुंके० पीडवानेवांछेछे केमकेबहुधनवंत उपरखोटोपण गुनाहनो आरोप करीनेदंमकरे वलीपरिग्रहनी चिंतायें व्याकुलताने करवेकरीने धर्मकर्मस्मृतिके० धर्मकार्यनुं संनारवुं तेहनोहरणकरीलिये माटेहेविवेकीजनो एधनते प्रायेंबाहुल तायें परनाजनोगमांआवे एटले एकेंसंच्योहोय अनेबीजोनोगवे एहवोजेए नूरिके० घणुंपरिग्रहतेहने त्यजो छांमो यडुक्तं कीटिकासंचितंधान्यं मक्षिकासंचितंमधु ॥ कृप णैः संचितंवित्तं परैरेवोपभुज्यते॥१॥ जेमयोगियें घणाकष्टेकरी सिद्धिनारसनो संग्रह कस्यो अने वलनिपूरमां रांकाशेठनानोगमांआव्यो तेमकोइनुंसंच्युंधन कोइकनोगवे ६

क्षेत्रेषु नो वपसि यत्सदपि स्वमेतद्यातासि तत्परनवे किमिदं गृहीत्वा ॥
तस्यार्जनादिजनिताघचयार्जितात्ते नावी कथं नरकदुःखनराच्च मोक्षः ७

अर्थ ॥ हवेअर्थांतरकहीने सातखेत्रें धनवावस्वानुं उपदेशकहेछे हेधनवंत जे तुं छतुंपोतानुंस्वके० धन तेहनेसातक्षेत्रनेविषे नथीवावरतुंतो एधननेतुंसुं परनवेंसा

थेंलेइजनारछे एटलेहमणातोतुं लोजनावशथकी धननेसुमार्गे खरचतोनथी पणते धन परजवेंताहरीसाथें नइजआवे वलीतेधनना उपार्जनकरवाथी उपनुंजे अघ के० पापनो चयके० समूह तेथी अर्जितके० उपजाव्यो एहवोजे नरकसंबंधीडुःख तेहनो जरके० जारतेहथी मोक्षके० छूटवुंतेकेमथाशे ॥ ७ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्प द्रुमे धनममत्वमोचनोनामचतुर्थाधिकारः समाप्तः ॥

अथ देहाधिकारः॥पुष्णासि यं देहमघान्यचिंतयं स्तवोपकारं कमयं विधा स्यति॥ कर्माणि कुर्वन्निति चिंतयायतिं जगत्ययं वंचयते हि धूर्त्तराट् ॥१॥

अर्थ ॥ हवेपांचमेंअधिकारें शरीरआश्रयी ममत्वमूकवो तेकहेछे तेमांप्रथम पा पकरीने देहनुंपोषणकरवुंनही तेकहेछे हेआत्मातुं अघके० पापने अणविचारतोथ कोदेहने पुष्णासिके० पोखेछे ते आ देह तुजने सुंउपकारकरशे वली आयतिके० आ वताकालनी चिंताचिंतवी हिंसादिककर्मकरतोथकोप्रवर्त्तनारो एहवोजेताहरोदेहते धूर्त्तनोराजाछे सर्वजगतने वंचयतेके० ठगेछे तोतुंपापकरीनेदेहने पुष्टकरेछेपण एदे हतेआखरतुजनेठगसे छेहदेहीजाशे ॥ १ ॥

कारागृहाद्बहुविधाशुचितादिदुःखा न्निर्गंतुमिच्छति जडोपि हि तद्विभिद्य॥ क्षिप्तस्ततोधिकतरे वपुषि स्वकर्मव्रातेन तद्दृढयितुं यतसे किमात्मन्॥२॥

अर्थ ॥ हवेएशरीरते कारागृहथीपणजुंमोछे तेदेखाडेछे हेआत्माजेप्राणी जड के० मूर्खहोय तेपण कारागृहजे बंदीखानुं जेमां बहुविध अशुचिता अपवित्रता आदि शब्दथी क्षुधा तृषा वध बंधनादिदुःखहोय एहवाकारागृहने भेदी खात्रादिकपाडी ने नीकलवावांछेछे तोतुजने स्वके० पोतानाकर्मने समूहें तेकारागृहथीअधिकुंएह वुंजे वपुके० शरीररूपबंदीखानुं तेमांघाल्योछे तोएहवाकारागृह सरिखोजे ताहारो देहतेहने दृढकरवानेज सुंउद्यमकरेछे केमके कारागृहनुं बंधनतोथोडुंछे पणदेहनुं बंधनतो जावजीवसुधी तथापरलोकेंपणहोय तेमाटेदेहनुंबंधन अधिकजाणवुं ॥२॥

चेद्वांछसीदमवितुं परलोकदुःखभीत्या ततो न कुरुषे किमु पुण्यमेव॥शक्यं न रक्षितुमिदं हि न दुःखभीतिः पुण्यं विना क्षयमुपैति च वज्रिणोपि ॥३॥

अर्थ ॥ हवेपरजवनादुःखथी बीहीतोथको घणुजीववानेअर्थेजे देहनेपोषेछे तेने कहेछे हेआत्माजोतुं आशरीरने परलोकसंबंधीदुःखनाबीकेंकरी अवितुके०राखवावां छेछे तोतुंपुण्यउपार्जन केमनथीकरतो केमकेपुण्येंकरी एशरीरदुःखनाजयथकी रखा यनही एमतोकाइनथी एटलेशरीरने दुःखनाजयथी राखवानेपण पुण्यजसमर्थछे

अनेवलीपुण्यविनातु तो वञ्छिजेइंड् तेहनुंशरीरपण नाशपामेछे तेमाटेजोपरलोकें दुःखथीबीहेछेतो तुंपुण्यकर ॥ ३ ॥

देहे विमुह्य कुरुषे किमघं न वेत्सि देहस्थ एव भजसे भवदुःखजालं ॥
लोहाश्रितोहि सहते घनघातमग्नि र्बाधा न तेस्य च नभोवदनाश्रयत्वे॥४

अर्थ ॥ हवेजेशरीरनुंजेतुंपोषणकरेछे तेशरीरमांरह्योथकोज तुंदुःखपामेछे एहवुं देखाडेछे किंनवेत्सिके० हेआत्मातुं देहनेविषे मोहपामिने पापकरेछे अनेतेदेहमां रह्योथकोज भवदुःखना समूहप्रतेंपामेछे तेकेमनथीजाणतो एतोनिश्चेथकी लोह नेआश्रीत मल्युंजेअग्नि तेजेम घणा घणोना प्रहारोनेसहनकरेछे तेमतुजने तथा ए शरीररूप अग्निनेपण नभवत्के० आकाशनीपरें अनाश्रयत्वेके० निरालंबपणुंकरेतो बाधाके० पीडानहोय एटलेलोहाश्रित अग्नीनीपरें तुंपणदेहाश्रितथको दुःखपामेछे

दुष्टः कर्मविपाकभूपतिवशः कायाव्हयः कर्मकृत् बध्वा कर्मगुणैर्हषी कचपकैः पीतप्रमादासवं ॥ कृत्वा नारकचारकापदुचितं त्वां प्राप्य चाशु छलं गंतेति स्वहिताय संयमभरं तं वाहयाल्पं ददत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेदेहकर्मकरनुं उपमानकहेछे हेआत्मा एदुष्ट निर्दय एहवोदेहनामे क र्मकरके ० राजसेवक तेतुजने कर्मरूप घणाबंधनेबांधीने नरकरूप बंदिखाना संबं धीआपदानो उचितयोगएहवोकरी पछेछलताकीने उतावलोजतोरहसे एकर्मकरक हेवुंछेके कर्मविपाकनामाजेराजा तेहनोवशवर्त्तिछे एटलेकर्मविपाकराजायें एहनेप्रे र्योछे माटेहेजीव तें हृषीकजे इंद्रियतेरूप चषकजे मद्यपाननापात्र त्रणेकरी पां चविधप्रमादरूप आश्रवनामामद्य पीधुंछे एहवोजाणीनेतुं पोतानाहितनेअर्थें तेकर्म करजे शरीरतेहने थोडुंपणअहार दोषरहितआपीने संयमरूपभारवहरावके जेथ कीताहरा आत्मानी सिद्धिथाय ॥ ५ ॥

यतः शुचीन्यप्यशुचीभवंति कृम्याकुलात् काकशुनादिभक्षयात् ॥
द्रागभाविनो भस्मतया ततोऽगात् मांसादिपिंडात्स्वहितं गृहाण॥६॥

अर्थ ॥ हवेएअशुचिदेहथी बीजापदार्थपण अपवित्रथाय तेकहेछे शुचिके० प वित्रजेवस्तु एहवाखीरखांडप्रमुख तेपण एशरीरनासंगथी अपवित्रथाय तेमाटेएश रीरकहेवुंछे तेकहेछेकृमिजे उदरप्रमुखनाजीव तेणेकरीआकुलके० व्याप्त तथा का गडा कुतरा इत्यादिकजीवने भक्षवायोग्य अने प्राणगयापछि तत्काल भस्मथकी

रसवयनारछे वली मांसादिकनुंपिंमछे एहवाए असारशरीरथकीतो जे स्वहितके० आत्मानेहितकारकएहवा संयमादिकतेप्रतेलेइने आत्मसाधनकर ॥ ६ ॥

परोपकारोस्ति तपो जपो वा विनश्वराद्यस्य फलं न देहात् ॥
सन्नाटकादल्पदिनाप्तगेहमृत्पिंममूढः फलमश्नुतेकिं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ वलीयुक्तिविशेषें देहनुं सफलकरवुंकहेछे जेपुरुषने ए विनाशशील एहवुं जेदेह तेथकी परोपकार तथा तप जप प्रमुखनथाय तोतेपुरुष नाडेंराखेलुं थोडा दिवससुधिपाम्युं एहवुंजेघर तेसरिखो एमाटीनापिंमरूप देहउपरमूढछतो शोफ लपामें जेमनाडानुंघरते वापरियेंतोजशारुं नहिकांजेनाडुंखरचियेंते व्यर्थजाय अनेवली आखरपोतानुंपण तेघरथायनही तेमएदेहनेपण अहारादिकनाडुंआपीने पोष्युंथको तपजपादिकेंकरी वावरीयें तोजसफलथाय नहिकांनिःफलजाणवुं ॥७॥

मृत्पिंडरूपेण विनश्वरेण जुगुप्सनीयेन गदालयेन ॥
देहेन चेदात्महितं सुसाधं धर्मान्नकिं तद्यतसेऽत्रमूढ ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे जेमाटीनापिंमसरिखुं विनाशीआचारवंत तथाडुगंछा करवायोग्य अनेरोगनुं आलयके० घर एहवोजेदेह तेणेकरीने धर्मकरवाथी आत्महितसाधवुं तुजनेसुलनछे तोहेमूर्ख अत्महितसाधवाने केमउद्यमकरतोनथी माटे असारनूतदेहथी सारनूतआत्मानो हितसाधवाने सर्वथाउद्यमकरवुं ॥ ८ ॥

इतिश्री अध्यात्मकल्पडुमेदेह ममत्वमोचनानामें पांचमोअधिकारसंपूर्णथयो.

अत्यल्पकल्पितसुखाय किमिंद्रियार्थैस्त्वं मुह्यसि प्रतिपदं प्रचुरप्रमादः॥
एते क्षिपंति गहने नवनीमकक्षे जंतून्न यत्र सुलनाशिवमार्गदृष्टिः ॥१॥

अर्थ॥पूर्वेकह्युंजेदेहनिग्रहकरवुंतेकांइ विषयनीममतामूकवासीवाय थतुंनथी माटेहवेछठेअधिकारें विषयप्रमाद त्यजवा आश्रयी उपदेशछे तिहां प्रथम इंद्रियार्थनुं मोहत्यजवुं तेकहेछे हेआत्मातुं घणुजप्रमादवंतथको पण अतिशयेंकरी अल्पके०थोडुंपणकल्पनामात्र जेसुखतेपण परमार्थथीतोडुःखजछे पणतेंसुखकरीमान्युं एहवुं जेसुख तेहनाअर्थे प्रतिपदके० गामेगामें इंद्रियार्थजे शब्द रूप रस गंध स्पर्श तेणेकरी सुंमुंजायछे एइंद्रियार्थते जंतुके० प्राणीने गहनके० अपार एहवोसंसाररूपजे नीमके० रौद्र कक्षके० अटवीतेमां क्षिपंतीके० घालेछे बलात्कारें तेमां प्रवेशकरावेछे जिहां शिवके० मुक्तिमार्गनुं दृष्टिदर्शन जीवने सुलननथी जेमकोइबीजोपण गहनवनहोयतोतेमांहे शिवके० निरुपद्रव्यमार्गनुं जेदर्शनते डुर्लनहोय तेनीपरेंजा

णवुं ॥ १ ॥ इहांप्रमादना पांचप्रकार तथा आठप्रकारनी गाथाकहेछे. मज्जं विषय कषाया निद्दाविकहाय पंचमीजणिया ॥ एए पंच पमाया जिवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥ तथाआठप्रकार कहेछे. पमाउयमुणिंदीहीं जणिउ अठभेयउ ॥ अन्नाणं संसउ चेव॥ मिछानाणं तहेवय॥ १ ॥ रागो दोसो मइभंसो धम्मंमिय अणायरो॥ जोगाणं डुप्पणिहाण ॥ अठहावज्जियवउ ॥ २ ॥

आपातरम्ये परिणामडुःखे सुखे कथं वैषयिके रतोसि ॥ जडो
पि कार्यं रचयन् हितार्थी करोति विद्वन् यदुदर्कतर्कं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसंसारिकसुखते प्रथमतोसुखदायीछे पण परिणामेंडुःखदायीछे तेकहेछे हेचतुरआत्मातुं आपातके० तत्कालमात्रतो रम्यमनोहरछे पणपरिणाम के० विपाककालें महाडुःखदाइरूप एहवा विषयसंबंधी सुखमां शुंराच्योछो केमके पोतानाहितने वांछनार एहवोजे जडके० मूर्खप्राणीहोय तेपण कोइकार्यकरेतो उदर्कके० जेआगामिककालनुंफल तेहनुं तर्कके० विचार करीने परिणामे अहितकारीहोयतेने त्यजेछे तोतुंचतुरछता परिणामें डुःखदायी एहवाजे विषयादिक तेप्रतें केमआचरेछे एआचरवा तुजने योग्यनथी ॥ २ ॥

यदिंद्रियार्थैरिह शर्मबिंदवद्यदर्णवास्वःशिवगं परत्र च ॥ तयो
र्मिथोस्ति प्रतिपक्षता कृतिन् विशेषदृष्ट्यान्यतरद्गृहाण तत् ॥३॥

अर्थ ॥ हवेसंसारिकसुखनी अल्पतादेखाडेछे हेचतुरआत्मा इहलोकनेविषे इंद्रियार्थजे शब्दादिक तेणेकरीने वेध्युंजे तुछसुख अनेवलीजे परलोकें अर्णवके०समुद्रसरिखुं स्वःशिवगंके० देवलोक अनेमुक्तिसंबंधीजेसुख तेसुखने मिथःके० माहोमांहें प्रतिपक्षता एटलेशत्रुभावछे केमके जिहांइंद्रियार्थनुंसुखछे तिहांमुक्तिसुख नथी अनेजिहां मुक्तिसुखछेतिहां इंद्रियार्थसुखनथी तेमाटेविशेषदृष्टियेंकरी तेबेहुमां जेहनेतुंरुडोजाणे तेहने ग्रहणकर ॥ ३ ॥

भुंक्ते कथं नारकतिर्यगादि डुःखानिदेहीत्यवधेहि शास्त्रैः ॥
निवर्त्तते ते विषयेषु तृष्णा बिभेषि पापप्रचयाच्च येन ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेतेहिजविशेषें देखाडेछे हेआत्मा देहवंतप्राणी नरकतिर्यंचगतीनाडुःख केवाप्रकारेंभोगवेछे एटलुंतुं शास्त्रमांथी जोइने अवधेहिके० निश्चयकर तोतुजने निश्चेंथकी विषयनेविषे तृष्णानीनिवर्त्तिथासे अनेपापना संचवाथकीतुंबीहेतोरहिश.

गर्भवासनरकादिवेदना पश्यतोनवरतं श्रुतेक्षणैः ॥
नो कषायविषयेषु मानसं श्लिष्यते बुध विचिंतयेति ताः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहीजकहेछे हेपंमितप्राणी अनवरतंके० निरंतर श्रुतजे शास्त्रतेरूपी ईक्षणके० नेत्रेंकरीनेगर्भावास तथानरक आदिशब्दथी निगोद एकेंद्रियादिक तेसंबंधीवेदनाउप्रतेंजोता थकां ताहरुं मानसके० चित्तते कषाय तथा विषयनेविषें नो श्लिष्यतेके० अशक्तनथाय एहेतुमाटे पूर्वोक्तवेदनाउने सम्यकरीतेंविचारीसतो ताहरुंचित्त विषयकषायथकी किंचितमात्र उद्विग्ननथाय ॥ ५ ॥

वधस्य चोरस्य यथा पशोर्वा संप्राप्यमाणस्य पदं वधस्य ॥
शनैःशनैरेति मृतिः समीपं तथाखिलस्येति कथं प्रमादः ॥ ६॥

अर्थ ॥ वलीमृत्युनयदेखामी प्रमादत्यजवानुं प्रतिबोधकरेछे जेमवधकरवाने काढ्या एहवाजे चोरतथा बोकडाप्रमुखजेपशु तेहनेवधनास्थानकें लइजतां जेमजेमवधना स्थानकतरफ पगलांभरे तेमतेमथोडेथोडे मृत्युपणनजीकआवे तेहनीपरें सर्वेप्राणीओने थोडेथोडे घडी पहोर दिवस मास वर्षादिकने जावेकरी मृत्युढुकडो आवेछे तेकारणमाटे आत्मानाहितसाधननेविषे विलंबकेमकरियें अर्थात् प्रमादत्यजीने सर्वथाधर्मनेविषे तत्परथावुं ॥ ६ ॥

बिभेपि जंतो यदिदुःखराशे स्तदिंद्रियार्थेपु रतिं कृथा मा ॥
तद्भवं नश्यति शर्म यद्राक् नाशे च तस्य ध्रुवमेव दुःखं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेसुखनो शीघ्रके० तुरतनाशपणुंदेखाडीने जीवनेप्रतिबोधकरेछे हेजीवजोतु दुःखनासमूहथकी बीहेछे तो इंद्रियार्थजे शब्दादितेहनेविषे रतिके०रागकेमकरेछे केमकेइंद्रियार्थथीउपनुंजे शर्मके० सुखतेद्राग्के० उतावलोज नाशपामेछे अनेतेहनानाशपछि दुःखतो ध्रुवके० निश्चल चिरकाललगें निश्चितछे जेमप्रकाशनेअंते अंधकार निश्चेंथकीहोय तेमसुखनेअंने दुःखपणनिश्चेंथकीजहोय ॥ ७ ॥

मृतः किमु प्रेतपतिर्दुरामया गताः क्षयं किं नरकाश्च मुद्रिताः ॥
ध्रुवाः किमायुर्धनदेहबंधवः सकौतुको यद्विपयैर्विमुह्यसि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरेजीवने सुखनाप्रतिबंधकदेखाडेछे हेआत्मा प्रेतपतिजे यममृत्युलक्षण तेसुंमुओ के जतोरह्यो तथादुष्टकारी आमयके० रोग यदुक्तं रोगाणं कोडीउ हवंति पंचेव लरकअडसठी ॥ नवनवइसहस्साइं छच्चसयाचेव पणयाली

१५६७०५०६४५ खासे सासे जरे दाहे कुछिसूले नगंदरे॥ अरसा अजीर्ण दीट्ठि मुहसूले अरोयए ॥ १ ॥ अछिवेयण कंडु अकणबाधाजलोयरे ॥ कुडे एमाइवा रोगा पीलयंति सरीरिणं॥ २ ॥ एसोजरोग महोटाकह्याछे तेदेहनेआश्रयीजरह्याछे ते सुंकृयपाम्या तथासातनरक तेहनाबारणातेसुं मुद्रिताके० ढंकाणा बंधथया तथा आयुष धन देह अनेस्वजनजे बंधुतेसुं ध्रुवके० निश्चलशाश्वताछे जेमाटेतुं सकौतुकके० सहर्षवंतथको विषयनेविषे मोहपामेछे एटलेमृत्यु रोग अने नरक एत्रण नयतो विद्यमानछे अने आयु धन देह स्वजन एतोअस्थिरछे तोतुंसहर्षपणुंते शा कारणथीधरेछे तेकांइसमजातुनथी॥ ८ ॥

विमोह्यसे किं विषयप्रमादै र्भ्रमात्सुखस्यायतिदुःखराशेः ॥
तद्गर्धमुक्तस्य हि यत्सुखं ते गतोपमं चायतिमुक्तिदं तत् ॥ ९॥

अर्थ॥ हवेविषयसुखते निदानदुःखरूपछे तेकही जीवनेप्रतिबोधेछे हेआत्मातुजने विषयनेप्रमादेंमिलीने निदान दुःखराशीके० दुःखनासमूह तेहने सुखनाभ्रमथकी विमोह्यसेके० मोहपमाडेछे एटलेदुःखनासमूहनेविषे सुखनीभ्रांतियें जेतुंमोहपामेछे तेमात्र विषयप्रमादना वशथकीजपामेछे एजावार्थछे तेमाटे गर्द्धमुक्तके० तृष्णारहित एहवोथकोतुजने उपशमलक्षणरूप गतोपमके० अनुपमसुखते आयतिके० निदानमुक्तिनुंदातारछे तेमाटे तृष्णारहित निरिहतासुखनेआदर ९ इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे विषयावशतोपदेशः षष्ठोधिकारः ॥ ९ ॥

अथ कषयाः॥ रे जीव सेहिथ सहिष्यसि च व्यथास्ता स्त्वं
नारकादि षु पराभवभूः कषायैः ॥ मुग्धोदितैः कुवचनादि
भिरप्य तः किं क्रोधान्निहंसि निजपुण्यधनं दुरापं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेसातमेंअधिकारें कषायादिक त्यजवाआश्री उपदेशकरेछे त्यांप्रथम कषायनुंफलकहेछे हेजीवतुं कषायजे क्रोधादिकतेनाहेतुथी नरकादिकनेविषे पराभवजेपीडा तेहनो भाजन थको तें माहा दुःसह वेदनाओ सहनकरी अनेवलीपण सहीश तेमाटेमुग्धजे अजाणलोकनाकहेला जे कुवचन गालप्रमुख इत्यादिकतुछकारणोनेवास्ते दुर्लभएवुंजेपोतानुं पुण्यरूपीयुंधन तेनेक्रोधथीछुंहणेछे एटलेअल्पकारण माटे कषायकरीने दुर्लभजेपुण्यरूप धनतेनेहरेछे तेमाटेकषायनकरवुं ॥ १ ॥

परानिभूता यदि मानमुक्ति स्ततस्तपोखंडमतः शिवं च ॥
मानादृतिर्दुर्वचनादिभिश्च तपःक्षयस्तन्नरकादिदुःखं ॥ २ ॥
वैरादियात्रेति विचार्य लाभालाभौ कृतिन्नाभवसंभविन्यां ॥
तपोऽथवा मानमवाभिभूताविहास्ति नूनं हि गतिर्द्विधैव॥३॥ युग्मं॥

अर्थ ॥ हवेमानमुकवानुं अनेराखवानुं फलकहेछे हेआत्मा परजेअन्यजनतेथी अभिभूतिके० अपमान आक्रोशादिकउपजेथके मानजेअहंकार तेनेमुकीआप जेणे करीअखंडतपथी मोक्षप्राप्तिथाय अनेदुरवचनादिकेंकरी जोमानआदरीशतो तपनो क्षयथाय तेतपक्षयथके नरकादिकदुःखथाशे तथाआलोकेपण वैर धनहानि मरणा दिकदुःखथासे माटेहेनिपुणआत्मा एमपूर्वोक्तप्रकारें मानमुक्याथीलाभछे अनेमान आदस्याथीअलाभछे एबेवातोविचारीने आभवके० एकभवसंबंधिनी अभिभूतिजेपरा भव तेउपजेछतेपण तपनेराख अथवामाननेराख केमकेएकार्यमां बेजउपायछे पण तेमांअभिभूतिनुंतो एकजभवनु दुःखछे अनेमानकस्याथीतो तपक्षयथाशे तेवारें भवो भवेंदुःखछे तेमाटेमानत्यजीने तपनेराख एबेकाव्यनोअर्थएकठोछे ॥ २ ॥ ३ ॥

श्रुत्वा क्रोशान् यो मुदा पूरितः स्यात् लोष्टाद्यैर्यश्चाहतो लोमहर्षी ॥
यः प्राणांतेप्यन्यदोषं न पश्यत्येष श्रेयो द्राग् लभेतैव योगी ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेकषायतज्याथी मुक्तिफलछे तेकहेछे जेयोगीसाधु आक्रोश गाल प्रमुख सांभलीने आनंदपामी विचारेंजे एगालिनुं अभिधेय मेंअनंतिवार अनुभव्युंछे एमचिंत वी वलीजेसोह पाषाणादिकें हणायोथकोपणजेनुं रोमांचित हर्षितथाय अनेएम चिंतवेजे आजमाहरे विशेषनिर्जराथइ एमजाणी वलीजेसाधुप्राणांतेपण अन्यना दोष तथाअवगुणनदेखे पणपोतानोजदोषदेखे एहवोजेयोगीश्वर मन वचन अने का याथीशुभयोगवंत तेउतावलोज श्रेयजेमोक्ष तेनेपामे ॥ ४ ॥

कोगुणस्तव कदा च कषायै र्निर्ममे भजसि नित्यमिमान् यत् ॥
किं न पश्यसि च दोषममीषां तापमत्र नरकं च परत्र ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेयुक्तियेंकरी कषायमां गुणनोअभाव देखाडेछे हेआत्मा कषायजेक्रोधा दिक तेणेतुजनेकोइवारें कोइपणगुणकस्योछेके जेथकीतुंएकषायने नित्यप्रत्येंसेवेछे व लीआलोकेंसंताप अनेपरलोकें नरकनादुःखआपनार एवोजे कषायनोदोष तेनेतुंन थीदेखतोसुं जे तुंनिश्चितथको कषायनेसेवेछे॥ ५ ॥

यत्कषायजनितं तव सौख्यं यत्कषायपरिहाणि भवंति ॥
तद्विशेषमथवैतदुदर्कं संविभाव्य भज धीर विशिष्टं ॥ ६ ॥

अर्थ॥वलीप्रकारांतरें कषायत्यजवुं उपदेशेछे हेआत्मा तुजनेकषायथी उपनुंजेसुख अनेकषायना परित्यागथी उपनुंजेसुख एबेनुविशेषजे अधिकपणुं तथा उदर्कके० निंदानो विपाकजेफल तेसम्यक प्रकारें विचारीने पछे हेधीरपंमित एमांजेतुजने विशिष्टउत्तमजाणवामांआवे तेनेतुंआदरअंगीकारकर ॥ ६ ॥

सुखेन साध्या तपसां प्रवृत्ति र्यथातथा नैव तु मानमुक्तिः ॥
आद्या न दत्तेपि शिवं परा तु निदर्शनाद्बाहुबलेः प्रदत्ते॥७॥
सम्यग् विचार्येति विहाय मानं रक्षन् दुरापाणि तपांसि यत्नात्॥
मुदा मनीषी सहतेऽभिभूतीः शूरः क्षमायामपिनीचजातिः॥८॥

अर्थ॥हवेतपकरवाथी मानत्यागनी दुष्करता देखाडेछे हेआत्मा जेम तपनीप्रवृत्तितेसुखेसाध्यछे तेममानमुक्तिजे मानतुत्यजवुं तेसुखेसाध्यनथी तो आद्याके० पहेली कहीजे तपप्रवृत्तितेमुक्तिआपवा समर्थनथी अने बीजोजेमानमुक्ति तेयद्यपिदुःसाध्यछे तोपणते मुक्तिआपवाने समर्थछे बाहुबलनेदृष्टांतें जेमबाहुबलने मानमुक्तिविना मात्र तपथकीज केवलज्ञान उपनुंनही अनेमानमुक्युं तेवारें तत्कालज्ञानउपनुं एवुंसम्यग् विचारीने मानत्यजीनेयत्ने करीदुर्लभ एहवोजेतप तेनेराखतोथको क्षमानेविषे शूर एवोजे मनीषीके० पंमित ते नीच जननो करेलो अभिभूति जेपराभव तेनेपण मुदाके० हर्षेकरीनेसहेछे ॥ ७ ॥ ८ ॥ एबेकाव्यनोअर्थएकठोछे.

पराभिभूत्याल्पिकयापि कुप्यस्यघैरपीमां प्रतिकर्त्तुमिच्छन् ॥
न वेत्सि तिर्यङ्नरकादिकेषु तास्तैरनंतास्त्वतुला भवित्रीः ॥९॥

अर्थ ॥ वलीएपरिसह सहेवाआश्रीज उपदेशेछे हेआत्मातुं थोडीपण परनीकरेलीजे अभिभूति पीडादिक तेणेकरी अभिभूतिना करनारजे पुरुषतेउपर कोपेछे अने वली पापकरीने तेहना प्रतिकारने वांछेछे एटले पूर्वजन्मांतरना पापविपाकथकी पराभवपामेछे अनेवलीतेहनो प्रतिकारपण पापेकरीनेज वांछेछे परंतुतेपापेकरीने तुं अभिभूतिजेपीडाओ तेतिर्यंचनरकादिक गतिनेविषे अनंततथाअतुल मोहोटी एविभवित्रीकहेतां पीडाथाशे एवुंकांनथीजाणतो ॥ ९ ॥

धत्से कृतिन् यद्यपकारकेषु क्रोधं ततो धेह्यरिषट्कएव ॥
अथोपकारिष्वपि तद्भवार्तिकृत्कर्महन्मित्रबहिर्द्विषत्सु ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेक्रोधकरवो तेवैरीनेज वियुक्तछे तेकहेछे हेपंमितआत्मा जोतुं अपकारक शत्रुनेविषे क्रोधधरेछेतो तेनेबदलेताहरा अंतरंगनाजे क्रोध मान माया लोभ राग अनेद्वेष मलीछशत्रुछे तेहनेविषेज क्रोधधर केमकेएछशत्रुथी बीजोकोइ तुजने वधारेदुःखदाइनथी अथवा उपकारक मित्रनेविषे जोतुंक्रोधधरतोनथी तेवारेंतुं संसारमां अर्तिकारी एहवाज्ञानावर्णादिक कर्म तेनोहरणकरनाराजे उपसर्गादिकना करनार शत्रु तेनाउपसर्गनेकरवेकरी बाह्यदृष्टियेंतोते ताहराशत्रूछे पणकर्मक्षयकरवामां अनेपरलोकना अनंतसुखनीप्राप्तिकरवामां साह्यकारीथया माटे तत्वदृष्टियें जोतां अभ्यंतरपणे तेमित्रभावेज परिणम्या तेथी उपसर्गकारकशत्रुने तत्वदृष्टीयें मित्रतुल्य जोइने तेमित्रनेविषे क्रोधनधरवो एभावार्थछे ॥ १० ॥

अधीत्यनुष्ठानतपःशमाद्यान् धर्मान् विचित्रान् विदधत्समायान् ॥
न लप्स्यसे तत्फलमात्मदेहक्लेशाधिकं तांश्च भवांतरेषु ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेमायात्यजवा आश्रीउपदेशछे हेअत्मातुं अधीतिके० भणवुं तथाअनुष्टानजे क्रियाआवश्यकादिक तथातपउपशमादिक नानाविधधर्म ते मायाके० कपटसहित करतोथका मात्रतुं पोतानादेहने कष्टजआपेछे पणतेथी व्यतिरिकके० बीजूंफलकांइ भवांतरनेविषे पामीसनही वली भवांतरनेविषे तेधर्मनेपणपामीसनही केमकेमायावीने बोधीपामवीदुर्लभहोय ॥ ११ ॥

सुखाय धत्से यदि लोभमात्मनो ज्ञानादिरत्नत्रितये विधेहि तत् ॥
दुःखाय चेदत्र परत्र वा कृतिन् परिग्रहे तद्बहिरांतरेपि च ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ हवेलोभत्यजवाआश्री उपदेशकरेछे हेआत्माजोतुं पोतानासुखनेअर्थें लोभकरेछे तोज्ञानादिक जे ज्ञानदर्शनअनेचारित्र एत्रणरत्ननेविषे लोभकर बीजीधनधान्यादिक असारवस्तुथी कांहिसुखनथाय माटेहेचतुरआत्मा तुंआलोके दुःखनेअर्थें बाह्यथीधनधान्यादिक अने अंतरंगथी क्रोधमानादिक परिग्रहनेविषे लोभ करिसनही ॥ १२ ॥

करोषि यत्प्रेत्य हिताय किंचित्कदाचिदल्पं सुकृतं कथंचित् ॥
माजीहरस्तन्मदमत्सराद्यैर्विना च तन्मा नरकातिथिर्भूः ॥ १३ ॥

अर्थ॥हवेजीवने सुकृतराखवाआश्रयी उपदेशछे हेआत्मातुं कोइकाले कथंचित् ध

एंकष्टेकरीने काइएक अल्पके० थोडुंपणसुकृत जेदानादिक तथातपसंयमादिकते प्रेत्यके० परलोकना हितनेअर्थेकरेछे तेसुकृतने मद मत्सर क्रोध लोजादिकें करीने हारिसनही अनेवली तेसुकृतविना सातनरकनो अतिथिके० परोणो थइशनही एटले तेसुकृत खोयाथी नरकगतिथशे तेमाटे मदमत्सरादिकने निवारीनेसुकृतराखजे॥१३

पुरापि पापैः पतितोसि संसृतौ दधासि रे किं गुणिमत्सरं पुनः ॥
न वेत्सि किं घोरजले निपात्यसे नियंत्र्यसे शृंखलया च सर्वतः ॥१४॥

अर्थ॥वली मत्सरत्यजवाआश्री उपदेशेछे हेआत्मातुं पूर्वेपण पापेंकरीने संसारमां पडयोछे अनेवलीगुणवंतने विषे शुंमत्सरधरेछे एमकांनथीजाणतोजे एमत्सरतोमु जने घोरके० अगाधदुःखरूपियुं जेमां जलछे एहवा संसाररूपीया समुद्रमानांखेछे अनेवली ताहरा सर्वांगने निकाचित कर्मरूप सांकलेकरीबांधेछे ॥ १४ ॥

कष्टेन धर्मो लवशो मिलत्ययं क्षयं कषायैर्युगपत्प्रयाति च ॥
अतिप्रयत्नार्जितमर्जुनं ततः किमङ्ग ही हारयसे नजस्वता ॥ १५ ॥

अर्थ॥हवेआत्माने कष्टेंउपार्जितधर्म राखवानो उपदेशकहेछे हेआत्मातुंधर्मनुं एकल वलेशमात्रपण कष्टेंकरीने संचयकर केजेथकीताहरो कषायेकरीने युगपतके०समकाले घणाकालनो संचित करेलुंजेक्केशते एकवारेंज क्षयपामे तेमाटेहेमूर्ख घणाउद्यमे उपा र्ज्युंएहवुं अर्जुनजे सुवर्ण ते वायुएकरीने हाइतिखेदे शुंहारी जायछे एटलेसुवर्णरस वायुयें हाखानीपरें कष्टेंउपार्ज्योजेधर्म तेनेकषायरूपवायुयें हगवेछेतेयुक्तनथी ॥१५

शत्रूभवंति सुहृदः कलुषीभवंति धर्मा यशांसि नि
चिता यशसीभवंति ॥ स्निह्यंति नैव पितरापि च बांध
वाश्च लोकद्वयेपि विपदो भविनां कषायैः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥हवेकषायथी इयाइयाअवगुणथायछे तेकहेछे संसारीजीवने कषायेंकरी ने मित्रतेशत्रूथाय वलीधर्मजे तपदानादिक तेमेलाथाय वलीचिरकालनोसंचेलोयश तेपण अपयशसरखोथाय वलीमातापिता तथा बीजास्वजनादिक तेपणकोइ स्नेह नकरे तेमाटेप्राणीने कषायेंकरी आलोकें अनेपरलोकेंपण आपदाथाय. ॥ १६ ॥

रूपलाभकुलविक्रमविद्या श्रीतपोवितरणप्रभुताद्यैः ॥
किं मदं वहसि वेत्सि न मूढानंतशः स्वभृशलाघवदुःखं ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेजीवने मदनिवारवाआश्री उपदेशकहेछे हेआत्मातुं रूप लाभ कु ल पराक्रम विद्या लक्ष्मी तप दान ऐश्वर्य तथाआदिशब्दथी जाति परिवार स्त्री मं

हिर इत्यादिकें करीने मद अहंकार शुंवहेछे? हेमूर्खअनंतिवार पोताना अतिशये लाघवपणानुजे दुःख तेकेमनथी विचारतो? तुंपोतेंज अनंतिवार कुरूप लाजरहित हीनकुल निर्बल मूर्ख दरिद्री तपकरवाने अशक्त कृपण दास किंकर एहवो अवतर्यो हतो त्यांपणसर्ववातें हीनपणुं अनुजव्युं तोआजइहां शुंमदकरेछे॥१७॥

विना कषायान्नजवार्त्तिराशि र्नवेन्नवे देव च तेषु सत्सु॥ मूलं
हि संसारतरोः कषायास्तत्तान् विहायैव सुखी नवात्मन्॥१८॥

अर्थ॥ वलीफरीने कषायतुंत्यजवुंज दृढेछे. हेआत्मासंसारमां कषायविना संसार संबंधीनी आर्त्तिनोसमूह होयजनही अनेतेकषायेंकरी विद्यमानछते नवार्त्तिनीराशि होयज केमके संसाररूपीया वृक्षनुमूल तेकषायजछे. माटेतेकषायनेछांमीनेसुखीथा. शांतिसुखनेपाम.॥१८॥

समीक्ष्य तिर्यङ्नरकादिवेदनाः श्रुतेक्षणैर्धर्मदुरापतां तथा॥
प्रमोदसे यद्विषयैः सकौतुकै स्ततस्तवात्मन् विफलैव चेतना॥१९॥

अर्थ॥ हवेजेविषयने त्यजीशक्तोनथी तेप्राणीने शास्त्रजण्यो तेपणअफलछे ते आश्रीकहेछे हेआत्मा श्रुतजेसिद्धांत तेनेजोवेकरीने तिर्यंच नरक प्रमुखनी वेदनाने तथासर्वज्ञनाषित धर्मनुंदुर्लनपणुंछे एमतेंसम्यक्प्रकारेंजाणीने पणजोतुं कौतुकसहितथको विषयमांराचेछे तेवारें ताहारो चेतनाजे ज्ञानदृष्टि तेनिस्फलछे केमके तुंनरकादिकनादुःखने जाणतोछतोपण दुर्लनधर्मपामिने धर्मकरतोनथी॥१९॥

चौरैस्तथा कर्मकरैर्गृहीते दुष्टैः स्वमात्रेप्युपतप्यसे त्वं॥ पुष्टैः
प्रमादैस्तनुभिश्च पुण्यधनं न किंवेत्स्यसि लुट्यमानं॥२०॥

अर्थ॥ हवेधर्मरूपधन तेलुटातुंनथी तेआश्रीजीवने उपदेशकहेछे हेआत्माचोर लोको तथा दुष्टकुलक्षणकर्मकर जेदासादिकतेणे स्वमात्रके० मात्रबाह्यधनने अपहर्याछतां तुंपरितापकरेछे पणपोतानापोष्या एवाजेप्रमाद तथा तनुके० शरीर तेणेचोरनीपेठें लुटयुं एहवुंजे ताहरुं पुण्यरूप धन तेसर्वलुंटाइजायछे माटेतेहनी रक्षाकर केजेथीतुं नवांतरेंसुखीथाय॥२०॥

मृत्योः कोपि न रक्षितो न जगतो दारिद्र्यमुत्त्रासितं रोगास्तेननृपादिजा न च भियोनिर्णाशिताः षोडश॥ विध्वस्ता नरका न नापि सुखिता धर्मैस्त्रिलोकी सदा तत्कोनाम गुणो मदश्च विनुता का ते स्तुतीच्छा च का॥२१

अर्थ ॥ वळीआत्माने गुणरहितपणुंदेखाडी मदत्तांमवा उपदेशकरेछे हेआत्मा जोतें मृत्युनामुखथी कोइप्राणीराख्योनथी तथा जगतजेविश्वतेनुं दारिद्रनाशपमा डयुंनथी वळीसोळेरोगजे कासादिक तथाराजाअने चोरप्रमुखनाजय तेनाशपमाडया नथी वळीसातजेनरक तेपणनिवार्यानथी तथाधर्मेकरीने त्रिभुवनने सदासुखीकीधुन थी इत्यादिकगुणमाहेलो एकगुणजोताहरामानथी तेवारेंताहारोगुणतेस्यो, अनेतेगु णविना मदतेश्यो, तथा विभुताके० मोहोटाइतेशी, तथास्तुति प्रशंसानीवांछा तेप णशी, एटलेपूर्वोक्त तथाविध कोइगुणजोताहरामांहोयतो मदकरवोपणघटेछे पण तेविना तोजेमदकरवोतेसर्वे निरर्थकछे तेमाटे मदमत्सरादिकत्यजवा ११ इतिश्री अध्यात्मकल्पद्रुमेविषयकषायाद्यवशताधिकारः सप्तमः संपूर्णम्मः ॥

अथशास्त्राभ्यासोपदेशः॥शिलातलाभे हृदि ते वहंति विशंति सिद्धांत रसा न चांतः॥यदत्र नो जीवदयार्द्रता ते न भावनांकूरततिश्च लभ्या॥१॥

अर्थ ॥ हवेआठमेंअधिकारे शास्त्रगुणकेहेछे त्यांप्रथमउपमानेशिद्धांतरेचित्तनुक ठिणपणुंदेखाडेछे हेआत्माशिलाना तलियासरखा ताहराहृदयमां सिद्धांतरूपिया रसवहेछे पणतेथीताराेअंतःकरण भिगारेभेदातोनथी केमकेएहृदयमां जीवदया रूप णीकोमलता तथाभावनाजे अनित्यत्वादिक तेरूपीयाअंकूरनी श्रेणी देखाती न थी कोमलपृथ्वी जेम जलप्रवाहनेयोगें आर्द्रतापामे तथात्यां अनेकअंकुरादिप्रगटे तेमआसन्नसिद्धिकजीवने सिद्धांतनायोगथी हृदयमां कोमलताथाय तथाभावनाप्र मुख शुभपरिणामपणउपजे अनेदुरसिद्धिकजीवने तोए शिलातलनुंदृष्टांतजाणवुं.

यस्यागमांभोदरसैर्न धौतः प्रमादपंकः स कथं शिवेच्छुः ॥
रसायनैर्यस्य गदाः क्षता नो सुदुर्लभं जीवितमस्य नूनं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेउक्तिविशेषेकरी सिद्धांतनुं माहात्म्यकहेछे जेप्राणिने आगमजेसिद्धांत तेरूपीया मेघनेरसेंकरी प्रमादरूपीयो पंकजेकचरो तेधोवाणोनथी तेवाप्राणिमुक्ति छुंवांछेछे एटले जेने सिद्धांतजाणवाथीपण प्रमादमटयोनही तेप्राणिपछे श्याथीप्र मादरहितथइ मुक्तिपामशे केमके सिद्धांतथीअधिक बीजोकोइ प्रमाद परिहारनो उपायनथी तेउपरदृष्टांतकहेछे जेपुरुषने रसायनजेपारदादिक तेथीपण रोगक्षयन पाम्यो तेनेजिवतव्य तेघणुजदुर्लभछे एमइहांपणजे सिद्धांतजाणीने प्रमादरहितन थाय तोतेनेमुक्तिपामवी घणीज दुर्लभछे ॥ २ ॥

अधीतिनोर्चादिकृते जिनागमः प्रमादिनो दुर्गतिपापतेर्मुधा ॥
ज्योतिर्विमूढस्य हि दीपपातिनो गुणाय कस्मै शलभस्य चक्षुषी॥३॥

अर्थ ॥ हवेजेपुरुषसिद्धांतजणिनेपण प्रमादवंतछे तोतेहनुंभणवुं वृथाछेते कहे छे जेपुरुषप्रमादवंत सर्वथा दुर्गतिनोपडनार तेअर्चादिके० केवलपूजासत्कारादिक नेजअर्थें सिद्धांतभणे एवोहोयतेहनु भण्युं मुधाके० निष्फलजाणवुं तेउपर दृष्टां तकहेछे ज्योतिके० प्रकाशेंकरीनेज मुंझाणोथकोदीवामांजइपडे एवोजे शलभके० पतंग तेहनांचक्षूजेनेत्र तेकेवागुणनाअर्थेंहोय एतोउलटाअवगुणकारीजथाय तेमप्र मादिजीवरूपजे पतंगते अर्चासत्कारादिक ज्योतिमां मुंझाणोथको दुर्गतिरूप दीप ज्वालामांपडेछे त्यांसिद्धांतरूपचक्षुतेकांईकामनआवे सामोमोहकारीथाय ॥ ३ ॥

मोदंते बहुतर्कतर्कणचणाः केचिज्जयाद्वादिनां काव्यैः केचन कल्पि
तार्थघटनैस्तुष्टाः कविख्यातितः ॥ ज्योतिर्नाटकनीतिलक्षणधनुर्वे
दादिशास्त्रैः परे ब्रूमः प्रेत्य हिते तु कर्मणि जडान् कुक्षिंभरीनेव तान्॥४॥

अर्थ ॥ हवेतत्वज्ञानविना घणुंभण्योपण व्यर्थछे तेदेखाडेछे केटलाएकपुरुष घ णातर्कजेप्रमाण प्रमेयादिन्याय तेहनातर्कविचारनेविषे चणके० प्रतिष्टित एवाछतां प रवादिने जीपवाथकी हर्षपामेछे तथावलीकेटलाक चिंतव्याअर्थनी रचनाएरच्यां एहवेकाव्येंकरीने कवीपणानीप्रसिद्धिथकी संतोषपामेछे वलीकेटलाएक ज्योतिष नाट क नीतिके० व्यवहार शास्त्र लक्षणके० सामुद्रिक तथाअश्व गजलक्षणादिक धनुर्वे दके०आयुध अभ्यासनांशास्त्र आदिशब्दथी शकुन गारुडि इत्यादिक शास्त्रेंकरीने सं तोषपामेछे पणपरलोकनेविषे हितकारीएवाजे संयमादिककर्मतेहनेविषेजो जडके० अज्ञानछेतोतेसर्वेने अध्यात्मशास्त्रने अनुसारे अमेपेटभरा कहियें छैयें एटलेअध्या त्मशास्त्रनेमूकीबीजासर्वजे पापश्रुतादिशास्त्र तेपेटभराइनाजछे ॥ ४ ॥

किं मोदसे पंडितनाममात्रात् शास्त्रेष्वधीती जनरंजकेषु ॥ तत्किं
चनाधीष्व कुरुष्व चाशु न ते भवेद्येन भवाब्धिपातः॥५॥

अर्थ ॥ वलीतेद्विजद्दढेछे हेपंडितनुं जनके० लोकनेरंजनना करनार एहवाजे शृंगार नाटककाव्यादिशास्त्र तेहनेविषेप्रवीणथको नाममात्रपंडितपणाथी शुंहर्षपा मेछे एलोकरंजकशास्त्रथी कांइआत्मार्थनीसिद्धिनथी पणतुंशास्त्रनेजाणिने शीघ्रपणे कांइकएहवोकरणीकर केजेणेकरीने तुजनेसंसार समुद्रमां बुडवुंनथाय एटलेजिनाग मजाणिने तेहनेअनुसारें संयमआराध ॥ ५ ॥

धिगागमैर्माद्यसि रंजयन् जनान् नोद्यच्छसि प्रेत्य हिताय संयमे ॥
दधासि कुक्षिंभरिमात्रतां मुने क्व ते क्व तत् क्वैष च ते भवांतरे ॥६॥

अर्थ ॥ हवेक्रियाविना केवल आगमनुंभणवुं तेपण अर्थसाधकनथी तेकहेछे हेमुनितनेधिःकारछे केमकेतुं आगमसिद्धांत तेणेकरीने लोकने रीझवेछे पणपरलोकना हितनेमाटे संयमनविषेउद्यमवंत नथीथातो तेमाटेतुंकेवल पेटभराइजकरेछे पणताहरेयादराखवुंके भवांतरनेविषे तेजिनागमकिहां अनेलोकनुंरीझववुंपणकिहां तथासंयमपणकिहां एटले भवांतरेएवीगतिपामिश केजिहांएमाहेलुंनाएकेतुजनेनहोय.

धन्याः केप्यनधीतिनोपि सदनुष्ठानेषु बद्धादरा दुःसाध्येषु परोपदेशलवतः श्रद्धानशुद्धाशयाः ॥ केचित्त्वागमपाठिनोपि दधतस्तत्पुस्तकान् येऽलसा अत्रामुत्र हितेषु कर्मसु कथं ते भाविनः प्रेत्यहाः॥७॥

अर्थ ॥ हवेथोडोभणावाथीपण किहांक क्रियानो उत्कर्षदेखामेछे केटलाकप्राणी अल्पश्रुतवंतछतांपण श्रद्धानजे सम्यक्ततेणेकरीने शुद्धाशयके० निर्मलपरिणामवंतहोयतेनेधन्यछे केमकेतेपारकाउपदेशना लेशमात्रथीपण दुःखेंसाध्य एवांजेभलाअनुष्ठान तपसंयमादिक्रियाविशेष तेहनेविषे आदरवंतछे अनेहाइतिखेदेंकेटलाकतो आगमना भणनारछतां तथाआगमना पुस्तकधरतांछतांपण आलोक अनेपरलोकनेविषे हितकारीकर्म जेसंयमादिक तेहनेविषे निरादरकरेछे तेपुरुषनेपरभवनेविषेशुंथाशे एटलेपरभवेतेनी शीगतीथाशे अर्थात् ते माहादुःखपामशे ॥ ७ ॥

धन्यः समुग्धमतिरप्युदितार्हदाज्ञारागेण यः सृजति
पुण्यमदुर्विकल्पःपाठेन किं व्यसनतोस्य तु दुर्विकल्पै
र्यो दुस्थितोत्र सदनुष्ठितिषु प्रमादी॥८॥ इतिवापाठः ॥

अर्थ॥ वलीअर्थांतरें एहिजइछेछे जेअल्पश्रुतवंतथको पणकदाग्रहरहितहोय तेहने मुग्धमतिकहियें तेपणभलुंजाणवुं केमकेजे उदितके० सिद्धांतोक्त एहवीजे अरिहंतनी आज्ञातेना रागेकरीने रखेजिनाज्ञानोभंगथाय एवीबुद्धियें कुविकल्परहितथको पुण्यकरेछे अनेजेपठितथकोपण कदाग्रहेंग्रस्तहोयतो तेनेघणुभण्येपण शोगुणजेलोकनेविषे द्यूतादिव्यसनथी कुविकल्पेंकरी दुषितछे एटलेकांइक पूजासत्काराधिकना लोभेंभण्युंथकुं पण व्यसनादिकें आसक्तपणेकरी कुविकल्पचिंतवे एटलेकेहनेरीझवुं केहेनेमोहपमाडुं केमकरि परीग्रहमेलवुं एवीबुद्धियें रात्रदिवस दुःखितथको रहे

अनेनलाअनुष्ठान जेशुनक्रियातेनेविषे प्रमादवंतछे तोतेहनुंनएपुपण निष्फलछे आ काव्यपेहेलाकाव्यनुं पाठांतरछे ॥ ८ ॥

अधीतिमात्रेण फलंति नागमाः समीहितैर्जीवसुखैर्भवांतरे ॥
स्वनुष्ठितैः किंतु तदीरितैः खरो न यत्सितायाः वहनश्रमात्सुखी॥९॥

अर्थ ॥ वलीतेजदृढकरेछे हेआत्मा केवलनणवामात्रथकीज आगमसिद्धांतते नवांतरनेविषे वांछितसुखेकरी फलेनही इष्टफलदायकनहोय पणतेसिद्धांतनेविषे कह्यांजे स्वनुष्ठितके० नलाअनुष्ठान तपसंयमादिक तेनेआराध्येनते आगमफलदायक होय तेउपरदृष्टांतकहेछे जेमखरजेगर्दन तेसाकरनोनार उपाडवामात्रथी सुखीउ नहोय साकरनापरिनोगनुं सुखनपामे तेम आगमनणवामात्रथीज आगमोक्त क्रिया जनित फलपामेनही॥९॥इतिश्री अध्यात्मकल्पद्रुमे शास्त्रगुणाधिकारोऽष्टमः संपूर्णः ॥

अथचतुर्गत्याश्रितोपदेशः॥ दुर्गंधतो यदणुतोपि पुरस्य मृत्युरायूंषिसागरमितान्यनुपक्रमाणि ॥ स्पर्शः खरः क्रकचतोतितमामितश्च दुःखावनंतगुणितौ नृशशैत्यतापौ ॥१॥ तीव्रा व्यथाः सुरकृता विविधाश्च यत्राक्रंदारवैः सततमभ्रभृतोप्यमुष्मात् ॥ किं नाविनो न नरकान् कुमते बिभेपि यन्मोदसे क्षणसुखैर्विषयैः कषायी॥२॥युग्मं

अर्थ॥हवे एपूर्वोक्तशास्त्रधारांतर्गत चतुर्गत्याश्रीतउपदेशकहेछे तेमांप्रथम शास्त्रोक्त नरकगतिनादुःखकहेछे निश्चेंकरी नरकना एकपरमाणुमात्रना दुर्गंधथी पुरवासिस मस्तलोकनुं मृत्युथाय एहवामहादुर्गंधमय नरकनापुद्गलछे वलीजिहां निरुपक्रमके० अपवर्तनरहित निकांचित् अने सागरोपमेप्रमित एकसागरोपमथी मांमीने तेत्रीस सागरोपम पर्यंत एहवाआउपाछे केमके देवताअने नारकीनाआउषा सदाइ निरु पक्रमहोय वलीजिहां स्पर्शतेपण करवलनीधाराथी कर्कशछे वलीइहांथकी अनंत गुणदुःखदायी महाशीत तथा महातापछे एमक्षत्रवेदनाकहीने हवेपरमाधामीनी करेलीवेदनाकहेछे वलीजिहां देवताजे पन्नरनेदें परमाधामीतेहुनीकरेली अतितीव्र कठोरजे वेदना तेविविधप्रकारना छेदन विदारणादिकहोय एप्रकारें निरंतर आक्रंद रुदनने शब्देंकरी आकाशनेपुरतो एहवोजे नविष्यमाण नरक तेहथकी हेकुमतिवं तआत्मातुं केमनथीबिहितो जेमाटे कषायसहितथको क्षणमात्रसुखनाकारक एह वाविषयजे शब्दादिक तेणेकरी हर्षनेपामेछे एबेकाव्यनो अर्थएकठोछे ॥ १ ॥ २ ॥

बंधोऽनिशं वाहनताडनानि क्षुत्तृड्दुरामातपशीतवाताः ॥
निजान्यजातीयभयापमृत्यु दुःखानि तिर्यक्ष्विति दुःसहानि॥३॥

अर्थ ॥ हवेतिर्यंचगतिआश्री दुःखदेखाडेछे अनिशके० नित्यबंधन तथा वाहन के० नारनुंउपाडवुं तथापराणादिकना प्रहारेंकरी ताडन वली क्षुधा तृषा दुरामके० दुष्टरोग आतप तडको तथाटाढ्य वायुइत्यादिक तथावलीस्वजातीनोभय जेम महिषने महिषनोभय तथाहस्तिने हस्तिनोभय तथाअन्यजातीयभय ते जेम मृगादिकने व्याघ्रादिकनोभय तथाअपमृत्युजे कुमरण खड्गप्रहारथी तथाआहेडीप्रमुखथी तथाजल दावानल विषमादिकयोगथी क्षुधातृषादिक गाढवेदना आक्रांतपणे अकालमृत्यु इत्यादिकप्रकारें तिर्यंचगतिमां भयंकरकठीन दुःखहोयछे ॥ ३ ॥

सुधान्यदास्याभिभवाभ्यसूया भियांतगर्भस्थितदुर्गतीनां ॥
एवं सुरेष्वप्यसुखानि नित्यं किंतत्सुखैर्वा परिणामदुःखैः॥४॥

अर्थ ॥ हवेदेवगतिआश्रीदुःखकहेछे नित्यप्रतें सुधाके० फोकट अन्यके० पारकी सेवा करवी केमकेमनुष्यतो धनवालोभे तथाआजीविकादिक कारणथी परनीसेवा करे अनेदेवतानेतो तेवोकोइनिमित्तनथी तोपणसदाकालें इंद्रादिकनीसेवाकरवी तथाअभवेंवज्रप्रहारादिकनी पीडा अने अभिसूयाके० परस्परें ईर्षा द्वेषादिकमां वलि अंतके० चवननुंभय केमके सरवार्थसिद्धिना देवतानेपण चवननुंभयछे तथागर्भावासनुभय वलीदुर्गतिजे चांडालादिककुलें अथवातिर्यंचनुंअवतारलेवुं तेसंबंधीभय इत्यादिक प्रकारें देवतानाभवमांपण घणाप्रकारें असुखछे तेमाटेपरिणामें दुःखकारी एहवाजे देवतासंबंधीसुख तो तेसुखेंसुंथाय माटेतेसुखनेपण असुखकरीजाणवा॥४॥

सप्तभीत्यभिभवेष्टविप्लवानिष्टयोगगददुःसुतादिभिः ॥
स्याच्चिरं विरसता नृजन्मनः पुण्यतः सरसतां तदानय ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेमनुष्यगतिआश्री दुःखकहेछे धुंवके० निश्चेंकरीने सातभीतिजे १ इहलोक २ परलोक ३ आदान ४ आकस्मिक ५ आजीविका ६ मरण ७ अपयश एसातभय तथा अभिभवके० राजा चोर दुर्ज्जनादिकथी पराभव तथा इष्टजे वल्लभजन स्त्री पुत्रादिकनोवियोग शत्रुप्रमुखनो योगके० संबंध तथा गदके० रोग वली दुःसुतके० कुपुत्र आदिशब्दथी कुभार्याप्रमुख इत्यादिकप्रकारेकरीने मनुष्यजन्मनुपण विरसपणुथाय तेकारणमाटे पुण्येकरीने मनुष्यजन्मनु सुंरसपणुकरवुं ॥ ५ ॥

इति चतुर्गतिदुःखततीः कृतिन्नतिभयास्त्वमनंतमनेहसं ॥ हृदि
विभाव्य जिनोक्तकृतांततः कुरु तथा न यथास्युरिमास्तव ॥६॥

अर्थ ॥ हवेउपसंहारकहेछे हेपंडितआत्मा एप्रकारें अनंतकालसुधी अतिशय भयनीकरनार एहवीचारगतिसंबंधीजे दुःखनीश्रेणी तेप्रते जिनोक्त श्रीसर्वज्ञप्रणित कृतांतजे सिद्धांत तेथकी हृदयमां विचारीने जेम ए चारगतिना दुःखनीश्रेणीओ तुजने कोइवारें प्राप्तनथाय तेवो उपाय कर ॥ ६ ॥

आत्मन् परस्त्वमसि साहसिकः श्रुताक्षैर्यद्भाविनं चिरचतुर्गतिदुःखराशिं॥
पश्यन्नपीह न बिभेषि ततो न तस्य विच्छित्तये च यतसे विपरीतकारी॥७॥

अर्थ ॥ हवेआत्मा चारगतीना दुःखजाणतोथकोपण धर्मनेविषे तत्परथातुं नथी तेवास्तेपरमअविचारीपणुं देखाडेछे हेआत्मातुं अविचारमांहेमुख्यछो केमके आसंसारमां चिरकाललगें थावीएहवोजे चारगतिनादुःखनोसमूहतेहने श्रुतसिद्धांत रूपनेत्रेंकरी देखतोछतोपण बीकपामतोनथी वलीतेदुःखना समूहनोविछेद करवा नेपण उजमालथातुंनथी माटेतुं उपरांठांकर्मनुकरनारछो केमके दुःखछेद कर्मकरवानेबदले दुःखवृद्धिकारीकर्मकरेछे॥७॥इति शास्त्रोपदेशांतरगतचतुर्गत्याधिकारसमाप्त

अथमनः ॥ कुकर्मजालैः कुविकल्पसूत्रजै र्निबद्ध्य गाढं नरकाग्निभिश्चिरं॥
विसारवत्पक्ष्यति जीव हे मनः कैवर्त्तकस्त्वामिति मास्य विश्वसीः ॥१॥

अर्थ ॥ हवेचित्तदमन नामानवनमोधिकार कहेछे तेमांप्रथम आत्माने मन नु विश्वासकरवुंनिषेधेछे हेजीवतुजने मनरूपी धीवर तेकुविकल्परूप सूत्रगुथ्या एहवाजे कुकर्मरूपी जालो तेणेकरीगाढोबांधीने नरकरूप अग्नियेंकरी मत्सोनीपरें चिरकाललगें पचावसे जेमधीवरपण मत्सने सूत्रनीजाले गाढोबांधीनेपछे अग्नीमांपचावे तेमइहांपण एउपनयजाणवुं माटेतुंताहरामनरूप धीवरनोविश्वासकरीसनही जेम ते मनरूप धीवरनाबनावेला कुकर्मरूपजालमांपडेनही एवीरीतेंवर्त्तजे ॥ १ ॥

चेतोऽर्थये मयि चिरत्नसख प्रसीद किं दुर्विकल्पनिकरैः क्षिपसे भवे मां॥
बद्धो जलिः कुरु कृपां भज सद्विकल्पान् मैत्रीं कृतार्थय यतोनरकाद्बिभेमि॥२

अर्थ ॥ हवेआत्माबीहितोथको मनरूपमित्रने विनंतीकरेछे हेचिरकालनामित्रतुं चेतहैयामांहे हेघणाकालना सहचारीतुं महाराउपर प्रसादकरीने एमाठा विकल्पने समूहेकरीने मुजने आसंसारमां सुंजमावेछे तुजनेहुं हाथजोडीने कहुंछुं जेतुंमहारा

उपर कृपाकरीने शुजविकल्पजे धर्म ध्यानलक्षण तेहनी नजनाकरी आपणीमैत्री स फलकर केमकेहुं हवे नरकना डुःखथी बीहुंछुं ॥ २ ॥

स्वर्गापवर्गौ नरकं तथांतर्मुहूर्त्तमात्रेण वशावशं यत् ॥
ददाति जंतोः सततं प्रयत्नाद्वशं तदंतःकरणं कुरुष्व ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने मनवशकरवाआश्री उपदेशआपेछे हेआत्माजे अंतःकरण वशतथा अवशथको जीवने अंतरमुहूर्त्तमात्रमांज स्वर्गमोक्षादिकना सुखप्रतेआपे अनेनरकनी प्राप्तिपणकरावे एटलेमनवशथको जीर्णशेठ तथाप्रश्नचंदराजर्षि इत्यादिकनीपरें स्वर्गमोक्षादिकआपे अने मनअवशथको तंडुलमत्स्यादिकनीपरें अंतर मुहूर्त्तमात्रमां नरकप्रतेआपे तेमाटेतुंताहरा अंतःकरणनेज सर्वथाप्रकारेंवशकर ॥३॥

सुखाय डुःखाय च नैव देवा न चापि कालः सुहृदोरयो वा ॥
नवेत्परं मानसमेव जंतोः संसारचक्रभ्रमणैकहेतु ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेतेहिजकहेछे जीवने देवता तथा वर्षा शीत ग्रीष्मादिककाल तथा मित्र शत्रुतेकोइपण सुखदायी तथाडुःखदाइनहोय पणएकमन तेहिजजीवने सुख दायी तथा डुःखदायीहोय हवे तेमनकहेवुंछे तेकहेछे संसारसमुद्रमां भ्रमणजे जन्ममरणादिक तेहनुंएकहेतुछे एवचन संज्ञीपंचेंडी आश्रीजाणवुं अन्यथा असंज्ञीने मनना अनावें पण संसारमां भ्रमण देखायछे ॥ ४ ॥

वशं मनो यस्य समाहितं स्यात् किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च॥
हतं मनो यस्य च डुर्विकल्पैः किं तस्य कार्यं नियमैर्यमैश्च ॥५॥

अर्थ ॥ जेप्राणीनेपोतानुंमन समाधिवंतछतो वशवर्त्तिहोय तेहने नियमजे १ शौच २ संतोष ३ स्वाध्याय ४ तप ५ देवताप्रणिधानादिक लक्षण तथायमजे प्राणातिपात विरमणादिक पांचमहाव्रत तेहनुंसुंकार्यछे केमकेतेतोसर्वे मनवशकर वाना उपायछे अनेजेवारेंते मनवशथयुं तेवारेतो ते सर्वेगुण प्रथमजआव्या अनेजे प्राणीनुं मन माठाविकल्पेंकरी हतप्रहतछे तोतेहने नियमयमें करीने पणसुंथवानुंछे जेमछालीना गलाना स्तनधाव्याथी कांइ अर्थसिद्धि नथाय तेमज मनवश थयाविना यम नियमादिक पण व्यर्थ जाणवा ॥ ५ ॥

दानं श्रुतध्यानतपोर्चनादि वृथा मनोनिग्रहमंतरेण ॥ कषाय
चिंताकुलतोज्झितस्य परो हि योगो मनसोवशत्वं ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जीवनेएक मनवशथयाविना दानतथा श्रुतसिद्धांतनुंजणवुं तथाध्यान तथा अर्चनजे देवपूजा आदिशब्दथी प्रासाद देवप्रतिष्ठादिक क्रिया तेसर्वव्यजाणवी पण तेमोक्षफलनी देनारनथाय केमके कषायजेक्रोधादिक तेसंबंधीनीचिंता थकी उपनीजे असाता तेणेकरीरहित एहवुंजेमन तेहनुंवशवर्त्तिपणुं तेहिजपरम योगछे अने तेहिज अष्टांग योगनुं सर्वस्वछे ॥ ६ ॥

जपो न मुक्त्यै न तपोद्विभेदं न संयमो नापि दमो न मौनं ॥
न साधनाद्यं पवनादिकस्य किं त्वेकमंतःकरणं सुदांतं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जीवने नवकारादिकनोजप तथा बाह्य अभ्यंतर बेप्रकारनुंतप तथासंयम चारित्र तथा दमजे इंद्रियदमन तथामौनजे वचननुंसंवर तथा पवनादिकनुंसाधन आदिशब्दथी चोरासी योगासनप्रमुख तेकांइमुक्तिना देवावाला थायनही तेवारे तुजने किंतुके० मुक्तिप्राप्तिनो शोउपायछे तेकहेछे जेणेरुडीरीते पोतानुंअंतःकरणजे मनतेहने वशकर्युं तोतेहिज एकमुक्तिनुं दातार होय ॥ ७ ॥

लब्ध्वापि धर्मं सकलं जिनोदितं सुदुर्लभं पोतनिभं विहाय च ॥
मनःपिशाचग्रहिलीकृतः पतन् भवांबुधौ नायतिदृग्जडो जनः ॥ ८

अर्थ ॥ जडके० हेअज्ञानीप्राणी अतिशयेंकरीपामवुंदुर्लभ प्रवहणसरिखो एहवोएसर्वज्ञप्रणीत संपूर्णधर्म तेप्रतेंपामिने वलीतेहनेछांडिने मनरूपिओ पिशाचके० भूततेणेग्रहेलोकर्योथको संसारसमुद्रमांपडता आयतिदृगके० उत्तरकालनो विचार करतोनथी एटलेएमनथी विचारतोजे प्रवहणरूप धर्मनेछांडी संसारसमुद्रमां जंपापातरवाउंछुं तेथी आगलें हवे महारी शीगति थासे ॥ ८ ॥

सुदुर्जयं ही रिपवत्यदोमनो रिपूकरोत्येव च वाक्तनू अपि ॥
त्रिभिर्हतस्तद्रिपुभिः करोतु किं पदीभवन्दुर्विपदा पदे पदे ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हेआत्माअतिशय दुर्जयएहवुंजे ताहरुंमन तेपोतेंशत्रुपणुं आचरेछे अनेवली वचनतथाकायानेपण शत्रुकरेछे मनदुष्टथके वचनतथा कायानाव्यापारपण दुष्टथाय तेकारणमाटे मन वचन तथाकाया एत्रणेशत्रुयें पराभव्यो एहवोतुंपगेंपगें दुष्ट विपदा जे नरकादिक तेहनुं भाजनथातोथको तुंसुंकेरे एटलेताहरोकांइचालतुं नथी॥ ९

रे चित्त वैरि तव किं नु मया ऽपराद्धं यद्दुर्गतौ क्षिपसि मां कुविकल्पजालैः ॥ जानासि मामयमपास्य शिवेस्ति गंता तत्किं न संति तव वासपदं ह्यसंख्याः ॥ १०

अर्थ ॥ हेचित्तरूपवैरी में तादृशोशो अपराधकीधोछे केतुंमुजने विकल्परूपजालें बांधीने दुर्गतिमांनाखेछे जोतुंएमजाणतोहोयजे एजीवमुजनेपरिहरीने मुक्तिजनारछे तोपणतादृरे वशकरवानास्थानक वलीमहाराशिवाय बीजाअसंख्याता संसारीजीवसुंनथी एटले एकहुंजतोरह्यो तोपण तादृरेबीजानीशीखोटछे ॥ १० ॥

पूतिश्रुतिःश्वेव रतेर्विदूरे कुष्ठीव संपत्सुदृशामनर्हः ॥
[illegible] मिंदिरेषु नार्हेत्प्रवेशं कुमनोहतोंगी ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेमननाअवशपणाथकी बहुप्रकारना अवगुणथायछेतेदेखाडेछे दुष्टमनेकरीसंतापपाम्यो एहवोजेप्राणी तेकुंह्याकाननां कुतरानीपरें रतिजेनिवृत्तितेहथी वेगेजोहोय जेम कीर्डेखाधो एहवोजे कुतरोते किहांपणक्षणमात्र रतिपामेनहीतेम कुविकल्पचित्तनोधणी तेपणरतिरहितहोय वलीकोढीआनीपरें संपदारूपणीजे सुदृशाओरूप उत्तमकन्याओ तेहेनेवरवाअयोग्यहोय जेमकोढीआनेकोइपण उत्तमकन्यावरवावांछेनही तेमदुष्टचित्तवंतप्राणीने सौभाग्यादिक कोइपणसंपदाआश्रयेनही वलीसद्गतिरूपजेमंदिर तेहनेविषे श्वपाकके० चंडालनीपरें प्रवेशकरवानपामे॥ ११

तपोजपाद्याः स्वफलाय धर्मा न दुर्विकल्पैर्हतचेतसः स्युः ॥
तत्खाद्यपेयैः सुभृतेपि गेहे क्षुधातृषाभ्यां म्रियते स्वदोषात्॥ १२॥

अर्थ ॥ माटेविकल्पेकरी जेहनुंचित्तपीडाणुंछे एहवाप्राणीने तपजपप्रमुखजेधर्मतेपोतपोताना फलनुंदेवावालोनथाय अने कुविकल्पचित्तनोधणी धर्मक्रियाकरतोथकोपण मोक्षफलपामेनही तेउपरदृष्टांतकहेछे जेमकोइ अपुण्यवंतप्राणी खानपानादिकें भरेलाघरमांपण पोताना कृपणताद्यादिकदोषथी क्षुधतृष्णायेंपीडाय तेमइहांपण कुविकल्पचित्तवंतप्राणीते छतेधर्मेपण परभवेंसीदाय ॥ १२ ॥

अकृच्छ्साध्यं मनसो वशीकृतात् परं च पुण्यं न तु यस्य तद्वशं ॥
स वंचितः पुण्यचयैस्तदुद्भवैः फलैश्च हीही हतकः करोतु किं॥ १३॥

अर्थ ॥ एकमनना वशकरवाथी बीजुंसर्वेपुण्यते सुखेंसाध्यछे अनेते मन जेहनेवशनथी तेप्राणी पुण्यनेसमूहें तथातेपुण्यजनितफलेंकरीने वांछितछे तेफोकटछे एटलेमनवशविना पुण्यनी तथापुण्यजन्यक फलनी फोकट आशाराखेछे तेमाटे हीहीइतिखेदे एवापडो प्राणी सुंकरे पछे तेहने एके गतिनथी ॥ १३ ॥

अकारणं यस्य सुदुर्विकल्पैर्हतं मनः शास्त्रविदोपि नित्यं ॥
घोरैरघैर्निश्चितनारकायुर्मृत्यौ प्रयाता नरके स नूनं ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ यद्यपिसिद्धांतनोजाणनारछे तथापिजेहनुंमन अकारणके० उपसर्गादिककारणविना पण नित्यें अतिशयेंकुविकल्पेंकरी पीडितछे तेपुरुषमहारौद्रपापेंकरीने दृढकीधुंछे नरकायुजेणे एहवुंथकोते सर्वथा मुआपछी नरकमांजजशे ॥ १४ ॥

योगस्य हेतुर्मनसः समाधिः परं निदानं तपसश्च योगः॥
तपश्च मूलं शिवशर्मवल्या मनःसमाधिं नज तत् कथंचित्॥१५॥

अर्थ ॥ मननीसमाधिजे एकाग्रता तेहिज योगनुंहेतुछे अनेवलीयोगजे अष्टांगलक्षण तेतपनुंपरम उत्कृष्टकारणछे अनेतेतपतो मोक्षसुखरूपणी वेलीनुंमूलछे माटेहेआत्मा जेतेउपाय करीने मननीसमाधिनेआदर केमके मननीसमाधिथी योग अने योगथी तप तथा तपथीमोक्षसुख एमपरंपरायें सर्वसिद्धिपामे ॥ १५ ॥

स्वाध्याययोगैश्चरणक्रियासु व्यापारणैर्द्वादशजावनाजिः ॥
सुधीस्त्रियोगी सदसत्प्रवृत्तिः फलोपयोगैश्च मनो निरुंध्यात् ॥१६॥

अर्थ ॥ हवेमनसमाधिना उपायकहेछे स्वाध्यायजे जिनागमतेहनायोगनुं वहेवुं आंबिलादिक तपविशेष तेणेकरीने तथाचारित्रसंबंधीनी क्रियानेविषे प्रवर्त्तवेकरी वलीअनित्यादिक बारजावनायेंकरीने वली त्रियोगीजे मन वचन कायानायोग ते होनी सदसद्प्रवृत्तिके० जलोअने नूंडोव्यापार तेहना फलनुं उपयोगजे विचारणा एटलेत्रियोगना शुजव्यापारनो शो फलछे एहवीविचारणा अने अशुजव्यापारनोशो फलछे एहवाजे उपयोगदेवा इत्यादिक प्रकारेंकरी मननेवशकरवुं ॥ १६ ॥

जावनापरिणामेषु सिंहेष्विव मनोवने ॥
सदा जाग्रत्सु दुर्ध्यानसूकरा न विशंत्यपि ॥१७॥

अर्थ ॥ हवेवली एसर्वप्रकारमां पण जावनापरिणामने विशेषदेखाडेछे मनरूपीआवननेविषे सिंहसरिखाजे जावनाना परिणाम तेमांसर्वदासावधानरहेथके दुर्ध्यानजे आर्त्तरौद्रध्यान तेरूपजे सूअरोते प्रवेशपणकरीशकेनही तोतिहां तेसूअरो वासकरवानेतो सर्वथानजपामे ॥ १७ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे चित्तदमनाजिधानो नाम नवमोअधिकार संपूर्ण थयो. ॥ ९ ॥

अथ सामान्यतो वैराग्यधर्मोपदेशः ॥ किं जीव माद्यसि हसस्य
यमीहसेऽर्थान् कामांश्च खेलसि तथा कुतुकैरशंकः ॥ चिद्दि
प्सु घोरनरकावटकोटरे त्वा मभ्यापतत्स्नघु विजावय मृत्युरक्षः॥१॥

अर्थ ॥ हवेसामान्यथी वैरागोपदेशनामा दसमोअधिकारकहेछे तेमांप्रथमजीव ने मरणसंबंधीजयदेखाडेछे हेजीवतुं मदशानोकरेछे तथासुंहशेछे वली अर्थजेसुव र्णरूपादिक तेहनेसुंवांछेछे तथावली निःशंकछतो कौतुकेकरीने कामजे शब्दादिक विषय तेप्रतेसुंरमेछे तुजनेतो जयंकर नरकरूपजे खाइ तेमांनाखवावांछतो एवो मृ त्युरूपजे राक्षस तेउतावलुं तारेसन्मुखआवतुं सांजलीने निःशंकरहिशनही॥१॥

आलंबनं तव लवादिकुठारघाताश्छिंदंति जीविततरुं न
हि यावदात्मन् ॥ तावद्यतस्व परिणामहिताय तस्मि
न् छिन्ने हि कः क्कच कथं जविता स्वतंत्रः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेआउखुंविद्यमानछते जीवनेधर्मकरवुं उपदेशेछे हेआत्मातादृरो आ लंबनआधारजूत एहवोजे जीवितव्यरूपवृक्ष तेप्रते लवादिकजे लव लेश क्षण घ डी मुहूर्तप्रमुखकालमान तेरूपीया कुहाडानाघाव ज्यांलगेंछेदेनही तेहथीपहेलां ज परिणामहितजे निदानहितकारी तपसंयमादिक तेहनेअर्थेउद्यमकर जेथ कीतादृरो जीवतव्यरूप वृक्षछेद्यापछि फरीतेहने नवपल्लवकरवाने किहांक कोइकप्र कारें पण मंत्रउपायथासे जेणेकरीतुं जीवतव्यरूपतरुने नवपल्लवकरीस एटलेक्ष णेक्षणे जीवतव्यरूप वृक्षछेदातुंजायछे तेछेदाइगयापछि फरीसज्जकरवानु कोइउपा यनथी तेमाटे आत्महितनेविषे तत्परथावुं एहिजश्रेष्ठउपायछे ॥ २ ॥

त्वमेव मोग्धा मतिमान् त्वमात्मन्नेष्टाप्यनेष्टा सुखदुःखयोस्त्वं ॥
दाता च जोक्ता च तयोस्त्वमेव तच्चेष्टसे किं न यथाहितासि ॥३॥

अर्थ ॥ हवेसर्वकरणीते आत्मानेआधीनछे एहवुंकहिने विशेषेंप्रेरेछे हेआत्मातुं मोग्धाके० मूढतासहितछो अने मतिमान्के० ज्ञातापणतुंछो वलीसुखनुं वांछक अ नेडुःखनुंअवांछकपणतुंछो तथासुखअनेडुःखनुंदाता अनेजोक्तापणतुंजछो केमके सु खडुःखते स्वकृतकर्मथीजथायछे यडुक्तं श्रीउत्तराध्ययने अप्पानईवेअरणि अप्पामे कूमसामली अप्पाकामडुघाधेणुं अप्पामेनंदणंवणं अप्पाकत्ताविकत्ताय इत्यादिक माटे जेरीतें तादृरीआत्माने हितनीपजे तेमजकांनथीकरतो ॥ ३ ॥

कस्ते निरंजन चिरं जनरंजनेन धीमन् गणोस्ति परमार्थदृशेति पश्य ॥
तं रंजयाशु चरितैर्विशदैर्भवाब्धौ यस्त्वां पतंतमबलं परिपातुमीष्टे ॥४॥

अर्थ ॥ हवेलोकनेरीजवतोथको आत्मापोतानुं हितकांइकरतोनथी तेआश्रयीउ पदेशछे हेनिरंजन हेनिरलेपआत्मा हेबुद्धिवंत हेहिताहितविवेकनाजाण चिरकाल जावजीवलगें लोकनुंरीजववुं एटलेमलीनवस्त्र धारणकरी बाह्यक्रिया देखामीने शू न्यचित्तें गामेगामें उपदेशआपीने लोकनुंमनरीजववुं तेथीतुजने शोगुणछे एटलुंत त्वदृष्टे विचारी परमार्थदृष्टीयेंजोतां लोकरीजव्याथी आत्माने अर्थसिद्धिकांइनथी तेमाटे लोकरंजनत्यजीने उतावलोथयी विशदके० निर्मलजे चारित्र तपसंयमादिक आचरण तेणेकरीने श्रीवीतराग तथातेमनाजाषेलाधर्मनेरीजव जेथकीतुजने अ बलके० परजवें संबलेंरहित संसारसमुद्रमांपडताथकां राखवानेसमर्थथाय केमके संसारमांपडता एकधर्मजआधार आपशे पणलोककोइ आधारआपशेनही ॥४॥

विद्यानहं सकललब्धिरहं नृपोहं दाताहमद्भुतगुणोहमहं गरीयान्॥
इत्याद्यहंकृतिवशात् परितोषमेषि नो वेत्सि किं परभवे लघुतां भवित्री॥५

अर्थ ॥ हवेअहंकारनिवारवा उपदेशछे हेआत्मा हुंपंमितछुं हुंसर्वलब्धीये स हितछुं हुंराजाछुं हुंदातारछुं हुंअद्भुतगुणवंतछुं तथाहुंमहोटोछुं इत्यादिकजे पोता नामनकल्पित अहंकार तेहनावशथकी तुं परितोषके० हर्षपामेछे पणजन्मांतरें भाविनी एहवीतेपदार्थोनी लघुताप्रते कांविचारतोनथी जेजेपदार्थनेतुं आभवमां हुंपदेकरेछे तेतेपदार्थनीतुं परभवेंहीनतापामिस इतिभावः॥यदुक्तं योगशास्त्रे ॥जाति लाभकुलैश्वर्य बलरूपतपःश्रुतैः ॥ कुर्वन् मदं पुनस्तानि हीनानि लभ्यते जन इति ॥५॥

वेत्सि स्वरूपफलसाधनबाधनानि धर्मस्य तं प्रभवसि
स्ववशश्च कर्तुं॥तस्मिन् यतस्व मतिमन्नधुनेत्थमुत्र
किंचित्त्वया हि नहि सेत्स्यति भोत्स्यते वा ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने इहभवेंधर्मकरवानी प्रेरणाकरेछे हेबुद्धिवंतप्राणी तुंधर्मनुं स्वरूपजे क्षांत्यादिकदशविध लक्षण तथाधर्मनुंफलजे मोक्षादिक तथाधर्मनुंसाधन जे मनुष्यजन्म आर्यक्षेत्रादिक तथाधर्मना बाधकजे कुजन्म कुक्षेत्र प्रमाद मिथ्या त्व इत्यादिकसर्वप्रकारने वेत्सिके० जाणेछे अनेवली स्ववशके० पोतानेवशेंथको ध र्मकरवाने समर्थपणछो पणतिर्यंच नारकीनीपरें परवश तथाधर्मकरवाने असमर्थ

नथी तेमाटे आजवमांज धर्मनेविषे उद्यमकर केमकेफरी परजवेंते कांइ सीजेनही तथा तुजने तेवा धर्मनुं फरीकांइ जाणपणुपण नहीथाशे माटे ॥ ६ ॥

धर्मस्यावसरोस्ति पुजलपरावर्त्तैरनंतैस्तथा यातः संप्रति जीव हे प्रस हतो दुःखान्यनंतान्ययम् ॥ स्वल्पाहः पुनरेष डुर्लजतमश्चास्मिन् य तस्वाहतो धर्मं कर्त्तुमिमं विना हि नहि ते डुःखक्षयः कर्हिचित् ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने धर्मनुंअवसरजणावेले हेजीवअनंताडुःख सहित तुजने अनंते पुजलपरावर्त्ते संसारमांजटकतां संप्रतिके० हमणा आजवमां धर्म करवानुंअव सरआव्योले अनंतउत्सर्प्पिणी अने अवसर्प्पिणी प्रमाण एकपुजलपरावर्त्त थाय ते हनुंस्वरूप ग्रंथांतरथीजाणवुं एधर्मनुंअवसरते थोडाजदिवसलगणले फरीपामवुं घ णुंडुर्लजले तेमाटेएअवसरें श्रीजिनोक्तधर्म करवाने उद्यमकर केमके एजिनोक्तधर्म विना ताहरे किवारेंपण जन्ममरणादिकना डुःखनो क्षयथवानुंनथी माटेजोडुःख नुं अंतकरवाने वांछतोहोयतो एअवसर पामिने धर्मकरवाने तत्परथा ॥ ७ ॥

गुणस्तुतिर्वांछसि निर्गुणोपि सुखप्रतिष्ठादि विनापि पुण्यं ॥ अष्टांगयोगं च विनापि सिद्धिर्वातूलता कापि न वा तवात्मन् ॥८॥

अर्थ ॥ हवेअयुक्तवांछकपणाथी जीवनुंबाहुलापणुंदेखाडेले हेआत्मातुंज्ञानदर्शन चारित्रादिकगुणेरहितथकोपण गुणस्तुतिजे पोतानीप्रशंसा लोकनामुखथी कीर्त्तिना वरणनने वांछेले तथापुण्यविनापण सुखने तथा प्रतिष्टाके० गौरवपणानेवांछेले व ली अष्टांगजेयोग यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधि एआठयोगविना पण सिद्धिअष्टकर्मक्षयलक्षण सिद्धनाआठगुण अथवा सिद्धिते अष्टमहासिद्धि लघिमा वशिता ईशिता प्राकाम्य महिमा अणिमा यत्नकामावसायि ता प्राप्ति तेप्रतेंतुंवांछेले माटेहेआत्मा एताहरो बाहुलापणुंते कोइअपूर्वनवुंजदेखा यले केमके कारणनी सामग्रीविनाज कार्य नीपजाववानी अजिलाषाकरेले ॥ ८ ॥

पदे पदे जीव पराजिजूतीः पश्यन् किमीर्ष्यस्यधमः परेज्यः ॥ अपुण्यमात्मानमवैषि किं न तनोषि किंवा न हि पुण्यमेव ॥९॥

अर्थ ॥ हवेबीजानाकरेला अपमानथी जीवईर्षाकरेले तेआश्रीउपदेशकरेले हे जीवतुं पुण्यरहितपणाथी अधमके० नीचअवस्थापाम्योथकोपण पगेंपगें बीजानी करेली जे अजिजूतिके० अपमान आक्रोशादिकते देखीने परेज्यःके० तेलोकउपरें सुं ईर्षाके० क्रोधकरेले पणपोताना आत्मानेज पुण्यहीन केमजाणतोनथी जेपुण्य

हितहोय तेहनेतो पगेंपगें पराजवथाय तेमांसुं महोटीवातछे एमकांविचारतोनथी अ थवानिश्चेंथी पुण्यजकेमकरतोनथी केजेथकी कोइपराजवनथाय ॥ ९ ॥

किमर्दयन्निर्दयमंगिनो लघून् विचेष्टसे कर्मसु हि प्रमोदतः ॥
यदेकशोप्यन्यकृतार्दनः सहत्यनंतशोप्यंग्ययमर्दनं जवे ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेआत्माप्रतें परनेपीडानुं फलकहेछे हेआत्मातुं निर्दयपणेकरी ताहरा थकी लघुके० निर्बल एहवाजे अंगीके० प्राणी तेहनेपीडतोथको तुं प्रमोदतःके० हर्षेकरी पापकर्मविषें सुंप्रवर्त्तेछे केमके एकवारपण जेप्राणियें अन्यजीवने पीडाउ पजावीहोय तेप्राणीअनंतिवार संसारमांपीडासहे यडुक्तं तिव्वयरेउपउसे सयगुणि उसयसहस्सकोडिगुणा ॥ कोडाकोडिगुणोवाहुज्ज विवागो बहुतरो वा इति ॥१०॥

यथा सर्पमुखस्थोपि जेको जंतूनि जक्षयेत् ॥
तथा मृत्युमुखस्थोपि किमात्मन्नार्दसेऽगिनः ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ हवेतेउपर दृष्टांतकहेछे जेम जेकजे मेडको तेसर्पनामुखमां रह्यो अर्द्धग्रसित थको पण जंतुजेन्हाना कुइजीवतेप्रतेंखाय तेम हेआत्मा तुंपणमृत्युना मुखमां र ह्योथको पण अन्यप्राणीओने सुंपीडाआपेछे ॥ ११ ॥

आत्मानमल्पैरिह वंचयित्वा प्रकल्पितैर्वा तनुचित्तसौख्यैः ॥
जवाधमे किं जन सागराणि सोढासि ही नारकडुःखराशीन् ॥ १२॥

अर्थ ॥ हवेइहजवें हिंसाजनित अल्पमात्रसुखथी परजवें अनंताडुःख सहेवा पडशे तेकहेछे हेजन हेसंसारीप्राणी प्रकल्पितके० तेंताहरी कल्पनामात्रथी डुःख नेज सुखकरीमान्या तेपणवली अल्प तुब क्षण स्थायी एहवाजे मनवचनकाया संबंधीसुख तेणेकरी इहजवें तुंठगायेोबतो हाहाइतिखेदे जवजे चारगतिरूपसंसार तेमां अधमजे नरकतेहनेविषें घणाक सागरोपमसुधी नारकीनाजेडुःखसमूह तेसहे वाने सुंतत्परथायछे ए विषय सुखते डुःखजछे पणकल्पनामात्रथी एनेजीवसुख करीमानेछे ॥१२॥ यदाह जर्तृहरिः ॥ तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वाडु सुरजि क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति मांसाज्यकवलान् ॥ प्रदीप्ते रागाग्नौ सुदृढतरमा श्लिष्यति वधूं प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥ १ ॥

उरभ्रकाकिण्युदबिंदुकाम्र वणिक्त्रयीशाकटजिक्षुकाद्यैः ॥
निदर्शनैर्हारितमर्त्यजन्मा डुःखी प्रमादैर्बहु शोचितासि ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजअर्थ उत्तराध्ययनसूत्रना दृष्टांतेकरी दृढकरेछे हेआत्मातुं प्रमादजे मद्यादिकपांच तेनावशथकी मनुष्यअवतारहारीने पछेपरजवेंदुःखीथोथको उरच्रजेबोकडो कागिणी उदकबिंदु आम्रवातकीराजा वणिकत्रयीजे त्रणव्यापारी शाकटजे गाम्रावाहक निक्षुकजेरांक इत्यादिकोनादृष्टांतेतुंपण घणुंशोचनाकरीस॥१३

इहांसंक्षेपथी उरच्रादिकना दृष्टांतलिखेछे तेमांप्रथम उरच्रनुंदृष्टांतकहेछे जेम कोइगाममां कोइकनाघरमध्ये एकबोकडोहतो तेकोइक प्राहुणोआवसें तेवारें ए हनुंमांस काममांआवशे एमचिंतवीने तेघरनामाणसो तेबोकडाने अन्नादिकेंपोषेछे अनुक्रमेंते बोकडो घणुपुष्टशरीरोथयो हवेतेहनेतेहवोदेखीने एकवाछडो मनमांखेद पाम्योथको क्रोधधरीने दोहतांशेषरह्युंजे पोतानीमातानुंदुध तेहनेधावेनही तेवारें मातायें क्रोधनुंकारणपुछेथके कहेवालागो हेमाताजूओने आबोकडो यथेष्ट अन्नादिकखायछे तेथीकहेवो पुष्टथइरह्योछे एहनेपुत्रनीपरेंपालेछे नानाप्रकारना अलंकारपहेरावेछे अनेमुजनेतो पोतानीमातानुंदुध तेपणकोइ पीवादेतोनथी तथासुकातृणतेपण वखतउपर पूरामलतानथी एहवुंसांजली मातायेंकह्युं आउरचिणाइं पया जाइंचरसिनंदिउं॥सुक्कतिणेहलांठेहि एयं दीहाउलरखणं॥१॥हेवत्स जेमरोगीउं मरवापड्योहोय तेहनेजेकांइ खावामांगे तेआपे तथाफुलनीमाला प्रमुखपहेरावे तेम एबोकडानेपण वध्यमंडननीपरें शृंगारादिककरेछे पोषेछे पणकोइप्राहुणाआवसे तेवारेपरीक्षाजणासे तेसांजली वत्सछानोरह्यो पछेकोइकदिवशें तेहनेघरेंप्राहुणाआव्या तेवारेंतेबोकडानेबांधी उंचूकरी घणुतडफडतो जीजकाढतो दीनस्वरे आरडतो मृत्युपमाड्यो तेहनामांसने खंडोखंडकरी पचावीने प्राहुणासहितसकुटुंबें घरधणियें जक्षणकीधुं तेवृत्तांतदेखीने वाछडो जयपाम्योथको चुख्योतरस्योथकोपण मातानुंदुधपीये नही तेवारेंमातायें पुछेथके वत्सबोल्यो हेमातामें बोकडानीएहवी जूंडीअवस्थादीठी तेथीमुजने धाववानीपण वांछाथातिनथी एमइहांपणउपनय जोडवो जेमतेबोकडोजीवतव्यनीवांछायें निर्जयपणे यथेष्टपुष्टथातुंथको प्राहुणाआवे मृत्युपाम्यो तेमहेआत्मातुंपण प्रमादेपुष्टथको यथाइछायेंविचरेछे पणमृत्युआवेथके मनुष्य जन्महारीनरकादिकना दुःखपामि घणुशोचपामीस.

हवेबीजुंकांगणीनुंदृष्टांतकहेछे जेमकोइकरांक परदेशेजइ मजूरीकरीने एकहजार सोनैया कमायो पछेपोतानादेश तरफचाल्यो तेवारेरस्तामांखरचीसारुं एकरुपकवटावी तेहनी (८०) कागणीसाथेराखी बीजासर्वद्रव्यनी वांसलीभरी सीवीनेराखी एक दिवसें किहांकमार्गेमां विश्रामस्थानकें एककांगणीवीसरी ते सथवारासाथें आगलें

आलांभांजरी तेवारेंराकेविचाखुंजे एककांगणीनीखोटे रखेनेबीजुंरूपक वटाववुंपडे इमचिंतवी सथवारोमूकी इव्यनीवांसली किहांकगोपवीने तेकांगणीलेवा पाछोव ल्यो आवीनेजूएछेतो कांगणीकोइकलइगयुं अनेपाछोफरीनेजूएतो वांसलीपण को इकलेइगयुं पछेनिराशथयी अतोभ्रष्ट ततोभ्रष्टथको घणुशोच करवालागो जेमतेरां के एककांगणीनालोभथी हजारसोनैयानीवांसली अनेतेकांगणी बेन्हे खोइने घ णाशोचनुंभाजनथयो तेमआत्मापणपूर्वे अप्राप्तकामभोगथको बहुमूलचारित्रपा मिने वलतुंकांगणीतुल्य कामभोगनीलालचयें चारित्रत्यजीने कामभोगगवेषतोथको कामभोगपणनपामें अनेचारित्रपणनपामे एमउभयभ्रष्टथयोथको तेरांकनीपरें घ णुशोचपांमे इहां कांगणी ते एक मासानुं चोथोभाग अथवावीसकोमी अथवा एकरूपेयानुं (८०) मुंभागजाणवो.

हवेत्रीजुं उदकाबिंदुनुंदृष्टांतकहेछे कोइकवनमां कोइतृषातुरने कोइकदेवतायें क रुणाकरीने क्षीरसमुद्रनेकांठेजइमुक्यो तेमूर्खतिहांपाणीपीधुंनही अनेदेवतानेकह्युजे हेस्वामि महारागामनीसीममांकुउछे तेहनेउपकांठे भाजनेअग्रेंलंबमान एकजलबिं दुछे तेखरीपडशे माटेमुजनेतिहांमूकोतो बिंदुओपीउं तेसांभली तेहनेमूर्खनिर्भाग्य जाणी देवतायेंतिहांमूक्यो देवतापोताने स्थानकेंगयो पछेतेबिंदुओपण खरीपडयो तेदेखीतेमूर्ख उभयभ्रष्टथयो थको शोचकरवालागो तेमइहांतृषातुरतेजीवक्षीरसमु द्रतेचारित्र देवतातेसद्गुरु जलबिंदुआरूप कामभोगनासुख एम उपनयजाणवुं.

हवेचोथुंआम्रदृष्टांतकहेछे कोइकराजाने आंबानाफलघणुंज वल्लभहता एकदिव सें घणाआम्रफलनाखावाथकी अजीर्णविशुचिकाथयो पछेवैद्येअनेक औषधेंकरी.घ णीकष्टेनिरोगीकीधो वलतुंवैद्येकह्युं हवेजोआम्रफलखासोतो मरणपामसो एमकही सर्वथावार्यो राजायेंपणपोतानादेशमांथी आंबानासर्वेवनछेदावीनाख्या हवेकोइक दिवसेराजा आहेडेनिकल्यो तिहांदुष्टअश्वें अपहर्यां एहवाप्रधान अनेराजाबेहुजण घणुदूरपंथें किहांकअटवीमांजइपड्या सैन्यसर्वपाछलरह्युं राजाप्रधान बन्नेजण अ श्वथीउतरी आंबानीछायायेंबेठा तेआंबानीचेफलपड्यादेखी राजानेघणादिवसें अ भिलाषथयो प्रधानेघणुवार्यो तोपणतेफलखांधु एटलेतत्काल मृत्युअवस्थातुल्यथ योथको घणुशोचवालागो जेमतेराजा आम्रनास्वादेंलुब्ध्योथको प्रधानेवार्योथकोप ण ते फलखाइ राजा जीव्यत्वनी आशातजीने मरतांमहाशोकपाम्यो तेमइहांपण विषयलुब्धकजीव विषयने परवशथको जिनाज्ञाअणमानतो कामभोगासक्तथयी संयम अने मनुष्यजन्म बेहुहारीने पछे पश्चात्ताप करशे.

हवेपांचमुंवणिकनुं दृष्टांतकहेछे एकवणिकनेत्रणपुत्रहता तेत्रणेनेहजार हजार सौनैया धापणआपीनेकह्युंजे एटलाद्रव्येंतमेव्यापारकरीने अवधिउपरेंआववुं हवे तेत्रणेजण नीमे नीमे मूललेइने जूदेजूदेनगरेंचाल्या तेमांपहेलोजाइसर्वव्यसनरहित अल्पव्ययकरतो थको व्यापारकरवालागोतेमां घणोकमाणुं अनेबीजो हजारसौनै याकायमराखीने लाजआवेतेवावरे एरीतेंते मूलद्रव्यनेराखीरह्युं अनेत्रीजेव्यापारकी धुंनही अनेवेश्यादिकनाव्यसनमां सर्वमूलद्रव्यवावरीनाख्युं अनुक्रमेंतेत्रणेजण पो तानाघरेंआव्या तेहोनुंव्यतिकरजाणीने त्रीजापुत्रनें मूलनीमेंपणनराख्योमाटे पि तायें घरथीबारकाढीमूक्यो लोकमांनिंदनिकथयो दासपणुंपाम्यो जेमतेत्रीजोपुत्र नीमेंमूलनेहारीने निंदाअवस्थापाम्यो तेमआत्माविषयलुब्धथको पूर्वजन्मपुण्यरूप मूल नीमेंहारीने जन्मांतरेंदुर्गतिना दुःखपाम्योथको घणुंशोचपामेछे.

हवेछठो शाकटनुं दृष्टांतकहेछे जेमकोइक गामानुवाहक सम विषम मार्गजाणतो थको पण विषममार्गे गाडानेलेइगयो पछेधुसरूनांगेथके शोचकरवामांड्युं तेमइ हांपण जीवपुण्यपापादिक मार्गनेजाणतोथको पण प्रमादना परवशपणाथकी कु मार्गे चालतो कुगतीमांपडमे तेवारेंशोच पामसे.

हवेसातमुं भिक्षुकनुं दृष्टांतकहेछे कोइकगामडीआनो रहेवासी पुरुषदालिद्रेंपरा नव्योथको देशांतरेंजइ भिक्षामांगे पणपुण्यरहितपणाथकी भिक्षानपाम्यो तेवारे फरीपोतानां घरतरफचालवानिकल्यो मार्गमांकोइकगामे पाण पाटकपाशे एकदेवलछे तेमां रात्रेजइसुतो तेदेवलमांथी एकसिद्धचित्रेलुंकामकुंभहाथमांलेइ निकल्यो पछेएक बाजुयेंजईरही घडानेकहेवालागो हेकुंभइहांमंदिरकर एटलेतिहां मंदिरथयुं एम तिहांशय्यादिक भोगसामग्रीसर्वकीधी पछेस्त्रीसहित रात्रेभोगभोगवी प्रभातेंसर्व सं हर्युं तेदेखीने भिक्षुकेचिंतव्युं जेआजलगणहुं फोकट पृथ्वीमांभम्यो हवेजोहुंएसि द्धनेसेवुंतो माहरीसर्वआशाफले एमचिंतवीते पाणनीसेवाकरी एकदिवशेते पाणप्र सन्नथइबोल्यो जेतुंसुंमागेछे तेवारेभिक्षुंबोल्युं जेताहरापशायथीहुंपण एहवोभोगपामुं पाणेकह्युंतुजने गमेतो एकुंभलेइजा अनेगमेतो एकुंभप्रतिष्ठानी विद्यालेइजा ते वारे भिक्षुकबोल्यो जेहेस्वामीविद्यातो कष्टकरीसाधुं तेवारेंफले तेमाटेविद्यासिद्धकुं भछे तेहिजमने आपो तोकष्टकिधाविनाज भोगसिद्धिपामु पछेतेपाणेघडोआप्यो ह वेतेगामडीओघटलेइने घरेंआव्यो घटनेप्रतापें उज्वलघरनीपजावी विविधभोगसामग्री मेलवी पोतानासर्वकुटुंबसहित मनोवांछित विलास भोगववालागो पोताना सज्ज नादिकने खेतीप्रमुख आजीविकाना उपाय सर्वमूकाव्या ढोरप्रमुखचतुष्पद सर्वछो

शोभूक्या एकदिवशे ते ग्रामीणमद्यपाने शकटोयऽने मनमांहर्षधरतो नेविद्याकुंभ खांजाउपरलेऽने नाचवालागो मद्यपानना परवशपणाथकी घटपडीने जांगीगयो तेथी विद्यायें करेलुं वैजव सर्वमटीगयो पछेग्रामीणकुटुंबसहित आजीविकायें दुःखीथयोथको शोचकरवालागोके हाहाऽतिखेदे जोमेघटसिद्धिनी विद्यालीधीहती तोसुखीथात एरीते जेमतेग्रामिकनिक्षु परिभ्रटनकरतां दैववशात् कामकुंजपामिने वलीमद्यपाननी परवशताथकी कुंजजागीनाखीने विद्यानुशोचपाम्यु तेमएजीवपण दुर्लज जिनधर्म पामिने प्रमादपरवशताथी धर्मेहारीने कुगतीयेंगयोथको धर्मसा मग्रीविना शोचपामे एसातदृष्टांतना संबंधजाणवा तेमांपहेलापांचदृष्टांततो श्रीउ त्तराध्ययनना सातमां अध्ययनथी तथाछठोदृष्टांत पांचमांअध्ययनथी अने सा तमोदृष्टांत छठाअध्ययनथी जरव्युंछे श्लोकमां आद्यशब्दकह्योछे तेथीबीजापण द रिद्रिकुटुंबादिक एह्वादृष्टांत घणाछे तेग्रंथांतरथी जाणवा.

पतंगभृंगेणखगाहिमीनद्विपद्विपारिप्रमुखाः प्रमादैः ॥ शोच्या
यथा स्युर्मृतिबंधदुःखैश्चिरायभावी त्वमपीति जंतो ॥ १४ ॥

अर्थ॥हवेवली ग्रंथकार प्रमादीजीवने दृष्टांतेकरी जावीदुःखदेखाडेछे हेआत्मा जेम पतंगीयो तथा जमरो मृग तथा खगके० पारेवाप्रमुखपक्षी तथासर्पअने माछलो तथा हस्तिव्याघ्रइत्यादिक सर्वजीवते प्रमादजे शब्दादिकविषय तेह्नावशथकी मरणसंबं धीदुःखेकरीने शोचनीयथायछे तेमांपतंगते नेत्रनाविषयथी दीपशिखायेंमोह्योथको मृत्युपामेछे अने जमरोघ्राणेंद्रियनाविषयथकी कमलमध्येमुझाइमरेछे मृगशब्दविष यथी नादनुमोह्यो पाराधीथकी मरणपामेछे पक्षीशालप्रमुखकणनेलोजें रसनेंद्रियना वशथकी जालमांपडेछे सर्पकाननाविषयथी मद्दुअरनानादनोमोह्यो बंधनपामेछे अने मत्स्य बडिशनामांसनीलालचें रसनेंद्रियना वशथीमरेछे हस्तिहस्तणीनामोहथी स्प र्शनेंद्रियनावशे बंधनमरणादिपामेछे व्याघ्रपिंजरामांरहेला बोकडानामांसनीला लचें रसनेंद्रियनावशेमृत्यु बंधनादिकपामेछे इत्यादिकबीजापण चित्राप्रमुखना दृ ष्टांतजाणवा तेमाटेहेआत्मा तुंपणतेपतंगादिकनीपरें प्रमादनावशथकी चिरकालल गें शोचनीय थाइस. ॥ १४ ॥

पुरापि पापैः पतितोसि दुःखराशौ पुनर्मूढ करोषि तानि ॥ मज्ज
न्महापंकिलवारिपूरे शिला निजे मूर्ध्नि गले च धत्से ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रमादनुं पापरूपपणुंदेखाडी तेह्नोपरिहारकरेछे हेमूर्खतुंपूर्वेपण पा

पेकरीनेजदुःखसमूहमांपडयोछे अनेफरीपण तेहिजपापनेकरेछे तेथीतुंधणाकविकल वितव्यजनापूरमां बुडतोथको पोतानामस्तकनेविषे अने गलानेविषे शिलाधरेछे॥१५

पुनःपुनर्जीव तवोपदिश्यते बिभेषि दुःखात् सुखमीहसे चेत् ॥
कुरुष्व तत्किंचन येन वांछितं भवेत्तवास्तेऽवसरोयमेव यत् ॥१६॥

अर्थ ॥ हवेजीवने प्रमादपरिहारनुएहिजअवसरछे तेकहेछे हेजीवतुजने फरीफ रीने उपदेशकहुंछुं केजोतुंदुःखथीबीहेछे अनेसुखनेवांछेछे तोतुं एवुंकांइक सुकृत करके जेथकीताहरुं वांछेलुंसुख तुजनेमिळे अनेतेसुकृतकरवानो अवसर एहिजछे इ हांफरीनेउपदेशदीधो माटेपुनरुक्तदोषनही यदुक्तं सज्झायझाणतवउ सहेसुउवएस थुईपयाणेसु ॥ संतगुणकित्तणेसु न हुंति पुणरुत्तदोसाउ ॥ १६ ॥

धनांगसौख्यस्वजनानसूनपि त्यज त्यजैकं न च धर्ममार्हतं ॥
भवंति धर्माद्धि भवे भवे र्थिता न्यमून्यमीभिः पुनरेप दुर्लभः ॥१७॥

अर्थ॥हवेधर्मनीदुर्लभतादेखाडीने धर्मावसरनेज दृढकरेछे हेजीवतुं धनतथाशरीर अनेसुख तथास्वजनकुटुंब तथाप्राणजे जीवितव्यपणुं तेसर्वनोत्यागकर पणएकश्रीस र्वज्ञप्रणीतजे धर्म तेहनेकोइवारेंपण त्यजीशनही केमकेएधनादिक सर्ववस्तुतेधर्मथकी जतुजनेभवभवनेविषे वांछितमळशे पणधनादिकेकरी जिनोक्तधर्ममळवुं दुर्लभछे १७

दुःखं यथा बहुविधं सहसेप्यऽकामः कामं तथा सहसि चेत्करुणादिभावैः॥
अल्पीयसापि तव तेन भवांतरस्या दात्यंतिकी सकलदुःखनिवृत्तिरेव १८

अर्थ॥हवेआत्माने अकामदुःखनासहेवाने बदले सकामदुःखसहेवुंते भलुंएमकहे छे हेआत्मातुंजेम अकामके० इच्छारहित परवशथको बहुविध क्षुध तृषा वध बंधनादि कदुःखप्रतेसहेछे तेमज जोकरुणादिक जेमैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ एपरिणामेकरी ने सकामके० निर्जरानीबुद्धियें तुंदुःखसहनकरे तो तेवाथोडापणदुःखने सहवेकरीने भवांतरनेविषे आत्यंतिकीके० पुनःप्रादुर्भावेंरहित एहवी समस्तदुःखनी निवृत्तिते नि श्चयथाय एटले मोक्षपद पामे ॥ १८ ॥

प्रगल्भसे कर्मसु पापकेष्वरे यदाशया शर्म न तद्विनानितं ॥
विभावयंस्तच्च विनश्वरं कृतं बिभेषि किं दुर्गतिदुःखतो न हि॥१९॥

अर्थ ॥ हवेधर्मत्यजीने आत्मापापकर्ममां निपुणताकरेछे तेआश्रीकहेछे अरेमू र्खजीवतुं सुखनीआस्थायेंकरी पापनाउत्पादकजेकर्म तेहनेविषे प्रगल्भसेके० माहा पणकरेछे पण ते धनस्वजनादिकनासुख तो प्राणितके० जीवतव्यविना भोगवायनही

अने तादृशो जीवतव्यतो शीघ्रके० उतावलुं विनाशशीलछे एवीरीतेजाणतोथकोपण तुं कुर्गतीनाडुःखथी केमबीहितोनथी ॥ १९ ॥

कर्माणि रे जीव करोषि तानि यैस्ते भविच्यो विपदो ह्यनंताः ॥
ताभ्यो भिया तद्दधसे ऽधुना किं संभाविताभ्योपि भृशाकुलत्वं॥२०॥

अर्थ॥वलीप्रकारांतरेतेहिजकहेछे हेजीवजोतुं तेहवाज हिंसा मृषावादादिककर्म करेछे जेकर्मेंकरीतुजने अनंतिआपदाओथाशे तेवारेंहमणाजते आपदाओसंभारेथके पण अतिशेंभयेंकरीने आकुलताकेमपामेछे जोपापनाफलजाणतोथकोपण तुंपापक र्मकरवानेप्रवर्त्तेछे तेवारेंवली नरकादिकनाडुःखसांभलीनेसावास्ते भयपामेछे निश्चेंतु जनेतेडुःखभोगवाजपडशे एमांसंशयसुंछे एभावार्थछे ॥ २० ॥

ये पालिता वृद्धिमिताः सहैव स्निग्धा भृशास्नेहपदं च ये ते ॥
यमेन तानप्यदयं गृहीतान् ज्ञात्वापि किं न त्वरसे हिताय॥२१॥

अर्थ ॥ वलीजीवने हीतार्थनेविषेप्रेरेछे हेजीवजेस्वजन मित्रादिक तथापुत्रादिक तेपाल्यापोष्या तथाजे तुजसाथेंवृद्धिपाम्या महोटाथया वलीतेतादृश अतिशयस्नेह पात्रथया तेहुनेपण यमराजायें निर्दयपणेग्रस्या तेजाणीनेपणतुं आत्महितकरवानेके मउजमालथतुंनथी केमके तेहुनेजो यमेंग्रस्यतो तुंशीरीतेस्थिररहिस एभावार्थ ॥२१॥

यैः क्लिश्यसे त्वं धनबंध्वपत्य यशःप्रभुत्वादिभिराशयस्थैः ॥
कियानिह प्रेत्य च तैर्गुणस्ते साध्यः किमायुश्च विचारयैवं ॥२२॥

अर्थ ॥ हवेजेतुक्लेशसहेछे तेहथीतुजने काइगुणनथी तेकहेछे हेआत्मन्तुं आ शयस्थके० केवलकल्पितमात्र एहवाजेधन बंधु स्वजन अपत्यके० संतान तथा य श कीर्ति अने प्रभुत्व स्वामिपणुं इत्यादिकनिमित्तेंकरी क्लिश्यसेके० कष्टभोगवेछे ते धनस्वजनादिकेंरी तुजनेइहभवें तथा परभवें केटलुंक गुणसाधवुंछेएटले ते तुजने सुंगुणकरसे अनेआऊखोते केटलुंकछे एमविचारी धनादिकनुं ममत्व करतां करतांज आयुष पुरोथइजासे अने भवांतरेंकोइपण तादृशेकामेंआवसेनही ॥ २२ ॥

किमु मुह्यसि गत्वरैः पृथक् कृपणैर्बंधुवपुःपरिग्रहैः॥ विमृश
स्व हितोपयोगिनो ऽवसरेऽस्मिन् परलोकपांथ रे ॥ २३ ॥

अर्थ॥ हेपरलोकेंजनार पंथीजीव तुं कृपण दीन सरणदेवाने असमर्थ एहवा अ ने पृथगत्वरके० जूदाजूदावेराइजासे एहवाजे बंधु स्वजन तथा वपुजेशरीर तथा ध नधान्यादिक परिग्रह तेणेकरी सुंमुंजायछे एकोइपण तादृशसाथें आवेनही एभावा

थैछे माटेएधर्मकरवायोग अवसरनेविषे पोतानाहितोपयोगी परलोकना सहायभूत एहवाजे ज्ञानादिकगुण तेहोने चित्तमांराख ॥ २३ ॥

सुखमास्से सुखं शेषे भुंक्षे पिबसि खेलसि ॥ न
जाने त्वग्रतः पुण्यैर्विना ते किं भविष्यति ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ हवे हमणातुंसुखेविलशेछे पण आगलताहरी सीगतिथासे तेकहेछे हेआ त्मातुं हमणापूर्वोपार्जित पुण्यफलना उपायथी सुंसुखेबेशीरहेछे तथासुखेभोजनक रेछे सुखेंमद्यादिकपानकरेछे सुखेंद्यूतादिकेंरमेछे पणआगल परभवें तुजनेपुण्यविना सुंथवानुछे तेसुंनथीजाणतो एटलेपुण्यविना घणुजदुखीथइस ॥ २४ ॥

शीतात्तापान्मक्षिकाकत्तृणादि स्पर्शाद्युत्थात्कष्टतोल्पाद्बिभेषि ॥ ता
स्ताश्चैभिः कर्मभिः स्वीकरोषि श्वभ्रादीनां वेदना धिग् धियं ते॥२५॥

अर्थ ॥ हवेथोडाकष्टथी बीहतोथको घणुकष्टअंगीकारकरेछे तेकहेछे हेआत्मातुं टाढथी तापथी तथामांखीप्रमुख तृण भालप्रमुखना स्पर्शादिकथी उपनुंजे अल्प मात्रकष्ट तेथीबीहेछे कायरथायछे अनेएवापापकर्मेंकरीने श्वभ्रके० नरकादिकना प्र कारनीजे महावेदनाओ तेप्रतेअंगीकारकरेछे तोताहरीबुद्धिने धिःकारछे ॥२५॥

क्वचित्कषायैः क्वचन प्रमादैः कदाग्रहैः क्वापि च मत्सराद्यैः ॥ आ
त्मानमात्मन् कलुषीकरोषि बिभेषि धिङ् नो नरकादधर्मा ॥२६॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे हेआत्मातुं किहांक परीषहादिकमां कषायेंकरीने वली किहांक क्रियानुष्टानादिकनेविषे प्रमादेकरीने वलीकिहांक उपदेशादिकमां कदाग्रहेंक रीने किहांकगुणवंतनी अनुमोदनानेविषे मत्सरादिकेंकरीने पोतानीआत्माने मलीन करेछे पणतुंधर्मेरहितथको नरकथीबीहितोनथी माटेतुजने धिःकारछे ॥ २६ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे सामान्यतो वेराग्योपदेशाख्यो दशमोधिकार समाप्त.

अथधर्मशुध्युपदेशः ॥ भवेभवापायविनाशनाय तमज्ञधर्मं कलुषीकरोषि किं ॥ प्रमा दमानोपधिमत्सरादिभिर्न मिश्रितं ह्यौषधमामयापहं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेधर्मशुद्धिउपदेशनामें इग्यारमो अधिकारकहेछे तिहांप्रथम धर्मनीशु द्धताज थापेछे जेधर्मते भवके० संसारसंबंधी अपायजे जन्ममरणादिक तेहनो वि नाशकरवाने समर्थथाय एहवाधर्मने हेमूर्खआत्मा प्रमादजे मद्यादिक तथामान अहंकार उपधि कपट तथामत्सर इत्यादिकेंकरीने सुं मलीनकरेछे हवेतेउपर दृष्टां तकहेछे हियस्मात्के० मिश्रितऔषध आमयापहंनस्यात् एटले विरुद्धद्रव्येंमिश्रित

जे औषध तेकांइरोगनिवारकनहोय अनेतेमजतेऔषधनीपरें धर्मपणजोप्रमादादि के मिश्रितहोयतो संसारना अपायजे दुःखतेनो निवारकनहोय ॥ १ ॥

यतः ॥ शैथिल्यमात्सर्यकदाग्रहक्रुधोनुतापदंभाविधिगौरवाणि च ॥
प्रमादमानौ कुगुरुः कुसंगतिः श्लाघार्थिता वा सुकृते मला इमे ॥२॥

अर्थ ॥ हवेधर्मनेविषे मलसरिखाजेटलादोषछे तेटलापूर्वाचार्यना वचनथीदेखाडे छे सुकृतजेधर्मकार्यतेमां शैथिल्यके० धर्मनेविषे अनादरता मात्सर्यके० गुणवंतनेविषे द्वेषनुंधरवुं तथाकदाग्रहके० जूठावचननुंहठ क्रुधके० क्रोध वली अनुतापके० सुकृतकरीनेपछे हाइतिखेदेमें फोकटदानदीधुं फोकटतपस्याकीधी इत्यादिकपश्चात्तापनुं करवुं तथादंभके० कपट अने अविधिके० शास्त्रोक्तविधियें रहित क्रियानुंकरवुं तथागौरवके० हुंमहाधर्मिष्ट इत्यादिक महोटाइनुंचिंतववुं वलीप्रमादजे धर्ममां असावधानपणुं अने मानजेअहंकार वलीकुगुरुजे लोहशिलातुल्य अने कुसंगतिजे कत्सूत्रभाषी एहवामिथ्यात्वी प्रमुखनोसंग तथा श्लाघार्थिताके० लोकनामुखथी पोतानी कीर्तिनुंवांछवुं एटलाप्रकारेंकरी धर्ममलीनथाय धर्मनुंयथोक्तफलनथाय ॥ २ ॥

यथा तवेष्टा स्वगुणप्रशंसा तथा परेषामिति मत्सरोज्झी ॥
तेषामिमां संतनु यल्लभेथास्तां नेष्टदानादिविनेष्टलाभः ॥३॥

अर्थ ॥ हवेआत्मापोतानागुणनी प्रशंसावांछेछे तेआश्रीउपदेशछे हेआत्माजेम तुजने पोतानागुणनी प्रशंसावल्लभछे तेमपरजे अन्यजन तेहनेपणपोताना गुणनीप्रशंसावल्लभछे एहवुंजाणीने मत्सररहितथको तेअन्यजननी इमांके० गुणनीप्रशंसाप्रतें विस्तारीनेकहे जेमतुंपणतेप्रशंसाप्रतेंपामें केमके कोइने वांछितदानदीधाविनापोताने पण वांछितलाभनथाय एटलेपारकागुणनी प्रशंसाकरीयेंतो पोतेंपण प्रशंसनीयथैयें

जनेषु गृह्णत्सु गुणान् प्रमोदसे ततो भवित्री गुणरिक्तता तव॥गृह्णत्सु दोषान् परितप्यसे चरे भवंतु दोषास्त्वयि सुस्थिरास्ततः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेकेटलाक काव्यनेविषे गुणप्रशंसानीवांछाथकी अवगुणदेखाडेछे हे आत्माजोतादृशगुण लोकेंग्रहणकस्याथकां तुंहर्षपामेछे तोतेहर्षपामवाथी तादृशे गुणनी रिक्तताथासे अनेजोलोकें अवगुणबोलतेछते तुं परितापके० खेदपामेछे तो तेखेदपामवाथी तादृशविषे अवगुणते निश्चलथइरहेसे तेमाटे गुणकह्याथी हर्ष अने दोषकह्याथी खेद एबेदुवाना तुंकरीसनही ॥ ४ ॥

प्रमोदसे स्वस्य यथाऽन्यनिर्मितै स्तवैस्तथा चेत्प्रतिपंथिनामपि ॥
विगर्हणैः स्वस्य यथोपतप्यसे तथा रिपूणामपि चेत्ततोसि वित्॥५॥

अर्थ ॥ हेआतमातुं जेमलोकनामुखें पोतानागुण स्तवसांजलीने प्रमोदपामेछे तेम शत्रुनापण गुणस्तवसांजलीने जोप्रमोदपामें अने पोताने विगर्हणैः के० अवर्णवादें करीने जेमपरीतापकरेछे तेमजजो शत्रुनापण अवर्णवाद सांजलीने तुंपरीताप करे तेवारें एम जाणियेंजे तुंज्ञाताछो ॥ ५ ॥

अथवा ॥ स्तवैर्यथा स्वस्य विगर्हणैश्च प्रमोदतापौ भजसे तथा चेत् ॥
इमौ परेषामपि तैश्चतुर्ष्वप्युदासतो वासि ततोऽर्थवेदी ॥६॥ इतिवापाठः

अर्थ ॥ वली पाठांतरेकरी एहिजअर्थकहेछे हेआत्मातुंजेम पोतानीस्तुतियेंकरीने तथापोतानेविगर्हणेंकरीने प्रमोदतापौंके० हर्षअनेशोकप्रतेभजेछे तेमज पोतानी स्तवना तथा निंदा अने परनीस्तवना तथा परनीनिंदा एचारेनेविषेजो उदास ताके० मध्यस्थभावनेभजे तेवारेंतुं अर्थवेदीके० परमार्थनुंजाणछो एमजाणियें एकाव्य पहेलाकाव्यनुं पाठांतरजाणवुं ॥ ६ ॥

भवेन्न कोपि स्तुतिमात्रतो गुणी ख्यात्या न बह्व्यापि हितं परत्र च ॥
तदिछुरीर्ष्यादिभिरायतिं ततो मुग्धाभिमानग्रहिलो निहंसि किं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेआत्माकेवल एकलीस्तुतिमात्रथीज कोइगुणवंतनथाय अनेवली जगतमां ख्यातिकीर्तिजोघणीहोय तोपण तेथी कांइपरभवनुं हितनथाय तेमाटेपरलोकें हितनुंवांछक एहवुंजेतुंते मुधाके० फोकट अभिमानेकरी घहेलोथयो थको ईर्षादिकेंकरीने आयतिजे उत्तरकाल तेहने सावास्ते बगाडेछे एटलेईर्षा करवाथी ताहरो परभवनुंहित विणसीजायछे इतिभाव ॥ ७ ॥

सृजंति के के न बहिर्मुखा जनाः प्रमादमात्सर्यकुबोधविप्लुताः ॥
दानादिधर्माणि मलीमसान्यमू न्युपेक्ष्यशुद्धं सुकृतं चराण्वपि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेदानादिककर्मने जे मलीनकरेछे तेहनेकहेछे हेआत्मा प्रमादजे मद्यादिक पांचप्रकारें तथामात्सर्य एटले पारकीसंपदानी अदेखाइ तथाकुबोधजे मिथ्यादर्शननुं दृष्टिराग तेणेकरी विप्लुतके० पराभव्या एहवा बहिरमुखजे स्वचित्तकल्पित मार्गनास्थापक कुतीर्थकलोकते मलीमसके० महाआरंभादिकें दूषित एहवादानप्रमुख ते धर्मकार्यमां कोणकोणनथीकरता अर्थात्मिथ्यात्वीलोकपण सर्वपो

तपोताना मननीरुचियें दानप्रमुख धर्मकार्यकरेछे पण तेप्रमादादिकें दूषितथका य थोकफलदायकनथाय तेमाटेतेमलीन धर्मकार्य छवेषीने थोरुंपण शुद्धधर्मकर ॥ ८॥

आच्छादितानि सुकृतानि यथा दधंते सौभाग्यमत्र न
तथा प्रकटीकृतानि ॥ व्रीडानताननसरोजसरोजनेत्रा
वक्षःस्थलानि कलितानि यथा दुकूलैः ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रशंसारहितधर्मनुं विशेषफलदेखाडेछे इहांश्रीजिनशासननेविषे आ छादितके० प्रशंसानेढाक्याथका एटलेजेप्राणी प्रशंसायेरहित थका एहवाजे सुकृत के० धर्मकार्य तेथीजेहवी सुनगतानेपामे तेहवी प्रकटितके० जेसुकृतकरीने लोक आगलें प्रशंसाकरावे ते सुनगतानेनपामे तेहनुंदृष्टांतकहेछे जेम व्रीडाजेलज्जा ते णेकरीने नतके० नम्रछे आननसरोजके० मुखकमलजेहनुं एहवीजे सरोजनेत्राके० कमलनयना एटले उत्तमस्त्री तेहना वक्षःस्थलजे स्तनमंडलते डुकूलजे वस्त्रतेणेकरी सहितथका जेहवी सुनगताप्रतें पामे तेहवा उघाडाथका सुनगताप्रतेंनपामे ॥९॥

स्तुतैः श्रुतैर्वाप्यपरैर्निरीक्षितै र्गुणास्तवात्मन् सुकृतैर्न कश्च न ॥
फलंति नैव प्रकटीकृतैर्जवो द्रुमा हि मूलैर्निपतंत्यपि लघ. ॥१०॥

अर्थ ॥ हेआत्मा तादृशसुकृतजे धर्मकार्य ते अन्यलोकें स्तुतके० वखाणेथके तथा अन्यलोकें सांजलेथके तथा अन्यलोकेंदेखेथके तेथीतुजने कोइगुणनथी तेउ परदृष्टांतकहेछे जेमजूमीमांहेंथी मूलप्रगटकरेछते डुमजेवृक्षतेफलेनहीपण उलटाहे गपडे तेम सुकृतपण उघाडाकर्याथका फलदायक न थाय ॥ १० ॥

तपःक्रियावश्यकदानपूजनैः शिवं न गंता गुणमत्सरी जनः ॥
अपथ्यजोजी न निरामयो जवेद्रसायनैरप्यतुलैर्यदातुरः ॥११॥

अर्थ ॥ हवेगुणवंतनुं मत्सरकरवुंनिषेधेछे गुणजेपारका तपसंयमदानादिक तेह नेविषे मत्सरनुंकरनार एहवोजे मनुष्यते तपतथाक्रिया जे आवश्यक दान तथापूजन जे जिनबिंब पुस्तकप्रमुखनीपूजा इत्यादिक सर्वप्रकारेंकरीपण मोक्षपामेनही तेउपर दृष्टांतकहेछे जेम आतुरजे रोगीपुरुषते अपथ्यजोजन करतोथको अनोपम महामूला एहवाजे रसायन पारदादिक औषध तेणेकरी रोगरहितनथाय इहां रोगीतेआ त्मा अने तपप्रमुखते रसायण अनेगुणवंतउपर मत्सरते अपथ्यजोजन तथा मुक्ति ते निरोगता जाणवी एउपनयकह्युं ॥ ११ ॥

मंत्रप्रनारत्नरसायनादि निदर्शनादल्पमपीहि शुद्धं ॥ दाना
र्चनावश्यकपौषधादि महाफलं पुण्यमितोन्यथाऽन्यत् ॥१२॥

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरे तेहिजकहेछे इहांश्रीजिनशासनमां दान देवपूजा आवश्य क पोसहप्रमुखजे पुंण्य तेथोडुंपण शुद्ध दोषरहितकीधोहोयतो मंत्रजे जांगुलीप्र मुख तथा रत्नजे सूर्यकांत चंद्रकांतादिक तथा रसायनजे पारादिक तेहनीपरें म हाफलकारीथाय जेममंत्रथोडाअक्षरनुंहोय तोपण विषप्रहारादिकनेहरी महागुणक रे तथासूर्यकांतादिक रत्नन्हानुंहोयतोपण महाप्रकाशकरे अने रसायणथोडुंपण म होटारोगहरे तेमदोषरहितपुण्यजो थोडुंहोयतोपण महाफलदायकथाय अनेतेहथी विपरीतजे अशुद्धपुण्यकार्य तेअन्यथाके० घणुंहोयतोपण अल्पफलदायकथाय॥१२॥

दीपो यथाल्पोपि तमांसि हंति लवोपि रोगान् हरते सुधायाः ॥
तृणं दहत्याशु कणोपि चाग्नेर्धर्मस्य लेशोप्यमलस्तथांहः ॥१३॥

अर्थ ॥ जेमदीपक अल्पके० न्हानोहोयतोपण अंधकारटालेछे वलीजेम अमृ तनो एकबिंदुमात्रतेपण सर्वरोगनेहरे वलीजेम अग्नीनुंएककणीयुंमात्रतेपण तृणा नेबालीनाखे तेमनिर्मलदोषरहित एहवोधर्मनुं लेशमात्रतेपण पापनेटाले ॥ १३ ॥

भावोपयोगशून्याः कुर्वन्नावश्यकीः क्रियाः सर्वाः ॥
देहक्लेशं लभसे फलमाप्स्यसि नैव पुनरासां ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ हवेसर्वक्रियानी सफलताते भावसहितकरवाथीजहोय तेकहेछे हेआ त्मातुं भावजे श्रद्धा तेहनाउपयोगेंकरी शून्यके० रहित एहवासर्वेए अवश्यकरवा योग्य जे पडिकमणुं पडिलेहणप्रमुखक्रिया तेप्रते करतोथको पणतेथीकेवल शरीरने क्लेशमात्रउपजाववुं तेहिजफलपामेछे पणतेक्रियानुं मुख्यफलजे मोक्षलक्षण तेसर्वे थानहीजपामे केमके भावथकी शून्यक्रियाजो घणीकरीतोपण निःफलथाय ॥ १४

इतिश्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे धर्मशुद्ध्युपदेशाख्य एकादशोऽधिकार समाप्त ॥ ११ ॥

अथ श्रीदेवगुरुधर्मशुद्धिमधिकृत्य किंचिदुपदेशः ॥

तत्वेषु सर्वेषु गुरुः प्रधानं हितार्थधर्मा हि तदुक्तिसाध्याः॥
श्रयंस्तमेवेत्यपरीक्ष्य मूढ धर्मप्रयासान् कुरुषे वृथैव॥१॥

अर्थ ॥ हवेबारमेंअधिकारें देव गुरु धर्म एत्रणतत्वनीशुद्धिकहेसे तिहांप्रथमतो जो शुद्धगुरुमले तोज शुद्धदेव तथाशुद्धधर्मपामियें तेमाटेप्रथम गुरुतत्वनी शुद्धि कहेछे हेआत्मासर्वतत्वमां मुख्यतत्वते गुरुछे केमके हितार्थके० मोक्षनेअर्थें धर्म

सम्यबोध्होयतो ते गुरुनावचनथकीसधाय तेमाटेतुं मूढथको परीक्षाकखाविनाज गुरुने आश्रयतोथको धर्मनेनिमित्तेंजे प्रयासकरेछे तेवृथाके० फोकटछे ॥ १ ॥

भवी न धर्मैरविधिप्रयुक्तै र्गमी शिवं येषु गुरुर्न शुद्धः ॥
रोगी हि कल्पो न रसायनैस्तै र्येषां प्रयोक्ता भिषगेव मूढः॥२॥

अर्थ ॥ हवेगुरुअशुद्धहोयतोधर्मपण अशुद्धथाय तेकहेछे भवीजे संसारीजीव तेणे अविधियेंकीधाएहवाजे दानादिकधर्म तेहथीजीव मोक्षगामीनथाय केमकेजे धर्मनेविषे शुद्धके० निर्दोषपणुं नथी तेधर्मवृथाछे तेउपरदृष्टांत कहेछे जेमरसायननुं करनार वैद्यते गुणागुणनुं अजाणमूर्खहोयतो रोगीपुरुष ते रसायनेकरी निरोगीन थाय तेमइहांरोगी तेआत्मा औषधतेधर्म मूर्खवैद्य ते कुगुरु जाणवो ॥ २ ॥

समाश्रितस्तारकबुद्धितो यो यस्यास्त्यहो मज्जयिता स एव ॥
ओघं तरीता विषमं कथं स तथैव जंतुः कुगुरोर्भवाब्धिं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुअने कुतारकनुंदृष्टांतकहेछे जेप्राणियें तारकबुद्धियेंकरीने तारकनेआश्रयोछे अनेतेतारकज आश्रीतप्राणीने बुमाडनारहोय तोतेप्राणी विषमदुस्तार एहवो उघजे समुद्रनापाणीनो प्रवाह तेशीरीतेंतरसे तेमज जेथकी तरवानीआशाराखियें तेहिज जेवारें बोडे तिवारें समुद्रनुं पारते केमपामियें तेमज कुगुरुथी भवसमुद्रपण जाणवुं केमके जेगुरुप्रतें तारकजाणीने संसारसमुद्र तरवानी आशायें तेहने आश्रयियें अनेतेगुरुतो उन्मार्गने देखाडवेकरी आश्रीतप्राणीने संसारसमुद्रमां बोडे तेवारें ते प्राणी संसारसमुद्रनो पारकेमपामे एभावार्थछे ॥ ३ ॥

गजाश्वपोतोक्षरथान् यथेष्टपदाप्तये भद्र निजान् परान् वा ॥
भजंति विज्ञाः सुगुणान् भजैवं शिवाय शुद्धान् गुरुदेवधर्मान् ॥४॥

अर्थ ॥ तेमाटेशुद्धदेवगुरुधर्मने आदरवुंतेकहेछे जेमविज्ञजे निपुणपुरुष तेवांछितस्थानकें पहोचवानेअर्थे पोताना अथवापारका हाथी घोडा तथा वाहण उठ बलद रथ तेआपआपणेगुणेसहितसुलक्षणाजोइने आदरे केमकेजो निर्लक्षण वाहन होयतो तेहथीवांछित स्थानकेंपहोचायनही माटेहेसरलप्राणी एरीतेंतुंपण मोक्षस्थानक पामवानेअर्थे शुद्धगुणोपेत एवाजे देव गुरु धर्मतेप्रतेंभज जेथकीमोक्षपदपामे

फलाद्वृथा स्युः कुगुरूपदेशतः कृताहि धर्मार्थमपीह सूद्यमाः ॥
तद्दृष्टिरागं परिमुच्य भद्र हे गुरुं विशुद्धं भज चेद्धितार्थ्यसि ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेकुगुरुनाउपदेशयाधर्म फलदायकनहोय तेकहेछे इहांश्रीजिनशासनने

विषे कुगुरुनाउपदेशथकी धर्मनेअर्थेपणजे उद्यमकरेलाहोय तेफलदायकनथाय माटेहेजडकजोतुं मोक्षफलनोअर्थीहो तोदृष्टिरागछांमीने शुद्धपरुपकगुरुनेजज ॥५॥

न्यस्ता मुक्तिपथस्य वाहकतया श्रीवीर ये प्राक् त्वया लुं
टाकास्त्वद्दतेऽभवन् बहुतरास्त्वच्छासनं ते कलौ ॥ बिभ्रा
णा यतिनाम तत्तनुधियां मुष्णंति पुण्यश्रियः फूत्कुर्मः
किमराजके ह्यपि तलारक्षा न किं दस्यवः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतेकरी कुगुरुनीदुष्टताकहेछे हेश्रीमहावीर पूर्वेतुमेजे सुधर्मास्वामिप्रमुख मोक्षमार्गना चलावनारामूक्याहता तेपछे कलियुगमां तुजविना ताहराशासननेविषे पट्टपरंपरा सुविहिताचार्यथी अलगाथइने पोतानाकुमतने प्रवर्त्तावेवेकरी ने लूंटाकछे० लूंटाराथया हवेतेहतुं लूंटारापणुंकहेछे जेजणी तेयतिनामधरावताथका स्वल्पबुद्धिलोक जेकुगुरुनीपरिक्षाकरीसकतानथी तेहोनी पुण्यरूपजे लक्ष्मीतेप्रतें लूंटेछे एहवातेउत्सूत्रजाषनार कुगुरुनीवाततो अर्थिजीव किहांजइपोकारे केमकेविशेषज्ञानीविना पोकारकस्यानुं कोइगमनथी एटले अराजकछे० राजानेअजावें तलारक्षकजे कोटवाल तेपणचोरनथायसुं एटलेराजानहोय तेवारेजे रखवालाहोय तेहिजचोरीकरे तेमइहांराजाते श्रीवीरपरमात्मा तेनोमार्ग प्रवर्त्तकतेसुधर्मादिकगणधर अराजकतेकलिकाल लूंटाकते कुमतना प्रवर्त्तक इत्यादिक उपनयजाणवुं ॥६॥

दमाद्यस्य शुद्धिर्गुरुदेवधर्मै धिग् दृष्टिरागेण गुणानपेक्षः ॥
अमुत्र शोचिष्यसि तत्फले तु कुपथ्यजोजीव महामयार्त्तः॥७॥

अर्थ ॥ हवेअशुद्धदेवगुरुधर्मपामिने हर्षधरेनहीतेकहेछे हेआत्मातुं अशुद्धदेव गुरुधर्मप्रतेंपामवाथकी गुणनीअपेक्षारहितथयोथको दृष्टिरागेंकरी हर्षपामेछे तेमाटेतुजने धिःकारछे पण जेवारें तेहनुंफल उदयआवशे तेवारेंतुंनरकादिकनेविषे घणो शोचपामिस तेहनुंदृष्टांत कहेछे जेम महारोगीओ पुरुष स्वादना वशथकी कुपथ्य जोजन करीने पछेरोगवधेतिवारें घणु शोचकरे तेमतुंपण दृष्टिरागें करी कुगुरुकुदेव कुधर्म सेवीने पछे दुर्गति पामेथके घणुसोचपामिस ॥ ७ ॥

नाम्रं सुसिक्तोपि ददाति निंबकः पुष्टा रसैर्वैध्यगवी पयो न च ॥
दुःस्थोनृपो नैव सुसेवितः श्रियं धर्मं शिवं वा कुगुरुर्न संश्रितः ॥८॥

अर्थ॥ हवेकुगुरुनीसेवा शुजफलनीदेनारीनथाय तेकहेछे जेमलिंबडोजलीपरें सीच्योथकोपण आंबानुंफलनआपे तथारसजे घीतेलप्रमुख पुष्टकारीवस्तुथकीपणवांज

सीनाथकोइ डुषआपेनही वलीदेशभ्रष्टविषमअवस्थानेपाम्यो जेराजातेने नलीपरेंसे बोधकोपण अधीनआपे तेमकुगुरुनेपण सेव्योथको धर्म अथवा मोक्षपतेनआपे ०

कुलं न जातिः पितरो गणोवा विद्या च बंधुश्च गुरुर्धनं वा ॥
हिताय जंतोर्न परं न किंचित् किंत्वाहृताः सद्गुरुदेयधर्माः ॥९॥

अर्थ ॥ हवेसर्वपदार्थथी देवगुरुधर्मअधिकछेते कहेछे जंतुके० जीवने कुलजेइ क्ष्वागकुलप्रमुख तथाजातिजे मातानुंपक्ष पितरके० पितामहप्रमुख तथागणजे स रखासरखामित्रनीटोली तथाविद्याते षर्भंगीप्रमुख तथाबंधुजे स्वजन वलीगुरुजे कुलविद्यानुंअध्यापक अने धनतेसुवर्णादिक तथाबीजाजेकांइ देश ग्राम मंदिरप्रमुख तेसर्व हितायके० परलोकना हितनेअर्थेकोइथायनहीपण सतके० शुद्धएहवा देव गुरुअनेधर्म एत्रणनेआदरयाथकां परलोकनाहितने अर्थेथाय ॥ ९ ॥

माता पिता स्वः सुगुरुश्च तत्वात् प्रबोध्य यो योजति शुद्धधर्मे ॥
न तत्समोरिः क्षिपते भवाब्धौ यो धर्मविघ्नादिकृतेश्च जीवं॥१०॥

अर्थ ॥हवेजेशुद्धधर्ममांजोमे तेपुरुषनीप्रशंसाकरेछे जेपुरुषजेहने तत्वदेखाडी प्रतीबोधपमाडी अनेशुद्धधर्ममांजोडे तेहनेतेहिजपुरुष माता तेहिजपिता तेहिजस्वजन अनेतेहिज गुरुजाणवुं अनेजेजीव हरेकप्राणिने धर्मनुंअंतरायादिक करीने संसारसमुद्रमांनाखेतो तेसरिखोतेनोकोइ बीजो शत्रुनथी ॥ १० ॥

दाक्षिण्यलज्जे गुरुदेवपूजा पित्रादिभक्तिः सुकृताभिलाषः ॥
परोपकारी व्यवहारशुद्धि र्नृणामिहामुत्र च संपदे स्युः॥११॥

अर्थ ॥ हवेपुरुषने संपदानाकारण केटलाछे तेकहेछे दाक्षिणताजे अनुकूलता तथालज्जा अनेदेवगुरुनीपूजा तथापितामाता काकोकाकी मदोटाभाई इत्यादिकजे कोइ गुरुस्थानकियाहोय तेहनीभक्ति तथापरनेउपकारनुं करवुं तथाव्यवहारशुद्धते लहेणादेवामां साचापणुंराखवुं एटलाप्रकार तेपुरुषने इहलोकें अथवापरलोके पण संपदादेवाना कारणभूतथाय ॥ ११ ॥

जिनेष्वभक्तिर्यमिनामवज्ञा कर्मस्वनौचित्यमधर्मसंगः ॥
पित्राद्युपेक्षा परवंचनं च सृजंति पुंसां विपदः समंतात्॥१२॥

अर्थ ॥ हवेपूर्वोक्तप्रकारेथी विपरीतपणे प्रवर्त्ततां प्राणीने आपदाहोय तेकहेछे जिनभक्तिरहितपणुं तथासाधुनीअवगणना अने कर्मजे साधुअने श्रावकनीक्रिया तेहनेविषें अनुचितपणुं तथा अधर्मजे धर्मरहित एहवानष्टविष्ट नास्तिकप्रमुख अ

थवाविकथर्मिते मिथ्यात्वी कुमतिप्रमुख तेहनीमित्राइते विवाहव्यापार प्रमुखेंकरी परिवारकरवुं तथापिताप्रमुखनी अवगणना अनेपरने कुमाखेख कुमानाम्मा कुडा माप कुडातोलप्रमुखेंकरीने ठगवुं एटलासर्वप्रकारेंकरी पुरुषनेआपदाउपजे ॥ १२॥

नक्त्यैव नार्चसि जिनं सुगुरोश्च धर्मं नाकर्णयस्यविरतं विरतिर्न धत्से ॥
सार्थी निरर्थमपि च प्रचिनोष्यघानि मूल्येन केन तदमुत्र समीहसे शं १३

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरेकहेछे हेआत्मातुं नक्तियेंकरी जिनपूजाकरतोनथी अने कदापिपूंजेछेतोपण कुलकर्मादिक परवशपणाथकी पूजेछे पणनक्तिथीपूजतोनथी तथास द्गुरुपासेथी धर्मसांनलतोनथी तथानिरंतर अढारपापस्थानक पन्नरकर्मादान प्रमुखथीसंवरनुंकरवुं इत्यादिकविरतीपणुं तेपणनथीआदरतो तथासार्थकके० पोताने अथवाकुटुंबादिकनेअर्थें अनेनिरर्थकके० स्वार्थविनापण अपध्य अनाचरित पापोपदेश हिंसाप्रदान प्रमादाचरित एपांचप्रकारेंकरी कारणविना पापनेमेलवेछे तोपरलोकें तुं शामूल्येंकरी सुखनी वांछाकरेछे इहां मूलरूपते पुण्यजाणवुं ॥ १३ ॥

चतुष्पदैः सिंहइव स्वजात्यैर्मिल न्निमांस्तारयतीह कश्चित् ॥
सहैव तैर्मज्जति क्वापि दुर्गे शृगालवच्चेत्यमिलन् वरं सः ॥१४॥

अर्थ ॥ हवेसुगुरुनेसिंहनीउपमा अनेकुगुरुने सीयालनीउपमाकहीने उपदेशछे पोतानीजातीनाजे चतुःपदमृगप्रमुख तेसाथेंमल्या सिंहनीपरें एसंसारमांजे सद्गुरु तेपोतानी जातीना नव्यपंचेंद्रियसंज्ञीमनुष्यइत्यादिकसाथें मल्योथको आश्रीतजीव नेतारे जेमसिंहनिजाश्रितचतुःपदने कूपगर्त्तादिकथीतारे तेमसुगुरुपण निजाश्रितन व्यजीवने संसारसमुद्रथीतारे अनेकुगुरुतेसीयालनीपरें स्वजातीयजे मनुष्यादिक अनेविजातीयजे चतुःपद तेहनेसाथेंलेइजइने दुर्गजेनरकप्रमुख वलीदुर्गजे कूपादिकते मांबुमाडे तेमाटेजेकुगुरुतेनमल्योथकोजसारो जेमपंचाख्यानमां कोइकवनमां बीजा वाघसिंहादिकनुंनयटालवाने अर्थें सर्वचतुःपदेंमली एकबलवंतसिंहने राजाकरी थाप्यो अनेसर्वचतुःपद तेहनीसेवाकरवालागा एकदिवसेतेवनमां अग्नीलागी तेवारें तेसर्वचतुःपद सिंहनेसरणेगया तेसर्वनेसिंहेपोताने पुंछडेवलगाडी एकफालेंकरी कोइकमहानदी उतरीपहेलेपार पहोचाडया वलीकेटलाकदिवसे दावानलमिटयो वन नवपल्लवथयुं तेवारेंतेसर्वचतुःपदने पाछापोतानेगामे पहोचाडया एहवोते सिंहनोप राक्रमदेखी कोइकदुर्बुद्धिसीयालेंपण केटलाक हीनसत्व निर्नाग्य ससलाप्रमुखजीवने पोतानासेवककर्यां वलीकालांतरें दवलागो तेवारे सीयाले निजाश्रित सर्वचतुःपदने

पुंडकेवलगामी फालनरीनदी ऊतरवा लागो तेवारे सर्वजीवसहित पोतेंपण अ गाधजलमांबुमो इहांसिंहते सुगुरु अनेसीयालते कुगुरु महानदीते दुर्गति अने आश्रितजीवते धर्मार्थी मनुष्य एमउपनयलेवो ॥ १४ ॥

पूर्णे तटाके तृषितः सदैव नृतेपि गेहे क्षुधितः स मूढः ॥ क
ल्पद्रुमे सत्यपि ही दरिद्रो गुर्वादियोगेपि हि यः प्रमादी ॥१५॥

अर्थ ॥ हवेगुर्वादिकनुं योगछतेप्रमाद करवुंनही तेदृष्टांतदेइनेकहेछे निश्चेंकरीजे प्राणी देवगुरुधर्मनुं योगछतेपण प्रमादवंतथायछे तो हाहाइतिखेदेतेप्राणी नरयातला वेंपण सदाइतरस्योछे वली ते पुरुष सुखडी प्रमुखे नरयायका घरमां पण भुख्योछे वली घरमांछते कल्पवृक्षें पण दरिद्रीछे तेमाटे गुर्वादिकनो योगछते प्रमादत्यजीने धर्मसाधनकरवुं तेहिजसार्थकछे ॥ १५ ॥

न धर्मचिंता गुरुदेवनक्ति र्येषां न वैराग्यलवोपि चित्ते ॥ तेषां
प्रसूक्लेशफलः पशूना मिवोद्भवः स्यादुदरंनरीणां ॥ १६ ॥

अर्थ ॥हवेप्रकारांतरेंतेहिजकहेछे आजमेंशुं धर्मकीधो अनेहवे नित्य प्रत्येंशोधर्म करवानुंछे एहवीजेने विचारणानथी यदुक्तं उत्थायोत्थाय चिंतेयं किमद्य सुकृतं कृतं॥ आयुषः खंडमादाय रविरस्तमयं गतः ॥१॥ तथा जेने गुरुअने देवनीनक्तिनथी वली वैरागनुंलेशमात्रपणनथी एहवाजेपेटनराप्राणी तेहोनुंजन्मते पशु भुंड कुतराप्रमु खनीपरें केवल माताने गर्नधारणादिकक्लेश करवामात्रज फलहोय ॥ १६ ॥

न देवकार्ये न च संघकार्ये येषां धनं नश्वरमाशु तेषां ॥ तदर्ज
नाद्यैर्वृजिनैर्नवाब्धौ पतिष्यतां किं लवलंबनं स्यात् ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रकारांतरें सुपात्रेंधनवावरवानी सफलतादेखाडेछे जेधनवंतप्राणीनुं धन देवकार्यजे प्रासादकरावववा अथवाजीर्णोद्धार बिंबप्रतिष्टा इत्यादिकनेविषे तथा संघकार्यजे चतुर्विधसंघनुंपोषवुं तथासाधर्मिनीवत्सलतताते हीन अने दीनजे साधर्मि कहोयतेनीचिंताकरवी तथा पुस्तकलखववा इत्यादिक कार्योमांउपयोगीनहोय तेप्रा णीनुं विनाशशील एहवुंजेधन तेउपार्जनादिकनापापेकरी संसारकूपमांपडताने तेधन सुंकांइ आधारनूतथाय अर्थातकांइनथाय एटलेसुपात्रेंव्ययविना अन्यथाकोइकामेना वे॥१७इ॥ति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमेदेवगुरुधर्मशुद्धिनामा द्वादशोधिकारः समाप्त॥१७॥

ते तीर्णा नववारिधिं मुनिवरास्तेज्यो नमस्कुर्महे येषां नो विषयेषु निग्न
ध्यति मनो नो वा कषायैः प्लुतं ॥ रागद्वेषविमुग् प्रशांतकलुषं साम्याप्त
शर्माद्वयं नित्यं खेलति चात्मसंयमगुणाक्रीमे नजनावनाः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेयतिशिक्षोपदेशनामा तेरमोअधिकारकहेले तेमांप्रथमयतिनुं स्वरूपक हेले जेमुनीनुंमन विषयमां आसक्तपामतुंनथी तथाक्रोधादिककषायमां व्याप्तुं नथी एहवाजेमहानुनाव संसारसमुद्रथीतस्या तेहनेनमस्कारकरियेंबैयें जेमुनिराज रागद्वेषेंरहित थइने कलुषताजे पापाचरणतेहने शांतपमाडयोले वलीसमतायेंकरी अ नुपमसुखपाम्योछे एहवुंथइने पांचमहाव्रतनी पचवीसनावना नथा अनित्यादिक बारनावनानेनजेले वलीजिनप्रणीतजे संयमनागुण क्षमादिकरूप उद्याननेविषे खेलेले एहवुंजेहनुंमनहोय तेहनेज तत्वथकी मुनिकहियें एनावार्थले ॥ १ ॥

स्वाध्यायमादित्ससि नो प्रमादैः शुद्धा न गुप्तीः समितीश्च धत्से ॥ त
पोद्विधा नार्जसि देहमोहा दल्पे हि हेतौ दधसे कषायान् ॥२॥ प
रीसहन्नो सहसे न चोप सर्गान्न शीलांगधरोपि वाऽसि॥तन्मोक्षमा
णोपि नवाब्धि पारं मुने कथं यास्यविशेषमात्रात् ॥३॥ युग्मं ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुनावेषमात्रथकीज अर्थसिद्धिनथाय तेकहेले हेमुनितुंप्रमादेंक रीसिज्ञायध्यानकरवा वांछतोनथी तथाशुद्धनिर्मल मनादिकत्रणगुप्ति अने ईर्यादि कपांचसुमतीने धारणकरतोनथी वलीशरीरनामोहथी बाह्यअन्यंतर बेप्रकारेंतपप ण करतोनथी तथाथोमोपण कषायनुंकारणउपनाथी कषायधरेले ॥ २ ॥ तथाक्षुधा दिक बावीसपरिसह अने देवता प्रमुखनाकरेला उपसर्ग तेप्रतेंनथीसहेतो तथा अ ढारसहस्ररूप शीलांगरथने पणधरतोनथी अनेकेवल वेषमात्रथीज मोक्षनेवांछेले प णएरीतेंतोतुं संसारसमुद्रनोपारकेमपामीस ॥ ३ ॥ एबेकाव्यनोअर्थ एकठोले.

आजीविकार्थमिह यद्यतिवेषमेव धत्से चरित्रममलं न तु कष्टनीरुः॥ तद्वे
त्सि किं न न बिन्नेति जगज्जिघृक्षुर्मृत्युः कुतोपि नरकश्च न वेषमात्रात् ४

अर्थ॥वलीतेहिजकहेले हेसाधुतुंआसंसारमां आजीविकानेअर्थें जे यतिनोवेषध रेले अनेकष्टकरवाथी बीहितोथको निर्मलनिरतिचार जेचारित्रतेप्रते धरतोनथी तो तेवारें तुं एमकांनथीजाणतो जे जगततुंग्रासकरनार एहवोजेमृत्युते कोइथीबीहतोन थी वलीसाधुनोवेषमात्र धर्याथकी तो नरकपणबीहितोनथी एटले मृत्यु अने नरक एबेवाना सर्वथा तुजनेआवशेज पण ताहाराथी डरसेनही इतिनाव ॥ ४ ॥

वेषेण माद्यसि यते चरणं विनात्मन् पूजां च वांछसि जनाद्बहुधोपधिं च॥
मुग्धप्रतारणभवे नरके ऽसि गंता न्यायं बिभर्षि तदजागल[illegible]तरीयं॥५॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुंचारित्रविना यतिनेवेषेकरीहर्षपामेछे अनेलोक[illegible]की बहुप्रकार नीपूजा वंदन सत्कारप्रमुख तथाउपधिजे वस्त्रपात्र पुस्तकादिकप्रतेंवांछेछे पणपछेतुं एमुग्धलोकने प्रतारणके० कपटक्रियायें ठगाइकरी तेहथीउपार्ज्योजेनरकतिहांज रहीश तेमाटेतुं अजागले कर्त्तरीना न्यायप्रतेंधरेछे जेमकोइ खाटकियें एकबकरीहणवानेअर्थें वधकरवानेस्थानकेंआणी कातीयेंधारचडावी सज्जकरी तेबकरीनेपासेकातिमूकी एटलामांकोइकामनेअर्थें पोतेंघरमांगयो पछवाडेब[illegible]यें पोतानापगेंकरीनूमीखोदितेमांकातिदाटी नेविचार्युंजे रखेखाटकीअ[illegible]तिर[illegible]रखे एमजाणीतेहनाउपरसुती दैवयोगथी कंठतलेकातीनीधारआवी तेथीगलुंदबाइगयुं अनेमृत्युपामि तेमहेआत्मातुंपण तेबकरीनीपरें अज्ञानीथइने कातीरूपनरकने ढांकिराखेछे पणतेअवश्यनाविपणाथी उदयआव्याविना रहेसेजनही तेमाटेप्रथमथीज अज्ञानत्यजीने सावधानरहेजे एन्यायग्रंथातरें बीजेप्रकारेंपण लख्युंछे ॥ ५ ॥

जानेऽस्ति संयमतपोभिरमीभिरात्मन्नस्यप्रतिग्रहभरस्य न निष्क्रियोपि ॥
किंदुर्गतौ निपततः शरणं तवास्ते सौख्यं च दास्यति परत्र किमित्यवेहि॥६

अर्थ ॥ हेआत्माएलोकरंजन निमित्तेंजे संयमतथातप तेणेकरीने गृहस्थोपासेंथी अहार औषध वस्त्रपात्रादिकनुंलेवुं ते तो संयमतपादिकना समूहनुं वक्रयके० मूलपणनथयुं तेवारेंतुजने दुर्गतिमांपडतां शरणतेसुंछे अनेपरलोकें सुखतें कोणआपसे तेविचारीजो एतोलोकोनाप्रतिग्रहनुं मूलमात्रपण ताहरुंसुकृतनथी माटेतुजने नरकेपडतां उद्धार अनेपरलोकनेविषे सुखतेशाथकीथासे एभावार्थछे ॥ ६ ॥

किं लोकसत्कृतिनमस्करणार्चनाद्यै रे मुग्ध तुष्यसि विनापि विशुद्धयोगान्
कृंतन् भवांधुपतने तव यत्प्रमादो बोधिद्रुमाश्रयमिमानि करोति पर्शून्॥७

अर्थ ॥ हवेलोकसत्कारादिकदेखी राचवुंनहीतेकहेछे हेमूढआत्मा शुद्धनिर्मल दोषरहित एहवाजे मनवचनकायानायोग तेविनालोकोनो सत्कारजे अभ्युत्थानादिक तथानमस्कारवंदना अर्चना जेनवांगपूजा विलेपनादिक तेणेकरीने सुंहर्षपामेछे केमकेएप्रमादते ताहरेसंसारकूपमां पडतांबोधरूप वृक्षनाआलंबनने छेदवाने ए लोकसत्कारते कुहाडारूपछे एटलेताहरोप्रमादरूपवैरीते तुजने संसाररूपकुवामां

नाखवासारुं बोधआलंबनरूपवृक्षने लोकसत्काररूप कुहाडेकरीछेदेछे एटलेहमणा तो सत्कारपामिमनमां हर्षधरेछे पणआगले बोधपामवो दुर्लभथासे ॥ ७ ॥

गुणांस्तवाश्रित्य नमंत्यमी जना ददत्युपध्यालयभैक्ष्यशिष्यकान् ॥
विना गुणान् वेषमृषेर्बिभर्षि चेत् त तष्टकानां तव भाविनी गतिः॥८॥

अर्थ॥हेसाधो धर्मार्थिलोकतो तहारागुणआश्रीने तुजनेनमेछे तथा उपधि वस्त्र पात्रादिक आलय वस्ति भैषज अन्नपानादिक अनेशिष्य तुजनेआपेछे अनेतुंजोगुण विनाज मात्र वेषधरेछे तेवारे ताहरीधूर्त्तनी गति थाशे जेमठगारा कृत्रिम नवानवा वेष करीलोकना धनठगीलिये पछेकोइकदिवसें तेहनाविपाकथी वध बंधनादिक पामे तेम ताहरा हवालपण तेहनीपरे थासे ॥ ८ ॥

नाजीविकाप्रणयिनी तनयादिचिंता नो राजभीश्च भगवत्समयं च वे
त्सि॥ नो राजभीर्धरसि वाऽऽगमपुस्तकानि इत्यपि पाठः॥शुद्धे तथा
पि चरणे यतसे न भिक्षो तत्ते प्रतिग्रहभरो नरकार्थमेव ॥९॥

अर्थ ॥ हवेसाधुपणानुं सुखदेखाडेछे हेभिक्षुकतेंघरबारपरिग्रहतोमूक्या माटे आजीविका तथापुत्रादिकनी चिंतानथी तेमराजासंबंधीभयपणनथी वलीजिनप्रणीत सिद्धांतपणजाणेछे अथवाजैनसिद्धांतना पुस्तकधरेछे तोपणशुद्धचारित्रनेविषे उद्यमकरतोनथी तेवारेताहरुं वस्त्रपात्रादिकनुंलेवुं तेहनुंभारते नरकनेअर्थेंजछे ॥९

शास्त्रज्ञोपि दृढव्रतोपि गृहिणीपुत्रादिबंधोज्झितोप्यंगी यद्यतते
प्रमादवशगो न प्रेत्य सौख्यश्रिये॥तन्मोहद्विषतस्त्रिलोकजयिनः
काचित् परा दुष्टता बद्धायुष्कतया स वा नरपशुर्नूनं गमी दुर्गतौ॥१०

अर्थ ॥ हवेछतेयोगेपणजीव धर्मकरतोनथी तेहनाबेकारणदेखाडेछे लौकिकअने लोकोत्तरशास्त्रने जाणतोथको तथा पंचमहाव्रतधारीथको तथास्त्रीपुत्रादिकना प्रतिबंधेरहितथको पण जेप्राणीप्रमादवशे पड्योथको परलोकनासुखनी संपदारूप धर्मकार्यनेविषेउद्यम करतोनथी तोतिहां त्रणलोकनुं जीपनारजे मोहरूपशत्रु तेहनीज कोइक अलक्ष्यमहादुष्टताजाणवी अथवाते नररूपपशुबापडो पूर्वेनरकादिकना आयुषाना बांधवाथकी दुर्गतिमांज जनारछे एमजाणीयेंछैयें ॥ १० ॥

उच्चारयस्यनुदिनं न करोमि सर्वं सावद्यमित्यसकृदेतदथो करोषि ॥
नित्यं मृषोक्तिजिनवंचनभारिता तत्सावद्यतो नरकमेव विभावये ते११

अर्थ ॥ हवेयतिनावेषमां नित्येंमृषावादिपणुं देखाडेछे जेयतिबीजा लोकोने लगवा लारुं छुंसर्वथासावद्यकरुंनही एहवुंकहीनेपछे वारंवार सावद्यकर्म सचितआरंजप्रमुखकरेछे तेमाटेनित्येंमृषावादेंकरी जारीथयुं एहवुंजे सावद्यआरंजादिककर्म तेहथी तुजने नरकेंजवुंजसंजवेछे जुवुंबोलीने सावद्यकरवाथी निश्चेंनरकगतिथाय ॥ ११॥

वेषोपदेशाद्युपधिप्रतारिता ददत्यजीष्टानृजवोधुना जनाः ॥

जुंक्षे च शेषे च सुखं विचेष्टसे जवांतरे ज्ञास्यसि तत्फलं पुनः॥१२॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे हेसाधुहमणाआजवमांतुं जोलालोकपमाप्रमुखना वेषे तथालोकरंजवाप्रमुखनेअर्थें उपदेशआपी कपटवैरागपोषीने धर्मकथाकहेछे इत्यादिककपटेंकरी जेजोलालोकते तुजने वांछित अन्न पान वस्त्र पात्र वसति सिज्जादिकआपेछे तेथीसुखेखायछे सुखेसुएछे सुखेरमतोफिरेछे पणते सुखजोगव्यानुं फल परजवें नरकादिकनाडुःखविना बीजोकांइजाणीसनही ॥ १२ ॥

आजीविकादिविविधार्त्तिजृशानिशार्त्ताः कृच्छ्रेण केपि महतैव सृजंति धर्मान्

तेभ्योपि निर्दय जिघृक्षसि सर्वमिष्टं नो संयमे च यतसे जविता कथं हीः१३

अर्थ ॥ वलीप्रकारांतरे तेहिजकहेछे केटलाकश्रावको आजीविकाजे उदरवृत्ति आदिशब्दथी वस्त्र आजरण राजदंम पुत्रादिकविवाह इत्यादिकचिंतायेकरी सदा कालआकुलथका घणीकष्टेंकरीने धर्मजेदानप्रमुख तेकरेछे अने हेनिर्दयवेषनाधरनार तुंतेवापासेथीपण अन्नपानादिक सर्ववांछितवस्तु लेवानेवांछेछे अनेसंयममां उद्यमकरतोनथी माटे हाइतिखेदेताहरी तेसीगतीथासे ॥ १३ ॥

आराधितो वा गुणवान् स्वयं तरन् जवाब्धिमस्मानपि तारयिष्यति ॥

श्रयंति ये त्वामिति जूरिजक्तिजिः फलं तवैषां च किमस्ति निर्गुण ॥१४॥

अर्थ ॥ एगुणवंतछे.एसंयमगुणेसहितछे एमहानुजावछे एनेआराध्योथको पोतेसंसारसमुद्रतरेछे तेम आपणनेपण तारसे एहवीबुद्धियें घणीजक्तियेंकरी तेप्राणियें तुजनेआश्रयोछे अनेतुंतोपोतेनिर्गुणछो माटेतुजने अथवाते आश्रयकरनारने एमांशो फलछे एटलेतुंबुमतोथको तेप्राणीनेपण बोडेछे एजावार्थ ॥ १४ ॥

स्वयं प्रमादैर्निपतन् जवांबुधौ कथंस्वजक्तानपि तारयिष्यसि ॥ प्र

तारयन्स्वार्थमृजून् शिवार्थिनः स्वतोन्यतश्चैव विलुप्यसेंऽहसा॥१५॥

अर्थ ॥ हेमुनितुंपोतें प्रमादेंकरीने बुमतोछतो पोतानाजक्तजे सेवकलोक तेने शीरीतेंतारीश केमके पोताने अन्नपानादिकमले तेनेअर्थें सरलजे मोक्षार्थिलोक ते

हनेवंचतोथको तुंफरेछे एटलेपोताना प्रमादाचरणथी अनेबीजोलोकने ठगवाथी एवबेप्रकारना पापेकरीने तुंलोपायछे ॥ १५ ॥

गृह्णासि शय्याहृतिपुस्तकोपधीन् सदा परेभ्यस्तपसस्त्वियं स्थितिः॥

तत्ते प्रमादाभरितात्प्रतिग्रहैः ऋणार्णमग्नस्य परत्र का गतिः ॥ १६॥

अर्थ ॥ हे वेषना धरनारयति तुं लोकोपासेथी शय्या वस्ति अहार तथापुस्तक ज्ञानोपकरण तथाउपधि वस्त्रपात्रादिकजे नित्यलियेछे तेतो तपसीलोकनी स्थिति छे परंतु तुंतो प्रत्यक्षप्रमादमां मग्नथको कांइपणतपस्यादिक करतोनथी तेमाटे प्रतिग्रहने निग्रवेकरी नारीथयुं एहवुंजेप्रमाद तेथकीउपार्ज्युंजे लेणो ते लेणानेविषे मग्नथको खुतोछेएहवुंछतो ताहरीपरजनवें सीअवस्थाथासे एटलेप्रथमतुं चारित्रलेइने प्रमादसेवेछे तेलेणोकरेछे तेवारपछे तपसंयमादिकविना लोकोपासेथीशय्यादिक प्रतेंलीयेछे तेबीजोलेणो एमएबेप्रकारना लेणामांखूतोथको ताहरीसी अवस्थाथासे अर्थात दुष्टअवस्थाज पामीस इतिभाव ॥ १६ ॥

न कापि सिद्धिर्न च तेतिशायि मुने क्रियायोगतपःश्रुतादि ॥ तथा

प्यहंकारकदर्थितस्त्वं ख्यातीच्छया ताम्यसि धिङ् मुधा किं॥१७॥

अर्थ ॥ हवेतथाविधगुणविना कीर्त्तिनेसुंवांछेछे हेमुनिताहरेविषेकोइ विद्यामंत्रादिक सिद्धिनथी वलीवांदणा खमासमणाप्रमुख उत्कृष्टक्रियानथी तथामनवचन कायाना योगनी शुभप्रवृत्तिनथी तथाबाह्याभ्यंतरतपनथीकरतो तथाश्रुतज्ञान आदिशब्दथी प्रभाविकपणुं राजाप्रमुखनुं प्रतिबोधवुं इत्यादिकगुणतेपणनथी तोपणतुं अहंकारे कदर्थितथको ख्यातिजे प्रसिद्धितेहनी वांछायेकरीने फोकटशोपरीतापकरे छे माटेतुजने धिःकारथाउताहरामां जो कोइ अतिशयगुणहोय तेवारेंतो ख्यातिनी वांछापणयुक्तछे अनेतेविनाज प्रख्यातीनेवांछेछे माटेतुं धिक्कारवायोग्यछो ॥ १७ ॥

हीनोप्यरे भाग्यगुणैर्मुधात्मन् वांछंस्तवार्चाद्यनवाप्नुवंश्च ॥

ईर्ष्यन् परेभ्यो लभसेऽतितापमिहापि यातो कुगतिं परत्र॥१८॥

अर्थ ॥ फरीतेहिजकहेछे अरेनिर्भाग्य निःपुण्यकआत्मातुं गुणरहितथको फोकटस्तवनापूजाप्रमुखने वांछतो जोपूजास्तवनानथायतो वलीलोकोउपरक्रोधकरतो थको इहलोकेपण अतिशय तापसंतापपामेछे अनेपरलोकेपणदुर्गतियेंजइश॥१८॥

गुणैर्विहीनोपि जनानतिस्तुति प्रतिग्रहान् यन्मुदितः प्रतीछसि ॥

लुलायगोश्वोष्ट्रखरादिजन्मभि र्विना ततस्ते भविता न निष्क्रयः॥१९॥

अर्थ ॥ हवेकुगतिमांपडवाविषे उपदेशकरीने प्रतिबोधेछे हेयतिवेषनाधारक तुं गुणरहितथको पणहर्षवंतथयीने लोकथी नमस्कारादिक स्तवना वस्त्रपात्रअन्नादि कलेवावांछेछे तेहथीतुजने बुलायजे पाडोपाणीवहेवायोग्य अथवागोजेबलदीओ हल गाडा यंत्र कोल प्रमुख वहेवायोग्य अथवाअश्वते अस्वारीकरवायोग्य तथा उंट खररासभ अनेकविधभारवहेवायोग्य इत्यादिकअवतार पाम्याविना तेप्रतिग्रहादि कनुं मूलनथाय केमकेगुणविनापण लोकोपासेथी प्रतिग्रहादिक कल्पेछे तेहनुंलेणो पाडाप्रमुखना अवतारपामि भारवहीनेछूटवुंछे एभावार्थ ॥ १९ ॥

गुणेषु नोद्यच्छसि चेन्मुने ततः प्रगीयसे यैरपि वंद्यसेऽर्च्यसे॥जुगुप्सितां प्रेत्य गतिं गतोऽपि तैर्हसिष्यसे चाऽभिभविष्यसेऽपि वा॥२०॥ दानमाननुतिवंदनापरैर्मोदसे निकृतिरंजितैर्जनैः ॥ नत्ववैषि सुकृतस्य चेल्लवः कोपि सोपि तव लुंठ्यते हि तैः॥२१॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजप्रकारांतरेकहेछे हेमुनिजोतुंगुणनेविषे उद्यमकरतोनथी ते वारेइहभवेंजे तुजने श्रावकादिक गीतभासप्रमुखेकरीगायछे तथावलीद्वादशावर्त्त वांदणायेंकरीवांदेछे सुगंधलेपनादिकेंकरीपूजेछे तेतुंपरभवें निंदनीक कुरूप दरिद्रतादिक पाम्याथका तेहिजताहराउपर हससे तथानानाप्रकारनीपीडा उपजावसे एटले ते स्वामिपणे अवतरसे अनेतुंदासपणेथाइस तिहां लातो लाठीप्रमुखना प्रहारेंकरी तुजनेपीडसे ॥ २० ॥ हेमुनितुं कपटक्रियायेंकरी लोकरीजवीने तेहोने दानसन्मान स्तवन वंदनानेविषे तत्परदेखीने हर्षपामेछे पण एम नथीजाणतो जे ताहरो लेश मात्रसुकृतछे तेहनेएलोकलुंटेछे ॥ २१ ॥

भवेद्गुणी मुग्धकृतैर्नहि स्तवैर्न ख्यातिदानार्चनवंदनादिभिः ॥ विना गुणान्नो भवदुःखसंक्षय स्ततो गुणानर्जय किं स्तवादिभिः॥२२

अर्थ॥हवेस्तवनादिकनी वांछामूकीने गुणनुंपोषकरवुंतेकहेछे हेमुनितुं विशेषाविशेषनाअजाण एहवामुग्धलोकनीकरेलीजे स्तुतितथाख्याति प्रशंसादिक तेणेकरीगुणवंतनथाय वलीगुणजे ज्ञानादिक तेहनीप्राप्तिविना संसारनोविनाश अनेमुक्तिनीप्राप्तिन थाय तेमाटेकेवल गुणनेजउपार्जनकर पणस्तुतिकराववाथी कांइअर्थसिद्धिनथी २२

अध्येषि शास्त्रं सदसद्विचित्रा लापादिभिस्ताम्यसि वा समा यैः॥येषां जनानामिह रंजनाय भवांतरे ते क मुने क च त्वं॥२३॥

अर्थ ॥ हवेलोकरीजववामाटेतुं शास्त्रभणेछे पणभवांतरेतुंकिहां अनेरीजनारलो

ककिहां तेदेखाडेछे हेमुनितुंजे लोकरीजववानिमित्तें सतूके० जलोजिनागम तथा असतूके० विरुद्धबौद्धादिकनुंशास्त्रते प्रतेंजणेछे अनेवली कपटसहित नानाप्रकार नाआलापसंलापादिक तेणेकरीने घणुंप्रयासकरेछे पणजवांतरें तेलोककिहांगतिमां जशे अनेतुं केइगतियेंजइश एटलेआजवें जावजीवशुद्धीजे जीव तें रीजव्याहशे तेपरजवेंकोइपण ताहरे कामेआवेसेनही ॥ २३ ॥

परिग्रहं त्वं व्यजहाज़्हादे स्तत्किं न धर्मोपकृतिछलात्तं ॥
करोषि शय्योपधिपुस्तकादे र्गरोपि नामांतरतोपि हंता॥२४॥

अर्थ ॥ हवेपरिग्रहत्यजवा आश्रीउपदेशछे हेमुनितेंपूर्वें घरप्रमुखनुंपरिग्रहछां डयुं अनेवली धर्मोपकरणने मीसेंकरीने शय्या वस्ति उपधि वस्त्र पात्रादिक पुस्त क आदिशब्दथी पाटा चाबखी पोथी बांधणा जपमाला प्रमुखउपकरणनो परिग्रह सुंकरेछे धर्मोपकरणजेकांइ बहुमूलो ममतानावशथकी वधारेराखियेंते परिग्रहजजा णवो केमके० गरके० विष तेहनेंनामांतरकरवाथकी एटलेनामफेरवीनाख्याथीप ण हंताके० मृत्युकारकहोयज जोविषने साकर अमृत इत्यादिककहियेंतोपण खांधु थकुं प्राणहरणकरे तेमपरिग्रहने धर्मोपकरण निमित्ते राख्योथकोपण दुर्गतिआपे

परिग्रहात्स्वीकृतधर्मसाधनाभिधानमात्रात्किमु मूढ तुष्यसि ॥
न वेत्सि हेम्नाप्यतिभारिता तरी निमज्जयत्यंगिनमंबुधौ द्रुतं॥२५॥

अर्थ ॥वलीतेहिजकहेछे हेमूर्खसाधोतुं स्वीकृतके० प्रमाणकिधुंछे धर्मसाधनके० धर्मोपकरण एहवुंनाममात्रजेहनुं एहवोपरिग्रह पाम्याथी सुंहर्षपामेछे हेमूर्खतुंन थीजाणतोजे अतिशयभारी एहवोजेसुवर्ण तेणेकरीभरी एहवीतरीजे होडी तेजेम अंगीनंके० बेशनारमनुष्यने बोडेछे तेमतुजनेपण धर्मोपकरणनेमीसें मल्योएहवो जे अतिपरिग्रहतेभवसमुद्रमां बोडशे इतिभावः ॥ २५ ॥

येंहःकषायकलिकर्मनिबंधभाजनं स्युः पुस्तकादिभिरपीहितधर्मसाधनैः॥
तेषां रसायनवरैरपि सर्पदामयै रार्त्तात्मनां गदह्तेः सुखकृत्तु किं भवेत्२६

अर्थ ॥ जेमुनियें हितके० वांछयुंछे धर्मनुंसाधनजेथकी एहवाजे पुस्तकादिकते णेकरीनेपण अंहजेपाप तथाकषायजे क्रोधादिक तथा कलिजेकलहतेना करवा थकी कर्मजे ज्ञानावरणियादिक तेनानिकाचितबंधनुंभाजनथाय तेहनेबीजोकोइ सुखकार्य निवृत्तिनुंकरनारनथाय एटलेजेहनेधर्मोपकरणतेहिज ममत्वनावशथकी परिग्रहपणे परिणम्याछे तोतेहनेअर्थें क्लेशकषायादिकने करवेकरीकर्मवृद्धिकरेछे

तोतेहनेसंतोषते पछे फरीबीजाशाथकीथासे एजावार्थ तेहनुंदृष्टांतकहेछे जेम रसायनजे मृगांगपारादिक तेहनोसेवनकरवाथीज उलटोमांदापडयो एटलेरसायनथकीपण जेहनेरोगवध्यो तोपछेतेहनारोगनुं निवारकबीजोसुखकारी कोइनथी ॥२६॥

रक्षार्थं खलु संयमस्य गदिता येऽर्था यतीनां जिनै र्वासःपुस्तकपात्रकप्रभृतयो धर्मोपकृत्यात्मकाः ॥ मूर्छन्मोहवशात्त एव कुधिया संसारपाताय धिक् स्वं स्वस्यैव वधाय शस्त्रमधियां यद्दुःप्रयुक्तं भवेत्॥२७

अर्थ ॥ निश्चेकरीनेजे वस्त्रपुस्तकप्रमुख पदार्थतेश्रीजिनेश्वरें साधुनेसंयमनी रक्षानेअर्थें धर्मोपकरण स्वरूपेकह्याछे तोहाहा इतिखेदे तेहिजपदार्थ कुबुद्धिनाधणीने अतिशय मोहनावशथकी उलटासंसारमांबूडावनारनाकारण थइपडेछे तेहनुंदृष्टांत जेम बुद्धिहीनपुरुषनुं पोतानुं अस्त्रजेखड्गादिक तेविपरीतपणे राख्युंहोय तोपोतानेजवधकारीथाय तेहनीपरे जाणवुं ॥ २७ ॥

संयमोपकरणछलात्परान् भारयन् यदसि पुस्तकादिभिः ॥
गोखरोष्ट्रमहिषादिरूपभृत्तच्चिरं त्वमपि भारयिष्यसे॥२८॥

अर्थ ॥ हेमुनितुं जे परप्राणीभारवाहक पोठी बलद उंटप्रमुखने संयमनाउपकरणनेमीसेकरी पुस्तकादिकनुं भारवहेवरावेछे तेमाटेतेप्राणीतुजनेपण बलद उंट रासभ पाडाप्रमुखना अवतारपाम्याथका चिरकाललगें भारवहेवरावशे ॥ २८ ॥

वस्त्रपात्रतनुपुस्तकादिभिः शोभया न खलु संयमस्य सा ॥
आदिमा च ददते भवं परा मुक्तिमाश्रय तदिच्छयैकिका॥२९॥

अर्थ ॥ हवेवस्त्रपात्रादिकथी संयमनीशोभानथीतेकहेछे हेमुनि वस्त्रपात्रतथाशरीर पुस्तकइत्यादिकनी शोभाकीधेथके निश्चेकरी संयमनीशोभानथाय एटलेवस्त्रादिकनीशोभाते संयमने अशोभाकारणीछे तेमांपणवली आदिमके० पहेलीजे वस्त्रादिकनीशोभाते भवभ्रमणजआपे अने परके० बीजीजे संयमनीशोभाते मोक्षजआपे तेमाटेजोसंसारनी वांछाहोयतो वस्त्रादिकनी शोभाआदर अनेजो मुक्तिनीवांछा तुजनेहोय तो संयमनीशोभाआदर ॥ २९ ॥

वस्त्रपात्रतनुपुस्कादिभिः शोभया न खलु संयमस्य सा ॥ तां तदत्र परिहाय संयमे किं यते न यतसे शिवार्थ्यपि ॥ इतिचोत्तरार्द्धपाठः ॥३०॥

अर्थ ॥ वस्त्रपात्रेति एपाठांतर एश्लोकनुंपूर्वार्द्ध पूर्वेनीपरेजाणवुं अनेउत्तरार्द्धनी

आरम्भाकहेछे तस्मात्कारणात् तेकारणमाटेहेसाधो ते वखाविकनी शोजागमीने जोमुक्तिनोअर्थीछोतो जिनप्रणीत चारित्रनेविषे केमउद्यमकरतोनथी ॥ ३० ॥

शीतातपाद्यान्नमनागपीह परीषहाश्चेत्क्षमसे विसोढुं ॥
कथं ततोनारकगर्भवास दुःखानिसोढासि भवांतरे त्वं ॥३१॥

अर्थ ॥ हवेपरीषह सहेवाआश्री उपदेशआपेछे हेमुनिजोतुं संयमभवेविषे टाढाड तापप्रमुख थोडापणपरीषह सहेवानेसमर्थनथी अनेकायरथायछे तोभवांतरेनेविषे नरकतथा गर्भवासनादुःख केम सहीस एटले नरकादिकना दुःखसहेवाथीतो परीष हनादुःखतुं सहेवुंभलुंछे एमजाण ॥ ३१ ॥

मुने न किं नश्वरमस्वदेह मृत्पिंडमेनं सुतपोव्रताद्यैः ॥ निपी
डय भीतीर्भवदुखराशे र्हित्वात्मसाच्छैवसुखं करोपि ॥ ३२ ॥

अर्थ ॥ हवेसाधुने तपप्रमुखनुं उद्यमकरवुंकहेछे हेसाधु एविनाशशील तथा आ खरपोतानुंनही एहवोजेदेहरूप माटिनुंपिंड तेहने भलाजिनाज्ञासहित तपव्रतप्रमुखे करी दमीने संसारनादुःखसंबंधी सर्वभयछांडिने मुक्तिसंबंधी सुखतें पोतानेवश केमनथीकरतो ॥ ३२ ॥

यदत्र कष्टं चरणस्य पालने परत्र तिर्यङ्नरकेषु यत्पुनः॥तयोर्मि
थः सप्रतिपक्षता स्थिता विशेषदृष्ट्यान्यतरं जहीहि तत् ॥३३॥

अर्थ ॥ हेसाधुजेइहां श्रीजिनशासनेविषें चारित्रपालवानीकष्टछे अनेपरभवे ति र्यंचनरकादिकनेविषेजे कष्टछे तेबेहुकष्टने परस्परें प्रतिपक्षपणुंरहेछे एटलेजिहां चा रित्रकष्टछे तिहांतिर्यंचनरकनुं कष्टनथी अनेजिहां तिर्यंचनरकादिकना कष्टछे तिहां चारित्र कष्टनथी तेमाटेविशेषदृष्टियें विचारी तेबेमांथी एककष्टनेमूक ॥ ३३ ॥

शमत्र यद्विन्दुरिव प्रमादजं परत्र यच्चाब्धिरिव द्युमुक्तिगं ॥ तयोर्मि
थः सप्रतिपक्षता स्थिता विशेषदृष्ट्यान्यतरद्गृहाण तत् ॥३४॥

अर्थ ॥ हवेसुखनुंग्रहवुंकहेछे हेसाधोइहां चारित्रमांप्रमादकरवाथीजे सुख ते बिंदुजेटलुंछे अनेसंयमना पालवाथकीजे देवलोकमुक्तिनासुख तेसमुद्रसरखाछे तेबन्हेसुखने परस्परप्रतिपक्षपणुंछे जिहांप्रमादसुखतिहां मुक्तिसुखनथी अने जिहां मुक्तिसुख तिहांप्रमादसुखनथी माटेविशेषेंविचारी बेमांथी सारजाणेतेने आदर॥३४॥

अथवा॥नियंत्रणायाचरणेऽत्र तिर्यक् स्त्रीगर्भकुंभीनरकेषु या च ॥
तयोर्मिथः सप्रतिपक्षभावा द्विशेषदृष्ट्याऽन्यतरां गृहाण ॥३५॥

अर्थ ॥ हवेगुरुपारतंत्र्यआश्रयीकहेछे हेसाधुइहांजिनशासनमां चारित्रनेविषेजे गुरुपारतंत्र्यादिकत्रणप्रकारनो परवशपणुंछे अने तिर्यंचनाअवतारमां तथास्त्रीनागर्भ मां तथा कुंभीतेघणोजसांकडामुखनुंनारकीने उपजवानुंस्थानकतेमां उपनाजेनार कीते खंडोखंडथयी बाहेरनिकले तेहनेविषेजे परवशतापणुंछे तंबेहुने परस्परेंप्रति पक्षीपणुंछे एटले जिहांचारित्रनी नियंत्रणाहोय तिहांतिर्यंच स्त्रीअने नरकादिकनी नियंत्रणानहोय अनेजिहां तिर्यंचस्त्रीनरकादिकनी नियंत्रणाहोय तिहां चारित्रनी नियंत्रणानहोय माटेविशेषदृष्टियेंविचारीने तेबेमांथी एकनियंत्रणानेआदर ॥३५॥

सहतपोयमसंयमयंत्रणां स्ववशतासहने हि गुणो
महान्॥शिवं गुण इति वा पाठः॥ परवशस्त्वतिभूरि स
हिष्यसे न च गुणं बहुमाप्स्यसि कं च न ॥ ३६ ॥

अर्थ ॥ हवेपरवशेदुःखसहेवाकरता पोतानावशेंदुःखसहेवुंभलुंछे तेकहेछे हेसा धुतुं चोथप्रमुखतप तथा नियमअभिग्रहादिक ते यम तथासत्तरभेदें संयमसंबंधी एत्रण नियंत्रणाछेतेनुंसहनकर केमके एत्रण नियंत्रणाओते पोताने स्वाधीनपणे सहनकरवीछेते महोटो गुणछे तथापाठांतरे एथकी शिवंगुणके० मुक्तिरूपीओगुण होय अने जे अतिपरवशपणे एकेंद्रियादिकमां पराधीनथको घणीजनियंत्रणाओ सहीस तिहां अकामनिर्जरासिवाय अधिकुंगुणमात्र कांइपणपामीसनही॥ ३६ ॥

अणीयसासाम्यनियंत्रणाभुवा मुनेऽत्र कष्टेन चरित्रजेन च॥ यदि
क्षयो दुर्गतिगर्भवासगा सुखावलेस्तत्किमवापि नार्थितं॥ ३७ ॥

अर्थ ॥ वलीप्रकांतरेतेहिजकहेछे हेसाधो आजन्ममां समतारूपनियंत्रणातेसं बंधीकष्ट तथाचारित्रसंबंधीजे अल्पमात्रकष्ट तेणेकरी दुर्गति अने गर्भावाससंबंधी असुखनासमूह क्षयथायछे तोतेथी सुवांछितपणुंतुंनपाम्यो अर्थात्पाम्योज ॥३७॥

त्यज स्पृहां स्वः शिवशर्मलाभे स्वीकृत्य तिर्यङ्नरकादि दुःखं ॥
सुखाणुभिश्चेद्विषयादिजातैः संतोष्यते संयमकष्टभीरुः ॥ ३८ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रमादवंतने रीतेकरीकहेछे हेसाधुतुं जो विषयादिकथीउपनोजे सुख नोलेश तेणेकरी संतोषपामेछे अने संयमनाकष्टथीबीहेछे एरीतेंतो तें तिर्यंच तथा

नरकनुं दुःखकबुलकरीने स्वर्गमोक्षनासुखपामवानी वांछामूकीदीधी एटलेअणुमात्र सुख उपर राच्योथको स्वर्गमोक्षनुं अतुल्यसुखहारेछे एजावार्थछे ॥ ३७ ॥

समग्रचिंतार्तिहतेरिहापि यस्मिन् सुखं स्यात्परमं रतानां ॥
परत्र चेंद्रादिमहोदयश्रीः प्रमाद्यसीहापि कथं चरित्रे ॥३९॥

अर्थ ॥ हवेचारित्रथी इहलोकेंतथा परलोकेंसुखछे तेकहेछे चारित्रमांरक्तथयला एहवाजेनावसाधु तेहने सर्वचिंताना निवारवाथकी इहलोकेपण परमअनुपमसुख होय अनेपरलोकेंपण इंद्रादिकनीसंपदा तथा मोक्षनीसंपदाहोय तोहेसाधो एहवुंजे चारित्रतेनेविषे रह्योथकोतुं सुंप्रमादकरेछे यतः देवलोकसमाणोअ परियाउमहेसिणं ॥ रयाणअरयाणंच महाणरयसारिसा ॥ १ ॥ पुनः नच राजनयं नच चोरनयं न च वृत्तिजयं न वियोगजयं॥इह लोकसुखं परलोकहितं श्रमणत्वमिदं रमणीयतरं॥ २॥

महातपोध्यानपरीषहादि न सत्वसाध्य यदि धर्तुमीश ॥ तद्भावनाः
किं समितीश्च गुप्ती धत्से शिवार्थिन् न मनःप्रसाध्याः ॥ ४० ॥
अनित्यताद्या भज भावनाः सदा यतस्व दुःसाध्यगुणेऽपि संयमे॥जि
घत्सया ते त्वरते ह्ययं यमः श्रयन् प्रमादान्न भवाद्बिभेषि किं॥४१॥

अर्थ ॥ हवेजेबहुकष्टकरीशकेनहीतोते सुखसाध्यधर्मकरे तेकहेछे हेसाधु तुं पराक्रमवंतपुरुषने साधवायोग्य एहवाजे मासखमणप्रमुख महातप तथा प्राणायामादिक ध्यान तथाक्षुधादिकपरिसह धरवानेसमर्थनथी तोहेमोक्षनावांछक केवलमनेकरीज साधिसकीयेंएहवीजे अनित्यादिकभावनातेनुंसेवनकर ॥ ४० ॥ तथावलीप्रकारांतरेकहेछे हेसाधोतुंअनित्यताप्रमुख बारभावना ने सदाभज अनेदुःखें साधवायोग्य मूलोत्तरगुणछे जेना एहवासंयमनेविषेपण सुकुमालपणुंछांमीउद्यमकर केमके मृत्युते तुजने ग्रासकरवानीवांछायें उतावलुंथायछे दिनदिनप्रतें ढुकडुंआवेछे माटेप्रमादसेवतोथकोपण मनेकरीसंसारथकी बीहितोरहेजे ॥ ४१ ॥

हतं मनस्ते कुविकल्पजालै र्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः ॥ लब्धी
श्च सिद्धीश्च तथापि वांछन् मनोरथैरेव हहा हतोसि॥४२ ॥दग्धं
मनो मे कुविकल्पजालै र्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः॥लब्धीश्च सि
द्धीश्च तथापि वांछन् मनोरथै रेव हहा विहन्ये ॥ इतिवापाठः ॥४३॥

अर्थ ॥ हवेसामग्रीविनापण महोटामहोटा मनोरथकरवा अफलछे तेकहेछे हे

साधुताहरोमनतें मागविकल्पनासमूहें विणसाडयुं अनेवचनपण मृषाभाषणादिक पापेकरीविणसाडयुं वलीशरीरपण प्रमादजेमद्यादिकतेणेकरी विणसाडयुं एरीतें मनवचनकायारूप त्रणगुप्तिविणसाडी तोपण आमोसहीप्रमुखलब्धि तथामंत्रविद्यादिकसिद्धिने वांछेछे माटे हाइतिखेदे मनोरथेंकरीज पीडायछे जेमशाली ध्रुध खांडप्रमुख सामग्रीविनापण कोइमूर्खक्षीरनाभोजननुं मनोरथधरतो अहर्निशविकल्पेंज पीडाय तेमतुंपणपीडायछे ॥ ४२ ॥ तथावलीपागंतरें माहरुंमन कुविकल्पजालें विणास्युं तथा अवद्यके० मृषाभाषणादिकपापें वचनविणास्युं अनेप्रमादेकरीशरीर विणास्युं तोपण लब्धि अने सिद्धि प्रतें वांछतो थको हाइतिखेदे हुं मनोरथमात्रेंज सुंपीडाउंछुं इत्यादिक पहेलाकाव्यनुं पागंतर काव्यजाणवुं ॥ ४३ ॥

मनोवशस्ते सुखदुःखसंगमो मनो मिलेद्यैस्तु तदात्मकं भवेत् ॥
प्रमादचोरैरिति वार्यतां मिलच्छीलांगमित्रैरनुषंजयानिशं ॥ ४४ ॥

अर्थ ॥ हवेमननेसतसंगमांजोडवुं तेकहेछे हेसाधुताहरे सुखअने दुःखनोजे मिलाप तेमननेवशछे केमकेमनजेहनीसाथेंमिले तेरूपीथाय जेम तैलने जेहवाफूलनो संगमिले तेहवीवासनामयथाय माटे मननेप्रमादरूपचोरसाथेंमलतो वारीने नित्ये शीलांगरथरूपजेमित्र तेनीसाथेंमेलव जेथकीतुजने सर्वथासुखसाथेंज मिलापथाय ॥ ४४

ध्रुवः प्रमादैर्भववारिधौ मुने तव प्रपातः परमत्सरः पुनः॥ गले
न बद्धोरुशिलोपमोस्ति चे त्कथं तदोन्मज्जनमप्यवाप्स्यसि॥४५॥

अर्थ ॥ हवेयुक्तिविशेषेंकरी प्रमादनोपरिहारकहेछे हेसाधुप्रमादनाहेतुयेंकरी तुजनेसंसारमांपडवुंतो निश्चय थकीछे केमकेप्रमाद अनेसंसारने अग्निधुमादिकनीपरें नित्यबंधछे अनेवलीजो गलेबांधिमोटी शिलासरिखुं परप्राणीउपरमत्सरतुजनेछे तेवारे संसारसमुद्रमांथी तरीनिकलवुं केमपामिस माटेप्रमादअने मत्सरबेहुत्यज॥४५॥

महर्षयः केपि सहंत्युदीर्या प्युग्रातपादीन्यदि निर्जरार्थं ॥
कष्टं प्रसंगागतमप्यणीयोपीछन् शिवं किं सहसे न भिक्षो॥ ४६ ॥

अर्थ ॥ हवेकष्टसहेवाआश्री उपदेशआपेछे केटलाकमहाऋषी तेजढ्वाढ्रुसामी दीक्षितचार व्यवहारीपुत्रनीपरें शीतादिक परिसहनासहनारा वली उग्रके० घणोकठिण आतपके० तडकाप्रमुख कष्टने उदरीनेपण निर्जरानेअर्थेंसहेछे तेवारेंहे साधुतुं मुक्तिनेतोवांछेछे तेवारें प्रसंगथी उदयआव्युं एहवोस्वल्पमात्र कष्टप्रतेकांन सहेतो अनेकष्टसह्याविना मुक्तिकेमपामिस एभावार्थ ॥ ४६ ॥

यो दानमानस्तुतिवंदनाद्भिर्न मोदतेऽन्यैर्न तु दुर्मनायते ॥ अला
भलाभादिपरीषहान् जयन् यतिः सतत्वादपरो विडंबकः ॥ ४७ ॥

अर्थ ॥ हवेअसाधुपणा तथा साधुपणानो भेददेखाडेछे जेलाभअलाभादिक प
रिषहनेजीपतोथको ग्रहस्थनुंआप्यो अहारउपधिप्रमुखदान तथासत्कारस्तुतिप्रमु
खमान इत्यादिकेकरी हर्षपामेनही अनेअलाभ अपमान प्रहारादिकें दुहवायनही
तेहिजपरमार्थथी यतिजाणवो अने अपरके० बीजाजेदान वंदनादिकथी हर्षपामे
तथा अलाभनंदादिकथी दुहवाय तेयतिनावेषे विडंबकके० नटरूपजाणवा ॥४७॥

दधगृहस्थेषु ममत्वबुद्धिं तदीय तप्त्या परितप्यमानः ॥ अ
निर्वृतांतःकरणः सदा स्वै स्तेषां च पापैर्भ्रमिता भवेसि॥४८॥

अर्थ ॥ हवेमनोगुप्तिराखवानेअर्थें यतियें ग्रहस्थनी चिंताकरवीनही तेकहेछे
हेसाधुतुंग्रहस्थनेविषे ममत्वनीबुद्धिधरतोथको अनेग्रहस्थनीचिंतायें तपतोथको
पोतानापापें तथाग्रहस्थनापापें निरंतरव्याकुलचित्तवंतथको संसारमांभमीस॥४८॥

त्यक्त्वा गृहं स्वं परगेहचिंता तप्तस्य को नाम गुणस्तवर्षे ॥
आजीवि काऽस्ते यतिवेषतोऽत्र सुदुर्गतिः प्रेत्य तु दुर्निवारा ॥४९॥

अर्थ ॥ हेसाधु पोतानुंघरमूकीने वलीपारका श्रावकादिकनाघरनी चिंतायेंकरी
तुजनेशोगुणछे एकघरमूकी घणाघरनीचिंतायें कोइगुणनथी आभवमांतोतुजने यति
वेषनाप्रतापथी आजीविकाचालेछे पणपरभवेंतो तुजने अतिशयदुर्गतिदुर्निवारक
एहवा नरकादिकछे पणपरभवें दुर्गतिनोवारनारकोइनथी एभावार्थ ॥ ४९ ॥

कुर्वे न सावद्यमिति प्रतिज्ञां वदन्नकुर्वन्नपि देहमात्रात् ॥ शय्या
दिकृत्येषु नुदन् गृहस्थान् हृदा गिरा वाऽसि कथं मुमुक्षुः॥ ५०॥

अर्थ ॥ हवेतुंकायामात्रथीसाधुछो पणमनवचनथीसाधुनथी तेकहेछे हेमुक्तिवां
छकसाधुतुं नित्यप्रतें आवश्यककरतां सव्वं सावज्जजोगं पच्चरकामि जा जीवाए तिविहं
तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं इत्यादिकपाठकहीने हुंसर्वसावद्यकरुंनही एहवीप्र
तिज्ञाकरतोथको तेसावद्यमात्र शरीरथीज अणकरतोथकोथयो पणशय्या जेउपाश्र
यप्रमुख कार्यनेविषे ग्रहस्थनेप्रेरतोथकोछो तो तेमांमनथी अनेवचनथी मुमुक्षु तेश
नोछे एटले मन वचन कायायेंकरी सावद्यमूके तेहनेमुमुक्षुकहियें अनेतुंतोकायामा
त्रथीज सावद्यकरतोनथी पणमनथी सावद्यचिंतवेछे अनेवचनथी सावद्यकर्मप्रेरेछे
तेमाटेमनथी तथा वचनथी मुमुक्षुनथी मात्रकायाथीज मुमुक्षुछे एभावार्थ इत्यादि

एतले आवेशदेवामात्रजजाणवी बीजीप्रवर्त्तनरूपप्रकरण इत्यादिकप्रेरणीयछे एटले पूर्वेपण श्रावकें एकृतकर्युंछे तेजनुंकारणछे इत्यादिकप्रेरणाकरवानुंतो साधुनेव्यवहारछेज यथाश्रीरायप्रश्नीयसूत्रे उत्तमेयंसुरियाजा पुराणमेयंसुरियाजा जीवमेयंसुरियाजा करणिज्जमेयंसुरियाजा आइणमेयंसुरियाजा अप्रणुनायमेयंसुरियाजा इत्यादिक विधिवाक्यदेखायछे तेप्रेरणाजाणवी ॥ ५० ॥

कथं ममत्वाय ममत्वतोवा सावद्यमिछस्यपि संघलोके ॥ न हेममय्यप्युदरे हि शस्त्री क्षिप्ता क्षिणोति क्षणतोप्यसून् किं॥५१॥

अर्थ ॥ वलीतेहजकहेछे हेसाधोतुं साधुसाध्वी श्रावकश्राविकारूप चतुर्विधसंघमां अमुकागीतार्थनावखतमां आचैत्यकराव्युं एहवीमहोटाईपामवानेअर्थें तथाआ अमारागछनो चैत्यउपाश्रयादिकछे इत्यादिकममत्वथकी शुंसावद्यकर्मवांछेछे संसारीनीपरे सारंभकार्यसर्वमाथेलेइने करवाशुंवांछेछे अथवासंघमां महत्वपामवानेअर्थें तथाममत्वथकीज सावद्यजे धनप्राप्ति प्रमुखतेशुंवांछेछे जेमाटे सोनानीछुरीपण पेटमांचापीथकी शुंप्राणहरणनथीकरतीके. एटलेसोनानीछुरीपण पेटमांमारीथकी प्राणहरेछे तेमसंघनिमित्तपण अविधियें सावद्यकर्मकीधुंते संयमरूपप्राणनेहरेछे५१॥

रंकः कोपि जनाभिभूतिपदवीं त्यक्त्वा प्रसादाद्गुरोर्वेषं प्राप्य यतेः कथंचन कियच्छास्त्रं पदं कोपि च ॥ मौखर्यादिवशीकृतर्जुजनतादानार्चनैर्गर्वभाग् आत्मानं गणयन्नरेंद्रमिव धिग्गंता द्रुतं दुर्गतौ ॥५२॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने उद्धतपणुंनिवारवा उपदेशछे कोइकपुरुषपूर्वें ग्रहस्थावस्थायें रांकहोय अनेलोकोने उपहास्यकरवायोग्य निंदाकरवायोग्य विविधप्रकारनी लोकोनीसेवा करवायोग्यहोय पछेगुरुनापसायथी तेअवस्थात्यजी यतिनोवेषपामीतथाघणाकष्टें कांइकशास्त्रनुंजणवुंपामी तथातेमांवली कोइकआचार्यउपाध्यायादिकपदवीपामिने वाचालपणा प्रमुखकलायें भोलालोकोनेवशकरी तेहनाकरेला जे दानपूजा सत्कारादिक तेणेकरीने अहंकारधरतो थको पोताना आत्माने राजातुल्यगणे पण एमनजाणेजे हुंते शीगणतिमांछुं एसर्व दानपूजादिक जे थायछे तेतो श्रीजिनेश्वरना मार्गने थायछे तेमाटेहाइतिखेदे तेप्राणी उतावलुं दुर्गतिजे नरकादिक तेमांजाशे माटेगर्वनकरवुं ॥ ५२ ॥

प्राप्यापि चारित्रमिदं दुरापं स्वदोषजैर्श्चेद्विषयप्रमादैः ॥ भवांबुधौ धिक् पतितासि भिक्षो हतोऽसि दुःखैस्तदनंतकालं॥५३॥

अर्थ ॥ हवेदुर्लभचारित्रपामिने विषयप्रमादत्यजवा तेप्रकारांतरेकहेछे हेजिव दुर्लभएहवुंजे चारित्रतेपामिने जोपोतानावांकथीउपना एहवाजे विषयप्रमाद तेणे करीतुंसंसारसमुद्रमांपडीश तेवारे ते अनंताकालसुधी चारगतिसंबंधीनादुःखेकरीने पीडाइश तेमाटेधिःकारछेतुजने जेतुंचारित्रनेविषे उजमालथातोनथी ॥ ५३ ॥

कथमपि समवाप्य बोधिरत्नं युगसमिलादिनिदर्शनाद्दुरापं ॥
कुरु कुरु रिपुवश्यतामगछन् किमपि हितं लभसे यतोऽर्थितं शं॥५४॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतसहित बोधनुंदुर्लभपणुंकहेछे हेसाधुतुंयुगसमिलादिक दशदृष्टांतेंकरी दुर्लभएहवुं समकेतरूपरत्न तेघणेकष्टेंपामिने आगलेंवक्ष्यमाण विषयादिक शत्रु तेहनुंआधीनपणुंत्यजतुंथको कांइकआत्मानुंहितजे संयमादिकतेकर जेथकीवांछितसुखपामे. चुल्लग पासग धन्ने जूए रयणेय सुमिण चक्केअ ॥ चम्मजूगे परमाणु दस दिठंता मणुयलंभे॥१॥एदशदृष्टांतनानामजाणवा ॥ पुव्वं तेदुज्जुगं अवरं ते तस्स हुज्जसमिलाउ ॥ जुगछिड्डंमि पवेसो इय संसइउ मणुअलंभो ॥१॥ इत्यावश्यके ॥५४॥

द्विषस्त्विमे ते विषयप्रमादा असंवृता मानसदेहवाचः ॥ असंयमाः सप्तदशापि हास्या दयश्चबिभ्यच्चर नित्यमेभ्यः ॥५५॥

अर्थ ॥ हवेनामथकी शत्रुदेखाडीने तेथीदूररहेवानो उपदेशआपेछे हेसाधो विषयजेशब्दादिकपांच तथाप्रमादजे मद्यादिक पांच अने असंवृतकहेतां मोकलामूक्या एवाजे मनवचनकायानायोग तथा प्राणातिपातादिक पांचअव्रत अनेपांचेंद्रियनुं अणजीतवुं तथाक्रोधादिक चारकषायनो अपरिहार अनेमनवचनकाया एत्रणयोगने दुःप्रवर्त्तियेंप्रवर्त्ताववुं एसर्वमलीसत्तर असंयमनास्थानक तथावली हास्य रति अरति भय शोक दुगंछा ए हास्यषट्क एटलां ताहाराशत्रुछे तेमाटेएथकी सदाकाल बीहीतोथको विचरजे ॥ ५५ ॥

गुरूनवाप्याप्यपहाय गेह मधीत्य शास्त्रण्यपि तत्ववांचि ॥
निर्वाहचिंतादिभराद्यभावे प्यूषे न किं प्रेत्य हिताय यत्नः॥५६॥

अर्थ ॥ हवेसर्वसामग्री मल्याछतांपण आत्महितकांनथीकरतो तेकहेछे हेऋषितुं घरछांडीने गुरुजेधर्माचार्य तेहनेपामीने तथातत्वप्ररूपक शास्त्रजेसिद्धांत तेभणीने पण तथानिर्वाहजेआजीविका तेहनीचिंता अनेआदिशब्दथी वस्त्रपात्र वसतिप्रमुख नीचिंता अनेराजभय चौरभय इत्यादिकतेहनो भरजेसमूह तथावलीआदिशब्दथी गृह राज देशांतर जलपंथ प्रमुखव्यापार तेहनो अभावछतां पण परलोकना हितने

अर्थ कांउद्यमनथीकरतो एटले सकलसामग्रीने योगेपण जोआत्महितनथी साध तो तोपछे घणोज शोचकरीश एजावार्थछे ॥ ५६ ॥

विराधितैः संयमसर्वयोगैः पतिष्यतस्ते जवदुःखराशौ ॥ शास्त्रा णि शिष्योपधिपुस्तकाद्या जक्ताश्च लोकाः शरणाय नालं॥५७॥

अर्थ ॥ हवेसंयमग्रहीने संयमविराधनानकरवी तेकहेछे हेयतितेंविराध्या एहवा जे संयमनासर्वयोग एटले मूलगुणउत्तरगुणादिकविराध्यातेहेतुयेंकरीने संसारना दुःखसमूहमांपडतातुजने शास्त्रजेआगमादिक तथाशिष्यजे उपधीपुस्तकप्रमुख तथा वलीजक्तलोकजे श्रावकश्राविकादिक तेकोइशरणआपवाने समर्थनहीथाय पण एक संयम मात्रज अविराध्यो थको शरणदाइथाशे ॥ ५७ ॥

यस्य क्षणोपि सुरधामसुखानि पल्यकोटीर्नृणां द्विन वतीं ह्यधिकां ददाति॥ किं हारयस्यधम संयमजीवि तं तत् हा हा प्रमत्त पुनरस्य कुतस्तवाप्तिः ॥५८॥

अर्थ ॥ हवेसंयमेंजीवितनुं फलदेखाडी प्रमादनोपरिहार उपदेशेछे हेसाधो संय मजीवितनुं क्षणजेमुहूर्त्तमात्र तेपणपुरुषनेनिश्चयथी साधिक बाणोकोडिपल्योपमल गें देवलोकनासुखआपे यदुक्तं प्रतिक्रमणसूत्रवृत्तौ सामाइयंकुणंतो समनावंसा वउअघडियदुगं ॥ आउसुरेसु बंधइ इत्तिय मित्ताइ पलियाइं ॥१॥ बाणवईकोडीउ लरकगुणसहिसहस्सपणवीसं॥ नवसयपणवीसाए सतिहा अडजाग पलियस्स ॥२॥ इति बाणुकरोड ओगणसाठलाख पचीसहजार नवसेंपचीश एटलापल्योपम अनेएक पल्योपमना नवजागकरीयें एहवाआठनवमांश अनेतेउपरवली एकनवमांशनो एक तृतीयांश एटलुंदेवायु बेघमीना एकसामाइकथीबंधाय ते आंके करी लिखियेंछेयें ९२ ५९ २५ ९ २५, ८१. तो हाहाइतिखेदे हेअधमनीचप्राणी तुं संयमेंजीवितने के महारेछे हेप्रमादवंतफरीनेतुजने एसंयमनीप्राप्ति क्यांथीथाशे ॥ ५८ ॥

नाम्नापि यस्येति जनेऽसि पूज्यः शुद्धात्ततो नेष्टसुखानि कानि॥ त त्संयमेऽस्मिन् यतसे मुमुक्षो ऽनुजूयमानोरुफलेपि किं न ॥५९॥

अर्थ ॥हवेअधिकारसमाप्तिना मंगलनेअर्थे संयमनाशुजफल देखाडी शिक्षाकहेछे हे मोक्षार्थीसाधु जेसंयमना केवलनाममात्रथीज एटलेसंयमी एहवुंनाममात्र धराव्या थीज प्रत्यक्ष प्रकारें करी लोकनेविषे तुं पूजनीकथयोछो तोशुद्धनिर्मल संयमथी शाशास्वर्गमोक्षादिक वांछितसुखनहोय एटलेसंयमथी अनीष्टसुख होयज तेमाटेप्र

त्यक्ष्दृश्यमान जेहनुं महाफलअनुनवायछे एहवाए संयमनेविषे तुं कांउद्यम नथी करतो सर्वथा उद्यमकरवोज युक्तछे ॥५०॥ इति श्री अध्यात्मकल्पद्रुमे यतिशिक्षानिधानोनाम त्रयोदशोधिकारः संपूर्णः ॥

अथ सामन्यतो यतीन् विशेषधर्मस्थगृहिणश्चाश्रित्य मिथ्यात्वादिसंवरोपदेशः॥ मिथ्यात्वयोगा विरतिप्रमादा नात्मन्सदा संवृणु सौख्यमिछन् ॥ असंवृता यद्भवतापमेते सुसंवृता मुक्तिरमां च दद्युः॥ १ ॥

अर्थ॥ हवे यतिने तथासम्यक्तमूलबारवृत्तधारक श्रावकने साधारण मिथ्यात्वाव्रतिकषाय योग निरोधोपदेश तथा संवरोपदेश नामा चौदमो अधिकारकहेछे तिहांप्रथमकर्मबंधनाहेतुजे मिथ्यात्वादिकतेहनुंसंवरकहेछे हेआत्मातुं सुखनेवांछतो होयतोमिथ्यात्वजे अनिग्रहिकादिकपांच तेमांअनिग्रहिक तेपोतानाशास्त्रादिकनां ममत्वथी कदाग्रहकरवो तेकुतीर्थिपाखंडादिक बीजुंअनाभिग्रहिक ते सर्वे देवाः सर्वे गुरुवः सर्वे धर्माश्च आराध्याः एहवोअभिप्राय जेसामान्यप्राकृतलोकोनोते त्रीजुंआभिनिवेशिक ते वस्तुनुं यथास्थित स्वरूपजाणेथके पण कोइदुष्टाभिनिवेशना वशथी पोतानुं मतथापवानेअर्थे गोष्टीमाहिलादिकनीपेठे असत्यरूपणानुंकरवुं चोथोसांशयिक ते देवादिकतत्वनेविषे आसाचूंके आसाचूं एमसंदेहधरवो पांचमुं अनाभोगिकते अनाभोगनावशथकी एकेंद्रियादिकनेविषे जीवादिकतत्वनुं अणजाणवुं ॥ एपांचमिथ्यात्व तथा अशुभमनोयोगादिकत्रण अनेअविरतिते प्राणातिपातादिकपांच तथाप्रमाद जे मद्यादिक पांच एचारेनेसदाकालजगे संवरवुंकेमके एचारेने अणसंवख्याथका संसारनातापप्रत्ये आपे अने संवख्याथका मुक्तिरूपिणी लक्ष्मीनेआपे ॥ १ ॥

मनः संवृणु हे विद्वन्नसंवृतमना यतः ॥
याति तंडुलमत्स्यो द्राक् सप्तमीं नरकावनीं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथमथी मननुंसंवरउपदेशछे हेपंडितआत्मा तुंताराममननेसंवर केमकेमनने संवरे रहित एवुंजे तंडुलमत्स्य तेउतावलुं थोडाकालमांज सातमांनरकपृथ्वीयें जइअवतरे एमत्स्यसमुद्रमाहेला महोटामत्स्योनी आखनीपांपणमांहे सूक्ष्ममत्सिने गर्भे सातमीनरकथीचवीनेअवतरेछे तेमत्स्य तंडुलप्रमाणगर्भजथाय पछेतेमहामत्स्यना मुखनाफाडमा पेसतांनिकलतां एहवाअनेकन्हाना मत्स्यादिकदेखीने तेतंडुलमत्स्यएहवुंचिंतवेजे हाहाइतिखेदेजो माहारी आवडीमोहोटी कायाथइहोततो हुंआ सर्वजीवनाकोलियाकरुं पणएमांथीएकेनेजावानआपुं एवुंमहादुर्ध्यान चिंतवतोथको अंतर्मुहूर्त्तप्रमाण आयुभोगवीने एकमुहूर्त्तने अंतरेंवली सातमीनरकपृथ्वीयें जइ अ

वतरे एरीतेंजीवते वचन तथाकायायें अशक्तथकोहोयतो पण मात्रएकमननाज अ संवरथकी तंडुलमत्स्यनीपेरें डुर्गतिगामीथाय ॥ २ ॥

प्रसन्नचंद्रराजर्षे र्मनःप्रसरसंवरौ ॥ नरक
स्य शिवस्यापि हेतुभूतौ क्षणादपि ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ वलीतेउपरज दृष्टांतकहेछे हेप्राणि मननुंप्रसरजे डुर्ध्याननीप्रवृत्तिअने संवरजे डुर्ध्यानथीनिवृत्ति तेबेहु एकक्षणमात्रमांजेम प्रसन्नचंद्रराजऋषिनेनरकनां अने मुक्तिनापण कारणथया केमकेतेने मननाडुर्ध्यानथी एकक्षणमात्रमां सातमांनरकनुंद लमेलव्युं अने तेजमनना संवरथी एकक्षणमां केवलज्ञानपण उपार्ज्युं. ॥ ३ ॥

हवेसंक्षेपथीतेप्रश्नचंद्रराजऋषिनोसबंधलखीयेंछैयें क्षितिप्रतिष्ठितपुरमां प्रसन्नचंद्रराजा राज्यकरताहता अन्यदातिहां श्रीवीरस्वामी समोसस्था प्रसन्नचंद्रराजा सह परिवारें वांदवाआव्यो देशनासांजली वैराग्यपाम्यो पुत्रनेराज्येस्थापी श्रीवीरपासें पोतेदीक्षालीधी अनुक्रमेगीतार्थथयो अन्यदाविहारकरतो राजगृहनगरेंआव्यो तिहांजिनकल्पीनी तुल्यनानेअर्थें स्मशानमां काउसग्गधरीरह्योछे एटलामांश्रीवीरस्वामीराजगृहनगरेंसमोसस्याछे नगरलोकसर्व जगवंतने वांदवाजायछे एटलामांकोइएक बेवणिक तेक्षितिप्रतिष्ठितनगरथीआव्याछे तेमांथीएकवणिक प्रसन्नचंद्रराजर्षिने जोइबोल्यो केधन्यछेआपणाराजानेजे राज्यलक्ष्मीतृणनीमाफकत्यजीने ध्यानाधिरूढथको उग्रतपकरेछे तेसांजलीबीजोवणिकबोल्यो केअहोधिःकारछेएनातपने एनुंमुखजोवायोग्यनथी केमकेएबापडाबालकपुत्रने राज्यआपी मूढथइनिकल्यो अनेपाछलतो सीमाडेबीजाराजायेंआवीनेबालकनुंराज्यहरीलेवानगरघेर्युंछेनगरतथादेशनालोकसर्व अनाथथयाथका बहुतलपेछे माटेदेशजांगसे घणुंअनर्थथाशे तेथीएतेंशुंधर्मआराधेछे ते सांजलीप्रसन्नचंद्रराजर्षि ध्यानथीचूकीने चिंतववालागो केअहोमुजबेगा माहारुं राज्यले एवोकोणछे एमरौद्रध्यानमां व्याप्तथइने मनसाथेंज महासंग्राममकरवामांमंड्यो तेसमयेंश्रेणिकराजा श्रीवीरने वांदवाजातांमार्गमां तेकाउसग्गधरसाधुदेखी जक्तिपूर्वकवांदी तेहनीउग्रतपस्याने अनुमोदतो समोसरणेपहोतो त्यांश्रीवीरनेवांदिनेपुछ्युं जेस्वामीएप्रसन्नचंद्रराजर्षि ध्यानाधिरूढअवस्थामां मेंवांद्यो तेअवस्थाने समयें काल करेतो शीगतिपामें जगवंतेंकह्युं सातमीनरकपामें तेसांजलिश्रेणिकसंभ्रांतथइरह्यो हवेप्रसन्नचंद्रराजर्षियें मनथीसंग्रामकरतां सर्वशत्रुहण्या अनेएककोइमहोटा शत्रुनीसाथेयुद्धकरता आयुधसर्वनष्टथयाछे त्यारेजाण्युंजे माथेंलोहनोटोपपहेस्योछे तेलइनेशत्रूनेमारुं एमचिंतवी माथेहाथनाख्यो एटलेमस्तकतत्कालनुं लोचितमुंमदेखी

ने मनमांसंवेगपाम्यो पश्चात्तापकरवालाग्यो हाहाआमेंशुंडुर्ध्यानचिंतव्युं मिछामिछक डदेवालागो एवामांफरीश्रेणीकें वीरनेपुछ्युं हेस्वामीआसमये राजर्षिकालकरेतोशीग तिपामे जगवंतेअनुत्तरविमानकह्युं तेसांजलीविस्मितथइने श्रेणिकेपुछ्युं कहोस्वा मी पहेलेप्रश्नेतोतमे नरककह्यो तेएतपस्वीनेकेमसंजवे अनेएकमुहूर्त्तनेआंतरे अनु त्तरविमानकह्युं तेपणअसमंजस अथवा ज्रांतेकरीनेमें अन्यथामांजल्युं तेवारेंज गवंते यथास्थित सर्ववृत्तांतेंकरी श्रेणिकनोसंदेह टाल्यो एटलामां देवडुंडुजिनो नादसांजलीने श्रेणीके पुछ्युं हेस्वामि आमहोत्सवक्यांथायछे जगवंतेकह्युंजे प्रस न्नचंड्राजर्षिने केवलज्ञानउपनुं त्यांदेवता महोत्सवकरेछे एमएप्रसन्नचंड्राजर्षिने एकमुहूर्त्तनेअंतरे मननोव्यापार नरकहेते अनेमुक्तिहेतेपणथयो ॥

मनोऽप्रवृत्तिमात्रेण ध्यानं नैकेंड्रियादिषु ॥ धर्म्य
शुक्लमनःस्थैर्य जाजस्तु ध्यायिनः स्तुमः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवेपवनसाधनादिकथी मननोरोधनिरर्थकछे तेकहेछे केवलमननीअप्र वृत्तिजे मनोव्यापाररहितपणुं तेणेकरीने एकेंड्रियादिकजे एकेंड्रिय बेंड्रिय तेंड्रिय चौं रेंड्रिय असंज्ञिपंचेंड्रिय तेहनेविषेध्यानजे मनोरोध लक्षण तेशुंनथी एटलेपवनसा धनादिक मनोरोधकरवाथी जोध्यानथायतो एकेंड्रियादिकनेविषेथाय केमकेतेहनेस्व जावथीज मननेअजावेंकरी मनोव्यापारनीप्रवृत्तिनथी तेथीपवनसाधनादिकतेकोइस माधिलक्षण ध्याननोउपयोगीनथी श्वासरोधादिक क्लिष्टकर्मथी सहसुं मनआर्तियें व्याकुलथाय पणजेधर्मध्यान अनेशुक्लध्यान तेणेकरीने मननीस्थिरतानेजजे एवाजे ध्याननाकरनार तेनेज स्तवियेंछैयें एटलेध्यानते तेनुंजप्रमाणछे इतिजावः ॥ ४ ॥

सार्थं निरर्थकं वा यन्मनः सुध्यानयंत्रितं ॥ विरतं
डुर्विकल्पेभ्यः पारगांस्तां स्तुवे यतीन् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेध्यानेकरी जेहनुंमनसार्थकके०सफलछे अथवानिरर्थकके०निष्फलछे तोपण शुजध्यानेकरियंत्रित एटले सांकलूंथकुं डुर्विकल्पजे अशुजकार्यनामनोरथ ते हथीविरम्यूंछेतोतेसदाध्यानजछे एहवाजे संसारनापारगामी साधुतेहने हुंस्तवुंछुं ॥ ५

वचोऽप्रवृत्तिमात्रेण मौनं के के न बिभ्रते ॥ निर
वद्यं वचो येषां वचोगुप्तांस्तु तांस्तुवे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेवचनयोगनुं संवरउपदेशछे केवलवचननीअप्रवृत्ति एटलेमात्र वच ननेज अणउचरवेकरीने कोणकोणएकेंड्रियादिक तथा पंचेंड्रियमांपण रोगविशे

वली तथा मनुष्यमांपण मुंगाबोबडाप्रमुखप्राणी मौनपणानेनथीधरतासुं एटले तेसर्वेमौ नपणोजधरेछे तोतेथी तेहने वचनगुप्तिवंतनकहियें पण जेहनुंवचन निरर्थक० पाप रहितहोय एटलेवचनबोल्यानी शक्तिछतांपण सर्वथासावद्यवचननबोले तेनेवचनगुप्ति वंतकहियें तेवानेहुंस्तवुंबुं पणमात्रमौनपणोज धरवाथी वचनगुप्तिवंतनकहियें ॥६॥

निरवद्यं वचो ब्रूहि सावद्यवचनैर्यतः ॥ प्रया
ता नरकं घोरं वसुराजादयोद्रुतं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेदृष्टांतेकरीने सावद्यवचननुं अनिष्टफलदेखाडेछे हेप्राणितुं पापरहि तवचनबोल केमके सावद्यवचनेकरीने वसुराजा प्रमुख ते घोररौद्र एहवोजे नरक तेने पाम्यां तेवसुराजानोसंबंध श्रीहेमाचार्यकृत रामचरित्रमांथी विस्तारेंजोइलेवो ए मजाणी असत्यवचन सावद्यवचननो परिहारकरवो ॥ ७ ॥

इहामुत्र च वैराय दुर्वाचो नरकाय च ॥ अग्निद
ग्धाः प्ररोहंति दुर्वागदग्धाः पुनर्नहि ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ वलीतेहिजकहेछे जेदुर्वचनो तेआभवमां अनेपरभवमांपण वैरकारीथा य अनेवलीनरकदाइपणथाय जेमाटेअग्नियेंकरीदाधाजेवृक्षादिक तेफरीनवपल्लवथा य पण दुर्वचननादाधाजेमनुष्य तेनवपल्लवनथाय एटलेस्नेहांकुर तेनेप्रगटेनही केम के दुरवचनथी उपनोजे वैरभाव तेजन्मांतरेपणनमटे इतिभावः ॥ ८ ॥

अतएव जिना दीक्षा कालादाकेवलोद्भवं ॥ अव
द्यादिभिया ब्रूयु ज्ञानत्रयभृतोपि न ॥ ९ ॥

अर्थ॥ एटलामाटे दीक्षालीधापछे केवलज्ञानउपजेंतिहांलगें जिनजेतीर्थंकरदेव तेमति श्रुत अवधि एत्रणज्ञानना धारकछतांपण अवद्यजेपाप तथाआदिशब्दथी वचनते ध्यानविघातादिकछे एमजाणी तेहनाभयथी बोलेनही यद्यपि भगवंतने छ द्मस्थपणे मनपर्यवज्ञाननी सत्ताहोय तथा पिइहांत्रणज्ञानना धारककह्या तेजाणि येंछैयेंजे मनपर्यवज्ञाननुंतो मात्र मननो पर्यायजाणवानुंज सामर्थ्यछे तेमाटेआ चार्ये इहांकह्युंनही अनेउपाध्यायश्री रत्नचंद्रगणिकृत एजग्रंथनी टीकामांपण एम जलख्युंछे वलीविशेषबुद्धिवंतेविचारवुं ॥ ९ ॥

कृपया संवृणु स्वांगं कूर्मा ज्ञाननिदर्शनात् ॥ सं
वृतासंवृतांगा यत् सुखदुःखान्यवाप्नुयुः ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेकायसंवरकहेछे हेप्राणि तुंकरुणायेंकरीने कांचबानादृष्टांतनानि

दर्शनथकी पोतानीकायानेसंवर केमके कायानासंवरवंत अने असंवरवंतते अनुक्रमे सुखअनेदुःखपामे एटलेकायाना संवरवंततेसुखपामे अनेअसंवरवंतते दुःखपामे जे मबेकाचबाहता तेमांथीएकेपोताना अंगसंवस्यातो पापीशीयालथीमृत्युनपाम्यो अने बीजेपोतानाअंगसंवस्यानही तो पापीशीयालथी अकालमृत्युपाम्यो एदृष्टांत सविस्तरपणे श्रीज्ञातासूत्रना चोथाअध्येनथी जाणवुं ॥ १० ॥

कायस्तंभान्न के के स्यु स्तरुस्तंभादयो यतः ॥ शि

वहेतुः क्रिया येषां कायस्तांस्तु स्तुवे यतीन् ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ केवलकायने स्थिरतामात्रथीतोतरुजे वृक्ष तथा अचेतनजे स्तंभादिक ते कोणकोणसंवरवंतनथी अर्थातजेकोइ कायव्यापारना असमर्थछे तेसर्वेकायसंवरवंतजछे पणजेहनीक्रियाजे कायव्यापार तेमोक्षनेअर्थेहोय तेहने कायगुप्तिवंत कहियेंछेयें जेकायव्यापारने छतेसामर्थे पण अशुभकायव्यापारने रुंधे अनेशुभक्रियानो खप करे तेहने कायगुप्तिवंतकहियें इतिभावः ॥ ११ ॥

श्रुतिसंयममात्रेण शब्दान्कान् के त्यजंति न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १२ ॥

अर्थ॥हवेपंचेंद्रियनुं संवरकहेछे तेमांप्रथम श्रोत्रेंद्रियआश्री कहेछे केवलकानना व्यापारना निरोधथकीज कोणकोणएकेंद्रिय बेंद्रिय तेंद्रिय चोरेंद्रिय तथापंचेंद्रियतिर्यंच अनेमनुष्यमध्येपण बेहेराप्रमुखजे श्रोत्रेंद्रियेंविकल होय तेशब्दनाविषयने नथी त्यजतासुं अर्थातत्यजेजछे पणजेवारेंइष्टजे मृदंगादिवाजित्र तथास्त्रीकोयलप्रमुखना शब्द अनेअनिष्टजे खर तथाघूक प्रमुखनाशब्द नेविषे रागअने द्वेषत्यजे तेवारेंमुनिथाय

चक्षुःसंवरमात्रात्के रूपालोकास्त्यजंति न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १३ ॥

अर्थ ॥ केवलनेत्रव्यापारनेज तजवाथकी कोणकोण एकेंद्रिय बेंद्रिय तेंद्रिय तथा अंध मनुष्यादिक तेदृष्टिविषयने नथीत्यजतासुं अर्थातत्यजेजछे पणइष्टजे स्त्रीनां कटाक्ष नाटकप्रमुख तथाअनिष्टजे अमेध्य बीभत्सप्रमुख एवाजेएदृष्टिनाविषय तेहनेविषे राग अने द्वेषने त्यजे तेवारें ते मुनिथाय ॥ १३ ॥

घ्राणसंयममात्रेण गंधान् कान् के त्यजंति न ॥

इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ केवलनाकना व्यापाररहितपणाथी कोणकोण शुभाशुभगंधने एकेंद्रिय

केंद्रियादिक तथाबीजापण घ्राणेंद्रियें विकलथयेला प्राणि नथीत्यजतां अर्थातत्य जेजछे पणइष्टजे फुलप्रमुख अनेअनिष्टजे अमेध्यादिक एवाजेगंध तेहनेविषे राग अने द्वेषत्यजे तेवारें तेमुनिथाय ॥ १४ ॥

जिव्हासंयममात्रेण रसान्कान्के त्यजंति न ॥
मनसा त्यज तानिष्टान् यदीछसि तपःफलं ॥ १५ ॥

अर्थ ॥ केवलजिव्हाना संवरमात्रथीज कोणकोणशुनाशुन रसने पृथ्वीकायादिक एकेंद्रिय तथाबीजापण जावरसनेंद्रियथी विकलथयेलाप्राणी पे नथीत्यजतासुं अ र्थातत्यजेजछे पणहेआत्माजो तुं तपनुंफलवांछेछे तो तेजेइष्टवांछित मधुरादिकरस तेने मनसाकहेतां मनोयोगपूर्वक समता परिणामेकरीनेत्यज ॥ १५ ॥

त्वचःसंयममात्रेण स्पर्शान् कान्के त्यजंति न ॥
इष्टानिष्टेषु चैतेषु रागद्वेषौ त्यजन्मुनिः ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ केवलत्वचाजे स्पर्शनेंद्रिय तेहनो संयमजे स्पर्शज्ञानना नलेवानी शून्यता तेणेकरीने कोणकोणप्राणी शुनाशुनस्पर्शने नथीत्यजता अर्थातत्यजेजछे यद्यपि एकेंद्रियादिक सर्वजीवने स्पर्शनुं विषयहोयछे तथापिकुष्टादिक रोगनावशथकी त्वचानीबहिरिनाधणीने स्पर्शनुंज्ञाननजहोय एनावछे पणइष्टजेस्त्रीस्पर्शादिक तथा अनिष्टजे ताप शीत डांस मसा प्रमुखनेविषे राग द्वेषनेत्यजे तेवारेंजमुनिथाय॥१६

बस्तिसंयममात्रेण ब्रह्म के के न बिभ्रते ॥
मनःसंयमतो धेहि धीर चेत्तत्फलार्थ्यसि ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीस्पर्शनेंद्रियमां विशेषकहेछे बस्तिके० मूत्राशय एटलेगुह्येंद्रिय ते नासंवरमात्रथीज ब्रह्मचर्यधारणनथीकरतां सुं एटले नारकी संमूर्छिमपंचेंद्रिय प्रमुख तथा पुरुषरूपनपुंसक अने स्त्रीरूपनपुंसक इत्यादिक कोणकोणप्राणी मैथुननीअश क्तिथी शीलधारणनथीकरता एटलेतेसर्व ब्रह्मचर्यवंतजछे पणपरिणामविना असक्ति थीपालवुं तेनिष्फलछे माटेहेधीरआत्मा जो तुंब्रह्मव्रतनाफलनो अर्थीहोयतो मनने संवरेंकरीने छतीशक्ते ब्रह्मव्रतधारणकर ॥ १७ ॥

विषयेंद्रियसंयोगा जावात्के के न संयताः ॥ राग
द्वेषमनोयोगजावाद्येतु स्तवीमि तान् ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हवेसामान्यथी सर्वइंद्रियादिक तेहनोसंयोगजे एकत्रमलवुंते हनाअजा वथी कोणकोणसंवरवंतनहोय एटलेविषयनोयोग मल्याविनालवेंसंवरवंतजछे पण

जेमहापुरुषछे ते तो विषयादिकनो योगछतांपण रागद्वेष अने मनयोगना अनावथी एटलेजेमनथकी रागद्वेषरहितपणे संवरवंतछे तेओनेहुंस्तवुंछुं ॥ १८ ॥

कषायान् संवृणु प्राज्ञ नरकं यदसंचरात्॥
महातपस्विनोप्यापुः करटोत्करटादयः ॥१९॥

अर्थ ॥ एमइंद्रियआश्रित संवरकहीने हवेकषायआश्रितकहेछे प्राज्ञके० हेविवेकीप्राणी कषायजे क्रोधादिक तेनुंतुंसंवरकर केमकेएकषायना असंवरथकी करट अने उत्करट प्रमुख महातपस्वी महानुनाव तेपणनरकनेपाम्या एकरड अनेउक्करड बे ब्राह्मणमासीयाइ नाइहता ते वैराग्यथकी दीक्षालइ उग्रतपकरी अन्यदाकुणालानगरियें कोटनाघरनालामां चोमासुंरह्या तिहांनगरना जलप्रवाहनेपूरें साधुरखेतणाइजाय एमजाणीदेवतायें कुणालानगरीउपर वरसादयंनाव्यो कुणालाशिवायबीजे सर्वत्रवर्षादवरस्युं केटलेक दहाडे तेवातजाणी नगरलोकें ताडनातर्जनाकरी तेसाधुनेकाढ्या तेवारें क्रोधशेखर करटबोल्यो वर्षमेघकुणलायां तेवारें उकरटबोल्यो दिनानि दश पंच च वलीकरटबोल्यो मुशलप्रमाणधारानिः वलीउक्करटबोल्यो यथा रात्रौ तथा दिवा तेवचनथी अहोरात्रमुशलधारायें कुणालानगरीउपर मेघवूठो तेहथीकुणालानगरी लोकसहिततणाइगइ महाअनर्थथयो तेवारपछे त्रीजेवर्षे साकेतपूरें तेपापनेअणआलोवेछते करटअनेउक्करडबेमरीने सातमीनरके कालनामा नरकावासमां बत्रीससागरोपमनेआयुषें नारकीपणे अवतर्या एमजाणी कषायनोसंवरकरवो.

यस्यास्ति किंचिन्न तपोयमादि ब्रूयात् स य त्तनुदतां परान् वा ॥ य
स्यास्तिकष्टाप्तमिदं तु किं न तद्भ्रंशभीः संवृणुते स योगान् ॥२०॥

अर्थ॥हवेवलीमनोयोगादिकनो संवरकहेछे जेप्राणिनेकांइ तपसंयमादिकनथी अविरतिछे तेप्राणिजेमतेम असंबंधबोले तथाअन्यजीवनेपीडाकरे एटले अव्रती जेजेअकृत्यकरे तेतेघटेछे पणविरतिवंतप्राणितो एतपसंयमादिक घणुंजकष्टेंप्राप्तिथायछे एमजाणी तद्भ्रंशभीःके० रखेमहारांतपसंयमनो विनाशथाय एमबीहीतोथको मनोयोगादिकने केमनसंवरे एटलेविरतिवंतने सर्वथासंवरकरवुंज एनावार्थछे ॥ २० ॥

नवेत्समग्रेष्वपि संवरेषु परं निदानं शिवसंपदा यः ॥ त्यजन्
कषायादिजदुर्विकल्पान् कुर्यान्मनःसंवरमिद्धधीस्तं ॥ २१ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीमननासंवरनुं आधिक्यतापणुंकहेछे जेमननो संवरछे ते बीजा जेटला संवरछे तेसर्वमां मोक्षसंपदानुं परमकारणछे ते माटे विशेषबुद्धिवंत

पुरुषतो कषायादिकथीउपनाजे कुविकल्पते त्यजतोथको मननोसंवरकरे एटले मुक्तिनुं मुख्यकारणजाणीने विवेकीपुरुषें प्रथममननुं संवरकरवुं इतिभावः ॥ २१ ॥

तदेवमात्मा कृतसंवरः स्यात् निःसंगताभाक् सततं सुखेन॥
निःसंगभावादथ संवरस्तद्द्वयं शिवार्थी युगपद्भजेत ॥२२॥

अर्थ॥हवे ए अधिकारनो उपसंहारकहेछे तेमाटे एमपूर्वोक्तप्रकारें कृतसंवरके० संवरवंतजे आत्मा तेसदाकालें सुखेकरीने निःसंगपणानेभजे अथवा वली निःसंगपणाथी संवरथाय एटले एबेहुनो अन्योन्यकार्यकारण भावजाणवो केमके कोइकनेनिःसंगपणाथी संवरआवे अनेकोइनेसंवरथी निःसंगतापणुंआवे माटेमोक्षार्थीपुरुष तेसंवर अनेनिःसंगता एबेनेसमकालेसेवे ॥ २२ ॥ इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमे मिथ्यात्वादिसंवरोपदेशाख्य श्चतुर्दशोऽधिकार समाप्त ॥ १४ ॥

अथ शुभवृत्तिशिक्षोपदेशः॥आवश्यकेष्वातनु यत्नमाप्तो दितेषु शुद्धेषु तमोपहेषु ॥ न हंत्यभुक्तं हि न चाप्यशुद्धं वैद्योक्तमप्यौषधमामयापहं॥१॥

अर्थ ॥हवेशुभप्रवृत्तिशिक्षा एहवेनामे पन्नरमोअधिकारकहेछे एअधिकारमां यतियोग्यशिक्षा यतीनेजाणवी अनेश्रावकयोग्यशिक्षा श्रावकनेजाणवी इहांप्रथम आवश्यक करवायोग्यजाणीने आवश्यकआश्रयी उपदेशकहेछे हेसाधु तथा हेश्रावक तुं पापनानिवारक अनेसर्वज्ञभाषित एवांजेशुद्धनिर्मल आवश्यक सामायिकादिक तथाअवश्यकरणीय पोसह उपवास आलोयणादिक तेहनेविषेउद्यमकर तेनाउपर दृष्टांतकहेछे जेम वैद्यनुकह्युंजेऔषध तेनखाधुंथकुं तथाअशुद्धजेकाचुं हरितालप्रमुख तेखाधुंथकुंपण रोगनिवारक नथाय तेम सर्वज्ञभाषित आवश्यकजाणीनेपण तेहनीक्रियानकरीयें अथवाअशुद्धक्रियाकरियें तोतेहथीकर्मक्षयनथाय तेमाटेदोषरहित शुद्धक्रियायेंकरी आवश्यकादिकनो उद्यमकरवो एउपनयछे इहांप्रसंगथी सामायिकना दोषलखियेंछैयें १ वस्त्रेंतथाभुजायेंकरीने पलांठीबांधे २ आसनआघुपाछुंफेरवे ३ चपलपणेसर्वदिशायेंजोवे ४ गृहसंबंधीसावद्यकर्मकरें ५ भिंतीस्थंभादिकेंओठंगीबेसे ६ अंगोपांगमोडे ७ आलसमोडे तथाधर्मकार्येंआलसकरे ८ हाथपगेंकरकडा वजाडे ९ शरीरनोमेलउतारे १० खाजिखणे ११ विसामणकरावे १२ निद्राकरे एवारदोषकायथकीजाणवा तथा १ कुवचन कोइनुंमर्मनिंदादिकबोले २ सहसात्कारे अविचार्युंबोले ३ आर्तिमयविसंस्थलवचनबोले ४ आपछंदेंबोले ५ सूत्रभणतो अ

थवानवकारगुणतो वचनसंक्षेपकरे ६ कलहविवादकरे ७ राजकथादिकविकथाकरे ८ हास्यनावचनकहे ए संपदारहितसूत्रनणे १० जावाआववानाआदेश आपे एद शदोषवचनथीजाणवा वली १ निर्विवेकीमनेकरे २ यशकीर्तिनीवांछायेंकरे ३ धनला ननेअर्थेकरे ४ गर्वथीकरे ५ नयथीकरे ६ धनपुत्रादिनेअर्थेनियाणुंकरे ७ सामायि कनाफलनो संदेहकरे ८ रीसधरीसामायिककरे ए विनयरहितसामायिककरे १० नक्तिरहितसामायिककरे एदशदोषमनथीउपजे एम मन वचन अने कायाना मलीने बत्रीशदोषसामायिकनात्यजवा तथावांदणाना ३२ दोष अने काउसग्गना १ए दो ष ते नाष्यादिक ग्रंथथी जाणीने त्यजवा ॥ १ ॥

तपांसि तन्याद्विविधानि नित्यं मुखे कटून्यायतिसुंदराणि ॥ वि
घ्नंति तान्येव कुकर्मराशिं रसायनानीव डुरामयान् यत ॥२॥

अर्थ ॥ हवेतपप्रवृत्तिआश्रयीउपदेशछे मुखके० प्रथमकरतीवेलायेंतो नुखतृषादि कसहेवांपडे तेमाटे कडवाले पण आयतिके० उत्तरकाले सुखनाकरनार एहवांजेवि विधप्रकारना छठ अठम दशमादिक तप तेनित्येंकरवां केमकेतेतपज कर्मनासमूहने निवारेछे तेउपरदृष्टांतकहेछे जेमरसायन पारो हरिताल सुवर्णादिक औषधिओ तेहिज ज्वरअनेक्षयादिक डुष्टरोगोनेनिवारे तेम इहांपण उपनयलेवुं ॥ २ ॥

विशुद्धशीलांगसहस्रधारी नवानिशं निर्मितयोगसिद्धिः ॥
सहोपसर्गांस्तनुनिर्ममः सन् नजस्व गुप्तीः समितीश्च सम्यक्॥३॥

अर्थ ॥ हवेतपकरनार प्रायेंशीलवंतजोइयें तेमाटेशीलआश्रयीउपदेशछे हेसाधु तुंविशुद्धनिर्मलएवाजे अढारसहस्र शीलांगरथतेने धरतोथको नित्यें निर्मित योग सिद्धिके० निपजावीछे अष्टांगयोगनीसिद्धिजेणे अथवायोगजे मनोयोगादिक तेह ना डुःप्रणिधानना निवारवारूप समाधिनी सिद्धिकर एटलेशीलांगधरतोथको मनव चनकायाना योगवशकर एनावार्थछे वलीदेहनेविषे ममत्वरहितथको देवादिकनाक रेला उपसर्ग तेनेसहनकर अनेपांचसमिति तथात्रणगुप्ती तेहनेनज ॥ ३ ॥

स्वाध्याययोगेषु दधस्व यत्नं मध्यस्थवृत्त्यानुसरागमार्थान् ॥
अगारवो नैक्ष्मटाविपादी हेतौ विशुद्धे वशितेंद्रियौघः ॥४॥

अर्थ ॥ हवेशीलवंतने मनस्थिरकरवानिमित्त जेसिद्धांतादिकनुं स्वाध्याय नणवुं

जणाववुं तेहनुं योगजे मनवचनकायायेंकरी नित्यअभ्यास करवानेविषे उद्यमकरे वलीआगमनाजे अर्थ तेमध्यस्थवृत्तियें कदाग्रहरहितपणे अनुसरे एटले कदाग्रहें करीने जिनवचननाअर्थनी परूपणाजूठीनकरे वली अगारवके० रुद्धिगारव रसगारव सातागारव तेणेरहितथकुं अनेविशुद्धिनिर्मलहेतुजे मोक्षसाधन तेहनेविषे विषादरहितथकुं एटलेशुद्धक्रियाकरतां अविषिन्नचित्तथकुं अनेवलीवशकीधोछे इंद्रियनोसमूहजेणे एहवुंथकुं नैक्षेजेउंचनीचकुल शुद्धमानआहारतेहनी गवेषणाकरे ॥४

ददस्व धर्मार्थितयैव धर्म्यान् सदोपदेशान् स्वपरादिसाम्यात् ॥
जगद्धितैषी नवभिश्च कल्पै ग्रामे कुले वा विहराप्रमत्तः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसज्झायनुंफलते शुभउपदेशछे तेमाटेशुभोपदेशआश्रीकहेछे हेसाधो तुं पोताना अनेपारकानेविषे समानपणे उपदेशकर एटले आमाहारोजकछे दाताछे धनाढ्यछे एहवानेधर्मकहुं अथवा आ मिथ्यात्वी कृपणदरिद्रीछे एहवानेउपदेशको णकहे इत्यादिककल्पना त्यजी केवलधर्मार्थीपणेकरीनेज पण आहारवस्त्रादिकने अर्थेनही एप्रकारें नित्यधर्मसंबंधीयाजे उपदेशते कहेतोरहे अनेवली सर्वसंसारीजीवने हितवांछतोथको नवकल्पेकरीने ग्रामनगरादिकनेविषे शुभ उपदेशकरतोरहे तथाविहारकरवानी अशक्तें कुलके० ग्रामनगरादिकनो एकप्रदेशतेनेविषे प्रमादरहितथकुं विहारकर इहांकल्पते मागसिरप्रमुख आठमास जेऋतुबद्धकाल तेहनाआठकल्प अनेश्रावणादिक चारमास चोमासना तेनोएकल्प एरीते सर्वमलीने नवकल्प जाणवा

कृताकृतं स्वस्य तपोजपादि शक्तीरशक्तीः सुकृतेतरे च॥ सदा
समीक्षस्व हृदाऽथ साध्ये यतस्व हेयं त्यज चाव्ययार्थी ॥६॥

अर्थ ॥ हवेशुभोपदेशनाकहेनारने कृत्याकृत्यनोविचारजोइयें तेमाटेतेआश्रयीकहेछे हेसाधु तथाहेश्रावक तुंपोतानुं तप जप प्रमुखजेकर्म ते कृत्याकृत्यकहेतां एटलुंमेंकीधुं एटलुंमेनथीकीधुं एहवुंविवेचन तथाशक्ति अनेअशक्ति तथापोतानुंसुकृत अनेदुःकृत एटलांवाना पोतानामनसाथेंसदायविचारीने तेवारपछे मोक्षार्थीथकुं साध्यजे साधवायोग्य तपोनुष्ठानादिक तेहनेविषेउद्यमकर अनेवली हेयकहेतां त्यजवायोग्य जेविषयकषायादिक तेहनेत्यज सत्पुरुषने चित्तरूपिणीभूमिनेविषे गुरुपदेश तेबीज वृद्धिरूपहोय पछेतेमां विचाररूप जलनासिंचवाथी सुकृतरूपवृक्ष विस्तारपामेते माटे मोक्षार्थियें हेयउपादेयज्ञेयना विचारपूर्वक धर्मोद्यमकरवो ॥ ६ ॥

परस्य पीमापरिवर्जनात्ते त्रिधा त्रियोग्यप्यमला सदाऽस्तु ॥
साम्यैकलीनं गतडुर्विकल्पं मनोवचश्चाप्यनघप्रवृत्ति ॥ ७ ॥

अर्थ॥ हवेजेविचारवंतहोयते त्रियोगीनिर्मलजोइयें तेमाटेतेआश्रयीकहेछे हेआत्मात्रियोगीजे मनवचनकायाना त्रणेयोगतेणेकरी सदाइंनिर्मलथा एटलेसर्वजीवउपरें हितबुद्धिराखीने मनवचनकायानायोग निर्मलकर एजावार्थछे केमके परनेपीडा वर्जवाथकी काययोगतो निर्मलथयोज अनेतेकाययोगनी निर्मलताथी मनपणसमतायेंलीन अनेडुर्विकल्परहितथाय तथावचनपण पापव्यवहाररहितथाय इहांआचार्यें काययोग सुगमछे माटे जुदोकरीने नकह्यो ॥ ७ ॥

मैत्रीं प्रमोदं करुणां च सम्यक् मध्यस्थतांचानय साम्यमात्मन् ॥
सद्भावनास्वात्मलयं प्रयत्नात् कृताविरामं रमयस्व चेतः ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेएत्रियोगीनेनिर्मलताते मैत्र्यादिजावनाथीथाय तेमाटेतेकहेछे हेआत्मातुं मैत्रीतथाप्रमोद तथाकारुण्य अनेमध्यस्थता ए चारजावना तेआत्मानेविषे आण अनेवलीतेजावनायेंकरी सम्यक्प्रकारें समताआण वली प्रयत्नात्के० पंमितवीर्यफोरववाथी चित्तने आत्मलयके० ध्यानलीन अनेध्यानथी अविच्छिन्न एहवुं थयुं थकुं शुजजावनाजे अनित्यादिक तेहनेविषेरमाड ॥ ८ ॥

कुर्यान्न कुत्रापि ममत्वजावं न च प्रजो रत्यरती कषायान् ॥ इहापि सौख्यं लजसेप्यनीहो ह्यनुत्तरामर्त्यसुखाजमात्मन् ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेएजावनाओते ममत्वनात्यागथीहोय तेमाटेतेआश्रयीकहेछे हेसमर्थ आत्मा जोतुंकोइवस्तुनेविषे ममत्वनकरें अनेवली रति अरति अनेकषाय नकरे एहवोतुं वांछनारहितथको रहेतो आजवेंज अनुत्तरविमानवासी देवतानाजेवुं सुखपामें केमके अनुत्तरवासी देवतामां स्वामिसेवकनो व्यवहारनथी तेमाटे संसारिक सुख जोतां अनुत्तरविमाननो सुखते सर्वोत्कृष्टजाणवुं ॥ ९ ॥

इति यतिवरशिक्षां योऽवधार्य व्रतस्थश्चरणकरणयोगानेकचित्तः श्रयेत ॥ सपदि जवमहाब्धिक्लेशराशिं स तीर्त्वा विलसति शिवसौख्यानंत्यसायुज्यमाप्य ॥ १० ॥

अर्थ ॥ हवेएअधिकारनो उपसंहारकहेछे एप्रकारें यतिवरजे जलासाधु उपलक्ष

णथी जलाश्रावकपणजेवा तेसंबंधीनीजेशिक्षा तेनेचित्तमांधरीने एकाग्रचित्तथकुं चर णकरणयोगजे चरणसित्तरी अनेकरणसित्तरीनागुण तेनेजेसेवे तेसाधु तथा ते श्रावक शीघ्रके० उतावळुं क्लेशदुःखना समूहरूपजे संसारमहासमुद्र तेथकीतरीने मोक्षसु खनुं अनंतपणुं तेहनुं सायुज्यके० जेसहचारीपणुं तेपामीने वळीमोक्षनाअविनाशीसु खनीपरे पोतेपणत्यां अविनाशीभावपामी विलसतिके० सर्वदासुखनेअनुभवे ॥ १ ०॥
इति श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमेऽशुभप्रवृत्तिशिक्षोपदेशाख्यः पंचदशोऽधिकारसमाप्त.

अथ ग्रंथोपसंहाराय साम्यसर्वस्वं ॥ एवं सदाभ्या
सवशेन सात्म्यं नयस्व साम्यं परमार्थवेदिन् ॥ यतः
करस्थाः शिवसंपदस्ते भवंति सद्यो भवभीतिभेत्तुः ॥ १॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनाउपसंहारनेअर्थें साम्यसर्वस्वनामें सोळमोअधिकारकहेछे हेप रमार्थनाजाण विवेकीपुरुष तुंएमपूर्वोक्तप्रकारें अभ्यासवशेंकरीने साम्यजेसमता ते हने सात्म्यकहेतां आत्मासाथे ऐक्यपमाड जेसमताथी भवभीतजे संसारसंबंधी भय तेहनेभेदवावांछतो एवोजेतुं तेतुजने मोक्षनी संपदाओ ते तत्कालमात्र करस्था कहेतां हस्तप्राप्तथाय ॥ १ ॥

त्वमेव दुःखं नरकस्त्वमेव त्वमेव शर्मापि शिवं त्वमेव ॥ त्व
मेव कर्माणि मनस्त्वमेव जहीह्यविद्या मवधेहि चात्मन् ॥२॥

अर्थ ॥ हवेआत्माने अविद्यानोपरिहार अनेसमतानुंधरवुं कहेछे हेआत्मातुंदुः खनेकारणें प्रवर्त्यो माटे दुःखतेतुंजछे एमआगळपण सगळीवस्तुनुं आत्माजकार णरूपजाणवुं वळीनरकनुंकारणतेपणतुंजछे वळीसुखपणतुंछे अनेमुक्तिपणतुंछे व ळीकर्मपणतुंछे अने मनोव्यापारना प्रकाशकपणाथी मनपणतुंछे तेकारणमाटे अव ज्ञाजेधर्मकार्यनेविषे अनादरकरवो एटलेहमणा धर्मनथीथातो तोपछेकरीश इत्यादि क कल्पना त्यजीने अवधेहिकहेतां धर्मकार्यनेविषे सावधानरहे ॥ २ ॥

निःसंगतामेहि सदा तदात्मन्नर्थेष्वशेष्वपि साम्यभावात् ॥
अवेहि विद्वन्ममतैव मूलं शुचां सुखानां समतैव चेति ॥ ३॥

अर्थ ॥ हवेसर्वत्रपणे निःसंगपणानुं प्राधान्यपणुंकहेछे हेआत्मा तेकारणमाटे सकळपदार्थनेविषे समताभावथी सदाय निःसंगपणाने पाम अनेवळी हेनिपुणप्राणि

सकलशोकनुंमूल ते ममताजछे अनेसकलसुखनुमूलते समताजछे एह्वुं जाणीने म मताने त्यज अने समताने आदर इतिभावः ॥ ३ ॥

स्त्रीषु धूलिषु निजे च परे वा संपदि प्रसरदापदि चात्मन् ॥ त
त्वमेहि समतां ममतामुक् येन शाश्वतसुखाद्वयमेषि ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनिःसंगताते ममत्वमुकवाथीजथायछे तेमाटेममतात्यजवानुं उपदेशे छे हेआत्मा ते पूर्वोक्तकारणथी तुंममतारहितथको स्त्रीनेविषे अनेधूलिनेविषे वली स्वजननेविषे अनेपरशत्रूनेविषे तथा वलि संपत्तिनेविषे अने विस्तारपामतीआपदाने विषे समतानेपामवेकरीने सरखोपरिणामराखजे एटलेमोक्षसुखनोलोक्ताथाइश ॥४

तमेव सेवस्व गुरुं प्रयत्ना दधीष्व शास्त्राण्यपि तानि विद्वन् ॥ न दे
वतत्वं परिभावयात्मन् येभ्यो भवेत्साम्यसुधोपभोग ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतातेज सकलपदार्थनो सारकरीनेउपदेशेछे हेविद्वन् हेआत्मन् तुंउद्यमकरीने तेहिजगुरुनेसेव अनेगुरुसेवनाकरीनेशास्त्रपण तेहिजभण तथाशास्त्र भणीने तत्वरहस्यपण तेजचित्तमांचिंतव केजेगुरुथी अनेशास्त्रथी तथाजेतत्वथी सम तारूपीयुं जेअमृत तेनोउपभोग आस्वादपामे एटलेजेजेपदार्थनेतुं समतानुंकारणजा णे तेतेपदार्थनुंस्वरूपकर केमकेबीजासर्वेपदार्थ तेनिरर्थकछे ॥ ५ ॥

समग्रसच्छास्त्रमहार्णवेभ्यः समुद्धृतः साम्यसुधारसोऽयं ॥ निपी
यतां हे विबुधा लभध्व मिहापि मुक्तेः सुखवर्णिकां यत् ॥६॥

अर्थ ॥ हवेआचार्यग्रंथने उपसंहरतो ग्रंथनीउपादेयतादेखाडेछे हेपंडितजनो तमेसमग्र भलांजे धर्मशास्त्र तेरूपीयो जेमहासमुद्र तेहथीउधर्युंजे एसमतारूपियुं सुधारसके० अमृतरसतेप्रत्यें तुमें पीयतांकहेतां आदरसहितसांभलो तथाभणो जे थी तमेआलोकेपण मुक्तिनासुखनी वर्णिकाकहेतां वानगीनेपामो केमकेसमतारस मय जीवते आलोकेपण मुक्तिसुखने अनुभवेछे ॥ ६ ॥

शांतरसभावनात्मा मुनिसुंदरसूरिभिः कृतो ग्रंथः ॥
ब्रह्मस्पृहया ध्येयः स्वपरहितोध्यात्मकल्पतरुरेषः ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हवेग्रंथनेछेडे आचार्यपोतानुंनाम अनेग्रंथनुंनाम जणाववाकहेछे स्व परहितकहेतां ग्रंथकर्त्ताने तथापरजेश्रोताप्रमुख एबेहुनेहितकारी एवोजेआअध्या

त्मकल्पद्रुमनामेग्रंथ तेतपगछाधिराज श्रीमुनिसुंदरसूरियेंकीधो ते एग्रंथ भणितें ब्रह्मजेज्ञान तेहनी वांछायें जणवुं अथवा ब्रह्मजे मुक्ति तेहनीवांछायें चिंतववुं ॥ ७ ॥

इममिति मतिमानधीत्य चित्ते रमयति यो विरमत्ययं भवाद्राक् ॥ स च नियतमतो रमेत चास्मिन् सह भववैरिजयश्रिया शिवश्रीः ॥८॥

अर्थ ॥ हवेफलोपदर्शन द्वारें मंगलगर्भित उपसंहार वाक्यकहेछे जेमतिवंत पुरुष अध्यात्मकल्पद्रुमनामे ग्रंथनेभणि पोताना चित्तनेविषेरमाडे रात्रदिवसचिंतवे तेपुरुष संसारथकी थोडाकालमां विरक्तथाय अनेवलीएहनाज चिंतनथी तेपुरुषनेविषे संसाररूपीया शत्रुनीजे जयलक्ष्मी तेणेसहित शिवश्रीजेमोक्षलक्ष्मी तेमां रमिके० आश्रयीनेरहे एटलेतेसंसाररूप शत्रुनेजीतीने मोक्षरूपलक्ष्मीपामे. इतिअध्यात्मकल्पद्रुमे साम्यसर्वस्वनामा षोडशोधिकारः समाप्तः ॥ १६ ॥

ए श्रीअध्यात्मकल्पद्रुमनामे ग्रंथनो बालावबोधार्थे उपाध्यायश्री रत्नचंद्रगणिकृत तथाउपाध्यायश्री विद्यासागरगणिकृत एबेटीकाजोइने में महारीबुद्धिने अनुसारें मुज सरखा स्वल्पबुद्धिवंत प्राणिना उपकारने अर्थे लेशमात्र लख्योछे तेमां अनाभोगथी तथाअज्ञानथी तथाभ्रांतिथी जेकांइसूत्रना तथाटीकाना अनुसारथी ओछुंअधकुं अयुक्त लखाएंहोय तेहनुं मिछामीदुक्कडं अथवाकिहांएक सुगमपणानेअर्थे किहांएक साहचर्यथी किहांएकरूढिथी जेकांइ विभक्ति वचन लिंग कारक अन्वय प्रमुखनो विपर्यास कीधो होय तेअपराध बहुश्रुत गीतार्थेखमवो तथा उपकारबुद्धें अशुद्ध टालिने शुद्धकरवुं.

अथ प्रशस्तिः ॥ श्रीमत्तपगणगगनां गणभासनतरुणतरणिनिभः ॥ श्रीराजविजयसूरिर्बभूव भुवि भूरि वितानयशाः ॥ १ ॥ योत्याक्षीद्भिनवं घनं सुविहितानुष्टानबद्धादरो लोकं कोकमिव प्रबोधमनयल्लोनिश्च गोस्वामिवत् ॥ छित्वादीकिटदर्पमुज्वलपटांश्चक्रे विशेषोज्वलान् यो वाचाजितमालवेश्वरसितछत्रप्रभावोज्वलः ॥२॥ रत्नत्रयप्रथितसंयमभूत्तदीय पट्टेष्वरत्नविजयाव्हयसुरिरासीत् ॥ येन प्रशांतरजसा प्रशमार्णवेन रत्नाकरायितमनल्पगुणौघरत्नैः ॥ ३ ॥ तस्यान्वये निखिलभूतलगीतकीर्तिः श्रीहीररत्न इतिसूरिवरो विरेजे ॥ स्वर्गं गतोप्यखिलजनकसमीहितानि योद्यापि पूरयति नव्य इवामरद्रुः ॥४॥ तत्पट्टभूषणमणिर्जयरत्नसूरिः सर्वाग्रणीर्गुणिषु भूरिगुणाश्रयोऽभूत् ॥ श्रीभावरत्न इति भावविदां वरेण्य स्तत्पट्टभृज्जयति संप्रति सूरिराजः ॥५॥ श्रीहीररत्नसूरे

मुख्याः शिष्याः सुनिर्मलाभिख्याः ॥ श्रीलब्धिरत्नविबुधाः शास्त्रार्णवपारदृश्वानः ॥६॥ श्रीसिद्धिरत्ननाम्ना पाठकवर्यास्तदन्वये तदनु ॥ श्रीहर्षरत्नवाचक, वरा वरीयोगुणैर्वं द्याः ॥ ७ ॥ लक्ष्मीरत्नगणीशा आसन् दुर्वादिदनुजलक्ष्मीशाः ॥ श्रीज्ञानरत्नगणयस्त दाश्रवाः सांप्रतं जयंतु चिरं ॥८॥ तच्चरणकमलसेवा भृंगस्तत्संगसमयतरंगः॥ सुविहि तकल्याणविमल गणिवरविहितार्थिनीभुन्नः ॥ ९ ॥ बालावबोधवार्त्ता मध्यात्मसुरद्रु माख्यशास्त्रस्य ॥ मुनिहंसरत्न एता मतनोत्तनुबुद्धिसत्वहितां ॥१०॥ शोध्यं सुतत्ववि द्भिर्ग्रंथो ऽयं धीधनैः प्रवाच्यमानश्च॥ सद्भावसंपदाढ्यै राचंद्रार्के चिरं जयतात्॥११॥

इति श्रीमुनिसुंदरसूरिकृतअऽध्यात्म
कल्पद्रुमो बालावबोधसहितः संपूर्णः

॥ अथ श्री सीतलनाथाष्टकं ॥

वृषभतुल्यगतिं वृषदं सदा व्यजितदर्प्पकदर्प्पकभेदकं ॥ अमितशंभवभीतिविवार्जितं जिनमहं प्रणमामि सुशीतलं ॥ १ ॥ दृढरथाख्यकुभागभिनंदनं सुमतिधाम विचक्ष णपुंगवं ॥ छविविनिर्जितपद्मप्रभं वरं जिनमहं० ॥ २ ॥ यमसुपार्श्वविभूषितविग्रहं विशदचंद्रप्रभाननबंधुरं ॥ सुविधिरंजितभव्यजनव्रजं जिन० ॥ ३ ॥ विबुधमोदकशि तलवाग्भरं सकलश्रेयसिकामकुटोपमं ॥ सुवसुपूज्यपदं शिवदायकं जिन० ॥ ४ ॥ वि मलनीरजपत्रविलोचनं गृहमनतगुणस्य कृपापरं ॥ सदयधर्म्मप्रवृत्ति प्ररूपकं ॥ जिन० ॥ ५ ॥ जगति शांतिवितानविपादकं धृतशमं किल कुस्थमनिंदितं ॥ विगतदो षमरं भविनौभिभं ॥ जिन०॥६॥युगकषायजयप्रतिमल्लभं कनकवर्णधरं मुनिसुव्रतं॥ नमत दानवमानवराजितं ॥ जिन० ॥ ७ ॥ विततधर्म्मरथांगकनेमिकं निखिलविष्टप पार्श्वमदूषणं ॥ सबलमोहविनाशनवीरकं ॥ जिन० ॥ ८ ॥ इति स्तुतः श्रीजिनशीत लाख्यः स्थितः पुरे रायधनाभिधाने ॥ श्रीवीरचंद्रस्य मलूकचंद् नाम्ना विनेयेन वशां श्रिये स्तात् ॥ ९ ॥ इति श्रीमच्छीतलनाथाख्यदशमतीर्थाधिपतेरष्टकं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्री कल्याणसागरसूरिकृत माणिक्यस्वामिस्तवनप्रारंभः ॥

नमः सिद्धेभ्यः॥ स्रग्धराछंदः॥ स्वामी माणिक्यपूर्वस्त्रिभुवनतिलकश्चिंतित ॥ सुरादि स्त्रै लोकोद्योतकर्ता प्रथिततरयशा श्चित्रकृन्नाममंत्रः ॥ श्रीमल्लीनाभिभूप वयगगनरवि र्मंजुकल्याणकारी राष्ट्रे सद्दक्षिणाख्ये निरुपममहिमा ख्यातिकारिप्रतापः ॥ १ ॥ द्रुत विलंबितछंदः ॥ प्रवरधर्मधनार्पणकामगौ रमृतवाग्गुणरंजितनागरः ॥ रिपुसमूहनिवार णसद्भटो वृषजचिन्हितपादकुशेशयः ॥ २ ॥ हरिणीछंदः॥ शुजमतिकरश्चंडादित्याधिको त्तरजास्वर स्त्रिचुवनमणि र्विश्वाधारो धरेश्वरकीर्तितः ॥ उपशमरसासक्तस्वांतोप्यनंत चतुष्टयी गुणमणिखनिर्नष्टारिष्टामयाधिजराव्यथः ॥ ३ ॥ पंचचामरछंदः ॥ अखर्व देहराजितो यतीश्वरो घृणाप्रशीतमानसः कलाधरः ॥ अनेकलब्धिमंडितो वृषाकरः शिवाद्धिवृद्धिचंद्रमा नतासुरः ॥ ४ ॥ भुजंगप्रयातछंदः ॥ प्रभुर्मोरुदेवश्चिदाल्हादली नः सदाचारलीलाविलासातिशाली ॥ महामोहमातंगपंचास्यकल्पो हितार्थी कलाशि ल्पविज्ञानजाषी ॥ ५ ॥ मालिनीछंदः॥ जलधिनिजगजीरः सारसारंगघोषो जितविष यविकारो ज्ञानबुद्धिप्रदाता॥ खलतिमिरप्रदाकुर्देवदेवाधिराजः समवसरणशोजासिंधु पूरौघमेघः ॥६॥ नाराचछंदः ॥ श्वेतातपत्रचामरैर्युक्तो मनोज्ञपुजलैः ॥ जव्यांगिराशि वंदितो धर्मार्थमोक्षसाधकः ॥ ७ ॥ आर्याछंदः॥ देवैर्ध्येयो विमलः सुंदरवंशो नृपूत्तरा त्मापि ॥ मान्यः सतामजस्रं सदोदयो वरातिशयधरः ॥८॥ गीतिछंदः ॥ त्रैलोक्या वाप्तविभुः समस्तगुणरत्नकलितसाधुमनाः ॥ एनस्तमोनिशेशः सुश्लोकैर्धवलिता श आशादः ॥ ९ ॥ नगस्वरूपिणीछंदः ॥ सदार्यमार्गदेशको प्यमेयजाग्यधारकः ॥ प्रजूतसत्वपालको विवेकनीतिकारकः ॥१०॥ माणवकछंदः॥ दुःखहरो नाकिनुत स्त्य क्तमहादोषजरः ॥ पारगतस्तीर्थकरः शीलशाली ज्ञानधनः ॥११॥ तोटकछंदः॥ कम लाननमोहितसञ्यजनः समयार्थनिरूपणरम्यसुधीः ॥ नृशिलीमुखखेलनतामरसः पु रुषोत्तमपुण्यनिधिर्वरदः ॥ १२ ॥ मणिमध्यछंदः॥ लक्षणपंक्तया सारतनु र्निर्जितमा यालोजकलिः ॥ आदृतसाध्वाचाररतिः सादरदेवाधीशपतिः ॥ १३ ॥ चंपकमालाछं दः॥ केवलयुग्मालोकितलोका लोकविजागः संयमिसेव्यः ॥ इंद्रियबाणाजेदितचेता श्चंपकमालामंडितगात्रः॥१४॥ हंसीछंदः॥ प्राप्तानंदो भुवनमुकुट स्तीर्थस्वामी विस्तृत नमनः ॥ सश्रीकात्मा सुकृतनिलयो योगींद्रो वै विजितकपटः ॥ १५ ॥ शालिनीछं दः॥ आदेयाख्यो मुक्तिजस्फारसौख्यो विश्वोत्तंसो दुष्टकर्मारिहंता ॥ चक्रेश्वर्याराधितो गोमुखेशः कांताकारश्चोप्रधर्माधिकारः ॥१६॥ केकीरवछंदः॥ जगतीशपूज्यो जयताञ्जि

नेशः कुशलार्थवल्लीततिवारिधारः ॥ विशदावदातावलिचित्तनामा जववार्द्धिपोतः कुलपाकनाथः ॥ १७॥ कुलकं॥इंद्रवज्राछंदः॥एवं मया संस्तुत आदिदेवो जूयात् सदा संघगणस्य जूत्यै ॥ क्षेमंकरो विश्वजगत्सुदीपः कल्याणमांगल्यकलापकोशः॥ १८ ॥

॥ अथ सूर्यपुरीयश्रीसंजवजिनस्तवनप्रारंजः॥

वसंततिलकाछंदः ॥ कामं नमोऽस्तु सततं जिनसंजवाय चंद्राननाय कमलामललोचनाय ॥ देहप्रजास्थगितलोकचमत्कराय डुर्ध्यानपादपविजेदनसिंधुराय ॥ १ ॥ देवैः स्तुताय जवसागरपारगाय कीर्तिप्रसूनसुरजीकृतविष्टपाय ॥ सन्मूर्तिकांतिततिरंजितमानवाय सेनांगकुक्षिवरशुक्तिकमौक्तिकाय ॥ २ ॥ अब्जोपमाय जिनशासनदीपकाय सूर्याख्यबंदरमनोरममंडनाय ॥ जव्याब्जकाननविजासनजास्कराय नानार्थदानहरिचंदनसन्निजाय॥३॥आदेयनामकलिताय शुजाशयाय सिध्यंगनामिलनसादरलोलुपाय ॥ राद्धांतहार्दकथनोत्तरकोविदाय तेजःप्रजावयशसामवनीश्वराय ॥ ४ ॥ अज्ञानमोहजयसंज्वरजेषजाय सौजाग्यजाग्यगुणरत्नकरंडकाय ॥ अष्टापदाजतनुवर्णविराजिताय निर्लोजहंसरतिखेलनमानसाय ॥५॥ आव्हानमंत्रविनिवारितपातकाय कल्याणसागरतरंगकलाधराय ॥ डुष्टारिचक्रलवणांबुधरोपमाय वाचासुधाश्रवणहर्षितनागराय॥ ६ ॥ सद्धर्म्ममार्गविधिदेशनदेशिकाय दुःखौघवारणमृगेंद्रपराक्रमाय॥ लोकातिशायिमहिमाचलजूषणाय गंधर्वलंछनसुशोजितपत्कजाय॥७॥ सर्यांघवृद्धिकरणाय जितेंद्रियाय शुद्धान्वयोन्नतिकराय कृपालयाय॥मिथ्यात्वतापशशिचंदनपादपाय डुष्कर्म्मवायुजुजगाय नरार्चिताय॥८॥ संकल्पकल्पनविवर्जितमानसाय गांजीर्य्यधैर्यमणिसंजवरोहणाय ॥सज्ञानबुद्धिवरदाय गुणाकराय कौशल्यवल्लिपरिवर्द्धनमंडपाय ॥ ९ ॥ इंद्रवंशाछंदः ॥ स्तोत्रं चतुर्थ्यंतविजक्तिसंयुतं ध्यायंति ये संजवदेवरागिणः ॥ तिष्ठंति तद्धाम्नि शुजाः समृद्धयः कल्याणसंपादनकामधेनवः ॥ १० ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः॥ लक्ष्मीकेलिगृहं सदावलिनतं श्रीसंजवाख्यं जिनं सन्मार्तंडपुरामजाचलवरोल्लोषे जवाब्धौ तटं॥ देवाधीशनरेशशेषपटलैः संसेवितं कामहं मुक्तिस्त्रीसुखरंगलोनमनिशं सेवे मुदा सिद्धये॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीसुविधिजिनस्तवनप्रारंजः॥

द्रुतविलंबितछंदः ॥ सुविधिनाथजिनं नयनामृतं सुविधिनाथजिनं महिमालयं॥ सुविधिनाथजिनं नररंजनं सुविधिनाथजिनं वरकेवलं ॥ १ ॥ सुविधिनाथजिनं कमलाकरं सुविधिनाथजिनं जवदं परं ॥ सुविधिनाथजिनं ह्यतिकीर्तिदं सुविधिनाथजिनं

सुविधिप्रदं ॥ २ ॥ सुविधिनाथजिनं रजतछविं सुविधिनाथजिनं जडतापहं ॥ सुविधिनाथजिनं मकरांकितंसुविधिनाथजिनं जगदंचितं ॥ ३ ॥ सुविधिनाथजिनं रजतांहितं सुविधिनाथजिनं परमेश्वरं ॥ सुविधिनाथजिनं श्रुतसूरिणं सुविधिनाथजिनं शिवपारगं ॥ ४ ॥ सुविधिनाथजिनं शुजदर्शनं सुविधिनाथजिनं जनतानतं ॥सुविधिनाथजिनं वरदं विजुं सुविधिनाथजिनं नमितासुरं ॥ ५ ॥ अनुष्टुपछंदः ॥ सितेतरपुराधीशः सुविधिर्नवमो जिनः ॥ संघस्य सुखदो नूयात् कल्याणसूरिणा स्तुतः ॥६॥

॥ अथ श्रीशांतिनाथजिनस्तवनप्रारंजः ॥

डुतविलंबित छंदः॥सकलदेवनरेश्वरवंदितं विबुधमानवसंस्तुतपूजितं॥कमललोचनरंजितनागरं नविकपातकतामसजास्करं ॥१॥ निखिलवांछितदानसुरागमं विदितशास्त्रविचारनयागमं॥कठिनकर्मदवानलनीरदं परमशांतिरदामृतशांतिदं॥ २॥विविधलक्षणरंजितसंचरं सुविधिमार्गप्रकाशनतत्परं॥चपलमत्तमतंगजगामिनं कमलकोमलमांसलपाणिनं॥३॥ दलितदंजमहाधृतिविग्रहं विहितमोहमहाबलिनिग्रहं ॥ दृढपरीषहवायुजुजंगमं किल शुजंयुमजीष्टसमागमं ॥ ४ ॥ नविचकोरसुखाय कलानिधिं विनयधैर्यगुणोत्करशेवधिं ॥ मुनिषडंन्हिनिवासकुशेशयं विधुसुधामधुसारतराशयं ॥ ५ ॥ कुसुमसन्निजदंतविराजितं सुजगजाग्यसुखाकरशोजितं ॥ निजजुजाबलसाधितराष्ट्रकं जितविपक्षगणं नतराजकं ॥ ६ ॥ कुशलकेलिविलासजुवं परं विशदकीर्त्तिविकाशिदिगंतरं॥कुमतसिंधुरसिंधुरवैरिणं सुमतिकामितसन्ततिकारणं ॥७॥ वरसुवर्णसवर्णसुवर्णकं जितहृषीकमधर्मनिवारकं ॥ हरिणसेवितपादकजं जिनं हितकरं स्तुतनिर्जरसज्जनं ॥ ८ ॥ प्रवरवार्षिकदानगुणैर्वरं हृतदरिद्रपरं परमेश्वरं ॥ समधरीकृतमेरुसुरडुमैः प्रचुरसर्वगुणादधिकोत्तमैः ॥ ९ ॥ विकटडुर्जयमन्मथशंकरं जनकलापिघनं विगतांतरं ॥ लपननिर्जितचंद्रमसं नृशं विगतदोषकलिं च महौजसं ॥ १० ॥ अशिवविघ्नघनाघनमारुतं विषयतापवशं जनतामतं ॥ शिववधूपरिरंजणलोलुपं विमलकेवलिसाधुकुलाधिपं ॥ ११ ॥ जजत शांतिजिनं तु शिवंकरं कुशलसागरवृद्धिकलाधरं ॥अतुलरूपवशीकृतमानवं प्रणतसादरकिन्नरदानवं ॥ १२ ॥ द्वादशजिः कुलकम् ॥ मालिनीछंदः॥जुवननलिनजानोः शांतिदेवस्य नर्तुर्जवजलनिधिसेतो डुःखदारिद्र्यहर्त्तुः॥ निजहृदयविशुद्ध्या स्तोत्रमेतत्पठंति प्रतिदिनमपि ये ते संपदः प्राप्नुवंति ॥१३॥

॥ अथ श्रीशांतिजिनस्तवनप्रारंजः ॥

स्रग्धराछंदः ॥ दद्याच्छ्रीशांतिदेवो वरकनकतनुः सारसौख्यानि जव्यलोकानां नक्ति

नाजां त्रिभुवननगरे स्फारकोटीरहीरः ॥ चार्वाकारैः प्रणेता प्रणतहितकरः काम हो मारिवारः सर्वज्ञाख्यातनामा प्रकटितमहिमा प्राप्तकर्मारिपारः १ ॥ तोटकछंदः॥ सुरमानवपूजितपाणिकजः कमलोदयकारकधर्म्मधनः ॥ विगतामयदूषणजन्मततिः जुजनसागरसोमनिजो विमलः ॥ २ ॥ इति प्रथमांतविजक्तिकाव्ययुग्मं ॥ जुजंगप्रयात छंदः ॥ अजय्यं विजुं विश्वपूज्यं प्रसन्नं जिनं सत्प्रजं शंकरं देवदेवं ॥ सदाज्ञानव छ्लीततौ मेघमेकं स्तवे शांतिनाथं कलौ कामकुंजं॥३॥ हरिणीछंदः॥ कमलवदनं प्रा ज्ञानंदं नताखुनचंचनं गजपतिगतिं विश्वाधारं सुरेश्वरवंदितं॥सदयहृदयं त्यक्तातंकं वि निर्जितशोचनं परमपददं ज्ञातार्थौघं त्रिकालविदंचितं ॥ ४ ॥ इंद्रवंशाछंदः ॥ अर्चं ति देवा जवपारगं जिनं कल्याणकारं मुनिवृंदसेवितं ॥ छत्रादिसल्लक्षणलक्षितं क्षि तावानंदसंदोहकरं सुधामयं ॥ ५ ॥ इति द्वितीयांतविजक्तिकाव्यत्रिकं ॥ शालिनीछं दः॥ प्राज्यं राज्यं चक्रवार्त्तित्वसंगं त्यक्त्वा दत्वा स्वर्णरूप्यादिदानं॥श्रुत्वा वाक्यं ब्रह्म लोकांतिकानां येनावाप्तं संयमं मुक्तियोग्यं ॥ ६ ॥ द्रुतविलंबितछंदः ॥ अमितपुण्य वता जनतावता कुगतिवारणतत्परसद्गिरा ॥ नतनरामरकिन्नरशालिना जगवता जुवि शर्म विधायिना॥७॥इति तृतीयांतविजक्तिकाव्यद्वयं॥इंद्रवज्राछंदः॥श्रीशांतिदेवाय नमोऽस्तु नेत्रे विघ्नौघहर्त्रे शिवमार्गदात्रे ॥ चक्रांकहस्ताय समस्तजर्त्रे शंखेंदुहारोज्ज्व लशुक्ककर्त्रे ॥ ८ ॥ रथोद्धताछंदः ॥ दर्शनामृतनिलीनजंतवे विश्वशास्त्रनयनीतिहेत वे॥लोजसागरसुवेलसेतवे द्वापरावलितमिस्त्रजानवे ॥९॥ इति चतुर्थीविजक्तिकाव्ययु ग्मं ॥ उपेंद्रवज्राछंदः ॥ अघानि नश्यंति पुराकृतानि प्रशस्तनाम्नातिशयप्रसक्तेः ॥ अनेकसंसारनिबंधितानि प्रगाढबंधस्थितिसंचितानि ॥ १० ॥ मालिनीछंदः ॥ जव ति सुखमनंतं शांतिनाथप्रसादाद्धरिणशरणदातुर्विश्वसेनांगजातात् ॥ नतजविकज नानां प्रीतिराजात्प्रकामं निरवधिजिनरागे लग्नसन्मानसानां ॥ ११ ॥ इति पंचम्यं तविजक्तिकाव्यद्वयं ॥ शिखरिणीछंदः ॥ सदा ध्यानं शांतेरखिलगुणधाम्नः शुजवतो धरंति श्रीकारं सुमतिमतिकारं जयहरं ॥ नरा जव्याः शक्त्या विगतमदतंद्राः श्रुतप राखिसंध्यं सद्ध्यानं प्रबलतरजाग्योदयमतः ॥१२॥ विद्युन्मालाछंदः॥ शांतेः शांतेः पादद्वंद्वं नत्वा नत्वा सश्रीकाः स्युः॥ जोजोः श्राद्धा आयुष्मंतस्तुष्ट्यानंदं कृत्वा कृत्वा॥ १३ ॥ इति षष्ठीविजक्तिकाव्यद्विकं ॥ वसंततिलकाछंदः ॥ चेतोस्ति चेद्भवपयोनिधि पारमाप्तं तीर्थंकरे जिनपतौ किल शांतिदेवे ॥ जक्तिं कुरुष्व सततं विपुलामुदारां हत्वा प्रमादमपि कर्मविशेषजन्यं ॥ १४ ॥ दोधकछंदः ॥ दुर्गतिसागरपीतसमुद्रे नि र्मलसंयमपालनमेरौ ॥ शारदशुद्धसुधाकरवक्त्रे शंखसमाननिरंजनचित्ते ॥ १५ ॥ ना

त्यवछंदः ॥ कारुण्यरंगरंजिते कार्पण्यदोषवर्जिते ॥ देवाधिपेऽचिरासुने लोकोपकारक मेते ॥ १६ ॥ इति सप्तमीविजक्तिकाव्यत्रिकं ॥ वंशस्थछंदः ॥ स्वकीयवंशांवरजास्कर प्रनो विशालगंगाजलशुभ्रकीर्त्ते ॥ अपारसंसारजयाच्च सत्वरं कृपापरस्त्वं परिरक्ष सेवकान् ॥ १७ ॥ इति संबोधनविजक्तिकाव्यमेकं ॥ मंदाक्रांताछंदः ॥ कल्याणोक्तं कुशलजननं सर्वसंघस्य नित्यं नानावृत्तैः प्रकलितमिदं स्तोत्रमेतत्रिकालं॥मुक्त्वाऽऽल स्यं जणति मनुजो जाविनाजावितात्मा गेहे लक्ष्मीर्जवति दृढता तस्य दीर्घायुष श्च ॥ १८ ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ कल्याणोदधिवर्द्धनं कलिहरं कौशल्यमालास्पदं सौजाग्यौघकरं विजक्तिकलितं कार्यैर्विजिन्नैः परं ॥ श्रीशांतेः स्तवनं पठंति जविनः सत्पुण्यपण्यालयास्तेषां धाम्नि शुजे निवासमतुलाः कुर्वंति संपत्तयः ॥ १९ ॥

॥ अथ श्रीअंतरिक्षपार्श्वस्तवनप्रारंजः ॥

इंद्रवज्राछंदः॥विश्वेश्वरं विश्वजनेशपूज्यं सर्वार्थनिष्पादनकामकुंजं॥ प्रख्यातिमंतं महिमौघलक्ष्म्या पार्श्वं जजे संस्थितमंतरिक्षे ॥१॥ कल्याणमालागृहमंगिदेव विद्या धराधीशनुतांघ्रिपद्मं ॥ सर्वत्र राष्ट्रेषु विशालकीर्त्ति पार्श्वं०॥२॥ रोगाधिचिंतार्त्तिसमू हतापजैषज्यमाचारविचारसूरिं ॥ सन्नीलरत्नच्छविजूषितांगं पार्श्वं०॥३॥ संसारसिंधौ वरयानपात्रं मुक्त्यंगनासक्तहृदं शरण्यं ॥ वामांगजातं जगतीप्रदीपं पार्श्वं० ॥ ४ ॥ श्री पार्श्वयक्षाधिपमद्वितीयं श्रीशालिनं सेरपुरावतंसं ॥ वाचासुधाकर्षितसन्यलोकं पा र्श्वं० ॥ ५ ॥ त्रैलोक्यकोटीरमनाथनाथं दारिद्र्यवाताद्रिमनंतशक्तिं ॥ शास्त्रार्थनैपु ण्यनिधिं दयालुं पार्श्वं० ॥६॥ पद्मावतीसेवितपादयुग्मं महोजरध्वांतदिनेशमाद्यं ॥ लावण्यसौजाग्ययशोनिराढ्यं पार्श्वं० ॥ ७ ॥ ज्ञानादिधर्माजरणं वरेण्यं सद्बोधदाना दिकमार्गपांथं आनंदवल्लीततिवारिधारं पार्श्वं० ॥ ८ ॥ कलशः ॥ स्रग्धराछंदः इत्थं ये देववंद्यं विविधसुखकरं चांतरिक्षाख्यपार्श्वं नित्यं ध्यायंति जक्त्या हृदयरति युजो जाग्यवंतो नरोपि ॥लक्ष्मीस्तेषां निकाय्ये वसति दृढतया सर्वदा कामकर्त्री क ल्याणश्रेणिकर्त्तुर्जुवि विदिततरा सर्वसंपत्तिकांता ॥९॥

॥ अथ श्रीगौडिकपार्श्वाष्टकप्रारंजः ॥

शार्दूलविक्रीडितछंदः॥वामेयं मरुदेशजूषणतरं श्रीपार्श्वयक्षार्चितं कल्याणावलिवल्लि सिंचनघनं श्रीइक्ष्वाकुवंशोद्भवं॥आराद्दूरसमागतैर्नरवरैः संसेवितं नित्यशः श्रीमद्गौडिकर गौडिकाजिधधरं पार्श्वं सुपार्श्वं जजे॥१॥नानासाधुजनौघपंकजवने मार्त्तंडबिंबायितं वि घ्नव्यूहनिवारकं कलियुगे प्राप्तप्रतापालयं॥ विश्वस्यां प्रथितावदाननिकरं निर्दोषपुण्यो

ज्वलं श्रीमल्ली०॥२॥संपत्श्रेयिसुदानकामकलशं त्रैलोक्यचिंतामणिं सद्याचामृतरंजितामरनरं सद्धर्मबोधप्रदं ॥ सौजाग्याद्भुतकांतकीर्त्तियशसा संपूरिताशांतरं श्रीमल्ली० ॥३॥ मार्गे चांतरजीतिवारिनिचिते क्षेमंकरं सर्वदा दारिद्र्यादिनिपातनात्सकुलिशं चिंतार्त्तिरोगापहं ॥ दुःखत्राससमीरणौघजुजगं नागांकमंहोमथं श्रीमल्ली०॥ ४ ॥ कारुण्यांचितचारुचित्तकमलं सत्वेषु संसारिषु सद्धैर्यादिगुणैरलंकृततनुं लावण्यलीलास्पदं ॥ संसारार्णवपीतवारिधिसमं मुक्त्यंगनावल्लनं श्रीमल्ली० ॥ ५ ॥ त्रैलोक्ये तिलकायितं निरुपमं जव्यैर्नृजिः पूजितं दुष्टानां निजसत्वदर्शनपरं क्षिप्रं सतां कामदं॥ नाम्ना ध्वस्तसमस्तवैरिनिचयं राद्धांतनिर्देशकं श्रीमल्ली० ॥ ६ ॥ जूयिष्टामलजक्तिशक्तिकलितैर्देवैश्चतुर्द्धा नतं सर्वाशाकरणैककल्पफलदं सर्वांगिचूडामणिं ॥ शिष्टानं तचतुष्टयीवरतरं श्रीमेरुतुंगं जिनं श्रीमल्ली० ॥ ७ ॥ स्फाराकारनिराजितांगमतुलं सद्वर्ण्यहेमाकरं विश्वव्याप्ततरं प्रवाससदनं गंजीरतासागरं ॥ जासोद्योतितविश्वविश्वमवनौ कल्याणसिंधौ विधुं श्रीमल्ली० ॥ ८ ॥ अष्टजिः कुलकं ॥ अनुष्टुप्छंदः ॥ जिन्नमाले सदाश्रेष्ठे गुणवल्लब्दजूषिते॥पुष्पमालेऽतराजिख्ये नेकवीहारसंयुते ॥ ए ॥ श्रीमतः पार्श्वनाथस्य स्तवनं जगतोऽवनं॥कल्याणसागराधीशैः सूरिजी रचितं मुदा॥१०॥ ॥स्रग्धराछंदः ॥ ध्येयं श्रीपार्श्वदेवं जजत किल जना गोमिकग्रामराजं शश्वत्सर्वार्थसिद्ध्यै विहितशुजहितं विष्टपे चैत्रपूर्वे॥सानंदोल्लासलष्टाः कुशलगविबुधाः सर्वलोके विशिष्टानिर्दोषाचारपुष्टा जिनपपतिषु रता आप्तकल्याणतुष्टाः ॥ ११ ॥

॥ अथ श्रीगोमीपार्श्वनाथस्तवनप्रारंजः॥

मालिनीछंदः॥जयति जगति चंद्रः पार्श्वनामा जिनेंद्रो विकचकमलदृष्ट्या नंदितामर्त्यमर्त्यः ॥ अकलितमहिमौघस्तीर्णसंसारसिंधुर्जुजगकलितपादः पुण्यपीयूषपुष्टः ॥१ स्रग्धराछंदः॥ श्रीपार्श्वं गोडिकाख्यं जजत जविगणे कल्पवृक्षं सुगोत्रं नानादेशेषु लब्धातिशयमहितताव्यूहवारं सुमूर्त्तिं ॥ श्रीमंतं नीलरत्नाधिकतरवपुषं स्फारलावण्यशालं मोहांजोराशिकुंजोद्भवममरनुतं पार्श्वयक्षार्चितांह्निं ॥ २ ॥ पंचचामरछंदः ॥ नमंति पार्श्वमंगिनो नरालसा धृतातपत्रचामरैः सुरैः स्तुतं ॥ अनंतशक्तिमालिनं गतामयं विवेकरत्नरोहणं दयाकरं ॥३॥ वसंततिलकाछंदः॥ करीकृतं व्रतमनुत्तरमंगिनेत्रा दत्वा ऽस्तु येन वरवार्षिकदानराशिं ॥ वामोद्भवेन मुनिनायकनायकेन कल्याणकेलिनिलयेन शुजाशयेन ॥ ४ ॥ डुतविलंबितछंदः ॥ मम नमोस्त्ववते परमात्मने जगवते शिवशर्म्मविधायिने ॥ अमितशौर्य्यतिरस्कृतमेरवे शुजदशेरकमंडलमौलये ॥५॥ हरि

णीछंदः॥ अमृतरसताधिक्याजीष्टान्नरोत्तमसंगताद्भुवनसुजगात्पार्श्वाजिख्याच्छिनश्यति पातकं ॥ प्रसरति च वै कीर्त्तिर्दिक्षु प्रसूनवडुज्वला प्रजवति पुनः शीघ्रं लीलाजयो न्नतिवर्द्धनं ॥६॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ आकल्या नरदेवदेवमनुषां संतुष्टिकर्तुस्सदा चेतोवल्लजकामसार्थददतः कर्मारिहर्तुर्भृशं ॥ आनंदौघसरःप्रवृद्धिकरणे पानीयदा तुर्मुदा पार्श्वस्यास्ति नतिः समृद्धिजननी कल्याणविस्तारिणी ॥७॥तोटकछंदः॥नरल क्षणजूषितवछ्युपुरे मुखनीरजरंजितविश्वजने॥श्रुतदेशनदर्शिनधर्मपथे जिननेतरि ति ष्ठति जाग्यरमा॥८॥जुजंगप्रयातछंदः॥ सुराधीशचक्रैः स्तुत ज्ञानसिंधो जगन्नाथ नेतः कृपालोकबंधो ॥ विजो पाहि मां सर्वदा जक्तिजाजं स्मरं तं चिरं त्वत्पदांजोजभृंगं ॥ ए ॥ शार्दूलविक्रीडतछंदः ॥ स्तोत्रं पार्श्वजिनेश्वरस्य सततं ये प्राणिनो जा वतः सद्बुद्ध्यापि पठंति हृद्यमनसस्तेषां गृहे संपदः ॥ स्युर्नित्यं स्थिरजावशोज नतरा धर्म्मार्थनिष्पादिकाः कल्याणार्णवसूरिजिर्विरचितं मांगल्यमालाकरं ॥१०॥ शिखरिणीछंदः॥ सदा धार्य्यं चित्ते स्तवनमनवद्यं जयहरं नरैर्नूनं सिद्ध्यै कुशलवन राजौ घननिजं ॥ अवंध्यं जक्तानां जिनगुणरतानां स्मृतिमतां समेषां जव्यानां प्रमु दकरणं कामितकरं ॥ १२ ॥

॥ अथ श्रीदादापार्श्वनाथस्तवनप्रारंजः ॥

॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ कल्याणगेहं गुणरत्नराजं सद्देहकांत्याजितनीलरत्नं ॥ स्तोष्ये मुदाशंकरमंगिवंद्यं दादानिधं श्रीवरपार्श्वनाथं ॥ १ ॥ सद्धर्मलीनाशयमाशु विघ्नं कर्म्माष्टदावानलवारिधारं ॥ संसारपाथोनिधिकर्णधारं दादा० ॥ २ ॥ आचारव ल्लीततिवृद्धिनीरं सत्कीर्त्तिपुष्पद्रुतवासिताशं ॥ नानार्थराद्धांतविचारदक्षं दाद० ॥ ॥ ३ ॥ वैराग्यरंगार्पितचारुचित्तं सद्बोधिदातारमनीहसेव्यं ॥ नागेंद्रसंसेवि तपादपद्मं दादा० ॥ ४ ॥त्रैलोक्यचूडामणिमृद्धिशोजं सौजाग्यजाग्यावलिपूर्ण देहं ॥ जव्यौघराजीवदिनेशमेकं ॥ दादा० ॥ ५ ॥ सर्वांगिनेतारमजीष्टवाचं विश्वे श्वरं रंजितसन्यलोकं॥लोकार्त्तिचिंताजयदुःखवारं दादा० ॥६॥ हृद्याकृतिं कत्तजरा धिक्षेपं नरामरेंद्रैः स्तुतमर्त्यसंघं॥ सन्नागचिन्हं कुशलार्थकारं दादा० ॥७॥ सर्वत्र वि ख्याततरप्रतापं कारुण्यसत्रं जुवि शिष्टगोत्रं॥ अज्ञानमिथ्यात्वतमिस्रदीपं दादा० ॥ ८ ॥ अष्टजिः कुलकं ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद. ॥ श्रीमद्बीवटपद्रजद्रनगरे शृंगार हारोपमं कल्याणांबुजजानुचंद्रमसमं वामांगजातं परं ॥ दादाख्यं जिनपार्श्वदेवमन घं ध्यायंति ये नित्यशस्तेषां धाम्नि रमा निवासमनिशं कुर्वंति कल्याणतः ॥ ए ॥

॥ अथ श्रीकलिकुंडपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

॥ विबुधाधिराजैर्नतपादपद्मं बहुभाग्यसौभाग्यभतौधमेयं ॥ कमठोपसर्गाचल धैर्य्यभित्तिं कलिकुंडपार्श्वं सुचिरं भजेऽहं ॥ १ ॥ कमलाप्रदाने हरिचंदनाभं सपयोधिदेशाद्भुतलब्धकीर्त्तिं ॥ रुचिराकृतौ रंजितविश्वविश्वं कलिकुंड० ॥ २ ॥ महिमावदातोत्तमनाममंत्रं समताभिरामं कमलाभिनेत्रं ॥ अभिलाषदं सिद्धि विलासयंत्रं कलि० ॥ ३ ॥ दुरितांधकारारुणसन्निकाशं करुणाशयं दुःखवने षु दावं ॥ नरदेवपूज्यं सुखदं सुमूर्तिं कलि० ॥ ४ ॥ कनकादिदातारमनंतशक्तिं वरनीलरत्नाधिकदेहवर्णं ॥ शिवशर्मराजं जनताभिवंद्यं कलि० ॥ ५ ॥ अनघं सदा सद्गुणकेलिपालं शुभलक्षणालंकृतवर्यगात्रं ॥ कुलभूषणं शत्रुतृणौघदात्रं कलि० ॥ ६ ॥ जगतीश्वरं कर्मविमुक्तसंगं विषमायुधालग्रमनःस्वरूपं ॥ धरणेंद्रपार्श्वार्चित पादयुग्मं कलि० ॥ ७ ॥ शुभसिंधुवृद्धौ शशिनं वरेण्यं वचसा सुधाभेन सहर्षस न्यं ॥ श्रुतसूरिणं पुण्यविराजमानं कलि० ॥ ८ ॥ अष्टभिः कुलकं ॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ एवं स्तुतः श्रीकलिकुंडपार्श्वः कल्याणनाम्ना मयका नितांतं ॥ ये प्राणिनः स्तोत्रमिदं पठंति तद्धाम्नि लक्ष्मीर्विलसत्यवश्यं ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीरावणपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ देवाधिदेवं कृतपार्श्वसेवं नागाधिराजेन नतांह्रिपद्मं ॥ पद्मावतीसंस्तुतनामधेयं सेवे सदा रावणपार्श्वनाथं ॥ १ ॥ आनंदकंदोदय वृद्धिमेघं मेघध्वनिध्वानविशेषराजं ॥ जितारिवृंदं विगताधिमोहं सेवे० ॥ २ ॥ वामांगजातं कुलनंदिकारं ध्वस्तोपसर्गोत्कटदुष्टरोगं ॥ प्रख्यातिमंतं भुवने प्रभा वैः सेवे० ॥ ३ ॥ सन्नीलभासा हसितेंद्रनीलं सत्कांतकांत्या रमणीयरूपं ॥ प्रावीण्यभा भातिशयैः प्रधानं सेवे० ॥ ४ ॥ संभीतिहर्त्तारमनंतसौख्यं विश्वेश्वरं द्योतितविश्व लोकं ॥ पद्मार्थदाने सुररत्नवृक्षं सेवे० ॥ ५ ॥ अज्ञानमिथ्यात्वतमिस्रभानुं नाभं म्लालंकृतमौलिपृष्ठं ॥ वाणीसुधामोदितसभ्यसंघं सेवे० ॥ ६ ॥ कौशल्यमांगल्यनिवा सगेहं पूर्णीकृताभीष्टपदार्थराशिं त्रैलोक्यदीपं वरसिद्धिभाजं सेवे० ॥ ७ ॥ संसार रत्नाकरयानपात्रं निःशेषदोषोज्झितधर्ममार्गं ॥ आदेयसौभाग्ययशःसुपात्रं सेवे० ॥ ८ ॥ अष्टभिः कुलकं ॥ मालिनीछंदः ॥ अलवरपुररत्नं रावणं पार्श्वदेवं प्रणतभुजसमुद्रं कामदं देवदेवं ॥ अमितगुणनिधाना ये नरः संस्तुवंति जगति विदितसारा भा ग्यवंतो भवंति ॥ ९ ॥

॥ अथ श्री गोडीपुरपार्श्वजिनस्तवनप्रारंभः ॥

रागेणगीयते॥ गौडिपुरप्रभुपार्श्वममंदं दर्शनदर्शनपरमानंदं नमितसुरासुरवृंदं॥१॥ श्रीजिनशासनचारुशृंगारं अंतरंगरिपुवृक्षकुगारं सकलजगदाधारं॥२॥ निरुपमरूपविराजितदेहं विदलितनानाजनसंदेहं अमितगुणधनगेहं॥३॥ दुरितकाननछेदनदात्रं रुचिरलक्षणविभूषितगात्रं वारितकुमतकुपात्रं ॥४॥ अनघजिनवरगोत्रसुगोत्रं कामकुंभमणिनिर्जरगोत्रं संयमदृढतागोत्रं ॥५॥ छेदितभवभयमरणारिष्टं प्रकटितमहिमातिशयवरिष्ठं जगदैश्वर्यगरिष्ठं ॥६॥ विहिताखिलभविजनकल्याणं पालितयथाख्यातकल्याणं दत्तमार्गणकल्याणं ॥ ७ ॥ आधिबंधवधगदहर्त्तारं वांछितकुशलसौख्यकर्त्तारं भुवनत्रयभर्त्तारं ॥ ८ ॥ विकटकष्टनिवारणशूरं आगमनयप्रकाशनसूरं भारतीगंगापूरं ॥ ९ ॥ धृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्मीगणविश्वं केवलयुगलालोकितविश्वं प्राप्तजनेप्सितविश्वं ॥ १० ॥ सेवकमनोभीष्टदातारं रंजितदेवनरनेतारं अनुभूतकुलत्रातारं ॥ ११ ॥ इंद्रनीलमणिवर्णसुवर्णं निखिलदेशविख्यातसुवर्णं वाक्सुधासारसुवर्णं ॥ १२ ॥ मुक्तिसीमंतिनीसंगमलुब्धं चंचलविषयसुखसंगालुब्धं कर्मपराविप्रलुब्धं ॥१३॥ वंदितामरमौलिकुटीरं विषमकषायदवानलनीरं उत्कटपरीषहधीरं ॥१४॥ अंचलगणनीरधिसारंगं कीर्तिलतावर्द्धनसारंगं दुर्ज्ञानशलभसारंगं ॥ १५ ॥ वंदेऽनंतचतुष्टयिराजं पूजितसुरपतिमानवराजं प्रवरतीर्थाधिराजं॥१६॥ षोडशभिः कुलकं॥ शिवतातिपार्श्वे वरदवरपार्श्वं मोहतमिस्रसवितारं नागराजराजं त्रिभुवनपूज्यं लब्धभवोदधिपारं ॥ शुभसागरनित्यप्रथितगरिमाणं ये ध्यायंति विभुं मुदा लक्ष्मीस्तान् समुपैति सत्वरमतुला सर्वार्थसिद्धिप्रदा ॥ १७ ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वजिनस्तवनप्रारंभः ॥

तोटकछंदः ॥ भविकांबुजभासनभानुनिभं भवतापसमावनवारिधरं ॥ रचितागमशास्त्रविचारनयं जय मंगलकीर्तियशोनिचयं ॥ १ ॥ कमलामलकेलिगृहं विमलं जलदाशयमुक्तिसंतमसं ॥ शुभसागरवर्द्धनचंद्रमसं सकलामरपूजितपादकजं ॥२॥ विकटोत्कटकर्म्ममृगेभरिपुं खगनागनरेश्वरदेवनतं ॥ तरसा जितमोहरिपुं विभयं यमसंवरसंहितसाधुहितं ॥ ३ ॥ शुभलक्षणलक्षितहस्तयुगं गजराजगतिं गतविघ्नरुजं ॥ जडतामयभेषजमीशवरं दशनद्युतियोतितचारुमुखं ॥४॥ कनकाचलधीरमभीष्टतरं रसनारसरंजितसर्वसभं ॥भुवनत्रयमंडलमोघतरं रुचिराकृतिमोहितदेवजनं ॥५॥ अरिहंतमनुत्तरतीर्थकरं रचितं वरबुद्धिधनं जिनपं ॥ पुरुषोत्तममस्मरमर्थनिधिं धृ

तिकांतिनिकेतनमंगिनुतं ॥६॥ निजवंशवतंसकमार्तिहरं रवनिर्जितमेघनदं शिवदं॥ दयितं भुवि विश्वजनीनतमं नतभूतगणं जितलोभजटं ॥ ७ ॥ शरणाश्रितपालकमुक्तिपदं दधतं वरशांतरसं नवमं ॥ महसेंद्रमणिप्रभदेहधरं धरणेंद्रनिषेवितपार्श्वयुगं ॥८॥ अममं नुतपार्श्वजिनं सततं तपसा हतसिद्धमनंतबलं ॥ ललनाजनसंगविरक्तमलं मलवर्जितमुत्तरसौख्यधरं ॥९॥नवभिः कुलकं ॥ सुरराजखेचरनागपुरंदरधरणिराजसुसेवितं श्रीपार्श्वजिनेश्वरं नमितसुरेश्वरपद्मावतीसंस्तुतं॥ येऽनंतभक्तया विशुद्धश्रद्धया संस्तुवंति जिनं मुदा गुणसागरपठनाब्धविकरमाससमेतं ते लभंति सुखं सदा॥१०॥

॥ अथ श्रीमद्धुरपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

द्रुतविलंबितछंदः ॥ विबुधमानवमानसनंदनं विभवदानविधौ हरिचंदनं ॥ निखिलसभ्यजनैः कृतवंदनं भजत पार्श्वजिनं मद्धुराभिधं ॥ १ ॥ युगलकौशिकसाम्यतराशयं भुवनभानुनिवासघनाश्रयं ॥ विषयिवारणकेसरिसन्निभं भजत० ॥२॥ अरुणकोटिविभाधिकभास्वरं कुमुदबांधवशुभ्रतराननं ॥ वरगभीरगुणोत्तमसागरं भजत० ॥३॥ भविकपद्मविभासनभास्करं जगति भावप्रकाशनदीपकं ॥ नयनपाटवपावनतंत्रकं भजत० ॥४॥ रचितकामठवारिदसंचयैरखिलधैर्यसमन्वितचेतसं॥ विकटकर्मसमीरणभोगिनं भजत० ॥ ५ ॥ कमठनिर्म्मितपांशुकदंबकैः स्थिरतरोत्कटभावविराजितं ॥ जगति दुर्जनसर्पविषापहं भजत० ॥६॥ प्रशमभूषणभूषणभूघनं सुभगभाग्यगुणावलिमंदिरं ॥ धवलकीर्तियशोंबरधासितं भजत० ॥ ७ ॥ सकलसंघसमीहितक[illegible]कं निचितवि[illegible]पराभवह[illegible]कं ॥ अतिशयाद्भुतचारुचरित्रकं भजत० ॥ ८ ॥ हरिणीछंदः ॥ मद्धुरजिनपं नित्यं वंदे शिवोदधिवर्द्धनं शशिनमनिशं क्षिप्रध्वांते दिनेशमहोदयं ॥ स्तवनभणने चिताल्हादेः कृतादरसेवकेविविधधनदं विश्वे विश्वे जिनेशनतानने ॥९॥ द्रुतविलंबितछंदः ॥ मद्धुरपार्श्वजिनेश्वरसंस्तवं पठति यः सुधियोपसि नित्यशः॥ वसति तस्य गृहे कमला ऽखिला स्थिरतरासुमतां वरदायिनी ॥ १० ॥

॥ अथ सत्यपुरीय श्रीमहावीरस्तवनप्रारंभः ॥

द्रुतविलंबितछंदः ॥ त्वमसि सद्गुणनंदनमंदरस्त्वमसिमेरुलतावलिमंडपः ॥ त्वमसि खेचरनाकिनरस्तुतस्त्वमसि रूपवशीकृतविष्टपः ॥ १ ॥ त्वमसि योगिजनौघशिरोमणिस्त्वमसि कांतिविकाशितदिग्गणः ॥ त्वमसि भाषितरंजितनागर स्त्वमसि सिद्धिवशारतिमोहितः ॥ २ ॥ त्वमसि भद्रकरः करुणालयस्त्वमसि भक्तचकोरनिशाकरः॥ त्वमसि दर्शनहर्षितमानवस्त्वमसि संसृतिसागरपोतकः॥ ३ ॥ त्वमसि मोहमहोरुहकुंजरस्त्वमसि धर्मधनो धनकामदः ॥ त्वमसि संशयवायुभुजंगम

स्त्वमसि दर्शितजीवदयापथः ॥ ४ ॥ त्वमसि धारितशीलविभूषणस्त्वमसि कामितदामसुरद्रुमः ॥ त्वमसि देवनराधिपवंदितस्त्वमसि जाड्यतमिस्रनभोमणिः ॥ ५ ॥ त्वमसि कर्मवनावनिपावकस्त्वमसि सेवकपूजितपंकजः ॥ त्वमसि जन्मजरामृतिवारणस्त्वमसि शाश्वतमोक्षपदस्थितः ॥ ६ ॥ त्वमसि मंजुलसत्कुलदीपकस्त्वमसि सर्वपदार्थविशारद. ॥ त्वमसि लोकनतो नतवत्सल स्त्वमसि देवशिलीमुखपुष्करः ॥ ७ ॥ त्वमसि नाथमनोहरलक्षणस्त्वमसि संमतजीवगणः सदा ॥ त्वमसि संवरमार्गविधायकस्त्वमसि दानगुणाल्पितकल्पकः ॥ ८ ॥ त्वमसि चित्रकरातिशयांचितस्त्वमसि सूरिततीश्वरसेवितः॥ त्वमसि दुःखिजनावनतत्परस्त्वमसि हारनिभः क्षितिमंडले ॥ ९ ॥ त्वमसि शिष्टनरामरसंगतस्त्वमसि लोकचमत्कृतनिर्ममः ॥ त्वमसि केवलिसाधुनतो मुदा त्वमसि कुग्रहदोषनिवारकः ॥ १० ॥ त्वमसि सद्व्रतभारवृषोपमस्त्वमसि वीतमदो विशदाशयः ॥ त्वमसि तीर्थपते रुचिराह्वयस्त्वमसि गुप्तिपवित्रितमानसः ॥ ११ ॥ त्वमसि बुद्धिपराजितगीःपति स्त्वमसि हाटकसन्निभविग्रहः ॥ त्वमसि भाग्यविनाशनिकेतनस्त्वमसिलोभमहीधरवज्रकः ॥ १२ ॥ त्वमसि सप्तनयार्णवतारकस्त्वमसि दुर्घटसत्यनयाध्वगः ॥ त्वमसि सम्मदसंततिकारकस्त्वमसि सिद्धिकरो वरदायकः॥१३॥त्वमसि विश्वजगज्जनवत्सलस्त्वमसि रक्षितभूतकदंबकः ॥ त्वमसि दुर्नगदुस्थहरोनिशं त्वमसि विस्तृतलोचनरंजकः ॥१४॥ त्वमसि विश्वपतिः श्रितबांधवस्त्वमसि वक्रतिरस्कृतचंद्रमाः ॥ त्वमसि वैरिसमुद्घटोद्भवस्त्वमसि तीर्थकरः प्रतिबोधदः ॥ १५ ॥ त्वमसि भव्यशिखंडिबलाहकस्त्वमसि बंधुरमूर्तिधरोऽजरः ॥ त्वमसि सर्वविभुर्विगतातुरस्त्वमसि संयममंडनमंडितः ॥ १६ ॥ त्वमसि शांतरसाश्रितचेतनस्त्वमसि पौरुषनिर्जितकार्मणः ॥ त्वमसि दुर्लभबोधिनिबंधनस्त्वमसि कामदुघाधिकदानदः ॥ १७ ॥ त्वमसि संचितपुण्यनिधिः परस्त्वमसि विघ्नसरीसृपगारुडः ॥ त्वमसि शुभ्रयशोभरमंदिरस्त्वमसि संघजयोन्नतिहर्षदः ॥ १८ ॥ त्वमसि सत्वहितो मतिवर्द्धनस्त्वमसि धर्म्मसरोजसरःसमः ॥ त्वमसि चक्रिनतो भविशेखरस्त्वमसि पारगतः परमेश्वरः ॥ १९ ॥ त्वमसि सत्यपुरामलभूषणस्त्वमसि संश्रितपादमृगाधिपः ॥ त्वमसि केवलयुग्मविराजितस्त्वमसि वीरजिनो जिननायकः ॥ २० ॥ त्वमसि शासनपोतनियामकस्त्वमसि साधुदयालुललामकः॥त्वमसि सौख्यकरस्त्रिशलांगजस्त्वमसि विश्वगुरुः श्रुतसागरः ॥ २१॥ हरिणीछंदः॥ जयति सततं वीरः शं श्रुचेव.दधिपारगो जगति तिलकः पापध्वांते गभस्तिरनुत्तरः ॥ कुशलनिलयस्तीर्थस्वा

मी सुरासुरसंस्तुतो विदितमह्निमां विश्वे विश्वेश्वरार्चितपत्कजः॥ २२॥ वंशस्थछंदः॥
कुलावतंसं यतिधर्म्मदेशकं कलंदिकापारगमंगिपालकं ॥ नवीमि वीरं मतिदं ह्निता
वहं मनोर्थसंपादनकामकुंजकं ॥ २३ ॥ नुजंगप्रयातछंदः ॥ प्रजुं देववंद्यं जिनं वि
श्वनाथं जगन्नारुचूडामणिं वीरनाथं ॥ स्तुवेऽहं जितारिं नतस्वर्गिनाथं सदा शांति
कारं नरेंद्राधिनाथं ॥ २४ ॥ स्रग्धराछंदः ॥ श्रीराजं वीरदेवं प्रणतसुरमणिं देवमर्त्या
धिराजं कल्याणांनोधिवृद्धौ विमलशशधरं नाग्यसौनाग्यकारं ॥ ये नव्याः संस्तुवं
ति प्रतिदिनमनघं चारुनक्त्या त्रिसंध्यं प्रख्यातिं ते लनंते त्रिजुवनविदितां कीर्तिप्रा
ग्नारकर्त्रीं ॥ २५ ॥ तुज्यं नमः समयधर्म्मनिवेदकाय तुज्यं नमस्त्रिजुवनेश्वरशेख
राय ॥ तुज्यं नमः सुरनरामरसेविताय तुज्यं नमो जिनजनार्चितपत्कजाय ॥१॥ तु
ज्यं नमोऽनिलषते ह्नरिचंदनाय तुज्यं नमो वरकुलांबरनास्कराय॥तुज्यं नमः प्रणतदे
वनराधिपाय तुज्यं नमः प्रवररूपमनोहराय ॥ २ ॥ तुज्यं नमो हरिगणनायकनाय
काय तुज्यं नमो यतिततिप्रतिपालकाय ॥ तुज्यं नमो विकचनीरजलोचनाय तुज्यं
नमस्तनितनादविराजिताय ॥ ३ ॥ तुज्यं नमः कुशलमार्गविधायकाय तुज्यं नमोवि
कटकष्टनिषेधकाय ॥ तुज्यं नमो डुरितरोगचिकित्सकाय तुज्यं नमस्त्रिजगतो हृदि
नूषणाय ॥ ४ ॥ तुज्यं नमो दलितमोहतमोनराय तुज्यं नमः कनकसन्निजनूघना
य ॥ तुज्यं नमोप्यखिलसद्गुणमंदिराय तुज्यं नमो मुखकलादिऽतचंड्रिकाय ॥ ५ ॥
तुज्यं नमोऽतिशयराजिविनूषिताय तुज्यं नमः कुमतितापसुनंजनाय ॥ तुज्यं न
मो मुखपयोधिवह्नित्रकाय तुज्यं नमो विगतकैतवमत्सराय ॥ ६॥ तुज्यं नमो विदि
तनव्यजनाशयाय तुज्यं नमो निखिलसंशयवारकाय ॥ तुज्यं नमः प्रथितकीर्त्तिय
शोन्विताय तुज्यं नमो जितहृषीकमुनीश्वराय ॥ ७ ॥ तुज्यं नमोप्रमितपुण्यनिर्मि
ताय तुज्यं नमः सकलवाङ्मयपारगाय ॥ तुज्यं नमो नविकचातकनीरदाय तुज्यं
नमश्चरणवैनवदायकाय ॥ ८ ॥कुलकम् ॥ वीराष्टकं पठति यः सततं त्रिसंध्यं त्य
क्त्वा सदा प्रबलमीहजडःप्रमादं ॥ तद्धाम्नि मंक्षु कुरुते कमला निवासं कल्याणसा
गर नुवामसतामनीष्टं ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीलोडणपार्श्वनाथस्तवनप्रारंनः ॥

श्रीकरं कष्टहर्त्तारं विधिवादप्रकाशकं ॥ धिया तर्जितवागीशं परमात्मानमन्वहं ॥१॥
क्षमागारं कृपापात्रं गताधिव्याधिदूषणं ॥ ठेकं तु सर्वकार्येषु श्रीप्रदं दलितामयं॥२॥
धनधान्यकरं लोके रमाकेलिपदं परं ॥ मर्मतामदमानौघमूर्खतादोषवर्जितं ॥ ३ ॥
आर्तिसंतापजेत्तारं सूरिश्रेणिशिरोमणिं ॥ रिपुसारंगसारंग मंगिनाथनिषेवितं ॥ ४ ॥

तेजसां मंदिरं रम्यं वारिताशेषडुर्जनं ॥ निःसीमं सर्वगोत्राणां श्रीमंतं गुणसागरं ॥ ५ ॥ कथिताचारमार्गौघं कल्याणकमले विधुं ॥ प्रणताशेषदेवेशं शासनं कांतनूघनं ॥ ६ ॥ गदितागमसंदोहं रसनामृतसुंदरं ॥ सूराधिकप्रतापाढ्यं रिक्थदं दमितेंद्रियं ॥ ७ ॥ नागेंद्रविबुधैः सेव्यं लोकानां शांतिकारकं । जडताया विजेतारं नयनाह्लादकारणं ॥८॥ पालकं सर्वसत्वानां पार्श्वयक्षेण पूजितं ॥ नाकिमानववंद्यांन्हिं नाथनाथं जगत्प्रभुं ॥ ९ ॥ क्रियासंततिनेतारं त्रासितानेकदोषकं ॥ कृतांतार्थविचारज्ञं तारतारुण्यराजितं ॥ १०॥ संसारसागरे पोतं घस्मराधिविवर्जितं ॥ सर्वज्ञं मेघगंजीरं हितं विश्वस्य सर्वदा ॥ ११ ॥ तेजोनिधिं मुदा पार्श्वं नवीमि लोमणाभिधं ॥ कल्याणसागराख्येन संस्तुतं ह्यादिमाक्षरैः ॥ १२ ॥ द्वादशभिः कुलकं ॥ श्रीमल्लोडण पार्श्वनाथमवनौ विख्यातगोत्राभिधं ये भव्या वरभावभक्तिसहिताः पूजंति सौख्यार्थिनः ॥ ते सत्वाः सुखमानकीर्त्तिकलिताः कल्याणतुंगाः परा जायंते भुवने प्रतापरुचिरा आदेयवाचः सदा ॥ १३ ॥

॥ अथ श्रीसेरीशपार्श्वाष्टकप्रारंभः ॥

कामौघकर्त्तारमशेषदेवार्धीशैस्सदार्चार्चितपादपद्मं ॥ कल्याणकारं वरनीलवर्णं सेरीशपार्श्वं नुथ लोडणाख्यं ॥ १ ॥ सत्पुण्यवल्लीवनवारिधारं निःशेषभव्यावलिपूरिताशं ॥ त्रैलोक्यछत्रं भुवनाधिनाथं सेरी० ॥२॥ सारंगवाणीजितचित्तदार्ढ्यं सारंगगंभीरनिनादकांतं ॥ सारंगसारांबकयुग्मराजं सेरी० ॥३॥ विश्वेषु सत्वेषु कृपानिधानं सम्यक्त्वरत्नाभरणांकितांगं ॥ दुःखांगपर्शुं दलितारिवर्गं सेरी० ॥४॥ अपारसंसारसमुद्रपोतं सर्वज्ञमाचारपवित्रवंशं॥राद्धांतशास्त्रार्थरहस्यदक्षं सेरी०॥५॥ वाणीरसानंदितविश्वविश्वं तीर्थंकरं नागपुरेशपूज्यं ॥ सर्वत्र विख्यातयशोभिरामं सेरी० ॥६॥ तेजोनिधिं कामितकामकुंभं सौजन्यसौहार्दविलासपात्रं ॥ कल्याणसूर्यादिवितानहेतुं सेरी० ॥ ॥ ७ ॥ आदित्यचंद्राधिकदेहभासं सत्प्रातिहार्याष्टकराजिराजं ॥ स्फाराकृतौ मोहितदेवदेवं सेरी० ॥८॥ कलशः ॥ एवं कल्याणवंद्यं त्रिभुवनतिलकं लोडणार्हं सुपार्श्वं कृत्वैकाग्र्यं स्वचित्ते भवसफलकृते ज्ञानसंपत्तिसिद्ध्यै॥नित्यं ध्यायंति भव्याजिनसमयरताः शुभ्रलेश्याभिरामास्तेषां हर्षात्प्रकामं भवति च सदने मंजुपद्मानिवासः ॥ ९ ॥

॥ अथ श्रीसंभवनाथाष्टकप्रारंभः॥

लावण्यगेहं कलहेमवर्णं ह्यष्टोज्झितं सुंदरवाहचिन्हं ॥ लक्ष्मीकलापार्णवधिष्ण्यनाथं देवैर्नतं संभवनाथमीडे ॥ १ ॥ श्येनांगजं दारुणकर्मशत्रौ वीरं वरं पुण्यचरित्रशोभं ॥ क्षेमास्पदं सद्गुणरत्नखानिं देवै० ॥२॥ इक्ष्वाकुवंशं वरतिग्मरश्मि

राकेंडुवक्रं गतवक्रमाधं ॥ अज्ञानवैश्वानरशांतिनीरं देवै० ॥ ३ ॥ दुःखोदधौ पोत समुद्भिदं ॥ सत्प्रातिहार्याष्टकराजिराजं ॥ क्षमानिधिं विस्तृतपुण्यमूर्त्तिं ॥ देवै० ॥ ४ ॥ नव्यैर्मुदा सेवितपादपद्मं सज्ञानवज्राहतमोहनूधरं ॥ संसारदावाकुल मर्त्यमेघं देवै०॥५॥सत्कीर्त्तिपात्रं दुरितारिसेव्यं जगज्जनानंदकरं शरण्यं ॥ कारुण्यसंयुक्तपवित्रचित्तं देवै० ॥६॥ कुंदार्द्धदंतं कजलोचनं वे वपुश्रियार्तार्जितसूर्यकांतिं ॥ पापांधकारे ऽमलदीपकं तं देवै० ॥ ७ ॥ प्रसादनात्स्वपरसेवकस्येप्सितार्थदाने सुरदेववृक्षं ॥ सुरवरनेकैर्युतचारुदेहं देवै० ॥८॥ कलशः ॥ इत्यष्टकं श्रीजिनसंनवस्य पठंति ये मंजुलनावयुक्त्या॥तेषां गृहे पुण्यनिधानन्व्याः कल्याणकाराश्च नवंति क्षयः॥९॥इति श्रीमज्जिननायकस्य श्रीसूर्यपुरनूषणस्य श्रीसंनवनाथस्याष्टकं संपूर्णं॥

॥ अथ श्रीसूक्तमुक्तावली प्रारंनः॥

मालिनी छंदः ॥ सकलसुकृतवल्लीवृंदजीमूतमालां निजमनसि निधाय श्रीजिनेंद्रस्य मूर्त्तिं ॥ ललितवचनलीलालोकनाषानिबद्धैरिह कतिपयपद्यैः सूक्तमालां तनोमि ॥ १ ॥ अथक्रमसंग्रहकाव्यं ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ तत्त्वज्ञानमनुष्य सज्जनगुणान्यायप्रतिज्ञाक्षमा चिन्ताद्यं च कुलं विवेकविनयो विद्योपकारोद्यमाः ॥ दानक्रोधदयादितोषविषयाः साक्षात्प्रमादस्तथा साधुश्रावकधर्मवर्गविषये ज्ञेया प्रसंगाद्यमी ॥ २ ॥ अथदेवतत्वविषेः मालिनीछंदः ॥ सकल करमवारी मोक्षमार्गाधिकारी ॥ त्रिभुवनउपगारी केवलज्ञानधारी ॥ नविजन नित सेवो देव ए नक्तिनावे ॥ इहिज जिन नजंतां सर्व संपत्ति आवे ॥ ३ ॥ जिनवरपदसेवा सर्वसंपत्तिदाई ॥ निशिदिन सुखदाई कल्पवल्ली सहाई ॥नमि विनमि लहीजे सर्व विद्या वडाई ॥ क्षषन जिनह सेवा साधतां तेह पाई ॥ ४ ॥ अथगुरुविषेः ॥ स्वपरसमयजाणे धर्मवाणी वखाणे ॥ परम गुरुकह्याथी तत्व नीशंक माणे॥ नविककज विकाशे नानुज्यूं तेज नासे ॥ इहज गुरु नजो जे शुद्धमार्ग प्रकाशे ॥ ५ ॥ सुगुरुवचनसंगे निस्तरेजीवरंगे ॥ निरमल नर थाए जेम गंगाप्रसंगे ॥ सुणिय सुगुरु केशी॥ वाणि रायप्रदेशी ॥ लहि सुरनव वासी जे हसे मोक्षवाशी ॥ ६ ॥ अथधर्मविषे ॥ जलनिधि जलवेला चंद्रथी जेम वाधे ॥ सकल विनवलीला धर्मथी तेम साधे ॥ मनुअ जनमकेरो सार ते धर्म जाणी ॥ नजिनजि नवि नावे धर्म ते सौख्य खाणी ॥७॥ इह धरम पसाये विक्रमे सत्य साध्यो ॥ इह धरम पसाये शालिनो साक वाध्यो॥ जस नर गज वाजी मृगिकाना जिकेई ॥ रणसमय थया ते जीव साचा तिकेई ॥ ॥ ८ ॥ अथज्ञानविषेः ॥ तन धन ठकुराई सर्व ए जीवनेछे ॥ पण इक दुखिलुं

ज्ञान संसारमां छे ॥ नवजलनिधि तारे सर्व जे दुःख वारे ॥ निजपरहित हेते ज्ञान ते कां न धारे ॥ ९ ॥ यवऋषि इक गाथा बोधथी जे निवार्यो ॥ इक पदथि चिलातीपुत्र संसार वार्यो ॥ श्रुतभणत सुज्ञानी मास तुंडादि थावे॥ श्रुतथि अन य हाथे रोहिणो चोर नावे ॥ १०॥ अथमनुष्यजन्मविषेः ॥ भवजलनधि भमंतां कोइ वेला विशेषे ॥ मनुजजनम लाधो दुल्लहो रत्न लेखे ॥ सफल कर सुधर्मा ज न्म ते धर्मयोगे ॥ परभवसुख जेथी मोक्षलक्ष्मी प्रभोगे ॥ ११ ॥ मनुजजनम पा मी आलसे जे गमेछे ॥ शशिनृपतिपरे ते शोचनाथी भमेछे ॥ दुलह दश कथा यूं मानुखोजन्म ए छे ॥ जिनधरम विशेषे जोडतां सार्थ ते छे ॥ १२ ॥ अथसज्जन विषेः ॥ सदयमन सदाई दुःखियां जे सहाई ॥ परहित मतिदाई जास वाणी मि ठाई ॥ गुणकरि गहराई मेरुज्यूं धीरताई॥ सुजनजन सदाई तेह आनंददाई ॥१३॥ जइ दुरजन लोके दूहव्या दोष देई ॥ मनमलिन न थाए सज्जना तेह तेई ॥ दुप दजनकपुत्री अंजना कष्टयोगे ॥ कनकजिम कशोटी ते तिसी शील भोगे ॥ १४ ॥ अथगुणविषेः ॥ गुणगहि गुण जेमां ते बहू मान पावे ॥ नर सुरनिगुणे ज्यूं फूल शीशे चढावे ॥ गुणकरि बहु माने लोक ज्यूं चंद्रमाने ॥अति कृश जिम माने पू र्णने त्यूं न माने ॥ १५ ॥ मलयगिरि कडे जे जंबुलिंबादि सोई ॥ मलयजतरु संगे चंदना तेइ होई ॥ इम लहिय वडाइयूं कीजिये संग रंगे ॥ गजशिरचडि बेठी ज्यूं अजा सिंहसंगे ॥ १६ ॥ अथन्यायविषे ॥ जग सुजस सुवासे न्यायलक्ष्मी उपासे॥ व्यसन दुरित नासे न्यायथी लोक वासे ॥ इम हृदय विमासी न्याय अंगी करी जे॥अनय परिहरीजे विश्वने वश्य कीजे ॥ १७ ॥ पशु पण तस सेवे न्यायथी जे न चूके ॥ अनयपथ चले जे भाइ ते तास मूके ॥ कपिकुल मिलि सेव्यो रामने सीस नामी ॥ अनयकरि तज्यो ज्यूं भाइए लंकस्वामी ॥१८॥ हय गय न सहाई युद्ध कीर्त्ती सदाई ॥ रिपुविजय वधाई न्याय ते धर्मदाई॥ धरमनय धरे जे ते सुखे वैरि जीपे ॥ धरमनय विहूणा तेहने वैरि कोपे ॥ १९ ॥ धरमनय पसाये पांडवा पंच तेई ॥ करि युधे जय पाम्या राज्यलीला लहेई ॥ धरमनय विहूणा कौरवा सर्व माता रणसमय विगूता पांडवा तेह जीत्या ॥ २० ॥ अथप्रतिज्ञाविषेः ॥ शुभ अशुभ जिकांई आदर्युं जे निवाहे ॥ रवि पण तस जोवा व्योम जाणी वगाहे ॥ करिगहन तिवाहे तास निस्संत आपे ॥ मलिन तनु परवाले सिंधुमां सूर आपे ॥ २१ ॥ पुरुषरयण मोटा जे गणीजे धराये ॥ जिण जिम प डिवज्यूं ते न छांडे पराये ॥ गिरिश विष धर्यो जे ते न अद्यापि नाख्यो ॥ दुर

गति नर लेई विक्रमादित्य राख्यो ॥ २२ ॥ अथ उपशमविषेः ॥ उपशम हित कारी सर्वदा लोकमांही ॥ उपशम धर प्राणी ए समो सौख्य नांही ॥ तप ज प सुर सेवा सर्व जे आदरे छे ॥ उपशमविण जे ते वारि मंथा करे छे ॥ २३ ॥ उपशम रस लीला जास चित्ते विराजी ॥ किम नर नव केरी रिद्धिमां तेह राजी ॥ गज मुनिवर जेहा धन्य ते ज्ञान गेहा ॥ तपकरि कृश देहा शांति पीयूष मेहा ॥२४॥ अथ त्रिकरणशुद्धिविषेः ॥ जग जन सुखदाई चित्त एवुं सदाई ॥ मुखे अति मधुराई साच वाचा सुहाई ॥ वपु परहित हेते त्रण्य ए शुद्ध जेने ॥ तप जप व्रत सेवा तीर्थ ते सर्व तेने ॥ २५ ॥ मण वच तनु त्रण्ये गंगज्यूं शुद्ध जेने ॥ निज घर निवसंतां निर्जरा धर्म तेने ॥ जिम त्रिकरण शुद्धे ढीप दी अंब वाव्यो ॥ घर सफल फलंतो शील धर्म सुहाव्यो ॥ २६ ॥ अथ कुलविषे सहज गुण वशे ज्यूं शंखमां श्वेतताई ॥ अमृत मधुरताई चंद्रमां शीतलाई कुवलय सुरजाई इक्षुमां ज्यूं मिठाई ॥ कुलज मनुजकेरी त्यूं सुनावे नलाई ॥ ॥२७ ॥ जिण घर वर विद्या जो हुवे तो न ऋद्धि ॥ जिण घर दुय लाने तो न सौजन्य वृद्धि ॥ सुकुल जनम योगे ते त्रणे जो लहीजे ॥ अनय कुमर ज्यूं तो जन्म साफल्य कीजे ॥ २८ ॥ अथ विवेकविषे ॥ हृदय घर विवेके प्राणि जो दीप वासे ॥ सकल नव तणो तो मोह अंधार नाशे ॥ परम धरम वस्तु तत्व प्रत्यक्ष नासे ॥ करम नर पतंगा स्वांग तेने विधंसे ॥ २९ ॥ विकल नर कहीजे जे विवेके विहीना ॥ सकल गुण नख्या जे ते विवेके विलीना ॥ जिम सुमति पुरोधा नूमि गेहे वसंते ॥ उगति जुगति कीधी जे विवेके उगंते. ॥ ३० ॥ अथ विनय विषे ॥ निशिविण शशि सोहे ज्यूं न शोले कलाई ॥ विनयविण न सोहे त्यूं न विद्या वमाई ॥ विनयवहि सदाई जेह विद्या सहाई ॥ विनय विण न कांई लोकमां उच्चताई ॥ ३१ ॥ विनय गुण वहीजे जेहथी श्री वरीजे ॥ सुर नर पति लीला जेह हेलां लहीजे ॥ पर तणय शरीरे पेशवा जे सुविद्या ॥ विनय गुणथि लाधी विक्रमे तेह विद्या ॥ ३२ ॥ अथ विद्याविषे ॥ अगम मति प्रयुंज्ये विद्ययें कोन गंजे ॥ रिपु दल बल भंजे विद्ययें विश्व रंजे ॥ धनथि अखय विद्या सीख एणे तमासे ॥ गुरुमुख नणि विद्या दीपका जेम नासे ॥ ३३ ॥ सुर नर सुप्रसंसे विद्ययें वैरि नाशे ॥ जगि सुजस सुवासे जेह विद्या उपासे ॥ जिणकरि नृप रंज्यो नोज बाणे मयूरे ॥ जिणकरि कुमारिंदो रीजव्यो हेम सूरे ॥ ३४ ॥अथउपकारविषेः॥ तन धन तरुणाई आयु ए चंचला छे॥

परहित करि ले जे ताहरो ए समे छे ॥ जब जनम जरा आं लागशे कंठ साई ॥ कहि न तिण समे तो कोण थाशे सहाई ॥ ३५ ॥ नहि त रु फल खावे ना नदी नीर पीवे ॥ जस धन परअर्थे सो नले जीव जीवे ॥ नल करण नरिंदा विक्रमा राम जेवा ॥ परहित करवा जे उद्यमी दक्ष तेवा ॥३६॥ ॥अथ उद्यमविषे ॥ रयण निहितरी ने उद्यमे लक्ष्मि आणे ॥ गुरु जगति हरीने उ द्यमे शास्त्र जाणे ॥ दुख समय सहाई उद्यमे छे नलाई ॥ अति अलस तजी ने उद्यमे लाग जाई ॥ ३७ ॥ नृपशिर निपतंती वीज जात्कारकारी ॥ उदम करि सुबुद्धी मंत्रिए ते निवारी ॥ तिम निज सुतकेरी आवती दुर्दशाने ॥ उदम करि निवारी ज्ञानगर्ने प्रधाने ॥ ३८ ॥ अथ दानविषे ॥ थिर नहि धन राख्यो तेम नाख्यो न जाए ॥ इणि पर धन जोतां एव गत्या जणाए ॥ इह सुगुण सु पात्रे जेह दे नक्ति नावे ॥ निधि जिम धन आगे साथ तेहीज आवे ॥ ३९ ॥ नल बलि हरिचंदा नोज जे जे गवाए ॥ प्रह समय सदा ते दानकेरे पसाए ॥ इम हृदय विमासी सर्वथा दान दीजे ॥ धन सफल करीजे जन्मनो लाहु ली जे ॥ ४० ॥ अथ शीलविषे ॥ अशुन करम घाले शील शोना दिखाले ॥ गुणगण अजुआले आपदा सर्व टाले ॥ तस नर बहु जीवी रूप लावण्य देई ॥ परनव शि व होई शील पाले जिकेई ॥ ४१ ॥ इण जग जिनदास श्रेष्ठ शीले सुहायो ॥ ति म निरमल शीले शील गंगेव गायो ॥ कलि करण नरिंदा ए समां छे जिकोई ॥ परनव शिव पामे शील पाले तिकोई ॥ ४२ ॥ अथ तपविषे ॥ तरणि किरणथी ज्यूं सर्व अंधार जाए ॥ तपकरि तपथी त्यूं दुःख ते दूर थाए ॥ वलि मलिन थ यूं जे कर्मचंमाल तीरे ॥ किम तनु न पखाले ते तपस्वर्ण नीरे. ॥ ४३ ॥ तपविण नवि थाए नाश दुःकर्म केरो ॥ तपविण न'टले जे जन्म संसार फेरो ॥ तप ब लि लहि लब्धी गोतमे नंदिखेणे ॥ तप बलि वपु कीधुं विष्णु वैक्रीय जेणे ॥४४॥ अथ नावविषे ॥ मनविण मिलवो ज्यूं चाववो दंतहीणे ॥ गुरुविण नणवो ज्यूं जीमवो ज्यूं अलूणे ॥ जसविण बहु जीवी जीव ते ज्यूं न सोहे ॥ तिम धरम न सोहे नावना जो न होहे. ॥ ४५ ॥ नरत नृप इलाची जीरणश्रेष्ठि नावे ॥ वलि वलकल चीरी केवल ज्ञान पावे ॥ बलनद हरिणो जे पंचमे स्वर्ग जाए ॥ इहज गुण पसाये तास निस्तार थाए ॥ ४६ ॥ अथ क्रोधविषे ॥ तृण दहन व हंतो वस्तु ज्यूं सर्व बाले ॥ गुण करण नरी त्यूं क्रोध काया प्रजाले ॥ प्रसम ज लद धारा वन्हि ते क्रोध बारो ॥ तप जप व्रत सेवा प्रीतिवल्ली वधारो. ॥ ४७ ॥

धरणि परशुरामे क्रोधि निक्षत्रि कीधी ॥ धरणि सुभुमराये क्रोधि निब्रह्मि सा धी ॥ नरकगति सहायी क्रोध ए दुःख दाई ॥ वरज वरज नाई प्रीति दे जे वधा ई ॥ ४८ ॥ अथ मानविषे ॥ विनय वनतणी जे मूल शाखा विमोडे ॥ सुगुण कनककेरी शृंखलाबंध तोडे ॥ उनमद करि दोडे मान ते मत्त हाथी ॥ निजवश करि ले जे अन्यथा दूर एथी ॥ ४९ ॥ विषद विष समो ए मान ते सर्प जाणो मनुज विकल होवे एण मंके जडाणो ॥ इह न परिहर्यो जो मान दुर्योधने तो ॥ निज कुल विणसाड्यो मानने जे वहंतो ॥ ५० ॥ अथ मायाविषे ॥ नितुरपणु निवारी हीयडे हेज धारी ॥ परिहर छल माया जे असंतोषकारी ॥ मधुर मधुर बोले तोहि विश्वास नाणे ॥ अहि गिलण प्रमाणे मायिने लोक जाणे ॥ ५१ ॥ म कर म कर माया दंल दोषद्रु छाया ॥ नरय तिरिय केरा जन्म दे जेह माया ॥ बलि नृप छलवाने विष्णु माया वहंतां ॥ लहुयपण लह्यूं जे वामनाख्य लेतां. ॥ ५२ ॥ अथ लोभविषे ॥ सुण वयण सयाणे चित्तमां लोभ माणे ॥ सकल व्यसनकेरो मार्ग ए लोभ जाणे ॥ इक खिण पण एने संग रंगे म लागे ॥ नव नव दुख दे ए लोभने दूर त्यागे ॥ ५३ ॥ कनकगिरि कराया लोभथी नंदराये ॥ निज अरथ न आया ते हर्या देवताये ॥ सयल निधि लही जे स्वाय ते विश्व कीजे ॥ मन तनह वरीजे लोभ तृष्णा न कीजे ॥ ५४ ॥ अथ दयाविषे ॥ सुकृत कलप वेली लब्धि विद्या सहेली ॥ विरतिरमण केली शांति राजा महेली ॥ सकल गुण नलेरी जे दया जीव केरी ॥ निज हृदय धरी ते साधिए मुक्ति सेरी ॥ ५५ ॥ निज सरण परेवो शेनथी जेण राख्यो ॥ षट दशम जिने ते ए दया धर्म दाख्यो ॥ तिह हृदय धरीने जो दया धर्म कीजे ॥ नवजलधि तरीजे दुःख दूरे करीजे ॥ ५६ ॥ अथ सत्यविषे ॥ गरल अमृत वाणी साचथी अग्नि पाणी ॥ सृज सम अहिराणी साच विश्वास खाणी ॥ सुपसन सुर कीजे साचथी ते तरीजे ॥ त्रिण अलिक तजीजे साचवाणी वदीजे ॥ ५७ ॥ जग अपजश वाधे कूडवाणी वदंतां ॥ वसु नृपति कुगत्यें साख कूडी भरंतां ॥ असत वचन वारी साचने चित्त धारी ॥ वद वचन विचारी जे सदा सौख्यकारी ॥ ५८ ॥ अथ चोरीविषे ॥ पर धन अपहारे स्वार्थपें चोर हारे ॥ कुल अजस वधारे बंध घातादि धारे ॥ पर धन तिण हेते सर्प ज्यूं दूर वारी ॥ जग जन हितकारी होय संतोष धारी ॥ ५९ ॥ निशिदिन नर पामे जेहथी दुःख कोडी ॥ तज तज धन चोरी कष्टनी जेह ओरी ॥ पर विभव हरंतो रोहिणी चोर रंगे ॥ इह अभय कुमारे ते ग्रह्यो बुद्धि संगे ॥ ६० ॥

अथ कुशीलविषे ॥ अयश पमह वागे लोकमां लीह नागे ॥ दुरजन बहु जागे जे कुले लाज लागे ॥ सजन पण विरागे मां रमे एण रागे ॥ परतिय रस रागे दो षनी कोडि जागे ॥ ६१ ॥ परतिय रसरागे नाश लंकेश पायो ॥ परतिय रस त्या गे शील गंगेव गायो ॥ द्रुपद जनक पुत्री विश्व विश्वे विदीती॥ सुर नर मिलि सेवी शीलने जे धरंती ॥ ६२ ॥ अथ परिग्रहविषे ॥ शशिउदय वधे ज्यूं सिंधु वेला नलेरी॥ धनकरि मन साए तेम वाधे घणेरी ॥ दुरित नरग सेरी तूं करे ए पशेरी ॥ ममकर अधि केरी प्रीति ए अर्थकेरी॥ ६३ ॥ मनुज जनम हारे ॥ दुःखनी कोडि धारे ॥ परिग्र ह ममता ए स्वर्गना सौख्य वारे ॥ अधिक धरणि लेवा धातकी खंम केरी ॥ सुनुम कुगति पामी चक्रिराये घणेरी ॥ ६४ ॥ अथ संतोषविषे ॥ सकल सुख नराए विश्व तावश्य थाए ॥ नवजलधि तराए दुःख दूरे पलाए ॥ निज जनम सुधारे आपदा दूर वारे ॥ निज धरम वधारे जेह संतोष धारे ॥ ६५ ॥ सकल सुखतणो ते सार संतोष जाणे ॥ कनक रमणिकेरी जेह इछा न आणे ॥ रजनि कपिल बांध्यो स्व र्णनी लोलनाए ॥ नमर कमल बांध्यो ते असंतोषताए॥ ६६ ॥ अथ विषयविषे ॥ शिवपद यदि वांछे जेह आनंद दाई ॥ विषसम विषया तो छांमि दे दुःखदाई ॥ मधुर अमृत धारा दूधनी जो लहीजे ॥ अति विरस सदा तो कांजिका संग्रही जे ॥ ६७ ॥ विषय विकल ताणी कीचके नीम नार्या ॥ दशमुख अपहारी जा नकी रामनार्या ॥ रति धरि रहनेमी क्रीडवा नेमि नार्या ॥ जिण विषय न वर्ज्या तेह जाणो अनार्या ॥ ६८ ॥ अथ इंद्रियविषे ॥ गज मगर पतंगा जेह नृंगा कुरं गा ॥ इक इक विषयार्थे ते लहे दुःख चंगा ॥ जस परवश पावे तेहनुं शुं कही जे ॥ इम हृदय विमासी इंद्रि पांचे दमीजे ॥ ६९ ॥ विषय वन चरंतां इंद्रि जे उंटडा ए ॥ निज वश नवि राखे तेह दे दुःखडा ए॥अवश करण मृत्यु ज्यूं अगुर्ते द्रि पामे ॥ स्ववश सुख लह्या ज्यूं कुर्म गुर्तेंद्रि नामे ॥ ७० ॥ अथ प्रमादवि षे ॥ सहु मन सुख वांछे दुःखने को न वांछे॥ नहि धरम विना ते सौख्य ए संपजे छे ॥ इह सुधरम पामी कां प्रमादे गमीजे ॥ अति अलश तजीने उद्यमे धर्म की जे ॥ ७१ ॥ इह दिवश गया जे तेह पाछा न आवे ॥ धरम समय आले कां प्र मादे गमावे ॥ धरम नवि करे जे आयु आले वहावे ॥ शशि नृपतिपरे त्युं सोच ना अंत पावे ॥ ७२ ॥ अथ साधुधर्मविषे ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ जे पंच व्रत मेरु नार निवहे, निःसंग रंगे रहे ॥ पंचाचार धरे प्रमाद न करे, जे दुःपरिस्सा सहे ॥ पांचे इंद्रि तुरंगमा वश करे, मोक्षार्थिने संग्रहे ॥ एवो दुष्कर साधु धर्म धन ते, जे

ज्यूं ग्रहे स्यूं वहे ॥ ७३ ॥ मालिनीछंद ॥ मयण सरव मोमी कामिनी संग तोमी॥ तजिय कनक कोडी मुक्तिसूं प्रीति जोडी ॥ नव नव जय वामी शुद्ध चारित्र पामी ॥ इह जग शिवगामी ने नमो जंबु स्वामी ॥ ७४ ॥ अथ श्रावकधर्म विषे ॥ शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ जे सम्यक्त लही सदा व्रत धरे, सर्वज्ञ सेवा करे ॥ संध्या वश्यक आदरे गुरु जजे, दानादि धर्माचरे ॥ नित्ये सद्गुरु सेवना मनधरे. एवो जिनाधीशरे ॥ जाख्यो श्रावकधर्म दोय दशधा. जे आदरे ते तरे ॥ ७५ ॥ मालिनी छंद ॥ निशिदिन जिनकेरी जे करे शुद्ध सेवा ॥ अणु व्रत धरि जे ते काम आनंद देवा॥ चरम जिन वरिंदे जे सुधर्मे सुवास्या ॥ समकित सतवंता श्रावका ते प्रसंस्या ॥ ७६ ॥ इम अरथ रसाला जे रची सूक्तमाला ॥ धरम नृपति बाला मालिनी छंद शाला ॥ धरम मति धरंतां ए इहां पुण्य वाध्यो ॥ प्रथम धरम केरो सार ए वर्ग साध्यो ॥ ७७ ॥ इति श्रीमत्सूक्त मुक्तावल्यां धर्मवर्गः प्रथमः समाप्तः ॥ १ ॥

॥ अथ अर्थवर्ग प्रारंजः ॥

उपेंद्रवज्राछंदः ॥ अथार्थवर्गे हितचिंतनं श्रीर्मितंपचार्थ्यस्व महीशसेवा ॥ खलादिमैत्री व्यसनादि चैव; मिहावधार्याः कतिचित्प्रसंगाः ॥ १ ॥ अथ अर्थ विषेः मालिनी छंद ॥ अरथ अरजि जेणे स्वायते विश्व होवे ॥ जिण विण गुण विद्या रूपने कोण जोवे ॥ अभिनव सुखकेरो सार ए अर्थ जाणी ॥ सकल धरम एथी साधिए चित्त आणी ॥ २ ॥ अरथ विण कवन्नो जेह वेश्याइ नाख्यो ॥ अरथ विण वसिष्टे राम जातो उवेख्यो ॥ सुकृत सुजस कारी अर्थ ते ए उपार्जो॥ कुवणज उपजंतो अर्थ ते दूर वर्जो ॥ ३ ॥ अथ हित चिंतनविषेः॥ परहित करवा जे चित्त उछाह धारे ॥ परकृत हितहीये जे न कांई विसारे ॥ प्रति हित परथी ते जे न वांछे कदाई ॥ पुरुष रयण सोई वंदिए सो सदाई ॥४॥ निज दुख न गणीने पारकूं दुःख वारे ॥ तिहतणि बलिहारे जाइए कोडि वारे ॥ जिम विषजर जेणे मंक पीडा सहीने ॥ विषधर जिनवीरे बूझव्यो ते वहीने ॥ ५ ॥ अथ लक्ष्मीविषेः॥हरि सुत रति रंगे जे रमे रात सारी ॥ शिवतनय कुमारो ब्रह्म पुत्री कुमारी ॥ हितकरि दृगलीला जेहने लछि जोवे ॥ सकल सुख लहे सो सोहि विख्यात होवे ॥ ६ ॥ लखमि बलि यशोदा नंदने विश्व मोहे ॥ लखमि विण विरूपी संज्ञु जिक्षू न सोहे ॥ लखमि लहिय रांके जे शिलादित्य जांज्यो ॥ लखमि लहिय शाके विक्रमे विश्व रंज्यो ॥ ७ ॥ अथ कृपणविषेः ॥ कण

कण जिम संचे कीटिका धान्यकेरो ॥ मधुकर मधु मंचे जोगवे को अनेरो ॥ तिम धन कृपणकेरो नोपकारे दिवाये ॥ इमहि विलय जाए अन्यथा अन्य खाए ॥ ८ ॥ कृपण पणु धरंतां जे नवे नंद राया ॥ कनक गिरि कराया ते तिहां अर्थ नाया ॥ इम मनत करंतां दुःख वासे वसीजे ॥ कृपण पणु तजीजे मेघज्यूं दान दीजे ॥ ९ ॥ अथ याचनविषेः ॥ निरमल गुण राजी त्यां लगे लोक राजी ॥ तब लग कहि जीजी त्यां लगे प्रीति फाजी ॥ सुजन जन सनेही त्यां लगे मित्र तेही ॥ मुख थकि न कहीजे ज्यां लगे देहि देही ॥ १० ॥ जइ वडपण वांछे मांगजे तो न कांई ॥ लहु पण जिण होवे केम कीजे तिकाई ॥ जिम लघु थइ सोजें वीरथी दान लीधूं ॥ हरि बल नृप आगे वामना रूप कीधूं ॥ ११ ॥ अथ निर्धनविषेः ॥ धनविण निज बंधू तेहने दूर छंडे ॥ धनविण गृह नार्यां तेह सेवा न मंडे ॥ निरजल सरजेवो देह निर्जीव जेवो ॥ निरधन तृण जेवो लोकमें ते गणेवो ॥ १२ ॥ सरवर जिम सोहे नीर पूरे जरायो ॥ धन करि नर सोहे तेम नीते उपायो ॥ धनकरिय सुंहंतो माघ जे जाण हूतो ॥ धनविण पग सूजी तेह दीठो मरंतो ॥ १३ ॥ अथ राज सेवाविषेः ॥ सुजनसुं हित कीजे दुर्जना सीख दीजे ॥ जग जन वश कीजे चित्त वांछा वरीजे ॥ निज गुण प्रगटीजे विश्वना कार्य कीजे ॥ प्रभु सम विचरीजे जो प्रभूसेव कीजे ॥ १४ ॥ भगतिकरि वडानी सेव कीजे जिकाई ॥ अधिक फल न आपे कर्मथी ते तिकाई ॥ जलधि तरिय लंका सीत संदेस लावे ॥ हनुमत करमे ते राम कछोट पावे ॥ १५ ॥ अथ खलताविषे ॥ रस विरस भजे ज्यूं अंब निंब प्रसंगे ॥ खल मिलण हुवे त्यूं अंतरंग प्रसंगे ॥ सुण सुण ससनेही जाणि ले रीति जेही ॥ खल जन निसनेही तेहशूं प्रीति केही ॥ १६ मगर जल वसंतो ते कपीराय दीठो ॥ मधुर फल चखावी ते कस्यो मित्र मीठो ॥ कपि कलिज भखेवा मत्स खेली खलाई ॥ जलमहिं कपि बुद्धी छांमि दे ते भलाई ॥ १७ ॥ अथ अविश्वाशविषे ॥ उपजाति छंद ॥ विश्वासिसाथे न छले रमीजे ॥ न वैरि विश्वास कदापि कीजे ॥ जो चित्त ए धीर गुणे धरीजे ॥ तो लच्छि लीला जगमां वरीजे ॥ १८ ॥ इंद्रवज्राछंद ॥ चाणायके ज्यूं निज काज सास्यो ॥ जे राज भागी नृप तेह मास्यो ॥ जो घूअडे काक विश्वास कीधो ॥ तो वायसे घूकने दाह दीधो ॥ १९ ॥ अथ मैत्रीविषे ॥ मालिनीछंद ॥ करि कनक सरीसी साधु मैत्री सदाई ॥ घसि कसि तप वेधे जास वाणी सवाई ॥ अहव करहि मैत्री चंद्रमां सिंधु जेही ॥ घट घट वध वाधे सारखा बे सनेही ॥ २० ॥ इह सहज सनेहे जे वधे मित्रताई ॥ रवि प

रि न चले ते काजज्यूं बंधुताई ॥ हरि हलधर मैत्री कृष्णने जे भमासे ॥ हलधर निज खंधे ले फिख्यो जीवि आसे ॥२१॥ अथ व्यसन विषे ॥ नलिन मलिन शोजा सांजथी जेम थाए ॥ इह कुवसनथी त्यूं संपदा कीर्त्ति जाए ॥ कुविसन तिण हेते सर्वथा दूर कीजे ॥ जनम सफल कीजे कीर्त्ति कांता वरीजे ॥ २२ ॥ अथ द्यूतविषे ॥ डुतविलंबित छंद ॥ सुगुरु देव जिहां नवि लेखवे॥धनविणा सहुए जिण खेलवे ॥ जव जवे जमवूं जिण कपटें ॥ कहिनि कोण रमे तिण जूवटें ॥ २३ ॥ अथमांस जक्षण विषे ॥ उपजातिछंद ॥ जे मांस लुब्धा नर ते न होवे॥ते राक्षसा मानुषरूप सोवे ॥अथ चोरीविषेः॥ जे लोकमां नर्ग निवास करी॥ निवारीए ते परद्रव्यचोरी ॥ २४ ॥ अथ मद्यविषे.॥ जुयंगप्रयातछंद ॥ सुरापानथी चित्त संभ्रांत थाये॥ गले लाज गंनीरता शील जाये ॥ जिहां ज्ञान विज्ञान सूजे न बूजे ॥ इश्यूं मद्य जाणी न पीजे न दीजे ॥ ॥२५॥ अथ वेश्याविषेः ॥ कहो कोण वेश्या तणो अंग सेवे ॥ जिणे अर्थनी लाजनी हाणि होवे ॥ जिणे कोश सिंहा गुफाये निवासी ॥ छल्यो साधु ने पालग्यो कंबलासी ॥२६॥ अथ खेटकविषेः॥ छंद ॥ मृगयाने तज जीव घात जे ॥ सघले जीव दया सदा जजे ॥ मृगयाथी डुख जे लह्या नवां ॥ हरि रामादि नरेंद्र जे हवा ॥ २७ ॥ परस्त्रीविषेः चोंपाईछंद ॥ स्वर्ग सौख्यजणि जो मन आशा ॥ छांडे तो परनारि विलासा ॥ जेण एण निज जन्म डुःखए ॥ सर्वथा न परलोक सूखए ॥ २८ ॥ अथ ए विषयोना उदाहरणो ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ जूवा खेलण पांमवा वन गम्या, मद्ये बली द्वारिका ॥ मांसे श्रेणिक नारकी डुख लह्या, बांध्या नरे चोरिका ॥ आखेटे दशरत्थपुत्र विरही, केवन्न वेश्या घरे ॥ लंकास्वामि परत्रिया रस रमे, जे ए तजे ते तरे ॥२९॥ अथ कीर्त्तिविषेः ॥ मालिनी छंदः ॥ दिशिदिशि पसरंती चंद्रमा ज्योति जैसी ॥ श्रवण सुणत लागे जाण मीठी सुधासी ॥ निशिदिन जनगाये रामराजिंद जेवी ॥ इणि कलि बहु पुण्ये पामियें कीर्त्ति एवी ॥३०॥ अथ प्रधानविषेः॥ सकल व्यसन वारे स्वामिसूं नक्तिधारे ॥ स्वपरहित वधारे राज्यना काज सारे ॥ अनय नय विचारे क्रुद्रता दूर वारे॥ निजसुत जिम धारे राज्य लक्ष्मी वधारे ॥ ३१ ॥ अथ कलाविषे ॥ चतुर कर कलानो संग्रहो सौख्यकारी ॥ इण गुण जिण लाधी ईण संपत्ति सारी ॥ त्रिपुर विजय कर्त्ता जे कलाने प्रसंगे ॥ हिमकर मनरंगे ले धख्यो उत्तमांगे ॥३२॥ अथ मूर्खताविषेः ॥ वचन रस न जेदे मूर्ख वार्त्ता न वेदे ॥ तस कुवचन खेदे तेहने सीख जे दे॥ नृपशिर रज नाखी जेण मूर्खें वहीने ॥ हित कहत हणीज्युं वानरे सुग्रहीने ॥३३॥ अथ लज्जाविषेः ॥ निज

वचन निवाहे लाज ग्युंराज्य वाले ॥ व्रत नय कुलरीतें मातज्यूं लाज पाले ॥ सकल गुण सुहावे लाजथी नावदेवे ॥ व्रत नियम लह्यो जे नाइ लज्जा प्रनावे ॥३४॥ शालिनी छंद ॥ एवा जे जे रूयडा नाव राजे ॥ एणेविश्वें अर्थथी तेह छाजे ॥ एवुं जाणी सार ए सौख्य केरो ॥ ते धीरा जे अर्थ अर्जे नलेरो ॥ ३५ ॥ इतिश्री सूक्तमुक्तावल्यां अर्थवर्गो द्वितीयः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ अथ कामवर्ग प्रारंनः ॥

नपजाति छंदः॥ ग्राह्याः कियंतः किल कामवर्गे कामो नृनार्यो गुणदोषनाजः ॥ सुलक्षणं योगवियोगयुक्तः समातृपितृप्रमुखाः प्रसंगाः ॥ १ ॥ अथ कामविषेः ॥ कंदर्प पंचानन तेज आगे ॥ कुरंग जेवा जगजीव नागे ॥ स्त्रीशस्त्र लेई जग जे वदीता ॥ तिएण देवा जनवृंद जीता ॥ २ ॥ मालिनी छंदः ॥ मनमथ जगमांहे डुर्जयी जे अद्यापी ॥ त्रिनुवन सुरराजी जासशस्त्रे सतापी ॥ जलज विधि नपामे वाल्हिजा विष्णु सेवे ॥ हर हिम गिरिजाने जेण अर्द्धांग देवे ॥ ३ ॥ शार्दूलविक्रीडित छंदः ॥ निल्लीनाव चल्यो महेश नमया, जे काम रागे करी ॥ पुत्री देखि चल्यो चतुर्मुख हरी, आहेरिका आदरी ॥ इंद्रे गोतमनी त्रिया विलसिने, संनोग ते ओलव्या ॥ कामे एम महंत देव जग जे, ते नोलव्या रोलव्या ॥ ४ ॥ मालिनी छंदः ॥ नल नृपद वदंती देखि चारित्र चाले ॥ अरह नरहनेमी ते तपस्या विटाले ॥ चरम जिन मुनी ते चिल्लणारूप मोहे ॥ मयण सर व्यथाना एह नन्माद सोहे ॥ ५ ॥ अथ गुणदोषोद्भावनविषे ॥ रथोद्धताछंदः ॥ नत्तमा पण नरा न संनवे ॥ मध्यमा तिम न योषिता हुवे ॥ एह नत्तमिक मध्यमी पणो ॥ बेहुमांहि गुणदोषनो गिणो ॥६॥ तत्र पुरुषगुणा यथा ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः॥ जे नित्ये गुण वृंद ले परतणा, दोषां न जे दाखवे ॥ जे विश्वे नपगारिने नपकरे, वाणीसुधा जे लवे ॥ पूरा पूनिम चंद जेम सुगुणा, जे धीर मेरूसमा॥ लंमा जेह गंनीर सायर जिस्या, ते मानवा नत्तमा ॥७ ॥ अनुष्टुप् छंदः॥रूप सौनाग्य संपन्नाः सत्वादिगुणशोनिनाः ॥ ते लोके विरला धीराः श्रीराम सदृशा नराः ॥ ८ ॥ अथ पुरुष दोषा यथा ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ लंकासामि हरंति राम तजि जे, शीतातणी एवकी ॥ स्त्रीवेची हरिचंद पांमव नृपे, कृष्णा न राखी सकी ॥ रात्रें छांमि निज स्त्रिया नल नृपे, ए दोष मोटा नणी॥ जोवो नत्तम मांहि दोष गणना, का वात बीजातणी ॥ ९ ॥ अथ स्त्रीगुणा यथा ॥ नपजातिछंदः ॥ सुसीख आले प्रिय चित्त चाले ॥ जे शील पाले गृह चिंत टाले ॥ दाना

दि जेणे गृहधर्म होई ॥ ते गेहि नित्ये घरलछि सोई ॥ १० ॥ अथ स्त्रीदोषा यथा ॥ उपजातिछंद ॥ नर्त्ता हण्यो जे पति मारकायें ॥ नाख्यो नदीमां शुक मालिकायें ॥ सुदर्शनश्रेष्ठि सुशील राख्यो ॥ ते आल देई अनयाय दाख्यो ॥ ११ ॥ वसंततिलका छंदः ॥ माख्यो प्रदेशि सुरिकांति विषयावलीए ॥ राजा यशोधर हण्यो नयनावलीए ॥ दुःखी कस्यो स्वसुर नूपुर पंडिताए ॥ दोषी त्रिया इम जणी इण दोषताए ॥ १२ ॥ अथ सुलक्षणी स्त्रीविषेः—शार्दूलविक्रीडितछंद ॥ रूडी रूपवती सुशील सुगुणी, लावण्य अंगे लसे ॥ लज्जालु प्रियवादिनी प्रियतणे, चित्ते सदा जे वसे ॥ लीला यौवन उल्लसे उरवसी, जाणे नृलोके वशी ॥ एवी पुण्यतणे पसाय लहिये, रामे रमा सारशी ॥१३॥ उपजातिछंदः ॥ सीता सुभद्रा नलराय राणी ॥ जे द्रोपदी शीलवती वखाणी ॥ जे एहवी शीलगुणे समाणी ॥ सुलक्षणा ते जगमांही जाणी ॥१४॥ अथसंयोगविषेः ॥ मालिनी छंदः प्रियसखि प्रिययोगे उल्लसे नेत्र रंगे ॥ हसित मुख शशीज्युं सर्व रोमांच अंगे ॥ कुच इक मुक्त वैरी नम्रता जे न दाखे ॥ प्रिय मिलण समे जे अंतरो तेह राखे ॥ १५ ॥ अथ वियोगविषेः दिन वरस समाणे रैणि कल्पांत जाणे ॥ हिम रज कदली जे तेह काला प्रमाणे ॥ शशिरसिकरसो जे सूरसो सोइ लागे ॥ प्रिय विरह प्रियाने दुःख शूं शूं न जागे ॥१६॥ अथ माताविषे॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ जे मातनो बोल कदा न लोपे ॥ जे विश्वमां सूरज जेम ओपे ॥ ज्यां धर्म चर्या बहुधा परीखी ॥ त्यां मातपूजा सहुमां सरीखी ॥१७॥ जे मात मोहें जिन एम कीधो ॥ गर्भे वसंतां व्रत नेम लीधो ॥ जे मात नन्दा वयणे प्रबुद्धो ॥ शीला तपंते अरहन्न सीधो॥१८॥अथपिताविषेः॥ जे बाल नावे सुतने रमाडे॥ विद्या नणावे सरसूं जमाडे॥ते तातनो प्रत्युपकार एही॥ जे तेहनी नक्ति हिये वहेही ॥ १९ ॥ मालिनीछंदः ॥ निषध सगर राया जे हरीनंद्र चंद्रा ॥ तिम दशरथ राया जे प्रसन्ना मुनिंद्रा ॥ मनक जनक जेते पुत्रने मोह नाख्या ॥ स्वसुत हित करीते तेहना काज साख्या ॥२०॥ अथ पुत्रविषेः॥स्वागताछंदः मात तातपद पंकज सेवा ॥ जे करे तस सुपुत्र कहेवा॥जेह कीर्त्ति कुललाज वधारे ॥ सूर्य जेम जगि तेज सधारे॥ २१ ॥ शालिनीछंदः ॥ गंगापुत्रे विश्वमां कीर्ति रोपी ॥ आज्ञा जेणे तातकेरी न लोपी ॥ ते धन्या जे अंजनापुत्र जेवा ॥ जेणे कीधी जानकी नाथ सेवा ॥ २२ ॥तोटकछंदः ॥ इम काम विलास उलास तए ॥ रसरीति हवे अनुजावतए ॥ जिमचंदन अंग विलेप तए ॥ हिय होय सदा सुख संपतए ॥ २३ ॥ इति श्रीसूक्त मुक्तावल्यां काम वर्गस्तृतीयः समाप्तः ॥

अथ मोक्षवर्ग प्रारंभः

उपजातिछंदः ॥ ग्राह्याःकियंतः किल मोक्षवर्गे कर्मक्षमासंयमभावनाद्याः ॥ विवेकनिर्वेदनिजप्रबोधा इत्येवमेते प्रवरप्रसंगाः ॥ १ ॥ मोक्षार्थविषे मालिनीछंदः ॥ इह भव सुख हेते के प्रवर्ते भलेरा ॥ परभव सुखहेते जे प्रवर्ते अनेरा ॥ अवर अरथ छंमी मुक्ति पंथा अराधे ॥ परम पुरुष सोई जेह मोक्षार्थ साधे ॥ २ ॥ तजिय भरत केरी जेण छे खंड भूमी ॥ शिवपथ जिण साध्यो सोलमे सांति सामी ॥ गजमुनि सुप्रसिद्धा जेम प्रत्येक बुद्धा ॥ अवर अर्थ छंडी धन्य ते मोक्ष लुद्धा ॥ ३ ॥ अथ कर्मविषे ॥ करम नृपति कोपे दुःख आपे घणेरा ॥ नरय तिरय केरा जन्म जन्मे अनेरा ॥ शुभ परिणति होवे जीवने कर्म तेवे ॥ सुरनरपतिकेरी संपदा सोइ देवे ॥ ४ ॥ करम शशि कलंकी कर्म भिक्षू पिनाकी ॥ करम बलि नरेंद्रे प्रार्थना विष्णुरांकी ॥ करम वश विधाता इंद्र सूर्यादि होई ॥ सबल करम सोई, कर्म जेवो न कोई ॥ ५ ॥ अथ क्षमाविषे ॥दुरित भर निवारे जे क्षमा कर्म वारे ॥ सकल तप सधारे पुन्य लक्ष्मी वधारे ॥ श्रुत सकल अराधे जे क्षमा मोक्ष साधे ॥ जिण निज गुण वाधे ते क्षमा कां न साधे ॥ ६ ॥ सुगति लहि खिमाए खंध सूरीस सीसा ॥ सुगति दृढ प्रहारे कूरगडू मुनीसा ॥ गज मुनिस खिमाए मुक्ति पंथा अराधे ॥ तिम सुगति खिमाए साधु मेतार्य साधे ॥ ७ ॥ अथ संयमविषे स्वागता छंद ॥ पूर्व कर्म सवि संयम वारे ॥ जन्म वारिनिधि पार उतारे ॥ तेह संयम न केम धरीजे ॥ जेण मुक्ति रमणी वश कीजे ॥ ८ ॥ तुंग शैल बलदेव सुहायो ॥ जेण सिंह मृग बोध बतायो ॥ तेम संयम लहीय अरायो ॥ जेण पंचम सुरालय पायो ॥ ९ ॥ अथ द्वादश भावनाविषे ॥ तत्र प्रथम अनित्य भावना ॥मालिनी छंद॥धण कण तनु जीवी वीज भात्कार जेवी ॥ सुजन तरुण मैत्री स्वप्न जेवी गणेवी ॥ अहमत ममताए मूढता कांइ माचे ॥ अथिर अरथ जाणी एणशुं कोण राचे ॥ १० ॥ धरणि तरु गिरिंदा देखिए भाव जेई ॥ सुर धनुष परे ते भंगुरा भाव तेई ॥ इम हृदय विमासी कारमी देह छाया ॥ तजिय भरतराया चित्त योगे लगाया ॥ ११ ॥ द्वितीय असरण भावना ॥ परम पुरुष जेवा संहस्या जे कृतांते ॥ अवर सरण केनुं लीजिये तेह अंते ॥ प्रिय सुहृद कुटंबा पाश वेगा जिकोई ॥ मरण समय राखे जीवने ते न कोई ॥ १२ ॥ सुर गण नर कोडी जे करे जास सेवा ॥ मरण भय न छूटा तेह इंद्रादि देवा ॥ जगत जन हरंतो एम जाणी अनाथी ॥ व्रत ग्रहिय विछूटो जेह संसारमांथी ॥ १३ ॥ तृतीय संसार भावना ॥ शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥

तिर्यंचादि निगोद नारकितणी. जे योनि योनी रह्यां ॥ जीवे दुःख अनेक दुर्गतितणा, कर्मप्रनावे लह्यां ॥ या संयोग वियोग रोग बहुधा, या जन्म जन्मे दुखी ॥ ते संसार असार जाणि इहवो, जे ए तजे सो सुखी ॥ १४ ॥ इंद्रवज्रा छंदः ॥ जे हीन ते उत्तम जाति जाए ॥ जे उच्च ते मध्यम जाति थाए ॥ ज्यूं मोक्षमेतार्य मुनींद्र जाए ॥ त्यूं मंगु सूरी पुरयक्ष थाए ॥ १५ ॥ चतुर्थ एकत्वनावना पुण्ये अकेलो जिव स्वर्ग जाए ॥ पापे अकेलो जिव नर्क जाए ॥ ए जीव जा आव करेअकेलो ॥ ए जाणिने ते ममता महेलो ॥१६॥ उपजाति छंदः ॥ ए एकलो जीव कुटंब योगे ॥ सुखी दुखी ते तस विप्रयोगे ॥ स्त्री हाथ देखी वलयो अकेलो ॥ नमी प्रबोध्यो तिणथी वहेलो ॥१७॥ पंचम अन्यत्वनावना ॥ जो आपणो देहज ए न होई ॥ तो अन्यको आपण मित्त कोई ॥ जे सर्व ते अन्य इहां नणीजे ॥ केहो तिहां हर्ष विषाद कीजे ॥ १८ ॥ देहादि जे जीवथकी अनेरां ॥ श्यो दुःख कीजे तस नासकेरां ॥ ते जाणिने वाघणिने प्रबोधी ॥ सुकोसले स्वांगन सारकीधी ॥१९॥ अथ अशुचिनावना ॥ काया महा एह अशूचिताई ॥ जिहां नवद्वार वहे सदाई ॥ कस्तूरिकर्पूर सुद्रव्य सोई ॥ ते काय संयोग मलीन होई॥२०॥ अशूचि देही नर नारि केरी ॥ म राच जे ए मलमूत्र सेरी॥ए कारमी देह असार देखी॥चतुर्थ चक्रिय पण ते उवेखी ॥२१॥सप्तमी आश्रवनावना॥मालिनीछंदः॥ इह अविरति मिथ्या योग पापादि साधे इण उण नव जीवा आश्रवे कर्म बांधे ॥ करम जनक जेने आश्रवा जे न रुंधे ॥ स मर समय आत्मा संवरी सो प्रबुद्धे ॥२२॥ इंद्रवज्राछंदः ॥ जेकुंडरीके व्रतछांडि दीधुं ॥जाईतणूं तेवलि राज्य लीधुं॥तेदुःख पाम्या नरके घणेरा॥तेहेतु एआश्रव दोषकेरा॥२३ अष्टमी संवरनावनाजे सर्वथाआश्रवने निरुंधे॥ तेसंवरी संवरनाव साधे ॥ ते नाववंदो गुरुवज्र स्वामी॥जेणे त्रिया कंचन कोडिवामी ॥२४॥ नवमी निर्जरा नावना ॥ मालिनी छंदः॥दुयदस तपनेदे कर्म ए निर्जराए॥उतपति घिति नाशे लोक नावा नराए॥दुरलन जग बोधीदुर्लना धर्मबुद्धी॥नव हरणि विनावो नावना एह शुद्धी॥२५॥उपजातिछंदः॥ बे निर्जरा काम सकाम तेही ॥ अकाम जे ते मरुदेवि जेही ॥ ते ज्ञानथी कर्मह निर्जरीजे ॥ दृढ प्रहारी परि तो तरीजे ॥२६॥ दशमी लोकनावना ॥ मालिनी छंदः॥ जिम पुरुष विलोये ए अधो लोक तेवो ॥ तिरिय पण विराजे थाल स्योवृत्त जेवो ॥ उरध मुरज जेवो लोकनालें प्रकास्यो ॥ तिमज नवन नानूं केवली ज्ञान नास्यो ॥ २७ ॥ एकादश बोधिदुर्लननावना ॥ स्वागता छंदः ॥ बोधि बीज लहि जेह अराधे ॥ ते इलासुत परे शिव साधे ॥ धर्म नावन लही नवि नावो ॥ राय

संप्रति परे सुख पावो ॥ २८ ॥ अथ रागविषे ॥ इंद्रवज्रा छंदः ॥ रागे म राचे नव बंध जाणी॥जे जाण ते राग वशे अनाणी॥गौरी तणे राग महेस रागी॥अर्धांग देवा निजबुद्धि जागी ॥ २९ ॥ अथ द्वेषविषे ॥ रे जीव विद्वेष मने म आणे ॥ विद्वेष संसार निदान जाणे ॥ सासू नणंदे मिलि कूड कीधूं ॥ जूवं सुजद्रा शिर आल दीधूं ॥३०॥ अथ संतोषविषे ॥ वसंततिलका छंदः ॥ संतोष तृप्त जनने सुख होय जेवुं ॥ ते द्रव्य लुब्ध जनने सुख नाहि तेवुं ॥ संतोषवंत जनने सहु लोक सेवे ॥ राजेंद्र रंक सरिखा करि जेह जोवे ॥३१॥ अथ विवेकविषे॥ उपजाति छंदः ॥ जो जेह चित्ते सुविवेक जासे ॥ तो मोह अंधार विकार नाशे ॥ विवेक विज्ञानतणे प्रमाणे ॥ जीवादि जे वस्तु स्वजाव जाणे ॥ ३२ ॥ इंद्रवज्रा छंदः ॥ बाला पणे संयम योग धारी ॥ वर्षाऋतें काचलि जेण तारी ॥ श्रीवीरकेरो अयमत्त तेई ॥ सुज्ञान पाम्यो सुविवेक लेई ॥ ३३ ॥ अथ निर्वेदविषे॥शार्दूलविक्रीडितछंदः॥जे बंधूजन कर्म बंधन जिसा, जोगा जुजंगा गिणे ॥ जाणंतो विषसारिखी विषयता, संसारता ते हणे ॥ जे संसारह रागहेतु जनने, संसार जावा हुवे ॥ जावो तेइ विरागवंत जनने, वैराग्यता दाखवे ॥ ३४ ॥ वसंततिलकाछंदः ॥ निर्वेद ते प्रबल दुर्जर वंदिखाणो ॥ जे छोडवा मनधरे बुध तेह जाणो॥ निर्वेदथी तजिय राज विवेक लीधो ॥योगींद्र जर्तृहरि संयम योग लीधो ॥३५॥ अथ आत्मबोधविषे॥ए मोहनींद तजि केवल बोध हेते॥ ते ध्यान शुद्ध रुदि जावनि एक चित्ते ॥ ज्यूं निःप्रपंच निज ज्योति स्वरूप पावे ॥ निर्बाध जे अखय मोक्ष सुखार्थ आवे ॥ ३६ ॥ मालिनी छंदः॥ नवि विषयतणा जे चंचला सौख्य जाणी ॥ प्रियतम प्रिय योगा जंगुरा चित्त आणी ॥ करमदल खपेई केवल ज्ञान लेई ॥ धन धन नर तेई मोक्ष साधे जिकेई ॥ ३७ ॥ इति मोक्षवर्गः चतुर्थः समाप्तः ॥

उपजाति वृत्तं ॥ इत्येवमुक्ता किल सूक्तमाला विजूषिता वर्गचतुष्टयेन ॥ तनोतु शोजा मधिकं जनानां कंठस्थिता मौक्तिकमालिकेव ॥ १ ॥ शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ आसीत्सद्गुणसिंधुपार्वणशशी श्रीमत्तपागच्छपः सूरिः श्रीविजयप्रजाजिधगुरुर्बुध्याजित स्वर्गुरुः ॥ तत्पट्टोदयजूधरो विजयते जास्वानिवोद्यत्प्रजः सूरिश्रीविजयादिरत्नसुगुरुर्विद्वज्जनानंदजूः ॥ २ ॥ आर्यावृत्तं ॥ विख्यातास्तद्राज्ये, प्राज्ञाः श्रीशांतिविमलनामानः ॥ तत्सोदरा बजूवुः प्राज्ञाः श्रीकनकविमलाव्हाः ॥३॥ तेषामुजौ विनेयौ विद्वान् कल्याणविमल इत्याव्हः॥तत्सोदरो द्वितीयः केसरविमलाजिधो ऽवरजः ॥४॥ तेन चतुर्जि र्वर्गैं, रचिता जाषानिबद्धरुचिरेयं ॥ सूक्तानामिह माला, मनोविनोदाय

बालानां ॥ ५॥ वेदेंद्रियर्षि चंद्र, प्रमिते श्रीविक्रमाहृते वर्षे ॥ अग्रंथि सूक्तमाला केसर विमलेन विबुधेन ॥ ६ ॥ इति श्रीसूक्तमुक्तावली संपूर्ण.

॥ श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ॥

अथ

श्री विनयविजयजी उपाध्यायकृत शांतसुधारस ग्रंथ अर्थसहित प्रारंभः

शार्दूलविक्रीडितछंदः ॥ नीरंध्रे भवकानने परिगलत्पंचाश्र
वांभोधरे नानाकर्मलतावितानगहने मोहांधकारोद्धुरे ॥
भ्रांतानामिह देहिनां स्थिरकृते कारुण्यपुण्यात्मभिस्तीर्थे
शैः प्रथितास्सुधारसकिरो रम्या गिरः पांतु वः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ प्रथमग्रंथकर्त्ता ग्रंथनेआदें श्रीतीर्थंकरदेवनी वाणीनी स्तुतिकरी मंगलाचरणकरेछे हेभव्यो जेमां कोइछिद्रनथी एटलेनिकलवानो बारणोनथी वलीजेमां समस्तप्रकारें पांचआश्रवरूप मेघ वरसीरह्युंछे तथानानाप्रकारना ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनीप्रकृतिरूप वेलियेंकरीव्याप्त अनेमोहरूप अंधकारेकरीयुक्त एहवोआसंसाररूपवन तेमांफिरनाराजे प्राणीओ तेने स्थिरकरवानेअर्थें करुणायेंकरीपवित्रछे अंतःकरणजेहनो एहवा चतुर्विधसंघरूप तीर्थनाईश्वरजे श्रीतीर्थंकरदेव तेणेउपदेसेली अमृतरसने वरसती एहवीरमणीयजेवाणी ते तमारुं रक्षणकरो ॥ १ ॥

द्रुतविलंबितं वृत्तत्रयं॥स्फुरति चेतसि भावनया विना न वि
दुषामपि शांतसुधारसः॥ न च सुखं कृशमप्यमुना विना
जगति मोहविषादविषाकुले ॥ २ ॥ यदि भवभ्रमखेदप
राङ्मुखं यदि च चित्तमनंतसुखोन्मुखं ॥ शृणुत तत्सुधि
यः शुभभावनामृतरसं मम शांतसुधारसं ॥ ३ ॥ सुम
नसो मनसि श्रुतपावना निदधतां द्व्यधिका दश भावनाः॥
यदिह रोहति मोहतिरोहिताद्भुतगतिर्विदिता समतालता॥४॥

अर्थ ॥ हवेजेशांतसुधारसते भावनाओविना स्फुरतोनथी तेकहेछे विद्वानलोको

ना अंतःकरणमांपण शांतिरूपअमृतनोरस तेनावविना स्फुरतोनथी अने मोह तथा खेद तद्रूपविषेंकरीव्याप्त एहवोजेजगत तेमां शांतसुधारसविना किंचित्मात्र थोमोपणसुखनथी ॥ २॥ माटेआशांतसुधारसनामा ग्रंथसांभलवानो उपदेशकरेछे हेबुद्धिमंतो जोतमारुंमन संसारभ्रमणकरवाना खेदेंकरी पराङ्मुख उपरांठूं थयोहोय अनेजेमां अनंतसुखछे एहवोजेमोक्ष तेनासुखपामवानेविषे सन्मुखथयो होय तोजेमां मनोहरभावनानो रसभरेलोछे एवोमारो आशांतसुधारसनामा ग्रंथसांभलो ॥ ३ ॥ हवे भावनाथी समताप्रगटथायतेकहेछे हेपंमितजनो आसंसारमां जेनुंश्रवणमात्रकरवाथीज पवित्रतानेकरनारी एहवीबारभावनाछे तो तेने धारणकरनारो जेजीव तेनाहृदयमां मोहजेअज्ञान तेने आछादितकरनारी अनेजेहनी अद्भुतगतिछे एहवी प्रख्यात समतारूप वेलीप्रगटथशे ॥ ४ ॥

रथोद्धतावृत्तं॥आर्तरौद्रपरिणामपावक प्लुष्टभावुकविवेकसौष्ठवे॥
मानसे विषयलोलुपात्मना क्व प्ररोहतितमां समांकुरः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतापामवाने जे अयोग्यहोयतेकहेछे जेनुंमन पांचेंद्रियना त्रेवीस विषयोनेविषे लोलुपछे एहवाप्राणीओने आर्त्त रौद्रध्यानेकरीने उत्पन्नथयेली एहवीजे माठापरिणामरूप अग्नि तेणेकरीने भावनाना रसनेविषे जे चतुरपुरुषोछे तेना विचाररूप रूडापणुं जेमांथीबलीगयुंछे एहवाप्राणीओना मनमां समतानोअंकुर किहांथी उत्पन्नथाय अर्थातनजथाय ॥ ५ ॥

वसंततिलकावृत्तं॥यस्याशयं श्रुतकृतातिशयं विवेकपी
यूषवर्षरमणीयरमं श्रयंते ॥ सद्भावना सुरलता नहि
तस्य दूरे लोकोत्तरप्रशमसौख्यफलप्रसूतिः ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवेसमतापामवाने योग्यहोयतेकहेछे सिद्धांतश्रवणादिकेकरीने अत्यंतपणे संपूर्णभरेला वृद्धिपामेला तथा विवेकरूप अमृतवृष्टीनी रमणीयजेक्रीडा तेणेकरीने रम्यके० मनोहर शोभायमान एहवांजेनां अंतःकरणछे तेवांअंतःकरणोमां सद्भावनाओ श्रयंतेके० प्रवेशकरेछे तेथीतेपुरुषने लोकोत्तरजे प्रशमके० शांतरसनासुख अर्थात्मोक्षसुख तेनाफलने प्रसवनारी एहवीजे सुरलताके० कल्पलता ते दूरनथी अर्थात् तेहने मोक्षदूरनथी ॥ ६ ॥

अनुष्टुब्वृत्तद्वयं॥ अनित्यताशरणते नवमेकत्वमन्यतां ॥ अशौच माश्रवं चात्मन् संवरं परिनावय ॥७॥ कर्मणो निर्जरां धर्मं सुकृतां लोकपद्धतिं ॥ बोधिदुर्लननतामेता नावयन्मुच्यसे नवात् ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हवेबे श्लोकेंकरी आग्रंथमांनाववानी बारनावनाओनां नामकहेले १ अनित्यनावना २ अशरणनावना ३ संसारनावना ४ एकत्वनावना ५ अन्यत्वनावना ६ अशुचिनावना ७ आश्रवनावना ८ संवरनावना॥हेआत्मातुं एनावनाओनो विचारकर ॥ ७ ॥ ९ कर्मनिर्ज्जरानावना १० धर्मनावना ११ रूडाप्रकारनो लोकस्वरूप नावना १२ बोधिदुर्लन नावना॥हेआत्मातुं एबारनावनाओ नो विचारकरतोथको संसारथकीमुक्तथइस ॥ ८ ॥

पुष्पिताग्रावृत्तं ॥ वपुरवपुरिदं विदभ्रलीलापरिचितमप्यतिनंगुरं नराणां ॥ तदतिनिडुरयौवनाविनीतं नवति कथं विदुषां महोदयाय ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ हवेप्रथमअनित्यनावना नावतां शरीरनुं अनित्यपणुंदेखाडेले हेविद्वन्जन आजगतमां अभ्रलीलानीपरें क्षणनंगुर अनेजेहनो जयकरवो अत्यंतकठीणले एहवो तरुणअवस्थायेंकरी उन्मत्त मदनजे कामदेव तेनाजेहवुं सुंदर एहवुं जे मनुष्योनुंशरीरते विद्वान्जे पंमितलोक तेनापण महोटा उदयकरवानुं कारण शीरीतेंथाय अपितुनहीजथाय ॥ ९ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयं॥ आयुर्वायुतरत्तरंगतरलं लग्नापदः संपदः सर्वेपींद्रियगोचराश्च चटुलाः संध्याभ्ररागादिवत्॥ मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्नेंद्रजालोपमं तत्किं वस्तु नवे नवेदिह मुदामालंबनं यत्सतां ॥ १० ॥ प्रातर्भ्रातरिहावदातरुचयो ये चेतनाचेतना दृष्टा विश्वमनःप्रमोदविधुरा नावाः स्वतः सुंदराः॥तांस्तत्रैव दिने विपाकविरसात् हा नश्यतः पश्यतश्चेतः प्रेतहतं जहाति न नवप्रेमानुबंधं मम॥११॥

अर्थ ॥ हवेबेकाव्येंकरी संसारनो अनित्यपणुंदेखाडेले हेप्राणी आसंसारमां वायरेंकरी चंचलथयला एहवाजे पाणीनातरंग तेहनीपरें आयुषपणचंचलले वली विचित्रप्रकारनी संपत्तिओले तेपण विपत्तियेंकरीयुक्तले अने समस्त रूपरसादिकजे

विषयछे ते संध्याकालना आकाशजेवासुंदरछे एटले संध्याना अभ्ररागनीपरें सुंदर तोछे पण अभ्ररागनीपरें थोडीवारपछि विनाशशीलछे तथा मित्र स्त्री स्वजन इत्या दिकोनोजे समागम तेणेकरीने थयेलुंजेसुख तेस्वप्नसरीखुं किंवाइंद्रजालसरखुंछे ते वारें आसंसारमां सत्पुरुषोने आश्रयकरवायोग्य कइवस्तुछेवारुं, अर्थात्कोइजनथी सर्वविनाशशील अनित्यछे इतिभाव ॥ १० ॥ वली भ्रातके० हेभाई आजगतमां जे प्रभातसमयें स्वच्छकांतिवान तथा अत्यंतपणे जगतने आनंद आपनारा अने स्वतासुंदरजे चेतनपदार्थ अने अचेतनपदार्थना भावदीठाहोय तेपदार्थोनो काल परिपाक थयाथी तेहिजदिवसें शोभायेंकरी हीन थईजायछे अने नाशपामेछे ए हवापदार्थोने जोनारो एहवो महारुं हतके० नष्टथयलुं जे अंतःकरण ते संसार संबंधने मूकतुंनथी ए कहेवी महोटी खेदनीवातछे ॥ ११ ॥

॥ प्रथमभावनाष्टकं रामगिरिरागेण गीयते ॥

मूढ मुह्यसि मुधा ॥ मूढ मुह्यसि मुधा ॥ ध्रुवपदं ॥ विभव
मनुचिंत्य हृदि सपरिवारं ॥ कुशशिरसि नीरमिव गलद
निलकंपितं ॥ विनय जानीहि जीवितमसारं ॥ मू०॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीविशेषें अनित्यभावना भावतोथको संसारनुं अनित्यपणुं देखाडे छे हेमूर्खशिष्य तुं परिवारसहित पोतानीसंपत्तिनुं चिंतनकरीने शुंव्यर्थमोहपामेछे वायुयें हलाव्योथको कंपायमानथयीने गलीजनारो एहवो दर्भनाअग्रभागें रहेना रोजे पाणीनुं बिंदुओ तेनीपरें हेविनय आ तहारुंजीवितव्य असारछे एमजाण एरीतें विनयविजयजीउपाध्याय पोतेपोताने प्रतिबोधकरतो बीजानेपण उपदेशकरेछे॥१॥

पश्य भंगुरमिदं विषयसुखसौहृदं पश्यतामेव नश्यति सहासं ॥
एतदनुहरति संसाररूपं रयाज्वलज्जलदबालिकारुचिविलासं॥मू०॥२

अर्थ ॥ वलीहेमित्रतुं जो के आविषयसुखते क्षणभंगुरछे जेमकोई हाथतालीदेई ने हसतांहसतांज नाशीजायछे तेनीपरें विषयसुखपण जोतांजोतांज नहता एह वाथईजायछे वली आ संसारनुं स्वरूपते वेगेकरीने जनारी एहवीजे वीजली तेना जलुकानी कांतीनुं अनुकरण करेछे एटले एसंसारनुं स्वरूपते वीजलीनीपरें चंचलछे॥२

हंत हतयौवनं पुच्छमिव शौवनं ॥ कुटिलमति तदपि लघु दृष्टनष्टं ॥ तेन
बत परवशा परवशा हतधियः॥ कटुकमिह किं न कलयंति कष्टम्॥मू०॥३

अर्थ ॥ आ एकमह्योटी खेदनीवातछे के दुष्टतारुण्यपणुंते कुतरानी पुछडीसरिखो वांको अने जेह्नने जोतावारज तुरतनह्वीएवोथईजायछे अर्थात् नाशपामीजायछे एह्व्वा तारुण्यपणाने परवशाके० पराधीनथयला ह्तधियके० नष्टबुद्धिवंतजे पुरुषोछे ते संसारमां परवशाके० स्त्रीओ ते कष्टकारी कडवाफलनीआपनारीछे एह्वुं जाणतानथी माटे बतइतिखेदे एपणएकमह्योटुं खेदनोज कारणछे ॥ ३ ॥

यदपि पिण्याकतामंगमिदमुपगतं ॥ भुवनदुर्जयजरापीतसारं ॥ तदपि गतलज्जमुज्झतिमनो नांगिनां वितथमतिकुथितमन्मथविकारं॥मू०॥४॥

अर्थ ॥ जोपण त्रणेलोकना प्राणीओ जेने जीतवाने अत्यंतअसमर्थ एह्वीजे जराअवस्था तेणेकरीने जेपुरुषनुं सारके० सत्वपणुं जतुरह्युंछे एटले जरायेंकरी शरीरक्षीणथईगयुंछे एह्वुं एशरीर दुर्बल थयुं ह्योय तोपण निर्लज्जप्राणीओनां मन निष्फल बुद्धिथी उत्पन्नथयला कामविकारने मूकतानथी ॥ ४ ॥

सुखमनुत्तरसुरावधि यदतिमेदुरं॥कालतस्तदपि कलयति विरामं॥ कतरदितरत्तदा वस्तु सांसारिकं॥स्थिरतरं भवति चिंतय निकामं ॥मू०५

अर्थ ॥ जुओके पांचअनुत्तरविमाननां घणाज पुष्टकारीसुखछे तेनीपण मर्यादा छे ते पणकालेंकरी मर्यादापुरीथयाथी विरामपामेछे तो पांच अनुत्तरविमान करतां एवी बीजीकईवस्तुछे जेसंसारमां वधारेस्थिरीभूतथसे एवातनो तुं मह्योटोविचारकर ५

यैः समं क्रीडिता ये च भृशमीडिता यैः सह्वाकृष्महि प्रीतिवादं॥तान् जनान्वीक्ष्य बत भस्मभूयंगतान्निर्विशंकाः स्म इति धिक्प्रमादं॥मू०६

अर्थ ॥ जेनीसाथें आपणे ह्ररह्मेस रमता खेलता क्रीडाकरता तथा जेनीआपणे अत्यंत स्तुतिकरतां अने जेनीसाथें आपणेंप्रीतीयेंकरी बोलताह्वता तेह्विजप्राणीने भस्मभूत थईगयला देखीने पण जोअमें निशंक रह्वियेंछयें तो बतइतिखेदे एवोजे अमारो प्रमाद तेप्रमादने धिःकारह्वोजो ॥ ६ ॥

असकृदुन्मिष्य निमिषंति सिंधूर्मिवच्चेतनाचेतनाः सर्वभावाः ॥ इंद्रजालोपमाः स्वजनधनसंगमास्तेषु रज्यंति मूढस्वभावाः ॥ मू० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेम समुद्रना कल्लोल वारंवार उत्पन्नथयीने नाशपामेछे तेमज जगतमां स्थावर अने जंगमपदार्थोना भावछे एमजाणवुं अने जगतमां द्रव्यादिकनो जेसंबंधछे तेसर्व इंद्रजाल सरिखोछे तो एह्वा पदार्थोउपर हेमूर्खप्राणीतुं शूंरीजपामेछे ७

कवलयन्नविरतं जंगमाजंगमं जगदहो नैव तृप्यति कृतांतः ॥ मुखग तान् खादतस्तस्य करतलगतैर्न कथमुपलप्स्यतेऽस्माभिरंतः ॥ मू०॥८॥

अर्थ ॥ वली स्थावर अने जंगमात्मक जगतने निरंतर नक्षणकरनारो एहवोजे कृ तांतके० यमते तृप्तथातोनथी। एमहोटोआश्चर्यछे तोमुखमां आव्याप्राणीनो नक्षणक रनारोजे कालतेनाजहाथमां रहेनारा अमेछैयें ते अमारोमृत्यु केवीरीतेनथाय॥८॥

नित्यमेकं चिदानंदमयमात्मनोरूपमभिरूप्यसुखमनुभवेयं ॥ प्रशमरसनवसुधापानविनयोत्सवो भवतु सततं सतामिह भ वेऽयं ॥ ए ॥ इतिमहोपाध्यायश्रीकीर्तिविजयगणिशिष्योपा ध्यायश्रीविनयविजयगणिविरचिते शांतसुधारसगेयकाव्ये अनित्यभावनाविभावनो नाम प्रथमः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ तेमाटे नित्य एकचिदानंदमय जे महारोआत्मा तेहनुं स्वरूपजोईने सु खनो अनुभव हुंकरीश इहां विनयविजयजी उपाध्यायकहेछेके आ मनुष्यभवमां शांतिरसरूपजे नूतनअमृत तेहनेपानकरवानो उत्साह सत्पुरुषोने निरंतरहोजो ॥ए इतिश्रीमन्महोपाध्याय श्रीकीर्त्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय श्रीविनयविजयगणि विरचिते शांतसुधारसेगेयकाव्ये अनित्यभावनाविभावनोनाम प्रथमःप्रकाशः ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं॥ये षट्खंडमहीमहीनतरसा निर्जित्य बभ्राजिरे ये च स्वर्गभुजो भुजोर्जितमदा मेदुर्मुदामेदुराः ॥ तेपि क्रूरकृतांतवक्ररदनैर्निर्द ल्यमाना हठादत्राणाः शरणाय हा दश दिशः प्रेक्षंत दीनाननाः ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेबीजी अशरणभावना भावेछे आसंसारमां मृत्युआवेथकेकोईने को ईनुं शरणनथी एमदेखाडेछे हाइतिखेदे जेपुरुष महोटापराक्रमेकरी छखंडपृथवी जीति शोभानेपाम्या एहवा चक्रवर्त्ती तथा जेदर्पेकरीपुष्टथयला अने जेहनी भु जाओमां उत्कृष्टबलछे एटले स्वर्गनासुखभोगवीने आनंदपाम्याछे एहवा देवताओ नेपण जेवारें क्रूरहृदयवंत जे यम तेपोताना मुखमांलेई दांतोनाबलात्कारेंकरी भ क्षणकरे तेवारें तेअशरण थयाथका दीनमुखकरी कोईनुंशरणलेवानेअर्थे दशो दिशायें जूएछे तोपणतेने कालनादांतमांथी मूकाववाने कोई समर्थनथाय ॥ १ ॥

स्वागतावृत्तं ॥ तावदेव मदविभ्रममाली तावदेव गुणगौरवशा ली ॥ यावदक्षमकृतांतकटाक्षैर्नेक्षितो विशरणो नरकीटः ॥ २ ॥

अर्थ ॥ माटेजेनो रक्षणकरनार कोईनथी एहवो एमनुष्यरूपीओ कीटजेकीडो ते हनेजिहांसुधि सहनकरवाने डुर्जन एहवोजेकाल तेणे पोताना कटाक्षेंकरी जोयुंन थी तिहांसुधी मदजे अहंकार तेनाविलासेकरी शोचेछे अने तिहांसुधीज गुणोनो गौरवपणुं धारणकरेछे ॥ २ ॥

शिखरिणीवृत्तं ॥ प्रतापैर्व्यापन्नं गलितमथ तेजोभिरुदितैर्गतं
धैर्योद्योगैः श्लथितमथ पुष्टेन वपुषा॥प्रवृत्तं तद्द्रव्यग्रहणविषये
बांधवजनैर्जने कीनाशेन प्रसभमुपनीते निजवशं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ पण जेप्राणीने जेवारें यमराजायें पोताने स्वाधीनकस्यो तेवारें तेप्राणी नो प्रतापपण नाशपाम्यो अने उदितथयलुंजेतेज हतुं तेपणगलीगयुं तथा धैर्य अ ने उद्योग पण जतुंरह्युं वली शरीरपुष्टहतो तेपण शिथिलथईगयुं अनेतेपुरुषनुं एकठुं करेलुं द्रव्य लेवाने अर्थें बांधवजन जे भाईओ प्रमुख हता ते प्रवर्त्तथया ॥ ३ ॥

द्वीतीयभावनाष्टकं मारुणीरागेण गीयते

स्वजनजनो बहुधा हितकामं प्रीतिरसैरभिरामं॥मरणदशावशमुपगत
वंतं रक्षति कोपि न संतं ॥१॥ विनय विधीयतां रे श्रीजिनधर्मः शरणं॥
अनुसंधीयतां रे शुचितरचरणस्मरणं ॥ वि० ॥ ७ ॥ ध्रुवपदं ॥

अर्थ ॥ फिरि सम्यक्दृष्टीजीवें विशेषेंकरी अशरणभावनाने आवीरीतें भाववीते कहेछे जेपोताना स्वजनलोकछे तेघणुंज हितनावांछक तथा प्रीतिनाराखनार इत्या दिकरीते घणाप्रकारें रूडाछे पणतेसर्व स्वार्थनिमित्तेजाणवा ए तात्पर्यछे परंतु हेस त्पुरुषो जेवारें जीव मरणअवस्था पामवाने तैयारथयो तेवारेंतेनुं संरक्षण करना र कोईनथी ॥ १ ॥ तेमाटेग्रंथरचनाकर्त्ता श्रीविनयविजयजी उपाध्यायकहेछे के हेवि नय तुं श्रीजिनधर्मनुं शरणकर अने पवित्र एहवुंजे चारित्रतेनुं स्मरणकर ॥ २ ॥

तुरगरथेभनरावृतिकलितं दधतं बलमस्खलितं ॥ हर
ति यमो नरपतिमपि दीनं मैनिकइव लघुमीनं ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ घोडा रथ हाथी पायदल एचतुरंगणी सेनायेंकरीयुक्त तथा पोतेंपण अस्खलित बलने धारणकरनारो एटलेकोईकालें खलनापामेनही एहवो महापरा क्रमवंत राजा तेनेपण जेरीतें मैनिकके० माछलानोमारनार जटदेईने लघुमी नके० न्हाना दीनमाछलाओने पकडीलियेछे तेरीतें यम पकडीलियेछे॥ ३ ॥

प्रविशति वज्रमये यदि सदने तृणमथ घटयति वदने ॥
तदपि न मुंचति हतसमवर्ती निर्दयपौरुषनर्ती ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ॥जो वज्रमय एटले वज्रनाज परमाणुयें बनावेला घरमांप्रवेशकरे अथवा मुखमां तृणघलाधारणकरे परंतु निर्दय अने पराक्रमेंकरी नाचनारो तथाजेहनी सर्वेनेविषें समानघातकरवानीजवृत्तिछे एहवोजेयम ते तेनेपण मूकतोनथी ॥४॥

विद्यामंत्रमहौषधिसेवां सृजतु वशीकृतदेवां ॥ रमतु
रसायनमुपचयकरणं तदपि न मुंचति मरणं॥ वि० ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेप्राणी जो देवतानुंसाधनकरी पोतानेस्वाधीनकरो अथवा महोटीम होटी विद्याओ साधनकरो मंत्रसाधनकरो तथा महोटी औषधिओसाधी शरीरपु ष्टी करवानेअर्थे आरोगो तोपण मरण मूकतुंनथी ॥ ५ ॥

वपुषि चिरं निरुणद्धि समीरं पतति जलधिपरतीरं ॥ शिर
सि गिरेरधिरोहति तरसा तदपि स जीर्यति जरसा॥वि०॥६॥

अर्थ ॥हेनव्यो जो समाधीचडावी शरीरने घणाकालसुधी वायुनोरोधकरो अथ वा समुद्रने पहेलाकांठे जईबेशो अथवा बलात्कारें पर्वतनाशिखरउपर चडीबेशो तोपण जराअवस्थाथी क्षीणथवुं ते कांईबंधथतुंनथी ॥ ६ ॥

सृजतीमसितशिरोरुहललितं मनुजशिरोवलिपलितं ॥ को
विदधानां नूघनमरसं प्रनवति रोडुं जरसं ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ कालाकेशेंकरीने घणोजसुंदर एहवो मनुष्यनो कालोमस्तक तेने सपेतप णानी करनारी तथा शरीरना मांसनोनाशकरनारी खोखरासरीखोकरी नशोनसने जूदी करीदेखाडनारी पृथवीउपर मेघसमान शरीरतेने शुष्ककरीनाखनारी एहवीजरा अवस्था जेवारें प्राणीने आवशे तेवारें तेनोरोधकरवाने कोण सहायनूतथसे अ र्थात् कोईपण वृद्धावस्थानो रोधकरवाने समर्थनथाय ॥ ७ ॥

उद्यत उग्ररुजा जनकायः कः स्यात्तत्र सहायः ॥ एकोऽ
नुनवति विधुरुपरागं विनजति कोपि न नागं ॥ वि० ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मा जेवखतें ताहरुंशरीर उग्ररोगेकरी व्याप्तथाशे तेवखतें तुजने कोणसहायथाशे ! जूओ जेमचंद्रमा एकलोपोतेज राहुना ग्रहणनी पीडानोगवेछे प

रंतु नक्षत्र अथवा ताराकोईपण तेनादुःखमांविजागलेतानथी तेम तुजनेपण जेवारें रोगादिक दुःखप्राप्तथशे तेवारें ताह्रशेकोईपण संबंधी तेदुःखमांविजागलेनारनथी ॥ ५

शरणमेकमनुसर चतुरंगं परिहर ममतासंगं ॥ विनय रचय शिव सौख्यनिधानं शांतसुधारसपानं ॥ वि० ॥ ए॥ इति श्रीशांतिसुधार स गेयकाव्ये अशरणजावनाविजावनो नाम द्वितीयः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ माटे दान शील तप अने जाव एचार अंग जेहनाछे एहवाएक धर्मनुंज तुं शरणकर अने ममत्वनो संग परिहर हेविनय तुं शिवसुखनो निधान एहवो जे शांतसुधारस तेनुंपानकर ॥ ए ॥ इति श्री शांतसुधारसगेयकाव्ये अशरणत्वजावना विजावनोनाम द्वितीयः प्रकाशः ॥

शिखरिणीवृत्तत्रयं ॥ इतो लोजः क्षोजं जनयति दुरंतो दवइवो ल्लसल्लाजांजोजिः कथमपि न शक्यः शमयितुं ॥ इतस्तृष्णाऽक्षा णां तुदति मृगतृष्णेव विफला कथं स्वस्थैः स्थेयं विविधजयजी मे जववने ॥ १ ॥ गलत्येका चिंता जवति पुनरन्या तदधिका मनोवाक्काये हा विकृतिरतिरोषात्तरजसः ॥ विपत्गर्तावर्ते ऊटिति पतयालोः प्रतिपदं न जंतोः संसारे जवति कथमप्यार्तिविरतिः ॥ ॥ २ ॥ सहित्वा संतापानशुचिजननीकुक्षिकुहरे ततो जन्म प्राप्य प्रचुरतरकष्टक्रमहतः ॥ सुखाजासैर्यावत्स्पृशति कथमप्यर्तिवि रतिं जरा तावत्कायं कवलयति मृत्योः सहचरी ॥ ३ ॥

॥ हवे त्रीजी संसारजावना जावेछे आ संसारमां दुरंतके० घणोमहोटो जेहनो अंतनथी अनेदावानल सरिखो अर्थात् वनअग्नीसरखो एहवोजेलोज तेनेकोईपणरीतें उदयनेपामनारो जे लोजरूप अंजोजिःके० उदकते शांतकरी शक्तोनथी पणउलटो क्षोजने उत्पन्नकरेछे वलीइहां संसारमां मृगतृष्णा जेवीरीतेविफलछे तेवीरीतेइंद्रियोनी तृष्णा प्रेरणाकरेछे तेपणविफलछे तोएहवा अनेकप्रकारना नानाविधजयेंकरी बिहामणा संसाररूप अरण्यमां शीरीतें स्वस्थपणे रहिशकियें ॥ १ ॥ आसंसारमां एक चिंतामटिजायछे तोफरी तेकरतांपण अधिक बीजीचिंताआवी उत्पन्नथायछे वली मन वचन अने कायानाव्यापारेंकरी विकारथायछे तथाअत्यंतक्रोधना योगेंकरी रजोगुणने पामवापणुंप्राप्तथायछे एरीतेंसंसारमां विपत्तिरूप खाईनापाणीनी जमरीमां

पगलेपगले पडनारा प्राणीओने कोईवारेदुःखनो अंतआवतोनथी ॥२॥ वली पडे लातो अपवित्रमाताना उदरनेविषे नानाप्रकारना उदरसंबंधी संतापोने सहनकर तो कष्टनीपरंपरायेंकरी ताडनतर्जनायेयुक्तथको रहेछे अने जन्मपाम्यापछे जेटलामां सुखाजास करवानेअर्थें कोइपणपोताने थतीपीडाओ दूरकरेछे परंतु एटलामांतो मृत्युनी सहचारिणी एहवीजे जराअवस्था ते आवीने प्राणीनादेहनो ग्रासकरेछे ते वारें संसारमां सुखतेसुंछे अर्थात् काईजनथी ॥ ३ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ विभ्रांतचित्तो बत बंभ्रमीति पक्षीव रुद्धस्तनु पंजरेऽगी ॥ नुन्नो नियत्याऽतनुकर्मतंतुसंदानितः सन्निहितां तकोतुः ॥ ४ ॥ अनुष्टुब्वृत्तं ॥ अनंतान् पुद्गलावर्तानंनतानं तरूपभृत् ॥ अनंतशो भ्रमत्येव जीवोऽनादिभवार्णवे ॥५॥

अर्थ ॥ प्रारब्धें प्रेरणाकरेलो महोटाकर्मरूप तंतुयेंकरी बांधेलो कालरूप बिल्ला डानीपासें बेठेलो एहवोप्राणी बतइतिखेदे शरीररूप पिंजरामां पक्षीनीपरें रुंध्योथ को भ्रांतिवंत चित्तेकरीफिरेछे ॥ ४ ॥ एरीतेंअनंतानंत शरीरोनोधारणकरनारो एजी वअनंतीवार अनादिकालनो संसारसमुद्रमां अनंता पुद्गलपरावर्त्तरूप पाणीनी भ्र मरीमां प्रतिभ्रमण करतोथको फिरेछे ॥ ५ ॥

॥ तृतीयभावनाष्टकं केदारारागेण गीयते शांतसुधारसकुंभमां एदेशी ॥

कलय संसारमतिदारुणं जन्ममरणादिभयभीत रे ॥ मो हरिपुणेह सगलग्रहं प्रतिपदं विपदमुपनीत रे ॥ क०॥ १ ॥

अर्थ ॥ वलीविशेषप्रकारें संसारभावनाभावतो संसारनीबीकदेखाडेछे मोहरूप शत्रुयें गलोथोदेइने पकडयुंछे तेणेकरी पगले पगले विपत्तीनेपामेला अरेजीव आ संसारते जन्ममरणादिकना भयेंकरी अत्यंतभयंकरछे एवुं तुं जाण॥ १ ॥

स्वजनतनयादिपरिचयगुणैरिह मुधा बध्यसे मूढरे ॥ प्रति पदं नवनवै रनुभवैः परिभवै रसकृदुपगूढ रे ॥ क० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हेमूर्खआत्मातुं स्वजन अने पुत्र इत्यादिकोनां परिचयगुणेकरीने मुंआ संसारमां व्यर्थबंधायछे वली पगलेपगले नवानवा अनुभवेकरी अने नवानवा परा भवेकरी वारंवारतुं आलिंगितछो एटले युक्तछो ॥ २ ॥

घटयसि कचन मदमुन्नतेः क्वचिदहो हीनतादीन रे ॥ प्र
तिजवं रूपमपरापरं वहसि बत कर्मणाधीन रे ॥ क० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं किहांकतो राजलक्ष्मीप्रमुख संपत्तीनामदने धारणकरेछे वलीकिहांकतो हीनतापामी रांकजेवो नीखारीथई दीनतापणाने धारणकरेछे ए वाआश्चर्य हेजीवतुं कर्माधीनथको जन्मजन्मप्रतें अपरअपरके० नवानवाज रूपध रेछे कोईजवेजीखारी कोईजवेराजा कोईजवेतिर्यंच कोईजवेंनारकी वलीएकजवमांपण राजारंकपणुंप्रमुख अनेकरूपधारणकरेछे ए केहेवो महोटो खेदनोहेतुछे ॥ ३ ॥

जातु शैशवदशापरवशो ॥ जातु तारुण्यमदमत्त रे ॥ जातु
दुर्जयजराजर्जरो ॥ जातु पितृपतिकरायत्तरे ॥ क० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ अरेजीवतुं एकजजवमांपण कोईकवारेंतो बालकअवस्थाने आधीनर हेछे अने कोईकवारेंतो तारुण्यअवस्थाना मदेकरी उन्मत्तथायछे वलीकोईकवारें दुर्जय जरा अवस्थायें करी दुःखवंतथायछे अनेकोईकवारें यमराजाना हाथमां सप डाईजायछे एहवी अवस्थाओने पामेछे ॥ ४ ॥

व्रजति तनयोपि ननु जनकतां ॥ तनयतां व्रजति पुनरेष रे ॥ जाव
यन् विकृतिमिति जवगते ॥ स्त्यजतमां नृजवशुजशेष रे ॥ क० ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मा आसंसारमां कोईजवमांतो दीकरोते बापथायछे फरीकोईक जवमां बापतेदीकरो थायछे एहवी संसारी पुरुषोनी गतिओनी फजेतीजोईने मनु ष्यजन्ममां जेना पुण्यशेषरह्याछे एहवो तुं आसंसारने मूकीआप ॥ ५ ॥

यत्र दुःखार्तिगददवलवैरनुदिनं दह्यसे जीव रे ॥ हंत
तत्रैव रज्यसि चिरं मोहमदिरामदक्षीब रे ॥ क० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव आसंसारमां दुःख तथा आरतिजेचिंता अने रोगरूप दावान लेंकरीने तुं नित्यनित्यप्रते दाजेछे तोपणमोहरूप मदिराना मदेकरी उन्मत्तथईने तेमां जघणाकालसुधी अनुरक्तथायछे माटेबलइतिखेदे मोहनाफंदेज जीवदुःखीथायछे ॥ ६

दर्शयन् किमपि सुखवैजवं ॥ संहरंस्तदथ सहसैव रे ॥ विप्र
लंजयति शिशुमिव जनं ॥ कालबटुको ऽयमत्रैव रे ॥ क० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव जेमकोइलघुबालकने रगवासारुं कोइकचीजतेनाहाथमां आ पीपाछी लीनवीलइयें तेम हंतइतिखेदे आजगतमां कालरूपीओ बटुकके० चोर ते

तुजने कांइकसुख ऐश्वर्यादिक देखाडीने अकस्मात् तेसुखने जाणेनजहता तेवा करीनाखेछे एम ठोकराने ठगवानी रीतें काळरूपबटुक लोकोने ठगेछे ॥ ७ ॥

सकल संसारजयभेदकं ॥ जिनवचो मनसि निबधान रे ॥
विनय परिण मय निःश्रेयसं ॥ विहितशमरससुधापान रे ॥८॥
इति श्री शांतसुधारस गेयकाव्ये संसारभावना विभावनो नाम तृतीयः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ तेमाटे अरेविनयतुं शांतिसुधारसनुंपानकरी समस्तसंसारिकभयना नाशकरनार एहवा जिन श्री वीतरागनावचनने मनमांधारणकर अने मोक्षपाम एरीतें विनयविजयजीउपाध्याय पातेजपोताना आत्मानेसीखामण आपेछे ॥ इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये संसारभावना विभावनोनाम तृतीयःप्रकाशः ॥ ३ ॥

स्वागतावृत्तं॥एक एव भगवानयमात्मा ज्ञानदर्शनतरंगसरंगः ॥
सर्वमन्यदुपकल्पितमेतत् व्याकुलीकरणमेव ममत्वम् ॥ १ ॥

अर्थ॥ हवेचोथी एकत्वभावना भावेछे एकज भगवानते आआत्माछे अने ज्ञानदर्शन तथा चारित्ररूप तरंगेकरीने सरंगके० विलासीछे पणते आत्मासिवाय बीजाजे कांई कल्पितपुद्गलादिकछे तेसर्व ममतास्पदमांज व्याकुलकरनाराछे ॥ १ ॥

प्रबोधतावृत्तत्रयं॥अबुधैः परभावलालसालसदज्ञानदशा वशात्मभिः॥ परवस्तुषु हा स्वकीयता विषयावेशवशाद्वि कल्प्यते ॥ २ ॥ कृतिनां दयितेति चिंतनं परदारेषु यथा विपत्तये॥विविधार्त्तिभयावहं तथा परभावेषु ममत्वभावनं॥ ३ ॥अधुना परभावसंवृतिं हर चेतः परितोवगुंठितं॥ क्षण मात्मविचारचंदनद्रुमवातोर्मिरसाः स्पृशंतु मां ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ परवस्तुउपर रहेलीअत्यंतइछाना योगेकरी उपनीजे अज्ञानअवस्थानी आधीनता ते जेना अंतःकरणमां व्यापीछे एहवामूर्खोने जे परकीयवस्तुउपर स्वकीयपणुंकल्पेछे तेमात्र शब्द रूप रसादिकविषयोना आवेशेंकरीजकल्प्योजायछे ए एक महोटुं खेदनुंकारणछे ॥ २ ॥ पुण्यवानपुरुषें परस्त्रीने पोतानीस्त्रीकरी चिंतवनकरवुं तेजेमविपत्तीनुं कारणथायछे तेमज परकीयवस्तुउपर जे ममत्वकरवुं तेपण नानाप्रकारनीपीडानुं अने अनेकप्रकारना भयनुं कारणथायछे ॥ ३ ॥ माटेहेआ

त्मा हवे चारेबाजुयेंविंटेली परवस्तुनी संवृति जे आछादन तेनेतूंदूरकर अने आत्मविचाररूप चंदनवृक्ष उपरना वायुनीलहेरीनुंजे रस तेनुंएकक्षणमात्र स्पर्शकर ॥४॥

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ एकतां समतोपेतामेनामात्मन् वि
भावय ॥ लभस्व परमानंदसंपदं नमिराजवत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ अरेजीव आसमतायेंकरीयुक्त एहवुंजे एकत्वपणुं तेने तुं पोताना आत्मामां विचारीजोईशतो नेमिराजऋषीनाजेवी परमानंद संपदानेपामिश ॥ ५ ॥

॥ चतुर्थभावनाष्टकं परजीयारागेणगीयते ॥

विनय चिंतय वस्तुतत्वं जगति निजमिह कस्यकिं ॥ भवति
मतिरिति यस्य हृदये दुरितमुदयति तस्य किं ॥ वि० ॥ १ ॥
एक उत्पद्यते तनुमानेक एव विपद्यते ॥ एक एव हि
कर्म चिनुते ॥ सैककः फलमश्नुते ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवेवलीविशेषें एकत्वभावनाभावेछे इहांश्री विनयविजयजी उपाध्याय पोतेज पोतानीआत्माने उपदेशछे के हेविनय तुं वस्तुतत्वजे आत्मज्ञान तेनुं चिंतवनके० विचारकर आजगतमां कोइनोस्वकीयपणुंछेकेशुं एहवीबुद्धि जेनाहृदयमां उत्पन्नथायछे तेप्राणीने दुरितपापादिक उदयपामेछेसुं अपितुतेने पापोदयपामतुंज नथी ॥ १ ॥ हेआत्मा ताहरोजीव एकलोज उपजेछे एकलोज मरणपामेछे एकलोज कर्मनेबांधेछे अने तेबंधायला कर्मोनाफलनेपण एकलोज भोगवेछे ॥ २ ॥

यस्य यावान्परपरिग्रहः ॥ विविधममतावीवधः ॥ जलधि
विनिहितपोतयुक्त्या पतति तावद सावधः ॥ वि० ॥ ३ ॥
स्वस्वभावं मद्यमुदिते भुवि विलुप्य विचेष्टते ॥ दृश्यतां प
रभावघटनात्पतति विलुठति जृंभते ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जिहांसुधी जेप्राणीनेमाथे परपरिग्रहउपर नानाप्रकारनी जे ममत्व तद्रूपभारपडयोछे तिहांसुधी तो पथराप्रमुख वजनदारवस्तुयेंभरेलो जिहाज जेम समुद्रनातलियामां जइबेसेछे तेम तेप्राणी पण संसाररूप समुद्रना तलियामां पडेलोजाणवुं ॥ ३ ॥ जेम मदेकरी उन्मत्तथयलो पुरुष स्वकीयस्वभाव एटले मूल स्वभावने लोपी जमीनउपरपडी चेष्टाकरेछे तेमज परवस्तुनी घटनायेंकरी उन्मत्तथयलो पुरुष संसाररूप जमिनमांपडेछे लोटेछे अने जंभायमान थयोथकोरहेछे ॥ ४ ॥

पश्य कांचनमितरपुजलमिलितमंचति कां दशां ॥ केवलस्य तु तस्य रूपं विदितमेव भवादृशां ॥वि० ॥५॥ एवमात्मनि कर्मवशतो भवति रूपमनेकधा॥कर्म मलरहिते तु भगवति भासते कांचनविधा॥वि०॥६॥

अर्थ ॥ जेमसुवर्णमां बीजाधातुनी मिश्रताथवाथी विपरीतदशानेपामेछे अने तेसुवर्णना शुद्धस्वरूपनीतो हेजीव तह्माराजेवाने खबरजछे ॥ ५ ॥ तेमजआत्मा नेविषे कर्मरूप अन्यधातुना वशेंकरी नानाप्रकारना रूपथायछे पणकर्ममलरहित शुद्धज्ञानस्वरूपी आत्मातो सुवर्णसरखो देदीप्यमानभासेछे ॥ ६ ॥

ज्ञानदर्शनचरणपर्यवपरिवृतः परमेश्वरः ॥ एक एवानुभवसदने स रमतामविनश्वरः॥वि०॥७॥इति रुचिरसमतामृतरसं क्षणमुदितमास्वादय मुदा॥विनय विषयातीतसुखरसरतिरुदंचतु ते सदा॥वि०॥८॥इतिश्री शांतसुधारसगेयकाव्ये एकत्वभावनाविभावनोनाम चतुर्थः प्रकाशः

अर्थ॥तेआत्मा ज्ञान दर्शनअने चारित्रना पर्यायेंकरीयुक्त एह्वो अविनाशीजे एकपरमेश्वर तेमह्मारा अनुभवगृहमां रम्यमाणथजो॥७॥माटेहेआत्मा प्राप्तथयलो एह्वो अतिसुंदर समतारूप अमृतरस तेनोएकक्षणमात्र पण संतोषेंकरी आस्वादनकर अने हे विनय सर्वकाल विषयसुखथी अतीत एटलेजूदा एह्वाजे शांतिसुख रस तेना उपर ताह्रेप्रीतिहोजो॥ ८॥ इ०शांतसुधारसगेयकाव्येएकत्वभावनाविभावनोनामचतुर्थःप्रकाशः

उपजातिवृत्तं॥ परः प्रविष्टः कुरुते विनाशं लोकोक्तिरेषा न मृषेति मन्ये॥ निर्विश्यकर्माणुभिरस्य किं किं ज्ञानात्मनो नो समपादि कष्टं॥ १ ॥

अर्थ॥ हवे पांचमी अन्यत्वभावना भावतोथको श्रीविनयविजयजी उपाध्यायकहेछे एकनाघरमां बीजायेंप्रवेशकर्यो एटले पहेलानोनाशकरेछे एह्वुं लोकोनुं बोलवुं मने खोटुंलागतुंनथी केमके मह्मारोआत्मा ज्ञानस्वरूपीछे तेमां कर्मरूप परमाणुयें प्रवेशकरीने आत्माने कोणकोण कष्टोनथीआपी अर्थात् सर्वकष्टोआपीजछे ॥ १ ॥

स्वागतावृत्तम्॥खिद्यसे ननु किमन्यकथार्तः सर्वदैव ममतापरतंत्रः॥ चिंतयस्यनुपमान्कथमात्मन्नात्मनो गुणमणीन्न कदापि ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अरेजीवतुं सर्वकाल ममताने स्वाधीनथई अन्यजे पुजलादिक तेनीज गोष्टीयें पीडितथको कांखेदपामेछे अने जेह्नीकोइउपमाजनथी एवा तारी आत्माना गुणरूपजे मणीरत्न तेनुंकोइवारेंपण चिंतन केमकरतोनथी एकेटलुं अयुक्तछे २॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयम् ॥ यस्मै त्वं यतसे बिभेषि च यतो यत्रा
निशं मोदसे यद्यच्छोचसि यद्दिच्छसि हृदा यत्प्राप्य पेप्रीयसे ॥
स्निग्धो येषु निजस्वभावममलं निर्लोठ्य लालप्यसे तत्सर्वं पर
कीयमेव भगवन्नात्मन्न किंचित्तव ॥ ३ ॥ दुष्टाः कष्टकदर्थनाः क
ति न ताः सोढास्त्वया संसृतौ तिर्यङ्नारकयोनिषु प्रतिहतश्छिन्नो
विभिन्नो मुहुः ॥ सर्वं तत्परकीयदुर्विलसितं विस्मृत्य तेष्वेव हा
रज्यन्मुह्यसि मूढ तानुपचरन्नात्मन् न किं लज्जसे ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं जेनेवास्ते घणीयत्नकरेछे अने जेनाथकी घणोबीहितोरहेछे तथा जेथकी सर्वकाल आनंदपामेछे वली जेनाअर्थेघणुंशोचकरेछे अथवा जेनेतुं ताहराहृदयमां हरहमेस इच्छेछे वली जेनादेखवाथी अत्यंतप्रीतिपामेछे जेनेविषे तुं घणुंस्नेहराखी पोतानानिर्मल ज्ञानादिक स्वभावनो नाशकरी लालनपालनकरेछे इत्यादिकक्रियाते सर्वपरकीयजछे पण हेआत्मस्वरूपी भगवन् एमांस्वकीय ताहरोकांइनथी ॥ ३ ॥ अरेजीवतुंपूर्वोक्तप्रकारेंकरतोथको आसंसारमां तिर्यंच अने नारकीनी योनीमां अत्यंतदुष्ट एहवी अनेककदर्थनाओ तेंनोगवीनथीकेसुं अपितु भोगवीतोछे ज केमके मुहुके० वारंवार नरकादिकयोनीओमां हणाणुं छेदाणुं भेदाणुं एहवीएह वी तहारी अवस्थाओथइ तोपणहेमूर्ख तेसर्व परकीय एटले स्वरूपविना पुद्गलनासंग थी दुर्विलासथया तेनेविस्मृतकरी फरितेनाउपरज प्रेमधरीने मोहपामेछे अनेतेहनुं ज सेवनकरतोथको केमलज्जातोनथी माटे हाइतिखेदे एपणमहोटी खेदनीजवातछे

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ ज्ञानदर्शनचारित्रकेतनाचेतनां विना ॥
सर्वमन्यद्विनिश्चित्य यतस्व स्वहिताप्तये ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हेआत्मातुं ज्ञान दर्शन अने चारित्रनी आश्रयभूतजे चेतना तेविना बीजाजे विभाविक पदार्थोछे तेसर्वने निश्चयथकी तहाराथी अन्यके० जूदाजाणीने पोताना हितने अर्थेयत्नकर ॥ ५ ॥

॥ पंचमभावनाष्टकं श्रीरागेण गीयते ॥ तुझगुणपारनहिस्यूअणोएदेशी ॥

विनय निभालय निजभवनं तनुधनसुतसदनस्वजनादिषु किं नि
जमिह कुगतेरवनं ॥वि०॥१॥ येन सहाश्रयसे ऽतिविमोहादिदमहमि
त्यविभेदं तदपि शरीरं नियतमधीरं॥त्यजति भवंतं धृतखेदं॥वि०२॥

अर्थ॥हवेविशेषें अन्यत्वभावनाभावता श्रीविनयविजयजी उपाध्याय पोतानेउप देशकरेछे के हेविनय तुंतहारापोताना आत्मारूपघरने जो अने आसंसारमां शरीर द्रव्य पुत्र घर स्वजनादिकमां कोणतुजने दुर्गतिथी रक्षण करवाजोछे अर्थात्कोइज नथी एटलेतुं स्वजनादिकनेअर्थें माठाकर्मकरेछे तेकर्मनायोगथी जेवारें नरकादिक दुर्गतिमांजइस तेवारें तहारोहाथपकडीने तुजने कोइदुर्गतिथी वारीराखशेनही॥१॥ बीजातोदूररह्या पणजेनीसाथें तुं अत्यंतमोहनावशथकी ऐकपणुंकरेछे एहवुंजे शरीरतेपण निश्चयथीअधीरोछे सेवट खेदकरावी तुजने मूकीचाल्योजसे अथवा खेद नोकरनारतुंछो एहवा तुजनेमूकी चाल्योजसे ॥ २ ॥

जन्मनि जन्मनि विविधपरिग्रहमुपचिनुषे च कुटुंबं॥ तेषु भवं
तं परभवगमने नानुसरति कृशमपि सुंबं ॥ वि० ॥३॥ त्यज
ममतापरितापनिदानं ॥ परपरिचयपरिणामं ॥ भज निस्संगत
या विशदीकृतमनुभवसुखरसमभिरामं ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हेप्राणीतुं जन्म जन्मने विषे विविधप्रकारना परिग्रहने संपादनकरेछे तेमज नानाप्रकारना कुटुंबने संपादनकरेछे परंतु जन्मांतरेंजाता ते पूर्वोक्तपरिग्रह मांथी एकदोकडो पण ताहरीसाथेंआवतोनथी ॥ ३ ॥ माटे ममतानायोगेंकरी अ त्यंततीव्रतापनुं मुख्यकारण एवो परकीयवस्तुनो परिणाम तेनोत्यागकर अने निःसंग त्वपणेकरी स्वछथयलुं आल्हादनोकरनार एहवुंजेअनुभवसुख तेनुंसेवनकर ॥ ४॥

पथि पथि विविधपथैः पथिकैः सह कुरुते कः प्रतिबंधं ॥
निजनिजकर्मवशैः स्वजने सह किं कुरुषे ममताबंधं॥वि०॥५॥
प्रणयविहीने दधदभिषंगं ॥ सहते बहुसंतापं ॥ त्वयि निः
प्रणये पुद्गलनिचये वहसि मुधा ममतातापं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेमपंथीमाणसने जूदेजूदेस्थानकें मार्गमार्गमां वाटालुलोकनुं मिलाप थतोजायछे पणते वाटमार्गुनीसाथें कोइप्रतिबंधकरतोनथी तेमजपोतपोताना कर्म नेवशें आवीमल्या एहवावाटमार्गुतुल्य जे तारास्वजनलोक तेनीसाथेतुं ममत्वनो प्रतिबंधकांकरेछे ॥५ ॥ जेमकोइ स्नेहशून्यपदार्थहोय अथवामनुष्यहोय तेनाउपर स्नेहधरनाराप्राणी बहुसंतापने सहनकरेछे तेमज तुंपण ताहाराउपर निस्नेही ए हवोजे पुद्गलनोसमुदाय एटलेपोतानुंशरीर तेपणपुद्गलछे अनेजेस्वजनादिक शरीरी

जीवछे तेपणपुजलजछे तथा नवविधपरिग्रह तेपणपुजलछे एहवापुजलना समुदायउप र अर्थे ममता रूप ताप धारण करीने संताप सहन करेछे ॥ ६ ॥

त्यज संयोगं नियतवियोगं ॥ कुरु निर्मलमवधानं ॥ नहिविद धानःकथमपि तृप्यसि॥मृगतृष्णाघनरसपानं॥वि०॥७॥ ज्ञज जिनपतिमसहायसहायं ॥ शिवगतिसुगमोपायं ॥ पिब गद शमनं परिहृतवमनं॥शांतसुधारसमनपायं ॥ वि० ॥ ८ ॥

इ०शांतसुधारसगेय काव्ये अन्यत्वभावनाविभावनो नाम पंचमः प्रकाशः

अर्थ ॥ माटेनिश्चयेंकरी जेहनो वियोगथवानोछे एहवापुजलादिकसाथे जे तें संयोगकर्युंछे तेनोत्यागकर अनेनिर्मल एहवोजेपोतानो शुद्धात्मभावतेनेविषे अवधान के० स्वस्थथइ एकाग्रपणेलक्षराख केमकेकोइपणप्राणी मृगतृष्णारूप जलनुंपानक रीने कदापिकालें तृप्तथवानोनथी तेमतुंपण परवस्तुउपर ममत्वराखवी कोइकालें आत्मरतिमां तृप्तिपामनारनथी ॥ ७ ॥ माटेरेआत्मा तुं असहायने सहायनाकर नार एटलेअशरणने शरणभूत एहवातीर्थंकरदेव तेनुंसेवनकर अनेनिरदोष मोक्ष गतिमांजवानुं जे सुगमोपाय अथवा जेमांथी परिहृतके० नाशपाम्युंछे वमनके० मोक्षनासुखनो वमवापणुं वली गदशमनके० संसाररूप रोगनो समावनार एहवो जे शांतनामा सुधारसके० अमृतरस तेनो पिबके० पानकर ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसु धारसगेयकाव्ये अन्यत्वभावनाविभावनो नाम पंचमः प्रकाशः

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ सच्छिद्रो मदिराघटः परिगलत्तल्लेश संगाशुचिः शुच्या मृद्यमृदा बहिः स बहुशो धौतोपि गंगो दकैः ॥ नाधत्ते शुचितां यथा तनुभृतां कायो निकायो महाबी भत्सास्थिपुरीषमूत्ररजसां नायं तथा शुद्ध्यति ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेछठी अशुचि भावना भावेछे जेम मदिरा गालवानुंयंत्र झारीनीमाफक छिद्रेंकरी सहितथायछे तेछिद्रोमांथी मदिरागलावेछे तेथी तेछिद्रोमां मदिराना कणिआनुं अंशरहीजायछे तेलेशमात्र पण मदिरानासंगेकरीने अपवित्रथयलुं एहवोजे मदिराना भाजननो छिद्र तेनेपवित्रकरवाने अर्थे बाहिरथी माटीसाथें घसी ने पछे गंगानदीना पाणीयेंकरी घणावखत धोइधोइने साफकरवामांस्यिें तोपणते मदिरागालवाना छिद्रो कोइवारें पवित्र थायनही तेमज मनुष्यनो अत्यंत बीभत्स

डुगब्छाकरवायोग्य हाम रक्त मल मूत्रनोस्थानकरूप शरीर तेने गाटीदंगसवाथी अथवा गंगादिकनापाणीये नवराव्याथी पणपूर्वोक्त दृष्टांतेकोइवार शुद्धथातुंनथी।

मंदाक्रांतावृत्तं॥स्नायं स्नायं पुनरपि पुनः स्नांति शुद्धाभिरद्भि र्वा रं वारं बत मलतनुं चंदनैरर्चयंते॥ मूढात्मानो वय मपमलाः प्री तिमित्याश्रयंते नो शुध्यंते कथमवकरः शक्यते शोद्धुमेवं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ माटेजगतमां जेनुंअंतःकरण मूढथयुंछे एहवालोक स्नानकरीने वारंवार शरीरशुद्धि करवानेअर्थे फरिपण स्नानकरेछे तथा वारंवार मलनास्थानकरूप शरीरने चंदनेकरीचर्चेछे अने अमेंनिर्मलथया एवुंकहीने प्रीतिकरेछे पण एम नथी जाणताजे एशरीर तो किवारेपण शुद्धथातुंनथी केमके खात्रनुं उकरडो तेकोइरीते शुद्ध थायकेसुं अर्थात्नजथाय ॥ २ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ कर्पूरादिभिरर्चितोपि लशुनो नो गाहते सौरभं नाजन्मोपकृतोपि हंत पिशुनः सौजन्यमा लंबते॥ देहोप्येप तथा जहाति न नृणां स्वाभाविकीं विस्र तां नाभ्यक्तोपि विभूपितोपि बहुधा पुष्टोपि विश्वस्यते॥३॥

अर्थ ॥ जेमलसणमां कर्पूरादिकपदार्थोनो भेलकर्यो तोपण लसणकांइ सुगंधीवंत थायनही तथा जन्मपर्यंत उपकारकर्योहोय तोपण डुर्जनपुरुष कांइ सौजन्यताने धारणकरतोनथी तो हंतइतिखेदे आमनुष्यनुंशरीर तेपण स्वजावसिद्ध डुर्गंधने मूकतुंनथी आशरीरने विविधप्रकारनासुगंधीतेलेंकरीमसल्यो अनेवस्त्रालंकारेकरी नूषितकर्यो तथा खवरावी पीवरावीने अत्यंतपुष्टकर्यो तोपण विश्वासनोपात्र थायनही एटले एशरीर हवेसारुंथयुं एहवोविश्वास कदापिआवेनही ॥ ३ ॥

उपेंद्रवज्रावृत्तं॥ यदीयसंसर्गमवाप्य सद्यो भवेच्छुचीनामशुचित्वमुच्चैः॥अमेध्ययोनेर्वपुपोस्य शौचसंकल्पमोहोयमहो महीयान्॥४॥

अर्थ ॥ शरीरनोसंबंधपामिने पवित्रपदार्थोने पण अपवित्रतापणुं आवेछे केमके आशरीरने उत्तमजातिना चंदनादिकें मर्दनकरो तो तेचंदनादिक थोडीजवारमां पोतानुं सुगंधतापणुंमूकीने डुर्गंधतानेधारणकरेछे तेमज उत्तमप्रकारनाजोजन खवराव्याथी तेपण तुरत नरगमय थयीजायछे एवो आ अपवित्रवस्तुने उत्पत्तिनुंकारण जेशरीर तेनेपवित्रपणुं करवाना संकल्पनो मोहराखवुं एमहोटोआश्चर्यकारीछे४

स्वागतावृत्तं॥इत्यवेत्य शुचिवादमतथ्यं पथ्यमेव जगदेकपवित्रं ॥
शोधनं सकलदोषमलानां धर्ममेव हृदये निदधीथाः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एरीतें शरीरने पवित्रकरवानोवाद खोटोजाणीने जगतमां एकपवित्र पथ्य तो समस्तदोषरूपमळनो शोधक एह्वोजेधर्म तेह्नेहृदयमांधरो ॥ ५ ॥

॥ षष्टभावनाष्टकं आसावरीरागेण गीयते काचारेतनुचुनिचुनिजावे एदेशी. ॥

भावय रे वपुरिदमतिमलिनं विनय विबोधय मानसनलिनं॥
पावनमनुचिंतय विभुमेकं॥परममहोमयमुदितविवेकं॥भा०॥१॥
दम्पतिरेतोरुधिरविवर्त्ते किं शुभमिह मलकश्मलगर्त्ते॥ भृशम
पि पिहितः स्रवति विरूपं को बहुमनुतेऽवस्करकूपं ॥भा०॥२॥

अर्थ ॥ ह्वेविनयविजयजी उपाध्याय पोतेंपोताने उपदेशकरतो अशुचिपणुं भावेछे हेविनय आशरीरनेतुं घणुजमलीनजाणीने पोतानुंमनरूपकमल प्रफुल्लित कर वलीजे परमतेजस्वी अनेजेनाथकी उत्तमविचार उत्पन्नथाय एह्वो एकपवित्र परमात्मानुं चिंतवनकर ॥ १ ॥ स्त्रीनोरक्त अने पुरुषनो रेत तेनापरिणाम स्वरूपथी उत्पन्नथयुं एह्वुं मळमयजे कश्मळके० चीखलतेनी गर्ताके० खाड रूप आ शरीर तेमांसुसारुंछे जोआशरीरने अत्यंतढाकीराख्युं तोपणतेमांथी विरूपप णे माठोदुर्गंधज स्रवेछे तोएवांकचराना कूवाने कोणरुडोकरी माननारछे अर्थात् कोइपण उकरडारूप कचरायेंकरी भरेला कूवाने भलुंमानसेनही ॥ २ ॥

भजति सचंद्रं शुचि तांबूलं ॥ कर्त्तुं मुखमारुतमनुकूलं ॥तिष्ठ
ति सुरभि कियंतं कालं॥मुखमसुगंधि जुगुप्सितलालं॥ भा०
॥३॥असुरभिगंधवहोंतरचारी॥आवरितुं शक्यो न विकारी॥
वपुरूप जिघ्रसि वारंवारं॥हसति बुधस्तव शौचाचारं ॥भा०४॥

अर्थ ॥ सुंदरतांबूलमां कर्पूरप्रमुखनाखीने मुखसंबंधीवायु अनुकूलकरवानेअर्थे खायछे परंतु निंदाकरवायोग्य अनेघणीज दुगछाकरवायोग्यछे लाळजेनी वळी अप वित्रजेनोगंध एह्वा तहारामुखनी सुगंधीते केटलोक वखतरह्से ॥३॥ शरीरमांचाल नारो विविधप्रकारना विकारेकरीसहित असुरभिगंधनो वहेनारो जे ताहरामुखनो वा युतेने ढांकीमूकवाने तुंसमर्थथयोनही तोताहराअंगने सुगंधीपदार्थोनो लेपकरी वारं वार तेह्नो सुवासलियेछे ए तारो पवित्रतानो आचारजोइने पंडितलोकोह्सेछे ॥४॥

द्वादश नव रंध्राणि निकामं॥ गलदशुचीनि न यांति विरामं॥
यत्र वपुषि तत्कलयसि पूतं॥मन्ये तव नूतनमाकूतं॥ना०॥५॥
अशितमुपस्करसंस्कृतमन्नं जगति जुगुप्सां जनयति हन्नं॥ पुं
सवनं धैनवमपि लीढं नवति विगर्हितमति जनमीढं॥ना०॥६॥

अर्थ ॥ अतिशयेंकरी जेमांथी रात्रदिवस अपवित्रवस्तुश्रवेछे पणकोइवारें विरामपामतिनथी एहवास्त्रीना बारछिद्र अने पुरुषनानवछिद्र तेछिद्रेंकरीसहित एहवा शरीरने तुंपवित्रपणेजाणेछे माटेए ताहरोकोइ नवोज आचारजणायछे ॥ ५ ॥ नानाप्रकारे वगारप्रमुखना संस्कारेकरी संस्कृतकरेलुं पचावेलुं एहवुंजे अन्न तेपण आ शरीरमां आरोग्यायकी हन्नके० विष्टारूपथइजायछे तेणेकरी जगतमां जुगुप्सा के० दुगछाउत्पन्नकरेछे वली आशरीरने वीर्यनीवृद्धिकरनारुं गायनुंदुध प्राशनकरीने फरीतेपुरुषें मूत्रितकर्योथको तेपणअत्यंत निंदाकरवायोग्य थइपडेछे ॥ ६ ॥

केवलमलमयपुजलनिचये अशुचीकृतशुचिनोजनसिचये ॥ वपुषि विचिंतय परमिहसारं शिवसाधनसामर्थ्यमुदारं॥ ना०॥७॥
येन विराजितमिदमतिपुण्यं तच्चिंतय चेतननैपुण्यं॥विशदागमम धिगम्य निपानं विरचय शांतसुधारसपानं ॥ ना०॥८॥इतिश्री
शांतसुधारसगेयकाव्ये अशौचनावनाविनावनोनाम षष्ठः प्रकाशः

अर्थ ॥ माटे केवलमलरूप पुजलनोसमूह अने पवित्रनोजनने अपवित्रपणु आपनार एहवाशरीरमां मात्रएक मोक्षसाधन करवानुंजे सामर्थ्यछे एहिजमहोटो सार नूतजाण ॥ ७ ॥ मोक्षसाधनेकरी नूषितकर्योथको ए शरीरपवित्रथायछे तेचेतनानीज चातुर्यताजाणवी पणजेमां निर्मलसिद्धांतरूप जलमिलेछे एहवो जलस्थानकजोइने शांतसुधारसनोपानकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारसगेयकाव्ये अशुचिनावनाविनावनोनाम षष्ठः प्रकाशः

नुजंगप्रयातं वृत्तं॥यथा सर्वतो निर्झरै रापतद्भिः प्रपूर्येत सद्यः पयोनिस्तटाकः॥तथैवाश्रवैः कर्मनिःसंनृतोंगी नवेद्याकुलश्चंचलः पंकिलश्च ॥१॥

अर्थ ॥ हवेसातमी आश्रवनावना नावेछे जेम सर्वबाजुथी पमता पाणीना निजरणायेंकरी तत्कालतलाव नराइजायछे पछे पाणीनातरंगेंकरी चंचलथायछे ते

मज कादववधेछे इत्यादिके व्याकुलथायछे तेम आश्रवेंकरीयुक्तप्राणी कर्मरूपपाणी थी नरपूरथई व्याकुल अने चंचलथको पापरूपकादवें सहितथायछे ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ यावत्किंचिदिवानुभूय तरसा कर्मेह निर्जीर्यते तावच्चाश्रवशत्रवोऽनुसमयं सिंचंति भूयोपि तत् ॥ हा कष्टं कथमाश्रवप्रतिभटाः शक्या निरोद्धुं मया संसारादतिभीषणान्मम हहा मुक्तिः कथं भाविनी ॥ २ ॥

अर्थ ॥ ते जेटलामां अनुभवलेइने बलात्कारेकरी महारा आत्मामांथी कांइकक मैंने हुं शुष्ककरुंतुं तेटलामांवली आश्रवरूपशत्रु समयसमयप्रतें कर्मोने फरी सी चनकरेछे माटे हाइतिखेदे मने एवुं कठणलागेछे के हुं आश्रवरूपशत्रुने केवीरीते जीतिशकुं अने एरीतेंतो अत्यंतभयंकर संसारथकी महारोछूटको पण सीरीतेंथसे॥२॥

प्रहर्षणीवृत्तं॥ मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगसंज्ञाश्चत्वारः सुकृतिभिराश्रवाः प्रदिष्टाः ॥ कर्माणि प्रतिसमयं स्फुटैरमीभिर्बध्नंतो भ्रमवशतो भ्रमंति जीवाः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ पुण्यवंतपुरुषोए १ मिथ्यात्व २ अव्रति ३ कषाय ४ योग एचारनाम ना चारआश्रवकह्याछे ते समयसमयप्रतें एचारआश्रवना योगेकरी कर्मोने बांध नारा जीवो ते भ्रमेकरी चारगतिरूप संसारमांभमेछे ॥ ३ ॥

रथोद्धतावृत्तं ॥ इंद्रियाव्रतकषाययोगजाः पंच पंच चतुरन्वितास्त्रयः ॥ पंचविंशतिरसत्क्रिया इति नेत्रवेदपरिसंख्यया ऽप्यमी ॥४॥

अर्थ ॥ पांचइंद्रियो तथा प्राणातिपातादिक पांचअव्रत अने क्रोधादिक चारक षाय वली मनादिक त्रणयोग तथा कायिकादिक पचीस असत्क्रिया एरीते सर्व मलीने आश्रव बेतालीस प्रकारनुंछे ॥ ४ ॥

इंद्रवज्रावृत्तं॥ इत्याश्रवाणामधिगम्य तत्वं निश्चित्य सत्वं श्रुतिसन्निधानात्॥एषां निरोधे विगलद्विरोधे सर्वात्मना द्राग् यतितव्यमात्मन् ॥५

अर्थ ॥ एहवुं आश्रवनुं तत्वजाणीने निश्चयथकी शास्त्रसन्निधानपणुं एटले आगम सिद्धांतरूप शास्त्रनुं छतापणुं तेजेनाथकी विरोधगयुंछे एहवा आश्रवरूप शत्रुनो निरोधकरवा विषे हेआत्मातुं तुरत यत्नकर ॥ ५ ॥

सप्तमभावनाष्टकं धनाश्रीरागेण गीयते ॥ जोलीमारेहंसारेविषयनराचियें एदेशी ॥

परिहरणीया रे सुकृतिभिराश्रवा हृदि शमतामवधाय॥प्रभवं
त्येते रे भृशमुच्छृंखला विभुगुणविभववधाय ॥ परि० ॥ १ ॥
कुगुरुनियुक्ता रे कुमतिपरिप्लुताः ॥ शिवपुरपथमपहाय
प्रयतंतेऽमी रे क्रियया दुष्टया प्रत्युत शिवविरहाय ॥ परि०॥२॥

अर्थ ॥ सुकृतवंतपुरुषें हृदयमां समताधारणकरी आश्रवनोपरिहारकरवो अरे जीव आ लोखंडना शांकलनीपरें बांधीराखनारो जे आश्रव ते विभुजे परमात्मा तेनागुणरूप ऐश्वर्यतानो नाशकरवाने समर्थथायछे ॥ १ ॥ कुगुरुयेंकरेलीप्रेरणा अने कुमतियेंकरी युक्तथयला हेदुष्टजीव तुं कायिकादिक दुष्टक्रियाउंमां प्रवर्त्तवे करी मोक्षपुरीयें जवानो मार्गमूकीने उलटोमोक्षमार्गनो नाशकरवानुंज यत्नकरेछे॥२॥

अविरतचित्ता रे विषयवशीकृता विषहंते विततानि ॥ इह
परलोके रे कर्मविपाकजान्यविरलदुःखशतानि ॥ परि०॥ ३ ॥
करिझषमधुपा रे शलभमृगादयो विषयविनोदरसेन ॥ हंत
लभंते रे विविधा वेदना बत परिणतिविरसेन ॥ परि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेनाचित्तमां वैराग्यनथी एहवा विषयने पराधीनथयलाप्राणी इहलोकें तथा परलोकेपण निरंतरपणे कर्मनापरिणामोथी उत्पन्नथयलां शेंकडादुःखोनुं सहनकरेछे ॥ ३ ॥ हस्ति मत्स्य भ्रमर पतंग अने मृग एवा पांचजातना प्राणीओ अनुक्रमेंस्पर्श रस गंध रूप शब्द ए एकेकाविषयना विनोदरसेकरी नानाप्रकारनी वेदनाओने एविषयोना परिणाम ज विरस एटले माठारस तेणेकरीपामेछे ए महो टुंखेदनुं कारणछे ॥ ४ ॥

उदितकषाया रे विषयवशीकृता यांति महानरकेषु परिव
र्तंते रे नियतमनंतशो जन्मजरामरकेषु ॥ परि० ॥ ५ ॥
मनसा वाचा रे वपुषा चंचला दुर्जयदुरितभरेण ॥ उपलि
प्यंते रे तत आश्रवजये यततां कृतमपरेण ॥ परि० ॥६ ॥

अर्थ ॥ जेने क्रोधादिक कषाय उदयमांआव्याछे तेप्राणीओ पांचइंद्रिओना विषयोने स्वाधीनथयलाछे तेणेकरी महोटा नरकमां जायछे अने अनंतिवार जन्म जरामरणकरेछे ॥५॥ आश्रवेंकरी चंचल थयला प्राणी मन वचन अने कायाना

योगें डुर्जय एहवुंजेपाप तेणेकरी युक्तथायछे माटे चतुरपुरुषें आश्रवने जीतवानुं प्रयत्नकरवुं अने नवा कर्म बांधवानही ॥ ६ ॥

शुद्धायोगा रे यदपि यतात्मनां स्त्रवंते शुभकर्माणि ॥ कांचन निगडांस्तान्यपि जानीयात् हतनिर्वृतिशर्माणि ॥ परि० ॥ ७ ॥ मोदस्वैवं रे साश्रवपाप्मनां रोधे धियमाधाय ॥ शांतसुधारसपा नमनारतं विनय विधाय विधाय ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधा रस गेयकाव्ये आश्रवभावनाविभावनोनाम सप्तमः प्रकाशः

अर्थ ॥ जेणेपोतानुं मनस्वाधीनकर्युं तेनाशुद्धयोगजेछे ते शुद्धयोग जोपण शुभकर्मोनेज स्त्रवेछे एटले शुभकर्मोनीज प्राप्तिकरावेछे परंतु तेकर्मोपण मोक्षसुख ना नाशकरवाने शोनानीबेडीसरखा जाणवा ॥७॥ माटे विनयविजयजी उपाध्याय पोते पोतानेकहेछे के अरेविनय आवाप्रकारेंकरी आश्रवसहित जेपाप तेनोनि रोधकरवा उपर बुद्धिराखी वारंवार शांतिसुधारसनो पानकरीकरीने आनंदपाम॥८॥ इतिश्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये आश्रवभावनाविभावनो नाम सप्तमः प्रकाशः

स्वागतावृत्तद्वयं ॥ येन येन य इहाश्रवरोधः संभवेन्नियतमो पयिकेन ॥ आद्रियस्व विनयोद्यतचेतास्तत्तदांतरदृशा परिभा व्य ॥ १ ॥ संयमेन विषयाविरतत्वे दर्शनेन वितथाभिनिवे शं॥ध्यानमार्तमथ रौद्रमजस्त्रं चेतसः स्थिरतया च निरुंध्याः॥२॥

अर्थ ॥ हवेआठमी संवरभावनाभावेछे अरेविनय आजगतमां जे जे उपायेंकरी निश्चयथी आश्रवनोरोध थतोहोय ते ते उपाय ताहरी अंतरदृष्टियेंजोइ तेनेविषे चित्त लगामीने तेनेस्वीकारकर ॥ १ ॥ एटले संयमेंकरीने विषयउपर वैरागकर सम्यक्त दर्शनेकरीने अभिनिवेशके० मिथ्यात्वनो आग्रहमूकीआप अने चित्तना स्थिरपरिणाम पणे करीने आर्त्त तथा रौद्र ए बे ध्याननुं निरंतर रुंधनकर॥ २ ॥

शालिनीवृत्तं ॥ क्रोधं क्षांत्या मार्दवेनाभिमानं हन्या मायामार्जवेनो ज्वलेन॥लोभं वारांराशिरौद्रं निरुंध्याः संतोषेण प्रांशुना सेतुनेव॥३॥

अर्थ ॥ क्षमायेंकरी क्रोधनो जयकर मार्दवेंकरी अभिमाननो जयकर सरलपणे करी मायाजेकपट तेने हणीनाख वलीसमुद्रजेवो डुष्कर जे लोभ तेहनो उंचो सेतु सरिखोजे संतोष तेणेकरी रोधकर ॥ ३ ॥

स्वागतावृत्तं॥ गुप्तिभिस्तिसृभिरेवमजय्यान् त्रीन् विजित्य तरसाऽधमयोगान् ॥ साधुसंवरपथे प्रयतेथा लप्स्यसे हितमनीहितमिद्धं ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ एमज मनगुप्ति वचनगुप्ति अने कायगुप्ति एत्रण गुप्तियेंकरीने जे जीतवाने घणाजदुर्लभ निंदनीक एह्वा त्रण दुष्टयोग्य तेने जीती रूडासंवर मार्गनेविषे यत्नकर एटले प्रकाशवंत देदीप्यमान अने कोइकालें विनाशने न पामनारा एह्वा जे हितार्थ तेने पामीस अर्थात् मोक्षसुखने पामीस ॥ ४ ॥

मंदाक्रांतावृत्तं ॥ एवं रुद्धेष्वमलहृदयैराश्रवेष्वाप्तवाक्यश्रद्धाचंचत्सितपटपटुः सुप्रतिष्ठानशाली ॥ शुद्धैर्योगैर्जवनपवनैः प्रेरितो जीवपोतः स्रोतस्तीर्त्वा भवजलनिधेर्याति निर्वाणपुर्यां ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ एवाप्रकारेंकरी स्वच्छहृदयवंत पुरुषें आश्रवनो रोधकरवो पछे आप्तके० पोतानाहितवांछक तीर्थंकरादिक पुरुषोना वाक्योउपर जेश्रद्धाराखवी तेजाणीयें वाहणनेविषे एकसुंदर अनेउज्वल वावटोचडाव्यो एह्वो नूतनपीठबंध थयो थको शुद्धमनोयोग शुद्धवचनयोग शुद्धकाययोग एत्रणयोग तेहिज जाणियें कोइक वेगवानवायरो तेणेकरी पूर्योथको जीवरूपीओ जहाज तेसंसारसमुद्रनो प्रवाहतरीने तुरत मोक्षरूप नगरियें जइपहोचेछे ॥ ५ ॥

॥ अष्टमभावनाष्टकं नटरागेण गीयते महावीरमेरो लालन एदेशी ॥

शृणु शिवसुखसाधनसदुपायं सदुपायं रे सदुपायं॥ शृणु शिवसुखसाधनसदुपायं ॥ ज्ञानादिकपावनरत्नत्रयपरमाराधनमनपायं ॥ शृ० ॥१ ॥ ॥ विषयविकारमपाकुरु दूरं क्रोधं मानं सहमायं॥ लोभं रिपुंच विजित्य सहेलं॥ भज संयमगुणमकषायं॥ शृ० ॥२॥

अर्थ ॥ हे विनय तुं मोक्षसाधननो रूडोउपाय सांभल एकतो निर्दोषपवित्र ज्ञानादिक रत्नत्रयनुं आराधनकर बीजो पांचेंद्रियोना विषयसंबंधीजे विकारोछे ते हनेदूरकर त्रीजोमायासहित क्रोध मान अनेलोभरूप शत्रुओनी हेलनाकरी सहेजमां श्रमबिना एचारेकषायने हलकटजेवा जाणी जीतीलेइने कषायथी शून्यथयलो एह्वोजे संयमरूप गुण तेनुंसेवनकर ॥ २ ॥

उपशमरसमनुशीलय मनसा रोषदहनजलदप्रायं ॥ कलय
विरागं धृतपरभागं हृदि विनयं नायं नायं ॥ शृ० ॥ ३ ॥
आर्त रौद्रं ध्यानं मार्जय ॥ दह विकल्परचनानायं ॥
यदियमरुद्धा मानसवीथी॥ तत्वविदः पंथा नायं ॥शृ० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ क्रोधरूपअग्नीने शमाववा मेघनीपरें शांतिनोकरनार एहवोजे उपशम रस तेहने तुं मनमां धारणकर हे विनय हृदयमां धारणकरेजोजे परपुद्गलादिक संबंधी भाग तेहने तहाराहृदयमांथी नीत्वानीत्वाकें० काढीकाढीने अत्यंत गुणवा नजे वैराग्य तेने धारणकर वली आर्त्तध्यान अनेरौद्रध्यानने धारणकरीसनही॥३॥ तथा संकल्प विकल्पनीजेजालछे तेने बाली भस्मकरीनाख कारणके मनो योगना मार्गने रुंधी न राखवो एवोकांइ तत्व वेत्तानो मार्गनथी तत्ववेत्ता पुरुष नेतो मनोयोग मोकलो राखवुंज नही ॥ ४ ॥

संयमयोगैरवहितमानसशुद्ध्या चरितार्थयकायं ॥ नानामत
रुचिगहने भुवने निश्चिनु शुद्धपथं नायं ॥ शृ०॥५॥ ब्रह्म
व्रतमंगीकुरु विमलं बिभ्राणं गुणसमवायं ॥ उदितं
गुरुवदनादुपदेशं संगृहाण शुचिमिव रायं ॥ शृ० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ संयमनायोगथी थयलीजेमननीशुद्धि तेणेकरीने कांइपण कृतार्थकर नानाप्रकारनी रुचिसहीत विचित्रप्रकारना मतेंकरी गहन एटलेव्याप्त एहवो आज गतमां नयरूप शुद्धमार्ग एटले स्याद्वाद शैलीरूपजे जैनमार्ग तेनोशोधकर ॥ ५॥ वली गुणना समुदायने धरनार अत्यंतनिर्मल एहवाब्रह्मचर्यव्रत ने स्वीकारकर अने गुरुयेंकरलाउपदेशने जेरीतें शुद्धद्रव्यनो संग्रहकरियें तेरीतेंसंग्रहकर ॥६ ॥

संयमवाङ्मयकुसुमरसैरति सुरभय निजमध्यवसायं ॥ चेतन
मुपलक्षय कृतलक्षणज्ञानचरणगुणपर्यायं ॥ शृ० ॥ ७ ॥ वदन
मलंकुरु पावनरसनं जिनचरितं गायं गायं ॥ सविनय शांतिसु
धारसमेनं चिरं नंद पायं पायं ॥ शृ० ॥ ८ ॥ इति श्रीशांतसुधा
रसगेयकाव्ये संवरभावनाविभावनो नाम अष्टमः प्रकाशः

अर्थ ॥ संयमना प्रतिपादन करनारा एहवा परमेश्वरनी वाणीमय जेपुष्प ते पुष्पोना रसनीसुगंधी पोताना अध्यवसायनेअत्यंतपणेकर अने ज्ञानादिक गुणपर्या

यरूप लक्षणनो करनारुं एहवोजे तहारुं चैतनछे तेने तुं ओलख ॥ ७ ॥ पवित्र अने जलारसेंकरी सहित एहवुं परमेश्वरनाचरित्रोनुं गायन करीकरीने पोताना मुखने अलंकृतकेo शोनितकर (जूषितकर) वली विनयसहित आ शांतिसुधारसनो पान करी करीने घणाकाल सुधी आनंद मग्नमां रहे ॥ इतिश्री शांतिसुधारस गेयकाव्ये संवरजावनाविजावनो नाम अष्टमः प्रकाशः ॥

इंडवज्रावृत्तं॥यन्निर्जरा द्वादशधा निरुक्ता तत् द्वादशानां तपसां विजेदात्॥ हेतुप्रजेदादिह कार्यजेदः स्वातंत्र्यतस्त्वेकविधैव सा स्यात् ॥१॥

अर्थ ॥ हवे निर्जरा जावनाजावेछे निर्ज्जराजे बारप्रकारनी कहीछे तेबारप्रकारना तपने जेदेंकरीथाय इहां कारणनेजेदें कार्यनो जेदथाय तेणेकरी बारप्रकार कहेवाय नहींकां स्वतंत्रपणेतो निर्ज्जरा एकप्रकारनीजछे ॥ १ ॥

अनुष्टब्वृत्तद्वयं॥काष्ठोपलादिरूपाणां निदानानां विजेदतः॥वन्हिर्यथैकरूपोपि पृथग्रूपो विवक्ष्यते॥२॥ निर्जरापि द्वादशधा तपोजेदैस्तथोदिता॥ कर्मनिर्जरा णात्मा तु सैकरूपैव वस्तुतः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥जेम कारणरूप काष्ट अने पाखाणना जूदाजूदा जेदछे तेनाजेदेंकरी यद्यपि अग्निएकरूपछे तथापि जिन्नजिन्नरूप देखायछे एटले आ अमुक काष्टनीअग्नि अथवा आ अमुक पाखाणनी अग्नि इत्यादिक अग्निना जेदकहेवायछे ॥ २ ॥ तेमज तपनाजेदेकरी निर्ज्जरा बारप्रकारनीकहीछे पण वस्तुतत्वें विचारतां कर्मनिर्ज्जरा स्वरूप जे छे तेतो एक रूपजछे ॥ ३ ॥

उपेंद्रवज्रावृत्तं॥ निकाचितानामपि कर्मणां यद्गरीयसां जूधरडुर्धराणां॥ विजेदने वज्रमिवातितीव्रं नमोस्तु तस्मै तपसेऽद्भुताय ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पर्वतजेवा डुर्द्धर एहवा महोटा निकाचितकर्मोनो जेदकरवाविषे वज्रनी परें अत्यंततीव्र एहवुंअद्भुतजे तप तेने महारो नमस्कार होजो ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ किमुच्यते सत्तपसः प्रजावः कठोरकर्मार्जितकिल्बिषोपि ॥ दृढप्रहारीव निहत्य पापं यतो ऽपवर्गं लजतेऽचिरेण॥५॥ यथा सुवर्णस्यशुचि स्वरूपं दीप्तः कृशानुः प्रकटीकरोति ॥ तथात्मनः कर्मरजो निहत्य ज्योतिस्तपस्तद्विशदीकरोति ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ तपना रूमाप्रजावनुं केटलुं वखाण करियें जेटलुं वखाणकरियें तेटलुं

थोमुंजछे केमके दृढप्रहारी जेवा पुरुषोए महोटा कठोर कर्म करीने अत्यंत पापोनो संपादान कर्युंहतो तेपण तपस्याना प्रनावें समस्त पापोनो नाशकरीने थोडाज कालमां मोक्ष प्रतें पाम्या ॥ ५ ॥ जेम प्रदीप्तअग्नि सुवर्णनुं पवित्रस्वरूप प्रगटकरेछे तेमज तपजेछे तेपण आत्मामांथी कर्मरूप रजनो नाशकरीने साक्षात् आत्मानुं ज्योतिस्वरूप प्रगटकरेछे ॥ ६ ॥

स्रग्धरावृत्तं॥ बाह्येनाभ्यंतरेण प्रथितबहुनिदा जीयते येन
शत्रुश्रेणी बाह्यांतरंगा नरतनृपतिवत् नावलब्धदृढिम्ना॥
यस्मात्प्राडुर्नवेयुः प्रकटितविनवा लब्धयः सिद्धयश्च वं
दे स्वर्गापवर्गार्पणपटु सततं तत्तपो विश्ववंद्यं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेना बाह्य अने अभ्यंतर नेदेकरी घणानेद प्रख्यातछे एहवा तपना उपर विशेषनावना योगेंकरी जेहने दृढपणुं लब्धके० प्राप्तथायतो ते तपेंकरी डुसमनादिक बाह्यशत्रु अने रागादिक अंतरंग शत्रु तेनीजे श्रेणीके० पंक्ति तेने नरत राजानीपरें जीतीजवायछे वली जेतपथकी ऐश्वर्यताने प्रगटकरनारी अठ्यावीसलब्धीओ अने आठसिद्धिओ प्रगटथायछे तथा जे स्वर्ग अने मोक्षना सुखआपवामां कुशल वलीजगतने पूजवायोग्य एहवोजेतप तेहनेहुं निरंतर नमस्कारकरुंछुं ॥ ७ ॥

अथनवमनावनाष्टकं सारंगरागेण गीयते ॥ जिणंदरायसरण तिहारे आयोएदेशी॥

विनावय विनय तपोमहिमानं॥ ध्रुवपदं ॥ बहुनवसंचितडु
ष्कृतममुना॥ लनतेलघुलघिमानं ॥ वि० ॥ १ ॥ याति
घनापि घनाघनपटली ॥ खरपवनेन विरामं॥ नजति त
था तपसा डुरिताली ॥ क्षणनंगुरपरिणामं वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ विनयविजयजी पोताने उपदेशकरेछेके अरेविनय तुं तपनामहिमानी नावनाकर जेनायोगथकी घणानवनुं संचितकरेलुं पाप तुरतज हलकापणुंपामेछे ॥ १ ॥जेम तीक्ष्णवायुयें करी महोटी महोटी मेघनीपंक्तिओ नाशपामेछे तेमज तपेंकरीने महोटीमहोटी पापनीपंक्तिओ एक क्षणमात्रमां नष्टथइजायछे ॥ २ ॥

वांछितमाकर्षति दूरादपि रिपुमपि व्रजति वयस्यं॥ तप इदमाश्र
य निर्मलनावादागमपरमरहस्यं॥३॥अनशनमूनोदरतां वृत्तिन्हा
सं रसपरिहारं नज सांलीन्यं कायक्लेशं तप इति बाह्यमुदारं॥४॥

अर्थ ॥ वळी जे वांछितार्थ घणुंदूरहोय तेनेपण नजीकआणीआपेछे तथाशत्रु नेपण मित्रकरेछे एहवाएतपने शास्त्रनुं परमरहस्य जाणीने निर्मळजावें आदर ॥ ॥ ३ ॥ तेतपनाबारभेदछे १ अनशन २ ऊनोदरी ३ वृत्तिन्हास एटले वृत्तिसंक्षेप ४ रसपरिहार ५ सांलीन्यता एटले इंद्रियोनोरोधवुं एकांतेंबेसवुं ६ कायक्लेश एछप्रकारनुं महोटुं बाह्यतपछे तेनुं तुं सेबनकर ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्तं वैयावृत्यं स्वाध्यायं विनयं च ॥ कायोत्सर्गं शुभध्यानं आभ्यंतरमिदमंच॥वि०॥५॥शमयति तापं गमयति पापं रमयति मानसहंसं॥हरति विमोहं दूरारोहं तप इति विगताशंसंः॥वि०॥६॥

अर्थ ॥ १ प्रायश्चित्त २ वेयावच्च ३ स्वाध्याय ४ विनय ५ कायोत्सर्ग ६ शुभ ध्यान एछप्रकारना आभ्यंतर तपछे तेनेसेव ॥ ५ ॥ एतप अनेकप्रकारना संसारीकतापनी शांतिकरेछे अनेपापनोनाशकरेछे तथा मनरूपहंसने रमाडेछे वळी निःसंशयपणे आजगतमां दुःखोनेदूरकरवा असमर्थ एहवोजे मोहतेनो नाशकरेछे ॥६॥

संयमकमलाकार्मणमुज्वलशिवसुखसत्यंकारं चिंतितचिंतामणिमाराधय तप इह वारं वारं ॥वि०॥७॥ कर्मगदौषधमिदमिदमस्य च जिनपति मतमनुपानं॥विनय समाचर सौख्यनिधानं शांतिसुधारसपानं॥वि०॥८ इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये निर्जराभावनाविभावनोनामनवमःप्रकाशः

अर्थ ॥ वळीएतपते चारित्ररूप लक्ष्मीने वशकरवानी विद्याछे तथा सुंदर मोक्षना सुखआपवाने विशारदछे वळी चिंतितार्थ देवाने चिंतामणीरत्नसरखोछे एहवा तपने आजगतमां हेविनय तुं वारंवार अंगीकारकर ॥ ७ ॥ हेविनय कर्मरूप रोगनुं औषध अने तीर्थंकरोनो जे मत तेछे अनुपानजेहनुं तथा समस्त सुखनुं निधान एहवोजे शांतसुधारस तेनुंतुंपानकर ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये निर्झराभावनाविभावनो नाम नवमः प्रकाशः

उपजातिवृत्तं ॥ दानं च शीलं च तपश्च भावो धर्मश्चतुर्धा जिनबांधवेन॥निरूपितो यो जगतां हिताय स मानसे मे रमतामजस्त्रं॥१॥

अर्थ ॥ हवेदशमी धर्मभावना भावेछे तीर्थंकरदेवें लोकहितार्थें दानशीळ तप अने भाव एरीतें चारप्रकारनो धर्मकह्योछे तेधर्ममारामनमां सर्वकाळरहो ॥ १ ॥

इंद्रवज्रावृत्त त्रयं॥सत्यक्षमामार्दवशौचसंगत्यागार्जवब्रह्मविमुक्तियु
क्तः॥ यः संयमः किंच ततोपगूढश्चारित्रधर्मो दशधायमुक्तः॥ २ ॥ य
स्य प्रभावादिह पुष्पदंतौ विश्वोपकाराय सदोदये ते॥ ग्रीष्मोष्मभी
ष्मामुदितस्तडित्वान् काले समाश्वासयति क्षितिं च ॥ ३ ॥ उल्लो
लकल्लोलकलाविलासैर्नोप्लावयत्यंबुनिधिः क्षितिं यत् ॥ न
घ्नंति यत् व्याघ्रमरुद्दवाद्या धर्मस्य सर्वोप्यनुभाव एषः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ १ सत्य २ क्षमा ३ मार्दव ४ शौच ५ तपधर्म ६ संगत्याग ७ ब्रह्मचर्य ८ विशेषप्रकारें मुक्तिएटले निर्लोभतापणुं ९ संयम १० आकिंचनता तेणेकरीयुक्त ए रीतें दसप्रकारनुं चारित्रधर्म कह्युंछे ॥ २ ॥ जे धर्मनापसायेंकरी जगतमां चंद्रसूर्य पण सर्वप्राणीमात्रने उपकारकरवाने अर्थे नित्यउदयपणुं पामेछे वलीग्रीष्मऋतुमां नी अत्यंत तप्तथयली जमीनने वर्षाऋतुमां मेघ वर्षादकरीने ठंडिकरेछे ॥ ३ ॥ त था समुद्रपोताना महोटाकल्लोलेंकरी पृथ्वीनेबुडावतोनथी अने व्याघ्र तथा दावा नल अने पवन इत्यादिकोकोइने मारतानथी एप्रतापसर्व धर्मनोजछे ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तद्वयं ॥ यस्मिन्नेव पिता हिताय यतते
भ्राता च माता सुतः सैन्यं दैन्यमुपैति चापचपलं यत्रा
फलं दौर्बलं ॥ तस्मिन्कष्टदशाविपाकसमये धर्मस्तु संवर्मि
तः सज्जः सज्जन एष सर्वजगतस्त्राणाय बद्धोद्यमः ॥ ५ ॥
त्रैलोक्यं सचराचरं विजयते यस्य प्रसादादिदं योत्रामु
त्र हितावहस्तनुभृतां सर्वार्थसिद्धिप्रदः ॥ येनानर्थकदर्थ
ना निजमहःस्सामर्थ्यतो व्यर्थिता तस्मै कारुणिकाय ध
र्मविभवे भक्तिप्रणामोऽस्तु मे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेवखत पोतानाहितनेअर्थे बाप भाइ माता पुत्र अत्यंतउद्योगकरेछे तेपण धर्मनोजप्रतापजाणवो अनेवली मनुष्यनायोगेंकरी चपलथयलो जे सैन्यके० लशकर तेपण दैन्यके० दीनपणाने पामेछे तथा जेवखतपोतानी भुजाओनुंबल निष्फलथायछे एवी कष्टअवस्थाना परिणामकालें पण सज्जनएहवुंजे धर्मरूप मित्रते पोतानाअंगमां बख्तरजेवुंथइ जाणे एक धर्मरूप बख्तरज पहेर्युंहोयनी एट

ले आंममां वस्तरपहेख्या नीपरेंथयीने सर्वजगतना रक्षणार्थे उद्योग करेछे ॥ ५ ॥ वली जेहनापसायथकी स्थावर अने जंगमसहित जगत शोचेछे तथा जे आलोकें प्राणीओने हितकरवाने योग्यथयीने सर्वअर्थनी सिद्धताने पमाडेछे जेणेपोताना तेजस्वीसामर्थ्यकरी पापरूपविटंबनानो नाशकरीनारयुंछे एहवो जे दयावंत धर्मरूप प्रभु तेने महारो नमस्कार होजो ॥ ६ ॥

मंदाक्रांतावृत्तं ॥ प्राज्यं राज्यं सुभगदयिता नंदनानंदनानां रम्यं रूपं सरसकविता चातुरी सुस्वरत्वं ॥ नीरोगत्वं गुणपरिचयः सज्जनत्वं सुबुद्धिं किंतु ब्रूमः फलपरिणतिं धर्मकल्पद्रुमस्य ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ महोटुंराज्य सुंदरस्त्री पुत्र पुत्रीओ रमणीकरूप घणीज सरस कविता करवानी चतुराइ सुस्वरपणुं आरोग्यतापणुं गुणोनोपरिचय तथासज्जनपणुं अने रूडीबुद्धि एसर्वेवाना ते धर्मरूप कल्पवृक्षना फलछे ॥ ७ ॥

॥ अथ दशमभावनाष्टकं वसंतरागेण गीयते भवितुमेवंदोरेहीरविजयसूरिराया एदेशी॥

पालय पालय रे पालय मां जिनधर्म ॥ मंगलकमलाकेलिनिकेतन करुणाकेतन धीर ॥ शिवसुखसाधन भवभयबाधन जगदाधार गंभीर ॥ पा० ॥१॥ सिंचति पयसा जलधरपटलीभूतलममृतमयेन ॥ सूर्याचंद्रमसावुदयेते तव महिमातिशयेन ॥ पा० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हे जैनधर्म तुं महारुंरक्षणकर महारुं रक्षणकर तुं मांगलिकरूप लक्ष्मीनुं क्रीडागृहछो वलीकरुणानो स्थानकछो तथा मोक्षसुखनुं साधनछो अने संसारना समस्तभयनो नाशकरनारछो तेमज जगतना जीवोने आश्रयभूतछो अनेअतिगंभीरछो ॥ १ ॥ जे मेघनो समूहते पृथ्वीतलने अमृत सरखा पाणीयें करीने सिंचन करेछे अने चंद्र सूर्य जे नित्य उगेछे तेसर्व ताहरोज महिमाछे ॥ २ ॥

निरालंबमियमसदाधारा तिष्ठति वसुधा येन॥तं विश्वस्थितिमूलस्तंभं तं सेवे विनयेन॥पा०॥३॥ दानशीलशुभभावतपोमुखचरितार्थीकृतलोकः ॥ शरणस्मरणकृतामिह भविनां दूरीकृतभयशोकः॥पा० ४॥

अर्थ ॥ निरालंब पृथ्वीनेकोइ आधार नछतां जेनाआधारथकी रहेछे एहवो जगतनीस्थितीनो मूलस्तंभ जे धर्म तेने हुं नित्यप्रतें विनय एटले भक्तियें करी सेवुंछुं॥३॥ दान शील शुभभाव अने तप एचारप्रकारेकरी लोकोने चारित्रार्थनो करनारो अने

जे प्राणी आ जगतमां ए धर्मनो स्मरण करेछे तथा आश्रय करेछे ते प्राणीना भय तथा शोकने दूर करनारो एहवो ए धर्मछे ॥ ४ ॥

क्षमासत्यसंतोषदयादिकसुभगसकलपरिवारः ॥ देवासुरनरपूजित शासन कृतबहुभवपरिहारः ॥पा०॥५॥बंधुरबंधुजनस्य दिवानिशमस हायस्य सहायः॥भ्राम्यति भीमे भवगहनेंगी त्वां बांधवमपहाय॥पा०६

अर्थ ॥ जेनो क्षमा सत्य संतोष दया आदेदेइने समस्तपरिवार सुंदरछे वली देवता दैत्य अने मनुष्योए जेनी आज्ञामान्यकरीछे तथा अनेक जन्म जरा मरण नो परिहार करनारो ते ए धर्मजछे ॥५॥ वलीहे धर्मतुं जेनेकोइ भाइनथी तेनोभा इ तथा जेनेकोइ सहायनथी तेने रात्रदिवस सहायनो करनार बांधव रूपछो तेम छता बांधवरूप तुजने मूकीने प्राणीओ संसाररूप अरण्यमां फिरेछे॥ ६ ॥

द्रंगति गहनं जलति कृशानुः स्थलति जलधिरचिरेण॥तव कृपयाऽखिल कामितसिद्धिर्बहुना किंतु परेण ॥पा०॥७॥ इह यछसि सुखमुदितदशांगं प्रेत्येंद्रादिपदानि॥क्रमतोज्ञानादीनि च वितरसि निःश्रेयससुखदानि॥८

अर्थ॥हे धर्मरूपमित्र तहारीकृपाथकी आरण्य ते महोटा नगर जेवो थाय तथा अग्निते पाणीसरखीथाय अने समुद्रते स्थल सरखो तुरतथइजायछे वधारे सुं कहुं तहारी कृपाथकी प्राणीमात्रना सर्व मनोरथ पूर्णथायछे ॥ ७ ॥ आलोकमां जेना अंगनेविषे दयारूप धर्म उदयआव्योछे तो तेने इहांपण पूर्वोक्तप्रकारें सुखआपेछे अने परभवे इंद्रादिक देवताओनी पदवीआपेछे वली क्रमेकरी मोक्षसुखने आप नारा एहवा ज्ञानादिक गुणआपेछे ॥ ८ ॥

सर्वतंत्रनवनीतसनातन सिद्धिसदनसोपान ॥ जय जय वि नयवतां प्रतिलंबितशांतसुधारसपान ॥ पा० ॥ ९ ॥ इतिशांत सुधारस गेयकाव्ये धर्मभावनाविभावनो नाम दशमः प्रकाशः

अर्थ ॥ सर्वशास्त्रोमां नवनीत एटले माखणजेवो सारभूत अने सनातनके० शा श्वत तथा सिद्धिरूपगृहनो सोपान एटले निसरणीरूप अने जे विनयवंत शिष्यो ने शांतिसुधारसनुं पान करावेछे एहवोजे धर्म ते जयपामो जयपामो ॥ ९ ॥

इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये धर्मभावनाविभावनो नाम दशमः प्रकाशः

मालिनी वृत्तं ॥ सप्ताधोधो विस्तृता याः पृथिव्यश्छत्राकाराः संति रत्नप्रन्ना द्याः ॥ तान्निः पूर्णो योस्त्यधोलोक एतौ पादौ यस्य व्यायतौ सप्तरज्जुः॥१

अर्थ ॥ हवे इग्यारमी लोकस्वरूप नावनानावेछे सातअधोअधो एटले एकबी जाने नीचेंनीचें विस्तीर्ण छत्राकारें रत्नप्रनादिक सातपृथ्वीओछे तेणेकरी परिपूर्ण एवा अधोलोकरूप सातरज्जुप्रमाणे जेना महोटाबेपगछे ॥ १ ॥

तिर्यग्लोको विस्तृतो रज्जुमेकां पूर्णो द्वीपैरर्णवांतैरसंख्यैः ॥ यस्य ज्योतिश्चक्रकांचीकलापं मध्ये कार्श्यं श्रीविचित्रं कटित्रं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अने एक रज्जु प्रमाण विस्तारवंत असंख्याता द्वीपसमुद्रेंकरी व्याप्त एहवो तिर्यग्लोकमां कृशपणानी शोनायेंकरी युक्तछे वली ज्योतिष चक्ररूप कांचीकलापायें युक्त जेनुं सुंदर कणदोरोछे ॥ २ ॥

लोकोऽथोर्ध्वे ब्रह्मलोके द्युलोके यस्य व्याप्तौ कूर्परौ पंच रज्जू ॥ लोकस्यांतो विस्तृतो रज्जुमेकां सिद्धज्योतिश्चित्रको यस्य मौलिः ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ जेनो ऊर्ध्वलोकें ब्रह्मनामा देवलोक पांचरज्जुप्रमाणे व्याप्त ते कोपरा सरखो कूरपरछे अने जेनुं लोकनेअंते एकरज्जुविस्तारपणे जे सिद्धशिला तेमस्तकछे॥३

यो वैशाखस्थानकस्थायिपादः श्रोणीदेशे न्यस्तहस्तद्वयश्च ॥ कालेऽनादौ शश्वदूर्ध्वंदमत्वाद्बिभ्राणोपि श्रांतमुद्रामखिन्नः ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जेना मथनकरवाना दंडने स्थानकेंपगछे एटले छासमथन करवाना दंडनी परें जेना पगपसरेलाछे जेणे पोतानी कटीउपर बेहाथ राखेलाछे एहवोथको अनादिकालनुं निरंतर ऊर्ध्वंदमपणे जितेंद्रियथको शांतमुद्रा धरीरह्योछे पण खिन्ननथी॥४

सोयं ज्ञेयः पूरुषो लोकनामा षड्द्रव्यात्माऽकृत्रिमोनाद्यनंतः ॥ धर्माधर्माकाशकालात्मसंज्ञैर्द्रव्यैः पूर्णः सर्वतः पुद्गलैश्च॥ ५ ॥

अर्थ ॥ षटद्रव्यरूप जेना आत्मानुं स्वरूपछे जेनेकोइयें कर्योनथी जेनो जन्म अथवा मृत्युथयोनथी वली धर्म अधर्म आकाश काल जीव अने पुद्गल एपांचद्रव्येकरी सर्वस्थले परिपूर्ण एवो आ चउदराज लोकनामा पुरुषजाणवो ॥ ५ ॥

रंगस्थानं पुद्गलानां नटानां नानारूपैर्नृत्यतामात्मनां च ॥ कालोद्योगस्वस्वन्नावादिन्नावैः कर्मातोद्यैर्नर्तितानां नियत्या ॥ ६॥

अर्थ ॥ वली जें काल उद्योग स्वस्वन्नावादिकन्नावें कर्मरूपवाजित्रें नियतियेक

री नानाप्रकारना रूपेकरी नचावेला जीवोनुं अने नाचनारोजे पुद्गलरूप नाटकी ओ तेनुं रंगस्थान एटले रंगमंडपछे एवो एचउदराज लोकनामा पुरुषछे ॥ ६ ॥

एवं लोको भाव्यमानो विविक्तया विज्ञानां स्यान्मानसस्थैर्यहेतुः॥
स्थैर्यं प्राप्ते मानसे चात्मनीना सुप्राप्यैवा ऽध्यात्मसौख्यप्रसूतिः॥ ७॥

अर्थ ॥ एरीतेलोकने विवक्त एटले जूदोजूदो स्पष्टपणे भाव्यो थको विज्ञानीपुरुषो नामनने स्थिरकरवानो कारण तेहीजथायछे जेवारें मनस्थिरथयो तेवारें आत्माने हितकरनारी अध्यात्मिक सुखनी प्राप्तिसुलभथायछे ॥७॥ सप्तभिर्मालनीवृत्तैः कुलकं ॥ अथ एकादशभावनाष्टकं काफीरागेणगीयते आजसखीमनमोहनो ॥ एदेशी

विनय विभावय शाश्वतं ॥ हृदि लोकाकाशं ॥ सकलचराचरधा
रणे परिणामदवकाशं ॥ वि० ॥१॥ लसदलोकपरिवेष्टितं गणनाति
गमानं ॥ पंचभिरपि धर्मादिभिः सुघटितसीमानं ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ विनयविजयजी उपाध्याय पोताने समजावेछेजे अरेविनय शाश्वतो चिरकाल रहेनारो एहवो लोकाकाशतुं ताहरा हृदयमां धारणकर जेमां समस्त स्थावर अनेजंगमपदार्थोने धरवाविषे पूर्णअवकाशछे ॥ १ ॥ वलीशोभायमान अ लोकेंकरी वेष्टितके० विटयुंछे तथा जे गणनाके० परिमाण मूकीने रह्योछे केमके असंख्यातो लोकाकाशछे माटे, वली जेनीसीमाधर्मादिक पांचद्रव्येंकरी सुघटितके० रूडीरचनायें करी रचितछे एहवो ए चउदराज लोकनामा पुरुषछे ॥ २ ॥

समवघातसमये जिनैः परिपूरितदेहं ॥ असुमदणुकविविधक्रिया
गुणगौरवगेहं ॥ वि०॥३॥ एकरूपमपि पुद्गलैः कृतविविधविवर्त्तं ॥
कांचनशैलशिखरोन्नतं क्वचिदवनतगर्त्तं ॥ वि० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ वली लोकनामा पुरुषनेविषे श्रीतीर्थंकरदेव समुद्घातना समयें पोतानी आत्माना प्रदेशेकरीने चउदेराजलोकना समस्तभाग परिपूर्णकरेछे तथा असुमतुके० प्राणी अने अणुके० परमाणु तेमनी नानाप्रकारनी जेक्रिया अनेगुण तेनागौरवप णानुं स्थानकजाणवुं ॥ ३ ॥ वली ए लोकाकाश पुरुषमां यद्यपि रूपने धारणकर नारुं एक पुद्गलद्रव्यछे तेणे नानाप्रकारना करेला एहवा किहांक मेरूना शिखरप्र माणेउंचा सुवर्णमयपर्वतोछे वलीकिहांकतो गर्ता एटले खाडाओछे ॥ ४ ॥

क्वचन तविषमणिमंदिरैरुदितोदितरूपं ॥ घोरतिमिरनरकादिभिः क्वचनातिविरूपं ॥ वि० ॥ ५ ॥ क्वचिदुत्सवमयमुज्ज्वलं जयमंगल नादं ॥ क्वचिदमंदहाहारवं ॥ पृथुशोकविषादं ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ वली किहांक तो देवताओना भुवन तेनी सूर्यकांत मणीरत्ननी शोभायें करी सुंदररूप पणाना उदयने पाम्योछे एटले उदितोदित रूपनेपाम्योछे वली किहांक भयंकर अंधकार अने नरकादिकें अत्यंत विरूप एटले माठारूप पणाने पाम्योछे ॥ ५ ॥ वली किहांकतो उत्सवमयछे एटले उज्वल जयमंगलना वाजित्रना नादेंकरी युक्तछे तथा किहांकतो अत्यंतशोक अने खेदे करीयुक्त जेमांथी महोटो हाहाकार शब्द निकलीरह्योछे एहवुं पुद्गल द्रव्यछे ॥ ६ ॥

बहुपरिचितमनंतशो निखिलैरपिसत्वैः जन्ममरणपरिवर्तिभिः कृतमुक्तममत्वैः ॥ वि० ७॥ इहपर्यटनपराङ्मुखाः ॥ प्रणमत भगवंतं ॥ शांतसुधारसपानतो धृतविनयमवंतं ॥ ८ ॥ इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये लोकस्वरूपभावनाविभावनो नामैकादशः प्रकाशः

अर्थ ॥ वली लोकमां पुद्गलनो स्वरूप विशेषें कहेछे जेने जन्म मरणाना योगेंकरी फिरनारा प्राणी पूर्वपूर्व ममत्वनी परंपरायेंकरी अनंति अनंतिवार लेइलेइनेमूक्योछे अनेजेनुं सर्वप्राणीओए अनंतिवार घणुंपरिचित कर्युंछे एहवुंए पुद्गलद्रव्यछे॥ ७ ॥ माटे हेजीव तुंजो आलोकरूप पुरुषमां फिरवानेविषे पराङ्मुख थयो होय तो शांतिसुधारसना पानेकरी विनय धारण करनाराओनुं रक्षण करवा वाला जे भगवंत परमात्मा तेने नमस्कारकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये लोकस्वरूपभावनाविभावनो नाम एकादशः प्रकाशः

मंदाक्रांतावृत्तं॥यस्माद्विस्मापयितसुमनःस्वर्गसंपद्विलासप्राप्तोल्लासाः पुनरपि जनिः सत्कुले भूरिभोगे॥ ब्रह्माद्वैतप्रगुणपदवीप्रापकं निःसपत्नं तद्दुष्प्रापं भृशमुरुधियः सेव्यतां बोधिरत्नं ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवेबारमी बोधिदुर्लभ भावनाभावेछे जेनाथकी देवताओपण विस्मयपामे एहवो स्वर्गसंपत्तिनो विलास पामीने जीव आनंद पामनार थायछे वलीजेनाथकी अनेकप्रकारना अत्यंत भोगेंकरी युक्त एहवा रूमाकुलमां पुनःपुनः ज

न्मथायछे तथा परंपरायें अद्वैत ब्रह्मपदवी पमाडवामां जेनेकोइशत्रुनथी जेनीप्राप्ति पामवी अत्यंतकठीणछे एहवुंजे बोधरूपरत्न तेनोहेबुद्धिमंतो तमेसेवनकरो ॥ १ ॥

भुजंगप्रयातवृत्तत्रयं॥अनादौ निगोदांधकूपे स्थितानामजस्त्रं जनुर्मृत्युदुःखार्दितानां॥परीणामशुद्धिः कुतस्तादृशी स्याद्यया हंत तस्माद्विनिर्यांति जीवाः ॥ २ ॥ततो निर्गतानामपि स्थावरत्वं त्रसत्वं पुनर्दुर्लभं देहभाजां ॥ त्रसत्वेपि पंचाक्षपर्याप्तसंज्ञिस्थिरायुष्कवत्वं दुर्लभं मानुषत्वं ॥३॥ तदेतन्मनुष्यत्वमाप्यापि मूढो महामोहमिथ्यात्वमायोपगूढः॥ भ्रमन्दूरमग्नो भवागाधगर्ते पुनः क्व प्रपद्येत तद्बोधिरत्नं॥ ४ ॥

अर्थ ॥ पण अनादि कालना निगोदरूप अंधकार तद्रूप कुवामां रहेनारा निरंतर जन्म मरणना दुःखेंकरी पीडायला प्राणीओने तेवी परिणामशुद्धि केमथाय केमके जेथकी महोटा आनंदे सहित जीव निगोद रूप अंधकार कुवामांथी बाहेरपडेछे ॥ २ ॥ ते निगोदमांथी नीकलीने पण स्थावरमां उपजवुंथाय केमके प्राणीने त्रसपणुं पामवुंतो दुर्लभछे वली त्रसपणामां पण पंचेंद्रियपणुं पामवुं दुर्लभछे तेमां वलीपर्याप्तिपणुं पामवुं दूर्लभछे तेमांपण संज्ञी पंचेंद्रियपणुं दीर्घायु अने मनुष्यपणुं पामवुंतो परमदुर्लभछे ॥३॥महामोह मिथ्यात्व तथा माया एणेकरी युक्तथको मूर्खप्राणी आ मनुष्यपणुं पामीने संसाररूप अगाध खाडामां फिरतो फिरतो बुडयोथको रहेछे तेप्राणीने बोधिरत्न फरीने शीरीतें प्राप्तथसे ॥ ४ ॥

शिखरिणीवृत्तं॥विभिन्नाः पंथानः प्रतिपदमनल्पाश्च मतिनः कुयुक्तिव्यासंगैर्निजनिजमतोल्लासरसिकाः॥ न देवाः सान्निध्यं विदधति न वा कोप्यरसिकस्तदेवं कालेऽस्मिन् य इह दृढधर्मा स सुकृती॥५॥

अर्थ ॥ धर्मोना भिन्नभिन्न मार्ग अने भिन्नभिन्न स्थानकें कुयुक्तिना व्यासंगें एटले अभ्यासें करीने पोतपोताना मतना उदयविषेरसिक एहवा घणामतवाला आ कालमांछे अनेजो देवतानेपूछवाजइयेंतो देव कांइ कोइपासें आवतोनथी एमजएहवो अतिशयवालोपण कोइनथीके जेने पूछि निर्णय करीयें तो एवा आ दुष्करकालमां जेप्राणी धर्मउपर दृढता राखेछे तेज प्राणी पुण्यवान जाणवो॥ ५ ॥

शार्दूलविक्रीडितवृत्तं॥ यावद्देहमिदं गदैर्न मृदितं नोवा जराजर्जरं याव त्वक्षकदंबकं स्वविषयज्ञानावगाहक्षमं॥ यावच्चायुरभंगुरं निजहिते ता वद्बुधैर्यत्यतां कासारे स्फुटिते जले प्रचलिते पालिः कथं बध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जिहांसुधी आशरीर रोगाक्रांत थयोनथी तेमज जिहांसुधी आशरीर जरायेंकरी जर्जरीभूतथयोनथी तथा जिहांसुधी आ पांचेंद्रियनो समूह पोतपोता ना विषयो लेवाने समर्थछे अने जिहांसुधी आयुष्य क्षीणथयुंनथी तिहांसुधी हेजीव तुं पोताना कल्याणविषे यत्नकर केमके तलावफुटीन पाणी बाहेर नीकली जसे तोपछे पालते केवी बांधीस ॥ ६ ॥

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ विविधोपद्रवं देहमायुश्च क्षणभंगुरं ॥
कामालंब्य धृतिं मूढैः स्वश्रेयसि विलंब्यते ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ आशरीर नानाप्रकारना उपद्रवेंकरी युक्तछे आयुष क्षणभंगुरछे एमछतां कोणमूर्ख तेनाउपर संतोष राखी पोताना कल्याणथवाना कार्यमां विलंब करे॥ ७

॥ द्वादशभावनाष्टकं धनश्रीरागेणगीयते ॥ हीचेरेहीचेरेपीआहिंडोलडेएदेशी ॥

बुध्यतां बुध्यतां बोधिरतिदुर्लभा ॥ जलधिजलपतितसुररत्नयु क्त्या सम्यगाराध्यतां स्वहितमिह साध्यतां ॥ बाध्यताम धरगतिरात्मशक्त्या ॥ बु० ॥ १ ॥ चक्रिभोज्यादिरिव न रभवो दुर्लभो भ्राम्यतां घोरसंसारकक्षे ॥ बहुनिगोदादिका यस्थितिव्यायते ॥ मोहमिथ्यात्वमुखचोरलक्षे ॥ बु० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ जेम समुद्रनापाणीमां पडीगयलुं चिंतामणीरत्न पाछोहाथमां आववुं अतिदुर्लभछे तेम बोधिपामवीपण अतिदुर्लभछे माटेरूडीरीतें बोधिनुं आराधनकरी पोतानुं हितसाधवुं अनेपोतानी शक्तीयेंकरी दुर्गतिनो बाधकरवो ॥ १ ॥ घणी नि गोदादिक कायस्थितियें करी विशाल अने मोह मिथ्यात्वप्रमुख लाखोगमे चोरटा यें युक्त एहवो आ घोर संसाररूप अरण्यमां फिरनारा जीवोने चक्रवर्त्तिना भोजन सरखो मनुष्य जन्म पामवो दुर्लभछे ॥ २ ॥

लब्ध इह नरभवोऽनार्यदेशेषु यः स भवति प्रत्युतानर्थकारी ॥ जी वहिंसादिपापाश्रवव्यसनिनां माघवत्यादिमार्गानुसारी॥ बु० ॥ ३ ॥

आर्यदेशस्पृशामपि सुकुलजन्मनां ॥ दुर्लभा विविदिषा धर्मतत्वे ॥ र
तपरिग्रहभयाहारसंज्ञार्तिभिर्हंत मग्नं जगद्दुस्थितत्वे ॥ बु० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जो आ जगतमां प्राणी अनार्यदेशमां मनुष्यभव पाम्योतो उलटो अन
र्थनुं कारणथायछे केमके जीवहिंसादिक पापाश्रवना व्यसनवाला जीवोतो माघव
ति जे सातमी नरकादिकछे तेना मार्गनुं कारण थायछे ॥ ३ ॥ रूडाकुलमां जन्म
पामेलो होय अनेवली आर्यदेशमां रहेनार होय तेनेपण धर्मतत्व जाणवानी इछा
थवीदुर्लभछे कारणके रतके० मैथुन परिग्रह भय अने अहार ए चार नामना दु
स्थितपणामां सर्वजगत बूमोपडयोछे ॥ ४ ॥

विविदिषायामपि श्रवणमतिदुर्लभं धर्मशास्त्रस्य गुरुसन्निधाने ॥ वित
थविकथादितत्तद्रसावेशतो विविधविक्षेपमलिनेऽवधाने ॥ बु० ॥
॥ ५ ॥ धर्ममाकर्ण्य संबुध्य तत्रोद्यमं कुर्वतो वैरिवर्गोऽतरंगः राग
द्वेषश्रमालस्यनिद्रादिको बाधते निहतसुकृतप्रसंगः ॥ बु० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कदाचकोइने धर्मतत्व जाणवानी इछाहोय अने गुरुसंनिध बेगेहोय
तोपण वृथा विकथारसना आवेशथी नानाप्रकारना विक्षेपेंकरी जोतेनुंअंतःकरण
मलीन थयुंहोयतो धर्मशास्त्रोनुं श्रवण दुर्लभहोय ॥ ५ ॥ वली जेप्राणी धर्मने
सांभली धर्मनेपाम्यो अने धर्मनेविषे उद्योगपण करवाबेगो तेवा प्राणीनेपण पुण्य
रूप प्रसंगना नाशकरनारा जे रागद्वेष श्रम आलस निद्रा इत्यादिक अंतरंग शत्रु
नो समूहछे तेपीडाकरेछे तेथीतेने धर्मपामवुं दुर्लभथायछे ॥ ६ ॥

चतुरशीतावहो योनिलक्षेष्वियं क्व त्वया कर्णिता धर्मवार्ता ॥ प्राय
शो जगति जनतां मिथो विवदते ऋद्धिरसशातगुरुगौरवार्ता॥बु०॥७॥
एवमतिदुर्लभात्प्राप्य दुर्लभतमं बोधिरत्नं सकलगुणनिधानं॥कुरु गुरु
प्राज्यविनयप्रसादोदितं ॥ शांतरससरसपीयूषपानं ॥ बु० ॥ ८॥

इ० शांतसुधारसगेयकाव्ये बोधिभावनाविभावनो नामद्वादशःप्रकाशः

अर्थ ॥ माटे अहोइति आश्चर्य हेजीव चोरासीलक्ष जीवा योनीमां किहां
पण तें धर्मनीवात सांभली हसेके अर्थात् नहीज सांभली हसे केमके घणुकरीने
आ जगतमां ऋद्धिगारव रसगारव सातागारव एत्रण महोटा गारवेंकरी पीडायला
लोकोतो परस्पर एकबीजा साथे वादकरेछे पणधर्मनी वातोसांभली धर्ममार्गे प्रव

संतानथी ॥७॥ एम अतिदुर्लन वस्तु करतां पण विशेष दुर्लन अने समस्त गुणनुं निधानएवुं जे बोधिरत्न ते पामीने गुरुनो अत्यंत विनयकर्यो तेणेकरीने प्राप्तथयुं एहवुं जे शांतिसुधारस रूप नलोअमृत तेनु तुं पानकर एमांकर्त्ताये पोतानुंनाम पणसुचव्युं ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये बोधिनावनाविनावनोनाम द्वादशःप्रकाशः एरीतें अनित्यादिक बारनावनाओनो अधिकार संपूर्णथयो ॥

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ सद्धर्मध्यानसंध्यानहेतवः श्रीजिनेश्वरैः ॥ मैत्रीप्रनृतयः प्रोक्ताश्चतस्रो नावनाः पराः ॥ १ ॥ तथाहुः॥मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ्यानि नियोजयेत् ॥ धर्मध्यानमुपस्कर्तुं तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे मैत्र्यादिक चारनावनाओ नावेछे श्रीतीर्थंकरदेवें सत्यधर्मध्याननी धाराना हेतुनूत मैत्रीआदेदेइने बीजी चारनावनाओ कहीछे ॥१॥ तेश्रीतीर्थंकरदेवें कहीछे तेमज नावियेछैयें १ मैत्री २ प्रमोद ३ कारुण्य अने ४ माध्यस्थ्य एचारनावनाते धर्मध्यानना नूषणार्थें एटले धर्मध्याननी शोनानेअर्थे योजना करीयकी ध्यावनारने चारनावनायुक्त जे धर्म ते रसायन (औषधी) तुल्य थायछे ॥ २ ॥

उपजातिवृत्तं॥मैत्री परेषां हितचिंतनं यत् नवेत्प्रमोदो गुणपक्षपातः॥ कारुण्यमार्त्तांगिरुजां जिहीर्षेत्युपेक्षणं दुष्टधियामुपेक्षा ॥ ३ ॥सर्वत्र मैत्रीमुपकल्पयात्मन् चिंत्यो जगत्यत्र न कोपि शत्रुः ॥ कियद्दिनस्थायिनि जीविते ऽस्मिन् किं खिद्यते वैरिधिया परस्मिन् ॥ ४ ॥ सर्वेप्यमी बंधुतया ऽनुनूताः सहस्रशोऽस्मिन्नवता नवाब्धौ ॥ जीवास्ततो बंधव एव सर्वे न कोपि ते शत्रुरिति प्रतीहि ॥ ५ ॥ सर्वे पितृभ्रातृपितृव्यमातृपुत्रांगजास्त्रीनगिनीस्नुषात्वं ॥ जीवाः प्रपन्नाबहुशस्तदेतत्कुटुंबमेवेति परो न कश्चित् ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जे बीजानाहितनुं चिंतनकरवुं ते मैत्रीनावना जाणवी गुणीनो पक्षपातकरवुं ते प्रमोदनावना जाणवी दुखीप्राणीना दुख दुरकरवानी इछ्राराखवी ते कारुण्यनावना दुष्टबुद्धीवंत प्राणीउपर उपेक्षाकरवी ते उपेक्षणनावना ॥ ३ ॥ हेआत्मातुं सर्वत्र मैत्रीतापणुंकर एटले आजगतमां कोइपण महारो शत्रुछे एहवो तुं ताहरा मनमां बीलकुल लावीसनही केमके थोडादिवस रहेनारो अल्पमात्र ताहरो जीवतव्यपणुछे तेमां बीजाउपर शत्रुबुद्धि राखीने सुं वृथा खिन्नथायछे ॥ ४ ॥

हेजीव आसंसारसमुद्रमां ए समस्तप्राणीसाथें हजारोवखत तें न्राइपणो अनुभ व्यो तेमाटे एसर्व ताहरा न्राइओजछे पण कोइ तहारो शत्रुनथी एवीरीतें तुंजाण ॥ ५ ॥ सर्वजीवो मात्र. संसारमां माता पिता बंधु काको पुत्र पुत्री स्त्री, बहेन छोकरानीस्त्री इत्यादिकरीतें ताहरीसाथें शेकडो वखत सगपण करीचुकाछे तेमाटे एसर्व ताहारो कुटुंबजनछे पण एमांकोइ परकीयनथी एमविचारी सर्वजंतु उपर मैत्रिता पणुं आदर ॥ ६ ॥

इंद्रवज्रावृत्तद्वयं॥ एकेंद्रियाद्या अपि हंत जीवा. पंचेंद्रियत्वाद्यधिगत्य सम्यक्॥बोधिं समाराध्य कदा लन्नंते न्रूयो न्नवभ्रांतिन्नियां विरामं॥ ७ ॥या रागरोषादिरुजो जनानां शाम्यंतु वाक्काय मनोद्रुहस्ताः॥सर्वेप्युदासीनरसंरसंतु सर्वत्र सर्वेसुखिनोन्नवंतु॥८॥

अर्थ ॥ फिरी हेजीव तुं एवो विचारकर के आ संसारमां जे एकेंद्रियादिक जीवोछे तेपण रुडाप्रकारें पचेंद्रियादिकपणु पामीने ज्ञानाराधनाकरी कोइकालेंपण संसारमां न्नमवारूप न्नयनुं अंतकरसे एवुंजाणीने तेजीवोनी साथे पण मित्रता कर ॥ ७ ॥ वलीजे प्राणीओने रागद्वेषादिरूप पीडा मन वचन कायाना छुनयोगोनो द्रोहकरेछे तेसर्वप्राणी उदाशीनतापणुं पामीने सर्वलोक सुखीथाओ एवोमैत्रीपणुं तुं सर्वजीवो उपर राख ॥ ८ ॥

॥ अथ त्रयोदशन्नावनाष्टकं देशाखरागेणगीयते रेजीवजिनधर्मकीजियें एदेशी ॥

विनय विचिंतय मित्रतां ॥ त्रिजगति जनतासु ॥ कर्मविचित्रतया गतिं विविधां गमितासु ॥वि० ॥ १ ॥ सर्वेते प्रियबांधवा नहि रिपुरिह कोपि ॥ माकुरु कलिकलुषं मनो निजसुकृतविलोपि ॥ विन० ॥२॥

अर्थ ॥ हेविनय आ त्रण्यलोकमां कर्मनी विचित्रतायेंकरी नानाप्रकारनी तिर्यंचादिक गतिओने पामेलाप्राणी जे छे तेसर्वप्राणीमात्रना समूहउपर तुं मित्रतान्नाव राख केमके एसर्व ताहरा परमप्रिय बांधवजछे पण एमांकोइ तहारोशत्रु नथी माटे फोकट मनने क्लेशेकरी कलुषता मकर कारणके क्रोधजेछे ते तहारा पोतानाज पुण्यनो नाशकरनारोछे ॥ १ ॥ २ ॥ ए बेकाव्यनो अर्थएकगोछे.

यदि कोपं कुरुते परो निजकर्मवशेन ॥ अपि न्नवता किं न्रूयते हृदि रोषवशेन ॥ वि० ॥३॥ अनुचितमिह कलहं सतां ॥ त्यज समरसमीन ॥ न्नज विवेककलहंसतां॥ गुणपरिचयपीन॥वि०॥४॥

अर्थ ॥ माटे जो बीजोकोइ पोताना कर्माधीनपणाथकी ताहराउपर क्रोधकरे छे तो तुंपण तहाराहृदयमां तेनाउपर क्रोध शावास्ते करेछे ॥ ३ ॥ अरेजीवतुं समतारूप पाणीना तलावनुं मत्सथइने सत्पुरुषोने अयोग्य एहवुंज कलह तेनेमूकीआप अनेगुणोनो परिचय करवाने पुष्टकारी एहवोजे विवेकरूप सरोवर तेमां रमण करवाने हंस जेवो था ॥ ४ ॥

शत्रुजनाः सुखिनः समे मत्सरमपहाय ॥ संतु गंतुमनसोप्यमी शिवसौख्यगृहाय॥वि०॥५॥सकृदपि यदि समतालवं हृदयेन लिहंति ॥ विदितरसास्तत इह रतिं स्वत एव वहंति ॥ वि० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीवतुं समस्त शत्रुलोकोनी मंमलीउपर मत्सरताजावनो त्यागकरीने परमसुखीथा अने मोक्षरूप सुखना घरने जाणवाने ताहरुं मनकर ॥ ५ ॥ जोएकवारपण समताना लवनुं ताहरा हृदयमां आस्वादन करीस तो रसज्ञथइने सम्यकउपर पोतानी मेलेज प्रीतिकरीस ॥ ६ ॥

किमुत कुमतमदमूर्छितां दुरितेषु पतंति जिनवचनानि कथंह हा न रसादुपयंति॥वि०॥७॥ परमात्मनि विमलात्मनां परिणम्य वसंतु ॥विनय समामृतपानतो जनता विलसंतु॥वि०॥८॥इतिश्रीशांतसुधारसगेयकाव्ये मैत्रीजावनाविजावनोनाम त्रयोदशः प्रकाशः

अर्थ ॥ हे जीवतुं शावास्ते कुमतायेंकरी मूर्छितथइने नरकमांपडेछे अने शांतरसथीज जरेला श्रीतीर्थंकरदेवना वचनोनुं केम संरक्षण करतोनथी ॥ ७ ॥ निर्मलअंतःकरणवाला जीवोनामन परमात्माना स्वरूपनेविषेज परिणत थइ रहो अने लोकोनासमूह ते समतारूपी अमृतना पानेकरी विनयनो विलासपामो॥८॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये मैत्रीजावनाविजावनो नाम त्रयोदशः प्रकाशः

स्रग्धरावृत्तं॥धन्यास्ते वीतरागाः क्षपकपथगतिक्षीणकर्मोपरागास्त्रैलोक्ये गंधनागाः सहजसमुदितज्ञानजाग्रद्विरागाः॥अध्यारुह्यात्मशुध्या सकलशशिकलानिर्मलध्यानधारामारान्मुक्तेः प्रपन्नाः कृतसुकृतशतोपार्जितार्हंत्यलक्ष्मीं ॥१॥तेषां कर्मक्षयोत्थैरतनुगुणगणै निर्मलात्मस्वजावैर्गायं

गायं पुनीमस्तवनपरिणतैरष्टवर्णास्पदानि ॥धन्यां मन्ये र
सज्ञा जगति भवतस्तोत्रवाणीरसज्ञामज्ञां मन्ये तदन्यां
वितथजनकथाकार्यमौखर्यमग्नां ॥ २ ॥ निर्ग्रंथास्तेपि ध
न्या गिरिगहनगुहागव्हरांतर्निविष्टा धर्मध्यानावधानाः
समरससुहिताः पक्षमासोपवासाः ॥ येन्येपि ज्ञानवंतः
श्रुतविततधियो दत्तधर्मोपदेशाः शांता दांता जिताक्षा
जगति जिनपतेः शासनं भासयंति ॥ ३ ॥ दानं शीलं
तपो ये विदधति गृहिणो भावनां भावयंति धर्मं धन्या
श्चतुर्धा श्रुतसमुपचितश्रद्धया राधयंति ॥ साध्व्यः श्राध्य
श्च धन्याः श्रुतविदशधिया शीलमुद्भावयंत्यस्ता न्सर्वान्
मुक्तगर्वाः प्रतिदिनमसकृद्भाग्यभाजः स्तुवंति ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे प्रमोद भावना भावेछे क्षपकश्रेणीना मार्गमां प्रवेशकरवाने कर्म रूपमलने जेणे क्षीणकर्युंछे अने त्रणलोकमां गंधहस्तिसरखा स्वस्वभावमां रमण करनारा सहजउदयने पामेला केवलज्ञानेकरी जागृतथयुंछे वैराग्यजेहनुं एहवा श्रीवीतराग एटले तीर्थंकरनेधन्यछे केमके जे आत्मशुद्धिकरीने पूर्ण चंद्रकलास रिखी निर्मल जे ध्यानधारा तद्रूप अनंतपुण्यना समूहेंकरी संपादनकरेली तीर्थं करनीलक्ष्मी तेनुं आराधनकरी मुक्तिनेप्राप्तथायछे ॥ १ ॥ श्रीविनयविजयजी उपा ध्यायकहेछे के हुं ते तीर्थंकरोना कर्मक्षयथकी उत्पन्नथयाजे घणा गुणना समूह तेनी स्तुतिकरवाविषे जेहना परिणामहोयछे एवा आत्माना निर्मलस्वभावें सहित तीर्थंकरनी स्तुति करीकरीने वरणना आठस्थानकोप्रतें पवित्रकरुंछुं अने आ जग तमां तीर्थंकरोनी स्तुतिना रसने जाणनारी जिव्हाने धन्यमानुंछुं तेविना बीजीजे निष्फल लोकवार्ता अने कार्योना वाचालपणामां वर्त्तनारी जिव्हाने मूर्खतुल्य मानुंछुं ॥ २ ॥ वली पर्वतमां अरण्यमां गुफागुहिरमां निवासकरीने धर्मध्यान उ पर एकाग्रचित्त राखनारा तथा सम्यक्तरूप रसेकरी संतुष्टथयला वली पक्ष मास विगेरेना उपवास करनारा एहवा जे निर्ग्रंथसाधु तेनेपण धन्यछे तथा वली बी जाजे ज्ञानीपुरुषो शास्त्रउपर पसरेली बुद्धियेंकरी धर्मोपदेशआपेछे अने शांतगुणी दांतगुणी जितेंद्रिय एहवा महापुरुष जे जगतमां प्रवर्त्तताथका श्री तीर्थंकरदेवना

शासनने प्रकाशितकरेछे तेनेपण धन्यछे ॥ ३ ॥ वलीजे गृहस्थावासमां रह्याथका पण सुपात्रने दानआपेछे शीलपालेछे तपकरेछे नावनाओ नावेछे तथा चारप्रकारें करी धर्मध्यानने आराधेछे अने पुष्टश्रद्धायें शास्त्रनुं आराधन करेछे तेनेपण धन्यछे वलीजे साध्वी तथा श्राविकाओ शास्त्रथकी स्वच्छथयली बुद्धियें शीलपालेछे तेनेपण धन्यछे एरीतें हे नाग्यवंत नव्यपुरुषो तमे सर्वथा गर्वमूकीने ए पूर्वोक्त समस्त उत्तमपुरुषोनी नित्यप्रतें निरंतर स्तुतिकरो के जेथकी तमारुं कल्याणथाय॥४॥

उपजातिवृत्तं॥ मिथ्यादृशामप्युपकारसारं संतोषसत्यादिगुणप्रसारं ॥ वदान्यतावैनयकप्रकारं मार्गानुसारीत्यनुमोदयामः ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ ए पूर्वोक्त सम्यक् दृष्टी जीवनी स्तुति करवी ते तो श्रेष्ठजछे परंतु अमें मिथ्यादृष्टीनो पण उत्तम उपकार जाणीयेंछेयें कारणके जो तेमनो संतोष सत्यादिक गुणनो प्रसार तथा दातारपणुं अने विनयना प्रकार एटलावाना मार्गानुसारीछे तो एहवोजाणीने तेनीपण अनुमोदना करियेंछे ॥ ५ ॥

स्रग्धरावृत्तं ॥ जिव्हे प्रव्हीनव त्वं सुकृतिसुचरितोच्चारणे सुप्रसन्ना नूयास्तामन्यकीर्तिश्रुतिरसिकतया मेऽद्य कर्णौ सुकर्णौ ॥ वीक्ष्यान्यप्रौढलक्ष्मीं द्रुतमुपचिनुतं लोचने रोचनत्वं संसारेऽस्मिन्नसारे फलमिति नवतां जन्मनो मुख्यमेव ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीवो जो तमे सरलछो अने पुण्यवान पुरुषोना पुण्यनो उच्चार करवाने प्रसन्नछो एटले आज अमारा कान बीजा पुण्यवान पुरुषोनी कीर्त्ति श्रवणना रसिकपणे करी सुकर्णरहो अने बीजानी प्रौढ ऐश्वर्यताजोइने अमारी चक्षु प्रकाशपणाने धारणकरो एहवा जो तमारा विचारछे तो आ संसारमां एज तमारा जन्म सफल पणानो मुख्य फलछे ॥ ६ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ प्रमोदमासाद्य गुणैः परेषां येषां मतिः सज्जति साम्यसिंधौ ॥ देदीप्यते तेषु मनःप्रसादे गुणास्तथैते विशदीनवंति॥७॥

अर्थ ॥ बीजाना गुणो सांजली संतोषपामिने जेनीबुद्धि समतारसरूप समुद्रथी संलग्नथायछे तेप्राणीना मननो प्रसाद देदीप्यमान थायछे तेमज तेना पोताना गुण पण सर्व स्वच्छ थायछे ॥ ७ ॥

॥ अथ चतुर्दश जावनाष्टकं टोडीरागेणगीयते कृष्णजकीमेरेमनजगतिवशीरीएदेशी ॥

विनय विजावय गुणपरितोषं ॥ ध्रुवपदं ॥ निजसुकृता
प्तवरेषु परेषु ॥ परिहर दूरं मत्सरदोषं ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हेविनय तुं गुणीपुरुषनागुण उपर संतोष करवुं मनमाजाव अने पोताना पुण्यप्राप्तिनावखतें बीजाउपर मत्सरकरवापणाना दोषने दूरकर ॥ १ ॥

दिष्ट्यायं वितरति बहुदानं वरमयमिह जजते बहुमानं ॥ किमिति
न विमृशसि परपरमागं ॥ यद्विजजसि तत्सुकृतविजागं वि०॥ २॥

अर्थ ॥ अमुक मनुष्य अत्यंत दानआपेळे एबहु कल्याणकारक कामकरेळे अथवा अमुकपुरुष अमुकस्थानके बहुमानपामेळे एपणघणुजरूंमुंळे एहवो रूडोविचार तुं केमकरतोनथी ळेकाणेळेकाणे जोकोना गुणोत्कर्ष करवा एहिज सुकृत विजागळे २

येषां मन इह विगतविकारं ॥ ये विदधति जुवि जगङ्पकारं ॥
तेषां वयमुचिताचरितानां ॥ नाम जपामो वारंवारं ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ आ जगतमां जेना मननेविषे कोइप्रकारनो विकारनथी एटजे निर्विकारीळता पृथ्वीनेविषे जोकोनो उपकारकरेळे एहवा पवित्र सदाचारी पुरुषोना नाम अमें वारंवार जपियेंळैयें ॥ ३ ॥

अहह तितिक्षागुणमसमानं ॥ पश्यत जगवति मुक्तिनिदानं॥ येन
रुषा सह जसदजिमानं ॥ ऊटिति विघटते कर्मवितानं ॥वि० ॥४॥

अर्थ ॥ जेनीबराबरी करवाने कोई समर्थनथी एहवो मुक्तिनुं कारणजे क्षमा गुण ते श्रीतीर्थंकरदेव नोजूओ के जेणेकरी क्रोधसहित अजिमानेकरी शोजनारो एहवोजे कर्मनो समूह ते तुरत नाशपामेळे ॥ ४ ॥

अदधुः केचन शीजमुदारं ॥ गृहिणोपि परिहृतपरदारं ॥ यश इह
संप्रत्यपि शुचि तेषां ॥ विजसति फलिताफजसहकारं ॥ वि०॥५ ॥

अर्थ ॥ जेगृहस्थो परस्त्रीनुं त्यागकरी महोटुं शीजव्रतपाळेळे ते हमणापण आ जगतमां पवित्र यशें फलीजूत थयाथका सफल आंबाना वृक्षसरिखाशोजेळे ॥५॥

या वनिता अपि यशसा साकं कुजयुगलं विदधति सुपताकं ॥
तासां सुचरितसंचितराकं ॥ दर्शनमपि कृतसुकृतविपाकं॥वि०॥६॥

अर्थ ॥ वलीजे स्त्रीओपण शीज पालीने पोताना मावित्र तथा ससरा बन्ने कु

लोने यशनी सुपताकके० ध्वजाकरेछे एवीस्त्रीओनो पुण्य परिपाके करी प्राप्तथ येलुं जेदर्शन ते पण पुण्यरूप धनपुंज संपादकछे ॥ ६ ॥

तात्विकसात्विकसुजनवतंसाः ॥ केचन युक्तिविवेचनहंसाः ॥ अलम कृपत किल भुवनाभोगं ॥ स्मरणमनीषां कृतशुभयोगं ॥वि०॥ ७ ॥

अर्थ ॥ खरेखरा सत्वगुणने धारणकरनारा सज्जनलोकोना मस्तकना भूषणस मान अने जेम हंस दूध तथापाणीनो विवेचनकरेछे तेनीपरें युक्तियेंकरी विवेचन नाकरनारा एहवा जे सर्वोत्कृष्टप्राणीछे ते आ अपेभुवनने शोभायमान करवाने तत्परछे तो तेवापुरुषोनुं स्मरणकरवुं ते पण शुभयोगनो करनारथाय ॥ ७ ॥

इति परगुणपरिभावनसारं ॥ सफलय सततं निजमवतारं ॥ कुरु सुविहितगुणनिधिगुणगानं॥विरचय शांतसुधारसपानं॥वि०॥८॥ इति श्री शांतसुधारसगेयकाव्ये प्रमोदभावनाविभावनोनामचतुर्दशः प्रकाशः

अर्थ ॥ हे आत्मा एपूर्वोक्तरीतें परनागुणनो विचार करवुं एहिज जेमां सार छे एवुं आ तहारो पोतानो अवतार तेने तुं निरंतर परनागुणो स्मरणकरीने सफ लकर तथा शुद्धगुणोना निधि एहवाजे मनुष्यो तेना गुणोनुं गायनकर अने शां तसुधारसनुं पानकर ॥ ८ ॥ इतिश्री शांतसुधारसगेयकाव्ये प्रमोदभावना वि भावनो नाम चतुर्दशः प्रकाशः ॥

मालिनीवृत्तं॥ प्रथममशनपानप्राप्तिवांछाविहस्ता स्तदनु वस नवेश्मालंकृतिव्यग्रचित्ताः ॥ परिणयनमपत्यावाप्तिमिष्टेंद्रि यार्थान्सततमभिलपतंः स्वस्थतां क्वास्नुवीरन् ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हवे कारुण्यभावना भावेछे प्रथमतो अशनपान प्राप्तिकरवानी इछा यें व्याकुलथयला तदनंतर वस्त्र घर अलंकार इत्यादिकोनी प्राप्ति करवाने विषे जे मनुंचित्त व्यग्रथयुंछे तेवारपछि लग्नकरवानी इछा तेपछि पुत्रपुत्री प्राप्त करवानी इछा अने इंद्रियार्थजे पांचइंद्रियोना त्रेवीस विषयोतेप्रतें इछनार एहवाजे संसार वासी जीवो तेकेवीरीतें स्वस्थ थाय ॥ १ ॥

शिखरिणीवृत्तं ॥ उपायानां लक्षैः कथमपि समासाद्य विभवं भवा भ्यासात्तत्र ध्रुवमिति निबध्नाति हृदयं॥ अथाकस्मादस्मिन्विकिर ति रजः क्रुरहृदयो रिपु र्वा रोगो वा भयमुत जरा मृत्युरथवा॥२॥

अर्थ ॥ हे प्राणी तुं आ जगतमां लक्षावधि उपायोकरीने कोइपणरीतें ऐश्वर्य ता मेलवी जन्मोजन्मना अभ्यासेंकरी तेहनाउपरज मनने स्थिर राखेछे पण एना उपरतो एवीअनंतर जे अकस्मातिक क्रूर हृदयवंत शत्रु किंवा रोगप्राप्ति नय जरा अथवा मृत्यु एटलावाना धुलनाखेछे ॥ २ ॥

स्रग्धरावृत्तं ॥ स्पर्धंते केपि केचिद्दधति हृदि मिथो मत्सरं
क्रोधदग्धा युध्यंते केरुप्यद्धा धनयुवतिपशुक्षेत्रपद्मादिहेतोः॥
केचिल्लोभाल्लभंते विपदमनुपदं दूरदेशानटंतः ॥ किं कुर्मः
किं वदामो नृशमरतिशतैर्व्याकुलं विश्वमेतत् ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ कोइ क्रोधेकरी दग्धथयाथका द्वेषकरेछे कोइ परस्पर हृदयमां मत्सर धरेछे केटलाक कोइना रुंध्यानछता स्वछंदपणे द्रव्य स्त्री पशु खेत्र गाम इत्यादिकोने वास्ते लडेछे वली कोइक लोभेंकरी विपत्तिये नोगित थयाथका दूर देशांतरोमां ग्टन करीकरीने व्यामूढथायछे तो हवे सुं करियें अने सुं बोलियें आ जगत तो अत्यंत शोकडा दुःखेकरी व्याकुलछे ॥ ३ ॥

उपजातिवृत्तत्रयं ॥ स्वयं खनंतः स्वकरेण गर्तान्मध्ये स्वयं तत्र य
था पतंति ॥ तथा ततो निष्क्रमणं तु दूरे ऽधोदः प्रपाताद्विरमंति
नव ॥ ४ ॥ प्रकल्पयन्नास्तिकतादिवादमिदं प्रमादं परिशीलयंतः
॥ मग्ना निगोदादिषु दोषदग्धा दुरंतदुःखानि हहा सहंते ॥ ५ ॥
शृण्वंति ये नैव हितोपदेशं न धर्मलेशं मनसा स्पृशंति ॥ रुजः
कथंकारमथापनेयास्तेषामुपायस्त्वयमेक एव ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ प्राणीपोतें पोतानेहाथें खाडोखोदीने तेमां एवीरीतें पडेछेके फरीकोइ प्रकारें तेमांथी नीकलवुंतो दूररह्युं परंतु उलटो नीचेनीचें जइपडवुं तेनुं किवारे अंतज आवनार नथी एटलो उंडोखाडो खोदेछे ॥ ४ ॥ जे नास्तिकादिक वादक ल्पीने प्रमादनो अभ्यासकरनारा दोषेकरी दग्धथयीने निगोदादिकमां बुमारह्या थका जेनोअंत घणुंजमागे एहवा महा क्लेशकारी दुःखोने सोसेछे तो हाहा इतिखे दे एवात केटली खेदनरेलीछे ॥ ५ ॥ जेप्राणीहितोपदेश सांजलतोनथी अने धर्म लेश्याने तो मनेकरीपण स्पर्श करतोनथी तेप्राणीना दुःखो सीरीते दूरकरीयें तेनो आ एकज उपायछे तेआगलना श्लोकमां कहेछे ॥ ६ ॥

अनुष्टुब्वृत्तं ॥ परदुःखप्रतीकारमेवं ध्यायंति ये हृदि ॥
लजंते निर्विकारं ते सुखमायतिसुंदरं ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ जेप्राणी पूर्वोक्तप्रकारें बीजाना दुःखोनो प्रतीकार हृदयमां धरेछे तेणे करी जेना परिणाम सुंदरथायछे तेने निर्विकारी सुख प्राप्तथाय ॥ ७ ॥

॥ पंचदशनावनाष्टकं रामकुलीरागेण गीयते ॥ हमारो अंबरदेहुमुरारी एदेशी ॥

सुजना जजत मुदा जगवंतं सुजनाजजत मुदा जगवंतं ॥ ध्रुवपदं ॥
शरणागतजनमिह निष्कारणकरुणावंतमवंतंरे ॥ सुज० ॥ १ ॥

अर्थ ॥ हेसज्जनो आ जगतमां कारणविना दयाना पालनारा अने जे पोताने शरणे आव्यो तेनीरक्षाना करनारा जे जगवंतछे तेने तुमे हर्षेकरी जजो ॥ १ ॥

क्षणमुपधाय मनः स्थिरतायां पिवत जिनागमसारं ॥ का
पथघटनाविकृतविचारं त्यजत कृतांतमसारं रे ॥ सुज० ॥२॥

अर्थ ॥ एकक्षणमात्र पोतानो मनस्थिरकरी जैनागमना सारनुं पानकरो अने जे कृत्योमां कुत्सित मार्गनी घटनायें करी आपणो विवेक विकारवंत थायछे एवा असार निंदनिक कृत्यनो त्यागकरो ॥ २ ॥

परिहरणीयो गुरुरविवेकी भ्रमयति यो मतिमंदं ॥ सुगुरुवचः
सकृदपि परिपीतं प्रथयति परमानंदं रे ॥ सुज० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ अविचारितगुरुनो संगमूको केमके जे गुरुओ मंदबुद्धिवंत पुरुषोने ज्ञांति सहित करेछे अने सुगुरुना वचनो जो एक वखत सांजल्या तोपणपरमानंद उत्पन्नकरेछे ३

कुमततमोजरमीलितनयनं किमु पृच्छत पंथानं ॥ दधिबुध्या
नर जलमंथन्यां किमु निदधत मंथानं रे ॥ सुज० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ कुमतरूपी अंधारेकरी जेनी आंखोढकांइ गयलीछे तेवाप्राणीने मोक्षमार्गनो रस्तोसुं पूछवुं हेलोको तमे दहीनी बुद्धियें पाणीनेविषे मथनिकाने केम नाखोछो केमके ए पाणीमांथी कांइ माखण निकलवानुं नथी ॥ ४ ॥

अनिरुद्धं मन एव जनानां ॥ जनयति विविधातंकं ॥ सप
दि सुखानि तदेव विधत्ते ॥ आत्माराममशंकं रे ॥ सुज० ॥५॥

अर्थ ॥ पोतानुंमन पोताने स्वाधीन न राख्यो छता तेहिज पोताने नानाप्रकार

नाडुःखो उत्पन्नकरेछे अने तेहिज मनपोताने स्वाधीन राख्योछता आत्मारामने निशंकपणे विविध प्रकारना सुखआपेछे ॥ ५ ॥

परिहरताश्रवविकथागौरवं मदनमनादिवयस्यं ॥ क्रियतां सांवरसाप्तपदीनं ॥ ध्रुवमिदमेव रहस्यम् रे॥ सुज० ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हे सज्जनो तमे आश्रव अने विकथानुंजे गौरवपणुं तथा अनादिकालनुं मित्रजे कामदेव तेनी साथें मित्रतानो त्याग भाव करीने संवररूप सन्मित्रकरो ए हिज एक गुप्त तत्वछे ॥ ६ ॥

सह्यत इह किं भवकांतारे ॥ गदनिकुरंबमपारं ॥ अनुस रताहितजगदुपकारं जिनपतिमगदंकारं रे ॥ सुज० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ हेजीव आ संसाररूप अरण्यमां रागद्वेषादिक अपाररोगना समूहने तुं सोसेछे तेनो त्यागकरी ने जगतना उपकार करनार अने संसारीजीवोने राग द्वेष मद मत्सर इत्यादिक रोगोनो निवारणकरी निरोगताना आपनार एहवा श्री तीर्थंकरदेवरूप औषधनी सेवनाकर ॥ ७ ॥

शृणुतैकं विनयोदितवचनं नियतायतिहितरचनं ॥ रचयत सुकृत सुखशतसंधानं शांतसुधारसपानं रे ॥सुज०॥८॥ इति श्रीशांतसु धारसगेयकाव्ये कारुण्यभावनाविभावना नाम पंचदशः प्रकाशः॥

अर्थ ॥ माटेहे भव्यो विनयविजयजीना कहेला अथवा विनयेंकरीने कहेला आ ग्रंथमांहेला वाक्यो तेने एक नियमें करी एटले तदाकार वृत्तियें करी बराबर ध्यानराखीने सांभलो ए वचनो सांभलवाथी उत्तरफलनी प्राप्तिथवाना कालनेविषे हित रंजनना करनाराछे एहवुंजाणीने ए वाक्यो ते एकनियमथी सांभलो॥८॥ इति श्रीशांतसुधारस गेयकाव्ये कारुण्यभावनाविभावनो नाम पंचदशः प्रकाशः ॥

पंचापि शालिनीवृत्तानि॥श्रांता यस्मिन् विश्रमं संश्रयंते रुग्णाः प्री तिं यत्समासाद्य सद्यः॥ लभ्यं रागद्वेषविद्वेषिरोधादौदासीन्यं सर्व दा तत्प्रियं नः॥१॥लोके लोका भिन्नभिन्नस्वरूपा भिन्नैर्भिन्नैः कर्म भिर्मर्मभिद्भिः॥रम्यारम्यैश्चेष्टितैः कस्य कस्य तद्विद्वद्भिस्तूयते रुष्यते वा ॥ २ ॥ मिथ्याशंसन्वीरतीर्थेश्वरेण रोद्धुं शेके न स्वशिष्यो जमा लिः ॥ अन्यः कोवा रोत्स्यते केन पापात्तस्मादौदासीन्यमेवात्मनी

नं ॥ ३ ॥ अर्हंतोपि प्राज्यशक्तिस्पृशः किं धर्मोद्योगं कारयेयुः प्र
सह्य ॥ दद्युः शुद्धं किंतु धर्मोपदेशं यत्कुर्वाणा दुस्तरं निस्तरंति॥४
तस्मादौदासीन्यपीयूषसारं वारंवारं हंत संतो लिहंतु ॥ आनंदा
नामुत्तरंगत्तरंगैर्जीवद्भिर्यद्भुज्यते मुक्तिसौख्यं ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ हवे सोलमी माध्यस्थ भावना भावेछे जेमकोइप्राणीने थाकचडेलो होयते प्राणी विश्रांतिनास्थानकें विश्रांतिलेछे तेमज उदासीनता जेछेते संसार रूप अरण्यमां भ्रमणकरनारा प्राणीने विश्रांतिलेवानुं स्थानकछे अने जेनेजोइ रोगीपुरुष तत्काल प्रीतिवंतथायछे एटले गमेतेवा रोगेकरी पीडितहोय तथापि जेने उदासीनता पणुं प्राप्तथयुं तो तेने ते रोगनी व्याधि कांइपण जाणवामां न आवता उलटो हर्षवधेछे वली जेनीप्राप्ति राग अने द्वेषरूप शत्रुनो रोधकरवाथी थायछे एहवीजे उदासीनता ते अमोने सर्वकाल प्रियछे ॥ १ ॥ आजगतमांना लोको अंतरना आशयेकरी मर्मनाभेदे भिन्नभिन्न कर्मेकरी अने रम्यारम्य व्या पारेकरी भिन्नभिन्न स्वरूपवंतछे पण बधाप्राणीनी एकप्रकृति तो नथीज तिवारें हवे विद्वानपुरुषे केनीकेनी रम्यारम्य चेष्टा उपर संतुष्टथावुं किंवा रुष्टथावुं अर्था त् विद्वान पुरुषेतो सर्वप्राणी उपर संतुष्ट अथवा रुष्टनथता समदृष्टीज राखवी भलीछे ॥ २ ॥ जूओकेश्री वीरभगवान पोते तीर्थंकर छता मिथ्यासहित बोलना रो पोतानो शिष्य जमाली तेने रुंधीशक्यानही तो बीजो कोण कोइने पण पाप थकी रुंधीराखनारछे माटे उदासीनपणुं राखवुंतेहीज आत्मानुं हितकारीछे एम जाणवुं ॥ ३ ॥ जूओके श्रीतीर्थंकरदेव अत्यंत शक्तिना धरनारहता तथापिते कोइने बलात्कारेंकरी धर्मोद्योग करवाने प्रवर्तावताहता केसुं ते तो जेणेकरी भ व्यपुरुषो दुस्तर संसार समुद्रमांथी तरी पारपामे एहवो केवल शुद्धधर्मनोज उपदेश मात्र आपताहता ॥ ४ ॥ तेकारणे हेसत्पुरुषो तमेवारंवार हर्षसहित औदासीन्य तारूप सारभूत अमृतनो आस्वादनकरो के जेथकी जीव आनंदना वहेनारा मो जायेंकरी सहित मोक्षसुख भोगवे ॥ ५ ॥

॥ षोडशभावनाष्टकं प्रभातिरागेण गीयते ॥ आदरजीवक्षमागुणआदर ॥ एदेशी

अनुभव विनय सदासुखमनुभव ॥ औदासीन्यमुदारं रे ॥ कु
शलसमागममागमसारं ॥ कामितफलमंदारं रे ॥ अनु० ॥ १ ॥

परिहर परचिंतापरिवारं ॥ चिंतय निजमविकारं रे ॥ वदति को पि चिनोति करीरं ॥ चिनुतेऽन्यः सहकारं रे ॥ अनु० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ वली विशेषप्रकारें माध्यस्थपणुं नावेले हे विनयतुं सर्वकाल सुखनो अनुनवकर जेम वांछित पदार्थो आपवामां कल्पवृक्षमुख्यछे तेम वांछित मोक्षसुखनी पमाडनारी अने सर्वशास्त्रोमां महोटी सारनूत एहवीजे उदासीनता तेनुंज तुंसेवनकर ॥ १ ॥ अरेजीव तुं बीजा विकारीपदार्थोनी चिंतवनानो करावनारोजे ताहरो परिवार तेनोत्यागकर अने पोताना अविकारि स्वरूपनुं चिंतनकर ॥ २ ॥

योपि न सहते हितमुपदेशं ॥ तडुपरि माकुरु कोपं रे ॥ निष्फलया किं परजनतत्या ॥ कुरुपे निजसुखलोपं रे ॥ अनु० ३ ॥ सूत्रमपास्य जडा नाषंते ॥ केचन मतमुत्सूत्रं रे ॥ किंकुर्मस्ते परिहतपयसो यदि पीयंते मूत्रं रे ॥ अनु० ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ जोपणकोइ हितकारी उपदेश सांजलतो नथी तोपण तेनाउपर क्रोधकरीसनही निष्फल लोकोउपर संतापकरी पोताना सुखनो लोपकांकरेछे ॥ ३ ॥ केटलाक मूर्ख सूत्र त्यजीने बोलेछे केटलाक उत्सूत्र नाषणकरेछे एवीरीतना बोलनारा जोनिर्मलपाणीने मूकी लघुनीतनुं पान करवालागा तोतेने अमेसुंकरियें ॥ ४ ॥

पश्यति किं न मनःपरिणामं निजनिजगत्यनुसारं रे॥ येन जनेन यथा नवितव्यं तन्नवता डुर्वारं रे ॥ अनु० ॥ ५ ॥

रमय हृदा हृदयंगमसमतां ॥ संवृणु मायाजालं रे ॥ वृथा वहसि पुजलपरवशतामायुःपरिमितकालं रे॥ अनु०॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हेजीव पोतपोतानी गत्यनुसारें सर्वजीवोनामननो परिणाम जूदोजूदो छे तेतुं केमजोतोनथी केमके जेप्राणीने जेवी नवितव्यताछे तेना मननो परिणाम पण तेहवोजछे तो ते तहाराथी डुर्वारछे एटले तहाराथी वारीशकाय तेमनथी॥ ५॥ माटे हृदयने आनंद आपनारीएवीजे समतातेने मनमां धारणकरी आनंदनेपाम अने मायाजालने त्यागकर व्यर्थ पुजलने परवश कांथायछे केमके तहारोआयुष परिमितकालछे एटले प्रमाणसहितछे तेनेत्रूटतां वारलागसेनही ॥ ६ ॥

अनुपमतीर्थमिदं स्मर चेतनमंतस्थितमनिरामंरे ॥ चिरंजीव विशदपरिणामं ॥ लनसे सुखमविरामं रे ॥ अनु० ॥७॥ परब्रह्मपरि

णामनिदानं ॥ स्फुटकेवलविज्ञानं रे ॥ विरचय विनय विवेचित ज्ञानं ॥ शांतसुधारसपानं रे ॥ अनु० ॥८ ॥ इतिश्री शांतसुधारस गेयकाव्ये माध्यस्थ्यभावनाविभावनो नाम षोडशः प्रकाशः ॥

अर्थ ॥ हेभव्यो तमे मनमां रहेनारुं आनंदनुं कारण एहवुं अनोपम उदासीनपणारूप तीर्थनुं स्मरणकरो अने जे कोइकालेंपण विराम पामतानथी एहवा मोक्षसुखपामि चिरकाल स्वछपरिणामेरहो ॥ ७ ॥ अने परब्रह्मतारूप परिणामोनुं जे निदान तद्रूप विज्ञानने जे प्रगटकरेछे एहवुं विवेचननुंकरनारुंजेमां ज्ञान छे एहवा शांतसुधारसनुं पान ते हे विनयतुं निरंतरकर ॥ ८ ॥ इति श्रीशांतसुधारस गेयकाव्येमाध्यस्थ्यभावना विभावनोनाम षोडशः प्रकाशः ॥

स्त्रग्धरावृत्तद्वयं ॥ एवं सद्भावनाभिः सुरभितहृदयाः संशयातीतगीतोन्नीतस्फीतात्मतत्त्वास्त्वरितमपसरन्मोहनिद्राममत्वाः ॥ गत्वा सत्त्वा ममत्वातिशयमनुपमां चक्रिशक्राधिकानां सौख्यानां मंक्षु लक्ष्मीं परिचितविनयाः स्फारकीर्तिं श्रयंते ॥ १ ॥ दुर्ध्यानप्रेतपीडा प्रभवति न मनाक् काचिदद्वंद्वसौख्यस्फातिः प्रीणाति चित्तं प्रसरति परितः सौख्यसौहित्यसिंधुः ॥ क्षीयंते रागरोषप्रभृतिरिपुभटाः सिद्धिसाम्राज्यलक्ष्मीः स्याद्वश्या यन्महिम्ना विनयशुचिधियो भावनास्ताः श्रयध्वं ॥ २ ॥

अर्थ ॥ हवे श्रीविनयविजयजी उपाध्याय आग्रंथ समाप्तकरीने उपदेशरूप पोताना अभिप्रायनुं कथनकरेछे. आवीरीतें पूर्वोक्तप्रकारें सद्भावनाओनी सुगंधियें जेनाहृदयमां संशयरहित गायनकरवाथी तार्किककथुंछे स्पष्ट आत्मतत्वजेणे अने जेना मोह निद्रा अने ममत्व तुरत नाशपाम्या छे एवाप्राणी ममतानुं अतिशय पणुं मूकीने चक्रवर्त्ति तथा इंद्रादिकोनासुखोथकी पण अधिक एवा विनयधरनारा अनुपम सुखोनी पुष्कल कीर्त्तिवंत लक्ष्मीने पामेछे ॥ १ ॥ जेहना महिमायेंकरी दुर्ध्यानरूप प्रेतनीपीडा लगारमात्रपण थातीनथी पण कोइएक अपूर्व अद्वंद्व सौख्यनी वृद्धिथायछे अने चित्तप्रीतिवंतथायछे अने आत्माने चारे बाजुथी सौख्य तृप्तिनी नदीपसरेछे वली रागद्वेषरूपशत्रु क्षीणथइजायछे सिद्धिरूप साम्राज्यलक्ष्मी

वशथायछे एहवीजे भावनाओ तेने हे भव्य लोको तमारी विनयेंकरी पवित्रबु द्धिथइछता ते भावनाओनुं आश्रयकरो ॥ २ ॥

पथ्यावृत्तं ॥ श्रीहीरविजयसूरीश्वरशिष्यौ सोदरावभूतां द्वौ ॥ श्रीसोमविजयवाचकवाचकवरकीर्तिविजयाख्यौ॥३॥

अर्थ ॥ श्रीहीरविजय सूरीश्वरना शिष्यबेभाइहता तेमां एक सोमविजयवाच क अने बीजा कीर्त्तिविजयवाचक ॥ ३ ॥

गीतिद्वयं ॥ तत्र च कीर्तिविजयवाचकशिष्योपाध्यायविनय विजयेन॥शांतसुधारसनामा संदृष्टो भावनाप्रबोधो ऽयं॥४ शिखिनयनसिंधुशशिमितवर्षे हर्षेण गंधपुरनगरे ॥ श्री विजयप्रभसूरिप्रसादतो यत्न एष सफलो ऽभूत् ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ तेमां कीर्त्तिविजय वाचकना शिष्य श्रीविनयविजयजी उपाध्याय तेणे आ शांतसुधारस नामा भावनानो प्रबोधकर्यो ॥ ४ ॥ आ प्रयत्न संवत सतरसोने त्रेवीसना वर्षे श्रीगांधार नगरमां श्रीविजयप्रभसूरिना प्रसादथकी हर्षसहित सफलथयुं ॥ ५ ॥

उपजातिवृत्तं ॥ यथा विधुः षोडशभिः कलाभिः संपूर्णतामेत्य जग त्पुनीते॥ग्रंथस्तथा षोडशभिः प्रकाशैरयं समग्रैः शिवमातनोतु॥ ६ ॥

अर्थ ॥ जेम चंद्रमा सोलेकलाये पूर्णतापामी जगतने पवित्रकरेछे तेम आ ग्रंथपण सोलकलारूप सोलप्रकाशेंकरी जगतनुं कल्याणकरोएवो म्हारोआशीर्वादछे६

इंद्रवज्रावृत्तं ॥ यावज्जगत्येष सहस्रभानुः पीयूषभानुश्च सदोदये ते ॥ तावत्सतामेतदपि प्रमोदं ज्योतिः स्फुरद्वाङ्मयमातनोतु॥७॥

अर्थ ॥ जेकालपर्यंत जगतमां चंद्रसूर्य उगेछे तिहांसुधी जेमांप्रकाशमान वा णी मयरूप ज्योतिछे एहवो आ शास्त्र ते सत्पुरुषोने आनंद आपो ॥ ७ ॥

इति श्रीमन्महोपाध्याय श्री कीर्त्तिविजयगणिशिष्योपाध्याय श्री विनयविजयगणिविरचिते शांतसुधारसग्रंथे षोडशः प्रकाशोऽर्थस हितः समाप्तिमगमत्.

॥ अथ श्रीजिनप्रभसूरिकृतचतुर्विंशतिजिनस्तवनं ॥

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्येहितदानविद्याम् ॥ अपूपुजन् यच्चरणौ नखालिव्याजेन नूनं नवपल्लवैः स्वैः ॥ १ ॥ गत्या विजित्य द्विरदं स्वसेवां चिन्ह च्छलाद्धश्वदचीकरद्यः ॥ यस्योदये हव्यभुजा नृणां वो बभूव भूमा भुवि सोऽजितोऽव्यात् ॥ २ ॥ सद्यः स निद्याद्भवसंभवं वः श्रीशंभवो यस्य पितुर्जितारेः ॥ राजाधिराजत्वजुषोपि सेनापतित्वमेवाभिमतं बताभूत् ॥ ३ ॥ जातोपि यः संवरतः स्वयं यदभीजनत् संवरमद्भुतं तत् ॥ स कीशकेतुर्जितमीनकेतुर्जितोऽभिनंद्यादभिनंदनो वः ॥ ४ ॥ सुदुर्लभं मेघभवस्य यस्य मुक्ताफलस्येव न दर्शनं कैः ॥ चंद्राव दातं सुमतिं तमार्याः सर्वश्रियामाश्रयमाश्रयध्वं ॥ ५ ॥ न भेजिवान् वक्रगतिं कदाचित् नचातिचारं सततं च सौम्य ॥ पद्मप्रभः शोणतनुप्रभोपि नव्यश्रिये कोपि धरांगजन्मा ॥ ६ ॥ पृथ्व्यां प्रसूतः सुमनोभिरर्च्यैः सुपर्णकांतिर्बहुकव्युपास्यः ॥ श्रेयःफलश्रीर्जयताडुदग्रस्कंधः सुपार्श्वद्रुरपास्ततापः ॥ ७ ॥ चंद्रप्रभोऽव्यात् वपुरंशुजालैरालिंगितांगीजनता यदीयैः ॥ प्रसेननिर्वाणरमाविमुक्तकटाक्षलक्षस्नपितेव भाति ॥ ८ ॥ भावाहवे पुष्पशरं विजित्य नश्यध्वजं यो मकरं गृहीत्वा ॥ आरोपयल्लक्ष्मपदे ध्रुवं स स्वभृत्यतां मे सुविधिर्विधेयात् ॥ ९ ॥ पित्रंगदाहप्रशमेन भावदाहप्रमाथेपि खलु स्वशक्तिं ॥ अजिज्ञपद्गर्भगतोपि विज्ञान् यस्तं स्तुमः शीतलमच्छ शीलं ॥ १० ॥ श्रेयान् श्रिये दौहृदि मातृरुद्धात् गर्भस्थिते यत्र महार्हतल्पात् ॥ दुर्व्यंतरीड्राक् प्रणनाशमोहराजाय पूत्कर्तुमिवाहितोत्थः ॥ ११ ॥ भव्यांगिनां यस्य रुचिप्रपंचैरंगानि चेतांसि च रंजितानि ॥ स वासुपूज्यो जगदेकपूज्यः संपूज्यतां निर्जितदुर्जयारिः ॥ १२ ॥ क्ष्माभरं धर्तुमशिक्षितांकबलेन सेवां प्रतिपद्य यस्मात् ॥ धत्ते ततस्तं स किलादिकोलः कांपिल्यजन्मा विमलः स जीयात् ॥ १३ ॥ अनंत जिन्नंतुरनंतसौख्यप्रदोऽस्तु दोस्तंभितवैरिवारः ॥ यल्लांछनं श्येनमपि प्रदृश्य विश्वस्य नश्यंत्यघ वर्तिकौघाः ॥ १४ ॥ पापाद्विभिद्वज्रमुदीक्ष्य दीप्रं यल्लक्ष्मणं भक्तिचिकीरुपेतः ॥ तद्भ्रंशशंकी मुहुरालुलोके शक्रः स्वपाणिं स धिनोतु धर्मः ॥ १५ ॥ अरातिरम्ये प्यनरातिरम्ये सन्नाभियोगेऽपि दृढाभियोगे ॥ चक्रे स्थिता यस्य सुखं जयश्रीः स पातु वः पंचमचक्रवर्ती ॥ १६ ॥ छागं ध्वजं यस्य तनौ विलोक्य तत्प्रेमतो हव्यभुजा ध्रुवं यः ॥ सर्वांगमालिंगिसुवर्णवर्णभाः सुपूरदंभात्स मुदेऽस्तु कुंथुः ॥ १७ ॥ सुदर्शना

ज्ञात इति प्रसह्य भेदं व्यधाद्यस्तमसः स्ववृत्तेः ॥ पितुः क्रमं पालयितुं किलासौ स्तान्नः कलासौष्टवकल्गिनोरः ॥ १७ ॥ यस्य प्रिया नो विहितारिलोपामुद्रा नव द्यो न पपौ नदीनं ॥ निस्तारकात्मा नयमालयस्यो नव्यः श्रिये कुंजनवः स मल्लिः ॥ १९ ॥ यस्यांगरोचिःपटलं समंतात्प्रसृत्वरं भृंगकुलाभिरामं ॥ उच्चाटनध्यानमिवास साक्षाद्भावद्विषां नंदतु सुव्रतोऽसौ ॥ २० ॥ यल्लोचनस्पर्द्धिविधेर्विदित्वा स्वं सापराधं जगदेकनाथः ॥ यो लक्ष्मलक्ष्याभरणं श्रितो द्राक् नीलोत्पलेनास्तु नमः स भूत्यै ॥ २१ ॥ यच्चक्रयोगात्सुभगं विदन् स्वं महाशयोत्पन्नतया कृतज्ञः ॥ यं कंबुरच्छांकमिषात्सिषेवे तं नेमिमध्येमि यदुप्रकांडं ॥ २२ ॥ यद्देहदीप्तिं तुलितेंद्रनील प्रभां चिरं चारुनिभालयंतः ॥ नैर्मल्यकोटिं घटयंति दृष्टेः शिष्टा अनिष्टं स पिनष्टु पार्श्वः ॥ २३ ॥ प्राच्यं विमोच्यास्पदमुद्भवात्प्राक् स्थानांतरे रोपितवान् हरिर्यं ॥ प्राचीकसत्सत्कुशलाभिभूयं यस्याघमस्यान्नमतां स वीरः ॥ २४ ॥ जयंति गर्भागम जन्मदीक्षा ज्ञानापवर्गोत्सववासराणि ॥ जैनानि नाकायितभूतलानि त्रैलोक्य लोकप्रमदप्रदानि ॥२५॥ यदाप्लवांभः शिरसाऽभिवंद्य सुमेरुरच्छाऽजनि गोत्रमुख्यः ॥ तीर्थाधिनाथाः प्रथयंतु सेवाद्देवाकिनां ते कुपथप्रमाथं ॥ २६ ॥ कुवादिवक्त्राद्रिगुहांतराल प्रयोगघूकालिरलं निरेतुं ॥ यस्मिंस्तपत्यस्ततमःसमूहे श्रीवीरसिद्धांतरविः स जीयात् ॥ २७ ॥ व्यामोहभूपालवरं विजित्य तस्मात्तुपात्तं तु सितातपत्रं ॥ यस्याः करे राजति पुंडरीकं सा भारती यच्छतु वांछितं वः ॥ २८ ॥ इति जिनप्रभसूरिभिरीडिता जिनवराश्चतुरुत्तरविंशतिः ॥ भरतवर्षभवा भुवनेश्वराः स्वरससिद्धिसुखं वितरंतु नः ॥ २९ ॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीचतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ श्री वीतरागायनमः ॥

॥ अथ श्री आस्तिक तथा नास्तिकनो संवाद प्रारंभः ॥

१ नास्तिकः—आ जगत अने तेमांना पदार्थो सर्वे शून्यछे; एने ससलानां शींगडां, आकाशनां फूल तथा वांजणीना पुत्र वगेरे जे पदार्थोनी त्रणे काळमां सिद्धता थती नथी, तेवा पदार्थोनी उपमा देवाय. कदाच तमे कहेशो के, जेम शशशृंगादिक देखातां नथी, तेम ए पदार्थो पण देखाया न जोइये, तेम तो नथी. जगततो प्रत्यक्ष देखायछे; तेने ए उपमा केम देवाय; प्रत्यक्ष प्रमाणवडे सिद्ध पदार्थने शून्य केम कहेवाय? एनो उत्तर ए के, जे ए पदार्थोने देखे छे, ते भ्रमिष्ट छे. जे पुरुषने भ्रम थयो होय, तेने एकनुं बीजुं जाशे; तेम तमने पण थयुं कहेवाशे. तमे ए दृष्टांतोनो मर्म समजी शकता नथी, त्यारे तमारा ध्यानमां सहेज आवे एवो बीजो दृष्टांत कहुं छुं ते सांभळो; आ जगत स्वप्नसमान छे. जेम स्वप्न असत्य छे, तेम जगत पण असत्य छे. अने स्वप्नना पदार्थोनी पठे आ जगतना पदार्थो पण असत्य छे. जे देखाय छे ते स्वप्ननी पठे भ्रम मात्र छे; एमां संशय नथी.

आस्तिकः—अरे नास्तिक, हुं तने एटलुंज पुछुं छुं के तारा सिद्धांतनो कहेनार जीव छे के अजीव छे, एनो उत्तर ताराथी शुं देवाशे? जीव अथवा अजीव कह्याविना चालशेज नही. जो तुं कहीश के ते भ्रमरूप छे. तो ते एक रीते व्यवहार दृष्टीए योग्य कहेवाशे खरुं, केम के जे पोते भ्रमरूप होय तेने बधुं भ्रमरूप जाशे. जो एम होय तो अमारो कांई वांधो नथी; पण जो तारो सिद्धांती भ्रमरूप ठरशे नही, तो जेवो ठरशे तेवा बीजा पदार्थो पण कबूल करवा पडशे; अने कबूल कर्याविना चालनार नथी; केम के, बीजुं बधुं भ्रमरूप होय अने तारो सिद्धांतीज मात्र अभ्रम होय एम संभवे नही. त्यारे एक सिद्धांती ने एक सिद्धांत ए बे पदार्थ मानवा जोइये छे. ए बे पदार्थ जो तुं माने, तो जीव अने अजीवपणुं सिद्ध थाय छे के नही! एवी रीते जगतमां पण घटपटादिक जे वस्तु छे ते वस्तुज छे अवस्तु नथी. तेमज घट ते घट छे, ने पट ते पट छे. घट पट नथी. ने पट घट नथी. एक पदार्थमां बीजा पदार्थनो अभाव होय छे, पण घट घटपणे भावरूपें छे; ने पट पटपणे भावरूपें छे. इत्यादिक सर्व पदार्थोविषे जाणी लेवुं. जे भावरूप होय ते सत्यज होय छे. ए रीतें आ जगत भावरूप होवाथी सत्य छे. केम के सर्वे वस्तु पोतपोताना रू

पें अनादि सिद्ध छे, अने जेनो अंत नथी तेने शशलाना शिंगडां प्रमुखनी उपमा देवी ए केवी मूर्खता छे वारु ! माटे ए बोलवुं बालकना जेवुं कहेवाय.

जो स्वप्नजेवुं जगत मानशो, तो तमारा पोताने मल्होडे पोते बंधाशो. स्वप्न जे छे ते स्वप्नपणे नावरूप छे अने जाग्रतपणे अनावरूप छे; तेम जागृत जे छे ते जागृतपणे नावरूप छे अने स्वप्नपणे अनावरूपछे; पण केवल अनावरूपें कोई पदार्थ कहेवाय नही. ज्यारे स्वप्ननावरूप छे त्यारे तेना जेवां जे जगत तमे कहोछो ते केम अनावरूप कहेवाय, अने स्वप्नने जो अनावरूप कहेशो तो देखाय छे केम ? जे अनावरूप ते तो देखाय नही; अने स्वप्न तो रात्रे दीठुं ते रात्रे दीठुं कहेवायछे. अने दिवसें दीठुं ते दीवसें दीठुं कहेवायछे; माटे जे वखते स्वप्न देखाय छे ते वखते ते देखावारूप अने संप्राप्तरूपें सत्य छे. अने जागृत असत्य छे. तेमज ज्यारे जागृत देखाय छे त्यारे स्वप्न असत्यछे एम नावानावरूप पदार्थ होय ते साद्यंत होय छे. वली विशेष एवुं समजवुं जोइये छे के, यद्यपि स्वप्न तो साद्यंत छे पण स्वप्ननो जे विकल्प छे ते आद्यंतरहित शाश्वत छे. तेमांथी कोईक समये स्वप्न उद्भव थाय छे. माटे स्वप्ननुं देखवुं कोई काले छे तेमज यद्यपि जगतमांना पदार्थोने पलटवापणे उत्पाद व्ययनी अपेक्षायें पर्यायपणे साद्यंत छे. तथापि द्रव्यरूपे सदा शाश्वत ध्रुव छे. केमके पर्यायपणे धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव अने पुद्गल ए छए द्रव्य शाश्वत छे; जो पण छेला त्रण द्रव्यना पर्याय अशाश्वत कहेवाय छे, तो पण स्वरूपें द्रव्यपर्याय सदा शाश्वतज छे; तेने असत्य केम कहेवाय ?

अरे चमिष्ट, तमे जीवने मानो छो के नही ? जो ना कहेशो तो आ बोले छे ते कोण छे ? अने जगत असत्य कोण ठेरावे छे ? जे पोतेज असत्य होय ते बीजाने शुं सत्यासत्य कहेवानोछे ? जे पोतेसत्य होय ते बीजाने सत्य अथवा असत्य कहेवाने समर्थ थाय. माटे जीव पदार्थ नथीज एम जो कहेशो तो तमे पोतेज कांईक पदार्थ छो ए वात तमाराथी ना कहेवाशे नही. अने जगतने असत्य मानो छो तेवारे तमें पोते तो सत्य ठरशोज; केमके जे पोताथी अतिरिक्त वस्तुने असत्य माने ते पोते तेना जेवो असत्य होतो नथी, किंतु तेनाकरतां विपरीत स्वभाववालो सत्य होयछे. तेनो आ प्रत्यक्ष दाखलो छे के. जगतने तमे स्वप्नजेवुं गणोछो, त्यारे तमे पोते जागृत छो के नही ? केमके तमे पोते जागृत अवस्थामां न हो तो स्वप्नने स्वप्न कहो नही स्वप्नावस्थानो तमे पोते अनुभव करेलो छे, त्यारेज तेनाविषे कथन करी शको छो, ते

मज जगतविषे पण तमे अनुनव करीने कथन करो गो, तेथकी जगतथी जुदा अनुनव कर्त्ता गो माटे जीव गो.

अने जो जीव न होय तो गतागतनाग, नाव, नापा, कार्य तथा कारण इत्यादिक विषयोनो अनुनव करवो, पांच इंद्रिओनो निग्रह करवो, त्रणयोगे शरीरनी चालना करवी इत्यादिक चेष्टा करनारो कोण ले? ए चेष्टा चैतन्य शक्तिथी थाय ले एथी चेतना लक्षणवान जीव जाणवो. ज्यारे शरीरमांथी चेतना नीकली जाय ले त्यारे चेष्टा थती दीठामां आवती नथी; माटे ते अजीव कहिये. एवी रीते जीव अने अजीव ए बन्ने पदार्थ ले एम सिद्ध थाय ले.

सर्व वस्तुना बे प्रकार थाय ले, एक पक्ष्यने बीजो प्रतिपक्ष्य. जीव पक्षी ले अने अजीव प्रतिपक्षी ले अथवा अजीव पक्षी ले ने जीव प्रतिपक्षी ले. अर्थात् जीव तथा अजीव ए बे पदार्थो सदा शाश्वत अविनाशी ले, एवुं केवलीनुं वचन ले, ते अवश्य मान्य करवुं जोये. दोहा, खरी शीख ए मानजो, मनमां राखी नाव; सद्दहाण जिन वचननुं, करो धरी चित चाव. १

२ नास्तिकः- जीव अने अजीव नही मननारा मूर्ख ले. केमके, जीव तो पांच महानूतोना संमेलनथी उत्पन्न थाय ले. ज्यारे पांच माहानूतोनुं प्रथककरण एटले जुदुंथवापणुं थाय ले. त्यारे जीवनो नाश थाय ले ए वात साची ले.

आस्तिकः- पांच महानूतोथी तो तमारा मतप्रमाणे पांच जुदाजुदा पदार्थोनी उत्पत्ति थाय ले. ते आप्रमाणेः- पृथ्वीथी अस्थि, जलथकी रुधिर, अग्निथकी जठराग्नि, वायुथकी श्वासोश्वास अने आकाशथकी शून्यता थाय ले. ए बधाथी जीव तो जुदो ले, ते शाथकी उत्पन्न थायले वारु? चैतन्यने उत्पन्न करवानी शक्ति कया नूतमां ले? चैतन्य कयानूतना अंसथकी उत्पन्न थयुं? ते कहो. पांचे महानूत पोते जड ले; ते चैतन्यने केम करी शकशे? माटे ए पांच महानूतनुं समेलन जीवनी उत्पत्ति करे ले एम तमे कह्युं ले ते पण संनवे नही; केमके, संमेलन कोई एवो पदार्थ नथी के जेथी कोई पदार्थ उत्पन्न थई शके. माटे जीवनो उत्पन्न करनारो कोई नथी, पण ए तो अनादि पंच महानूतथकी जुदोज ले. दोहा, जिनवचनामृत पान करि, पामो अमर स्वरूप; जीव अनादी अनुनवो, ए ले शीख अनूप. २

३ नास्तिकः- सर्व जाणे ले के जीव ते शाश्वत पदार्थ ले, तेनी उत्पत्ति केम संनवे! ज्यारे उत्पत्ति कहेशो त्यारे नाश पण थशे. अने चेतन तो उत्पत्ति त

था नाश रहित छे; तो चेतनलक्षणवंत जीवने भूतथी उपनो कहिये ते युक्त नथी केमके पांच महाभूतना अंसथी तो मात्र शरीरनी उत्पत्ति थाय छे.

आस्तिकः— ए वात पण कल्पित छे. यद्यपि जीवविषे तो तारा मारा विचार ज णाय छे, तथापि जहांसुधी जिनोक्त वचनजन्य ज्ञान नथी थयुं, तहांसुधी सर्व मिथ्या छे. एक जीवने शाश्वत जाण्यो तेथी शुं थयुं! कोई अजाणना मुखथकी नवकार प्रमुख जेवा तादृश्य अक्षरोनो अचानक उच्चार थाय तेथी शुं तेने तेना फलनी प्राप्ति थाय छे! तेम तें जीवने शाश्वत जाण्यो तेथी शुं सम्यक्त ज्ञानवान कहेवाशे! कदी नही. अने शरीर पंच महाभूतोथकी उत्पन्न थाय छे; एवुं जे तें कह्युं ते असत्य छे. शरीरनी उत्पत्ति तो पुद्गलथकी थाय छे. बीजा संवादमां अस्थ्यादिकनी उत्पत्ति महाभूतथी कही छे ते पण मिथ्याछे; केमके, अस्थि जे छे ते पृथ्वीनो अंश नथी, पण पृथ्वीना जेवा कठण छे; रुधीर छे ते जलनो अंस नथी, पण जलनी पठे प्रवाही बिंदुधारा थाय छे; जठराग्नि जे छे ते अग्निनो अंश नथी, पण अग्नीनीपठे उष्ण छे, शाश्वोश्वास जे छे ते वायुनो अंश नथी, पण वायुनी पठे पुरुषनो विकार छे; आकाश ते आकाश भाजन छे. तेम छतां शरीर पंचमहाभूतोथकी उत्पन्न थाय छे एम कहेशो तो ए पंचमहाभूतोमांना पृथ्वी, अप, तेज अने वायु एनां शरीर शाथकी उत्पन्न थाय छे ? ए पृथ्व्यादिकपण जीवरूप छे; अने तेओ शरीर सहित छे. जेम काची माटी सजीवन छे माटेज तेमां वनस्पति उगे छे; अने जे क्षारभूमि अजीव छे तेमां वनस्पति उत्पन्न थती नथी. तेमज ए पंच महाभूत ते सर्व सजीव तथा निर्जीव ए बन्ने रूपें छे, माटे जो जगत उपजवानां कारण ए पांच महाभूतने कहेशो तो पांचमहाभूत शाथकी पेदा थया कहेशो ? माटे एनाथी शरीर अथवा जगतनी उत्पत्ति संभवे नही. जीव अने जड ए बन्ने पदार्थोथी जगतनी प्रवर्त्ति छे एम जाणवुं. दोहा, आगम अगम अगाधकृत, ज्ञान लह्यो नर जेह; बेशि वचन जिनकल्पतरु, लहे चाह फल तेह. ३

४ नास्तिकः— जीव तो ईश्वरना अंशथकी उत्पन्न थायछे एम जणाय छे.

आस्तिकः— जो ईश्वरना अंशथकी जीव थाय छे तो ईश्वर पोते अखंड रूप छे ते घटघटप्रते खंडखंड भावने पामशे. ईश्वर निर्लेप छे तो कर्मलेप सहित केमथाय छे ? जन्मरोग जरारोग अने मरणरोग रहित छे ते जन्मादिक सहित केमथाय छे ? निरावरण छे ते सावरण केम थाय छे ? एहवो मूढतो जगतमां कोई नथी जे प्रधानपद मूकी अधमपद आदरे ! माटे परमेश्वरने एवी बुद्धि केम थई जे परमेश्वरपद्द मूकी

ने जगत वाशी जीव थयो. केमके सर्व मतमतांतर वाळा परमपदनी ांछनाये पो तपोताना मार्गनी क्रिया करे छे. पोताना आत्माने निर्लेपपणुं चाहे छे तो स्वमेव ईश्वरपद जन्म जरा मरण रहितपणुं पामीने वळी जन्ममरण सहित उपाधिपणुं केमआदरे छे? माटे ए तमारा वचन विरुद्ध जणाय छे.

५ नास्तिकः-- कांई नवी युक्ति कहाडीने बोले छे. आ बीजाओनी मति तो मारी गई छे माटे गमे तेम बके छे. जीवने कोई शाश्वत कहे छे, ने कोई अशाश्वत कहे छे. वगैरे जेना मनमां जेम आवे छे ते तेम महोडेथी बोले छे. पण मर्म कोई जाणतो नथी आपणे प्रत्यक्ष अनुभव करेलुं छे ने आंखे देखीए छेए के जीव पदार्थ उत्प निवान छे, ने कोईक समये तेनो अंत पण थाय छे. स्त्रीपुरुषनो संयोग थयाथी ते ओना रज तथा वीर्यथी माताना उदरनेविषे शरीररूप एक पिंड बंधाय छे, ने पछी नियमित समये तेमां चेतना शक्ति आवे छे, तेने जीव कहे छे. वळी शरीर कांई रो गादिकने वश मरण पामे छे, त्यारे जीव पण तेनी शाथे नाश थाय छे, ए प्रत्यक्ष वात छे. हाथना कांकणने आरीशुं शासारु जोये. माटे जीव पदार्थ कोईकाळे न वो पेदा थाय छे, तेथीजीवनी आदि छे एम जणाय छे.

आस्तिकः-- भाई, तुं तो वळी बधाथी डाह्यो देखाय छे! चेतननी उत्पत्ति तथा नाश संभवे नही. कर्मना वशे जीवने जन्मांतर थाय छे, तेथी नवुं शरीर धारण करे छे; पण जीव नवुं थतुं नथी. वळी शरीरनो नाश थयाथी जीवनो नाश पण थतो नथी. जीव तो बीजा शरीरने धारण करे छे. तेम छतां जो वधारे आग्रह करी श, तो आ मारा प्रश्ननो उत्तर आप के, जीव कई वस्तु पलटीने तेमांथी उत्पन्न थाय छे? अथवा कई वस्तुनो परिणाम छे? केमके कारण विना कार्यनी उत्पत्ति थाय नही एवो नियम छे; एटलुं समजाव्या छतां पण जो नही मानीश, तो तुं पोते जीव नथी पण जड छो एवुं ठरशे. त्यारे जडनी साथे कोण माथाकूट करे !

६ नास्तिकः-- कदाच जड वस्तुनो परिणाम जीव अने जीवनो परिणाम जड थाय छे, एम कहीए तो कांई दोष आवे के? अघटितघटनापटीयशी माया छे, ते मां बधु संभवे छे माटे अमे तो एम मानीए छेए के, जड वस्तु बदलीने तेथी जी वनी उत्पत्ति थाय छे.

आस्तिकः-- भाई, ए तमारुं बोलवुं केवळ अविचारनुं छे, एम तो कोई अज्ञानी प ण माननार नथी जे जड वस्तुथी जीवनी उत्पत्ति थाय; एक स्वभाववाळा पदार्थ थी बीजा स्वभाववाळा पदार्थोनी उत्पत्ति थाय नही एवो नियम छे. जेम के, मा

टीना पिंमथकी पट थाय नही अने तंतुना पुंजथकी घट थाय नही. तेम अजीवथी जीव उत्पन्न थाय नही अने जीवथी अजीव उत्पन्न थाय नही. जे अचेतन होय तेने जड कहे छे अने जे चेतन होय तेने जीव कहे छे. ए बन्ने पदार्थ परस्पर स्वभावे अमिश्रित छे, तेम छतां जड वस्तुथकी जीवनी उत्पत्ति कहेवी, एना जेवी बीजी मूर्खता कई छे! शुं कोईक एवो मसालो हशे के जो ते जड वस्तुमां पडे तो तेमांथी चेतन पेदा थाय? एवी कांई चीज तमे शोधी कहाडी होय तो अमने देखमावो नी! माटे ए अज्ञानरूप अंधारुं हृदयमांथी कहाडी नाखो, ने शुद्ध धर्मने अंगीकार करो. दोहा शुद्ध धर्म जन जे लहे, ते पामे पद मोक्ष; प्रगट वस्तुने मूकिने, कां जन भ्रमे परोक्ष ४

७ नास्तिकः– स्वछंदीना जेवी मुखमुद्रा करीने बोलवा लाग्यो के, जीवने कर्म लागे छे के नही? ए विषे विचार करवो जोइये. अमारा मतप्रमाणे जीवने कर्म लागतां नथी.

आस्तिकः– तमे तो वली बधाना शिरताज थया जणाओ छो! पण कर्मविना कांई बनतुंज नथी; एम मान्याविना चालशे नही. कर्मने तो सर्व अंगीकार करे छे, एमां कोई वांधो कहाडे एवुं नथी. जो कर्म न होय तो पापपुण्यनुं फल थवुं न जोइये; ते तो प्रत्यक्ष दीठामां आवे छे; जेणे पाप कर्युं छे ते दुःखी छे, ने जेणे पुण्य कर्युं छे ते सुखी छे; वली जो एम होय तो, दान, ध्यान, स्नान तथा पूजा प्रमुख जे सत्कर्म छे, ते सर्व मतवालाओ शासारु करे छे? तमारा कह्याप्रमाणे तेनुं फल तो कांई थनार नथी; पण ते शुभ कर्म जाणीने लोको आदरे छे. ज्यारे कर्म नथी त्यारे जन्म धारण करवानुं शुं प्रयोजन छे? माटे जो जन्ममरण तथा सुखदुःख छे, तो कर्म पण होवां जोइये. कर्म छे ते जीवने रजरूप छे. रागादिकथी बंधाय छे, ने जोगव्यापछी छुटे छे. ज्हांलगि कर्म छे त्हांलगि संसारी जीव कहेवाय छे, कर्मोनो क्षय थवाथी मुक्त थयो कहेवाय छे. माटे तमारे निश्चय मानवुं जोइये छे के जीवने अवश्य कर्म लागे छे. दोहा, कर्मथकी आ जीवने, सुख दुःख सघलां थाय; कृत्य शुभाशुभ जेहथी, शफल थया कहेवाय.

८ नास्तिकः--तमे कहो छो के, जीव भवांतर थकी आवीने आहिं उपजे छे. त्यारे एक भवनी वात बीजा भवमां केम करतो नथी? जो भवांतर होय तो तेनी स्मृति जरूर थवी जोइये; ते तो कोईने पण थती नथी. त्यारे भवांतर छे एम शाउपरथी समजाय?

आस्तिकः--आगला भवनी स्मृति थती नथी ते उपरथी भवांतरनो अभाव छे ए

म जाणवुं नही. आगला नवनी वात तो रही, पण आ नवमांज मद्यादिक पदार्थना योगे, गया दिवसनी वात पूछवाथी माणस बराबर कही शकतो नथी जुओ के, कोई मनुष्य ताडनादिकना योगे मूर्छावान थयो होय, कोई पुरुषे सुरापान कर्युं होय, अथवा निद्रावश थयो होय, त्यारे गया दिवसनी स्मृति रहेती नथी; तेनुं कारण मद्यादिक पदार्थोनुं आवरण छे तेम जीवने ज्ञानावरणी कर्मना उदयथी पूर्व नवना वातनी स्मृति थती नथी. वळी जेम आ नवमांज माताना उदरमां नाना प्रकारना दुःख सहन करेला होय, ते वात जन्म्यापछी कांई कही शकतो नथी; तो नवांतरनी वात केम कही शके ? माटे नवांतरनी वात तो विशेष ज्ञानीविना बीजो कोई जाणी शकेज नही, एम समजवुं. दोहा, ज्ञानावरणी कर्मथी नवविस्मृति थइ जाय; विशेष ज्ञानी कहि शके, पूर्व जन्म महिमाय ६

ए नास्तिकः—अनिमानयुक्त मुद्रा करीने बोले छे-तमे एम मानो छो, के जीवने कर्मनो लेप लागे छे. ने वळी एम पण कहो छो के, जीव वास्तविक स्वरूपे शुद्ध छे. त्यारे जे शुद्ध होय तेने लेप केम लागे? माटे जीव शुद्धज छे; तेने कोई कर्मनो लेप लागतो नथी एम मानवुं जोइये.

आस्तिकः—टुंकामांज समाधान करे छे के, यद्यपि जीवनुं वास्तविक स्वरूप शुद्ध छे, तथापि शुनाशुन कर्मने योगे तेने लेप लागे छे; तेथीज जीव बंध कहेवाय छे अने जेने कर्मनो लेप नथी, ते मुक्त कहेवाय छे. मुक्ति तो सिद्धता पाम्याविना संनवेनही अने जहांसुधी मुक्तिनो अनाव छे, तहांसुधी बंधनी कल्पना अवश्य करवी जोइये. ते बंध जीवने अनादि काळथी चाल्यो आवे छे. जेम धानने तूस लागेलाज होय छे तेम जीवने कर्म अने कर्मजन्य शरीर लागेलुंज होय छे. जेम धानने तूस लागवानुं कारण छोतरां होय छे. तेम जीवने कर्मबंध लागवानुं कारण मिथ्यात्व तथा रागद्वेषादिक होय छे. जेम धान्यमांथी तूस तथा तत्संबंधी छोतरांरूप बंध हेतु पदार्थना अनावथी शुद्ध कण देखाय छे; तेम जीवमांथी मिथ्यात्व तथा राग द्वेषादिक कर्मबंध हेतुनो अनाव थयाथी शुद्ध निर्मळ थाय छे. जेम अनाजनो शुद्ध थयलुं दाणुं उगे नही. तेम जीवपण शुद्ध निर्मळ थयाथी जन्ममरण पामे नही. दोहा, कर्म लेपना योगथी, बंध जीवने होय; कर्म खपे मुक्ती लहे, जन्म मरण नहि कोय. ७

१० नास्तिकः—ऊंमा विचारमां पडेला जेवी मुद्राथी बोलवा लागे छे. कर्म पोते तो जड पदार्थ छे. तेओनो जीवनी साथे स्वतंत्र संबंध संनवे नही. कोई पण प्रेरक होवो

जोये. माटे ईश्वरेछाथी जीवने कर्म बंध थाय छे; अने तेज प्रेरक छे एम जाणवुं.

आस्तिकः— लगारेक हास्य करीने बोले छे. ईश्वरे पोताना अंशरूप जीवने उत्पन्न कर्या छे तेथी जीव ईश्वरनो अंश कहेवाय, ए उपरथी जीव तथा ईश्वरनो अंशांशीभाव संबंध तमारा कहेवा प्रमाणे ठरे छे. जो ईश्वर अंश छे एम मानीए,तो ईश्वरना जेवो जीव होवो जोये. केमके, अंशांअंशीमां भेद होतो नथी. तेथी ईश्वर नी पठे जीव पण निर्मल छे, एम मानवुं जोये. त्यारे एवा निर्मलस्वरूपी जीवने कर्म लगाडीने मलसहित करवानुं कारण शुं हतु! आपणे कोई शुद्ध वस्तु वापरवाने अर्थे ज्यारे लावीए छैये, त्यारे जहांसुधी बने तहांसुधी तेने मलीन करवा देता नथी; अने स्वछ राखवानो घणो प्रयत्न कर्या करीये छे. त्यारे पोताना अंश रूप जीवने जाणी जोईने मेल लगाडवुं ए ईश्वरनेविषे संभवे नही. एम तो कोई साधारण मूर्ख मनुष्य पण करे नही. त्यारे ईश्वर ते तेम करे! अने जे पोताना अंगनो तिरस्कार अथवा नाश करे ते आत्मघाती कहेवाय. तेम ईश्वरपण आत्मघाती कहेवाशे. कदाच तमे एम कहेशो के, ईश्वर पोते पण कर्मकलंकसहित छे त्यारे जे पोते कलंकसहित होय, ते बीजानो कलंक शुं मटाडी शकवानो हतो! अने ते ईश्वर पण शानो! माटे गमे तेवी मनकल्पना करीने निर्दोषी ईश्वरने दोष लागु करवो ए केटली मूर्खता छे! माटे ईश्वरनी इछाथी कांई पण थतुं नथी. जे थाय छे ते कर्मथी थाय छे एम जाणवुं. दोहा. कर्मबंध आ जीवने, ईश्वर इछारूप; कहे एम ते मूर्ख छे, ईश अक्रीय अनूप. ८

११ नास्तिकः—आ जगतनी जे अद्भुत रचना देखाय छे, तेनो कर्त्ता कोई पण होवो जोये. केमके, एवी कृति स्वाभाविक थई शके नही. तेम कर्मादिक जड पदार्थोथी पण जगतनी उत्पत्ति संभवे नही. माटे जे जगतने उत्पन्न करे छे, तेनेज ईश्वर कहिये; अने एवी लोकवदंता पण छे. के जगत सर्व ईश्वर कृत्य छे.

अस्तिकः-- जगतनो कर्त्ता ईश्वर होय, तो सर्व प्राणीमात्रनुं ईश्वर कारण थयुं. ने सर्व पदार्थो ईश्वरना कार्य थया. पिता जेम पुत्रनी उत्पत्ति करे छे तेम ईश्वर सर्व प्राणी मात्रनी उत्पत्ति करे छे. त्यारे ईश्वर पितारूप अने सर्व पदार्थो पुत्ररूप मानवा जोये. पुत्रनी उपर पितानो प्यार होय ए स्वाभाविक सिद्ध छे. तेम ईश्वर नो पण सर्वनी उपर प्यार होवो जोये. जो एम होय तो सर्व प्राणीमात्र सुखी होवा जोये. तेम तो दीठामां आवतुं नथी. कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई पापी, कोई पुण्यवान, कोई नरकगामी, तथा कोई स्वर्गगामी वगैरे सर्व जीवो

नी वर्त्तणुक जुदी जुदी दीठामां आवे छे. एम केम कीधुं छे? वळी जगतना जी वोने प्रवर्त्तावनारो ईश्वर छे, एम पण तमारा कह्या उपरथीज सिद्ध थाय छे. त्यारे हिंदुए गायनी पूजा करवी, अने म्लेछे तेनो वध करवो, ए बुद्धि पण ईश्वरे आपी कहेवाशे. जो एवी बुद्धि देनारो ईश्वर मानशो नही, तो बीजो कोई मानवो जोइशे. केमके तमारा मत प्रमाणे प्रेरणा करनारो कोई जुदोज होय छे; अने जे प्रेरणा करे छे ते ईश्वर छे. त्यारे ते बीजो प्रेरणा करनारो ईश्वर मानवो पडशे. ईवी रीते ईश्वरनो ईश्वर तेनो ईश्वर इत्यादिक मानशो तो अनवस्था दोष प्राप्त थशे. वळी पोते पोताने दुःखी कोई पण करतो नथी. सर्व पोताने सुखनी चाहना करे छे. तेमज पोताना संबंधीओविषे पण सुखनी चाहना करे छे. तमारा केहेवा प्रमाणे तो जे जीव नरके जाय छे तेपण ईश्वरनो अंश, अने जे स्वर्गे जायछे ते पण ईश्वरनोज अंश छे. एटले सुखी तथा दुःखी थाय ते सर्व ईश्वर पोतेज छे एम ठर्युं. ए प्रमाणे ईश्वर पोतेज संसारमां परिभ्रमण करेछे. ते पोताना सेवकनां जन्म मरणादिक दुःख केम टाळी शके! अने जीवोने नरकथी अथवा बीजी कुगतिथी केम बचावी शके? इत्यादिक विचार करतां जगतनो कर्त्ता ईश्वर नथी; किंतु स्वाभाविक सिद्धछे. दोहा, जग कर्त्ता ईश्वर कहे, ते विद्वान न होय; ईश्वरने कर्तव्यनहि, स्वभाव सिद्धज जोय. ए

१२ नास्तिकः— जगतनी उत्पत्तिकर्त्ता भले ईश्वर न होय, एमां हुं कशो वांधो लेतो नथी. पण ईश्वर सर्वव्यापक छे के नही?

आस्तिकः— जो ईश्वर सर्वव्यापक होय, तो जीव शिवाय बीजो कोई पदार्थ ज होवो न जोये. केमके, ईश्वरतो चेतनवंत छे; ते सर्वमां व्यापक होय, तो चेतना विना कोई जगा खाली न जोइये, के जे ठेकाणे बीजो पदार्थ रही शके; अने जगतमां तो जीव अजीव पदार्थो जुदा जुदा दीठामां आवे छे. एथी स्पष्ट सिद्ध थाय छे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी. वळी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ए चार वर्ण अनुक्रमे श्रेष्ठता तथा कनिष्टता केम पाम्या छे! जेम के, ब्राह्मण सर्वथी श्रेष्ट, तेनाथी क्षत्रिय कनिष्ट, क्षत्रियथी वैश्य, अने वैश्यथी शूद्र कनिष्ट छे, अने सर्वथी कनिष्ट चंमाळादिक जाति छे; तेओमां श्रेष्ट कनिष्टता न थवी जोइये. केमके, ईश्वर तो सर्वमां एक अने समान छे; तेमां उत्तम मध्यमता प्रमुख संभवे नही; अने उत्तम मध्यम तो प्रत्यक्ष दीठामां आवे छे. वळी बीजा पण उदाहरण अनेक छे; जेम के, कोई पुरुष शुभ कृत्य करे छे, ने कोई पुरुष अशुभ कृत्य करे छे,एम न थवुं जोइये. ईश्वर तो बधामां व्यापक छे, तेथी शुभाशुभ कृत्य शाला

रु करे छे? ए उपरथी एवो निश्चय थाय छे के, ईश्वर सर्व व्यापक नथी. दोहा, व्याप क ईश्वर जे कहे, तेह न जाणे मर्म; नर्मे जूल्या सर्व मत, विना एक जिनधर्म. १०

१३ नास्तिकः- ईश्वर सर्व व्यापक हो के न हो, तेनी साथे अमारे जरूर नथी; पण आ जगतनो अधिपति ईश्वर छे; अने जगतरूप तेनुं ऐश्वर्य छे; तेथीज ईश्वरताने पाम्यो छे. जे ऐश्वर्यवाळो होय तेने ईश्वर कहिये.

आस्तिकः- जगतनुं आधिपत्य लेवानुं ईश्वरने शुं कारण हतुं! अने जगत रूप ऐश्वर्य पण तेने शासारु जोइतुं हतुं! शुं जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे ते ऐश्वर्य ने पाम्यो न हतो! ऐश्वर्यविना ईश्वरता संजवे नही. ए उपरथी जे जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे अनीश्वर हतो, ते उत्पत्ति करीने ईश्वरताने पाम्यो छे; एवो तमारो आशय जणाय छे नही वारु! पण ए बधुं खोटुं छे. ईश्वरनेविषे एवी कल्पना करवीज नही जोये. जुओ के, तमारा कहेवा प्रमाणेज जेम प्रजानी अपेक्षाये राजा कहेवाय छे, अथवा धननी अपेक्षाये धनाढ्य कहेवाय छे; तेम जगतनी अपेक्षाये ईश्वर कहेवाय छे. एटले जेवारे जगतने उपजावे तेवारे जगतनुं ईश्वर पणुं कहिये; एथी जगतनी पूर्वे ईश्वर न हतो एम थयुं; अने जेवारे जगतनो प्रलय थाय त्यारे ईश्वरनो पण अनाव थई जवो जोये. जो ए वात कबूल करशो तो जे कोई काळमां होय ने कोई काळमां न होय ते क्षणिक कहेवाशे. जो क्षणिक मानशो तो बीजा घणा दोष प्राप्त थशे; माटे ईश्वरने जगतनो एवी रीते अधिपति कहेवो ते योग्य नथी. दोहा, अधिपति जगनो जे कहे, ईश्वरने मतवादि ; ते एकांत कनिष्ट छे, उत्तम अनेक वादि. ११

१४ नास्तिकः- आटला संवाद थया, तेओमां ईश्वरनुं यथार्थ कारणपणुं कोइए कह्युं नथी. जगतनी उत्पत्तिनी पूर्वे ईश्वरने एवो संकल्प थयो के, मारुं सामर्थ्य प्रगट करुं; ए वात वेदमां कही छे. ते आवी रीतेः- 'एकोहं बहुष्यामि' एटले एक हुं बहु रूपे थाउं. एवा कारणथी जगतनी उत्पत्ति करी छे; तेथी ईश्वरने कारण कह्यो छे.

आस्तिकः-- पोतानुं सामर्थ्य प्रगट करवानी इच्छा तो तेने थाय के, जेनेविषे अज्ञान होय. ईश्वरतो सर्वज्ञ छे, ते शुं पोतानुं सामर्थ्य जाणतो नहोतो! मारामां केटलुं सामर्थ्य छे, एवो जेने संशय होय, ते ईश्वर शानो! साधारण मनुष्य प्राणी पण पोतानुं सामर्थ्य जाणी शके छे, तो ईश्वर केम न जाणी शके!

માટે એમ કહેવું તે મૂર્ખતા છે. દોહા, નિજ સમર્થને જાણવા, કર્યું ઈશ જગ એહ; કારણ વાદી જે કહે, શતમૂરખ છે તેહ. ૧૨

૧૫ નાસ્તિકઃ-- ઈશ્વરે પોતાનું સામર્થ્ય બતાવવા સારુ જગતની ઉત્પત્તિ કરી છે; એમ જાણવું જોઇયે.

આસ્તિકઃ-- કોને બતાવવા સારુ જગતની ઉત્પત્તિ કરી છે? જીવ અને જડ પદાર્થો તો ઈશ્વરેજ ઉત્પન્ન કર્યા છે, એમ તમે કહો છો. ત્યારે બીજો કોણ જગતની પૂર્વે હતો કે, જેને દેખાડવા સારુ ઈશ્વરે આ જગતની ઉત્પત્તિ કરી છે! માટે એ વાત પણ અસત્ય છે. દોહા, બીજાને દેખાડવા, પોતાનું સામર્થ્ય; જગ ઉપજાવ્યું ઈશ્વરે, એમ કહે તે વ્યર્થ. ૧૩

૧૬ નાસ્તિકઃ--જેમ માણસ સવારમાં ઉઠી વસ્ત્રાદિક પહેરીને આરીસામાં પોતાનું સ્વરૂપ દેખે છે; તે સારું દેખાય તો આનંદિત થાય છે, તેમ ઈશ્વર પણ પોતે પોતાનું સ્વરૂપ જોવાસારુ આ જગતરૂપ શૃંગાર કરી પોતાનું રૂપ વિસ્તારીને દેખે છે; એમ જાણવું જોઇયે.

આસ્તિકઃ--માણસ પોતાનું રૂપ આરીસામાં જુવે છે, તેનું કારણ એ કે, મારું રૂપ સારું દેખાશે નહી, તો લોકો હાશી કરશે; અથવા કોઈ ખોડ કાહાડશે; તેમ ઈશ્વરે બીજા કોના નયથી પોતાના રૂપનો વિસ્તાર કર્યો છે? ઈશ્વરના જેવો બીજો ઈશ્વર કોઈ છે નહી; ત્યારે જોનારો કોણ! માટે એ વાત પણ જૂઠી છે. દોહા, પોતે જોવા આપને, રચ્યો જગત આ ઈશ; કોના નયથી તે કહો, મતવાદી તજિ રીશ. ૧૪

૧૭ નાસ્તિકઃ--"એક એવહિ ભૂતાત્મા, ભૂતે ભૂતે વ્યવસ્થિતઃ; એકધા બહુધા ચેવ, દશ્યંતે જલ ચંદ્રવત્" એવી રીતે આત્મા એક છતાં સર્વ પ્રાણીમાત્રમાં જુદો જુદો દીઠામાં આવે છે; જેમ ચંદ્રમા એક છતાં અનેક જલસ્થાનકોમાં પ્રતિબિંબ રૂપે જુદો જુદો દીઠામાં આવે છે; તેમ ઈશ્વર એકજ છે પણ ઘટ ઘટમાં જુદો જુદો દેખાય છે એટલે ઈશ્વર બિંબ છે ને સર્વ જીવ પ્રતિબિંબ છે; એમ જાણવું.

આસ્તિકઃ-- જેમ એક ચંદ્રમાના અનેક પ્રતિબિંબો હોય છે, તે જેવો ચંદ્રમાં હોય તેવા દેખાય છે. તથા કાચના ભુવનમાં એક મનુષ્ય છતાં અનેક પ્રતિબિંબ રૂપે દીઠામાં આવે છે. તેમાં મૂલ આકૃતિથી જુદી આકૃતિ દેખાતી નથી. જેમકે, બીજથી તે પૂર્ણિમાશુધી ગમે તેવી ચંદ્રમાની આકૃતિ હોય, તેવો પ્રતિબિંબ દેખાય છે; તથા કાચ ભુવનમાં મનુષ્યની જેવી આકૃતિ હોય તેવીજ તાદૃશ્ય દેખાય છે. કાણો હોય તો કાણો દેખાય, આંધલો હોય તો આંધલો દેખાય; વગેરે

बिंबना जेवोज प्रतिबिंब देखाय छे. तेम ईश्वर सर्व प्राणीओमां सरखो देखातो नथी. कोई सुखी, कोई दुःखी, कोई पापी, कोई पुण्यवान वगैरे अनेक प्रकारे देखाय छे. त्यारे ईश्वरना प्रतिबिंब केम संभवे? जे प्रतिबिंब होय, ते बिंबना जेवोज होय छे? तेम तो ए नथी. वली जेम चंद्रमानो उदय थतां प्रतिबिंब पण तेज वखते उत्पन्न थाय छे. अने चंद्रमां अस्त थयाथी प्रतिबिंब पण मटी जाय छे. तेम ईश्वर अने जीवोनेविषे थतुं नथी. ईश्वर उत्पत्ति नाश रहित छे; तेम जीव पण होवा जोये. ईश्वर जेम अक्रिय छे, तेम जीव पण कर्मविना होवा जोये. जेवो बिंब तेवा प्रतिबिंब होवा जोये. तेम तो ईश्वर अने जीव नथी; माटे चंद्रबिंबनो दृष्टांत सर्वथा असत्य छे; केमके सर्व जीव पोताना कर्मोदयथी उत्तम मध्यम पणुं पामेछे. दोहा, बिंब अने प्रतिबिंबता, ईश्वर जीव प्रमान; चंद्र बिंबवत ए नही, तेथी सत्य न जान. १५

१८ नास्तिकः– जीव वर्णादिके करी सहित छे; एम मानवुं जोये.

आस्तिकः– जीव वर्णादिके करी रहित छे, अने चेतन लक्षणवंत छे; अने कालुं, रातुं, नीलुं, पीलुं, तथा धोलुं ए पांच वर्ण; सुगंधि तथा दुर्गंध ए बे गंध; तीखुं, कडवुं, कशायलुं, खाटुं तथा मीठुं ए पांच रस; शीत, उष्ण, स्निग्ध, लूखुं, करकश, मृदु, गुरु, तथा लघु ए आठ फरस; अने परिमंमल, व्रत, त्रयांश, चउरंस तथा आयतन ए संस्थान प्रमुख सर्व जड पदार्थना गुण छे; ते चैतन्यमां नथी. चेतननो आकार शरीरने आश्रये छे. जेम पाणीनो आकार जलाशयथी जणाय छे तेम चेतननो आकार पुद्गलथी जणाय छे.

१९ नास्तिकः– जीव कर्मोने केम ग्रहण करतो हशे वारु?

आस्तिकः– जेम वस्त्रना तंतु ते वस्त्रना अंश छे; तेम जीवना प्रदेश ते जीवना अंश छे; जेम वस्त्रांतर्गत तंतुना सूक्ष्म तंतु छे. तेम जीवना पर्यायछे. जेम वस्त्रनो वरण तेम जीवनुं सद्लक्षण छे. जेम वस्त्रने मेल लागवानुं कारण, तेमजीवने मिथ्यात्वादिक हेतुये रागद्वेष आश्रवे कर्मरूप मेल लागवानुं कारण छे. जेम वस्त्रनो मल टालनार धोबी तेम पोताना अंतरनो मल टालनार आत्मा पोते छे. जेम वस्त्रने साबुये करी मल टले छे, तेम जीवने शुभध्यानेकरी कर्मरूप मल टले छे. जेम वस्त्रने अग्नि, तेम जीवने तपस्या छे. इत्यादिक करवाथी कर्मनो क्षय थाय छे. जे जीव कर्म सहित होय तेने कर्म लागे, पण कर्मरहित होय, तेने नवां कर्म लागे नही. जेम सूत्रकातनारी नाडी काते, तेमांथी थोडी बाकी रहे, त्यारे तेनी साथे बीजी वलगा

छे, पण पहेली होयज नही, तो तेनीसाथे बीजो संबंध साथी करे! तेम जीव पण अनादिनो कर्मसहित छे, अनादि जीवनुं एहवुंज स्वरूप चाल्युं आवे छे; माटे जहांसुधी कर्म सहित छे तहांसुधी नवां कर्म पण ग्रहण करे छे ; पण प्रथमथी अमुक वखतेज जीव नवां कर्म ग्रहण करी कर्ममल सहित थयो; एवी आदि नथी.

२० नास्तिकः--जीवने कर्म क्यारे लागां छे? कर्म लागवानी कोई पण आद्य जोयें जे पदार्थनो अंत थतो होय, तेनी आदि पण होवी जोये. ज्ञाने करी कर्मोनो अंत थाय छे. एम तमेज कहो छो. त्यारे आद्य पण कबुल करवी पडशे; ते आदिनो समय कह्यो छेरवशो? केम के, जीव प्रथम निर्मल होय तोज तेने कर्मरूप मल लाग्यो कहेवाय.

आस्तिकः--ए वचन दूषण सहित छे. केमके, जीव प्रथम ज्यारे निर्मल हतो त्यारे तेने कर्म लागवाना परिणाम केम थया? जे निर्मल होय ते पोताने मल सहित थवानी इच्छा करे नही. तेम छतां जीवे कर्मोनी वांछा केम करी? माटे जीव अनादिनो कर्म सहित छे. जीवनेविषे कर्म स्वभावे अनादिसिद्ध छे. दोहा. आदि जीव निर्मल हतो. पछि वलग्यां छे कर्म; एम कहे ते ना लहे. जिन वचनोनो मर्म. १६

२१ नास्तिकः--सर्वमां व्यापक आत्मा एक छे; अने शरीरो जुदां जुदां छे; एम मानवुं जोइये.

आस्तिकः--जो बधामां आत्मा एक होय तो माता. पिता. स्त्री. पुरुष. भाई. बेन, पुत्र, राजा, प्रजा, चोर, साहुकार, चंडाल, क्षत्रिय, ऊंच, नीच, नरक, देवता, पुण्यवान, तथा पापी इत्यादिक भिन्न भिन्न केम देखाय छे? सर्वमां आत्मा एक होवाथी तेज देखायुं जोइये; अने एके कीधेलुं पाप सर्वने लागवुं जोइये; तेमज एके कीधेला पुण्यना सर्व भागीदार थवा जोइये; एकना मुक्त थयाथी सर्व मुक्त थवा जोइये; प्रत्येक माणसनुं जुडुं जुडुं अनुष्टान निष्फल थवुं जोइये; तेम तो थतुं नथी. जे करे छे ते भोगवे छे; ए कहेवत प्रमाणे बधा आत्मा भिन्न भिन्न देखाय छे. माटे सर्वमां एक आत्मा व्यापकपणुं कहेवुं ते समीचीन नथी; एम जाणवुं. दोहा, आत्म सर्वमां एक छे. भिन्न भिन्न आ देह; एम कहे एकांत मत; असत कहीजे तेह. १७

२२ नास्तिकः--सर्व कार्य अने अकार्य ईश्वरनी इच्छारूप छे; अने ईश्वरनी इच्छाथीज सर्व थाय छे; एम जाणवुं जोइये.

आस्तिकः--जो एम होय, तो जन्म धारण करवामां मातापितानुं शुं काम छे? अने विष खाधाथी मरण थाय छे, तेमां विषनुं शु वांक छे? तेमज जो अन्नथी क्षुधानी निवृत्ति, पाणीथी तृषानी निवृत्ति, अग्निथी शीतनिवृत्ति, वळी तापथी खेदोत्पत्ति, वर्षाथी धान्योत्पत्ति, द्वेषथी वैरोत्पत्ति, नम्रताथी स्नेहोत्पत्ति, चोरी कर्याथी ताडन, यारी थकी निर्लज्ज, पापथकी नरक, पुण्यथकी स्वर्ग, इत्यादि सर्व कारणो अने कार्यो व्यर्थ थशे. अने सर्व वस्तुओ स्वगुण रहित कहेवी जोइशे. राग करनारो स्नेही नही. तेम द्वेष करनारो वैरी नही कहेवाशे. उपकार प्रति उपकार करवानी कांई जरूर रहेशे नही. अने पाप पुण्य फळरहित थशे. केम के, सर्व कार्य करवानुं मूळ कारण एक ईश्वर इच्छा थई; माटे सर्व ईश्वर इच्छारूप छे, एम कहेवुं ते समीचीन नथी. तमारा कहेवा प्रमाणे पुण्य पापनुं कर्त्ता पण ईश्वर अने भोक्ता पण ईश्वर थयो. दोहा, ईश्वर इच्छारूप आ, कृत्य सर्व जगमांहि; एम कहे गुणता टळे, सारासार न कांहि १८

२३ नास्तिकः-- आत्मा पंच भूतो थकी थयो छे; ए वात असत्य नथी, किंतु साची छे, एवुं अमने जणाय छे.

आस्तिकः - भूत शब्दनो अर्थ त्रणे काळमां अस्तित्व थाय छे. एटले जे छे ते ने छे, तेने भूत कहियें. भूतनो तो कोई काळे छेद थतो नथी; माटे ए अस्तित्वरूप भूतनो अंश तो संभवे नही; तेम आकाशादिक पंच महाभूतनो अंश पण कही शकाय नही. वळी पांच भूतना अंशे करी शरीरनी उत्पत्ति थाय छे, त्यारे ज्ञान अने चेतना कह्या अंशथी उत्पन्न थयां? माटे भूत शब्द ए भ्रमजाळ छे. अने चिदानंद ज्ञानरूप आत्मा तो शाश्वत छे. ते कोई समये जूनो तथा नवो थतो नथी. ते जीव पूर्वोपार्जित कर्मे करी शरीर बांधे छे. ते जड पुद्गलनुं ग्रहण छे. तेमां भूतनुं कांई प्रयोजन नथी; भूत केवी वस्तु छे? जीव छे के जड छे? रूपी छे के अरूपी छे? ईश्वराश्रित छे के नवा प्रगट थाय छे? छता रूप छे. के संयोगे थाय छे? ए विषे कांई विचार करी शकातो नथी; माटे भूत ए शब्दज व्यर्थ छे. तेनाथी जीवनी उत्पत्ति केम मनाय! दोहा, जीव ऊपजे भूतथी, ए मत छे भ्रम रूप; जीव चिदानँद सत्य छे, अनादि भाव अनूप. १९

२४ नास्तिकः--तमारा कह्या प्रमाणे जीवने भवांतर थाय छे. भवनी प्राप्ति कर्मानुसार छे. जेवां कर्मो कर्यां होय तेवा भवनी प्राप्ति थाय छे. शुभ कर्मनुं फळ सारो भव छे, अने अशुभ कर्मनुं फळ नरशो भव छे. ते वात सत्य छे, परंतु को

ई जीवने एक खंडमां शरीर मूकीने बीजा खंममां बीजुं शरीर धारण करवुं पमे. तो एटलो दूर जतां तेने केटलो वखत लागतो हशे ! अने कोई जीवने एक शरीर मूकी तरत तेज गाममां उपजवुं होय, तेने कांई दूर जवुं पडतुं नथी. तेथी कांई वधारे वखत लागतो नही हशे. पण जेने दूर जवुं पडतुं हशे तेने रस्तामां चालता वधारे वखत लागतो हशे नी !

आस्तिकः— नजीक अथवा दूर नवांतर करवामां वधारे वखत लागतो नथी; सरखोज वखत लागे छे. जेम घाणी, रहेंटीओ अथवा बारणुं इत्यादिक ज्यारे फरे छे, त्यारे तेओना माहेला तथा बाहेरना नागने फरतां सरखोज वखत लागे छे. यद्यपि अंदरनो क्षेत्र थोडो होय छे, ने बाहेरनो घणो होय छे; तथापि फरतां वखतमां वधघट थती नथी. वली जेम दीपकने शलगावीए ते क्षणमांज प्रकाश करेछे. वचमां कांई अंतर पडतो नथी; तेम जे वखते एक नव मूके के लागलोज बीजो नव पामे छे; तेमां लगार पण अवकाश रहेतो नथी. ते नव पछी दूर देश धारण करवो होय, के नजीक देशमां धारण करवो होय, गमे त्यां नव धारण करवामां वखतनो वार फेर थतो नथी.

२५ नास्तिकः—जीवने कर्म केवी रीते लागे छे.

आस्तिकः—आत्माना शुनाशुन परिणामथी जीवने कर्म लागे छे. जो शुन परिणाम होय, तो सारा कर्म लागे छे; अने अशुन परिणाम होय, तो नरशां कर्म लागे छे. अने तेनां फल पण तेवां थाय छे. कर्मने कांई ज्ञान नथी, जे आ जीवे पाप कर्युं माटे हुं एने पापरूप कर्म थई लागुं.

२६ नास्तिकः—कर्म तो जड छे. तेथी तेओमां ज्ञान शक्ति नथी त्यारे जीवे नरशां अथवा सारां कर्मो कर्याथी पाप अथवा पुण्यरूप परिणाम केम थाय छे ? ए परिणाम तो ज्ञानविना थाय नही. तेथी एवुं जणाय छे के कर्म लागवामां ईश्वर हेतु छे. कर्म करवापणुं जीवने छे; ने तेनुं फल देवुं ईश्वरने छे.

आस्तिकः—कर्म लागवामां ईश्वरनुं कांई काम नथी. कर्मोनो एवो स्वनावज छे के परिणामने पामवुं. जेम कोई पुरुष विषमिश्रित नोजन करे, ते मरण पामे छे मरवुं ए विषनो परिणाम छे; पण विष जम पदार्थ होवाथी तेने एवुं ज्ञान नथी के मने जे खाय छे, ते मरीजायछे; तेम छतां तेथी तेवो परिणाम थायछे के नही ! वली जेम कोई पुरुष मिष्टान्न नोजन करे, तेथी पुष्ट थाय छे पण ते नोजन एम नथी जाणतुं के, मारायकी आ शरीरनी पुष्टी थाय छे. तेम छतां तेनो परिणाम

तेवो थाय छे. एतो एनो स्वभाव छे. तेम शुभाशुभ कर्मोने यद्यपि ज्ञान नथी, तोपण तेओनो एवो स्वभावज छे, के फलरूपे पोते परिणामने पामवुं. कर्मो नो एवो स्वभावज छे के शुभ करवाथी पुण्यकर्म बंधाईने उत्तम गतिनी प्राप्ति थाय छे, तेमज अशुभविषे पण जाणी लेवुं. एवो कर्मोनो अनंत काळनो स्वभाव छे. वळी जेम चमक पाषाण लोहने पोतानी तरफ खेंची लिये छे, तेनुं चमकने कांई पण ज्ञान नथी, के हुं लोहनुं आकर्षण करूंछुं; परंतु ते क्रिया स्वाभाविक थाय छे. तेम जीव शुभाशुभ परिणामना उपयोगे शुभाशुभ कर्म आकर्षण करी आत्मापणे लोलीभूत करे छे; एवो अनादि काळनो स्वभावज छे. एमां ईश्वरनुं कांई काम नथी.

१७ नास्तिकः— जीव एवो कोई पदार्थज नथी; बधुं शून्यज छे. त्यारे शुभाशुभ कर्मो ते कोने भोगववाना हता! ए बधो भर्म छे. जीव कोई छेज नही.

आस्तिकः— भाई, तूं पाको बुद्धिनो देखाय छे. जीवनेज उराडी नाख्यो एटले बधी खटपट चूकी गई के नही वारु! अरे मूढमति विचार तो कर, के जो शरीरमां जीव न होय, तो शरीरनी चेष्टा केम थई शके? शरीर तो जड छे, तेमां चेतन शक्ति न होय तो क्रिया केम थाय? जो आत्मा न होय तो आ शरीर, हाथ, पग, कान, नाक, जीभ, आंख, मन, बुद्धि, धन, धान्य, राज्य, तथा संपत्ति प्रमुख सर्व पोताथी जुदा पदार्थोमां शरीर मारुं छे, धन मारुं छे, वगेरे एवो बोलनार कोण छे! मारुं छे, एवुं कहेनार पदार्थथी जुदो होय छे. एम तो कोई पण कहे तो नथी के हुं शरीर छुं, हुं मन छुं वगेरे, माटे शरीरादिक सर्व वस्तुनो भिन्न व्यवहार होवाथी जीव छे एवुं ठरे छे शरीरमांथी जीव नीकळी गया पछी विचार करवुं, बोलवुं, तथा चालवुं वगेरे कांई पण क्रिया थई शकती नथी. तेथी शरीर थकी जीव जुदो कोईक छे एम नकी जाणजे. वळी शरीरमां ज्यारे जीव छे त्यारे बोले छे, ने घट पटादिक पदार्थोमां जीव नथी त्यारे बोलता नथी. तेथी जीवद्रव्य ते शरीर थकी भिन्न छे एवुं शिद्ध थयुं. तेने छेज नही एम तुं केम माने छे? जो जीव न होय तो व्यवहार केम चाले? माटे जीव अवश्य छे एम जाणवुं.

१८ नास्तिकः— जीव समय समयनेविषे नवो थाय छे. हमेश एक जीव रहे तो नथी.

आस्तिकः— ए वात तदन जूठी छे. जीवत्व नवुं कोई समये थतुंज नथी. जीवना पर्याय द्रव्य, क्षेत्र, काळ, भाव, तथा उदय भावाश्रित तो जुदा जुदा

होय छे, पण जीवपणुं नवुं होतुं नथी. जीव समय समय प्रत्ये जो नवो थतो होय, तो बालपणनी वात यौवनावस्थामां सांभलवी न जोये. तथा गत समयनुं सांभलेलुं, दीठेलुं, भोगवेलुं, लीधेलु, तथा दीधेलुं प्रमुख कांई पण स्मरणमां आव्युं न जोये. तेनी स्मृति तो थाय छे. तेथी जीव तेहिज छे. जो जीव नवो थतो होय तो एक जीवनुं करेलुं कार्य बीजो जीव केम जाणी शके ? ए तो प्रसिद्ध वात छे. तेथी जीव द्रव्य सदा सरखुं छे; एमां कोई काले पण फेर पडतो नथी, एम जाणवुं.

२९ नास्तिकः— जीव जे नाना प्रकारनां कर्मो करे छे, तेओनो करावनार ईश्वर छे. ईश्वरनी प्रेरणा विना जीव थकी कर्म थाय नही, एम जाणवुं.

आस्तिकः— जो जीवने कर्म ईश्वर करावतो होय, तो कर्मनो कर्त्ताज ईश्वर ठरशे; केमके जे क्रीयानो प्रेरक होय छे, तेज कर्त्ता होय छे. जो ईश्वर कर्त्ता ठेरावयुं तो जे कर्त्ता होय छे, तेज भोक्ता होय छे. ए रीतथी ईश्वरने भोक्तापणुं पण आवशे. भोक्ता ईश्वर थयाथी पापपुण्य ईश्वरनेज लागे छे, एम मानवुं पडशे. जेम कोई पुरुष पोताना हाथमां खड्ग लईने बीजाने मारे. तेनुं पाप खडगने लागतुं नथी, पण ते खडगना मारनारने लागे छे. तेम पुरुषे कीधेलुं पाप पण ईश्वरने लागनार छे. कर्मनो करनार तो खडगना जेवो छे; तेने कर्म लागवा न जोईए. तेथी कर्म ईश्वरने लागे छे एम सिद्ध थयुं. एम माननारने एटलुंज पूछवुं जोये के, कर्मनो कर्त्ता तुं नथी, तेम कर्मनो भोक्ता पण तूं नथी; कर्त्ता भोक्ता ईश्वर छे. त्यारे सर्व मनुष्यो पोतपोताना मत प्रमाणे क्रिया करवानी बुद्धि केम करेछे ? मद्य मांशनो त्याग, अने स्नान. संध्या. स्तोत्र, तप. जप. वगैरे शासारु करेछे ? पोताने कांई पाप प्रमुख लाग्युंहोय तो तेनुं निवारण शासारु करे छे ? अकार्य शासारु करता नथी ? पाप थकी शासारुं बीहेछे ! कर्त्ता शो भोक्ता एम शासारुं कहे छे ? पोते करे छे, ते भोगवे छे; तेम छतां वली कहे छे के हे प्रभु, मारां पाप टालो. पण एम नथी कहेतो के प्रभु तमारां पाप टालो. जे चोरी करे तेने दंड थाय ने जे छेद करे तेनां प्राण जाय. अने हिंसा करे ते अवश्य नरक गामी थाय. वगैरे ए सर्व व्यर्थ मानवा जोइशे. माटे कर्त्ता जीव छे ईश्वर नथी एम मानवुं जोये.

३० नास्तिकः— अमे मान्य करेलुं ईश्वर सर्वज्ञ छे एम जाणवुं. अने शास्त्रोमां पण "सर्वज्ञो ईश्वर." एवां घणां वाक्यो दीठामां आवे छे; माटे ईश्वर बधुं जाणे छे.

आस्तिक—यद्यपि तमे कहोछो के ईश्वर सर्वज्ञ छे, ए वात सत्य छे. तथापि ते सर्वज्ञतानी रीत कांईक जूदीज छे. जे तमे मानो छो ते ईश्वर सर्वज्ञ नथी. अमे एटलुंज पूछीए छैए के, ज्यारे ईश्वर सर्वज्ञ छे, त्यारे पोताने दुःख देनारा रावणादिकने तेणे शा सारु उत्पन्न कर्या! ज्यारे ए राक्षसोनी उत्पत्ति पोते कीधी त्यारे पोतानेज युद्ध करवुं पड्युं. ए उपरथीज विचार करो के जो ईश्वर सर्व जाणतो होय. तो एवी जूल केम करे? जो एम कहिये. के राक्षसादिक प्राणी ओ ईश्वर थकी अजाणमां उत्पन्न थया जणाय छे; तो ईश्वरनेविषे अज्ञानरूप दूषण प्राप्त थशे. अने जो एम कहीशुं के जाणी जोईने उत्पन्न कर्या छे; तो ईश्वरना जक्तने पण संग्राम उचित नथी; तो ईश्वरने ते केम संग्राम कार्य उचित थयो? माटे एम कहेवुं तदन असंजवित छे.

३१ नास्तिकः—ईश्वर ज्यारे जगतनो संहार करेछे, त्यारे पोते प्रागवम्नां पांदडांपर पहोढे छे; अने ज्यारे जगतनी उत्पत्ति करवानो संजव होय, त्यारे जागृत थाय छे; ए वात तो साची छे के नी?

आस्तिक.—ए वात ते वळी जूठी होय! पण हुं तमने पूछुं छुं के ते प्रागवड अधर आकाशमां रहे छे के, पृथ्वी उपर होय छे? तेमां अधर रहे छे, एम तो तमे कबूल करशो नही, केम के तमे वळी एम पण मानो छो के, बधुं जलमय थई जाय छे; ने तेनी उपर मात्र प्रागवम् देखाय छे; त्यारे पृथ्वी पण कबूल करवी पम्शे. जो पाणी, पृथ्वी, तथा प्रागवम् ए बधा पदार्थ महा प्रलय थया पछी पण रहे छे, त्यारे संहार ते शानो कर्यो कहेवाय? जो एम होय तो सर्व पदार्थो शाश्वत थया एम जणाय छे. फरी ज्यारे ईश्वरे सृष्टि उत्पन्न करी, ते पहेलां कह्या प्रमाणे पांच महा जूत तथा, प्रागवड हतो त्यारे नवुं ते शुं कीधुं ए वगेरे विचार कर्याथी एम जणाय छे के, ए बधा गपाटा छे. जेना मनमां जेम आव्युं, तेणे तेम शास्त्रोमां लखी नाख्युं जणाय छे.

३२ नास्तिकः—ब्रह्मा, विष्णु, अने महेश ए त्रणे सर्वज्ञ ईश्वर छे; एम अमे मानिये छैये.

आस्तिकः—तमे गमे तेम मानो तेमां अमारुं शुं गयुं! अमे तो जेम हशे तेम मानशु. तमे कह्या ते त्रणे जो सर्वज्ञ होय तो अज्ञानने केम अंगीकार करे! जुवो के, महादेवे पोताना पुत्र गणेशनुं माथुं कापी नाख्युं तेनी खबर पोताने केम न पडी? रावण सीतानुं हरण करी गयो ते वखते राम सर्वज्ञ छतां

पशु, पक्षी, तथा वृक्ष प्रमुखने केम पूजतो हतो? अने ब्रह्मा पासेथी राक्षसो वेद केम चोरी लई गया? ए रीते ब्रह्मा, विष्णु अने शिव अज्ञान करे छे. एवा अज्ञानी तेने ईश्वर केम कहिये?

३३ नास्तिकः—सर्व योनिओमां मनुष्य योनि उत्तम छे. एवुं शास्त्रोमां कह्युं छे ते सत्य छे. अने वली अनुभव सिद्ध पण छे.

आस्तिकः—ना कोणे कह्युं छे? मनुष्य योनि तो उत्तमज छे. परंतु तमे तेम अंतःकरण पूर्वक मानता नथी देखाता. महोडाथीज मात्र कहो छो. केम के तमारे तो एथकी पण बीजी उत्तम योनिओ मानवी जोइये छे. जे योनिने ईश्वरे अंगीकार करी छे, ते योनि तमारे पण सर्वोत्कृष्ट मानवी जोइये. मछ, कछ, तथा वराह, प्रमुख योनिओमां ईश्वरे अवतार लीधो छे; ते योनिओ मनुष्य योनिकरतां उत्तम मानवी जोइये. जो मनुष्य योनिज उत्तम होय तो ईश्वर पोते बीजी योनि केम धारण करे? माटे तमारा बोलवा प्रमाणे तो मनुष्य योनि करतां वराहादिक योनि उत्तम जणाय छे. ईश्वर ज्यारे पशुमां अवतार लिये छे, त्यारे पशुमुखी, पशुवाही, तथा पशुरूपी होय छे. तेने देव मानवो ते अयोग्य छे. आहार, अस्ति, आयुध, असवारी, तथा आवाश ए पांच पदार्थ ईश्वरना भक्तने पण त्याग करवा कह्युं छे; तो ईश्वर पोते तेनुं केम ग्रहण करे? माटे वराहादि योनि धारण करनारो ईश्वर मानो, तो मनुष्य योनि करतां ते योनि उत्तम कहेवी जोइशे; जो तेम नही कहेशो तो ईश्वरने अपमान लागशे.

३४ नास्तिकः—शरीरनो त्याग करीने जीव परलोके गया पछीपाछो आ लोकमां केम आवतो नथी? जे छे तेने तो आव्युं जोइये.

आस्तिकः—आ संसारनो संबंध मटी गया पछी जीवनुं फरी आववुं थतुं नथी; तेनुं कारण कर्म छे. जीवनुं आववुं जवुं कर्माधीन छे. ज्यां कर्म लई जाय त्यां जीव जाय छे. अने जे जे भव पामे छे ते ते भवना कार्य करे छे. आ भवमां पण हमेश एक रीत रेहेती नथी जेम के बालपणानी प्रीति होय ते कोई काले मटी जाय छे. घणा काल लक्ष्मीनो संबंध छतां कोई काले तूटी जाय छे. त्यारे दारिद्र्य आवे छे. कोई कर्मना योगे प्राणी बंदीखानामां पडे, ते वारे तेनो अत्यंत स्नेही होय ते पण पासे आवतो नथी. कोई पुरुष एक स्त्रीउपर बीजी करे त्यारे प्रथम स्त्रीनी उपर प्रीति रहेती नथी; अने पूर्वनो संबंध पण तूटी गया जेवुं थाय छे. तो पूर्व जन्मना संबंध ते केम याद आवे? ज्ञानावरणी कर्मना यो

गे बीजा जवनुं स्मरण पण थतुं नथी. ए विषयने मळती प्रदेशी राजा अने केशी गुरुनी प्रश्नोत्तररूप चर्चा छे ते कहुं छुं.

प्रदेशी राजाः— मारो अधर्मी दादो नरकमां गयो छे, ते तमारा मतप्रमाणे त्यांथी आवीने मने अधर्म करतो वारे त्यारे हुं मानुं, के वात साची छे.

केशी गुरुः— तारी स्त्रीनी साथे कोई पुरुषने कामजोग करतो तने दीठामां आवे, ने ते तारा हाथमां आव्या पछी ते तारी वीनती करे के, मने थोडीक वार रजा आपो, तो हुं मारा कुटंबने कही आवुं के. कामजोग कर्याथी आवुं दुःख थाय छे तो ते वात कबूल करीने तेने तूं रजा आपीश?

राजाः— ना तेने एक क्षण पण छुटो मूकुं नही.

गुरुः— तेमज तारो दादो पण पापसंची, गुनेहगार थई, नरकमां गया पछी, परमाधामी तेने केम मूके? तेथी ते आवी शके नही.

राजाः— मारी दादी स्वेच्छाचारी थई, जैनधर्मने अंगीकार करीने स्वर्गे गई, ते पाछी केम कहेवा आवी नही; ने आवे तो तेने शुं हरकत छे?

गुरुः— कोई पुरुष स्नानकरी, कुसुम तथा धूप प्रमुख लई देवनी पूजा करवा जेतो होय, तेने कोई चांमाळ संमाशमां जवाने कहे तो ते त्यां जाय के? एवी कदी इच्छा पण करे?

राजाः— ना ते एवा खराब स्थळे केम जाय? कदी पण जाय नही.

गुरुः— तेम तारी दादी स्वर्गलोकमां गई छे, ते सेतरखाना तुल्य आ मनुष्य लोकमां केम आवे! आ लोकमां आववानी इच्छा पण थाय नही.

राजाः— एक चोरे चोरी करी, तेनो इन्साफ करीने तेने लोढानी कोठीमां घाली दीधो. तेनुं मुख बंध करीने उपर सारी रीते कळाई करावी. तेमां पवन पण प्रवेश करी शके नही एवुं कर्युं. पछी ते चोर कोठीमां मरी गयो. तेनो जीव ते कोठीना क्या रस्तेथी नीकळी गयो? तेमां तो कोई छिद्र दीठामां आव्यो नही. हवे जीव ते केम मनाय?

गुरुः— मोटी शाळामां एक पुरुषने जेरी सहित घालीने तेने चोतरफ बंध करी लीधी होय, तेमां ते जेरी वगाड्याथी तेनो अवाज बाहार शंभळाय छे. ते छिद्रविना बाहार केम आवे छे? तेम जीव पण छिद्रविना बाहार निकळी जाय छे.

राजाः— एक चोरना कटका करी एक कुंभमां में भरी राख्याहता. तेनुं महोडुं उपरथी सारी रीते बांधी लीधुं हतुं, के जेमां पवन पण प्रवेश करी शके नही. ते

કેટલાક કાલ પછી ઉઘાડી જોયું, તો તેમાં અનેક ક્રમ પડેલા દેખાયાં. તે છિદ્ર વિના ક્યાંથી આવ્યાં?

ગુરુ.– અગ્નિમાં લોહનો ગોલો નાખ્યો હોય તેમાં છિદ્રવિના અગ્નિ કેમ પ્રવેશ કરેછે! જે વસ્તુ અગ્નિમાં નાખીએ તેમાં છિદ્ર નહોય, તો પણ અગ્નિ પ્રવેશ કરે છે. તેમ જીવનો પ્રવેશ થવામાં છિદ્રનું કાંઈ કામ નથી.

રાજાઃ– એક ચોરને મેં તે જીવતો હતો ત્યારે તોલ્યો, અને મરી ગયા પછી પણ તોલ્યો; ત્યારે જીવ નીકલી ગયો છતાં ભારમાં કાંઈ ફેર પડ્યો નહી. તેનું શુ કારણ હોવું જોયે?

ગુરુઃ– જેમ ખાલી મશક તથા પવનથી ભરેલી મશક તોલી જોતાં વજનમાં ફેરફાર થતો નથી. તેમ જીવ વાયુરૂપ હોવાથી તે શરીરમાંથી નીકલી ગયા પછી કાંઇ તોલમાં ફેર પડતો નથી.

રાજાઃ– બાલક અને યૌવનના શરીરમાં ફેર છે પણ જીવમાં કાંઈ ફેર નથી. બન્ને વાણી સરખી બોલે છે ને તેનું શબ્દ પણે કાનમાં સરખી રીતે સ્વર જાય છે; તેમ છતાં ઉપયોગ સરખો કેમ થતો નથી? યુવાન જે ક્રિયા કરીશકે છે તે બાલકથી થતી નથી તેનું કારણ શું તે કહો.

ગુરુઃ– જેમ જૂનું ધનુષ્ય હોય તેથી બાણનો ઉપયોગ જુદી રીતે થાય છે ને નવું ધનુષ્ય હોય તો તેથી બાણનો ઉપયોગ જુદી રીતે થાય છે; ધનુષ્યમાં ફેર હોવાથી બાણની ક્રિયામાં ફેર પડે છે. તેમ બાલક અને યુવાનના શરીરમાં ફેર હોવાથી જીવની ક્રિયા સરખી થાય નહી. એટલે બલ વીર્ય પ્રમુખમાં પણ ફેર ફારથાય છે.

રાજાઃ–યુવાન અને વૃદ્ધ માણશના શરીરમાં જીવ સરખો છતાં યુવાનની પઠે વૃદ્ધ કેમ ભાર ઉપાડી શકતો નથી?

ગુરુઃ–જેમ કાવડવડે ભાર ઉપાડનારો પુરુષ સારી નવી કાવડ હોય તો વધારે ભાર ઉપાડી શકે છે, ને જૂની કાવડ હોય તો કાંઈક થોડો ભાર ઉપાડી શકે છે. તેમ જીવ તો તેજ છે પણ યુવાન શરીર હોય તો વધારે ભાર ઉપાડી શકે, ને વૃદ્ધ શરીર થાય તો થોડો ભાર ઉપાડી શકે છે.

રાજાઃ–એક ચોરને મારીને તેના અનેક ખંડ કીધાં, પણ જીવ તથા જીવના રહેવાનું ઠેકાણું દીઠામાં આવ્યું નહી; માટે જીવ કોઈ છેજ નહી.

ગુરુઃ–જેમ કાષ્ટમાં અગ્નિ રહી છે, તેમ શરીરમાં જીવ રહ્યો છે, તે દેખાય કેમ? જો કાષ્ટમાં અગ્નિ દેખાય તો શરીરમાં જીવ દેખાય. કાઠીઆરો હમેશ લાકડા

कापे छे पण तेने अग्नि कोई वखते पण दीठामां आवती नथी. ने ते अग्निनुं र हेवानुं ठेकाणुं पण दीठामां आवतुं नथी तेम जाणी लेवुं.

राजाः—मने प्रत्यक्ष जीव देखाडी आपो के जेथी हुं जीवने जाणुं.

गुरुः—तमे बादर वायु कायना जीवने जोई शकशो के? तेने पण जोई शक शो नही तो जे अरूपी जीव छे तेने केम जोई शकशो?

राजाः—हाथीमां अने कीडीमां जीव केम सरखो होय छे?

गुरुः—हाथीनुं तथा कीडीनुं शरीर महोटुं नानुं छे, पण जीवमां अधिक न्यून ता नथी जीव बन्नेमां सरखो छे.

राजाः— लोकमां जीव अने जड एक क्षेत्र अवगाही निरंतरपणे निराबाध केम रह्या छे?

गुरुः— जेम दूधनी नरेली कडाईमां साकर, एलची, अने केशर नाखी होय ते केम समाई जाय छे? दूधप्रमुख चारे वस्तु एक क्षेत्र अवगाही निरंतरपणे केम रहे छे? एकज ठेकाणे चारे वस्तु अभिन्न भावे रहेली छे. एना वर्ण, गंध, रस, फरश निरंतर निराबाधपणे छे. तेम जीव अने जड जगतमां निरंतर एक क्षेत्र अवगाही निराबाधपणे रह्या छे.

३५ नास्तिकः— सर्व लोकमां जीव नरपूर छे त्यारे देखाता केम नथी?

आस्तिकः— जेम सूक्ष्म जीव सर्वत्र पूर्ण छे. ते ज्यारे दिवशे तडको पडे त्यारे घरमांना कोई छिद्रद्वारायें थोडोएक तडको घरमां आवे छे. ते तडका तरफ जोतां केटला एक परमाणु जेवा दीठामां आवे छे, ते बधा सूक्ष्म जीवो छे. ते छायमा मां तडको आवे त्यारे उडता देखाय छे, बीजी रीते देखाता नथी. तेम जीव अ ने जड सर्व लोकमां नरपूर छतां छद्मस्थने देखाय नही; किंतु केवल ज्ञानरूप आ तपना योगे देखायछे. अर्थात् केवल ज्ञानीज जाणी शकेछे.

३६ नास्तिकः— चंद्र, सूर्य, छाया, आतप, माता, पिता, स्वर्ग, नरक, जीव, जड, घट, पट, स्तंभ, तथा कुंभ प्रमुख सर्व भ्रममात्र छे; वस्तुरूप कंईजनथी.

आस्तिकः— जेम अंधकारमां आकाशनेविषे कोई पुरुष चाल्यो जाय, ते निरा बाधपणे जई शके छे; पण वचमां जो भिंत आवीजाय तो आगल चलातुं नथी ने ते कार्यमां अपराबाधक थायछे. ए प्रत्यक्ष भ्रम के सत्यछे? तथा कोई कोईने मारे, कूटे, दानदिये, ए वस्तु गत्ये सत्यछे; असत्य अने भ्रमजाल तो स्वप्न अने संकल्पने कहिये.

३४ नास्तिकः—सर्व जगतमां एकज ईश्वर छे. ईश्वर विना बीजुं कांई नथी, एम जाणवुं जोये.

आस्तिकः— जो सर्व जगतमां एक ईश्वर होय, तो दानना देनार पण ईश्वर, अने लेनार पण ईश्वर कहिये. लेनार अने देनारमां कांई भेद थयो नही. ईश्वरे पोते पोतानी पाशेथी दान लिधुं त्यारे दान दीधानुं पुण्य कोने थयुं ? एथी दान तथा पुण्य व्यर्थ गयां. वली मारनार पण ईश्वर ने मरनार पण ईश्वर कहेवो जोये; तो ईश्वरे ईश्वरने मार्यो तेनुं पाप कोने लाग्युं ? धणी पण ईश्वर ने चोर पण ईश्वर; तो ईश्वरनो माल ईश्वरे चोर्यो कहेवाय, त्यारे चोरीनी तपाश शासारु करवी जोयेछे ? पुण्ये करी स्वर्गमां गयो ते पण ईश्वर, तथा पापे करी नरकमां गयो ते पण ईश्वर; त्यारे स्वर्गमां पुण्यवान जाय अने नरकमां पापी जाय; एम कहेवुं व्यर्थ छे. ए उपरथी तमारुं बोलवुं असंभवित छे. जगतमां एकज ईश्वर छे एम जे कहेवुं ते असत्य छे. घटघटप्रत्ये जीव जुदा जुदा छे, अने तेओनी करणी पण जुदी जुदी जाणवी.

३५ नास्तिकः— घट पटादिक सर्व पदार्थोमां ईश्वर एकज छे. एम जाणवुं जोये.

आस्तिकः— जो सर्वमां एक ईश्वर होय तो जात, कुल, राजा, तथा चंडालनी भिन्नता कही न जोये; कोई श्रेष्ट तथा नष्ट कहेवाय नही. एक पुण्य करे तेनुं फल सर्वने थवुं जोये, तेमज कोईएक पाप करे तेनुं फल पण सर्वने थवुं जोये. एके भोजन कर्याथी सर्वनी तृप्ति थवी जोये; एक नरकगामी थयाथी सगला नरके जवाजोये; एक स्वर्गगामी थयाथी सर्व स्वर्गमां जवा जोये; एकनो भोग सर्वने भोगव्यो जोये; कर्म जुदां जुदां भोगववां न जोये; तेम तो देखातुं नथी; जे करे ते भोगवे एवुं स्पष्ट देखाय छे. त्यारे सर्वमां एक ईश्वर केम कहेवाय ? माटे एम कहेवुं ते समीचीन नथी; बधा जीव जुदा जुदा छे, एम कहेवुं योग्य छे.

३६ नास्तिकः—स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, चंद्र, सूर्य, नदी, समुद्र, द्वीप, नर, नारी, नगर, ग्राम, तथा माता, पिता इत्यादिक चोराशी लक्ष जीवयोनि प्रमुख सर्व असत्य छे; एओमां सत्य पदार्थ कोई नथी.

आस्तिकः—सर्व पदार्थ सत्य छे. जलनी बुंद पण असत्य कहेवाय नही, तो स्वर्गादिक पदार्थो केम असत्य कहेवाय ? जे वस्तु थाय त्यारे थई कहेवायछे,

अने वणशे त्यारे नाश थई कहेवायछे. ए प्रत्यक्ष प्रमाणे सिद्ध छे; ते मूढ पण जाणे छे तो हे नास्तिक तूं केम जाणतो नथी!

४० नास्तिकः—जगत ईश्वर रचित छे.

आस्तिकः—जो जगत ईश्वरकृत होय, तो जेटला ईश्वरना जक्त छे, ते बधा सुखी होवा जोये; तेम तो दीठामां आवतुं नथी. हिंदु तथा मुसलमान बधा सुखी तथा दुःखी देखायछे; तेने पण पूंछिये तेवारे एम कहे जे सहु पोतपोतानी करणी प्रमाणे पामेछे, एम कहीछूटे; त्यारे तमारा कहेवा प्रमाणे तो सुख तथा दुःखनो देनार कर्मविना कोई बीजो होवो जोये तेनो तो विचार थई शके नही, माटे हे मूर्खबुद्धि आ जगतनो कोई करता नथी; ए तो स्वजाव सिद्ध छे. अने जीव जेवी करणी करे, ते प्रमाणे सुख तथा दुःख जोगवेछे.

४१ नास्तिकः—सुख दुःखनो देनारो ईश्वर छे, एम मानवुं जोये.

आस्तिकः—सुखदुःखनो कर्त्ता आपणो आत्मा छे, तेज सुखदुःखनो जोक्ता जाणवो. माटे सुखदुःखनो देनारो बीजो कोई समजवो नही.

४२ नास्तिकः—(प्रत्यक्ष प्रमाण वादी) पुण्यथकी सारुं थायछे, ने पाप थकी नरछुं थायछे; ते अमने प्रत्यक्ष दृष्टिए देखाडो तो मानीए.

आस्तिकः—पुण्यपाप तो सूक्ष्म पुद्गल समूहरूपछे. जेम शब्दना पुद्गल कानप्रत्ये आवेत्यारे शब्दनुंज्ञान थायछे; माटे ते सत्य छे. पण आवता देखाता नथी. तेम सुगंध, दुर्गंध, प्रमुखना पुद्गल इंद्रियो प्रत्ये आवता देखाता नथी; पण तेनुं ज्ञान थायछे; तेथी अनुमान प्रमाण वडे जणाय छे के ए सत्य छे. तथा शरीरमां वायु अने गरमी प्रमुख जे थायछे, ते रोगना उदयथी जाण्यामां आवेछे, पण प्रत्यक्ष दीठामां आवतांनथी. तेम पुण्य तथा पाप पण फल जोगव्याथकी जाण्यामां आवेछे. तेओना पुद्गल छद्मस्थ दृष्टिए आवे नही.

४३ नास्तिकः—बाल्यावस्था तथा तरुणावस्थामां जीव सरखो छे. तो ते बन्ने अवस्थामां विज्ञान, विद्या, जाषा, तथा पराक्रम सरखां केम नथी देखातां?

आस्तिकः—जेम वृक्षना बीमां अनेक वृक्ष, फल, फूल प्रमुख रहेलां छे; परंतु जेवा साधनो मलेछे, तेवी उद्भवताने पामेछे. जेम के, क्षेत्रनी जूमि सारी होय ने पाणीनी पण बराबर साह्यता होय, तो कृषि फलरूप धान्यनी उत्पत्ति सारी थायछे. तेम सारा साधनोवडे जेम जेम शरीरनी वृद्धि थती जाय, तेम तेम जाषा पण प्रौढताने पामती जायछे; पण अवस्थांतर थयाथी बुद्धि बाहेरथी आवती नथी. किंतु

शरीरनी पठे बुद्धिनुं अवस्थांतर थायछे. सर्व आत्मगुण आत्माने विषे सदा ज खाज छे. पण योग्य समयमां उद्भव मात्र थायछे. कांई बाहेरथी नवा आवता नथी. जेम मयूरना शरीरमां अनेक रंग रहेलाछे, पण समय पामे प्रगट थायछे. तेम बाल्यावस्थामां पण सर्व गुण सत्तजावे छे. परंतु जेवी रीते पुरुष बलवान छ तां धनुष्यविना बाण चलाववामां समर्थ थाय नही; गलोला, गोफण, तथा खड्ग प्रमुख बधा शस्त्र तेओना उपकरणथी उपयोगी थायछे, ते विना थाय नही; तेम जीव पण शरीरोपकरण अवस्थारूप सामग्री थकी सर्व कार्य साधी शकेछे. चेतनमां कांई फेर नथी, चेतन सदासर्वदा सरखुंज छे.

४४ नास्तिकः—जगत सर्व ईश्वरकृत होवाथी सर्व पदार्थमां तथा सर्व जीवमां ईश्वरनी कला छे.

आस्तिकः—जो एम होय तो घट, पट, स्तंज, कुंज, शास्त्र तथा जाषा इत्यादिक अनेक वस्तुनुं ज्ञान कोई एक जीवने छे, ने कोईएक जीवने नथी. जे जीवने ज्ञेय पदार्थनुं ज्ञान छे, तेने तो हे मूढमति, तूं ईश्वरनो अंश मानेछे, त्यारे श्वान, शूकर, रासज, मांजर, व्याघ्र, प्रमुख श्वापद चौपद जीवोने घटादिक पदार्थोनुं ज्ञान नथी तेथी तेओमां शुं ईश्वरनो अंश नथी? तमे तो जीवमात्रने ईश्वरनो अंश मानो छो तेने बाध आवशे. जे ईश्वरनो अंश होय ते अज्ञानी केम होय? एथी जगतनो कर्त्ता ईश्वर अविवेकी ठरेछे. अने सर्वमां ईश्वरनी कला छे, ए बोलवुं पण असत्य छे; केमके जो एम होय तो सर्व सरखा ज्ञानी होवा जोये. तेम तो देखातुं नथी; माटे ए वात पण मिथ्या छे. तेम सर्व जीव ईश्वरना अंशरूप छे, एम जे तमे मानो छो, ते पण अज्ञानी होवाने लीधे मानोछो माटे संजवे नही.

४५ नास्तिकः— ईश्वर जक्तवत्सल छे, अने स्वेछाथी जन्मधारण करेछे.

आस्तिकः—जो एम होय, तो जक्तोने शरीर मूकतां वेदना केम थाय छे? अने स्वजनादिकना कोलाहल शब्दो सांजलीने जक्तने वत्सलजावकारी आयुष्यवृद्धि केम नथी करतो? मरणादिक क्रिया तो सर्व ईश्वरना स्वाधीन छे. ए आदि विचार करतां तमारुं बोलवुं बधुं पोकल छे. जीव तो कर्मने आधीन छे. जेम कफ लीधेलो प्राणी तेनी लहेरने स्वाधीन थई जायछे, तेम जीवविषे पण जाणी लेवुं. जन्ममरण पण कर्माधीन छे; तेने जे धारण करे ते ईश्वर शानो! ते तो संसारीज कहेवाय. ईश्वर तो कर्मथी मुक्त होयछे. माटे तमारुं बोलवुं बधुं व्यर्थछे.

४६ नास्तिकः—आ पंच महाजूतोथी उत्पन्न थएलुं जे विश्व, ते महा प्रलयना

समये पोताना कारण पंच महाभूतोमां लीन थशे; ने पंच महाभूतो ईश्वरमां लीन थशे.

आस्तिकः—जो एम होय तो ईश्वर जड मिश्रित थाय. अने ते समल तथा निर्मल ए बे अवस्थावालो कहेवाशे. त्यारे केवल ज्योतिस्वरूपपणुं क्यां गयुं? जे पंच महाभूतोथकी जगतनी उत्पत्ति थई कहोछो ते तो सदा शाश्वत छे. ते ओमां पृथ्वी, आप, तेज तथा वायु; ए चारे भूतो पोतपोतानी क्रिया करेछे, केम के, वनस्पति अने जंगम त्रसनी उत्पत्ति करेछे ते क्रियाविना थाय नही. एवी रीते तो जीवनी छ खान शाश्वत सदा काल छे, त्यारे प्रलय ते शानो थयो? जो एम कहेशो, के पंच महाभूतो जगत विनिर्मित क्रिया करता नथी, त्यारे तो ते भूतद्रव्यरूप कथन मात्रज ठरशे. अने हरेक वस्तु पोतपोताना गुणविना रहे नही एवो नियम छे. वली जो कहेशो के भूत तो अनंत कालना छे. त्यारे तो संसार पण अनंत कालनो ठरशे. तेनी उत्पत्ति तथा प्रलय केम कहेवाय? ए तो जेम छे तेम छे. वली ईश्वर मनसा वाचा कर्मणा करि रहित छे. अने एक थी अनेक थाउं एवी मननी इच्छा थई त्यारे जगतनी उत्पत्ति करी. ए बे वाक्यो नो परस्पर विरोध छे; केम के, प्रथम वाक्यप्रमाणे ईश्वर इच्छारहित ठरे छे; ने बीजा वाक्यमां इच्छासहित कहो छो; एवो पूर्वापर वचनविरोध होवाथी तमारुं बोलवुं सर्व असमीचीन छे.

४७ नास्तिकः— सर्व वस्तुनो ईश्वर अधिष्ठान छे. ईश्वरनी इच्छाथी कृत तथा अकृत सर्व थायछे.

आस्तिकः— जो एमछे तो घट ते पट केम थतो नथी? पण तेम थाय नही; केमके. घटनुं कारण मृत्तिकानुं पिंड छे, तेमांथी घटज थायछे. पण पटादि कार्य नथी थता. तेमज पटनुं कारण तंतु छे, तेथकी पटज थायछे; पण घटादि क बीजा कार्यनी उत्पत्ति थायनही. जो एम थतुं न होय तो कारणथी कार्य थायछे, ए प्रवृत्ति मिथ्या थाय. माटे ईश्वरना अधिष्ठितपणातले ईश्वरनी इच्छाथी कृत तथा अकृत सर्व थायछे ए तमारुं कहेवुं सर्व व्यर्थ छे.

४८नास्तिकः— जीवने भवांतर थाय छे खरुं, पण वेदनो भेद थतो नथी. पुरुष वेद ते स्त्री वेद न थाय, स्त्रीवेद ते पुरुषवेद न थाय; तेम स्त्री तथा पुरुष ते नपुंसक वेद न थाय; अने नपुंसकवेद ते पुरुष तथा स्त्री वेद न थाय. एम जाणवुं जोये

आस्तिकः—पुद्गलना परिणामनो नियम नथी. एना पुनः पुनः रूपांतर थया क

रेछे. मात्र अवस्तुपणुं पामता नथी, वस्तुपणे गमे ते रूपे थई जायछे. जेम नेंस ना शिंगमांथी केल थायछे; काशथकी सेरडी थायछे, माखीना हिंगारथकी कद लीनी नाजी थायछे, एवी रीते कर्मना परिणामे गत्यंतर थायछे. आगामिक नव नेविषे कायवेद पलटाईने ते नवा नवरूपे परिणमेले. जेम सोर्नना योगे सुव र्ण नाना प्रकारना आकाररूपे परिणामने पामेछे. तेम जीव कर्मना योगे नाना विध गतिओ पामेछे. ते तो रह्युं, आ नवमां पण एकसरखी स्थिति रहेती न थी. जेम के, राजा ते रंक थई जायछे, ने, रंक ते राजा बनी जायछे, सुखी ते दुः खी, तथा दुःखी ते सुखवान थई जायछे. इत्यादिक आ नवमां पण पर्याय पलटाई जायछे; तो नवांतरमां केम एकरूपे रहे ? कर्मना बंध सादि छे, माटे जेवो कर्म नो उदय तेवा फलनी प्राप्ति थायछे. एविषे कोई नियम थई शके नही. गमे ते वेद बदली ने गमे ते वेद कर्मना योगे थायछे एम जाणवुं.

४ए नास्तिकः—एम कह्युं छे के ब्रह्माना मुखमांथी ब्राह्मणो उत्पन्न थया, नुज थकी क्षत्रिय थया, तथा जंघा थकी वैश्य थया, माटे ए त्रणे वर्ण उत्तम छे, अ ने पादथकी शूद्र उत्पन्न थया माटे अधम छे, एम जाणवुं.

आस्तिकः— ए वात संनवित नथी. जुवो के, उबराना वृक्षमां पेड, डाल, तथा पत्रनेविषे सरखां फल लागेछे. ते सर्व फलोनुं रूप सरखुं होयछे; तथा ते ओमां रस पण सरखोज होयछे. तेओमां कोई प्रकारे उत्तम तथा अधमता क हेवाय नही. तेमज ब्रह्माना शरीर थकी उत्पन्न थया जे चार वर्ण, ते सर्व चेतन रूप होवाथी सर्व जीव सरखा जाणवा. उत्तम मध्यम वगेरे सर्व लौकिक कार्य थकी कहेवायछे. पण चेतनपणे तो सर्व सरखा छे. एना उपर एक दृष्टांत कहुं छुं. चारे वर्णना मनुष्य एक तलावने कांठे बेशीने पाणी पिये छे; तेथी कोई वट लतो नथी. पण ते तलावमांथी पाणी नरीने पोतपोताना वासणोमां लीधा पछी हलका वर्णना वासणनुं पाणी उंचा वरणवालो माणस पीए तो वटले छे. फरी चारे वर्णना नरेला पाणीना वासणो मानुं पाणी ते तलावमां नाखीने पी तां कोई वटलतुं नथी तेनुं कारण शुं ? माटे पाणीमां वटलवापणुं नथी. ने वा सण तो सर्वनां सरखा छे. माटे वटलवुं ए मननी मानीता छे; अने एवी लोक म र्यादा छे. ज्यां सुधी मननो मिथ्यानाव छे, त्यां सुधी निन्न पणुं छे एम जाणवुं.

५० नास्तिकः— समदृष्टीने विषे मिथ्यानाव होतो नथी, तेम छतां ते निन्न नाव केम राखेछे ?

आस्तिकः—लोक मर्यादा लोपवी नही ए नीति छे तेनो लोप करवो नही. जे कार्यनी जगत निंदा करे ते कार्य करवो नही एवुं श्रेष्ठोनुं वचन छे तेनो पण लोप करवो नही. तेथीज समदृष्टि पण तेवुं आचरण करे छे पण मनथकी सम दृष्टिने कांइ नथी.

५१ नास्तिकः— सर्व कार्यनो कर्ता ईश्वर छे. एम मानवुं जोये के नही ?

आस्तिकः— एम मानवुं नही जोये. ए वचन प्रलाप छे. ईश्वरविषे कर्तृत्व होयज नही. घट, पट, कृषि, संग्राम, खान, पान, दान, मान, स्नान, तप क्रिया, विनय तथा व्यावच इत्यादिक सर्व पदार्थोनां कारण काल, स्वनाव, नियत, पूर्वकृत कर्म, तथा पराक्रम ए पांच छे. जेम के, तंतुना पुंजमांथी पटनी उत्पत्ति थवानो जे समय ते काल समजवो; तंतुना पुंजने पटनी उत्पत्ति करवानीजे योग्यता ते स्वनाव जाणवो; तंतुना पुंजमांथी पटनी उत्पत्तिनुं जे निमित्त थवुं ते पूर्व कर्म समजवुं, अने तंतुना पुंजमांथी पटनी उत्पत्ति करवानो जे उद्यम करवो ते पराक्रम जाणवो; ए पांचमाथी एक ओछुं होय तो वस्तुनी उत्पत्ति थई शके नही. ए पांचनां समुदायथी घटपटादिक सर्व कार्योनी उत्पत्ति थायछे; एशुद्ध मत जाणवुं.

५२ नास्तिकः— जो कुछ होता है, सो अल्लाहुतालाके हुकमसें होता है; और किसीका किया कुछ होता नही; यही बात रास्त है.

आस्तिकः— जो ऐसे होवै, तो अल्लाहुतालाने पैदा किये हुये, इमामे हसन औ हुसन, काफिरोंके हातसें कैसे मारे गये ? वे तौ खुदाके प्यारे बंदे थे, तिनकूं काफिरोने मारे, ये बडी अजायबकी बात है. तिनकूं बचानेके वास्ते खुदा नाकौवत था ? इमाम किसीके गुनेहगारजी नही थे; वे क्यूं मारे गये ? इसवास्ते जो होता है, सो तकदीरसें होता है. जो जैसा करता है, सो तैसा पावता है, तामें अल्लाहुतालाका कुछ वास्ता नही है. यही बात रास्त है.

५३ नास्तिकः— अल्लाहुतालाने इमामोंका दिल देखनेके वास्ते आजाब दियाथा.

आस्तिकः— आजाब दिये शिवाय तिनोंके दिलकी वात खुदा नही जाणता था ! जो कहोगे की नही जाणताथा, तौ खुदामें खुदापना क्या रहा ! खुदा तो सब जानता है, ऐसे तुमारे कुरानेशरीफमें कह्या है. एसै होके नी इमामोंकूं मारनेकी दयानत जो काफरोने करीथी सो खुदा जानके नी कैसे चुप रहा ! इसवास्ते ये बात नी गलत है.

५४ नास्तिकः— आदमी मरगये बाद जीकूं फिरस्त लेजाते हैं ये बात तो सच है की नही ?

आस्तिकः— इस बातकूं कौन जूठ कहता है ? लेकीन समजमें कुछ फरक है. तुम कहेते हो की कीयामततक जीकूं एक ठिकानेमें रखते हैं, पीछे खुदाके पाश ले जाके इन्साफ करवाते हैं; ऐसे नही होवै है. लेकीन उसीवख्त जी अपनी त गदीरके लिये अछा या बुरा फल पावता है. तुमभी सुख, दुःख, भेहेस्त औ दोज क तो मानते हो ! सो जैसी जीने करनी करी होवै तेसी गति उसकु मलती है.

५५ नास्तिकः— अल्लाहुतालाने ऐसे फरमाया है की जो किसीकूं इजा देता है सो मारने लायक है.

आस्तिकः— कबू माबाप छोकरेकूं इजा देते हैं, औ कबु छोकरा माबापकूं इजा देता है; कबू पीर मुर्शिदकूं इजा देता है, औ कबू मुर्षिद पीरकूं इजा देता है; कबू नोकर खाविंदकूं इजा देता है, कबू खाविंद नोकरकूं इजा देताहै; ऐसे खुदाकी खलकतमें जहांतके जी हैं, वे सब इजा देनेवाले होनेसे जो सब मारने लायक हो वैं तो खैर महिर कैसे रहेगी ! औ रहम करने लायक कोई भी नही रहेगा और इमामोकूं जब काफरोने इजा दी, तब तिनोकूं कायके वास्ते इमामोने मारे नही इस वास्ते जो होवै है सो तगदिरसें होवे एसे जानना चाहिये.

५६ नास्तिकः—मांसाआहारी पापिष्ट कहे छे. आ दुनीआमां जलचर, स्थलचर, तथा खेचर प्रमुख जे नाना प्रकारना जीव छे, तेओने बेशक मारी नाखवा, अने तेओनुं मांस भक्षण करवुं. एम अमने साहेबे फरमाव्युं छे, ते प्रमाणे करवामां शुं गुनाह तथा पाप छे ?

आस्तिकः—तमारा कह्या प्रमाणे जीवने मारवुं ए खुदानो हुकम छे, ते कोई ए फेरववो जोये नही. जो फेरवीए तो गुनेहगार टरीए, एम सिद्ध थायछे ; त्यारे कोई वाघ अथवा सिंह प्रमुख मनुष्यनो आहार करनार जीव, तमने मारवा आ वेछे, तेथी मरीने तमे केम नाशी जाओछो ? अने ते प्राणीने नाना प्रकारना ह थीआर वगैरेनी सहायता वडे केम मारवा तैयार थाओछो ? अने जो ते जीव तमारा दावमां आवी जाए तो केम मारीनाखो छो ? जेम खुदाए तमने जीव मा रवाने फरमाव्युं छे तेम तेओने पण मनुष्य मारवाने फरमाव्युं छे ! ते प्रमाणे तेओ पोतानुं कृत्य करेछे ; तेओने मारवुं लायक नथी. जो तेओने मारवानुं त मने लायक दीशतुं होय, तो जे जीवोने तमे मारोछो, तेओए अथवा तेओने वा

स्ते कोई बीजा प्राणीए तमने मारवुं पण नालायक नथी; लायकज छे. माटे जेम वाघ वगैरे प्राणीओ जीव घातक होवाथी मारवा योग्य छे. तेम तमे पण जीव घातक होवाथी मारवा योग्य छो. एम तमारे कबूल करवुं जोइशे. जो कबूल नही करशो, तो खुदाना गुनेहगार ठरशो. माटे हे महामदीयन मुसलमीनो वगैरे, जीव मारवामां खुदानोहुकम होयज नही. जो एम होय तो खुदा रहम विनानो ठरे. खुदा तो रहमदिल छे, एवुं तमारा रसूलिल्लाए कुरानेशरीफमां फरमाव्युं छे. तेने बाध आवशे. ए उपरथी एवुं जणाय छे के, कोई एक पुरुषने कोई कारणने लीधे अचानक मांसनो आहार मली गयाथी, तेने तेनो स्वाद लागो तेथी, व्यसन पडी गयुं, ने पछी लोकापवादसारु खुदाए फरमाव्युं छे, एम कहीने बचारा खुदाने हिंसक ठेरव्यो जणाय छे. तेमां केटलो गुनाह छे! एनो विचारतो करो! ते प्राणीओने मारवाने खुदा फरमावे त्यारे बीजी अन्नादिक वस्तुओ पेदा शावास्ते करे? ए उपरथी साफ जणायछे के, अन्नादिक वस्तु खावायोग्य छे, पण मांस खावायोग्य नथी. तेम छतां जे जीभना स्वादने अर्थे खायछे ते राक्षसतुल्य जाणवा.

वली मुसलमीन प्रमुखने बीजुं युक्तिथी समजावे छे के, तमारा किताबोमां आबने पाक वस्तु कहीछे, अने पिशाबने नापाक वस्तु कहीछे. पाक वस्तुथी जे पेदाश थायछे, ते पाक कहेवायछे, अने नापाक वस्तुथी जे पेदाश थायछे ते नापाक कहेवायछे. जेम के, अन्न वगैरे पदार्थो जे पाणी थी पेदा थायछे, ते पाक छे; अने पिशाबथी जे कीटकादिक पेदा थायछे, ते नापाक छे. एवुं तमे पण मानो छो. परंतु तेम चालता नथी. केमके मांसाहार करो छो. जुओके प्राणिमात्र पिशाबनी पेदाश छे. ते पिशाब ज्यारे नापाक त्यारे तेथी पेदा थयेला प्राणीओ केम पाक होय! ते ओना मांसने तमे पाक मानो छो, ए केटली बेवकूफी छे वारु! जो मांसने पाक मानशो तो पिशाबने नापाक कहेवाशे नही; ने जो पिशाबने नापाक मानशो तो मांसने पाक मानशे नही. जेवुं कारण तेवो कार्य एवो दुनीयामां नियम छे. ज्यारे पिशाब जेवो मांस छे, त्यारे तेनो आहार कर्याथी दोजकमां गयाविना केम रहेशो! एनो पाको विचार करीने मांस भक्षण मूकी द्यो; अने पाक पाणीनी पेदाश अन्न फल, तथा फूल वगैरे अनेक स्वादिष्ट पदार्थोनो आहार करोने! परंतु तमे मानशो नही. केमके एतो जन्मनी आदत पडीगई छे. कह्युं छे के, तहाड जाए रुए ने आदत जाय भुए; तेम तमारी आदत हमणा जनार नथी; पण याद राखजो के कियामतने दहाडे जवाब देवो पडशे त्यारे आंखो, फाटीने पडोला थशे हो!

५७ नास्तिकः— याज्ञिक नास्तिको प्रश्न करे छे के, यज्ञनेविषे होम करवासारु जीवने मारवुं योग्य छे. केमके ए कृत्य शास्त्रविहित छे; माटे एमां पाप नथी; पण पुण्य छे. यज्ञनेअर्थे जे जीव मरे छे. ते स्वर्गमां जायछे; माटे ते केम न करवुं ?

आस्तिकः— यज्ञादिकने अर्थे जे जीवनी हिंसा करवी ते योग्य नथी. केमके, हिंसानो परिणाम ते पुण्य होयज नही; किंतु पाप होयछे. एवो नियम छे. जे शास्त्रोमां पशु होमवानुं कह्युं छे, ते शास्त्र नही पण कुशास्त्र छे. अने तेनी रचना करनारा मनुष्य नही पण मनुष्यरूपे राक्षस छे: एम निश्चय जाणवुं. जे पापने पुण्य माने तेना करतां बीजो पापी कोण! यज्ञमां होमायलुं जीव जो स्वर्गमां जतुं होय तो यज्ञ करनारा तथा करावनारा पोते होमाईने केम स्वर्गमां जता नथी! पोते एम करता नथी तेथीज जणाय छे के, ए कल्पित वचन छे; यज्ञमां पश्वादिकनो होम शिव, ब्रह्मा, अने विष्णु आदिक देवताओने अर्थे करेछे. अने तेनो बली भोग ते देवताओ लियेछे. ए वात जो साची होय, तो ते देवताओ मांसाहारी ठरशे. देवताओने जो मांस भक्षण करवानी आदत होय, तो तेओ मनुष्यना हाथे शासारु लीये! शुं तेओ पोते आहारने अर्थे मांस मेळवी शकता नथी? तेओ तो मोटा सामर्थ्यवान कहेवायछे. ते सामर्थ्य केम फोरवता नथी! जे जीवना मांसनो बलिदान तेओने आपेछे, ते जीवोनी उत्पत्ति पण तेओ पोतेज करेछे; एम तमे मानो छो. पोते जीवोने उत्पन्न करी तेने मनुष्यना हाथे मरावीने तेनो बलिदान पोते लेवो ए शुं देवताओने योग्य छे! एम तो कोई साधारण माणस पण करे नही, ते कृत्य देवताओने केम संभवे? जो ते देवताओने मांस भक्षण करवानी हौंस होय, तो पोताने माटे जुदीज जातना कोई जीव विनाना एवाज स्वादवाला पदार्थनी उत्पत्ति करी, ते पदार्थनो आहार करवाने शुं हरकत छे? माटे ए बधी वात मनकल्पित छे, उत्तम देवताओनेविषे एवी कल्पना करवी योग्य नथी. जो ए वात तमारा कह्या प्रमाणे साची होय, तो ते उत्तम देव नही, पण अधम कहेवाय. याज्ञिक लोको होमादिकने अर्थे जीवघात करी, तेनो बलिदान दीधाथी पोताने भक्त समजे छे. पण एहवुं भक्तनुं लक्षण होय नही; देवभक्तनुं अंतःकरण शुद्ध होयछे. तेमां मलिन वासना उत्पन्न थायज नही. जो मलिन वासनावालाने भक्त कहिये, तो अभक्त कोने कहीशुं! माटे एवुं हिंसारूप कृत्य करनारने भक्त मानवो नही; पण अभक्त मानवो. अने ते निश्चय नरकगामी छे, एमां रंचमात्र संशय आणवो नही.

५८ नास्तिकः— कोइ वेदधर्मी प्रश्न करे छे के, तमारा जैनमतमां जीवना स्वरूपा दिकनेविषे केवीरीते वर्णन करेलुंछे ? तेने उत्तर दिये छे के, सर्वज्ञ केवलीए आवी रीते कह्युं छेः—सर्व लोकनेविषे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय तथा पुद्गलास्तिकाय ए छ द्रव्य भरपूर छे. ए छए द्रव्य पोतपोताना गुण तथा पर्याये करी पूर्ण छे. सदा भावरूप छे. जगतनी स्थिति जेम वर्त्तमान कालमां छे, तेमज भूत कालमां हती, अने भविष्य कालमां पण एवी रीतेज जाणवी. ते मध्ये जीव अने पुद्गल अनंत काल लोलुपभूत छे. एटले जेम क्षीर तथा पाणी अने मृत्तिका तथा धातुनुं मिश्रण थयाथी एक रूप बनी जाय छे. तेम जीव तथा पुद्गलोपण एकरूपे रहे छे. समय समयने विषे नवां कर्म जीवबांधे छे. अने समय समयने विषे पूर्व कर्म निर्जरीने छूटी पण जाय छे. कर्मोनी उत्पत्ति तथा नाशमां ईश्वरनुं कांइ कारण पणुं नथी ईश्वर तो अकर्त्ता छे, तेने विषे कर्त्ता पणुं कल्पाय नही. माटे ईश्वर कोईनुं कारण नथी. काल, स्वभाव, नियत, पूर्व कर्म, तथा पुरुषाकार ए पांच कारणो उत्पत्तिना कह्यां छे. एणे करीनेज पुण्य पाप जन्य स्वर्ग नरकने विषे गमनागमन थाय छे. अने दंडकमां जे नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवतानी चोवीश गतिओ कही छे. ते प्रमाणे भवपरंपराने पामेछे. अने पोताना उपार्जेला शुभाशुभ कर्म भोगवे छे. ते ते भवने विषे ज्ञानावरणादिक आठ कर्मने अनुसारे वर्त्ते छे. जेम माटीनी भरेली तुंबी जलमां नाखीए तो ते माटीना भारने लीधे डूबी जाय छे. पछी जेम जेम ते माटी, तेमांथी ओछी थती जाय तेम तेम ते तुंबी उपर आवती जाय छे. ज्यारे बधी माटी नीकली जाय त्यारे पाणीनी उपर तरती रहे छे. पण पाणीथी उपर जाय नही तेवी रीते जीव पाप कर्मथी लेपायो थको अधोगतिने पामे छे. पछी जेम जेम ते कर्मनी न्यूनता थती जाय तेम तेम ते ऊर्ध्व गतिने पामतो जाय छे, ज्यारे बधा कर्मोनो नाश थई जाय छे. त्यारे ते जीव लोकाग्रने विषे प्राप्त थाय छे; पण तेनी उपर अलोकमां गमन करतो नथी, जेवी रीते तुंबी जलना योगे उंची आवे छे, तेम जीव धर्मास्तिकायना योगे लोकांत रूप ऊर्ध्व गति पामेछे.

वादी आशंका करे छे के, मनुष्य शाना बलथी सात राज लोक सुधी ऊर्ध्व गमन करे छे ? जीव तो चौदमे गुणठाणे अयोगी थाय छे. एनो उत्तर दिये छे के, जेम धनुष्यथी जे बाण छूटे छे. ते पूर्व जोरना बलथी चालेछे. तेने वचमां बीजो कोई चलावनारो जोई तो नथी. ज्यारे धनुष्यमांथी बाण छूटे छे, ते क्षणने विषेज नि

यमित ठेकाणे पहोतो एम समजवुं. ए विषय उपर बीजा पण चार दृष्टांतो छे. कुंनकारनो चक्र, अग्निनो धूमाडो, तथा एरंडीआ ए चार दृष्टांत वडे जाणी लेवुं.

५९ नास्तिकः—कर्मक्षय थया पछी जीव अलोकनेविषे केम जतो नथी! जो जायतो वचमां तेने कोण रोकनारो छे?

आस्तिकः—चलन शक्तिने सहाय आपनारुं जे धर्मास्तिकाय द्रव्य, तेनुं त्यां आलंबन नथी. धर्मास्तिकाय द्रव्य लोक प्रमाणेज छे. ते थकी अधिक नथी. तेथी अलोकमां जवाने जीव तथा पुद्गलनी गति थती नथी.

६० नास्तिकः—कर्मोनो क्षय करीने सिद्धावस्थाने पामेलां जे सिद्ध जीवो ते सिद्धक्षेत्र समश्रेणीए जायछे. पण स्थानांतरनेविषे जता नथी तेनुं कारण शुं?

आस्तिक--ते समयनेविषे कोई प्रेरक नथी. प्रेरणाविना चक्रभ्रमण थाय नही. तेथी सिद्धना जीवो समश्रेणीए सिद्धसिला उपर जायछे.

६१ नास्तिकः—सिद्धने शरीरनो अनाव थायछे. त्यारे अवगाहना केम कही छे?

आस्तिकः—जेम ढारानुं वासण बनाववाने अर्थे प्रथम तेना जेवो मेणनो आकार करवो पडेछे. तेमां ते रस ओत्याथी ते धातुनो तेवो आकार थायछे. ते वासण मेणथी छूटुं कर्या पछी पण मेणनो आकार थायछे. कदाच मेण गाली नाखीए तो पण ते आकारपणुं जतुं नथी, केमके वासणनो आकार जे कायम रहेछे. ते पण ते मेणना आकार जेवोज छे; तेथी आकारपणुं कायम रहेछे. तेम जीव जे शरीराकारे थयोछे. ते शरीरनो अनाव थया पछी पण सिद्ध पुरुषनो आत्मा ते शरीरनी अवगाहनारूपे रहेछे. एटले आउखाने अंते जेवो सिद्धना शरीरनो आकार रहेछे. तेवोज जीवना प्रदेशोनो अरूपी आकार रहेछे.

६२ नास्तिकः--जेम जलमां जल मले ते एकरूपे थई जायछे. निन्नता देखाती नथी, तेम अनंत सिद्ध एकरूपे थई रहेछे के चेतन द्रव्यपणुं जुदुं जुदुं छे.

आस्तिकः— ज्यारे जलना बिंदुओ मलीने एक जलनो पिंड थाय; त्यारे एक ज जल कहेवायछे. पण ज्यारे जलना बिंदु जुदा जुदा होय त्यारे बिंदु कहेवायछे. एक जल कहेवाय नही. तेम सिद्ध पणे सर्व एकज छे; परंतु चेतन द्रव्ये करी सर्व निन्न निन्न छे. ते उपर दृष्टांत; जेम अनेक शीपीओथकी उत्पन्न थएला अनेक मोतीओ जुदा जुदा होयछे, तेओमांना केटलाएक लईने एक मोटो ढगलो करिये. ने पछी तेओ विषे विचार करिये के ए ढगलामां एकता अनेकता शुं छे? तो तरत जणाशे के ते मोतीओ उज्वलता गुणरूपे सर्व एक छे. पण

आकाररूपे सर्व जुदा छे. तेम सिद्धो सर्व सिद्धतारूपे तो एक छे. पण चेतन द्रव्य रूपे जुदा छे, एविषे धान्यना पुंज वगेरे घणा दृष्टांतो छे तेथी विचारी लेवुं. वळी सर्व सिद्धोनुं सिद्धरूपपणुं एक सरखुं होवाथी जाति वाचकपणे तेओ एकज कहेवाय; पण द्रव्यपणे अनंता कहेवायछे, माटेज जगतमां एवी वदंता छे के, "प्रभु एकमां अनेक छे, अने अनेकमां एक छे" कोई सिद्धमां मोटा नाहनापणुं नथी, सर्व समान छे. मोटामां मोटापणुं तेनी पोतानी अपेक्षा ए नथी थतुं पण बीजा नाहनानी अपेक्षा ए थायछे, मोटो पोताना स्वरूपे करी शुं मोटापणुं पामेछे, जो मोटो कहेशुं तो कोई काळे नाहानो थवानो संभव थशे! अने नहानो थयाथी स्वरूपमां अपूर्णता थशे, माटे सिद्ध बधा सरखा छे. एम जाणवुं. अने सिद्ध जनना कर्मना अंश सर्व क्षय थई गयाथी पुनरपि जगतमां आगमन थतुं नथी. जेम भुंजेला अनाजना दाणाने पृथवीमां वावीए तो ते उगे नही; तेम सिद्ध पण पाछा संसारी जीव थाय नही. केमके संसारमां आववुं कर्म विना थतुं नथी.

६३ नास्तिकः– ईश्वर पृथ्वीनो भार उतारवाने अर्थे अवतार धारण करेछे ए वात सत्य छे के मिथ्या?

आस्तिकः– ईश्वरने तो कोई शत्रु मित्र भाव नथी. तेम छतां दानवने मारवासारु तथा देवताओने निर्भय सुखी करवासारु अवतार धारण करे तो दानव शत्रु अने देवता मित्र ठर्या के नही! जेने शत्रु मित्र भाव होय तो ते ईश्वर शानो! अने दानवोने प्रथम उत्पन्न शासारु कर्या के जेओने मारवासारु पोताने माताना उदरमां आवी नाना प्रकारनी वेदनाओ सहन करी संग्रामादिक आपत्ति वेठवी पडी! वळी दानव अने देवताओनो ईश्वर तो एकज छे, सर्वमां तेज ईश्वरनी कळा छे. तेम छतां दानवनी उत्पत्ति करी तेथी ईश्वरमां अज्ञानपणुं आवशे संसारमां त्रण प्रकारना जीव होय छे. एक धर्मी, बीजा पापी, त्रीजा महापापी. जे कोईने मारे नही ते धर्मी कहेवायछे. जे बीजा जीवने मारे ते पापी कहेवायछे ने जे पोताना जीवनो घात करे ते महापापी कहेवायछे. ईश्वरे देव तथा दानव वगेरेनी उत्पत्ति करी तेमां पोते अंशरूपे प्रवेश कर्यो छतां तेओने मार्याथी आत्मघाती ठरशे ने तेम ठर्याथी महापापी कहेवाशे.

६४ नास्तिकः–स्नाने करीने शुद्ध थवुं ए मुक्तिनुं अंग छे.

आस्तिकः–पेटमां रोग होय ने शरीरनी बाहेर लेप लगाडीए तो ते रोग कदी मटे नही. तेम आत्माना कर्म विकार ते शरीर शुचियी कोई काळे जाय नही. ए

उपर दृष्टांत कहुं छुं. जेम कोई मोटी हवेलीमां बालक मूत्स्यो होय ते शुद्ध करवा ने जेटली भूमि बगडी होय तेटलीज धोवी जाइये. तेम शरीररूप हवेली कर्मे करी मलीन थई होय तेटलीज तपस्यायें करी शुद्ध करवी. पण आखा शरीरने स्नान, मज्जन, स्वच्छ वस्त्रादिक, तथा सुगंध्यादिक करवानुं कांई काम नथी; स्नान तो सोल शृंगारमांनो प्रथम शृंगार छे. ते सर्व शृंगारनो त्याग करे त्यारे ब्रह्मचारी कहेवाय. कर्म निर्जराने अर्थे मुनिने ब्रह्मचर्य व्रत पालवो कह्यो तेथी पण स्नान करवुं नही एवुं सिद्ध थाय छे.

६५ नास्तिकः—यह दुनिया सब खुदाने पैदा करी है.

आस्तिकः—यह दुनिया सब खुदाकी करी होवें तो जो खुदाका बंदा हरवखत खुदाकी बंदगी करै, कुरान बांचे, नमाज करे, औ रोजा रखें, तिसीकूं दुनीयांकी नियामते जैसेकी आल औलाद औ पैसा वगेरा मिलना चाहिये; औ हिंदु वगेरा सब फकीरके माफक होना चाहिये. तैसे तो नही होता है. दूसरे भी अछी सल्तीनत वाले आंखोके सामने मौजूद है. इस वास्ते ये बात रास्त नही है जो होवें है सो सब तकदीरसें होवें है.

६६ नास्तिकः— आ संसार रामे उत्पन्न कर्यो छे.

आस्तिकः— जो आ जगत रामनुं उपजावेलुं होय. तो जेओ हमेश रामनी भक्ति करेछे. पुराण वांचेछे. वंदना करेछे. तथा एकादशी आदिक व्रत राखेछे तेओने सर्व द्रव्यादिक संपत्ति मलवी जोये. बीजाओने विपत्ति होवी जोये. तेम तो दीठामां आवतुं नथी. बीजा मुसलमानादिक पण महा संपत्तिवान दीठामां आवे छे तेथी बधुं कर्माधीन छे.

६७ नास्तिकः— अंगदान (कन्यादान) दीधाथी पुण्य थाय छे. केमके. स्त्रीपुरुष हलीमली मैथुन क्रियाना सुखने पामे छे. तेनुं फल दानदेनाराने थायछे.

आस्तिकः—भाई, तारा जेवो पूर्वपक्षी तो एके मल्यो नथी. तें तो आडो आंक वाल्यो. पण भाई, मैथुन क्रिया तो सर्व थकी अशुद्ध छे; यवन लोको पण इमामना दशरानी क्रिया करेछे; त्यारे मैथुन सेव्याना वस्त्र पहेरीने करता नथी केमके ते वस्त्रने तेओ नापाक कहेछे. तेमज हिंदुओ देवपूजामां. व्रतने दिवशे तथा तीर्थयात्रामां मैथुननो त्याग करेछे. जे मुमुक्षु (मुक्तिनी इछा करतो होय) तेणे प्रथम मैथुननो त्याग करवो. ए कृत्य नरकनो हेतु होवाथी सर्वथा निंदनीक छे.

इति श्री आस्तिक नास्तिकनो संवाद संक्षिप्त रूपें समाप्तः

॥ ॐ श्री जिनाय नमः ॥

अथ श्रीयशोविजयजी उपाध्यायकृत सम्यक्तना सडसठ बोलनी सज्झाय प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ ॥ सुकृत वल्लिकादंबिनी । समरी सरसति मात ॥ समकित सडसठ बोलनी । कहिशूं मधुरी वात ॥ १ ॥ समकित दायक गुरुतणो । पञुवयार न थाय ॥ भव कोडाकोडे करी । करतां सर्व उपाय ॥ २ ॥ दानादिक किरिया न दिये । समकित विण शिवशर्म ॥ तेमाटे समकित वडूं । जाणो प्रवचन मर्म ॥३॥ दर्शन मोह विनाशथी । जे निर्मल गुणगण ॥ ते निश्चय समकित कह्यो । तेहना ए अहिगण ॥ ४ ॥ ॥ ढाल ॥ देइ देइ दरसण आपणू, एदेशी ॥ ॥ चउ सद्दहणा तिलिंग छे । दशविध विनय विचारोरे ॥ त्रिण शुद्धि पण दूषण । आठ प्रभाविक धारोरे॥ ५॥त्रूटक॥प्रभाविक अड पंच भूषण । पंच लक्षण जाणियें॥ षट् जयण षट् आगार भावन । छविहा मन आणियें ॥ ५ ॥ षट ठाण समकित तणा सडसठ । भेद एह उदार ए ॥ एहनो तत्व विचार करतां । लहीजे भवपार ए ॥६॥ ढाल ॥ चहु विह सद्दहणा तिहां । जीवादिक परमत्थोरे ॥ प्रवचनमां जे भाषिया । लीजे तेनो अत्थोरे ॥ ७ ॥ त्रूटक ॥ तेहनो अर्थ विचार करिये । प्रथम सद्दहणा खरी ॥ बीजी सद्दहणा तेहना जे । जाण मुनिगुण जवहरी ॥ संवेग रंग तरंग झीले । मार्ग शुद्ध कहे बुधा ॥ तेहनी सेवा कीजिये जिम । पीजिये समता सुधा ॥ ८ ॥ ढाल ॥ समकेत जेणे ग्रही वमिऊं । निन्हव ने अहछंदारे ॥ पासत्थाने कुशीलिया ते । वेषविडंबक मंदारे ॥ ९ ॥ त्रूटक ॥ मंदा अनाणी दूर छंडो । त्रीजी सद्दहणा ग्रही ॥ परदर्शनीनो संग तजिये । चोथी सद्दहणा कही ॥ हीणातणो जे संग न तजे । तेहनो गुण नवि रहे ॥ ज्यूं जलधि जलमां भल्यूं गंगा । नीर लूणपणू लहे॥ १०॥ ॥ ढाल ॥ कपूर होवे अति ऊजलूं रे; एदेशी ॥ ॥ त्रण लिंग समकित तणारे । पहिलो श्रुतअभिलाष ॥ जेहथि श्रोता रस लहेरे । जेवो साकर द्राखरे। प्राणी, धरियें समकित रंग । जिम लहिये सुख अभंग रे । प्राणी. टेक ॥ ११ ॥ तरुण सुखी स्त्री परिवर्योरे चतुर सुणे सुरगीत॥ तेहथि रागे अति घणो रे । धर्म सुण्यानी रीत रे । प्राणी० ॥ १२ ॥ भूख्यो अटवी ऊतर्यो रे । जिम द्विज घेवर चंग ॥ इच्छे तिम जे धर्मने रे । तेहिज बीजूं लिंग रे । प्राणी० ॥ १३ ॥ वैयावच्च गुरु देवनूं

रे । त्रीजुं लिंग उदार ॥ विद्या साधक तणि परे रे । आलस नविय लगार रे । प्राणी० ॥१४॥ ॥ढाल॥ प्रथम गोवालातणे जवेजी, ए देशी॥ ॥अरिहंत ते जिन विचरता जी ॥ कर्म खपी हुआ सिद्ध ॥ चेइय जिण पडिमा कही जी । सूत्र सिद्धांत प्रसिद्ध । चतुर नर, समजो विनय प्रकार । जिम लहिये समकित सार । चतुर० ॥ १५ ॥ धर्म खिमादिक जाखेओ जी । साधु तेहना गेह ॥ आचारय आचारना जी । दायक नायक जेह । चतुर० ॥ १६ ॥ उपाध्याय ते शिष्यने जी । सूत्र जणावण हार ॥ प्रवचन संघ वखाणिये जी । दरसण समकित सार । चतुर० ॥ १७ ॥ जगति बाह्य प्रतिपत्तिथी जी । हृदय प्रेम बहुमान ॥ गुण थुति अवगुण ढांकवा जी । आशातननी हाण । चतुर० ॥ १८ ॥ पांच जेद ए दश तणो जी । विनय करे अनुकूल ॥ सीचे तेह सुधा रसें जी । धर्म वृक्षनूं मूल । चतुर०॥ ॥१९॥ ढाल॥ ॥धोबीडा तूं धोए मननूं धोतीयू रे॥ ॥एदेशी॥ ॥त्रण शुद्धि समकिततणी रे । तिहाँ पहिली मन शुद्धि रे ॥ श्री जिनने जिनमत विना रे । जूठ सकल ए बुद्धि रे॥ चतुर विचारो चित्तमां रे । टेक ॥ २० ॥ जिन जगतें जे नवि थयुं रे । तेबीजाथि नवि थाय रे॥ एवुं जे मुख जाखिये रे । ते वचन शुद्धि कहिवाय रे । चतुर० ॥ २१॥छेद्यो जेद्यो वेदना रे । जे सहतो अनेक प्रकाररे ॥जिण विण पर सुर नवि नमे रे । तेहनी काया शुद्ध उदाररे । चतुर० ॥२२॥ ॥ढाल॥ मुनि जन मारगनी, ए देशी ॥ ॥ समकित दूषण परिहरो । तेमां पहिली छे शंका रे ॥ ते जिन वचन मां मत करो ॥ जेहने समनृप रंका रे । समकित दूषण परि हरो ॥ टेक ॥ २३॥ कंखा कुमतनी वांछना । बीजूं दूषण तजिये ॥ पामी सुरतरु परगडो । किमबाऊल जजिये ॥ समकित०॥ २४ ॥ संशय धर्मना फलतणो । वितिगिछा नामे ॥ त्रीजूं दूषण परिहरो । निज शुज परिणामे ॥ समकित० ॥ २५ ॥ मिथ्यामति गुण वर्णनो । टालो चोथो दोष॥ उन्मारगि थुणतां हुवे । उनमारग पोष ॥ समकित० ॥ २६ ॥ पांचमो दोष मिथ्यामती । परिचय नवि कीजे ॥ इम शुज मति अरविंदनी । जली वासना लीजे ॥ समकित० ॥ २७ ॥ ॥ ढाल ॥ जोलिडा हंसारे विषय न राचीये, ए देशी ॥ आठ प्रजाविक प्रवचनना कह्या । पावयणी धुरि जाण ॥ वर्त्तमान श्रुतना जे अर्थनो । पार लहे गुण खाण ॥ धन धन शासन मंडन मुनिवरा । टेक० ॥ २८ ॥ धर्म कथी ते बीजो जाणिये । नंदिखेण परि जेह ॥ निज उपदेशेरे रंजे लोकने । जंजे हृदय संदेह । धन धन० ॥२९॥ वादी त्रीजोरे तर्क निपुण जण्यो । मल्लवादी परि जेह ॥ राज द्वारेरे जयकमला वरे । गाजंतो जिम

मेह । धन धन० ॥ ३० ॥ जद्रबाहु परि जेह निमित्त कहे । परमत जीपण काज ॥ तेह निमित्तीरे चोथो जाणिये । श्री जिनशासन राज । धन धन० ॥ ३१ ॥ तप गुण ऊपर रोपे धर्मने । गोपे नवि जिन आण ॥ आश्रव लोपेरे नविकोपे कदा । पंचम तपसी जाण । धन धन० ॥ ३२ ॥ छगे विद्यारे मंत्र तणो बलि । जिम श्रीवयर मुणिंद ॥ सिद्ध सातमोरे अंजन योगथी । जिम कालिक मुनि चंद । धन धन० ॥ ३३ ॥ काव्य सुधारस मधुर अर्थ नया । धर्म हेतु करि जेह ॥ सिद्धसेन परि नरपति रीझवे । अष्टम वर कवि तेह । धन धन० ॥ ३४ ॥ जब नवि होवे प्रजाविक एहवा । तव विधि पूरव अनेक ॥ जात्रा पूजादिक करणी करे । तेह प्रजाविक छेक । धन धन० ॥ ३५ ॥ढाल॥ सतीय सुनडानी । ए देशी ॥ ॥ सोहे समकित जेहथी । सखि जिम आजरणे देह ॥ नूषण पांच ते मन वस्यां । सखी मन वस्यां । तेमां नही संदेह । मुझ समकित रंग अचल होयो । टेक० ॥ ३६ ॥ पहिलुं कुशलपणुं तिहां । सखी वंदन ने पच्चखाण ॥ किरियानो विधि अति घणो । सखी आचरे तेह सुजाण । मुझ० ॥ ३७ ॥ बीजूं तीरथ सेवना । सखी तीरथ तारे जेह ॥ ते गीतारथ मुनिवरा । सखी तेहसूं कीजे नेह । मुझ० ॥ ३८ ॥ जगति करे गुरु देवनी । सखी त्रीजूं नूषण होय ॥ किणहि चलाव्यो नवि चले । सखि चोथुं नूषण जोय । मुझ० ॥ ३९ ॥ जिनशासन अनुमोदना । सखी जेहथी बहु जन हुंत ॥ कीजे तेह प्रजावना । सखी पांच नूषणनी खंत । मुझ० ॥ ४० ॥ ॥ ढाल ॥ इम नवि कीजे हो, ए देशी ॥ ॥ लक्षण पांच कह्यां समकित तणा । धुर उपशम अनुकूल । सुगुण नर ॥ अपराधी सूं पण नवि चितथकी । चिंतवियें प्रतिकूल । सुगुण नर । श्री जिनजाषित वचन विचारिये । टेक० ॥ ४१ ॥ सुरनर सुख जे दुःख करि लेखवे । वंछे शिवसुख एक ॥ सु० ॥ बीजूं लक्षण ते अंगीकरे । सार संवेग सुंटेक । सु० । श्रीजिन० ॥ ४२ ॥ नारक चारक सम जव ऊजग्यो । तारक जाणिने धर्म । सु० ॥ चाहे निकलवुं निर्वेद ते । त्रीजूं लक्षण मर्म । सु० । श्री जिन० ॥ ४३ ॥ द्रव्यथकी दुःखियानी जे दया । धर्महीणानी जाव । सु० ॥ चोथुं लक्षण अनुकंपा कही । निज शकते मनल्याव । सु० श्रीजिन० ४४ ॥ जे जिन जाख्युं ते नहि अन्यथा । एहवो जे दृढ रंग । सु० ते आस्तिकता लक्षण पांचमुं । करे कुमतिनो ए जंग । सु० । श्रीजिन० ॥ ४५ ॥ ॥ ढाल ॥ जिन जिन प्रति वंदन दिसे, ए देशी ॥ पर तीर्थी परना सुर तेणे । चैत्य ग्रह्यां वलि जेह ॥ वंदन प्रमुख तिहां नवि करवुं । ते जयणा षट जेय रे ।

भविका, समकित यतना कीजे । टेक० ॥ ४६ ॥ वंदन ते कर जोडन कहिये । न मन ते शीस नमाडे । दान इष्ट अन्नादिक देवूं । गौरव भगति देखाडेरे । भवि का० ॥ ४७ ॥ अनुप्रदान ते तेहने कहिये । वार वार जे दान ॥ दोष कुपात्रे पात्र मतिये । नहि अनुकंपा मान रे । भविका० ॥ ४८ ॥ अण बोलावे जेह भा खवूं । ते कहिये आलाप ॥ वार वार आलाप जे करवो । ते कहिये संलाप रे । भविका० ॥४९॥ ए जयणाथी समकित दीपे । वलि दीपे व्यवहार ॥ एमां पण कारणथी जयणा । तेना अनेक प्रकार रे । भविका० ॥ ५० ॥ ढाल ॥ ललना नीदेशी ॥ शुद्ध धरमथी नवि चले । अति दृढ गुण आधार ललना ॥ तो पण जे नवि तेहवा । तेहने एह आगार । ललना ॥ ५१ ॥ बोल्युं तेहवुं पालिये । दंति दंत सम बोल । ललना ॥ सज्जनना दुर्जन तणा । कच्छप कोटिने तोल । ल लना॥बो०॥५२॥राजा नगरादिक धणी । तस शासन अभियोग । ललना । तेहथी कार्त्तिकनी परे । नहि मिथ्यात संयोग । ललना ॥बो०॥५३॥मेलो जननो घण कह्यो । बल चोरादिक जाण । ललना ॥ क्षेत्रपालादिक देवता । तातादिक गुरु गण । ल लना॥बो०॥५४॥वृत्ति दुर्लभ आजिविका । ते भीखण कंतार । ललना ॥ ते हेते दू षण नही । करतां अन्य आचार । ललना ॥बो०॥५५॥ढाल॥राग मल्हार॥ भाविजे रे समकित जेहथी रुअडूं॥ते भावनारे भावो मनकरि परवडूं ॥ जो समकित रे ताजूं साजूं मूल रे ॥ तो व्रत तरु रे दीये शिवपद अनुकूल रे॥५६॥त्रूटक॥ अनुकूल मू ल रसाल समकित । तेहविण मति अंध रे ॥ जे करे किरिया गर्व भरिया । तेह जूठो धंध रे ॥ ए प्रथम भावना गुणो रुअडी । सुणो बीजी भावना ॥ बारणूं समकि त धर्मपुरनुं । एहवीते पावना॥५७॥ढाल॥त्रीजी भावना रे समकित पीठ जो दृढ स ही ॥ तो मोटो रे धर्म प्रासाद डगे नही ॥ पाइये खोटे रे मोटो मंमाण न शोभी ये ॥ तेह कारण रे समकितसूं चित थोभीयें ॥५८॥त्रूटक॥थोभीयें चित नित एम भावी । चोथी भावना भाविये ॥ समकित निधान समस्त गुणनुं । एहवुं मन लाविये ॥ तेह विण छूटा रत्न सरिखा । मूल उत्तर गुण सवे ॥ किम रहे ताके जेह हरवा । चोर जोर भवे भवे ॥५९॥ढाल॥ भावो पंचमी रे भावना सम दम सार रे पृथवी परे रे समकित तस आधार रे ॥ छठी भावना रे भाजन समकित जो मि ले ॥ श्रुत शीलनो रे तो रस तेहमां नवि ढले॥६०॥त्रूटक॥नवि ढले समकित भाव ना रस । अमियसम संवरतणो ॥ षट भावना ए कही एहमां । करो आदर अ ति घणो ॥ इम भावता परमार्थ जलनिधि । होइ निबु झकझोल ए ॥ घन पवन

पुण्य प्रमाण प्रगटे। चिदानंद कल्लोल ए॥ ६१ ॥ढाल॥जे मुनिवेष सके नवी छंमी ए देशी॥ ठरे जिहां समकित ते थानक। तेहना षट विध कहिये रे॥ तिहां पहिलुं थानक क छे चेतन। लक्षण आतम लहियें रे॥ खीर नीर परें पुग्गल मिश्रित। पण एहथी छे अलगो रे॥ अनुभव हंस चंच जो लागे। तो नवि दीसे वलगो रे॥ ६२॥ बीजूं थानक नित्य आतमा। जे अनुभूत संभारे रे॥ बालकने स्तन पान वासना। पूरव भव अनुसारे रे॥ देव मनुज नरकादिक तेहना। छे अनित्य पर्याय रे॥ द्रव्यथकी अविचलित अखंमित। निज गुण आतमराय रे॥ ६३ ॥ त्रीजूं थानक चेतन कर्त्ता। कर्मतणे छे योगे रे॥ कुंभकार जिम कुंभतणो जे। दंमादिक संयोगे रे॥ निश्चयथी निज गुणनो कर्त्ता। अनुपचरित व्यवहारे रे॥ द्रव्य कर्मनो नगरादिकनो। ते उपचार प्रकारे रे॥ ६४ ॥ चोथूं थानक छे ते भोक्ता। पुण्य पाप फल केरो रे॥ व्यवहारे निश्चय नय दृष्टें। भुंजे निज गुण नेरो रे॥ पंचम थानक छे परम पद। अचल अनंत सुख वासो रे॥ आधि व्याधि तन मनथी लहिये। तसु अभावे सुख खासो रे॥ ६५ ॥ छठुं थानक मोक्षतणू छे। संयम ज्ञान उपायो रे॥ जोसहिजे लहिये तो सघले। कारण निःफलथायो रे॥ कहे ज्ञान नय ज्ञानज साचूं। ते विण कूठीकिरिया रे॥ न लहे रूपू रूपू जाणी। सीप भणी जे फिरियारे॥ ६६ ॥ कहे किरियानय किरियाविण जे। ज्ञान तेह सूं करशो रे॥जल पेसी कर पद न हलावे। तारू ते किम तरसे रे॥ दूषण भूषण छे इहां बहुला। नय एकेकने वादे रे॥ सिद्धांति ते बेहु नय साधे। ज्ञानवंत अप्रमादे रे॥ ६७ ॥ इणि परे सडसठ बोल विचारी। जे समकित आराहे रे॥ राग द्वेष टाली मन वाली। ते समसुख अवगाहे रे॥ जेहनो मन समकितमां निश्चल। कोइ नही तस तोले रे॥ श्री नय विजय विबुध पय सेवक। वाचक जस इम बोले रे॥ ६८ ॥

॥ इति श्री सम्यक्त सडसठबोल सज्झाय समाप्तः

ॐ श्री जिनाय नमः

अथ श्री शृंगारवैराग्यतरंगिणीप्रारंभः

संस्कृतटीकाना कर्त्ता आरंभमां मंगलाचरण करेछे.

उपजातिवृत्तं ॥ श्रीपार्श्वनाथं प्रणिपत्य भक्त्या पुरि स्थितं श्रीफलवर्धिकायां ॥ शृंगारवैराग्यतरंगिणी या व्याख्याननाव्या क्रियते मया सा ॥ १ ॥

अर्थः– श्रीफलवर्द्धिकानामनी पुरीनेविषे स्थित श्रीपार्श्वनाथ भगवानने भक्तिवडे प्रणाम करीने शृंगारवैराग्यतरंगिणी नदीनी नाविकारूप व्याख्या हुं करुंछुं.

अवतरण–श्रीसोमप्रभाचार्य, वैराग्यनी वासनावडे शृंगारने दूषित करनार छतां आ शृंगारवैराग्यतरंगणी नामनो ग्रंथ करवानी कामनाएकरी स्त्रीनुं रूप निंदा करवा योग्य छे एवुं प्रतिपादन करेछे. ॥ १ ॥

शार्दूलविक्रीडितंवृत्तम् ॥ धर्मारामदवाग्निधूमलहरीलावण्य लीलाजुप स्तन्वंग्या यमितान्विलोक्य तदहो वालान्किमु त्कंठसे ॥ व्यालान् दर्शनतोपि मुक्तिनगरप्रस्थानविघ्नक्ष मान् मत्वा दूरममून् विमुंच कुशलं यद्यात्मनो वांछसि ॥ २॥

अर्थः–अहो ! आ धर्मरूप वनमेविषे दावाग्निना धुमाडानी पंक्तिना जेवा श्यामवर्णवाला, सूक्ष्मअंगयुक्त शरीरवाली स्त्रीओना बांधेला जे वालो छे, तेने जोईने तूं केम आनंदने पामेछे ? जो तूं पोतानुं सारुं थवानी इच्छा करतो हो तो, जेना दर्शनेकरी मुक्तिरूप नगरीना मार्गमां विघ्न थायछे, एवा वालोने व्याल (सर्प) रूप मानीने दूरथी त्याग कर. एणेकरी वैराग्यरस दर्शावीने शृंगारने दूषित कर्योछे; जेम सर्प लांबा अने काला होयछे, तेमज स्त्रीना वाल पण लांबा अने काला होवाथी, तेओनुं सादृश्यपणुं कह्युंछे; जेम सर्पने जोतांज आपणे दूर नाशी जैये छैये, तेम ते वालोने जोतांज तेओनो तिरस्कार करवो जोइये. शकुनशास्त्रमां कह्युंछे के, कोई बाहेर गाम कामे जतो होय ते वखते जो मार्गमां साप मले तो ते काममां विघ्न पडतां ते कार्यनी सिद्धि थाय नही; तेमज

मुक्तिरूप नगरीना मार्गमां स्त्रीना वालरूप सर्प जो आडे आवे एटले तेओमां मोह उत्पन्न थाय तो मोटो विघ्न थायछे, माटे ए सर्वथा त्याग करवा योग्य छे. उपर कह्युं के, स्त्रीओना बांधेला वालने व्यालरूप जाण; ए ठेकाणे कविए चमत्कार राख्यो छे के, वालशब्दमां यकार मळ्याथी व्यालशब्द थायछे; माटे वालने व्याल कहेवुं योग्य छे. एने श्लेषालंकार कहेछे.

आ वृत्तमां, सर्प चालती वखते जेम वांकोचूको थई जायछे; तेम स्त्रीना केश विंटडीआला होय तेने कविलोको श्रेष्ठ कहेछे. अने जेम सर्पनो रंग अति कालो होयछे, तेम स्त्रीना अति काला रंगवाला वाल होय, तो ते श्रेष्ट कहेवाय छे. एवी रीते वालनी जे श्रेष्ठता छे, ते विषयक शृंगार रस दर्शाव्योछे. अने जेम मार्गमां सर्प आडो आवे तो कार्यसिद्धि थाय नही; तेम गुणस्थानक निसरणी चडतां पुरुषने वचमां स्त्रीना केशनो मोह उत्पन्न थयो तो तेथी श्रेणी आरोहनी सिद्धि थती नथी; एवी रीते वालनी जे निर्भर्त्सना कीधीछे ते विषयक वैराग्य रस दर्शाव्योछे. ॥ १ ॥

ये केशा लसिताः सरोरुहदृशां चारित्रचंद्रप्रभाभ्रंशां
भोदसहोदरास्तव सखे चेतश्चमत्कारिणः ॥ क्लेशान्मू
र्त्तिमतोऽवगम्य नियतं दूरेण तानुत्सृजेर्नोचेत् कष्टपरंप
रापरिचितः शोच्यां दशामेष्यसि ॥ २ ॥

अर्थः– हे सखा, कमलपत्रना जेवां नेत्रोवाली स्त्रीना देदीप्यमान केश, चारित्ररूप चंद्रनी ज्योतिनो नाश करवाविषे मेघजेवा छे; अने जे तारा अंतःकरणमां चमत्कार उत्पन्न करेछे, तेओ मूर्त्तिमान चक्षुरिंद्रियगम्य क्लेश छे; एम निश्चय जाणीने दूर नाखी दे. जो एओनो तुं त्याग करीश नही, तो तुं कष्टपरंपराए युक्त थयोथको शोक करवायोग्य अवस्थाने पामीश. आ श्लोकमां स्त्रीना केशने क्लेशनुं सादृश्य कह्युंछे, ते आवी रीते "लसित" ए शब्द मूलमां छे, एनो अर्थ लकारे करी सित केहेतां युक्त, केशशब्दनो क्लेश शब्द थायछे.

आ वृत्तमां, मेघना वर्णनी साथे स्त्रीना केशनी बराबरी करीछे. जेम आकाशने विषे मेघ अति शोभायमान दीठामां आवेछे, तेम स्त्रीना मस्तकनेविषे केश अति लसित एटले देदीप्यमान दीठामां आवेछे. स्त्रीनां केश जे चलकता होय ते श्रेष्ठ कहेवायछे. ए मुख्य केशनी श्रेष्ठतानो विषय कहेतां अंतरगत ते केश

धारण करनारी स्त्रीनां नेत्रोने कमलपत्र जेवां कह्यांछे; ए बधो शृंगार रस जाणवो. अने स्त्रीना एवा केश जोईने पुरुषना अंतःकरणमां मदनादि विकाररूप चमत्कार उत्पन्न थायछे, माटे ते क्लेशरूप कह्याछे; केमके, कामादि विकारो क्लेशरूप कह्याछे, क्लेशो अंतरना विषय होवाथी चक्षुना विषय नथी, तेओएज जाणे केशरूप मूर्त्ति धारण करी होय नी! एवी उत्प्रेक्षा थायछे. ए कारणथी स्त्रीना देदीप्यमान केशने क्लेशरूप जाणीने तेनो तुं त्याग कर; एवडे वैराग्य रस दर्शाव्योछे.॥२॥

वसंततिलकावृत्तम्॥ ये शुद्धबोधशशिखंडनराहुचंचत्कृत्तं
हरंति तव वक्रकचा दृशांग्याः ॥ ते निश्चितं सुकृतमर्त्य
विवेकदेहनिदारणे ननु नवक्रकचाः स्फुरंति ॥ ३ ॥

अर्थः— हे पुरुष, निर्मल ज्ञानरूप चंद्रनुं ग्रासन करवाविषे, स्त्रीना वांका केश, राहु जेवा क्रूर छे. ते तारा अंतःकरणमां चमत्कार उत्पन्न करेछे. अर्थात् राहु जेम चंद्रनो ग्रास करेछे, तेम ए वांका केश तारा ज्ञाननो नाश करनारा छे. अने ते जाणे सुकृतरूप मनुष्यना विवेकरूप देहनुं विदारण करवाने नवी कर्वतज होयनी! ए उत्प्रेक्षा छे. एमां "वक्र कच" एटले वांका केश ते "नवक्रकच" एटले नवी करवतना जेवा छे. एमकह्याथी श्लेषरूप चमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, स्त्रीना वांका केश होय ते श्रेष्ट कह्याछे. स्त्रीना वक्रकेश पुरुषना मनने मोहित करेछे, एथीज अंतःकरणमां चमत्कार उत्पन्न करेछे एम कह्युंछे, माटे ए शृंगार रस छे; अने स्त्रीना वांका केशनुं दर्शन थतांज पुरुषनुं मन विव्हल थायछे, देहनी पण शुद्धि रहेती नथी. अने ज्ञाननो नाश थई जायछे तेथी तेओने राहुरूप कह्याछे. तेमज विवेकरूप शरीरने कापवाने नवी कर्वत जेवा कह्याछे, एवा जाणीने तेओनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस जाणवो. ॥३॥

उपजातिवृत्तम्॥अलंकृतं कुंतलभारमस्या विलोक्य लोकः कुरुते
प्रमोदम्॥वैराग्यवीरच्छिदुरं दुरंत ममुं न किं पश्यसि कुंतभारम्॥४॥

अर्थः—हे पुरुष, पुष्पादिकेकरी गूंथेला स्त्रीना बांधेला केशोनो समूह एटले आंबोडो जोईने लोक आनंदने पामेछे; परंतु ए वैराग्यरूप वीरनुं छेदन करणारुं प्रास नामक दुःसह शस्त्र छे. एम तूं कां जोतो नथी? अर्थात् स्त्रीना अलंकृत "कुंतलभार" एटले जे शणगारीने बांधेला केश छे, ते कुंतभार एटले प्रास नाम

क शब्दज छे एम जाणवुं. आ ठेकाणे अलं एटले लकाररहित, कृत एटले करे लो, जे कुंतलनार शब्द, तेनो कुंतनार एवो शब्द थाय; ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, पुष्पादिकेकरी शृंगारेलो स्त्रीना केशोनो अंबोडो पुरुषने एवो रम णीय लागेछे के, ते जोईने वैराग्यवान पुरुषनो वैराग्य पण भगी जायछे; एवी श्रेष्ठता कहीछे, ते शृंगाररस छे. अने ते दुःखे करीने पण सहन न थाय एवा प्रास नामक शस्त्ररूप छतां वैराग्यनो नाशकरनारो छे; माटे तेनो त्याग कर; ए वैराग्य रस छे. ॥ ४ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ कस्तूरिकातिलकितं तुलिताष्टमींदु
चित्ते विचिंतयसि सौख्यनिमित्तमेकम् ॥ वामभ्रुवां यदलिकं
तदहो अलीकमित्याख्ययैव परया प्रवदंति रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थः—हे पुरुष, जेमां कस्तूरीनो तिलक कर्योछे, तेथी अष्टमीना चंद्र जेवी जेनी सुंदर भ्रुकुटी देखाय छे, ते अद्वितीय सौख्यनुं कारण छे, एवुं तुं अंतःकरण मां चिंतन करेछे, ते व्यर्थ छे. अहो इत्याश्चर्ये! ते स्त्रीओनुं अलिक एटले जे ल लाट छे, तेने पंडित लोको अलीक एटले मिथ्या कहेछे. अर्थात् अलिक एवां बे रूप ललाट वाचक छे; तेओमांना पहेला रूपने बीजा रूपे करी जाण, एटले ल लाटने मिथ्या जाण; ए पण श्लेषज छे.

आ वृत्तमां, अष्टमीनो चंद्र अर्धगोलाकार छतां बन्ने खूणाए सरखो देखायछे, तेना वचमां श्याम वर्णना चांदलाना जेवुं देखायछे, तेथी ते अति शोभित लागेछे, तेम स्त्रीनुं पण वांकुं ललाट छतां तेमां कस्तूरीनो तिलक कर्यो होय, तो अति म नोहर देखायछे, ते जोईने पुरुषना मननेविषे घणो आनंद थायछे; ते शृंगाररस छे. अने ए जे कस्तूरीना तिलक सहित स्त्रीनुं ललाट अति शोभायमान देखायछे, तेमां कांई अर्थ नथी, किंतु व्यर्थ छे; माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्यरस छे. ॥५॥

उपजातिवृत्तम् ॥ न भ्रूरियं पंकजलोचनायाश्चकास्ति शृंगाररसै
कपात्रम्॥भ्रूः किलसौ साधुतरा प्रसूते निबंधनं मोहविषद्रुमस्य॥६॥

अर्थः—हे पुरुष, कमलपत्रना जेवां लोचनवाली स्त्रीनी शोभायमान भ्रुकुटी छे, ते जाण शृंगाररसनुं एक पात्रज छे; ते अतिशय श्रेष्ठ भूमि छे; केमके, एथकी मोह रूपविषना वृक्षनो प्रादुर्भाव उत्पन्न थायछे; अर्थात् भ्रू एटले भ्रुकुटी, ते साधुतरा

नू एटले नूमि थायछे, एम कह्युं; तेमां आवी रीते श्लेष छेः- सा एटले प्रसिद्ध, धुतरा एटले रेफरहित एवो, नू शब्द नूमिवाचक शब्द थयो ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जे शोनायमान नृकुटि, तेने शृंगार रसना पात्ररूपे कही छे; केमके, एने जोतांज पुरुषने मोह उत्पन्न थायछे, माटे ए शृंगार रस छे; अने ए नृकुटि नथी पण मोहरूप विषना वृक्षने उत्पन्न करनारी सारी नूमि छे, एम कहेवाथी वैराग्य रस जाणवो. ॥ ६ ॥

मालिनीवृत्तम् ॥ नवकुवलयदामश्यामलान् दृष्टिपातान् कृत परमदनाशान् विक्षिपत्यायताक्षी॥ इति वहसि मुदं किं मोह राजप्रयुक्तान् प्रशमनटवधार्थं विद्धमनृष्टिपातान् ॥ ७ ॥

अर्थः- हे पुरुष, विस्तीर्ण नेत्रोवाली स्त्रीना कुवलयनी माला जेवा श्यामव र्णवाला, अन्यमदना नाश करनारा जे कटाक्ष, ते मारा उपर नाखेछे, एम जाणीने तुं शासारु हर्षित थायछे ? अरे, ए जे दृष्टिपात (कटाक्ष) छे ते प्रशम रूप शूरवी रनो वध करवा सारु मोह राजाए प्रेरणा करेला कृष्टिपात एटले तलवारना घात (घा) छे; एम जाण; अंही दृष्टिपातनो कृष्टिपात आवी रीते थयो छेः- दृष्टिपात शब्दनुं विशेषण मूलमां " कृतपरमदनाशान् "छे; एनो श्लेष करी आवो अर्थ थाय छेः- कृत एटले कस्यो, परम एटले अत्यंत, दनाश एटले दकारनो नाश थयाथी कृष्टिपात शब्द थाय छे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, विस्तीर्ण नेत्रोवाली स्त्री कही छे, एथी स्त्रीना विशाल नेत्रोने कवीओ ए उत्तम कह्या छे, एम जाणवुं, एवा विशाल नेत्रोना जे कटाक्ष, ते कुवलयनी माला जेवा, अने अन्य मदना नाश करनारा कह्या छे; एटले जे पुरुष उपर कु वलयनी मालाना जेवा कटाक्ष पडे ते पुरुष बीजा गमे तेवा मदवालो होय तो पण तरत ते स्त्रीनी उपर मोहित थईने तेना किंकर जेवो थई रहेछे, अने ते पोतानी उपर स्त्रीना कटाक्ष पडया जोइने अति आनंदित थायछे, माटे ए शृंगार रस छे; अने एवो लुब्ध थएलो पुरुष मोहरूप राजाने वश थयो थको दुःखी थायछे; केमके, नेत्रकटाक्षरूप तलवारना घाएकरी तेना प्रशमरूप शूरवीरपणानो वध थायछे. तेनो तुं त्याग कर, ए वैराग्य रस छे. ॥ ७ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ तस्याः कोपपदं यदाननमहोरा त्रं स्मरन्नात्मनः संतापं वितनोषि काननमहो ज्ञाला स

खे तत्त्यजेः ॥ एतस्मिन् वसता मनोजवमहासर्पेण दष्टः
पुमान् कार्याकार्यविवेकशून्यहृदयः कस्को न संजायते॥८॥

अर्थः–हे सखा, कोपनुं स्थान जे स्त्रीनुं आनन एटले मुख, तेनुं रात्रदिवस स्म रण करीने तुं पोताने संताप करीछे छे, अहो इति खेदे! ते आनन नथी पण कानन एटले वन छे; एम जाणीने मूकी दे, केमके, ए वनमां रहेनारो जे कामरूप सर्प, ते जे पुरुषने दंश करेछे, ते पुरुषनो हृदय कार्याकार्य विवेकथी शून्य थई जायछे, एवो कोण छे, के जे उक्त विवेकशून्य न थाय! किंतु सर्व थायज छे. सामान्य सर्पनाविषे करीने मूर्छित थएलो पुरुष पण शून्य हृदयवालो थई जायछे, तो जेने सर्प दंश कर्यो होय तेनुं शुं कहेवुं! अहीं कोपपद आनन कानन छे, एम कह्युंछे, तेथी कोपपद एटले ककार छे उपपद एटले समीपपद जेनो एवो आनन शब्द कानन शब्द थाय छे ते योग्य छे, एश्लेष छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनुं मुख कोपायमान कह्युं छे तेनुं कारण ए के, स्त्रीनी मुखमुद्रा यत्किंचित् कोपायमान पुरुषने दीठामां आवे तो तेने कामविकार उत्पन्न थायछे अथवा कोई कारणने लीधे स्त्रीने रीश आवीने पुरुषने पोतानी मुखमुद्रा कोपाय मान करी देखाड्याथी तेने प्रीति उत्पन्न थायछे, अने विविध प्रकारे तेने सम ज्याव्यानी आतुरताने लीधे कामविकार उत्पन्न थायछे ते अहीं शृंगाररस जाणवो, अने स्त्रीना मुखने वन जेवुं कह्युं छे, ने तेमां कामरूप सर्प रहे छे ते दंश करीने पुरुषना हृदयने शून्य करे छे एटले सारासार विवेकरहित करे छे; अर्थात् मृतकतुल्य करे छे, तेथी तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्यरस जाणवो. ॥ ८ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ साकारमालोक्य मुखं तरुण्यः किं मुग्धबुद्धे मुद
मादधासि॥इदं हि चित्तभ्रमनाटकस्य विचक्षणैरामुखमाचचक्षे ॥९॥

अर्थः– हेरूडीबुद्धिवान पुरुष, तरुण स्त्रीनुं साकार एटले सुंदर मुख जोईने तुं शासारु आनंदित थायछे! ए मुखने विद्वान पुरुष निश्चये करी चित्त भ्रमरूप नाटकनुं आमुख एटले आद्यारंभ कहेछे. अहीं साकार एटले आकार सहित जे मुख होय ते आमुख छे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, तरुण स्त्रीनुं सुंदर मुख कह्युं छे, तेनुं कारण ए के मुखनी सुंदरता तारुण्यपणामां होयछे. ते गमे तेवी सारीबुद्धिवाला पुरुषनी बुद्धिने विभ्रम करे छे. एटले मोहित करेछे. ए शृंगार रस छे. अने तरुण स्त्रीनुं मुख चित्तविभ्रमरूप

नाटकनो आद्यारंज छे. एटले स्त्रीनुं मुख जोईने मोहनो आरंभ थाय छे. जेम नाटकनो आद्यारंज सूत्रधार अने नटीप्रमुखना गायनद्वारा थायछे. ते जोनारा पुरुषना चित्तने मोह उत्पन्न करेछे. तेम ए पण जाणवुं. तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ ए ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ कामज्वरातुरमते तव सर्वदाऽऽस्यं वा
मभ्रुवां यदि कथंचिदवाप्तुमिछा ॥ यत्नं विनाप्यखिलज
न्मपरंपरासु तज्जातमेव जवतो ननु सर्वदास्यम् ॥ १० ॥

अर्थः– हे कामरूपज्वरथी पीडायमान थएली मतिवाला पुरुष, जो सर्वदा एटले सर्व काल सुंदर ज्रुकुटिवाली स्त्रीनुं आस्य एटले मुख, कोई पण प्रकारेकरि तने प्राप्त थवानी इछा होय, तो निश्चयेकरि यत्नशिवाय संपूर्ण जन्मपरंपराने विषे सर्वदास्य एटले सर्वनुं दासपणुं तने थयलुंज छे, एम जाणवुं. आश्लोकमां बे ठेकाणे " सर्वदास्य " ए शब्द आवेलो छे. ते बन्नेनो अर्थ जिन्न जिन्न थाय छे. तेथी अहिं यमक जाणवो.

आ वृत्तमां, सुंदर ज्रुकुटीवालुं स्त्रीनुं मुख कह्युं छे, एथी जे स्त्रीनी ज्रुकुटि सारी होय, ते सुरूप दीगमां आवेछे. तेनुं मुख कामी पुरुषने अति प्रिय लागेछे. अने तेने जोतांज कामीपुरुषनी मति कामज्वरथी पीडायमान थायछे, एज इहां शृंगार रस छे. अने एवा स्त्रीना मुखनी प्राप्तिनी इछा जे पुरुष करेछे ते जन्मो जन्मने विषे पराधीन रहेछे. माटे तेनो तूं त्याग कर ए वैराग्य रस जाणवो.॥१०॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ तस्याः साधुरदं विलोक्य वद
नं यः संश्रयत्यंजसा मुक्त्वा मुक्तिपथं हहा प्रविशति भ्रां
त्या स डुर्गं वनम् ॥ तत्रात्यंतमचारुबद्धवसतिर्येनात्र रा
गादिन्भिश्चोरैर्धर्मधनापहारकरणात्कष्टं न किं प्राप्यते॥११॥

अर्थः– ते स्त्रीनुं " साधु रदं " एटले सारा दांतवालुं वदनं एटले मुख जोइने जे पुरुष वेगे करी तेनो आश्रय करेछे, एटले तेमां लुब्ध थायछे ते पुरुष, हा हा इति खेदे ! मुक्तिमार्गने मूकीने, वसतिने अरम्य करीने डुःखेकरि पण गमन न थाय एवा वननेविषे ज्रांतिए करि प्रवेश करेछे. ते वन मर्यादारहित छे, तेमां गमन करनारा पुंरुषनुं धर्मरूप धन रागादिक चोरो हरण करी जाय छे तेथी शुं कष्टनी प्राप्ति थती नथी ? अहिं साधुरदं वदन जे छे ते वन छे ए

म कह्युं छे. ते आमः– साधुरदं ए शब्दनो पदछेद करिये तो साधुः अदं ए बे पद जुदा थायछे. एमांना अदं पदथकी दकार रहितपणुं थायछे, एम वदननुं वन थायछे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, सारा दांतवाळी स्त्रीनुं मुख जोतांज पुरुषनुं मन लुब्ध थई जायछे. मुक्तिनो मार्ग जे धर्मध्यानादिक तेने ते मूकी दे छे. जेने बमति सारी लागती नथी, मदनने वश थयो थको वनादिक एकांत स्थळमां ते स्त्रीसहित अथवा स्त्रीना आगमननी इछावान थयो थको वास करेछे, अने तेथी महाकष्ट सहन करेछे, एवो स्त्रीना मुख दर्शननो जे प्रभाव ते अहिं शृंगार रस छे. अने स्त्रीना मुखरूप जे वन तेमां जे पुरुष प्रवेश करेछे तेनुं धर्मरूप धन रागादिक चोर लूंटी लिये छे. माटे तेमां लुब्ध थवुं नही. ए अहिं वैराग्य रस छे. ॥ ११ ॥

पृथ्वीवृत्तम् ॥ यियाससि भवोदधेर्यदितटं तदेणीदृशामहीनमधरं धरं परिहरेः परं दूरतः ॥ इहास्फुलनतोऽन्यथाविशदवासनानौ स्तव व्रजिष्यति विशीर्णतां न भविता ततो वांछितम् ॥ १२ ॥

अर्थः–हे पुरुष, जो तुं आ संसार समुद्रनो पार लेवानी इछा करतो हो, तो हरिणी जेवां नेत्रोवाळी स्त्रीओना अहीन एटले अमृतादिवडे परिपूर्ण, अधर एटले ओष्ठरूप धर एटले पर्वत जे छे तेने तुं दूर नाखी दे. ते जो तुं नही मूकीश तो ते पर्वतना संघट्टनना योगे तारी निर्मळ वासनारूप नौका भांगी जशे. तेथी तारुं इछेलुं पार पडशे नही. जेम समुद्रमां पर्वतना लागवाथी वहाण भांगी जाय तो जवा आववादिक इष्टसिद्धि थती नथी. ते प्रमाणे तुं पण आ भव समुद्रने पहेले पार पहोची शकीश नही. अहीं अहीन अधर जे छे ते धर एटले पर्वतज छे, एम कह्युं छे, ते आमः– जे अहीन एटले अकारे करि हीन एटले रहित अधर शब्द ते धर शब्द थाय छे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनां नेत्रोने हरिणीनां नेत्रोनी बराबरी करीछे, एटले हरिणीनां नेत्रो अति विशाळ अने सुशोभित होयछे तेम स्त्रीना नेत्रो पण अति विशाळ तथा सुशोभित होवाथी पुरुषनुं मन खेंची लियेछे, तथा जे कामी पुरुष छे तेने स्त्रीना अधरामृतनेविषे घणी प्रीति होयछे, माटे अमृतेकरी पूर्ण अधर कह्यां छे, ते शृगार रस छे. अने ते अधर छे ते पर्वतज छे, केमके, जे पुरुष ते अधरनेविषे लुब्ध थायछे ते संसारथी छूटी शकतो नथी. ए वैराग्य रस छे. ॥ १२ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ न भातीदं भ्रातः स्फुरदरुणरत्नौघकिरणप्रता नं तन्वंग्यास्तरलतरलं कुंडलयुगम् ॥ इमं दुग्धं पुंसामिह विरहसं योगदशयोर्ज्वलच्छोकानंगज्वलनयुगिदं कुंडयुगलम् ॥ १३ ॥

अर्थः– हे जाई, देदीप्यमान रक्तवर्ण रत्नोनो किरणसमूह छे जेनाविषे, तथा "तरल तरलं" एटले जे अत्यंत चंचल छे, एवा कृशांगी एटले पातला आंगवाली स्त्री ना जे "कुंमलयुगं" एटले जे बे कानना कुंमल छे ते शोनता नथी; किंतु विरहदशा अने संयोगदशामां शोक तथा कामाग्निएकरी युक्तछे एटले विरहावस्थामां शोकावि र्नाव, तथा स्त्रीपुरुषनी संयोगावस्थामां कामाग्निनो आविर्नाव थायछे. अने आ संसारनेविषे पुरुषना शांतिरूप दूधने बालवावाला ए कुंमयुगल एटले बे कुंमछे एम जाण. अहीं कुंमलयुग ते कुंमयुगल थाय छे. ते आवी रीतेः—कुंमलयुग शब्दनुं वि शेषण तरलतरलं एवुं छे. एनो श्लेषार्थ आम छेः– तरलतर एटले चंचल छे. ल एटले लकार जेमां एवो जे कुंमलयुग शब्द; तेमांनो लकार कहाडी नाखिये तो कुंमयुग शब्द थायछे; अने युग शब्द थया पछी तेना अंतमां लकार जोडीये तो कुंमयुगल शब्द थायछे. ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना काननेविषे देदीप्यमान रत्नजडित जे बे कुंमल होयछे. ते स्त्रीना रूपमां अति वृद्धि करेछे. अने चंचल होवाथी अति सुशोनित देखायछे तेमां पण कृशांगी एटले पातला आंगवाली स्त्रीने अति शोनेछे. ए शृंगार छे. अ ने ए जे बे कुंमल छे ते शोनाकारक नथी पण विरहदशा तथा संयोगदशामां शो क तथा कामाग्निना उत्पन्न करनारा छे, ए पुरुषनी शांतिरूप दूधनो नाश करना रा छे तेथी कुंडरूप छे, तेनो तूं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ १३ ॥

अनुष्टुब्वृत्तम् ॥ ताडंकं सस्पृहं तस्याः पश्यन् मूढः परं नवे ॥ नरो नरकपालेभ्यस्ताडं कं न सहिष्यते ॥ १४ ॥

अर्थः– हे मूर्ख पुरुष, ते स्त्रीनुं साभिलाष "तामंकं" एटले कर्णनूषण अव लोकन करतां आगल आवनारा नवमध्ये नरक पालन करनारा अधम परमाधा मी पुरुषोनी पाशेथी "कंताडं" एटले कोण आघात सहन करनार नथी? अ पितु सर्व आघात सहन करशे. अही "ताडंकं" ए शब्द बे वार आव्योछे. तेओ नो अर्थ निन्न निन्न छे. ए यमकालंकार छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना कानना कुंमल जोतांज पुरुषने एवी अनिलाषा थायछे के ए कुंमलेकरी शोनायमान स्त्री मने प्राप्त थाय तो सारुं. ए शृंगार रस छे; अने अनिलाषाए करी स्त्रीनां कुंडलोने जे पुरुष जुवे छे ते आवता नवमां नरकना पालन करनारा परमाधामी देवताओनी मार खायछे; माटे एनो त्याग करवो ए वैराग्य रस छे. ॥ १४ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ सारं गलं यमरविंदविलोचनाना
मालोक्य चेतसि मुदं कलयंति मूढाः ॥ हा निश्चितं रचि
तमुक्तिपुरप्रवेशव्यापेधमर्गलममुं न विचारयंति ॥ १५ ॥

अर्थः-- हे मूढ, कमलना जेवां नेत्रोवाली स्त्रीओनो जे सार एटले श्रेष्ठ, गल एटले कंठ अवलोकन करीने पुरुषो अंतःकरणमां हर्ष पामेछे. परंतु हा इति खेदे ! ए जे गल छे ते मुक्तिनगरीमां प्रवेश करवानेविषे प्रतिबंध करनार होवाथी अर्गल छे, एवो विचार करता नथी. अहीं सार एटले अरसहित गल शब्द ते अर्गल शब्द थायछे. ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना कंठनी श्रेष्ठता कहीछे. जो स्त्रीनो कंठ सारो होय तो तेने जोतांज पुरुष आनंदित थायछे; अर्थात् कामनी इछा उत्पन्न थायछे, ते अही शृंगार रस छे; अने एवा अनिलाषी पुरुषोनो मुक्तिरूप नगरीमां प्रवेश थतो नथी. माटे तेनो त्याग करवो ए वैराग्य रस छे. ॥ १५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ अलं प्राप्य स्पर्शं कुचकलशयोः पंकजदृशां
परां प्रीतिं भ्रातः कलयसि सुधामग्नइव किम्॥अवस्कंदं धर्मक्षितिप
पकटके दातुमनसा प्रयुक्तं जानीयाः कलुषचरटेन स्पशमिम्॥१६॥

अर्थः-- हे भ्रात, जेना कमलनां पत्र जेवां नेत्र छे, एवी स्त्रीओना स्तनरूप जे कुंन छे, तेने अलं एटले अत्यंत स्पर्श पामीने अमृतमां मग्न थई जनाराना जेवो जे तुं ते शुं उत्कृष्ट प्रीतिने पामेछे ? ए स्पर्श, धर्मरूप राजानी सैन्यने प्रहार करवानुं छे जेना मनमां, एवा कलुष एटले पापरूप चीले मोकलेलो स्पश एटले जासूद छे; एम तुं जाण. अहीं अलं स्पर्श जे छे ते स्पश छे; एम कह्युं. रेफ अने लकार एकज होयछे; एवो नियम छे. माटे अलं एटले जेमां रेफ नथी एवो स्पर्श शब्द जे छे ते स्पश शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना स्तननी उत्कृष्टता कहीछे, एटले पुरुषने स्त्रीना स्तननो स्प र्शी थतांज अमृतनेविषे मग्न थई गएला पुरुषनी पठे आनंद उत्पन्न थायछे; ए शृंगार रस छे; अने ए स्तन जे छे ते धर्मनो नाश करवाने अर्थे पापनो एक ग नो जासूद छे, माटे तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ १६ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ पीनोन्नतं स्तनतटं मृगलोचनाया आ लोकसे नरहितं यदपूर्वमेतत् ॥ मोहांधकारनिकरक्षय कारणस्य विद्यास्तदस्ततटमेव विवेकभानो. ॥ १७ ॥

अर्थः— मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीनां जे पुष्ट अने उन्नत स्तनतट एटले बे स्तनो छे, ते नरहित एटले पुरुषने हितकारक जासेछे, अने अपूर्व एटले प्र तिक्षण पुरुषने चमत्कार उत्पन्न करे छे; तेनुं तुं अवलोकन करेछे; पण ते मोह रूप अंधकारनो क्षय करवानुं कारण विवेकरूप सूर्यना अस्ततट छे. अर्थात् ए थकी ज्ञानरूप सूर्यनो अस्त थायछे. आ पद्यमां स्तनतट जे छे तेने तुं अस्ततट जाण एम कह्युं, केमके, नरहितं अने अपूर्वं ए बे स्तनतटनां विशेषणो छे, तेओ मांथी आवो अर्थ निकले छेः— नरहित एटले नकारेकरी रहित अने अपूर्व एटले जेनी आद्यमां अकार छे, एम कस्याथी स्तनतटनो अस्ततट शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, मृगना जेवां लोचनवाली स्त्रीना मांसथी भरेला अने उंचा रहेला जे बे स्तन छे, ते पुरुषने अति सुख करनारा लागेछे; अने पुरुषना मनमां कामवि कार उत्पन्न करेछे माटे ए शृंगार रस छे. अने एज स्तनोनुं विलोकन करनारा पुरु षोनो विवेकनाश थई जायछे, एटले कामविव्हल थयो थको तेने कांई सूजतुं न थी तेथी एनो त्याग कर ए वैराग्य रस छे. ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ कंदर्पद्विपकुंभचारुणि कुचद्वंद्वे मृ गाक्ष्या मया न्यस्तो हस्त इति प्रमोदमदिरामाद्यन्मना मा स्मभूः ॥ किंत्वाजन्म यदर्जितं बहुविधामभ्यस्य कष्टक्रियां हस्तोऽयं सुकृतस्य तस्य सहसाऽदायीति संचितयेः ॥ १८ ॥

अर्थ ॥ हे सखा, कामरूप हस्तिना गंडस्थल जेवा मनोज्ञ जे मृगाक्षी स्त्रीना बे स्तन छे, तेनेविषे में हस्तस्थापन कर्या छे, एम जाणीने हर्षरूप मदिराएकरी मदो न्मत्त अंतःकरणवालो तुं नही था. केमके, नाना प्रकारनी तपोनुष्ठानादिरूप जे क ष्टसाध्य क्रिया छे, तेनो अभ्यास करीने जन्मेकरी संपादन करेलां जे सुकृत एटले

पुण्य, तेने तें आडुं हाथ दीधुछे. जेमके, कोई बाहेरथी आवनारा पुरुषने हस्तप्रदानसंज्ञाएकरी निषेध करे, तेम कुचद्वंद्वनेविषे हस्तप्रदानेकरीने सुकृतनो तें निषेध कर्योछे. एवो जे तुं ते मनमां विचार कर. आ पद्यमां स्तन उपर हाथ राख्युं अने सुकृतने हाथ दीधुं एज चमत्कार छे.

आ वृत्तमां, कामरूप हस्ती कह्योछे ने तेना गंडस्थलरूप स्त्रीना बे स्तन कह्याछे. ते ज्यारे पुरुष हाथनेविषे ग्रहण करेछे त्यारे मदनातुर थयोथको महाहर्षने पामेछे; ए शृंगार रस छे; अने नाना प्रकारे कष्ट करीने संपादन करेलां सुकृतनो निषेध करेछे; माटे तेनो त्यागकर ए वैराग्य रस छे. ॥ १८ ॥

इंद्रवंशावृत्तम् ॥ कंठोपकंठे लुलितं विभावयेर्भुजं युवत्या भुजगं गराजितम् ॥ एतस्य संस्पर्शवशादपि क्षणाद् शेषचैतन्यमुपैति संक्षयम् ॥ १९ ॥

अर्थः—कंठनी पाशे वळेला गर एटले विषे करीने अजित एवा जे तरुण स्त्रीना भुज एटले बाहु, ते भुजग एटले सर्पज छे; एम तुं जाण. ए सर्पना स्पर्शमात्रेकरी संपूर्णचैतन्य क्षणमात्रमां नाशने पामेछे. जेम सर्पना स्पर्शेकरी चैतन्यनो नाश थायछे; तेमज तरुण स्त्रीना भुजस्पर्शेथी चैतन्यनाश थायछे. भुजनो भुजग आवी रीते थायछेः—भुज शब्दनुं विशेषण गराजित छे, तेनो अर्थ गकार अक्षरेकरी राजित एटले युक्तथयाथी भुजग शब्द थायछे; ते युक्त छे.

आ वृत्तमां, कंठनी पाशे वांका वळेला स्त्रीना बे हाथ पुरुषने अडकतांज पुरुष अति मोहित थयोथको पोताना शरीरनी शुद्धि पण रहेती नथी. ए शृंगार रस छे; अने ए बे स्त्रीना हाथ छे ते साक्षात सर्परूप छे. केमके. एनो स्पर्श थयाथी पुरुष बेशुद्ध थई जायछे, माटे तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥१९॥

उपजातिवृत्तम् ॥ कंठावसक्ते कुपिते नवाहौ वरं बहिः प्राणहरे प्रमोदः ॥ विध्वस्तधर्मांतरजीविते नुः स्त्रैणे न वाहौ विदुषां स युक्तः २०

अर्थः—बाह्य प्राणनो नाश करनारो क्रोधायमान जे नवाहौ एटले नवीन सर्प, ते पुरुषना गळामां संलग्न थाय ते सारुं; परंतु धर्मरूप अभ्यंतर जीवित नाश करनारा जे स्त्रीसंबंधी वाहौ एटले भुज, ते पुरुषना गळामां संलग्न थयाथी जे हर्ष थायछे. ते पंडित पुरुषने योग्य नथी; केमके, सर्प, कंठसंलग्न छतां बाह्य प्राणनो नाश करेछे; पण स्त्रीओना जे बाहु छे, ते कंठसंलग्न थयाथी अंतर प्राण

नो नाश करेछे ; माटे स्त्रीए पोताना हाथथी करेलुं आलिंगन सर्प करतां पण अधिक दुःख देनारुं छे. आ श्लोकमां नवाहौ शब्द बे वखत आव्योछे तेनो अर्थ जुदो छे.

आ वृत्तमां, स्त्री ज्यारे पोतानी भुजावडे पुरुषने आलिंगन करेछे, त्यारे पुरुष पोताना प्राणनी पण परवा राखतो नथी. एवो कामातुर थायछे ; ए शृंगाररसछे. अने सर्प गलामां बाझी प्राण लिये ते सारुं, पण स्त्रीनुं आलिंगन भलुं नही ; केमके, तेथी माग कर्म बंधाईने अंतरात्मानो नाश थायछे. माटे तेनो त्याग करवो उचित छे ए वैराग्यरस छे. ॥ २० ॥

इंद्रवंशावृत्तम् ॥ कोयं विवेकस्तव यन्नतभ्रुवां दोषावगूढः प्रमदं विगाहसे ॥ यतः स्मरातंकपरीतचेतसां किं सुंदरासुंदरयोर्विवेचनं ॥२१॥

अर्थः— हे साधो, आ तारो कयो विवेक छे के, नम्र छे भ्रुकुटि जेओनी एवी स्त्रीना दोषावगूढ एटले भुजाए आलिंगित थयो थको तूं उत्कृष्ट मदने पामेछे ! केमके, कामरूप रोगेकरीने जेना अंतःकरण व्याप्त थयाछे, एवा पुरुषने सारा तथा नरसानुं विवेचन थतुं नथी. जेम अपस्मारादि (मरी) रोगवाला पुरुषने शुभाशुभ ज्ञान होतुं नथी. तेम तने पण थयुंछे. अथवा तारो विवेक दोषावगूढ एटले दोषेकरीने युक्त छे एवो अर्थ पण थायछे, माटे ए तारो केवो विवेक छे एम कहेवुं योग्यज छे.

आ वृत्तमां, पुरुषने स्त्रीए आलिंगन कर्युंछतां, ते गमे तेवो विवेकी होय तो पण ते एक कोरे रहीने कामातुर थयोथको हर्षित थायछे ; ए शृंगार रस छे; अने स्त्रीना आलिंगनथी पुरुषना विवेकनो नाश थायछे, अने अंतःकरणमां अविवेक आवेछे, माटे तेनो तुं त्याग कर ए वैराग्य रस छे. ॥ २१ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ हंहो विलोक्य परमंगदमंगनाना
मानंदमुद्वहसि किं मदनांधबुद्धे ॥ सत्यं विवेकनिधने
कनिमित्तमेतत् मेधाविनो हि परमं गदमुद्गृणंति ॥ २२ ॥

अर्थः— हे कामेकरी अंधबुद्धिवाला पुरुष, स्त्रीओना परमंगदं एटले उत्कृष्ट बाजूबंध जोईने शुं आनंद करेछे ? पंडित लोको जे छे ते ए बाजूबंधने ज्ञाननोनाश करनारो परम एटले उत्कृष्ट गद एटले रोग कहेछे; ते सत्य छे. केमके, जेम रोग जीवना नाशनो हेतु छे, तेम स्त्रीनो बाहुभूषण पण ज्ञानना नाशनो हेतु छे. ए पद्यमां परमंगदं ए बे वखत आव्योछे, तेनो अर्थ जुदो जुदो छे, एवो यमकरूप चमत्कार छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना बाहुनुं भूषण जे बाजूबंध छे, ते पुरुषना मनने एवो मोहित करी लियेछे के पुरुष कामांध थयोथको महाहर्षने पामेछे. ए शृंगार रस छे; अने ए जे बाजूबंध छे ते आनंद करनारो नथी, पण जीवनो नाश करनारो मोटो रोग छे; एम जाणीने तेनो तूं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ २२ ॥

अयं जनो वलयभरं विलोकते मृगीदृशामधिभुजवल्लि बालिशः॥
न बुध्यते सुकृतचमूं जिगीषतः समुद्यतं बलभरमेनमेनसः ॥२३॥

अर्थः– अयं एटले आ प्रत्यक्ष मूर्ख जन जे छे, ते हरिणाक्षी स्त्रीओना भुजलतानेविषे वलयभरं एटले जे कंकणसमूह छे ते जुवेछे. परंतु ए वलय जे छे ते सुकृत जे शीलादिक, तेओने जीतवानी इच्छावालो एवो पापनो सावधानीभूत बलभर एटले सेनासमूह छे; एम जाण. आ पद्यमां वलयभर जे छे, ते बलभर छे एम कह्युंछे; बकार अने वकारनुं ऐक्यछे वलयभर शब्दनुं विशेषण अयं ए शब्द छे. एनो अर्थ अ रहित यं थायछे; तेथी वलयभर शब्द, बलभर थयो ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीओना हाथमां जे कंकण होयछे, तेने जोईने जे मूर्ख जन छे ते आनंदने पामेछे, ए शृंगार रस छे; अने ए जे कंकणनो समूह छे, ते शीलादिकनो नाश करनारो छे, माटे तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ २३ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ ये दृक्पथे तव पतंति नितंबिनीनां
कांताः करा जडिमपल्लवनप्रवीणाः॥नो वेत्सि तान् किमपव
र्गपुरप्रयाणप्रत्यूहकारणतया करकानवश्यम् ॥ २४ ॥

अर्थः– हे जडताना प्रकटीकरण करवाविषे निपुण पुरुष, नितंबिनी स्त्रीओना कांत एटले मनोज्ञ कर एटले हाथ तारी दृष्टिरूप मार्गमां आवेछे, तेओने मोक्षरूप नगरी प्रते जतां करक एटले करानी पेठे विघ्न करनारा केम जाणतो नथी ! बाहेर जतां जो मार्गमां करानी वृष्टि थाय तो इच्छेला कार्यनी सिद्धि थाय नही, एवुं शकुनशास्त्रमां कह्युंछे. आ पद्यमां स्त्रीना कर जे छे ते करकज एम कह्युं छे. ते आवी रीतेः–करशब्दनुं विशेषण कांत शब्द छे, एनो अर्थ क छे जेना अंतनेविषे एवो थायछे; अर्थात् कर शब्दना अंते ककार राखिये तो करक थाय ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, जडतानुं प्रकटीकरण करवाविषे स्त्रीना हाथ निपुण छे, एटले स्त्रीना हाथवती पुरुषने स्पर्शादि थतांज ते गमे तेवो धर्मादिकनेविषे सावध होय तो

पण दिग्मूढ एटले कामने वश थई जाय छे, ने तेमां ते पोताने परमानंद माने छे; ए शृंगार रस छे. अने स्त्रीना करस्पर्शादिकेकरी स्तब्ध बनी गएला पुरुषने मोक्षनो मार्ग जे धर्म, ते सूजतो नथी, माटे तेनो तुं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे.

उपजातिवृत्तम् ॥ नीव्याप्तमस्या हरिणेक्षणाया यंवीक्ष्य हारं हृदि ह र्षमेषि ॥ विवेकपंकेरुहकाननस्य तमेव नीहारमुदाहरंति ॥ २५ ॥

अर्थः--नीवी एटले वस्त्र, तेनी गांठ पर्यंत हरिणाक्षी स्त्रीनो जे लंबायमान हार, तेने जोईने तूं पोताना मनमां आनंदने पामेछे. ते हारने पंमितलोक, ज्ञानरूप कमलना वनने नीहार एटले हिम कहेछे. जेम हिम, कमलना वनने नाश करनारो छे, तेम स्त्रीना हृदय उपरनो जे हार ते ज्ञानने नाश करनारो छे. आ पद्यमां हारने नीहार कह्योछे, ते आमः—हारशब्दनुं विशेषण नीव्याप्त छे. एनो अर्थ आ छेः—नीशब्देकरी व्याप्त एटले जे युक्त हारशब्द ते नीहारशब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना हृदयनो जे लांबो हार ते जोतांज पुरुषने अति आनंद उत्पन्न थायछे; ए शृंगाररस छे; अने ते हार जे छे ते ज्ञानरूप कमलना वनने बालवामां हिम जेवो छे, एटले ते हारमां लुब्ध थएला पुरुषनुं ज्ञान नाश थई जाय छे, माटे तेनो तूं त्याग कर. ए वैराग्य रस छे. ॥ २५ ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥ विलोक्य किं सुंदरमंगनोदरं करोषि मोहं मदनज्वरा तुर॥नो ईक्षसे डुर्गतिपातसंभवं भवांतरे भाविनमंगनोदरम् ॥ २६ ॥

अर्थः—कामज्वरवडे पीडाने पामेला हे पुरुष, सुंदर अंगना एटले स्त्रीनुं उदर जोईने तूं कां मोहने पामेछे? अंग एटले हे पुरुष, ए उदर नथी पण जन्मांतरने विषे अने नरकने विषे पडवाथी उत्पन्न थनारा जे दर एटले भय; तेज छे; एवो कां विचार करतो नथी? आ पद्यमां अंगनोदर ए पद बे वखत छे; तेओनो पद विभागेकरी भिन्न अर्थ छे, ते अहिं यमकरूप चमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, स्त्रीनुं उदर जोई पुरुष मोहने पामीने कामज्वरनी पीडाने पामेछे ए शृंगाररसछे; अने ए उदर नथी पण जन्मांतर तथा नरकमां थनारो भय छे, एम जाणीने तेनो तूं त्याग कर ए वैराग्य रस छे. ॥ २६ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ स्फूर्जन्मनोभवभुजंगमपाशनाभी नाभी कुरंगकदृशां दृशि यस्य लग्ना ॥ नाभीमयं जगदशेषमुदीक्षतेऽसौ यो यत्र रज्यति स तन्मयमेव पश्येत् ॥ २७ ॥

अर्थः— देदीप्यमान कामरूप सर्पनुं पाशनभी एटले रहेवानुं स्थान जे हरिणाक्षी स्त्रीओनी नाभी एटले अवयवविशेष; तेनेविषे जे पुरुषनी दृष्टि लग्न एटले लागेलीछे, ते पुरुष अनीमय एटले निर्नय अवलोकन करतो नथी, जे पुरुष जे ठेकाणे अनुरक्त थायछे ते पुरुष संपूर्ण तद्रूप थायछे. आ पद्यमां दृष्टि संलग्न नाभी, नाभीमय संपूर्ण जुएछे. ए शब्दश्लेष चमत्कारछे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जे नाभि छे ते कामने रहेवानुं स्थान छे, एटले ते नाभिने जोतांज पुरुषने कामविकार उत्पन्न थायछे, ए शृंगार छे; अने जे पुरुष ए नाभिनेविषे आसक्त थायछे, ते अनेक नयने पामेछे; माटे एनो तुं त्याग कर; ए वैराग्य छे॥ २७॥

उपेंद्रवज्रावृत्तम् ॥ जडोपयुक्तं जघनं मृगाक्ष्याः समीक्ष्य किं तोषभरं तनोषि॥ अमुं विशुद्धाध्यवसायहंसप्रवासहेतुं घनमेव विद्धि॥२८॥

अर्थः— हे सखा, जड एटले मूर्ख, तेओने उपयुक्त एटले योग्य. एवा हरिणाक्षी स्त्रीना जे जघन एटले जांघ, जोईने तुं कां आनंद पामेछे ? ए जघन जे छे ते निर्मल चित्ताभिप्रायरूप हंसना प्रवास ने कारण भूत घन एटले मेघ छे; एम तुं जाण. अर्थात् ज्यारे वर्षा पडेछे त्यारे हंस पोतानुं स्थान मूकीने मानससरोवर ऊपर जायछे. एप्रसिद्ध छे. तेम मनुष्यनी दृष्टिने विषे स्त्रीनी जंघा आवेछे, त्यारे चित्तना निर्मल अभिप्राय मटी जायछे. आ पद्यमां जडोपयुक्त जघन जे छे ते घन छे, एम कह्युं छे, डकार अने लकारनुं सावर्ण्य होवाथी जडोपयुक्त शब्दनो जलोपयुक्त शब्द करवो एटले डकारना लोप सहित जे जघन ते घन थायछे, ते योग्यछे. ॥ २८ ॥

आ वृत्तमां, स्त्रीनी जांघ मूर्ख कामी पुरुषोने अति प्रिय लागे छे ने ते तेमां लुब्ध होयछे ए शृंगार रस छे; अने निर्मल चित्तना अभिप्रायनो नाश करेछे, अर्थात् स्त्रीनी जंघा निरख्याथी पुरुषनुं चित्त मलिन थायछे, माटे त्याग करवा योग्य छे ए वैराग्य रस छे. ॥ २८ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ नितंबमुल्लासिततापनोदं दिदृक्षसे यत्कमलेक्षणानाम्॥सर्वात्मनाऽत्यंतकटुं विदित्वा तं निंबमेव त्यज दूरतोपि ॥ २९ ॥

अर्थः— संतापनी प्रेरणा करनारा कमलनयना स्त्रीना जे नितंब, एटले कटिनो पाछलो भाग, जोवानी तुं इछा करेछे; ते नितंब, पत्र, पुष्प तथा फल इत्यादिना समूहेकरी अत्यंत कडुवा झाडना जेवा छे, एम जाणीने दूर नाखीदे. अर्था

तु निंबनुं फाड सर्व प्रकारे कडवुं होयछे, तेम स्त्रीना नितंब सर्व प्रकारे ग्लानि करवा योग्य छे, तेनो तुं त्याग कर. आ पद्यमां उल्लसित तापनो देनार जे नितंब ते निंबवृक्षज छे, एम कह्युं, ते आमः—उल्लसित एटले विकसित छे तकारनो अप नोद एटले नाश जेने विषे, एवो नितंब शब्द निंबशब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, कमलना जेवां नेत्रोवाली स्त्रीना जे बे नितंब छे, ते संतापनी प्रेरणा करनाराछे, एटले स्त्रीनी कटिनो पाछलो भाग जोयाथी अत्यंत मदन विकार उत्पन्न थायछे, ते इछा पूर्ण न थयाथी तेना मनमां संताप थायछे, एवो ते नितंबोनो जे प्रभाव छे, ते शृंगार रस छे; अने स्त्रीओना नितंब निंबडाना फाडजेवा कडवा छे, माटे एनो तुं त्याग कर; ए वैराग्य रस छे. ॥ २९ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ नूनं नूपुरमेतदायतदृशो रागादि
विद्वेषिणां क्रीडार्थं पुरमित्यवेत्य न दृशाप्यालोकनीयं क्व
चित् ॥ येनास्मिन् सुखमात्रभंगिमगुणैराकृष्य तैरुल्बणै
र्बद्धस्य प्रसभं चिरादपि सखे मुक्तिर्भवित्री न ते ॥ ३० ॥

अर्थः— हे सखा, नूनं एटले निश्चयेकरी विशालनेत्रोवाली स्त्रीओनां जे आ नूपुर एटले चरणभूषण, रागादिशत्रुने क्रीडा करवानुं पुर एटले नगर छे; एम जाणीने क्यारे पण नजरेकरी जोईश नही. जेने पोतानुं सारुं थवानी इछा होय, तेणे क्यारे पण शत्रुनुं नगर जोवुं नही. केमके, ए नगर प्रसिद्ध, उदार, तथा मुख्यत्वे श्रेष्ठ गुणे आकर्षण करी बलात्कारेकरी तने बांधीलेशे, तेथी फरी तुं छूटी शकनार नथी. अर्थात् ते नूपुरमां जो तुं आसक्त थशे तो, फसाई पडशे; आ पद्यमां स्त्रीओना नूपुरने शत्रुनुं नगर कह्युंछे, ते आमः—नूपुरशब्दनुं विशेषण जे नून छे,तेनो अर्थ न शब्देकरि ऊन एटले जे रहित छे, एवुं नूपुर छे,एम जाणवुं.

आ वृत्तमां' स्त्रीओना पगनां नूपुर पुरुषना मननुं हरण करी लिएछे. ए शृंगाररस छे; अने ते नूपुर शत्रुनुं नगर छे एम जाणीने तेनो त्याग करवो, ए वैराग्य रस छे. ३०

उपजाति वृत्तम् ॥ यास्त्रीतिनाम्ना विभृते शमादौ शस्त्री प्रबुद्धैरवबुध्यतां सा ॥ एनां पुरस्कृत्य जगत्यनंगभटो यतः पुण्यभटं भिनत्ति ॥ ३१ ॥

अर्थः—जे स्त्री एवुं नाम तुं अंतःकरणमां धारण करेछे, ते शमादौ एटले उपशमादि धर्म कर्मने विषे शस्त्री एटले एक आयुधविशेष छे, एम सुजाण पुरुषोए जा

एवुं. आ संसारनेविषे कामरूप योद्धो, ए स्त्रीरूप शस्त्रीने आगळ करीने धर्मरूप योद्धानुं छेदन करेछे. जेम संग्रामनेविषे एक मोटो योद्धो, पोताना शस्त्रेकरीने प्रति योद्धानुं छेदन करेछे; तेम कामरूप योद्धो स्त्रीरूप शस्त्रीए करी धर्मरूप योद्धानुं छेदन करेछे. आ पद्यमां स्त्रीने शस्त्री कहीछे, ते आमः—या स्त्री शमादौ त्रिवृते, एटले जे स्त्री प्रथम शकार धारेछे, अर्थात् स्त्रीशब्दनी आद्ये शकार आव्याथी शस्त्री शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, प्रसिद्ध शृंगाररस नथी. परंतु स्त्रीनी निर्भत्सना द्वारा वैराग्यांतरगत शृंगारनी पण सूचना करीछे. ॥ ३१ ॥

वसंततिलकावृत्तम् ॥ येयं वधूरवसिता हृदये प्रमोदसंपा
दनव्यतिकरैकनिबंधनं ते ॥ सा दुर्गदुर्गतिपथेन जगन्नि
नीषोर्धूरेव मन्मथरथस्य विभावनीया ॥ ३२ ॥

अर्थः— हे पुरुष, ताराहृदयनेविषे हर्षसमूह उत्पादन करवानुं कारण जे वधू एटले स्त्री, अवसिता एटले आवीने रहीछे, ते स्त्रीने तुं जे हृदयने हर्ष उत्पन्न करनारी मानेछे, ते वधू, अत्यंत दुर्गम नरकना मार्गेकरी लेई जवाविषे इच्छा करनारा कामरथनी धू एटले धुरी छे; एम तुं जाण. अर्थात् ए स्त्री नथी, किंतु नरकना मार्गेकरी संसारनेविषे लईजनारो जे कामरथ, तेनी धुरी छे. आ पद्यमां वधू कामरथनी धुरी छे, एम कह्युं; मूलमां वधू शब्दनुं विशेषण अवसिता शब्द छे, एनो अर्थ वकारेकरि सित एटले रहित थयाथी वधू शब्दनो धू शब्द थायछे ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीने हर्षसमूह उत्पादन करनारी. अने पुरुषना मननेविषे रमण करनारी कहीछे, ए शृंगार रस छे; अने ए वधू नथी पण कामदेवना रथनी धुरी छे, एम जाणीने तुं त्याग कर, ए वैराग्य रस छे. ॥ ३२ ॥

मंदाक्रांतावृत्तम् ॥ प्रीतिं तन्वंत्यनलसदृशो यास्तरुण्य
स्तवैता देहद्युत्या कनकनिभया द्योतिताशा विवेकिन् ॥
सत्यं तासामनलसदृशां संयमारामराज्यां माभूः पा
र्श्वेप्यसि यदि शिवावाप्तये बद्धबुद्धिः ॥ ३३ ॥

अर्थः— हे विवेकवान् पुरुष, जेनी अनलस एटले आलस्य रहित दृष्टि छे, अने

जेनी सुवर्णना जेवी शरीरनी कांतीए दिशाओ प्रकाशित करीछे. एवी तरुण स्त्रीओ तने हर्ष उत्पन्न करेछे, ते अनलसदृश एटले अग्निना जेवी स्त्रीओनी सत्ता संयम एटले चारित्ररूप वनपरंपराविषे छे, एम जाण. अर्थात् जेम अग्निसंपर्केकरी वन दग्ध थायछे, तेम स्त्रीसंपर्केकरी चारित्र दग्ध थायछे. जो मोक्षप्राप्तिनी बुद्धि तने थई होय, तो स्त्रीओनी समीप पण जतो नही, आ पद्यमां अनलसदृश पद बे वार आव्योछे, तेनो अर्थ नोखो नोखो छे, ए चमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, चंचलदृष्टिवाली स्त्रीना शरीरनो वर्ण सोना जेवो होय, तो पुरुषना मनमां अति आनंद उत्पन्न करेछे. ए शृंगार रस छे; अने स्त्री अग्नि जेवी छे, ते संयमादिक वनपरंपराने बाली भस्म करनारी छे, माटे एनो तुं त्याग कर, ए वैराग्य रस छे ॥ ३३ ॥

मालिनीवृत्तम ॥ क इह विषयभोगं पुण्यकर्मायशून्यं स्पृहयति विषभोगं भावयेस्तत्वतस्त्वम् ॥ स्मरति न करणीयं मूर्छितो येन जंतुः पतति कुगतिगर्ते नेक्षते मोक्षमार्गम् ॥ ३४ ॥

अर्थः– आ संसारनेविषे कयो पुरुष पुण्यकर्मनो आय एटले लाभ, एणेकरी शून्य एटले रहित जे विषय भोग एटले पांच इंद्रियना सुखनी इछा करेछे, केमके ए जे विषयभोग छे, ते विषभोग एटले विषभक्षण छे, जे विषयभोगना योगे मोहने पामेलो प्राणी, स्मरण करवायोग्य ते करतो नथी, तेथी नरकरूप खाडामां पडेछे. ते फरी मोक्षमार्गने पामतो नथी, जेम विष खानारा पुरुषने स्मरणादि रहेतां नथी, तेम विषयोपभोग करनाराने पण स्मरणादिक रहेतां नथी. आ पद्यमां विषय भोग जे छे ते विषभोग छे, एम कह्युं; ते आम.– विषयोपभोगी पदनुं यशून्यं ए विशेषण छे, एनो अर्थ यकारेकरी शून्य एटले रहित थायछे; एम यकाररहित जे विषयभोग ते विषभोग छे, ते योग्य छे.

आ वृत्तमां, पांचे विषयोनो तिरस्कार कर्यो छे, तेओनुं मूल कारण स्त्री विषय सुख शास्त्रोमां कह्युंछे. ते आश्लोकमां यद्यपि प्रगट कह्युं नथी तथापि अर्थात् सिद्ध थायछे, तेथी ए शृंगार रस छे; अने विषयभोगने विषभोग कह्याछे ए वैराग्य रस छे. ॥ ३४ ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ सखे सुखं वैषयिकं यदेतदाभासते तन्नरकांतमंतः ॥ सत्यं तदुग्रसर्पदर्पप्रबंधनिबंधनत्वान्नरकांतमेव ॥ ३५ ॥

अर्थः— हे सखा, आ जे विषयसुख छे ते तारा अंतःकरणमां कांत एटले मनोहर लागेछे, ते सत्य छे, मिथ्या नथी, परंतु विस्तारने पामनारी जे पाप परंपरा, तेनुं ए कारण छे, माटे जेनो अंत नरक छे, एटले नरकने देनारा छे; एम जाण. आ पद्यमां प्रथमना नर कांत ए बे शब्द भिन्न छे, अने पाछलना नरकांत ए बे पद एकसरखा छे, ए काव्यचमत्कार जाणवो.

आ वृत्तमां, विषयसुख जे छे, ते पुरुषना मनने घणा सारा लागेछे, एम कह्युं छे, ते शृंगार रस छे; अने ए विषयसुखथी पापपरंपरा विस्तारने पामेछे, माटे त्याग करवा योग्य छे ए वैराग्य रस छे. ॥ ३५ ॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ स्मरक्रीडावाप्यां वदनकमले पक्ष्मलदृशां दृढाऽसक्तिर्येषामधरमधुपानं विदधताम् ॥ अदूरस्था बंधव्यसनघटना क्लेशमहती विदग्धानां तेषामिह मधुकराणामिव नृणाम् ॥ ३६ ॥

अर्थः— कामनी क्रीडारूप जे वापी एटले कुवो छे. तेनेविषे स्त्रीना अधरोष्ठरूप मधुपुष्परस पान करणारा जे पुरुष छे. जेओनी स्त्रीना मुखकमलनेविषे दृढ आसक्ति छे; एवा मोह पामनारा जे पुरुष छे, तेओने आ स्त्रीना मुख कमलनेविषे भमरानी पठे क्लेशेकरी दुःसह एवा बंधनोए व्यसन घटना एटले कष्टरचना समीप वर्त्तिनी छे; जेम मधुपान करनारा भमराओनी कमलोनेविषे दृढाशक्ति बंधने करी कष्ट देनारी छे, तेम अधररसपान करनारा पुरुषोने स्त्रीना मुख कमलनेविषे दृढ जे आसक्ति ते प्रेमबंधनेकरी कष्ट देनारी छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनो अधरामृत भमराओनी पठे पुरुषोने अति प्रेम उत्पन्न करनारो छे, ए शृंगार रस छे, अने तेथी ते भमरानी पठे बंधनने पामेछे, माटे त्याग करवा योग्य छे, ए वैराग्य रस छे. ॥ ३६ ॥

सखे संतोषांभः पिब चपलतामुत्सृज निजां शमारामे कामं विरचय रुचिं चित्तहरिण ॥ हरंत्येतां तृष्णां न युवतिनितंबस्थलभुवो विमुक्ता नीरागैर्विषमशरसंपातविषमाः ॥ ३७ ॥

अर्थः— हे सखा, आ चित्त हरिणना जेवो छे. केमके, जेम हरिण अतिचंचल होयछे, तेम चित्त पण महाचंचल होयछे; माटे मृग अने चित्तनुं सादृश्यत्व कह्युंछे; एवी चपलताने त्याग करीने संतोषरूप जलनुं पान कर; अने अत्यंत शमरूप वननी प्रीति कर. आ जे युवती एटले तरुण स्त्रीओ छे, तेओना नितंब एटले

जे केडनी पाछलनो जाग छे, ते स्थलजूमिना जेवो छे, त्यां तारी तृषा मटनार न थी. ए स्थलजूमि केवी छे, नीर एटले पाणी अने अग एटले वृक्ष, एणेकरी रहित छे. जल अथवा वृक्षनी छायावडे तृषा निवारण थायछे, ए बन्नेमांनो कोई ए स्थलजूमिने विषे नथी. अने ए जूमिनेविषे व्याध्यादिक दुष्ट पुरुष बाण नाखेछे, ते बाणथी घणो संताप पामीने तारुं मरण थशे; पण तृषा मटवानी नथी. वली ते नितंब जूमि केवी छे? के रागरहित पुरुषोए जेनो त्याग कर्योछे, अने विषमशर जे कामदेव, तेना बाणना संपातना योगे विहामणी छे. माटे युवतीना नितंबनी इछा तुं नही कर. एवो चित्त प्रत्ये उपदेश छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीना नितंबनुं वर्णन कर्युं छे; ए शृंगाररस छे; अने ते स्थलजूमिनी पठे चित्तरूप भ्रमरने पीडा करेछे, ए वैराग्यरस छे. ॥ ३१ ॥

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ चेतश्चापलमाकलय्य कुटिलाकारां कुरंगीदृशो दृष्ट्वा कुंतलराजिमंजनघनश्यामां किमुन्नाम्यसि ॥ धर्मध्यानमहानिधानमधुना स्वीकर्त्तुकामस्य मे प्रत्यूहार्थमुपस्थितेयमुरगश्रेणीति संचितयेः ॥ ३८ ॥

अर्थः— हे चित्त, कुटिल एटले वक्र आकारवाला मेघना जेवा काला अथवा काजलना जेवा अत्यंत श्यामवर्ण, जे हरिणाक्षी स्त्रीना केशनी पंक्ति छे. तेने जोईने तुं शासारु व्याकुल थायछे? ए स्त्रीना केशनी पंक्ति जे छे ते धर्मचिंतनरूप महानिधान स्वीकार करनारो तुं तेने सांप्रत कालनेविषे विघ्न करवासारु तैयार थई छे. एवी उरगश्रेणि एटले सर्पपंक्ति छे; एम जाण. कोई कार्य करवासारु उद्युक्त पुरुषने सर्पदर्शन निषिद्ध छे; अने निधान ग्रहणना समये तो अत्यंत अनिष्ट छे. माटे स्त्रीकेशपंक्तिरूप सर्पिणीनुं दर्शन तुं नही कर. केमके, एम कर्याथी धर्मचिंतनरूप निधानना ग्रहण समये तने विघ्न आवशे नही.

आ वृत्तमां, स्त्रीना केशनी पंक्तिने सर्पपंक्ति कहीछे. अने तेनी श्यामताने मेघनी तथा काजलनी उपमा दीधीछे; ए शृंगाररस छे; अने ते सर्पनी पठे विघ्नकारी होवाथी सर्वथा त्याग करवा योग्य छे; ए वैराग्यरस छे. ॥ ३८ ॥

यातुं यद्यनुरुच्यते शिवपुरीं रामानितंबस्थलीं मुंचेर्दूरमिमामनंगकलभक्रीडाविहारोचिताम् ॥ नोचेद्यौवनचंडवातविततव्यामोहधूलीकणक्षाम्यद्दृष्टिरदृष्टशाश्वतपथः प्राप्तोसि जन्माटवीम् ॥३९॥

अर्थः— हे पुरुष, जो तने मुक्तिरूप नगरी प्रत्ये जवानी अभिरुचि होय, तो तूं कामरूप गजशिशुने क्रीडाने अर्थे. विहारविषे योग्य एवा आ स्त्री नितंबरूप स्थली एटले भूमि, तेने तूं दूर मूकीदे. जो तूं ए भूमिने मुकीश नही, तो यौवनरूप प्रबल वायुए करी विस्तारने पामेला व्यामोहरूप रजःकणो तारां नेत्रोमां पडशे तेथी मार्ग सूझनार नथी अर्थात् मोक्षमार्ग मलनार नथी. आंखोमां धूल गयाथी मार्गने जोई शकातुं नथी. ए प्रसिद्ध छे; एम संसाररूप अरण्यमां भ्रमण करीश.

आ वृत्तमां, कामने हस्तिनाबालक जेवो कह्योछे. तेने क्रीडा करवाने स्त्री नितंबरूप पृथ्वी छे, अर्थात् कामक्रीडानुं स्थान जे स्त्रीना नितंब कह्याछे. ए शृंगाररस छे; अने ए पृथ्वीनेविषे यौवनना योगे नेत्रोनेविषे रजःकणो पड्याथी मार्ग सूजतो नथी; अर्थात् स्त्री नितंबरूप भूमिनेविषे जे पुरुष आवी जायछे ते विषयरूप रजःकणेकरी हृदयांध थई जायछे. माटे ए त्याग करवा योग्य छे. ए वैराग्यरस छे. ॥ ३९॥

मालिनीवृत्तम् ॥ शमधनमपहर्तुं कामचौरप्रचारं विरचयति निकामं कामिनी यामिनीयम् ॥ सपदि विदधती या मोह निद्रासमुद्रां जनयति जनमंतः सर्वचैतन्यशून्यम् ॥ ४० ॥

अर्थः—आ कामिनीरूप यामिनी एटले रात्रि, उपशमरूप धन हरण करवाने सारू कामरूप चोरनो अत्यंत प्रचार प्रगट करेछे; तथा मोहरूप निद्रानी समृद्धि करनारी जे ए रात्र, ते जन एटले मनुष्योने अंतःकरणनेविषे सर्व चैतन्य थकी रहित करेछे. जेम रात्रिनेविषे सर्व मनुष्य निद्रित छतां द्रव्य हरण करवासारू चोर फिरे छे तेनी पठे जाणी लेवुं.

आ वृत्तमां, स्त्रीने मोह उत्पन्न करनारी रात्रि कहीछे, ने कामने चोर कह्योछे, अर्थात् स्त्री कामोत्पत्ति करनारी छे, ए शृंगाररस छे; अने ए रात्रिनेविषे मनुष्य भ्रमण करे तो कामरूप चोरना सपाटामां आवी पोतानी संपत्ति तथा प्राण प्रमुख सर्व खोई दियेछे, माटे एनो त्याग करवो योग्य छे ए वैराग्य रसछे. ॥ ४० ॥

उपजातिवृत्तम् ॥ मृगेक्षणा नूनमसावसीमा भीमाटवी बुद्धिमतामतीत्या ॥ यद्बाहुवल्लीभिरनंगभिल्लो बध्वा नरान् लंघयते न मुक्तिम् ॥४१॥

अर्थः—जे बुद्धिमान पुरुषोने अतिक्रमण करवा योग्य नथी, जेने मर्यादा नथी, जेना मृगना जेवां नेत्र छे, एवी आ स्त्री ते भयंकर वन छे; जेनी बाहुलताए करी,

कामरूप जील, मनुष्योने बांधिने फरी छोडी मूकतो नथी, अर्थात् बांधेलाने बांधेलो ज रहेवा दियेछे. जेम अरण्यमां मार्गे चालनारा लोकोने चोर वेलिवडे बांधिने तेओनुं सर्वस्व हरण करी लीयेछे. तेमज मृगेक्षणा स्त्री पोतानी बाहुलताए कंठने विषे बंधन कर्या पछी पुरुषने मूकती नथी.

आ वृत्तमां. स्त्रीने मर्यादारहित कही, तेथी हावभाव सूचव्या छे, स्त्रीने वनरूप कही ने तेनी भुजाने लतारूप कही, एमां कोई पुरुष सपडाय तो फसी पडेछे, अर्थात् स्त्रीए भुजावडे आलिंगन कर्युंहतां तेथी पुरुष छूटी शकतो नथी, ए शृंगार रस छे, अने ए वनमां कामरूप चोरटा वशेछे ते मोक्षमार्गे जनारा पुरुषनुं धर्म धन प्रमुख हरण करी लेनार छे, माटे त्याग करवा योग्य छे, ए वैराग्य रस छे. ॥४१॥

शिखरिणीवृत्तम् ॥ इयं वारं वारं द्युतितुलितरोलंबवलयं न वक्रं भ्रूचक्रं चलयति मृगाक्षी मम पुरः ॥ कुधीकारागारापसरणमतिं मां स्खलयितुं प्रपंचत्पंचेपोर्वहति निवडं लोहनिगडम् ॥ ४२ ॥

अर्थः— आ मृगलोचना जे स्त्री छे, तेनु जे वांकुं भ्रुकुटिचक्र छे, ते भमराओना जेवुं कांतिवालुं छे. ते मारी सांबे वारंवार चंचल करेछे, एम नथी; पण नरशी बुद्धिरूप काराग्रहथी दूर नाशी जवानी इच्छावालो जे हुं छुं, तेमने नाशी जवा न देतां कामना प्रपंच युक्त दुःसह जे लोखंमनी बेडी धारण करेली छे. अर्थात् जेम चोरने बेमी नाखीने बंदीखानामां नाखेछे, तेमज मने पण वश करवा सारु आ स्त्री भ्रुकुटी चक्ररूप कामदेवनी लोखंमनी बेडी धारण करेछे.

आ वृत्तमां, स्त्रीनुं भ्रुकुटिचक्र एवुं छे के जे पुरुष तेना फासामां आवे ते फरी छूटी शकतो नथी, अर्थात् अति मोह उत्पन्न करनारुं छे; ए शृंगार रस छे; अने स्त्रीनुं भ्रुकुटिचक्र काम देवनी लोहनी बेमी छे, माटे तेनो त्याग करवो जोये ए वैराग्य रस छे. ॥ ४२ ॥

मंदाक्रांता वृत्तम् ॥ यामोन्यत्र द्रुततरमितो मित्र यत्कंठपीठे नायं हारश्चकितहरिणीलोचनाया चकास्ति ॥ नाभीरंध्रे विहितवसति र्योस्ति कंदर्पसर्पस्तन्मुक्तोयं स्फुरति रुचिरः किंतु निर्मोकपट्टः॥४३॥

अर्थः—हे मित्र, आ आपणे स्थानकने मूकीने जलदी बीजे ठेकाणे जवुं जोये. केमके तृषावान थएली हरिणीना नेत्रना जेवां जेनां नेत्र छे, एवी स्त्रीओना कंठमां जे

आ हार शोजे छे, ते हार नथी; किंतु नाजिरूप रंध्रनेविषे रहेनारो जे कामरूप सर्प, तेणे मूकेलुं आ मनोहर निर्मोकपट्ट एटले कंचुक दीठामां आवेछे, तेज आ ठेकाणुं मूकीने बीजे ठेकाणे नाशी जवानी सूचना करेछे. सर्पनुं कंचुक जयनो हेतु छे, माटे नाजीरूप जे कामरूप सर्पने रहेवानुं राफडुं, अने आ हाररूप सर्पनुं कंचुक छे, एम जाणीने नाशी जवुं योग्य छे.

आ वृत्तमां, स्त्रीओना कंठना हारनी शोजा कहीछे, तथा नाजिनुं वर्णन करेलुं छे, ए शृंगाररस छे; अने ए बन्ने दुःखना साधन होवाथी त्याग करवा योग्य छे ए वैराग्यरस छे. ॥ ४३ ॥

वसंततिलका वृत्तम् ॥ यः कामकामलविलुप्तविवेकचक्षुः स्वर्गापवर्गपुरमार्गमवीक्षमाणः ॥ ज्ञानांजनं प्रति निरादरतामुपैति भ्रातः पतिष्यति स जीमजवांधुकूपे ॥ ४४ ॥

अर्थः— जे पुरुषना विवेकरूप चक्षु कामरूप कामल एटले नेत्र रोगेकरी ग्रस्त छे; ते स्वर्ग अने अपवर्ग एटले मोक्षरूप नगरनो मार्ग जोई शकतो नथी; एमछतां जे पुरुष ज्ञानरूप अंजननो आदर करतो नथी. ते पुरुष जयंकर संसाररूप अंधकूपमां पडेछे; जेम कमलाना रोगेकरीने जेनां नेत्रो ग्रस्त थयलां होय, ते जो आंखोनेविषे अंजन नाखवानो अनादर करे तो अंध कूपमां पडी जाय. तेम ज्ञानांजननो जे निरादर करेछे. ते आ संसाररूप आंधला कूवामां पडेछे.

आ वृत्तमां, कामने नेत्र रोगना जेवो कह्योछे, एटले जेने कामलो प्रमुख नेत्ररोग थायछे, ते कांई जोई शकतो नथी. तेम कामरूप नेत्र रोगना योगे पुरुष निर्लज्ज थायछे. एवी कामनी महिमा छे, ते शृंगाररस छे; अने कामांध पुरुष आ संसाररूप आंधला कूवामां पडेछे, माटे त्याग करवायोग्य छे, ए वैराग्यरस छे.॥४४॥

शिखरिणी वृत्तम् ॥ जवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरीं तदानीं माकार्षीर्विषयविषवृक्षेषु वसतिम्॥ यतश्छायाप्येषां प्रथयति महामोहमचिरादयं जंतुर्यस्मात्पदमपि न गंतुं प्रजवति ॥४५॥

अर्थः— हे पुरुष, जो तुं जवाटवीने मूकीने मुक्ति नगरीप्रते जावानी इच्छा करतो हो, तो विषयरूप विषवृक्षनेविषे वसति नही कर. केमके, आ वृक्षनी छाया पण महामोहना विस्तारने पमाडेछे. ए विषयवृक्षनी छायानो स्पर्श पण मो

ह कारक छे. ए कारण माटे आ प्राणी एक पगलुं पण चालवाने समर्थ थतो नथी. जेम वननेविषे विषवृक्षनी नीचे बेठेलो पुरुष, मत्त थयेलो होयछे, ते वखते ते वन मूकीने नगरमां जवानी इच्छा करे तो एक पगलुं, पण नाखी शकातुं नथी. माटे मोक्षनी इच्छा करनारा पुरुषे विषयसेवन करवानी बुद्धि करवी नही.

आ वृत्तमां, विषयना सेवन थकी पुरुष कामांध थई जाय छे, एम कह्युंछे ते शृंगाररस छे, अने ते सर्वथा त्याग करवा योग्य छे एम कह्युंछे ते वैराग्यरस छे.

उपजातिवृत्तम्॥सोमप्रभाचार्यमभा च यन्न पुंसां तमःपंकमपाकरोति॥
तदप्यमुष्मिन्नुपदेशलेशे निशम्यमानेऽनिशमेति नाशम् ॥ ४६ ॥

इति श्रीशतार्थवृत्तिकारश्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता
शृंगारवैराग्यतरंगिणी समाप्ता.

अर्थः—सोमप्रभा एटलेचंद्रकांति, अने अर्यमभा एटले सूर्यकांति जे मनुष्योनो तमःपंक एटले अज्ञानांधकारसमूह दूर करता नथी, ते पण आ अल्प उपदेश श्रवण कर्यो छतां नाशने पामेछे, अर्थात् चंद्रकांति तथा सूर्यकांति अज्ञानरूप अंधकारनो नाश करवाने समर्थ थती नथी. अने आ उपदेश अंतरनो अंधकार मटाडवाने समर्थ छे. एथी आ उपदेश अति उत्कृष्ट छे. आ पद्यमां ग्रंथकर्त्ताए पोतानुं सोमप्रभाचार्य एवुं नाम चातुर्ये करी गोपन करेलुंछे, ते ज्ञाताओए जाणी लेवुं. ॥ ४६ ॥

आ ग्रंथनुं नाम ग्रंथकर्त्ताए शृंगारवैराग्यतरंगिणी राख्युंछे, एनोअर्थ शृंगार अने वैराग्यरूप तरंगोवाली नदी, एवो थायछे. ते नदीना बन्ने प्रकार नंदलाल नामना टीकाकर्त्ताए स्पष्टरीते दर्शाव्या छे, तेनोज भाव लईने आ अमे अर्थ कर्यो छे. ग्रंथना अंतमां टीकाकर्त्ताए त्रण श्लोक राख्या छे ते आप्रमाणेः—

संवत्सरद्विपमुनींदुमितस्य मासे मार्गे त्रयोदशमिते दिवसे भृगौ च॥ स्वल्पा तरी विरचिता सुखबोधिकाख्या श्लेषौघयुक्तरतरंगिणिकासुशास्त्रे ॥ १ ॥ आगारानाम्नि नगरे नंदलालेन धीमता ॥ दानविशालशिष्यानुरोधेन कृपया गुरोः ॥२॥ युग्मम् ॥ सोमप्रभाचार्यकृतिं सुदुर्गमां विवृण्वता स्वल्पधिया मयाऽत्र यत् ॥ न्यूनाधिकोट्टंकनमल्पबुद्धितः कृतं विशोध्यं कृतिभिः कृपालुभिः ॥ ३ ॥

इति श्रीशृंगारवैराग्यतरंगिणीभाषांतरं समाप्तं

॥ अथ श्रीवीरस्तवनप्रारंभः ॥

स्वःश्रेयससरसीरुह, सूरं श्रीवीरं कृषिवरं सेव ॥ सविशेषहर्षरसवश, सुरासुर व्यूहसेव्यांऽन्हिं ॥ १ ॥ अश्वोवसीयससरः,शोषसहस्रांशुराश्रयः सहसां ॥ संसार लालसां वो, नूयाद्भवशो वशी वीरः ॥ २ ॥ विपयाशीविषवीश्वर, हिंसारस सरसवारिरुहशिशिर ॥ विश्वस्य रोषशार्वर, संहाररवे शिवाय स्याः ॥ ३ ॥ आशंसवः शिवश्री,विलासलीलां विहाय सुरयोषाः ॥ यं शिश्रियुः स्वरीशाः श्रीवीरः श्रेयसेऽस्तां वः ॥ ४ ॥ हरहासहंसशशिहा,रहारियशसोः शिवंषिसंश्रययोः ॥ ईहे वरिवस्यायं, वीरेशस्यांन्हिसाररसयोः ॥ ५ ॥ शीलसरोवरलहरी, विहारशिशिरा असंवरीयो वः ॥ वीरस्य व्याहारा, न्हियासुरशरीरशौर्यहरा ॥ ६ ॥ उरुसंशयशैलस्वरु, ररिहा वीराऽह्यो वरवृषांसः ॥ अवसेयाद्भोदयं वा, वर्षारुहवारिवाहरवः ॥ ७ ॥ सरलाशयाः सुशीला, रिरंसवः श्रायसश्रिया सह ये ॥ येषां श्रीवीरेश्वर,सेवारस एव हर्षाय ॥ ८ ॥ वीर शिवालयसरसी, वरलावर सर्वविषयविद्भाम्य॥ संवरसारसवासर, सर्वेषां लोलवीष्यवृषं ॥ ९ ॥ शीलश्रियो विवाहावसरे विश्वाश्रयो रसावलये ॥ आवर्ष वसुवर्षा, विशां विशालैरयैरासीः ॥ १० ॥ आशंसे महसाहं, वासवसेवार्ह शिवरसाल हरे ॥ रुहविश्रसावसाय, व्यवसायायासविरहवरं ॥ ११ ॥ अहरुषयोर्विशरारु,श्रीसर्वस्वं हि शशिसरोरुहयोः ॥ अशरारुस्वास्यश्री, लाम्यविलासैर्विलोलयसि ॥ १२ ॥ संसारसलिलराशेः, शोषे कृषिरैर्विशेयइव वीरः ॥ सर्वाशालासियशो,राशिरहिंसारहःशाला ॥ १३ ॥ नरसिशयालुः श्रेयः,श्रिया असंवरसरोरुहशशीव ॥ रायाद्भयं शिवावह, रसाविहारः स्वसेवायां ॥ १४ ॥ संदानिकं ॥ अविषह्यशिरःशूलं, विश्वलिहो विषयवैरिवारस्य ॥ व्याहरसि वृपरहस्यं, शस्याय शरीरिविसराय ॥ १५ ॥ शैशव एव सुसारः, स्वरहार्यशिरोविलोलसेव्यांन्हे ॥ संहरसि हेलयाहः, सिंहइव वशेश्वरं सहसा ॥ १६ ॥ शिशिरांशुशिशिरलेश्यैं,गर्यव्यवहारलालसैररुषैः ॥ संश्रीयसे कृषीशै,रीर्ष्याविद्भीलवासिवरैः ॥ १७ ॥ उद्भासय स्वसेवारसशीले विशि शिवावलीं वीर ॥ अविरलविषयहलाहल, लहरीसंहारसुशिरीष ॥ १८ ॥ श्रवसी वशयसि सौवै, र्व्याहाररसैः सुरासुराहिविशां ॥ यैः सह रसालयाऽहा,सि हारहूाररसालरस ॥१९॥ रैहारिशरीरश्रीः, सुरासुरावार्यवीर्यशाली यः ॥ संवरवैरियशःशशि, राहुरशेषश्रियां वासः ॥ २० ॥ वरिवस्यः सूरिवरै ,र्विहाय आशारसाविहारियशाः ॥ अंहोऽसुरवंश

हरिः, सुरशैलशिलाविशालोराः ॥ २१ ॥ शुश्रूषुशिष्यविसर,श्रवःसुहर्षरसवर्षिसंरा वः ॥ अविजयवार्यैश्वर्य, श्रीयोषाश्लेषरसविवशः ॥२२॥ सैषोऽसहायवीरः, शिवा शिवाराद्वेष्वसुसहेषु ॥ विश्वस्य सुरोर्वीरुह, आयुष्यः श्रेयसां वीरः ॥ २३ ॥ संसारो रुविषालय, वारिविशोर्षावहव्यवाहो वः ॥ अव्याल्लीलाऽलसमुर, विलयाद्दावाऽविषय शीलः ॥ २४ ॥ पंचभिः कुलकं ॥ अव्हियोऽलसस्य शिष्या,वयवलवस्याऽयविरहवि रसस्य ॥ श्रीवीर वीरयरया लेश्या अश्रेयमीरस्य ॥ २५ ॥ यः पंचवर्गपरिहारमनो ज्ञमेतश्चेतश्चमत्कृतिकरं गुणकीर्तनं ते ॥ जिव्हाग्रवर्ति वितनोति विपश्चितानाः श्री वीरभाग्ययुजि न प्रभवंति तस्मिन् ॥ २६ ॥ इति पंचवर्गपरिहारेण श्रीजिनप्रभसू रिकृतश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीगौतमस्तवनं ॥

श्रीमंतं मगधेषु गौर्वर इति ग्रामोभिरामोऽस्ति यस्तत्रोत्पन्नमसन्नचित्तमनिशं श्री वीरसेवाविधौ ॥ ज्योतिःसंश्रयगौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिं तापोत्तीर्णसुव र्णवर्णवपुषं भक्तयेंद्रभूतिं स्तुवे ॥ १ ॥ के नाम नाभेगुरभाग्यसृष्टं दृष्टं सुराणां स्पृहयंति संतः ॥ निमेषविभ्रोज्झितमाननेंदुज्योत्स्नां मनोहत्य तवापिबद्या ॥ २ ॥ निर्जित्य नूनं निजरूपलक्ष्म्यातृणीकृतः पंचशरस्त्वया सः ॥ इत्थं न चेत्तर्हि कुतस्त्रिने त्रनेत्रानलस्तं सहसा ददाह ॥३॥ पीत्वा गिरं ते गलितामृतेच्छाः सुराश्चिरं चक्रुरभो ज्यमिंडुं ॥ सुधाव्हदे तत्र मुनीश मन्ये लक्ष्मच्छलात् शैवलमीक्ष्यतेऽतः ॥ ४ ॥ सौ भाग्यभंग्यापि समाधिदाने प्रत्येति लोकः कथमेतदज्ञः ॥ यत्त्वां समग्राअपि लब्धिकां ताः समालिलिंगुः समकालमेव ॥ ५ ॥ त्वत्पादपीठे विलुठंत्यमर्त्यास्तगेहभृत्याः किल कल्पवृक्षाः ॥ तैरप्यमार्हत तवोपमानोपमेयभावः कथमस्तु वस्तु ॥ ६ ॥ पदो नखाली तव रोहिणीयं मुदे न कस्याद्भुतकच्चरित्रा ॥ वंदारुपुंसां वदनेंदुरंतःप्रविष्टबिं बोपि शिवाय यस्याः ॥ ७ ॥ यत्केवलज्ञानमविद्यमानमथात्मनि स्वांतिषदामदा स्त्वं ॥ लोकोत्तरत्वे ननु तावकानां दिङ्मात्रमेतच्चरिताद्भुतानां ॥ ८ ॥ भवद्गुणानां स्तुतयो गुणज्ञैर्विधीयमाना विबुधाधिपाद्यैः ॥ स्तुत्यांतरस्तोत्रकथागणस्य समाप्त ये वृत्करणीभवंति ॥ ९ ॥ न रागवान्नो भजसेतिचारं नालंबसे वक्रगतिं कदाचित् ॥ पुरस्कृते नोपि घनाघनाशी तथापि पृथ्वीतनयोसि रूढः ॥ १० ॥ प्रभो महावीर मुपास्य सम्यक् त्वयार्जितं यत्नकलारहस्यं ॥ गृहे यतित्वेप्यनिरूपरत्नत्रयीजुषा कीर्तिरतानि तेन ॥ ११ ॥ त्वद्वाणिमाधुर्यजिता पलाय्य सितोपला काचघटीं विवे

श ॥ तत्रापि नीतिं दधती शलाकाव्याजेन जग्राह तृणं तु वक्के ॥ १२ ॥ श्रीवीरसेवा रसलालसत्वात् तद्वाधिनीं केवलबोधलक्ष्मीं ॥ अध्यायतामादरिणीं वरीतुं तृणा य मत्वा त्वमिव त्वमस्याः ॥ १३ ॥ अपोढपंके कविभिर्निषेव्ये निरस्ततापे बहु भंगजाले ॥ विभो नवद्वाङ्मुखगांगपूरे दुर्वादिपूगास्तृणवत्तरंति ॥ १४ ॥ राका मये दिग्वलये समंतात् यशःशशांकेन कृते ध्रुवं ते ॥ कुहूध्वनिः केवलमेव कंठदेशं पिकानां शरणीचकार ॥ १५ ॥ जगत्रयोभासि यशस्तवेतत् क स्पर्द्धतां सार्द्धमनेन चं द्रः ॥ यस्यापरार्द्धेपि तृणस्य नैव प्रभाप्रभावो लभतेऽवकाशं ॥ १६ ॥ ब्रह्मेंद्रपद्मादिषु रूढिमात्रं त्वन्नाम्नि तु श्रीर्वसतीति मुष्टिः ॥ कुतोन्यथा तत्पदलांछितानां पुरःपुरो नृत्य ति नित्यमृद्धिः ॥ १७ ॥ वसुभूतिसुतोपि कौतुकं वसुभूतेर्जनकः प्रणेमुषां ॥ भगव न्नभवोपि वर्तसे कथमंगीकृतसर्वमंगलः ॥ १८ ॥ नाथःकरोषि वृषमीश गणाधिपोपि धत्से सदा स यमपाशमपि प्रचेताः ॥ श्रीदोपि सूत्रितयमालयवासकेलिस्त्वं पावकोपि हरसे हरहेतिपातं ॥ १९ ॥ यत्तपत्यपि कलौ जिनप्रभाचार्यमंत्रमनुशीलतां स्फुरेत् ॥ हेतुताऽत्र खलु तत्वदेकताध्यानपारमितयैव गृह्यते ॥ २० ॥ मयैवं दुर्दैवं शमयितुमलं भूलुमहिमा सुतस्त्वं लेशेन श्रुतरथधुरा गौतमगुरो ॥ कुरूथ्योर्न क्लीवद्दिनपतिसुधा गौत मसिमे प्रभो विद्यामंत्र प्रभव भवतो गौतम नमः ॥ २१ ॥ इति श्रीगौतमस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ नेमिस्तवनं क्रियागुप्तं ॥

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिर्वज्रपाणिना प्रणतः ॥ त्वमवद्यमुक्त नेमे, प्रणमुषां शेमुषीमभ्रुनां ॥ १ ॥ अवद्य ॥ मयि प्रसादप्रवणं कृपानिधे विधेहि शैवेय निजं मनस्त था ॥ यथा जगन्नाथ मधुव्रत व्रतं भवे भवे तारकपादपद्मयोः ॥ २ ॥ भवे ॥ भयेन नेमे यदु वंशमौक्तिक श्रियानिवासस्तव पादपंकजं ॥ दुःखोर्मिसंघट्टविघट्टितात्मना तेनाति गंभीरतमे भवांबुधौ ॥ ३ ॥ आति ॥ दुर्नयार्णवमहातरीनिभाः स्यात्पदोपहितवस्तु विस्तराः ॥ पातकानि भवदीरितागिराऽजंतु जातशिवदानलालसाः ॥ ४ ॥ अजंतु ॥ प्रेंखन्नखश्रेणिमयूखलेखा निर्वासिताशावलयांधकारं ॥ अवार्यसौंदर्यविलास गेऽहं तवांघ्रियुग्मं शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥ गे ॥ यस्त्वया ऋजुपथः सतां मतो देवखंडितकुतीर्थि कवर्गः ॥ तं प्रपद्य निरवद्यमुद्यता नेदयंति ननु मुक्तिपुरीं द्राक् ॥ ६ ॥ ऋदे ॥ वरिवस्या विधौ यस्ते सद्विवेकविनाकृतः ॥ तस्याभिमुखमीक्षंते न जातु सुखसंपदः ॥ ७ ॥ असत् ॥ कर्मकक्षावलीपावकं तावकं दुर्नयाहंकृतित्रासनं शासनं ॥ ये प्रपन्ना गुणस्नेहिनो देहिनस्ते सुराराध्यदुःखानि सुश्रियां ॥ ८ ॥ असुः ॥ विभवराज्यकलासुररा जतावरमणीरमणीभिरलं मम ॥ हृदि पदांबुरुहस्मरणं चते गिरि च तथ्यगुणस्तव

नं तव ॥ ९ ॥ भते ॥ जगज्जनश्रवणपुटामृतच्छटां तमोपहां सुललितरा
गवेशलां ॥ उदीरयन् गिरमिलदेशनावनावरा गतामयसुखसंपदां सतां ॥
॥ १० ॥ अराः ॥ भव्यान् भवभ्रमणभीरुकचित्तवृत्तीन् सद्देशनाभिरभितस्त्वमुरुप्र
भावः ॥ दोषात्समागमनिमीलितमब्जखंडमाश्वासयेन्न किमु रश्मिभिरंशुमाली ॥ ११ ॥
श्रावः ॥ भूत्याभिभूतपुरुहूतपुराभिरामतां कुर्वंति संततमहोत्सवभाजमुर्वरां ॥
स्वच्छंदनंदथुमयानि महाद्भुतानि ते कल्याणकानि भुवनेश विभाव्य चेतसा ॥ १२ ॥
श्रयानि ॥ भास्त्वया भ्रमरविभ्रमवर्णो हे मुनींद्र वपुषि प्रभरिष्णुः ॥ पापशात्रवनिब
र्हणक्षम ध्यानसंततिरिवाश्रितमूर्तिः ॥ १३ ॥ कहे ॥ दुर्बोधं मे सपदि पदकीभूत
वास्तोः पते सद्भृंगश्रेणीकुवलयवनश्यामलच्छायकाय ॥ आकौमाराद्भुवनजयिभि
र्यस्य ते ब्रह्मवर्मस्वैः कादंबैर्न खलु मदनः स्प्रष्टुमप्यक्रमीष्ट ॥ १४ ॥ श्य ॥ नाडांभो
दनिनादयादवकुलश्रीकंठपीठीलुठन् मुक्ताहारमहारथं रतिपतिं निर्जित्य जैनाजिरे
॥ कीर्तिं कैरवकोमलामधिगतं त्वामेव देव प्रभुं श्रीमन्नेमिजिनेंद्रचंद्र शरणं भीरुर्भ
वारातितः ॥ १५ ॥ एमि ॥ सेवाहेवाकिनः स्युस्तव पदयुगले येऽत्र भक्तिप्रयुक्तास्तेषां
देवाः सदा पिप्रति हतविपदः संपदः सुप्रसन्नाः ॥ चिंतारत्नं प्रयत्नात् करतलकलि
तं कुर्वतां सर्वकालं कालं नेतर्नराणामटति सुघटतां नो मनोराज्यसिद्धिः ॥ १६ ॥ पि
प्रति ॥ भवताऽऽरि जयोद्धुरैर्यशःप्रसरैः शुक्लतया जगत्त्रयं ॥ जिनसिद्धिरिति प्रसिद्धिभा
क् सुखसाम्राज्यमयी महापुरी ॥ १७ ॥ आरि ॥ अवगच्छतरां स्वसेवकं मां भगवन्
यां च शिवस्य वर्त्मिनीं त्वं ॥ करुणार्द्रमनाः कुरु प्रसादं मयि तस्याः सपदि प्रकाश
नेन ॥ १८ ॥ अवक् ॥ मरकतकमनीयकांतिकाय त्वमभिनतेंद्र किरीटघट्टितांह्रे ॥
चिरमिन मम चंचरीकचर्यां हृदय कुशेशयकोशमन्वजस्रं ॥ १९ ॥ अय ॥ निखिलज
गतां गोप्ता गुप्तक्रियास्तवसूत्रणादिति कृतनुतिः सानंदं श्रीजिनप्रभसूरीभिः ॥ भव
तु भवतां भेत्तुं भूयो भवभ्रमसंभवं भयमभयदो भीमः श्रीमच्छिवातनयः प्रभुः ॥ २० ॥
इति श्रीनेमिजिनस्तवनं क्रियागुप्तं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमानस्तवनप्रारंभः ॥

कंसारिक्रमनिर्यदापगाधाराशुद्धविराट्छदच्छविं ॥ छंदोभिर्विविधैरधीरधीः स्तोष्येऽहं
चरमं जिनेश्वरं ॥ १ ॥ त्रैलोक्यनेतस्तव दुर्नयालीनिर्नाशनं शासनमाश्रितो यः ॥ त
स्येंद्रवज्रायुधमाविरस्ति दुःकर्मशैलेंद्रभिदाविधाने ॥ २ ॥ किमेकमाश्चर्यकरं न ते यत्
पुष्पंधयोप्येष विशेषविज्ञः ॥ त्यक्तोपजातिभ्रमणाभिलाषस्त्वदंगसौगंध्यमनुप्रयाति
॥ ३ ॥ यः सृजत्यजर सौरभता रैर्बुजैस्तव पदांबुजपूजां ॥ प्रेत्य तस्य दिवि देवमृ

गाह्यः स्वागतानि निगदंति सरागं ॥ ४ ॥ वाजिवारणरथोद्धतानटैरुद्भटा सुजन जोगजंमिजृत् ॥ राज्यरुद्धिरुपनम्रमीति तं मंनमीति तव यः पदौ मुदा ॥ ५ ॥ ना किनिकायकरप्रहतानां संप्रसरन् गगने मरुजानां ॥ जन्ममहे तव कस्य न जज्ञे दत्तमदो धकधोंकृतिनादः ॥ ६ ॥ ये जक्त्यात्तभ्रमरविलसिता जज्ञुः पादांबुरुहि तव विजो ॥ तैः श्रेयः श्रीमधुरमधुरसास्वादो सादात् समजनि कृतिज्निः ॥ ७ ॥ तत्वा तत्वारोपलोपप्रवीणां प्रध्वप्राणित्राणसंस्थाधुरीणां ॥ आज्ञां धत्ते मालिना नव्यजं तुश्रेणिः श्रद्धाशालिनी तावकीनां ॥ ८ ॥ वसुधाम सुधामयवक्त्र विधो तव जाषित माडियते जुवि यः ॥ स सुखानि सुखानिरिवोच्चमणीन् बिजृते परितोऽटककीर्ति नरः ॥ ९ ॥ स्रग्विणी कुंडलभ्राजिगल्लस्थला तारहारद्युतिद्योतिवक्षस्तटा ॥ राजि रारवंदलानामखंडादरा पादपीठे लुठत्यावके पावके ॥ १० ॥ क्षणादेव तेषां शिव श्रीजुजंगप्रयातं विधत्ते शुजं कर्म पुंसां ॥ जवन्नाममंत्रस्य वर्णानुपूर्वी रसज्ञाग्रव र्तिन्नुरापादिता यैः ॥ ११ ॥ द्रुतविलंबितमध्यरवध्वनद् विविधतूर्यमनेकमणीमयं ॥ कुसुमवर्षचितं तव देशनावनितलं कइवेत्य न मोदते ॥ १२ ॥ मुकुरोज्वले ग णजृतां हृदये प्रमिताक्षरापि बत वाक् जवतः ॥ अनियत्तया प्रतिपफाल जिनध्व नितोऽर्थतश्च जगदर्च्यधियां ॥ १३ ॥ जगत्प्रजो जक्तिजरादनुद्विजा द्विजातिवंशाद पहृत्य कृत्यवित् ॥ नरेंद्रवंशस्थमचीकरच्छचीपतिर्जवंतं हरिनैगमेषिणा ॥१४॥ वाचां ते निखिलनयाविरोधिनीनां डुर्बोधद्रुमदलने कुगरिकाणां ॥ माहात्म्यं जुवनमनः प्रहर्षिणीनां निर्वक्तुं कइव यथावदस्तु शक्तः ॥ १५ ॥ सिद्धार्थराजकुलनंदनपारिजा त न भ्राम्यति क्व तव कीर्तिरपारिजात ॥ वर्णेन डुग्धमधुरेण मतोजनागसिंहो द्धता स्थिरतया सुमनोजनाऽग ॥ १६ ॥ अति महति जवोर्मीमालिनीह भ्रमंतो जननमरणवीच्या घातदोदूयमानाः ॥ कथमपि पृथुपुण्याः प्राणिनः प्राप्नुवंति प्रव हणमिव केचिच्छासनं तावकीनं ॥ १७ ॥ लवणिमतर्जितस्मरपुरंध्रिरूपदर्पा घटितक टाक्षलक्षशरविद्धकामिमर्मा ॥ कनकमणीमयाजरणरश्मिरंजितांगी व्यजयत वाणि नी न जवतः समाधिमुद्रां ॥ १८ ॥ प्रबोधं जव्यांजोरुहवनमधीशाधिगमयन् ह रन् मोहध्वांतं परसमयताराः कवलयन् ॥ निविष्टः सिंहासन्यचलममलजामंडलयु तो जवानाजातिस्मोदयशिखरिणीव द्युतिपतिः ॥ १९ ॥ अमितदमितस्रोतो मा द्यत्तुरंगमसंगमत्रिदशहरणीनेत्रो नेत्रत्रिजागविलोकितैः ॥ तव जिन मनः शोके कर्तुं मनागपि न स्वसाच्चलयितुमलं किं हेमाद्रिं युगांतमहाबलाः ॥ २० ॥ दारिद्र्यापत्य रिजवजनुर्विस्त्रसामृत्युडःखैरार्ताः के के न तव बलवदेवसेवां प्रपन्नाः ॥ किं स्याद्भंगि

प्रशमनपटोरौषधस्योपयुक्तौ मंदाक्रांता जगति जनता दुःसहेनामयेन ॥ २१ ॥ शरदुदितनिशाकरांशुप्रना जैत्रकीर्तिछटाधवलितनिखिलत्रिलोकीतलं श्रद्धयोपासते ॥ सरजसविनमत्सुराधीशचूडामणिज्योतिषामरुणितपदपीठभूमिर्जिनेश्वरविस्त्वां प्रजो ॥ २२ ॥ बिभ्राणो नखविक्रियां जयकरीं धूतोल्लसद्वालधीरोद्रं शब्दमनीचकैः प्रकटयन् जूयोवनीकादृतः ॥ त्वद्भक्तया नृतकोप्यवाप्य नृपतां मांसादरं वर्धयन् धत्तेऽनेकपराजिदर्पदलने शार्दूलविक्रीडितं ॥ २३ ॥ विद्यामंत्रैर्न कार्यं सुरतरुनिरलं वित्तेन च मृतं पर्याप्तं राज्यलक्ष्म्या कृतममरतया ह्यास्तां सुवदना ॥ स्फूर्जत्वेका तु जक्तिस्त्वयि मम मनसि ध्वस्ताखिलमला कैवल्यश्रीर्यया स्यात् करतलनिलया साऽन्हाय जगवन् ॥ २४ ॥ श्रीवीरः सर्वदिक्कैः कनकरुचितनूरोचिरुद्दीप्रदीपैर्मंगल्यः सोस्तु दीपोत्सव इव जगदानंदसंवर्जनकंदः ॥ सूक्तिर्जैनप्रजीयं मृदुविशदपदा स्त्रग्धराधीयमाना जव्यानां जव्यजूत्यै जवतु जवतुदे जावनाजावितानां ॥ २५ ॥ इति श्रीवर्द्धमान स्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ चतुर्विंशतिजिनस्तवनं ॥

कनककांतिधनुः शतपंचकोच्छ्रितवृषांकितदेहमुपास्महे ॥ रतिपतेर्जयिनं प्रथमं जिनं नृवृषजं वृषजं वृषजंजिनः ॥ १ ॥ द्विरदलांछित वांछितदायक क्रमजुवस्त्रिदशासुरनायक॥ स्तुतिपरः पुरुषो जवति क्षिता वजित राजितरा जितराग ते॥२॥तुरगलांछनसंजव संजवत्यहरिदं जिन यत्र रसादहं ॥ हृदि दधे जणितीर्गुणजूरुहां शमहिता महितामहि तावकीः ॥ ३ ॥ जवमहार्णवनिस्तरणेच्छया त्वमजिनंदन देव निषेव्यसे ॥ व्रतजृतां कुगतेः स्मरनिग्रहप्रसजया सजया सजयात्मना ॥ ४ ॥ त्रिजुवनामितकामितपूरणे सुरतरोरुपमामतिगामुकां ॥ तव विजो जजते जवतः क्रमावसुमते सुमते सुमतेर्दद ॥ ५ ॥ धरनृपात्मज षष्ठ जिनेश्वर त्वयि कृतप्रणयः क्रियते यतिः ॥ रजसतः प्रथितार्थिदरिद्र तोपरमया रमया रमयान्वितः ॥६॥ प्रजुसुपार्श्वजगत्त्रितयाज्जनुः पवितकाशिपुरीकवीलक्षणः॥ सुकृतिनः कृतिनश्चरितं विदुःखजवतो जवतो जवतोदनं ॥ ७ ॥ कुनयकाननजंजनकुंजराः शशिरुचे महसेनसुत प्रजो ॥ निखिलजीवनिकायहितोक्तिजिः शुजवदा जवदा जवदागमाः ॥ ८ ॥ युधि विजित्य मनोजवमग्रहीन्मकरमंकमिषाद्ध्वजमस्य यः ॥ स्तुतजनाः सविधिं कुरुतां सुरस्तुतमसंतमसं तमसंस्तुतं ॥ ९ ॥ दृढरथांगजशीतल शीतलद्युतिकलाविमला तव जारती॥ मनसि कस्य न हर्षसनाथतां जिन ततान ततानततापिनी॥१०॥

जयति गंडकलक्ष्मतनुर्जिनः शशिमुखांबुजदृक् दशमोत्तरः ॥ कनकवीप्तिरमर्षितदीर कस्तवरदो वरदो वरदोर्युगं ॥ ११ ॥ शुजमयी वसुपूज्यसुत प्रजो जुवननेत्रमहो महि षांकिता ॥ तव तनुर्वितनोतु सुखं सतामरुचिरं रुचिरं रुचिरंजिता ॥ १२ ॥ सकलस त्वसरोजविकासने रविरुचिर्विमल त्रिजगत्पते ॥ अपि शमं नयते तव गीर्जिनामृत रसा तरसा तरसा तृषं ॥ १३ ॥ निजयशोजरनिन्हुतजान्हवीजजवलक्ष्मिमकीर्तिरनं तजित् ॥ दिशतु वः कुमतासुरनिग्रहे नृशमनःशमनः शमनश्वरं ॥ १४ ॥ जवजयं तव धर्म धुनोतु वाक्श्रुतिपथाऽतिथितां गमिता सती ॥ किमु करोति न पित्तरजः शमं वरसिता रसिता रसिताजुषा ॥ १५ ॥ जयति शांतिजिनः स्म जगंति या जटचमूर्यु धि मोहमहीपतेः ॥ रणकथामपि जक्तिजरेण ते ससहसा सहसा सहसाऽमुचत् ॥ १६ ॥ अवति कुंथुजिनाधिपराज्यमाह्मिवत स्त्वयि चक्रहताहितं ॥ त्रिदिवतोऽप्य धिका जनिकृद्धिर्निर्धनरसा नरसानरसारकिं॥१७॥जगदधीश सुदर्शन नूमिपान्वयपयः सरिदीश निशामणे ॥ प्रणिदधेऽतिषदो विशदव्रता वनरतानरता नरतावकान् ॥ १८॥ हृदि नरस्तवमल्लिजिनस्मरन्नपि हि मूर्तिमुपैति महत्फलं ॥ निशमयन् समताकरु णांचितां किमुदिता मुदिता मुदितादरः ॥१९॥ त्वमिन सुव्रत कच्छपलांछनो जनरुचि र्हरिवंशविजूषणः ॥ शिवसुखाय तपःपरशुश्लिताऽशुजवनो जवनो जवनोधियां॥२०॥ विरतिवर्म तटाहतिकुंठितस्मरशरः शरणीक्रियतां त्वया ॥ गुणगणस्य नमिर्बुधबर्ह ण व्रजनजा जनजाजन जावजक् ॥ २१ ॥ अनुमितं खलु नेमिविजो जवच्रमणतो मयका यदि यच्चिरं ॥ महितपादजवान् जवतः कृपाजवनमानवमा वनमालिना ॥ २२ ॥ कमठशासन पार्श्वशिवंकरे रमतएव मनः प्रियधर्मणां ॥ अपि कुतीर्थ्यज नेन डुरात्मना तव मतेऽवमतेऽवमतेजसः ॥ २३ ॥ त्रिजगदीक्षण केसरिलक्षण क्ष णमपि प्रजुवीर मनोगिरौ ॥ गुणगणान् मम मास्म विरज्यतामुदयिता दयितादयि तावकान् ॥ २४ ॥ च्युतिजनुर्व्रत केवलनिर्वृतिक्षणदिनादददतां मुदमार्हताः ॥ व्यरचि षैरुपचत्रिदशैर्दृशां नवसुधा वसुधा वसुधामजिः ॥ २५ ॥ इति जिनप्रजवोमयकाऽति मक्रमगतैर्यमकाऽवयवैर्नुताः ॥ बलममी वितरंतु धुरिस्थिताः शुजवतां जवतां जवत्तां तिजित् ॥ २६ ॥ सडुपदेशकर प्रसरक्षिताऽखिलतमस्कतया तपनोपमाः ॥ ददतु तीर्थ कृतो मम निर्ममाः शमरमा सरमाऽसरमानिताः ॥ २७ ॥ जयति डुर्नयपंकजिनीवने हिमततिर्मतिकैरवकौमुदी॥शमयितुं तिमिराणि जते महाद्वजिनजाजि न जाजिनजार ती ॥ २८ ॥ करकृताम्रफला प्रणती जिनप्रजवतीर्थमिजारिमधिश्रिता ॥ हरतु हेमह चिः सुदृशां सुखव्युपरमं परमं परमंबिका ॥ २९ ॥ इति चतुर्विंशतिजिनस्तवनं समाप्तं॥

अथ श्रीमहावीरस्तवनप्रारंभः

पराक्रमेणेव पराजितोऽयं सिंहः सिषेवे धृतलक्ष्मदंभः ॥ सुखानि वः खानिरयं रमाणां द्वैमातुरस्तीर्थकरः करोतु ॥ १ ॥ सप्ताश्वतेजाः करसप्तकोच्चः कर्मैधसप्तार्चिरसप्तनीतिः ॥ प्रणीतवान् सप्तशतीं नयानां वीरः श्रिये व्यंजितसप्ततत्वः ॥ २ ॥ शक्रानत प्राणतकल्पपुष्पोत्तरात्वमाषाढवलक्षषष्ठ्यां ॥ देवाधिदेव द्विजदारदेवानंदोदरेऽभूर्विहितावतारः ॥ ३ ॥ इयस्य नंद्यादसिता त्रयोदशी द्व्यशीत्यहानंतरमीशितस्ततः ॥ सुरेशसेनापतिदेशिताध्वना क्षात्रं कुलं यत्र पवित्रितं त्वया ॥ ४ ॥ प्रभूतभूतिद्युनवभ्रुवा नवक्षनुमेहे नोऽजनि हेजिन ध्रुवम् ॥ जगत्रयीजंतुषु हर्षवर्षिणी निरूढरूढिमेदनत्रयोदशी ॥ ५ ॥ त्वया स्वदेहद्युतिसंविभागसंभावितं हेम सुवर्णमासीत् ॥ तारंतु हीनं त्वदनुग्रहेण दुर्वर्णमित्यापदवर्णवादं ॥ ६ ॥ बाल्ये विबोधाय हरेः सुराद्रिः पादाग्रभुन्नस्तव यच्चकंपे ॥ चित्रीयता त्वत्तरसा रसातन्मूर्धानमाधूनयतिस्म नूनं ॥ ७ ॥ बभूव भाग्यातिशयप्रभावात् गुरुस्तवापि त्रिजगद्गुरोर्यः ॥ युक्त्यैव तं मेरुगिरेर्गरिष्ठं सिद्धार्थमप्यार्यगणा गृणंति ॥ ८ ॥ कथं गुणैः प्राप्तयशःपताका नारीषु नास्तु त्रिशलाशलाका ॥ यत्कुक्षिशुक्तौ विमलः सुवृत्तो मौतिक्यभूस्त्वं गुणयुक्तिहृद्यः ॥ ९ ॥ दिवि प्रवृद्धं सुरमीश मुष्टिघातेन यद्वामनतामनैषीः ॥ गर्वाद्रिखर्वीकरणश्रमं तु चकर्ष तीर्थेश्वर शैशवेन तत् ॥ १० ॥ मोक्षं गमी यः खलु तद्भवेपि गंतुं कथं सोर्हति लेखशालां ॥ इतीव शक्रोऽपललापपित्रोरनौचितिं ते विनयेन धीमान् ॥ ११ ॥ व्याकुर्वतस्ते हरये यदागमं संगृह्य बुध्या कतिचित् गिरां लवान् ॥ अध्यापको यद्विदधे तदुच्चकैरैंद्रं भुवि व्याकरणं प्रथामगात् ॥ १२ ॥ यस्या न कस्योदितमुक्तिमार्गमार्गस्य कृष्णा दशमी शमीश ॥ प्राज्यं प्रभो यत्र विसृज्य राज्यं श्रमण्यसाम्राज्यमुपाययास्त्वं ॥ १३ ॥ शिवालये प्रोज्झितविग्रहं यत् त्वत्पादमूले चमरं निलीनं ॥ जंभारिदंभोलियमः प्रचंडो नस्प्रष्टुमाप्यैष्ट किमत्र चित्रं ॥ १४ ॥ न बाधितुं जातु दधुः समर्थतां मुनींद्र धातोरिव नान्ववर्तिषुः ॥ समाधिरूढां प्रकृतार्थसंपदं तवोपसर्गा व्यशिर्षस्तु केवलं ॥ १५ ॥ न कौशिके रागमुपासनापरे करोषि रोषं स्म न चंडकौशिके ॥ अहो उदासीनतयैव निर्जिता चमूस्त्वया दुर्विषहापि कर्मणां ॥ १६ ॥ निबर्हितुंगां सुरभर्तुरुध्यतस्तथा तथा यो दुरचेष्टत त्वयि ॥ बहिः कृतः स्वर्गिसमाजसंगमा

त् ससंगमः स्यान्नकथं जनंगमः ॥ १७ ॥ एकाग्रपञ्चत्रिंशतावसाने श्रीवीरती रे ऋजुवालिकायाः ॥ तवोदगात् केवलऋद्धिरस्ताऽपराधराधस्य शुचौ दशम्यां ॥ १८ ॥ एकाक्रमाद्दुर्मुनयः कथं मामितीव कोपात् त्वडुपर्यशोकः ॥ अदीदृशत् षट्पदगर्भपुष्पव्याजस्फुरत्तारकदृक्सहस्रं ॥ १९ ॥ सुरैर्विकीर्णास्तिव देशनावना बभुः प्रसूनप्रकराः समंततः ॥ भयश्लथीभूतकरात्परिच्युताः शराऽवानंगभटस्य कौसुमाः ॥ २० ॥ स्फुटीभवन्मालककौशिकीमुखप्रशस्तरागस्तवसंस्तवोचितः ॥ प्रविश्य दिव्यः श्रवणाध्वनि ध्वनिर्मुदे न केषां रजयन् मृगानपि ॥ २१ ॥ स्थातुं चलच्चामरयुग्मकैतवात् त्वदीयदंतद्युतिजान्हवीजले ॥ ध्रुवं त्वदास्यांबुजवासिभारती युग्ये भपेतां कलहंसदंपती ॥ २२ ॥ स्थैर्यं हृतं यद्भवता शिशुत्वे तद्याचनाय स्फुटमेष मेरुः ॥ स्वयंसमागादिति तुंगहेमसिंहासने ते करवंति तर्कं ॥ २३ ॥ हंतुं क्षमोहं तम एकमेव तद्देहि मेसर्वतमोपहत्वं ॥ इतीव विज्ञापयितुं सिषेवे भामंडलच्छद्मधरो रविस्त्वां ॥ २४ ॥ दूराङ्गराजन्मनिदे भवभीः सुधासपीत्यं त्रिजगज्जनौघं ॥ नूनं नदन् संसदि देवदेवैर्दिव्याहतो डुंडुभिराजुहाव ॥ २५ ॥ मेदं प्रमाणांतरदर्शितं सन्नमंस्यते सर्वं इतीव पुंसां ॥ सितातपत्रत्रितयच्छलेन रत्नत्रयं दर्शयतिस्म साक्षात् ॥ २६ ॥ सुपर्वसंचारितहेमपंकजापदेशतश्चंक्रमणक्षणे किल ॥ गतस्पृहस्यापि गुणैर्वशंवदाः पदोस्तले ते निधयो नवालुठन् ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यसंयुक्तनिरंकुशश्रिप्राकाररेखात्रयवेष्टितांगं ॥ नैक्षंत धन्याः कतिनाम रक्षायंत्रोपमं त्वां सुमनोर्चनीयं ॥ २८ ॥ त्वत्प्रातिहार्यश्रियमित्यवेक्ष्य चेतो न यस्येश चमच्चकार ॥ स केवली चेन्न तदा ऽस्तु तस्य नरभ्रुवस्याजननिर्जगत्यां ॥ २९ ॥ अनिंद्यविद्यावदनेंदुदर्पणा गणाधिपास्ते यदसूत्रयन् श्रुतं ॥ गिरस्तवैव त्रिपदीसुधाकिरः सतां मनःस्वप्रथितेन गौरवं ॥ ३० ॥ अशेषभाषापरिणाममंजुलं विचित्रसंदेहविषांतवज्जलं ॥ स्तुवे वचस्ते नयनिर्विरोधता विधायि संबोधविधौ निबंधनं ॥ ३१ ॥ तप्त्वा तपः षष्ठमपास्तभव्यलोकार्तिकः कार्तिकदर्शरात्रौ ॥ अपापमापुः पदमीश पापा पुर्यां द्वियुग्सततिवत्सरायुः ॥ ३२ ॥ स्वे यत्र बुद्धे सति फल्गुनीषु जाले स्मरोऽभून्मृतकल्पमानी तद्विश्ववंद्योत्तरफल्गुनीषु बभूव कल्याणकपंचकं ते ॥ ३३ ॥ भुवनाधिपतेरनंतया भवत. स्वातिगतेऽत्र भाधिपे ॥ उदयाद्युचितं घनाघनोदकयोगान्नवमौक्तिकश्रिया ॥ ३४ ॥ ज्ञातेक्ष्वाकुकुलप्रदीप भगवन् वंदारुवृंदारकश्रेणीरत्नकिरीटकांतिलहरी संल्लाप्यमानांन्हये ॥ मोहोर्वीपतिगर्वपर्वतभिदि व्याधामधामश्रियामश्रांतं जिनसिंहसूरिमहित श्रीवीर तुभ्यं नमः ॥३५॥ इतिस्तुतिपरायणे त्रिजगदेकचूडामणे प्रसीद

परमेश्वर स्वरसभक्तिनम्रे मयि ॥ भवेन्मम भवेभवे भवडुपासनावासना जिनप्रभवसं विदां वरद पूर्णमेतावता ॥३६॥ इति पंचकल्याणिकमयं श्रीमहावीरस्तवनं समाप्तम्॥

॥ अथ श्रीमंत्रस्तवनप्रारंभः ॥

स्वःश्रियं श्रीमदर्हंतः सिद्धाः सिद्धिपुरीपदं ॥ आचार्याः पंचधाऽऽचारं वाचका वाचनां वरां ॥ १ ॥ साधवः सिद्धिसाहाय्यं वितन्वंतु विवेकिनां ॥ मंगलानां च सर्वेषा माद्यं भवति मंगलं ॥ २ ॥ अर्हमित्यक्षरं माया बीजं च प्रणवाक्षरं ॥ एनं नानास्व रूपं च ध्येयं ध्यायंति योगिनः ॥ ३ ॥ हृत्पद्मषोडशदलस्थापितं षोडशाक्षरं ॥ पर मेष्ठिस्तुतेर्बीजं ध्यायेदक्षरदं मुदा ॥ ४ ॥ मंत्राणामादिमं मंत्रं तंत्रं विघ्नौघनिग्रहे ॥ ये स्मरंति सदैवेनं ते भवंति जिनप्रभाः ॥ ५ ॥ इति श्रीजिनप्रभविरचितं मंत्रस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमानस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीवर्द्धमानः सुखवृद्धयेऽस्तु यशःप्रतापैरनिवर्द्धमानः ॥ सिद्धायिका रक्षति यस्य तीर्थं विघ्नौघतः संततमेव देवी ॥ १ ॥ जिनेंद्र नेंद्रा अपि तावकीनां स्तोतुं गुणान् शक्तिभुपस्तथापि ॥ भक्त्येरितस्तान् कतिचिद्भवीमि नाज्ञः स्वमात्रां विविनक्ति वीर ॥ २ ॥ नयाध्वनां नाथ कृतैकमत्यैरश्रांतमेकांतहितोपदेशैः ॥ करैरिवोस्रद्युति ना तमिस्रास्त्वया नतानां भवभीर्निरासि ॥ ३ ॥ प्रणीयतेऽस्माद्भुतरत्नचित्रैः स मं विमानैस्त्रिदशागमेन ॥ कल्याणकैर्भूवलयं त्वदीयैस्त्रिविष्टपान्यूनमनूनऋद्धि ॥ ४ ॥ भवंतमीशं भजतोऽनुजातु दुःखान्यलं कानि च नापि तापैः ॥ पाणिस्थचिंतामणिमंग भाजं का निर्ऋतिः पीडयितुं शशाक ॥ ५ ॥ सूर्यप्रभा मोहतमःसमूहव्यापादने संशयव ह्निदात्री ॥ त्वद्देशनावाग् जयति त्रिलोकीलोकस्य कर्णामृतवृष्टितुल्या ॥ ६ ॥ रिपून् विजित्यांतरगानगाधवीर्येण सत्ज्ञानरमां निवेश्य ॥ करर्यकार्षीरिन मुक्तिपुर्याः सा म्राज्यमज्यानि सुखोत्करेण ॥ ७ ॥ भिस्सेव पीयूषभुजा जनस्य मथ्नाति मिथ्यात्व विषोर्मिपूरं ॥ तव प्रभा नेत्रपुटैर्निपीता कृतस्थितिर्वेष्मणि निःकलंके ॥ ८ ॥ वृत्ताष्ट काद्यक्षरनामधेयैस्तदंत्यवर्णाहितनामकेऽन्हि ॥ इयं स्तुतिर्वीरजिनस्य दृष्टा करोतु क ल्याणमनुत्तरं वः ॥ ९ ॥ इति जिनप्रभसूरिकृत श्रीवर्द्धमानस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वस्तवनप्रारंभः ॥

पार्श्वं प्रभुं शश्वदकोपमानं दकोपमानं भववन्हिशांतौ ॥ आराधतां दत्तनिरंतरा यं निरंतरायं पदमाप्तुमीडे ॥ १ ॥ वीक्षे जगन्नेत्र महाभ यत्र महाभयत्रस्य तवांह्रि

युग्मं ॥ पुण्यः स एवाऽवसरोऽमराली सरो मरालीव निषेवते यत् ॥ २ ॥ प्रणेमुषां पूर्णसमस्तकामं समस्तकामं सकृदप्यधीश ॥ नवंतमानम्य विमानमाया विमानमायाः प्रनवो नवंति ॥ ३ ॥ नयाढ्यमुच्चक्रमनंगमाल मनंगमालक्षितसर्वनावं ॥ केर्नाम धीमद्भिरमानि शांतं रमानिशांतं न वचस्त्वदीयं ॥ ४ ॥ नित्यं प्रमादेनविना शितामं विनाशितामंगलमंगनाजां ॥ त्वन्नाम धन्यः स्मरतीश सारं रतीशसारंगमृगेंद्रनादं ॥ ५ ॥ नृत्योपि योत्राऽवृजिनप्रनावे जिनप्रनावैकरसस्त्वयि स्यात् ॥ सरूपवान्नीरगजाश्वसेने गजाश्वसेनेश्वरतामुपैति ॥ ६ ॥ नूयान्नमो नीलतमाऽलकाय तमालकायप्रन तुन्यमेव ॥ नवास्त्वदन्यः कतमोऽविता न तमोवितानच्छिदुरोऽर्क एव ॥ ७ ॥ त्वद्भक्तकृत्येष्वविरामवामे विराम वामेय मयि प्रसीद॥नव्यान् स्तवः पातु जिन प्रनोऽयं जिनप्रनो यं विदधे यतींद्रः ॥ ८ ॥ इति जिनप्रनसूरिविरचितं श्रीपार्श्वस्तवनं समाप्तम्॥

॥ अथ श्रीपार्श्वनाथस्तवनप्रारंनः ॥

श्रीपार्श्वपादानतनागराज प्रोत्सर्पदेनःकफनागराज ॥ सतां हृताऽसत्परिणामरागं त्वां संस्तुमः स्थैर्यगुणाऽमराऽगं ॥ १ ॥ ये मर्त्यदेवासुरमाननीयं पश्यंति ते श्रीन रमाननीयं ॥ सद्यस्त्रिलोकीतिलकाऽमितानि सिध्यंति तेषामिह कामितानि ॥ २ ॥ दृशोर्द्वयं पद्मदलानुकारं नाशिश्रयत्ते कमलानुकाऽरं ॥ कुतोऽन्यथा त्वन्नतिदीक्षितेषु सर्वश्रियां प्रेम तदीक्षितेषु ॥ ३ ॥ अन्यर्हितं नव्यकदंबकानां हर्षप्रकर्षाद्भसदंबकानां ॥ सेवंति ये त्वां विधिवह्ननंते निर्वाणसौख्यं बुधवह्ननं ते ॥ ४ ॥ रतेरहंकृत्यपनायिकानि वपुःश्रिया ते सुरनायिकानिः ॥ नाक्षोनि चेतः परनावलीनमर्चिन्त्यविस्तारि शुनावलीनं ॥ ५ ॥ प्रनो तवाऽस्तस्मरराजमाने नखांशुजालेन विराजमाने ॥ क्रमांबुजे लक्ष्मिगृहे रसेनशक्रार्चनीय स्तुमहे रसेन ॥ ६ ॥ आकांक्षिता बहुविधं जनतानिरामाऽस्पृष्टामहोदयपुरी ध्रुवतानिरामा ॥ अप्यध्वरश्रुतितपःसवनादृते न पुंसाऽऽप्यते जिन तव स्तवनादृतेन ॥ ७ ॥ इत्थं फणींद्र सततश्रितपार्श्व नाऽथ स्त्री वा स्तवं पठति यस्तव पार्श्वनाथ ॥ तस्मै स्पृहामवृजिनप्रनवाय नव्या लक्ष्मी र्विनर्ति सुमनःसमवायनव्या ॥ ८ ॥ इति जिनप्रनसूरिविरचितं श्रीपार्श्वनाथस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीनंदीश्वरकल्पप्रारंनः ॥

आराध्य श्रीजिनाधीशान् सुराधीशार्चितक्रमान् ॥ कल्पं नंदीश्वरद्वीपस्याचक्षे विश्वपावनं ॥ १ ॥ अस्ति नंदीश्वरोनाम्नाऽष्टमोद्वीपो द्युसंनिनः ॥ तत्परिक्षेपिणा नंदीश्वरेणांनोधिना युतः ॥ २ ॥ एतद्वलयविष्कंने लक्षाशीतिश्चतुर्युता ॥ योजना

नां त्रिषष्टिश्च कोटयः कोटीशतं तथा ॥ ३ ॥ असौ विविधविन्यासोद्यानवान् देव
जोगनूः ॥ जिनेंद्रपूजासंसक्तसुरसंपातसुंदरः ॥ ४ ॥ अस्य मध्यप्रदेशे तु क्रमात्
पूर्वादिदिक्षु च ॥ अंजनवर्णाश्चत्वारस्तिष्ठंत्यंजनपर्वताः ॥ ५ ॥ दशयोजनसहस्रा
तिरिक्तविस्तृतास्तले ॥ सहस्रयोजनाश्चार्द्धं कुंभमेरूच्छ्रयाश्च ते ॥ ६ ॥ तत्र प्राक्
देवरमणो नित्योद्योतश्च दक्षिणः ॥ स्वयंप्रभः प्रतीच्यस्तु रमणीय उदक्स्थितः ॥७॥
शतयोजनायतानि तदर्धं विस्तृतानि च ॥ द्विसप्ततियोजनोच्चान्यर्हच्चैत्यानि तेषु च ॥
॥ ८ ॥ पृथक् द्वाराणि चत्वार्युच्चानि षोडश योजनीं ॥ प्रवेशे योजनान्यष्ट विस्ता
रेप्यष्ट तेषु तु ॥ ९ ॥ तानि देवासुरनागसुपर्णानां दिवौकसां ॥ समाश्रयादेव तेषां
नामनिर्विश्रुतानि च ॥ १० ॥ षोडशयोजनायामा स्तावन्मात्राश्च विस्तृता ॥ अष्ट
योजनकोत्सेधास्तन्मध्ये मणिपीठिकाः ॥ ११ ॥ सर्वरत्नमया देवछंदकाः पीठिकोप
रि ॥ पीठिकाभ्योऽधिकायामोच्छ्रयनाजस्तु तेषु च ॥ १२ ॥ ऋषजा वर्द्धमाना च त
था चंद्राननापि च ॥ वारिषेणाचेति नाम्ना पर्यंकासनसंस्थिता ॥ १३ ॥ रत्नमय्योयु
ताः स्वस्वपरिवारेण हारिणा ॥ शाश्वतार्हत्प्रतिमाः प्रत्येकमष्टोत्तरं शतं ॥ १४ ॥
द्वे द्वे नागभूतकुंडभृत् प्रतिमे पृथक् पृथक् ॥ प्रतिमानां पृष्ठतस्तु छत्रभृत् प्रतिमैकिका
॥ १५ ॥ तेषु धूपघटीदामघंटाष्टमंगलध्वजाः ॥ छत्रतोरणचंगेर्यः पटलान्यास
नानि च ॥ १६ ॥ षोडश पूर्णकलशादीन्यलंकरणानि च ॥ सुवर्णरुचिररजो वालु
कास्तत्र भूमयः ॥ १७ ॥ आयतनप्रमाणेन रुचिरा मुखमंडपाः ॥ प्रेक्षार्थमंडपा
अक्षवाटिकामणिपीठिका ॥ १८ ॥ रम्याश्च स्तूपप्रतिमाश्चैत्यवृक्षाश्च सुंदराः ॥ इं
द्रध्वजाः पुष्करिण्यो दिव्याः संति यथाक्रमं ॥ १९ ॥ प्रतिमाः षोडश चतुर्द्वारस्तू
पेषु सर्वतः ॥ शतं चतुर्विंशमेवं ताः साष्टशततद्युताः ॥ २० ॥ प्रत्येकमंजनाद्रीणां
ककुप्सु चतसृष्वपि ॥ गते लक्षे योजनानां निर्मत्स्यस्वच्छवारयः ॥ २१ ॥ सहस्र
योजनो द्वेधा विष्कंभे लक्षयोजनाः ॥ पुष्करिण्यः संति तासां क्रमान्नामानि षो
डश ॥ २२ ॥ नंदिषेणा चाप्यमोघा गोस्तूपाऽथ सुदर्शना ॥ तथा नंदोत्तरानंदा सु
नंदा नंदिवर्धना ॥ २३ ॥ भद्रा विशाला कुमुदा पुंडरीकिणिका तथा ॥ विजया वैं
जयंती च जयंती चापराजिता ॥ २४ ॥ प्रत्येकं योजनं पंच पंचशत्या परत्र च ॥ यो
जनानां पंचशतिं यावद्विस्तारभांजि तु ॥ २५ ॥ लक्षयोजनदीर्घाणि महो
द्यानानि तानि तु ॥ अशोकसप्तछदक चूत चंपकसंज्ञया ॥ २६ ॥ मध्ये पुं
ष्करिणीनां च स्फटिकाः पल्यमूर्तयः ॥ ललामवोद्द्यानादिचिन्हा दधिमुखाद्र
यः ॥ २७ ॥ चतुःषष्टिसहस्रोच्चाः सहस्रं चावगाहिनः ॥ सहस्राणि दश

धस्ताडुपरिष्टाच्च विस्तृता: ॥ २८ ॥ अंतरे पुष्करिणीनां द्वौ द्वौ रतिकराचलौ ॥ ततो नवंति द्वात्रिंशदेते रतिकराचलाः ॥ २९ ॥ शैलेषु दधिमुखेषु तथा रतिकराद्रिषु ॥ तच्चाश्वतार्हच्चैत्यानि संत्यंजनगिरिष्विव ॥ ३० ॥ चत्वारो द्वीपविदिक्षु तथा रतिकराचलाः ॥ दशयोजनसहस्रायामविष्कंनशालिनः ॥ ३१ ॥ योजनानां सहस्रं तु यावदुच्चयशोनिताः ॥ सर्वरत्नमयादिव्या ऊल्लर्याकारधारिणः ॥ ३२ ॥ तत्र द्वयो रतिकराचलयोर्दक्षिणस्थयोः ॥ शक्रस्येशानस्य पुनरुत्तरस्थितयोः पृथक् ॥३३॥ अष्टानां महादेवीनां राजधान्योऽष्टदिक्षु ताः ॥ लक्षाबाधा लक्षमाना जिनायतनजूषिताः ॥ ३४ ॥ सुजाता सौमनसा चार्चिमाली च प्रजाकरा ॥ पद्मा शिवा तथा शुच्यंजने जूतावतंसिका ॥ ३५ ॥ गोस्तूपासुदर्शने अप्यमलाप्सरसौ तथा ॥ रोहिणी नवमी चाथ रत्ना रत्नोच्चयापि च ॥ ३६ ॥ सर्वरत्नसंचया च सुवसुर्वसुमित्रिका ॥ वसुजागादि च वसुंधरानंदोत्तरे अपि ॥ ३७ ॥ नंदोत्तरकुरुर्देवकुरुः कृष्णा ततोपि च ॥ कृष्णराजी रामरामा रक्षिता प्राक् क्रमादमूः ३८ ॥ सर्वर्द्धयस्तासु देवाः कुर्वते सपरिच्छदाः ॥ चैत्येष्वष्टाह्निकापुण्यतिथिषु श्रीमदर्हतां ॥ ३९ ॥ प्राच्येंऽजनगिरौ शक्रः कुरुतेऽष्टाह्निकोत्सवं ॥ प्रतिमानां शाश्वतीनां चतुर्द्वारे जिनालये ॥४०॥ तस्य चाद्रेश्चतुर्दिक्स्थमहावापीवितर्दिषु ॥ स्फाटिकेषु दधिमुखपरितेषु चतुर्ष्वपि ॥ ४१ ॥ चैत्येष्वर्हत्प्रतिमानां शाश्वतीनां यथाविधि ॥ चत्वारः शक्रदिग्पालाः कुर्वतेष्टाह्निकोत्सवं ॥४२॥ ईशानेंद्रस्त्वोत्तराहेंऽजनाद्रौ विदधाति तं ॥ तल्लोकपालास्तद्वापीदध्यास्यादिषु कुर्वते ॥ ४३ ॥ चमरेंद्रो दाक्षिणात्येंऽजनाद्रावुत्सवं सृजेत् ॥ तद्वाप्यंतर्दधिमुखेष्वस्य दिग्पतयः पुनः ॥ ४४ ॥ पश्चिमेंऽजनशैलेतु बलींद्रः कुरुते महं ॥ तद्दिग्पालास्तु तद्वाप्यंतर्नाग्दधिमुखाद्रिषु ॥ ४५ ॥ वर्षदीपदिनारब्धानुपवासान् कुहूतिथौ ॥ कुर्वन्नंदीश्वरोपास्त्यै श्रायसीं श्रियमाश्रयेत् ॥ ४६ ॥ जक्तया चैत्यानि वंदारुस्तत्स्तोत्रस्तुतिपावनाक् ॥ नंदीश्वरमुपासीनोऽनुपर्वाहस्तरेत्तरां ॥ ४७ ॥ प्रायःपूर्वाचार्य ग्रथितैरेवायमाचितः श्लोकैः ॥ श्रीनंदीश्वरकल्पो लिखित इति श्रीजिनप्रजाचार्यैः ॥ ४८ ॥ इति श्रीजिनप्रजाचार्यविरचितनंदीश्वरकल्पः समाप्तः ॥

॥ अथ श्रीशारदास्तवनप्रारंजः ॥

वाग्देवते जक्तिमतां स्वशक्तिकलापवित्रासितविग्रहा मे ॥ बोधं विशुद्धं जवती विधत्तां कलापवित्रासितविग्रहा मे ॥१॥ अकंप्रवीणाकलहंसपत्राकृतस्मरेणानमतां निहंतुं ॥ अकंप्रवीणा कलहंसपत्रा सरस्वती शश्वदपोहताद्वः ॥ २ ॥ ब्राह्मी विजे

षीष्ट विनिद्रकुंदप्रजावदाता घनगर्जितस्य ॥ स्वरेण जैत्री कृतुना स्वकीयप्रजा वदाता घनगर्जितस्य ॥ ३ ॥ मुक्ताक्षमालाजसदौषधीशाऽतिज्ञूज्वला जाति करे त्वदीये ॥ मुक्ताक्षमाला जसदौषधीशा यां प्रेक्ष्य जेजे मुनयोपि हर्षं ॥ ४ ॥ ज्ञानं प्रदातुं प्रवणा ममातिशया जुनाना जवपातकानि ॥ त्वं नेमुषां जारति पुंडरीक शयाजुनानाजवपातकानि ॥ ५ ॥ प्रौढप्रजावा समपुस्तके न ध्याता सि येनांबि विराजिहस्ता ॥ प्रौढप्रजावा समपुस्तकेन विद्या सुधापूरमदूरदुःखा ॥ ६ ॥ तुज्यं प्रणामः क्रियते नयेन मराजयेन प्रमदेन मातः ॥ कीर्तिप्रतापौ जुवि तस्य नम्रमराजयेन प्रमदेन मातः ॥ ७ ॥ रुच्यारविंदच्रमदं करोति वेजं यदीयोर्चति तेंऽन्हियुग्मं ॥ रुच्या रविं दच्रमदं करोति स स्वस्य गोष्ठीं विदुषां प्रविश्य ॥ ८ ॥ पादप्रसादात्तव रूपसंपत् लेखाजिरामोदितमानवेशः ॥ जवेन्नरः सूक्तिनिरंब चित्रोल्लेखाजिरासीदितमानवेशः ॥ ९ ॥ सितांशुकां ते नयनाजिरामां मूर्तिं समाराध्य जवेन्मनुष्यः ॥ सितांशुकांते नयनाजिरामांधकारसूर्यः क्षितिपावतंसः ॥ १० ॥ येन स्थितं त्वामनु सर्वतीर्थ्यैःसजाजिता मानतमस्तकेन ॥ दुर्वादिनां निर्दलितं नरेंद्रसजाजितामानतमस्तकेन ॥ ११ ॥ सर्वज्ञ वक्त्रवरतामरसांकलीनामाजीं प्रती प्रणयमंथरया दृशैव ॥ सर्वज्ञवक्त्रवरतामरसांकजीना प्रीणातु विश्रुतयशाः श्रुतदेवता नः ॥ १२ ॥ क्लप्तस्तुतिर्निबिडजक्तिजरात्वष्टकैर्गुंफैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा ॥ बालोऽनुकंप्य इति रोपयतु प्रसादस्मेरां दृशं मयि जिनप्रजसूरिवर्ण्या ॥ १३ ॥ इति श्रीजिनप्रजसूरिकृतश्रीशारदास्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीजिनसिंहसूरिस्तवनप्रारंजः ॥

प्रजुः प्रदद्यान्मुनिपक्षिपंक्तेर्नागारिरागोपचितिं सदानः ॥ समुद्वहन् श्रीजिनसिंहसूरिर्नागारिरागोपचितिं सदा नः ॥ १ ॥ कल्याण गोत्रायितमोहरेणौं चंझानिलेन स्थिरतागुणेन ॥ कल्याणगोत्रायि तमोहरेणौन्नत्यं त्वयैवार्हतशासनस्य ॥ २ ॥ स्वामिन् मनोन्वेति न ते मृगाक्षीं मनोजवानां चतुरंगमानां ॥ बोधेन रुद्धीर्न कुलं गजानां मनोजवानां च तुरंगमानां ॥ ३ ॥ कंदर्पकांतारविजावसूनां प्राप्ते त्वयीशान्यमृषिं तपःश्रीः ॥ कंदर्पकांतारविजावसूनां निधिर्गुणानां जुवि यस्त्वमेव ॥ ४ ॥ जगज्जनांजोजवने गुणौघवक्त्रारविंदं जविना कृतोहं ॥ वंदे त्वदीयं सकलोरुपस्य वक्त्रारविंदं जबिनाकृतोहं ॥ ५ ॥ सर्वं कषायामलमेघवारिमोहाय सूक्तं शृणु तं विजेतुं ॥ सर्वं कषायानलमेघवारिसूक्तं स्मर श्रीजिनसिंहसूरेः ॥ ६ ॥ मुदे न कस्यास्तु धुरि स्थि

ता ते सरस्वती कुड्वशीकराणां ॥ माधुर्यशैत्याक्रयिनी तरिर्नी सरस्वती कुड्वशीक राणां ॥ ७ ॥ सदोदिताबोधमपूरुषा अप्यानंदितावागमृतं श्रवोभ्यां ॥ सदोदिताबो धमपूरुषा अप्युपाशमंस्तेन मुनीषु तेषां ॥ ८ ॥ व्यामोहबाणासुरदर्पमाथ पद्मावरो दीर्णतमोवितानः ॥ त्वमेधि सन्मंत्रजपाजिराद् पद्मावरो दीर्णतमोवितानः ॥ ९ ॥ योगेन धीरोचित माननीय श्रियस्तवोचे शशिनोपमानं ॥ योगेनधीरोचित माननीय प्रख्यातमूर्वं तमुदाहरामः ॥ १० ॥ स्मराशुगानां हृदि मेंगिमर्माविधामरेशास्त्र निधेहि तानि ॥ तत्वानि सूरींद् मदांह्निजेदविधाऽमरेशाऽस्त्रनिधे हितानि ॥ ११ ॥ जिनप्र नाचार्यमनासमानावबोधमव्याः कविमात्मशिष्यं ॥ जिनप्रना चार्यमनासमाना प्र नो स्फुरत्वस्य तव प्रसादात् ॥ १२ ॥ श्रीमज्जिनेश्वरयतीश्वरपादपद्मशृंगारनृंगकरणि जिनसिंहसूरिः ॥ इत्थं स्तुतोस्तु यमकैः शमकंरवेंडुरानंदकंदलनडुर्ललितो नतानां ॥ १३ ॥ इति श्रीजिनप्रनसूरिकृतयमकस्तबकितश्रीजिनसिंहसूरिस्तवनं समाप्तं ॥

॥ अथ श्रीपंचनमस्कृतिस्तवनप्रारंनः ॥

प्रतिष्ठितं तमः पारे पारेवाग्वर्त्तिवैनवं ॥ प्रपंचं वेदसः पंच नमस्कारमनिष्टुमः ॥ १ ॥ अहो पंचनमस्कारः कोप्युदारो जगत्सु यः ॥ संपदोऽष्टौ स्वयं धत्ते दत्तेऽनंता स्तु ताः सतां ॥ २ ॥ दत्तेऽनुकूलएवान्यो नुक्तिमात्रमपि प्रनुः ॥ एष पंच नमस्कारः प्रा तिलोम्येपि मुक्तिदः ॥ ३ ॥ नमस्कारनरेंद्रस्य किमपि प्रानवं स्तुमः ॥ यदीयफूत्कृतेना पि विद्रवंति द्विषः क्षणात् ॥ ४ ॥ सिद्धयोप्यणिमाद्यास्ता नमस्कारमधिष्ठिताः ॥ अष्टांपष्टयक्षरात्मापि यदसौ प्रणवेऽविशत् ॥ ५ ॥ शिरःकादिधियाधीरैः स्वांगदेशनि वेशिता ॥ नमस्कृतेर्नवपदी कटरे वज्रपंजरः ॥ ६ ॥ वर्ण्यतां श्रीनमस्कारान् कार्मणं किमतोधिकं ॥ यत्संप्रयोगतःपांशुरपि संवनयेज्जगत् ॥ ७ ॥ नमस्कारं नुमः सिद्धं यत्पदस्पर्शपूतया ॥ पद्याह्लादितसर्वांगः शांतिमासादयेऽऽवरी ॥ ८ ॥ नववर्णी नम स्कृत्याः कृती प्रतिपदं जपन् ॥ विधत्ते विविधानिघ्नविघ्नावग्रहनिग्रहं ॥ ९ ॥ कर्णिका ष्टदलाढ्ये हृत्पुंडरीके निवेश्य यः ॥ ध्यायेत्पंच नमस्कारं संसारं स तरेत्तरां ॥ १० ॥ अष्टौ कोष्ठे पदेष्वस्य वर्णानालिख्य तावतः ॥ कुंडद्यादावर्चयन् सम्यगेति शांतेर्निशांततां ॥ ११ ॥ आद्याक्षराण्यपीष्टार्थसिध्यै स्युः परमेष्ठिनां ॥ बिंडुरप्यामृतः किं न नाशयेद्विषवि क्रियां ॥ १२ ॥ करांगुलीषु विन्यस्यार्हदादीन् ध्यानमानयन् ॥ प्रत्यूहपन्नगव्यूहव्यपोहे वैनतेयति ॥ १३ ॥ गुरून् पंच क्रमात् ध्यायन् मुद्रया परमेष्ठिनां ॥ गूढप्ररूढ मचिरात् कर्मग्रंथिं विमोचयेत् ॥ १४ ॥ षोडशाक्षरगान् भक्त्यापरमः परमेष्ठिनः ॥ आर्गीमणि

दधानोप्यौपवस्तुफलमेधते ॥ १५ ॥ विद्युज्जलाग्निनृपालव्यालचौरारिमारिजं ॥ नयं वंचयते पंच नमस्कारस्य संस्मरन् ॥ १६ ॥ आराध्य विधिवत्पंच नमस्कारमुदारधीः ॥ लक्षजापेन पापेन मुक्तमार्हत्यमश्नुते ॥ १७ ॥ ऐहिकं फलमीप्सूनामष्टकर्मप्रसाधिनी ॥ मुक्त्यर्थिनां च स्यादेषैवाष्टकर्मनिषेधिनी ॥ १८ ॥ विपदामनिचारस्योपादानस्याखिलश्रियां ॥ स्मर्ता नमस्कृतेः स्वर्गिवर्गेण वरिवस्यते ॥ १९ ॥ चतुर्दशानां पूर्वाणामेषैवोपनिषत्परा ॥ आद्या सकलविद्यानां बीजानां प्रकृतिः परा ॥ २० ॥ इयं पथ्योदनं पथ्यं परलोकाध्वयायिनां ॥ परमास्त्रं नृणां मोहराजयुद्धाय सज्जतां ॥ २१ ॥ प्राणी प्राणप्रयाणस्य क्षणे ध्यायन्नमस्क्रियां ॥ लनते सुगतिं नैकान् पाप्मनः कृतपूर्व्यपि ॥ २२ ॥ नमस्कृतिं कृपावित्तैः श्रोत्रयोः प्राभृतीकृतां ॥ स्वीकृत्य पुण्यसध्र्यंचस्तिर्यंचोपि ययुर्दिवं ॥ २३ ॥ त्रिदंडिनं निगृह्याऽसियष्टिना श्रेष्ठिनंदनः ॥ नमस्कारस्य महसाऽसाधय त्स्वर्णपूरुषं ॥ २४ ॥ स्मृत्वा पंचनमस्कारं प्रविष्टायास्तमोगृहं ॥ घटन्यस्तो महासत्याः पन्नगः पुष्पमाल्यनूत् ॥ २५ ॥ नमस्कारेण संबोध्य मातुलिंगवनामरं ॥ प्राणत्राणं स्वपरयोर्व्यधत्त श्राद्धपुंगवः ॥ २६ ॥ यत्कृतां हुंडिकः प्रापत् सुकुलं चंडपिंगलः ॥ इतस्तादृक् गुणस्फीतिं सुदर्शनः सुदर्शने ॥ २७ ॥ एष माता पिता स्वामी गुरुर्नेत्रं भिषक् सखा ॥ प्राणत्राणं गतिर्दीपः शांतिः पुष्टिर्महन्महः ॥ २८ ॥ निधयः संनिधौ कामधेनुरप्यनुगामिका ॥ नूनृतो नृतकास्तस्य यस्य नैष हृदो हिरुक् ॥ २९ ॥ नास्येयत्ता प्रनावाणां क्रमवर्तितया गिरां ॥ मितायुष्ट्वाच्च सर्वोपि न्यक्षेण नणितुं क्षमः ॥ ३० ॥ सर्वावस्थोचितं सर्वश्रुतसारं सनातनं ॥ परमेष्ठिमहामंत्रं नक्तितंत्रमुपास्महे ॥ ३१ ॥ उच्चैर्योजनलक्षमानविदितो बिभ्रत्सुवर्णात्मतां नव्यानंदननद्रशालमहिमा रोचिष्णुचूलांचितः ॥ अस्तु श्रीजिनगेहनास्वररुचिस्थानं लसन्निर्जरः सोयं वः परमेष्ठिपंचकनमस्कारः सुमेरुःश्रिये ॥ ३२ ॥ साम्नायावयवां जिनप्रनगुरुर्यां सूत्रयामासिवान् दिव्यां पंचनमस्कृतिस्तुतिमिमामानंदनंदन्मनाः ॥ यस्यैषांचति कंठसीमनि सदा मुक्तालताविभ्रमं तं मुंचत्यचिरेण विघ्ननिचयाः श्लिष्यंति च श्रीनराः ॥ ३३ ॥ इति श्रीपंचनमस्कृतिस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवीरस्तवनप्रारंनः ॥

श्रीवर्द्धमान परिपूरितनव्यकाम चामीकरप्रन जिनप्रनसूरिरेतं ॥ सोसूऽयते तव जगज्जनहर्षवर्षदीपोत्सवस्तवलवं यमकावदातं ॥ १ ॥ श्रितास्त्वां कमलाद

र्म्य कल्पपाद पयोज ये ॥ कर्ता तान् प्रति विश्वैककल्पपादपयोजये ॥ २ ॥ कस्ते नाति न सद्बोधसिंधुराराति लक्ष्मणे ॥ रंके च तुल्यचित्ताय सिंधुराराति लक्ष्मणे ॥ ३ ॥ हित्वेश देहं दर्शं त्वां शिवशंकार्त्तिके विदः ॥ नान्यतीर्थ्या यत्र लुप्ता शिवशंकार्त्तिकेविदः ॥ ४ ॥ रुद्धान्यपवर्णानामादानं दीपालिका सतां ॥ कोटिं परां यत्र तेऽनूदानंदी पालिका सतां ॥ ५ ॥ कुदृशां शुश्रुवे तेंऽस्यदेशनाशितदर्पका ॥ धन्यैरेवेश वैराग्यदेशनाशितदर्पका ॥ ६ ॥ त्वन्मुक्त्याऽसीत्तमो हंतुं तरसा दक्ष पावनी ॥ पूः पापापापपद्माऽल्पेतरसादक्षपाऽवनी ॥ ७ ॥ त्वत्सेवायां हृषीकेनहस्तिपाऽलस्यहीनता ॥ केन नाम तदा राज्ञो हस्तिपालस्य हीनता ॥ ८ ॥ दधाना ऽघोरगेभूकस्वातिरेकाविराजतां ॥ कुक्षेषु जात त्वन्मोक्षो स्वातिरेका विराजतां ॥ ९ ॥ त्वन्निर्याणेन करणं नागसंज्ञमरंजयत् ॥ एनांसि नगवन् कं ना नागसंज्ञमरंजयत् ॥ १० ॥ मूढांगतस्येंद्रियार्थममता विषपानतः ॥ नाथोपचर्यां कुर्यास्त्वं मम ताविषपाननः ॥ ११ ॥ तावकं या पिबत्युच्चै रमायाननसारसं ॥ दृष्टिर्विंदति सौरम्य रमाया न न सारसं ॥ १२ ॥ भूयासमन्वहमहं नवतः पृथिव्यां सिद्धार्थनंदनयशोनिमतं समस्याः ॥ सिद्धार्थनंदनयशोनि मतं समस्याः सर्वश्रियां जिन निजं हृदि रोप्यतां मे ॥ १३ ॥ इतिश्री जिनप्रभसूरिविरचितश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीआदिजिनादिस्तवनप्रारंभः ॥

प्रणम्यादिजिनं प्राणी मरुदेवांगजायते ॥ हरणे पापरेणूनां मरुदेवांग जायते ॥ १ ॥ गर्वमंदवमब्जाक्षमाननम्यप्रभोरुणः ॥ सौंदर्यणाजितस्वैर माननम्य प्रभोरुणः ॥ २ ॥ मोहस्यानापतंस्त्राणं शंभवेश मिता रये ॥ यस्मै विश्वं नमश्चक्रे शंभवे शमितारये ॥ ३ ॥ मुदे ऽभिनंदनः सूतो राजसंवरदेहतः ॥ यत्पादाब्जे नृणां भावं राजसं वरदे हतः ॥ ४ ॥ दुःस्थानां सुमते दौःस्थ्यं साध्वसागदवानलं ॥ ध्यायंस्त्वां च स नीरोगः साध्वसागद वानलं ॥ ५ ॥ कः पद्मप्रभ शक्तीस्ते प्रभावदमिता हिताः ॥ संख्यातुमीष्टे चंद्रार्कप्रभावदमिता हि ताः ॥ ६ ॥ मोहराजं सुपार्श्व त्वं नुतमायामलोलुपः ॥ भक्तो तेऽतः कोस्तु विद्धानुतमायामलोलुपः ॥ ७ ॥ तव चंद्रप्रभोत्पन्नमहसे नक्षमेनतः ॥ न सेवाविरहं सोढुं महसेनक्षमे नतः ॥ ८ ॥ मयि भिन्नतनुं चंद्रभावलक्षप्रभो दयां ॥ तन्यास्त्वं सुविधे सर्वभावलक्ष प्रभो दयां ॥ ९ ॥ शीतलात्तुं श्रियोधाम्ना रविकल्पमनामयाः ॥ त्वां प्रत्यात्मा कृतो भर्तरविकल्पमना मया ॥ १० ॥ त्वन्मते रमते श्रेयन् कमलायतनेत्र या ॥ सा धीप्रिया मेऽस्तु कृतं कमलायतनेत्रया ॥ ११ ॥ वासुपूज्य सविज्ञास्त बंधूकारुण्ययोगतः ॥

शरणं त्वक्रमौ विश्वबंधूकारुण्ययोगतः ॥ १२ ॥ श्रेयसः शरणं नव्य त्वं गब्ब विमलंकृते ॥ त्वदि देहि च नक्त्यादिकृत्वं गब्बविमलंकृते ॥ १३ ॥ यःख्यातस्त्रि जगत्यार्थं सदानुतनयोऽनिशं ॥ हंत्वर्कवन्मोहमयीं सदानुतनयोनिशं ॥ १४ ॥ त्वत्पादाब्जेऽलिनो हर्षाद मलं पटतां पदं ॥ शांते मोहं जितं मन्ये दमलंपटतां पदं ॥ १५ ॥ सुश्रीकुंथुं प्रतिप्रव्हा यमलार्जन नंजनाः ॥ यास्तावींद्रागरोपयम लार्जननंजनाः ॥ १६ ॥ सोढुं समर्था नूयस्य नतमामवनिर्बलं ॥ सोरत्वमर्हन्न क्रीडनत मामव निर्बलं ॥ १७ ॥ शक्तिं नवाब्धेरुद्धर्तुं मतिमल्लीनदेहिनः ॥ पुण्य धातर्जने नक्तिमेतिमल्लीन देहि नः ॥ १८ ॥ यस्या विलासास्त्रैलोक्य पद्मानंदनना नवः ॥ मा तु सुव्रत सा शक्या पद्मानंदनना न वः ॥ १९ ॥ यत्र नांह्रिद्वयी ते वा न मे रुचिरकोमला ॥ तत्र राजेप्यनीतानां नमेरुचिरकोमला ॥ २० ॥ नेमे नमस्ते दोषघ्न रंजनः प्रनविप्लवे ॥ कर्मासुरवधायोर्वेरंजनप्रनविप्लवे ॥ २१ ॥ तापाग्नौ जुहुवे पार्श्व नवता पंचसायकः ॥ श्रितोऽतस्त्वं जनो मोहनवतापं च सायकः ॥ २२ ॥ नाऽलुन्यः कामसांख्याय लोकनेतरणीयसा ॥ तेन वीर जगत्कर्मालोकने त रणीयसे ॥ २३ ॥ तवार्हन् पंचकल्याणी दया लोकामदायिनः ॥ पायास्त्रिजगते दत्तो दयालो कामदायिनः ॥ २४ ॥ त्रातुं जीववधाः संविदक्षा मानव तामिताः ॥ जिनें द्राः पांतु करुणा दक्षा मानवतामिताः ॥ २५ ॥ यदाराध्यंति गीर्वाणव्रजाऽनयदशा सनं ॥ तत् प्रज्ञा शरणं नक्ता व्रजाजयदशासनं ॥ २६ ॥ यस्या नेशलिरा जन्या सुत रामघवासना ॥ हंत्वापदः सुसंघस्यासुतरा मघवासना ॥२७॥ लक्ष्म्याकृष्टिकरं जिनेंद्र मनघं नद्रावलीमंदिरं वंदे तस्य गिरं नतभ्रमतमः सूर्यं धियां कारणं ॥ सार्वीयप्रथित प्रनावमखिलारिष्टौघहानिप्रदं दंनव्यालसृणिं वरेण्यसमयं रंगद्गुणं बोधिदं ॥ २८ ॥ इति श्रीयमकयुक्त आदिजिनादिस्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीपार्श्वप्रातिहार्यस्तवनप्रारंभः ॥

त्वां विनुत्य महिमश्रियामहं पन्नगांकमठदर्पकोषिणं ॥ त्वां पुनामि किमपीनर क्षितापन्नगां कमठदर्पकोषिणं ॥ १ ॥ कोनुरज्यति देशनैकसि द्रागशोकतरुणा वि नासिते ॥ रत्नहेमरुचिनिः क्षितोल्लसद्रागशोकतरुणाविनासिते ॥ २ ॥ देहदीधिति तिरस्कृतो दयत्सौरनाः सुमनसः सदानवाः ॥ देशना नुवि किरंति ते स्फुरत्सौरनाः सुमनसः सदानवाः ॥ ३ ॥ तादृशः श्रवणतस्तवोत्तमा कारकाय वरदेशनाध्वनेः ॥ प्रस्थितः कइव पाप्मनां निराकारकायवरदेशनाध्वनेः ॥ ४ ॥ नाकिनायकयुगेन सादरं चामरैर्विषदनाग वीज्यसे ॥ त्वं न कैर्नवसुखायमुक्तये चामरैर्विषदनागवीज्यसे ॥ ५ ॥

वीक्षितुर्नयनयोर्निराकृता शंसनासुरमणीपन्नावतः ॥ आतनोति कृतसिंहविष्टरं शंस नासुर मणीपन्नावतः ॥ ६ ॥ इष्टुरर्पयति कीर्तिशुभ्रिता शांतनावलयमर्यमोद्दं ॥ दीप्यमानमनुमौलि तावकं शांतनावलयमर्यमोद्दं ॥ ७ ॥ व्योम्नि गांजि निनदः पुरस्तवामानवैरिमुदिरो महर्षिनिः ॥ कैर्न डुंदुनिरवः श्रुतस्तनौ मानवैरिमुदि रोमहर्षिनिः ॥ ८ ॥ ओमुषीषु कुपथानि मौक्तिकन्यास हृद्यरुचितानि चायितुः ॥ त्रीणि ते जिन शितोभवारणं न्यासहृद्यरुचितानिचायितु. ॥ ९ ॥ प्रातिहार्यमहिमालयस्तवः श्रीजिनप्रन विति स्तुतो मया ॥ पार्श्वकामितफलाय कल्पतां कल्पपादप इवेष नेमुषां ॥ १० ॥ इति जिनप्रनसूरिकृतश्रीपार्श्वप्रातिहार्यस्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीकल्याणपंचकस्तवनप्रारंन्नः ॥

निलिंपलोकायित नूतलं श्रिया नयन्मुदं नैरयिकानपि क्षणं ॥ त्रिलोकलोकस्य रतेः प्रपंचकं जिनेंड कल्याणकपंचकं स्तुमः ॥ १ ॥ निवेदितः प्रीतिपरैः पुरंदरैश्चतुर्दश स्वप्नविनावितोदयः ॥ महानिधानागम चारुरर्हतां तनोतु गर्नावतरोत्सवः शिवं ॥ २ ॥ कुकुप्कुमारीकृतसूतिसंस्क्रियं सुपर्वसंपादितमज्ञनक्षणं ॥ सृजंतमुद्योतमयं जगत्रयं जनुर्महं संस्तुमहे नवछूदं ॥३॥ सुरोपनीतैः परिवत्सरं धनैर्यथानिलाषं परितोषितार्थिने ॥ जिनाधिपानां निखिलांगिरक्षिणे नमस्तपस्याप्रतिपत्तिपर्वणे ॥ ४ ॥ अमर्त्यनिर्वर्तितदेशनाऽवनीकृताद्भुतः केवलवैनवोद्भवः ॥ अमंदनांदीरवपूरितांबरः करोतु जैनः शुननाजनं जनं ॥ ५ ॥ पुरंदरक्रंदितसंभ्रमभ्रमत्सुरौघमालिंगितमुक्तिवल्लनं ॥ जिनस्य निर्वाणदिनं दिगंतरस्फुरत्तमः सत्तमशर्मणेऽस्तु नः ॥ ६ महर्षयो नूतनवद्भविष्यतामसुत्र कल्याणकपंचकेऽर्हतां ॥ विना विदेहान् दश कर्मनूमिषु स्मरंति मासर्क्षतिथीन् सनातनान् ॥ ७ ॥ इत्याहतस्त्रिजुवनप्रनुसत्क पंचकल्याणवज्रकवचं हृदि यो बिनर्त्ति ॥ शस्त्राणि ते जिततराण्यपि मोहराजः सौनाग्यनाग्ययुजि न प्रनवंति तस्मिन् ॥ ८ ॥ इति श्रीकल्याणपंचकस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ लक्षणप्रयोगमयश्रीवीरस्तवनप्रारंन्नः ॥

निस्तीर्णविस्तीर्णनवार्णवं डैरुत्कर्णमाकर्णितवर्णवादं ॥ सुपर्णमंहोहि दमे सुपर्ण श्रीपर्णवर्णं विनुवामि वीरं ॥१॥ यैर्व्याप्यतां प्राप्यत तावकीनं क्रमांबुजं नाथ नमस्करोतेः ॥ संसारचक्रभ्रमणानिधस्य गणस्य ते वृत्करणं गृणंति ॥२॥ तुल्येपि नेत्रामृतवर्षिनावे कलंकपंकच्युतिसंयुतिन्यां ॥ प्रधानशिष्टं वदनं त्वदीयं मन्यामहेऽन्वाचयशिष्टमिंडं ॥ ३ ॥ द्विगोरिव त्वत्प्रणतस्य संख्या पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिका

नां ॥ विनो बहुव्रीहिसमासवत्त्वमन्यार्थ एवोपदधासि वृत्तिं ॥ ४ ॥ विन्नक्तिमुक्तं पुरु षैरसंख्यैः समाश्रितं धातुविकारहीनं ॥ अपूर्वमेतत्कटकूलनिष्ठाप्रधानमाख्यात मिन त्वदीयं ॥ ५ ॥ यस्मिन्न संधिर्न च वर्णलोपो न संस्तुतिर्विग्रहकारकाणां ॥ नवा विकल्पः क्वचन प्रयोगेष्वहो नवं व्याकरणं तवेदं ॥ ६ ॥ ध्यात्वा हृदा त्वां फ लमेति नव्यो दृष्टापि साक्षान्न कृतीत्वनव्यः ॥ तत्सत्यमेतद्बहिरंगतो यत् स्यादंतरं गोत्रविधिर्बलीयान् ॥ ७ ॥ एतावतैव प्रतिजाति विश्वविलक्षणं वीर नवच्चरित्रं ॥ नालेन युष्मत्पदसंप्रयोगेप्यलंनि लोकस्य यदुत्तमत्वं ॥ ८ ॥ एकत्र धातावुपस र्गपंचकप्रयोग इष्ट. कविनिर्निरंतरं ॥ त्वध्यानधातावुपसर्गविंशतिं सुरः प्रयोक्ता न कथं कुलक्षणः ॥ ९ ॥ प्रनो महच्चित्रमिदं कदंबके कुतीर्थिकाणामपि कर्म धारये॥ यन्मोहराजप्रधनेषु पुंवद्भावो न कश्चित् परिपोस्फुरीति ॥१०॥ शुद्धयोर्वरद नावकर्म णोर्दर्शयन् विकरणस्थितिं पदे॥निर्विनक्ति समुदाहरन् पदं साधुलक्षणविचक्षणो न वान्॥११॥अनुपघातिनमेव किलागमं प्रणिगदंति जिनेश्वर शाब्दिकाः॥असुमतामुपघा तकरःस्पृशत् कथमिवागमतां स कृतःपरैः॥१२॥योपादानं नश्यतः पापपूगस्यासि व्या प्यं वंदतेर्वासवानां॥आधारः श्रीसंपदां संप्रदानं त्रैलोक्यस्य स्तोत्ररत्नोपदायाः ॥१३॥ बेडावद्यः करणमुशतां मोहवार्धिं तरीतुं कर्ता नातेर्द्विरदरदनच्छेदशोनिर्यशोनिः ॥ नव्यानां यस्त्वमसि सुपथप्रस्थितो हेतुकर्त्ता तस्मै तुभ्यं जिन मम शिरो नम्रताकम्रम स्तु ॥ १४ ॥ अंतस्थास्तव शासनस्य यशसां कुंदावदातत्विषां गल्नंते नुवि संप्र सारणविधौ मर्त्या न तत्कौतुकं ॥ यत्ते नित्यमनामिनोपि कुगुरौ दुर्वृत्तदेवेषु च भ्रा जंते गुणवृद्धिनाजनतया भ्रूमस्तदत्यद्भुतं ॥ १५ ॥ तात त्रातरिदं नपुंसकमपि स्वांतं मदीयं नवन्माहात्म्यस्तुतिसुंदरीं प्रणयतः पाणौ करोत्वेकदा ॥ तत्संश्लेषसुखानु नाववशतः क्लैब्यं विधूय क्षणात् तत्रोत्पादयिता ऽथ शाश्वतचिदानंदाव्हयं नंदनं ॥ १६ ॥ इत्थंकारमिनारि लक्षणनरः सल्लक्षणप्रक्रियाचित्रं स्तोत्रमिदं विदंनहृदयो जिव्हाग्रजाग्रत्तमं ॥ कुर्वाणः स्मरबाणकुंठनकलानिस्नाततानर्तकी नाट्याचार्य जिनप्रनेंद्र पदवीसाम्राज्यमासादयेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीजिनप्रन विरचितलक्षणप्र योगमयश्रीवीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीवीतरागस्तवनप्रारंनः ॥

जयंति पादा जिननायकस्य दोषापहा ध्वस्ततमोविकाराः ॥ रवेरिवाश्चर्यमतापका श्च न कौशिकक्लेशकराः खराश्च ॥ १ ॥ वाग्ज्ञानपूजानिरपायरूपाश्चत्वार एतेऽतिशया स्तवैव ॥ देवाधिदेवत्वमनिष्ठुवंतश्चतुःकषायक्षतये तु नाथ ॥ २ ॥ शुद्धप्रयोगस्तवसं

स्तवेन कृतार्थतामेति कृती कृतीश ॥ न वाच्यतां याति कदापि लोके यथा यथार्थस्तव काव्यकर्ता ॥ ३ ॥ त्वमेव चेच्चेतसि जागरूको जंतोरसि श्रीजिनराजमल्लः ॥ नवेन्न किं सस्त्रिजगन्महल्लः प्रपात्यते किं नहि मोहमल्लः ॥४॥ त्वमेव देवस्त्रिविधेन येषां जगत्रयीवंद्यपदो हि पादैः ॥ धात्री पवित्रीक्रियते किमत्रचित्रं तदीयैस्त्रिजगत्पवित्रैः ॥ ५ ॥ उपाधियोगान्महतो लघुत्वं लघोरपि प्राज्यगुरुत्वमेव ॥आदर्शके देव यथा द्विपस्य प्रदीपदीप्तौ तु तनूजुतःस्यात् ॥६॥ कश्चिद्गुणानां हि लवोपि लोके यो दृश्यते सोपि विभोः प्रभावः ॥ अद्भुतकल्याणनिधेर्जिनेंद्र पयोविना पल्लविता नवृक्षः ॥ ७ ॥ नातःपरं देव जडत्वमंतः प्रत्यक्षलक्षोपि नवान्नबुद्धः ॥ सर्वज्ञताप्यस्ति विभो न चान्या त्वमेव देवो विदितो यदीह ॥ ८ ॥ विदंति सर्वेप्यपरानधीशान् नतान्नतास्ते प्रवदंति सर्वान् ॥ जगज्जगन्नाथ यथास्थितं हि त्वं वेत्सिहि त्वांतु न वेत्ति चित्रं ॥ ९ ॥ बहिःस्थितं वेत्ति परस्वरूपं न स्वस्थितं देव तव स्वरूपं॥ चक्षुर्यथा पश्यति बाह्यरूपं नचात्मरूपं तु कदापि लोके ॥ १० ॥ सदात्मविज्ञानविहीनधीभिर्न ज्ञायते नाथ विभोः स्वरूपं ॥ स्वशीर्षपश्चात्प्रविभागसम्यङ्निरीक्षणे कोपि न बाह्यहेतुः ॥ ११ ॥ मध्यस्थभावोपि जिन त्वयीह गुणक्षतेः स्याद्गुणिनो नितांतं॥ यथाऽगुणप्रत्यय एषधातोः कर्मण्यथो कोऽत्र विचारहेतुः ॥ १२ ॥ त्वद्भक्तिभावोप्ययथार्थ एव भवत्प्रणीतार्थविपर्ययेण ॥ विधीयते सर्वहितोपसर्गवर्गेण धात्वर्थइवान्यथा हि ॥ १३ ॥ दोदूयते यःस्वयमेव रागद्वेषादिलुंटाकभटैर्यथेष्टं ॥ संस्तूयते सोपि हि देवबुध्या हहा महामोहविजृंभितं तत् ॥ १४ ॥ अचिंत्यमाहात्म्यनिधिं प्रसन्नं जगच्छरण्यं जगतोपि पूज्यं ॥ त्वमेव देव प्रविभेत्सि हि त्वां प्रकाशतेऽन्येन किमु प्रदीपः ॥ १५ ॥ किमस्तिनास्तिति विवेकपक्षा रागादिपक्षक्षतिलब्धदक्षाः ॥ ये श्रीजगन्नाथ जिनप्रभस्ते त्वामेव देवं जिनमाश्रयंति ॥ १६ ॥ इति श्रीवीतरागस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीचंद्रप्रभस्वामिस्तवनप्रारंभः ॥

देवैर्यःस्तुष्टुवे तुष्टः सोमलांछितविग्रहः ॥ दद्याच्चंद्रप्रभःप्रीतिं सोमलांछितविग्रहः ॥ १ ॥ येषां पूजाविधिःकर्माजनहृत्कमलालयः ॥ ते जिनाः पांतु वोभव्यजनहृत् कमलालयः ॥ २ ॥ कुतीर्थिसार्थेन दुरासदं भोज्ञानिरंजनं ॥ श्रुतं सेवेत मोहाग्निसदंभो ज्ञानिरंजनं ॥३॥ पातु गीर्वाःकृताविद्योपरमा कमलासना ॥ यत् प्रभो वा ज नैर्लेभे परमा कमलासना ॥ ४ ॥ इति श्रीचंद्रप्रभस्वामिस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीऋषभदेवस्तवनप्रारंभः ॥

संस्कृतभाषा.

निरवधिरुचिरज्ञानं दोषत्रयविजयिनं सतां ध्येयम् ॥ जगदवबोधनिबंधनमादिजिनेंद्रं नवीमि मुदा ॥ १ ॥ कस्तवमिति विपोलं वदितुं परितो गुणान् गुरुनिभोपि ॥ चुलुकैः प्रमिमासति वा कइव जलं वरमनीरनिधेः ॥ २ ॥ तदपि त्वद्भक्तिभर प्रतरलितो वच्मि तावकगुणाणुं ॥ चापलनुन्नो स्फुटमपि लपन् शिशुर्वा निरपवादः ॥ ३ ॥ ज्ञानप्रदीपजमिव स्निग्धांजनमुपहितं चरणलक्ष्म्या ॥ सद्ध्यानदृगंजिताय चिकुरचयस्ते स यो रुरुचे ॥ ४ ॥

प्राकृतभाषा.

तमकसिण सप्परवयमो,र मोरउह्लाहुते किलिम्मंति ॥ तुह सासणापिधं जे कुणंति विविहे तव किलेसो ॥ ५ ॥ तल्लिय कल्लाणसिरि, पिदे वकल्लाणसिरिविलासगिहं ॥ तुह वंदे देहमहं विलसिरमोहंपि हयमोहं ॥ ६ ॥ युग्मं ॥ तुह मुहरन्नासयला, रविंदलच्छी मरट्टफुसणेणं ॥ जं विजितुं हिमरस्सी नियकंती निवहसुहडेहिं ॥ ७ ॥ असइं तमभि नवभरं सुसिरिं पहू ससंकोसो ॥ डुग्गं खुर इय घणपरि,हिदंभउ परनिसेहहा ॥ ८ ॥

मागधी भाषा.

तुह गुस्तिदेवनाव, स्तं गदपज्जे शमयपथमचज्जें ॥ ते यिण कुमदलंकशव,शिमिश्रादिस्टी पददि भवे ॥ ९ ॥ तमवय्यवय्यिदमिधं, आचिस्किद शुस्टु मोस्कपुलमग्गं ॥ काला चिष्टामि हगे, हलिशभले पिस्किडुं धज्जे ॥ १० ॥ केलीहलाहगुणाहं, हलिज्जकशवस्टलायि किलणाह ॥ तुह अपुलभवत्तिलसं, वंदामु हगे शलीलाह ॥ ११ ॥ संयणिदधज्जकमले, ये पस्कालिदमहंदपंकमले ॥ धिदपलमहिमशलूवे, ययडु भवं शे शदा कोहे ॥ १२ ॥

पैशाची भाषा.

विबुधान राचिञानत, अनञ्ञ सामञ्ञ बुञ्ञ तिसपञ्ञं ॥ रंतून हितपके मे, कतसिद्धीकुटुंबिनी पनय ॥ १३ ॥ भत्तिभरातो दूरे चिष्ठति यो तुह रमिय्यतेनेन ॥ कसटभरे चरणसुधा विहितसिनातो न सो भोति ॥ १४ ॥ युम्हातिसेवि तेदे अपुरवसुरपातवे सतय्येव॥कीरतिनो येन रती स कथं वपते सुकतबीजं॥१५॥ नत्थून तुरितरिपुनो भववं तिष्ठे तुमं मिमलरूपा॥ विलसिर पमतलच्छीजल, परकालितका इवापगता॥१६॥

चूलिका पैशाची.

कातं सिनेह्फलिता तुह् वतनं सेवते लमा अनखं॥ह्यानून फंकुरकुनं पोमं सक लंकमपि च विथुं ॥ १७ ॥ चलथलमंटलपटिमा चिकुराली शोफते तवंसयुके ॥ चल नसिरितितसथेनू चरनायल तच्च नव तुव्वा ॥ १८ ॥ तुब्बंसकिलितटे फुल,ति मवख नालिव्व मंचुकचलाची ॥ गतरुचकपोलतलरुचि,फासुर सोतामिनीतामा ॥ १९ ॥ लि सफसुमक्कानाविल चनपरिहिन संखनीरवाह्खटा ॥ पथसं फुवि सव्वकला नयनी ती तंसिया तुमए ॥ २० ॥

शौरसेनी.

कुमद मकव्यनिदाणं ताइध जवमाणविक्कदे जगवं ॥ चिंदाविदाव नव्ये, व जो दि यावाणनाध इमा ॥ २१ ॥ करुय अलं हरिपदविं करुय अलं वा मह्त्त विस यसुहे ॥ खवु लहिय अपुरवपदं पणइजणं पाविदूण खलु ॥ २२ ॥ दव्वाङ वि रागमिदो पच्चत्तं एेग ब्बत्तरक्केणं ॥ नवरि तुह् नत्तिपथि माजिणरायं फुरडु हि दयम्मि ॥ २३ ॥ युग्मम् ॥ हीमाणहे जवादो चकिदोहं अम्महे यदिछावो ॥ एं ता यध तायध मं ससेवगं सामिअ्रा तत्तो ॥ २४ ॥

॥ समसंस्कृतम् ॥

हेमसरोरुहजासं कलिमलकमलालिमंथहिमजासं ॥ जवजयधूलिमहाबल ना जेय जवंतमजिवंदे ॥ २५ ॥ तव चरणोजयजलरुह पालीसेवापरायणादेव ॥ विंदं ति नरालिगणा वरसिद्धिरमामरंदलयं ॥२६॥ महिमधरं तमसमहिम, विमलं वरधी सरोरुहेविमलं ॥ समयदयारससुगमं चरणं सेवे तवासुगमं ॥ २७ ॥ तव नामधेय चिंताबद्धरसा जुवि नरावली धत्ते ॥ संरुद्धारिनिरामरजं, दरमालिंगकेलिरसं ॥२८॥

॥ अपभ्रंशजापा ॥

तउ रेहइ अलिसामलि बिद्भुवरावलि जुयपिछि ॥ निझियरिवबलमृणे झुग सुहडन असिलछि ॥ २९ ॥ हुडु मिल्हि विसहजछि, यावहुडिय जणववहार ॥ पइं कायहि मुणियहं, सुफरुसप्पिय करणपयार ॥३०॥ तास्व महाजवजलहिज, लिनरु निवडइ हुहुरुत्ति ॥ जास्वन पास्विय तुध प,हुसारुणनावरुडत्ति ॥ ३१ ॥ सुकटु कहं तिढु ता सुथ, इ कहंत मुसजलजजम्मु ॥ दिविदिवि जीवाजुन कर,दि पइं वुत्त जजिणधम्मु ॥३२॥जूवे हि कुतित्थियजं, वयणू अवरुप्प रयइं विरुद्धु॥तं नेरसिवपंमिय त, इं जि देवु प्रमाणेहिं सुरिद्धु ॥ ३३ ॥ इकासि तेहा जाव वि,णु कुडुपणमिय तुह पाय ॥ जुंजि क्क

हि ता सुर रहइं करिविणु डुरकविघाय॥३४॥ मञ्झ कहंतिहु नावरि,उ दडवड तण उह वेक्कू ॥ सामिय सट्टलतेउ,हु डुनहु चंपइ परचक्कू ॥ ३५॥ जुन्निवि किरिय नाणहरि, घ यंमण मनसुद्धिजुगग्गि ॥ कुकुनपहुवइ सिवनय, रि तुह सासणरहिलग्गि ॥३६॥ परि कवि तुह तणु जूडहि,कंचणकांति रवन्न ॥ वियसहि महणयणुप्पन्न, तामइ नवडुह तिन्न ॥ ३७ ॥

उत्तरपद्यस्याद्यंन्हौ संस्कृतं १ समसंस्कृतं २ प्राकृतं ३ द्वितीये पैशाची चूलिका पैशाचिके ॥ तार्तीयिके मागधीशौरसेन्यौ ॥ तुर्ये अपभ्रंशः ॥

नायालीह्यमंदयामयमलं नासं धरंतं परं राकान्ति पवलोतयं अखचयासत्तं क मालाचितं ॥ धीलं लोअमहं ददावहकलं बिन्नाह्मायालदं नाधा नीवृदिरेसि वंदउं पइं साणंडु सीसुन्नइं ॥ ३८ ॥

॥ कविनामगर्भचक्रं ॥

तं प्राप्तो रुचिशुद्धयोगरनसोन्मीलत्प्रतोपान्वितं शस्तः सौष्ठवनम्रमोहरवनः कंकं जहस्तन्नविः ॥ रुच्या नास्करतिग्मसिद्धिरमणीसंक्रान्तनावः परं रंता ज्ञानरमांशमास्त रुषमे तन्याः सुवियां चिरं ॥ ३९ ॥ जगति विदितवान् यस्त्वत्कमाज्ञास्वरूपं तव शु चिपदनावं संस्तवादध्यवम्य ॥ रचयति निजकंगालंक्रियां स्तोत्रमेतन्नवति नवकरीणां सिंहसोनीष्टलक्ष्मीः ॥ ४० ॥ इति श्रीजिनप्रनसूरिविरचितं अष्टनाषात्मकं श्रीऋषन देवस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीमहावीरस्तवनं ॥

चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं चित्रकृच्चरितं मुदा ॥
प्रतिलोमानुलोमाद्यैः खड्गाद्यैश्चातिचारुन्निः ॥ १ ॥

॥ प्रतिलोमानुलोमपाद ॥

वंदे ऽमंददमं देवं यशमाय यमाशयः ॥ नायेनाघघनायेना पाकृता ममता कृपा २

॥ अनुलोमप्रतिलोम ॥

दासतां तव नागारा नचेयाय मतामस॥ समतामयया चेनरागानावततां सदा॥३॥

॥ अर्द्धप्रतिलोमानुलोम ॥

वरदानवरादित्व त्वदिरावनदारव ॥ याज्यदेव नयान्यास सन्याय नवदेज्यया॥४॥

॥ अर्द्धभ्रम ॥

श्रीद वीर विरेनत्वं दमिताक्ष गताशुन ॥ वीताक्षमारंनितारे रक्ष मां सद्वरंगविप

॥ मुरजबंध ॥

गीरतारजतारङ्गणे धीरता स्थिरतारसा ॥सारतारश्रुतावंध्या सुरता जन तावकी६

॥ गोमूत्रिका ॥

ये पश्यंति तवेहास्यारविंदं नक्तिबंधुराः॥न पतंति नवे शम्यास्ते विदो नगवन्नराः॥७॥

॥ सर्वतोभद्र ॥

नमासररसामान मारिताङ्कङ्कतारिमा॥साता म या यामतासा रङ्कयाममयाङ्करं८

॥ रथपदं ॥

तिर्यङ्नरसुराकीर्णा नासते ननते सना ॥
त्वन्माहात्म्यात् कृताश्चर्य याश्रिता ननता श्रिया ॥ ९ ॥

॥ द्व्यक्षरपाद ॥

रंगोरांगोरुगीगंगा गौरीगुरुररोगरुक् ॥ गोरंगा गाररोगारिं गिरो रंगुरुं गिरिं ॥ १०॥

॥ एकाक्षरपाद ॥

लालालालोललीलालं ततनाततितानते ॥ ममाममाममममुमा ननाननेनोननानन॥११॥

॥ एकाक्षर श्लोक ॥

काकंकि काककंकोकः केकाकोककर्केकिक ॥
ककर्काकुककोकंक ककुःकोकोककांकर्क ॥ १२ ॥

॥ असंयोग ॥

मरुभूमौ तपकृताविव चारुसरोवरं ॥
कुतः सुकृतहीनानां सुलभं तव शासनं ॥ १३ ॥ युग्मं ॥

॥ धान्यां खड्गसंदानितकं ॥

सारणिः पुण्यवन्याया न्यायमौक्तिकशुक्तिका ॥ कामधेनुर्नयविदां बंधोल्लासन लालसा ॥ १४ ॥ सारं स्याद्वादमुद्रायास्त्रिपदी भवतांऽजसा ॥ सा मेऽस्तु हृदि कांतेका खिन्नेन रहितेन सा ॥ १५ ॥

॥ मुसलं ॥

श्रीसिद्धार्थकुलव्योमदिवाकर निरंजन ॥
कङ्कतंकांतवा मतं तीर्थंकर तवाश्रिताः ॥ १६ ॥

॥ त्रिशूलं ॥

भुक्ता या त्वयि नव्याली धन्या धत्तेस्म चेतसा ॥
सामता तामसाकाममकासारंगसागरं ॥ १७ ॥

॥ हलं ॥

त्रिशलाकुक्षिपाथोजराजहंस जगद्विभो ॥
भोगास्तृणमिव त्यक्तास्त्वयामुक्ति दिदृक्षया ॥ १८ ॥

॥ धनु ॥

सुरासुर नमस्तुभ्यं नमस्यति जिनोत्तम ॥
मनःप्रसादसंदर्भदभिता शुभवासना ॥ १९ ॥

॥ शर ॥

कथं कर्तुं जनो मोहव्यपोहमहहक्षमः ॥
मनसा सादरं यस्त्वां न स्तौति तिमिरापहं ॥ २० ॥

॥ शक्ति ॥

बाल्यो मरुशिरःकंपसंपत्प्रथितविक्रम ॥
मनोजानोकहव्याल मम स्वामी भवाभवं ॥ २१ ॥

॥ अष्ट दलकमलं ॥

मानितार्यक्रमामार रमामाकंद माधवः ॥
वधमार्गे ममाकास सकामाधीः प्रतानि मा ॥ २२ ॥

॥ षोडशदल कमलं ॥

वनप्या न घनस्वान ध्यानमौन कनद्धन ॥
ज्ञानस्थान जिनश्रीनघनमेनस्खनःस्व नः ॥ २३ ॥

॥ स्तुत्यनामगर्भ बीजपूरं ॥

जय हेमवपु श्रीक जगन्मोहापहारक ॥
जरादिहीन सिंहांक जन्मनीरधि नाविक ॥ २४ ॥

॥ हरा ॥

तुभ्यं नमोस्तुलनयस्थितिकाय भीतिवल्यासुपावक सुरस्तुत वीर नेतः ॥
विद्याल ताविपुलमंडपहेमरूप कल्याणधीकरणदक्ष नतेदमीन ॥ २५ ॥

॥ कविकाव्यनामांकं चक्रं. ॥

नम्राकृत्यपथो जिनेश्वरवरो नव्याब्जमित्रः क्रियादिष्टं तत्वविगानदोषरहितैः सूक्तैः श्रवस्तर्पणः जन्माचिंत्यसुखप्रदः सुरचितारिष्टक्षयो वः सदा दाता शोभनवादिधीः कजलदं यामेक्षणः संविदा ॥ २६ ॥

॥ चामरबंधः ॥

श्रीमद्धाम समग्रविग्रह मया चित्रस्तवेनामुना नूतस्त्वं पुरुहूतपूजित विनो सद्यः प्रसृद्यैधिमे ॥ ख्यातज्ञातकुलावतंस सकलत्रैलोक्यभूपांतरः स्फारक्रूरतरज्वरस्मरज रः संरब्धरक्षारतः ॥ २७ ॥ इति श्रीमहावीरस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीजीरापल्लिपार्श्वस्तवनं ॥

जीरिकापुरपतिं सदैवतं दैवतं परमहं स्तुवे जिनं ॥ यस्य नाम जगतो वशंकरं शंकरं जपति मंत्रवज्जनः ॥ १ ॥ नाथ तत्तव मुखेंदुदर्शनं दर्शनं च नयनामृतं स्तुवे ॥ येन मेदुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधिः ॥ २ ॥ विश्वविस्तृत महाप्रभाव ते भावतेज इह मातिनो युगे ॥ उद्गते दिनकरे हि भासुरे भासुरेश्वरपुरस्य किं भवेत् ॥ ३ ॥ अर्बुदस्य भवता व्यभावि या भावियात्रिकजनेष्वभीतिद ॥ पश्यतोहरभृतापि सारसा सारसाधुनिचिता भवत्तरां ॥ ४ ॥ ग्राममात्रमपिजीरपल्लिका पल्लिकाननसहोदरीव या ॥ त्वत्पदस्थितिबलेन साधुना साधुनायकपुरीवभासते ॥ ५ ॥ त्वां नमत्यशिववार्धितारकं तारकंकणसुमैः प्रपूज्य यः ॥ प्राप्य चिन्मयमनेनसं पदं संपदं स समुपैति शाश्वतीं ॥ ६ ॥ त्वत्पुरः प्रकुरुते प्रभावनां भावनां जिन निधाय यो हृदि ॥ निश्चितं स लभते न दुर्गती दुर्गतीर्णभवसागर प्रभो ॥ ७ ॥ यो दधाति हृदि तेऽङ्घ्रिपंकजं पंकजं मलमधः करोति सः ॥ तत्रयेपि न भवंति पार्श्वतः पार्श्वतस्यतु भवोद्भवभ्रमाः ॥ ८ ॥ त्वत्स्मृतेरपि जना निरामया रामया चरमया चिरामया ॥ योगिभूषण भवंति भूषिता भूषिताःकिल सुधाशनाइव ॥ ९ ॥ त्वत्पदप्रणतिलालसादरं सादरं दधति जातुनाध्वनिं ॥ यत्र यांति ननु भानुभानवो भानवोदय नमस्तु तत्र किं ॥ १० ॥ अंतरंगरिपवोऽकृपापराः पापराशिहर पीडयंति मां ॥ सत्यपि त्वयि विभो कृपालये पालयेश शरणागतं ततः ॥ ११ ॥ त्वन्मयं जगति यस्य मानसं मानसंयमनतस्य दुर्धरा. ॥ तस्करानलपयः करेणवो रेणवो जिन भवंति तत्क्षणात् ॥ १२ ॥ देवशाखिमणिधेनुदेवता देव तावदिह वांछितप्रदाः ॥ यावदेव तव धामनामजं नाम जंतुमनसि प्रदीव्यति ॥ १३ ॥ ज्ञानिनं जगदिनं निरंजनं

रंजनं त्रिजगतः पुरातनं ॥ त्वां स्मरामि सकलंच निष्कलं निष्कलंकमचलं महाबलं ॥१४॥ इत्थं यः प्रयतः स्तवीति सततं श्रीजीरपल्लीपुरीवासं पार्श्वजिनप्रभुं प्रकटितप्रौढप्रतापोदयं ॥ सोवश्यं भुजगं नविष्णुरधिकं धर्मार्थकामामृतश्रीभिः स्त्रीभिरिव स्वयं गुणगणाभिलष्टाभिराश्लिष्यते ॥१५॥ इति श्रीजीरापल्लीपार्श्वस्तवनं समाप्तम्॥

॥ अथ श्रीफलवर्द्धिजिनपार्श्वस्तवनं ॥

सयलाहिवाहिजलहर, समूहसंहरणचंडपवमाणं ॥ फलवद्धिपासनाहं संथुणिमो फणय इठफलं ॥ १ ॥ विहुयासं विहुयासं, विहुयासं पनमभिथुणंति तुमं ॥ अमयरया अमयरया, अमयरया गुणइखमवयणं ॥ २ ॥ समणाणं समणाणं, समणाणं लंघिउं फुरइ सत्ती ॥ विणयाणं विणयाणं, विणयाणंदणनयाहि मुदे ॥ ३ ॥ अहिरन्ना अहिरन्ना, अहिरन्ना विणियमंति कयपूया ॥ सव्वाही सव्वाही, सव्वाहीणा तुह य नत्ता ॥ ४ ॥ गयवाहा गयवाहा, गयवाहा अरहियापइपसन्ने ॥ परमहिया परमहिया, परमहिया सह न हुंति नरा ॥ ५ ॥ सद्दवणा सद्दवणा, सद्दवणामयरिक हवंति जणा ॥ सुहयगया सुहयगया, सुहयगया तुह पसाएण ॥ ६ ॥ कणयाउ कणयाउ, कणयाउ रखसी तुमं नवणं ॥ नद्दवओ नद्दवओ, नद्दवओ रिद्धिसिरियाणं ॥ ७ ॥ नाएणं नाएणं, नाएणं चियति लोहसुहउंसि ॥ नयराई नयराई, नयराई सुगुणपोराणं ॥ ८ ॥ फलवद्धी फलवद्धी, फलवद्धी दाइणा तुमे विहिया ॥ सन्नयरी सन्नयरी, सन्नयरीणंतयाइजया ॥ ९ ॥ समणाली समणाली, समणाली णं तहागमे धन्ना ॥ चरणरया चरणरया, चरणरया नाइचत्तसिरी ॥१०॥ निहप्पहस्स निह,प्पहस्स, निहप्पहस्स मोहदले ॥ रयणायर रयणायर, रयणायर गुहिर तुज्झ नमो ॥ ११ ॥ इत्थं थुउंसि सिरिपास जगन्निवास सिंगारहारफलवद्धिपुरीसिरीए ॥ बुद्धीयराकयजिणप्पहसूरिवाणी थूयञ्चमे वियर अंतररोगमुक्कं ॥ १२ ॥

॥ इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीचंद्रप्रभस्वामिस्तवनं ॥

॥ संस्कृतं ॥

नमो महसेननरेंद्रतनूज जगज्जनलोचनभृंगसरोज ॥ शरन्नवसोमसमद्युतिकाय दयामय तुभ्यमनंतसुखाय ॥ १ ॥ सुखीकृतसादरसेवकलक्क विनिर्जितदुर्जयभावविपक्क ॥ सुरासुरवृंदनमस्कृत नंद महोदय कल्पमहीरुहकंद ॥ २ ॥

॥ प्राकृतं ॥

जय निरसिय तिहुयणजंतु भंति जय मोहमहीरुहदलनदंति ॥ जयकुंदक

लियसमदंतयंति जयजय चंदप्पहवंदकंति ॥ ३ ॥ जय पणयपाणिगणकप्परुरक जय जगडिय अपयमकसयपरक ॥ जय निम्मलकेवलनाणगेह, जयजयजिणिंद अप्पडिमदेह ॥ ४ ॥

॥ शौरसेनी ॥

विगदङ्हहेडु मोहारिकेदूदयं दलिदगुरुडुरिदमध विहिदकुमदरकयं ॥
नाधतं नमदिजोसदटनदवत्सलंजहदिनिच्चदि गतिं भेददं निम्मलं ॥ ५ ॥

॥ मागधी ॥

असुलसुलनिसलनलनाय सेविदपदे नमिल जय जंतुतुदि सिद्धिशिवपुलपदे ॥
चलनपुलनिलद संभालिसलशीलुदे. देहि मह्मामिनशालि शासदपदे॥ ६॥

॥ पैशाचिकं ॥

ललिताखिलतोसतया सततं मदनानलनीलमनानगुणं ॥
नलिनारुणपाततलांनमते जिनचो ध्यतं सशिवं जनते ॥ ७ ॥

॥ चूलिका पैशाचिकं ॥

कलनालिकनातुलतप्पहलं चलनीकल चालुयशप्पललं ॥
ललनाचनकीतकुनंलुचिलं चिनलावमहंममलामिचिलं ॥ ८ ॥

॥ अपभ्रंश ॥

सासयसुक्ख निहाणुनाहनदिहो जेहिं तनं पुन्नविहूणनजाणु निफलजम्मु तिहंनरपसुहं ॥ ए ॥ निम्मल तुह मुहचंडुजे पहुपिक्खुइ पमगिसिचे ध्यनिरुवमआणंडु तिह मुनिसामी विप्फुरइ ॥ १० ॥

॥ ध्यं समसंस्कृतं ॥

हारिहारहरहासकुंदसुंदरदेहानय केवलकमलाकेलिनिलय मंजुलगुणगणमय॥ कमलारुणकरचरणचरणजरधरणधवल बलसिद्धिरमणिसंगमविलासलालसमलम वदल ॥ ११ ॥ नवनवदवजलवाहविमलमंगलकुलमंदिर वामकामकरिकेलिहरण हरिवरगुणबंधुर ॥ मंदरगिरीगुरुसारसबलकलिनूरुहकुंजर देहिमहोदयमेव देव मम केवलिकुंजर ॥ १२ ॥ इति जगदभिनंदन जनहदि चंदन चंद्रप्रन जिनचंद्रवर॥ पड्नापानिपुत मम मंगलयुतसिद्धिसुखानि विजो वितर ॥ १३ ॥

इति श्रीजिनप्रनसूरिकृतचंद्रप्रनस्वामिसत्कं पड्नापास्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ श्रीवर्द्धमाननिर्वाणकल्याणकस्तवनप्रारंभः ॥

श्रीसिद्धार्थनरेशवंशकमलशृंगारचूडामणेर्भव्यानां दुरपोहमोहतिमिरप्रोल्लासने ऽहर्मणेः ॥ कुर्वे किंचन कांचनोज्वलरुचेर्निर्वाणकल्याणकस्तोत्रं गोत्रनिदर्चनीयचरणांभोजस्य वीरप्रभोः ॥ १ ॥ प्राप्य देव शरदां द्विसप्ततिं शालिनो पवनदेवतद्भुगे ॥ तामुपायत रसेन कार्तिकाऽमावसीनिशि शिवश्रियं भवान् ॥ २ ॥ हस्तिपालकनृपालपालिता पूर्नपूरयतु मन्मनःशुचा ॥ यत्र दर्शइव चंद्रमा भवानस्तमाप भवतापहा पुनः ॥३॥ कर्जदर्शनिशि दर्शितक्षयस्तत्रपुर्यखिलवर्णजाः प्रजाः॥ त्वन्महोदयमही तयाऽधुनाऽप्युत्सवं विदधतेऽनुवत्सरं॥ ४ ॥ यैर्ध्वनिस्तव पपे श्रवःपुटैः षोडशप्रहरदेशनाविधौ॥ तान्निवेश्य धुरि धन्यताजुषां गेयता न खलु तृप्यतेऽन्यतः ॥५॥ पुण्यपापफलपाकवर्णनामध्यमध्ययनपंक्तिशुक्शतं॥ व्याकृथाः स्फुटमपृष्टपट्कृतिव्याकृतीश्च परिषदपुरस्तदा ॥६॥ जीवति त्वयि जिनेंद्रभूतिना त्वत्प्रणामविधिभंगभीरुणा ॥ नूनमेष्यत न देव केवलज्ञानसंपदनुरागभागपि ॥ ७ ॥ यद्विधेयमुपदिश्य गौतमः प्रेषि भक्तिभृदपि त्वयाऽन्यतः ॥ रोगिणः कटुकजायुपानवज्ज्यायसेऽस्य चकृपे गुणाय तत् ॥ ८ ॥ त्वद्विहद्भववतरत्सुरावली या न लक्ष्मणिनृपर्णाशुभिः ॥ सा कुहूरजनिरत्नामयमा पूर्णिमानिशमुपाहसद्ध्रुवं ॥९॥ निर्वृते त्वयि विलोक्य विष्टपं ध्वांतपूरपरिपूरितोदरं ॥ रोदयंत इव रोदसी प्रतिश्रुद्भरेण रुरुदुः पुरंदराः ॥१०॥ वन्हिवायुजलदेश्वरैः सुरैस्तैलपर्णिककृतांगसंस्कृते॥भूतिमात्रमपि भूतिधाम ते ऽस्पृशन् बत न तान् रजोऽस्पृशत् ॥११॥ भक्तितो महितुमीशवासवास्तावकीनहनुसंग्रहं व्यधुः॥नूनमक्षविजयाय तावकानुग्रहेण हनुमत्वमिच्छवः॥१२॥ कुग्रहा न तव जातु शासनं वीर बाधितुमलंभविष्णवः ॥ एककः स खलु भस्मकग्रहो बाधते भवदुपेक्षितस्तदा॥१३॥ जग्मुषि त्वयि शिवं नराधिपास्तत्क्षणं गृहमणीनबोधयन् ॥ ये बभुः कुनयकाननप्लुषस्त्वत्प्रतापशिखिनः कणा इव ॥१४॥ यन्न कश्चन मुनिस्त्वया समं युक्तिमैयरितैरजनैरिव ॥ दुःषमा समयभावलिंगिनां व्यंजितेन गुरुनिर्व्यपेक्षिता ॥ १५ ॥ प्रस्थिते त्वयि शिवाय तत्क्षणं संमुमूर्छुरधिपृथ्वि कुंथवः ॥ क्षुद्रजीवबहुलामतः परं सूचयंतइव भाविनीं महीं ॥ १६ ॥ यत्र यत्र चरणौ त्वयार्पितौ तत्तदास्पदमगादमापतां ॥ एकया पुनरपापया पुरापापयाऽजनि सुरोक्तिनामतः ॥ १७ ॥ यत्र मुक्तिमगमः शमद्रुमावाप पापतुहिनार्कतापततू ॥ प्रीतिमीति तरुकुंजभंजने नाग नागकरणं करोतु नः १८ ॥ यः पठत्यशठधीस्तव वीरस्तोत्रमेतदवधानसमेतः ॥ तत्रभावरिपुरा

जि रयश्रीनाजि न प्रनवति प्रबलापि ॥ १९ ॥ इति श्रीवर्धमाननिर्वाणकल्याणकस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ श्रीअरिनाथस्तवनप्रारंनः ॥

जय शरदशकलदशह्यवदन जय हृतजगदसह्नमदमदन ॥ जय नतशमगतशमनजकदन जयनगवदरपरमपदसदन ॥ १ ॥ गतमलकमलसकलकरचरण जननमरणनवनयनरहरण ॥ रचय चरणरसनशबलस्वन मनवमसनवमरसरम वचन ॥ २ ॥ नवरचनरतदशशतनयन नयवनजलदजलजदलनयन ॥ फलदकलकलयजयकरयजन नमदशमपहरशममनजजन ॥ ३ ॥ अमरफलदपदहरपदकमल गजकरसरलसबलकरयमल ॥ जनयसनयमतनतजनसकल मतफलमपमलकलमलमकल ॥ ४ ॥ नयमयवचनपवनसमवमत परमतजलदपटलमनसमत ॥ शमदमयमसमरसरमसमय नवपतनजनयमज मम शमय ॥ ५ ॥ घनखकनकशकलधनवरन मदकलकरणकलनजयशरन ॥ शरणदचरणनरकदरशमन सदयमदघमफलयगजगमन ॥ ६ ॥ नतशतमखतमखलजनमदर गमयपरमपदमनयदसदर ॥ नवनवनवनवनवदशमगम शकलनगजकलगलदनवगम ॥ ७ ॥ तमचयमपनयतपमहतपन परसमयजरजहरपदजपन ॥ समजनदमनकमनगजकरट दलनसबलतमहतमदचरट ॥ ८ ॥ मदनयनगमशरणनरशरण गतरणसदवतरणवरकरण ॥ परसहचरसमरसजगदवन समवसरणरमदहमहनवन ॥ ९ ॥ सततमचरचरजगदवगमक मननजनकथनतरतमशमक ॥ परपदनगरगमनरणरणक मफलदशमसफलयपथनणक ॥ १० ॥ रसनरलसदनलसनमदमन नवनपवनचरनरयतसमर ॥ दलयबहलमलमरवरवशतमतरतनरशतगतपरवशत ॥ ११ ॥ कपटशकटजलशयसमनवक जनमवगमयसमयरसमवक ॥ गदगजरणफणधरदकदहन धनहरमरकजदरहरमहन ॥ १२ ॥ समतसतमहपरमतकलस गणधरगणधरशमरसकलस ॥ नवदनवदपदलयलसदवम वनमवनमयसहनमहनवम ॥ १३ ॥ एवं श्रीअरतीर्थराज तव यो दुःकर्मरोगच्छिदा कामः केवलवर्णसंस्तवसुधास्वादं विधत्ते सुधीः ॥ श्रेयो वा न जरामरत्वपदवीसौख्यानि बाह्यंतरा मित्राली जय सुंदरः स नियतं शिश्रीयते मानवः ॥ १४ ॥ इति केवलाक्षरमयं श्रीअरनाथस्तवनं संपूर्णं ॥

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

॥ अथ श्रीयशोविजयजी उपाध्यायकृत अध्यात्ममतपरीक्षाप्रारंभः ॥

॥ आर्या वृत्तं ॥ पणमिय पासजिणंदं, वंदिअ सिरिविजयदेवसू
रिंदं ॥ अज्झप्पमयपरिक्खं, जहबोहमिमं करिस्सामि ॥ १ ॥

व्याख्याः– सर्व कल्याणनी सिद्धिने अर्थे, श्रीपार्श्वनाथने प्रणाम करीने, तथा संप्रति विजयमान तपागच्छाधिराज जे श्रीविजयदेवसूरी तेमनी वंदना करीने, पोताना बोधने अनुसारे, आ अध्यात्ममतपरीक्षानामनुं प्रकरण हुं करुं छुं.

उपोद्घातः– कोई आशंका करे के, शुद्ध तत्वनो जे अंगीकार तेने अध्यात्म कहेछे. तेमां कोई विवाद नथी; त्यारे परीक्षा ते शानी करवी? जे वस्तुमां संदेह पडे तेनी परीक्षा कराय छे; निस्संदेह वस्तुनी शी परीक्षा! माटे आ अध्यात्ममत परीक्षानामनुं प्रकरण करवानुं कांई प्रयोजन दीठामां आवतुं नथी. तेने कहेछे ॥ १ ॥

अज्झप्पं णामाई, चउव्विहं चउविहा य तव्वंता ॥
तच्छ इमे अप्पुत्तिय, णामेणज्झप्पिआ णेआ ॥ २ ॥

व्याख्याः– अध्यात्मना चार प्रकार छे. एक नामअध्यात्म, बीजो स्थापनाअध्यात्म, त्रीजो द्रव्यअध्यात्म अने चोथो भावअध्यात्म. चेतन तथा अचेतन ए बेमांनी कोई पण वस्तुनुं अध्यात्म एवुं नाम राखेलुं होय ते नामअध्यात्म; अध्यात्मवंत यतिना आकारनुं चित्र कहाड्युं होय ते स्थापनाअध्यात्म; अने जेथकी भावअध्यात्म उत्पन्न थाय, जेवां के, प्रतिमादर्शन, सद्गुरुसेवा, अने अध्यात्मशास्त्राभ्यास ए त्रणे भावाध्यात्मना कारण छे, माटे ते द्रव्याध्यात्म; तथा आत्माना जे शुद्ध परिणामते भाव अध्यात्म कहिये. तेम अध्यात्मीना पण पूर्वोक्त रीते चार प्रकार छे तेओमां इहां जेओना मतनो विचार कर्त्तव्य छे, ते नामअध्यात्मवंत छे. तेओना मतनी आशंकानुं निवारण करवुं, ते आ ग्रंथनुं प्रयोजन छे. ॥ २ ॥

उ०:– पूर्वोक्त चार प्रकारना अध्यात्ममानो भावअध्यात्म मोक्षनुं कारण छे. माटे तेनुं विशेषेकरी स्वरूप कहेछेः–

जा खलु सहावसिद्धा, किरिआ अप्पाणमेव अहिगिच्च ॥
भासइ परमज्झप्पं, सा दंसण नाण चरणह्वा ॥ ३ ॥

व्या०:– जहांसुधी कषाय तथा इंद्रियने वश थयोथको संसारनेविषे आत्मा

फरे छे, तहांसुधी आत्मानेविषे कर्मनो अधिकार छे; स्वतः आत्मानो अधिकार नथी. केमके, आत्मस्वभावनुं आछादन थएलुं छे. जेम मलद्रव्यना योगे सुवर्ण नुं आछादन थई जायछे, तेथी तेनो स्वभाव प्रगट थई शकतो नथी. तेम कर्मना योगे आत्मानुं आछादन थई जायछे, तेथी तेनो ज्ञान, विज्ञान, तथा अमूर्त्तत्वा दि स्वभाव प्रगट थई शकतो नथी. अने नामकर्म ते आत्मस्वभावने पलटावीने नर, तिर्यंच, नारकी, तथा देवताप्रमुखना पर्यायरूप पोताना स्वभावने प्रगटकरे छे. जेम तीव्र अग्निमां सुवर्णने नाख्याथी ते मल ज्यारे बली जाय त्यारे सुवर्ण नो शुद्धतादिस्वभाव प्रगट थायछे. तेम शुभपरिणाम पूर्वक तपश्चर्याप्रमुख थ की ज्यारे कर्मोनो क्षय थई जायछे, त्यारे आत्मानो ज्ञानादिरूप स्वभाव प्रगट थायछे. एटले कर्मनो अधिकार टलीने स्वतः आत्मानो अधिकार प्रवर्त्ते छे, ए अधिकारनी जे क्रिया तेने भावअध्यात्म कहिये. ते आत्म ज्ञानरूप एक वस्तु हो वाथी बोधरूप छे माटे ज्ञान कहिये; तेमज रुचिरूप होवाथी सम्यक्त दर्शन क हिये; तथा प्राणातिपातादिक आश्रवनिरोधरूप होवाथी चारित्र कहिये. यतः "आ त्मानमात्मनोवेत्ति, मोहत्यागाद्यआत्मनि॥ तदेव तस्य चारित्रं, तज्ज्ञानं तच्च दर्शनं."

उ० कोइ आशंका करे के, भावाध्यात्म तथा शुद्धोपयोग ए बे शब्दोनो अर्थ एक छे. जेम उपाधिरहित स्फटिकनो निर्मल स्वभाव छे. तेम परद्रव्यसंगरहि त जीवनो निर्मल स्वभाव छे. तेनेज शुद्धोपयोग कहेछे. अने एनेज चारित्र कहेछे. परद्रव्यसंगे जीवनो जे मलिन स्वभाव थायछे, तेने अशुद्धोपयोग कहेछे एना बे भेद छेः—एक शुभोपयोग बीजो अशुभोपयोग. देव गुरु तथा धर्मादिक उ पर जे प्रशस्त राग होयछे, तेने शुभोपयोग कहेछे. जेम राता फूलना संगथकी स्फटिकनो रातो रंग थायछे, तेम जाणवुं. अने जे अप्रशस्त राग तथा द्वेष होय छे, तेने अशुभोपयोग कहेछे. जेम काला फूलना संगथकी स्फटिकनो कालो रंग थायछे, तेम जाणवुं. ए बन्ने मूल स्वभावने ढांकी लियेछे, तेथी अशुद्धोपयोग कहेछे. एनेज शुद्धोपयोगरूप चारित्रना भेद कहेछे: एनां आयतन परद्रव्य छे त्यारे श्वेतांबरनेविषे चउद उपकरणरूप परद्रव्यनो संग छता अध्यात्म केम प्रग ट थाय? तेने उत्तर कहे छे. ॥ ३ ॥

णविना रागद्दोसो, अप्पपरसेहि किंचि पडिकूलं ॥
परदव्वं उवगरणं, किंपुण देहुव धम्मइं ॥ ४ ॥

व्या० मात्र रागद्वेषविना बीजूं कोई पण परद्रव्य ते शुद्धोपयोगरूप अध्यात्म ने प्रतिकूल नथी. एम जो अंगीकार नही करशो तो लोकमां सर्वत्र धर्मास्तिकायादिक परद्रव्य नर्या छे, ते बधां प्रतिकूल कहेवासे. तेम तो संभवे नही; माटे शुद्धोपयोगरूप अध्यात्मने राग द्वेषज प्रतिकूल छे, एविनाबीजुं कोई परद्रव्य प्रतिकूल नथी एम जाणवुं. जो एम कहेशो के परिग्रहीत परद्रव्य अध्यात्मनुं विरोधीज छे, पण अपरिग्रहीत परद्रव्य अध्यात्मनुं विरोधी नथी. त्यारे शरीर रूपद्रव्य परिग्रहीत छतां केम अध्यात्म उत्पन्न थायछे? जो एम कहेशो के, शरीर धर्मनुं कारण छे. तेथी अध्यात्मनो विरोधी नथी. त्यारे धर्मोपकरण पण धर्मनां साधन होवाथी अध्यात्मना विरोधी थाय नही. ए सामान्यपणे उत्तर कह्युं.

उ० कोई एवी आशंका करे के ज्यांसुधी उपधि होय. त्यां सुधी सर्वथा अध्यात्मनी सिद्धि थाय नही तेनुं मत दूषित करेछेः— ॥ ४ ॥

उवधिसहिओ ण सिज्झइ, सतुसा जह तंडुला न सिज्झंति ॥
इय वयणं पक्खित्तं, दूरे दिठंतवेसम्मा ॥ ५ ॥

व्या०ः—उपधिसहित जीव सिद्धताने पामे नही. जेम तूससहित चोखो सीझे नही, तेम जाणवुं. जेम चोखाने तूस दोषरूप छे, तेम उपधि जीवने दोषरूप छे. एवुं वचन अमरचंद नामना दिगंबरनुं जुठुंज नाख्युं छे, माटे ए दृष्टांत समीचीन नथी. केमके, चोखाने तूसरूप दोष ते स्वरूपथकी छे; अने जीवने उपधिरूप दोष स्वरूपथकी नथी. जीवने उपधिरूप दोष जो स्वरूपथी होय, तो क्षपकश्रेणीए चढेला यतिना स्कंधउपर वस्त्र नाखिये तो तेने केवलज्ञान उत्पन्नथवुं न जोये. अने तूससहित वस्तु सीझे नही. ए पण सर्वथा संभवित नथी. केमके, मुग प्रमुख तूससहित सीझतां दीठामां आवेछे. माटे ए पण एकांत नथी, अनेकांत छे.

उ०ः— परवादी जे दोष उपधिनेविषे कहेछे, ते दोष शरीरनेविषे पण संभवे छे; ते देखडावे छेः— ॥ ५ ॥

जा उवगरणे मुछा, आरंभो वा असंजमो तस्स ॥
तह परदव्वम्मि रई, सा किम्र तुहं सरीरेवि ॥ ६ ॥

व्या०ः— जो एम कहेशो के, उपधि राख्याथी मूर्छा थायछे. त्यारे शरीरउपर केम मूर्छा थती नथी. उपधिनी मूर्छा तो शरीर मूर्छानिमित्त छे. तेथी शरीरने

अधिक मूर्छा संजवे. एनुं समाधान जो आवी रीते करिये के, मूर्छाना बे जेद छेः– एक मारुं मारुं एवो ममत्वपरिणाम. अने बीजो पामेली वस्तुउपर अवियोगनो अध्यवसाय; ए आर्त्तध्याननो जेद छे. तेओमांनी पहेली जे शरीरविषे ममत्वपरिणामरूप मूर्छा कहीछे, ते तो सम्यक्दृष्टिने पण थाय नही; केमके, ते ज्ञानी छे. अने ममत्वपरिणाम तो अज्ञाननिमित्त छे. एथीज सम्यक्दृष्टि विषयादिकनुं सेवन करतो छतां पण तेने परमार्थथी विषयसेवनरहित कह्यो छे; त्यारे यतिनेविषे ते शुं कहेवुं! अर्थात् यति तो सर्वथा विषयसेवनरहित छे. अने बीजी आर्त्तध्यानरूप जे मूर्छा छे ते धर्मध्यानना प्रजावेकरी शरीरविषे थाय नही. एज समाधान उपकरणनेविषे पण जाणी लेवुं. जो एम कहेशो के, उपकरण राख्याथी तेना ग्रहण तथा त्यागथी आरंज थायछे., ए वात पण असंजवित छे. केमके, आरंज तो शरीरना करचरणादिनी क्रिया कर्याथी पण थाय छे. जो कहेशो के शरीरना करचरणादिकनी क्रिया जयणाएकरी थायछे. तो जयणाएकरी धर्मोपकरण लेतां तथा मूकतां पण आरंज थतुं नथी. जो एम कहेशो के, धर्मोपकरणथकी शुद्धात्मपरिणाम जंगरूप हिंसा थायछे त्यारे शरीरथकी केम हिंसा थती नथी? ज्यारे मूर्छाविना शरीरथकी हिंसानो संजव थतो नथी, त्यारे मूर्छाविना धर्मोपकरणनो पण संजव केम थशे! जो एम कहेशोके, धर्मोपकरणथकी परद्रव्यनेविषे रति होवाथी आत्मद्रव्यमां रति थती नथी. त्यारे शरीरथकी पण द्रव्यरति केम नथाय? किंतु थवीज जोइये एनो विचार करो.

उ०:– परद्रव्यरतिने बे विकल्पेकरी दूषित करेछेः– ॥ ६ ॥

तह परदवम्मि रई, परिणामो रस्कणाणुबंधो वा ॥
उहश्रो तणु सममुवहिं, पासंतो किं ण लज्जेसि ॥ ७ ॥

व्या०:– परद्रव्यरति ते शुं काययोगना परिणामरूप छे के, संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यानरूप छे? जो प्रथम काययोग परिणाम कहेशो तो शुजकाययोगे दोष केम लागे? अर्थात् एम तो संजवे नही. अने जो संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यानरूप कहेशो तो ते पण संजवशे नही. केमके, चोरादिकथकी सर्व प्रकारे जे वस्त्रादिकनुं बचाववुं, तेने संरक्षण कहेछे, ने तेनुं जे निरंतर चिंतन करवुं, तेने अनुबंध कहेछे. एवुं रौद्रध्याननो जेद जो उपधिथकी थाय तो शरीरथकी पण थवुं जोइये. केमके, सर्प, चोर, तथा कंटकप्रमुख थकी शरीरनी रक्षा करवाना अ

ध्यवसाय पण घणानेविषे दीठामां आवेछे. एने तो रौद्रध्यान कहेता नथी! जो एम कहेशो के, यतिने शरीरनेविषे राग नथी होतो, तेम छतां सर्पादिकथी शरीर नी रक्षा तो धर्मसाधनने अर्थे करेछे. तेथी तेना अध्यवसाय अशुभ होता नथी. एम पण संभवे नही! केमके, यतिने शरीरनी पठे धर्मोपकरणउपर पण राग होतो नथी. तेम छतां तेनी रक्षा पण धर्मसाधनने अर्थे करेछे. एवी रीते शरीरना जेवांज धर्मोपकरण ठरेछे. तेम छतां तेओनी उत्थापना करतां तमने शरम थती नथी!

उ०:– कोई आशंका करे के, उपकरण जे छे ते ध्यानना विरोधी छे. केमके, तेओना प्रतिलेखनादि बाह्यव्यापारना योगे अंतर आत्मतत्वनेविषे चित्त एकाग्रतारूपध्यानमां विघ्न थायछे. एम कहेनाराने उत्तर दिये छे. ॥ ७ ॥

जो किर जयणापुव्वो, वावारो सोण जाण पडिवक्खो ॥
सोचेव होइ जाणं, जुगवं मण वयण कायाणं ॥ ८ ॥

व्या०:– आवश्यक पडिलेहणाप्रमुख जे जयणाएकरी व्यापार थायछे ते पण ध्यानना विरोधी होवोजोये; एने तो कोई विरोधी कहेतो नथी किंतु एतो एक कालाश्रित मन, वचन, तथा कायासंबंधी ध्यानरूप होयछे. जेमके, शुभयोगे करीमन एकाग्र होयछे, एनेज मन संबंधी ध्यान कहेछे; निरवद्य वचन बोलायछे, अने सावद्य वचननो त्याग थायछे, एनेज वचनसंबंधी ध्यान कहेछे; अने शुभयोगनेविषे यत्नेकरी कायानी दृढता थायछे, एने कायसंबंधी ध्यान कहेछे. जो तमे एम कहेशो के, भगवंते एकसमयनेविषे बे क्रियानो निषेध कह्योछे; तेम छतां एकसमयाश्रित मन, वचन तथा काया संबंधी ध्यान केम संभवे? एनो उत्तर आमछेः– भगवंते जे एकसमयनेविषे बे क्रियानो निषेध कह्योछे ते भिन्न विषयविषे छे; एक विषयविषे निषेध नथी कह्यो. जेमके, वांदणाना आवर्त्तननेविषे त्रण योगनी क्रिया एकज समयनेविषे थायछे. यतः "भिन्नविषये णिसिद्धं, किरिया दुगमेगयाए एगम्मि; जोग तिगस्स विभंगिय, सुत्ते किरिया जउ भणिया."

उ०:– कोई आशंका करे के, ध्यान जे छे ते योगनो परिणाम नथी. के जेनी प्रवृत्ति बाह्य व्यापार करतां थाय. जो योगना परिणामरूप ध्यान होय, तो लेश्या अने ध्यान एक कहेवाय. एओमां कांई न्यूनाधिकता होय नही. तेम तो नथी देखातुं. लेश्याओनुं रूप पण जुदुंछे, ने ध्याननुं रूप पण शास्त्रोमां जुदुं कह्युंछे. वली जो योगपरिणामरूप ध्यान होय तो चौदमे अयोगिकेवल गुण

स्थानके शुक्लध्याननो संभव केम थाय ! ए तो योगनी परिणतिरूप नथी. केम के, ध्यानतो आत्मस्वभाव समवस्थानरूप छे. अने तेनी उत्पत्ति आवीरीते था यछेः— सुखनी तृष्णाएकरी मोहनीयकर्मने वश थयो थको जीव परद्रव्यनेविषे प्रवृत्ति करेछे, ज्यारे मोहनीयकर्मनी न्यूनता थायछे, त्यारे परद्रव्यनेविषे प्रवृत्ति थती नथी. एमथयाथी विषयनेविषे वैराग्य थाय छे. केमके, विषयनेविषे जे राग होय छे, ते विषय प्राप्तिपूर्वक होयछे. अने रागना अभावे वैराग्य होयछे. वैराग्यथकी मननो रोध थायछे. केमके, मननी प्रवृत्ति विषयविना थती नथी. जेम तृणरहित स्थानकनेविषे पडेली अग्नि पोतानी मेलेज नाशने पामेछे. तेम विषय विना मन पोतानी मेलेज स्थिरताने पामेछे. मननो निरोध थयाथी चंचलता मटी जायछे. अने पछी मन एकाग्र थईने आत्मानेविषे प्रवृत्त थायछे. ए आत्मस्वभावने ध्यान कहेछे. यतः "जो खविदमोहकलुसो, विषयविरत्तो मणेण संभित्ता; समवछिदो सहावे, सो अप्पाणे दवदिजा दा." इति प्रवचनसारे. एवुं सहु चेतन स्वभावरूप जे ध्यान ते, बाह्य व्यापार करतां, तथा परद्रव्य अधिकरण क्रियाछतां केम प्रगट थाय ? एनो निर्णय करेछे. ॥ ८ ॥

झाण तिकरण पयत्तो, ण सहावो तेण जेण सिद्धस्स ॥
इह णठाणविभागो, कह सुक्कझाणभेआणं ॥ ९ ॥

व्या० मन वचन तथा कायारूप त्रिकरण एटले त्रण योगनो प्रयत्न कर्याथी ध्याननी सिद्धि थाय छे; माटे योगपरिणामरूप ध्यान छे; परंतु उपयोगरूपज ध्यान नथी. अने लेश्या पण योगपरिणामरूप छे. तेथी योगपरिणामपणे तो ध्यान तथा लेश्या ए बन्ने सरखा छे; परंतु बन्नेनां लक्षणो जुदां जुदांछे. लेश्या जे छे ते योगनो चलाचल परिणाम छे, अने ध्यान जे छे ते योगनो निश्चल परिणाम छे. अयोगीने यद्यपि करणव्यापार नथी, तथापि छता मन वचन तथा काया ना निरोधरूप प्रयत्न करे छे ते प्रयत्ने करीने जे त्रणे योगनो निरोध थाय छे, ते नेज ध्यान कहेछे. अने आंही जो आत्मस्वभाव समवस्थानरूप ध्यान लइये तो सिद्धने पण ध्याननुं कर्तृत्व थशे. शास्त्रोमां तो सिद्धनेविषे ध्यानप्रभृति सर्व क्रियानो अभाव कह्योछे. जो एम कहिये के, सिद्धने व्यावहारिक ध्यान तो नथी, पण आत्मस्वभावरूप नैश्चयिक ध्यान तो छे. जो एम होय तो योगनो निरोध कर्या विना पूर्वकोडिपर्यंत केवलीने ध्याननो निषेध केम कर्योछे? आत्मस्वभाव सम

स्थान तो केवलीने सर्वथकी अधिक छे. ए कारण माटे अयोगीने तो योगनिरोधरूप ध्यान छे, अने छद्मस्थने करणना दृढव्यापाररूप ध्यानछे. एवी रीते शुन योगेकरी प्रवर्त्तनीय जे ध्यान, तेमां वाद विवाद शानो होय !

अ० कोई आशंका करे के, जो उपकरण होय तो राग पण होय, माटे उपकरण सर्वथा त्याग करवा योग्य छे, तेम जो न करिये तो उत्सर्गमार्ग केम रहे? एप्रश्ननो उत्तर दिये छेः- ॥ ए ॥

जा खलु सरागचरिआ, साविय उस्सग्गमग्गसंलग्गं ॥
मोत्तुं अववायपयं, अइप्पसंगी परविसेसो ॥ १० ॥

व्या० जे स्थिविरकल्परूप सरागचर्या कहेतां सरागमार्ग छे. ते पण उत्सर्गमार्गने लागेलोज छे. अर्थात् अपवाद मार्ग अने उत्सर्ग मार्ग निकट संबंधी छे. यद्यपि स्थिविरकल्पी पण अपवादनो तो त्याग करेछे, तथापि कोई कारणने लीधे तेने ग्रहण पण करवुं जोयेछे. अने जिनकल्पी तो कदापि अपवादनुं ग्रहण करेज नही. एवी रीते स्थिविरकल्पी तथा जिनकल्पीना अपवाद तथा उत्सर्गमार्गमां अल्प अंतराय छे. एटले अपवादमार्ग थकी उत्सर्गमार्गनी कांईक उत्कृष्टता छे, तेथीज बे नेद थयाछे. अने जिनकल्पनी अपेक्षाए स्थिविर कल्प कह्योछे. तेमज उत्सर्गमार्गनीअपेक्षाए अपवाद मार्ग कह्यो छे. जो उत्सर्ग मार्ग थकी कांईक न्यूनता वालो अपवाद मार्ग, तथा अपवादमार्गथी कांईक अधिकतावालो उत्सर्ग न कहेशुं तो चौदमां गुणस्थानकना अंतना समयसुधी उत्सर्गमार्गनो संनव थशे नही. केमके सर्वोत्कृष्ट संवर तिहांज छे. माटे जे ठेकाणे जे मार्ग उत्कृष्ट कह्यो होय ते ठेकाणे तेज उत्सर्गमार्ग छे. जेमके स्थिविरकल्पनेविषे चौद उपकरणज उत्कृष्ट होवाथी ते उत्सर्ग मार्ग छे. ॥ १० ॥

अ० मूल गाथावडे पूर्वपक्षी आशंका करे छेः-

भणु बलंगं साहुण, मववाउ अंतरंगमुस्सग्गो ॥ जा पुण सराग चरिया, समुच्चिया णेव सिद्धाए ॥ ११ ॥ पडिसेवणो पुणसो, अववाउ फुडो अणायारो ॥ ता वत्थाई गंथो, णो उस्सग्गो ए अववाओ ॥ १२ ॥

व्या०ः- परद्रव्यमात्रनी जे निवृत्ति, एटले परद्रव्यनो कांई पण परिग्रह रह्यो न होय, मात्र आत्मद्रव्यनोज प्रतिबंध होय, तेज संयमनुं अंतरंग कारण छे;

एने उत्सर्गमार्ग कहेछे. एवी सामग्रीनी प्राप्तिविना शुद्धोपयोगभूमिकाए चढी शकातुं नथी, त्यारे तेनी साह्यता करनारी जे उपधि होय तेनुं धारण करवुं तेने अपवाद कहेछे. ते उपधि बंधनो हेतु नथी, माटे निषेध नथी कही. केमके, ए उपधि संयमरहित पुरुषना उपयोगमां आवती नथी. किंतु संयतीनेज उपयोगी छे. अने मूर्छानो हेतु थती नथी. यतः " अप्पडिकुट्ठं उवहिं, अपच्छणिज्जं असं जद जणेहिं; मुच्छादिजणणरहिदं, गेह्णदुसमणोयजदि विअप्पंते. " ते उपधि आ छेः– एक तो यथाजातलिंग पुद्गल, एटले जेवो माताना उदरमांथी नीकल्यो होय तेवो आकार धारण करवो, बीजो वचनपुद्गल, एटले जेथी शुद्धात्मतत्वनो बोध थायछे; तेनुं ग्रहण करवुं; त्रीजुं गुर्वादिक विनयरूप मनना पुद्गलनुं धारण करवुं; अने चोथुं सूत्राध्ययनना पुद्गलने धारण करवुं. यतः " उवयरणं जिणम ग्गो, लिंगं जह जादरूपमिदि भणिदं; गुरुवयणंपि अ विणउ, सुत्तज्झयणं च प न्नत्तं " एवो जे अपवादमार्ग तेने सरागचर्या कहेछे. अर्थात् शुद्धोपयोगनी न्यूनताने लीधे अपवादमार्ग कहेवाय छे. पण जे वस्तु प्रतिषिद्ध एटले सेवन करवा योग्य न होयने तेनुं जे सेवन करवुं तेने अपवाद कहता नथी. तेने तो प्रगट अनाचारज कहेछे. तेमछता संयतीने वस्त्रादिक सेवन करवायोग्य नथी केमके, ए अनाचार छे. माटे ए सर्व परिग्रहनो त्याग करवो जोये. वस्त्रादिक परिग्रहनुं जे ग्रहण करवुं ते उत्सर्ग पण नथी ने अपवाद पण नथी; किंतु अनाचार छे, ते केम करवो? एहवुं जे कहेछे तेने उत्तर आपी तेनो समाधान करेछेः– ॥११॥१२॥

उवकुणइ जह सरीरं, सुद्धुवओगं तहेवमुवगरणं ॥
जम्हा तओ मुणीणं, सुए अणेगे गुणा भणिआ ॥ १३ ॥

व्या०ः–जेम शरीर परद्रव्य छतां शुद्धोपयोगनुं साह्यकारिछे ; तेथी परिग्रह कहेवाय नही. तेमउपकरण पण शुद्धोपयोगनां साह्यकारी होवाथी परिग्रह कहेवाय नही. केमके, ए वात, सिद्धांतोनेविषे पण धर्मोपकरणना अनेक गुण कह्याछे तेथी सिद्ध थायछे. जेमके, रात्रीयें चउकालें काल ग्रहलेतां वस्त्रे करी यतीने शीतनी पीडाटले छे. ने जो वस्त्र न होय तो शीतनी पीडाने लीधे अग्निना ताप प्रमुखनी चिंतना थाय तेथी आर्त्तध्यान उत्पन्न थायछे. वस्त्रेकरी सचित्त पृथिवी, धूंहरी ओस, वृष्टि, तथा हिरमज प्रमुखनी रक्षा थायछे. ने जो वस्त्र न होय अने उघाडुं शरीर होय, तो शरीरनी गरमीनी बाफथकी ते जीवोने दुःख उत्पन्न थायछे

संपातिमरजरेणु प्रमार्जवाने अर्थे मुहपती राखवी, लेवादेवा प्रमुखनी क्रियाए पूर्वे प्रमार्जवाने अर्थे तथा जैनलिंगने अर्थे उंगो राखवो. तथा पुरुष वेदनीयोदयादिक वर्जने अर्थे चोलपट राखवो. इत्यादिक वस्त्रना गुण कह्याछे. अनाजोगे लीधेलां जे संसक्त गोरसादिक, ते पात्रेंकरीने विधिए परठाई शकायछे. पात्रविना हाथमांज लीधा होय तो योग्य ठेकाणे केम परठवी शकाय? तथा हाथमां सरस वस्तु लीधाथी तेनो बिंदु जो नीचे पडे, तो तेथकी कीडीओप्रमुख अनेक जंतुओनी विराधना थाय. गृहस्थ भाजनने अर्थे उपजोगेपण पश्चात्कर्मादिक दोष उपजे; अने जो पात्र होय तो तेणे करी ग्लान अथवा दुर्बलने पथ्यादिक लाववाने अर्थे उपयोगी होवाथी उपकार थायछे. अलब्धिवंत तथा लब्धिवंत असमर्थ तथा समर्थ प्राहुणाने वात्सल्य पात्र होय तो अन्नपानादिकने आपणी उपकार करे. अन्यथा केम करे? इत्यादिक वस्त्र तथा पात्रनेविषे अनेक गुणजाणी शरीरनी पठे धर्महेतु होवाथी तेमां परिग्रहपणानी आशंका करवी नही. ॥१३॥

उः- उपहासयुक्त पूर्वपक्षीनी मूल गाथा वडे आशंका करे छेः-

जइ उवहिभारगहणं, इह दुज्झाणवज्जणणिमित्तं ॥
तो सेयं थीगहणं, मेहुणसण्णाणिरोहट्ठं ॥ १४ ॥

व्याः- शीत तथा तापप्रमुखनी पीडाए करी आर्त्तध्यान उपजे नही; ते सारुं तमे एटलो बधो उपधिनो भार वेठो छो; त्यारे मैथुन संज्ञानिमित्त आर्त्तध्यानना त्याग करवासारु एक स्त्रीनो परिग्रह पण शासारुं राखता नथी? ज्यारे जीर्णादिक वस्त्र राखवाथी मूर्छा थती नथी, त्यारे अंगभंग थएली तथा कुरूप स्त्री राखवाथी मूर्छा केम थाय? ॥ १४ ॥

उः- ए आशंकानो उत्तर दियेछेः-

एयं वि दूसगाणं, वयणं मयणंधवयणमिव मोहा ॥
असुह समोवहासो, देहाहाराइगहणेवि ॥ १५ ॥

व्याः- तमारुं बोलवुं भांड (मस्करा) ना जेवुं भासेछे. जेम होलीना दाहाडामां कामी पुरुषो गमे तेम बक्या करेछे. अने कामने वश थया थका लाज उपजावे एवां वचनो बोल्या करे छे. तेम तमे पण मिथ्यात्वना परवशेकरी अज्ञानने लीधे मस्करीना वचन बोलो छो. ते वचनोथी अमने तो कांई थवानुं नथी, पण तमे पोते तेवा देखाई आवो छो. केमके, तमे पोते पण भूखनी पीडा टालवासारुं

खावाने न मळेतो आर्त्तध्यान थाय तेने टाळवासारुं, तथा शरीरने जीवतुं राख वासारु आहार लेवानुं मानोछो, तेम स्त्रीपरिग्रह शासारु मानता नथी? माटे जेम आहारमां गुण छे, दोष नथी. तेम धर्मोपकरणमां पण गुण छे, दोष नथी. ए रूडुं समाधान छे. ए कारणथी धर्मनां साधनोनेविषे जे राग थाय छे, ते प्रशस्त जाणीने तेनेपरिग्रहरूप दोष जाणवो नही. ॥ १५ ॥

उ०:– सम्यक्ज्ञान थवासारु राग प्रशस्त छे अने द्वेष अप्रशस्त छे ते कहेछेः–

रागस्स व दोसस्सव, उद्दिस्स सुहासुहे सुहासुहया ॥
जइ पुण विसयावेरका, कह होज्जा तो विनागोसि ॥ १६ ॥

व्या०:– सारा उद्देशेकरी अरिहंतादिकनेविषे जे राग करवो, ते प्रशस्त राग कहेवायछे. यतः "अरिहंते सुयरागो, रागो सारीसु बंनयारीसु ; एस पसछो रागो, अज्जस रागाए साहूणं" इति आवश्यके. अशुनने तजवासारु जे द्वेष करवो पडे तेने प्रशस्त द्वेष कहिये. जेम के, मिथ्यात्व, अज्ञान, तथा अविरति प्रमुखउपर जे द्वेष थाय छे, ते प्रशस्त द्वेष कहेवायछे. केमके, तेओविषे जो द्वेष न थाय तो तेओनो त्याग केम थाय! केवळ विषयनी अपेक्षाएज द्वेष था यछे एम न मानवुं. जो मात्र विषयनेअर्थेज द्वेष थतो होय तो तेना प्रशस्त त था अप्रशस्त ए बे विनाग थई शके नही. तेमज उत्तमयतीनेविषे तथा उत्तम धर्मनेविषें पण जे आ लोकादिकने अर्थे राग थायछे ते अप्रशस्त कहेवायछे. कोई कहेशे के, रागना उपर कहेला बे विनाग थई शकेछे केमके, तेना संक्लेश तथा विशुद्ध ए बे अंगछे. तेम द्वेषना ए बे विनाग थई शके नही; केमके, ते नो बीजो विशुद्ध अंग नथी. मात्र संक्लेशरूप होवाथी अप्रशस्त छे. यतः "प रिणामो [illegible]ो, परिणामो राग दोस मोह जुदो; अशुनो मोह य दोसो, सुहोव असुहो हवदि रागो." इति प्रवचनसारे. एम कहेनाराने एम कहेवुं के, तम ने सामायकनेविषे पाप गर्हाना अध्यवसाय केम थायछे? जे वस्तुविषे द्वेष न थाय तेने त्याग करवाना परिणाम थाय नही. तेवा परिणामो तो थायछे ते शुं अप्रशस्त द्वेष कहेवाय? किंतु प्रशस्त द्वेषज कहेवाय. केमके, परने ताप करवो ते क्रोधनो अंश छे, माटे क्रोधरूप जे द्वेष ते पण रागनी पठे बे प्रकारे होयछे.

उ०:– चार निक्षेपाए करी राग तथा द्वेषनुं विवरण करे छेः– ॥ १६ ॥

णामं ठवणा दविए, रागो दोसो अ नाव चउनेया ॥ कम्मं जोग्गं बद्धं, बज्झंतमुदीरणोवगयं ॥ १७ ॥ णो कम्म दवराउ, णायवो वीस साप उगा य ॥ संझाइ कुसुंनाई, दोसो डुठ्ठवणाईओ ॥१८॥ जं राग दोस कम्मं, समुइन्नं जे तओ अपरिणामा ॥ ते नावराग दोसा, वोछमिह णय समोआरं ॥१९॥ कोहो माणो दोसो, माया लोनो अ राग पज्जाया ॥ संगहणयमयमेयं, दोसो माया अवि वहारा ॥२०॥ उज्जुसु अस्सय कोहो, दोसो सेसेसु णत्थि एगंतो ॥ कोहोचिय लोहोचिय, माणो मायाव सदस्स ॥ २१ ॥

व्या० राग तथा द्वेषनां नाम, स्थापना, द्रव्य तथा नाव ए चार चार प्रकार होवाथी बन्नेना चार चार नेद थायछे. जेम के, नामराग, स्थापनाराग, द्रव्य राग, तथा नावराग ए चार नेद रागना थायछे. तेमज नामद्वेष, स्थापनाद्वेष, द्रव्यद्वेष, तथा नावद्वेष ए चार नेद द्वेषना थायछे. जेनुं राग एवुं नाम होय ते नामराग कहेवाय. रागवाननुं जे चित्र कहाडेलुं होय ते स्थापनाराग कहेवाय. द्रव्यरागना बे प्रकार छेः—एक कर्मद्रव्यराग, बीजो नोकर्मद्रव्यराग, एमांना कर्म द्रव्यरागना चार प्रकार छेः—एक योग बीजो बध्यमान, त्रीजो बद्ध अने चोथो उदीरणाप्राप्त. जे मोहनीयकर्मना पुज्जलबंध परिणामने अनिमुख थया होय ते योगकर्मद्रव्यराग कहेवाय. जे मोहनीयकर्मना पुज्जलबंध क्रियाना परिणामने पाम्या होय ते बध्यमान कर्मद्रव्यराग कहेवाय. जे मोहनीयकर्मना पुज्जल बंध परिणामनी निष्ठाने पाम्या होय तेबद्धकर्म द्रव्यराग कहेवाय. अने जे मोहनीय कर्मना पुज्जल उदयने पाम्या होय ते उदीरणाप्राप्त कर्मद्रव्यराग कहेवायछे. तेम नोकर्मद्रव्यरागना बे प्रकार छेः—एक विश्रसा, बीजो प्रयोग. जे संध्याराग प्रमुख देखायछे ते विश्रसानो कर्मद्रव्यराग कहेवाय; अने जे वस्त्रादिकनेविषे कुसुंनादिक राग देखायछे ते प्रयोगनो कर्मद्रव्यराग कहेवाय. अने नावरागना पण बे प्रकार छेः—एक उदयप्राप्त, बीजो परिणाम. मोहनीयकर्मनो उदय थाय ते उदयप्राप्त नावराग कहेवाय. अने मोहनीयकर्म परिणामने पामे ते परिणामनावराग कहेवायछे.

जेनुं द्वेष एवुं नाम होय ते नामद्वेष कहेवाय. द्वेषवाननुं जे चित्र कहाडेलुं

होय ते स्थापनाद्वेष कहेवाय. द्रव्यद्वेषना बे प्रकारछे:—एक कर्मद्रव्यद्वेष; बीजो नोकर्मद्रव्यद्वेष. एमांना कर्मद्रव्यद्वेषना चार प्रकार छे:—एक योग, बीजो बध्यमान, त्रीजो बद्ध अने चोथो उदीरणाप्राप्त. जे मोहनीयकर्मना पुद्गल बंध परिणामने अभिमुख थया होय ते योगकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय; जे मोहनीयकर्मना पुद्गल बंधक्रियाना परिणामने पाम्या होय ते बध्यमानकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय; जे मोहनीयकर्मना पुद्गल बंधपरिणामनी निष्ठाने पाम्या होय ते बद्धकर्मद्रव्यद्वेषकहेवाय; अने जे मोहनीयकर्मना पुद्गल उदयने पाम्या होय ते उदीरणाप्राप्तकर्मद्रव्यद्वेष कहेवायछे. तेम नोकर्मद्रव्यद्वेषना बे प्रकार छे:—एक विश्रसा, बीजो प्रयोग. जे संध्याराग प्रमुख देखाय छे, ते विश्रसानोकर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय; तथा जे वस्त्रादिकनेविषे कुसुंभादिक राग देखायछे ते प्रयोगनो कर्मद्रव्यद्वेष कहेवाय छे. अने भावद्वेषना पण बे प्रकार छे:—एक उदयप्राप्त, बीजो परिणाम. मोहनीयकर्मनो जे उदय थाय ते उदयप्राप्तभावद्वेष कहेवाय; अने मोहनीयकर्मपरिणामने पामे ते परिणामभावद्वेष कहेवायछे.

हवे नयेकरी रागद्वेषनुंविवरण करे छे:—संग्रह नयनी रीतिए क्रोध तथा मान ए बन्ने अप्रीतिनो परिणाम होवाथी द्वेष कहेवायछे; अने माया तथा लोभ ए बन्ने प्रीतिनो परिणाम होवाथी राग कहेवायछे. व्यवहारनयनी रीतिए मायानी योजना परना उपघातने अर्थे थायछे माटे त्रीजी माया पण द्वेषज कहेवाय. अने न्यायोपात्त द्रव्यप्रमुखनेविषे जे लोभ थायछे ते राग कहेवायछे. परंतु अन्यायोपार्जित द्रव्यादिकनेविषे जे लोभ थायछे ते राग कहेवाय नही केम के, एथी कषायादिकनी उत्पत्ति थायछे. ऋजुसूत्रनयनी रीतिए क्रोध जे छे ते अप्रीतिनोज परिणाम होवाथी एकांत द्वेष कहेवायछे. बाकीना त्रण जे मान, माया ने लोभ ते एकांत द्वेष कहेवाय नही किंतु अनेकांत कहेवाय; केम के, मान ज्यारे स्वोत्कर्ष परिणामरूप होय छे त्यारे राग कहेवायछे. अने ज्यारे परनिंदापरिणामरूप होयछे त्यारे द्वेष कहेवायछे. तेमज माया तथा लोभ पण ज्यारे पूर्व परिणामरूप होय छे त्यारे राग कहेवाय छे; अने ज्यारे परद्रोह परिणामरूप होयछे त्यारे द्वेष कहेवायछे. अने शब्दनयनी रीतिए क्रोध तथा लोभ ए बे कषायरूप होवाथी एमांना मान तथा माया अप्रीतिना परिणामरूपे थईने ज्यारे क्रोधमां आवीने मळी जाय त्यारे ते द्वेष कहेवायछे; अने प्रीतिना परिणामरूपे थईने ज्यारे लोभमां आवी मळी जाय त्यारे राग कहेवायछे.॥२१॥

परदव्वंमि पवित्ती, ण मोहजाणिया व मोहजाणावा ॥
जोगकयाहु पवित्ती, फलकंखा रागदोसकया ॥ ७२ ॥

व्या०:— परद्रव्यनेविषे जे प्रवृत्ति थाय छे तेनुं निश्चयथी मोह कारण नथी. केमके, प्रवृत्ति तो मन वचन तथा काय योगथी थायछे, अने फलनी इच्छा राग द्वेषथी थायछे. माटे फलनी इच्छाविना यतिजो धर्मोपकरण धारण करे तो तेथी अयोग्य शुं थयुं कहेवाय? केमके, फलनी इच्छाविना राग तथा द्वेष थता नथी.॥७२॥

वत्थाइणेवगंथो, मुणीण मुच्छं विणेव गहणाउ ॥ तह
देहपालणट्ठा, जह आहारा तुह वि इट्ठो ॥ ७३ ॥

व्या०:— यतिने वस्त्रादिकनो ग्रंथ थतो नथी. केमके, मात्र शरीरनी रक्षा करवावालारु ग्रहण करेछे. तेमां मूर्छा रंचमात्र पण होती नथी. जेम शरीरनी रक्षाने अर्थे यति निरवद्य आहारनुं ग्रहण करेछे पण तेमां मूर्छा होती नथी. तेम धर्मोपकरणोविषे पण जाणी लेवुं. ॥ ७३ ॥

जह देहपालणघा, जुत्ताहारो विराहगो ण मुणी ॥
जह जुत्तवत्थपत्ता, विराहगो णेव णिद्दिट्ठो ॥ ७४ ॥

व्या०:— जेम शरीरनुं पालन करवाने अर्थे निरवद्य आहार लेतां यतिने विराधक कह्यो नथी. तेम निरवद्य वस्त्र पात्र राख्याथी पणविराधक न कहेवाय किंतु आराधकज कहेवाय. कोई एम कहे के, शुद्धोपयोग जे छे ते प्रदीप जेवो छे, अने भोजन तथा शरीर संचलन जे छे ते तेलपूरण तथा वाटसंचार जेवो छे. एतो योग्य छे पण उपधि अयोग्य छे. एवुं अमरचंदनुं बोलवुं असमीचीन छे. केमके, धर्मोपकरण धारण करवां ते प्रदीपने निर्वातस्थले राखवा जेवां छे. माटे योग्यछे.

अणसण सहावजोगा, जह असणं अणसणं तिजुत्त
मिणं ॥ जुत्तं तह वत्थाई, सहावउ तप्परिणयस्स ॥ ७५ ॥

व्या०:— जेम सर्व भोजननी तृष्णाथकी रहित छतां अंतरंग आत्मस्वभावनी भावना करतां तेना उपष्टंभने अर्थे आहारनुं जे ग्रहण करवुं ते परमार्थे अनाहार ज कहेवाय. यतः "जस्स अणेसणमप्पा, तंपि तओ तप्पडिच्छगसमणा; अण्ण भिक्खमणे सण, मधतेसमणाअणाहारा." इति प्रवचनसारे. तेमज सकल परि

ग्रहरहित छतां आत्मस्वभावनी भावना करतां तेना उपष्टंजने अर्थे वस्त्रादिक राखतां पण परमार्थे वस्त्रादिकरहित कहेवाय. ते युक्तज छे. ॥ २५ ॥

एवंच सचेलाणं, कहउ सुत्तं भवे अचेलत्तं ॥ इअ
पभणंतस्स तुहं, को णिअघररक्कणो वाउ ॥ २६ ॥

व्या०:– एवीरीते सूत्रमां कहेलुं जे सचेल यतिने अचेलपणुं ते केम संभवे; एम कहेतां तमने पोतानुं संभालतां कठण थई पडशे. केमके, तमारा शास्त्रमा ज यतीने आहार करतां अनाहारी कह्याछे. त्यारे मूर्छारहित सचेलने पण अचेल कहेतां शुं अघटित थाय ! ॥ २६ ॥

जइ चेल भोगमेत्ता, ण जिया चेलय परीसहो सा
हू ॥ भुंजंतो अजिअ खुहा, परीसहो तो तुमंपत्तो ॥ २७॥

व्या०:– जो एम कहेशो के वस्त्र वापरवाथी अचेल परीसह जीताय नही. त्यारे आहार करवाथी क्षुधापरीसह केम जीताय ! जो एम कहेशो के, तीव्र क्षुधा लागी होय तोपण यतीए अनेषणी आहार लेवो नही. किंतु जो शुद्ध आहार मले तोज आत्माने उपग्रह करवो. एवीरीते क्षुधापरीसह जीतायछे. तेमज शीतादिक वडे घणी वेदना थती होय तोपण यतिए सदोष वस्त्र लेवुं नही; किंतु निर्दोष वस्त्र मले तोज आत्माने उपग्रह करवुं, एवीरीते अचेलपरीसह पण जीतायछे. एम निश्चयथी अचेलपणुं जाणवुं. ॥ २७ ॥

उ० व्यवहारथी अचेलपणुं दर्शावे छे:–

जह जलमवगाहंतो, भणई चेलरहिउ सचेलोवि ॥
तहवछोजुण कुछिय, चेलावि अचेलया साहू ॥ २८ ॥

व्या०:– जेम कोई माणस पोतीउं पहेरीने तलावप्रमुखना पाणीमां स्नान करवासारु पेशे ते पोतिउं छतां लोकमां नग्न कहेवाय. तेम यति जीर्णवस्त्रने धारण करे ते अचेलज कहेवाय. ॥ २८ ॥

उवयारेण अचेला, सेसगुणी सवहा जिणंदाय ॥
खंधाउ देव दूसं, चवइ तउ चेव आरम ॥ २९ ॥

व्या०:– तीर्थंकर विना बीजा यति उपचारे अचेला कहेवाय. केमके, तेउ वस्त्र छतां पण अवस्त्र गणेछे. जेम कोटी धनवान छतां तेनो अभिमान न होय

तो ते निर्धन जेवोज होय छे. एम सचेल साधुविषे पण जाणी लेवुं. सर्वथा अचेल तो ज्यारे स्कंध उपरथी देवडुष्य वस्त्र पडे त्यारे तीर्थंकर कहेवायछे. ॥२९॥

एएण जइ अचेला, जिणंद जिणकप्पिआइआ सुमुणी॥ ता एसोच्चिय मग्गो, णसोत्ति पराकयं वयणं॥३०॥

व्या०:– एणेकरी, जिनतीर्थंकर तथा जिनकल्पिप्रमुख अचेलाछे, तेथी एज मार्ग उत्तमछे ; अने स्थिविरकल्पनो मार्ग उत्तम नथी ; एम कहेनारानुं निराकरण कर्युं. कारणके, जे जिनकल्पीछे ते पण एकांते अचेला नथी. केमके, जे जिनकल्पीने पात्रनी लब्धि होय, हाथ छिद्ररहित थया होय ; किंतु वस्त्रनी लब्धि न होय ते ओमांना कोइएकने रजोहरण, मुहपति, तथा एक कल्पक ए त्रण उपधि होय छे ; कोइकने रजोहरण, मुहपति, तथा बे कल्पक मली चार उपधि होयछे ; कोइकने रजोहरण, मुहपति, तथा त्रण कल्पक मली पांच उपधि होयछे; जेने वस्त्रनी लब्धि होय, किंतु पात्रनी लब्धि न होय तेने सप्तविध पात्रनिर्योग, रजोहरण, तथा मुहपती मली नव उपधि होयछे ; जेने बन्ने लब्धिमांनी एके लब्धि न होय तेओमांना कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपती तथा एक कल्पक मली दश उपधि होयछे; कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपति तथा बे कल्पक मली अग्यार उपधि होयछे, अने कोइकने सात पात्रा, रजोहरण, मुहपति, तथा त्रण कल्पक मली बार उपधि होय. अर्थात् पोतानी शक्तिने अनुसारे उपधि होयछे. अने जेने बन्ने लब्धीओ होय तेने पण रजोहरण तथा मुहपति ए बे उपधि तो निश्चयथी होयछे. एवो नियमछे. ॥ ३० ॥

जिणकम्मेव य कम्मं, जइ कायव्वं तउ तुहं इहयं ॥
उवएस सिस्स दिक्का, गुरुवयणाईहि किं कज्जं ॥ ३१ ॥

व्या०:– जो तमे कहेशो के, जे कार्य जिनेश्वरे नथी कर्युं ते अमारे पण करवुं नथी ! त्यारे धर्मोपदेश, शिष्य, दीक्षा, तथा गुरुवचनादिकनुं तमारे शुं उपयोग छे ! जेम भगवंते ज्ञान उपना पछी धर्मोपदेश दीधो छे, किंतु केवलज्ञाननी पूर्वे कोईने उपदेश कर्यो नथी ; तेम तमारे पण केवलज्ञान उत्पन्न थाय त्यारेज उपदेश करवो जोये. तेनी पूर्वे कांई पण धर्मोपदेश प्रमुख करवुं जोईये नही वारु !!! ॥३१॥

णिरतिसयाणं कप्पो, थेराणहिउ छिउ अ तह्वेव ॥
पव्विज्जउ जिणकप्पं, पंचहि तुलणाइ जुत्तो तो ॥ ३२ ॥

व्या०:– जे साधु लब्धिरहित होय, तेने स्थिविरकल्प मार्गेज हितकारी छे. ते समये जिनकल्प त्याग करवा योग्य छे. ज्यारे आत्मज्ञान थाय त्यारे जिनकल्प आदरवो. परंतु असमर्थ छतां उत्कृष्ट मार्गनो जे आदर करवो ते केवल आर्त्तध्याननो हेतु थायछे. यतः "अकालौ त्सुक्यस्य तत्वतः आर्त्तध्यानरूपत्वात् धर्मविदो" ॥३२॥

वेजुवदिठं उसह, मिव जिणकहियं हिअं तउ मग्गं ॥ सेवं
तो होइ सुही, इहरा विवरीअफलजागी ॥ ३३ ॥

व्या०:– माटे जगवंते कहेला मार्गने जे जजे ते सुखी थाय; अने जगवंते जेम कह्युं छे तेम जे करवा मांमे ते विपरीत फलने लायक थाय. जेम रोगी वैदे कहेली औषधी जो सेवे, तो रोगरहित थाय पण वैदना कह्या प्रमाणे न करे तो अपथ्य सेवन करतो छतां जेम अकाले नाश पामे. तेम ए पण जाणी लेवुं. ॥३३॥

अणगूहितो सत्तिं, जुंजंतोवि जह णो चयइ मग्गं॥
अणगूहितो सत्तिं, तह उवगरणं धरंतोवि ॥ ३४ ॥

व्या०:– सकल आत्मशक्तिने फोरवनारो यति संयमादिकने अर्थे, जेम आहार करतो छतां जिनमार्गनो त्याग करतो नथी; तेम स्वाध्यायादिकने अर्थेपण ते यतिए धर्मोपकरणनो त्याग करवो नही. यत: "तिहिं ठाणेहिं वत्थंधरेज्जा, तं जहा, हरिवत्तिअं, डुगंछवत्तिअं परीसहवत्तिअं" इति. लज्जा अथवा डुगंछा मटाडवाने तथा संयमने अर्थे वस्त्र धारण करवां जोये. जो वस्त्र न होय ने नग्न होय तो लज्जाथाय, अने संयम पले नही; जो वस्त्र न होयतो लोक निंदा करे के, ए धर्म सारो नथी केमके जेमां साधु उघाडा फरेछे. ते टालवाने अर्थे वस्त्र धारण करवा; जो वस्त्र न होय तो टाढ तथा तापप्रमुख लागे तेथी चारित्रजंगरूप आर्तध्यान उत्पन्न थाय ते मटाडवाने अर्थे वस्त्र धारण करवां. एम कारणीक वस्त्र होवाथी अमे साहसवंत छतां केम धारण करिये; एम जो कहेशो तो आहार पण कारणीक कह्युं छतां तेपण तमारे करवो न जोये. यतः "छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहार माहारे माणेइ कमइ तं वेयण वेयावच्चे इरियठाए असंयमठाए तह पाण पत्तिआए छठं पुण धम्मचिंताए" इत्यादि कारणने लीधे यति आहार करे तेथी आज्ञानुं अतिक्रमण थाय नही. तेना कारण आछे:– क्षुधानी वेदनाने मटाडवाने अर्थे, वेयावच्च करवाने अर्थे ईर्याशोधवाने अर्थे, संयम पालवाने अर्थे प्राणधारवाने अर्थे, तथा स्वाध्या

यप्रमुख धर्मचिंताने अर्थे साधु आहार करे छे. पण बल तथा रूपादिकने अर्थे करतो नथी, तेमज वस्त्र पण कारणने लीधे धारण करे छे तेनो त्याग करवानुं कारण शुं! आहार लेवो अने वस्त्र मूकवा! एम करवाने तमारो शुं अभिप्राय छे ते जाणतु नथी ॥ ३४ ॥

अविजिय हिरिकुछाणं जइ नूणं संजमेण अहिगारो ॥
ता कह अजिय छुगंछ तस्राणं तत्र अहिगारो ॥ ३५ ॥

व्या०:- जो एम कहेशो के जेणे लाज तथा छुगंछा प्रमुख जीत्यां न होय तेने चारित्रनो अधिकार नथी. त्यारे जेणे क्षुधा तथा तृषा जीत्यां न होय तेने चारित्रनो अधिकार केम कहेवाय? ज्यारे क्षुधा तथा तृषा मूलगुणनां घातक नथी त्यारे लज्जा तथा छुगंछा पण मूल गुणघातक केम कहेवाय? माटे अहीं तमारे अभिनिवेशविना बीजुं कांई कारण दीठामां आवतुं नथी ॥ ३५ ॥

अह हिरि कुछा हिसया हिरि कुछ सहाव भावणा णोचेत् ॥
एहा छुहाहि ताकह तय भाव सहाव संबुद्धी ॥ ३६ ॥

व्या०:- जो कहेशो के, यतिने लज्जा तथा छुगंछ होय तो तेथी विपरीत जे अलज्जा तथा अछुगंछारूप आत्मस्वभावनी भावना ते न थाय. त्यारे क्षुधा तथा तृषा छतां तेथकी विपरित जे अक्षुधा तथा अतृषारूप आत्मस्वभावनी भावना ते यतिने केम थाय! माटे शांत दांत प्रमुख श्रेष्ट गुणयुक्त जे यति छे, तेनुं मन शुद्ध होयछे तेनाबलथी आत्मस्वभावभावना टलती नथी. ए समाधान आहार अने उपकरण ए बन्नेनेविषे लागु पडेछे ॥ ३६ ॥

उस्सग्गववायाणं मित्तीए अहण भोअणं छुद्दं ॥ उ
स्सग्गववायाणं मित्तीइ तहेव उवगरणं ॥ ३७ ॥

व्या०:- जो एम कहेशो के, उत्सर्ग तथा अपवाद ए बन्ने मार्गनेविषे सापेक्षताएकरी भोजन करवुं ते अयोग्य कहेवाय नही; त्यारे सापेक्षताएकरी उपकरण धारण करवामां शुं अयोग्यता छे? ॥ ३७ ॥

ए पत्तुवगरणेणं पच्चक्खाणस्स दवउ भंगो ॥ इयकप्प
णावि विहवा जोवणमिव णिप्फला एआ ॥ ३८ ॥

व्या०:— जो एम कहेशो के, उपकरण जे छे ते नावथी तो मूर्छारहित छे पण द्रव्यथकी परिग्रहरूप छे. तेथी पच्चखाणनो नंग थायछे. केमके द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा नाव ए चार प्रकारे जे पच्चक्काण छे तेमांनो प्रथम द्रव्यपच्चक्काण उपकरण उतां संनवे नही. एवी जे अध्यात्मनी कल्पना छे ते विधवायौवननी पठे निष्फल छे. केमके, द्रव्यादिक चार प्रकारे सर्व मूर्छानो जे त्याग करवो तेज सिद्धांतोनो परमार्थ छे. एम जो न मानीए तो शरीर पण द्रव्यपरिग्रह छे, तेनो त्याग केम थाय! अने पच्चक्काणना जे चार प्रकार कह्या छे ते तो सर्व नाव पच्चखाणनो विस्तार छे, एम जाणवु. यतः "अपरिग्गहिआसुने, तिजाय मुछा परिग्गहोनिमउं; सव्वदव्वेसु एसा. कायव्वा सुत्तसप्नावो," इति विशेषावश्यके. ॥३८॥

सिद्धंत सिद्धधरणं उवगरणं तं मुणीण सुहकरणं ॥
अह होइ पावहरणं इय अम्हं विंति आयरिया ॥३९॥

व्या०:— एवीरीते सिद्धांतनेविषे उपकरण धारण करवानुं कह्युं छे, ते जयणाएकरी राख्याथी यतिने सुखकारक थाय छे, तथा पापनुं हरण करेछे एम उत्तराध्ययन बृहद्वृत्तिप्रमुखनेविषे अमारा पूर्वाचार्ये कह्युं छे, ते अवश्य मान्य करवुं जोये ॥३९॥

पुछा दिअंबराणं केवलमप्पिआण उवहासो ॥
अम्हाणं पुण हूहइ दोह्न विवहि आरवावारो ॥ ४० ॥

व्या०:— आग्रंथनेविषे दिगंबरीओए जे प्रश्न कर्या छे, तथा अध्यात्मीओए जे हांसीनां वचनो कह्यांछे, ए बन्नेनो अमारे प्रतिकार करवानो अधिकार छे. एवीरीते धर्मोपकरण तथा नावअध्यात्म ए बन्नेनुं पोतपोतामां अविरोधपणुं बताव्युं.॥४०॥

उ०:— अध्यात्मनी प्राप्ति केम थाय ते कहेछेः—

पंच समिउ तिगुत्तो सुविहिय ववहार किरिअ परिकम्मो ॥ पावइ परमप्पं साहू विजिइंदिअप्पसरो ॥ ४१ ॥

व्या०:— जेपांच समिति तथात्रणगुप्तिए करि सहित होय, आलय, विहार, नाषा, तथा विनयप्रमुख विविधप्रकारे क्रिया पालतो होय, तथा इंद्रियो जीति होय, ते साधुने उत्कृष्ट अध्यात्मनी प्राप्ति थाय छे. ॥ ४१ ॥

लुंपइ वज्झं किरियं जो खलु आहच्च नाव कहणेणं ॥
सोहणइ बोहिवीअं उम्मग्गपरूवणं काउं ॥ ४२ ॥

व्या०ः— कोई एम कहे के, व्यवहाररूप बाह्य क्रियाथी अर्थ सिद्ध थाय एवो नियम नथी; केमके, क्रिया कर्याविना जरत चक्रवर्त्तिने काच जुवनमां अनित्य जावना जावतां केवल ज्ञान उत्पन्न थयुं अने बाह्य क्रिया करतां गाड ध्यानना योगे प्रसन्नचंद्रे अशुज प्रकृति बांधि लीधी. माटे व्यवहार क्रिया करवी नही, किंतु निश्चय क्रियानो अंगीकार करवो. एम कहेनारा उन्मार्गेनी प्ररूपणा करीने पोताना बोधबीजनो नाश करेछे. माटे ते वचन मान्य करवां नही. केमके, जरता दिकनुं स्वरूप कदाचित जावमां कहेवाय. एटले एवुं कदाचितज बनेछे, पण नियमथी एमज थायछे एवुं कोईनाथी कहेवाय नही. अने व्यवहार पंथमां तो व्यवहारक्रियाविना निश्चय क्रिया संजवेज नही. अने ए कारण माटे एक निश्चय अंगीकार करिने क्रिया मूकी देवी नही किंतु बन्ने अवश्य करवी॰ ॥ ४२ ॥

सव्वं सहावसज्जं णिह्नं पउपरकयं च ववहारा ॥ ए
गंते मिछंतं उजय णयमयं पुण वयाणं ॥ ४३ ॥

व्या०ः— निश्चयनयनी रीतिए सर्वे वस्तु स्वजावे उत्पन्न थायछे, विशिष्ट वस्तु परिणामने स्वजाव कहेछे. ज्यारे बीजने अंकुरपणे उत्पन्न थवानो परिणाम थायछे, त्यारे बीजपर्याय टलीने अंकुरपर्याय उत्पन्न थायछे. पण तेने बीजा कारणनी अपेक्षा होती नथी. अहीं कोई आशंका करे के, जो बीजा कारणनी अपेक्षा न होय तो कोठारमां पडेला बीजनो केम अंकुररूपे परिणाम थतो नथी? एनो जवाबः— कोठारमां पडेला बीजने अंकुररूप परिणाम थवानां बीजां कारणो जोयेछे, माटे व्यवहारनय पण अंगीकार करवो जोये छे. तेने सामग्री कहेछे, ते सामग्री मल्याविना बीजनो अंकुररूपे परिणाम थाय नही. किंतु सामग्रीना योगे ते परिणाम थाय छे. कोई आशंका करे के जो सामग्रीथीज कार्यनी उत्पत्ति थती होय तो तेने परिणाम एवुं नाम राखवानुं कारण शुं? किंतु सामग्रीथकी कार्यनी उत्पत्ति थायछे, एवो अंगीकार करवो जोइये. एनो जवाब के, सामग्रीथी कार्यनी उत्पत्ति थायछे एम मानिये तो व्यवहारनय सिद्ध थाय पण निश्चयनय उडी जाय. तेथी एकांतपणुं थाय ते मिथ्यात्व कहेवाय. माटे बन्ने नयनुं मत प्रमाणजूत मानवुं. जो एकलो निश्चय नय अंगीकार करिये ने व्यवहारनय अंगीकार नही करिये तो सामग्री थकी परिणामविशेषनी उत्पत्ति मनाय नही, अने एकज वस्तु कारण तथा अकारण ए बन्ने जावे कहेवाशे. त्यारे

अकारण वस्तुथी परिणामरूप कार्यनी उत्पत्तिनो संभव केम थशे. कार्यनी उत्पत्ति तो कारणथी थायछे पण अकारणथी थाय नही, इत्यादिक सूक्ष्म विचार कर्याथी बन्ने पक्ष अंगीकार करवा योग्य छे एवुं सहज जणाई आवशे. ॥ ४३ ॥

अप्भंतर बज्झाणं बलिज्जाबलितणंति जइ बुद्धि ॥ नणु कयरं अब लत्तं वेचित्तंवा विवेसम्मं ॥ ४४ ॥ णिप्पत्तीव फलं अणिचय जोगो फलेण वा सिद्धं ॥ पढमे समसावग्गी बि ति ए वावार वे सम्मं ॥ ४५ ॥ नति ए दोण विसमया सत्तुभ पक्को पुणो असि द्धोत्ति ॥ तेण समावेक्खाणं दोण्ह विसमयत्ति वञ्जुठिई ॥ ४६ ॥

व्या०:– कोई कहे के, कर्मरूप अंतरंग हेतु जे छे ते बलवान छे. अने उद्यमादिरूप बाह्यहेतु जे छे, तेनिर्बल छे. एम कहेनारा नयवादीने एम पूछवुं के, कर्मरूप अंतरंग हेतु केवी रीते बलवान छे ? जो कहेशो के एक जातनो उद्यम करनारा पुरुषोने कर्मनी विचित्रताने लीधे सुखदुःखनी अधिक न्यूनता दीशेछे, तेथी कर्मरूप अंतर हेतुनुं बल सिद्ध थायछे. तो ते कर्म शाथी थया छे ? एनो विचार कर्याथी पूर्वे भवना उद्यमथी थयांछेएम ठरशे. एथी उद्यमनी विचित्रताने लीधेज कर्मनी विचित्रता छे.॥४४॥जो कहेशो के, सुखनां कारण छतां पण अशातावेदनीयकर्मना उदये जीवने दुःख ऊपजेछे, ए कर्मनुं बलवंतपणु जाणवुं; अहीं दृष्टांत ए के, जेम कोइक मनुष्यने दूधना पानथी पण दुःख थायछे. ए वचनपण समर्थ नथी अहीं पण भवांतरना उद्यमनी अपेक्षा छे, केमके, दुग्धपानादिके करी पण पित्तादिकना योगे तिक्तरसादिकनुं उद्बोधन थयाथी दुःख ऊपजेछे. ॥४५॥ जो कहेशो के, कर्म पोताना भोगने अर्थे बाह्य कारणने लियेछे,ते बल छे. तो जन्मांतरनोउद्यम जन्मांतरना फलभोगने अर्थे, अंतराले कारण कर्मादिक कारण उत्पन्न करेछे एम पण कहेवाई शकायछे. जो कहेशो के, क्वचित् बाह्यकारणविना कार्यनी उत्पत्ति थायछे; पण अंतरंगकारणविना कोइ कार्यनी उत्पत्ति थायज नही; ए बलजाणवुंतो एम पण संभवे नही; केमके, साक्षात् अथवा बाह्यकारणथीज कार्यनी उत्पत्ति थायछे, ते विना कार्य थायज नही. किंबहुना कालादिक बाह्य कारणविना कोई कार्यनी उत्पत्तिज थती नथी. माटे परमार्थताए बाह्य तथा अंतरंग ए बन्नेकारण सरखांज छे. ए वस्तुस्थिति कहेतां बे नयने अनुरोधे प्रमाणमार्ग छे. ॥ ४६ ॥

अ० निश्चयनयनुं मत कहे छे:–

णिछ्चिय उसकहंचिय सवं णो परकयं हवइ वत्थुं ॥
परिणामा बंऊत्ता णयबंऊं दाण हरणाई ॥ ४७ ॥

व्या०:– निश्चयनयथी सर्व वस्तु आत्मपरिणामथी उत्पन्न थायछे; परंतु परथी परवस्तुनी उत्पत्ति थती नथी. केवल पुण्य पापकर्मना विपाकने अवसरे पासे आवेला जे अंगना सर्पादिक बाह्य अर्थ ते निमित्त मात्र छे. तेने व्यवहार बद्ध मूढ जीव कारण करी माने छे. व्यवहारवादी कहेछे के, ज्यारे परकारणत्व नथी, त्यारे साधुने दान दीधाथी शुभफल अने परद्रव्यनुं हरण कर्याथी अशुभ फल केम थायछे? निश्चयवादी समाधान करे छे के, निर्दोष आहार साधुने देतां ते देनराना जे शुभ परिणाम होयछे, तेथी शुभफल थायछे, परंतु अन्नादिक पुद्गलरूप होवाथी, तेथी फल थतुं नथी. केमके, पुद्गल द्रव्यथकी पुद्गल परिणाम थाय छे; परंतु आत्मपरिणाम नथी थतो. तेमज परद्रव्यनुं हरण कर्याथी जे अशुभ फल थायछे, ते पण आत्माना अशुभ परिणामे करी थाय छे, परंतु द्रव्यरूप पुद्गल थकी नथी थतुं. ॥ ४७ ॥

अ०:- निश्चय थकी दान पण आत्मपरिणामरूपछे, पुद्गल परिणामरूप नथी एम कहेछे:–

दिंतो वहरंतो वा णय किंचि परस्स देइ अवहरई ॥
देइ सुहं परिणामं हरइ वत्तं अप्पणोचेव ॥ ४८ ॥

व्या०:– निश्चयथकी तो साधुने निर्दोष आहार देतां तथा परद्रव्यनुं हरण करतां ते दान देनार तथा द्रव्य हरण करनारनेविषे कांई देवुं, तथा लेवुं बन्युज नथी. कोई कोईने दान देतो नथी, तथा कोई कोईनुं द्रव्य हरण करतो नथी. साधुने आहारादिकनुं दान देतां देनारो पोते पोतानेज परानुग्रह बुद्धिरूप शुभपरिणाम दियेछे; तथा परनुं द्रव्य हरण करतां ते हरण करनारो जीव घात बुद्धिए करी पोतेज पोताना शुभ परिणामनुं हरण करेछे. परंतु परनेविषे कांई देवुं लेवुं संभवे नही. ॥ ४८ ॥

णय धम्माव सुहं वा परस्स देयं णया विहरणिज्जं ॥
कयणासा कयभोग, प्पमुहा दोसा फुमाइ हरा ॥ ४९ ॥

व्या०:– जो परआत्मा परने देतो होय तो पोतानो धर्म तथा पोतानुं सुख बीजाने देवाई शकाय छे; अने जो परनो आत्मा परनुं हरण करतो होय तो

बीजानो धर्म तथा बीजानुं सुख पोते लेवाई शकायछे. ए बन्ने पक्षमां कृतनाश अने अकृतागम दोष प्राप्त थायछे; केमके, जो पोतानो धर्म तथा पोतानुं सुख बीजाने देवाई शकातुं होय तो पोते करेला कृतनो नाश थई गयो कहेवाय, अने लेनारने अकृतनो आगम थयो कहेवाय. केमके, तेने नकरेलो धर्म तथा तेनुं फल जे सुख, तेनी प्राप्ति थायछे, तथा करेलो अधर्म तथा तेहना फलनो नाश थायछे, ते कृतनाश कहेवाय छे. तेमज बीजानो धर्म तथा बीजानुं सुख पोताथकी लेवाई शकातुं होय तो तेणे करेला कृतनो नाश थई गयो कहेवाय, अने पोताने अकृतनो आगम थयो कहेवाय; केमके, पोताने नही करेलो धर्म तथा तेना फलनी प्राप्ति थायछे, तथा करेलो अधर्म तथा तेना फलनो नाश थायछे. ते कृतनाश कहेवाय छे. ॥ ४९ ॥

भत्ताइ पोग्गलाणवि णं दाण हरणाइ होइ जीवस्स ॥
जइ तं संचिय हुज्जा तो दिज्जा वा अवहरिज्जा ॥ ५० ॥

व्या०:—भक्तप्रमुख पुद्गलनुं देवुं तथा लेवुं जीवनेविषे थाय नही, केमके, जे वस्तु पोतानी होय तेनुं देवुं तथा लेवुं थायछे; परनी वस्तुनुं लेवुं देवुं थतुं नथी, ने परवस्तुनुं लेवुं देवुं तो प्रत्यक्ष करिये छये ते केम बने? ज्यारे पुद्गल द्रव्य आपणुं नथी त्यारे लेवुं देवुं केम कराय छे? ॥ ५० ॥

जोगवसेणुवणीआ इठाणिठा य पोग्गला जेहु ॥
अन्नाणे जीवाउ जीवो अन्नो अतेहिंतो ॥ ५१ ॥

व्या०:— नामकर्मना परिणाम जे मन वचन तथा कायना योग छे; तेना वशे पुद्गलनुं ग्रहण थायछे; जेम के, सुगंध तथा दुर्गंधनुं ग्रहण करतां काय योगना वशेकरी पुद्गलनुं ग्रहण थायछे; ते आत्मतत्वना ज्ञानथकी जीवने रागद्वेषना कारण थायछे; पण ते आत्माथकी अन्य छे. अने आत्मा तेथकी अन्य छे. केमके, पुद्गल ग्रहण गुण छे; अने आत्मा उपयोग गुण छे. ॥ ५१ ॥

तम्हास परिविभागो पोग्गलदव्वंमि णत्थि णिछयउ॥
भोगाभोगविसेसो ववहाराचेव सपसस्तं ॥ ५२ ॥

व्या०:— माटे निश्चयनयथकी एटलो विशेष छे के, जे आपणने भोग आवेछे, तेमांनुं न्यायोपार्जित वित्त होय ते आपणुं; ने जे परने भोग आवे ते परनुं जाणवुं.॥५२

पुस्सपयडीण उदये जोगो जोगांतराय विलएणं ॥ ज
इ णिअचित्तेणंचिअ, तो जोगो किण किं विणाणं॥ ५३॥

व्या०:-- सातावेदनीयप्रमुख पुण्यप्रकृतीना उदयथी जोगांतरायकर्मनो विल य थया पछी पण जो जीवने जोग थता होय तो कृपणने पण जोगनी प्राप्ति थ वी जोइये, तेम तो नथी थतुं; केमके, कृपणने पण लाजांतरायकर्मना क्षयोप शमथकी इव्यनी प्राप्ति तो थायछे, परंतु जोगांतराय कर्मना वशथी जोगवी शकतो नथी. माटे जे आपणने जोगवायोग्य होय ते स्वइव्य कहेवाय, ने बीजुं बधुं परइ व्य छे एम जाणवुं. एवी रीते व्यवहार नयना मते पण एकांत नथी; माटे ए सर्व पुजल इव्यने परकरी जाणवुं जोइये ॥ ५३ ॥

अ० आ सर्व पुजल इव्य परकीय छे एम जे जाणे नही तेने आत्मस्वजावनी प्राप्ति न थाय. ते कहे छे.

जो परदव्वंमि पुणो करेइ मूढो ममत्त संकप्पो ॥ सो
कहआय सहावं गिद्धो विसएसु उवलहई ॥ ५४ ॥

व्या०:- व्यवहारमूढ जीव परइव्यनी उपर ममत्वसंकल्प करेछे, ते विषय लोलुप थयो थको आत्मस्वजावने पामतो नथी. केमके, शरीरादिकनेविषे 'हुं मा तेलो छुं, हुं दूबलो छुं, हुं गोरो छुं तथा हुं कालो छुं' इत्यादिक अहंकार जीवने उत्पन्न थायछे; तथा 'मारुं शरीर, मारुं कुटुंब; इत्यादिक ममकार उत्पन्न थायछे; तेथी विषयोनेविषे दृढप्रवृत्ति थायछे, अने विषयना अन्यासे तेओनेविषे दृढ जाव थायछे, एवी परंपराए करी अज्ञाननी वृद्धि थई गयाथी आत्मज्ञान केम थाय !॥५४॥

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्जमिहकिंची ॥
इय अप्पजावणाए राग दोसा विलजंति ॥ ५५ ॥

व्या०:-- हुं बीजा कोईनो संबंधी नथी, तेम मारो कोई बीजो संबंधी नथी, आ जगतनेविषे मारुं कांई नथी, केमके, परइव्यनुं अस्तित्व जिन्न छे; अने मारा आ त्मइव्यनुं अस्तित्व जिन्न छे, शरीर कुटुंबादिक कर्मना योगे संयोग लक्षण जावछे; तेमां मारुं कांई लागतुं वलगतुं नथी, केमके, तेओनो वियोग पण थायछे, जेनो कोई काले संयोग तथा कोई काले वियोग थतो होय ते पोतानुं इव्य कहेवाय नही जेनो कोई काले वियोग थाय नही ते पोतानुं इव्य कहेवाय छे, एवो तो आत्मस्व

नाव छे, जेनो आत्माथी वियोग थतो नथी; जेम ज्ञान दर्शननादिक स्वनावोनुं कोई काळें आत्माथी वियोग थतो नथी. एवी रीते शास्त्रोक्तमर्यादाए करी आत्मजावना करवाथी राग द्वेषनो नाश थाय छे. ॥ ५५ ॥

तो परिणामाउच्चिय बंधो मोक्खो व णिच्छयणयस्स ॥
णेगंतिया अणच्चं तिया पुणो बाहिरो जोगो ॥ ५६ ॥

व्या०:—माटे जीवने बंध अथवामोक्ष निश्चयनयथी आत्मपरिणामथीज थाय छे. अज्ञानरूप परिणामथकी बंध थायछे, अने आत्मज्ञानरूप परिणामथी मोक्ष थायछे. जेम हिमथकी थएली जे शीतनी वेदना ते अग्निना तापथकी निवृत्त थाय छे, तेम आत्माना अज्ञानथकी थएलो जे कर्मबंध, ते आत्मज्ञानथकी निवृत्त थायछे. केमके, एम सिद्धांतोमां पण कह्युं छे के, तपथकी दुश्चीर्ण कर्मनो क्षय थायछे ते पण ज्ञानना संयोगथीज फळ थायछे. केमके, अज्ञानी कोमाकोडी वर्षेकरी जे कर्मनो क्षय करे, ते कर्मनो क्षय ज्ञानी एक उच्छ्वासमां करेछे. बाह्य योग प्राणातिपातादिक, तथा क्रियानुष्ठानादिक एकांतिक नथी, तेम आत्यंतिक पण नथी. केमके, बाह्य हिंसाविना मनना क्लिष्ट परिणामे करी, तंदुलमत्स्य, सातमी नरक पृथ्वीनेविषे उत्पन्न थायछे. अने अप्रमत्त यतिने जयणाए चालतां अनाजोगे जीवघाततथी पण ते प्रत्ययिक कर्मनो बंध थतो नथी. तथाविध क्रियानुष्ठानविना पण केवळ ज्ञान उत्पन्न थाय छे. ने अजव्य जीव यतीने लिंगे उत्कृष्ट बाह्य क्रिया पाळे छे तेना बळे ते नवमां ग्रैवेयकसुधी जायछे, तो पण शुद्ध परिणामविना संसारनो पार पामता नथी ॥५६॥

सिद्धी णिच्छयउच्चिय दोहं संजोगउ अवेयत्तं ॥ क
हइ कहइ दोह्नवि उवउगो तुल्लवंचेव ॥ ५७ ॥

व्या०:— संसारपार गमन सिद्धलक्षण निश्चय क्रियाथीज थायछेः एमां पण आटली विशेषता छे के, घणाने व्यवहारथकीज निश्चय आवेछे. अने कोइक जरतादिकने पूर्व चारित्राभ्यासेकरी तथा जव्यत्वना परिपाकेकरी सहजे पण थायछे. कपणुं कहेतां योग्यपणुं ते निश्चय तथा व्यवहार ए बन्नेना संयोग थकीज थायछे. एविषे सिद्धांतमां चार जांगा कह्या छे. पहेलो जे रूपुं सारुं नही ने छाप पण सारीनही, तेनी पठे ए जांगो चरकपरिव्राजकप्रमुखनेविषे छे. केमके, ते रूपाना

जेवो शुद्ध परिणाम नथी, तथा छापना जेवो वेष पण नथी. माटे तेओना अर्थनी सिद्धि थती नथी, ने ते वंदन करवायोग्य पण नथी. बीजो रूपुं खोटुं, होय ने छाप खरी होय ए भांगो, पासत्था, उसन्ना, प्रमुखनेविषे थाय छे ; प्रमुख शब्देकरी दिगंबरादिक पण लेवा. केमके, तेओने रूपाना जेवो शुद्ध परिणाम नथी मात्र छापनी पठे वेष तेवो छे. पण परिणामविना तेओना अर्थनी सिद्धि थती नथी. वेष तेवोछे माटे जहांसूधी दोष जाण्या न होय तहांसूधी वंदना करवायोग्यछे, परंतु दोष जाण्या पछी जो वंदना करिये तो मोहा दोष लागे. यतः " जह वेलं बगलिंगं, जाणं तस्स णमउं धुवं दोसो ; णिद्धंदसत्तिणाऊ, ण वंदमाणे धुवंदोसो " इत्यावश्यके. एनो अर्थः— जेम कोइ भांड यतिनो वेष लीधो होय तेने जाणीने वंदन करतां निश्चयेकरी दोष लागेछे. तिम निर्द्धंधस जाणी वेष मात्र जोइने वंदना करतां ध्रुव दोष लागे. त्रीजो रूपुं चोखुं होय पण छाप खरी न होय ए भांगो प्रत्येक बुधने लागु थायछे. केमके, तेओ अन्यलिंगे पण होय तथापि तेओने रूपानी पठे भावचारित्रतो छे, तेथी पोताना आत्मानो अर्थ तो सिद्ध करेछे, परंतु साधुना पथ्यविना वंदन करवा योग्य नथी. चोथो भांगो रूपुं पण चोखुं तथा छाप पण चोखी होय तेनी पठे सर्व शुद्ध जाणवुं. जे महानुभाव आलय विहारादिक सर्व शुद्ध, यतिनी समाचारी पाले, अने विशुद्ध चारित्रवंत होय, एने रूपानी पठे शुद्ध परिणाम छे, तेथी आत्मानो अर्थ सिद्ध करेछे, तथा साधुनुं पथ्य छे, माटे वंदवा योग्य तथा पूजवायोग्य पण छे. एवीरीते एवा ठेकाणे शुद्ध परिणामरूप निश्चय बलवंत छे. साधु वेषादिरूप उपचरिता सद्भुत व्यवहार ते निर्बलछे. तथाकोईक ठेकाणे व्यवहार अने निश्चय ए बन्नेनो सरखो उपयोग छे. अहीं ज्ञान अने क्रियानुं उदाहरण लेवुं ज्ञाननयनी रीतिए आम कह्युं छे के, ज्ञानविना क्रियामात्रथी फलनी सिद्धि थती नथी. केमके, मिथ्याज्ञानेकरी सीपनेविषे रूपानी बुद्धि प्रवर्त्ते छे. ने तेनी प्राप्ति तो थती नथी माटे मिथ्याज्ञानजन्य जे क्रिया, तेथी फलनी प्राप्ति थती नथी ; किंतु सत्यज्ञानजन्यक्रियाथी फलनी प्राप्ति थायछे. परंतु क्रिया तो ज्ञानेकरीनेज थायछे, तेमां मिथ्याज्ञानजन्यक्रिया निष्फल थायछे ने सत्य ज्ञानजन्यक्रिया सफल थायछे, एवीरीते क्रियानुं कारण ज्ञान होवाथी प्रधान छे. अने ज्ञाननुं कार्य क्रिया होवाथी अप्रधान छे, तेमज क्रियानयनी अपेक्षाए एम कह्युंछेः— ज्ञानजन्यक्रियाए करीने संपादन करेलुं जे फल, ते कोई कारणने लीधे क्षीण थई जाय तो ते पाछुं क्रियाथी प्राप्त थायछे ; माटे क्रिया प्रधान छे. अने ज्ञान अप्रधान छे. जुवो के, ज्ञानवान छतां

क्रिया न करे तो ते ज्ञानमात्रथकी फलनी प्राप्ति थती नथी. अहीं दृष्टांतो कहे छेः— जेम कोई पुरुषने मार्गनुं ज्ञान सारी पठे होय, पण जो चलनक्रिया न करे तो वांछित नगर प्रत्ये पहोंची शके नही; जेम कोई पुरुषने नृत्यकलानुं सारुं ज्ञान होय पण जो नृत्य अभिनय क्रिया न करे तो जोनारा लोकनुं मनरंजन करी शके नही; तथा तेने कांई द्रव्यनी प्राप्ति थाय नहीं तथा जेम कोई पुरुष तरी जाणतो होय एटले जलतरणज्ञानवान होय, पण जो हस्तपादचलनरूपक्रिया न करेतो इच्छितस्थले न पोहोचतां वच्चेज बूडी मरे. एवी रीते ज्ञाननय तथा क्रियानयनो परस्पर विवाद छे; तेने एककोरे मूकीने मात्र सारांशनो विचार जो कर्यो होय तो परमार्थदृष्टिए फलसिद्धिने विषे बन्ने समान बलवंत छे. केमके, शैलेशीअवस्थानेविषे केवलज्ञानरूप ज्ञान, तथा संवररूप क्रिया ए बन्ने योगथी मुक्ति थायछे पण ए बन्नेमांनुं कोई एक न होय तो मुक्ति थाय नही. ए प्रमाण पक्ष छेः ॥ ५७ ॥

अ० निश्चयनयनी अपेक्षाए कहेछेः—

तुल्लत्तमवेक्खाए णियमासमुदाय जोगमहि गिच्च ॥
किरिआ विसस्सए पुण नाणाउ सुए जउ नणिअं ॥५८॥
जम्हा दंसण नाणं संपुन्नफलं न दिंति पत्तेअं ॥ चा
रित्तजुआ दिंतिहु विसस्सए तेण चारित्तं ॥ ५९ ॥

व्या०:— यद्यपि कार्य करवानी अपेक्षाए ज्ञान अने क्रिया ए बन्नेनुं सरखुं बलछे; तथापि ज्ञान करतां क्रियाने आटली विशेषता छेः— ज्यारे शुद्धक्रिया होयछे त्यारे षष्ठादिगुणस्थानके नियमे शुद्धज्ञान होयछे. पण ज्यारे शुद्धज्ञान होय, त्यारे शुद्धक्रियानो नियम नथी. केमके, चतुर्थगुणस्थानके सम्यक्तना प्रतापे करी शुद्ध ज्ञान तो होयछे, परंतु अविरति होवाने लीधे शुद्धक्रिया होती नथी. एविषे आवश्यक निर्युक्तिमां कह्युंछे के, जेमाटे दर्शन तथा ज्ञान ए प्रत्येके संपूर्ण फल दई शकता नथी, पण ज्यारे चारित्रनेविषे एकठा मलेछे. त्यारे संपूर्ण फल दियेछे. तेमाटे दर्शन तथा ज्ञान करतां चारित्रश्रेष्ठ छे ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

एवं ववहाराउ बलवंतो णिच्छउ नणेयव्वो ॥ एग
मयं ववहारो सव्वमयं णिच्छउ वत्ति ॥ ६० ॥

व्या०:— एवी रीते व्यवहारथकी निश्चयनुं बल अधिक कह्युं तथा आवीरीते पण निश्चयनी विशेषता छेः— जे एकनयनुं मत ते व्यवहार, अने सर्वनयनुं मत

ते निश्चय कहिये, यथा नूतपदार्थनुं जे कथन ते निश्चयनय कहेवाय छे, ने ए नूतार्थनय पण कहेवायछे, निश्चयनयनो विषय नाव जे छे ते सर्वे सम्मत छे. यतः "सवणया नावमिछंति" इति विशेषावश्यके. ॥ ६० ॥

अ० एवुंनिश्चयनयनुंमत सांजलीने सिंहावलोकनन्यायें व्यवहारवादी बोले छेः–

अहिआ जइ तुह किरिआ अहिआ नाणं वि तस्स होउत्ति ॥
कारणगुणाणुरूवा कज्जगुणाणेव विवरीआ ॥ ६१ ॥

व्या०ः– पूर्वे कहेली रीतिए ज्यारे तुं क्रियाने अधिक माने छे, त्यारे ज्ञानने पण अधिक मानवुं जोयेछे. केमके, ज्ञान क्रियानुं कारण छे. कारणना गुण जेवाज कार्यना गुण होयछे, तेथी विपरीत होता नथी. जेमाटे ज्ञान क्रियानुं कारण छे, तेमाटे तेना गुणे करीने क्रियाने कार्य पणानी प्रधानता छे, तेथी ज्ञान अत्यंत प्रधान छे, जो कहेशोके, मोक्षरूप कार्य क्रियाथकी थायछे. माटे क्रिया अधिक छे ; तो तेम पण संनवे नही. केमके, ज्यारे क्रिया ज्ञाननुं कार्य छे. त्यारे क्रियानुं कार्य जे मोक्ष, तेपण परंपराए ज्ञाननुंज कार्य जाणवुं. यतः "दासेण मे खरो कीउ, दासोवि मे खरोवि मे." एटले मारा दासे खर वेचातो लीधो, ते दास पण मारो अने खर पण मारो छे ; एम सिद्धांतोक्तन्यायथी जाणी लेवुं. ॥ ६१ ॥

अह जह सव णयमयं वणिज्जिउ इगमयं च ववहारो ॥
सोसा सयलादेसा विगलादेसा कहं होउं ॥ ६२ ॥

व्या० पूर्वे कह्या प्रमाणे निश्चयनय जे छे ते सर्व नयनुं मत छे, जो एम होय तो ते सर्व नांगानुं ग्रहण करनार सकलादेश प्रमाणरूप मानवो जोइशे. त्यारे ते नयरूप विकलादेश केम मानशे ? ॥ ६२ ॥

अ० एवीरीते व्यवहार तथा निश्चय ए बन्नेनय परस्पर वाद करता जोईने मध्यस्थपणे प्रमाणवादी कहेछेः-

मुक्खामुक्खविनागो इछामेत्तेण णछि एगंतो ॥ जइ
अछि तो विनाणे चरणं सारोत्ति तं मुक्खं ॥ ६३ ॥

व्या० व्यवहार तथा निश्चय एबन्ने नयोना मुख्य तथा अमुख्य ए बे विनाग पोतपोतानी इछाए थई शकेछे, कोईक गुणने लईने निश्चयनी मुख्यता कहेवायछे, अने कोईक गुणने लईने व्यवहारनी मुख्यता कहेवायछे. परंतु एओनेविषे एकांतपणुं संन

वे नही; किंतु अनेकांतपणुं संजवेछे. केम के, निश्चय तथा व्यवहारना मुख्य तथा अमुख्य विजाग स्वजाविकधर्मरूप नथी; किंतु आपेक्षिक छे. जेम आमलक बदरनी अपेक्षाए दीर्घ कहेवाय; अने घटादिकनी अपेक्षाए ह्रस्व कहेवायछे. तेम ए बन्ने नयो एक बीजानी अपेक्षाए मुख्य तथा अमुख्य कहेवायछे, एम छतां पण जो व्यवहारनयवादी पोताना मतनुं मुख्यपणुं प्रकाशवानुं मांमी न वाले तो तेणे वली आ युक्तियेकरीने पोताना मननुं समाधान करी लेवुं जोये के व्यवहारनुं जे मुख्यपणुं छे ते मात्र कहेवानुं छे, अने निश्चयनुं मुख्यपणुं तो कार्यनो उपयोगी छे; केम के, सामायक आदिदईने चौद पूर्वपर्यंत ज्ञाननुं सार ते चारित्र कह्युं छे, यतः "सामाइअमाईअं, सुअनाणं जाव बिंडुसाराउं; तस्स वि सारो चरण, स्सारो चरणस्स निव्वाणं" इति आवश्यके. ॥ ६३ ॥

सव्वणयमयत्तं पुण सव्वेसिं सम्मउ जउ विसउ ॥
णयणिच्छयस्स तेणं सयल दिसत्त मेगस्स ॥ ६४ ॥

व्या०: निश्चयनयने सर्वनयमय पणुं जे पूर्वे कह्युं ते सर्वनय सम्मत अथी मानेछे तेमाटे कह्युं एम जाण्याथी एकला निश्चयनयने सर्वनयसमूहरूप प्रमाणात्मक सकल देशपणुं पण दोषनुं करनार थशे नही. ॥ ६४ ॥

जेणं सयला देसो अन्नेय वित्तीइ णिच्छयाधीणो ॥
तेणेव सोपमाणं ण पमाणं होइ ववहारो ॥ ६५ ॥

व्या०: जिहां एक धर्मनी धाराए सर्व धर्म जे सकलादेशनेविषे प्रतिपादन कराय छे, तिहां अस्तित्वादिक एक धर्मनी साथे बीजा सकल धर्मोनुं अन्नेदपणुं जे जाणवुं ते निश्चयनयने आयत छे, एवी अपेक्षाएकरी निश्चयनयने प्रमाण कह्योछे; अने व्यवहारनयने अप्रमाण कह्योछे; परंतु एकांत निश्चयनय प्रमाण कह्यो नथी. ॥६५॥

जम णुवयारोवि चलं कासइ णेगंतिअं हवे तंपि ॥ एग
स्स मुक्खन्नावे णियमा अवरोवयारोत्ति ॥ ६६ ॥

व्या०: कोई एम कहेछे के निश्चयनय परमार्थग्राहीछे तेमां कोई उपचार नही होवाथी ते बलवानछे, अने व्यवहार नय परमार्थग्राही नथी, तेमां घणा उपचार होवाथी ते निर्बलछे, एपण एकांत नथी; केमके, बन्नेनय वस्तुग्राही छे, व्यवहारनय अंशग्राही छे, तेमां ज्यारे निश्चयनयनी मुख्यता विवक्षिए त्यारेनिश्च

वनय पण उपचारसहित थायछे, इहां कोई विशेषता नथी, यतः "अर्पितानर्पितसिद्धे तत्वार्थे" शब्देकरी नयनी प्रधानतानी जे विवक्षा करवी ते अर्पित कहिये, अने नयांतरनी अपेक्षाए तेनी अप्रधानतानी जे विवक्षा करवी ते अनर्पित कहिये, एबन्ने प्रकारनी विवक्षाथी जे पदार्थनी सिद्धि थायछे, ते तत्वार्थसिद्धि कहेवायछे. ॥ ६६ ॥

णिछयणयस्स विसयं जावंचिय जे पमाण माहंसु ॥
तेसिं विणेव हेउं कज्जप्पत्तीइ कामेग ॥ ६७ ॥

व्या०: कोईक आम मानेछे के, निश्चयनयनो विषय जे जाव छे तेज प्रमाण छे, तो ते जावनो हेतु इव्य छे, इव्यविना जावनी उत्पत्ति थाय नही जो इव्यविना जावनी उत्पत्ति अंगीकार करीये तो मर्यादा रहे नही. अने कारणविना कार्यनी उत्पत्ति थती नथी एवो नियम छे तेनो जंग थशे! जो एम कहेशो के, इव्यक्रिया संसारमां अनंतवार प्राप्त थएली छे. माटे ते अप्रधान छे; तो जाव पण अप्रशस्त अनंतवार प्राप्त थएलो छे ते केम प्रधान कहेवाय? जो कहेशो के, शुद्ध जाव अपूर्व छे, तो शुद्ध इव्य पण अपूर्वज छे, ते शासारुं नही मानवुं जोये! ॥६७॥

खाउवसमिगजावे सुद्धो हेऊ सुहस्स खइअस्स ॥ त
प्रावेण कया पुण किरिआ तप्रावबुद्धि करी ॥ ६८ ॥

व्या०: क्षायोपशमिक जावे कीधेली जे क्रिया तेज क्षायोपशमिक जावनीवृद्धि करनारी छे; माटे शुद्धजावथी क्रिया अवश्य करवी योग्य छे; अने तेम न करवाथी जावनी हाणी थई जाय. ॥ ६८ ॥

धिइ सद्धा सुह विविइस विण्णत्ती तत्त धम्म जोणित्ती॥
तल्लद्धधम्मजावा वड्डइ जावतत्तणं तत्तो ॥ ६९ ॥
एवं पवड्ढजावो कमेण गुणठाणसिद्धिमारुहिय ॥
पखीणघाइकम्मो कयकिच्चो केवली होइ ॥ ७० ॥

व्या०: धृति, श्रद्धा, शुश्रूषा, विविदिषा, तथा विज्ञप्ति ए पांच पदार्थ धर्मनां कारण छे, एविषे पतंजलिप्रमुख ग्रंथोमां पण कहेलुं छे. उद्वेगादिनो त्याग करीने चित्त स्वस्थ करवुं ते धृति कहिये, चित्त स्वस्थ थयाथी मार्गानुसारिणी रुचि उत्पन्न थाय छे ते श्रद्धा कहिये; मार्गानुसारिणी बुद्धि थयाथी क्षायोपशम जाव

उत्पन्न थायछे, त्यारे जेम सर्प बाहेर आमो तिडो चाले पण ज्यारे राफडांमां पेसेछे त्यारे पांसरो थई जायछे तेम श्रवणादिकनेविषे बुद्धिनी जे सरला थवी ते शुश्रूषा कहिये, श्रवणादिक कख्याथी जेम जेम बुद्धि शुद्ध थती जायछे, तेम तेम आत्मतत्वचिंतननी उत्पत्ति थती जायछे ते विविदिषा कहिये, आत्मतत्वचिंतनथकी शुश्रूषा जे छे ते श्रवणादिगुणरूप थायछे, तेविना ते आजासमात्र कहेवाय; पण गुण कहेवाय नही, आत्मतत्वचिंतन वडे श्रवणादिक गुण उत्पन्न थयाथी सम्यक्तनी उत्पत्ति थायछे, ते सम्यक्तना पांच लिंग शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा, तथा आस्तिक्यता; एवो आत्मानो जे शुज परिणाम तेने परमतनेविषे विज्ञप्ति कहेछे, आत्माना शुजपरिणामथी धर्मनो जाव उत्पन्न थायछे; तेणेकरी जावांतरनी वृद्धि थायछे, एम उत्तरोत्तर, जाववृद्धिकरी अविरति देशविरत्यादिक गुणस्थान श्रेणीचढी घातीकर्मनो क्षयकरी कृतकृत्य केवलीथाय एनो सारी रीते विचार करी जुवो एटले सहज जणाई आवेछे ॥ ६ए॥ ७० ॥

अ० एवुं युक्तिपूर्वक वचन सांजलीने पीडितकर्ण थयो थको परवादी बोल्योः—

नणु जय सो कयकिच्चो अठारसदोसविरहिठ देवो ॥
ता बुहतह्ना जावा जुज्जइ कम्मा कवलजोजी ॥ ७१ ॥

व्या० देव तो अढारदोषरहित छे; अने कृतकृत्य छे; ए सर्व मान्यछे. ने तमे पण जो एमज मानता होतो तेने कवलाहार करनारो केम कहोछो? कवलाहार अंगीकार कख्याथी क्षुधा तृषा पण अंगीकार करवा जोईशे. केम के, क्षुधा तृषाविना कवलाहार संजवे नही. जो क्षुधा तृषाने पण अंगीकार करशो तो परमेश्वरने अढारदोषरहित केम कही शकशो? केम के, क्षुधा अने तृषा ए बे दोष तो कवलाहारना ग्रहणथी सिद्ध थायछे. त्यारे शुं केवली सोलदोषरहित छे, जो एम मानशो तो आगमवचननो अपमान थशे. यतः "क्षुत्पिपासा जरातंक, जन्मांतकजयस्मयाः ॥ न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते." इति दिगंबरग्रंथांतरगत उपासकाध्ययने क्षुधा, तृषा, जरा, क्षय, जन्म, यम, इहलोकादिजय, अहंकार, राग, द्वेष, मोह, चिंता, अरति, निद्रा, विस्मय, विषाद, स्वेद, तथा खेद; ए अढार दोष केवलीने नथी एम कह्युंछे. तेओमाना क्षुधा तथा तृषा ए बे दोष छतां कृतकृत्यता केम संजवे? माटे केवलीने जो कवलाहारी कहो तो बे दोष अंगीकार करो. ॥ ७१ ॥

अ० ए आशंकानो उत्तर कहे छेः--

तो सक्कावुत्तुं जे छुहतह्लाइ जिणस्स किरदोसो ॥ जइ
तं दूसेज गुणं साहावियमप्पणो किं वि ॥ ७२ ॥
दूसइ अव्वाबाहं इय जइ तुह सम्मउ तयं दोसो ॥
मणुयत्तणं वि दोसो ता सिद्धत्तस्स दूसणउ ॥ ७३ ॥

व्या०: क्षुधा अने तृषा ए बे दोष अढार दोषमां गणीने, कृतकृत्य जे केवली तेनेविषे ते बे दोषनो तें जे अभाव कह्यो; ते वचन ताराज मतानुयायिमां कहेता शोभाप्रद छे; परंतु पंडितोनी पर्षदामां शोभाने पामे नही; किंतु मूल्यविना ना कहेवाय. केमके, क्षुधा अने तृषा ए बन्ने दोषमां त्यारे गणी शकाय, के ज्यारे कोई स्वाभाविकआत्माना गुणने दूषण लागतुं होय; तेम तो कांई थतुं नथी, केम के, ए भाव वेदनीयकर्मना करेला छे; ते केवलज्ञानने दूषित करी न शके. केमके, केवलज्ञानने दूषण करनार ज्ञानावरणीय कर्म छे. तेम केवलदर्शनने दूषित करनारुं दर्शनावरणीय कर्म छे; तेम सम्यक्चारित्रने दूषित करी शके नही केमके, सम्यक्चारित्रने दूषित करनारुं मोहनीयकर्म छे. तेमज दानादिक पांच लब्धिने पण दूषित करी शके नही; केमके, लब्धिओने दूषित करनारुं अंतराय कर्म छे. ए कारण माटे क्षुधा अने तृषा ए बे दोष कहेवाय नही. अहिं कोई आशंका करशे के जेम क्षुधा तथा तृषावडे छद्मस्थने ईर्या समिति श्रुताभ्यासादिकनो भंग दीठामां आवेछे; तेम केवलीने पण चारित्रज्ञानमां प्रतिबंधरूप शासारू न थाय? एनो उत्तर आ छेः यद्यपि क्षुधा तथा तृषा ए बे बहिरिंद्रिय वृत्तिनी ग्लानि करवाने लीधे एकेंद्रिय ज्ञानादिकना विरोधी थायछे. तथापि अतींद्रिय ज्ञाननो घात करी शकतां नथी, कोई एवी आशंका करे के, जीवनो अव्याबाध गुण छे. एटले निराकुलत्वरूप जे जीव, तेने दूषित करनारी क्षुधा तथा तृषा छे. केमके, ते आकुलता परिणामरूप छे. जे आकुलतानी क्षुधावडे निवृत्ति थायछे, तेक्षुधानी परिणामक छे. ने क्षुधा तेनो परिणाम छे; अने जे आकुलतानी तृषावडे निवृत्ति थायछे, ते तृषानी परिणामक छे. ने तृषा तेनो परिणाम छे. तेने एम कहेवुं के, केवलीनो सिद्धत्व गुण छे, तेने दूषित करनारुं मनुष्यपणुं पण दोषरूप केम न कहेवाय? इत्यादिक विचार करी पोतानी कल्पना मूकीने घातिकर्मना करेला अढार दोष जेवी रीते पूर्वाचार्ये कह्याछे, तेवी रीतेज मानवा

जोइयेछे, यतः " अंतराया दानलाभ. वीर्यभोगोपभोगगाः ॥ हासोरत्यरती भीति, जुगुप्सा शोक एव च ॥ १ ॥ कामोमिथ्यात्वमज्ञानं, निद्रा चाविरतिस्तथा ॥ रागोदोषश्च नो दोषा, केषामष्टादशाप्यमी ॥ २ ॥ " ज्ञानगुणनो घात करनारुं अज्ञान, दर्शनगुणनो घात करनारी निद्रा, सम्यक्तगुणनो घात करनारुं मिथ्यात्व, चारित्रगुणनो घात करनारां हास्य, रति, अरति, भय शोक, दुगंछा, काम, अविरति, राग, तथा द्वेष; अने दानादि लब्धिरूपवीर्यगुणना घात करनारा दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराय, उपभोगांतराय, तथा वीर्यांतराय; ए अढारदोष घातिकर्मना कह्याछे, परंतु केवलीने घातीकर्मोनो क्षय थई जायछे, माटे ते निर्दोष कहेवायछे. तेम छतां क्षुधा अने तृषाने अढारदोषोमां जे गणेछे ते युक्तायुक्त विचार नकरतां केवल स्वमतनुं पोषण करेछे; ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

अह जइ जिणस्स खइअं सुक्खं दुक्खं विरुज्झए तेणं ॥
तो सामण्णाभावे विसेसजुत्ता कहं सत्ता ॥ ७४ ॥

व्या०:– कोई आशंका करे के, जेम केवलीने क्षायिक ज्ञानादिक छे, तेम क्षायिक सुख पण छे, तिहां दुःखनो लेश पण नथी, तो क्षुधा तृषा केमलागेछे ? ॥७४॥

तो वेयणिज्जकम्मं उदयप्पत्तं कहं हवे तस्स ॥ णय
सोपदेसउदउ समयम्मि विवाग भणणाउ ॥ ७५ ॥

व्या०:– पहली आशंकानुं उत्तर दियेछे के, केवलीने जो क्षायक सुख मानता होतो सिद्धांतनेविषे केवलीने वेदनीयकर्मनो उदय कह्योछे, ते शासारु न मानवो ! अर्थात् मानवो जोईशे. जेम ज्ञानावरणीयकर्मनो उदय छतां क्षायिक ज्ञान थतुं नथी, तेम वेदनीयकर्मनो उदय छतां क्षायिक सुख पण थतुं नथी, कोई शंका करेके, केवलीने एवा वेदनीयकर्मनो उदय होयछे के, जेना प्रदेश आत्मप्रदेशनी साथे मलेछे, ते स्थिति प्रमाणे रहीने क्षीण थई जायछे. परंतु केवलीने तेनी आकुलता थती नथी. एनुं उत्तर ए के, यद्यपि एवो प्रदेशोदय अमने पण मान्य छे; तो केवलीने क्षायिक सुख संभवे नही. तेम छतां अभ्युच्चयताथी अमारे कहेवुं जोयेछे के, केवलीने वेदनीयकर्मनो प्रदेशोदय छेज नही. किंतु सिद्धांतोमां विपाकोदय कह्योछे. ॥ ७५ ॥

आवस्सयणिज्जत्ती पयडिपसभोदउवएसेणं ॥ ण
जइ ता सुहायाउ असुहपडिवक्खवयणेणं ॥ ७६ ॥

व्या०:– आवश्यक निर्युक्तिनेविषे प्रकृतिनो प्रशस्त उदय कह्यो छे, तथा दिगंबरना प्रवचनसारनामक ग्रंथमां पण “ पुम्नफला अरिहंता ” इत्यादिक वचनो कह्यांछे, एवी रीते असुखना प्रतिपक्ष वचनथी केवलीने सुखनो विपाक छे.॥७६॥

अ० कोई आशंका करे के, जे कारण माटे सुखविपाक छे, तेथीज दुःखविपाक नथी ? तेनुं समाधान करेछे. ॥ ७६ ॥

तत्तहसुत्तभणिआ एकारसहा परीसहा य जिणे ॥ तेह
वि छुहतह्लाइ खइअस्स सुहस्स पडिकूलं ॥ ७७ ॥

व्या०:– आगम श्रीभगवतीसूत्रनेविषे केवलीने अग्यार परीसह कह्याछे. तद्यथा “ एकविहबंधगस्सणं भंते सजोगि भवछ केवलिस्स कइ परीसहा पन्नत्ता ? गोयमा, एकारस परीसहा पन्नत्ता. णव पुणवेण तिन्ने ” तथा वेडुने “ एकादश जिने ” एवीरीते श्रीतत्वार्थसूत्रमां अग्यार परीसह कह्याछे ; एणेकरी केवलीने क्षुधा तथातृषा प्राप्त थईछतां क्षायिक सुखनी हानि थती नथी एवुं ठरेछे अहीं उक्त “ एकादशजिने ” ए सूत्रनो अर्थ केटलाएक पोतानुं मत पोषण करवाना हेतुथी एवुं करेछे के “ एकेनाधिकानदश ” एटले एकअधिक दश न थाय ; अर्थात् अग्यार परीसह नही. ए अपव्याख्यान जाणवुं, केमके, एवो समास संभवे नही. वली केटलाएक सर्वार्थसिद्धिप्रमुख “ नसंति ” एवुं बाहेरथी वाक्य लियेछे, तेतो जाणे पोतानुं उत्सूत्रभाषणज प्रगट करतो होयनी ! परंतु तेओए आवो विचार करवो जोये के, परीसहनास्वामी चिंताना अधिकारनेविषे प्रसिद्ध छतां तेनो अभाव केम थशे ! जे धनरहित होय ते धननो स्वामी कहेवाय नही. वली केटलाएक आवीरीते व्याख्यान करेछे के, केवलीने वेदनीयकर्म होवाथी कारण कार्योपचारेकरीने अग्यार परीसह कह्याछे ए व्याख्यान पण नदीमां बूडतां घासनो आश्रय लेवाजेवुं छे, केमके, स्वामित्वचिंताए उपचार संभवे नही, जो उपचार मानिये तो छता मोहनीयकर्मना होवाथी उपशांत मोहगुणस्थानकनेविषे पण बावीस परीसह कह्या जोईशे, ए प्रकारे करी सूत्रनां घणां अपव्याख्यानोनो त्याग करीने परमार्थनो विचार करवो जोये. ॥ ७७ ॥

अस्साय वेयणिज्जं छुहतह्लाईण कारणं जाण ॥ पज्ज
त्तिसतित्तछ्दय जलिअंतरजलणदित्ताणं ॥ ७८ ॥

व्या०:– आहार पर्याप्तिनामकर्म तथा असाता वेदनीयकर्म ए बन्नेना उदय

थी प्रज्वलित थएलो जे जठराग्नि, तेणे करीने जीवने क्षुधा तथा तृषा लागेछे, ते बधां कारण केवलीनेविषे छतां छे तेने क्षुधा तथा तृषा केम न लागे? तेकहो ॥७८॥

अ० वादी आशंका करेछेः—

णणु बुह तह्णा तह्णा मोहुदउ पत्तियारिरंसव ॥
जसइ असा तह्णा असहुस्कं तयह्नुंति ॥ ७९ ॥

व्या०:— क्षुधा तथा तृषा ए मैथुननी इच्छानी पठे तृष्णारूप होवाथी ते मोहनीयकर्मथकी उत्पन्न थायछे. माटे केवलीनेविषे ए संभवे नही. केमके, केवली ए तो मोहनीयकर्मनो प्रथमज नाश कर्योछे. एनो उत्तर आवीरीते छेः— तृष्णा अने दुःखमां घणी भिन्नता छे, तृष्णानेज दुःख कहेवाय नही. परंतु संसारीने तृष्णाथकी दुःखनी उत्पत्ति थायछे. ॥ ७९ ॥

अ० तृष्णा उत्पन्न थवानो प्रकार कहेछेः—

मोहाभिणिवेसेणं चउहि वि उमकोठयाइ हेऊहिं ॥
पगरिस पत्तातह्णा जायइ आहारसणत्ति ॥ ८० ॥

व्या०:— मोहनीय कर्म अभिनिवेशे चार कारणथी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. ते उत्कर्ष पाम्याने लीधे तृष्णा कहेवायछे. ते चार प्रकार श्रीठाणांगमां कह्याछे; यतः "चउहिं ठाणेहिं आहारसण्णा समुप्पज्जइ; उमकोठयाए, छुहावेयणिज्जस्सणं कम्मस्स उदएणं, मतीए, तदठोवउगेणं," एनो अर्थः— चार कारणेकरी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. कोठोखाली थयाथी, क्षुधावेदनीयकर्मना उदयथी, आहारादिकनी कथानुं श्रवण कर्याथी, तथा वारंवार आहारनो उपयोग कर्याथी आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. अर्थात् ए चार कारण मल्याथी मोहनीय कर्मना बले आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे. अतएव गोमठ सारटीकाप्रमुखनेविषे पण आहारसंज्ञा आहाराभिलाषरूप कहीछे. ते तृष्णारूप होवाथी यतिने ए विना अशनपानादिकनेविषे प्रवृत्ति छे ते कहेछेः— ॥ ८० ॥

असणाइम्मि पवित्ती एत्तोच्चिय तं विणा सुसाहूणं ॥ णाज
हुत्त विहविहाणो अइआरो हंदि णिहिठो ॥ ८१ ॥

व्या० ए हेतुथीज यतिने पण आहारसंज्ञाविना अशनादिकनेविषे प्रवृत्तिछे. केम के, विधि पालतां यतिने अतिचार कह्या नथी; अने आहारसंज्ञा तो अति

चारमां छे. माटे जे एम कहेछे के आहारसंज्ञाविना यतीए आहार करवो नही तेने आचारमां पण अतिचार कह्या छे. ॥ ७१ ॥

एयं विणा णभुत्ती मेहुणसण्णं विणा जह अबंभं ॥ इ
य वयणं पि परेसिं एएण पराकयं णेअं ॥ ७२ ॥

व्या० जेम मैथुनसंज्ञाविना अब्रह्मचर्य न थाय, तेम आहारसंज्ञाविना केवलीने भुक्ति थाय नही. एवा परवादीना वचननुं आवीरीते निराकरण कर्युं छेः— जेम यतिए आहारसंज्ञाविना आहार करवो उचित छे, तेम केवलीनेविषे पण मानी लेवुं जोईये. ॥ ७२ ॥

णहु साहु चिय पवित्ती णेवय सुपसत्थझाणहेउत्ति ॥ आ
हारोव्व अबंभं असुह तुह होइ णिद्दोसं ॥ ७३ ॥

व्या० आहार अवर्जनीय होवाथी उचित छे, तथा छद्मस्थ यतीने प्रशस्त ध्याननुं कारण छे. माटे आहारसंज्ञाविना केवलीने आहार लेवो संभवे छे. अने मैथुन वर्जनीय होवाथी अनुचित छे; तथा दुर्ध्याननुं कारण छे. माटे मैथुनादिक अनुचितप्रवृत्ति अप्रशस्त रागद्वेषविना केवलीने थाय नही. एवा अर्थनो विचार करीने तेनुं ग्रहण करवुं जोये. ॥ ७३ ॥

आहारचिंतणुब्भव मेयं आहारसण्णमासज्ज ॥
वुड्ढइ अट्टझाणं इह लोभेण मूढाणं ॥ ७४ ॥

व्या० आहारना चिंतनथकी जे आहारसंज्ञा उत्पन्न थायछे, तेनेविषे मोहित थयला मूढजीवने जो ते आहाररूपइष्टवस्तुनी प्राप्ति न थाय तो ते वस्तु क्यारे प्राप्त थशे एवा चिंतनरूप आर्त्तध्यान करेछे. परंतु ते अभिलाषा मटती नथी. ७४

तत्तो माणसदुक्खं लहइ जिउ कंदणाइ कुव्वंतो ॥
लद्धुं वि इट्ठविसयं रईइ चिंतेइ अवियोगं ॥ ७५ ॥

व्या० त्यार पछी पूर्वोक्त रीतिए जो तेने आहारादिक इष्टवस्तुनी प्राप्ति न थाय तो ते जीव क्षुद्वेदनीयना उदयथी प्रज्वलित थएला उदरानलना योगे शरीरदुःख पामेछे. अने पछी क्रंदन रोदनादिक करवाथी अरतिमोहनीयकर्मना उदयने लीधे गाढ चित्तोपतापरूप मानसदुःख पामेछे. कदाच पुण्यप्रकृतिना परिपाके इष्टवस्तुनी प्राप्ति थाय तो पण रतिमोहनीयकर्मना उदयथी ते वस्तु

ना अवियोगनी इच्छा कर्याकरे, तेणे करी ते वस्तु उपर गाढानुरागेकरी आर्त्त ध्याननां वश थयो थको जीव दुःखज पामे छे, माटे मोहमूढ जे जीव छे तेने परमार्थथकी कदी पण सुख नथी. ॥ ८५ ॥

तो मोहणिज्जखयउ तप्पवदुक्खाणुबंधि विलएणं ॥
लहई सुहं सव्वह्न चएणो पुण छुहं चइउं ॥ ८६ ॥

व्या०:– मोहनीयकर्मना क्षयथी जीवने आहार करवानी रति तथा अरति उत्पन्न थायछे. ने मोहनीयकर्मना उदयथी जीवने मानस दुःख उत्पन्न थायछे. ते दुःख केवलीने मटी जायछे; पण असातावेदनीयकर्मना उदयथी केवलीने जे क्षुधा तृषा लागेछे; तेनो ते त्याग करी शके नही. ॥ ८६ ॥

घाइव वेयणीअं इय जइ मोहं विणा ण दुक्कयरं ॥
पयडं पडिरूवाउ ता अण्णाउ विपयडीउ ॥ ८७ ॥

व्या०:– पूर्वपक्षी कहेछे के, वेदनीयकर्म घाती कर्मना जेवुंछे, माटे मोहनीय कर्मविना ते दुःखदायक थाय नही. उक्तंच. "घादीववेदणीयं; मोहस्सुदएण घाददे जीवं;" इति कर्मकांडे. तेनुं समाधान आमछेः– जो तमारा कह्या प्रमाणे होय तो असातावेदनीयनी पछे केवलीने बीजी प्रकृतिओ पण मोहनीय कर्मविना पोताना कार्यनी करनारी होवी जोये. अने तमे वेदनीयकर्मनीसाथे घातीकर्मनी तुल्यना केवीरीते करोछो? घातीआना रसना जेवो तेनो रस होयछे एम सरखा पणुं करोछो, के स्वकार्य करवानेविषे घातीआनी अपेक्षापणुं कल्पोछो; के अथवा दोषनुं हेतुपणुं कहोछो, ? जो कहेशोके घातीआना रसना जेवो रस होवो जोये तो अघातीकर्म प्रकृति घातीना जेवी होवी जोये. केमके, ज्यारे अघातीनी प्रकृति सर्व घातिनी प्रकृतिनी साथे वेईये त्यारे ते सर्व घातिनीप्रकृतिनो विपाक देखाडे, तथा ज्यारे देश घातिनीनो विपाक देखाडे, अने एकली वेईये त्यारे मात्र ते एकलो पोतानोज विपाक देखाडेछे; माटे पक्ष संभवतो नथी. जो कहेशो के, स्वकार्य करवानेविषे घातीआनी अपेक्षा होवी जोयेछे, तो नामकर्म पण पूर्वे मोहनीयकर्मनी अपेक्षा करतुं छतां जेम केवलीने मोहविना आपणु कार्य करेछे; तेम वेदनीय कर्म पण मोहनीयकर्मनी अपेक्षाविना कार्य करेछे. माटे बीजो पक्ष पण संभवे नही. जो कहेशो के वेदनीयकर्मथी दोष लागेछे, तो ते

पण मनाय नही, केमके, क्षुधा अने तृषानेविषे दोषपणानुं पूर्वेज खंडन कर्युं छे; एवीरीते स्वबुद्धिएकरी सारी पठे विचार करीने जुवो. ॥ ८७ ॥

अणुकूलं पडिकूलं च वेयणं लस्कणं सुहदुहाणं ॥ ण
हु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयभावा ॥ ८८ ॥

व्या०: औदयिक सुख छतां अनुकूलत्व वेदन थायछे, ते रागरूप छे अने औदयिक दुःख छतां प्रतिकूलत्व वेदन थायछे, ते द्वेषरूप छे; माटे केवलीने औदयिक सुख तथा दुःख ए बन्ने होतां नथी; किंतु क्षायिक सुखज होयछे. एम केटलाएक कहेछे, ते योग्य नथी. केम के, जेम अप्रमत्तयतीने औदयिक सुख तथा दुःख ए बन्ने होयछे. पण राग तथा द्वेष ए बे होता नथी; तेम केवलीने विषे पण जाणी लेवुं. एमां एकांतपणुं न मानवुं. ॥ ८८ ॥

अधुवाण सुहदुहाणं भोगो भोगेण कम्मबंधो य ॥
णहु एसो एगंतो अपमत्तजईसु तयभावा ॥ ८९ ॥

व्या०: सुख तथा दुःख ए बन्ने पदार्थ शाश्वत नथी, किंतु अशाश्वत छे. ते ओनो एवो नियम छे के, अवश्य भोगने दियेछे. कह्युंछे के, "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" इत्यादि. अने भोगथकी कर्मबंध थायछे. ए कारण माटे केवलीनेविषे ते संभवे नही. केमके, सुख तथा दुःख ए बन्ने पदार्थो अध्रुव छे. एम केटलाएक कहेछे, ते पण योग्य नथी. केमके, सुख तथा दुःख अध्रुव छतां अप्रमत्तयतीने होयछे; तो पण तेनाथी कर्मबंध थतो नथी; तेम केवलीविषे पण जाणवुं जोइये. अहीं पण एकांत नथी. ॥ ८९ ॥

अन्नाणजं तु दुस्कं नाणावरणस्कएण खयमेइ ॥
तत्तो सुहमकलंकिय केवलनाणा पुहब्भूयं ॥ ९० ॥

व्या०:-- ज्यारे हरेक पदार्थनो सूक्ष्म अर्थ जाण्यामां आवतो नथी, त्यारे जीवने महादुःख उत्पन्न थायछे. केमके, यथार्थवस्तु जाणवानी इच्छा प्रमाणे जाण्यामां न आवे तो तेथी जीवने आकूलता थायछे. तेज दुःख जाणवुं. ए दुःख वस्तुनो सूक्ष्म अर्थ न जाण्याथकी थायछे, माटे अज्ञानरूपज छे. अज्ञान ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयथी नाश थाय छे, ते दुःखनोज नाश जाणवो. केवलीने ज्ञानावरणीयकर्मनो क्षय थई जवाथी दुःखरूप अज्ञाननो लेश पण

रह्यो नथी अने केवल ज्ञाननो उदय थयोछे ते सर्व सुखरूप छे. ते सुख केव लज्ञानथकी पृथक्भूत नथी. केमके, केवल ज्ञान जे छे ते स्वभावना प्र तिघातरहित होवाथी अनाकूलतारूप छे; त्यां आकुलता छेज नही, ज्यारे आ कुलता नथी त्यारे तज्जन्य जे दुःख ते क्यांथी होय! अने दुःख नथी त्यारे परम सुखज छे. एवी रीते "जं केवलित्तिनाणं, तं सोक्खं परण संचसोचेव ॥ खेदो तस्स नणीदो, जम्हाघादीखयं जादा" ए प्रवचनसारनां वचन असंभवित छे. तोपण आटलो विशेष छेः-- केवल ज्ञान क्षायिकसुखप्रक्रिया संभवे नही; केमके, क्षायि क सुख तो वेदनीयकर्मनाक्षयथकीज उत्पन्न थायछे. ॥ ८० ॥

एय सुक्खं दुक्खं वा देहगयं इंदिउप्पवं सव्वं ॥ अ
न्नाए मोह कज्जे पमाणसिद्धेउ संकोए ॥ ८१ ॥

व्या० दिगंबर एम कहेछेः—के शरीरगत सुख दुःख सर्वइंद्रियथकी उत्पन्न थाय छे केम के, छद्मस्थने जे सुख तथा दुःख उत्पन्न थायछे ते एवी रीतेज था यछे. प्रथम परोक्षज्ञानना कारणथी इंद्रियोनी उपर मैत्री प्रवर्त्ते छे, इंद्रियोनी मैत्री थकी विषयोनेविषे तृष्णा उत्पन्न थायछे. जेम अग्निथी तापेलो लोहनो गोलो होयछे; तेम विषयोनी तृष्णाएकरी इंद्रियो तप्त होयछे. ते महाव्याधिस्थानीय छे. अने तृष्णा टालवाने अर्थे विषयनुं सेवन थायछे; ते व्याधीना औषधस्थानीय छे. ते यद्यपि व्यवहार दृष्टिए तो सुख कहेवायछे, तथापि परमार्थताए दुःखरूप छे. उक्तंच. "पप्पाइट्ठे विसए, फासेहि समास देस हावेण; परिणममाणोअप्पा, सयमेव सुह एयवदिरेहोत्ति." इति प्रवचनसारे. ए कारण माटे देहगत सुख ऐंद्रियक छे. तेमज दुःखपण ऐंद्रियक छे. एवा ऐंद्रियक विषयोना द्वेषथी दुःख उ पजेछे. माटे देहगत सुख तथा दुःख केवलीनेविषे नथी. तेथीज केवली अतींद्रि य थया छे. उक्तंच. "सोक्खंवा पुण दुक्खं, केवलनाणिस्स नत्थि देहगयं; जम्हा अ दिंदिअत्तं, जावं तम्हा दुतंणेयंति." इति प्रवचनसारे. एनुं समाधान करेछेः—देहगत सर्व सुख तथा दुःख इंद्रियाधीन नथी केम के, इंद्रियोनी पराधीनताथी जे अज्ञा न तथा मोहथकी सुख तथा दुःख उत्पन्न थायछे, तेओनेज इंद्रियोनी अपेक्षाछे, परंतु अप्रमत्तयतीने जे मानस सुख थायछे, तथा सातादिककर्मना उदयथी क्षु धादिक दोष उत्पन्न थायछे, तेमां इंद्रियोनी अपेक्षानो नियम नथी, जो एम न मानिये ने इंद्रियाधीनज सुख तथा दुःख मानीये तो रतिमोहनीयकर्म तथा अरति

मोहनीयकर्मनुं नामांतरज वेदनीयकर्मना उदयथी असाता वेदनीय कर्म थाय छे एम ठरशे. त्यारे वेदनीयकर्म जुदु कहेवाशे नही. जो वेदनीयकर्म मोहनीयसाथे मानीये तो सातज कर्म ठरशे. आठ कर्मनो संभव थशे नही. एम करतां सर्व जैन प्रकृतिनो उछेद थशे. वली देहगत सुख जो केवलीने न मानीये तो तीर्थंकरनाम कर्मनो विपाक केम संभवे! जो एम कहिये के तीर्थंकरनामकर्म जीव विपाकी छे, माटे तेथी जीवगत सुखतो उपजेछे. परंतु देहगत क्षुधादिक दुःख संभवे नही. तो जेम सुखने पण देहनी अपेक्षा छे, तेम दुःखने पण देहनी अपेक्षा छे, माटे देहगतज मानवा योग्यछे, इत्यादिक सूक्ष्मविचार करी मध्यस्थबुद्धिये न्याय करो. ॥९१॥

एत्तोच्चिअ बहु दुःख, खएण तेसिं छुहाइवेयणियं ॥
णिंबरस लवुव पए अप्पंति भणंति समय विऊ ॥ ९२ ॥

व्या० केवलीने अज्ञानादि जघन्य घणां दुःख मटीगयां छे, मात्र एक क्षुधावेदनीय रह्युं छे, ते पण घातीकर्मनी साथे मलेला जेवो पोतानो विपाक देखाडे छे केम के, केवलीने पुण्यप्रकृतिनो विपाक प्रबल छे. यतः "अस्सायमाइआओ, जाविअ असुहा हवंति पयडीउ; णिंबुरस णिंबुव्वपणु ण हुंति ता असुह यातस्स." ए आवश्यकगाथामां तीर्थंकरने असाता प्रकृति दुःखदायिनी थती नथी. जेम दूधना घडामां निंबना रसनो बिंदु नाख्याथी कटुता थाय नही, एम श्रीभद्रबाहु स्वामीए कह्युं छे, जेम तेने प्रबल पुण्यपराभव करेछे, परंतु तेथी क्षुधादिक उपजे नही एम न जाणवुं, एवो भाव जणायछे. पछी विशेषार्थ तो बहुश्रुत जाणे. ॥९२॥

णय तं कवलाजोग्गं वेयणियं अगणिमंदयाभावा ॥
णय दड्ढरज्जुकप्पं वेअणिअं हंदि सुअसिद्धं ॥ ९३ ॥

व्या०:– केवलीनुं वेदनीयकर्म कवलाहार योग्य थाय नही एम न कहेवुं. केमके, केवलीने अग्निमंदपणुं नथी. आहारपर्याप्तिनामकर्मनो उदय अने वेदनीयकर्मनो उदय होवाने लीधे उदराग्नि प्रज्वलित थायछे. ए बन्ने कारणो होवाथी केवलीने वेदनीय कर्म कवलाहारयोग्य थायछे. जो कोई कहेशे के, वेदनीय कर्म दोरडीना जेवुं छे, तेथी केवलीने व्याबाध करीशके नही. तेने आवो जबाब देवो के, ए वचन प्रघोषनुं छे, शास्त्रनुं नथी. केमके, श्रीसुयगडांगनी टीकामां आम कह्युंछे के, "यद्यपि दग्धरज्जुस्थानकत्वमुच्यते वेदनीयस्य तदप्यना

गमिकमयुक्तिसंगतं चागमेह्यत्यंतोदयः सातस्य केवलिन्यभिधीयते. युक्तिरपि घातिकर्मक्षयादज्ञानादयस्तस्या अनूवन् वेदनीयोद्भवायाःक्षुधः किमायातं येनासौ न जवति न तपोच्छायातपयोरिव सहानवस्थानलक्षणो विरोधो नापिजावाजावयोरिव परस्परपरिहारेण लक्षणकश्चिद्विरोधोस्तीति सातासातयोश्चांतर्मुहूर्त्तपरिवर्त्तमानतया यथा सातोदय एवमसातोदयोपीति अनंतवीर्यत्वं सत्यपि शरीरबलापचयक्षुद्वेदनीयोद्भवा पीडा च जवत्येव नचाहारग्रहणे किंचित्क्षीयते. केवलं महोपुरुषिकामात्रमेवेति पंचाशीतिजरद्वस्त्रप्रायाः शेषासयोगिनि. "

एवुं जे गुणस्थानकक्रमारोहमां कह्युंछे, ते तो थोडी स्थितिनी अपेक्षाए जाणवुं; पण रसनी अपेक्षाए न जाणवुं. केमके, सत्तानी प्रकृति तो एवी कहीछे, पण उदयनी प्रकृति एवी कही नथी. उलटो तीर्थंकरनामप्रमुखनो प्रबल उदयज कह्योछे. एम जाणीने "अतएव दग्धरज्जुकल्पेन जवोपग्राहिकल्पेनापि सता केवलिनोपि न मुक्तिमासादयेयुः" ए आवश्यकबृहद्वृत्तिनुं वचन छे, ते जोईने पण व्यामोह करवो नही. तेटला माटेज इहां पण स्थितिनी अपेक्षाएज केवलीने कर्म दोरडीना जेवां कह्यांछे. "अतएव जवोपग्राहित्वाल्पग्राहित्वविशेषणं" कह्यांछे. एवुं अमने प्रतिजासेछे. वली विशेष गीतार्थनेविषे जेम पूर्वापरविरोध न थाय, तेम विचारवुं. केटला एक प्रमेयकमलमार्तंडना अभिप्रायने अनुसरीने आवीरीते कहेछे के, अपूर्वकरणगुणगणाए पापप्रकृतिनो रस कस्योछे, माटे केवलीने तथाविध सातोदय थाय नही. मोहसापेक्षप्रकृति थाय. तेनो मोहना घातथी अवश्य घात थायछे. अन्यथा पराघातनामकर्मना उदयथी केवली परहननादिक केम न करे! ए बोलवुं पण दुराग्रहनुं जाणवुं. केमके, जेम रसनो घात थायछे, तेम स्थितिनो पण घात थायछे. माटे जो रस ओछो थतो होय तो स्थिति पण ओछी थवी जोये. जेम बध्यमानकर्मनी स्थिति घटी जायछे तेम बध्यमान कर्मनो रस पण घटी जायछे, एज समाधानछे. तथा पराघातनामकर्मनुं फल केवलीने थायजछे, अने परहनन तो मोहविना थाय नही. केटलाएक एम कहेछे के वेदनीय कर्म केवलीनेविषे हतवीर्य छे, माटे तेनेविषे क्षुधादिक परीसह छायारूप छे. एम जे केवलीनेविषे कहेछे तेणे श्वेतांबरनी प्रक्रिया जाणी नथी, एम जाणवुं. केटलाएक कहेछे के, केवलीनेविषे उदीरणाविना प्रचुर पुद्गल आवता नथी, माटे असातावेदनीयोदय बली दोरडीना जेवोज छे. एबोलवुं पण अविचाररूप छे. केमके, एवीरीते तो सातावेदनीयोदय पण मंद होवो जोये. इत्यादिक

मतनो विचार करतां वास्तविक अर्थ सहज देखाई आवशे. माटे सूक्ष्म दृष्टिवडे ते अर्थनुं शोधन करो. ॥ ए३ ॥

एय केवलनाणाई बुहाईपडिबंधगं जिणंदस्स ॥
दाहस्सिव मंताई इय जुत्तं तंतजुत्तीए ॥ ए४ ॥

व्या०:— जेम दाहना प्रतिबंधक मंत्रादिक छे, तेम क्षुधादिकनुं प्रतिबंधक केवलज्ञान छे. ए वचन पण शास्त्रानुसार नथी. केमके, जेम हाथनेविषे मंत्रेलो अग्नि राख्यो छतां हाथ बलतो नथी एवुं प्रत्यक्ष दीठामां आवेछे, तेथीज मंत्रादिक जे छे ते दाहना प्रतिबंधक छे, एवी कल्पना करायछे. तेम जो केवलीनेविषे वेदनीयादिक कर्मोदयरूप कारण छतां क्षुधादिक उनय उत्पन्न थतां नथी एम जो सम्मतशास्त्रमां कह्युं होय तो एवी कल्पना थई शके; तेविना बोलवुं व्यर्थ छे; माटे शास्त्रनी युक्तिए जिमपूर्वे कह्युं छे तेम आदरवुं योग्य छे. ॥ ए४ ॥

खिज्जइ बलं बुहाए णय तं जुज्जइ अणंतविरिआणं ॥
इग जुत्तुं पिण सुत्तुं बलविरियाणं जत्ते नेत्ते ॥ ए५ ॥

व्या०:— केवलीने जो नूख लागती होय तो बलनी हाणी थाय. ते तो तेनेविषे संनवे नही. केमके, वीर्यांतरायकर्मना क्षयने लीधे केवली अनंतवीर्यवंत छे. ए वचन पण अयोग्य छे. केमके, बल अने वीर्यमां नेद छे. शरीरनो जे पराक्रम ते बल कहेवायछे, अने अंतरंग जे शक्तिविशेष ते वीर्य कहेवायछे. तेम छतां क्षुधाएकरी शरीरनुं बल घटेछे, एविषे अमे ना कहेता नथी ए योगप्रत्यय छे; योग जे छे ते शरीरनामकर्मपरिणतिविशेषरूप छे. अने नामकर्म तो नगवंतनेविषे क्षीण थयुं नथी. ॥ ए५ ॥ अ० पूर्वपक्षी आशंका करेछेः—

बंधो परपरिणामा सो पुण नाणा ण वीयमोहाणं ॥ जो
गकया पिहु किरिया तो तेसिं होइ णिव्वीआ ॥ ए६ ॥

व्या०:— ग्रहण तथा मोचनादिक परपरिणामथी जीवने कर्मबंध थायछे. ते परिणाम वीतरागने ज्ञानना प्रतापे थाय नही. उक्तंच "गेह्णदि णेव ण मुंचदि, ण परं परिणमदि केवली नगवं; पेछदि समंतदोसो, जाणदि सव्वं निरवसेसं" इति प्रवचनसारे. केवलीने तो योगनी क्रिया पण नथी, त्यारे नोजननी शी कथा अर्थात् केवलीनेविषे नोजन पण संनवे नही जो नोजनक्रिया केवलीनेविषे मा

निये तो तेथी योगक्रिया सिद्ध थशे. ते तो केवलीनेविषे संजवे नही. जुवो के, स्थाननिषद्या, विहार, तथा धर्मोपदेशादिकक्रिया पण केवलीने थती नथी, त्यारे जोजनक्रिया ते केम थाय! जो कहेशो के, स्थाननिषद्या, विहार, तथा धर्मोपदेशादिकक्रिया केवलीने प्रत्यक्ष विद्यमान उतां ना केम कहेवाय ? तो ते क्रिया यद्यपि ढे, तथापि प्रयत्नपूर्वक नथी. केमके, प्रयत्न रागद्वेष विना थतुं न थी. तेतो केवलीनेविषे नथी, माटे ए क्रिया स्वजावसिद्ध ढे. जेम आकाशनेविषे वादला समयविशेषे स्वजावेज संचार करेढे, रहेढे, गर्जना करेढे, तथा वर्षा करेढे. तेम केवलीने पण स्थाननिषद्या, विहार तथा धर्मोपदेशादिक स्वजावेज थायढे. उक्तंच "ठाणणिसेज्ज विहारो, धम्मुवदेसो अणियदिणा तेसिं : अरिहंताणं का ले, मायाचारोव्व इडीणं" इति प्रवचनसारे. अतएव केवलीने जे औदयिकी क्रि या ढे, तेनेविषे मोह नही होवाने लीधे परद्रव्य परिणामना विरहथी क्षायिकीज जाणवी. यत. "पुस्रफला अरिहंता, तेसिं किरिया पुणोहि ओदयिगी ; मोहादिहे विरहिया, तम्हा सा खाइ गतिमदत्ति " ॥ ए६ ॥

अ० एवी पूर्वपक्षीनी आशंकानुं उत्तर आपेढेः—

जोगं विणावि किरिआ जवज्जइ कह ण तस्सोवि ॥
तुल्लं किरिवेचित्तं तह तुल्ल मबुद्धिपुवत्तं ॥ ए७ ॥

व्या०ः— केवलीनेविषे स्थाननिषद्यादिक्रिया जो स्वजावेज थती होय तो प्रय त्न निरर्थक थाय. एम तो कांइ दीठामां आवतुं नथी. प्रयत्न सार्थकज होयढे. केमके, प्रयत्नविना चेष्टा थतीज नथी. माटे केवलीनेविषे प्रयत्ननो संजव थायढे, मात्र स्वाजाविकतानोज उपयोग करवो नही. जो कहेशो के, केवलीनेविषे प्रयत्न जन्य चेष्टा नथी किंतु तेथी विलक्षण ढे. अर्थात् केवलीनी चेष्टा प्रयत्नविनाज थायढे. तो जेम चेष्टा विलक्षण ढे, तेमज प्रयत्न पण शासारू विलक्षण न मानि ये ? अने जेम विलक्षण चेष्टा मोहविना थायढे, तेम विलक्षण प्रयत्न पण मोह विना थवुं जोये. जो कहेशो के, केवलीनी चेष्टा मनःपूर्वक नथी, तो ते प्रमाणे प्रयत्न पण मनःपूर्वक नथी एम शासारू न मानो एवीरीते सर्व ठेकाणे सरखुं स माधान जाणी लेवुं. ॥ ए७ ॥

एवं सहावत्रवाणी कह जुत्ता जेणि तेसि वयजोगो ॥
हेऊ दव सुअस्सा वतंअणं कम्मखवणाय ॥ एट ॥

व्या०ः–पूर्वे कहेला हेतुए करीज दिगंबरो कहेछे के, केवलीने राग नथी होतो तेथी तेनेविषे वचनव्यापार संजवे नही. तेम छतां जे वचनव्यापार थायछे ते स्वनावेंज मस्तकमांथी ध्वनि नीकले छे एम जाणवो, पण अक्षररूप वाणी संजवे नही. ए शंका पण अयुक्त छे. केमके, केवलीने केवलस्थनी पूर्वे जेवीरीते वचन योग हतो, तेमज केवलज्ञान थया पछी पण जाणवो. अने केवलीने रागविना पण क्रियानुं सामर्थ्य छतां अक्षररूप वाणी केम न संजवे ? कोई आशंका करेके, केवली कृतकृत्य छे. त्यारे ते उपदेश शासारू करेछे ? तेनुं समाधान ए के तीर्थंकरनामकर्मनो विपाक एवीरीतेज जोगवायछे. तेथीज केवली उपदेश करेछे. ए केवलीनो स्वनावज छे. जो कहेशो के, केवली पदेकरी एकांते कृतकृत्यछे ? तो तेम पण न समजवुं. यतः एगंतेण कयछो ; जेणे दिन्नं जिणंदणामंसे, तदवंऊ फलं तस्स य खवणो वाउ अमवेजउ : इति विशेषावश्यके. जो कहेशो के, परोपकारनी इछाविना उपदेश देवो संजवे नही, अने इछा तेज राग कहेवायछे. अने रागतो वीतरागनेविषे संजवे नही. एवो व्यामोह पण न करवो. केमके एवी इछा ते कृपा कहेवाय छे ; पण तेने राग न समजवुं. ॥ ए८ ॥

णय वयणपयत्तेणं खेअस्सोदीरणं जिणंदस्स ॥ इह
रा सुहस्स पावइ तं णय वा असुपयमीणं ॥ एए ॥

व्या०ः– जो कहेशो के, वचन बोलवाना प्रयत्नेकरी जीवने खेद थयानी उदीरणा थायछे. तो ते संजवे नही. केमके, मनुष्यना आउखामां साताअसाता वेदनीयकर्मनी उदीरणा प्रमादपरवशेकरीनेज होयछे ; प्रमादविना बीजां कारणो छतां उदीरणा थाय नही. जो एम नकहिये अने बीजां कारणोथी उदीरणा थाय छे एम कहिये ; तो काययोगनेविषे सातावेदनीयनी उदीरणा, पण तेने केम थाय ? केमके, उदीरणानुं तो आवुं लक्षण कह्युंछेः– जे स्थितिना दलिक, उदयावलिकाथी बाहेर वर्त्तेछे, तेने कषायसहित योगनामना वीर्येकरी आकर्षण करीने ते उदयावलिकानेविषे जे प्रक्षेपन करवुं, ते उदीरणा कहेवायछे. ॥ एए ॥

णय तं विरिअविरहियं जायइ अपवत्तणाञ्च करणंति ॥
केवलसहावपक्कं सुगयस्स मयमणुमयं जाण ॥ १०० ॥

व्या०ः– जो कहेशो के ते उदीरणा वीर्यविना थायछे, तो ते संजवे नही. केमके, उदीरणा जेछे ते अपवर्त्तनानी परीकरण विशेषछे. एटले स्थानांतर कराववा

नुं कारण छे; अने कारण जेछे ते प्रयत्नरूप छे, एम नमानतां जो केवल स्वभाव वाद मानिये तो बोद्धनुं मत अनुमत थाय, माटे प्रयत्न पण अंगीकार करवुंजोये.

खेउ णाईरिज्जइ केवलजोगेहिं तो विणु पमायं ॥ उद्ध
दयहेउपज्जवो दीसइ पुण सो वि तत्तुल्लो ॥ १०१ ॥

व्या०:– केवली योग प्रमादविना खेद उदीरतो नथी, परंतु उदयना हेतु ते हां उदीरणासरखा दीगमां आवेछे, तेथी खेद जेछे ते उदीरितना जेवो जणायछे पण परमार्थताए ते उदीरणा कहेवाय नही ॥ १०१ ॥

भुत्तीइ सुहपत्ती तं पुण जोगाउदीरियं हुज्जा ॥ एसा
परजुत्तिलया एएण पकंपिआ णेआ ॥ १०२ ॥

व्या०:– भुक्ति कहेतां जे कवलाहारछे. तेणेकरी केवलीने जे सुख उत्पन्न थायछे; ते योगथी उदीखुं, अने केवलीने तो योगनी उदीरणा संभवे नही. केमके, तेने वेदनीयनी उदीरणा होती नथी माटे केवलीने कवलाहार संभवे नही. एवी जे परयुक्तिरूप वेली ते आवीरीते कपाई गईछे. के प्रमादविना उदीरणा थायज नही. एम निश्चये जाणवुं ॥ १०२ ॥

णय डुप्पणिहाणं पिहु, केवलजोगाण होइ भुत्तीए ॥
तं रागदोसकयं, ते पुण तेसिं विलीणत्ति ॥ १०३ ॥
इय सत्तमाइ फासग, कोडिन्नाईण कवलभोईए ॥ णेवय
डुप्पणिहाणं, सुप्पणिहाणस्स माहप्पा ॥ १०४ ॥

व्या०:– आहारेकरी केवलीना योगने डुःप्रणिधान थाय नही. केमके, योगडुःप्रणिधान ते रागद्वेषवडे थायछे. ते रागद्वेष तो केवलीनेविषे नथी. अतएव सप्तमादि गुणगणे चडेला जे कोडिन्नादिमहर्षि, तेओने आहार करतां पण डुःप्रणिधान योग नथी थतो. विधिएकरि आहार करतां तेओने आत्मलीनताना माहात्म्यथी प्रमाद थतो नथी. किंतु अप्रमादज रहेछे. सातमा गुणगणानेविषे नवा व्यापारनो आरंभ थतो नथी. पण पूर्वे आरंभेला व्यापारनी निष्ठा होयछे. जेम देवताना आउखाना बंधनो आरंभ थतो नथी. पण छठे गुणगणे बांधवा मांड्यो जे देवतानो आउखो, ते बांधता थका पण सातमे गुणगणे अवायछे. माटे नवा आरं

नना अनिप्रायेज "इत्येतस्मिन् गुणस्थानानि संत्यावश्यानि षट्" एवं गुणस्थान क्रमारोहनेविषे कह्युंछे. ते संनवितछे. ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

हेऊ पमत्तयाए आहारकहव णेव आहारो ॥ होऊ
जइ एइआरो असुहती एव तेणावि ॥ १०५ ॥

व्या०:– आहारनी कथा करतां साधु प्रमत्त थायछे. त्यारे आहार करतां केम प्रमत्त न थाय? एवुं प्रनावे कहेछे ते अयुक्त जाणवुं. केमके, आहारकथा प्रमादनुं कारण नथी. तेम छतां जो बन्ने सरखा कहिये तो जेम आहारकथा करतां अतिचार थायछे. तेम आहार करतां पण यतीने अतिचार थवो जोये॥१०५॥

णिद्दाविण एण हेउ नुत्ती सहयारमेत्त ओत्तीए ॥ जेण
सुए णिद्दिठा पयडी सा दंसणावरणी ॥ १०६ ॥

व्या०:– जो केवली आहार करतो होय तो तेने निद्रा होवी जोइये. एम जे कहेछे ते पण अप्रमाण जाणवुं. केमके, निद्रानुं कारण आहार नथी. आहार तो मात्र निद्रानो सहचारी छे. सिद्धांतोनेविषे निद्राने दर्शनावरणीयकर्मनी प्रकृति कहीछे. केमके, आहार करतां पण केवलीने दर्शनावरणीयकर्मनो अनाव छे. माटे केवलीने निद्रा होती नथी. ॥ १०६ ॥

णय तस्स थोवयाए जेण अणुसा तउ तउ डुठो ॥
णिद्दव डुहयाउं णिद्दाई पसंगउ तस्स ॥ १०७ ॥

व्या०:– शास्त्रोमां कह्युं छे के थोडो आहार करवो, माटे आहार डुष्ट छे, एम कहेवुं पण अयोग्य छे; केमके, घणो आहार कर्याथी दर्शनावरणीयकर्मना विपाकनो उदय थायछे. एटला माटे घणो आहार करवो डुष्ट कह्योछे. पण स्वनावे आहार डुष्ट नथी. ॥ १०७ ॥

आहारो ण पमाउ नन्नइ अववाइनत्तिकाऊणं ॥
अववाया वोलीणा वीयनयाणं जिणाण जउ ॥१०८॥

व्या०:– आहार अपवादमार्गने प्रतिबंध करनारो होवाथी प्रमादरूप छे, एम नकहेवुं. केमके, वीतनय तीर्थंकरने कोई अपवाद नथी. अपवाद तो जे उत्सर्गमार्ग करी शके नही, अने चारित्रना त्यागथी बीहे, तेने छे. जिनने तो ते नहोय. ए केवल पोतानी कल्पना नथी, केमके, धर्मबिंडुनेविषे निरपेक्षयतिधर्मना अधिकारे अपवादत्यागसूत्र कह्युंछे, ए गीतार्थे यथा सूत्र विचारवो ॥१०८॥

पत्तं ममत्तहेऊ जुत्तं वोत्तुं पुणो ण देहुव ॥ इहराणी
ममनावो जिणाण कह पाणिपत्ताणं ॥ १०ए ॥

व्या०ः– आहार करनारने पात्र राखवां जोइये, ते पात्रतो ममत्वनुं कारण छे. एम कहेवुं नही. केमके, पात्र तो शरीरनी पठे धर्मसाधन छे. जो एम न मानिये ने ममत्वनुं कारण मानिये तो तीर्थंकरप्रमुख जे पाणिपात्री छे तेओनेविषे निर्ममत्वपणुं केम संनवे? जो कहेशो के, बाह्य पात्र ममत्वनुं कारण छे, तो ते पण असमीचीन छे. केमके, जेटलुं पुजल इव्य छे ते सर्व आत्माथी बाह्य छे, माटे शुं ते ममत्वनुं कारण थाय? ॥ १०ए ॥

ऊाणं तवोवघाउ आहारेणंति ते मई मिछा ॥
ऊाणं सेलेसीए तवो अ णिविसस्स तेसिंति ॥ ११० ॥

व्या०ः– जो कहेशो के, आहारेकरी केवलीना ध्यान तथा तपनो व्याघात थाय, माटे आहार लेवो अयोग्य छे. तो एवुं जे तारी मतिमां नासे छे ते पण मिथ्या छे. केमके, ध्यान तो शैलेशीयें छे. पण पूर्वे उत्कर्षताथी देशेऊणी पूर्वकोडी सुधी नथी. अने विशेषेकरी केवलीने कोई तप पण नथी. ठाणांगनेविषे केवलीने जे अणुत्तर तप कह्युंछे, ते पण शैलेश्यावस्थानाव ध्यानरूप कह्युं छे. अने सोमिलना प्रश्नना अधिकारे श्रीनगवतीमां "किं नंते जत्ता सोमिला, जंमे तव णियम संयम सज्झाय सज्झाणवस्सयमाईसु जोएसु जयणा" एवुं कह्युं छे तेहां पण तपनुं फल छे. तेमाटे उपचारें तप कह्युं छे. ॥ ११० ॥

उरालियदेहस्स य ठिई अवुड्डीय णो विणाहारं ॥
तेणं पिअ केवलिणो कवलाहारित्तणं जुत्तं ॥ १११ ॥

व्या०ः– औदारिकशरीरनी स्थिति, तथा तेनी वृद्धि आहारविना थती नथी माटे केवलीने कवलाहार युक्त छे. ॥ १११ ॥

परमोरालिअदेहो केवलिणं णणु हवेज्ज मोहखए ॥
रुहिराइधाउरहिउ तेअमउ अप्पपडलुवो ॥ ११२ ॥

व्याः–पूर्वपक्षी शंका करेछे के, मोहनीयकर्मना क्षयथी केवलीने परमौदारिक शरीर थायछे. ते रुधिरादिक सप्तधातुरहित परम पवित्र होयछे. जोइल

ना पडलनी पठे केवल तेजमय होयछे. एवा शरीरने कवलाहारनीअपेक्षा नथी॥ ११२
अ० उपली आशंकानुं समाधान करेछे:—

संघयणणामपगइउ केवलिदेहस्स धाउरहियत्तं ॥
पोग्गलविवागिणीकह अतारिसे पोग्गले होऊ ॥ ११३ ॥

व्या०:— केवलीनुं शरीर जो सप्तधातुरहित कहिये तो तेने वज्रऋषभनाराच संघयण नामकर्म प्रकृतिनो उदय केम थाय. केमके, ते प्रकृति तो पुज्ञल विपाकनी छे. ते अस्थि पुज्ञलने विषेज विपाक देखाडे छे. जो दृढ संस्थानमात्र पुज्ञलनेविषे ते विपाकने देखाडती होय तो देवताने पण वज्रऋषभनाराच संघयण कहेवुं जोये. ११३

मोहविलएण नाणं णामुदयाचेव तस्स पारम्मं ॥
तो वण्णाइविसेसो तं होऊण धाउरहियत्तं ॥ ११४ ॥

व्या०:— मोहनीयकर्मना विलयथी केवलीने केवल ज्ञान उपजे छे. पण शरीरनेविषे कांई विशेषपणुं थतुं नथी. शरीरनामकर्मना उदयथीज शरीरनेविषे विशेषता थायछे. माटे केवलीना शरीरनेविषे पुण्यप्रकृतिना माहात्म्यथी वर्णगति सारसत्वादिकनी विशेषता युक्तज छे. परंतु धातुरहितपणुं थाय नही. अतएव शास्त्रोनेविषे कह्युंछे के, " संघयणरूव संठा, ण वन्नगइ सारसत्त ऊसासा; एमा इणुत्तराइं, हवंति णामोदया तस्स." एम छतां जे केवलीना शरीरनेविषे अस्थ्यादि पुज्ञल पलटीने अन्यविषेज पुज्ञल उत्पन्न थायछे. एवी कल्पना करवी ते दृष्टिविपरीत होवाथी अयोग्य छे. केमके, पुण्यप्रकृतिनो उदय थयाथी तथाविध लब्धिवडे शरीरवर्णादिकविशेष दृढ होयछे. एम जाणवुं. ॥ ११४ ॥

ओरालिपत्तणेणं तह परमोरालिअंवि केवलिणो ॥
कवलाहारावेक्खं ठिई च वुङ्ढिं च पाउणई॥ ११५ ॥

व्या०:— तीर्थंकरनुं शरीर जो परमोदारिक होय तो पण तेने कवलाहार सापेक्षज स्थिति तथा वृद्धिनो अनुजव थाय. केमके सामान्यपणे औदारिकशरीरनेविषे एवो नियम ग्रह्योछे के, आहारविना शरीरनी स्थिति होयज नही.॥११५

णय मइनाणपसत्ती, कवलाहारेण होइ केवलिणो ॥
पुप्फाईअं विसयं, अस्स हयाणाइ गिह्णिज्जा ॥ ११६ ॥

व्याः— जो केवली आहार करे तो तेना आस्वादथी रसनानुं मतिज्ञान थाय

नही; जो एम मानिये तो समवरणभूमिकानेविषे गूडणप्रमाण फूल पाथरेलां होवाथी, तेना परिमलथी घ्राणेंद्रियनुं मतिज्ञान केम न थाय? आस्वाद विना तृप्ति थाय नही, एम पण न कहेवुं. केमके, रतिरूप तृप्ति थती न होय तो ते अमारे पण इष्ट छे. परंतु क्षुधानाशरूप तृप्ति तो आहारविना थायज नही.॥ ११६॥

इरिआ वहिआ किरिआ, कवलाहारेण जइ ण केवलिणो॥
गमणाइणा विनहवे, सा किं तुह पाण पिहियत्ति ॥ ११७ ॥

व्या० जो कहेशो के, केवलीने कवलाहार करतां इरिआवहिकी क्रिया लागेछे. तो गमनागमनादिक क्रियाए करी केवलीने इरिआवहिआ क्रिया केम न लागे? माटे जेम केवलीने गमनादिक क्रिया छे, तेम भोजन क्रिया पण जाणवी, एवुं प्रथमज कह्युं छे. ॥ ११७ ॥

णय परुवयारहाणी तेण सया जोग्गसमयणियएण ॥
णय वाहिसमुप्पत्ती हिअमिअआहारगहणाउ ॥ ११८॥

व्या०:-- केवली जो कवलाहार करे तो धर्मोपदेशमां अंतराय पडे, तेथी परोपकारनी हानि थाय, एम कहेवु न जोइये. केमके, ते तृतीयप्रहरनेविषे मुहूर्त्त मात्र नियतसमयेज आहार करेछे. तेथी बाकीनो सर्व काल उपदेशने अर्थे रहे छे. जो कहेशो के, केवली आहार करेतो शूलादिक व्याधि उत्पन्न थवानो संभव थाय, तो ए कल्पना पण व्यर्थ छे. केमके. ते सारी रीते जाणीने अभिष्वंगपरिणामरहित हित मिताहारज करे छे माटे तेनेविषे शूलादिकनो संभव थाय नही. अने एथी तेनेविषे रागनी कल्पना पण थाय नही. ॥ ११८ ॥

ण पुरीसाइ डुगंछिय मेसिं णिहह्रु मोहबीआणं ॥
अइसय उय परेसिं विवित्तदेसेविहाणाय ॥ ११९॥

व्या०:– जो कहेशो के, केवली आहार करे तो तेथी वडिनीत प्रमुख करवुं जोइये, तेतो डुगंछानुं कारण छे; एम पण कहेवुं नही. केमके, डुगंछानुं मूल मोहनीय कर्म छे. तेनुं तो प्रथमज उन्मूलन करेलुं छे. अने तीर्थंकरनो एवो अतिशय छे के, तेनां आहार तथा निहारनी विधिने कोई देखी शके नही. ए कारण माटे बीजाने पण डुगंछा उत्पन्न थाय नही. वली सामान्य केवली एकांते निहार करेछे तेथी पण बीजा कोईने डुगंछा उत्पन्न थाय नही. पूर्वपक्षी कहेछे के, तीर्थंकरने पूर्वे पण निहार होय नही तो पछी ते केम संभवे? यतः "तिछय

रा तप्पियरो, हलधर चक्कीय वासुदेवाय; मणुआण जोगनूमी. आहारो णत्थि णी हारो." ए तो कोई अपूर्व मतछे. केमके, शास्त्रोनेविषे एवो कोई अतिशय कह्यो नथी; तेम एवी जठराग्नि पण नथी के जेथी निहारनो अनाव थाय. तेम छतां जो ए वातसाची मानिये तो नस्मकव्याधिनी पठे ते दोषरूप थशे. खल रसीकृत आहार मात्र जो नस्म थाय तो पूर्वे केम न थाय? माटे ते केवल आप रुचिमात्र छे ॥ ११९ ॥

जो पुण नुत्तिअनावो केवलिणो अइसउत्ति जंपेई ॥
सो वायामित्तेणं साहेऊ सुह खउ पुप्फं ॥ १२० ॥

व्या०:– जो कहेशो के, केवलीने जे नुक्तिनो अनाव छे. ते अतिशय जाणवो. तो एम कह्याथी तमे पोते पोताना वचने अछतीवस्तुने छती करो छो त्यारे आकाशना पुष्प पण छे एम कहेशो तो कोण ना कहेनारो छे! पण ए वचनो सप्रमाण न कहेवाय. ॥ १२० ॥

एवं कवलाहारो जुत्तीइ समत्थिउ जिणवराणं ॥
पुवायरिएहिं जहा तहेव लेसेण उवइठो ॥ १२१ ॥

व्या०:-- एम जे प्रकारे पूर्वाचार्य केवलीने विषे कवलाहारनी समर्थना करी छे ते प्रकारेज आ ठेकाणे अमे लेशमात्र कह्युंछे. ॥ १२१ ॥

तेणं केवलनाणी कयकिच्चो चेव कवलनोईणं ॥
नाणाईण गुणाणं पडिघायानावउ सिद्धो ॥ १२२ ॥

व्या०:– माटे केवली कवलाहार करता छतां पण कृतकृत्यज छे. केमके, ज्ञान दर्शन चारित्र तथा वीर्यगुणनो स्वनावपरावृत्ति एटले पाछल हटवारूप प्रतिघात नथी. ज्ञानादिक गुण संपूर्ण सिद्धज होयछे. माटे ते सर्वथा कृतकृत्य तो सिद्धज छे. एम कहेवुं जोइये. तथापि ज्ञानादिगुणचतुष्टयनी विशुद्धताने लीधे केवलीने देश कृतकृत्य कहेतां पण कांई विरोध आवे नही. ॥ १२२ ॥

नाणस्स विसुद्धीए अप्पा एगंतउ ण संसुद्धो ॥
जम्हा नाणं अप्पा अप्पा नाणं तअसं वा ॥ १२३ ॥

व्या०:-- जो कहेशो के, आत्मा ज्ञानरूप छे. तेथी ज्ञाननी एकांत शुद्धताने लीधे आत्मा पण एकांत शुद्ध थाय छे. एम न कहेवुं. केमके, ज्ञान ते आत्म

रूपज होयछे. केमके, आत्माविना ज्ञाननुं रहेवुं नथी. अने आत्मा जे छे ते ज्ञानस्वरूप पण होयछे. ने तदन्यस्वरूप पण होयछे; ए हेतुथी केवली ज्ञानादिगुणने स्वनावेकरी शुद्ध पण छे. अने अव्याबाधादिगुणना स्वनावे अशुद्ध पण छे. एम जाणवुं. ॥ १२३ ॥

एवं परमप्पत्तं नाणाइचउक्कारगं मुणेअव्वं ॥
सव्वह परमप्पत्तं सिद्धाणं चेव संसिद्धं॥ १२४॥

व्या०:--एवी रीते केवलीने परमात्मापणुं ज्ञानादिकगुणेकरी देशथीज जाणवुं; सर्वथा परमात्मा ते सिद्धज कहेवाय. माटे आठ दोषना विरहथी आठ गुण तेनेज प्रगट थायछे. आत्मा त्रण प्रकारनो होयछे. एक बाह्यात्मा, बीजो अंतरात्मा, अने त्रीजो परमात्मा. आत्मबुद्धियकी जे कायादिकनुं ग्रहण थायछे, ते बाह्यात्मा कहिये. शरीरादिकनो अधिष्ठायक जे चेतन ते अंतरात्मा कहिये; अने जे सर्व उपाधिरहित शुद्ध आनंदमय होय ते परमात्मा कहिये. यतः "आत्मधिया समुपात्तकायादिः कीर्त्यते अत्र बहिरात्मा कायादेशमधिष्ठायको नवत्यंतरात्मा तु चिद्रूपानंदमयो निःशेषोपाधिवर्जितः शुद्धः अप्रत्यक्षोनंतगुणः परमात्माकीर्त्तितस्तद्ज्ञैरिति योगशास्त्रे. " केटलाएक एम कहेछे के, जे मिथ्यात्वादि परिणामवान होय ते बाह्यात्मा कहिये; जे सम्यक्तादि परिणामवान होय ते अंतरात्मा कहिये; अने जे केवल ज्ञाननिधान होय ते परमात्मा कहिये. मिथ्यात्वादि त्रण गुणठाणा सुधी बाह्यात्मा कहेवायछे; अविरतिसम्यग्दृष्टिनामना चोथा गुणठाणाथी लईने क्षीणमोहनामना बारमा गुणठाणासुधी अंतरात्मा कहेवायछे; माटे मिथ्यादृष्टिने पण निश्चयथी सम्यग्दर्शन तथा केवल ज्ञान छे. ते शक्तिएकरी अंतरात्मता तथा परमात्मताने पामेछे. केमके, अविरति सम्यग्दृष्ट्यादिकने पण निश्चयथी केवल ज्ञान छे. अने बाह्यात्मा ते नूतपूर्वनये करी कहेवायछे. केमके. तेने मिथ्यादर्शन पर्याय पूर्वे थयाछे. जेम मधुथी नरेला घटमांथी मधु कहाडी लीधा पछी पण मधुघट कहेवायछे. ते न्याय अहिं पण जाणवो. व्यक्तं परमात्माते बाह्यात्मा तथा अंतरात्मा पूर्वनूतनयथी कहेवायछे. केमके, तेने मिथ्यादर्शन तथा सम्यक्दृष्ट्यादि ए बन्ने पर्याय पूर्वे थयाछे.॥ १२४

तस्स य सहावसिद्धा, किरिआ गुण करण जोग अहिगिच्च ॥
कम्मगुणी आविहवे, जुंजणकरणं तु अहिगिच्च ॥ १२५ ॥

व्या०:– ते केवलीने गुणकरण आश्री स्वभावसिद्ध क्रिया होयछे. तेने केवली ज्ञानादि गुणपर्याय उपजतां आत्माथी अन्यकर्मादिकारणनी अपेक्षा नथी कालस्वभावादिके तेना कारणपणे सर्व आत्मांतरभूत छे. मनोवाक्कायरूप युंजना कारण आश्रीने केवलीने कर्मोपनीतक्रिया पण थायछे. माटे ते अंशेकरी केवल स्वभावसिद्ध क्रियाज नथी. ॥ १२५ ॥

अह सो सेलेसीए, झाणानलदड्ढसयलकम्ममलो ॥
कणगंव सव्वह च्चिय, लद्धसहावो हवइ सिद्धो ॥ १२६ ॥

व्या०:– हवे केवली जे छे ते, शैलेसीअवस्थानेविषे शुक्लध्यानरूप अग्निएकरी सर्वकर्मरूपमलने दग्ध करीने अग्निएकरी निर्मल किधेलां सुवर्णनी परे सर्वथा लब्धस्वभाव थईने सिद्धत्वपर्यायनो भजनार थायछे. ॥ १२६ ॥

तस्स वर नाण दंसण, वर सुह सम्मत्त चरण निव्वठिई ॥
अवगाहणा अणंता, मुत्ताणं थई अविरियं च ॥ १२७ ॥

व्या०:– ज्ञानावरणीयादिक आठकर्मथी जीवने अज्ञानादिक दोष होयछे ते नाश पाम्यापछी सिद्धने आ आठ गुण प्राप्त थायछेः– पहेलो ज्ञानावरणीयकर्मना क्षयथी अनंत केवलज्ञान उत्पन्न थायछे; बीजो दर्शनावरणीयकर्मना क्षयथी अनंत केवलदर्शन उत्पन्न थायछे; त्रीजो वेदनीयकर्मना क्षयथी क्षायिक सम्यक्त उत्पन्न थायछे; चोथो चारित्रमोहनीयकर्मना क्षयथी क्षायिक चारित्र उत्पन्न थायछे; पांचमो आयुःकर्मना क्षयथी अक्षय स्थिति उत्पन्न थायछे; छठो नामकर्म तथा गोत्रकर्म ए बन्नेनो क्षय थयाथी एक सिद्धावगाहक स्थानने विषे क्षीरशर्करानी परे अनंत सिद्धावगाहना उत्पन्न थायछे; अहीं मोहनीयकर्मना क्षयथी बे गुण उत्पन्न थायछे एम कह्युं, तथा नाम अने गोत्र ए बे कर्मना क्षयथी एकज गुण उत्पन्न थायछे एम कह्युंछे; ए ठेकाणे स्वपरिभाषाज शरण छे. ॥ १२७ ॥

थिरयावग्गहणाउ, पत्तेअं नामगोत्तकम्मखए ॥
चरणंविअ मोहखए, इअ अठ गुणत्ति विंति परे ॥ १२८ ॥

व्या०:– केटलाएक मोहनीयकर्मना क्षयथी एकज चारित्रगुणमानेछे, तथा नामकर्मना क्षयथी आत्मप्रदेशस्थिरतारूप गुण कहेछे; तेमज गोत्रकर्मना

क्ष्यथी अवगाहना गुण मानेछे. ॥ १२८ ॥ अ० जे आचार्य सिद्धने चारित्र गुण नथी मानता, ते सूत्रनुं अवलंबन करीने पूर्व पक्ष करेछेः–

नणु सिद्धांते सिद्धो, णो चारित्ती अ णो अचारित्ती ॥
नणिउ ववहारणया, णिछ्ठउ होई चारित्ती ॥ १२९ ॥

व्या०:– "सिद्धे णो चारित्ती णो अचारित्ती" ए सूत्रनेविषे सिद्धने चारित्री नो अचारित्री कह्योछे, एवुं वचन तो चारित्र न होय तो संजवे, जेम नव्यत्व न ही होवाथी नव्यत्वने ठेकाणे अनव्यत्व कहेवायछे, तेम छतां सिद्धना गुणोमां चारित्रनी गणना केम कीधीछे ? ॥१२९॥ अ० कोईएक ए सूत्रनुं समाधान करेछेः–

नणु इह देसणिसेहे, णो सद्दो तेण तस्स देसस्स ॥
अबु णिसेहो किरिया, रूवस्स ण सत्तिरूवस्स ॥ १३० ॥

व्या०:– "णो चारित्री णो अचारित्री" ए वाक्यमांना "नो" शब्दथी देश नो निषेध थायछे. एटले चारित्र बे प्रकारनुं होय छे, एक क्रियारूप ने बीजो परिणामरूप छे. तेओमानां क्रियारूपचारित्रनो सिद्धनेविषे निषेध छे ; परंतु शक्तिरूप चारित्रनो निषेध नथी ; एम जाणवुं. ॥ १३० ॥ अ० केवलीनेविषे क्रियारूप चारित्र छे, परंतु शक्तिरूप चारित्र नथी एम कहेवुं नही ते कहेछेः–

जइ किरियारूवं चिअ, चारित्तं णेव णायपरिणामो ॥
तो किरियारूवं चिअ, सम्मत्तं णायपरिणामो ॥ १३१ ॥

व्या०:– जे प्रेक्षोत्प्रेक्षादिक्रियाछे, ते चारित्र कहिये ; अने तडुपयोगरूप चारित्र ते नावचारित्र कहिये, नावचारित्र ज्ञानरूपज छे. त्यारे निशंकताद्याचाररूप जे क्रिया ; तेज सम्यक्त कहिये, अने श्रद्धानपरिणाम ते ज्ञान कहिये, एम निर्णय करतां ज्ञान तथा दर्शननो नेद थाय नही, ज्यारे आत्मगुणरूप सम्यक्त छे त्यारे चारित्र पण आत्मगुणरूप केम न कहिये ! अतएव मरुदेवादिकने बाह्याचारविना पण चारित्र संजवेछे. ॥१३१॥ अ० "इह नविए नंते, चरित्ते परनविए चरित्ते, तडुनयनविए चरित्ते गोयमा, इह नविए चरित्ते; णो परनविए चरित्ते णो तडुनयनविए चरित्ते" एवां नगवती सूत्रनां वचनोए करी चारित्र नवाननुगामी कह्युंछे. माटे मोक्षनेविषे चारित्र संजवे नही, एम जे कहेछे, तेनुं समाधान आवीरीते छेः–

जं पुण तं इह नविअं, तं किरियारूपमेव णेयव्वं ॥
अहवा नवो ण मुक्खो, णो तम्मि नवे इअं अहवा ॥ १३२ ॥

व्याः— जे चारित्र इह नविक कह्युंछे, ते क्रियारूप जाणवुं ; अने बीजुं जे मोहनीयकर्मना क्षयथी उत्पन्न थायछे ते चारित्र मोक्षनेविषे होयछे, तेनी अमे पण ना कहेता नथी, अथवा मोक्षना नवमां विवक्षा करी नथी माटे इह नविक चारित्र कह्युंछे, अथवा मोक्षनेविषे चारित्र तो छे, परंतु कर्मनिर्जरारूप प्रयोजन तिहां नथी, तेथीज इह नविक कह्युंछे ॥ १३२ ॥

णय मोरकसुहे लद्धे, तयणुठाणस्स हंदि वेफल्लं ॥
तक्कारणस्स इहरा, नाणस्स वि होइ वेफल्लं ॥ १३३ ॥

व्या० चारित्रनुं फल मोक्ष छे, ते पाम्या पछी चारित्र रहेतुं नथी. एम कहेवुं नही. अन्यथा ज्ञाननुं फल विरति छे, ते पाम्या पछी चारित्र रहेतुं नथी; एम कहेवुं नही; अन्यथा ज्ञाननुं फल विरति छे, ते पाम्या पछी ज्ञानपण संनवे नही. ज्यारे सिद्धने ज्ञाननुं फल निश्चयथी लोकालोकप्रकाशरूप छे; त्यारे चारित्रनुं फल पण निश्चयथी शुद्धात्मस्वनावानुनवलक्षण शासारू न होय. ॥ १३३ ॥

णेव पइसानंगो, अहियावहि पूरणंमि चरणस्स ॥
सावा किरियारूवे, सुअकरणे जं करेमित्ति ॥ १३४ ॥

व्या० सिद्धने जो चारित्र मानिये तो यावज्जीवतानी प्रतिज्ञानो नंग थशे. एम पण न कहेवुं. केमके, ओछा काले प्रतिज्ञानो नंग थाय छे; पण अधिक काले प्रतिज्ञानो नंग न थाय. अथवा ते प्रतिज्ञा क्रियारूपचारित्रनीयज जाणवी. केमके, " करेमि नंते " एसूत्र श्रुतकरणार्थ कह्युंछे. ते श्रुतकरण युंजनाकरणरूप चारित्रज अवलंबीने प्रवर्त्ते छे. गुणरूप चारित्र ते आत्मस्वरूप छे. मोहविरहथी तेनो आविर्नाव मात्र थायछे. ॥ १३४ ॥

अह चरण मनुठाणं, तं ण सरीरं विणत्ति जइ बुद्धी ॥
तेण विणा नाणाई, ता तस्स हेकअं पत्तं ॥ १३५ ॥

व्या० जो चारित्र अनुष्ठानरूपछे, ते शरीरविना सिद्धनेविषे संनवे नही. एम जो कहिये तो शरीरविना ज्ञानादिक पण सिद्धनेविषे केम संनवे ! पूर्वावस्थामां शरीरथी उत्पन्न थएला ज्ञानादिकना नाशना कारणविना सिद्धने ध्रुव कहियेंछे. ॥ १३५ ॥

किरिया फलजदयिगी, खइअं चरणं वि दोह मह जेउ॥
सातेण बज्झचरणं, बज्झंतरियं तु परिणामा ॥ १३६ ॥

व्या० बीजुं क्रिया छे ते शरीरनामकर्मना उदयथी छे; शरीरविना क्रिया थाय नही. शरीरवमे चारित्ररूप क्रिया थायछे ते बाह्यचारित्र कहेवायछे. एवा बाह्यचारित्ररूप शुद्ध जैनसमाचारीरूप क्रियानुं सेवन करीने अजव्य जीव पण नवमां ग्रैवयकसुधी जायछे, एवो बाह्य चारित्रनो महिमाछे. अने केवलीने तो क्षायिक चारित्र कह्युंछे. माटे ते बाह्यचारित्र कहेवाय नही; किंतु ते शुद्ध आत्मपरिणामरूप होवाथी ए अंतरंग चारित्रज कहेवाय ॥ १३६ ॥

आया खलु सामाइय, आया सामाइअस्स अठोत्ति ॥
तेणेव इमं सुत्तं, जासइ तं आयपरिणामं ॥ १३७ ॥

व्या० "आया सामाईए आया सामाइअस्स अठे" ए सूत्र पण चारित्रने आत्मपरिणामरूपज कहेछे. परंतु बाह्यक्रियारूप नथी कहेता ॥ १३७ ॥

णय खइअं विचरित्तं, जोगिणिरोहेण तं विलयमेई ॥
अणह विहलं पत्तो, विरहो चारित्तमोहस्स ॥ १३८ ॥

व्या० केवलीने जे क्षायिक चारित्र उत्पन्न थायछे, ते ज्यारे योगनो निरोध करीने मोक्षनेविषे गमन करेछे, तेना प्रथमसमयमां नाश थायछे. एम कहेवुं नही. केमके, क्षायिकजावनो नाश थतोज नथी. जो एम न मानिये अने क्षायिकजावनो नाश मानिये तो चारित्रमोहनीयकर्मनो नाश कहेवाशे नही. तेम छतां बलेकरी नाश अंगीकार करशुं तो पण ते निरर्थक थशे. केमके, चारित्रमोहनीयकर्मना नाशथी क्षायिक जावतो उत्पन्न थयोनही त्यारे ए नाशपणुं शुं कामनुं? जेम ज्ञानावरणीयकर्मना नाशनुं फल केवल ज्ञान छे; तेम चारित्रमोहनीयकर्मना नाशनुं फल यथाख्यात चारित्र छे. ते जो सिद्धनेविषे न होय, तो मोहनीयनो नाश निष्फल कहेवाशे ॥ १३८ ॥

तेणं सुद्धुवजेगे, चरणं नाणाउ दंसणं वन्नं ॥
कारणकज्जविजागा, संतंतमिय किं न सिद्धेसु ॥ १३९ ॥

व्या० ते कारण माटे शुद्धोपयोगरूप चारित्र यद्यपि उपयोगरूपताज्ञानथी अन्यथा छे. तथापि तेओमां कारणकार्यजावजेद छे. ज्ञान चारित्रनुं कारण

छे, तेम चारित्र ज्ञाननुं कारण छे; जेम सम्यक्त तथा ज्ञानना विषयोमां भेद नथी, अर्थात् बन्नेनो एकज विषय छे, तथापि तत्वरोचकरूप ते ज्ञान कहेवायछे, तथा तत्वरुचिरूप ते सम्यक्त कहेवायछे. एवो बन्नेनो भेद छे. तेम ज्ञान अने चारित्रनो पण भेद जाणवो. तेमज ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनो भेद पण संभवे छे. एवी रीते ज्ञानथी अन्य चारित्र उपयोगरूपने ज्ञानथी अनन्य अनेकांतस्वरूप सिद्धनेविषे केम न थाय. ॥ १३९ ॥ अ० ए प्रमाणे सिद्धनेविषे चारित्रनी समर्थना करी, ते उपर सिद्धांतपक्षने अवलंबीने पूर्वपक्षी समाधान करेछे.

एअ समाहाणविही, जो मूलगुणेसु हुज्ज थिरभावे ॥
सो परिणामा किरिआ, जुंजणकरणं पडिच्छंतो ॥ १४० ॥

व्या० मूलगुणनेविषे जे स्थिर भावरूप छे, तेज चारित्र क्रियारूप कहेवुं. केमके, ते मनोवाक्काययोगरूप युंजनाकरणनी अपेक्षा करेछे. कोई पूछे के, एम कह्याथी वीर्यरूप चारित्र थाय. ते संभवे नही. जेम ज्ञानाचारादिकथी ज्ञानादिक अन्य छे, तेम चारित्राचारथी चारित्र पण अन्यज संभवे. तेने एम कहेवुं के, जो एम कहिये तो वीर्याचारथी वीर्य पण कां अन्य न कहिये! जो कहेशो के, योगरूप चारित्र होय तो ते उपशमिक भावे केम थाय! केमके' योग ते नामकर्मना उदयिकभावे वर्त्तेछे. उपशमिक भाव तो मोहविना अन्य कर्मनो थायज नही. एम पण न कहेवुं, केमके, योगपरिणामविशेष पण चारित्रमोहनीयकर्मना उपशमादिकनी नियमेंकरी अपेक्षा करेछे ते उपशमादिक भावेज कहिये, केमके, प्रधाननी अपेक्षाए व्यवहार होयछे. अतएव इंद्रियपर्याप्ति उदय जघन्य पण इंद्रियप्रधाननी अपेक्षाए शास्त्रमां क्षायोपशामिक कहेवायछे.॥१४०

अम्ह वक्कजडाणं, चंडाणं चंडरुद्दपभईणं ॥
वेणसिया चारित्तं, सुहुवउगोत्ति काऊणं ॥ १४१ ॥

व्या० जो योगस्थैर्यरूप चारित्र न कहिये, अने शुद्धोपयोगरूप चारित्र कहिये, तो वक्र जडने चारित्र केम संभवे? केमके, तेने तथाविध माया ते अशुभोपयोगरूप छे. अने ते तो शुद्धोपयोगनो भेद छे, तथा क्रोधमोहनीयकर्मना परवशे जे चंडरुद्राचार्यादिक सहजे कोपनशील छे, तेने पण चारित्र केम संभवे? केमके, तेने पण अशुभोपयोग छे. मूलगुणनेविषे योगस्थैर्य ते तेने पण संभवे. जेम वज्र अग्निएकरी भस्म थाय, तो पण वज्रपणुं मूके नही. जे

म यथाविध कषायथी अस्थिरता पण कषायपरिणति प्रमादरूप तेने थयो, तो पण योगस्थैर्यनो घात थाय नही. जो योगक्रियारूप चारित्र कहिये तो ते मरुदेवादिकने केम संनवे? एवो संदेह पण न करवो. केमके, मरुदेवादिकने पण संसारनिवृत्तिरूप मनोयोगपरिणतियुक्त छे. उक्तंच. "नगवद्दर्शनानंद, योगस्थैर्यमुपेयुषी;केवलज्ञानमम्लान, माससाद तथैव सा." इति योगशास्त्र वृत्तौ ॥१४१॥

चरणं जइ उवउंगो, जिणाण ता हुंति तिन्नि उवउंगो ॥
दोसु अ अंतप्पावे, तं तिअस्स पकप्पणा मोहा ॥१४२॥

व्या० जो शुद्धोपयोगरूप चारित्र कहिये, तो केवलीने आ त्रण उपयोग होवा जोइये. ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग, तथा चारित्रोपयोग. इम सामान्यथी पण तेर उपयोग थवा जोइये. अने शास्त्रोनेविषे तो बार उपयोग कह्याछे. ज्ञान तथा दर्शनमांज चारित्र नेलिये तो त्रीजुं कयुं चारित्र कहीछुं. जे कहिये ते प्रयासमात्र थाय. जो साकारोपयोग चारित्र नेलिए तो साकारोपयोगना आठ नेद पण संनवे. उपयोगरूप चारित्र मान्याथी इत्यादिक अनेक दूषण थाय.॥१४२॥

उ० जो वीर्यरूप चारित्र कहिये तो पण शैलेशी अवस्थानेविषे ते केम संनवे! केमके, ते समयनेविषे प्रवृत्तिरूप वीर्य नथी. एम जे कहेछे, तेनुं समाधान करेछे.

सेलेसीए जत्तो, णिवित्तिरूवो सचेव थिरनावो ॥
णय सो सिद्धाणं पिय, जं तेसिं वीरिअं णत्थि ॥ १४३ ॥

व्या० शैलेशीअवस्थानेविषे यद्यपि रूप यत्न नथी, तथापि योगनिरोधथी निवृत्तिरूप यत्न छेज, तेज परम स्थिरनावरूप चारित्र छे. ते स्थिरनाव सिद्धने नथी, केमके तेनो वीर्य नथी, माटे चारित्रने दानादिक पांच लब्धिए क्षायिक नाव सादिसांत कह्याछे, तथा सूत्रमां पण सिद्ध अवीर्य कह्याछे. ॥ १४३ ॥

उ० जो चारित्र क्रियारूप कहिये, तो अक्रिया मोक्षकारण कही केम संनवे? यतः "साणं नंते अकिरिआ किं फला; गोयमा, सिद्धगमणपज्जवसाणफला पन्नत्ता" एहवुं जे कहेछे, तेनुं समाधान करेछेः—

अंते अ अंतकिरिआ, सेलेसी अकिरियत्ति एगठा ॥
नाणकिरिआहि मोक्खो, एत्तो चिअ जुज्जए एवं ॥१४४॥

व्या० अंतक्रिया, शैलेशी तथा अक्रिया ए सर्व शब्द एकार्थक कह्या छे. अंतक्रिया एटले सकलकर्मध्वंसरूप छेलुं प्रयोजन; जेथी कोई अन्य क्रिया बाकी रहे

नही ते; शैलेश एटले मेरुपर्वत, तेनी पठे जे निश्चल अवस्था ते शैलेशी कहेवाय; अने जे अवस्थानेविषे प्रवृत्तिरूपक्रिया न होय ते अक्रिया कहेवायछे. अतएव "ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ए वचन युक्त छे. केमके, सर्व संवररूपक्रिया अक्रिया रूपज छे. ॥ १४४ ॥ उ० कोइ आशंका करेछे.

णणु जोग निरोहेणं, चारित्तं सासयं परं होऊ ॥
असइ तेण ण मोक्खो, उप्पव काले असंतेणं ॥ १४५ ॥

व्या० परमार्थताथी चारित्रनो प्रतिपक्षी यद्यपि चारित्रमोहनीयकर्म छे, तथापि जेम चोरनी साथे रहेनारो अचोर पण कलंकित थायछे, तेम मोहना सहचारथी योग पण चारित्रना विरोधी छे. माटे योगना निरोधेकरी परम यथाख्यातचारित्र शैलेशीने चरमसमये ऊपजे ते शाश्वतचारित्र सिद्धने पण होयछे. जो ते चारित्र ते समयनेविषे उत्पन्न थईने आगल मोक्ष थवाना समये नाश पामतुं होय तो ते उत्पन्न थवानुं प्रयोजन शुं? तथा जो कार्यना समये कारण न होय तो कार्यनी उत्पत्तिपण केम थाय? ॥ १४५ ॥

केई बिंति मुणीणं, सहावसमवट्ठिई हवे चरणं ॥
तं लद्धसहावाणं, सिद्धाणं सासयं जुत्तं ॥ १४६ ॥

व्या० केटलाएक कहेछे के, पूर्वोक्त दोषने लीधे शुद्धोपयोगरूप चारित्र थाय नही. स्वभावसमवस्थानरूप चारित्र होयछे. ते आत्मस्वभाव अविरत्यादि दशाए आच्छादन करी लीधु छे. ज्यारे चारित्रमोहनीयकर्मनो विलय थायछे, त्यारे ते आत्मस्वभाव प्रगटेछे. ते लब्धस्वभाव सिद्धने शाश्वतरूप चारित्र युक्त छे. ॥ १४६ ॥

उ० ए कहेला परमतनुं समाधान करेछेः—

चरणरिउणो ण जोगा, अह्वसमाएण सव्वसंवरणं ॥
सिद्धं तम्मि सहावे, समवट्ठाणंति सिद्धंतो ॥ १४७ ॥

व्या० जो एम कहिये के, योगचारित्रना विरोधी छे, तेथी योगनो निरोध कर्या थकी परम चारित्र ऊपजे छे. ए कहेवुं योग्य नथी. केमके जो सहचारथी योग चारित्रना विरोधी थाय; तो दर्शनना पण विरोधी थवा जोये तेम तो न कहेवाय. ज्यारे शैलेशीअवस्थानेविषे सर्व संवर कहेवाय छे, त्यारे तेज समयनेविषे सकल कर्मनिर्जरा कारण चारित्र छे, एवा अभिप्राये स्वभावसमवस्थानरूप चारित्र पणसिद्धने कहेवुं जोये. के जो योगपरिणामथीभिन्नस्वभाववान चारित्र सिद्धहोय. ॥ १४७ ॥

उज्जुसुएण मएणं, सेलेसीचरमसमय जाविति ॥
अंतसमउ च्चिय जहो, हेऊ हेऊस्स कज्जम्मि ॥ १४८ ॥

व्या० एम जे कह्युंछे के, शैलेसीना छेला समयनेविषे चारित्र उपजेछे, ते ऋजुसूत्रनयनामते क्षणपर्याय भंगुरछे. तथा कारणनो अंत्यसमयज कार्यनो हेतु छे. ए अभिप्रायेकरी मोहना क्षयथीज सादिसांत क्षायिकभावरूप बीजुं चारित्र उपजे छे. ॥ १४८ ॥

णय चरणमोहबंधो, सिद्धाणं अ चरणाए संताएं ॥
अविरय पच्चइउ सो अप्पसंगो हवे इहरा ॥ १४९ ॥

व्या० सिद्धने चारित्र नही होय तो तेने चारित्रमोहनीयकर्मनो बंध थवो जोये; माटे एम न केहेवुं केमके विरति अने अविरति ए बे स्वतंत्र परिणाम छे.॥ १४९॥

जंच जिअलक्खणं ते उवइठं तत्त लक्खणं लिंगं ॥
तेण विणा सो जुज्जइ धूमेण विणा हुआ सुव ॥ १५० ॥

व्या० "नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा; वीरिअं उवउगो य, एयं जीअस्स लक्खणं" एवीरीते श्रीउत्तराध्ययनसूत्रनी गाथाएकरी जीवनुं लक्षण चारित्र कह्युंछे. माटे ते सिद्धने पण होवुं जोये. एम कहेवुं नही. केमके चारित्र जे छे ते उपयोगनी पठे यावत् द्रव्यभावि लक्षण नथी. आंही लक्षणशब्दनो अर्थ लिंग जाणवो. जेम धूम अग्निनो लिंग छे. तेम चारित्र जीवनो लिंग कह्युंछे. जेम धूमविना अग्नि तप्त लोहनेविषे होयछे. तेम चारित्रविना जीवपण होयछे, एमां कांई विरोध नथी, अतएव अंतरंग लक्षण कहीने बाह्य लक्षण कहेवाने अर्थे उपर कहेली गाथा उत्तराध्ययनबृहद्वृत्तिनेविषे अवतरण करेली छे. ॥ १५० ॥

णय णिछयस्स नाणे अभेयवित्ती कहं चरणविरहे ॥
संतं चिअ पभिवज्जइ फलेण जं सोय संतं वि ॥ १५१ ॥

व्या० जो सिद्धनेविषे चारित्र न होय तो ज्ञानमां चारित्रनी अभेद वृत्ति केम संभवे? केमके, सकलादेशे छतांज सर्व धर्म एक धर्मवाचक शब्दे बोले एवी आशंका पण न करवी, केमके, ते समयमां चारित्र नथी तो पण चारित्रनुं फल छे. माटे चारित्र छे एम मनायछे, ए नयना मते चारित्रना फलविना छतें चारित्र पण अछतुं माने. ॥ १५१ ॥

णवि आयाचरणं चिअ आया सामाइयंति वयणेणं ॥
दवियाया नयणाए चरणाया सव्वथोकुत्ति ॥ १५२ ॥

व्या० "आया समाईए, आया सामाईअस्स अठ्ठे" ए सूत्रनेविषे आत्मपर्यायरूप जे चारित्रछे, ते द्रव्यार्थिक नयना आदेशे आत्मरूप कह्युंछे, माटे ते चारित्र यावत् द्रव्यभावी आत्मस्वभावरूप न जाणवुं केमके, द्रव्यात्मा, ते भजनाए चारित्रात्मा कह्युंछे, तथाहि " जस्स दविआया तस्स चरितायाा भयणाएत्ति " एवी रीते भगवतीसूत्रमां कह्युंछे, तथा आत्माना जे आठ भेद कह्या छे, तेओमां चारित्रात्माने सर्वस्तोक कह्युंछे, माटे आत्मा तेज चारित्र एम न कहेवुं ॥ १५२ ॥

एत्तो च्चिय सिद्धाणं, खइअम्मि नाणदंसणगाहणं ॥
सम्मत्तजाइगहणं, बहूण दोसा ण संकंती ॥१५३॥

व्या० वली सिद्धनेविषे चारित्र नथी, ते माटेज सिद्धने क्षाइकभावमां ज्ञान तथा दर्शन ए बेज कह्यांछे. जो कोई कहेशे के, सम्यक्तसमान चारित्रछे. तेथी सम्यक्तना ग्रहणथी चारित्रनुं पण ग्रहण थायछे. एम कहेवु नही. केमके, शुद्धोपयोगरूप चारित्रनो पूर्वेज निषेध कर्योछे. अने योगस्थैर्यरूप तेहनीज व्यवस्थापना करीछे ॥ १५३ ॥

अम्हं णाभिणिवेसा, सिद्धाणं अ चरणस्स पक्खम्मि ॥
तह वि भणिमो रतीरइ, जं जिणमयमन्न हाकाउं ॥१५४॥

व्या० सिद्धने चारित्र नथी, ए पक्षमां यद्यपि अमने अभिनिवेश नथी, तथापि आटलुं व्यवस्थापन आटलासारू करिये छैये के, श्रीवीतरागनां वचन अन्यथा न थाय ॥ १५४ ॥ अ० एवी रीते सिद्धने चारित्र नथी, एवी समर्थना करी, त्यारे सिद्धना गुणोमां चारित्रनी गणना केम करीछे? एवा पूर्वपक्षनुं समाधान करेछेः—

जइवि जइमो सिद्धंतो, इठ्ठं केसिंवि तहवि सूरीणं ॥
सिद्धाणं चारित्तं, तेसिमए तं मए मिहिअं ॥ १५५ ॥

व्या० यद्यपि सिद्धने चारित्र नथी; एवो सिद्धांत छे, तथापि केटलाएक आचार्यो चारित्र मानेछे, यतः " अन्येतु दानादिलब्धिपंचकं चारित्रं च सिद्धस्यापीछंति, तदावरणस्य तत्राप्यभावात्, आवरणाभावेपि च तदऽसत्वे क्षीणमोहादिष्वपि तद सत्व प्रसंगात् ॥ततस्तन्मते नचारित्रभावनां सिद्धावस्थायामपि सद्भावेनापर्यवसितत्वादकस्मिन् द्वितीयभंग एव क्षायिको भावो न शेषेषु त्रिष्वपि" इति विशेषावश्यक

टीकायां " ए आचार्यना मतेकरी अमे सिद्धना गुणोमां चारित्रनी गणना करीछे. ए मत जे छे ते पूर्वमतथी विरुद्ध छे माटे अप्रमाणजछे. एम कहेवुं नही. केमके, अविछिन्नपरंपराए आवेलां जे ए बे मत, ते अनतिशय पुरुषथकी निवारण थाय नही. जो कहेशो के, एक एकनी युक्तिनी समर्थना करतां प्रत्येकमां दोष आवशे, एवो विचार पण न करवो. केमके, जिनवचनऊपर अरुचि थयाविना सम्यक्तनो अंश थतो नथी. ॥ १५५ ॥

तेसिं सवा किरिआ, सहावसिद्धा पणठ कम्माणं ॥
छह्नंपि कारगाणं, एगठ्ठजं समावेसो ॥ १५६ ॥

व्या० ते सिद्धने सर्व क्रिया स्वन्नावसिद्ध छे, एक पण विन्नाव क्रियानथी. केमके, कर्मरहित सिद्धने छ कारक एक अर्थे विश्रांति पामेछे. ते कहेछे:– कथंचित ज्ञानथी अन्यथा आत्माज्ञप्तिक्रिया स्वतंत्रपणे करेछे. माटे आत्मा जे छे तेज कर्त्ता छे, ए पहेलुं कर्त्तानामा कारक ज्ञप्तिक्रिया स्वतंत्र आत्मानेविषे प्राप्यमाण छे, माटे तेज आत्मरूप कर्म छे; ए बीजुं कर्मनामा कारक जेणे करीने ज्ञानस्वन्नावथी तथा ज्ञप्तिस्वन्नावे आत्मा क्रिया करे छे, तेज आत्मरूप करण होवाथी आत्माज कर्त्ता छे एम जाणवुं. ए त्रीजुं करणनामा कारक जे स्वानुफलवेद्यने अर्थे आत्मा ज्ञप्तिक्रिया करेछे, तेज आत्मरूप संप्रदान छे; ए चोथुं संप्रदाननामा कारक जे पूर्वज्ञेयाकारने विश्लेषे उत्तरज्ञेयाकारमिश्रित ज्ञानस्वन्नाव आत्मा न्नजेछे, तेज आत्मस्वन्नावरूप अपादान छे. ए पांचमुं अपादाननामा कारक तथा जे ज्ञानरूपगुणनुं न्नाजन जे आत्मानामे द्रव्य तेज आधार छे एम जाणवुं; ए छठुं आधारनामा कारक कह्युं ए ज्ञान आश्री छ कारक कह्या, एमज सर्व बीजा धर्मो आश्री जाणी लेवुं. ॥ ५५६ ॥

ते पुण पनरस न्नेआ, तिछातिछाय सिद्धन्नेएणं ॥
तछ इत्थीणं सिद्धिं, ण खमइ खवणो अन्निणिवेसी ॥ १५७ ॥

व्या० ते सिद्धना पंदर न्नेद कह्याछे, यतः तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, तीर्थंकर सिद्ध, अतीर्थंकरसिद्ध, स्वयंबुद्धिसिद्ध, प्रत्येकबुद्धिसिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, गृहलिंगसिद्ध, एकसिद्ध, तथा अनेकसिद्ध. हवे एनो अर्थ करेछे तीर्थ एटले जे चतुर्विध संघ, अथवा प्रथम गणधर उत्पन्न थया पछी जे सिद्ध थया ते तीर्थसिद्ध; तीर्थनी उत्प

त्ति थया पहेला अथवा तीर्थनो विछेद थया पछी जे सिद्ध थया ते अतीर्थसिद्ध, तीर्थंकरपदवी जोगवीने जे सिद्ध थया ते तीर्थंकरसिद्ध; सामान्य केवली छतां जे सिद्ध थया ते अतीर्थंकरसिद्ध, बाह्य कारण दीठाविना जे पोतेज जातिस्मरणादिकथी प्रतिबोध पामीने सिद्ध थया ते स्वयंबुद्धिसिद्ध; प्रत्येक बाह्य कारण वृषजादि देखी प्रतिबोध पामीने जे सिद्ध थयाछे ते प्रत्येकबुद्धिसिद्ध, बुद्धजे गुर्वादिकथकी बोध पामीने सिद्ध थया ते बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंगना त्रण प्रकार छे. वेद, शरीरनिवृत्ति, तथा पथ्य, ए त्रणमां अत्रे शरीरनिवृत्तिनो अधिकार लेवो. वेद तथा पथ्यनो अधिकार नथी. केमके, ए बे प्रकार मोक्षना अंग नथी माटे शरीरेकरी वर्त्तमान छतां जे सिद्ध थया ते स्त्रीलिंगसिद्ध; पुरुष शरीरे करी वर्त्तमान छतां जे सिद्ध थया ते पुरुषलिंगसिद्ध; नपुंसकलिंगे करी वर्त्तमान छतां जे सिद्ध थया ते नपुंसकलिंगसिद्ध; रजोहरणादिकस्वलिंगनेविषे व्यवस्थित छतां जे सिद्ध थया ते स्वलिंगसिद्ध; परिव्राजकादिक चार अन्यलिंगनेविषे जे सिद्ध थया ते परलिंगसिद्ध; गृहस्थलिंगनेविषे वर्त्तमान छतां जे सिद्ध थया ते गृहस्थलिंगसिद्ध; जे एकला सिद्ध थया ते एकसिद्ध; अने जे अनेकनी साथे सिद्ध थाय ते अनेकसिद्ध कहेवायछे. ए पंदर जेदमांना स्त्रीलिंगसिद्धने अभिनिवेशने वश थया थका दिगंबरीओ मानता नथी. ॥ १५७ ॥

तस्समयथीसिद्धा, जे पुविं चेव खीणथीवेआ ॥
एवं पुरिस णपुंसा, थी पज्जाएण णो सिद्धी ॥१५८॥
चरणविरहेण हीण, त्तणेण पाव पयडीण बाहुल्ला ॥
मणपगरिसविरहाउ, संघयणाभावउ चेव ॥ १५९ ॥

व्या० ते दिगंबरीओनुं आवुं मत छे के, स्त्रीलिंगसिद्ध तो कहिये के जो पूर्वे स्त्रीवेदनो क्षय करी अने पछी बन्ने वेदनो क्षय करी सिद्ध थतां होय; तेमज नपुंसकसिद्ध पण तो मानिये के जो प्रथम नपुंसकवेदनो तथा पछी बन्ने वेदनो क्षय करी सिद्ध थता होय; शरीरे करितो पुरुषज सिद्ध थायछे; परंतु स्त्रीना पर्याये करी सिद्धताने पमातुं नथी. केमके स्त्रीने चारित्र होतुं नथी. चारित्र जे छे ते शुद्धोपयोगरूप आचेलक्यमूलगुणमयछे; अने स्त्रीतो अचेलक थायज नही. तथा पुरुष थकी स्त्रीहीन होवाथी पण तेने सिद्धतानो संजव नथी. नपुंसकत्व तथा स्त्रीत्व महापापे करीने अर्जायछे, एम पापप्रकृतिनी बाहुल्यताने लीधे पण स्त्रीने

मुक्ति थाय नही. तथा जेम स्त्रीने सातमी नरक पृथवीए जवायोग्य तीव्र अशुज मनपरिणाम थता नथी; तेम मुक्ति पामवायोग्य तीव्र शुजमनपरिणाम पण स्त्रीने थता नथी. माटे स्त्री सिद्ध थायज नही. अने सातमी नरकपृथ्विए स्त्रीथी जवातुं नथी, माटे तेने वज्रऋषजनाराच संघयण नही होवाथी पण स्त्रीने मुक्तिनो संजव नथी. ॥ १५७ ॥ १५ए ॥

एवी दिगंबरीओनी युक्तिने ग्रंथकर्त्ता दूषण दियेछेः—

तमिछा वेयखउ, सरीरणिवत्ति णियमणियउत्ति ॥
चरणविरहाइआ पुण, सवे तुह होइओ सिद्धा ॥ १६० ॥

व्या० दिगंबरीओ स्त्रीसिद्धादिकना प्रसिद्ध अर्थने मूकीने जे अन्य अर्थ करेछे ते संजवित नथी. केमके, जेने स्त्रीवेदादिकनो पूर्वेज क्षय छे, एवा नपुंसकादिक शरीरेकरी वर्त्ततां श्रेणी करे तेनेविषे छे, माटे " वीसणपुंसगवेया " इत्यादिक स्वशास्त्रवचन समर्थवाने अर्थे ए कल्पना केवळ कदाग्रहरूप जणायछे; जो एम कहिये के, उदीर्ण वेदनोज पूर्वे क्षय करवो तो तेनेविषे पण शास्त्रोक्त व्यवस्था संजवे नही. शास्त्रोमां तो एम कह्युंछे के, जो पुरुष श्रेणिनो आरंज करे तो तेणे पूर्वे नपुंसकवेदनो क्षय करवो, पछी स्त्रीवेदनो, पछी हास्यादिक छ प्रकृतिनो, अने पछी पुरुषवेदना त्रण खंम करी तेमांना बे खंमनो एकवार क्षय करवो, अने त्रीजो खंम संज्वलन क्रोध मान खपाववो. जो स्त्रीए क्षपकश्रेणिनो आरंज करवो होय तो तेणे पूर्वे नपुंसक वेदनो क्षय करवो, पछी पुरुष वेदनो, पछी हास्यादिक छ प्रकृतिनो अने छेवट स्त्रीवेदनो क्षय करवो जोये. अने जो नपुंसके क्षपक श्रेणीनो आरंज करवो होय तो तेणे पूर्वे स्त्रीवेदनो क्षय करवो, पछी पुरुषवेदनो, पछी हास्यादिक छ प्रकृतिनो, अने सरसेवटे नपुंसकवेदनो क्षय करवो जोये इत्यादिक रीति जाणी लेवी. ॥ १६० ॥

अ० स्त्रीलिंगे सिद्ध थवातुं नथी, तेमां चारित्रविरहादिक जे हेतु कह्याछे, ते असिद्धछे, एम कहेछेः—

णेगंति यमिछीणं, डुछत्तं संजमो चिया लज्जा ॥
तासिं चरित्तविरहे, चाउवणो कहं संघो ॥ १६१ ॥

व्या० स्त्रीने चारित्र न होय तेमां कारण शुं छे? स्त्रीनेविषे जे डुःशीलादिक दोष होयछे ते एकांत नथी; केमके, परमशीलवान जे सुशीलसादिक श्राविकाउ थई छे ते

उनी नगवंते पोते प्रशंसा करीछे. वली स्त्री जेम केटलाएक पुरुष डुष्टछे तेम पण महारंन महापरिग्रही देखायछे, माटे स्त्रीनुं डुष्टत्व कांई एकांते नथी. जो कहेशो के, स्त्रीने लज्जा मटती नथी, माटे चारित्र थाय नही; एम पण न कहेवुं; केमके, नग्नताज चारित्रांग नथी. विधिए करीने धर्मोपकरणोनुं धारण करतां चारित्रनो नंग थतो नथी. जो कहेशो के, स्त्रीनुं शरीर हिंसायतन छे, माटे तेने हिंसा नथी; एक हेवुं पण असत्यपणानुं छे. केमके, अशक्यपरिहारस्थलनेविषे हिंसा थाय नही. प्रमादना योगे हिंसा थाय छे, प्रमादनुं जे व्यपरोपण तेज हिंसा कहिये. वली जो स्त्रीने चारित्र न मानिये तो चार प्रकारनो संघ केम संनवे? जो वेषधारिणी श्राविकाज साध्वी कहिये तो चारित्र जाण्याविना जे वेषधारण करवुं ए तो मोटी विटंबना कहेवाय! जो कहेशो के, चारित्रलेश स्त्रीने थाय छे, तो तेमां अमे पण ना कहेता नथी, पण जो कहेशो के, स्त्रीने चारित्र मोक्षनुं कारण थाय नही तो ते कदाग्रह मात्र जाणवुं. केमके, अध्यवसायविशेषेकरी पुरुषनी पठे स्त्रीने पण चारित्रनो उत्कर्ष होयछे; एमां कांई विरोधता नथी. ॥ १६१ ॥

हीणत्तं पुण माणं, लद्धिनइड्ढि बलं च अहिगिञ्च ॥
णो पडिकूलमसिद्धं, तिरियणसारम्मि संतम्मि ॥ १६२ ॥

व्या० स्त्रीने जे पुरुषथी हीनपणुं कह्युंछे, ते जो विशिष्ट पूर्वज्ञाननी अपेक्षाए कहिये तो ते प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज छे. केमके, तथाविध ज्ञानविना पण गुरुपरतंत्रताए माषतुषादिक चारित्रना पालणार थयाछे. जो लब्धिनी अपेक्षाए कहिये तो पण प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज छे, केमके, तथाविध लब्धि विना पण मानुष्यादिक कृतकृत्य थयाछे; जो ऋद्धिनी अपेक्षाए कहिये तो पण प्रतिकूल नथी किंतु अनुकूलज छे. अन्यथा तीर्थंकरादिकनी अपेक्षाए अमहर्द्धिक गणधरादिक छे, तेने मुक्तिनो संनव केम थाय? स्त्री पुरुषने अवंद्य छे, माटे ते चारित्र ऋद्धिए करी हीन होवी जोये, एवी आशंका पण न करवी, अन्यथा शिष्यादिक आचार्यादिकने अवंद्य छे, तेपण चारित्रऋद्धिए करी हीन होवा जोये, जो बलनी अपेक्षा कहिये तो तेपण प्रतिकूल नथी, किंतु अनुकूलज छे, केमके, स्त्री करतां निर्बल जे पंगुप्रमुख ते पण अध्यवसायविशेषे मुक्ति पामेछे, जो कहेशो के, हीनबलने विशिष्टादिरूप चारित्र केम थाय! एमपण न कहेवुं, केमके, चारित्र ते यथाशक्ति आचरणारूप छे; माटे ते स्त्रीने पण संनवे छे, उक्तंच "वादिवि

कुर्वणत्वादिलब्धिविरहे श्रुते कनीयसि च जिनकल्पमनःपर्ययविरहेपि न सिद्ध विरहोस्ती " एणेकरी अनुपस्थाप्यपारांचिंतक प्रायश्चित्तना अनुपदेशथी स्त्रीने पण हीनपणुंछे, ए असंबद्ध जाणवुं, केमके, योग्यतानी अपेक्षाए शास्त्रनेविषे विचित्रतपनो उपदेश छे. उक्तंच " संवरनिर्जरारूपो बहुप्रकारस्तपोविधिशास्त्रे योगचिकित्साविधिरिव कस्यापि कथंचिदुपकारीति " ॥ १६२ ॥

पावाणं पयडीणं थीणिव्वत्तीइ बंधजणणीणं ॥
सम्मत्तेणेव पए णो तासिं पावबहुलत्तं ॥ १६३ ॥

व्या० स्त्रीने जे पापनी बाहुल्यता कहीछे. ते वचन पण मिथ्याछे. केमके, जे वारे स्त्रीपणुं बांध्युं छे, तेवारे यद्यपि बहुल पापप्रकृति मिथ्यात्वादिरूप ते छे. तथापि ते प्रकृति जेवारे तथाभव्यत्वने परिपाके सम्यक्त गुण पामीने क्षय करेछे तेवारे स्त्रीने पापनी बाहुल्यता नथी. जहांसुधी स्त्रीशरीर होय, तहांसुधी जो तेनां बंधकारण मिथ्यात्वादिक रहे तो स्त्रीए सम्यक्त पण न पाम्युं जोये. जो कहेशो के, पुरुषथी तीव्र काम पण अध्यवसाय छे, माटे नपुंसकनी पठे स्त्री मुक्ति पामे नही, एम पण न कहेवुं. केमके, तीव्र काम पण अध्यवसाय विशेष पामे छे ; माटे ते मुक्तिनेविषे विघ्नकारक नही होवाथी ए हेतु अप्रयोजक जाणवो अन्यथा स्त्री मुक्ति पामे. केमके, ते नपुंसकथी हीनकामछे, माटे तेने पुरुषनी पठे जाणवी. ए हेतु पण अत्रे लागु थायछे. ॥ १६३ ॥

णय तासिं मण विरिअं असुहं च सुहं विणेव उक्किट्टं ॥
तारिसणियमाभावा तेण हउ चरमदेहंमि ॥ १६४ ॥

व्या० जो कहेशोके, जेम सातमी नरक पृथवीए जवायोग्य स्त्रीने अशुभ मनोवीर्य नथी, माटे तेने मुक्तिनेविषे जवानो पण तथाविध मनोवीर्य थाय नही. एम कहेवुं नही. केमके, एवो नियम नथी, के, जेटलो अधोगति जवानो अध्यवसाय थाय तेटलोज ऊर्ध्वगति जवानो अध्यवसाय थाय. केमके, भुजपरी सर्प बीजी पृथ्वीसुधी उत्कर्षथी अधोगतिए जायछे, पक्षी त्रीजी पृथवीसुधी जायछे. चतुष्पद चोथी पृथवीसुधी जायछे. उरग पांचमी पृथ्वीसुधी जायछे. स्त्री छठी नरक पृथ्वीसुधी जायछे; पुरुष अने मच्छ सातमी नरक पृथ्वीसुधी जायछे, ए स्त्री तथा पुरुषविना बीजा पूर्वोक्त सर्वे प्राणीओ उत्कर्षथी सहस्रार आठमां देवलोकसुधी उर्ध्वगमन करेछे. एवी रीते यद्यपि स्त्री सातमी नरक

पृथ्वीसुधी जती नथी, तथापि तेने मोक्षसुखनी प्राप्ति थायछे एमां कोई विरोध नथी. केटलाएक कहेछे के, अधोगतिने परमोत्कर्ष होयछे, ते एकांततायी संभवे नही. केमके, जेवी कारणनी उत्कर्षता होय. तेवीज कार्यनी उत्कर्षता कहेवा यछे; एवो नियमछे परंतु एथी अन्य कोइ नियम नथी. स्त्रीनेविषे जो युद्धादिक महारंभरूप कारणनो संभव होय, तो सातमी नरक पृथ्वीसुधी जवाय; तेवुं कोई कारण नही होवाने लीधे स्त्रीथकी त्यांसुधी जवातुं नथी, किंतु छठीसुधीज जवायछे; अने पुरुष तथा मत्स्यनेविषे तेवां कारण होवाथी तेओथी सातमी नरक पृथ्वीसुधी जवायछे. एवी रीते अधोगतिनेविषे जवामाटे पुरुष अने स्त्रीना कारणोनी विलक्षणता होवाथी सरखुं गमन थतुं नथी, परंतु ऊर्ध्वगतिनेविषे जवामाटे बन्नेनां कारणो सरखां होवाथी सरखुं गमन थवानो अवश्य संभव छे. जेम पुरुषनेविषे शीलादिक गुणरूप ऊर्ध्वगमननां कारण होयछे तेम स्त्रीनेविषे पण होयछे. ए हेतुथीज स्त्रीने वज्रऋषभनाराचसंघयणनो संभव छे. एम न मानवामां कोई युक्ति नथी. ए प्रकारे स्त्रीना निर्वाणना निरोधनेविषे दिगंबरीओना हेतुनो निषेध कर्यो; हवे स्त्रीनो निर्वाण थवामां अनुमान कहेछेः—हरेक वस्तुना अनुमानमां पक्ष. साध्य. हेतु तथा दृष्टांत ए चार प्रकार होयछे. एटले ए चार पदार्थोए करी सिद्ध थएली वस्तुने अनुमित कहेछे; अने एचार पदार्थोए करी सिद्ध थवा योग्य वस्तुने अनुमेय कहेछे. जेम के, अग्नियुक्त पर्वत सिद्ध करवो होय, ते अनुमेय कहेवायछे; अने एज पक्ष कहेवायछे. अनुमान करती वखते "पर्वतम्पक्षीकृत्य, वन्हिमत्वंसाध्यते, धूमत्वात् इतिहेतुः, पाकगृहवत्, यत्रयत्रधूमः तत्रतत्र वन्हिः" पर्वतनो पक्ष करीने तेने अग्नियुक्त सिद्ध करेछे; एमां हेतु पर्वतउपर नीकलतुं धूमाडुं छे, जेम रसोई करवाना गृहमां अग्नि होवाथी धूमाडुं नीकळेछे, केमके, ज्यां ज्यां धूमाडुं होय त्यां त्यां अग्नि होयछे, ए दृष्टांत छे. तेम "कांचित्स्त्रीव्यक्तिं पक्षीकृत्य, मोक्षाविकलकारणता साध्यते, दीक्षाधिकारत्वात्, पुरुषवत्, येये दीक्षाधिकारिणः ते ते मोक्षाविकलकारिणः" कोईएक स्त्रीनी व्यक्तीने पक्षय करीने तेने मोक्षना अविकलकारणवंत सिद्ध करेछे; एमां दीक्षानो अधिकार हेतु छे; अने पुरुषजातिनी पठे ए दृष्टांत छे, केमके जे जे दीक्षानो अधिकारी होय ते ते मोक्षना अविकलकारणवंत होयछे. ॥ १६४ ॥

कीबस्स कप्पिअस्स व इत्थीए कप्पिआइ सिद्धी वि ॥ ण
विणा विसिठ्ठ चरिअं तासिं तु विसिठ्ठकम्मखउ ॥१६५॥
पावं तह इत्थित्तं णय पुस्सफलाण केवलीण हवे ॥ परमा
सुइभूआणं णय परमोरालिउ देहो ॥ १६६ ॥

व्या० कोई आशंका करे के, जेम जातिनपुंसकने मुक्ति थाय नही, तेम स्त्रीने पण मुक्ति थती नथी. एम छतां जो कहेशो के, जेम कृत्रिमनपुंसकने मुक्ति थायछे तेम विद्याप्रयोगादिकेकरी युक्त स्त्रीने मुक्ति थायछे; तो तेम पण न संभवे; केमके, स्त्रीने विशिष्टक्रियानुष्ठान होतुं नथी; विशिष्टक्रियानुष्ठानविना विशिष्टकर्मनो क्षय थाय नही. अने विशिष्ट कर्मनो क्षय थयाविना मुक्ति थती नथी. तथा स्त्रीपणुं जे छे ते पापप्रकृतिरूप नदीनुं झरणुं छे; ते पुण्यरूप सुरतरुना केवलज्ञानरूपफलने सेवन करनारा केवलीनेविषे केम संभवे! अर्थात् पापप्रकृतिरूपस्त्रीने केवल ज्ञान संभवे नही. तथा स्त्री परम अशुचि छे. तेने परमौदारिक शरीर पण संभवे नही. केवलीनुं शरीर तो परमौदारिक होयछे. तेवुं तो स्त्रीनुं शरीर कहेवाय नही, माटे स्त्रीने केवल ज्ञान केम संभवे? ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

अ० ए आशंकाने युक्तिवडे दूषित करेछेः—

एय मयुत्तं जम्हा विचित्तभावा विचित्तकम्मखउ ॥ ण
य इत्थित्तं पावं जिणाण पाए णण छित्ति ॥ १६७ ॥

व्या० स्त्रीने क्रियाविशिष्टविना विशिष्ट निर्जरा न थाय, एम जे वादिए कह्युं ते अयुक्त छे. केमके, भावविशेषे फलविशेषछे. क्रियाविशेषविना भावविशेष न थाय; एमां एकांतता नथी. केमके, जो शक्तिनो निग्रह करीने क्रिया करिये तो ज भावनी हानि थायछे, अन्यथा भावनी हानि थती नथी. तथास्त्री पणुं पापरूप छे, एमां पण एकांतता नथी, केमके, सम्यक्तना बलथी मिथ्यात्वादिक पापनो क्षय थायछे. एम पूर्वेकही आव्या छैयेः घणुंकरीने तीर्थंकरनेविषे स्त्रीपणुं नथी होतुं, एटले बहुधा स्त्री तीर्थंकर थती दीठामां आवती नथी तेथी स्त्रीपणुं पापरूप छे एम जो कहिये तो विप्रत्वादिक पण तेवांज कहेवा जोये केमके, बहुधा तीर्थंकरनेविषे विप्रत्वादिकनो पण अभाव होयछे; अर्थात् घणुंकरीने क्षत्रियादिक तीर्थंकर थएला दीठामां आवेछे. तेथी शुं विप्रादिकने मोक्षनो संभव न

थी. अने परमौदारिक शरीरनो तो पूर्वेज निषेध कर्योछे, माटे ते होय के न होय तेनी शासारू चर्चा करवी ! ॥ १६७ ॥

इय इत्थीणं सिद्धी सिद्धा सिद्धंतमूलजुत्तीहिं ॥ ईअं
असद्दहंता चिक्कणकम्मा मुणेअव्वा ॥ १६८ ॥

व्या० एवी रीते सिद्धांतमूलयुक्तिउए करीने स्त्रीने मुक्ति थायछे एवुं सिद्ध कर्युं तेम छतां जे हठेकरीने ए अर्थनी सद्दहणा करता नथी. ते चिकणा कर्मवाला जाणवा. एवा प्रकारे स्त्रीनेविषे मुक्तिनी व्यवस्थापन कर्याथी सिद्धना पंदर भेदनी व्यवस्था थई तेथी सप्रसंग सर्व सिद्धनुं स्वरूप कह्युं. सिद्धस्वरूपना वर्णनथी परम भावाध्यात्मनुं निरूपण थयुं अने भावाध्यात्मना निरूपणथी ग्रंथार्थ पूर्ण थयो. १६८

अ० हवे ग्रंथार्थनुं परम रहस्य कहेछेः–

इयं परमरहस्सं एसो अब्भप्पकणगकसवट्टो ॥ एसा
य परा आणा संयमजोगेसु जो जत्तो ॥ १६९ ॥

व्या० संयमयोगनो जे उद्यम करवो. तेज सर्व शास्त्रना नयविस्तार जाणवानुं फल छे; अने एज परम रहस्यभूत छे. यतः "सव्वेसिं पिण याणं, बहुविहवत्तव्वयंणि सामित्ता; तं सव्वणयविसुद्धं, जं चरणगुणछिउ साहू." इत्यावश्यकादौ. तथा आश्रवो भवहेतुःस्यात् संवरो मोक्षकारणं; इतीयमार्हती मुष्टि, रदनस्याप्रपंचनम्; एनो अर्थः– प्राणातिपातादिक जे आश्रव छे, ते संसारनुं कारणछे. प्राणातिपातादिकथकी विरमवारूप जे संवर ते मोक्षनुं कारण छे; ए परमार्थने विस्तारेकरी जाणवासारूज सर्व शास्त्र छे. माटे जेणे ए अर्थ जाण्यो छे ते परमार्थताथी सर्व शास्त्रज्ञ छे एम जाणवुं. अतएव उपशम विवेक संवर ए पदनो अर्थ जाणीने चिलातीपुत्रे निजअर्थ साध्यो. तथा संयमयोगनो जे उद्यम करवो तेज अध्यात्मरूप सोनानी कसोटी छे; जेम कसोटीए करी सोनानी परीक्षा थायछे, तेम क्रियानुष्ठाने करी अध्यात्मनी परीक्षा थायछे. ते अध्यात्मेकरी जे विशुद्धि थायछे, ते बाह्यकारणनुं आलस्य करे नही. यतः "संयमयोगेसु सया, जे पुण संत विरिआ विसीयंति; कहते विसुद्धचरणा, बाहिरकरणालसा हुंति." इत्यावश्यके. तथा एज श्री वीतरागनी परमआज्ञा छे के, संयमयोगनेविषे यत्न करवो. जेणे ए यत्न कर्यो, तेणे चैत्य कुल गणादिक सर्वनुं कार्य कर्युं, एम जाणवुं. यतः "चेइअ कुल गण संघे, आयरिआणं च पवयणसुए अ; सव्वेसु वि तेण कयं, तव संयममुज्झम्मंतो

अ० कोईक कहेशे के, ज्यां सुधी जीवने भव्यत्वनो संदेह होय त्यांसुधी चारित्रनेविषे ते केम प्रवृत्ते? केमके. अभव्य अनेक क्रियाकरे तेथी तेने कष्टमात्र थाय परंतु परमार्थेथी तेने कोई फलनी प्राप्ति थती नथी. एनुं समाधान करेछेः—

आसन्नसिद्धिआणं जीवाणं लक्खणं इमं चेव ॥
तेण ण पवित्तिरोहो भवाभवत्तसंकाए ॥ १७० ॥

व्या० जे जीव थोडा भवे मुक्ति पामनार होय तेनुं एज लक्षणछे के, ते विषयनेविषे वैराग्य धारण करीने धर्ममां प्रवृत्ते. यतः "आसन्नकालभवसिद्धिअस्स जीवस्स लक्खणं इणमो : विसयसुहेसु ण रज्जइ, सव्वत्थामेण उज्जमई." इत्युपदेशमालायां. माटे चारित्रनेविषें प्रवृत्ति थाय, त्यारे जीवे पोताने आसन्नसिद्धपणुं जाण्युंकहेवाय, पछी ते भव्याभव्यत्वनी शंकाएकरी शुभप्रवृत्तिनो बाधक केम थाय? किंतु साधकज थाय. अने हुं भव्यछुं के अभव्यछुं? एवी जेने शंका उत्पन्न थायछे, ते जीव निश्चये करीने भव्यज जाणवो. यतः "अभव्यस्यहि भव्य भव्यत्वशंकाया अभावादित्याचारांगटीकायां." ए आशंका तो उलटी चारित्रप्रवृत्तिनो अंग छे; माटे तेथी कांइ बाधा थती नथी. ॥ १७० ॥

अ० केटलाएक परवादी एम कहेछे के, मोक्षोपायनेविषे प्रवृत्ति वैराग्यथीज थायछे, ते वैराग्य अभुक्तभोगनेविषे संभवेछे; माटे भोगभोगव्या पछी तेनो त्याग करीने जो योगमां प्रवृत्ति करिये तो ते सुखथी थई शकेछे; एम कहेनाराने शिक्षाने अर्थे कहेछेः—

जो पुण भोए भोत्तुं इच्छइ तत्तो अ संयमं काउं ॥ ज
लणम्मि पजलित्ता इच्छइ पच्छा सणिव्वाउं ॥ १७१ ॥

व्या० जे पुरुष भोग भोगवीने पछी संयम पालवानी इच्छा करेछे, ते इच्छा प्रथम अग्निमां पग्नी बलीने पछी शीतलता पामवानी पठे छे. केमके, भोग भोगव्याथी तेनी इच्छा मटती नथी; किंतु अधिक थायछे. यतः "नजातु कामः कामाना, मुपभोगेन शाम्यति; हविषा कृष्णवर्त्मे व, पुनरेव प्रवर्द्धते." जे सुख जीव भोगवेछे, ते सुख यद्यपि अनंतवार भोगवाई गया छे; तथापि मोहनीयकर्मना दोषने लीधे एम भासेछे के, में ए सुख पूर्वे कोई समयनेविषे भोगव्यां नथी यतः "पत्ता य कामभोगा, कालमणंतं इहं स उवभोगो; अपुव्वं पिव मन्नई, तहविय जीवो मणे सुक्खं" इत्युपदेशमालायां. ॥ १७१ ॥

अ० वळी नोगनेविषे प्रवृत्ति करतां एवो संदेह रहेछे के रखेने नोगनो नाश थई जाय; ते योग्य छे. केमके, नोग स्थिर नथी, किंतु अस्थिर छे. अथवा नोग नोगवतां आयुष्यनो अंत आवी जाय तो पण नोग नोगवाता नथी. एवा नोग नोगववानेविषे प्रवृत्ति थतां अविरति जीवने प्रतिक्षणे कर्मबंध थायछे. एमां रंचमात्र संशय नथी. माटे जे विवेकी पुरुष छे ते स्वप्ननेविषे पण नोगनेविषे प्रवृत्तिनी अनिलाषा करता नथी. एवो उपदेश करेछे. ॥ १७१ ॥

कोवा जिअवीसासो विज्जुलया चंचलम्मि आउम्मि ॥
सक्को णिरुज्जमो जइ जरानिनूउ कहं होही ॥ १७२ ॥

व्या० हे जीव, तने जीवितव्यनो शो विश्वास छे? केमके, जेम विजळीनी लता एटले झात्कार क्षणनंगुर छे, एटले क्षणमा देखाय छे ने क्षणमां नाश थई जायछे, तेम जीवितव्य एकक्षणमां प्रत्यक्ष देखातो छतां कोई रोगादिकना उदयथी बीजी क्षणमां नाश थतां वार लागती नथी. माटे ज्यांसुधी शरीर निरोगी छे त्यांसुधी जो तूं धर्मकार्य करीश तो करी शकीश. ॥ १७२ ॥

अ० कोई कहेशे के, जो जीव रोगेकरीने ग्रसेलो होय, अथवा कायबळेकरी हीण थएलो होय, ते चारित्र मार्गनेविषे केम प्रवृत्ति करी शके, तेने उत्तर दियेछे

देहबलं जइ ण दढ तहवि मणोधिइबलेण जइअवं ॥
तिसिउ पत्तानावे करेण किं णो जलं पिबई ॥ १७३ ॥

व्या० जो रोगादिके करी शरीर निर्बळ थई गयुं होय तो मनबुद्ध्यादिकना बळे करीने योग धारण करवो. जेम पुरुषने ज्यारे तृषा लागेछे त्यारे तेनीपासे जो पाणी पीवानुं पात्र न होय तो हाथेकरी पाणी पीएछे; पण तरस्यो रहेतो नथी. तेम तथाविध काळबळ न छतां पण जेने मोक्षनी अनिलाषा होय तेणे मनोबळेकरी योगमार्गनेविषे प्रवृत्ति करवी. ॥ १७३ ॥

अ० जे पुरुष बळना समयनी शोचनाएकरी बळरहितसमयमां नविष्यकाळ उपर नरोसो राखी आळस करीने बेशी रहे ते अति दुःख पामेछे; एम कहेछे.

बलकालसोअणाए अलसा चिठंति जे अकयपुन्ना ॥
ते पछिता वि लहु सोइंति सुहं अपावंता ॥ १७४ ॥
जह णाम कोइ पुरिसो ण धनठ्ठा णिद्दणो वि उज्जमई ॥
मोहाइ यब्बणाए सो पुण सोएइ अप्पाणं ॥ १७५ ॥

व्या० जे पुरुष एवी शोचना करे के, हमणा मारामां बल नथी, माटे आगल धर्माचरण करीश. अथवा हमणा मारो अवसर नथी, माटे आगल जतां धर्माच रण करीश. एम जाणीने आलस करी बेशी रहे ते अकृतपुण्य थका आगल घणी प्रार्थना कस्याथी पण पुण्यविना सुखने पामे नही, त्यारे घणो शोच करेछे. जेम कोइ निर्धन पुरुष प्रथम आलस करीने धन अर्जवानो उद्यमन करे ने पछी गाली इछा करीने धनविना दुःखने पामेछे त्यारे पोताना आत्मानेविषे घणोज शोच क रेछे. माटे प्राप्त थएलो धर्म मूकीने आगल धर्मप्रार्थना करीये तो गाली प्रार्थना कहेवाय. यतः "लद्धिल्लिअं च बोहिं, अकिरंतो णागयंगपछित्तो ; आणंदाइं बोहिं, लप्नसि कयरेण मुल्लेण." ॥ १७४ ॥ १७५ ॥ अ० कोई कहेशे के, पापनी निंदाथीज पाप टलेछे, त्यारे विशेष अनुष्टान करवानुं कारण शुं? एविषे कहेछेः—

जो पावं गरहंतो तं चेव णिसेवए पुणो पावं ॥ तम्स
गरहा वि मिछा अतहक्कारो हि मिछत्तं ॥ १७६ ॥

व्या० जे पाप करी मिछामि दुक्कडं दईने फरी पाप करे तेनी पापनिंदा मिथ्या छे. केमके, जेवुं बोलिए तेवुं जो पालिए नही तो तेज मिथ्यात्व छे. यतः "जो जह वायण कुणई, मिछद्दिठी तउहुको अन्नो ; वड्ढइ अमिछत्तं, परस्स संकं जणे मा णे." इत्युपदेशमालायां. हवे मिछामि दुक्कडं ए शब्दनो अर्थ कहेछेः—मि कहेतां कायाथी तथा नावथी मृदु थइ, छा कहेता असंयमरूप दोषनुं अछादन करीने, मि कहेता चारित्रनी मर्यादामां रह्यो थको, दु कहेतां दुकृत कार्यनो करनार जे आत्मा तेने हुं निंदुंछुं, क कहेता में जे पाप कस्यांछे, तेनुं डं कहेतां उपशम पामीने उल्लंघन करुंछु. एवो अर्थ जाणीने मिछामि दुक्कडं दीधा पछी फरी पाप न करवुं, ते पापनी साची निंदा कहेवायछे. तेम न करता पछी जे पाप करवुं तेथी तो उलटुं माया मृषावादादि पाप लागेछे. यतः "जं दुक्कडंति मिछा । तं चेव णिसेवए पुणो पावं, पच्चरकमुसावाई, मायानिवडी पसंगोअ" इति ॥ १७६ ॥

अ० ए कारण माटे चारित्र लईने जो ते सारा नावथी पालिए तोज तेथी महाफलनी प्राप्ति थायछे, अन्यथा आजीविकाने अर्थे चारित्र लीधा करतां गृहस्थधर्मेज सारो छे एम कहेछे.

चुअधम्माउ मुणिणो सुठुअरं किर सुसावगंत्त पि ॥ प
डिअं पि फलं सेयं तरुपडणाउ णच्चंपि ॥ १७७ ॥

व्या० वेषधारी चारित्ररहित जे सु श्रावक छे, ते अरिहंतनी पूजा करे, सुसाधुनी सेवा करे, दृढाचारीपणुं पाले, इत्यादिक धर्माचरण करेछे, अने जे चारित्र वेषधारी होय ते गृही धर्म तथा यतिधर्म ए बन्नेथी भ्रष्ट थायछे. उक्तंच "छज्जीवणिकायदया, विवज्जिउणेव दिक्खिउ ण गिही; जइधम्माउ चुक्को, चुक्कइ गिहदाणधम्माउ; इत्युपदेशमालायां. वेषधारी चारित्रियाने मूलगुणविना तपथी पण तेवुं फल थतुं नथी. उक्तंच "महव्वय अणुव्वयाइ, छडेउं जो तवं चरइआणं, सो अन्नाणी मूढो, नावावुड्डो मुणेअव्वो." माटे केवल वेषधारी करतां गृही धर्म सारो छे. दृष्टांतः– फलनी अभिलाषाथी वृक्ष उपर चढी, फल मेलव्याविना पडी न जतां ते फल मेलवाई शकाय तो सारुं, पण जो फलनी प्राप्ति न थतां नीचे पडी जवाय तो उलटुं शरीरने लागे तेथी दुःखनी प्राप्ति थाय. तेना करतां वृक्षनी नीचे बेसीनेज पडेलुं फल ग्रहण करिये ते सारुं ॥ १७७ ॥

संयमयोगे अप्पु, ठिअस्स संचत्तबज्झजोगस्स ॥ ण प
रेण किंचि कज्जं आयसहावेण चिठस्स ॥ १७८ ॥

व्या० संयमना योगे जे आनंद थायछे ते केवल आत्मस्वभावनेविषेज अवस्थित छे. तेने परनुं शुं काम छे! माटे जेने चारित्त परिणम्युं होय, तेणे सर्व परप्रतिबंध मूकीने आत्मद्रव्यमात्रना प्रतिबंधे प्रवर्तवुं ॥ १७८ ॥ अ० एक आत्मद्रव्यमात्रनेविषे प्रवर्त्यायी बीजाने उपदेश केम देवाशे, एविषे कहेछे.

संविग्गो गीयत्थो बोहेउ परंपराइ करुणाए ॥ अन्नो
पुण तुमणीउ पुव्वं बोहेउ अप्पाणं ॥ १७९ ॥

व्या० जे महानुभावी संवेगी गीतार्थ होयछे, ते पोते तो कृतकृत्य होयछे, परंतु बीजानी उपर परम करुणाए करीने तेने प्रतिबोध करे तो तेथीते महाफलदाई छे. परंतु जे एवो न होय तेणे बीजाने उपदेश करवानुं मांमीवालीने प्रथम पोताना आत्मानेज बोध करवो जोयेछे. जे पोते प्रतिबोध पाम्या विना बीजाने प्रतिबोध करेछे ते केवल नाटकीआनी पठे नाटक करी देखाडनारोछे एम जाणवुं. ॥ १७९॥

अ० एवी रीते ज्यारे परप्रतिबंध सारो नथी, किंतु एकाकीपणुंज सारुं छे, माटे गछ पण प्रतिबंधरूपज छे, एम जे जाणेछे तेनो संदेह मटाडवाने अर्थे कहेछे

दव्वेण जो अणेगो गछे सो भावउ हवे एगो ॥ एगागी
गीअत्थिय कयाइ दव्वेअ भावेअ ॥ १८० ॥

व्या० गछमां छतां द्रव्यथी जे अनेकता थायछे, तेज भावथी एकता थायछे. अन्यथा गुर्वाज्ञादिक अंकुशविना चित्तरूप हस्ति संसाररूप वनमां फरतां एकत्व भावनारूप वेलीनुं उन्मूलन करी नाखे. अतएव भगवंते "एकस्स अछि धम्मो" इत्यादिक प्रबंधे करी एकाकी विहारनो निषेध कर्योछे. श्रीदशवैकालिक सूत्रनेविषे पण आम कह्युंछे "नया लभिज्जा निउणं सयायं गुणाहि अं वा गुणउ समंवा; इक्कोवि पावाइ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो. आ गाथामां आम कह्युंछे के, ज्यारे पोताथकी अधिक गुणवालो अथवा समान गुणवालो मले नही, त्यारे एकाकी विहार करवो, ते गीतार्थ आश्री जाणवुं. केमके, ते पापने वर्जीने कामनेविषे असंग करेछे माटे तेने एम कह्युंछे. अने अगीतार्थ तो गीतार्थनी निश्राविना पाप वर्जी शके नही. तेम कामासंगपण बाली शके नही. अतएव "गीयछो अ विहारो, बीउ गीयछ मीसिउ भणिउ॥ इत्तो तइय विहारो, नाणुन्नाउ जिणवरेहिं" ए गाथामां खुलीरीते अगीतार्थने एकाकी विहारनो निषेध कर्योछे. माटे गछमां रही, गुरुकुलवास सेवी, श्रुतादिकनो अभ्यास करी, अने साधुसंग छतां पण अंतरंग निर्लेप रहीने जो अध्यात्मभावना भाविये तो परमानंदनी प्राप्ति थायछे. ॥ १८० ॥

किं बहुणा इह जह जह रागद्दोसा लहुं विलिज्जंति ॥ त
ह तह पयट्टिअव्वं एसा आणा जिणंदाणं ॥ १८१ ॥

व्या० घणु शुं कहिये, जेजे प्रकारे रागद्वेष विलय थाय तेवी रीते प्रवर्तवुं. एज श्रीवीतरागदेवनी आज्ञा छे. ॥ १८१ ॥

अज्झप्पमयपरिक्खा एसा जुत्तीहिं पूरिया जुत्ता॥ सोहिं
तु पसायपरा तं गीयत्था विसेस विऊ ॥ १८२ ॥

व्या० आ अध्यात्ममतपरिक्षा युक्तिएकरी पूरी कीधी, तद्रूप जे आ ग्रंथ छे, तेनुं विशेषज्ञ जेगीतार्थ छे ते मज उपर कृपा करीने शोधन करो ए विज्ञापनाछे. १८२

शार्दूलविक्रीडितं वृत्तं ॥ यस्यासन् गुरवोऽत्र जीतविजयप्राज्ञाः प्रकृष्टाशया भ्राजंते सनयानयादि विजयप्राज्ञाश्च विद्याप्रदाः ॥ प्रेम्णा यस्यच सद्म पद्म विजयो जातः सुधीः सोदरः सोयं तत्वमिदं यशोविजयइत्याख्याभृदाख्यातवान् ॥ १ ॥

इति पंडित यशोविजयजी उपाध्यायकृत श्री अ
ध्यात्ममतपरीक्षाग्रंथो बालावबोधसहितः समाप्तः

ॐ श्रीजिनायनमः

अथ श्रीसमयसार नाटक बनारसीदास कृत गुजराती भाषामां अर्थ सहित प्रारंभः

उपोद्घात.

आ ग्रंथनी दिगंबरी बनारसीदासे शुद्ध हिंदुस्थानी भाषामां पद्यात्मक ग्रंथरूप रचना करीछे. ए ग्रंथकर्त्ता पोते महापंडित तथा कवीश्वर होवाथी विविध प्रकारनी छंदरचना करीने तेणे पोतानी श्रेष्ट कृति देखाडी आपीछे. पदलालित्यता तथा अर्थ गौरवतादिक जे काव्यना सारा गुण वर्णन कर्याछे, ते आ ग्रंथनी कवितामां सारी रीते दीठामां आवेछे. अलंकारवडे कविता सारीरीते भूषित करीछे. आ ग्रंथ अध्यात्मिक विषयवालो होवाथी आमां मात्र शांत रसज मुख्यछे, पण प्रसंगानुसारे बाकीना रस पण क्वचित दीठामां आवेछे. जोपण आ ग्रंथ उपर कह्या प्रमाणे नन्हवादिकमां गणायला दिगंबरीनो रचेलोछे, तोपण एनो विषय आध्यात्मिक होवाथी ते सर्वने उपयोगीछे; माटे आ पुस्तकमां अमे नाख्योछे. ए ग्रंथनी व्याख्या कोई रूपचंदजी नामना पंडिते करीछे, ते पण हिंदुस्थानी भाषामां होवाथी सर्व जनने समज्यामां आवे नही, माटे तेनो आश्रय लईने अमे गुजराती भाषामां व्याख्या करी छे. व्याख्या करतांए आदिमां मंगलाचरणनो दोहरो कर्योछे ते आप्रमाणेः—

दोहाः— श्रीजिन बचन समुद्रको, कोलगि होइ बखान; रूपचंद तौहू लिखै, अपनी मति अनुमान. ॥ १ ॥

अर्थः— व्याख्याकर्त्ता रूपचंदजी कहेछे के, श्री जिनवचनरूप समुद्रनो क्यांसुधी व्याख्यान थाय, तोपण हुं मारी मतीने अनुमाने लखी जणावुंछुं. ॥ १ ॥

हवे ग्रंथकर्त्ता आरंभमां मंगलाचरणरूप श्रीपार्श्वनाथ स्वामीनी स्तुति करेछे.—

कवित्त, इकतीसासर्व ह्स्वाक्षरः— करम भरम जग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग शिव मग दरसि; निरखत नयन भविक जल बरखत, हरखत अमितभविक जन सरसि; मदन कदन जित परम धरम हित, सुमिरत भगत भग

तसब भरसि; सजल जलद तन मुकुट सपत फन, कमठ दलन जिन नमत बनरसि ॥ १ ॥

अर्थः— जगतमां जे आठ कर्मरूप तिमिर एटले अंधकारछे तेनुं हरण करवाने खग एटले सूर्यरूप छे. जेना चरणनेविषे सर्पनुं चिन्ह छे. जे मोक्षना मार्गने देखाडनारा छे. जेनेनेत्रे करी निरखतां कल्याणरूप जल वर्षेछे, तेणे करी अमित के० प्रमाणविना भव्यलोकरूप सरोवर महा हर्षने पामेछे. जेमाटे कामदेवना क्षय करनार छे, अने जेनुं उत्कृष्ट सहज सुखरूप धर्मने अर्थे भक्तजन स्मरण करी ध्यावेछे. तेथी तेनुं सब दरसिके० सात भयरूप जे शीत छे. ते नाशी जायछे. जेनुं शरीर जलसहित मेघना जेवुं नीलवर्ण छे. जेना मुकुटनेविषे सात फण छे. जेणे कमठ नामे असुरनुं मान भंजन कर्युंछे. एवा जिनके० श्रीपार्श्वनाथ भगवान, तेने बनारसीदास नमस्कार करेछे ॥ १ ॥

फरीथी विशेषे श्री पार्श्वनाथ स्वामीनी स्तुति करेछे.

सर्व लघु स्वरांत अक्षर युक्त छप्पय छंद. एने चित्रकाव्य पण कहेछेः— सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग; धवल परम पद रमन, जगत जन अमल कमल खग; पर मत जलधर पवन, सजल घन सम तन समकर; पर अघ रज हर जलद, सकल जन नत भव भय हर; यम दलन नरक पद छय करन, अगम अतट भव जल तरन; वर सबल मदन वन हर दहन, जय जय परम अभय करन. ॥ २ ॥

अर्थः— सर्व कर्मरूप खलके० दुष्ट वैरीने दलवा वाला छो. कमठ नामना महा मूर्ख असुर तेरूप पवन आगल मेरु पर्वतनी परें अडग छो. धवलके० निर्मल सिद्ध स्थानकनेविषे रमनारा छो. जगतना लोकोरूपी उज्वल कमलने विकस्वर करवानेअर्थे खगके० सूर्य जेवा छो एकांत नय वादी जे पर मत, तेरूप मेघने मटाडवाने अर्थे पवनना जेवा छो. जल सहित मेघ घटाना जेवो स्याम जेनो शरीर छे. समकरके० उपशमना करनार छो. परके० शत्रुरूप अगके० पाप रजने हरण करवाने मेघ जेवा छो जेने सकल लोक नमे छे, अर्थात् त्रिभुवन पूज्य छो. जन्म मरणरूप जे भव भय तेने हरण करनार छो. लोकोना मृत्युने दलवावाला छो. भव्य प्राणीओने नरक पदना क्षय करनार छो. अगम एटले अथाह अने अतटके० अपार एवो जे संसाररूप समुद्र तेने तरवावाला छो. सर्व दोषोमां वरके० प्रधान अने बलवान जे कंदर्पवन, तेने बालवाने हरके० रुद्रना

नेत्रनी अग्नि जेवा हे नगवान तमे जयवंता थाओ. वळी तमे परम अनय पद ना करनार बो, एटले नय नंजन बो. ॥ २ ॥ आ उप्पय बंद वडे परमेश्वरनी महिमानुं वर्णन कर्युं. अने पोतानुं काव्य चातुर्य दर्शाव्युं बे.

आ ग्रंथना कर्त्ता बनारसीदास कहेबे के जेना प्रसादथी परगसेन पिताने घेर मारुं जन्म थयुं एवो हुं श्री पार्श्वनाथ नगवाननी स्तुति करुंबुं.

सवैया इकतीसाः– जिन्हके बचन उर धारत जुगल नाग, नये धरनिंद पदमावति पलकमें; जाके नाम महिमासों कुधातु कनक करै पारस पाषान नामी नयो है खलकमें; जिनकी जनमपुरी नामके प्रनाव हम, अपनो स्वरूप लख्यो नानसो नलकमें; तेई प्रनु पारस महारसके दाता अब, दीजे मोहि साता हग लीलाके ललकमें.॥ ३ ॥

अर्थः– ज्यारे श्री पार्श्वनाथ नगवाननी कुमारावस्थाहती त्यारे कोई एक समये श्री बनारसी नगरीविषे एक तापसीनी साथे अज्ञानतपश्चर्यानी निर्नत्सना पूर्वक वाद थयो, ते प्रसंगे ते तापसीनी धूणीमांनां लाकडांमां नाग बे एवी रीते श्री पार्श्वनाथ नगवाने कह्युं, ते वातने तेना तापसीए गणकारी नही, तेथी ते लाकडांफोमीने ते नागने बाहेर कहाड्यो; पण ते अधबळ्यो थयो हतो तेथी तरफडवा लाग्यो, तेना अंतना समयमां श्री पार्श्वनाथ नगवाने तेने "ॐ असीआ उसाय नमः" ए मंत्र संनलाव्यो. ते वचन तेणे सारी रीते हृदयमां धारी लीधुं. एटलामां तेना शरीरनी शांति थई गई. तेना अंतना सारा परिणामोने लीधे ते धरणेंद्र थयो. तेनी स्त्री पद्मावती हती; ए कथा श्री पार्श्वनाथ चरित्रमां प्रसिद्ध बे. ते अद्भुत महिमाने दर्शावतां बतां ग्रंथकर्त्ता उपमा लंकारवडे पारसमणि अने श्री पार्श्वनाथना ए गुणनी सादृश्यता देखाडेबेः–

जेना वचन हृदयनेविषे धारण करीने नाग अने नागणी ए बन्ने पलकमां धरणेंद्र अने पद्मावतीरूपे थया. आंही नाग अने नागणी कहेवाथी दिगंबरीनुं मत जाणवुं. श्वेतांबरी तो एक नाग नेज कहेबे. वळी पार्श्वपाखान खलक एटले डुनियामां प्रसिद्ध बे एटले पारश मणी नामना पाषाणनुं स्पर्श थतांज लोखंम नामनी कुधातुं सोनुं थायबे. तो ए पाखाणमां एवी महिमां किहांथी उत्पन्न थई? तेनुं उत्तर कहेबेः– पार्श्व एवुं नाम श्री पार्श्वनाथने तुल्य बे. तेनी महिमा थकी एटले मात्र पार्श्व एवुं नाम बे ते नामनीज महिमांथकी ते पार्श्वरूप पाखाणमां एवो गुण थयोबे. वळी जेनी जन्म पुरीनुं नाम बनारसी नगरी बे, अने ग्रंथकर्त्ता कहे

छे के, मारुं नाम पण बनारसी हुं पाम्यो. ते मात्र नामना प्रभावथी में मारुं आत्मस्वरूप जाणी लीधुं. ते केवी रीतें जेम प्रभात समयमां सूर्य पोताना रूपने झलकमां स्वछ प्रकाशे छे, तेनीपरे मारुं रूप पण प्रकाशी रह्युं छे. ए पण श्री पार्श्वनाथ भगवाननी महिमानो प्रताप छे. तेज श्री पार्श्वनाथ भगवान महा शांत रसने देवावाला छे, ते हवे दृग लीलाकी ललकमेंके० आंख मीचीने उघाडीए अर्थात् एक पलक मात्रनी सत्तामां मुजने आत्म समाधिरूप शाता आपो. एथी निवृत्ति सुखनी सूचना करी छे. ॥ ३ ॥

सिद्ध भगवाननी स्तुति करेछेः—

अडिल्ल छंदः—अविनाशी अविकार, परम रसधाम है; समाधान सरवंग, सहज अभिरामहै; शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है; जगत शिरोमनि सिद्ध सदा जयवंत है ॥ ४ ॥

अर्थः— जेनोविनाश नथी. अने जेने कोई विकार लागे नहीं. एवो परम रस एटले कोई केवलीगम्य जे सहजानंद उत्कृष्ट सांतरस, तेना जे धाम एटले घर छे; माटे सरवंगने विषे सहजनी जे अनंत सुखरूप समाधी तेणेकरी जे अभिराम एटले अति मनोज्ञछे. चौदराजलोकनी उपर विराजमान होवाथी सर्व दोषथी रहित शुद्धछे. सर्वज्ञता पाम्याथी बुद्ध छे. अने सर्वना ईश्वर माटे अविरोधछे, एहवी अवस्थाए करी ते अनादि अनंत छे. अने चउद राजलोकना उपर बिराजमान छे तेथी जगतना शिरोमणि छे एवा जे श्रीसिद्ध भगवान ते सदासर्वदा जयवंत थाओ ॥ ४ ॥

साधुरूप भगवाननी स्तुति करेछेः—

सवैया इकतिसाः—ज्ञानके उजागर सहज सुख सागर सुगुण रतनागर वैराग रस भर्यो है; सरनकी रीत हरे मरनको भै न करै करनसों पीठ दे चरण अनुसर्यो है; धरमको मंडन भरमको विहंडन जु, परम नरम व्है के करमसों लर्यो है; ऐसो मुनिराज भुअ लोकमें विराजमान निरखि बनारसी नमसकार कर्यो है ॥५॥

अर्थः— जे ज्ञाननो उद्योत करनार छे. आत्मद्रव्यनुं जे सहजसुख तेना जे समुद्र छे. अने सुगुनजे ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप रत्नत्रयीनी आकर एटले जे खाण छे. पांच इंद्रियोना विषयनेविषे जे वैराग्य ते रूप रसेकरी जे परिपूर्ण थयाछे. कोई परिसह आवीने प्राप्तथयाथी गृहस्थनीपरे शरणनी रीति राखे नही. आत्माने शाश्वतद्रव्य जाणीने जेणे मरणनो भयमुकी दीधो छे. पांच इंद्रियोने

पूठ आपी तेना विषयोथी विमुख थयाथकी जे चारित्रने अनुसर्या छे; वळी जेनो आश्रय लेवाथी धर्मपदार्थ बिराजमान थाय माटे धर्मना मंडन करनाराछे. मिथ्यामतिरूप जे नरम तेनुं विशेषेकरीने जे खंडन करनारा छे; जे परम दयावान थईने कर्मोनीसाथे युद्ध करेछे. दयावानने युद्धकरवुं संभवे नही तम छतां कह्युं ते माटे विरोधालंकार जाणी लेवो. एवी विशेषताने लीधे जे मुनिराज एटले कवीश्वर नुअलोकमां पिसतालीश लाख मनुष्य क्षत्रनेविषे विराजमान छे तेने हृदय कमलथी जोईने बनारसीदास नमस्कार करेछे. ॥ ५ ॥

हवे पांच अनुव्रत लीधा छे जेमणे एवा समकितीनी स्तुति करेछे.

सवैया तेईसाः-- भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चंदन; केलि करे शिव मारगमें जगमांहि जिनेश्वरके लघु नंदन; सत्य स्वरूप सदा जिन्हके प्रगटयो अवदात मिथ्यात निकंदन; संत दशा तिन्हके पहिचान करे कर जोरि बनारसि बंदन. ॥ ६ ॥

अर्थः-- जे मंदबुद्धि छे ते जीव अने शरीरने एक करी जाणेछे; भेद जाणता नथी. पण जेणे समकित पाम्यो छे, तेना हृदयमां जड अने चेतननुं भिन्न भिन्न ज्ञान थयुं छे; एवुं तेने भेदविज्ञान जागृत थयो, तेथी तेनुं चित्त चंदननी पठे शीतल थयुं छे. जे मुक्ति मारगमां केलि करे एटले खेल करी रह्या छे; आ जगतमां श्री जिनेश्वरना जे न्हाना पुत्रछे. अने साधुजे छे ते सर्वज्ञपुत्र कहेवायछे माटे ते मोटा पुत्र छे. वळी आत्मा सदा निश्चयेकरी सत्यरूपमांज छे, पण मिथ्यातवडे मलिन थईरह्योछे. ते फरी सत्यस्वरूप जेनुं निर्मल प्रगटताने पाम्युंछे, अने मिथ्यात्वनुं निकंदन थयुंछे, एटले मिथ्यात्व रह्युं नथी. चार अनंतानुबंधीनी जड तुटी गईछे. एवी तेमनी शुद्धदशा ओळखीने बनारसीदास बन्ने हाथजोडी वंदना करेछे. ए सवैयामां सम्यक्तनी दृढता बतावीछे. ॥ ६ ॥

पूर्ण सम्यक्तता दर्शाववानेअर्थे फरी तेनीज स्तुति करेछे.

सवैया इकतीसाः--स्वारथके साचे परमारथके साचे चित्त साचे साचे बैन कहै साचे जैनमती हैं; काहूके विरोधी नांहि परजायबुद्धि नांहि, आतम गवेषी न ग्रहस्थहै न यती हैं; सिद्धि रिद्धि वृद्धि दीसै घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लक्ष्सों अजाची लक्षपती हैं; दास भगवंतके उदास रहै जगतसों, सुखिया सदीव ऐसे जीव समकिती हैं. ॥ ७ ॥

अर्थः-- जेनी स्वार्थ एटले आत्मा पदार्थनेविषे साची प्रतीति छे. तथा परमार्थ ते मोक्ष पदार्थनेविषे साची प्रतीति छे. जेनुं चित्त निर्मल छे. जे सत्यवचनना बोल

नारा छे. जे साचा जिनमतने ग्रहण करी रह्याछे. जेनुं मन कल्पना करतुं नथी. केम के, ते साते नयनुं शुद्धस्वरूप जाणेछे तेथी कोईना दर्शनना विरोधी नथी. जेम बौध मतानुसारी पर्याय बुद्धिवाला छे पण द्रव्य बुद्धिवाला नथी. तेथी जीवने क्षणभंगुर मानेछे. तेम समकितीपर्याय बुद्धिवंत नथी. पण आत्मद्रव्यनी गवेषना करनार छे तेथी तेने पर वस्तुमां मोह नथी. माटे गृहस्थ पण नथी. अने महा व्रत लीधा नथी, तेथी यति पण नथी. पोताना घटनेविषे शुद्ध आत्म द्रव्यने सिद्धसमानज जुएछे. तेथी घटमांज प्रगट सिद्धि देखेछे. अने ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रिद्धिनी वृद्धि जेना घटमां सदा प्रगट देखायछे. जे अंतर परमात्मा देव छे तेनुं जेने लक्ष थयुं छे, तेथी अयाची एटले कोईनी पासे कांई मागे नही. एवा लक्षपति छे. वलीजे ए पूर्वोक्त प्रकारना प्रगट स्वरूपने पामेला श्री वीतराग भगवंतने पामीने तेना दास थयाछे; अने जगतथी उदास रहेछे. जे आर्त्त अने रौद्र ए बे ध्यानथी विमुख थयाछे, तेथी सदीव सुखनी सन्मुख थयाछे, एवा समकिती जीव महा सुखमयी छे. ॥७॥

फरी पोताना उल्लासथी समकितीनी स्तुति करेछेः—

सवैया इकतीसाः— जाके घट प्रगट विवेक गनधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहकों हरतु है; साचो सुख मानै निज महिमा अमोल जानै, अपुहीमें आपनो सुभावले धरतुहै. जैसे जल कर्दम कतक फल भिन्न करै, तैसे जीव अजीव विलछन करतु है; आतम सगति साधै ज्ञानको उदौ आराधै, सोई समकिती भवसागर तरतु है ॥ ८॥

अर्थः— एवी रीते "उप्पनेवा, विगमेवा, धूवेवा." ए त्रण पद सांभलीने गणधरना हृदयमां प्रगट विवेक उत्पन्न थायछे; अने अर्थनेविषे कोई संदेह रहे नहीं. तेवी रीतेज समकितीना घटमां विवेक प्रगट थयोछे, तेणेकरी स्वस्थ थई पोताना हृदयमां आनंदने पामी महा मोहने हरण करेछे. पोतानुं मिथ्यात दूर करीने सम्यक्त करेछे. हवे सम्यक्तनी व्यवस्था कहेछेः— जे विषय सुख छे ते तो अनित्य छे, माटे जूठा छे, अने सहज समाधि सुख जे छे ते शाश्वता छे तेथी ते सुखनेज साचुं मानेछे. अने पोतानी ज्ञातारूप महिमा अमोल जाणेछे. तथा ज्ञान दर्शन अने चारित्र जे छे ते पोतानो स्वभाव छे, तेने पोतामांज धारेछे. पहेलां जीव मिथ्यात्वदशामां जीव अने शरीरने एक करी जाणतो हतो, अने हमणा जीव अने अजीवने भिन्नभिन्न लक्षणे करी जाणेछे. जेम पाणी अने चीकल एकठां थईगयां होय, तेने कतकफलनिर्मलीनुं चूर्ण नाखवाथी पाणी तथा कादवने ते रेणु भिन्नभिन्न करी नाखेछे, तेम जीव अने अजीवने जुदो जुदो ल

खेछे. चारित्रमां आत्मानी शक्तिने साधे, अने मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञाननो उदय थवानी इछा करेछे. मतिअज्ञान तथा श्रुतअज्ञानने गमावी दियेछे. ते समकिती जीव नवसमुद्रनो तरनार कहेवायछे; ए रहस्य छे ॥ ८ ॥

हवे समकेत पाम्या छतां मिथ्यात्वदृष्टिमांज रहेछे, तेनुं वर्णन करेछे.

सवैया इकतीसाः— धरम न जानत बखानत नरमरूप, ठौर ठौर ठानत लराई पक्षपातकी, नूल्यो अनिमानमें न पाउं धरे धरनीमें, हिरदेमें करनी बिचारे उतपातकी, फिरे मावामोलसों करमके कल्लोलनमें, वैरह्यी अवस्यासों बघूलाकेसे पातको, जाकी छाती ताती कारी कुटिल कुबाती नारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी. ॥ ए ॥

अर्थः— जे वस्तुना स्वनावरूप धर्मने जाणे नही, अने नमरूप मिथ्यावाणीने वखाणे; तथा ठेकाणे ठेकाणे, पोतानुं मत स्थापवाने पक्षपातनी लडाई करे अने पोताना अनिमाने नूल्यो थको धरती उपर पग राखे नही, पोतानेज तत्ववेत्ता जाणे, एमां अधर पगवडेकरी उत्प्रेक्षालंकार जाणवो. अने हइयामां जेथी उतपात उपजे एवीज करणीनो विचार करे, अने आ संसाररूप समुद्रनेविषे कर्मरूप, कल्लोलोना धकाये करी चारे गतिमां मामामोल करतो फरेछे; जेम वंटोलिया वायुमां आवीगएलुं पानडुं आकाशमां उडीने नम्यां करेछे, पण कोई ठेकाणे स्थिर थई रहेतुं नथी; तेवीज एनी अवस्था थई रहीछे. जेनी छाती रागद्वेषवमें तप्त थई रेहेछे; ते तापे करी काली एटले माया तेने राखवाथी कुटिल थइ रहेछे. अने कुबाती एटले जे माठी वातोनुंज चिंतवनकरी रहेछे. तथा पापेकरी नरेली छे माटे नारी जाणवी एवी जेनी छाती छे, एहवो ब्रह्मघाती एटले आत्मघातनो करनार मिथ्यात्वी जीव महापातकयुक्त छे ॥ ए ॥

दोहराः— वंदो शिव अवगाहना, अरु वंदों शिवपंथ, जसु प्रसाद नाषा करो, नाटक नामे गरंथ. ॥ १० ॥

अर्थः— जिहां सिद्धनो अवगाह थई रह्योछे, ते क्षेत्रने हुं वंदन करुंछुं, अने ज्ञान दर्शन चारित्र ए मोक्षनो पंथके० मार्ग छे, तेने हुं वंदन करुंछुं. ए मंगलाचरण करी हवे पोतानुं प्रयोजन कहेछेः— जेना प्रसाद थकी समय सार नाटक ग्रंथ संस्कृतमां हतो ते प्राकृत नाषारूप करुंछु. ए प्रयोजन कह्यो. ॥ १० ॥

हवे आ ग्रंथना अधिकारी बनारसीदास पोतेज छे; अने एमां कहेवा लायक पोतानुं आत्मद्रव्य छे तेनुं वर्णन करेछेः—कविवर्णनं.

सवैया तेवीसा-- चेतनरूप अनूप अमूरति सिद्ध समान सदा पद मेरो; मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो: ज्ञानकला उपजी अब मोहि कहों गुननाटक आगम केरो. जासु प्रसाद सधै शिवमारग वेग मिटे घटवास वसेरो ॥ ११ ॥

अर्थः– बाह्यात्मामां अंतरात्माने अने अंतरात्मामां परमात्माना स्वरूपने जोईये, ए मारो निश्चयरूप पद कहेवा योग्य थायछे. ते चेतनरूपी अनूपम अमूर्तिक सिद्ध समान छे. जो ते निश्चयरूप पद एवो छे तो पछी ते प्रगट केम जणातु नथी? तेनो उत्तर एम छे के. मोहकर्मनुं कोई एहवुं महात्म्य छे ते प्रसंगथी आत्मअंगके० आत्म प्रदेशनेविषे महाअंधकारनो घेरो छे तेथी प्रगट लखातुंनथी. हमणा कोई ज्ञान कला मुजने उपनी छे ते कलानो अंश प्रगट थयोछे. तेथी नाटक सिद्धांत गुणनुं व्याख्यान करुंछुं. जे आगमना प्रसादवडे मोक्षमार्ग सिद्ध थाय अने जलदीथी शरीरमां वास वसवानुं मटी जाय. एटलेअशरीरपणुं सिद्धथाय.॥ ११ ॥

हवे आ ग्रंथनुं गौरवपणुं बतावीने कविराज पोतानी बुद्धिनुं मंदपणुं देखाडी लघुता जाणवे छेः– लघुता वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः–जेसैं कोउ मूरख महासमुद्र तरिबेको भुजानिसों उद्यत भयो है तजि नावरो; जेसैं गिरिउपरि विरषफल तोरिबेकों बावन पुरुष कोउमंग उतावरो; जेसे जलकुंभमें निरखी शशि प्रतिबिंब ताके गहिबेकों कर नीचो करे भावरो; तैसें मे अलपबुद्धि नाटिक आरंभ कीनो गुनीमोहि हसेंगे कहेंगे कोउ बावरो॥ १२॥

अर्थः– जेम कोई मूरख मनुष्य महासागरने तरवा चाहे अने वाहाणने छोडी हाथवडे तरवानो उद्यम करे, तो कार्य केमबने; जेम कोई वामन पुरुष होय अने पहाड उपर वृक्ष होय तेनां फलतोडवाने उतावलो थको उमंग करे, ते कार्य केवी रीते बनी शके? वली एक त्रीजो दृष्टांत कहेछे के. जेम पाणीना कुंभमां चंद्रनुं प्रतिबिंब पडेलुं जोईने कोई नादान तेने साचो चंद्र समजी हाथ नीचो करे तो तेना हाथमां चंद्रमां केवी रीते आवे? तेमज हुं अल्पबुद्धि छुं, अने आवा नाटकग्रंथनो आरंभ मे कीधो छे, ते मारोआरंभ सफल नही थशे तेवारे बीजा गुणवान पुरुषो कहेशेके. जुउ आ ग्रंथनो आरंभ करेछे एवुं कहीने गुणीजनो मने बावरो जाणी हशी काडशे ॥ १२ ॥

वली ए कार्य करवाने साहस करेछे पुनः

सवैया इकतीसाः– जैसैं कोउ रतनसों वींध्यो है रतन कोउ, तामें सूत रेशमकी दोरी पोइ गई है, तैसैं बुधीटीका करीनाटिक सुगम कीनो तापरि अलप बुद्धि सुद्धि

परिनई है; जैसै काहु देसके पुरुष जैसी भाषा कहै, तैसी तिनहूके बालकनी सिखीलई है, तैसै ज्यों गरंथको अरथ कह्यो गुरु त्यों हमारी मति कहिबेकों सावधान भई है॥ १३

जेम कोई हीरानी कणीवडे कोई कठण रतनने आगलथी वींधी राख्युं होय, ने ते पछी तेमां पटुवो रेशिमनी दोरी परोवे ते सुगम चालीजाय तो तेम आ कार्य पण थशे. केमके मुनि अमृतचंद अने पांडेराजमल जेवा पंडितो थया तेमणे आ ग्रंथनी टीका बालबोधमां करीने आ नाटकग्रंथने सुगम कर्योछे. तो तेउपर माहरी अल्प बुद्धि छे तोपण आ ग्रंथमां सुधी रीते परणमी गई छे. तेथी आ कार्य नेविषे महारी समर्थाइनो दृष्टांत देखाडुं छुं:– जेम कोई देशनो वसनारो पुरुष पोतानी देशभाषामां बोले अने तेनुं बालक होय तेपण तेनीपासे रहेतोथको ते भाषा शीखी ले छे; तेमज आ कार्य पण छे. केमके मारा गुरुए आ ग्रंथनो अर्थ मने कह्योछे, तेज प्रमाणे आ ग्रंथनो अर्थ केहेवाने मारी बुद्धि समाधिवंत थईछे. एटले आगल कहेलो पश्चाताप मटयो ॥ १३ ॥

हवे पोताना सामर्थ्यनुं कारण बतावेछे.

सवैया इकतीसाः—कबहों सुमति व्है कुमतिको बिनाश करै, कबहों विमल ज्योति अंतर जगति है; कबहों दया व्है चित्त करत दयालरूप, कबहों सुलालसा व्है लोचन लगति है; कबहों कि आरती व्है प्रभु सनमुख आवै, कबहों सु भारती व्है बाहरि बगति है; धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है १४

अर्थः– अमारा हृदयमां भगवंतनी भगती रहीछे, ते क्यारेकतो सुमतीरूप थईने कुमतीनो नाश करेछे, क्यारेक अंतरविषे ते भगती विमल ज्योतीरूप थई, ने जागृत थायछे, अर्थात् सम्यक्त चेतना तेज भगवंतनी भक्ति छे; क्यारेक तेज भक्ति दयारूप थईने चित्तने दयालरूप करेछे, अने क्यारेक ते भक्ति पोताना आत्मईश्वरने जोवानी लालसा के० लगन थकी एटले लयलागवामां लोचनोने स्थिर करेछे. अने क्यारेक तो ते भक्तिना रति के० अति रंगेकरी प्रभु सनमुख थई रेहेछे (बीजेअरथे प्रभू सनमुख आरती करेछे ते) अने क्यारेक तो ते भगति सुभारती के० भली वाणीरूप थईने बाहार बगति के० शब्द करी रहेछे. जेवी जेवी दशा धारेछे ते वारे तेवी तेवी रीतनी करनारी छे, ते एवी भगवंतनी भक्ति अमारा हृदयमां वसी रहीछे तेथी आ नाटकग्रंथ रचनारूप कार्यमां पण एक भगवंतनी भक्तिज कारण छे. एतात्पर्यार्थ छे. ॥ १४ ॥

हवे आ ग्रंथनो महिमा वर्णवेछे. अथ नाटक वर्णनः–

सवैया इकतीसाः– मोख चलबेकों सोन करमको करै बोन, जाको रस जौन बुधलौन ज्यों घुलति है; गुनको गरंथ निरगुनको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलित है; याहीके जु पछी सो उडत ज्ञान गगनमें याहीके विपछी जग जालमें रुलत है; हाटकसो विमल विराटकसो बिसतार, नाटक सुनत हीय फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

अर्थः– जेम जला सुकनवडे कार्य सिद्धि थायछे, तेम आ ग्रंथपण मोक्षमार्गें चालनारने कार्यसिद्धिनो करनार छे; तथा आ ग्रंथ कर्मरूप केफनी जाल काढवाने वमन करवावुं औषध छे; अने जैन ग्रंथनो रस छे ते रस जौन के० पामिने तेमां पंफित लोक लौननीपरे गर्क थईरह्याछे वली जेमां गुणजे ज्ञान दर्शन चारित्र तेनी ग्रंथ के० रचनाछे. परमतिनी अपेक्षाये निर्गुण जे मोक्षपद तेनो सुगम पंथ छे ते निर्गुण कहेवो छे, जेनो यश अक्षय सुख छे; जेने कहेवाने इंद्र पण अकलायछे अने आ ग्रंथनो जेणे पक्ष लीधो छे, ते तो आ ग्रंथरूप पांखना प्रजावथी ज्ञानरूप आकाशमां पक्षीनी परे उडी रह्याछे अने जे आ ग्रंथना विपक्षि छे ते पांखरहित पक्षीनी परें जगतरूप पाराधीनी जालमां रुली रह्याछे तेमाटे आ नाटकनामा ग्रंथ ते हाटक एटले सुवर्णसमान छे अने जेम गीता ग्रंथमां श्रीकृष्णे वैराटरूप महोटा विस्तारें करी देखाड्युं तेवो आ ग्रंथ पण विस्तारवंत छे एवा आ नाटक ग्रंथने श्रवण करतामां हैयाना कमाड ते फाटक के० खुली जायछे ॥ १५ ॥

दोहराः– कहों शुद्ध निहचैं कथा, कहों शुद्ध विवहार; मुक्ति पंथ कारन कहों, अनुजौको अधिकार ॥ १६ ॥

अर्थः– जे शुद्ध निश्चयरूप कथाछे ते कहीश. अने शुद्ध व्यवहार जे छे ते पण कहीश अने मुक्ति पंथनुं कारण जे छे ते पण कहीश अने अनुजवनो जे अधिकार छे ते पण हुं कहीश ॥ १६ ॥

अनुजव पदार्थनुं लक्षण कहेछेः– अनुजव वर्णनं

॥ दोहा ॥ वस्तुविचारत ध्यावतै, मन पावै विश्राम; रस स्वादन सुख ऊपजे, अनुजौ याको नाम ॥ १७ ॥

अर्थः– अजाणीवस्तु जाणवाने मनमां विचार कस्याथी तथा तेनुं चिंतन कस्याथी एम खोजतां खोजतां ज्यारे मनमां ठीक ठरे त्यारे सत्य समज्याना रसनो स्वाद प्राप्त थाय ने तेथी सुख उपजे तेनुं नाम अनुजव छे ॥ १७ ॥

दोहराः— अनुनौ चिंतामनि रतन, अनुनौ है रसकूप; अनुनौ मारग मोखको, अनुनौ मोख सरूप ॥ १७ ॥

अर्थ ॥ अनुजव जेछे तेज चिंतामनी रत्न छे, अने तेज अनुजव रसायननी कुपी छे; अनुजव तेज मोक्षनो मारग छे अने अनुजवज मोक्ष सरूप छे ॥१७॥

अनुजव महिमा.

सवैया इकतीसाः— अनुनौके रसकों रसायन कहत जग, अनुनौ अन्यास यहै तीरथकी ठौर है; अनुनौकी जो रसा कहावै सोई पोरसा सु, अनुनौ अधोरसा सु उरधकी दौर है; अनुनौकी केली यहै कामधेनु चित्रावेली, अनुनौको स्वाद पंच अमृतको कौर है; अनुनौ करम तोरै परमसों प्रीति जोरै अनुनौ समान न धरम कोउ और है ॥ १९ ॥

अर्थः— जगतवासी लोक अनुजवना रसने रसायन केहेछे, केमके जेम रसायन लोढानुं सुवर्ण करेछे, तेम अनुजव जेछे ते मिथ्यात्वने फेडीने सम्यक्ति करे छे, जेम तीर्थनी ठोर जवाथी अपावन होय ते पावन थायछे. तेम ग्रंथविषे अनुजवनो अन्यास ते अजाणने जाण करेछे. अने अनुजवनी जे रसा के० पृथवी ते हज सुवर्ण पोरसा छे, एटले अनुजवनी उत्पती छे ते सोवन पोरसानी परे वृद्धि पामेछे. अने अधोरसा के० पाताल लोक, ते पण अनुजव रूपमां छे, अने उर्ध्व लोकनी दोर ते पण अनुजवरूपमांज छे, एटले अनुजवमांज स्वर्ग नरक छे, अने अनुजवनी केली के० रमत ते कामधेनुरूप छे, ते आपणीऋद्धिने वधारनारी छे, अने ते अनुजवनी जे केली छे ते अक्षय ऋद्धि करवाने चित्रावेली छे, अने अनुजवनोस्वाद ते पंचामृतना कौर के० ग्रास जेवो छे. अनुजव करमने तोडेछे, ने परमात्मानी प्राप्ति जोडे छे; एटले अनुजवथी खोजतां परमात्मानी प्राप्ति थायछे; तेथी सर्व धर्म धारण करवामां अनुजव जेवो बीजो कोई धर्म नथी. एटले अनुजव ज्ञान जाणवाथीज मोक्ष मार्ग नजीक छे. ॥ १९ ॥

हवे अनुजव साधवाने छ द्रव्यनुं वर्णन करेछे. तेमां प्रथम जीव द्रव्य वर्णनः—

दोहरा ॥ चेतनवंत अनंत गुन, पर्यय सकति अनंत; अलख अखंडित सर्वगत, जीव दरवविरतंत ॥ २० ॥

अर्थः— जाणवा मात्रने चेतन कहेछे तद्रूप शक्तीवान छे, जेना अनंत गुण छे. जेमां पर्याय के० नामांतरपणुं पामवानी अनंत शक्ती छे, इंद्रिय अगोचर

छे, तेथी अलक्ष छे, देहना खंम थाय पण आत्मा अखंमित छे, सर्व लोकमां नयो छे तेथी सर्व गत छे, एवुं जीव द्रव्यनुं स्वरूप छे. ते कह्यो. ॥ २० ॥

हवे पुद्गल द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. अथ पुद्गल द्रव्य यथाः—

दोहराः— फरस वर्न रस गंधमय, नरद फास संठाण; अनुरूपी पुद्गल दरब, नन प्रदेश परवान ॥ २१ ॥

अर्थः—स्पर्श वर्ण रस गंध ए गुणमय सदा रहे, नरद जे सोगठीरूप राग तेना पासा मां सूक्ष्म, वृत्त, अस्त्र, चतुरस्त्र, आयत ए पांच संस्थान छे; तेथी एनुं नाम संस्थान छे. पोत पोतानी वर्गणा योग्यरूप ग्रहण करे, तेथी ए पुद्गल द्रव्य अनुरूपी अथवा पर माणुंरूपी छे. जेम आकाश प्रदेश अनंत छे, तेम ए पण अनंत प्रमाण छे ॥ २१ ॥

हवे धर्म द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. धर्म द्रव्य यथा.

दोहराः— जैसे सलिल समूहमें, करै मीन गति कर्म; तैसै पुद्गल जीवको, चल न सहाई धर्म. ॥ २२ ॥

अर्थः--जेम पाणीना नरावमां माछलुं गमन क्रिया करेछे, तहां क्रियानो कर्त्ता माछलुं छे, अने सलिल समूह जे पाणीनो नराव ते क्रियानो साधक छे तेम पुद्गलद्रव्यनी तथा जीवद्रव्यनी चलन क्रियानो साधक धर्मास्तिकाय द्रव्य छे. ॥ २२ ॥

हवे अधर्मास्तिकाय द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. अधर्म द्रव्य यथा.

दोहराः— ज्यों पंथिक ग्रीषमसमै, बैठे छाया माहिं; त्यों अधर्मकी नूमिमें, जड चेतन ठहरांहि. ॥ २३ ॥

अर्थः-- जेम कोई वटेमार्गु बेसवानी क्रियानो कर्त्ताछे, ने क्रियानी साधक छाया छे, तेम अधर्मास्तिकायनी नूमी के० अवगाहना तेमां जड जे पुद्गल ने चेतन जे जीव ते बने स्थिर थायछे, तेथी अधर्मास्तिकाय द्रव्य स्थिरतानुं कारणछे. ॥ २३ ॥

हवे आकाश द्रव्यनुं लक्षण कहेछे. आकाश द्रव्य यथा.

दोहराः— संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास; जो नाजन सब जगत को, सोइ दरब आकाश. ॥ २४ ॥

अर्थः-- संतत के० निरंतर जेना उदरमां समस्त पदार्थ वसी रह्याछे, अने जे सर्व जगतनुं नाजन के० आधारनूत छे, ते आकाश द्रव्य जाणवुं. ॥ २४ ॥

हवे कालद्रव्यनुं लक्षण कहेछे. काल द्रव्य यथा.

दोहराः-- जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तु थिति ठान, परावर्त्तवर्त्तन करै, काल दरब सो जान. ॥ २५ ॥

अर्थः-- जे द्रव्य वडे सघला वस्तुनी स्थिति बंधाय एटले पेला सकल वस्तुने नवी बतावे, ने पछवाडेथी ते सघलीने जुनी करी देखाडे, अने उलट पालट वर्त्तवानी दशाधरे ते कालद्रव्य जाणवुं. ॥ २५ ॥

हवे आ ग्रंथमां कहेवा लायक नव तत्व छे तेनुं वर्णन करेछेः-- तेमां प्रथम जीवतत्वनी समज पाडेछे. नवतत्व वर्णनं, जीवतत्व यथा.

दोहराः-- समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास; वेदकता चैतन्यता, ए सब जीव विलास. ॥ २६ ॥

अर्थः-- सर्व जीव बराबर छे ए समता, घटघटमां रमी रेहेछे ए रमता, ऊर्ध्व दिशे गमन करवुं ए उरधता, सर्व पदार्थनो जाणनार ते ज्ञायकता सुखमय भासे छे तेथी सुखभास, सुखदुःख वेदे ए वेदकता, अने चेतना गुणथी चैतन्यता ए सघलो जीव तत्वनो विलासछे. ॥ २६ ॥

अथ अजीवतत्व यथा.

दोहाः-- तनता मनता वचनता, जडता जड संमेल; लघुता गुरुता गमनता, ए अजीवके खेल. ॥ २७ ॥

अर्थः-- शरीरपणुं, मनपणुं, वचनपणुं, जडवस्तुमां भेलभेल थवापणुं, लघुपणुं, गुरुपणुं, गमनपणुं ए सर्व अजीवतत्वना खेलछे. ॥ २७ ॥

अथपुन्यतत्व यथा.

दोहराः-- जो विशुद्ध भावनि बधे, अरु ऊरध मुख होय; जो सुखदायक जगतमें, पुन्य पदार्थ सोय. ॥ २८ ॥

अर्थः-- जे पदार्थ विशुद्ध परिणामथी वधे, अने जेनुं ऊर्ध्वमुखछे, ऊर्ध्वगति एज चडेछे, जे पदार्थ जगतमां सुखदायकछे, ते पुन्य पदार्थ जाणवो. ॥ २८ ॥

अथ पाप तत्व यथा.

दोहराः-- संकिलेसि भावनि बधे, सहिज अधोमुख होय; दुःखदायक संसारमें, पाप पदारथ सोय. ॥ २९ ॥

अर्थः-- जे पदार्थ संकलेश भाव वडे कषायनीवृद्धीथी वधे, सेहजे जेनी गती नीची छे अधोमुखछे, अने जगतमां दुःखदायक छे तेज पाप पदार्थ केवायछे. २९

अथ आश्रव तत्व यथा.

दोहराः-- जोई करम उद्योत धरि, होइ क्रिया रस रत्त; करषै नूतन करम कों, सोई आश्रव तत्त. ॥ ३० ॥

अर्थः-- जे कर्मनो उदय धरीने शुभ तथा अशुभ क्रियाना रसमां रत थई रहे, त्यारे नवां करमनुं करखे के० खेचवुं करे ते आश्रव तत्व केवाय. ॥ ३० ॥

अथ संवर तत्व यथा.

दोराः-- जो उपयोग सरूप धरि, वरतै जोग विरत्त; रौके आवत करमकों, सो है संवर तत्त. ॥ ३१ ॥

अर्थः-- जे शुद्ध उपयोग स्वरूपने धारीने मन वचन काया जोगथी विरक्त थको वर्त्ते अने नवां करम आवताने रोकी राखे ते संवर तत्व कहियें. ॥ ३१ ॥

अथ निर्झरा तत्व यथा.

दोहाः-- जो पूरव सत्ता करम, करि थिति पूरण आउ, खिरवैकों उद्यत भयो, सो निर्झरा लखाउ. ॥ ३२ ॥

अर्थः-- जे पूर्वे काळनेविषे आयुविना सात कर्म सत्तारूप हतां अने आयु कर्म वर्त्तमान काळमां सत्तारूप छे तेनी स्थिति पूर्ण करीने पछी नीरस कर्मने विखेरवामां जे जीव उद्यमवंत थयो ए निर्जरानुं लक्षण जाणवुं. ॥ ३२ ॥

अथ बंध तत्व यथा.

दोहाः--जो नव कर्म्म पुरानसों, मिलें गंठि दिढ होइ; सकति बढावै वंसकी, बंध पदारथ सोइ. ॥ ३३ ॥

अर्थः-- जे नवां कर्म जूना कर्म साथे आवी मळे, अने तेनी गांठ दृढ बंधाय, अने आगळ जतां ते कर्मना वंसनी शक्ती चढती थाय, ते बंध पदारथ केवाय. ३३

अथ मोक्ष तत्व यथा.

दोहाः--थिति पूरन करि जो करम, खिरे बंध पद भानि; हंस अंस उज्वल करै, मोक्ष तत्व सो जानि. ॥ ३४ ॥

अर्थः-- जे कर्मनी स्थितिने पूर्ण करीने कर्मने खेरे के० क्षयकरी नाखे अने बंध पद के० सत्तावन प्रकारें बंधस्थान तेने भानि के० भांगीने हंस के० परमात्माना अंसने क्रमे उज्वळ करे तेज मोक्ष तत्व जाणवुं. ॥ ३४ ॥

हवे कवित्त छंदमां पदार्थनी नाममाळा एटले प्रयोजनवाळा नामनी नाममाळा लखी जणावेछेः

अथ नाम माळा सूचनिका मात्र लिख्यते अथ समुच्चय वस्तुके नाम.

दोहराः--भाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व; द्रविन अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ए सर्व. ॥ ३५ ॥

अर्थः--प्रथम सामान्यपणे वस्तुना नाम कहेछे. नव, पदारथ, समय, धन, तत्व, वित्त, वस्तु, द्रव्य, द्रविण, अर्थ, इत्यादि घणां वस्तुनां नाम छे. ॥ ३५ ॥

अथ शुद्ध जीव द्रव्यके नामः-

सवैया इकतीसाः--परमपुरुष परमेसुर परमज्योति, परब्रह्म पूरन परम परधान है; अनादि अनंत अविगत अविनाशि अज, निरद्वंद मुकत मुकुंद अमलान है; निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमनि सुजान है; सरव दरसी सरबज्ञ सिद्ध सांई शिव, धनी नाथ ईश जगदीश नगवान है. ॥ ३६ ॥

अर्थः--परमपुरुष, परमेश्वर, परमज्योति, परब्रह्म, पूर्ण, परमप्रधान, अनादिअनंत, अव्यक्त, अविनाशी, अज, निर्द्वंद्व, मुक्ति, मुकुंद, अम्लान, निराबाध, निगम, निरंजन, निर्विकार, निराकार, संसारसिरोमनि, सुजान, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, सिद्ध, स्वामी, शिव, धनी, नाथ, ईश, जगदीश, नगवान, कहीये. ॥ ३६ ॥

हवे कर्म व्याप्त अशुद्ध जीव द्रव्यना नाम कहेछेः--संसारी जीव द्रव्यके नाम

चिदानंद चेतन अलख जीव समैसार, बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है; चिद्रूप स्वयंनू चिन्मूरति धरमवंत, प्रानवंत प्रानि जंतु नूत नव नोगी है; गुनधारी कलाधारी नेषधारी विद्याधारी, अंगधारी संगधारी जोगधारी जोगी है; चिन्मय अखंड हंस अषर आतमराम, करमको करतार परम विजोगी है. ॥ ३७ ॥

अर्थः--चिदानंद, चेतन, अलख, जीव, समयसार, बुद्धरूप, अबुद्ध, अशुद्धोपयोगी, चिद्रूप, स्वयंनू, चिन्मूर्ति, धर्मवंत, प्राणवंत, प्राणी, जंतु, नूत, नवनोगी, गुणधारी, कलाधारी, नेषधारी, विद्याधारी, अंगधारी, संगधारी, योगधारी, योगी, चिन्मय अखंड, हंस, अक्षर, आत्मराम, कर्मकर्त्ता, परमवियोगी कहिये. ॥ ३७ ॥

अथ आकासके नामः--

दोहराः-- खं विहाय अंबर गगन, अंतरिक्ष जगधाम; व्योम वियत नन्न मेघपथ, ए अकाशके नाम. ॥ ३८ ॥

अर्थः--खं, विहाय, अंबर, गगन, अंतरिक्ष, जगधाम, व्योम, वियत, नन्न, मेघपथ, ए आकाशनां नाम. ॥ ३८ ॥

अथ कालके नाम.

दोहाः--यम, कृतांत, अंतक, त्रिदस, आवर्त्ती मृतथान; प्रानहरन, आदित तनय, कालनाम परमान. ॥ ३९ ॥

अर्थः--यम, कृतांत, अंतक, त्रिदश, आवर्त्तीक, मृतस्थान, प्राणहरण, आदित्य तनय, एवां काळनां नाम छे. ॥ ३९ ॥

पुन्यके नाम यथा.

दोहाः--पुन्य सुकृत ऊरधवदन, अकर रोग शुभ कर्म ; सुखदायक संसारफल, भाग बहिर्मुख धर्म. ॥ ४० ॥

अर्थः--पुन्य, सुकृत, उर्ध्ववदन. अकररोग, शुभकर्म, सुखदायक, संसार फल, भाग, बहिर्मुख, धर्म,ए पुन्यनां नाम छे. ॥ ४० ॥

अथ पापके नाम यथा.

दोहाः-- पाप अधोमुख एन अघ, कंप रोग दुखधाम ; कलिल कलुष किलविष दुरित. अशुभ कर्मके नाम ॥ ४१ ॥

अर्थः-- पाप, अधोमुख, एन, अध, कंप, रोग, दुःखधाम, कलिल, कलुष. किल्विष. अने दुरित, ए अशुभ कर्मनां नाम जाणवां. ॥ ४१ ॥

अथ मोक्षके नाम.

दोहाः--सिद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, शिवमग अविचल थान ; मोषमुगति वैकुंठ शिव, पंचम गति निरवान ॥ ४२ ॥

अर्थः--सिद्धक्षेत्र, त्रिभुवनमुकुट, शिवमार्ग, अविचलस्थान, मोक्ष, मुक्ति, वैकुंठ, शिव, पंचमगति अने निर्वाण ॥ ४२ ॥

अथ बुद्धिके नाम यथा.

दोहाः--प्रज्ञा धिषना सेमुखी, धी मेधा मति बुद्धि ; सुरति मनीषा चेतना, आशय अंसविशुद्धि. ॥ ४३ ॥

अर्थः-- प्रज्ञा, धिषना, सेमुषी, धी, मेधा, मति. बुद्धि, सुरति, मनीषा, चेतना, आसय, अंसविशुद्धि कहिये ॥ ४३ ॥

अथ विचक्षण पुरुषके नामः--

दोहाः-निपुन विचछन विबुध बुध, विद्याधर विद्वान ; पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान. ॥ ४४ ॥ कलावंत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत ; ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुनीजन संत. ॥ ४५ ॥

अर्थः--निपुण, विचक्षण, विबुध, बुध, विद्याधर, विद्वान, पटु, प्रवीण, पंडित, चतुर, सुधी, सुजन अने मतिमान ॥ ४४ ॥ कलावान, कोविद, कुशल, सुमन, दक्ष, धीमंत, ज्ञाता, सज्जन, ब्रह्मविद, तज्ञ, गुणीजन अने संत. ॥ ४५ ॥

अथ मुनीश्वरके नामः–

दोहाः–मुनि महंत तापस तपी, भिक्षुक चारितधाम; यती तपोधन संयमी, व्रती साधु रिषि नाम. ॥ ४६ ॥

अर्थः–मुनी, महंत, तापस, तपी, भिक्षुक, चारित्रधाम, यति, तपोधन, संयमी. व्रती. साधु ए ऋषिना नाम जाणवां. ॥ ४६ ॥

दरसनके नामः–

दोहाः–दरस विलोकन देखनो, अवलोकन डिगचाल; लखन दृष्टि निरखन जुवन, चितवन चाहन भाल ॥ ४७ ॥

अर्थः–दर्शन, विलोकन, देखवुं, अवलोकन, इगचालन, लखवुं, दृष्टी, निरखण. जोवुं. चिंतवन, चाहन, ने भालवुं. ॥ ४७ ॥

अथ ज्ञान तथा चारित्रके नामः–

दोहाः–ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान; संयम चारित आचरण. चरन वृत्ति थिरवान ॥ ४८ ॥

अर्थः–ज्ञान, बोध, अवगम, मनन, जगद्भानु, जगजान, संयम, चारित्र, आचरण, चरण, वृत्ती, धैर्यवान. ॥ ४८ ॥

अथ साचके नामः–

दोहाः–सम्यक् सत्य अमोघ सत, निसंदेह निरधार; ठीक यथारथ उचित तथ, मिथ्या आदिअकार ॥ ४९ ॥

अर्थः–सम्यक्, सत्य, अमोघ, सत्, निःसंदेह, निर्धार, ठीक, यथार्थ, उचित, तथ्य, मिथ्या शब्दने आदि अकार लगाडीने बोलीये तो अमिथ्या शब्दथाय ते पण एनुं नाम जाणवुं ॥ ४९ ॥

अथ कूठके नामः–

दोहाः–अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक; मुधा मोघ निष्फल वितथ, अनुचित असत अठीक ॥ ५० ॥

अर्थः–अयथार्थ, मिथ्या, मृषा, वृथा, असत्य, अलीक, मुधा, मोघ, निष्फल वितथ, अनुचित, असत्य, अने, अठीक. ॥ ५० ॥ इति नाममाला समाप्ता.

अथ समयसारके द्वादश द्वार वर्णनः–

सवैया इकतीसाः–जीव निरजीव करता करम पुण्य पाप, आश्रव संवर निरजरा बंध मोष है, सरब विशुद्धि स्यादवाद साधिसाधक दुआसद दुवार धरे समैसा

र कोष है; दरवानुयोग दरवानुयोग दूरि करै, निगमको नाटक परम रस पोष है, ऐसो परमागम बनारसी बखाने यामें, ज्ञानको निदान शुद्ध चारितकी चोष है॥५१॥

अर्थः— जीवद्वार, अजीवद्वार, कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार, पुन्यपाप द्वार, आश्रवद्वा संवरद्वार, निर्जराद्वार, बंधद्वार, मोक्षद्वार, सर्व विशुद्धि द्वार, स्याद्वाद द्वार, साध्य साधकद्वार, आसमय सारना ए बारद्वाररूप कोष के० कोठार छे; आ ग्रंथमां द्रव्यानुयोग के० द्रव्यनो विचारकरवो, पछी द्रव्यानुयोग दूर करवो. ने शुद्ध आत्म सत्तानोज विचार करवानुं अने निगमके० परमात्मानुं नाटक एमां परम शांतरसनो पोष छे, ए परम सिद्धांतने वणारसीदास वखाणेछे. वळी आ ग्रंथमां ज्ञाननुं निदा नके० मूळविवरो तथा शुद्ध चारित्रनी चोख कें० चोखी क्रिया कही बतावावानीछे॥५१

अथ ग्रंथारंभको नमस्कार मंगलाचरण रूप.

दोहराः— शोभित निजअनुभूतियुत, चिदानंद भगवान; सार पदारथ आत मा, सकल पदारथ जान ॥ ५२ ॥

अर्थः— जे पदार्थ पोताना अनुभव युक्त शोभित छे, चितके० चेतना अने आ नंदित तेचिदानंद कहियें, तथा भगवान के० ज्ञानवंत छे, एवो साररूप पदार्थ सं सारमां आत्मा छे, जे समस्त पदार्थनो जाणनार महोटो ज्ञाता छे ॥ ५२ ॥

अथ आत्मानुं वर्णन करी नमस्कार करेछेः—

सवैयाः— तेईसाः— जो अपनी दुति आपु विराजत, है परधान पदारथ नामी; चेतन अंक सदा निकलंक महासुखसागरको विसरामी; जीव अजीव जिते जगमें तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी; सो शिवरूप बसै शिवथानक, ताहि विलो कनमें शिवगामी ॥ ५३ ॥

अर्थ ॥ जे पोतानी द्युतिवडेज पोते विराजमान छे, एटले पोताथी पोते भासी रह्यो छे, पण बीजा पदार्थवडे जेनो भास थतो नथी एवो कोई प्रधान पदार्थ नामी प्रसिद्ध छे. जेनुं चेतनरूप अंक के० लक्षण छे ते सदा निकलंक छे, निरंजन छे, महोटा सुखसमुद्रमां जेनो विश्रांम थई रह्योछे, एटले एकाग्रचित्तें जे सहेजे समाधिसुखमां रमी रह्योछे, जगतमां जेटला जीव अजीव पदार्थ छे, ते सर्वना गुणनो ग्राहक छे. अने अंतरजामी छे, जे घटघटमां विराजमान छे. तेहज शिवरूप के० सिद्धस्वरूप थयो थको लोकाग्रभागे सिद्धावस्थामां वसेछे; जेने ज्ञान दृष्टिवडे जोईने मुक्ति गामी जीव नमस्कार करेछे ॥ ५३ ॥

हवे भगवानना वाणीने नमस्कार करेछे अथ जिनवाणी वर्णन.

सवैया तेइसाः—जोग धरै रहि जोगसुं भिन्न अनंत गुनातम केवल ज्ञानी; तासहदे द्रहसों निकसी सरिता सम व्है श्रुत सिंधु समानी; यातें अनंत नयातम लछन, सत्य सरूप सिद्धांत बखानी; बुद्धलखै न लखै दुरबुद्धि सदा जगमांहि जगे जिनबानी५४

अर्थः— जे त्रण योगने धारेछे तथापि ते मन वचन कायना जोगथी प्रथक रहे अलिप्त रहेछे, अने अनंत गुण प्रगटताने लीधे जेनो आत्मा कोई केवल ज्ञानी पुरुष छे ते केवल ज्ञानीना हृदय रूप द्रह छे, तेमांथी जे नदीरूप थईने निकली ते शास्त्ररूप समुद्रमां जई भली छे, ज्यांथी अनंता नय स्वरूप लक्षण सत्य स्वरूपे जिनजीयें सिद्धांतमां वखाणी छे, एवी जे वाणी ते तो बुद्धिवंत तत्व दर्शी होय तेज लखे, अने दुर्बुद्धि मिथ्यामति होय ते लखे नही, जाणे नही, एवी जिनेश्वरनी वाणी जगतमां सदा जागृत थई रही छे. ॥ ५४ ॥

हवे जीव द्वारनुं विचार लखेछे ते जीव कवीश्वर पोतेज छे माटे पोतानी व्यवस्था कहेछे अथ जीवद्वार कवि व्यवस्था कथनः—

छप्पय छंदः— हों निहचें तिहुं काल, शुद्ध चेननमय मूरति; पर परिनति संयोग, भई जडता विस्फूरति; मोह कर्म पर हेतु, पाइ चेतन पर रच्चै; ज्यौं धतूर रस पान, करत नर बहु विध नच्चै; अब समय सार बर्नन करत, परम शुद्धता होत मुफ; अनयास बनारसि दास कहि, मिटो सहज भ्रमकी अरुफ. ॥ ५५ ॥

अर्थः— शुद्ध निश्चयनयवमे अतीत अनागत वर्त्तमान कालमां हुं शुद्ध चेतनामय पिंम छुं, एहिज मारी मुरति छे, ते एवी छे तारे शुद्ध स्वभाव छांमीने विभावमां केम परिणम्यो छे? एनो उत्तर कहेछे जे, कर्मादिक परवस्तु छे तेनुं अहीं परिणमन थयुं तेथी तेनी जडता अहीं विस्फूरति थई एटले जडता फेली. शिष्य पूछे छे के, एवो शुद्ध स्वभाव हतो त्यारे परपरिणति केम ग्रहण करी? तेनो उत्तर, मोह कर्म राग द्वेष रूप जे छे तेज परहेतु उत्कृष्ट कारण पामीने चेतन आत्मा परनी साथे मोहित थयो छे; तेनो दृष्टांत कहेछेः- जेम धतुरानो रस पान करी माणस तरेवार रीते नाचवा लागे, तेम अनादीनो मोह कारण पामीने चेतन जे छे ते पोतानो शुद्ध स्वभाव छांमीने विभावथी मूर्छा पामी रह्योछे. हवे समयसार के० आत्मानुं वर्णन करतांज मुफने परम शुद्धताना स्वभावनी ओलखाणथई एटले शुद्ध स्वभावनी खबर पमी तेथी विभावपणुं नाश पाम्युं. तेथी अनायास के० घणा ग्रंथ वांचवानो प्रयास कीधा विनाज वणारसी दास

ज्ञाता कहेछे.. के सहज के० आत्माने संगे अनादीथी भ्रमनी अरुफ ते मिथ्या मत मग्नता लागी रहीछे ते मारी मिथ्यामत मटी जाओ. ॥ ५५ ॥

हवे आ जीवनी शुद्धता ते आगमथी पामीये माटे आगम वर्णवे छे अथ आगम व्यवस्था कथन.

सवैया इकतीसाः– निहचैमें रूप एक विवहारमें अनेक, याही नै विरोधमें जगत भरमायो है; जगके विवाद नासिबेकों जिन आगम है. जामें स्यादवाद नाम लछन सुहायो है; दरसन मोह जाको गयो है सहजरूप, आगम प्रवान जाके हिरदेमें आयो है; अनैसो अखंडित अनूतन अनंत तेज, ऐसो पद पूरन तुरत तिन पायो है.॥५६॥

अर्थः– सर्व आगम ज्ञानरूप निश्चयनयमां एकरूप देखाय छे, अने व्यवहार नयनी अपेक्षावडे अनेक रूप देखाय छे; पण व्यवहार नयमां नयनो विरोध म होटो छे, एज नय विरोधमां जगत भरमायुं छे, अने एज भरमवडे जगतमां वाद विवाद उपज्यो छे, माटे जगतनो विवाद मटाडवाने वचमां प्रमाणिक साक्षी रूप जिनेश्वरनो आगम छे; जे आगममां स्याद्वाद नाम लेवाथी सर्वपदार्थनुं लक्षण सर्वने सोहावे छे; स्यात् एटले किवारेक द्रव्य दृष्टीए देखीए त्यारे ए नय साचो ने केवारेक पर्याय दृष्टीए जोइये त्यारे ए नय साचो; एवुं कहे थके शिष्य पूछेछे के एवो स्याद्वाद सहित जिन आगम प्रमाण छे, त्यारे सर्वना हृदयामां केम आवतो नथी? जे पुरुषनो अनादि कालनो मिथ्या दर्शन मोह गयो छे, तेना हृदयामां ए जिन आगम प्रमाणरूप आव्योछे, पण मिथ्या दर्शन मोह वालाना हृदयमां ए आवे नही; हवे स्याद्वादना जाणनारने केवुं फल मले ते केहेछेः-- जे पद नय रहित छे, एटले नयनी पठे नथी, केमके, नयतो एकांत ग्राही छे, ते पूर्ण पदने केम ग्रहण करी शके? अने पूर्ण पद अखंडितछे, ने ने वली अनादि कालथी छे, माटे अनूतन के० पुरातन छे एवुं अनंत तेजवालुं पूर्ण पद तेने ते तुरत पाम्यो छे५६

हवे निश्चय अने व्यवहार नयने लीधे आगम कह्यो तेवारे शिष्य पुछेछे के ए बे नयमां कार्य सिद्धिकारी नय कयो छे? तेनो उत्तर गुरु आपे छे.

अथ निश्चय व्यवहार कथन.

सवैया तेईसाः– ज्यों नर कोउ गिरै गिरिसों तिहि, सोइ हितू ज्यु गहै दिढ बांही; त्यों बुधकों विवहार भलो तबलों जबलों शिव प्रापति नांही; यद्यपि यों परवान तथापि सधै परमारथ चेतनमांही; जीव अव्यापक है परसों विवहार सु तौ परकी परछांही ॥ ५७ ॥

अर्थः- जेम कोई पुरुष पाहाडनी उपरथी नीचे पडतो होय ने बीजो पुरुष तेनो हाथ मजबुत झाली रही तेने पडतो अटकावी राखे, ते तेनो हीत करनार केहेवाय ; तेम पंमितोने ज्यां सुधी शिवसुखनी प्राप्ति नथी थई. तहां सुधी व्यवहार नलो छे, एटले चोथा गुणगणाथी लईने चौदमां मैलेसीकरण गुणगणसुधी व्यवहारनुं आलंबन छे ; यद्यपि ए रीते व्यवहार आलंबन प्रमाण छे. तथापि पर्मार्थे ज्ञान दर्शन चारित्रनुं शुद्धपणुं चेतन मांज सधाय ; बीजाथी न सधाय ; अने जीव जे छे ते पोताना गुणमयी छे, पोताना गुणमां व्यापी रह्योछे ; परंतु पर के० कर्मादिक जडजीव सत्ताथी न्यारा, ते साथे जीव अव्यापक छे. अने व्यवहार छे तेतो परनी छायामां रहेछे, एटले परनी निश्राविना व्यवहार न होय माटे व्यवहार करतां निश्चयनय शुद्ध छे ॥ ५७ ॥

हवे शुद्धनिश्चयनयथी जे सम्यक् दर्शन प्रगटे छे तेनी व्यवस्था विशेषपणे जाणवाने अर्थे कहेछे अथ सम्यक दर्शन व्यवस्था कथन.

सवैया इकतीसाः- शुद्ध नय निहचै अकेलो आपु चिदानंद, अपनेही गुण परजायकों गहतु है ; पूरन विज्ञान घन सोहै विवहार मांहि, नवतत्वरूपी पंच द्रव्यमें रहतु है; पंच द्रव्यनवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखै, सम्यक दरस यहै उर तैनग हतु है; सम्यक दरस जोई आतमसरूप सोई, मेरे घट प्रगटचो बनारसी कहतु है ॥५८॥

अर्थः- शुद्ध निश्चय नयनी अपेक्षा लेवाथी चेतनामय जे पदार्थ छे, ते पोतानी सत्ताये पोते एकलोज छे ; अने पोतानाज ज्ञानादिक गुणना पर्यायना अवस्था नेदने ते ग्रही रह्योछे. अने तेज सामान्य ज्ञानने शोधो. जे षट द्रव्यादिक विशेष ज्ञान तेने विज्ञान कहीये; अने तेनुं पूर्ण घन के० पिंम ते ए व्यवहार नय मांज देखायछे ; अने एज व्यवहार नयथी नवतत्वरूप लई धर्मादिक पांच द्रव्य मां एकत्र थई रहेछे. अने एवाज व्यवहारमां शुद्ध निश्चय केवलना पांच द्रव्य न्यारा छे एम जाणवुं अने नवतत्वने पण न्यारा जाणवा ; एवी द्रव्य दृष्टीथी अन्य उपाधिनो आश्रय ग्रहण करे नही, तेनेज सम्यक्दर्शनी कहीये, अने जे सम्यक् दर्शन छे, तेज आत्मस्वरूप मारा घटमां प्रगटयुं एवुं वणारसीदास कहेछे ॥५८॥

शिष्ये पुछयुं के जीव द्रव्यथी नव तत्व अने पंच द्रव्य जुदा केम जाणीए तेनो उत्तर गुरु कहेछेः- अथ जीवद्रव्य व्यवस्था अग्नि दृष्टांत.

सवैया इकतीसाः-जैसै तृन काठ बांस आरनै इत्यादि और, इंधन अनेक विध

पावकमें दहिये ; आकृति बिलोकत कहावै आगि नानारूप, दीशै एक दाहक सुनाउ जब गहिये ; तैसै नव तत्वमें नयो है बहु नेखी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये ; जाही छिन चेतना शकतिको बिचार कीजै, ताही छिन अलख अनेदरूप लहिये. ॥ ५९ ॥

जेम अग्निमां तृण, काठ, वांस अने आरने के० वननो बीजो कचरो इत्यादिक अनेक तरेना इंधण बालीये छइये ने जेवी जेवी इंधणनी आकृतीएटले (आकार) तेवी तेवी आकृतीनो अग्नी देखाय; ए रीते अग्नी नाना प्रकारनारूपनी कहेवायछे; पण ते बधा अग्नीनो स्वनाव एक सरखो दाहक छे; एम जो ग्रहण करिये तो बधो अग्नी एकरूप छे. तेमज नव तत्वमां जीव जेछे ते नातनातनो नेष धारी रह्यो छे, माटे जीव पण बहु वेशी के० नाना प्रकारनो थयो एटले शुद्धरूप जीव छे, ते मिश्रित थयो, त्यारे ए जीवने अशुद्धरूप कह्यो एवुं नाम व्यवहार नय छे; अने जे क्षणमां नवे तत्वमां एक चेतना शक्ति विचारिये, ते वखते शुद्ध निश्चयनये केवलीवडे नव तत्वनो प्रपंच अमुख्य राखीने अलक्षरूप जीव छे,ते सर्वत्र अनेदरूप पामिये शुद्ध निश्चय नय जाणवुं५९

फरी बीजी रीते शुद्ध जीव व्यवस्था कहेछे अथ जीव व्यवस्था बनवारी दृष्टांतः—

सवैया इकतीसाः—जैसै बनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम, नाना नांति नयो पँ तथापि एक नाम है, कसिके कसोटी लीक निरखै सराफ तांही, बानके प्रमान करि लेतु देतु दाम है; तैसैही अनादि पुज्ञलसों संयोगी जीव, नव तत्वरूपमें अरूपी महा धाम है ; दीशे उनमानसौं उद्योत बान गेर गैंर, दूसरो न औंर एक आतमाहि राम है ॥ ६० ॥

अर्थः—जेम सोनानी मूसमां चोखुं सोनुं गाल्युं अने सोनाथी हीण धातु ते कुधातु कहिये, तेनां नाम कहेछेः—रूपुं, त्रांबुं, सीसुं, जसत, कथीर, इत्यादि वस्तुनो जुदोजुदो हेमनी साथे मिलाप थयो तेथी जुदी जुदी जातनुं सोनुं थयुं, ते छतां एक सोनाने नामे ओलखायछे; अने तेअशुद्ध सोनाने सराफ कसोटी पथ्थर उपर कसीने तेनी लकीर जुये ने तेउपरथी सोनुं केवुं छे ते प्रमाण करे, जेम आ दस रुपीयाना नावनुं छे ने आ अगीयार रुपीयाना नावनुं छे, ने ते माफक तेना दाम आपे लिए छे. तेमज अनादि कालथी ए जीव पुज्ञल द्रव्यनो संयोगी माटे ए जीवे नव तत्वरूप व्यवस्था धारी, गतीपणे स्थितिपणे नाजनपणे वर्त्तमानपणे, आधारपणे, ए पांचे द्रव्य ग्रहण कीधां अने नवतत्वरूप धारण कर्या पण एमां कोई अरूपी महा तेजवंत द्रव्य छे ते तो कोई प्रत्यक्ष प्रमाणे ग्रहण थतुं नथी, अने अनुमान

वडे लइये छइये, तेवारे शिष्ये पुछ्युंके, अनुमान केवुं करीये छइये? त्यारे गुरु कहेछे गोरगोर उद्योतवान प्रकाशवान द्रव्य देखाय, तेतो बीजुं कोई द्रव्य नही पण एक आत्मारामज जाणवो; ए अशुद्ध निश्चय नयथी जीव कह्यो. ॥ ६० ॥

हवे एवी रीते जे खोजना करीने परिचय पामिये तेने अनुभव कहिये. ते अनुभवनुं स्वरूप केवी रीते छे? एवुं शिष्ये पूछे थके गुरु सूर्यना दृष्टांते कहेछेः—

अथ अनुभव व्यवस्था सूर्य दृष्टांत.

सवैया इकतीसाः— जैसे रविमंमलके उदै महिमंमलमें, आतप अटल तम पटल बिलातु है; तैसे परमातमाको अनुभो रहत जो लों, तो लों कहूं दुविधा न कहूं पक्ष पातु है; नयको न लेश परवानकोन परवेश, निछेपके वंसको विधंस होतु जातु है; जे जे वस्तु साधक है तेउ तहां बाधक हैं, बाकी रागदोषकी दशाकी कौन बातु है६१

अर्थः—जेम सूर्यमंमलना उदयथी पृथ्वीमंमलमां आतप के० तावरो अटल थई जाय, अने तम के० अंधकारना पमल नासी जाय, प्रकाश उद्योत थाय; तेमज शुद्ध निश्चयनयना बलवडे ज्यांसुधी अंतरात्मानेविषे परमात्मानो अनुभव रहेछे, त्यां सुधी कांई पण द्विविधता न देखाय, पोतपोताना मतनो पक्षपात न रहे. अने अहीं नयनो लेश के० अंश न पामिये. नय तो ते छे के, जेणेकरीने वस्तुनुं साधन कराय अने अनुभव तो सिद्ध वस्तुनो होय माटे अहीं अनुभवमां नयनो लेश नथी अने एमां प्रत्यक्ष परोक्षादिक प्रमाणनो पण प्रवेश नथी, केमके जे प्रमाण होय ते तो असिद्धनुं साधन करे पण सिद्ध वस्तुने सुं साधशे? अने नाम स्थापना द्रव्य भाव ए चार निक्षेपा छे, तेपण असिद्ध वस्तुनुं साधन करे छे, ते तो जेवारें परमात्मानो अनुभव सिद्ध थयो त्यारे निक्षेपाना वंसनो विध्वंसज थयो. जेम सूर्यना प्रकाशवमे अंधकारनो नाश थायछे, तेम ए सर्व विलय थाय छे. आ परमात्माने नयप्रमाण निक्षेपादिक वस्तु जे जे साधक छे ते सर्व वस्तु परमात्माना अनुभवमां बाधक छे; ज्यांसुधी नयप्रमाण अने निक्षेपानो परिवार होय त्यां सुधी शुद्ध अनुभव न होय एटलासारु ए बाधक छे. बाकी राग द्वेष दशानी शुं वात केवी! तिहां तो नयादिक कहेवाज जोइये. ॥ ६१ ॥

हवे अनुभवमां शुद्ध रूप जीवज लख्यो तेनी व्यवस्था वचन गोचर जेवी होय तेवी केहेछेः— अथ जीव व्यवस्था विवरन द्वार.

अडिल्ल छंदः— आदि अंत पूरन सुभाव संयुक्त है; पर स्वरूप परजोग कलपना मुक्त है; सदा एक रस प्रगट कही है जैनमें, शुद्ध नयातमवस्तु विराजे वैनमें॥६२॥

अर्थः— आदि निगोद अने अंत सिद्ध अवस्था, तेनी वचे चेतना रूप पोताना पूर्ण स्वनावेकरी संयुक्त डे ; अने ए चेतनामां पर स्वरूप जे जम स्वरूप. अने पर जोग जे पुजल संयोग, तेनी दशा कल्पना विचारणा तेणेकरी मुक्त डे आदि अंत सुधी एकज स्वनाव ने सदा एक चेतना रसमय प्रगट वस्तु डे ; ते शुद्ध निश्चय नयनुं आलंबन लईने जैन आगममां कही ने जेवी कही तेवी वचन व्यवहार मां पण विराजमान डे. ॥ ६२ ॥

हवे एवुंज स्वरूप वचन द्वारवडे गुरु हितोपदेश रूप केहेले:--अथ हितोपदेश.

कवित डंदः— सतगुरु कहे नव्य जीवनिसों. तोरहु तुरत मोहकी जेल; समकित रूप गहो अपनो गुन, करहु शुद्ध अनुनवको खेल ; पुदगल पिंम नाव रागादिक, इनसों नही तुमारो मेल ; ए जड प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे निन्न तोय अरु तेल ६३

अर्थः— अहो नव्यलोक वेला थाउ, मोहनो बंध तोडो, अने तमारो पोतानो समकित गुण डे, ते ग्रहण करो ; अने ते लईने पोताना शुद्ध अनुनवनो खेल खेलो. अने देखवामां जे आ शरीर डे ते पुदगल पिंम डे. अने कर्म पण पुदगल पिंम डे. अने आ पुदगल पिंमनो राग द्वेषादिक नाव ते स्वनाव डे, पण ए वस्तु साथे तहारो मिलाप नथी. केमके, ए वस्तु तो जडडे, ने प्रगट डे, एटले देखवामां आवेडे, ने तमे तो चेतन डो तथा गुप्त डो. त्यारे ते पुदगल पिंमनी ने तमारी निन्नता डेरी ; जेम पाणीने तेल निन्न डे, तेनीपरे जाणी लेवुं. ॥ ६३ ॥

हवे एवो उपदेश सांजलीने ते ज्ञाता पुरुष थयो तेनो विलास कहेडे अथ ज्ञाताविलास.

सवैया इकतीसाः-- कोउ बुद्धिवंत नर निरखें शरीर घर, नेद ज्ञान दृष्टिसों विचारै वस्तु वासतो; अतीत अनागत वरतमान मोहरस, निग्यो चिदानंद लखें बंधमें विलासतो ; बंधको बिमारि महा मोहको सुनाउ मारि, आतमको ध्यान करी देखो पर गासतो; करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप अचल अबाधित विलोकै देव सासतो. ॥ ६४ ॥

अर्थः--कोई बुद्धिवंत सम्यक्दृष्टि मनुष्य होय ते पोताना शरीरमां घरने जुये; अने जड चेतननो निन्न निन्न स्वनाव जाणवो ते नेद ज्ञान कह्यो; तेमां दृष्टी आपीने वस्तु वासतो क० वस्तु स्वनावनो विचार करे. अतीतकाल अनागतकाल ने वर्तमान कालमां मोहरसविषे नीनो थको, कर्मबंधमां विलास करतो थको पोताना चिदानंद परमात्माने लखे. ते पडी क्रमेक्रमे बंधने विदारतोज जाय. एवुं कार्यकरी मोह

ना स्वन्नावने मूकतो जाय अने पोताना आत्मानुं ध्यान करे, अने अनुन्नवमां प्रकाशरूप देखे. तारे कर्म कलंक तेहिज पंक के० कादव तेथी रहित प्रगटरूप अचल अबाधित सर्व बाध रहित एवो शाश्वत निरंजन देव परमात्मा पोते छे, एवुं देखे.

अथ गुन गुनी अन्नेद कथन व्यवस्था.

सवैया तेईसाः--शुद्ध नयातम आतमकी अनुन्नूति विज्ञान विन्नूतिहि सोई; वस्तु विचारत एक पदारथ नामक न्नेद कहावत दोई; यों सरवंग सदा लखि आपुहि. आतमध्यान करै जब कोई; मेटि अशुद्धि विन्नावदशा तब सिद्ध सरूपकि प्रापतिहोई६५

अर्थः-- हवे शुद्ध अनुन्नव जे छे ते गुण छे, एक आतमा गुणी छे, तेनुं जेवुं अन्नेद स्वरूप छे तेवी अन्नेद अवस्था कही बतावेछेः-- शुद्ध निश्चय स्वरूपी आत्मानो अनुन्नूति के० जे अनुन्नव छे. तेज विज्ञान विन्नूती के० विशेष रूप ज्ञान संपदा छे अहीं आत्मा गुणी छे ने अनुन्नवज्ञान गुण छे. हवे ए बे वस्तु शुं छे? एवो जो विचार करीये तो एकज आत्म पदार्थ न्नासेछे. एकज पदार्थमां आ गुण अने आ गुणी एवां बे नाम छे. तेज न्नेद केवायछे. एम सरवंग के० सर्व प्रकारे पोतानेज गुणगुणी रूप लखीने जारे कोई आत्मध्यान करे, तारे अशुद्धविन्नाव दशा मटीने सिद्धस्वरूपनी प्राप्ति थाय. ॥ ६५ ॥

अथ ज्ञाता चिंतवन स्वरूप कथन.

सवैया इकतीसाः-- अपनेही गुन परजायसों प्रवाहरूप, परिनयो तिहूं काल अपने आधारसों; अंतर बाहिर परकासवान एक रस. खिन्नता न गहै न्निन्न रहै न्नौ विकारसों; चेतनाके रस सरवंग न्नरि रह्यो जीव, जैसें लोंन काकर न्नर्यो है रस खारसों; पूरन सरूप अति उज्वल विज्ञान घन, मोकों होहु प्रगट विशेष निरवारसों ॥६६॥

अर्थः-- हवे एज वातने जेम ज्ञाता लोक पोताना चित्तमां चिंतवे तेवुंज स्वरूप कही देखाडे छेः-- आ जे कोई आत्मा केवागछे, ते तो विज्ञान घन छे; विशेष ज्ञानमय एक पिंड छे; ते अतीत अनागत ने वर्त्तमान ए त्रणे कालमां प्रवाह रूप कख्याथी अविछिन्न धाराये पोतानाज गुण पर्याये करीने पोतानाज ज्ञानादिक गुणनी अवस्था न्नेदने लीधे अने पोताना आधारथी परना आश्रयविना परिणम्यो रहे छे. अने ए विज्ञान घननी एवी महिमा छे के तेथी मांहे अने बाहिर एक चित्त चेतना रसवडे प्रकाशवान थयो जे पोताने जाणे ते अंतर प्रकाश अने बाह्य वस्तुने जाणे ते बाहिर प्रकाश एवा कार्यमां खिन्नता ग्रहण न करे; अने न्नव विकारथी न्यारो रही सर्व प्रदेशविषे चेतनना रसे करी जीव न्नरपूर थई रह्यो

छे. ए उपर दृष्टांत कहे छे के, जेम लुणना कांकरा खार रसथी नरेला छे, तेम चेतना रसथी जीव नरपूर थई रह्यो छे. एवुं पूर्ण स्वरूप ते अखंमित घणुंज उज्वल जे विज्ञान घन पूर्वे वखाण्युं ते मने प्रगट थाओ. निशेष निरवार ते सम विनाव दशानुं निवारण करीने पछी ए रीते ज्ञाता पुरुष मनमां चिंतवे अने ए मांज स्थिर रहे ॥ ६६ ॥

अथ ड्व्य पर्याय अनेद कथन व्यवस्था.

कवित्त छंदः— जहँ ध्रुव धर्म कर्म छय लछन, सिद्ध समाधि साध्य पद सोइ; सुधोपयोग जोग महि मंमित, साधक ताहि कहे सब कोइ; यों परतछ परोछ स्वरूप सु, साधक साध्य अवस्था दोइ; डुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवै शिव वंछक थिर होइ. ॥ ६७ ॥

अर्थः— विज्ञान घन छे ते ड्व्य छे, अने ज्ञाता केवाय ते पर्याय छे, एम विज्ञान अने ज्ञाता एकज छे, तेथी ड्व्य पर्यायनुं अनेदपणुं बतावे छेः— जहां सकल कर्मनो क्षय लखिये एवो ध्रुव धर्म जे निश्चल स्वनाव छे, एवुं कोइक सिद्धपणानुं थवुं ते तो पद साध्य केवाय छे. अने शुद्ध उपयोग लेता थका ए मन वचन काय योगमां मंमित थका तिर्थंकर साधु प्रमुख पर्याय लई रह्या छे; तेमने सहु कोई साधु कहेछे. एवुं साधुपणुं ते प्रत्यक्ष स्वरूप छे; अने साध्यपणुं ते परोक्ष स्वरूप छे. ए बन्ने अवस्था लईने एक विज्ञान घन छे. मोक्षने इछनार साधक साध्य बन्नेने एक ज्ञान संचयवडे सेवे, ते बन्ने पदमां विज्ञान घन एक छे; अने ए बन्ने पदनी सेवामां स्थिर थई रहेछे ॥ ६७ ॥

अथ ड्व्य गुण पर्याय नेद व्यवस्था कथन.

कवित्त छंदः— दर्शन ज्ञान चरन त्रिगुनातम, समल रूप कहिये विवहार; निहचे दृष्टि एकरस चेतन, नेद रहित अविचल अविकार; सम्यक् दशा प्रमाण उनै नय, निर्मल समल एकही बार; यों समकाल जीवकी परिनति, कहें जिनंद गहे गनधार. ॥ ६८ ॥

अर्थः— शिष्य पूछे छे के स्वामी तमे अनेद व्यवस्था कही ते कया नयना बल वडे कही? गुरु केहेछे के व्यवहार नय वडे ड्व्य गुण पर्यायनी नेद अवस्था छे ते कहुं छुंः—ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रणे आत्माना गुण छे; ए स्वरूपथी जे व्यवहार कहीए ते समल रूप छे; अने एज निश्चय दृष्टीथी जोइये तो दर्शन ज्ञान चारित्र एक चेतना रसमय देखाय छे, अने चेतनाज चेतन छे, तेणे करीने नेदरहि

त अविचल अविकार निर्मल रूप छे. निश्चय नय ने व्यवहार नय ए बन्ने छे ते सम्यक् दशामां प्रमाण छे; जे नय छे ते तो अभिप्राय विशेष छे, माटे एकज अ व्यक्त रूप निर्मल तथा समल रूप जाणिये. एम समकाले निर्मल अने समल जीवनी परिणति थई रही छे, ते श्री जिन देव कहे छे अने गणधर देव कहे छे. ॥६८॥

अथ व्यवहार कथनं.

दोहराः— एक रूप आतम दरव, ज्ञान चरन दृग तीन; भेद भाव परिनाम सों, विवहारे सु मलीन. ॥ ६९ ॥

अर्थः— हवे ज्ञान दर्शन चारित्रनो त्रिक छे ते व्यवहार नयथी थाय छे; ते कहे छेः--आत्म द्रव्य जे छे ते एकरूप छे, ने ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रण जे छे ते भेद भाव परिणाम छे; त्यारे एकविषे त्रण भेद थया तेथी ए व्यवहार नयवडे समल रूप थयुं. ॥ ६९ ॥

अथ निहचै स्वरूप कथन.

दोहराः-- यदपि समल विवहारसों, पर्यय शक्ति अनेक; तदपि नियत नय देखिये. शुद्ध निरंजन एक. ॥ ७० ॥

अर्थः--निश्चयनयेकरी निर्मल स्वरूपमांज ध्यावबुं भलुं छे ते केहेछेः--यद्यपि व्यवहारनयनी अपेक्षाथी आत्मानेविषे अनेक शक्ति अनेक पर्याय देखायछे; माटे ते समल छे; तोपण निश्चय नयनी अपेक्षाथी शुद्ध निरंजन एकज जाण्यामां आवेछे. ७०

अथ शुद्ध कथन.

दोहराः-- एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर; समल विमल न विचारिये, यहे सिद्धि नहि और. ॥ ७१ ॥

अर्थः— हवे शुद्धरूपीज उपादेय छे एवुं केहेछेः— जे एक शुद्ध चेतनामय रूपज देखवुं ते दर्शन, तेमज जाणवुं ते ज्ञान; अने तेमां जे रमि रहेवुं ते चारित्र छे; ते नयनी अपेक्षावडे समल अथवा विमल रूप विचारवुं नही. एहिज सिद्ध कहियें, पण बीजा स्वरूपमां सिद्ध नथी. ॥ ७१ ॥

अथ शुद्ध अनुभव प्रशंसा.

सवैया इकतीसाः— जाके पद सोहत सुलछन अनंत ज्ञान, विमल विकासवंत ज्योति लहलही है; यद्यपि त्रिविध रूप व्यवहारमें तथापि, एकता न तजै यों नियत अंग कही है; सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करिबेकों

मेरी मनसा उमही है; जाते अविचल सिद्धि होत और नांति सिद्ध, नांहि नांहि नांहि यामें धोखो नांहि सही है. ॥ ७२ ॥

अर्थः– हवे एवा स्वरूपनो अनुभव स्थिर रहेवो ते दुर्लभ छे, माटे सर्व ज्ञाता एनो मनोरथ करे छे. जेनेविषे अनंत ज्ञानरूप सुलक्षण शोभेछे, अने विमल विकाशवंत के० पोतानो तथा परनुं जाणवुं एवी ज्योति जेनेविषे लहलही छे. अने यद्यपि व्यवहारनयमां बाह्यात्मा, अंतरात्मा, तथा परमात्मा ए त्रिविध रूप छे, तथापि निश्चयनयनी अपेक्षाथी एकताने त्यजे नही एवुं एकरूपी कह्युं छे; ते एवो पदार्थतो जीव छे. हवे ते युक्तिथी करी आगल केहेशे. ते युक्तियेकरी निरंतर तेनुं ध्यान करवाने मारी होंस मनमां उमंगी रहीछे. जेना ध्यानथी पोतानी ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रुद्धि अविचल थायछे, एज रीते सिद्ध छे पण बीजे कोई प्रकारे सिद्धि नथी. एमां कई धोखो नथी एटले जूठुं नथी एज वात साची छे

अथ ज्ञाताकी व्यवस्था वर्णनं.

सवैया तेईसाः-- के अपनो पद आपु सँभारत, के गुरुके मुखकी सुनि बानी; भेद विज्ञान जग्यो जिनके प्रगटे सु विवेक कला रज धानी; भाव अनंत भये प्रतिबिंबत, जीवन मोष दशा ठहरानी; ते नर दर्पनज्यों अविकार रहै थिर रूप सदा सुखदानी ॥ ७३ ॥

अर्थः-- हवे भेद विज्ञानवडे एनो अनुभव थाय छे तेथी मुक्ति मले तेज परमार्थ कहेछेः– कोई तो पोतानुं पद जे पोतानुं निरालंब स्वरूप, ते पोतेज संभारीने पोतावडे ग्रंथी भेदकरी पोताने ओलखेछे. कोई तो गुरुना मुखनी वाणी सांभलीने पोताने ओलखेछेः अने जेना घटमां जड चेतननुं भेद विज्ञान जाग्युं, तेणे करी पोताना चेतन रूपनी जे न्यारी कला छे, तेनी राजधानी जे तेनुं ईश्वरपणुं जेना घटमां प्रगट्युं; अने एज राजधानीमां अनंत भाव पदार्थ प्रतिबिंबित थयां तेना ज्ञायक थया एटले जीवता थकाज मोक्ष दशा भरी मुक्त स्वरूपी थया. अने एमां अनंतभाव प्रतिबिंबित थया तोपण समलरूप न थया, तेथी ते मनुष्य दर्पण एटले आरीसानीपरें विकार रहित थया, स्थिररूप थया, अने सुखदायक थयाछे ७३

अथ भेद ज्ञान प्रशंसा कथनं.

सवैया इकतीसाः--याही वर्त्तमान समै भव्यनिको मिट्यो मोह, लग्यो है अनादिको पग्यो है कर्म मलसों; उदो करै भेदज्ञान महारुचिको निधान, उरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसों; याते थिर रहै अनुभौ विलास गहै फिरि कबहों

अपनपो न कहै पुदगलसों; यहै करतूति यों जुदाइ करै जगतसों, पावकज्यों भिन्न करै कंचन उपलसों ॥ ७४ ॥

अर्थः— हवे भेदविज्ञाननी उत्पत्ति अने महिमा कहेछेः— आ वर्त्तमानकाल विषे भव्यलोकनो मोह भ्रम टली जाय जे मोह कर्म आत्माने अनादिकालथी लाग्युं छे; अने कर्ममलमां व्यापी रह्योछे; ते मोह भ्रम मटवाथी भेद विज्ञाननो उदय थाय, ते भेद विज्ञान केवुंछे ? महारुचिनुं निधान छे. ए भेद विज्ञानमां महोटी रुचि पामीये छिये एटले महारुचिनुं कारण छे. भेद विज्ञानथी गरिष्ट उर नुं अजवालुं प्रगट थायछे, ते अजवालुं केवुंछे ?

एटले महा घाम घुमथी न्यारोछे द्वंद्व दशाथी नीकली स्थिरतामां रहे, अने पोताना अनुभवनो विलास ग्रहण करे. पोताने सत्यार्थ पणे जाणे, पछी ए भेद विज्ञान पाम्या थकी शरीर कर्मादि पुद्गल रूपी जाणीने पोतानुं न कहे. आत्मारूप न कहे करतूति के० ए जे भेदविज्ञाननी क्रिया तेज जगतथी जुदाईने करे, पांच द्रव्यथी जुदाई करे, अहीं दृष्टांत बतावेछेः— जेम अग्नी माटी पाषाणने कंचनथी जुदी करे छे तेम जाणी लेवुं ॥ ७४ ॥

अथ परमार्थ शिक्षा कथन.

सवैया इकतीसाः— बानारसी कहै भैया भव्य सुनो मेरी शीख, केहू भांति कैसेहूके एसो काज कीजिए; एकहू मुहूरत मिथ्यातको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाइ अंस हंस खोजि लीजिये; वाहीको विचार वाको ध्यान यहै कोतुहल, यों ही भरि जनम परम रस पीजिए; तजी भववासको विलास सविकासरूप, अंतकरि मोहको अनंत काल जीजिए. ॥ ७५ ॥

अर्थः—हवे शुद्ध जीवद्रव्यमां रहेवुं तेज परमार्थ छे तेनी शिक्षा कहेछेः-- बणारसीदास केहेछेः-- अहो भाई भव्य जीवो, मारी शीक्षा सांभलो. केवी पण रीतेथी कोई द्रव्य क्षेत्र काल भाव पामीने एवुं काम करवुं के जेणे करीने एक मुहुर्तमात्रमां मिथ्यात मोहनो विध्वंस थाय अने ज्ञाननो अंस जगावी लेवो, अने सोहं हंसो एवी ध्वनि करतो हंस जे आत्मा तेने खोजी लइयें. पछी तेनुं लक्षण विचारवुं पछी तेने ओलखीने तेनुं ध्यान करवुं. एवी एनी कला खोजीने कुतोहल जे खेल ते कर्या करियें; अने तेज जनम परियंत परम रस पीवो. एरीते सविकार रूपथी फेली रह्यो एवो भववासनो विलास तेने तजीने तथा मोहनो अंत आणीने अनंत कालसुधी जीवीए एटला प्रकारे सिद्ध थवायछे. ॥ ७५ ॥

अथ तीर्थंकरकी स्तुति बाह्यरूप कथनः–

सवैया इकतीसाः–जाकी देहद्युतिसों दसो दिशा पवित्र नई, जाके तेज आगे सब तेजवंत रुके हैं; जाको रूप निरखी थकित महारूपवंत, जाकी वपुवाससों सुवास और लुके हैं; जाकी दिव्य धुनी सुनि श्रवनकों सुख होत, जाके तन लछन अनेक आइ ढूके हैं; तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै निरखि सुद्ध चेतनसों चुके हैं ॥ ७६ ॥

अर्थः– हवे चेतन महिमावान यथाथी पुद्गलपण महिमावान थाय माटे कविराज तीर्थंकरना बाह्य शरीररूप पुद्गलनो महिमा कहेछेः– जेनी देहनी द्युति एवी पसरी रहीछे के जेथी दसे दिशा पवित्र थई जायछे; एटले शोनायमान थायछे. अने जेना तेज आगल सर्व तेजवाला छुपी जायछे एटले सर्व देवता मंद तेजवंत थायछे. अने जेनुं रूप जोईने महारूपवंत पंच अनुतरवासी देवता पण चकित थई रहेछे अने जेना शरीरनी सुवासथी अन्य सुवासी वस्तु सर्व लुकी जायछे. अने जेनी दिव्य ध्वनि सांनलीने श्रवणने सुख थायछे. एटले नव्य अनव्य सर्वने ते वाणी मीठी लागेछे अने जेना शरीरमां अनेक शुन लक्षण आवी ढुकी रह्याछे एवा श्री जिनराज देव छे तेमना एटला गुण कह्या ते अशुद्ध व्यवहार नयनो आश्रय लईने कह्या पण, निश्चयनयथी ए कहेला गुण सर्व शुद्ध चेतननी निन्नता दर्शावेछे.७६

अथ जिन स्तुति व्यवहाररूप पुनः–

सवैया इकतीसाः–जामें बालपनो तरुनपो वृद्धपनो नांहि, आयु परजंत महा रूप महा बल है; बिनाहि जनत जाके तनमें अनेक गुन, अतिसै विराजमान काया निरमल है; जैसें बिनुपवन समुद्र अविचलरूप, तैसें जाको मन अरु आसन अचल है, ऐसो जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाकी शुनगति महा सुकृतिको फल है ॥ ७७॥

अर्थः–हवे फरी व्यवहारनय वडे जिन स्तुति करेछेः– जेमां जन्मथी मांडीने मर्ण पर्यंत महारूप अने महाबल समान रहेछे; पण बालपणुं तरुणपणुं वृद्धपणुं ए त्रण जे अवस्थाना नेद तेमां रूपमां अने बलमां नेद न पामे, जेना सहज स्वनावे जतनविना शरीरमां अनेक गुण आवी रहेछे; अने जेनेविषे चोत्रीस अतिशय गुण विराजमान थई रह्याछे; अने जेनी काया प्रस्वेदरहित निर्मल रहेछे. जेम पवननी ल्हेर विना समुद्र अचलरूप थई रहेछे तेम जेनुं मन अचल छे, ने आसनपण अचल छे; अहीं गतिनी अपेक्षाविना आस

न अचल कह्युंछे, पण निरंतर अचल आसन भजवे नही एवा जिनराजदेव जग तमां जयवंत थाओ जेनी रूडी भक्ति करवाथी महामुक्ति फलनी प्राप्ती थायछे.

यथार्थ कथनः--

दोहराः-- जिन पद नाहिं शरीरकों, जिन पद चेतन मांहि; जिन बर्नन कछु और है, यह जिन बर्नन नांहि. ॥ १८ ॥

अर्थः--एटली व्यवहार स्तुति करीने हवे सत्यार्थ वात कहे छेः--ए जे जिन नाम छे ते जीव विपाकी छे पण पुद्गल विपाकी नथी, तेथी जिनपद ते शरीरनो नथी, जिनपद तो चेतननो छे; तेथी जिनेश्वरनी स्तुति कोई औरज छे पण पूर्वे जे जिनेश्वरनी स्तुति करी ते जिन स्तुति नथी. इहां शरीर जड छे अने आत्मा चेतन छे ए बने भाव भिन्न स्वभावमां छे तेनुं दृष्टांत आपेछे. ॥ १८ ॥

अथ जड चेतन भिन्नभाव दृष्टांत कथनः--

सवैया इकतीसाः--उंचे उंचे गढके कंगुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक ली लबेकों दांत दियो है; सोहे चिहोंवर उपबनकी सघनताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है; गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनन पताल जल पियो है; ऐसो है नगर यामें नृपको न अंगकोउ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियो है॥ १९ ॥

अर्थः-- जेम कोई गढना उंचा उंचा कांगरा बीराजे छे (अहिं कवि उत्प्रेक्षणा करे छे.) पण ते कांगरा नथी पण मानुं छुं जे आ नगरमां स्वर्गलोकने गली जवाने दांत आप्यां छे; एटले जाणे स्वर्ग लोकने गली जशे. अने एनी चारे तरफ उपवन एटले बाग वाडीनी सघनता एवी शोभी रही छे के जाणे भूमिलोक एटले मनुष्य लोक तेणे घेरी लीधो छे. अने ए नगरनी चारे बाजुए उंडी खाही बनी ते जाणे नीचुं आनन एटले मुख करीने पातालज पाणी पातो होयनी ए रीते जेणे त्रणे लोक जीत्या छे एवुं नगरनुं वर्णन कीधुं पण ए नगरमां कोई राजाना अंगनुं कांई वर्णन कीधुं नथी. मतलब के चिदानंदथकी शरीरने भिन्न करी बताव्युं. ॥ १९ ॥

अथ तिर्थंकरकी निहचै स्तुति सरूप कथन वस्तु वर्णनं.

सवैया इकतीसाः-- जामें लोकालोकके सुभाउ प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान सगति बिमल जैसी आरसी; दर्शन उदोत लियो अंतराय अंतकीउ, गयो महामोह भयो परम महारसी; सन्यासी सहज जोगी जोगसों उदासी जामें, प्रकृति पंचाशी ल

गि रहि जरि आरसी; सोहै घटमंदिरमें चेतन प्रगटरूप, ऐसो जिन राज तांहि बंदत बनारशी ॥ ८० ॥

अर्थः— हवे तीर्थंकरपदने लेई रहेली जे वस्तु छे तेना स्वरूपनुं वर्णन करेछेः— जेमां लोक अने अलोकनो स्वभाव एटले खट द्रव्य भाव प्रतिभासी रहे, एवी ज्ञान शक्ति निर्मल प्रगटी छे. जेम आरीसामां पदार्थना भाव भासेछे; एवी रीते जेना ज्ञानमां सर्व भाव भासेछे; एटले ज्ञानावरण गयुं, अने दर्शनावरणना नाश थवाथी केवल दर्शन उद्योत थयुं. अने अंतराय नाश कर्यो, तेथी अनंतवीर्य धैर्यवंत थयो; अने महा मोह कर्म जे छे ते नाश पाम्यो; तेथी परम उत्कृष्ट महाऋषी थयो; तेणे करी यथाख्यात चारित्रनो संन्यास एटले तेनो धारण करनार ज्ञान दर्शन चारित्र आदि जे सहजयोग छे तेनो धरनार, मन वचन कायना योगथी उदास थईने अघातिक चार कर्मनी पंच्यासी प्रकृती सत्ताये रहि छे, ते पण बलीने खाखजेवी थई रही छे; अने जेना घटमंदिरमां चेतन देव छे ते प्रगटपणे शाक्षी रह्योछे. एवा श्री जिन राज देव तेने वणारसीदास वंदन करेछे. ए निश्चय स्तुति कही॥८०॥

हवे एवा शुद्ध चेतननी स्तुतिनुं दृष्टांत देखाडीने हवे निश्चय व्यवहारनो निर्णय करेछे. अथ श्री निश्चय व्यवहार तीर्थंकर स्तुति कथनः—

कवित्त छंदः—तनु चेतन विवहार एकसें, निहचे भिन्न भिन्न है दोइ; तनु स्तुती विवहार जीव थुति, नियत दृष्टि मिथ्या थुति सोइ; जिन सो जीव जीव सो जिनवर, तनु जिन एक न माने कोइ; ता कारन तनकी अस्तुतिसों, जिनवर कीअस्तुति नहि होइ. ॥ ८१ ॥

अर्थः—शरीर अने आत्मा ए बने व्यवहारमां एक सरखा छे; अने निश्चयथी जोइये तो बने जुदा जुदा छे. एमाटे तननी स्तुति करतां जीवनी स्तुति करियें ए व्यवहार छे. अने निश्चे दृष्टीथी जोतां ते मिथ्या स्तुतिछे. जिनपद कर्म जे छे ते जीव विपाकी छे, पण पुद्गल विपाकी नथी, तेथी जिन ते जीव छे, अने जीव ते जिन छे; पण शरीर अने जिन एक करी न मानीए; ते कारणे तननी स्तुति करी ते जिनवरनी स्तुति थई नही. ॥ ८१ ॥

अथ वस्तु स्वरूप कथन दृष्टांत करी दिढाइयतु हैः—

सवैया तेईसाः— ज्यों चिरकाल गडी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी; कोउ उखारि धरे महि ऊपरि, जो दृगवंत तिन्है सब सूझी; त्यों यह आतमकी

अनुभूति पगी जड भाव अनादि अरूझी; नैजुगतागम साधि कही गुरु, लछन वेदि विचछन बूझी. ॥ ८२ ॥

अर्थः—शिष्य पुछेछे के एवो अनूपम महिमानो धारक जीव आ शरीरमां केम पामिये? त्यारे गुरु दृष्टांत आपी न्यारी अद्भूत स्वरूप वस्तु आ शरीरमां दृढावे छेः— जेम कोई महानिधी घणा काल सूधी धरतीनी अंदर दटाई रही होय, ते अंतर गुप्त थई रहेली लक्ष्मीने कोई खोदी काढी जमीन उपर मूके त्यारे जे नेत्रवंत पुरुष छे तेने बधी देखाई आवेछे. तेम आ आत्मानो अनुभव अनादि कालथी जड एटले पुद्गल द्रव्यमां दटाई रह्यो छे. तेने नयसहित आगम जे सिद्धांत तेणेकरी गुरुए साध्य एटले साधने करी सिद्ध करी दीधाथी विचक्षण पुरुष तेने सारी पठे जाणी लियेछे. ॥ ८२ ॥

हवे तेनो भेद ज्ञान पाम्याथी उपादेय वस्तुनुं उपादान करवाथी आवे ते उपर धोबीनुं दृष्टांत बतावे छेः— अथ भेदज्ञान स्वरूप कथन धोबीको दृष्टांतः—

सवैया इकतीसाः— जैसैं कोउ जन गयो धोबीके सदन तिन्ह, पहिर्यो परायो वस्त्र मेरो मानि रह्यो है; धनी देखि कह्यो भैया यह्तु तो हमारो वस्त्र, चीन्ह्यो पहिचानतहीं त्याग भाव लह्यो है; तैसैंही अनादि पुदगलसों संयोगी जीव, संगके ममत्वसों विभावतामें बह्यो है; भेद ज्ञान भयो जब आपो पर जान्यो तब, न्यारो परभावसों स्वभाव निज गह्यो है. ॥ ८३ ॥

अर्थः— जेम कोई मनुष्य धोबीने घेर गयो अने पारकुं वस्त्र पोतानुं मानी भूलमां लईने पेहेर्युं, एटलामां ते वस्त्रनो खरो मालक मल्यो, तेणे जोईने कह्युं के, भाई, आ वस्त्र जे तें पेहेर्युं छे, ते महारो छे. ते वखते पेला मनुष्ये ते वस्त्र जोयुं ने परायुंज छे एवुं जाण्युं, तेवारे ते वस्त्रनो त्याग भाव उपज्यो, ने तेणे ते वस्त्र तेना धणीने हवाले कीधुं. तेमज जीवने अनादि कालथी पुद्गलनो संयोग थयो छे, एटले शरीर तथा कर्मनो संयोगी जीव अनादि कालनो छे. ते संगना ममत्वथी विभावता एटले उलटा भावमां वही रह्यो हतो ते ज्यारे जड चेतननी भिन्नतानुं ज्ञान थयुं त्यारे ते पोताना स्वरूपने तथा परना स्वरूपने समज्यो; अने ते पररूपथी जुदो थयो ने पोताना स्वरूपनुं ग्रहण कीधुं. ॥ ८३ ॥

ज्यारे निश्चय पोतानुं स्वरूप जाण्युं त्यारे ज्ञाता एवो विचार करवा लागे ते कहेछेः—

अथ निश्चय स्वरूप कथनः—

अडिल्ल छंदः— कहै विचछन पुरुष सदा हों एकहों; अपने रससों भर्यो आ

पनी टेकहों; मोह कर्म मम नांहि नांहि भ्रम कूप है; शुद्ध चेतना सिंधु ह्मारो रूप है. ॥ ८४ ॥

अर्थः-- विचक्षण पुरुष केहेछे के. हुं सदा एक पणे रहुं छुं; चेतना रस वडे भरपूर छुं; अने पोताना आधारथी रहुं छुं, मने बीजानो आश्रय नथी. अने जे भात भातनो मोह कर्मनो प्रपंच छे ते म्हारुं स्वरूप नथी, ए भ्रम रूप कूप छे ते मारुं स्वरूप नथी; पण शुद्ध चेतनानो सिंधु के० समुद्र ते मारुं रूप छे. ॥ ८४ ॥

हवे एवा पोताना स्वरूपने जाण्याथकी केवी अवस्था प्राप्त थई ते केहेछेः—

अथ ज्ञान व्यवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः-- तत्वकी प्रतीतिसों लख्यो है निज पर गुन. दृग ज्ञान चरन त्रिविध परिनयो है; विसद विवेक आयो आछो विसराम पायो. आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयो है; कहत बनारसी गहत पुरुषारथकों. सहज सुभाव सों विभाव मिटि गयो है; पन्नाके पकाय जैसें कंचन विमल होतु. तैसें शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है. ॥ ८५ ॥

एवी जीव तत्वनी प्रतीति थई तेणे करीने ज्ञानादिक निजगुण अने परगुण ते बीजा द्रव्यना गुण जे गति, स्थिति, अवगाह, वर्त्तना, वर्णादिक ए सर्व लखीने दर्शन, ज्ञान अने चारित्र ए त्रणे गुणनेविषे परिणमी रह्यो छे; निर्मल विवेक आव्याथी सारो विश्राम पाम्यो ते स्थिरता पामीने पोताने विषेज पोतानो सहज स्वभाव सोधी लीधो. अहीं वणारसीदास केहेछे के त्यारे आ पुरुषार्थ ते आत्मस्वरूप अर्थ तेनुं ग्रहण करीने सहज स्वभावमां राग द्वेष मोहरूपी विभाव जे अनादिकालनो हतो ते मटी गयो. अहीं दृष्टांत कहेछेः—जेम पाकी ईंटनी भठीमां गालवाथी सुवर्ण निर्मल थायछे, तेम शुद्ध चेतन निर्मलरूप थईने प्रकाश रुप थयोछे. ॥ ८५ ॥

हवे विभाव छूटवाथी निज स्वरूप प्रगटताने पामे तेउपर नटी जे नाचनारी स्त्री, तेनुं दृष्टांत कही देखाडे छेः—अथ वस्तु स्वरूप कथन पातरको दृष्टांतः—

सवैया इकतीसाः—जैसें कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवति अखारे निशि आडो पट करिके; दुहू ओर दीवटि संवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोक देखैं दृष्टि धरिके; तैसें ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेद करि. उमग्यो प्रगट रह्यो तिहुं लोक भरिके; ऐसो उपदेस सुनि चाहिये जगत जीव. सुद्धता संभारे जग जालसों निकरिके. ॥ ८६ ॥

अर्थः--जेम कोई नाचनारी स्त्री आडो पट करीने तथा वस्त्रा भूषणवडे पोतानो

वेष मनोहर बनावीने रातना वखते अखाडामां आवी ऊनो रहे, ते आडा पटथी रा त्रीनेविषे देखाय नही, ने ज्यारे अंतरपट दूर करी बेहु तरफ हाथमां काकडा सळगावी परिचय दूर करे त्यारे सर्व सन्नाना लोक दृष्टी धरीने तेनां रूप सणगार वगेरेनी शो ना प्रगट जोई शके छे, तेम ज्ञाननो सागर एवो जे आत्मा, ते मिथ्यातरूप आडा पटथी प्रछन्न रह्यो हतो, ते कोई समे मिथ्यात ग्रंथी रूप पटने नेदीने प्रगट थ यो; ते ज्ञान समुद्र त्रण लोके नरी रह्यो छे; एटले त्रणे लोक ए आत्माने विषे नासी रह्या छे. हवे गुरु केहेछे के अहो जगतवासी जीव, में जे पूर्वे उपदे श दीधो एवा उपदेशनुं श्रवण करवुं तारे जरूरनुं छे; ते सांनळी जगत जाळ मांथी निकळीने तारी शुद्ध दशाने संनारी लेईस. ॥ ८६ ॥

इति श्रीनाटिक समयसारना प्रथम जीव द्वारनुं निरूपण बाळबोध सहित समाप्त थयुं.

दोहराः--जीव तत्व अधिकार यह, कह्यो प्रगट समुझाइ; अब अधिकार अ जीवको, सुनो चतुर मन लाइ. ॥ ८७ ॥

अर्थः—जीवतत्वनुं जेवुं स्वरूप छे तेनो ए अधिकार एटले स्वरूप, लक्षण, गु ण, प्रगट समजाव्यो. हवे बीजो जे अजीवद्वारछे, तेमां अजीवनो अधिकार मुख्यपणे करीने कहुंछुं; ते चतुर लोको चित्त दईने सांनळजो. ॥ ८७ ॥

हवे अजीवने पण ज्ञानवडेज जाणवानुं बनेछे अने आ ग्रंथमां अनिध्येय ज्ञानछे माटे संपूर्ण ज्ञाननी अवस्था निरूपण करेछेः—अथ ज्ञानकी व्यवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः--परम प्रतीति उपजाइ गनधरकीसी, अंतर अनादिकी विना वता बिदारी है; नेदज्ञान दृष्टिसों बिबेककी सकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है; करमको नासकरी अनुनौ अभ्यास धारी, हियेमें हरख निज शुद्धता संनारी है; अंतराय नास गयो शुद्ध परकास नयो, ज्ञानको विलास ता कों बंदना हमारी है. ॥ ८८ ॥

अर्थः--प्रथमथी जे ज्ञानवडे नव्य लोकना आत्मामां गणधरनी माफक तत्व नी परम प्रतीति उपजावी, अने समकाळपणे अंतरात्मानेविषे अंतरनी जे अना दीनी विनावता (मूढता) तेने विदारीछे; अने जड चेतन ए बने निन्न छे एवुं नेदज्ञान प्रगटयुं तेनी दृष्टी तेज विवेकनी शकति ते साधि एटले जुदा जुदा गुण पर्याय जाण्या; अने जुदा जुदा जाणीने चेतन तथा जड तेनी दशा ठीक की धी; ते पछी गुण श्रेणीने धरीने क्षणेक्षणे कर्मनी निर्जरा करवा लाग्यो; ते करी

अनुजव अन्यास कीधो, एटले सत्य प्रत्ययमां पेगे, अने हृदयानेविषे हर्ष पाम्यो; अने पोतानी शक्ति उत्कृष्ट कीधी. ए कार्य थतां अंतराय कर्म जांग्युं, अने केवल रूप प्रकाश पाम्युं ; एवो कोई क्रमे क्रमे करी ज्ञाननो विलास उत्पन्न थयो, ते ने अमारी वंदनाछे. ॥ ८८ ॥

शिष्य पूछे छे के स्वामी, तमे जे ज्ञान विलास कह्यो, तेतो तेवोज छे ; पण ते पामवुं दूर्लज छे ; ते उपर गुरु परमार्थनी शिक्षा दिये छेः-- अथ परमार्थ शिक्षा कथनः--

सवैया इकतीसाः-- जैया जगवासी तूं उदासी व्हैके जगतसों, एक छ महीना उपदेस मेरो मानु रे ; औंर संकलप विकलपके बिकार तजि, बैठके एकंत मन एक ठोर आनु रे; तेरो घट सर तामें तुंही है कमल ताकों तूंही मधुकर है सुवास पहचानु रे;प्रापति न व्है है कछु ऐसो तूं बिचारतु है सही व्हैहे प्रापति सरूप याही जानु रे॥८९॥

अर्थः-- अरे जीव जगतवासी जाई तुं जगत के० जव भ्रमणा तेनु कारण (शब्द, स्पर्श, रूप, रसने गंध,) एने आचारांग सूत्रना वचनथी जगत कहियें तेथी उदास थईने, एक छ महिना सूधी अखंड धाराए मारो उपदेश शांजल एटले मान्य कर. एमां छ महीना कह्या ते उपलक्षणथी जाणवा ; पण नियम नथी; अने आर्त्तरौद्रध्यानथी अज्ञान दशामां संकल्प विकल्प घणा ऊठे छे ; तेथी आत्मानेविषे विकार उपजे छे ; माटे तेना विकारने तजीदे; अने एकांत आसने बेसी मनने एक ठेकाणे परिणामथी राख, तारो घट के० शरीर तेनेज सरोवर जेवो देख; अने तेमां एक उज्वल कमल जोइयें. ते कमल तूंज छे. अने तूंज उज्वल रूपने लीधे मधुकर रूपे था; एम करवाथी तूं सहस्त्र दल कमलमां विलास कर ; ए पिंडस्थ ध्यान लगाव्युं एटलुं कार्य करवाथी पोताना स्वरूपनी प्राप्ति न थशे एवुं तूं क्यारे पण विचारीश नही. एवा प्राणायामवडे कमल कोष खुलशे ने पोताना रूपनी प्राप्ति थशे ; एज रीते गुणज्ञान खुलशे ॥ ८९ ॥

हवे जीवने अजीव एक सरखा थई रह्याछे, ते जुदा जुदा लक्षणवडे देखाडेछे.

अथ वस्तु व्यवस्था वर्णनंः--

दोहराः-- चेतनवंत अनंत गुण, सहित सु आतमराम ; याते अनमिल और सब, पुग्गलके परिणाम ॥ ९० ॥

अर्थः-- चेतनावंत छे अने अनंत गुणसहित जे पदार्थ छे ते तो आतमाराम

जाणवो; अने जे एटलां लक्षणोथी मलेला नथी ते सर्व अपर पुद्गलना परिणाम जाणवा. ॥ ८० ॥

हवे एवी पिछान अनुभवविना न होय माटे अनुभवनी प्रशंसा कहेछेः–

अथ अनुभव प्रशंसाः–

कवित्त छंदः–जब चेतन सँभारि निज पौरुष, निरखै निज दृगसों निज मर्म; तब सुखरूप विमल अविनाशक, जानै जगत शिरोमनि धर्म; अनुभौ करै शुद्ध चेतनको, रमै सुभाउ वमै सब कर्म; इहि विधि सधै मुक्तिको मारग, अरु समीप आवै शिव सर्म. ॥ ८१ ॥

अर्थः–ए चेतन जे छे, ते ज्यारे पोतानुं पुरुष के० पराक्रम संभारे, ने पछे पोतानी दृष्टी करी पोतानुं मर्म जे चेतनपणुं छे ते निरखे; त्यारे पोतानो धर्म के० स्वभाव सुख रूप जे निर्मल पणुं, अविनाशी पणुं, जगत शिरोमणी पणुं, सहज स्वरूप तेने जाणे. एज अनुभव एटले जे निःसंदेह यथार्थ ज्ञान छे तेज चेतनने शुद्ध करेछे, अने एज अनुभव जे छे ते पोताना स्वभावमां रमे अने सर्व कर्मने दूर करे, एरीते अनुभववडे मुक्ति मार्ग सिद्ध थायछे; अने शिवशर्म के० मोक्षनुं सुखते पामेछे८१

हवे ए अनुभवथकी चेतनविषे पोतानुं अस्तित्व साधीने परनुं नास्तित्व साधेछेः–

अथ अनुभव प्रशंसाः–

दोहराः–बरनादिक रागादि जड, रूप हमारो नांहि; एक ब्रह्म नहि दूसरो, दीसे अनुभव मांहि. ॥ ८२ ॥

अर्थः–आ शरीरमां जे वर्ण गंध रस स्पर्श राग द्वेषादिक पदार्थनेविषे मोह छे ते मारुं आत्मरूप नथी; अने अनुभवविषे पोतानुं एकज जाणपणानुं रूप अमे जोइये छइये. पण बीजुं रूप जोता नथी. ॥ ८२ ॥

हवे जीव अजीव एक क्षेत्रावगाही थया ते जुदा केम केहेवाय? ते उपर दृष्टांत केहेछेः– अथ वस्तु विचारः–

दोहरा– खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान संयोग; न्यारो निरखत म्यान सों, लोह कहें सब लोग. ॥ ८३ ॥

अर्थः– जे सोनानी म्यानमां राखेली तलवार लोक भाषामां सोनेरी केहेवायछे, ते सोनेरीनो योगतो म्यान उपर छे; ज्यारे तरवारने सोनेरी म्यानमांथी बार काहाडी जोइये त्यारे तरवार लोढानी जणाय, पण सोनेरी नही जणाय. तेम अंतरात्मा मांहे जाणवो. ॥ ८३ ॥

हवे व्यवहार नय वडे बाह्यात्मा अने अंतरात्मा केहेवाय छे; पण एमांज नि श्चय नयथी परमात्मा छे: एवो वस्तुनो विचार कही समजावे छे. अथ निश्चय व्य वहार रूप वस्तु विचार कथनः--

दोहराः-- बरनादिक पुदगल दशा, धरे जीव बहु रूप; वस्तु विचारत करम सों, जिन्न एक चिडूप. ॥ ८४ ॥

अर्थः-- वर्णादिक ते वर्ण, गंध, रस, स्पर्शरूप ए पुदगल स्वनाव छे, तेने न वी नवी रीने जीव धारण करे छे. तेथी जीव बहु रूप धारी केहेवाय छे. अने पु दगल जे छे ते तो कर्म छे, पण वस्तुनो विचार करवाथी ए कर्म अजीव छे. अ ने चिद्रूप चिदानंद छे ते तो सर्वत्र एक स्वरूप छे, ने ते ए अजीवथी जिन्न छे.८४

हवे ए व्यवहारनो दृष्टांत बतावे छेः-- अथ व्यवहार दृष्टांत कथनः--

दोहराः- ज्यों घट कहिये घीवकों, घटको रूप न घीव; त्यों बरनादिक नाम सों, जमता लहे न जीव ॥ ८५ ॥

अर्थः-- व्यवहारमां माटीनो घडो केहेवाय छे, तेम घृतनो पण घमो केवाय छे; पण घडानुं रूप जेवुं माटी छे तेवुं घृत नथी. तेमज वर्ण गंध रस स्पर्श प्रमुख नाम कर्म अजीव रूप जड छे, तेना संयोगथी जीव जडपणुं पामे नही. ॥ ८५ ॥

हवे प्रत्यक्ष पणे निरालुं चेतननुं स्वरूप दृष्टांत देखाडी कहेछेः--

अथ चेतनको साक्षात स्वरूप कथनः--

दोहराः-- निराबाध चेतन अलख, जाने सहज सुकीव. अचल अनादि अ नंत नित, प्रगट जगतमें जीव. ॥ ८६ ॥

अर्थः-- जेनी कोई पण रीते खंमना थती नथी तेथी निराबाध एहवो चेतन पुरुष छे; अने वली इंद्रिय ज्ञानवडे लख्यो न जाय; तेथी अलख छे; अने स्व कीय जे पोतानो सहज स्वनाव ज्ञातापणुं तेने पोतेज जाणे पण बीजा अन्य ज्ञा नांतरवडे न जणाय एवा अचल स्वरूपने लीधे अनादि अनंत नित्य शाश्वत ए वो जीव जगतमां प्रत्यक्ष प्रमाण छे. ॥ ८६ ॥

हवे जीव पोतानो अनुनव पोतेज करे छे पण मिमांसक नैयायिक प्रमुख जे म बीजाथी कहे छे तेम नथी ते समजावे छेः-- अथ अनुनव विधान कथनः--

सवैया इकतीसाः-- रूप रसवंत मूरतीक एक पुदगल, रूप बिन ओर यूं अजीव दर्व छुधा है; च्यारि हैं अमूरतिक जीवनी अमूरतिक, याहितें अमूरतिक वस्तु ध्यान मुधा है; औरसों न कबहू प्रगट आपु आपहीसों, ऐसो थिर चेतन सुनाव

शुद्ध सुधा है; चेतनको अनुभौ आराधै जग तेई जीव, जिन्हके अखंड रस चाखिवे की छुधा है. ॥ ८७ ॥

अर्थः-- जेम रूपवंत तथा रसवंत कहेवाय छे तेम गंधवंत तथा स्पर्शवंत ए लक्षण जाणवाथी मूर्तिक एटले मुरतीवंत ते एक पुदगल द्रव्य जाणवुं; अने रूपादिक विना बीजा अमूर्त्तिक चार द्रव्य छे; ए रीते अजीव द्रव्यते बे प्रकारनुं छेः- हवे ए अजीव द्रव्यमां धर्म अधर्म आकाश काल ए चार अमूर्त्तिक छे; अने जीव द्रव्य पण अमूर्त्तिक छे; तेथी कोई अमूर्तिक वस्तुनुं ध्यान करवाथी मुक्ति छे एम केनारा मूर्ख छे. एथी कोई अन्य धर्मनुं आलंबन लई आत्मा द्रव्य प्रगट न थाय एवो स्थिर चेतननो स्वभाव छे एज शुद्ध सुधा के० निर्दोष अमृत रस तेज चेतनने प्रगट करे छे. एवो जे जगतने विषे चेतना स्वभाव छे ते चेतननो अनुभव के० यथार्थ ज्ञान आराधे तेज शुद्ध जीव द्रव्यना आधारक छे. अने जे अखंड रसना क्षुधावंत छे ते एना आधारक छे. ॥ ८७ ॥

हवे कोई कहे छे के, जीव अंगुष्ट प्रमाण छे, तंडुल प्रमाण छे इत्यादि कहिने जे जीवने मूर्तिमान थापेछे, तेनी मूढता बतावेछे अथ मूर्तिवर्ननंः--

सवैया तेइसाः— चेतन जीव अजीव अचेतन, लछन भेद उभै पद न्यारे; सम्यक दृष्टि उद्योत विचछन, भिन्न लखै लखिके निरधारे; जे जगमांहि अनादि अखंडित, मोह महामदके मतवारे; ते जड चेतन एक कहै तिन्हकी फिरि टेक टरै नहि टारे. ॥ ८८ ॥

अर्थः— जीवनुं लक्षण चेतन छे, ने अजीवनुं लक्षण अचेतन छे; एटले जडता छे; ए लक्षण भेदथी उभय पदार्थ जुदा जुदा छे; पण जेना घटमां समकित दृष्टिनुं अजवालुं पड्युं छे, तेज विचक्षण पुरुष ए बेहुने भिन्न भिन्न जाणे छे. अने जीव अजीव जुदा निरधार करेछे. अने जे जगतनेविषे अनादि कालना अखंडित मूर्ख अने महामोहमदवडे मतवाला छे, ते लोक जड चेतनने एक कहे छे. अने जीवने मूर्तिमान मानेछे. ते मिथ्यादृष्टिने लीधे माने छे; तेमनी टेक टालवाथी टले नही एवी होयछे ॥ ८८ ॥

हवे अजीव पुद्गलमां जीवविलास जूदोज छे, पण अविवेकी पुरुष ते जाणतो नथी; अने जे ज्ञानी होय ते जाणे ते कहे छेः-- अथ ज्ञाता विलासः--

सवैया तेईसाः— या घटमें भ्रमरूप अनादि विलास महा अविवेक अखारो; तामंहि उर सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करै अति भारो; फेरत भेष दिखावत

कोतुक, सो जलिये बरनादि पसारो; मोहसुँ भिन्न जुदो जडसों चिन, मूरति नाटक देखनहारो ॥ ९९ ॥

अर्थः– आ घटमां अनादि कालनो विस्तारवंत भ्रमरूप महा अविवेकनो अखाडो मंमाई रह्यो छे. ते अखाडामां बीजो कोई शुद्ध स्वरूप तो देखातो नथी; अने पुद्गल द्रव्य जे छे ते अत्यंत महोटो नृत्य करी रह्योछे, एज अविवेकनी आज्ञा ते अजीव पुद्गल द्रव्य छे. तेहिज एकेंद्रियादिकना वेषमां लेवरावी फेरवी फेरवी वर्णादिकना पसारनी सामग्री लेवरावी कौतुक देखाडी रह्यो छे. हवे इहां विवेकरूप जे छे ते मोहथी जे पुद्गल जड तेथी जूदो छे. तेहिज चिन्मूर्त्ति एटले चेतन राजाछे ते तो इहां नाटिकनो देखनारो छे ॥ ९९ ॥

हवे जे जीव अने अजीवनुं एकतापणुं मिथ्या ज्ञानमां भासेछे, तेतो ज्ञानदृष्टिथी भिन्न भिन्न रूप देखायछे, ते कहेछेः–अथ ज्ञान विलास कथनः–

सवैया इकतीसाः– जैसे करवत एक काठ वीचि खंम करै, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों; तैसे भेदज्ञान निज भेदक शकतिसेंति, भिन्न भिन्न करै चिदानंद पुदगलकों; अवधिकों ध्यावै मनपर्येकी अवस्था पावै, उमगिके आवै परमावधि केवलकों; याही भांति पूरन सरूपको उद्योत धरै, करै प्रतिबिंबत पदारथ सकलकों ॥ १०० ॥

अर्थः– जेम एक लाकडाने करवती वेहेरीने बे भाग करेछे. ने जेम राजहंस दूधने पाणी एकठा होय तेने जुदा जुदा करी नाखे छे. तेम जेने भवितव्य परिपाके भेदज्ञान प्रगटे ते पोतानी भेदक शक्तिवडे चिदानंद तथा पुंद्गल एकमेक होय तेने जुदा जुदा करेछे. अने तेज भेदज्ञान पोताना क्षयोपशम माफक पोतानी अवधिने ध्यावे एटले पोतानी अवधि ज्ञानरूप पर्यायने पामे, पछी तेहिज भेदज्ञानथी विशुद्ध थयेलुं मनपर्याय अवस्थाने पामे; अने तेथी विशुद्ध थईने परमावधि सुधी पोचे; एम वधते वधते भेदज्ञान थकी पोतानुं पूर्ण स्वरूप उद्योतवंत धारण करे, एटले केवल अवस्था धारे; अने सर्व पदार्थने प्रतिबिंबित करे॥१००॥

इती श्री समयसार नाटकनो बीजो अजीवद्वार बालावबोध सहित समाप्त थयो.

दोहराः– यह अजीव अधिकारको, प्रगट बखान्यो मर्म; अब सुनु जीव अजीवके, करता किरिया कर्म. ॥ १०१ ॥

अर्थः–अजीव द्वार एरीते समजावीने कह्यो अने एनुं रहस्य ए छे के अजीव पदार्थ जाणीने तेथकी जीव पदार्थ जुदो जाणवो; तेनुं वर्णन कर्युंछे. हवे जीव

नेविषे कर्त्ताकर्मक्रियानो विचार अने अजीवनेविषे पण कर्त्ताकर्मक्रियानो विचार गुरु कहेछे ने शिष्य शांनलेछे ॥ १०१ ॥

हवे कर्त्तापणामां जीवनी मिथ्या दृष्टि छे ते नेदज्ञानथी छुटे, माटे नेदज्ञाननुं माहात्म्य कहेछेः–अथ नेद ज्ञान माहात्म्य वर्ननः-

सवैया इकतीसाः--प्रथम अज्ञानी जीव कहै में सदीव एक, दूसरो न और में ही करता करमको; अंतर बिबेक आयो आपापर नेद पायो, नयो बोध गयो मिटी नारत नरमको; नासै छहों दरबके गुण परजाय सब, नासै डुःख लख्यो मुख पूरन परमको; करमको करतार मान्यो पुदगल पिंम, आपु करतार नयो आतम धरमको. ॥ २ ॥ जाहि समै जीव देहबुद्धिको विकार तजै, वेदत सरूप निज नेदत नरमको; महा परचंम मति मंमन अखंम रस, अनुनौ अन्यास परकासत परमको; ताही समै घटमें न रहै विपरीत नाव, जैसे तम नासै नानु प्रगट धरमको; ऐसो दशा आवै जब साधक कहावै तब, करता व्है कैसे करे पुग्गल करमको.॥३॥

अर्थः--प्रथमथी अज्ञानी जीव जे छे, ते पोताना रूपनी नूलवडे एमज कहेछे के निरंतर कर्मनो कर्त्ता हुंज छुं, बीजो कोई नथी. एरीते जीवनी अपेक्षा लईने कर्मनो कर्त्ता बनेछे. पछी जारे घटमां विवेक प्राप्त थाय, त्यारे निजरूपनो नेद समज्यो एटले बोध थयो, अने न्रम के० मिथ्यातनो खेल मटी गयो; ने न्रम नाश थता छए द्रव्यना गुण पर्याय आत्मानेविषे नासवा लाग्या, क्षण क्षण अवस्था नेद ते पर्याय कहीए. अने पूर्णपुरुष जे छे तेनुं मुख दीठुं, तेणे करीने कर्मनो कर्त्ता पुग्गलपिंम मान्यो. अने पोते अकर्त्ता थयो अने आत्मिक धर्म जे ज्ञायकता, वेदकता, तथा चेतनता इत्यादिक स्वनावनो हुं पोते कर्त्ता छुं एम मान्युं, एटले कर्मनो अकर्त्ता अने पोताना स्वनावनो कर्त्ता एम केहेवा लाग्यो. ॥ २ ॥

जे प्रस्तावे जीव छे, ते श्रेणीनुं आरोहण करे, अप्रमत्तता पामे, देहबुद्धिनो विकार तजे, एटले बाह्यात्माने पोतापणे जाणवो ए विकार छांमे, ने पोतानुं स्वरूप शुद्धज वेदे, अने न्रमनो नेद करे, घणी तीक्ष्णबुद्धिनो शोनानुं करनार, अने जेनो रस अखंम छे, पूर्ण रसस्वाद छे, एवो जे शुद्धात्मानो अनुनव छे तेनो अन्यास करी अंते परमात्मानो प्रकाश करे तेज प्रस्तावे घटपिंममां विपरीत नाव रहे नही, एटले अहंबुद्धि वडे जे अकर्त्ताने कर्मनो कर्त्ता करी मान्यो. ए विपरीत नाव हतो ते रहे नही. ते उपर दृष्टांत कहेछेः–जेम नानुधर्म के० सूर्यना तीक्ष्ण तेजना प्रकाशवाथी तम जे अंधकार ते सर्व नाश पामेछे; तेम एवी अप्र

मत्त दशा ज्यारे प्राप्त थाय, त्यारे ते आत्मस्वभावनो साधक थयो; ते वखत कर्म नो कर्त्ता केम थाय! अने पुद्गलरूपी कर्मने केवी रीते करे! एनो अहीं उपयोग नथी. ॥ ३ ॥

हवे अहीं प्रथम आत्माने कर्मनो कर्त्ता मानीने पछी तेने अकर्त्ता मानवो ते ज्ञानना सामर्थ्य वडे बनेछे ते कहेछेः—अथ ज्ञानसामर्थ्यवर्णनंः--

सवैया इकतीसाः— जगमें अनादिको अज्ञानी कहै मेरो कर्म, करता में याको किरियाको प्रतिपाखी है; अंतर सुमति भासी जोगसों भयो उदासी, ममता मिटाय परजाय बुद्धि नाखी है; निरभै सुभाउ लीनो अनुभौके रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचैमें राखी है; भरमकी दोरी तोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीति जोरी करमको साखी है ॥ ४ ॥

अर्थः— संसारनेविषे जीव अनादिकालथी अज्ञानीज छे, ते कहेछे के शुभ अने अशुभ कर्मनो कर्त्ता हुंज छुं क्रियानो प्रतिपक्षी के० कर्मनी क्रियानो पक्षराख नारो छुं, पछी ज्यारे अंतरमां सुमतीनो भास थयो, अने मन वचन तथा काया ना योगथी उदास थयो, एटले ए योगने पररूप समज्यो, तथा ए योगनी ममता मटी गई. अने परजाय बुद्धि के० मन वचन अने कायाना योगनी जे बुद्धि ते ना खी दीधी; अने द्रव्यबुद्धि राखीने आत्मानो जे निर्भय स्वभाव छे, तेनुं ग्रहण कीधुं अने ए स्वभावनो जे अनुभव रस तेमां भीनो के० मग्न थई रह्यो. अने सर्व व्यव हारमां प्रवृत्ति करी रह्योछे; पण दृष्टिमां श्रद्धा तो निश्चयमां राखी छे, एम करतां भर मनी दोरी तोडी नाखी, एवुं छद्मस्थपणुं मूकी दीधुं, अने आत्मिक धर्म जे पोतानो स्वभाव तेनो धोरी के० धरनारो थयो; परम साथे प्रीति जोडी, एटले सिद्धपदमां प्रीति राखीने कर्मनो साखी थयो; एटले पुद्गलकर्मने करे तेनो साक्षी थयो छे. ॥४॥

शिष्य पूछेछे के, चेतन तथा अचेतन एकक्षेत्रमां रहेछे. अने कर्म करेछे, त्यां चेतनने कर्मनो अकर्त्ता केम मनाय? गुरु कहेछे के, ज्ञानशक्तिवडे अकर्त्ता मनाय. ते कहेछे.-- अथ भेदज्ञानको सामर्थपनो कथनः--

सवैया इकतीसाः— जैसो जो दरब ताके तैसै गुन परजाय, ताहुसों मिलत पैं मिले न काहु आनसों; जीव वस्तु चेतन करम जड जाति भेद, अमिल मिलाप ज्यों नितंब जुरे कानसों; एसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भग्यो भानसों; सोइ जीव करमको करतासौ दीसे पें अकरता कह्योहै शुद्धताके परवानसों. ॥ ५ ॥

अर्थः- जे जेवुं द्रव्य होय तेना तेवा गुणपर्याय होय छे, ते तेज द्रव्यसाथे मलेछे, पण बीजा द्रव्यसाथे मलता नथी; जेम कोई स्निग्धगुणवडे घृतादिक द्रव्य पोताना पर्यायथी स्निग्ध गुणवाला द्रव्यसाथे मले, पण रुक्ष गुणवालासाथे मले नही; तेम ए जीव वस्तु चेतनजाति छे, अने कर्म जे छे ते जडजाति छे, एवो जातिभेद छे. तेथी चेतन तथा जडने अमिलनता छे, पण कांई युक्ति मिलाप नथी. जेम केडना भागनी नीचे पश्चिम प्रदेश नितंब छे, ते उपर रहेला कानसाथे केम मले? एवो गुणपर्यायनो विवेक जेना हैयामां प्रगट थयोछे, तेना हैयामां पूर्वनो उपजेलो भ्रम नाश पाम्यो, ते उपर दृष्टांत केहेछे के, जेम सूर्यनो उदय थवाथी अंधकार नासेछे, तेम नाश पामेछे; एवा विवेकवालो जीव जे छे ते कर्मनो कर्त्ता तो देखायछे पण शुद्धता जे पोतपोताना द्रव्यनी गुण परिणति तेना प्रमाणथी जीवने कर्मनो अकर्त्ताज कह्यो. ॥ ५ ॥

हवे जीव अने पुद्गलना लक्षणना भेद देखाडीने एज वात दृढ करेछेः-

अथ जीवपुद्गललक्षणभेदकथनः-

छप्पय छंदः-जीव ज्ञानगुनसहित, आपगुन परगुन ज्ञायक; आपा परगुन लखै, नांहि पुग्गल इहि लायक; जीवरूप चिद्रूप, सहज पुदगल अचेत जड; जीव अमूरति मूरतीक पुदगल अंतर वड; जबलग न होइ अनुभौ प्रगट, तबलगु मिथ्यामति लसै; करतार जीव जड करमको, सुबुधि विकाशक भ्रम नसै ॥६॥

अर्थः-जीवजे छे ते ज्ञानगुणसहित छे, अने जेम पोताना गुणनो ग्राहक छे तेमज पारका गुणनो पण ग्राहक छे. अने एज गुणना भेदे करीने पोताने तथा परने लखै के० जुएछे; एवी कला शक्ति लायक पुद्गल क्यारे पण बनी शके नही. जीवनुं स्वरूप चिद्रूप के० चेतनारूप छे, अने पुद्गलतो सेहेज भावे अचेतनारूप छे; एटले जडछे. वली जीव अमूर्त्ति छे अने पुद्गल मूर्ति छे, ए मोटुं अंतर ए बंने वच्चेछे. ज्यांसुधी शुद्धचेतननो अनुभव प्रगट न थाय. त्यांहांसुधी मिथ्यामति लसै के० दीप्तिवंत होयछे अने जडस्वरूपी कर्मनो कर्त्ता जीव छे, ते भ्रमबुद्धि छे; पण ए अनादिकालनो भ्रम ते सुबुद्धिना विकाश थवाथी नाश पामेछे. ॥ ६ ॥

हवे कर्त्ता कर्म अने क्रिया ए त्रणे स्वरूप कहेछेः-अथ कर्त्ताकर्मक्रियास्वरूपकथनः-

दोहराः-करता परिनामी दरब, करमरूप परिनाम; किरिया परजैकी फिरनि, वस्तु एक त्रय नाम. ॥ ७ ॥

अर्थः-रूपांतरने भजे ते परिणामी केहेवाय, एवुं जे द्रव्य, ते कर्त्ता कहिये; रूपां

तर थावुं ते परिणाम, अनेकर्मनुं स्वरूप कहियें; अने पर्यायनुं क्रमे क्रमे फरवुं तेने क्रिया कहिये. ए रीते कर्त्ता कर्मने क्रिया एवां त्रण नाम छे पण वस्तु तो एकज छे.७

हवे कर्त्ता, कर्म, ने क्रिया ते केहेवामां नाम भिन्न भिन्न छे पण वस्तु एकज छे ते कहेछेः-अथ कर्त्ताकर्मक्रियैकत्वकथनः–

दोहराः–कर्त्ता कर्म क्रिया करै. क्रिया कर्म करतार; नाउ भेद बहु विधि भयो, वस्तु एक निरधार ॥ ८ ॥

अर्थः--कर्त्ता त्यारे केहेवाय के ज्यारे क्रिया करे, अने क्रिया त्यारे केहेवाय के ज्यारे कर्म करे. एम नाम भेद भातभातनो पड्यो पण करवाथी कर्त्ता, करवाथी कर्म ने करवाथी क्रिया ए त्रणे एकज वस्तु छे. ॥ ८ ॥

हवे एक कर्म क्रियानो कर्त्ता एकज होयछे, ते स्थापन करेछेः–अथ कर्त्ता कर्मक्रियाप्रतिस्थापनाः--

दोहाः–एक कर्म कर्तव्यता, करै न कर्त्ता दोय; दुधा दरब सत्ता सु तो, एक भाव क्यों होय. ॥ ९ ॥

अर्थः–ए वात तो खुल्ली छे के, एक कर्मनी कर्तव्यता के० क्रिया ते एकज हो यछे. अने तेनो कर्त्ता पण एकज होयछे, पण बे कर्त्ता एकज क्रियाना करनार न होय. अही चेतन द्रव्यसत्ता अने पुद्गलद्रव्यसत्ता ते तो दुधा के० बे प्रकारें जुदी जुदी छे, ते माटे एक भाव एक कर्म केम बने ? ॥ ९ ॥

हवे कर्त्ता कर्म ने क्रियानो विचार कहेछे. अथ कर्त्ताकर्मक्रियाविवरणंः–

सवैया इकतीसाः-- एक परिनामके न करता दरब दोय, दोय परिनाम एक दर्ब न धरतु है; एक करतूति दोइ दर्ब कबहों न करै, दोई करतूति एक दर्ब न करतु है; जीव पुदगल एक खेत अवगाही दोई, अपने अपने रूप कोउ न टरतु है; जड परिनामनिको करता है पुदगल, चिदानंद चेतन सुभाउ आचरतु है॥१०

अर्थः--एक परिणामना बे द्रव्य कर्त्ता न होय, अने एक द्रव्य जे छे ते बे परिणाम धारण करे नही; ए रीते बे द्रव्य मलीने एक करतूती के० क्रिया क्यारे पण नज करे. तेमज एक द्रव्य बे क्रिया पण नहीज करे; ए व्यवस्था बुद्धि कहेवा लायक कहेछे के, जीव अने पुदगल एकमेक थई रह्यां छे ; तेथी ए बंने एक क्षेत्रावगाही थया पण पोत पोताना स्वभावथी कोई टले नही; तेथी पुद्गल जे छे ते जड छे ते जडपरिणामनोज कर्त्ता थाय; अने चिदानंद चेतन छे ते चेतन स्वभावने आचरे ॥ १० ॥

हवे सम्यकअवस्थामां कर्मनो अकर्त्ता अने मिथ्यात्वअवस्थानेविषे कर्मनो कर्त्ता छे एम कहेछेः—अथ सम्यकमिथ्याकथनंः—

सवैया इकतीसाः—महा ढीठ दुःखको वसीठ पर दर्वरूप, अंध कूप काहुपै निवार्यो नहि गयो है; ऐसो मिथ्याभाव लग्यो; जीवकों अनादिहीको, याही अहं बुद्धि लिये नाना भांति भयो है; काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेद, मम ता उछेदि शुद्ध भाउ परिनयो है; तिनही विवेक धारि बंधको विलास मारि, आतम सकतिसों जगत जीति लयो है. ॥ ११ ॥

अर्थः-- महाधृष्ट अने दुःखनो पढु आत्मद्रव्य ते परद्रव्य के० पुद्गलद्रव्य जेनुं रूप छे, पिंम छे, अने जेमां सत्य दृष्टि पोची शकती नथी. तेमाटे अंधकूप समान छे; अने कोईथी निवारण नथी थतो, एवो मिथ्याभाव जे मिथ्यात्व मोह कर्म ते जीवने अनादि काल थकी लागेलुं छे; एथी परद्रव्य तरफ जीवनी अहंबुद्धि लागी, तेथी जीव नाना प्रकारनो थयो. अने कोई समये यथाप्रवृत्तिकरणना वखते कोई भव्यजीवनो मिथ्यात अंधकार भेदायो, ते मिथ्यात्वग्रंथि भेदीने अने सर्व कार्यनेविषे जे अहंबुद्धिवडे रहेली ममता हती, तेने छेदीने शुद्ध चिदानंद भावमांज परिणमी रह्यो, ते समये ते भव्यजीव भेदविज्ञान के० जड चेतननो विवेक धारण करीने अविरति, कषाय, योग तथा प्रमाद ए जे बंधनाहेतु हता, तेनो विलास छोडीने आत्मशक्तिवडे एटले पोताना वीर्यबलवडे जगतने जीति लीयेछे; जगतथी निरालो थाय छे. ॥ ११ ॥

हवे जेम कर्मनो कर्त्ता आत्मा नथी तेम ए कर्म आत्माना करेलां नथी; अने कर्त्ता ने कर्म एक रूपज छे ते केहेछेः-- अथ यथा कर्म तथा कर्त्ता एकरूपकथनः--

सवैया इकतीसाः--शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन दुहूंको करतार जीव और नही मानीये; कर्मपिंमको विलास बर्न रस गंध फास, करता दुहूको पुदगल पर मानिये; ताते बरनादि गुन ज्ञानावरनादि कर्म, नाना परकार पुद्गलरूप जानिये; समल विमल परिनाम जे जे चेतनके, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये. १२

अर्थः-- चेतनानेविषे शुद्ध भाव तथा अशुद्ध भाव जे जाणवामां आवेछे, ते तो परिणामरूप कर्म छे; तेथी ते बनेनो कर्ता जीवज छे बीजो कोई कर्त्ता मानवो नही. अने ज्ञानने ढांकवुं दर्शनने ढांकवुं इत्यादि कर्म पिंमनो विलास छे; अने वर्ण गंध रस स्पर्श इत्यादि जे कार्य अने कर्म छे, ए बनेनो कर्त्ता पुदगलद्रव्यनेज प्रमाण राखिये; तेणे करीने वर्णादि के० वर्ण रस गंध स्पर्श गुण छे ते

अने ज्ञानावरण दर्शनावरण प्रमुख जे कर्म छे ते सर्व नाना प्रकारना पुद्गलरूप जाणवा; जेम कह्युं छे के, जोगापयडिपयेसा के० जोगवडे प्रकृतिप्रदेशबंध थाय ने तेनेविषे चेतनना समलपरिणाम के० अशुद्ध परिणाम अने विमलपरिणाम के० शुद्ध परिणाम ए जे कर्मरूपक छे ते ते सर्व अलक्ष पुरुषरूप छे, माटे कर्त्ता कर्मने एकज वखाणीए. ॥ १२ ॥

हवे ए वातना रहस्यने मिथ्यादृष्टि जाणे नही, तेना उपर हस्तिनो दृष्टांतः–

अथ मिथ्यादृष्टि बर्ननं हस्तिको दृष्टांतः–

सवैया इकतीसाः–जैसै गजराज नाज घासके गरास करि, भछत सुभाय नहि भिन्न रस लियो है; जैसै मतवारो नहि जानै सिखरनि स्वाद, झुंगमें मगन कहै गऊ दूध पियो है; तैसै मिथ्यामति जीव ज्ञान रूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्य सों सहज सुन्न हियो है; चेतन अचेतन दुहूकों मिश्र पिंड लखि, एकमेक मानै न विवेक कबु कियो है. ॥ १३ ॥

अर्थः–जेम हाथीने अनाज साथे घास भेळवीने ग्रास आपेछे ते खायछे हाथीनो स्वभाव एवोछे के, घासने अनाजनो जुदो स्वाद लेतो नथी. वळी कोई माणस मद्य पीने मतवारो थयो होयने तेने दहीने खांडथी बनेलुं शीखरण जमवाने आपीये ने पुछीये के एनो स्वाद केवोछे तो ते केहेशे के गायनुं दूध पीये तेवोछे. पण तेने दारूनी झुममां जुदा स्वादनी खबर पडती नथी, तेम जीव मिथ्यामतिवाळो थईने जोपण अनादि काळनो ज्ञानरूपी छे एटले ज्ञानमय छे तो पण पापकर्म अने पुन्यकर्ममां लीन थई रह्योछे, माटे सहज भावे शून्यहृदय थयोछे त्यारे चेतन अने अचेतन जे पुद्गल ते बेउने मिश्र के० एक पिंड जोईने एकमेक मानेछे; पुद्गलना भेळथी चेतनने पण पुद्गलकर्मनो कर्त्ता मानेछे पण कदी विवेकनी नजरथी जोतो नथी. ॥ १३ ॥

हवे जीवने कर्मनो कर्त्ता मानवो ए भ्रमवडे मनायछे; ते उपर दृष्टांत आपेछे

अथ भ्रमस्वरूपकथनदृष्टांतः–

सवैया इकतीसाः–जैसै महाधूपकी तपतिमें तिसीयो मृग, भरमसों मिथ्याजल पीवनकों धायो है; जैसै अंधकारमांहि जेवरी निरखी नर, भरमसों डरपी सरप मानि आयो है; अपने सुभाय जैसै सागर सुथिर सदा, पवन संजोगसों उछरि अकुलायो है, तैसै जीव जडसों अव्यापक सहजरूप, भरमसों करमको करता कहायो है. ॥ १४ ॥

अर्थः—जेम वैशाक ने जेठना घणा सख्त तापनी गरमीवडे मग तरस्यो थईने मृग तृषाने जोई तेने जल जरेखुं तलाव मानी ते मिथ्या जलने पीवाने दोडेछे; तथा जेम अंधारे पडेली दोरडीने जोईने कोई मनुष्य जरमवडे तेने साप जाणी मरी जायछे; वली जेम समुद्रनो स्वजाव स्थिर छे पण पवनना संजोग थकी उछलतो देखायछे, तेम जीव निश्चय थकी जोता जड वस्तुथी अव्यापक छे, पण अनादि कालनो सहज रूपी ज्रम तेणे करीने ते जीवने कर्मनो कर्ता कहेछे. ॥ १४ ॥

हवे जे सम्यक् दृष्टि थाय ते सम्यक् स्वजावे करीने ज्रम दूर करे; अने जुदो जुदोज जाव जाणे, ते उपर राजहंसपक्षीनो दृष्टांत आपेछे. अथ सम्यक् दृष्टिस्वजाववर्णनं, राजहंसके दृष्टांतः—

सवैया इकतीसाः— जैसै राजहंसके वदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो छीर न्यारो नीर है, तैसैं समकितीकी सुदृष्टिमें सहजरूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोई शरीर है; जब शुद्ध चेतनाको अनुजौ अन्यासे तब, जासै आपु अचल न दूजो उंर सीरहै; पूरव करम उदै आइके दिखाई देहि, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

अर्थः— जेम राजहंसनुं वदन के० मुखनी अंदरनी जीन, तेना अडकवाथी दूधने पाणी एकमेक होय ते फाटीने दुध जुदुं ने पाणी जुदुं थाय छे; तेमज सम्यक्दृष्टिवडे सहजरूपे जीव छे ते जुदोज जणाय ने कर्म पण जुदुंज जणाय; अने शरीर पण जुदुंज जणाय; एटले बाह्यात्मा, अंतरात्मा ने परमात्मा ए त्रणे जुदा जणाय. ज्यारे शुद्ध चेतन अनुजवनो अन्यास करे त्यारे पोतेज देखाय. कर्मादिकनो बीजा कोई साथे जेल नथी. पूर्व संचित कर्म जे छे ते निज स्थिति पूर्ण थये अथवा उदीरणा करी के० कर्म उदे आव्याथी देखाय; पण जीव काई कर्मनो कर्त्ता नथी, पण ते कर्मना उदयनो तमासो जुएछे ॥ १५ ॥

हवे शिष्य पूछे छे के, हे स्वामी जीव तथा पुजल एकमेक थई रह्या छे, त्यारे ते उनेविषे एवो जुदो जुदो स्वजाव केम जाणीये? त्यारे गुरु तेनो उत्तर आपतां पाणिनुं तथा शाकनुं दृष्टांत आपेछेः अथ कर्तृत्व स्वजाव तप्तोदक तथा व्यंजनको दृष्टांतः

सवैया इकतीसाः— जैसै उसनोदकमें उदक सुजाउ सीरो, आगिकी उसनते फरस ज्ञान लखिये; जैसै स्वाद व्यंजनमें दीसत विविध रूप, लोनको सवाद खारो जीन ज्ञान चखिये; तैसै याहि पिंममें विजावता अज्ञानरूप, ज्ञानरूप जी

व भेद ज्ञानसों परखिये, भरमसों करमको करता है चिदानंद, दरव विचार करतार भाव नखिये. ॥ १६ ॥

अर्थः— जेम उष्णोदक के० उनुं पाणी ते पाणीनो पोतानो स्वभाव तो सीरो के० शीतळज छे, पण तेनो स्पर्श करता गरम लागेछे. ते गरमी आगनी छे. अने स्वादिष्ट व्यंजन के० शाकमां भात भातनो स्वाद होय छे अने लोन के० निमकनो खारो स्वाद जुदोज जणाय छे, ते जीभ ज्ञानवडे जणाय छे; तेमज घटपिंडमां विभावता जे कर्मनी साथें चेतननुं मळवुं तेतो जेम में आ कीधुं एम मानवुं एतो अज्ञानरूप छे. अने जीव छे ते शुद्ध ज्ञानरूपी छे, एनेतो शुद्ध जाणवो एज एनुं कार्य छे ए वात भेदज्ञान वडे जणाय छे. ए चिदानंद जे छे तेने कर्मनो कर्ता मानवो ते भ्रमवडे मनाय छे! पण द्रव्यनो विचार करतां एनो कर्त्ता भाव बने नही पण ज्ञाता भावज बने ए रहस्य छे. ॥ १६ ॥

हवे निश्चय प्रमाणवडे जे जेनो कर्त्ता छे तेने जुदो बतावेछे. अथ कर्तृत्वविवरनंः

दोहाः— ज्ञानभाव ज्ञानी करै, अज्ञानी अज्ञान; दरब करम पुदगल करै, यह निहचै परवान. ॥ १७ ॥

अर्थः— ज्ञानी होय तेतो ज्ञानभाव करे एटले जाणवारूपजे कार्य छे ते करे छे; अने अज्ञानी होय ते हुं कर्त्ता छुं एम मानी अज्ञानभाव करेछे; द्रव्यरूप जे कर्म छे तेने पुद्गलज करेछे, निश्चेप्रमाणमां एवुं स्पष्ट छे. ॥ १७ ॥

शिष्य पूछेछे के हे स्वामी ज्ञानभाव ज्ञानी करे ए वात केहेतां ज्ञाननो कर्ता जीव ठरेछे, ते कया नयथी ठरेछे? तेनो उत्तर गुरु आपेछेः—अथ व्यवहार कर्तृत्वकथन.

दोहाः— ज्ञानसरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और; दर्व कर्म चेतन करै, यह विवहारी दौर. ॥ १८ ॥

अर्थः— आत्मा ज्ञानस्वरूपी छे माटे ज्ञानने तो तेज करे, पण बीजो नही. ए निश्चय. अने जे एम कहेछे के, द्रव्यकर्मनो करता पण चेतन छे तेतो व्यवहारमां कहेवाय. ॥ १८ ॥

हवे शिष्य प्रश्नः— कर्तृत्वकथनः—

सवैया तेईसाः—पुदगल कर्म करै नहि जीव कही तुम में समुझी नहि तैसी; कौन करै यहु रूप कहो अब, को करता करनी कहु कैसी; आपुहि आपु मिलै बिछुरै जड क्यों करि मोमन संशय ऐसी; शिष्य संदेह निवारन कारन बात कहै गुरु है कछु जैसी. ॥ १९ ॥

अर्थः--हवे शिष्य पूछे छे के, जीवने निश्चयनयथी ज्ञाननो कर्त्ता कह्यो ने कर्मनो अकर्त्ता कह्यो, तेनुं शुं कारण? हे गुरु पुद्गल द्रव्यरूप कर्मने जीव करे नही एवी जे वात तमे कही, ते वात हुं यथार्थ समज्यो नही. ए पुद्गलरूपी कर्मनो स्वभाव करे? इहां कर्त्ता तो जणावता नथी अने तेनी क्रिया केवी छे ते कहो. वली पुद्गल कर्मनो कर्त्ता पुद्गलनेज बनावोछो त्यारे कर्ता कर्म बंने जड थया, ते पोतानी मेले मलवुं छूटा थावुं केम बनी शके? ए मारा मनमां संदेह छे. शिष्यना संदेह निवारवाने आ प्रश्ननो यथार्थ उत्तर गुरु हवे कहेछेः— ॥ १९ ॥

अथ गुरु उत्तर कथनः—

दोहाः— पुदगल परिनामी दरब, सदा परिनमै सोय; याते पुदगल करमको, पुदगल कर्त्ता होय ॥ २० ॥

अर्थः— हे शिष्य, पुदगल जे छे ते परिणामी द्रव्य छे. क्षण क्षणमां तरेहवार बनी जायछे तेमाटे सदा परिणमी रह्यो छे ते युक्तिथी पुद्गलिक कर्मनो कर्ता पुद्गलज थई शकेछे. ॥ २० ॥

अथ पुनः शिष्य प्रश्नः—

अडिल छंदः—ज्ञानवंतको भोग निर्जरा हेतु है; अज्ञानीको भोग बंध फल देतु है; यह अचरजकी बात हिये नहि आवही; बूझै कोऊ शिष्य गुरू समुझावही. ॥ २१ ॥

अर्थः—हवे शिष्य पूछेछे के, ज्ञानभाव ज्ञानी करे एवुं कहेवाथी भोग निर्जरारूपी थाय छे ते केम? ज्ञानी भोग भोगवे ते कर्मनी निर्जरा करेछे, त्यारे तो ज्ञानीनो भोग निर्जरानो हेतु छे अने अज्ञानी जे भोग भोगवे ते कर्म बंधन करेछे; त्यारे तो अज्ञानीनेज भोग बंध फलदाई कह्यो एतो अचरजनी वातछे; केमके भोग भोगववामां समान होय ने एकनो भोग निर्जरानो कारक अने बीजानो भोग बंधनो कारक एम केम बने? अने ए वात हृदयमां बसती नथी. आवुं शिष्यनुं केहेवुं सांभलीने गुरु तेनो उत्तर कहेछेः— ॥ २१ ॥

अथ गुरु उत्तर कथनः—

सवैया इकतीसाः--दया दान पूजादिक विषय कषायादिक, दोहू कर्म भोग पै दुहूको एक खेतु है; ज्ञानी मूढ करम करत दीसे एकसे पें, परिनाम भेद न्यारो न्यारो फल देतु है; ज्ञानवंत करनी करै पें उदासीन रूप, ममता न धरै ताते निर्जराको हेतु है; वहे करतूति मूढ करै पै मगन रूप, अंध भयो ममता सो बंध फल लेतु है. ॥ २२ ॥

अर्थः--दया पालवी, दान देवुं, पूजा प्रमुख करवी, एक एवी रीतना कर्मछे, अने पांच इंद्रिओना विषयनुं सेवन करवुं, कषायनुं सेवन करवुं; एक एवी रीतना कर्म छे, ए बंने कर्मनो संसारमां जोग छे, पण क्षेत्र एक छे, तेथी बंने बंधरूप छे. अने ज्ञानी पण ए बे कर्म करे छे, तथा अज्ञानी पण करे छे, अने ए कर्म करतां तो ज्ञानी अज्ञानी एक सरखाज देखाय छे, पण एना परिणाम भेद जुदां जुदां छे माटे ए कर्मनुं फल जुदो जुदो आपे छे. ज्ञानवान जे कर्म क्रिया करेछे, ते उदासीन रूप थईने करे छे, एटले एनी मेले उदय आवेलुं कर्म करेछे, पण ममता धरतो नथी; ए माटे निर्जरानो हेतु छे. अने एज कर्म क्रिया मूढ करे छे, पण ए क्रिया करवामां आनंद रूप रहे छे; ने निजात्म शुद्धीने बिसरी जाय छे; एटले अंध जेवो बनी जाय छे, अने ममता धारण करे छे, तेथी बंध फलने लिये छे; एज माटे अज्ञानी अज्ञाननो करता ठरे छे. ॥ २२ ॥

हवे कुंभारनुं दृष्टांत आपीने मूढनुं कर्तापणुं शिद्ध करेछेः–

अथ मूढ कर्तृत्व कथन कुलाल दृष्टांतः–

छप्पय छंदः–ज्यों माटीमहि कलस, होनकी शक्ति रहै ध्रुव; दंड चक्र चीवर कुलाल बाहिज निमित्त हुव; त्यों पुदगल परवानु, पुंज बरगना भेष धरि; ज्ञानी बरनादिक सरूप बिचरंत विविध परि; बाहिज निमित्त बहिरातमा, गहि संसै अज्ञान मति; जगमांहि अहंकृत भावसों, करम रूप व्है परिनमति. ॥ २३ ॥

अर्थः–जेम कलसरूप कार्य थवामां माटी द्रव्यनी शक्ति ध्रुव के० निश्चय छे. अने ते कार्यनेविषे तेने फेरववानो दंड अने चक्र के० चाकने चीवर उतारवानी दोरी ने कुंभार ए सर्व बाह्य निमित्त थया. तेम परमाणु पुद्गलनो पुंज ते बंधपणुं धरीने कार्मणवर्गणानो भेष धरीने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय आउषो नामकर्म गोत्रकर्म अंतराय ए स्वरूपे विविध के० भात भातनो पुद्गल खंध बिचर्यो अहीं बहिरात्मा एटले देव मनुष्यादिरूपी बाह्यात्मा बाह्यनिमित्त थईने; भ्रम रूपी अज्ञान ग्रहीने अंही कारण बन्यो; त्यारे जगतमां अहंकारबुद्धिनी संगति तेहिज पुद्गलखंध कर्मरूप बनीने परिणम्यो छे. ॥ २३ ॥

हवे निश्चे जीवनुं अकर्त्तापणुं मानीने एना अनुभवमां रेहेवुं तेनुं माहात्म्य कहेछेः--

अथ शुद्धानुभव महात्म्य कथनः–

सवैया तेईसाः-- जे न करै नयपक्ष विवाद धरै न विषाद अलीक न भाखै; जे उदवेग तजे घट अंतर, शीतलभाव निरंतर राखै; जे न गुनी गुन भेद बिचारत,

आकुलता मनकी सब नाखै; ते जगमें धरि आतमध्यान अखंडित ज्ञानसुधारस चाखै

अर्थः—जेम मिथ्याती लोक पोतपोताना नयनो पक्ष धरीने पोतपोतामां विवाद करेछे तेम न करतां जे सहज आनंदमां रहेछे; ने विषाद धरता नथी, अने जूठुं बोलता नथी, अने दुष्ट ध्यान धरता नथी एटले उदवेगनो त्याग करेछे; अने हमेश पोताना हृदयनेविषे शीतल भाव राखेछे, ने एवा शुद्ध आत्माना अनुभवमां मलेछे. जेथी आत्मा गुणी छे ने ज्ञानगुण छे, एवो जेने भेद विचार रह्योज नथी, अने विकल्प के० व्याकुलताने मनमांथी काढी नाखे, एवा जे शुद्ध अनुभवी थाय, तेज आत्मध्यान धरीने जगतनेविषे संपूर्ण केवल ज्ञानरूप अमृत रस तेने चाखेछे. २४

हवे निश्चय नय थकी अकर्त्तापणानी स्थापना अने व्यवहार नयवडे कर्त्तापणानी स्थापना प्रमाण करी बतावे छेः—अथ निश्चय व्यवहारनय प्रमाण स्थापनाः—

सवैया इकतीसाः— विवहार दृष्टिसों विलोकत बंध्योसो दीसे, निहचे निहारत न बांध्यो यह किनही; एक पक्ष बंध्यो एक पक्षसों अबंध सदा, दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इनही; कोउ कहे समल विमल रूप कोउ कहे, चिदानंद तैसोई बखान्यो जैसो जिनही; बंध्यो मानै खुल्यो मानै दुहुनको भेद जानै, सोई ज्ञानवंत जीव तत्व पायो तिनही. ॥ २५ ॥

अर्थः— चतुर्गतिरूप संसारमां भ्रमण करवानो आत्मानो व्यवहार जोइए तो आत्मा कर्त्ताज देखाय ने बंधमां पण जणाय, अने निश्चयनयवडे ज्ञाननोज कर्त्ता अने ज्ञानस्वरूपी जोइये तो एज आत्मा कशामां बंधायलो नही जणाय; तेथी एकलो व्यवहार पक्ष ग्रहीये तो आत्मा बंधमां छे, ने एकलो निश्चयपक्ष ग्रहीये तो आत्मा सदा अबंध जणाय, एवा बंने पक्ष अनादिकालना ग्रहण कीधा छे. कोई व्यवहारनयवालो होय ते जीवने समल कहेछे, ने कोई निश्चयनयवालो होय ते एने विमल कहेछे. पण जेणे जेवुं पोतानी बुद्धिथी चिदानंदने वखाण्यो तेवोज चिदानंदछे. हवे जे सम्यक्दृष्टि होय तेतो आत्माने बंधायलो पण माने, अने अबंधपण माने, पण ए मानवामां बेहुनयनो भेद जे जाणे तेज ज्ञानी केहेवाय, अने तेणेज जीव तत्वनुं स्वरूप उलख्युंछे ॥ २५ ॥

हवे बेउ नयने समान राखीने समकित राखेथी समरस भावमां रहे तेनी प्रशंसा करेछेः—अथ समरसी भाव प्रशंसा कथनः—

सवैया इकतीसाः—प्रथम नियत नय दूजो विवहार नय, दुहुकों फलावत अनंत भेद फलै है; ज्यों ज्यों नय फलै त्यों त्यों मनके कलोल फलै, चंचल सुभाय

लोका लोकलौं उछलै है; ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसी नये एकतासों नही टलै है; महा मोह नासै शुद्ध अनुनो अभ्यासै निज, बल परगासै सुख रासि माहिं रलै है ॥ २६ ॥

अर्थः–पहेलोतो निश्चय नय छे, अने बीजो व्यवहार नय छे; ए बेउ नयने एक एक द्रव्य साथे फलाविये त्यारे अनंत द्रव्यनी अपेक्षाने लीधे नयना अनंत भेद फले छे. हवे ए नयना अनंत भेद मननाज विचारथी फले छे, तेथी जेम जेम नयनुं फलाव थाय तेम तेम मनना तरंग पण अनंत भेदे फलेछे, अने मनना कल्लोल जेटला होय तेटला चंचल स्वभावमनना थई जाय, एनुं प्रमाण षट् गुणी हानी वृद्धि लेखे लोका लोक प्रदेश परिमाण होय एवी जे नय कक्षा के० नयने अंगीकार करी तेनो पक्षपात त्यजीने जे ज्ञानी जीव समरसी भावमां रह्या अने सघला नयना विस्तारमां चेतनानी एकता होय तेथी टले नही ते तो समरसी भाव वाला महा मोह के० भ्रमनो नाश करीने अने शुद्ध चिदानंदना अनुभवनो अभ्यास करीने, एटले क्षपकश्रेणी आरोहण करीने परमात्मानुं जे बल छे तेनो प्रकाश करीने सुख राशी जे मोक्ष पद छे तेनेविषे मली जायछे ॥ २६ ॥

हवे निश्चय व्यवहार बतावीने पोतपोतानुं जे सत्य स्वरूप लक्षण छे ते हिज कहेछेः–अथ सम्यक् स्वरूप लछन कथनः–

सवैया इकतीसाः–जैसे काहु बाजीगर चौहटे बजाई ढोल, नाना रूप धरीके भगल विद्या ठानी है; तैसे मैं अनादिको मिथ्यातके तरंगनिसों भरममें धाइ बहु काइ निज मानी है; अब ज्ञान कला जागी भरमकी दृष्टि भागी, अपनी पराई सबसों जु पहिचानी है; जाके उदे होत परवान एसी भांति भई, निहचे हमारी ज्योति सोई हम जानी है. ॥ २७ ॥

अर्थः–जेम कोई बाजीगर चोटामां ढोल वगाडीने भात भातना रूप धरीने पोतानी भगल विद्या प्रसारे छे, ने तेने लोको साची मानेछे, ते रीते हुं अनादी कालथी मिथ्यात तरंग के० ल्हेरोमां मगन बनी रह्यो तेथी भगलविद्या जोनाराने न्याये भर्ममां धायो थको घणी कायाउ पामीने पोतानी मानी लीधी हती, ते हाल मने ज्ञान कला प्राप्त थवाथी भरमनी दृष्टि दूर थई गई, त्यारे पोतानी तथा पारकी सोंज के० सामग्री ते सर्वेने ओलखी लीधी, जे ज्ञान कलाना उदय थवाथी वस्तुनुं परमाण थायछे एवी रीत थई तेथी पोतानी परंपरानी शुद्धि आवी, एवा निश्चयथी अमारी ज्योति जे अमारुं स्वरूप तेने अमे ओलखी लीधुं २७

हवे जे ज्ञाता होय ते सम्यक् स्वरूपने शुद्ध अनुभवनेविषे विचारी लिये ते कहे छेः—अथ शुद्धानुभव चिंतन ज्ञान विलासः—

सवैया इकतीसाः—जैसै महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसें लीन होइ जलमें; तैसें शुद्ध आतम दरबपरजाय करी, उपजे बिनसे थिर रहे निज थलमें; ऐसे अविकलपी अजलपी आनंद रूपी, अनादि अनंत गहि लीजे एक पलमें; ताको अनुभव कीजे परम पियूष पीजे, बंधको विलास मारि दीजे पुदगलमें॥ १८॥

अर्थः—जेम हीरा लाल पन्ना अने रत्ननी ज्योतिमां लहरी उठे, ने ज्योतिमांज समाई जायछे, वली जेम पाणीना मोजां पाणीमांज समाई जाय, तेम शुद्ध आत्म द्रव्यना जे ज्ञान प्रमुख गुणना पर्यायछे ते समये समये उपजे छे ने वणसेछे, अने द्रव्य पोताना द्रव्य स्थानने विषेज रहेछे. उपजवुं ने वणसवुं ए विकल्प पर्यायने आश्रये थाय छे; पण द्रव्यमां तो थिरता रही छे द्रव्यमां विकल्प नथी माटे जे अविकल्पक अने अजल्पी के० स्थिरछे सर्वथा वचन गोचर नथी, अने आनंदरूपी छे, तेथी सहज समाधि मईछे, एवुं कोई आत्म द्रव्यछे तेनुं अनादि अनंत काल सुधी एकरूपमां ग्रहण करवुं, अने तेज द्रव्यनो अनुभव करवो, एटले तेने विषेज उपयोग राखवो, ए अनुभवमां परम पियूष के० परम अमृतरस उपजे छे ते पीवो. अने जे आश्रव बंधनो विलास आत्मामां छे तेने पुद्गलनी सामग्रीमां नाखी देवो, एटले पुद्गलरूप जूडुंज छे ॥ १८ ॥

हवे आत्मानो शुद्ध अनुभव परम पदार्थ छे, तेनी प्रशंसा करेछेः-अथ अनुभव प्रशंसाः-

सवैया इकतीसाः—दरवकी नय परजाय नय दोउ नय, श्रुत ज्ञानरूप श्रुतज्ञान तो परोष है; शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट ताते, अनुभौ बिराजमान अनुभौ अदोष है; अनुभौ प्रवान जगवान पुरुष पुरान, ज्ञान औ विज्ञानघन महासुखपोष है; परम पवित्र योंही अनुभौ अनंत नाम, अनुभोविना न कहों उर ठोर मोष है॥ १९॥

अर्थः—पदार्थने उलखवाने बेज नय प्रवर्ते छे; एक द्रव्यार्थिक नय वडे द्रव्यनो विवरो अने पर्यायार्थिक नयवडे पर्यायनो विवरो थाय छे, ए बंने नय श्रुतज्ञानरूप छे, अने श्रुतज्ञान जे छे ते परोक्ष ज्ञान छे; अने शुद्ध परमात्मानो अनुभव जे छे तेतो प्रगट के० प्रत्यक्ष प्रमाणमां आवेछे, तेथी अनुभवज महा बलवान थको बिराजमान थई रह्योछे, एथी अनुभव ते अदोष के० शुद्धछे. हवे अनुभवना नाम कहे छे. अनुभव कहियें प्रमाण कहियें जगवान कहीये, एनेज पुराण पुरुष कहीये, एनेज ज्ञान कहीये, एनेज बिज्ञानघन कहीये, एनेज महा सुखनुं पोष कहीये, अने एनेज प

रम पवित्र कहिये, एवां अनुभवना अनंत नाम छे. अने ए शुद्ध अनुभव शिवा य बीजे कोई स्थानके मोक्ष नथी ॥ १९ ॥

हवे शुद्ध अनुभवविना संसारमां भमे अने शुद्ध अनुभव प्राप्त थये मोक्ष पामे ते कहे छे. अथ अनुभव सामर्थ्य जलको दृष्टांतः--

सवैया इकतीसाः-- जैसे एक जल नाना रूप दरबानुयोग, भयो बहु भांति प हिचान्यो न परतु है; फिरि काल पाई दरबानुयोग दूरि होतु, अपने सहज नीचे मारग ढरतु है; तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासों, गति योनि भेष भव भावर भरतु है; सम्यक सुभाइ पाइ अनुभौके पंथ धाइ, बंधकी जुगती भानि मुगति करतु है ॥३०॥

अर्थः-- जेम पाणी एक रूप छे तथापि तेनेविषे नाना प्रकारनी माटी प्रमुख द्रव्यनो मिलाप थये पाणी पण तरेवार जातनुं थाय छे, हवे देखवामां तो माटी प्रमुख देखाय छे पण पाणी ओलखातो नथी. फरी कोई औषधादिकथी ते द्रव्य नो मिलाप दूर थयो अने पाणी तरी आव्युं त्यारे पोतानुं सहज रूप लईने नी चाण तरफ ढलवा लाग्युं; ते रीते जे चेतन पदार्थ छे ते विभावतासों के० पो तानी भुल थकी चार गतीमां चोरासी लाख जीव योनिनेविषे भेष के० एक क्रोड साडासत्ताणुंलाखं कुलकोडीमां भांतभांतना भवकरतो भावरी के० फरी रेहे छे, एज जीव कोई अवसर सम्यक् भाव पामीने पोताना अनुभवना मारगमां दोडीने अने बंधनना विलासने तोडीने कर्मनी मुक्ति करे छे. ॥ ३० ॥

हवे मिथ्यादृष्टि होय ते अनुभव शिवाय कर्मनो कर्त्ता होयज ते कहे छेः-- अ थ मिथ्यादृष्टि कर्तृत्व कथनः--

दोहाः--निशिदिन मिथ्या भाव बहु, धरै मिथ्याती जीव; ताते भावित कर मको, करता कह्यो सदीव. ॥ ३१ ॥

अर्थः-- रात ने दिवस पोतानी भूलनेविषे मिथ्याती जीव होय ते फलाणुं में कीधुं में लीधुं अमहारो इत्यादिक मिथ्या भाव धारे ते माटे अशुद्ध चेतनाजेछे ते विभावित कर्मछे तेनो कर्त्ता सदीव के० निरंतर कह्यो. ॥ ३१ ॥

हवे ज्ञानी अने मूढ करम करे छे, ते एक सरखा देखाय छे, तथापि मूढ जीवने कर्मनो कर्त्ता कह्यो ने ज्ञानी जीवने कर्मनो अकर्त्ता कह्यो तेनुं कारण कहे छेः--अथ मूढ कर्मको कर्त्ता ज्ञाता अकर्त्ता यहु कथनः--

चोपाईः-- करै करम सोई करतारा; जो जानै सो जाननहारा; जो कर्त्ता न हि जानै सोई; जानै सो करता नहि होई. ॥ ३२ ॥

अर्थः-- जे कर्मने करे तेज कर्त्ता केवाय अने जे जाणेछे तेने तो जाणनार कहीये जे कर्त्ता छे तेज जाणनार नथी अने जे जाणनार छे ते कर्त्ता नथी ॥३१॥

हवे जे जाणनार छे ते अकर्त्ता छे ते समजावे छेः--अथ ज्ञाता अकर्त्ता कथनंः--

सोरठाः-- ज्ञान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञानमहि; ज्ञान करम अतिरेक, जो ज्ञाता करता नही. ॥ ३३ ॥

अर्थः--ज्ञान भाव अने मिथ्यात भाव एक केवाय नही; अने रागादिक जे राग द्वेष मोह इत्यादिक भाव ज्ञानमां होय नही; एथी ज्ञान जे छे ते कर्मथी अतिरेक के० जुदो छे, तेमाटे जे ज्ञाता होय ते कर्त्ता न होय ॥ ३३ ॥

हवे जे मिथ्यात्वी जीव छे ते पुद्गलद्रव्य रूप कर्मनो अकर्त्ताज छे अने भाव कर्मनो कर्त्ता छे ते कहेछेः-- अथ जीवद्रव्य कर्मको अकर्त्ता यहु कथनः--

छप्पयछंदः-- करम पिंम अरु राग, भाव मिलि एक होहि नहि; दोऊ भिन्न स्वरूप, वसहि दोऊ न जीवमहि; करम पिंम पुद्गल विभाव रागादि मूढ भ्रम; अलख एक पुग्गल अनंत किम धरहि प्रकृति सम; निज निज विलास जुत जगत महि, जथा सहज परिनमहि तिम; करतार जीवजम करमको, मोह विकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

अर्थः-- पुद्गल द्रव्य रूप कर्म पिंम अने राग द्वेषादिक भाव ए बंने मलीने एक रूप थाय नही, ए बंने भाव भिन्न स्वरूपमां छे, पण ए बेउ भाव जीवमां रेता नथी. एनो विवरो कहेछेः--कर्मपिंम छे तेतो पुद्गलरूपी छे. अने जे रागादिक विभाव छे तेतो मूढ जीवनो भ्रम छे अलख जीव छे तेतो एकता लीधो रह्यो छे अने पुद्गल अनंतताने लेई रह्याछे. तो कर्मनुं कर्त्तापणुं एवी सम प्रकृति बेउ केम धारण करशे. जगतमां सर्व कोई पोतपोताना स्वभाव विलासमां युक्त थई रह्याछे. जेवो पोतानो सहज स्वभाव छे तेवोज परिणमी रह्यो छे ए न्यायनी वात छे, तेथी जड रूपी कर्मनो कर्त्ता जीव छे, एवुं वचन जे जीव मोहथी विकल होय छे ते केहेछे ॥३४

हवे सम्यक् प्रकारे करीने सिद्धांत समजावेछे. अथ सम्यक्त प्रभाव कथनः--

छप्पयछंदः-- जीव मिथ्यात न करै, भाव नहि धरै भरम मल; ज्ञान ज्ञान रस रमै, होइ करमादिक पुद्गल; असंख्यात परदेश, सकति जगमें प्रगटे अति; चिद विलास गंभीर, धीर थिर रहै विमल मति; जब लगि प्रबोध घटमहि उदित, तब लग अनय न पेखियै; जिम धरमराज वरतांतपुर, जह तह नीति परेखिये ॥ ३५॥

अर्थः-- जीव छे ते मिथ्यारूपी कर्म करे नही, एनो हेतु कहेछे के, भ्रम मल रू

पी जे नार छे तेने ए जीव धारण करे नही. अने ज्ञान ज्ञाननाज रसमां रमे ए टले ज्ञाता पणामां रहे. अने कर्मादिक जे ज्ञानावरणादिक राग द्वेषादिक तेतो पुद्ग लसामग्रीछे. अने ए जीवना तो असंख्यात प्रदेशनेविषे एवी शक्ति अति प्रगट पणे जगमगी रही छे. ते कहीये छइये के, चिदविलास के० ज्ञान विलासनेविषे गंनीरछे धीर ने विमल मतिवंत थको स्थिरता थई रह्यो छे; एवुं प्रबोध सम्यक् ज्ञान जां सुधी घट पिंडमां प्रकाशमान थई रह्यो छे त्यांसुधी अनय के० अन्याय स्वरूपने दे खीये नही, ते उपर दृष्टांत केहेछे जेम पुर नगरमां धर्मराज वर्तता थका जहां त हां नीतीज जोवामां आवे ॥ ३५ ॥

इतिश्री नाटक समेसार कर्त्ता कर्म क्रिया द्वार तृतीय बालबोध सहित समाप्तं

दोहराः-- करता किरिया करमको, प्रगट बखान्यो मूल; अब बरनों अधिकार यह, पाप पुन्य समतूल ॥ ३६ ॥

अर्थः-- कर्त्ता क्रिया अने कर्म एउनुं मूल के० रहस्य ते प्रगट करी वखाण्युं हवे पाप अने पुन्य ए बने बराबर छे तेनो अधिकार वर्णन करूं छुं ॥ ३६ ॥

हवे पाप पुन्य द्वार विषे प्रथम ज्ञान चंद्रनी कलाने नमस्कार करेछेः--

अथ ज्ञानचंद्र कला वर्णनंः--

कवित्तछंदः--जाके उदे होत घटअंतर, विनसे मोह महातम रोक; सुन अरु असु न करमकी दुविधा, मिटे सहज दीसें इक थोक; जाकी कला होतु संपूरन, प्रतिनासे सब लोक अलोक; सो प्रबोध शशि निरखि बनारसि, सीश नमाइ देतु पग धोक॥

अर्थः-- जे प्रबोध चंद्रना प्रकाशवाथी समान घटमां जे मोहरूप महातम के० घोर अंधकारनुं रोक जे अटकाव ते नाश पामे, अने जेम अंधकार गयाथी एक कर्म शुन अने एक कर्म अशुन एवी जे कर्मने विषे द्विविधा छे ते मटी जाय, अने सहज नावे कर्म बंधरूप छे एवुं एक थोक देखाय अने जेने प्रबोध चंद्रनी सर्व सं पूर्ण कला प्रगट थयेथके सर्व लोका लोकनु प्रतिनास थाय ते प्रबोधरूपी चंद्रकला ने निरखीने बनारसीदास माथुं नमावीने पगधोकदेतुहे के० प्रणाम करेछे. ॥३७॥

हवे मोहेमां शुन अशुन कर्मनी द्विविधता देखायछे ते एक रूप पणे देखाडेछेः--

अथ शुनाशुन एकत्वी करनः--

सवैया इकतीसाः-- जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन्ह, एक दियो बामन कूं एक घर राख्यो है; बामन कहायो तिन्ह मद्य मांस त्याग कीनो, चंडाल क

हायो तिन मद्य मांस चाख्यो है; तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुण्य नांउ निन्न नाख्यो है; इहों माहिं दोरधूप दोउ कर्म बंधरूप, याते ज्ञान वंतने न कोउ अनिलाख्यो है. ॥ ३८ ॥

अर्थः-- जेम कोई चंमालनी स्त्री जुगल पुत्र के० बे पुत्र जणे ने पढी एक ठोकरो ब्राह्मणने आपे, ने एक ठोकरो पोताना घरमां राखे, हवे जे ठोकरो ब्राह्मणना घरमां उछरे ते ब्राह्मण केहेवाय, ने ते मद्य मांसनो त्याग करे, जे चंमालना घरमां रहे ते चंमाल केहेवाय, ने ते मद्य मांस पण चाखे, ते रीते एक वेदनीय कर्मनां बे पुत्र ठे, एक पाप ने बीजो पुण्य, एवां जुदा जुदा नाम कहांठे, पण बंनेनो स्वनाव एक ठे एटले बेउने विषे दोरधूप के० वेदवानी सत्ता ठे. एटले खेदसंताप ठे वली पापने पुण्यए बेउ कर्म बंधरूप ठे, एटला वासते ज्ञानीजने ए बेउमांथी कोइनो पण अनिलाष कीधो नथी. ॥ ३८ ॥

हवे पाप तथा पुण्य ए बेउने समान कह्या तेउपर शिष्य प्रश्न पूछेछेः--

अथ शिष्य प्रश्नः--

चोपाईः-- कोऊ शिष्य कहे गुरु पांही; पाप पुण्य दोऊ सम नांही; कारन रस सुनाव फल न्यारे; एक अनिष्ट लगै इक प्यारे. ॥ ३९ ॥

अर्थः--कोई शिष्य गुरुनी पासे आवी कहे के, स्वामी पाप ने पुण्य ए बेने समान कह्या पण ते समान देखाता नथी केमके, ए बेना कारण रस स्वनाव तथा फल ते तो जुदां जुदां ठे वली एमांथी एक प्रिय लागे ठे ने एक अप्रिय लागे ठे.॥३९॥

हवे शिष्य ए बेउनां कारण प्रमुख जुदा जुदा कहे ठे.-- अथ शिष्य कथनः--

सवैया इकतीसाः-- संकिलेस परिनामनिसों पाप बंध होइ, विशुद्धसों पुन्य बंधु हेतु नेद मानिये; पापके उदे असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदे साता मिष्ट रस नेद जानिये; पाप संकिलेस रूप पुन्यहिं विशुद्ध रूप, इहूंको सुनाउ निन्न नेद यों बखानिये; पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय, ऐसो फल नेव परतक्ष परवानिये. ॥ ४० ॥

अर्थः-- तीव्र कषायमय जे परिणामछे तेनुं नाम संक्लेश परिणाम, तेणे करीने पापनुं बंध थायछे; अने कषायनुं जे मंदपणुं तेने विशुद्ध कहिये; तेवमे पुन्यनो बंध थाय; एवा हेतु एटले कारण नेद मानियें छइये. अने पापना उदयथी अशाता थाय ठे, तेनो स्वादतो कटुक होय ठे. ने पुन्यना उदयवडे शाता उपजे ठे तेनो मिष्ट स्वाद होय ठे. एटले पाप ने पुन्य ए बेउने विषे रसनेद थयो; वली

पापकर्म क्लेश रूप छे, तीव्र कषाय रूप छे; अने पुण्य कर्म विशुद्ध रूप छे. मंद कषायरूप छे; ए बंने कर्मनो भिन्न भिन्न स्वभाव थयो, ते एज उपरथी ए बंने कर्मनो भेद वखाणीये छइये; अने पापथी कुगति के० नर्क गती तिर्यंच गती थाय छे, अने पुण्यकर्मे मनुष्यगति देवगति एवी सुगति थाय छे; ए रीते पाप पुण्यरूप कर्मनेविषे फलनो भेद प्रत्यक्ष प्रमाणथी छे. ॥ ४० ॥

हवे शिष्यना प्रश्ननो गुरु उत्तर करे छेः-- अथ गुरु उत्तर वचन यथाः--

सवैया इकतीसाः— पाप बंध पुन्य बंध दुहूमें मुगति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुग्गलको पेखिये; संकिलेस विशुद्धि सहज दोउ कर्म चालि, कुगति सुगति जग जालमें विशेखिये; कारनादि भेद तोहि सूझत मिथ्यातमांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये; दोउ महा अंधकूप दोउ कर्म बंध रूप, दुहू को विनास मोष मारगमें देखिये. ॥ ४१ ॥

अर्थः- पापनो पण बंध थाय ने पुण्यनो पण बंध थायछे; ने ज्यां बंध होय त्यां मुक्ति न होय, एटले बेउथी मुक्ति नही ते माटे बेउ समान छे; अने जे कटुक रसमां पाप छे ने मधुर रसमां पुण्य छे ए बेउ रस पुदगलना छे तेथी पापने पुण्य समानज छे. वली जे संक्लेश स्वभावने लीधे पाप छे, ने विशुद्ध स्वभावथी पुण्य छे; पण ए बेउ स्वभाव जे छे ते कर्मनी चाल छे. अने कुगति तथा सुगति ते पाप पुण्यनां फल छे, ते भेदवडे जगत जालनी विशेष ता छे, तेथी पाप पुण्य समानज छे. अरे शिष्य तने जे पाप पुण्यना कारणादि भेद तेणे करीने पाप पुण्यनो द्वैत भाव के० द्विविध भाव सूजे छे, ते तो मिथ्यामतिमां सूजे छे; पण ज्ञान दृष्टि करी जोतां तो ए द्वैतभाव देखाशे नही. ए बेनेविषे आत्मानुं अवलोकन नथी, तेथी ए बेउ महा अंधकूप छे, अने ए बेउ कर्म छे; ते बंधरूप छे अने मोक्षमार्गने विषे ए बेउनो विनाश देखीयें छे, तेथीए बेउ समान छे ॥ ४१ ॥

हवे मोक्ष मार्गनेविषे बेउनो विनाश बतावे छेः-- अथ मोक्ष पद्धति कथनः—

सवैया इकतीसाः-- सील तप संजम विरति दान पूजादिक, अथवा असंजम कषाय विषै भोग है; कोउ शुभरूप कोउ अशुभ सरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है; ऐसी बंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममें करम त्याग जोग है; भौजल तरैया राग दोषको हरैया महा मोषको करैया एक शुद्ध उपयोग है. ॥ ४२ ॥

अर्थः— ब्रह्मचर्य तप, पंचेंद्रिय निग्रह, संवर दान पूजाप्रमुख क्रिया; ए पुण्य बंध

ना कारण कर्म छे. अथवा पापना कारण असंयम कषाय अने विषय जो ग छे. ए बेउमां कोई शुजरूप कार्य छे, अने कोई अशुजरूप कार्य छे; पण वस्तुनुं मूल विचारतां तो बेउए कर्म रोग छे; एटले बेउ प्रकारनो कर्म रोग छे; एवी बंधनी पद्धति के० एक मंडी ते वीतराग देवे वखाणी; पण आत्मिक धर्ममां एटले आत्मानो स्वजाव जोतां कर्म क्रिया त्यागवा योग्य छे; एवा पापपुण्यने हेय कहेनार, अने जवजल ने तरनार, राग द्वेषने हरनार तथा महा मोक्षनो करनार एक शुद्ध उपयोग उपदेश छे. ॥ ४२ ॥

हवे अर्धा सवैयामां शिष्य प्रश्न करेछे, ने अर्धा सवैयामां गुरु तेनो उतर वालेछेः—अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथनः--

सवैया इकतीसाः--शिष्य कहै स्वामी तुम करनी शुज अशुज, कीनी है निषिद्ध मेरे संसो मनमांहि है; मोषके सधैया ज्ञाता देसविरती मुनीस, तिन्हकी अवस्था तो निरावलंब नांहि है; कहै गुरु करमको न्यास अनुजौ अन्यास ऐसो अवलंब उन्हहीको उनमांहि है; निरुपाधि आतम समाधि सोइ शिवरूप, औंर दौंर धूप पुदगल परछांहि है. ॥ ४३ ॥

अर्थः--शिष्य पूछेछे हे स्वामी, तमे तो मोक्ष मार्गमां शुजने अशुज करणी बेउनो निषेध कीधो, तेनो मारा मनमां संदेह पडेछे; केमके मोक्षमार्गना साधक ज्ञाता देश विरती पंचम गुण स्थान वर्त्ति थया अने मुनीश के० षष्ट सप्तम गुणस्थानवर्त्ति सर्व विरती थया, तेमनी अवस्था तो निरालंबननथी एटलेपोतपोतानी शुद्ध क्रियाना आलंब ने लेईने देश विरती सर्व विरती केवायछे, त्यारे करणी निषिद्ध केम थई? हवे गुरु कहेछेः—जेवो अक्षरनो न्यास मांमयो तेवो श्रुत ज्ञाननुं आलंब न होय तेम शुज कर्मनो न्यास तेतो जोवामां छे पण ते अनुजवनोज अन्यासछे ते अनुजव अन्यासरूप आलंबन ते तो ज्ञातानुं ज्ञाता पासेज छे. अने तेमां निरुपाधि के० रागद्वेष कषाय इज्ञादिकविना आत्मानी जे समाधीछे, एटले जे पर रूपने विषे निरुपयोगीपणे रहेवुं तेज शिवरूप, के० मोक्षरूपछे अने जे दोरधूप के० खेद संतापजेछे ते तो पुद्गलनी परिछांही के० छांयाछे ॥ ४३ ॥

हवे एज शुज क्रियाविषे बंध अने एज शुज क्रियाविषे मोक्ष ए बेउ स्वरूप कही बतावेछेः--अथ बंध मोक्ष स्वरूप कथनः--

सवैया तेईसाः--मोछसरूप सदा चिनमूरति बंधमई करतूति कही है; जावतकाल वसै जड चेतन, तावत सो रसरीति गही है; आतमको अनुजौ जबलों तबलों शिव

रूप दसा निवही है; अंध भयो करनी जब ठानत, बंधविथा तब फेलि रही है॥४४

अर्थः—चिन्मूर्त्ति के० चिदानंद छे ते तो सदा मोक्ष स्वरूप छे, अने करतूती के० क्रिया तेतो सदा बंधमयछे. यावत् काल के० जेटला काल सुधी चेतन जहां वसे तावतकाल के० तेटला काल सुधी तेज रसरीति ग्रहण कीधी छे, एटले तेज रसमां रहेछे; एटले ज्यांसुधी आत्मानो अनुभव रहे त्यां सुधी शुभ क्रिया करतां छतां शिवपद दशा निवही एटले मोक्ष स्वरूपमां रहे.अप्रमतता केहेवाय; अने पोतानुं स्वरूप भुलीने अंध थयो थको ज्यारे करणीनोज रस छरावे त्यारे तो बंधनाज कष्ट रोग फेलावेछे॥४४

हवे मोक्षप्राप्तिनुं कारण कहेछेः— अथ मोक्ष मार्ग निरूपणंः—

सोरठाः—अंतर दृष्टि लखाउ, अरु सरूपको आचरण; ए परमा तमभाउ, शिवकारन एई सदा॥ ४५ ॥

अर्थः—बाह्य दृष्टि छांडीने अंतर दृष्टि आपीने अलक्षनो जापकरवो, अने तेना स्वरूपनुं आचरण करवुं, एटले ज्ञान दर्शन चारित्रने आचरिये, तेथकी परमात्मा भावसिद्ध थाय, सदाकालनेविषे एज मोक्षनुं कारण छे॥ ४५ ॥

हवे बाह्य दृष्टिवडे बंध पद्धति थाय ते कहे छेः—अथ बंध मार्ग निरूपणंः—

सोरठाः-करम शुभाशुभ दोइ, पुद्गल पिंड विभाव मल; इनसों मुगति न होइ, नांही केवल पाइए॥ ४६ ॥

अर्थः—शुभकर्म ते पुन्य ने अशुभ कर्म ते पाप ए बेउ कर्मछे पुंजलना पिंड छे, अने विभाव जे राग द्वेषादिक मलरूप छे ए बेउनेविषे दृष्टि रहेवाथी मुक्ति थाय नही, अने केवलज्ञाननुं पद पामीये नही॥ ४६ ॥

ए वात उपर शिष्य प्रश्न करे छे ने तेनो उत्तर गुरु दिये छेः—

अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ शिष्य कहै स्वामी अशुभ क्रिया अशुद्ध. शुभ क्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न बरनी? गुरु कहै जबलों क्रियाको परिणाम रहै, तबलों चपल उपयोग योग धरनी; थिरता न आवै तोलों शुद्ध अनुभो न होइ, याते दोऊ क्रिया मोष पंथकी कतरनी; बंधकी करैया दोऊ दुहूमें न भली कोऊ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी॥ ४७ ॥

अर्थः—कोई शिष्य पूछे छे के हे स्वामी, तमे एवुं वर्णन केम करता नथीके अशुभ क्रिया जे हिंसादिक ते अशुद्ध छे अने शुभ क्रिया जे दया दानादिक ते शुद्धछे त्यारे गुरु उत्तर आपेछे के अहो शिष्य, ज्यांसुधी क्रियाना परिणाम रहे छे त्यां

सुधी उपयोगनी धरनी के० क्षेत्री एटले उपयोगवंत आत्मा चंचल रहे छे. ज्यांसुधी क्रियामां उपयोग रहे त्यांसुधी आत्मानी स्थिरता थाय नही, अने आत्मानो शुद्ध अनुभव होय नही, ए उपरथी ए पुण्य पापनी बेउ क्रिया छे ते मोक्षमार्गनी कतरणी समान छे. बंधनी करनारछे एथी बेउ क्रियामां एक पण भली नथी. ज्यां मुक्तिमार्गनो बाधक विचारे त्यां बेउ क्रिया निषिद्ध कीधी छे ॥ ४७ ॥

हवे मात्र ज्ञान मोक्षनो मार्ग छे ते कहे छेः—अथ ज्ञान मोक्ष मार्ग यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— मुकतिके साधककों बाधक करम सब, आतमा अनादिको करममांहि छुक्यो है; एते परि कहे जो कि पाप बुरो पुण्य भलो, सोइ महा मूढ मोखमारगसों चुक्यो है; सम्यक् सुभाउ लिये हियेमें प्रगटयो ज्ञान, उरध उमंगि चल्यो काहूपे न रुक्योहै; आरसीसो उज्वल बनारसी कहत आपु, कारन सरूप व्हैके कारजकों ढुक्यो है ॥ ४८ ॥

अर्थः— जे आत्मा मुक्तिनो साधक छे, तेने सर्व कर्म बाधक छे; एथीज अनादि कालनो आत्मा कर्ममां छुक्यो एटले दबाई रह्यो छे; एम छतां पण जो कोई एवुं कहे के, पाप कर्म नगारुं छे, ने पुण्य कर्म सारुं छे, तेने महा मूढ जाणवो; ने ते मोक्षमार्गथी चुक्यो छे, एम जाणवुं. एवामां कोईने भवत्व परिपाक थकी सम्यक् स्वभावनी प्राप्ति थइ तेवारे हीयामां ज्ञान प्रगटयुं तो ते उर्ध्व दशा तरफ उमंगे करीने चाल्यो, पण कोई कर्मथी रोकायो रह्यो नही. ते आरीसानी पठे उज्वल थईने निज ज्ञानोपयोगी पणे कारण सुरूपी थईने पोताना मुक्तिरूप कार्यने पोतेज ढुके छे एवुं बनारसी दास कहे छे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञाननो तथा कर्मनो विवरो बतावेछेः-- अथ ज्ञान तथा कर्म विवरनः—

सवैया इकतीसाः-- जोलों अष्ट कर्मको विनास नाही सरवथा, तोलों अंतरातमामें धारा दोई वरनी; एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी; ग्यान धारा मोखरूप मोखकी करन हार, दोषकी हरन हार भौ समुद्र तरनी; इतनो विशेष जु करमधारा बंधरूप, पराधीन सकति विविध बंध करनी. ॥ ४९ ॥

अर्थः-- ज्यां सुधी आठ कर्मनो सर्वथा विनाश थतो नथी एटलासुधी मुक्ति न होय त्यांसुधी अंतरात्मा थकी बे धारा वहेछे; तेमां एक ज्ञाननी धाराने बीजी शुभाशुभ कर्मनी धारा. ए बंनेनी प्रकृती जुदी जुदी छे, अने धरनी के० क्षेत्र ते पण जुडुं जुडुं छे. एमां एटलुं विशेष छे के जे कर्मधारा छे ते बंधरूप छे; अने ज

उपणाने लीधे एनी शक्ति पराधीनरूपछे अने प्रकृतिबंध स्थितिबंध तथा रसबंध एवा जात जातना बंधनी करनारीछे अने ज्ञानधारा मोक्षस्वरूप छे मोक्षनी करनारी छे ने दोष मात्रनी हरनारी छे अने भवसमुद्र तरवाने तरनी के० नाव समान छे.॥४९॥

हवे मोक्ष कर्त्ता जे ज्ञान क्रिया एवो जे स्याद्वाद तेनी प्रशंसा करेछेः--

अथ स्याद्वाद प्रशंसाः—

सवैया इकतीसाः— समुझै न ज्ञान कहै करम कियेसों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें; ज्ञान पक्ष गहै कहै आतमा अबंध सदा, वरते सुछंद तेउ बूडे है चहलमें; जथाजोग करम करै पैं ममता न धरै, रहै सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें; तेई भवसागरके उपर व्है तरै जीव, जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें॥५०॥

अर्थः—क्रियावादी कहेछे के, "न ज्ञान श्रेय" एनो अर्थ एछे के ज्ञान भलुं नथी जेमां संशय उपजे छे. अने संशय थया थकी जीव अर्हांनो नही ने तर्हांनो पण नही एवो थाय छे माटे क्रिया कर्म करवाथीज मोक्षछे एम विकल थयलो जीव मिथ्यातनी गहलमां कहेछे. हवे जे ज्ञानवादी सांख्यमती छे ते ज्ञाननोज पक्ष ग्रहीने रहेछे ने एवुं कहेछे के बंधने मोक्ष प्रकृतिने विषेज छे पण आत्मा तो सदा अबंध पणे वर्त्ते छे; एवी श्रद्धावडे स्वछंद के० पोतानी मरजीमां आवे तेम चालेछे तेउ चहल के० कर्दममां बूडेला छे. अने जे स्याद्वादी छे ते कोईनो विरोधी नथी, तेथी यथायोग्य एटले गुण ठाणा माफक कर्म क्रिया करेछे, पण कर्मने उदय दशामां राखे छे, अने ममताने धरता नथी, ज्ञान ध्याननी सेवामां सावधान रहे छे, एवा स्याद्वादी जीव उपर थइ रह्या थका भवसागर तरेछे, जेनो निवास स्याद्वाद रूप मेहेलमांछे ५०

हवे मूढनी तथा विचक्षणनीक्रियानुंवर्णनकरेछेः-अथ मूढविचक्षण क्रिया वर्णनंः-

सवैया इकतीसाः-जैसे मतवारो कोउ कहै और करै और तैसे मूढ प्रानी विपरीतता धरतु है; अशुभ करम बंध कारन बखानै मानै, मुगतिके हेतु शुभ रीति आचरतु है; अंतर सुदृष्टि भई मूढता बिसरि गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरतु है; करनसों भिन्न रहै आतम सरूप गहै, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करतु है. ॥ ५१ ॥

अर्थः—जेम कोई मतवारो पुरुष कहे कइं अने करे कइं तेम मूढ प्राणी उलटोज भाव धारे छे, एटले अशुभ कर्मने बंधनुं कारण समजे अने मुक्तिनो हेतु शुभरीत के० शुभ क्रियाने आचरेछे. हवे ज्ञानीने अंतर सुदृष्टि थई तेथी मूढता मटी गई ने ज्ञाननो उद्योत थयो तेणे करीने भ्रमरूप तिमिरनो नाश थयो, त्यारे मुक्तिनुं

कारण जे शुभ क्रियाछे तेथी ते ज्ञानी भिन्न रहे,ममतान धरे, अने आत्मानुंज स्वरूप ग्रही अत्माना अनुभवना आरंभना रसनुं कौतुक करे छे. ॥ ५१ ॥

इति श्री नाटक समयसारको पुन्य पाप एकत्वी कथन चतुर्थ द्वार संपूर्णः

दोहराः—पुन्य पापकी एकता, बरनी अगम अनूप; अब आश्रव अधिकार कछु, कहों अध्यातम रूप. ॥ ५२ ॥

अर्थः—पाप पुण्यनी एकता तो अगम छे अने अनुपम छे तेनुं वर्णन कीधुं, हवे कइंक आश्रवनो अधिकारछे ते कहुंछुं अने अध्यात्मनुं स्वरूप कहुछुं ॥ ५२ ॥

आश्रव सुभटनोनाशकरनारज्ञानसुभटनेनमस्कारकरेछेः—अथज्ञान बल वर्णनंः—

सवैया इकतीसाः—जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करी राखै बल तोरिके; महा अभिमानी ऐसो आश्रव अगाध जोधो रोपि रनथंभ ठाढो भयो मूछ मोरिके; आयो तिहि थानक अचानक परमधाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके; आश्रव पछार्यो रनथंभ तोरि मार्यो ताहि, निरखी बनारसी नमत कर जोरिके. ॥ ५३ ॥

अर्थः—जे जे थावर जंगमरूप जगतवासी जीव छे, तेना सहजबल ने तोडीने ते ते जीवोने आश्रव जोधाए पोताने वस करी राख्याछे एवुं महा अभिमानी जगतमां आश्रवरूपी अगाध जोद्धो रहेछे, ते रणथंभ रोपीने मूछमरोडीने ठाढो थयो छे ते एम कहेछे के, जगतमां मने जीते एवो कोइ नथी. ते स्थले अचानक परम धाम के० अती तेजस्वी ज्ञान नामनो सुभट उपजा आश्रव जोद्धानो प्रतिपक्षी ते सवायोबल फोरवीने लडवा ने आव्यो तेणे आश्रव सुभटने पछाड्यो अने तेनो रणथंभ तोडी नाख्यो एवा ज्ञान सुभटने निरखीने बनारसी दास हाथ जोडी नमस्कार करेछे ॥ ५३ ॥

हवे द्रव्यरूपी आश्रव अने भावरूपी आश्रवना लक्षण कहेछेः— अने सम्यक् ज्ञाननुं लक्षण पण कहेछेः—अथ द्विविध आश्रव लछन तथा ज्ञान लछन वर्ननंः—

सवैया तेइसाः— दर्वित आश्रव सो कहिये जहिं पुद्गल जीव प्रदेस गरासै; भावित आश्रव सो कहिए जहिं राग विरोध विमोह विकासै; सम्यकपद्धति सो कहिये जहिं दर्वित भावित आश्रव नासै; ज्ञानकला प्रगटै तिहि थानक, अंतर बाहरि और न भासै ॥ ५४ ॥

अर्थः—ज्यांहां पुद्गल द्रव्य छे ते जीवना सर्व प्रदेशने ग्रासेछे के० गली जायछे, ते

द्रवित आश्रव जाणीये. अने ज्यांहां द्रवित आश्रवना प्रसंग थकी आत्मानेविषे रागद्वेष विमोहनो विकाश थाय त्यां नावित आश्रव कहीये, अने ज्यां आत्मानेविषे सम्यक् पद्धति के० सम्यक् स्वरूप कहिये तांहां तेने द्रवित आश्रव अने नावित आश्रवनो नाश थाय, एटले सम्यक् पद्धतिनेविषे ज्ञान कला प्रगटे तेथी अंतरना वाश्रवमां बाहिर द्रव्याश्रवमां बीजूं नासे नही, सम्यक्ज दीठामां आवे ॥ ५४ ॥

हवे सम्यक् स्वरूपनो धणी जे ज्ञाता तेनुं लक्षण कहेछे. अथ ज्ञाता लक्षणं.

चोपाई छंदः--जो दरवाश्रवरूप न होई, जह नावाश्रव नाव न कोई; जाकी दशा ज्ञानमय लहिये, सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ५५ ॥

अर्थः--जे द्रव्याश्रवना स्वरूपमां होय नही, अने ज्यांहां नावाश्रवनुं पण नाव कोई नथी,अने जेनी दशा ज्ञानमय होय,तेज जीव ज्ञानी अने आश्रवरहित कहिये

हवे ज्ञातानी समर्थाईथी निराश्रवपणुं देखाडे छेः-- अथज्ञाताकोसमर्थपणोवर्णनंः--

सवैया इकतीसाः-जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिनामनकी ममता हरतु है; मनसा अगोचर अबुद्धि पूरवक नाव, तिन्हिके विनासवेको उद्यम धरतु है; याहि नांति परपरिनतिको पतन करे, मोखको जतन करै नौजल तरतु है; एसै ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावै सदा, जिन्हको सुजस सु विचक्षण करतु है॥५६॥

अर्थः--जेटला परिणाम प्रगट मनगोचर छे, एटला जिन परिणामने मनमां संनारेछे जाणे छे, अने बुद्धिपूर्वक के० पोतानी अहं बुद्धिवडे जे अशुद्ध परिणाम उपजेछे, ते परिणामनी ममता छांमे छे; अने जे नाव मनथी अगोचर के० जेनुं स्वरूप मनवडे देखाय नही, अने अबुद्धि पूर्वक के० जेने बुद्धिनो प्रचार लागे नही, एवा अनागत कालना जे अशुद्ध परिणाम, तेनो विनाश करवाने उद्यम करे छे, ए रीते परपरिनति के० पर वस्तुनो जे परिणाम जे अतीत कालमां थयो छे वर्त्तमान कालमां छे, अनागत कालमां थशे, तेनुं पतन करे. अने मोक्ष के० तेथी छुटवुं तेनुं जतन करे ते नवसागरथी तरे, एवा जे ज्ञानवान प्राणी छे तेतो सदा निराश्रव केवाय जेनो सुजश ने स्तुती ते पंमित पुरुषो गायछे ॥५६॥

ज्ञानीने निराश्रव कह्या तेउपर शिष्य प्रश्न करेछेः--अथ शिष्य प्रश्न कथनः--

सवैया इकतीसाः--ज्यों जगमें विचरै मतिमंद सुछंद सदा बरतै बुध तैसे; चंचल चित्त असंजत वैन सरीर सनेह जथावत जैसे; नोग सँजोग परिग्रह संग्रह मोह बिलास करै जहाँ ऐसे, पूछत शिष्य आचारजसों यह, सम्यकवंत निराश्रव कैसे? ५७

अर्थः— जेम मतिमंद के० अज्ञानी जन जगतमां स्वछंद के० मरजी मुजब वर्त्ते, तेम पंमित पण सदा तेवीरीते वर्त्ते, ते आवीरीते चंचल चित्तवाला रहे, असंजत बेन के० विचारविना वचन बोले, अने शरीर स्नेहने प्रवर्त्तावे, अने अज्ञानीनी माफक नोगसंयोग राखे, परिग्रहनो संग्रह करे, अने ज्ञान अवस्थामां मोहविलास ए वोज करे, ए रीते अज्ञानीनी अने ज्ञानीनी एक सरखी रीति जोईने शिष्य आचार्यने पूछेछे के, एने सम्यकवंत निराश्रव केम कहिये? ॥ ५७ ॥

हवे ए प्रश्ननुं उत्तर गुरु आपेछेः—अथ गुरु उत्तर कथनः—

सवैया इकतीसाः—पूरव अवस्था जे करमबंध कीने अब, तेई उदै आई नाना नांति रस देत हैं; केई शुन शाता केई अशुन असातारूप, उहुसों न राग न विरोध सम चेत हैं; यथायोग क्रिया करै फलकी न इछा धरै, जीवन मुगतिको बिरुद गहिलेत हैं; यातें ज्ञानवंतकों न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे नये सुद्धता समेत हैं. ५८

अर्थः—पूर्वकालमां अज्ञानअवस्थानेविषे जे जे कर्मबंध कीधेलां होय तेज कर्मो वर्त्तमानकालमां उदय आवीने नाना प्रकारनो रस आपेछे. तेमां केटला एक शुनकर्म ते शातारूप छे, अने केटलाएक अशुन कर्म अशातारूप छे; एवा बेउ जानना कर्मनेविषे ज्ञानीने राग अने विरोध नथी, एथी ज्ञानी समचित्त छे. अने यथायोग्य के० उदयमाफक क्रिया करे, पण फलनी इछा राखे नही. ने जीवता ज मुक्त थयाछे; तेथी जीवन्मुक्तिनो बिरुद धारेछे, ए रीते ज्ञानवंत मनुष्यने कोई आश्रव केहेतुं नथी. ते मूढतायी न्यारो थयो अने शुद्धता समेत छे ॥ ५८ ॥

हवे राग द्वेष मोह अने ज्ञानना लक्षण कहेछेः—अथ राग द्वेष मोहज्ञान लक्षणः—

दोहराः— जो हितनाव सु राग है, अनहितनाव विरोध; त्रामकनाव विमोह हैं, निर्मलनाव सु बोध ॥ ५९ ॥

अर्थः—जे हितनाव छे ते राग छे, अने अनहितनाव ते विरोध छे; अने त्रामकनाव छे तेने विमोह कहिये, अने निर्मलनाव ते बोध एटले ज्ञान कहिये ॥ ५९

हवे राग द्वेषनुं स्वरूप कहेछेः— अथ राग द्वेष कथनः—

दोहाः—राग विरोध विमोह मल, एई आश्रव मूल; एई कर्म बढाइके, करै धरमकी नूल ॥ ६० ॥

अर्थः—राग द्वेष ने विमोह जे छे ते आत्माने मल छे, अने एज दोष आश्रवना मूल छे. अने एज रागद्वेष अने मोह छे ते करमने वधारीने धरमने नुलावी दिएछे ६०

हवे ज्ञाताने निराश्रव कहेछेः— अथ ज्ञातानिराश्रव कथनः—

दोहाः-- जहां न रागादिक दसा, सो सम्यक परिनाम; यातें सम्यकवंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥ ६१ ॥

अर्थः— जहां राग द्वेष मोहनी दशा न मळे तेने सम्यक परिणाम कहिये, ए उपरथी सम्यकवंत पुरुषने निराश्रवी नाम आप्युं ॥ ६१ ॥

हवे ज्ञाता जे छे ते निराश्रवपणामां विलास करेछेः—अथ ज्ञाता कथनः—

सवैया इकतीसाः— जे कोई निकट नव्य रासी जगवासी जीव, मिथ्या मतनेद ज्ञान नाव परिनये हैं; जिन्हकी सुदिष्टिमें न राग दोष मोह कहूं, विमल विलोकनिमें तीनो जीति लये हैं; तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलिगये हैं; तेई बंध पद्धति विडारि पर संग डारि आपुमें मगन व्हैके आपरूप नये हैं ॥ ६२ ॥

अर्थः— जे कोई नव्य राशीमां जगतवासी जीव छे, ते नव्यत्व परिपाकने लीधे निकट के० पासे थया; ने मिथ्यामतिने नेदीने पोतानुं स्वरूप जे ज्ञान नाव ते नेविषे परिणमी रहेछे; जेनी ज्ञानरूपी दृष्टिमां राग द्वेषने मोह कंई पामिये नही; अने निर्मल निज स्वनावनी विलोकतामां राग द्वेष ने मोह ए त्रणेने जीती लीधाछे; अने पांचे प्रमाद तजी पोताना शरीरने साधीने मन वचन अने कायाने शैलेशीकरणमां निरोध करीने शुद्ध उपयोग दशा जे केवल दशा तेनेविषे मली गया. तेवा ज्ञानी बंधनो मार्ग विडारी अने परवस्तुनो संग छोडीने आत्मानेविषे मगन थई आपरूपें थया ॥ ६२ ॥

शिष्य पूछेछे के, एम ज्ञातानेविषे निराश्रवपणुं थशे तो आयुष्यपर्यंत ज्ञाता निराश्रवी थशे. गुरु उत्तर आपेछे के, ज्ञातापणुं तो उपशमनावने क्षयोपशम नाव वडे चंचल छे ते कहेछेः--अथ उपशमी क्षयोपशमी व्यवस्था कथनः -

सवैया इकतीसाः—जेते जीव पंमित खयोपशमी उपशमी, तिन्हकी अवस्था ज्यों लुहारकी संमासी है; छिन आगमांहि छिन पानिमांहि तैसे एउ, छिनमें मिंथ्यात छिनु ज्ञान कला नासी है; जोलों ज्ञान रहै तोलों सिथिल चरन मोह जैसे कीले नगकी सगति गति नासी है; आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करै जो उकीले नागकी प्रकृति परगासी है ॥ ६३ ॥

अर्थः--मिथ्यात्वनी गांठनेद कीधा पछी जे मिथ्यात्वनो अंश उदय आवेछे ते जेनो खपीजाय अने मिथ्यातपुंज उपशम्यो रहे ते जीव क्षयोपशमी कहिये अने जेने अंतर मुहूर्तलगी उपशम्योज रहे तेने उपशमी कहीये एवा बेउ नाव

ते जे जीव पंमित ने तेनी अवस्था ते लुहारनी साणसी समान ने; जेम साणसी घडीमां लोहने ग्रहण करी आगमां होयने, ने घडीमां तेहज साणसी लोखंमने ठंमो करवा सारु पाणीनेविषे होयने; तेम ए क्षयोपशमी अने उपशमी जीव क्षण एकमां मिथ्यात जावमां आवे ने क्षणनेविषे ज्ञानकलाना प्रकाशमां रहेने. एवी अवस्थानेविषे ज्यांहांसुधी ज्ञानकला रहेने त्यांसुधी चारित्र मोहनीनी पचीस प्रकृति शिथिल के० ढीली थई रहेने; जेम मंत्रनी जडीए करीने सर्पनी शक्ति गति शिथिल थई जायने. तेम ए पण जाणवुं; हवे ए जीवने फरी मिथ्यात्व उदय आवेने त्यारे तो नाना प्रकारना कर्मबंध करेने; जेम नागनी उकीलनी करवाथी नागनी पोतानी प्रकृति फरीथी प्रगटे ते रीते जाणवुं. ॥ ६३ ॥

हवे ज्ञानना शुद्धपणानी प्रशंसा कहेनेः—अथ शुद्धनय प्रशंसाः—

दोहाः—यह निचोर या ग्रंथको, कहै परम रस पोष; तजें शुद्धनय बंध है, गहै शुद्धनय मोष ॥ ६४ ॥

अर्थः—आ समयसारग्रंथनुं रहस्य एज ने अने एज उत्कृष्ट रसनो पोषकने के जे शुद्धतानी नयरीती गंमी तो बंध ने अने शुद्धतानी नयरीति ग्रही तो मोक्ष ने६४

हवे बे नयनेविषे जीवनो विलास कही बतावे नेः--अथ जीव विलास वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः-- करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, व्है रह्यो बहिर मुख व्यापत विषमता; अंतर सुमति आई विमल वडाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी बूटी माया ममता; सुद्ध नै निवास कीन्हो अनुनौं अन्यास लीन्हो, भ्रमजाव गंमिदीनो जिनो चित्त समता, अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलंबी अवलोके राम रमता ॥ ६५ ॥

अर्थः--चौदराजलोकमां कर्मनुं चक्र के० कटक फरी रह्युं ने, तेमां जगतवासी जीव पण फरी रह्यो ने, अने ए फरवामां जीव विषमताए युक्त थयो थको क्यारे इष्ट संयोगी ने क्यारे अनिष्ट संयोगी थई ने तेमां बहिर्मुख थई रह्यो, एटले बाह्य विषय जोगनोज ग्राहक थयो, अने अंतरदृष्टियकी आत्मा न जाण्यो एटलामां अंतरनेविषे सुमति उपजी, तेणे करीने पोतानी निर्मल प्रभुताने पाम्यो, त्यारे परवस्तु जे पुद्गल तेनी प्रीति टूटी. एटला कालसुधी पुद्गलनी माया ममता जे नही बूटी हती ते बूटी. जेम शुद्धनयवडे आत्मानुं स्वरूप कह्युं, तेवा शुद्धनयमां पोते निवास कीधो, अने आत्मस्वरूपमां उपयोग राखीने अनुजवनो अन्यास लीधो एथी भ्रमजावनो त्याग थयो. अने मन जे ने ते समाधिनेविषे लीन थयुं. त्या

रथी अनादि अनंत कालसुधी जे स्वरूपमां कंई बीजां विकल्प न पामियें एवुं पोतानुं अचल पद अवलंबीने पोतानुं जे रमता रामपणुं छे तेने अवलोके ॥ ६५ ॥

हवे आत्मानु शुद्धपणुं सम्यक दर्शन छे, तेनी प्रशंसा करेछेः--अथसम्यक्तप्रशंसा

सवैया इकतीसाः-- जाके परगासमें न दीसे राग दोष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको तरस है; तिहुं काल जामें प्रतिबिंबित अनंतरूप, आपु हू अनंत सत्ता नंततें सरस है; भाव श्रुत ज्ञान परवान जो विचारि वस्तु, अनुभो करे जहां न बानीको परस है; अतुल अखंड अविचल अविनासी धाम, चिदानंद नाम ऐसो सम्यक दरस है ॥ ६६ ॥

अर्थः-- जे शुद्ध आत्माना प्रकाशमां राग द्वेष मोह न देखाय, अने आश्रव न होय, तेमां बंधनो तरस के० लागवुं ते पण न होय, अने जे शुद्ध आत्माना प्रकाशमां त्रणे काले अनंतरूप प्रतिबिंबित थाय छे; अने निजस्वरूप पण अनंत छे, अने सत्तानंतमां सरस छे, ते सत्तास्वरूपी अनंत पदार्थ छे, तेथी सरस छे, एटले जेना अनंतपर्याय सर्वे तेहिज धर्म कहे, अने भावश्रुत ज्ञानने प्रमाण करी वस्तुनो विचार अनुभव करे, अने ज्यांहां वाणीनो स्पर्श नही, एटले जे वचन गोचर नथी, अनक्षररूपनो अनुभव पोते करे, ए संयोगीगुणस्थानकनी दशा छे. जेनी तुलना नथी एटले अतुल; वली जेनी खंडना नथी माटे अखंड, एवुं अचल ने अविनाशी धाम के० तेजोमय तेहिज चिदानंद स्वरूप छे; एवुं ईश्वररूप सम्यक् दर्शननुं स्वरूप कहिये ॥ ६६ ॥

इतीश्री नाटक समयसारविषे बालाबोधरूप आश्रवद्वार पंचम संपूर्ण.

दोहाः-- आश्रवको अधिकार यह, कह्यो यथावत जेम; अब संवर वरनन करों, सुनों भविक धरि प्रेम. ॥ ६७ ॥

अर्थः-- ए रीते आश्रवनो अधिकार कह्यो हवे संवरतत्वनुं वर्णन करुंछुं; अहो भविक के० भव्य प्राणीउ प्रेम धरीने ते सांभलो. ॥ ६७ ॥

हवे संवरनु आदी ज्ञानवस्तु तेने नमस्कार करेछेः--अथ ज्ञान वर्णनंः--

सवैया इकतीसाः--आतमको अहित अध्यातमरहित ऐसो, आश्रव महातम अखंड अंडवत है; ताको विसतार गिलिबेकों परगट भयो, ब्रह्मंडको विकासी ब्रह्मंडवत है; जामें सबरूप जो सबमें सबरूपसो पें सबनि सों अलिप्त अकाशखंडवत है; सो है ज्ञान भानु शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवत है ६८

अर्थः-- आत्मानुं अहित करता अने अध्यात्मस्वरूपथी रहित एवुं आश्रव

रूप महातम के० महा अंधकार अखंमपणे अंमवत के० सर्व लोकने ढांकी रह्यो छे, तेनो विस्तार गलवाने जे ज्ञानसूर्य प्रगट थयो ते ब्रह्मांम जेवो सर्व लोका लोकने विकाशनो करनारो थयो, अने ब्रह्मांमनुं मंमन जेथकी थायछे, अने जेने विषे सर्व रूप जासे छे; अने जे सर्वरूपे सर्वमां पामिये छे, अने जे सर्व मूर्तिक वस्तुथी आकाशखंमनीपरे अलिप्त छे; ते ज्ञानरूपी सूर्य तथा जे शुद्ध संवरनो जेष धरी रह्या छे; तेनी रुचि रेखाने एटले तेना उदयने अमारो दंमवत के०नमस्कार छे.६७

हवे जड चेतनना जेदज्ञानथकीज संवररूपी परमात्माने उंलखाय छे, ते सम जावेछेः– अथ जेदज्ञान महिमा कथनः–

सवैया तेइसाः–शुद्ध सुछेद अजेद अबाधित, जेद विज्ञान सु तीछन आरा; अंतर जेद सुजाउ विजाव करे जड चेतनरूप डुफारा; सो जिन्हके उरमें उप ज्यो न रुचै तिन्हकों परसंग सहारा; आतमको अनुजौ करि ते हरखे परखे प रमातम धारा. ॥ ६९ ॥

अर्थः– शुद्धपणे स्वछेद के० पोतपोताना न्यारा स्वरूपने बतावनार अजेद के० एक स्वरूप अबाधित एटले कोई प्रमाणांतरें अखंमित एवुं जेदज्ञान ते तीक्ष्ण सुलाख छे, ते सुलाखथी अंतरात्मामां जेदन करीने स्वजाव अने विजावने जुदा जुदा करे ने जमरूप तथा चेतनरूपने डुफार के० न्यारा करी बतावे एवुं जेदज्ञान जेना हृदयनेविषे उपज्युं छे, तेज जीवने परवस्तुनो संग ते सहारा के० रुचे नही. अने तेज जीव पोताना स्वरूपनो अनुजव करी यथार्थपणे अंतरात्मानेविषे जे परमात्मानी धारा छे तेने पारखे. ॥ ६९ ॥

हवे जेदविज्ञान जे छे, ते सम्यक्त ज्ञान छे, तेनी समर्थाइ थकी स्वरूपनी प्रा प्ति थाय छे; ते कहेछेः-- अथ सम्यक्त सामर्थता कथनः--

सवैया तेइसाः--जो कबहूं यह जीव पदारथ, औसर पाइ मिथ्यात मिटावे; सम्यक धार प्रवाह वहे गुन ज्ञान उदे मुख उरध धावैं; तो अजिअंतर दर्वित जावित कर्म कि लेश प्रवेश न पावैं; आतम साधि अध्यातमको पथ पूरण व्है परब्रह्मकहावै ॥ ७० ॥

अर्थः– जो कोई आ जीव पदार्थ छे, ते यथाप्रवृत्तिकरणरूप अवसर पामी ने मिथ्यात्वग्रंथि जेदीने मिथ्यात्वने मिटावे शुद्ध सम्यक अने स्वरूप जलधा रानो प्रवाह वहे अने ज्ञानगुणना उदय वडे उर्ध्व मुख थईने मुक्ति सनमुख दोडे त्यारे अन्यंतर जे द्रवित कर्म अने जावित कर्म तेना क्लेसनो प्रवेश ते न

थाय. जे प्रकृति प्रदेशरूप कर्म ते द्रवित कर्म अने राग द्वेषादिक ते नावित कर्म ए बंने प्रवेश नही करी शके, अने अध्यात्मना पंथ सेलीमां आवीने आत्माने साधीने पोताना रूपमां पूर्ण थईने परब्रह्म केहेवाय ॥ ७० ॥

हवे संवरनुं कारण सम्यक दृष्टिछे,तेनो महिमा कहे छेः—अथ सम्यक दृष्टि महिमाः—

सवैया तेइसाः—नेद मिथ्यात सु वेद महारस नेद विज्ञान कला जिन पाई; जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसों ज पराई; उद्धतरीति वसे जिनके घट होतु निरंतर ज्योति सवाई; ते मतिमान सुवर्ण समान लगे तिनकों न शुनाशुनकाई.७१

अर्थः-मिथ्यातग्रंथि नेदीने तथा उपशमरूप महारस वेदीने जे बुद्धिवंते नेद विज्ञाननी कला पामीछे, अने जे ए नेदविज्ञान वडे पोताना स्वरूपनी प्राप्ति करीने पोताना ज्ञान दर्शन चारित्ररूप महिमाने अवधारे, उर के० हैया थकी पराई सोज के०सामग्री तेनो त्याग करे अने जेना घटमां उद्धतरीति के० देशविरति तथा सर्व विरतीनी रीत फुरी अने निरंतर तप थकी जेनी सवाई ज्योति थाय छे तेने बुद्धिमान कहिये ते सुवर्णसमान छे तेमने शुनाशुन कर्मरूप काट लागी शकतो नथी ॥७१॥

हवे संवरनुं मूल नेदविज्ञान छे ते मोक्षनुं कारण कही समजावेछेः—

अथ नेदज्ञान महिमा कथनः—

अडिल्ल छंदः—नेदज्ञान संवरनिदान निरदोष है; संवरसो निरजरा अनुक्रम मोष है; नेदज्ञान शिवमूल जगतमहि मानिये, यदपि हेय है तदपि उपादय जानिये ॥ ७२ ॥

अर्थः—नेदज्ञान जेछे ते निरदोष संवरनुं निदान के० मूलकारण छे अने निर्जरानुं कारण संवर छे अने निर्जराजेछे ते मोक्षनुं कारण छे. ए अनुक्रम प्रमाणे मोक्षनुं कारण परंपराथी नेदविज्ञानज छे. अगर जो शुद्धस्वरूपनी अपेक्षाने लीधे नेदज्ञान त्याग जोगछे तो पण नयोनुं उपादेय ते आदरवा जोग्य जानिये.॥७२॥

हवे स्वरूपनी प्राप्ति थया पछी नेदज्ञाननुं हेयपणुं देखाडेछेः—स्वरूप कथनः—

दोहाः- नेदज्ञान तबलों नलो, जबलों मुक्ति न होय; परम ज्योति परगट जहां, तहां विकल्प न कोय ॥ ७३ ॥

अर्थः—नेदज्ञान त्यांसुधी नलुंछे ज्यांसुधी मुक्ति थई नथी. जहां परम ज्योति प्रगट थाय त्यां विकल्प कोई रहे नही तो नेदज्ञान केम करीने रही शके ॥ ७३ ॥

नेदज्ञान मुक्तिनो उपाय छे ते कहेछेः-अथ नेदज्ञानमहिमा कथनः—

चोपाईः—भेदज्ञान संवर जिन्हि पायो, सो चेतन शिवरूप कहायो. भेदज्ञान जिनके घट नांही; ते जडजीव बंधे घटमांही. ॥ १४ ॥

अर्थः—जे जीवने भेदज्ञानरूप संवरनी प्राप्ति थई तेज चेतन शिवरूप कहियें जेना हृयनेविषे भेदज्ञान नथी. ते मूर्ख घटपिंमनेविषे बंधायलो रहेछे. ॥ १४ ॥

हवे भेदविज्ञानवडे आत्मानो महिमा वधेछे ते कहेछेः—अथ भेदज्ञानकी महात्म्यः-

दोहराः—भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर; धोबी अंतर आतमा, धोवै नीज गुन चीर. ॥ १५ ॥

अर्थः-- भेदज्ञान जे छे ते साबुरूप जाणवुं, अने उपशम रस ते निर्मल पाणी छे ने अंतर आत्माने धोबी मानवो, ते धोबी पोताना गुणरूपवस्त्रने धुवेछे ॥ १५ ॥

हवे भेदविज्ञाननी जे क्रिया छे ते कहेछेः-अथ भेदज्ञानकी कर्तव्यता महात्म्यः-

सवैया इकतीसाः-जैसें रजसोधा रज सोधिके दरब काढे, पावक कनक काढी दाहत उपलकों, पंकके गरभमे ज्यों मारिये कतक फल, नीर करे उज्वल नितारि मारे मलकों; दधिको मथैया मथि काढे जैसे माखनकों, राजहंस जैसें दूध पीवै त्यागि जलकों; तैसें ज्ञानवंत भेदज्ञानकी सकति साधि, वेदे निज संपति उछेदे परदलकों. ॥ १६ ॥

अर्थः—जेम कोई रज सोधा के० जोनारो रजने सोधीने एटले सोना रूपा प्रमुख द्रव्यने काढवाने पावक के० अग्निने लगाडेछे. ने सोनुं काढीलई पथरा धूल वगेरेने बाली नाखेछे. वली जेम कतकफलने पंकना गर्भनेविषे नाखीये तो तें फल जलने मेलथी जूडुं करेछे, वली जेम दधीनुं मथनहार दधीनुं मथन करी माखणने जूडुं करेछे ने राजहंस पाणी दूध भेगा होय तेमांथी मात्र दूध पीई जायछे. पाणीने जूडुं करेछे तेम ज्ञानवंत प्राणी भेदविज्ञाननी शक्ति साधीने पोतानी ज्ञानसंपत्तिने वेदे अने परदल के० पुद्गलनुं कटक जे राग द्वेषादिक तेने कापी नाखेछेः ॥ १६ ॥

अथ भेदज्ञान मोक्षमूल यहु कथनः—

छप्पय छंदः--प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुणजानै; परपरिनति परि त्यागि, शुद्ध अनुभव थिति ठानै; करि अनुभव अभ्यास, सहज संवर परगासैं; आश्रव द्वार निरोद्ध, कर्म घनतिमिर विनासै; छय करिविभाव समभाव भजि, निरविकल्पनिज पद गहै; निर्मल विशुद्ध सासुत सुथिर, परम अतिंद्रिय सुख लहै. १७

अर्थः-- ज्ञेद ज्ञान जे ठे ते प्रगटपणे पोताना तेम पारका गुणने जाणेठे, तेथी परवस्तुमां जे परिनमन ठे तेनुं ज्ञान करे, पोताना शुद्ध अनुजवनो ठराव राखे, ने ते अनुजवनो अन्यास करीने सहज संकरना रूपनो प्रकाश करे, आश्रव द्वारनो विरोध करीने कर्मरूप मेघ अंधकारनो नाश करे; अने विजाव के० मोह दशानो क्षय करीने समजाव के० समाधिने जजे, तेणे करीने जहां कांई विकल्प नथी एवुं पोतानुं निर्विकल्प पद तेने पामे एटले जे सुखनेविषे मल नथी एउपरथी ते विशुद्ध अनंत कालसुधी एकरूप तेथी शाश्वत स्थिर एवुं अतींद्रिय के० इंद्रियगोचर नही एवुं सुख पामे ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसारको बालाबोधरूप संवर द्वार ठगो संपूर्ण.

दोहाः-- बरनी संवरकी दसा, जथा जुगति परमान; मुक्ति वितरनी निर्जरा' सुनहु जविक धरि कान ॥ ७८ ॥

अर्थः--संवररूपनी दशा कही ते युक्ति तथा प्रमाणे करी कहीठे; हवे मुक्तिनी वितरणी के० आपनारी एवी जे निर्जरा ठे तेनुं वर्णन करुंछुं:- ते अहो जव्य लोको तमे कान दईने शांजलो. ॥ ७८ ॥

हवे निर्जरानुं केवुं स्वरूप ठे ते कहेठेः- अथ निर्जरास्वरूप कथनः-

चौपाईः- जो संवर पद पाइ अनंदे; जो पूरव कृत कर्म निकंदे; जो अफंद व्है बहुरि न फंदे; सो निरजरा बनारसि बंदे. ॥ ७९ ॥

अर्थः-पोतानुं जे शुद्ध स्वरूप राखवुं तेनुं नाम संवर कहिये; तेनुं पद पामीने संवर आनंद करे; अने पूर्व कालनेविषे जे कर्म कीधांठे, तेने जडथी उखेडी नाखे; अने जे पूर्व कर्मना फंद तेथकी ठूटीने पाछुं ते फंदमां सपडाय नही तेनुं नाम आत्मानी निर्जरा कहिये. ते निर्जराने बनारसीदास वंदन करेठे. ॥ ७९ ॥

निर्जरानुं कारण सम्यक्त ठे माटे सम्यक्तनो महिमा वखाणे ठेः--

अथ सम्यक्त महिमा कथनः-

दोहाः-- महिमा सम्यक् ज्ञानकी, अरु विराग बल जोइ; क्रिया करत फल जुंजते, करमबंध नहि होइ. ॥ ८० ॥

अर्थः-- जे कर्म ठूटे तेनुं फरीने बंधन थई शके नही ए सम्यक् ज्ञाननो महिमा ठे. वली ए सम्यक्ज्ञान साथे वैराग बलनो जोग ठे, तेथी शुनाशुज क्रिया करता थका ने तेनुं फल जोगता थका शृंखला बंधनवा कर्मनो बंध थतो नथी. ॥ ८० ॥

हवे सम्यक्नी महिमामां क्रिया करतांज कर्मनी निर्जरा थाय छे ते दृष्टांते कहेछेः--

सवैया इकतीसाः—जैसे नूप कौतुक सरूप करै नीच कर्म, कौतुकी कहावै तासों कौन कहै रंक है; जैसे विभचारिनी विचारै विभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भर तासों चित्त वंक है; जैसे धाइ बालक चुंघाइ करै लालि पालि, जानै तांहि औरको जदपि वाके अंक है; तैसै ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै यातें निकलंक है. ॥ ८१ ॥

पुनः—जैसे निशिवासर कमल रहै पंकहिमें, पंकज कहावै पै न याके ढिग पंक है; जैसै मंत्रवादी विषधरसों गहावे गात, मंत्रकी सकति वाके विना विषडंक है; जैसै जी भ गहै चिकनाइ रहै रूख अंग, पानीमें कनक जैसे काइसो अटंक है; तैसै ज्ञान वंत नानाभांति करतूति ठानै, किरियाकों भिन्न मानै याते निकलंक है ॥ ८२ ॥

अर्थः— जेम कोई नूप के० राजा होय ने ते पोताना कौतुके करीने गमे तेवुं नीच कर्म करे ते क्रिया करवाने लीधे ते कौतुकी केहेवाय पण कोई ते रा जाने रंक नही कहे; जेम कोई कुलटा व्यभिचारिणी स्त्री होय ते यद्यपि पोताना धणीनी साथे रहे खरी, तोपण धणीनी साथे तेनुं चित्त लुब्ध होतुं नथी; चित्तने विषे तो व्यभिचारनोज विचार थाय, के जो वखत मले तो नीकली जाउं ने यारने मलुं; जेम कोई धाव होय ने ते पारका बालकने धवरावे, अने रमाडे लाल न पालन करे, अने अंक के० पोताना खोलामां लईने बेसे यद्यपि एवी क्रिया तो करे खरी, पण मनमां एम जाणेछे के आ बालक पारकुं छे; तेवीज रीते जे स म्यक् ज्ञानी छे ते नाना प्रकारनी शुभाशुभ क्रिया, राजा श्रेणिक तथा भरत चक्र वर्त्ति अने बीजा साधुनी माफक करे छे, पण ए क्रियाने पुद्गल रूप जाणेछे, पो ताना स्वरूपथी भिन्न मानेछे एथी बंधनतुं कलंक लागतुं नथी ॥ ८१ ॥

एज उपर बीजा दृष्टांत कहेछे के, जेम कमल छे ते रात्र दिवस पंक के० क र्दमनेविषे रहे छे तेथकीज उत्पन थयुंछे, तेथी पंकज केवाय छे; तोपण कमलने पंकनो स्पर्श नथी होतो. जेम कोई गारूडी मंत्रवादी होय ते पोता ना गात के० शरीरने सर्प पासे पकडावे करडावे पण ते मंत्रवादीना मंत्रनी श क्तिवडे सर्पनो मुख विषसंजोगरहित होयछे; जेम जिव्हा इंद्रिय घी दही प्रमु खनी चीकणाई ग्रहण करेछे, पण पोताना अंगने ते चिकाशनो लेश रेवा देती नथी, किंतु लूखीज रहेछे. जेम सोनुं पाणीनेविषे रेहेतां थका काटवालुं थतुं नथी,

तेवी रीते ज्ञानवंत प्राणी नाना प्रकारनी क्रिया करेछे, पण क्रियाने पुद्गल संयोग वाली जाणी आत्मस्वरूपथी भिन्न माने छे तेथीज कर्म बंध कलंकथी जुदो रहेछे ७२

हवे विषय भोगवता थका कर्म बंध न थाय एवी ज्ञानवैराग्यनी शक्ति बतावे छेः— अथ ज्ञान वैराग शक्ति वर्णनंः—

सोरठाः— पूर्व उदय संबंध, विषय भोगवै समकिती; करै न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ७३ ॥

अर्थः— पूर्वे संचित कर्म उदय आव्याथी तेना संबंधे सम्यक्ती जीव विषय भोग भोगवे छे, पण नवां कर्मबंध करतो नथी, ए सम्यक् ज्ञान तथा वैरागनी शक्ति छे ७३

हवे जे ज्ञाता होय छे ते सम्यक् ज्ञान अने विषयनी अरुची ए बेउने साधेछे ते कहेछेः— अथ ज्ञाताकी व्यवस्था कथनः—

सवैया तेइसाः— सम्यकवंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुन धारै; जासु प्रभाव लखै निज लछन, जीव अजीव दशा निरवारै; आतमको अनुभौ करि व्है थिर, आपु तरै अरु औरनि तारै; साधि सुदर्व लहै शिवसर्म सुकर्म उपाधि व्यथा वमिभारै. ॥ ७४ ॥

अर्थः— जे समकिती होय ते सदा पोताना अंतःकरणनेविषे ज्ञान अने वैराग ए बे गुणने धारे जे गुणना प्रभाववडे पोतानुं ज्ञातापणुं लक्षण जोईने जीव अजीव दशा एटले जीव अजीवनुं स्वरूप निरवारे के० जुदुं जुदुं जाणे, ते पछी आत्माने यथार्थपणे वेदीने आत्मिक स्वभावमां स्थिरता थई रहेछे; ते पोते पण तरे अने सत्यउपदेश आपी बीजाने पण तारेछे; ए रीते पोताना आत्मद्रव्यने साधीने मोक्षसुखने पामे, अने कर्मउपाधि सहित जे व्यथा तेनुं वमन करेछे ॥ ७४ ॥

हवे विषयनी अरुचिविना ज्ञाननुं बल निष्फल छे, अने एवा ज्ञानीने एकांत पक्षनेविषे रहेवाथी मिथ्या दृष्टि ठेरावे छेः— अथ मिथ्यादृष्टि व्यवस्था कथनः—

सवैया तेइसाः— जो नर सम्यकवंत कहावत, सम्यक ज्ञान कला नहि जागी; आतमअंग अबंध विचारत, धारत संग कहै हम त्यागी; भेष धरै मुनिराज पटंतर, मोह महानल अंतर दागी; सून्य हिये करतूति करै परि,सो सठ जीव न होइ विरागी. ॥ ७५ ॥

अर्थः—जे मनुष्य पोते सम्यकवंत केहेवाय अने सम्यक् ज्ञाननी कला न जागी, एटले सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति न थई तेथी आत्माना अंगविषे बंधविचारे नही, आत्मा अबंध छे एम माने; ने तेथी ते अभ्यंतर संयोग धारे छे. वली कोई नि

अथ नयनो पक्ष लईने पोते त्यागी छे एम कहे, मुनिराजनी पठे पटंतर के० नेष धरे; पण अंतरनेविषे मोहमहानल के० मोहरूप अग्नि शलगी रही होय; विषय थकी वैरागी न थयो, तेथी हिया सून्य थको मुनिराजनी पठे क्रिया करे, पण ते जीव मूर्खज केहेवायछे पण वेरागी कहेवाय नही ॥ ७५ ॥

हवे जे सर्व क्रिया करता थका पण मूढ केवाय छे ते कहे छेः—

अथ मूढ क्रिया वर्णनंः—

सवैया तेइसाः— ग्रंथ रचै चरचै शुन पंथ लखै जगमें व्यवहार सुपत्ता; साधि सँतोष अराधि निरंजन, देइ सुसीख न लेइ अदत्ता; नंग धरंग फिरै तजि संग छके सरवंग मुधारस मत्ता; ए करतूति करै सठ पें समुझै न अनातम आतम सत्ता. ॥७६॥ ध्यान धरै करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिनै निज नत्ता; त्यागि विजूति विजूति मिटै तन जोग गहै नवनोग विरत्ता; मौन रहै लहि मंद कषाय सहै वध बंधन होइ न तत्ता; ए करतूति करै सठ पै समुझै न अनातम आतम सत्ता ॥७७॥

अर्थः— ग्रंथ रचना करे, नला मार्गनी चरचा करे, नला मार्गने लखे, जगतमां व्यवहार मार्गमां प्रासिधको रहे, संतोषी थईने निरंजनने आराधे, लोकोने सारी शीखामण आपे, अदत्तदान ले नही, परिग्रह संग त्यागीने नंग धरंग फिरे के० दिगंबर थई फरे, अने मुधा के० मुग्धपणे पोताना रसमां मातो थको सर्वांगे छक्यो रहे, एवी एवी क्रिया मूर्ख होय ते करेछे पण अनातम सत्ता के० आत्माथी पृथक जे मोहनी गहलता छे तेने, अने आत्मसत्ता के० शुद्ध जाणपणानी जे सत्ता छे, तेने जुदी जुदी जाणे नही तेमने मूर्ख केहेवा ॥ ७६ ॥

वली मूढनी क्रिया केहेछे के, ध्यान धरे, इंद्रिय दमन करे, विग्रह करेछे ते शरीरनी साथे पोताना आत्मानो संबंध गणे नही. विजूति के० संपत्तिनो त्याग करी विजूति के० नस्म शरीर उपर लगाडे, योग मार्ग ग्रहे, अने संसारना नोगथी विरक्त रहे, मौनपणे रहे, कषायनुं मंदपणुं समजे, वध बंधन सहेतो थको पण तातो नही थाय, क्रोधादिक न करे, एवी क्रिया सठ मूढ होय ते करे छे, पण अनातम सत्ता एटले कर्मादिक प्रनावनी सत्ता अने आत्मसत्ता एटले आत्मानुं सत्य स्वरूप तेने समजे नही माटे तेनें मूर्ख समजवो. ॥ ७७ ॥

हवे फरी मूढपणानुं स्वरूप बतावेछेः— पुनः मूढ वर्ननंः—

चौपाईः— जो बिनुज्ञान क्रिया अवगाहै; जो बिनु क्रिया मोख पद चाहै; जो बिनु मोख कहै में सुखिया; सो अजान मूढनिमें मुखिया ॥ ७८ ॥

अर्थः– जे जन ज्ञानविना क्रिया अवगाहे अने क्रियाविना मोक्ष पद वांछे, वली जे मोक्ष पाम्या शिवाय कहे के हुं सुखी छुं, तेने अजाण मूर्खनो शिरोमणी जाणवो. ॥ ८८ ॥

हवे जेने कर्मसत्ता तथा आत्मसत्तानी भिन्नता भासती नथी. तेने महामूढ कहिये तेनुं विवेचन करेछेः– अथ महामूढ व्यवस्थाकथनः–

सवैया इकतीसाः– जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश कहै, तुम्हे इहां सोवत अनंत काल बीते हैं; जागो व्है सुचेत चित समता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्षर सजीते हैं; आउ मेरे निकट बताउं में तुह्मारे गुन, परम सुरस भरे करमसों रीते हैं; ऐसे बैन कहै गुरु तउ ते न धरै उर, मित्रकेसे पुत्र किधों चित्रकेसे चीते हैं. ॥ ८९ ॥

अर्थः– सर्व जगवासी जीवना हित वाछल्यने अर्थे गुरु एवो उपदेश करेछे के, अहो भव्य प्राणी जीव तमे आ जगतमां मोहनिद्रानेविषे सूता रह्या थकाज अनादि अनंतकाल तमोने वीत्यो छे, माटे हवे तो चित्तमां सचेत थईने जागो; अने समता सहित थका केवलीना वचन सांभलो, जे केवलीना वचनमां अक्षर रस के० इंद्रियना विषय रस तेने जीतेला छे; अने तमे मारी पासे आवो तो तमारा गुण बतावुं; ते गुण केवा छे, परम एटले उत्कृष्ट सुरसे करी भरेला छे; अने कर्मथकी रीते के० न्यारा छे; एवा वचन गुरु कहेछे ते जे प्राणी हैयामां धरता नथी ते मित्रना पुत्र जेवाछे, केमके मित्रना पुत्रवडे पोतानुं घर उधारुं रेतुं नथी. अने तेने शीखामण शी देवी! अने चित्रामण जेवा छे कारण के चित्रामण थकी कांई सत्य क्रिया थती नथी. ॥ ८९ ॥

दोहाः– एते पर बहुरों सुगुरु, बोलै बचन रसाल; सेन दशा जागृत दशा, कहै दुहूंकी चाल. ॥ ९० ॥

अर्थः– ए प्रमाणे सद्गुरु छे ते फरी सरस वचन बोले छे, के जीवने एक सयनदशा ने बीजी जागृतदशा एवी बे दशा छे तेनी चाल सांभलो. ॥ ९० ॥

हवे सैन दशानुं वर्णन करेछेः– अथ शयन दशा वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः– काया चित्र सारीमें करम परजंक भारी, मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना; सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिए, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना; उदै बलजोर यहे श्वासको सबद घोर, विषे सुख कारजकी दोर यहे सुपना; ऐसी मूढ दसामें मगन रहै तिहू काल, धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना.

अर्थः– कायारूप चित्र साली छे, तेमां कर्मरूप पर्यंक छे, तेउपर मायानी सेज संवारी छे, कल्पना के० मननी विकल्पनारूप चादर छे, अचेतनानी ऊंघ लईने एवी सामग्रीमां चेतन शयन करी रह्यो छे, मोहनी मरोम तेणे करीने लोचन ढंकाया छे; उदय बल जोर जे छे, ते श्वासनो घोर शब्द छे, अने विषय सुख कार्य नी दोड एटले करणी करवी ते स्वप्नावस्था छे, अने एनुंज नाम मूढदशा तथा शयन दशा कहिये. अने ए दशानेविषे जे मूढ जन होय, ते त्रणे काल मगन थको धावे छे, एटले भ्रमजालमां दोडेछे, पण पोतानुं रूप पामतो नथी. ॥ ८१ ॥

हवे जीवनी जागृतदशानुं वर्णन करेछेः–अथ जागृतदशा वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः–चित्र सारी न्यारी परजंक न्यारो सेज न्यारी, चादर भी न्यारी इहां झूठी मेरी थपना; अतीत अवस्था सैन निद्रा वही कोउ पैन विद्यमान पलक न यामें अब छपना; श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझे, सूझै सब अंग लखि आतम दरपना; त्यागी भयो चेतन अचेतनता भाव त्यागी, भाले दृष्टि खोलिके संभाले रूप अपना. ॥ ८२ ॥

अर्थः–आत्मज्ञान पाम्याथकी कायारूप चित्रसारी जुदी जुए, अने कर्मरूप पलंगने पण न्यारो देखे; मायारूप सेज पण जुदी जुए, कल्पनारूप चादरने न्यारी जुए, मतलबके ए ठेकाणे मारी स्थापना झूठी छे एम समजे. अतीत अवस्थानेविषे एटले सयनदशामां निद्रा लेनार पण कोई बीजा रूपे हुंजहुं, विद्यमान कालमां ते अवस्था नथी, हवे पलकमात्र पण आ अवस्थामां मारो अभाव थनार नथी. श्वास अने स्वप्न ए बे निद्रानी अलंगना संयोगे बूझे, अने आत्मारूप आरिसामां आत्मानुंज सर्व अंग सूझे एवी रीते अचेतनतारूप निद्रानो त्याग करीने चेतन त्यागी थयो त्यारे पोतानी दृष्टि खोलीने जुए, अने पोतानुं रूप संभाले. ॥ ८२ ॥

वली सद्गुरु शिक्षानां वचन कहेछेः-अथ पुनः सद्गुरु शिक्षा कथनंः-

दोहाः–इहि विधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव; जे सोवहि संसारमें, ते जगवासी जीव ॥ ८३ ॥

अर्थः-ए रीते जे पुरुष जागे छे, तेतो सर्व कालनेविषे शिवरूप के० मोक्षरूप जाणवा. अने जेटला संसारनेविषे सूता छे, तेटला तो जगतवासी जीव समजवा. ॥ ८३ ॥

हवे मोक्षपद उपादेयरूप कहीने स्तुति करेछे.–अथ आत्मद्रव्य स्तुतिकथन.

दोहाः–जो पद भोपद भय हरै, सोपद सेउ अनूप; जिहि पद परसत और पद, लगै आपदारूप ॥ ८४ ॥

अर्थः—जे पद के० जे स्थानक नवस्थानकनो नय हरे छे, तेनेज पद कहेवुं, तथा अनूप स्थानक केहेवुं, अने जे पदनो स्पर्श थतांज अन्य पद जे कर्म पद छे, ते आपदारूप लागे छे ॥ ९४ ॥

हवे नव जे संसार पद तेनो नय बतावे छेः—अथ संसार वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः—जब जीव सोवै तब समुझे सुपन सत्य, वहि झूठ लागै जब जागै नींद खोइके; जागे कहै यह मेरो तन यह मेरी सोंज ताहू झूठ मानत मरणथिति जोइके; जाने निज मरम मरन तब सूझै झूठ, बूझै जब और अवताररूप होइके; वाहु अवतारकी दशामें फिरि यहै पेच, याहि भांति झूठो जग देख्यो हम ढोइके. ॥ ९५ ॥

अर्थः—ज्यारे जीव सयन दशामां सूतो होय छे, त्यारे स्वप्नने सत्य करी माने छे. अने तेज स्वप्न रूपने ज्यारे निद्रा मूकी जागीने जुए छे, त्यारे जूठुं जाणेछे, जागीने कहे के आ मारुं शरीर तो आंई छे, आ सोंज के० सामग्री सर्व मारी छे; ने ज्यारे पोतानी मर्ण स्थितिनो विचार करे छे, त्यारे तो वर्तमान शरीर तथा सामग्री सर्वने जूठी माने छे, अने ज्यारे पोताना मर्मनी वात जाणे एटले पोताना स्वरूपनी वातने जाणे, त्यारे तो मरणने पण जूठुं जाणे; एमज वली बीजो अवतार ले त्यारे बीजा रूपे थईने बीजी वात जाणे; फरी तेज अवतारमां सूता जागा जूठा साचानुं पेच आगलीज रीते लागो रहे. ए रीते वारे वारे अवतार लेवा ने वली सामग्रीने पोतानी समजवी ने वली मरवुं; ए रीते सर्व संसारने ढोई के० देखीने अमे सर्व संसारने जूठोज जाण्यो ॥ ९५ ॥

हवे ज्ञाता केवी क्रिया करे ते समजावे छेः— अथ ज्ञाताकी क्रिया कथनंः—

सवैया इकतीसाः— पंमित विवेक लहि एकताकी टेक गहि दुंदज अवस्थाकी अनेकता हरतु है; मति श्रुत अवधि इत्यादि विकलप मेटी, निरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है; इंद्रियजनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमको रूप व्है करम निर्जरतु है; सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमातम करतु है ॥ ९६ ॥

अर्थः—जे पंमित जन होय ते विवेकनो भेद एटले विज्ञान लहीने पोतानी एकतानी टेक राखीने प्रथमनी द्वंद्वअवस्था जे भ्रम अवस्थामां अनेकता हती तेने हरे छे. अने मति श्रुति अवधि इत्यादि ज्ञानस्वरूपना विकल्पने मटाडीने निर्विकल्प ज्ञान जे केवल ज्ञान तेने मनमां धरेछे. अने इंद्रियजनित जे सुख दुः

ख तेथी विमुख थई परमात्मारूप थईने कर्मनी निर्जरा करे छे. एटले निर्जरा थायछे. तेथी पोतानी सहज समाधिसाधिने पर जे कर्मपुद्गलादिकनी उपाधि जे राग द्वेषादिक, तेनो त्याग करीने आत्माने आराधी परमात्मा पणु करेछे ॥९६॥

हवे जे ज्ञान समुद्र परमात्मानी प्राप्ति थाय छे, ते ज्ञाननी प्रशंसा करेछेः—

अथ ज्ञान समुद्रवर्णनंः—

सवैया इकतीसाः—जाके उरअंतर निरंतर अनंत दर्व, भाव भासि रहे पें सुभाव न टरतु है; निर्मलसौं निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करतु है; जानै मति श्रुत औधि मनपर्यै केवल सु, पंचधा तरंगनि उमंग उछरतु है; सो है ज्ञानउदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमें अनेकता धरतु है ॥ ९७ ॥

अर्थः— जे ज्ञान सागरना मध्यभागनेविषे निरंतर अनंत द्रव्य पदार्थ भासी रह्या छे, पण ते द्रव्यनो स्वभाव पोते पामतो नथी, निर्मलमां निर्मल एवुं सुजीवन के० जीवितव्य अने समुद्र; पक्षे सुजीवन के० पाणी ते, जेनुं प्रगटछे, अने घटमें के० हृदयनेविषे अघट के० अक्षणरस कौतुक के० सत्यार्थ वेदननुं जे रस तेनुज कुतोहल करे छे, एटले ए समुद्रनेविषे रस कुतोहल घणा छे, अने जे ज्ञान समुद्रनेविषे मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनपर्यवज्ञान ने केवल ज्ञान ए पांचे ज्ञान तरंगरूप छे. उमंग के० पोतपोताने ठेकाणे प्रगट थई रह्यां छे एवो ज्ञानसमुद्र ते उदार प्रधान छे, एनो अपार महिमा छे, एनेविषे सर्व पदार्थ भासे छे तेथी पोते निराधार अने एक स्वरूप छता ज्ञातापणामां अनेकता धरे छे॥९७

हवे ज्ञानविना मात्र क्रियावडेज मोक्षनी प्राप्ति नथी तेनुं वर्णन करेछेः—

अथ मोक्षमार्ग अप्राप्ति कथनंः—

सवैया इकतीसाः— केई क्रूर कष्ट सहै तपसों शरीर दहै, धूम्रपान करै अधो मुख व्हैके फूले है; केई महा व्रत गहै क्रियामें मगन रहै, वहै मुनि भारमें पयारकेसे पूले है;इत्यादिक जीवनकों सर्वथा मुगति नांहि, फिरे जगमांहि ज्यों वयारके बघूले है; जिनके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरबान, करमके करतार भरममें भूले हैं॥९८

अर्थः— कोई अज्ञानी क्रूर कष्ट सहन करेछे अने पंचाग्नि प्रमुख तप करीने शरीरने बालेछे, कईक अज्ञानी अग्निना धुमाडानुं पान करेछे, नीचुं मुख राखी उंचा पग करीने फूलेछे. केटला अज्ञानी जैन लिंग लईने पांच महाव्रत द्रव्यथी ग्रहण करेछे, अने क्रियामां मग्न रहेछे, एरीतें मुनिराज पणानो भार वहेछे, पण ते पयारना जेवा पूलेछे, देश भाषायें पयार एटले पलाल, जेना फूलनेविषे कण

होता नथी. तेवी रीते निराश जाणवा; इत्यादि केवल क्रिया कलापवडे जीवने त वैथा मुक्ति थती नथी; ते जगतनेविषे वयारना बघूल जेम ऊंचा नीचा फरी रहे छे, पण एक ठेकाणे ठरता नथी, तेवा समजवा; अने जेना हृदयनेविषे ज्ञान कला जागृतरूप थईछे, तेमने निरवाण के० मोक्ष छे; अने जे कर्मना करतार एट ले केवल क्रियानाज करनारा छे तेतो जर्मनेविषेज जूली रह्याछेः ॥ ९८ ॥

हवे जे मूढ जन छे तेनी दृष्टि निश्चयमां नथी, पण व्यवहारने विषे छे, तेथी तेनेविषे अज्ञान छे ते कहेछेः— अथ मूढ व्यवस्था वर्णनंः—

दोहाः—लीन जयो विवहारमें, उकति न उपजै कोइ; दीन जयो प्रजु पद जपै, मुकति कहांसों होइ. ॥ ९९ ॥

अर्थः— जे व्यवहारमां लीन थई रह्यो होय एटले मगन थई रह्यो होय, तेने कोई उकति के तत्वदृष्टि उपजे नही, अने पोते अनाथ थईने पोताना नाथना पदने जजे, ए रीते पोतानुं निश्चयरूप जाण्याविना मुक्ति क्यांथी थाय. ॥ ९९ ॥

दोहाः—प्रजु समरो पूजो पढो, करो विविध विवहार; मोक्ष सरूपी आतमा; ज्ञानगम्य निरधार. ॥ १०० ॥

अर्थः— प्रजुने समरो, जावे पूजो, ने जावसहित पढो इत्यादि व्यवहार करो पण मोक्ष स्वरूपी आत्माछे तेतो निरधार के० निश्चय ज्ञान गम्य छे. ॥ १०० ॥

हवे निश्चय स्वरूपनेविषे ज्ञान पर्याय रूपी अर्थनुं निरूपण करेछेः—

अथ पर्यायार्थ निरूपनंः—

सवैया तेईसाः—काज विना न करे जिय उद्यम, लाज विना रनमांहि न फूझै; शीलविना न सधै परमारथ, सीलविना सतसों न अरूझै; नेम विना न लहे निहचे पद, प्रेमविना रस रीति न बूझै; ध्यानविना न थजे मनकी गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझै. ॥ १ ॥

अर्थः— अहीं अर्थांतर बतावेछे के, जेम जीव पोताना काम विना उद्यम करतो नथी. जेम लाज विना रणसंग्रामने विषे झूझतो नथी. वली जेम देह धर्याविना परमार्थ थतो नथी, अने शील धारण कीधाविना सत्व साथे मलातुं नथी. वली नियम धर्या शिवाय निश्चय पद मलतुं नथी, अने जेम प्रेमनी प्रीत विना रसरीत जणाती नथी, तथा ध्यानविना मननी गति थोजाती नथी, तेम ज्ञानविना शिवपंथ के० मुक्तिमार्ग ते सूजतो नथी. ॥ १ ॥

हवे ज्ञानवंतनो महिमा देखाडीने तेनी व्यवस्था कहेछेः—

अथ ज्ञानमहिमा धारक व्यवस्था कथनंः—

सवैया तेईसाः— ज्ञान उदै जिनके घट अंतर, ज्योति जगी मति होति न मैली; बाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यान कला विधि फैली; जे जड चेतन भिन्न लखैं सु विवेक लिये परखैं गुन थैली; ते जगमें परमारथ जानि गहै रुचि मानि अध्यातम सैली. ॥ १ ॥

अर्थः— जेना हृदयनेविषे ज्ञाननो उदय थवाथी पोतानी ज्योति जागृत थईने तेथी मति जे बुद्धि ते उज्वल थई पण मेली नथी; अने पोताना बाह्य शरीरने आत्मा करी माने एवी बाह्य दृष्टी ते मटी गई, अने हृदयनेविषे आत्मध्याननी कला तेनी विधि जे यमनियमादिक ते विधि फेली एटले पसरी, ते वखतथी जड चेतनने भिन्न भिन्न लखे, अने पोतानो विवेक के० भेदविज्ञान तेणेकरी पोताना गुणनी थेली पारखी लीधी. एवा जे जीव तेज जगतमां परमार्थने जाणी तेने रुचिये करी ग्रहण करे, ए रीतें अध्यात्मसेली मान्य करीने परमार्थने जाणे. ॥ १ ॥

हवे मोक्षनी सुगम प्राप्ति देखाडेछेः-- अथ मोक्षप्राप्ति कथनः—

दोहाः-- बहु विधि क्रिया कलेससों, शिवपद लहै न कोइ; ज्ञान कला परकाशसों, सहज मोक्ष पद होइ. ॥ ३ ॥ ज्ञान कला घट घट वसे, योग युगतिके पार; निज निज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार. ॥ ४ ॥

अर्थः-- भात भातनी क्रियाने निमित्ते क्लेश करवो, तेथी मोक्षपद मले नही. पण ज्ञानकलानो प्रकाश थवाथी सेहेज मोक्षपद प्राप्त थायछे ॥३॥ ज्ञानकला तो घट घटनेविषे वसी रहेली छे, पण मन वचन अने कायाना योगनी युक्तिथी पार रहेली छे, माटे पोत पोतानी कलाने प्रकाश करवाथी संसारथी मुक्त थवाय छे, एवो सर्वने सद्गुरुनो आशीर्वाद छे. ॥ ४ ॥

हवे मुक्तपणुं अनुभव थकी थायछे माटे अनुभवनी प्रशंसा करेछेः--

अथ अनुभव प्रशंसाः--

कुंडलियाछंदः—अनुभव चिंतामनिरतन, जाके हिय परगास; सो पुनीत शिवपद लहै, दहै चतुर्गतिवास; दहै चतुर्गतिवास, आस धरि क्रिया न मंडै; नूतन बंध निरोध, पूर्वकृत कर्म विहंडै; ताके न गनु विकार, न गनु बहु भार न गनु भौ, जाके हिरदेमांहि, रतनचिंतामनि अनुभौ ॥ ५ ॥

अर्थः—अनुभवरूपी चिंतामणिरत्न जेना हृदयनेविषे प्रकाशमान थई रह्योछे

ते जीव पुनीत के० पवित्र थईने शिवपदने पामेछे, ने चतुर्गतिनो जे वास तेने द हन करेछे; एटले देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति ने नरकगति ए चारे गतिना वास ने बाळी नाखेछे. अनुजवी जननी रीत एछे के ते आशा धरीने क्रिया मांझे नही. नूतन बंध के० नवा कर्मना बंधने निरोधीने संवर धारण करे, तथा पूर्वकृत कर्म ने विढ़ंमी नाखीने तेनी निर्जरा करेछे, तेना विकारने अहो नव्य जीव तुं गणीस नही, अने तेना अतिजारने तुं गणीस नही, अने तेना नयने पण गणीस नही, जेना हृदयमां अनुजवरूपी चिंतामणीरत्न प्रकाशी रह्युंछे ॥ ५१॥

हवे अनुजवीनी ज्ञानदृष्टीनु सामर्थ्य वखाणेछेः— अथ ज्ञानदृष्टि सामर्थ्य कथनंः—

सवैया इकतीसाः—जिनके हियेमें सत्य सूरज उदोत नयो, फेलि मति किरन मिथ्यात तम नष्ट है; जिनकी सुदृष्टिमें न परचै विषमतासों समतासों प्रीति मम तासों लष्ट पुष्ट है; जिन्हके कटाछमें सहज मोष पथ सधै, साधन निरोध जाके तनको न कष्ट है; तिन्हिकों करमकी किलोल यह है समाधि, मोले यह जोगा सन बोले यह मष्ट है ॥ ६ ॥

अर्थः— जेना हियानेविषे सत्य सूर्यनो उद्योत थई इह्योछे, अने सत्य सूर्यना मतिरूप किर्ण फेली रह्याछे, तेथी मिथ्यात रूप अंधकार ते नाश पाम्यो. वळी जे जीवनी सुदृष्टिमां विषमतानो परिचय नथी, एटले समतासाथे प्रीति बंधाणी छे, ने ममतासाथे तथा मोहसाथे लष्ट पुष्ट के० चित्तविनानी प्रीति राखेछे, ने जे ना कटाक्षनेविषे एटले थोडा विलोकनमां सहज स्वनावे मोक्षमार्ग सिद्ध थायछे. साधन के० मनोयोगादिक त्रण योगनो निरोध एटले निग्रह कर्योछे अने जेना शरीरने कष्ट नथी, एवा ज्ञानधारीने जे कर्म लहेर आवेछे तेने गणतीमां समाधी ना वज जाणेछे; जो कदी गती कर्मना उदयवशे मोलेछे तोपण ते जोगासन धारीछे अने जो बोलेछे तोपण मष्ट के० मौनव्रतिछे ॥ ६ ॥

हवे ज्ञानीने परवस्तुनो त्याग कह्यो अने विशेषपणे तेनोज त्याग वखाणेछेः—

अथ परवस्तुको त्याग ताको विशेष वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः— आतम सुनाउ परनाउकी न सुद्धि ताकों, जाको मन गमन परिग्रहमें रह्यो है; ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इ हांलों समुच्चेरूप कह्यो है; अब निज परे न्रम दूरि करिबेके काज बहुरो सुगु रु उपदेशको उमह्यो है; परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदीरि लह लह्यो है ॥ ७ ॥

अर्थः—जेनुं मन परिग्रहनेविषे मगन थई रह्युं छे, ते जीवने पोताना तथा पारका स्वजावनी शुद्धता थती नथी. परिग्रहनो राग तेतो अविवेकनुं निधान कह्युं छे, जे परिग्रहना रागनेविषे पोताना ने पारका स्वजावनी शुद्धता नथी, ते परिग्रह रागने त्याग; अहींसुधी सामान्य मात्र कह्यो. हवे निजस्वरूपनो भ्रम ने परस्वरूपनो भ्रम तेने दूर करवाना कार्यने घणा प्रकारें सद्गुरू उपदेश करवाने उछंगवंत थया छे. हवे इहां परिग्रह तथा ते परिग्रहनुं विशेष अंग केहेवाने सदगुरु जे छे ते उद्यम उदीरणा करीने लह लह्यो के० सचेत थया छे ॥ ७ ॥

हवे सामान्यरूप परिग्रहनो राग अने विशेषरूप परिग्रहनो राग तेनो विवरो कहे छेः—अथ सामान्यविशेष कथनंः—

दोहाः—त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार; विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार ॥ ८ ॥

अर्थः—जेटली परवस्तु छे तेटली बधी त्याग जोग छे. एतो सामान्यपणे परिग्रहना त्यागनो विचार जाणीये; अने ते परवस्तु जात जातनी छे, अने तेना उपर विचार पण जातजातनो छे एने विशेषपणे परिग्रह त्यागनो विस्तार जाणवो. ८

हवे परिग्रह छतां ज्ञातानी परिग्रह उपर अलिप्त दशा कहे छेः-

अथ ज्ञाता अलिप्त कथनंः—

चोपाईः—पूरव कर्म उदै रस भुंजे; ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे; उरमें उदासीनता लहिये, यों बुध परिगह वंत न कहिये ॥ ए ॥

अर्थः—पूर्व कर्मना उदयथकी जे शुजाशुज रस उपजे ते जोगवे पण ते रस जोगनेविषे ममता प्रयुंजे नही. मात्र ज्ञाननेविषेज मग्न रहे, पण परिग्रहना संयोग वियोगनेविषे हर्ष विषाद उपजे नही, एवीरीतें जेना मनमां उदासीनता पामीये छइयें. एवा बुध के० पंमितने परिग्रहवंत कहेवाय नही ॥ ए ॥

हवे ज्ञानीनी निस्पृह दशा वखाणे छेः—अथ ज्ञानी अवांछक कथनंः—

सवैया इकतीसाः—जे जे मनवंछित विलास जोग जगतमें, तेते विनासिक सब राखे न रहत हैं; और जे जे जोग अजिलाष चित्त परिणाम, तेते विनासीक धर्मरूप व्है वहत हैं; एकता न दुहों मांहि ताते वांछा फुरे नांही, ऐसे भ्रम कारजको मूरख वहत हैं; संतत रहे सचेत परसो न करे हेत याते ज्ञानवंतकों अवंछक कहत हैं॥ १०

अर्थः—मनना मानी लीधेला जे जे जगतना जोग विलास छे, ते ते नाश रूप छे, आपणा राख्या रेहेता नथी. वली जे जे जोग अजिलाषरूप चित्त परिणाम रहेछे

ते ते चित्त परिणाम चंचलपणे विनासी धर्म रूपने विषे थई रह्या छे. एवा जोग नेविषे तथा जोग अभिलाषनेविषे अनेकता छे, पण एकता नथी. वली विनश्वर पणुं छे तेथी एना उपर ज्ञानीनी वांछा फुरती नथी. एवा भ्रम कार्यने मूर्ख होय तेज चाहे छे, जे सतत के० निरंतर सावधान रहे अने परवस्तु साथे हेत करे नही, एज माटे ज्ञानवंतने अवंचक निस्पृही कहेछे. ॥ १० ॥

हवे परिग्रहमां रेहेता छतां ज्ञाताने अलिप्तपणुं केवी रीते केहेवाय ते दृष्टांत आपीने समजावे छेः— अथ ज्ञाता अलिप्त दृष्टांत कथनंः—

सवैया इकतीसाः— जैसे फिटकडी लोद हरडेकी पुटविना स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें; भीग्यो रहै चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नही अंतर स पेती रहे चीरमें; तैसे समकितवंत राग दोष मोह बिनु, रहे निशिवासर परिग्रहकी भीरमें; पूरव करम हरे नूतन न बंध करे जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें॥ ११॥

अर्थ.— जेम कोई स्वेत वस्त्र होय तेने फटकडी लोदर तथा हरडानी पुट के० पट दीधा शिवाय मजीठना लाल रंगना पाणीमां चिरकाल के० घणाकाल सुधी भी नावी राखे तोपण ते वस्त्र सर्वथा प्रकारे लाल थाय नही; अंतर रंग भेदे नही. तेथी ते चीरमां सफेती रहेज; तेमज समकितवंत जे जीव होय ते राग द्वेष मोह ना पटविना निशिवासर के० रात दिवस परिग्रहनी भीडमां रहेछे. तोपण पूर्व कर्मना भोगनी निर्जरा करेछे, अने नवां कर्मनुं बंधन करे नही, अने जगतना सु खने जाचे नही. वली शरीरने जोईने राचे नही. ॥ ११ ॥

हवे परिग्रहने विषे रेहता छता ज्ञाताने उद्वेग रहितपणुं होय छे ते दृष्टांत वडे दृढ करावे छेः— अथ ज्ञाता अनुद्वेग कथनंः—

सवैया इकतीसाः— जैसे काहु देसको वसैया बलवंत नर, जंगलमें जाई मधु छत्ताकों गहतु है; वाकों लपटाय चहु ओर मधुमक्षिका पे, कंबलीकी उटसों अडंकित रहतु है; तैसे समकिती शिव सत्ताको सरूप साधे, उदेकी उपाधिकों समाधिसी क हतु है; पहिरे सहज को सनाह मनमें उछाह, ठाने सुखराह उदवेग न लहतु है.१२

अर्थः— जेम कोईक देशनो रेहेवासी भील वगेरे बलवंत नर जंगलमां जईने म धपुडाने ग्रहण करे छे, ते वखत ते पुरुषने चारे तरफ मधु मक्षिका के० मध माखीउ लपटाई जाय छे, पण ते पुरुषना शरीर पर कांमली होयछे, तेथी अडं कित के० डंखविना अडंख रहेछे; तेमज समकिती जीव शिव के० परमात्मानी सत्ता के० सत्‌भूतपणुं तेनुं स्वरूप जे एक विज्ञानघनपणुं तेने साधे छे, अने कर्म

उदयनी जे आत्माने उपाधि लागी रहीछे, तेने ते समाधि करी जाणे छे. सहज गुण जे ज्ञान दर्शन चारित्र तद्रूप जे सनाह के० बख्तर ते पेहेरी राखेछे, अने ए रीते जे कर्मनिर्जरा तेनो उगाह मनमां धारण करे एवा अनंत सुखना राह के० मार्गनेविषे रेहेतो थको उद्वेग दशाने पामतो नथी. ॥ १२ ॥

हवे ए रीतमां ज्ञातानो अबंधकपणुं बतावेछेः-- अथ ज्ञाता अबंध कथनं:--

दोहराः-- ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोइ; चित उदास करनी करे, करम बंध नहि होइ. ॥ १३ ॥ मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परगास; मुगति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास. ॥ १४ ॥

अर्थः--ज्ञानी पुरुष तो ज्ञानमां मगन रहेछे, अने रमेछे, अने राग द्वेष मोहरूपी जे मल छे, तेने खोइ दिएछे; अने जे क्रिया करेछे ते पण उदासीनरूप करेछे, माटे एवा ज्ञानीने कर्म बंधन थतो नथी. ॥ १३ ॥ वली मोहरूपी महातम के० घोर अंधकाररूप जे मल तेने हरे, अने सुमतिना प्रकाशनार दीपकने धरे, ए रीते मुक्ति पंथने प्रगट करी बतावे, एवोज ज्ञाननो विलास ते दीपकरूप जाणवो. ॥ १४ ॥

हवे ज्ञानदीपकनुं स्वरूप कही देखाडेछेः--अथ ज्ञान दीपक वर्ननं:--

सवैया इकतीसाः-- जामें धूमको न लेस वातको न परवेस, करम पतंगनिको नाश करे पलमें; दसाको न जोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारको विजोग जाके थलमें; जामें नतताइ नही रागरंक ताइ रंच, लह लहे समता समाधि जोग जलमें; ऐसी ज्ञानदीपकी सिखा जगी अजंगरूप, निराधार फुरी पे डुरी है पुदगलमें. ॥ १५ ॥

अर्थः-- जे ज्ञान दीपकमां धुमाडानो लेश नथी ने जेमां वायुनो पण प्रवेश नथी. अने जे कर्मरूपी पतंग जीवनो पलकमां नाश करे छे, ने जेमां दशा के० दीवेटनो जोग नथी, बीजो अर्थ-- कोई विकल्प दशा नथी अने जेने सनेह के० घृत तेलनो संयोग नथी. वली जेना प्रकाशमां मोहरूप अंधकारनो वियोग थयुं छे वली जे दीपकमां तप्ततापणुं नथी, वली जेमां लालरंगनी रंचमात्र लाला श नथी, अने जे समता समाधिनो जोग ते रूप जे जल तेनेविषे लहलहायमान थई रह्यो छे, एवो जे ज्ञानदीपक छे, तेनी शिखा सदा अजंगरूप जागी रही छे, अने ए शिखा सर्व पदार्थनुं ज्ञान करवानो आधार छे, अने पोते निराधार फुरी रही छे, अने पुद्गलमां डुरी के० छुपी रही छे ॥ १५ ॥

हवे ज्ञानना स्वजावमां खंमना नथी ते उपर दृष्टांत आपेछेः–

अथ ज्ञान स्वजाव अखंमित दृष्टांत कथनंः–

सवैया इकतीसाः-- जैसो जो दरब तामें तैसोही सुजाउ सधे, कोउ दर्व काहु को सुजाउ न गहतु हैं; जैसे संख उज्वल विविध वर्ण माटी नखे, माटीसो न दीसे नित उज्वल रहतु है; तैसे ज्ञानवंत नाना जोग परिगह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहतु है; ज्ञानकला दूनी होइ डुंददशा सूनी होइ, ऊनी होइ जौ थिति वनारसी कहतु है ॥ १६ ॥

अर्थः– जे जेवुं इव्य छे, तेमां तेवोज स्वजाव सिद्ध छे, पण कोई इव्य अन्य इव्यनो स्वजाव ग्रहण करे नही. जेम कोई जलाशयमां संख बेइंडीजीव होय ते सरूपमां उज्वल होय छे, पण जात जातनी माटी खाय छे, तेमछतां माटीनो रंग तेना स्वरूपमां देखातो नथी, तेतो नित्य उज्वलज देखाय छे; तेम ज्ञानवंत प्राणी परिग्रहना जोगथकी नाना प्रकारना जोग जोगवतो छता अने विलास करतो छतां अज्ञानता पामतो नथी. अने ज्ञाननी कला बमणी थाय छे, अने द्वंद्व दशा के० ज्रमदशा ते शूनी थाय छे, अने जवस्थिति के० संसार स्थिति ते उणी के० उंछी थाय छे, एवी रीते वनारसीदासनुं केहेवुं छे ॥ १६ ॥

हवे सम्यक् ज्ञाननी साथे सम्यक् क्रिया स्याद्वाद मतने आश्रयी कहे छेः–

अथ स्याद्वाद प्ररूपन कथनंः–

सवैया इकतीसाः– जोलों ज्ञानको उदोत तोलों नही बंध होतु, वरते मिथ्यात तब नाना बंध होहि है; ऐसो जेद सुनिके लग्यो तूं विषै जोगनिसों, जोगनिसों उद्यमकी रीतितें बिछोहि है; सुनो जैया संतत कहे में समकितवंत, यहु तो एकंत परमेसरकी दोहि है; विषेसों विमुख होइ अनुजो दशा आरोहि, मोख सुख ढोहि ऐसी तोहि मति सोहि है॥ १७ ॥

अर्थः– ज्यां सुधी ज्ञाननो उद्योत छे, त्यांसुधी बंध थतो नथी, अने ज्यारे मिथ्यात्व दशावंत छे, त्यारे तो नाना प्रकारनो बंध थाय छे, कोई एकंतवादीयें एवो ज्ञान माहात्म्यनो जेद सांजलीने एवुं कह्युं के तूं विषय जोगववा लाग्यो छे, अने मन वचन कायाना योगथकी उद्यमनी रीति जे क्रिया, तेने तें छोडी दीधी छे, तेने कहेछे के हे सतपुरुष सांजल तुं जे कहे छे, के हुं समकितवंत छुं, पण ए एकंतमत जे छे ते परमेश्वर परमात्मानी दोही के० इोह करनारी छे, माटे तूं विषयथी विमुख थ

ईने अनुनव दशामां गुणश्रेणी धरी आरोहण करी अने मोक्षना सुखने ढोही के० जो, तो एवीज बुद्धी थकी शोचे छे ॥ १७ ॥

हवे ज्ञाननुं तथा विषय विमुखतानुं सहचारपणुं बतावेछेः—

अथ ज्ञान वैराग्य युगपत वर्णनंः—

चौपाईः-- ज्ञानकला जिनके घट जागी; ते जगमांहि सहज वैरागी; ज्ञानी मगन विषै सुखमांही; यहु विपरीत संजवै नांही. ॥१८॥ दोहाः— ज्ञान सहित वैराग्य बल, शिव साधै समकाल; ज्यों लोचन न्यारे रहै, निरखै दोऊ नाल ॥ १९॥

अर्थः—जेना घटनेविषे ज्ञानरूपी कला जागी छे, तेतो जगतनेविषे सहेजे वैरागी रहे छे. ज्ञानी थईने विषयसुखमां मग्न होय ए विपरीत वात संजवती नथी ॥१८॥ वली ज्ञाननी संगति ने वैरागनी संगति ए बंने चीज समकाल मलीने मोक्षने साधे; जेम बे आंखो जुदी रहीछे, पण नाल के० साथे बेउ नेत्र पदार्थने जुएछे.॥१९॥

हवे मूर्खने कर्मनुं कर्त्तापणुं अने ज्ञानीने निर्जरानुं कर्त्तापणुं ए बेनुं स्वरूप कहेछेः— अथ मूढ कर्त्ता कर्मको यह कथनः—

चौपाईः— मूढ कर्मको कर्त्ता होवै; फलअनिलाष धरै फल जोवे; ज्ञानी क्रिया करै फल सूनी; लगै न लेप निर्जरा दूनी ॥ २० ॥ दोहाः—बधे कर्मसों मूढज्यों, पाट कीट तन पेम; खुलै कर्मसों समकिती, गोरख धंधा जेम. ॥ २१ ॥

अर्थः— मूढ जे छे ते कर्मनो कर्ता बने छे, केमके ते क्रियाना फलनो अनिलाष धरे छे, अने फलने जोई रहेछे; ने जे ज्ञानी होय ते क्रिया तो करे पण फल शून्य करे, तेथी ज्ञानीने कर्मनो लेप लागतो नथी; एथी बमणी निर्जरा थायछे॥

वली जे मूढ छे ते कर्मनेविषे बंधाइ रहेछे, जेम रेशिमनो किडो पोताना शरीरना प्रेमवडे पोतानी लालथकी पोतेज बंधायछे. अने जे समकिती होय तेतो कर्मनी जालथी खुलेलो रहे छे, कोनी पठे? जेम गोरखधंधो पोतानी जालथी खुली जायछे तेम जाणवुं ॥ २१ ॥

हवे ज्ञानी जीवने कर्मनुं अकर्त्तापणुं तथा निर्जरारूप ठरावे छेः—

अथ ज्ञानीको अकर्तृत्व कथनः—

सवैया तेईसाः— जे निज पूरव कर्म उदै सुख जुंजत जोग उदास रहेंगे; जे दुखमें न विलाप करै निरवैर हिये तन ताप सहेंगे; है जिनके दृढ आतम ज्ञान क्रिया करिके फलकों न चहेंगे; ते सुविचक्षन ज्ञायक है तिनकों करत्ता हम तो न कहेंगे ॥ २२ ॥

अर्थः— जे जीव पोताना पूर्व संचित शुभ कर्मना उदय वडे सुख जोगवतो थको पण जोगथी उदास रहे छे, अने जे जीवने असाता वेदनीयना उदयथी दुःख उप जे तो पण विलाप करे नही, अरतिनो विजाग करे नही, अंतरमां कोई चिंता न ही राखे; अने शरीरनो संताप सहन करे, वली जेनीपासे आत्मज्ञान छे, तेतो क्रिया करीने फलने इछे नही, तेज उत्कृष्ट विचक्षण ज्ञानी केहवायछे, अने तेने कर्म करता थका कर्मना कर्त्ता एम तो अमे कही सकशुं नही ॥ २१ ॥

हवे एवा ज्ञानीनी व्यवस्था कहे छे. ज्ञाता वर्णनंः—

सवैया इकतीसाः— जिनकी सुदृष्टिमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिनको आचार सु विचार शुन ध्यान है; स्वारथको त्यागी जे लहेंगे परमारथकों, जिनके वनिजमें नफा न है न ज्यान है; जिनकी समुजमें शरीर ऐसो मानीयतु, धानकोसो छीलक कृपानकोसो म्यान है; पारखी पदारथके साखी भ्रम जारथके तेई साधु ति नहीको जथारथ ज्ञान है ॥ २२ ॥

अर्थः— जे ज्ञातानी सुदृष्टि एवी छे के, जेनेविषे इष्ट वस्तु तथा अनिष्ट वस्तु बेउ बराबर छे, अने जेनो आचार एवो छे के जे जला विचारथी शुभ ध्यानमांज रहे, अ ने विषय सुख प्रमुख स्वार्थने त्यागीने जे अध्यात्मरूप परमार्थ तेनेविषे लागी रहे छे, वली जेनां वचन एवां छे के, जेमां नफो नथी तेम टोटो पण नथी, एटले कोई ने सुसीख किंवा कुसीख देता नथी. मौन वृतिज रहेछे. वली जेनी समज एवी हो य के शरीरने धाननी छील के० तुस जेवुं अने कृपान के० तरवार तेना म्यान जे वुं माने छे, मतलब के आत्माने शरीरथी जुदो जाणे छे. वली जे जेवो पदार्थ होय तेवी तेनी परिक्षा करे छे, अने जेम नय ज्ञानविना पांच दर्शनमां जे भ्रम नुं जारथ चाली रह्युं छे, तेनो साक्षी छे, पूछवानुं थानक छे, तेहिज साधु केवाय छे, अने तेने यथार्थ ज्ञानी कहिये ॥ ॥ २२ ॥

हवे समकितनुं साहसपणुं वर्णन करेछेः-- अथ सम्यक्त्वंतको साहसकंथनः—

सवैया इकतीसाः— जमकोसो भ्राता दुःखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मू रख न साहस गहतु है; सुरग निवासी भूमिवासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहतु है; उरको उजारो न्यारो देखिये सपत जैसों, मोलतु निशंक न यो आनंद लहतु है; सहज सुवीर जाको सासुतो शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आर ज आचारज कहतु है ॥ २४ ॥

अर्थः-- अहिं संसारनेविषे जे असाता वेदनीय कर्म छे, ते केवां दुःखदाता छे?

अहिं उत्प्रेक्षा करे छेः—जमकोसो भ्राता के० यमना भाई छे, तेनो उदय थता मूरख जन जे छे, तेतो साहस ग्रही शके नही. सुरगनिवासी के० देवता भूमिवासी के० मनुष्य तिर्यंच अने पातालवासी देवता नारकी एवा सर्व त्रिलोकवासी जीवोनां तन मन असातावेदनीय थकी कांपता रहेछे, हवे ज्ञानी जीवना उरनुं अजवालुं जे छे ते अंतरना चांदरणां जेवु छे. ते केवुं छे? ते समजावे छे के, ते सात भय थकी जुदुंज छे, जे अजवालाथी साते भय प्राप्त थतां नथी, अने ए प्रभावथी निःशंक थई मोले छे, अने आनंद पामे छे. सहज सुवीर के० महोटो साहसीक सुभट, जेनुं ज्ञानरूपी शरीर शाश्वत छे, एवा ज्ञानी जीवो आचार्य के० महा पुरुष पूज्य जाणवा, एवुं आचार्य कहेछे ॥ २४ ॥

हवे साते भयनां नाम कहेछेः-- अथ सप्त भयनामः--

दोहाः— इह भव भय परलोक भय, मरन वेदना जात; अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥ २५ ॥

अर्थः-- आ भवनुं भय, परलोकनुं भय, मर्ण भय. वेदना उपजवानुं भय, अनरक्षानुं भय. अनगुप्त भय, अने अकस्मात भय. ए सात भय जाणवां ॥ २५ ॥

हवे साते भयनां लक्षण कही जुदां जुदां उलखावेछेः--अथ सप्त भय लक्षन कथनं.—

सवैया इकतीसाः-- दसधा परिग्रह वियोगचिंता इह भव, दुर्गति गमन परलोक भय मानिये; प्राननिको हरन मरन भै कहावै सोई, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानिये; रक्षक हमारो कोउ नांही अनरक्षा भय, चौर भै विचार अनगुप्त मन आनिये अनचिंत्यो अबहि अचानक कहांधों होइ, ऐसो भय अकस्मात जगतमें जानिये२६

अर्थः-- शास्त्रमां जे दस भांतिनो परिग्रह कह्यो छे. तेना विजोगनी चिंता रहे तेज आ भवनुं भय जाणवुं. दुर्गतिगमननुं जे भय ते परलोकनुं भय कहिये; प्राण छूटवानुं जे भय ते मर्ण भय; रोग प्रमुखथकी जे कष्ट उपजे ते वेदना भय वखाणिये; अमारी रक्षा करनार कोई नथी देखातो ए अनरक्षा भय; चोर अथवा दुश्मण आव्याथी हुं शुं यत्न करी शकीश एवो जे भय तेने अनगुप्त जाणिये. अणचिंत्युं शुं थशे एवुं जे भय मननेविषे रहे तेनुं नाम अकस्मात् भय जाणवुं ॥ २६ ॥

हवे आ भवनुं भय निवारण रूप मंत्र कहेछेः—अथ इह भव भय निवारण कथनः-

छप्पय छंदः-- नख शिख मित परवान, ज्ञान अवगाह निरख्खत; आतम अंग अभंग, संग परधन इम अख्खत; छिनभंगुर संसार, विभव परिवार भारज सु;

जहाँ उतपति तहाँ प्रलय, जासु संयोग विरह तसु; परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इह नव भय उपजै न चित; ज्ञानी निशंक निकलंक निज; ज्ञानरूप निरखंतनित २७

अर्थः-पगना नखथी ते माथानी सिखासुधी एटले सर्व शरीर प्रमाण आत्मानो गुण जे ज्ञान ते अवगाह के० व्याप्ति तेने जुए, एवां नख सिख सहित ज्ञानमय आत्मानुं अंग अभंग रहे, तेनी साथे जे पुजलछे तेने परधन के० परद्रव्य कहेछे, अने सर्व संसार क्षणभंगुर छे, ने तेनेविषे जे विभव परिवाररूप भार छे, ते पण क्षणभंगुर छे, अने जेनी उत्पत्ती तेनुं विनाश छे, जेनो संयोग तेनो वियोग पण थायछे, एवो परिग्रहनो प्रपंच प्रगट परखीएं तो आ भवनुं भय चित्तमां उपजे नही. ए रीते जे ज्ञानी होय ते परिग्रहना वियोगनी चिंता न राखे, ने निसंक रहे, पोतानुं निस्कलंक स्वरूप ज्ञानमय सदा जुए. ॥ २७ ॥

हवे परलोकभय निवारणनुं मंत्र कहेछेः— अथ परलोक भय निवारण मंत्रः—

छप्पयछंदः— ज्ञान चक्र मम लोक, जासु अवलोक मोख सुख; इतरलोक मम नांहि, नांहि जिसमांहि दोष दुख; पुन्न सुगति दातार, पाप दुरगति पद दायक; दो खंडित खानिमें, अखंडित हैं शिवनायक; इह विधि विचार परलोक भय, नहि व्यापक वरते सुखित; ज्ञानी निसंकनिकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥ २८॥

अर्थः-- ज्ञान चक्र के० ज्ञान विस्तार तेतो ममलोक के० मारो लोक छे, महारो प्रचार छे, तेने प्रत्यक्ष जोवो, अने मोक्ष सुख बन्ने रूप छे, अने इतर लोक के० तेविना अन्य लोक ते मारो नथी, महारो ज्ञान लोक मारी साथे छे, जेनेविषे दोष दुःख नथी. परलोकमां सुगतिनुं देनार पुन्य छे, अने परलोकमां कुगतिनुं आपनार पाप छे. ए बे पुन्य पाप आत्मानी खंडनानी खाणी छे. अने हुं अखंडित रूप छुं. शिवनायक के० सिद्धरूपी छुं. एवा विचारथी परलोक भय व्यापे नही; अने सुखित के० सदा सुखवंत वर्त्ते; ए प्रमाणे परलोक भय छांडिने ज्ञानी पुरुष निसंक थको निकलंक एवुं जे निजज्ञानरूप तेने सदा निरखे ॥ २८ ॥

हवे मरणभय निवारणनो मंत्र कहे छेः— अथ मरन भय निवारण मंत्रः—

छप्पयछंदः— फरस जीभ नाशिका, नैन अरु श्रवन अक्ष इति; मन वच तन बल तीन, सास उस्मास आउ थिति; ए दस प्राणविनाश, ताहि जग मरण कहीजे; ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहु काल न छीजे; यह चिंत करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंतनित ॥२९

अर्थः--स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ए पांचे इंद्रिय; मनोबल, वचनबल, ने

कायबल ए त्रण, स्वासोस्वास आयुस्थिति, ए दस प्राण आदिनो विनाश थाय, तेने जगतमां मर्णभय कहे छे, पण जीव पदार्थ छे ते ज्ञानरूपी भाव प्राण संयुक्त छे, तेतो जीवने ज्ञान प्राण त्रणे काळनेविषे त्रूटे नही, एवो विचार मनमां करवाथी मर्णभय उपजे नही. नय प्रमाण वडे एवुं जिनेश्वरनुं कथन छे, ज्ञानी लोक निसंक पणे पोताना निकलंक स्वरूप ज्ञानरूपने सदा निरंतर निरखत के० सत्यपणे जुए छे ॥ २९ ॥

हवे वेदना भय निवारणरूप मंत्र कहे छेः— अथ वेदना भय निवारण मंत्रः—

छप्पय छंदः-- वेदनवारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय; यह वेदना अभंग, सुतो मम अंग नांहि व्यय; करम वेदना द्विविध, एक सुखमय दुतीय दुख; दोऊ मोह विकार, पुग्गलाकार बहिरमुख; जब यह विवेक मनमहिं धरत, तब न वेदना भय विदित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ३० ॥

अर्थः-- वेदनावारो एटले जाणनारो तेतो जीव छे, अने जेने जाणवुं छे, तेपण जीवज छे एटले वेदनावंत ते ज्ञानी जीवए ज्ञानरूप वेदन जे अभंग रूप छे तेतो मारुं अंग छे, अने कर्म वेदना जे छे ते मारी नथी. अने ते कर्मरूप वेदना बे प्रकारनी छे. एक सुखमय वेदना ने बीजी दुःखमय वेदना छे, ए बेउ मोह विकार छे, एवी सुख दुःखनी वेदना पुग्गलाकार छे, पुग्गलनी छाया बाह्यरूप छे, ज्यारे एवो विवेक विचार मनमां धरे छे. त्यारे वेदनानुं भय वेदी सकतुं नथी. ज्ञानी लोक होय तेतो वेदना भयथी निसंक रहे अने निकलंक एवुं पोतानुं ज्ञान स्वरूप तेने सदा जोतो रहे ॥ ३० ॥

हवे अनरक्षाभय निवारणरूप मंत्र कहे छेः--अथ अनरछा भय निवारण मंत्रः--

छप्पय छंदः-- जो स्ववस्तु सत्ता सरूप जगमहि त्रिकाल गत; तास विनास न होइ, सहज निहचै प्रमाण मत; सो मम आतम दरब, सरबथा नहि सहाय धर; तिहिं कारन रछक न, होइ भछक न कोइ पर; जब यहि प्रकार निरधार किय, तब अनरछा भय नसित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित. ३१

अर्थः-- स्ववस्तु के० निज आत्मरूप वस्तु, सत्तास्वरूप के० द्रव्यपणे छतुं केहेवाय ते जगतमां त्रणे काळनेविषे पामियें, तेनो क्यारे पण विनाश नथी थतो, एवुं सहज स्वरूप निश्चयनयना प्रमाणवडे जाणवुं; एज मारुं आत्मद्रव्य जे छे, तेतो सर्वथा प्रकारे कोईनो सहाय धरतुं नथी, तेमाटे ए आत्मद्रव्यनो कोई रक्षक नथी. तेमज कोई पर के० बीजो एनो भक्षक पण नथी. जेवारें एवो विचार

हृदयमां नकी करी राखे, त्यारे अनरक्षा नय नाश पामे, एवा ज्ञानी होय ते अन रक्षा नयथी निसंक थको पोताना निकलंक ज्ञानस्वरूपने सदा निरखे छे.॥३१॥

हवे चौरजय निवारण रूप मंत्र कहे छेः-- अथ चौरजय निवारन मंत्रः--

छप्पय छंदः-- परम रूप परतञ्ज, जासु लछन चिन मंम्ति; पर प्रवेश तहाँ नांहि, माहिं महि अगम अखंम्ति; सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अकूट धन; तांहि चोर किम गहै, ठौर नहि लहै और जन; चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्त जय उपसमित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित.

अर्थः-- जे परम स्वरूप केहेवाय छे, अने मान सन्मानवडे प्रत्यक्ष छे, चिनमंम्ति के० चिन्मय एवुं जेनुं लक्षण छे, अने जेना स्वरूपनेविषे परस्वरूपनो प्रवेश नथी; मांहिमही के० पृथ्वीना वचमां अगम्य छे, अने अखंम्ति छे, एवुं तो अनूपम मारुं रूप छे, ते कोईनुं कीधेलुं नथी, अनमित के० प्रमाणविना, एवुं अखुट धन छे, ते धनने चोर केम हरी शके! अने और के० बीजा कोई लोक तेनी जगा पामी शके नही. ज्यारे ध्यान धरीने एवुं चिंतवन करे त्यारे अगुप्त जय के० उघाडा धननुं जे जय ते उपशमी जाय. अने एवा ज्ञानी होय ते अगुप्त जयथी निशंक थका पोताना निष्कलंक ज्ञान स्वरूपने सदा निरखता रहेछे. ॥ ३२ ॥

हवे अकस्मातजय निवारण रूप मंत्र कहेछेः--अब अकस्मातजय निवारण मंत्रः--

छप्पय छंदः-- शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सु समृद्ध सिद्ध सम; अलख अनादि अनंत, अतुल अविचल सरूप मम; चिद विलास परगास, वीत विकलप सुख थानक; जहाँ दुविधा नहि कोइ, होइ तहाँ कछु न अचानक; जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात जय नहि उदित; ज्ञानी निसंक निकलंक निज, ज्ञान रूप निरखंत नित. ॥ ३३ ॥

अर्थः-- जे वस्तु शुद्ध छे, केवल पोताना स्वरूपने विषेज छे, बुद्ध के० ज्ञानमय अविरोधी छे, सिद्धसमान ऋद्धिवंत छे, अलक्ष छे, आदिरहित छे, अने अंत रहित छे, जेनी तुलना कोईथी न थाय माटे अतुल छे, एवुं अविचल मारुं रूप छे. चिदविलास के० ज्ञानविलासनो जेने प्रकाश छे. वीतविकलप के० अवस्था नेद रहित छे, अने समाधि सुखनुं थानक छे. ज्यां कोई विजातीय न पामियें त्यां कोई अणचिंतव्यो अचानक जय शोक कांई उपजे नही, आवो विवेक विचार हृदयामां ज्यारे उपजे छे, त्यारे अकस्मात जय जे छे, ते उदय थतुं नथी. जे ज्ञानी हो

य छे ते अकस्मात नयथी निशंक थको पोताना निष्कलंक ज्ञान स्वरूपने सदा जोतो रहेछे. ॥ ३३ ॥

हवे निर्जराना करनार ज्ञानीनी व्यवस्था कहेछेः--अथ ज्ञानी व्यवस्था कथनः—

छप्पय छंदः-- जो परगुन त्यागंत, शुद्ध निजगुन गहंत ध्रुव; विमल ज्ञान अंकूर, जासु घट महि प्रकास हुव; जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धार वहावत; जो नव बंध निरोध, मोष मारग मुख धावत; निःसंकतादि जस अष्ट गुन, अष्ट कर्म अरि संहरत; सो पुरुष विचछन तासु पद, बनारसी बंदन करत. ॥ ३४ ॥

अर्थः— जे कोई पुद्गलादि गुणनो त्याग करे, अने ध्रुव के० निश्चयरूप एवा शुद्ध पोताना गुणनुं ग्रहण करे; निर्मल ज्ञाननो अंकुर के० उदय जेना घटमां प्रकाशित थयो, अने जे पूर्वकृत कर्मने निर्जरानी धर के० श्रेणिविषे वहावि दिये वली जे नवा बंधनो निरोध करीने एटले निराश्रव थईने मोक्षमार्गने सन्मुख दोडेछे; गुण श्रेणिमां दोडेछे, निशंकित प्रमुख जेना आठ गुण छे, ते आठे कर्मरूप शत्रुनो संहार करे, तेज विचक्षण पुरुष केहेवाय, अने तेना चरनकमलने वणारसीदास वंदन करेछे ॥ ३४ ॥

हवे आठ अंगनां नाम कहेछेः—अथ अष्टांगके नाम कथनः—

सोरठाः— प्रथम निसंसैजानि, दुतिय अवंछित परिनमन; तृतिय अंग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुन ॥ ३५ ॥ पंच अकथ परदोष, थिरी करन छठम सहज; सत्तम वछल पोष, अष्टम अंग प्रभावन ॥ ३६ ॥

अर्थः-- पेलुं निर्संशय के० निःशंकित, बीजुं समकितनो गुण जे अवांछक पणारूप मननो परिणाम, त्रीजुं अंग अग्लान, चोथुं गुण निर्मल दृष्टि एटले मूढ दृष्टि नही ते, ॥ ३५ ॥ पांचमुं परदोष अकथन, छठुं अंग समकित स्थिर करवाना स्वभावरूप, सातमुं सर्व साथे वाछलपणुं अध्यात्मक पोषक, अने आठमुं अंग प्रभावना गुणरूप ॥ ३६ ॥

हवे अंगना लक्षण कहे छेः-- अथ अंग लक्षणः--

सवैया इकतीसाः— धर्ममें न संसै शुभकर्म फलकी न इछा, अशुभकों देखि न गिलानि आनै चित्तमें; साचि दृष्टि राखै काहू प्रानीको न दोष भाखै, चंचलता भानि थिति ठानै बोध चित्तमें; प्यारे निजरूपसों उछाहके तरंग उठे, एइ आठो अंग जब जागे समकितमें; ताहि समकितकों धरे सो समकितवंत, वहे मोषपावे ते न आवै फिर इतमें ॥ ३७ ॥

अर्थः— धर्मनेविषे संदेह न होय ते निःशंकित गुण, शुभ कर्मना फलनी इछा न होय ते निस्पृही गुण, अनिष्ट वस्तुने जोइने चित्तमां ग्लानी न लाववी ते अग्लान गुण, कोईना भगाव्या भगवुं नही ने साचनेविषे दृष्टि राखवी ते अमूढ दृष्टिगुण, कोई प्राणीनो दोष केहेवो नही ते दोषाकथन गुण; चंचलता त्यागीने ज्ञानरूप चित्तनेविषे स्थिरता राखवी ते थिरीकरण गुण; आत्म स्वरूपमां प्रेम राखवो ते वछल गुण; अने आत्मस्वरूप साधननेविषे उछाह लहरी के० तरंग उठवापणुं लीधो रहे ते प्रभावना गुण, एम एक समकेतना आठे अंग ज्यारे जागे, अने ते आठ गुणे सहित सम्यक्तनुं धारण करे, ते समकितवंत केहेवाय ने तेवाज समकिती मोक्ष पामे, ने फरीथी आ संसारमां आवे नही ॥ ३७ ॥

हवे निर्जराधारी चैतन्यनुं नाटक कहे छेः-- अथ चैतन्य नाटक कथनंः--

सवैया इकतीसाः-- पूर्व बंध नासे सोतो संगित कला प्रकाशे, नव बंध रुंधी ताल तोरत उछरिके; निसंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरी, समता अलाप चारि करे सुख भरिके; निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदिंग वाजे, छक्यो महानंदमें समाधि रीझि करिके; सत्तारंग भूमिमें मुकत भयो तिहूं काल, नाचे शुद्ध दृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ३८ ॥

अर्थः— जेम पूर्वकालनेविषे उत्कृष्ट स्थीतिथकी बंध करतो हतो तेवी रीते न करता अनुत्कृष्ट स्थितिथकी करवो एम पूर्व बंध नासे, तेतो संगित कला आलाप चारी प्रकाशे, अने नवा बंधने रोधवुं ते रूपताल उछले छे तालतोर छे, निशंकित प्रमुख जे समकितना आठ अंग कह्यां, ते सहाय जोडी समता समाधि धारी तद्रूप स्वर बांधीने आलाप करे छे, अंही कर्मनी निर्जरा हेतु छे, एटले कर्मनास करवारूप कार्यनुं निर्जरा कारण छे, ते ध्याननेविषे एक स्वरूपनाद गाजे छे, अने सोहं धुनी छे तेरूप मृदंग वाजे छे, अंही जे महानंदमय थईने छाक्यो तेतो सुखी थयो, ते जाणिये रीझ थई, ने पोतानी आत्मसत्ता तेज कोई रंगभूमि छे एटले रंग मंडप थयो, तेनेविषे त्रणे कालमां शुद्ध दृष्टीसहित ज्ञानरूप वेष स्वांग पहेरी धरीने नटरूप चैतन्य मुक्त थईने नाचे छे ॥ ३८ ॥

इतीश्री समयसार नाटकविषे बालबोधरूप निर्जराद्वार सप्तम संपूर्ण.

दोहाः— कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधनहार; अब कछु बंध प्रबंधको, कहुं अल्प विस्तार ॥ ३९ ॥

अर्थः— मोक्ष मार्गनी साधनकार जे निर्जरा तेनी कथा हती ते कही, हवे जे बंध थाय छे तेना अधिकारनो अल्प विचार कहेछे ॥ ३९ ॥

हवे बंध जे छे ते छांडवा योग्य छे, माटे ते बंधनो विदारणहार जे समकित तेने नमस्कार करेछेः— अथ बंध विदारन सम्यक्त वर्णनंः--

सवैया इकतीसाः— मोह मद पाई जिन संसारी विकल कीने, याहिते अजानु बाहु विरद वहतु है; ऐसो बंध वीर विकराल महाजाल सम, ज्ञान मंद करे चंद राहु ज्यों गहतु है; ताको बल भंजिबेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उ देस महतु है; सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताही, निरखी बनारसी नमो नमो कहतु है. ॥ ४० ॥

अर्थः— जे बंधरूप सुभट छे ते मोहरूप मदिरा पाईने सर्व संसारी जीवने विकल करेछे, एथी ए बंधरूप वीर छे ते आजानुबाहुनुं बीरुद वहावेछे के० सार्व भोम थई रहेला छे, एवो विकराल ए बंधरूप वीर शुभट छे, वली ए महाजाल स मान छे. अने एज ज्ञान प्रकाशने मंद करेछे, कोनी पठे जेम राहु चंद्रने मंद करेछे. तेनी पठे जाणी लेवुं; हवे एवा बंधरूप वीरनो प्रतिपक्षी जे छे. ते एनुं बल तोड वाने घटनेविषेज प्रगट थयो छे. जेनो उद्यम उद्धत छे, एटले कोईथी रोक्यो रेहे एवो नथी, अने उदार छे के० श्रेष्ट छे. तथा महत के० मोटो छे, तेतो समकितरूप शूरवीर जाणवो, ते आनंद अंकूर लईने उदय थयो छे. ते सम्यक्त शूरवीरने जो ईने पोताना अंग उल्लसित थको बनारसीदास नमो नमो कहेछे. ॥ ४० ॥

हवे चेतनाविना कर्म बंध नथी थतां, माटे ज्ञानचेतना तथा कर्म चेतना ए बेउनी समज पाडेछेः— अथ कर्मचेतना ज्ञानचेतना वर्णनंः—

सवैया इकतीसाः— जहां परमातम कलाको परगास तहां, धरम धरामें सत्य सू रजको धूप है; जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां; मोहके विलासमें महा अंधेर कूप है; फेली फिरै छटासी घटासी घट घन बीच, चेतनकी चेतना दुहोंधा गुपचूप है; बुद्धिसों न गही जाय बेनसों न कही जाय, पानीकी तरंग जैसे पा नीमें गुडुप है. ॥ ४१ ॥

अर्थः— जे चेतनामां परमात्मानी कलानो प्रकाश थाय छे, ते धर्म धरती छे; ते धरतीमां सत्यरूप सूर्यनो तडको छे, एटले उजली जगा छे. वली जे चेतना नेविषे शुभ अशुभ कर्मना रसनी गढास छे, एटले शुभाशुभ कर्मना रस वडे जे चे तना घोलाइ रही छे, त्यां मोहराजा विलास करे छे, तेतो घोर अंधकार छे,

ए रीते चेतन पुरुषनी जे चेतना के० संज्ञा छे, तेतो घटाघनबीच के० शरीररूप मे घवचे छटानी माफक फेली रही छे. अने घटानी माफक फेलीथकी फरे छे, अने ए चेतना ते परमात्मानी कलाना प्रकाशमां तथा मोहविलासमां ए बेउ तरफ गुपचुप छे, एटले चुप थई रही छे; एवी ए चेतना बे तरफ प्रवेश करे छे, ए वात बुद्धीथी ग्रहण थाय छे; पण वचनथी कही जाय एवी नथी; जेम पाणीना तरंग पाणीमां गुरुप्प छे तेम चेतना बेउ तरफ गुरुप्प छे. ॥ ४१ ॥

हवे बंधद्वारनेविषे बंधनो हेतु कहे छेः– अथ बंधनिदान कथनः–

सवैया इकतीसाः– कर्मजाल वर्गनासों जगमें न बंधे जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों; चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंचविषे विखरोगसों; कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसौं अबंध जिन हिंसासौं अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों; इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपजोगसों ॥ ४२ ॥

अर्थः– कोई कहे छे के कर्मजाल वर्गणा थकी जगतमां जीव बंधाय छे, ते वात खोटी एटले कर्म वर्गना जीवना बंधनो हेतु नथी, एवी रीतें कदाचित मनव चन कायाना योगथी पण जीव बंधातो नथी; चेतन तथा अचेतननी हिंसाथ की पण जीवने बंध थतो नथी. अलक्ष पती छे, तथा अलक्षरूपी छे, ते पंचें द्रियना विषयरूप विषरोग वडे पण बंधातो नथी. कर्म वर्गनाथी सिद्धना जीव बंधाता नथी, वली जिनेश्वर देव छे तेतो त्रणे योगमां छे तोपण अबंध छे, साधुजे छे. ते अनाभोग पणे हिंसा करे छे, तोपण अबंध छे, ज्ञाता विषय भोगवेछे, तो पण ते अबंध छे, एरीते कर्म वर्गना प्रमुख वस्तुना मिलापथी जीव बं धातो नथी. पण मात्र एक राग द्वेषने मोह अने जीव बंधरूप अशुद्ध उपयोग थीज जीव बंधाय छे ॥ ४२ ॥

हवे राग द्वेष अने मोहनेज दृढपणे बंधना हेतु ठरावे छेः–

अथ बंधनिदानदृष्टी करन व्यवस्थाः–

सवैया इकतीसाः– कर्मजाल वर्गनाको वास लोकाकाश माहिं, मन वच का याको निवास गति आउमें; चेतन अचेतनकी हिंसा वसै पुद्गलमें, विषे भोग वरते उदेके उरजाउमें; रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी. यहे उपादान हेतु बंधके बढाउमें; याहिते विचछन अबंध कह्यो तिहू काल, राग दोष मोहनादि सम्यक् सुभाउमें; ॥ ४३ ॥

अर्थः—कर्म जाल वर्गणानो वास तो लोकाकाशमांज छे, केवल कर्म वर्गणा कारण थकीज जो अमूर्त्ति चेतनद्रव्य बंधभावने पामे, तो लोकाकाशनो बंध केम नही थाय? तेमज मन वचन अने कायाना योगनो वास तो चारे गतिनेविषे छे. अने चारे आउषामां छे, त्यारे योग ते आत्माना बंधना हेतु केम थाय? चेतननां प्राण हर्णथी हिंसा थाय छे; ते पुद्गल बंधरूप प्राणमांज हिंसा थाय छे, एमज अचेतननी हिंसा पण पुद्गलमां छे, ते आत्मासाथे स्पर्शती नथी, तो बंध केम थाय? अने विषय भोग जे वरते छे, तेतो कर्मना उदयमां छे, अरुजी रह्या छे, अने आत्मा तो तेथी निरालो छे, ते बंधाय केम? माटे राग द्वेषने मोहथकी जे शुद्धता के० मुग्धता थाय ने परवस्तुने पोतानी करी मानवी ते अज्ञख पुरुषनी अशुद्धता छे. अने एज अशुद्धता बंधने वधारे छे, ए माटे विचक्षण पुरुषने त्रण कालविषे अबंध कह्यो; केमके, तेने सम्यक् स्वभावमां राग द्वेष अने मोह नथी ॥ ४३ ॥

हवे ज्ञाताने अबंध कह्यो तोपण उद्यमी थईने क्रिया करवी ते समजावेछेः—

अथ उद्यम प्रशंसाः—

सवैया इकतीसाः-- कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे पै तथापि ज्ञाता उद्यमी बखान्यो जिन बैनमें; ज्ञानदृष्टि देतु विषै भोगनिसों हेतु दोउ, क्रिया एक खेत यों तौ बनै नांहि जैनमें; उदै बल उद्यम गहै पै फलकौं न चहै निरदै दसा न होइ हिरदेके नैनमें; आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यात मांहि, जहां न संभारै जीव मोहनींद सैनमें ॥ ४४ ॥

अर्थः— जीव छे ते कदापी कर्मजालथी बंधाय नही, अने जोगथकी पण बंधाय नही, अने हिंसाथकी पण न बंधाय, भोगवडे न बंधाय, तोपण जिनेश्वरना वचनथकी ज्ञाता जीवने उद्यमीज वखाण्युं छे. ज्ञाननेविषे दृष्टि पण आपेछे, अने विषयभोगमां प्यार पण राखेछे, एवी बे क्रिया एक खेत के० एक आत्माविषे एक स्थानकविषे करेछे, एवुं तो जैनवासीमां बने नही; अने जे ज्ञानी होय ते एटलुं तो करेके जे संहनन के० संघयण प्रमुख कर्मनो उदय बल छे, तेथी यथायोग्य ते क्रियाविषे उद्यमवंत थाय, अने तेना फलने इच्छे नही, ने हृदयरूप नेत्रनेविषे निर्दय दशावंत न थाय, अने आलस निरुद्यम तो मिथ्यात्वमांज पामियें, एथी आलस ने निरुद्यमनी मिथ्यात्व भूमिका छे, जे भूमिकानेविषे जीव मोहनिद्रा लेतो थको सयनदिशामां रहेछे, अने पोताना स्वरूपने संभारतो नथी. ॥ ४४ ॥

हवे जे उदय माफक क्रिया कही तेथी उदय बळनी व्यवस्था कहेछेः–

अथ उदै व्यवस्था वर्णनंः–

दोहाः– जब जाकौ जैसे उदै, तब सो है तिहि थान! सकति मरोरै जीवकी, उदै महा बलवान ॥ ४५ ॥

अर्थः– जे काळनेविषे जेनो जेवो उदय थाय ते काळनेविषे ते स्थान के० ते स्वरूपमां जीव रहे छे, ते जीवनी शक्ति मरोडीने पोतानी शक्ति प्रगट करे, एथी कर्म उदय महा बळवान छे ॥ ४५ ॥

हवे उदय बळ उपर दृष्टांत आपेछेः–अथ उदै बल वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः–जैसे गजराज पर्‍यो कर्दमके कुंडबीच उद्यम अहूटै न पै छूटै दुःख दंदसों; जैसे लोह कंटककी कोरसों उरझ्यो मीन, चेतन असाता लहै साता लहै संदसों; जैसे महाताप सिरवाहिसों गरास्यो नर, तकै निजकाज उठी स कै न सुछंदसों; तैसे ज्ञानवंत सब जानै न वसाई कछु, बंध्यो फिरै पूरब करम फल फंदसों ॥ ४६ ॥

अर्थः– जेम हाथी कर्दमना कुंडमां पडयो पछे तेमांथी निकळवाने उद्यम अ हूटै के० करेछे, पण ते दुःखदंदथी छूटी शक्तो नथी, जेम हृदयमां लोह कटकी के० लोढाना कांटानी अणीमां जरायो एवो मच्छ छूटो थई शकतो नथी, तेथी मत्सनुं चेतन अशाता पामे, अने संद के० छूटे तो शाता लहे पण छूटे नही. वळी कोई माणस तापज्वर अने माथाना दरदथी हेरान थतो पथारीमां पडी रह्यो होय अने ते मनुष्य पोताना कार्य करवाने वास्ते तेहांथी उठवाना अनेक उपाय करतो छतां पोताना स्वछंदथी उठी शकतो नथी, तेमज ज्ञानवंत जीवतो सर्व हेय उपा देय जाणे छे पण कोई पोतानुं बळ चाले नही पूर्व संचित कर्मना फळना फंद थी एटले कर्मना उदयथी बांध्यो फिरे छे ॥ ४६ ॥

हवे आळसीने निरुद्यमीनी जेवी अवस्थाछे तेवी बतावे छेः–अथ यथावस्था वर्ननंः–

चौपाईः–जे जिय मोहनींदमें सोवै, ते आलसी निरुद्यमि होवै; दृष्टिखोलि जे जगे प्रवीना; तिन्हि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ४७ ॥

अर्थः– जे जीव मोहरूप निद्रानेविषे सुई रह्या छे, ते जीवने आळसु कहीए ने तेज निरुद्यमी केहेवाय. अने जे प्रवीण जीव ज्ञानदृष्टि खोली जागृत छे, ते आ ळस तजीने उद्यम करे छे ॥ ४७ ॥

हवे आळसु ने उद्यमीनी क्रियानुं वर्णन करे छेः–अथ यथावस्थातथा क्रिया कथनंः–

सवैया इकतीसाः— काच बांधे सिरसों सुमनी बांधे पायनिसों, जानै न गवार कैसी मनी कैसो काच है; योंही मूढ जूठमें मगन जूठहिकों दौरे, जूठ बात मानै पै न जानै कहा साच है; मनीकों परखि जानै जोहरी जगत मांहि, साचकी समुझी ज्ञान लोचनकी जाच है, जहांको जु वासी सो तो तहांको मरम जानै, जाको जैसो स्वांग ताको तैसेरूप नाच है॥ ४८॥

अर्थः— काचने माथाउपर बांधे अने मणीने पगे बांधे, एवा गमार लोकने खबर नथी होती के काचशी वस्तु छे, अने मणी शी वस्तु छे, एम मूढ अज्ञानी जीव जूठी वातमां मग्न रहे, जूठा कार्यमां दोडे, अने जूठी वात माने, पण एम न जाणे के एमां साच केटलुं छे, मणी रत्ननी तो जे झवेरी होय तेज जगतमां परिक्षा करीशके, तेमज साचानी समझ पण तेनेज पडे, जेने ज्ञानरूपी लोचननी उत्पत्ति थई होय केमके, जे जिहांनो वासी होय ते तिहांनो मरम जाणे, एटले मिथ्यात भूमिकानो वासी मिथ्यातनेज ग्रहे अने सम्यक्त भूमीकानो वासी ते समकितनेज साचुं माने, मतलब जे जेवो वेष धरी आवे ते तेवोज नाच नाचेछे. ॥ ४८ ॥

हवे जे जेवी क्रियाकरे ते तेवुं फल पामे ते कहेछेः--अथ यथाक्रिया तथा फलकथनं

दोहा.— बंध बधावे अंध व्है, ते आलसी अजान; मुक्ति हेतु करनी करै, ते नर उद्यमवान. ॥ ४९ ॥

अर्थः— जे भाव अंध थईने बंधने वधारे, ते अजाण आलशी केहेवायछे अने जे मुक्ति हेतुने अर्थे क्रिया करेछे, ते मनुष्य उद्यमवंत केहेवाय छे. ॥ ४९ ॥

हवे जो ज्ञानहोय तो वैराग्यपण होय अने जो वैराग्य न होयतो ज्ञान पण न होय तेथीज्ञान वैराग्यनुं सहचारपणुं कहेछेः—अथज्ञानवैराग्य सहचारत्ववर्णनंः—

सवैया इकतीसाः--जबलगु जीव शुद्ध वस्तुकों विचारै ध्यावे तबलगु भोगसों उदासी सरबंग है; भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नाहिं, भोग अभिलाषकी दशा मिथ्यात अंग है; तातें विषै भोगमें मगन सो मिथ्याति जीव, भोगसों उदासि सो समकिति अभंग है; ऐसी जानि भोगसों उदासि व्है मुगति साधै, यहै मन चंग तो कठोत मांहि गंग है. ॥ ५० ॥

अर्थः-- जाहांसुधी जीव शुद्ध वस्तुना विचारमां दोडतो होय, तांहांसुधी सर्वे अंगनेविषे भोगथी उदासीनपणुं जोवामां आवे; अने ज्यारे भोगमां मगन रेहेतो होय, त्यारे तो ज्ञाननी जगन के० जागृती न होय, केमके भोग अभिलाषनी दशामां वर्त्तवुं तेतो मिथ्यातनुं अंग छे, तेथी विषयभोगमां मगन रहे ते जीव मिथ्या

ती केहेवाय, अने जे विषय जोगथी उदासी रहे ते तो अजंग समकेती छे. एवुं जाणीने अहो जव्यलोको जोगथी उदास थई, ने मुक्तिने साधो ते उपर दृष्टांत कहे छे के, जेनुं मन चंगुंछे तेने कथरोटमांज गंगा छे, मतलब के कथरोटमां नातां थका गंगा स्नाननुं फल पामेछे. ॥ ५० ॥

हवे मोक्षना अधिकारनेविषे चार पदार्थनुं स्वरूप कहे छेः–

अथ पदार्थ चतुष्क कथनंः–

दोहाः– धरम अरथ अरु काम सिव, पुरुषारथ चतुरंग ; कुधी कलपना गहि रहै, सुधी गहै सरवंग ॥ ५१ ॥

अर्थः– धर्म, अर्थ, काम, ने मोक्ष, पुरुषार्थना ए चार अंग छे, ए पुरुषार्थ विषे कुधी के० कुमतिवालो पोतानी मति कल्पनाने झालीने बेसे छे, अने सुधी के० पंमित पुरुष छे ते सर्वांगनुं ग्रहण करे छे ॥ ५१ ॥

हवे चारे पदार्थनी न्यारी न्यारी व्यवस्था सुमति अनेकुमतिना मन आश्री कहे छेः– अथ पदार्थ व्यवस्था कथन–

सवैया इकतीसाः– कुलको आचार ताहि मूरख धरम कहै, पंमित धरम कहै वस्तुके सुजाउकों ; खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहै, ज्ञानी कहै अरथ दरव दरसाउको ; दंपतिको जोग ताहि डुरबुद्धि काम कहै, सुधी काम कहै अजिलाष चित आउको, इंद्रलोक थानकों अजान लोक कहै मोक्ष, मतिमान मोक्ष कहै बंधके अजाउकों ॥ ५२ ॥

अर्थः– जे मूर्ख जन होय ते पोताना कुलना आचारने धर्म कहे छे, अने पंडितजन तो वस्तुनां स्वजावने धर्म कहे छे, अज्ञानी जन होय ते खेहना खजाना जे सोनुं रुपुं जवाहिर वगैरे छे तेने अर्थ के० द्रव्य कहि बतावे छे, अने ज्ञानी जन होय ते द्रव्यना दरशावने अर्थ कहे छे ; एटले षट्द्रव्यने अर्थ कहे छे. डुर्बुद्धि जन स्त्री जरतारना जोग संयोगने काम कहे छे, पण सुधी के० पंमित जन तो चित्तनी इछा अजिलाषने काम कहे छे, अने जे इंद्रनो स्थानक छे, तेने अजाण लोक मोक्ष कहे छे, अने जे मतिमान एटले पंमित लोक छे तेतोजे थकी बंधनो अजाव थाय छे, एटले बंधना नाशने मोक्ष कहे छे ॥ ५२ ॥

हवे चारे पुरुषार्थने अध्यात्मरूप कहे छेः–अथ पुरुषार्थ चतुष्क अध्यात्मरूपकथनः-

सवैया इकतीसाः– धरमको साधन जु वस्तुको सुजाउ साधै, अरथको साधन विलेछ दर्व षटमें ; यहै काम साधना जु संगहै निरास पद, सहज स्वरूप मोष सु

द्धता प्रगटमें; अंतर सुदृष्टिसों निरंतर विलोकै बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निज घटमें; साधन आराधनकी सौंज रहै जाके संग, भूलो फिरै मूरख मिथ्यातकी अलटमें॥५३॥

अर्थः—धर्मनुं साधन तो तेने कहीये के जे वस्तुना स्वभावने साधवो एटले वस्तुना स्वभावने यथार्थ जाणवो, अर्थनुं साधन तेने कहीये के जे षट् द्रव्यने विलक्षण के० जुदां जुदां जाणवां; काम साधन तेनुं नाम छे के, जे निरास पदनो संग्रह करवो, एटले निस्पृह दशामां रेहेवुं; मोक्षनुं साधन ते छे, के जेवडे पोतानी सहज स्वरूप शुद्धता प्रगट भावमां करवी, ए रीते अंतरदृष्टि वडे एटले ज्ञान दृष्टि थकी बुद्धिमान पुरुष धर्म अर्थ काम ने मोक्ष ए चारपुरुषार्थने निरंतर पोताना घटमां देखे; एम चारे पुरुषार्थ साधवानी जेना संघाते सोज के० सामग्री रहे छे, तोपण मूर्ख जे छे ते मिथ्यातनी अटलमां भूल्या फिरे छे ॥५३॥

हवे शुद्ध व्यवहार नये करी वस्तुनुं सत्य स्वरूप कहेछेः -

अथ शुद्ध नय वस्तु स्वरूप कथनंः—

सवैया इकतीसाः— तिहूं लोकमांहि तिहूं काल सब जीवनिकों, पूरव करम उदै आइ रस देतु है; कोउ दीरघाउ धरै कोउ अलपाउ मरै, कोउ दुखी कोउ सुखी कोउ समचेतु है; याहीमें जीवायो याही मार्यो याहि सुखी कर्यो दुखी कर्यो एसी मूढ आपु मानी लेतु है; याही अहं बुद्धिसों न विलसै भरम भूल यहै मिथ्या धरम करम बंध हेतु है. ॥ ५४ ॥

अर्थः— त्रणे लोक तथा त्रणे काल तेनेविषे जगतवासी सर्व जीवने पूर्व संचित कर्म उदय आवेछे, ने ते पोतानो कडवो तथा मीठो रस आपेछे, तेणे करीने कोई दीर्घ आयुष्य भोगवी मरेछे, ने कोई अल्प आयुष्यमांज मरेछे, कोई दुःखी छे, अने कोई सुखी होयछे, कोई समचित के० सम भावमां रहेछे, एम पोत पोतानी कमाईथी सर्व जीव सुखी अथवा दुःखी छे. तेने मूढ प्राणी जे छे ते पोताना साधन मानेछे के, जो में फलाणाने जीवाड्यो, फलाणाने मारी नाख्यो, फलाणाने दुःखी कीधो, ने फलाणाने सुख आप्युं. एवो मूढ अहं बुधीथी भर्ममां भुल्यो फरेछे, अने ए भूल एनी मटती नथी, एज मिथ्या धर्म मूढने कर्मबंधनो हेतु थायछे॥५४॥

हवे फरी मूढनीज व्यवस्था कहेछेः— अथ मूढता कथनंः—

सवैया इकतीसाः-- जहांलों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबै असहाय कोऊ काहुको न धनी है; जैसी जैसी पूरव करम सत्ता बांधि जिन, तैसी तैसी उदैमें अवस्था आइ बनी है; एते परि जो कोउ कहै कि में जीवावों मारों इत्यादि अने

क विकलप वात घनी है; सो तो अहं बुद्धिसों विकल नयो तिहूं काल, मोले नि ज आतम सकति तिन्ह हनी है. ॥ ५५ ॥

अर्थः— ज्यांहांसुधी जीव जगतमां निवास करेछे त्यांहांसुधी एक बीजाने असहाय पणे रहेछे, कोई कोईनो सहायकारी नथी, तेम कोई कोईनो धणी नथी. अने जे वी जेवी पूर्व काळनेविषे कर्मसत्ता बांधी राखीछे, तेवी तेवी उदय काळनेविषे जी वनी अवस्था बनेछे; एटला उपर जे कोई कहे के में आने जीवाड्यो ने अने मा र्यो, इत्यादि अनेक मनना विकल्पनी वातो घणी छे, ते सघळी अहंबुद्धि थकी थाय छे, अने ते जीव त्रणे काळने विषे अहंकार बुद्धिमां मोळे छे, तेणे शुद्ध ज्ञानशक्ती ने हणी छे, अने ते जीवनी ए मूढ अवस्था केहेवाय छे ए रहस्य छे ॥ ५५ ॥

हवे चार प्रकारे करीने जीवनी व्यवस्था उपर चार दृष्टांत आपेछेः—

अथ चार प्रकार जीव व्यवस्था कथनं:--

सवैया इकतीसाः— उत्तम पुरुषकी दशा ज्यों किसमिस द्राख, बाहिज अभिंतर विरागी मृदु अंग है; मध्यम पुरुष नारीयर केसी भांति लिये, बाहिज कठिन हि य कोमल तरंग है; अधम पुरुष बदरीफल समान जाके बाहिरसों दिसै नरमाइ दिल संग है; अधमसों अधम पुरुष पुंगीफल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरवंग है॥

अर्थः— उत्तम पुरुषनी दशा किसमिस द्राक्ष जेवी छे, जेम किसमिस द्राक्ष बा हिरथी ने अंदरथी कोमळ छे, तेमज उत्तम पुरुष बाह्य व्यवहार अने अभ्यंतर व्यवहारमां पण मृदु अंग के० कोमळ छे, मध्यम पुरुष नारीयळ सरीखो छे, जेम नारीयळ बाह्य व्यवहारमां कठोर अने अभ्यंतर कोमळ छे, तेम मध्यम पुरुष पण बाहारथी कठण अने हृदयामां कोमळ होय छे, अधम पुरुष बोर समान छे, जे म बोर बाह्य व्यवहारनेविषे नरम देखायछे, ने मांहेथी कठोर छे, तेम अधम पुरु ष बाहार नरमाइ राखे पण अंतरमां संग के० पाषाण जेवो कठण होयछे, अने अधमाधम पुरुष पुंगी फल के० सोपारी जेवोछे, जेम सोपारी बाहरने अंदर सर्वां गमां कठोर छे, तेम अधमाधम पुरुष मांहे अने बाहार सघळे कठोर होय छे ॥ ५६ ॥

हवे उत्तम पुरुषनी दशा कही बतावेछेः— अथ उत्तम पुरुष कथनं:--

सवैया इकतीसाः-- कीचसो कनक जाके नीचसो नरेसपद, मीचसी मित्ताई गरवाई जाके गारसी; जहरसी जोग जानि कहरसी करामाति हहरसी हौंस पुद गल छबि छारसी; जालसो जग विलास भालसो भुवन वास, कालसो कुटंब का

ज लोक लाज लारसी; सीठसो सुजस जानै वीठसो वखत मानै, ऐसी जाकी रीति ताही वंदत वनारसी. ॥ ५७ ॥

अर्थः— जे पोताना हैयानेविषे सुवर्णने कादव सरखुं जाणे, अने नरेश पद के० राज्य गादीने नीच सरखी जाणे, मित्राईने मीचसी के० मर्ण जेवी जाणे, ने गरवाई के० वडाई ते लीपवानी गार जेवी जाणे, रसायन प्रमुख ड्व्यजोगनी जातीने ते जेर सरिखी जाणे, मंत्र शक्तीवडे जे करामत थाय तेने कहर सरखी जाणे, देशी नाषानेविषे हहर के० अनर्थ ते सरखी हांस ने, अने पुदगलनी छबीते राख समान जाणे, माया रूप जाल तथा जगतनो विलास तेने जाल जेवो जाणे, नुवनवास के० घरवास ने तीरना नाल समान जाणे, कुटुंब कार्यने काल समान करी जाणेछे, लोकलाज राखवी ते मोहडानी लाल जेवी जाणेछे, सुयशने सीठ के० नाकना मेल समान जाणे, नाग्योदयने विष्टासमान जाणे, एवी जेनी रीत होय तेने बनारसीदास वंदना करेछे ॥ ५७ ॥

हवे मध्यम पुरुषनी दशा बतावे छेः— अथ मध्यम पुरुष यथाः—

सवैया इकतीसाः— जैसे कोउ सुनट सुनाय ठग मूरखाय, चेरा नयो ठगनीके घेरामें रहतु है; ठगोरी उतरि गई तब ताहि सुधि नई, पर्यो परवस नाना संकट सहतु है तैसेही अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, मोलै आठों जाम विसराम न गहतु है; ज्ञान कला नासी नयो अंतर उदासी पें तथापी उदे व्याधिसों समाधि न सहतु है ॥ ५८ ॥

अर्थः— जेम कोई स्वनावे सुनट होय ने तेने कोई ठग मले ने ते सुनटने कोई जडी मूली खवरावे, तेथी ते सुनट ठगनो चेलो थई जाय, अने ठगना घेरामां पड्यो रहे, पछी ते सुनटे जे मूली खाधेली तेनो असर नीकली जाय ने पाछो पोतानी शुद्धिमां आवे, तेवारे ते ठगने दुर्जन करी जाणे, पण पोते परवश पड्यो तेथी नाना प्रकारना संकट सहन कर्या करे छे, तेम अनादि कालनो मिथ्यात्वी जीव परवस पडेलो नाना प्रकारना संकट सहन करेछे, ने आठ प्रहर संसारमां विकल थई ने मोले, पण विश्राम लिये नही, एटलामां ज्ञान कलानो नास थयो, तेवारें अंतरमां उदासी थयो तो पण कर्मना उदयरूप व्याधी वडे समाधि लहेतो नथी, आश्रवमांज रहेछे ॥ ५८ ॥

हवे अधम पुरुषनी दशा दृष्टांत दईने दृढावे छेः—अथ अधम पुरुष यथाः—

सवैया इकतीसाः— जैसें रांक पुरुषके नाये कानी कोडी धन, उलूवाके नाय

जैसे संजाई बिहान है; कूकरके नाये ज्यों पिंमोर जिरवानी मठा, सूकरके नाय ज्यों पुरीष पकवान है; वायसके नाये जैसे नींबकी निबोरी दाख, बालकके नाये दंत कथा ज्यों पुरान है; हिंसकके नाये जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके नाये सुन्न बंध निरवान है ॥ ५९ ॥

अर्थः– जेम रांक पुरुषने काणी कोडी छे तेहीज धन मनाय छे, अने जेम घुवडने संध्याकाल प्रनात मनाय छे, अने कुकडाने पिंमोर जीरवानी के० गाय जेंसनुं पाणी ते दहीनो थडो मनाय छे. अने सूकर के० सूअरने पुरीष के० विष्टा तेज पकवान मनायछे. अने कागडाने लींबोमी तेज डाक्ष जेवी मनायछे, अने बालकने दंत कथा के० लोकनी कथा छे तेज पुराण मनाय छे. ने हिंसकने हिंसा मांज धरम मनाय छे. तेमज मूर्खने पुन्यबंध ते निरवाण के० मोक्षपद मनाय छे, ए अधम पुरुषनी दशा जाणवी ॥ ५९ ॥

हवे अधमाधम पुरुषनी दशा दृष्टांतेकरी दृढावेछेः–अथ अधमाधम पुरुष यथाः–

सवैया इकतीसाः– कुंजरकों देखि जैसे रोष करी नुंसे स्वान, रोष करै निर्धन बिलोकि धनवंतकों; रैनके जगैयाकों विलोकि चोर रोष करै मिथ्यमति रोस करै सुनत सिद्धंतको; हंसकों विलोकी जैसे काग मनि रोष करे, अनिमानी रोष करै देखत महंतकों; सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करै त्योंही डुरजन रोष करै देखि संतकों ॥ ६० ॥

अर्थः– जेम हाथी जोईने कुतरा रीसे नराईने नुंकेछे. जेम निर्धन पुरुष धनवानने जोईने रीसे नराय छे, जेम राते जागनार पुरुषने जोईने चोर रीसे नराय छे, जेम मिथ्याती सिद्धांतने शांनली रीसे नराय छे, जेम हंसने जोईने कागडो रीसे नराय छे, जेम महंतने जोईने अनिमानी रीश करे छे. जेम सुकवि के० सारा कविने जोईने कुकवि के० नठारो कवि रीसे बले छे. तेम अधमाधम पुरुष साधुने जोईने डुष्ट मन वडे रीसे नराय छे ॥ ६० ॥

हवे वली अधमाधम पुरुषनी चाल कहेछेः–अथ पुनः अधमाधम पुरुष वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः–सरलकों सठ कहै वकताकों धीठ कहै, बिनो करे तासों कहै धनको अधीन है; छमीको निबल कहै दमीकों अदत्ती कहै, मधुर वचन बोले तासों कहै दीन है; धरमीकों दंनी निसप्रहीकों गुमानी कहै, तिशना घटावै तासों कहै नागहीन है; जहां साधु गुण देखै तिन्हकों लगावै दोष, ऐसो कछु डुर्जनको हिरदो मलीन है. ॥ ६१ ॥

अर्थः— सरल चित्तवालाने शठ के० मूर्ख कहे, वक्ता के० कथा कीर्तन वांचनारने धीठ कहे, विनय करनारने कहेके एतो धननी आधीनताथी करेछे, क्षमावंतने निरबल कहे, इंद्रिय दमन करनारने अदाता कहे, अने मधुर भाषण करनारने कहे एतो गरीब बीहामणो छे, धरमीने दंभी कहे, अने निस्प्रहीने अहंकारी कहे छे, तृष्णा छोडनारने भाग्यहीन कहे, ज्यां एवां सरलतादिक गुण देखे त्यां दूषण लगाडे, एवुं दुर्जननुं हृदयुं मलीन के०मेलुं होय छे. अने एवा दुर्जननेज अधमाधम पुरुषनी प्रकृति जाणवी ॥ ६१ ॥

हवे मिथ्यादृष्टीनी अहंबुद्धिनुं वर्णन करे छेः— अथ मिथ्यादृष्टी वर्णनंः—

चौपाईः— में करता में कीन्ही कैसी ; अब यों करों कहौ जो ऐसी ; ए विपरीत भाव है जामें ; सो वरतै मिथ्यात दसामें. ॥ ६२ ॥ दोहराः— अहं बुद्धि मिथ्या दसा, धरे सु मिथ्यावंत ; विकल भयो संसारमें, करै विलाप अनंत. ॥ ६३ ॥

अर्थः— हुं कर्त्ता छुं, आ वर्त्तमान कालमां केवी वात करुंछुं, भविष्य कालमां जेवी कहीस तेवी करीश, एवी अहं बुद्धी ए विपरीत भाव छे, अने ए भाव मिथ्यात दशाना छे ॥६२॥ जे एवी अहंबुद्धि छे तेज मिथ्यात दशा छे, अने ए मिथ्यातदशाने धारण करे, तेज मिथ्यावंत केहेवाय छे, अने एवा पुरुषोज संसारनेविषे विकल थका संसारमां भटकता दुःख सहता अनंत विलाप करेछे. ॥ ६३ ॥

हवे मूढ प्राणीनी व्यवस्था कही देखाडे छेः— अथ मूढ व्यवस्था कथनंः—

सवैया इकतीसाः—रविके उदोत अस्तहोत दिनदिन प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटतु है; कालके ग्रसत छिनछिन होत छीन तन, आरके चलत मानो कारसो कटतु है ; एते परि मूरख न खोजे परमारथकों, स्वारथके हेतु भ्रम भारथ ठटतु है; लग्यो फिरै लोगनिसों पग्यो परजोगनिसों. विषे रस भोगनिसों नेकु न हटतु है. ६४

जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपतिमांहि तृषावंत मृषा जल कारण अटतु है ; तैसे भववासी मायाहीसों हित मानिमानि ठानिठानि भ्रमभूमि नाटक नटतु है ; आगेकों ढुकत धाय पाछे बछरा चराय, जैसे दृग हीन नर जेवरी वटतु है ; तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करै, रोवत हसत फल खोवत खटतु है. ॥ ६५ ॥

अर्थः— सूर्यना उदयथी ते अस्तसुधीमां अंजुलीना पाणीनी परें आयुष्य घटतुं जायछे, अने क्षण क्षणविषे काल जे छे ते शरीरने ग्रासेछे, तेथी शरीर क्षीण थायछे, ए रीते तन आर के०शरीर तरफ काल ग्रसी रह्योछे, एटले जेम शस्त्र कोई वस्तुने कापे छे तेम कालरूपी शस्त्र शरीरने कापेछे. एवुं कार्य थई रह्युंछे तोपण मूर्खजन जे छे

ते परमार्थने खोजतो नथी, पण पोताना स्वार्थने माटेज भ्रमना चारथने खेंची रहे छे; लोग के० परवस्तु जे काम क्रोधादिक ते साथे लागो फिरेछे, अने परपुद्गलजोग तेथी पग्यो के० हलि मली रहेछे, तेथी विषयरसने भोगवतां जरा पण हटतो नथी.

अर्थः—वली जेम कोई जबरो मृग होयछे ते वृषादित्य के० वृषसंक्रांतनो सूर्य एटलेजे छमास तेना तापनेविषे अती तृषावंत थयो थको मृषा के० जूठी इछा थकी पाणीने माटे अटतु हे के० भटकेछे, तेवी रीते संसारी जीव परस्वरूप मायाजालनेविषे हेत राखीने एटले तेने हितकारी मानीने भ्रमरूपी भूमीनेविषे ठराव करी नटनी पेठे नाची रह्यो छे. ते केहेवो छे तो जेवो कोई दृगहीन के० आंखविनानो पुरुष होय ने ते दोरी वाटतो होय त्यां पासे वाछडुं होय ते दोरीने चावी नाखतो होय तेने ते जाणी शकतो नथी तेथी तेनी मेहनत व्यर्थ जायछे. तेम मूढ प्राणी जे छे ते सुकृतनी क्रिया करेछे त्यारे रोवत हसत के० अरति अने रतियें करी क्रियाकरेछे तेथी ते करेली क्रियाना परम फलने खोई देयछे. ॥ ६५ ॥

हवे फरी बंधना करनार मूढ विषयिनी अवस्था कहेछेः—अथ मूढ विषयी वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः-- लिये द्रिढ पेच फिरे लोटन कबूतरसो, उलटो अनादिको न कहो शुलटतु है, जाको फल दुःख ताही सातासो कहत सुख, सहित लपेटी असी धारासी चटतु है; ऐसे मूढ जन निज संपती न लखे क्योंही, मेरी मेरी मेरी निशिवासर रटतु है; याही ममतासों परमारथ विनसी जाइ, कांजीको फरस पाई दूध ज्यों फटतु है. ॥ ६६ ॥

अर्थः— जेम लोटण खबुतर होय ते जो पांख बंध करीने पेच लाग्यो तेथी उलट पालट फरेछे, तेम मूढ प्राणी अनादि कालना कर्मबंध पेचमां पडेलोछे माटे अवलो मार्ग धरेछे, पण कोईरीते सवलो मार्ग धरतो नथी. अने जेनुं फल दुःख छे एवा विषय भोगवडे जे कंईक साता उपजे, तेने सुख मानेछे, जेम कोई मधे लपेटी तरवारनी धारने चाटे, जेमां मधनी मीठास थोडी होय ने तरवारनी धार ते मीठास चाखवा जतां जीभने छेदी नाखे तेनुं दुःख बहु थाय, तेम मूर्ख प्राणी पोतानी ज्ञानादिक संपतीने कदी ओलखतो नथी, पण परवस्तुने रात दिवस मारी मारी मानी रह्योछे, एज जूठी ममतावडे परमार्थ जाणवानुं विनास थई जायछे; जेम कांजीना पाणीना स्पर्शथी दूध फाटी जायछे, तेम ममताथी परमारथ बगडी जायछे. ॥ ६६ ॥

हवे मूढनी अहंबुद्धिनी व्यवस्था कही बतावेछेः—अथ पुनः मूढ व्यवस्थाः—

सवैया इकतीसाः—रूपकी न झांक हिये करमको मांक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिर गांक जैसे घनमें; लोचनकी ढांकसों न माने सदगुरु हांक, भोले पराधीन मूढ रांक तिहूं पनमें; टांक इक मांसकी मलीसी तामें तीन फांक, तीनि कोसो अंक लिखि राख्यो काहु तनमें; तासों कहे नांक ताके राखिवेको करे कांक, लांकसो खरग बांधि बांक धरे मनमें. ॥ ६७ ॥

अर्थः—आत्मानुं रूप हृदयामां नथी दीठुं, तेथी कर्मनो मांक पीधो, एटले कर्मनो रस व्यापी गयो, तेणे करी आत्मानुं स्वरूप जे शुद्ध ज्ञान ते दबाई रह्युं, कोनी पेठे जेम घन के० मेघरूप वादलानेविषे चंद्र ढंकाई रहेछे. तेम तथा ज्ञानरूप लोचन उपर मिथ्यातनी ढांक पडी तेथी सदगुरुनी हांक के० आज्ञा तेने मानतो नथी, अने मूर्ख पराधिन थको रांक वचन बोलेछे, अने त्रणे काळनेविषे निशंक रहेछे. हवे मूढता प्रगट करी बतावेछे जे नाकछे ते टांक के० एक मांसनी लीमडी छे ते तेनेविषे त्रण फांक छे ते प्रत्यक्ष प्रमाणे देखियें छैये, ते त्रण फांक केवा देखायछे ते कहेछे, ते जाणे त्रणनो अांक त्रण फांकवाळो कोइए शरीरमांज लखी राख्योछे, ते औदारिक अवयवने नाक कहेछे, अने ते नाकने राखवाने कांक के० लडाई करे ने विचारे जे मरीजईश तो पण नाक तो रहेसे एवा विचारथी लडाई करेछे खड्ग धरेछे अने मनमां बांक धरीज राखेछे. ॥ ६७ ॥

हवे मूढना विषय रागीपणानी दशा कहे छेः— अथ मूढ विषय वरननंः—

सवैया इकतीसाः—जैसे कोउ कूकर क्षुधित सूके हाड चावे, हाडनिकी कोर चिहूं उर चुंभे मुखमें; गाल तालू रस मांस मूढनिको मांस फाटे चाटे निज रुधिर मगन स्वादसुखमें; तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाने, तामें चित साने हित माने खेद दुखमें, देखे परतछ बल हानी मल मूत खानी गहे न गिलानि पगी रहे रागरु खमें॥ ६८

अर्थः— जेम कोई कुतरो भुख्यो थको हाडकाने चावे छे, ते हाडकुं सूकुं होय छे, तो पण तेने चारे तरफ फेरवीने ते चाटे छे, ने तेम चाटतां तेना गाल जीभने ताळवानी चामडी फाटे छे, अने तेथी लोही नीकळे छे ने तेज पोताना लोहीना स्वादथी मगन थई जाय छे, तेमज जे मूढ विषयी पुरुष छे, ते रती के० स्त्री पुरुष संयोगनी रीति जे श्रृंगार रस तेनेविषे मगन रहे छे, अने तेथी खेद दुःख उपजे छे, तो पण तेमां सुख माने छे, अने ते कार्यथी प्रत्यक्ष पणे बळनी हाणी थती जाणे छे, तथा तेने मळ मूत्रनी खाण जुए छे. तेम छतां तेमां गि

जानपणुं ग्रहण करतो नथी, दुगंछा पामतो नथी, अने रागरूप रुख के० वृक्षमां मली रहेछे, तेनो शोक आणतो नथी, उलटो तेमां चित लगावी आनंद मानेछे॥ ६८॥

हवे संसारीनी विकलता कहीने साधु जननी व्यवस्था कहे छेः

अथ संसारी तथा मुनी व्यवस्था कथनः—

अडिल्ल छंदः— सदा करमसों भिन्न सहज चेतन कह्यो; मोह विकलता मानि मिथ्याती व्है रह्यो; करै विकल्प अनंत, अहंमति धारिके; सो मुनि जो थिर होइ ममत्त निवारि के ॥ ६९ ॥

अर्थः— निश्चयनय वडे सहजरूपे चेतन छे, ते सदा कर्मथी भिन्न कह्युं छे, पण व्यवहारमां पडीने मोहनुं विकलपणुं मानीने मिथ्यामती थई रह्यो छे, तेथी मन मां अनंत विकल्प धरीने अहंबुद्धि धारी रह्यो छे, अने जेणे ममत्व निवारण कीधुं ने स्थिरता पाम्यो तेज साधु थयो ॥ ६९ ॥

हवे मिथ्यात भावथकी व्यवहारनुं असंख्यातपणुं कहे छेः—

अथ मिथ्यात्वभाव व्यवहार एकत्व कथनः—

सवैया इकतीसाः—असंख्यात लोक परवान जो मिथ्यात भाव तेई, व्यवहार भाव केवली उकत है; जिन्हके मिथ्यात गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन विवहारसों मुकत है; निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सगुन मोछ पंथकों ढुकत है, तेई जीव परम दशामें थिररूप व्है के, धरममें ढुके न करम सों रुकत है ॥ ७० ॥

अर्थः— एक लोकाकाश छे, तेनी असंख्यातपणे कल्पना करीयें, तेना प्रदेश असंख्यात छे, तेप्रमाणेज मिथ्यात भाव छे. जीवना अध्यवसाय स्थान छे, ए व्यवहारभावें केवलीनुं केहेवुं छे, अने जेनुं मिथ्यात गयुं सम्यक् दर्शन थयुं निश्चय लीन थयो. अने व्यवहारथी मुक्त थाय. जेमां विकल्प नथी ते निरविकल्प, अने जेमां उपाधि नही ते निरुपाधि, एवी समाधिथी जे सगुण थईने एटले ज्ञानादिक गुणमय थईने मोक्ष मार्गने जुए छे. ते जीव परम दशामां स्थिर रूप थईने आत्मिक धर्ममां ढुके पण कर्मथी रोकाय नही ॥ ७० ॥

हवे गुरुने शिष्य प्रश्न पूछे छेः— अथ शिष्य प्रश्न कथनः—

कवित्तछंदः—जे जे मोह करमकी परिनति, बंध निदान कही तुम सब; संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हिको मूल हेतु कहु अब्ब; कै यह सहज जीवको कौतुक, कै निमित्त है पुग्गल दब; सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहै सुगुरु उत्तर सुनु भव्व॥ ७१॥

अर्थः– मोह कर्मनी जे जे परिनति छे, एटले राग द्वेषादिक छे, ते तो तमे स र्व बंधनुं निदान कह्युं, अने एतो निरंतर शुद्ध चेतन थकी भिन्न छे. ते माटे ए बं धनो हवे मूल हेतु कहो; ए बंध थाय छे ने शुं जीवने सहज कौतुक छे, के ए ने पुद्गल द्रव्य निमित्त छे ते कहो एम शिष्य माथुं नमावीने गुरुने पूछे छे. हवे गुरु उत्तर आपे छे के हे भव्य प्राणी एनु उत्तर सांभलो ॥ ७१ ॥

अथ गुरु वचनः–

सवैया इकतीसाः– जैसे नाना वरन पुरी बनाइ दीजे हेठि उज्जल विमल म नु सूरज करांति है, उज्जलता भासै जब वस्तुको विचार कीजे, पुरीकी झलकसों वरन भांति भांति है; तैसे जीव दरबको पुग्गल निमित्त रूप, ताकी ममता सो मोह मदिराकी भांति है; भेद ज्ञान दृष्टिसों सुभाव साधि लीजे तहां, साचि शुद्ध चेतना अवाची सुख शांति है ॥ ७२ ॥

अर्थः– जेम सूर्यकांति मणी छे तेम बीजो काश्मिरी पाषाण तेवोज छे, ने ते महा उज्वल छे, ने तेनी नीचे तरेतरेना रंगनी पुरी बनावी आपिये त्यारे तेमां भात भातनो रंग देखाय; पण ज्यारे ते सूर्यकांति मणीना स्वभावनो विचार करि ये, तारे तो तेनी कांति जे उज्वल छे, तेज मनमां आवे, अने दीगमां तो नीचेनी बनावेली रंगनी पुरणीनी झलक पडेछे तेथीज तरेवार रंग वरण देखायछे, तेरीते जीव द्रव्यनी अशुद्ध दशानुं निमित्त कारण पुद्गल द्रव्य छे, तेनी ममताथी मोह रूप मदिरानुं उन्मत्तपणुं छे, अने ज्यारे जम चेतननी भेद ज्ञान दृष्टीवडे चेतन नो स्वभाव साधीये, त्यारे साची शुद्ध चेतनाज भासे. अने अवाच के० वचन गोचर नही, एवी रीतनी सुख शांति छे तेज भासे. ॥ ७२ ॥

हवे वस्तुना संयोगथी स्वभावमां भेद पडेछे, ते उपर दृष्टांत आपेछेः–

अथ संयोगिका स्वभाव वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः-- जैसे महिमंडलमें नदीको प्रवाह एक ताहीमें अनेक भांति नीरकी ढरनि है; पाथरको जोर तहां धारकी मरोरि होति कांकरिकी खानि तहां झागकी झरनि है; पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग उठे, भूमिकी निचानि तहां भौरकी परनि है; तैसे एक आतमा अनंत रस पुदगल दुहूकी संयोगमें विभाव की भरनि है. ॥ ७३ ॥

अर्थः– जेम पृथ्वी मंडल उपर नदीनो प्रवाह एकरूप छे, अने तेज नदीना प्रवाहमां पाणीनुं व्हेवुं अनेक तरेनुं छे, जे ठेकाणे नदीना प्रवाहमां मोटा मोटा

पथरा आवी अडेला होय त्यां धार मरडाईने पमे छे, अने जांहां कांकरी घणी हो य तां फागनी फरनी के० फाग एटले पाणीना जरा जजकी उठेछे. अने जांहां पव ननी फकोर चालती होय तांहां चंचल तरंग उठेछे, अने जे ठेकाणे जमीन नीची होयछे तांहां जोर पडेछे वमल थायछे, तेम आत्मद्रव्य छे, तेने पुद्गल द्रव्यनो सं योग छे अने रस जे छे ते षट गुणी हानी वृद्धीथी अनंत छे. तेनो संयोग थये आ त्मानेविषे विभावनी जरणी थायछे. ॥ ७३ ॥

हवे आत्मा अने शरीर एक मेक बंधाई रह्या छे पण लक्षण भेद जुदा जुदाछे ते बतावे छेः-- अथ आत्मशरीर लछन भिन्न कथनः-

दोहराः- चेतन लछन आतमा, जड लछन तन जाल; तनकी ममता त्यागि के, लीजें चेतन चाल ॥ ७४ ॥

अर्थः- आत्मानुं चेतन लक्षण छे. शरीरनुं जड लक्षण छे, तथी शरीरनी ममता छोमीने चेतननुं शुद्ध ज्ञानपणुं तेनुं ग्रहण करी लेवुं. ॥ ७४ ॥

हवे निःकेवल आत्मानी शुद्ध चाल कहेछेः-- अथ आत्मा यथाः-

सवैया तेईसाः-- जो जगकी करनी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई; देह प्रमान पै देहसुँ दूसरो देह अचेतन चेतन सोई; देह धर प्रभु देहसुँ भिन्न रहे पर छन्न लखै नहि कोई; लछन वेदि विचछन बूफत अछनिसों परतछ न होई.॥७५॥

अर्थः- जे पदार्थ सर्व जगतनी करणी करेछे, एटले चतुर्गति गमन करेछे, अने जे जगतने जाणेछे, अने जोवत के० देखेछे, पोतानी देहने प्रमाणे छे, पण देहथी ते जुदो छे. देह अचेतन पिंम छे, अने आत्मा चेतनपिंम छे. देहधारी छे, प्रभु छे पण देहथी भिन्न छे. देहनेविषे प्रछन्न के० ढंकाई रह्यो छे, एने कोई लखतो नथी. पण एना जे लक्षण छे तेने वेदी के० जाणीने विचक्षण पुरुष एने उलखेछे. एवो ए आत्मा अक्ष के० इंद्रियथी प्रत्यक्ष नथी. ॥ ७५ ॥

हवे देहनी चाली कहेछेः- अथ देह यथाः-

सवैया तेईसाः- देह अचेतन प्रेत दरी रज रेत भरी मल खेतकी क्यारी; व्याधिकी पोट अराधिकी उट उपाधिकी जोट समाधिसों न्यारी; रे जिय देह करे सुख हानि इते परि तोहि तु लागत प्यारी; देह तु तोहि तजेगि निदान पि तूंहि तजे क्युँ न देहकि यारी. ॥ ७६ ॥

अर्थः- देह अचेतन छे, प्रेत दरी के० जमतारूप प्रेतनी गुंफा छे. रज के० लोही, रेत के० वीर्य ते थकी भरेली छे, अने मलरूप खेतरनी क्यारी छे. व्याधी

रोगनी पोट छे, आराध के० आत्माने ढुपावाने उंट छे अने उपाधिनी जोट के० मेळारूप छे, एने विषे असमाधिज रहेछे, समाधि रेती नथी. माटे अरे जीव ए देह ते सुखनो नाश करे छे एवी छे, तोपण तने ए देह प्यारी लागेछे. अरे जीव तूं समज के ए देह निदान तनेज तजशे पण तुं ए देहनी यारीनो त्याग करतो नथी.

दोहराः– सुनु प्रानी सदगुरु कहै, देह खेदकी खानि; धरै सहज दुख दोष कों, करै मोक्षकी हानि. ॥ ७३ ॥

अर्थः-- सदगुरु कहेछे के अरे प्राणी सांभळो देह छे ते खेद के० धुळनी खाण छे. एनो सहज स्वभाव वात पित्त कफ रूप दुःख दोषने धरनारो छे. अने मोक्षनी हाणी करे छे. ॥ ७३ ॥

हवे देहनुं वर्णन करेछेः-- अथ देह वर्णनंः--

सवैया इकतीसाः– रेतकीसी गढी किधौं मढी है मसान केसी अंदर अंधेरी जैसी कंदरा है सैलकी; ऊपरकी चमक दमक पट भूखनकी, धोखे लागे भली जैसी कली है कनैलकी; औगुनकी औंडी महा भोंडी मोहकी कनोंडी, मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी; ऐसी देह याहिके सनेह याकी संगतिसों ह्वै रही हमारी मति कोलू केसे बैलकी. ॥ ७८ ॥ ठौर ठौर रकतके कुंड केसनिके झुंड, हाड निसों भरी जैसे थरी है चुरेलकी; थोरेसे धकाके लगे ऐसे फट जाइ मानो, कागदकी पुरी किधौं चादर है चैलकी; सूचै भ्रम वानि ठानि मूढनिसों पहिचानि करै सुखहानि अरुखानि बदफैलकी; ऐसी देह याहिके सनेह याकी संगतिसों ह्वै रही हमारी मति कोलू केसे बैलकी. ॥ ७९ ॥

अर्थः– जाणे रेतीनी गढी बांधी होय के मसाणनी मढी एटले अपवित्र ठेकाणे हाड मांसनुं एक थवुं कर्युं होय, वळी जेनी अंदर सैल के० पहाडनी कंदर के० गुफा जेवुं अंधारूं छे, एवा अपवित्र देहरूप स्थानछे तेउपर भूषणना चमक दमकथी शोभे छे, धोखे के० भूठा भभकाथी देह भली लागे छे. ते उपर दृष्टांत छे के, जेम कनेरनी कळी उपरथी सुंदर देखाय छे, पण तेमां अंदर बिलकुल सुवास होती नथी; तेथी उचाटकारी लागे छे, अवगुणनी उंरमी छे महाढुंमी छे, अने मोहनी कनोडी के० मोहनी काणी आंख छे, तेथी सूजतुं नथी, अने मायानी मसूरति के० मायानो समुदाय छे; एवी मेलनी मूरती ए देह छे, एना स्नेहथी अने संगथी अमारी मति ढोलडी पीलवानुं कोल्हु तेना बळद सरखी बनी गई छे॥ ७८॥

वळी ए देहनेविषे ठेकाणे ठेकाणे लोहीनां कुंडळां छे, ने अपवित्र केशनी झुंड

छे, तेमां हाम्कां नरेलां छे. जेम चुडेल व्यंतरीनुं स्थानक होय तेवी ए देह छे. थोडो धको लागवाथी ए देह एवी फुटी जाय छे के, जेम कागलनी पुडी अने जुंनी मेली चादर छे, ते जेम जरा टकोराथी फाटी जाय, तेम देह फाटी जाय छे, एवी ए देहनी ममताथी भ्रम वाणी के० मिथ्यावाणी सुचे के० कहे. अने मूढ लोक एनी पिछान राखे छे, अने ए देह सुखनी हानी करता छे, अने बदफेलीनी खाण छे. एवी ए देहना स्नेह तथा एनी सोबत थकी अमारी बुध्दि छोलडी पीलवाना कोल्हाना बलदनी गति जेवी थई गई छे. ॥ ७९ ॥

हवे कोल्हुना बलदनी अवस्था अने तेनी बराबर संसारी जीवनी गती छे, एवुं स्पष्ट करी बतावे छे, अथ कोल्हुका बैलकी अरु संसारी जीव समानरूप कथनः—

सवैया इकतीसाः—पाटी बंधे लोचनसों संकुचै दबोचनिसें कोचनिकोसोचसोनि वेदे खेद तनको; धाइवोही धंधा अरु कंधा माहि लग्यो जोत, वार वार आरस है कायर है मनको; भूखसहे प्यास सहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न गहे न उसास लहे छिनको; पराधीन घूमै जैसो कोल्हुको कमेरो बेल तैसोइ स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥ ८० ॥

अर्थः— जेनी आंख उपर पाटी बांधी छे. दबोच के० पगथी ठेलवुं, तेथी संकोचाय छे, अने परोणानी आरना धोंच वागे छे, तेनी सोचनाथी शरीरने खंचवा देनही, ने दोडतो फिरे पोताना धंधामा धावतोज रहे, ने खांधे जोतर लागो रहे छे. वार वार आरनो मार पडे छे, ते सहन कर्या करे, अने मननो कायर छे, भूखने पण वेठे छे, अने दुर्जननो त्रासपण खमे छे. अने स्थिरता पकडतो नथी, क्षण वार पण सुखे मोडेथी स्वास लई शकतो नथी. एरीतें पराधीन थको जेम कोल्हुनो कमेरो, के० काम करनारो बलद घूमेछे, तेम जगत वासी लोक घूमे छे, अर्थात हे भाई कोल्हुना बलद सरखो तेमनो पण स्वभाव छे ॥ ८० ॥

हवे जगतवासी जीवनी व्यवस्था कहे छेः— अथ जगतवासी यथाः—

सवैया इकतीसाः— जगतमें डोले जगतवासी नर रूप धरी, प्रेतकैसे दीप किधों रेत केसे धुहे है, दीसे पटभूखन आडंबरसों निके फिरे फीके छिनमांझि सांझी अंबर ज्यों सुहे है; मोह के अनल दगे मायाकी मनीसों पगे दाभकी अनीसों लगे कसकेसे फुहे है, धरमकी बुझि नाही उरझे भरम माहि नाचि नाचि मर जाहि मरीकेसे चुहे है ॥ ८१ ॥

अर्थः— जगतवासी जीव मनुष्यरूप धरीने डोली रह्या छे; ए केवा छे जाणियें

प्रेतना दीप छे, ते जेम जलदी मटी जाय छे, तेम ए पण समजवा. वली रेतिना घुमाडा जेवा छे, तथा वस्त्र भूषणना आडंबरथी शोभायमान देखाय छे. अने क्षणेकमां फीका थई जाय छे, जेम सांज समे आकाशमां वादल रंग बदले छे, तेम जाणवा वली मोहनी अगनीथी दाझे छे, ने मायानी ममी के० पोतापणुं तेथी पगे के० व्यापी रह्या छे, जाणियें डाभनी अणीउपर लागेला पाणीना बिंदु सरखा छे, गारना बिंदु जेवा छे. धरमनी ओलखाण जेने नथी अने भ्रमनेविषे अरुझी रह्या छे, जेम मरी उतपादनां उदरडां नाची नाची ने मरी जाय छे. तेम ए संसारी जीव नाची नाचीने मरण पामेछे ॥ ८१ ॥

हवे जगतवासीनी मोह व्यवस्था कहेछे:- अथ जगत व्यवस्था कथनः-

सवैया इकतीसाः- जासों तूं कहत यह संपदा हमारी सोतो, साधनि अमारी ऐसे जैसे नाक सिनकी; जासों तूं कहत हम पुन्य जोग पाई सोतो, नरककी साई है वमाई देढ दिनकी; घेरा मांहि पर्यो तूं विचारे सुख आखिन्हिको, माखिनके चूंटत मिठाई जैसे भिनकी; एते परि होहि न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिनकी. ॥ ८२ ॥

अर्थः- अरे प्राणी जेने तूं कहेछे के आ मारी संपत्ति छे, तेने तो साधु लोके एवी रीते नाखी दीधीछे, के जेम नाकना मेलने नाखी देयछे. अने जे वडाईने तुं कहेछे के पुन्यना जोगथी हुं पाम्यो छुं ते तो नरकनी सहायी छे, जे राजादिकनी साहेबीछे. ते दोड दिवसनी छे. ए परीवारना घेरामां तुं पड्यो थको आंखनुं सुख समजे छे, पण ते मिठाईनी ऊपर माखीनी पेठे टोळानो भणभणाट थई रहे तेम परीवारनो घेरोछे. एवुं छतां जगवासी जीव उदास थतो नथी. साचुं जो जोइये तो जगतनेविषे असाताज छे, एक क्षणमात्र पण शाता नथी. ॥ ८२ ॥

दोहराः- यह जगवासी यह जगत, इनसों तोहि न काज; तेरे घटमें जग वसै, तामें तेरो राज ॥ ८३ ॥

अर्थः- ए जे पुर्वे वखाण्या एवा जगतवासी लोक छे, अने ए लोकोनो ज्यां वास छे, तेने जगत जाणवुं, ए साथे संबंध राखवानुं तारुं काम नथी, पण तारा घटनेविषेज जगतनो वास छे, अने ते जगतमां तारुं राज्य छे ॥ ८३ ॥

हवे जे पिंडे ते ब्रह्मांडे ए वात साची छे, एवुं सिद्ध करी आपेछे:-

अथ पिंड ब्रह्मांड वर्ननंः-

सवैया इकतीसाः- याही नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थिति, याहिमें त्रिविध प

रिणाम रूप शृष्टि है; याहिमें करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहिमें समाधि सुख बारिदकी वृष्टि है; यामें करतार करतूति याहिमें विभूति, यामें भोग याहीमें वियोग यामें घृष्टि है, याहिमें विलास सब गर्भित गुपतरूप, ताहिकों प्रगट जाके अंतर सु दृष्टि है ॥ ८४ ॥

अर्थः—मनुष्य पिंमनेविषे कटीनी नीचे पाताल लोकछे, नाभि ते तिर्यक लोकछे, ते उपर उर्ध्व लोकछे, एवी त्रिभुवननी स्थिति जाणवी. अने एनेविषेज कईक परिणाम उपजे छे, ने कईक नाश पामे छे, ने कई स्थिर छे, एवी त्रिविध शृष्टि बनी रही छे; अने एज पिंममां आत्माने कर्मनी उपाधि वलगी छे. तेज दुखकारी दावानल के० अग्निनो समुद्र लाग्यो छे; अने एज पिंममां कोईवारें समाधि सुख आवेछे तेज वादलनी वृष्टी जाणवी, ते दावानल उपर मेघनी वृष्टी छे. एज पिंममां कर्मनो कर्त्ता पुरुष छे, एज पिंममां कर्त्तानी क्रिया छे; ए पिंममांज विभूति के० ज्ञानादिक संपत्ति छे, एज पिंममां कर्मनो भोग ने कर्मनो वियोग छे. अने एज पिंममां आत्मानुं घृष्ट के० दलन जे शुभाशुभ गुणोमां घसडाई रहेवुं ते छे; ए रीते ए पिंममां गर्भित के० मध्यभागमां गुप्तरूपे सर्व विलास छे. पण जेना अंतरमां सुदृष्टीनो प्रकाश छे, तेने सर्व विलास प्रत्यक्षपणे जणाय छे ॥ ८४ ॥

हवे ए वातनो उपदेश गुरु कहे छेः— अथ गुरूपदेश कथनः—

सवैया तेईसाः— रे रुचिवंत पचारि कहै गुरु, तूं अपनो पद बूझत नांही; खोज हिये निज चेतन लछन है निजमें निज गूझत नांही; सिद्ध सुछंद सदा अति उज्जल, मायके फंद अरूझत नांही; तोर सरूप न दुंदकि दोहिमें तोहिमें है तुहि सूझत नांही ॥ ८५ ॥

अर्थः— पचारी के० बोलावीने गुरु कहे छे, के रे रुचिवंत भव्य, तूं पोतानुं पद के० स्थान तेने जाणतो नथी. पोतानुं चेतन लक्षण हृदयामां खोज. ए पोतानुं लक्षण पोताने विषे छे ते गूझत के० गुप्त नथी; तारूं स्वरूप सिद्ध समान छे स्वछंद के० निज आधीन छे, सदा अति निर्मल छे, पण मायानी जालना फंदमां पडयुं छे, तेमांथी छूटी शकतो नथी; तारूं स्वरूप द्वंद्वनेविषे नथी एटले भ्रमजालनी द्विविध दशामां नथी, तारामांज छे, पण तने सूजतूं नथी ॥ ८५ ॥

हवे ज्ञानना प्रकाश वडे ईश्वरताने पमाय ते समझावे छेः—

अथ ज्ञान माहात्म्य कथनः—

सवैया तेईसाः— केइ उदास रहै प्रभु कारन, केइ कहीं उठि जाहि कहींके; के

इ प्रनाम करै गढि मूरति, केइ पहार चढे चढि छींके; केइ कहे असमान कैं ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेठि जमींके; मेरो धनी नहि दूरदिशांतर मोमहि है मुहि सूजतनीके.

अर्थः– कोई पोताना परमेश्वरने ओळखवाने उदासी थई बेसी रहे छे, कोई क ई क्षेत्रनेविषे जतो रहे छे, कोई परमेश्वरनी घडेली मूरतिने प्रणाम करे छे, कोई परमेश्वरने पामवाने छीकामां बेसी पर्वतने उपर चढे छे, कोई परमेश्वरने आस्मा न उपर छे एवुं कहे छे, कोई कहे छे के, परमेश्वर जमीननी नीचे छे, ए कुरान वाळानी श्रद्धा छे; पण एविषे मारो निश्चय तो ए छे के मारो धणी तो कांई दूर देश नथी; पण माराविषेज छे. एम अनुभवथी मने मारुं मालम पडे छे ॥ ७६॥

दोहराः– कहै सुगुरु जो समकिती, परम उदासी होइ; सुथिर चित्त अनुभौ करै, यह पद परसै सोइ ॥ ७७ ॥

अर्थः– सद्गुरु कहे छे के जे समकिती होय ते परम उदासी रूप थई चित्त ने स्थिर राखीने निज अनुभव अभ्यासथी पोताना पदने पामे ॥ ७७ ॥

हवे मननी चंचळता दर्शावी तेने स्थिर केम राखवुं ते उपदेशे छेः–

अथ मन स्वरूप कथनः–

सवैया इकतीसाः– छिनमें प्रवीन छिनहीमें मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिन मांहि जेसो शक्र है; लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप कोलाहल ठानत मथान कोसो तक्र है; नट कोसो थार किधों हार है रहट कोसो नदी कोसो भौर कि कुंभार कोसो चक्र है; ऐसो मन भ्रामक सुथिर आजु केसो होइ ओरहिको चंच ल अनादिहीको वक्र है. ॥ ७८ ॥ धायो सदा काल पै न पायो कहू साचो सुख रूपसों विमुख दुख कूपवास वसा है; धरमको घाती अधरमको संघाती महा, कु राफाती जाकी संनिपातीकीसी दसा है, मायाकों झपटि गहै कायासों लपटि र है, भूल्यो भ्रम भीरमें बहीरकोसो ससा है; ऐसो मन चंचल पताका कोसो अं चल सु ज्ञानके जगेसें निरवान पथ धसा है. ॥ ७९ ॥

अर्थः– आ मन क्षणमां प्रवीण थायछे, क्षणमां मायानेविषे मलीन थायछे, क्षणमां दीन दशा धरेछे, क्षणमां शक्र के० इंद्र जेवुं बनेछे, क्षणमां दोड धाम करेछे, क्षणमां अनंतरूप धरे छे, जेम दहीने वलोवता कुलाहल थायछे, तेवुं कु लाहल ए मन करेछे, वळी नट जे नाचनार घुमे तवुं, के अरहटनी माळा घुमे ते वुं, के नदीनो वमळ घुमेछे तेवुं, अथवा कुंभारनुं चक्र फरेछे तेवुं कहुं, एवो सदा काळ मननो भ्रामक स्वभाव छे, एवुं ए मन आज केम स्थिर थाय? जाते चंच

ल अने अनादि कालथी थाकुं चालनारुं मन ढे. वली केवुं ढे ? ॥ ७७ ॥ हमेशा दोडतुं फरेढे, पण एने किहांय सातुं सुख प्राप्त थतुं नथी, पोताना समाधिसुखथी विमुख थयुंढे, अने दुःखरूप कूप वासमां वस्युं ढे, वली ए मन धर्मनुं घाती ढे, अने अधर्मनुं संघाती ढे, एवुं महा कुराफाती ढे, ए मननी दशा तो जेम कोई पुरुषने सनेपात थयो होय तेना सरखी ढे. डोह तथा वंचनाने जट ग्रही लिये ने कायाना मोहथी मगन रहे, ने च्रम जालमां पमी छुलुंज फरे, जेम कटकनी जीफमां ससलुं आवी पडे ने ज्रमतुं फरे, तेवुं मन ढे. ने पताका के० ध्वजा तेना अंचल के० ढेडानी पढे जाणवुं. ते ज्यारे ज्ञान प्रगटे त्यारे निरवाण के० मोक्ष मार्ग तेने विषे गमन करे एवुं ढे ॥ ७९ ॥

दोहरा.– जो मन विषय कषायमें, वरते चंचल सोइ; जो मन ध्यान विचार सों, रुके सु अविचल होइ ॥ ए० ॥ ताते विषय कषायसों, फेरि सु मनकी वानि; शुद्धातम अनुनोविषे, कीजे अविचल आनि ॥ ए१ ॥

अर्थः– जो मन विषय कषायरूप राग द्वेषमां वर्त्ते तो चंचल जाणवुं. अने जो ए मन राग द्वेष ढांमी ध्यान विचारथी रोक्युं रहे तो अविचल जाणवुं ॥ ए० ॥ माटे विषय कषायमां मननी लागणीढे तेने काढी निज शुद्धात्मना अनुजवमां लगाडीने आ मनने अविचल करियें. ॥ ए१ ॥

हवे मन स्थिर करवाने आत्मानो विचार करवो ते कहेढेः–

अथ विचार शिक्षा कथनंः–

सवैया इकतीसाः–अलख अमूरति अरूपी अविनासी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है; नानारूप जेष धरे जेष को न लेस धरे, चेतन प्रदेस धरे चेतनाको षंध है; मोह धरे मोहीसो विराजे तोमें तोहीसो न तोहिसो न मोहीसो निरागी निरबंध है; ऐसो चिदानंद याही घटमें निकट तेरे, ताही तूं विचार मन और सर्व धंध है. ॥ ए२ ॥

अर्थः– ए आत्मा अलक्ष ढे, अमूरति ढे, अरूपी ढे, अविनाशीढे अज के० जन्म्यो नही एवो ढे, अने जेने कोईनो आधार नही, ज्ञानरूपी ढे, तथा रंगविनानो ढे, ने लिंङ्ग विनानो ढे, व्यवहारमां जोईये तो नाना प्रकारना वेष धरनारो ढे, निश्चयमां जोईये तो वेषनो लेश धरे नही मात्र चेतनाना प्रदेशनुं धारण करनारो ढे, अने चेतनानो षंध के० पुंजरूप ढे, ए उपदेश मनने बाह्यात्मानो ढे, ते बाह्यात्मा मनने कहे ढे के, ए चिदानंद जेढे ते राजाढे, ने आ पिंमनो मोह धरेढे, अने हे मन ए चिदानंद

तारामां ताराजेवो विराजे छे, पण निश्चेनयथकी तारेविषे ने मारेविषे एने मोह नथी, एवुं निरागी निरबंध छे, एवो जे चिदानंद जगवान छे, ते अरे मन जे घट मांहे जिहां तुं वसेछे तेज घटमां ते पण वसेछे माटे ते ईश्वरनोज विचार तुं कर, बीजो विचार सर्व दंद रूपछे. ॥ ए२ ॥

हवे ए चिदानंदनो जे रीते शुद्धानुजव थाय, ते रीते मनने उपदेश करेछेः–

अथ शुद्धानुजव शिक्षा कथनः–

सवैया इकतीसाः– प्रथम सु दृष्टिसों सरीररूप कीजे जिन्न तामें और सूछम शरीर जिन्न मानियें; अष्ट कर्मजावकी उपाधि सोई किजे जिन्न ताहुमें सुबुद्धिको विलास जिन्न जानिये; तामें प्रजु चेतन विराजित अखंमरूप, वहे श्रुत ज्ञानके प्रवान ठीक आनिये; वाहिको विचार करि वाहिमें मगन हुजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि गनिये. ॥ ए३ ॥

अर्थः–प्रथम सम्यक् दृष्टिवडे शरीररूप बाह्यात्मा जिन्न राखवो, ते बाह्यात्मा नेविषे बीजुं सूक्ष्म शरीर कर्म संबंधी अंतरात्मा छे ते पण जिन्न जाणवो, ते अंत रात्माथी परमात्माना ज्ञान दर्शननुं आछादन थायछे, एवुं अष्ट प्रकारनुं कर्म तेना जावनी उपाधि ते पण जिन्न जाणवी, अने ते अंतरात्मानेविषे सुबुद्धिनो विलास जे जेद ज्ञानादिक ते पण जिन्न जाणीये, अने ते सुबुद्धि विलासमां चेतनरूपी प्रजु जे छे ते अखंमरूपे विराजे छे, अने ते चेतन श्रुत ज्ञानना प्रमाणथी हृदयमां सारीपठे ठराविये, ए रीते हे मन तुं तेनाज विचारमां मग्न रेजे, ने ते चेतननुं पद साधवाने एटले मोक्ष मार्ग ग्रेहवाने एज विधी युक्त छे एम जाणजे. ॥ ए३ ॥

हवे ज्ञाता जीवनुं स्वरूप वर्णवे छेः– अथ ज्ञानी जीव कथनः–

चोपाईः– इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने; रागादिक निजरूप न माने; तातें ज्ञानवंत जगमांही, करम बंधको करता नांही. ॥ ए४ ॥

अर्थः– ए रीते वस्तुनी व्यवस्था जाणे अने राग द्वेषादिक जे जाव छे, तेने पोतानुं रूप न माने, तेणे करीने ज्ञानवंतने जगतमां कर्म बंधनो कर्त्ता कह्यो नथी आठ कर्म तेने बंध करी शकता नथी. ॥ ए४ ॥

हवे ज्ञातानी क्रिया कहे छेः– अथ ज्ञाताकी क्रिया कथनंः–

सवैया इकतीसाः–ज्ञानी जेद ज्ञानसों विलेछि पुदगल कर्म, आतमाके धर्मसों निरालो करि मानतो; ताको मूल कारन अशुद्ध राग जाव ताके, नासिवेको शुद्ध अनुजौ अभ्यास गनतो; याही अनुक्रम पररूप जिन्न बंध त्यागि, आपुमांहि अ

पनो सुनाउ गहि आनतो; साधि शिवचाल निरबंध होतु तिहू काल, केवल विलोक पाई लोकालोक जानतो. ॥ ९५ ॥

अर्थः— ज्ञाता होय ते नेद ज्ञानवडे पुदगलिक कर्मनुं विलक्षण केम करे ते कहे छे, आत्मिक धर्मथी पुदगलिक धर्मने जूदो करी जाणे, एम विलक्षण करे, अने ते पुदगल धर्मनुं मूल कारण अशुद्ध रागद्वेषादिक नाव छे, तेनो नाश करवाने शुद्ध अनुनव अन्यास जे रीते पूर्वे कह्यो ते प्रमाणे अवस्था देखी अन्यास राखे. ए रीते अनुक्रमे प्रथम सुदृष्टिथी शरीररूप निन्न करवुं, ए अनुक्रमें पूर्व संबंधथी अनादि कर्म बंधने त्यागीने पोतानेविषे पोतानोज ज्ञानादिक स्वनाव ग्रहण करे, एम शिव पदनी साधना करीने त्रणे काल निर्बंध थाय, तेवो थई केवल ज्ञान पामीने लोकालोकने जाणनार थाय. ॥ ९५ ॥

हवे सम्यक्त धारीनुं पराक्रम कही बतावे छेः—अथ सम्यक्तधारी वैनव वर्णनः—

सवैया इकतीसाः— जैसे कोउ हिंसक अजान महा बलवान, खोदि मूल विरख उखारे गहि बाहुसों; तैसे मतिमान दर्वकर्म नावकर्म त्यागि, व्है रहै अतीत मति ज्ञानकी दसाहुसों; याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे ज्योति केवल प्रधान सवि ताहुसों; चुके न सकतिसों लुके न पुदगलमांहि, ढुके मोपथ लकों रुके न फिरि काहुसों. ॥ ९६ ॥

अर्थः— जेम हिंसक पुरुष नील प्रमुख जे हिंसाना फलथी अजाण छे, अने महा बलवान छे, ते वृक्षना मूलने खोदीने पछी पोताना नुजना बले करी तेने उखेडी नाखे छे, तेम मतिमान के० सम्यक्ती पंमित जे छे, ते पुदगल स्वरूपी द्रव्य कर्मने, अने ज्ञानावरणी दर्शनावरणी इत्यादि आठ नाव कर्मने त्यागीने ज्ञान दशावडे अतीत के० कर्मरहित थई रह्यो छे, अने क्षण क्षणमां ए क्रियाना अनुसारे मोह अंधकारने मटावे छे, अने तेथी केवल ज्ञाननी ज्योति उदय थाय, ते ज्योति मति ज्ञान प्रमुख सर्व ज्ञानोमां प्रधान छे, अने एथी अनंत वीर्य प्रगटे, ने फिरि ए शक्ती ते चुके नही, अने मोक्ष स्थानने जई ढुके, अने कोईथी रोकाय नही॥९६॥

इतिश्री नाटक समयसारविषे बंधद्वार बालावबोध रूप अष्टम समाप्तः

दोहराः— बंध द्वार पूरन नयो, जो दुख दोष निदान; अब बरनों संछेपसों, मोक्ष द्वार सुखखान ॥ ९७ ॥

अर्थः– डुखने दोषनुं निदान जे बंध तेनो द्वार संपूर्ण थयुं. हवे सुखनुं स्थान जे मोक्ष तेनो द्वार संक्षेपथी वरणवुं छुं. ॥ ए७ ॥

हवे मोक्षद्वारने आदि ज्ञान विलासने नमस्कार करे छेः– अथ ज्ञान विलास वर्णनंः–

सवैया इकतीसाः– भेद ज्ञान आरासों डुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचै; अनुभौ अभ्यास लहै परम धरम गहै, करम भरमको खजानो खोलि खरचै; योंही मोखमुख धावै केवल निकट आवै, पूरन समाधि लहै पूरनके परचै; भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बानारसी अरचै ॥ ए८ ॥

अर्थः– जेम कोई परिक्षानुं करनार पुरुष मुद्रा प्रमुख द्रव्यने सुलाकनी आर वडे भेदी सुधातु छे, के कुधातु छे. तेनो निश्चय करे छे, तेम ज्ञानी जीव छे, ते भेद ज्ञानरूपी आर वडे आत्मा तथा कर्म ए बेउने जुदां करे छे, अने ते बेउने जुदा जुदा चरचे के० तेमां आत्मिक धारानेविषे तो अनुभवनो अभ्यास धारण करे, तेथी परम धरम के० शुद्ध समाधि तेनुं ग्रहण करे; अने कर्मजालने जुदी जाणी छे, तेने सत्ता कर्मरूप खजानो खोलि खरचे के० विखेरी नाखे, तिहां निर्जरा थाय, एवी क्षपक श्रेणीने लीधे मोक्षना सुखने धाय, त्यां केवल ज्ञान ढुकडो आवे, अने पूर्ण आत्म स्वरूपना परिचय थकी पूर्ण समाधि पामे, पछी भव भ्रमणनी दोर छांमीने निरदोर थाय. ते पछी तेने कई बीजुंकृत्य करवानुं बाकी रहे नही; ने तेथी ते विश्वनो नाथ थयो, तेने बनारसी दास पूजे छे ॥ ए८ ॥

हवे सुबुद्धि विलास वडे आत्मस्वरूप सधाय ते अधिकार कहेछेः–

अथ सुबुद्धि विलास वर्ननः–

सवैया इकतीसाः– काहु एक जैनी सावधान व्है परम पैनी, ऐसी बुद्धि छैनी घटमांहि मारि दीनी है; पैठी नौ करम भेदि दरव करम छेदि, सुभाउ विभाउ ताकी संधि सोधि लीनी है; तहां मध्य पाती होइ लखी तिन्हि धारा दोइ, एक मुधाम्मई एक सुधारस भीनी है; मुधासों विरचि सुधा सिंधूमें मगन भई, ए ती सब क्रिया एक समै बीच कीनी है ॥ एए ॥ दोहराः– जैसी छैनी लोहकी, करै एक सों दोइ; जड चेतनकी भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होइ ॥ ३०० ॥

अर्थः–कोई एक जैनी जैन आगमना जाणनारे सावधान थईने परमपैनी के० अति तीक्ष्ण एवी बुद्धिरूप छैनी के० सोनीनी छीणी ते शस्त्र विशेष, पोताना घटमां नाखी दीधी, पछी ते सुबुद्धिरूप छीनी नौ कर्म के० आत्म प्रदेशनेविषे

श्लेष्म रूप जे राग द्वेष परिणाम छे, ते नौ करमना जेद तेना पुद्गलरूपी द्रव्य कर्म ने छेदीने स्वजाव अने विजावतानी संधी सोधी लीधी छे, तहां सांधनेविषे मध्य पाती के० त्रिह्राईत बनीने ते पुरुषे बे धारा लखी, तेमां एक तो मुधामइ के० अ ज्ञान मय छे, ने बीजी सुधारस जीनी के अमृत रस जीनी ज्ञान समाधिमय छे, अहीं राग द्वेषादिकनी दशा छे, ते मुधा दशा छे, तेथी विरचि के० वैराग धारीने सुधा सिंधुमां मग्न थवुं, ज्ञान समाधिरूप सुधा समुद्रमां मग्न रेवुं, ए जे क्रिया क ही ते सर्व क्रियानो विचार एक समयमां करे ॥ ९९ ॥ जेम लोढानी छीणी एक ना बे जाग करे छे, तेम जड चेतननी एकता जांगीने जिन्नता करवी ते सुबुद्धिथ कीज थाय छे. ॥ ३०० ॥

हवे जेवुं सुबुद्धिनुं विलास छे, तेवुं कहे छेः– अथ सुबुद्धि विलास कथनः–

सवैया इकतीसाः– (सर्व ह्रस्वक्षर चित्रालंकार) धरति धरम फलहरति कर म मल, मन वच तन बल करत समरपन; जखति असन सित चखति रसन रित, लखति अमित वित करि चित दरपन; कहति मरम धुर दहति जरमपुर, ग हति परम गुर उर उपसरपन; रहति जगत हित लहति जगति रति, चहति अग ति गति यह मति परपन ॥ १ ॥

अर्थः–सुबुद्धि जे छे ते धरम रूप फलने धारेछे, कर्मरूप मलने हरे छे, अने ए क्रिया नेविषे मन बल वचनबल अने कायानुं बल तेने समरपण करे एटले ए त्रणे बल ते क्रियामां कामे लगाडे. जखति के० खाय छे. सित के० शीतल जोजन ते र सनरित के० जीजनना स्वादविना जोजन जमे, अमित वितके० परिमाण विनानुं पोतानुं ज्ञानादिक धन चित्तरूप दर्पण वडे जुए, मर्म धुर के० मर्मनी वात जे जीवनुं स्वरूप ते कहे, भ्रम पुर के० मिथ्या नगर तेने बाले, अने अंतरनेविषे उ त्कृष्ट गुरुना वचनने ग्रहण करे, अने हृदयनेविषे उपसरपन के० स्थिरता धारे अने जगतनो हितकारी थको रहे, त्रणे लोकनी जक्ति अने रति के० सुख तेने लहे, एटले सर्व लोकने पूजनीक थाय. होई अगति गति के० जेनेविषे बीजा सा मान्यनी गति थती नथी, तेवी मोक्षगति चाहे, एवो सुमतिनो उत्कृष्ट विलास छे.

हवे ज्ञातानो विलास कहे छेः– अथ ज्ञाता वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– (सर्व गुरु अक्षर चित्रालंकार) रानाकोसो बाना लीने आपा साधे थाना चीने, दाना अंगी नानारंगी खाना जंगी जोधा है; माया वेली जेती तेती रेतेमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोसो जोधा है; बाधा

सेती ह्रांता जोरे राधासेती तांता जोरे बांदी सेती नांता तोरै चांदी कोसो सोधा है; जानै जाही ताही नीके मानै राही पाही पीके, ठानै बाते म्हाही ऐसो धारावाही बोधा है. ॥ २ ॥

अर्थः– जे बुध के० ज्ञानी छे, ते राणा के०राजा जे पातसाहनुं स्वांग लेतो थको रहे छे. जेम राजा पोताना आत्मानुं साधन करे; अने पोताना मंफलनो साज राखे, पोताना थाणाने चीन्हे के० नीघेबानी राखे, दानाइ राखे पण नादानी नही राखे, ए चारे उपाय वडे नाना रंग करे, खाना जंगी के०लडाईनेविष जोद्धा थई रहे, तेम ज्ञानी पुरुष आत्म साधन करे, गुणठाणा चिन्हे अने त्यागी थको कर्म निर्जरानेविषे नाना प्रकारना रंग धारे, राग द्वेष दुर्जन साथे लमी हटावी देय, एवी रीते एक पदना बे अर्थ थाय छे, जेम लुहार रेतरमीवडे लोढाने घसी नाखे छे. तेम जेटली जेटली माया वेली के०कर्मजाल तथा गजवेल जे क्रोध तेने मेधा के०सुबुद्धि ते रूप रेतरमी वडे घसी नाखे; अने फंदना कंदने खोदेछे जेम लोधा के० खेडुत खेतरनी धरतीने कंद के० मूलथी खोदी नाखे छे, तेम बाधा के० कर्मबंध तेथी ह्रातालोरे के० जुदाई करे, अने राधा के० सुबुद्धि ते साथे नातो जोडे; बांदीके० कुबुद्धि तेनो नांतो के०संबंध ते तोडे, जेम सोना रूपानी चांदी सोधनार वस्तु उज्वल करेछे, तेम जे जेने तेने जाणे, हेय जे छांमवा योग्य वस्तु अने उपादेय जे आदरवा योग्य वस्तु तेने पण नीके के० ठीक जाणे, पण हेयाने राहीपाही के० फुल समान पीकसमान जाणे जीनासथी खीलावेछे, ए रीते म्हाही वातो ठरावे एवो सम्यक्त धारानो वेहेनार अबोधा के० पंमित ने ज्ञानी कहीये ॥ २ ॥

हवे ज्ञाताने चक्रवर्त्ति समान कही बतावेछेः–अथ ज्ञाता चक्रवर्त्ति समान कथनः–

सवैया इकतीसाः– जिन्हिके दरब मिति साधत छ खंम थिति, विनसै विभाव अरिपंकति पतन है; जिन्हिके भगतिको विधान यईनो निधान, त्रिगुनके भेदमान चौदह रतन है; जिन्हिके सुबुद्धि रानी चूरि महा मोह वज्र, पूरै मंगलीक जे जे मोखके जतन है; जिन्हिके प्रमान अंग सोहै चमू चतुरंग, तेई चक्रवर्त्ति तनु धरै पै अतन है. ॥ ३ ॥

अर्थः– जेणे छए द्रव्य प्रमाण करी साध्या तेज जाणे छये खंम साधी लीधा, अने जेना रागद्वेषादि विभावदिशा वणसी जाए तेज जाणिये शत्रुनी पंक्तिनुं पतन के० नाश थयो, अने तेने नव प्रकारनी भक्तिनुं विधान के० करवुं तेज तेने नव निधान छे, ज्ञान दर्शन ने चारित्ररूप जे त्रण गुण छे, अने तेना क्षयोपशम

माफक जे भेद उपजेछे, ते जेना चौद रतन प्रगटमान छे, अने जेम चक्रवर्त्तिने स्त्रीर त्न होयछे, ते तेना छ खंड साधवाना राज्याभिषेक समय होय त्यारे वज्र रत्न हाथवडे चूरीने, मुख आगल मंगलीक पूरे तेम जेने सुबुद्धिरूप स्त्री रत्न छे, ते महा मोहरूप वज्रने चूरीने मोक्षना जतनने माटे मंगलीक पूरे छे, एटले मंगल कार्य करे; अने जे प्रत्यक्ष प्रमाणे करीने अर्थनुं ग्रहण करेछे, तथा परोक्ष प्रमा णे करीने पण अर्थने ग्रहेछे, एवा जेना प्रमाणरूप अंग छे, तेज तेनी चतुरंगी सेना थई एम जाणवुं, ए रीते ज्ञाता पुरुषे चक्रवर्त्तिनी देह धारी छे, तेम छता पण ज्ञाता अतनके० अशरीरी जेवुं छे. ॥ ३ ॥

पूर्वे कही जे नवधा भक्ति तेनुं हवे वर्णन करेछेः—अथ नवधा भक्ति वर्णनंः—

दोहाः— श्रवन कीरतन चिंतवन, सेवन वंदन ध्यान; लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमान. ॥ ४ ॥

अर्थः— उपादेय स्वरूपने शांभलवुं, किरतन करवुं, चिंतवन करवुं, सेवा पूजा करवी, वंदन स्तुति करवी, ध्यान धरवुं, तन्मयता करवी, समाधि करवी, एकमेकप णुं, ए नौधा के० नव भेदवडे भक्ति प्रमाण थायछे. ॥ ४ ॥

हवे जे ज्ञाता मोक्ष सन्मुख थयो तेनी अनुभव दशा कहे छेः—

अथ अनुभवी वचनः—

सवैया इकतीसाः— कोई अनुभवी जीव कहै मेरे अनुभौमें, लछन विभेद भि न्न करमको जाल है; जानै आप आपुकों जु आपु करी आपुविषे, उतपति नास ध्रुव धारा असराल है; सारे विकलप मोसों न्यारे सरवथा मेरो निहचै सुभाउ यह विवहार चाल है; मैं तो शुद्ध चेतन अनंत चिन मुद्रा धारी, प्रभुता हमारी एक रूप तिहू काल है ॥ ५ ॥

अर्थः— जे आत्मानो अनुभव पाम्यो तेज अनुभवी जीव एवुं कहे छे, के मा रा अनुभवमां लक्षण भेदथकी कर्म जाल हवे भिन्न दीसवा लागी. अने आ त्माज कर्त्ता कारक आत्माज करण कारक आत्माज आधार कारकविषे आत्मा ज कर्म कारकने जाणे. अने अही कोई पर्यायनी उत्पत्ति अने नाश छे, अने द्र व्य ध्रुवता पणे छे, ए त्रणे धारा अही असराल पणे वही रही छे, तो पण ए त्र णे धारा विकल्परूप छे, अने मारेथी तो सर्व विकल्प सर्वथा जुदाज छे, विक ल्पमां तो कंही निश्चय नथी. अने मारो तो चेतना स्वरूप निश्चे स्वभाव छे, अने आगल कही जे त्रण धारा तेतो व्यवहार नयनी चालमां छे. आ जे सिद्धांत वचन

कहुं बुं तेणे करीने हुंतो शुद्ध चेतना स्वरूपी बुं, अनंत चिन मुद्रा धारी के० अनंत ज्ञाननो धरवा वालो बुं, एहवी महारी प्रभुता त्रणे कालने विषे एक रूपेछे॥५

हवे चेतनानुंज स्वरूप बतावे छेः— अथ चेतना वर्नेनं:—

सवैया इकतीसाः— निराकार चेतना कहावे दरसन गुन साकार चेतना शुद्ध ज्ञान गुण सार है; चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरबमांहि, सामान विशेष सत्ताही को विसतारहै; कोउ कहै चेतना चिनह नाही आत्मामें, चेतनाके नास होत त्रिविध विकार है; लछनको नास सत्ता नास मूल वस्तु नास, तातें जीव दरवको चेतना आधार है॥ ६ ॥ दोहराः— चेतन लछन आतमा, आतम सत्ता मांहि; सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूमें नांहि ॥ ७ ॥

अर्थः— आत्मानो दर्शन गुण जे निराकार कहीये छइये तेतो निराकार चेतना थई, अने जे आत्माने शुद्ध ज्ञान गुण सारभूत कहीये छइये तेतो साकार चेतना थई, विशेषताने लीधो रह्यो छे माटे साकार कहिये, ए रीते निराकार अने साकारपणे दर्शन तथा ज्ञाननेविषे द्वैत भाव थयो, पण चेतनानेविषे तो अद्वैत भाव ज रह्यो छे, अने चेतनागुण थकी चेतन द्रव्य छे, तेथी चेतन द्रव्यमां बेउ समाई गयां. वली निराकार ने साकारपणुं सामान्य ने विशेषपणाथकी छे, ते तो सामान्यता अने विशेषता चेतना द्रव्यनी सत्तानो विस्तार छे; कोई मूढमति वैशिषिक प्रमुख दर्शन वाला कहे छे, के, आत्मानेविषे चेतन चिन्ह नथी, चेतना लक्षण नथी, तेने केवुं के, अरे मूढ, जो चेतन चिन्ह न कहिये तो चेतनानो नाश थवाथी त्रिविध विकार उपजशे, ते कया तो मन वचन ने कायाना विकार जाणवा; माटे लक्षणनो नाश थवाथी वस्तुनी सत्तानो नाश थशे अने वस्तुनी सत्तानो नाश थवाथी मूल रूप वस्तुनो पण नाश थशे, माटे जीवने जाणवानो तो एक आधार चेतनानोजछे ॥६॥ आत्मानुं चेतना लक्षण छे, सत्ता धर्मविना आत्मा ठरे नही तेथी आत्मा सत्ताने विषेज छे, अने पोतपोतानी सत्ता प्रमाणेज सर्व वस्तु छे, वस्तु द्रव्य विचारी जोइये त्यारे उत्पादादि त्रणे वस्तुमां भेद कोई नथी ॥ ७ ॥

हवे चेतना लक्षणनुं शाश्वत तथा अविनाशीपणुं दृढ करावेछेः—

अथ चेतना अविनासी यह कथनः—

सवैया तेईसाः— ज्यों कलधौत सुनारकि संगति, भूषन नांउ कहै सब कोई; कंचनता न मिटी तिहिं हेतु वहै फिरि औटि तु कंचन होई; त्यों यह जीव अजीव संयोग भयो बहु रूप भयो नहि दोई; चेतनता न गई कबहू तिहिं, कारन ब्रह्म

कहावत सोई. ॥ ८ ॥ देखु सखी यह आपु विराजत याकि दसा सब याहिकुं सोहे; एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद लिये डुविधामहि दो है; आपु संजारि लखे अपनो पद, आपु विसारकें आपुहि मोहे; व्यापक रूप यहे घट अंतर, ज्ञान में कौन अज्ञानुमें कोहे! ॥ ए ॥ ज्यों नट एक धरे बहु जेष कला प्रगटे जग कौतुक देखे; आपु लखे अपनी करतूति वहे नट जिन्न विलोकत पेखे; त्यों घटमें नट चेतन राउ विजाउ दसा धरि रूप विसेखे; खोलि सुदृष्टि लखे अपनो पद, डुंद विचार दसा नहि लेखे; ॥ १० ॥

अर्थः– जेम कलधोत के० सोनुं तेने सोनी घडीने जूषण बनावेछे. त्यारे ते घाटना संयोगथी लोको तेने जूषण केहेवा लागेछे. पण मूल वस्तु जे कंचन ते कांई जतुं रहुं नथी, केमके, ज्यारे ते घाटने अग्नीमां गाली नाखे त्यारे पाछुं ते सोनुं केवाय, तेम आ जीव जे छे, ते अजीवरूप कर्म पुदगल इत्यादिक बीजा पण पुद्गलना संयोगथी एक कोडी शाडी संताणुं लाख कुल कोडीमां बहुरूपे थयो, तो पण द्विविध नथी थयो, केमके, चेतनता कंई गई नथी; तेमाटे ते स्वरूपमां जीव ब्रह्मज केवाय छे, जेनो विस्तार मोटो तेने ब्रह्म कहीये. ॥ ८ ॥ आत्मानी अनुजति ते सुबुद्धि सखीने कहेछे, हे सखी, जो आ आपणो ईश्वर विराजे छे, अने ए ईश्वरनी दशा सर्व एनेज शोजेछे, एवी विरुद्धता बीजे ठेकाणे न शोजे. लक्षण वडे एकतामां जोईये तो एक रूप छे, अने अपर सत्ताए देखीये तो अनेकरूप छे, अने द्वंद दशामां देखीये एटले अज्ञान दशामां देखीये अने ज्ञान दशामां देखीये तो द्विविध रूप छे, ते द्विविधपणुं कहेछेः– क्यारे तो पोतानुं पद जे पोतानुं स्वरूप तेने संजारीने जुए, अने क्यारेक तो पोताने विसरीने पोते मोहमां पडे. हे सखी, एहिज ईश्वर घटने अंतर व्यापक रूप छे, तेथी जे जे अवस्थामां व्यापे छे. तेवारे ज्ञाननेविषे पण बीजो कोइ नथी अने अज्ञाननेविषे पण बीजो कोइ नथी.॥ए॥ हवे एना उपर दृष्टांत कहेछेः–जेम कोई नट होय ते बहु वेष धरेछे, ने तेते वेषनी कला प्रगट करेछे, त्यारे जगत तेने कुतुहल समजे, पण नट पोते पोतानी क्रिया जाणेछे, ने तेणे धरेला वेषथी पोते जुदोछे, एवुं जाणेछे. तेम घटनेविषे चेतन राजा रूप नट छे, ते विजाव दशा धरीने रूप विशेष करेछे, पण ज्यारे सुदृष्टि खोली जुए त्यारे तो पोतानुं पद उलखे अने द्वंद विचारनी दशाने पोते लेखामां गणे नही. ॥ १० ॥ हवे चेतन नटनी सघली चेतना एक छे, ते कहेछेः–अथ चेतनाउपादेय यह कथनः–

अडिल्ल छंदः– जाके चेतनजाव चिदातम सोइ है; और जाव जो धरे सु औरे

कोइ है ; यों चिनमंमित जाव, उपादे जानते ; त्याग जोग परजाव पराये मानते ॥
अर्थः—जेनेविषे चेतन जाव ठे, तेने चिदात्मा अथवाचिद्रूप कहिये ठे, अने ए चेतनाजावथी बीजो जाव जे धारेठे, तेतो कोई बीजो ठे, एथी चेतना मंमित जे जाव ठे तेतो उपादेय रूप जाणवो, अर्थात् पोतानो करी जाणवो, अने चेतना जावथी जे परजाव ठे, ते सघलो त्यागवा योग्यठे ने तेने पारको करी मानी लेवो॥ ११॥
हवे जे सम्यक् दृष्टि चेतना उपादेय राखीने मोक्ष मार्गना साधक थया तेनी अवस्था कहेठेः— अथ सम्यक्दृष्टि मोठ मारगको साधक कथनः—
सवैया इकतीसाः— जिन्हके सुमति जागी जोगसों जये विरागी, परसंग त्यागी जे पुरुष त्रिजुवनमें; रागादिक जावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन व्हे न रहे धाम धनमें; जे सदीव आपकों विचारै सरवंग सुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापै कब मनमें; तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, जावे रहो मंदिरमें जावे रहो बनमें. ॥ १२ ॥
अर्थः— जेना हृदयामां सुबुद्धि जागी, अने विषय जोगथी जे वैरागी थया, अने जे रागद्वेषादिक परजाव ठे, तेनो सेवना संग के० त्रण लोकनेविषे तेनो त्यागी जे पुरुष ठे, अने जे रागद्वेषादिक जाव पदार्थ ठे ते थकी जेनी रेहेणी न्यारी ठे, तेथी धाम के० घर अने धन तेनेविषे मग्न थई न रहे, अने जे सदा निश्चय दृष्टीए देखीने आत्माने सर्वांग शुद्ध विचारे ठे, तेथी जेना मननेविषे विकलता नही व्यापे, एवी दशा लईने जे जीव रह्या ठे, तेज जीव मोक्ष मार्गना साधक केहेवाय, पठी ते जावे तो मंदिरमां रहे, ने जावे तो वनमां रहे, पण तेनी दशा सर्व स्थानके एकज होय ठे. ॥ १२ ॥
हवे मोक्षगामी जीव विचक्षण पुरुषनी दशा कहेठेः—अथ विचक्षणदशा वर्णनंः—
सवैया तेईसाः— चेतन मंमित अंग अखंमित शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ; राग विरोध विमोह दशा समुझे ज्रम नाटिक पुग्गल केरो ; जोग सँयोग वियोग व्यथा अविलोकि कहे यह कर्मज घेरो ; है जिन्हकों अनुजौ इहि जांति सदा तिन्हिकों परमारथ नेरो. ॥ १३ ॥
अर्थः— जे परमात्मानेविषे दृष्टि देने एवो विचार करे के, जे मारो पदार्थठे, ते चेतन मंमित ठे, अने अखंमित ठे, अठेद्य ठे, अजेद्य ठे, अने शुद्ध ठे, पवित्र ठे, अने एथी जुदी जे राग द्वेषने मोहनी दशा थई रहीठे, तेने तो ज्रमरूप मिथ्याजाल पुदगलनुं नाटक करी समझे ठे, अने पंचेंद्रियना जोगसंयोग ने वियोग एवी बाह्य

त्माने विषे व्यथा अवलोकी ने एवुं कहे के, एतो कर्मनो घेरो छे, कर्मनो उदय छे, एवो अनुभव जेने नित्य रहे, तेने परमार्थरूप मोक्ष ते सदा नेरो के० नजीकछे. १३

हवे जे मोक्षथी दूर ते चोर, ने मोक्षथी निकट ते साहुकार एवुं कहेछेः–

अब चोर तथा साहुकार वर्णनंः–

दोहराः– जो पुमान परधन हरै, सो अपराधी अज्ञ; जो अपनो धन विवहरै, सो धनपति धरमज्ञ. ॥ १४ ॥ परकी संगति जो रचे, बंध बढावे सोइ; जो निजसत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होइ. ॥ १५ ॥

अर्थः–जे पुमान के० पुरुष परधनने हरे, ते अपराधी जीव अज्ञ के० अजाण कहीये, ने जे पोतानाज धननो व्यवहार राखे, ते धनपती कहिये, धर्मज्ञ के० धर्मने जाणनार कहियें. ॥ १४ ॥ तेम जे परवस्तुनी संगतीए राचे ते चोर केहेवाय, ने तेज पोताना बंधने वधारे. अने पोतानी सत्तामां सदाकाल मगन रहे तेज मुक्तरूप थाय. ॥ १५ ॥

हवे वस्तु कोने कहिये अने सत्ता कोने कहियें ते बतावेछेः–अथवस्तुसत्तावर्णनं

दोहराः– उपजे विनसे थिर रहे, यह तो वस्तु वखान; जो मरजादा वस्तुकी, सो सत्ता परवान. ॥ १६ ॥

अर्थः– उत्पत्तिवंत, विनाशवंत, स्थिरतावंत एतो वस्तुनुं वखाण छे, अने जे वस्तुनी मरयादा जे परिमाण ते धर्म ने सत्ता कहीये. ए अनुभव प्रमाण ग्राह्य छे. १६

हवे केवा केवा द्रव्यनी केवी केवी सत्ता छे ते कहेछेः–

अथ सत्ता व्यवस्था वर्ननंः–

सवैया इकतीसा–ः लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश दर्व, धर्म दर्व एक सत्ता लोक परिमिति है; लोक परवान एक सत्ता है अधर्म दर्व, कालके अणु असंख सत्ता अगनिति है; पुदगल शुद्ध परवानकी अनंत सत्ता, जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थिति है; कोउ सत्ता काहुसों न मिले एकमेक होई, सबे असहाय यों अनादिहीकी थिति है. ॥ १७ ॥

अर्थः– आकाश द्रव्यनी मर्यादा लोकालोक लगे एक छे, तेथी आकाश द्रव्यनी एक सत्ता छे, अने धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकप्रमाण एक रूप छे तेथी धर्म द्रव्यनी एक सत्ता छे, अने अधर्मास्तिकाय द्रव्य पण लोक प्रमाण एक रूप छे तेथी अधर्म द्रव्यनी एक सत्ता छे, अने कालना द्रव्यना अणु छे ते लोकाकाश प्रदेश परिमाणे असंख्यात छे, तेथी काल अणुनी असंख्यात सत्ता छे ए कहेवुं दिगंबर संप्रदायनुं

छे, अने योग शास्त्रमां पण कह्युं छे, अने लोकविषे पुद्गलरूपी शुद्ध परमाणुनी पण अनंत सत्ता छे, अने लोकविषे जीव अनंत छे, तेथी जीवनी पण अनंत सत्ता छे, तेथीज जीवाजीवनी जुदी जुदी क्षेत्रावगाहना छे, जे द्रव्यनी जे सत्ता होय ते बीजी कोई द्रव्यनी सत्ता साथे मळे नही, जो एकमेक थई जाय तो सर्व सत्ता असहाय पणे वर्त्ते, माटे एकमेक न थाय एवी अनादि काळनी स्थितिछे. ॥ १७ ॥

हवे चेतन द्रव्यनी सत्तानुं वर्णन करेछेः– अथ चेतन सत्ता वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– एइ छहो द्रव्य इन्हहीको है जगतजाल, तामें पांच जड एक चेतन सुजान है; काहुकी अनंत सत्ता काहुसों न मिले कोई, एक एक सत्ता में अनंत गुन गान है; एक एक सत्तामें अनंत परजाय फिरे, एकमें अनेक इह भांति परवान है; यहे स्यादवाद यहै संतनिकी मरजाद, यहे सुख पोष यहै मोक्षको निदान है. ॥ १८ ॥

अर्थः– ए छए द्रव्ये करी एथीज जगतजाळ वर्त्तेछे, ते छनेविषे पांच द्रव्य जडरूपी छे, ने एक चेतनरूपी द्रव्य छे ते जाणनार छे, अंही पुदगलनी अनंत सत्ता कही, अने जीवनी अनंत सत्ता कही, एवा अनंतपणे करीने कोईनी सत्ता कोई साथे मळे नही, एटले जुदी जुदी अनंत सत्ता छे, अने प्रत्येक सत्तामां अनंत गुणनुं ज्ञान छे. अने एक एक सत्तामां अनंत पर्याय अनंत अवस्था भेदफिरे तेथी जे पूर्वे एकमां अनेक कह्युं ते एरिते छे, स्याद्वाद मतमां ए वात प्रमाण छे, अने सतपुरुषना वचननी पण एज मरियादा छे, तथा एज मत सुखनुं पोषण करनार छे, अने मोक्षनुं निदान एटले मूळ कारण छे. ॥ १८ ॥

हवे ए वचन थकी जे वस्तुनो धर्म ग्रह्यो जाय तेज सत्ताधर्म कहीये तेथी एक जीव द्रव्यनी सत्ता कहेछेः– अथ एक जीव द्रव्यसत्ता वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– साधि दधि मंथनि अराधि रसपंथनिमें, जहां तहां ग्रंथनिमें सत्ताहीको सोर है; ज्ञान भानु सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें सत्ताकी दुरनि सांझि सत्तामुख भोर है; सत्ताको सरूप मोख सत्ता भूलै यहै दोष, सत्ताके उलंघे धूम धाम चिहू ओर है; सत्ताकी समाधिमें विराजि रहे सोई साहु. सत्तातें निकसि और गहे सोई चोर है. ॥ १९ ॥

अर्थः–जे वस्तुनेविषे छती देखाय,जेम दहीना मंथनमां घीनी सत्ता साधिये,जे औषधमां मधुर रस छे, तो तेथी वस्तु नीपजे छे, माटे रस मार्गमां सत्ताविना सिद्ध नथी जे वस्तुमां छतापणुंछे तेने सत्ता कहियें,शास्त्रमां ज्यां त्यां ग्रंथोनेविषे सत्तानोजसोरके०

शब्दछे ज्ञान रूपी जानुनो उदय जीवनी सत्तामां निपजे, वली सुधा के० अमृत ते पण सत्तामांज पामिये, निधान पण सत्तामांज पामिये जे सत्तानुं छुरनि के० छुपाववुं ते संध्या रूपछे, अने जे सत्तानी मुख्यताछे तेज जोर के० प्रजात रूपछे. जीवनी सत्तानुं जे स्वरूप छे तेज मोक्ष छे, अने सत्ताने जुली जवुं एज दोषरूप छे. सत्तानुं उलंघन करवाथी चीहोउर के० चारे तरफ धामधुम नीपजे, जे पोतानी सत्ता सद्भूतपणुंछे, तेमां बिराजमान थई रहे तेने साहुकार कहिये. अने जे पोतानी सत्ताथी नीकलीने अन्यनी सत्ताने ग्रहे तेने चोर कहीये. ॥ १९ ॥

हवे सत्तानी समाधिनुं वर्णन करेछेः—अथ समाधि वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः— जामें लोक वेद नांहि थापना उछेद नांहि पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नाहि करनी; जामें राग दोष नांहि जामें बंध मोष नांहि, जामें प्रजु दास न आकास नाहि धरनी; जामें कुलरीत नांहि जामें हारजीत नांहि जामें गुरु शिख नांहि विष नांहि जरनी; आश्रम वरन नांहि काहुकी सरनि नांहि ऐसी सुद्ध सत्ताकी समाधि जूमि वरनी. ॥ २० ॥

अर्थः— जेमां लौकिक वेदवुं नथी, अने जेमां स्थापनानो उछेद नथी, जेमां पाप पुन्यनो खेद नथी, जेमां कोई क्रिया करणी नथी, जेमां राग द्वेष नथी, जेमां बंध मोक्ष नथी, जेमां प्रजुताने दासपणुं नथी, जेमां आकाश अने धरती नथी, जेमां कुलनी रीत नथी, जेमां हारने जीत नथी, जेमां गुरु अने शिष्य नथी, जेमां विष जरनी एटले चालवुं हालवुं नथी, जेमां कोई आश्रम व्यवहार नथी, तथा वर्ण व्यवहार नथी, जे कोईनी शरण रूप नथी. एवी शुद्ध सत्तानी जुमी ते समाधिरूप वरणवी छे. एटले स्वरूपनी शुद्ध समाधिने विषेज शुद्ध सत्ता पामीये. २०

हवे मिथ्यादृष्टिने चोर अने अपराधी कही देखडावेछेः—

अथ मिथ्यादृष्टि अपराधि यह कथनः—

दोहराः— जाके घट समता नही, ममता मगन सदीव; रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥ २१ ॥ अपराधी मिथ्यामती, निरदै हिरदै अंध; परकों माने आतमा, करे करमको बंध ॥ २२ ॥ फूठी करनी आचरे, फूठे सुखकी आस; फूठी जगती हिय धरे, फूठो प्रजुको दास ॥ २३ ॥

अर्थः— जेने केवल जाणपणुं जे समताने समाधि ते नथी. अने जे सदा परवस्तुनी ममताविषे मगन थई रहे, ने निज घट अथवा स्वरूपनेविषे रमी रह्यो एवो जे आत्मराम तेने जेणे जाण्यो नथी तेनेज अपराधी चोर जीव कहीये॥२१॥

अर्थः– जे पर वस्तु ज्ञेय ते अपराधी ने तेज मिथ्यामति, तेज निरदय ने तेज हैयानो अंध कहिये, एटले जे पररूप पुद्गलने आत्मा माने ते कर्मनो बंध करेछे २२
जांहांसुधी पोतानी वस्तुने न जाणे त्यांसुधी तो जे क्रिया आचरे ते सर्व कूडी छे, अने तेने जे मोक्ष सुखनी आशा छे, ते सर्व कूडी छे. पोताना प्रभु जाण्या विनानी जे भक्ति हियामां धरे छे, ते सर्व कूडी जाणवी, अने परमेश्वरने ओलख्याविना दासपणुं राखवुं ते पण सघलुं कूडुं छे ॥ २३ ॥

हवे मूढ लोकना कूडपणानी व्यवस्था कहे छेः– अथ मूढ व्यवस्था यथाः–

सवैया इकतीसाः– माटी भूमी सैलकी सु संपदा बखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है; अपनोन रूप गहे औरहीसों आपु कहे, साता तो समाधि जाके असाता कहर है; कोपको कृपान लिये मान मदपान किये, मायाकी मरोरि हिये लोभकी लहर है. याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसों, साचसों विमुख भयो झूठमें बहर है ॥ २४ ॥ तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको भहर है; तासों कहै यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरोई परोई मेरोई पहर है; षेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरो गेह, जहां वसे तासों कहे मेरोई सहर है; याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतिसों, साचसों विमुख भयो झूठमें बहर है ॥ २५ ॥

अर्थः– सात धातु जे छे पहाडनी धरतीनी माटी जेवी छे, तेने संपत्ति करी वखाणे छे. पोतानी अशुद्ध क्रियामां अमृत जाणे छे, अने ज्ञानमां झेर समजे छे, एटले क्रिया थकी सिद्धि जाणे, ने ज्ञान थकी नही जाणे. जे पोतानुं चिदानंद स्वरूप छे. तेने ग्रहे नही, पण शरीरादिक जे छे तेने आत्मारूप जाणेछे. अने जे साता वेदनीय उपजे छे. तेने तो समाधि करी जाणे छे, असाता वेदनीयने कहर के० उपद्रव माने छे, कोपनुं कृपान जे खड्ग ते लईने रहे छे, मान ने अहंकार रूप मद पीइने रहेछे, हैयानेविषे मायानो मरोड राखेछे, लोभनी फेर खाया करे छे, एवी रीते अचेतननी संगती थकी एटले जड पुद्गलनी संगतीथी साच थकी विमुख थयोछे, ने झूठमां बहर हे के० तत्पर थई रह्योछे, ॥२४॥ अर्थ स्पष्ट. २५

हवे सम्यक् दृष्टि साहुकारनी व्यवस्था कहे छेः– अथ सम्यक्दृष्टि व्यवस्थाकथनः–

दोहराः– जिन्हके मिथ्या मति नही, ज्ञान कला घटमांहि; परचे आतम रामसों, ते अपराधी नांहि ॥ २६ ॥

अर्थः— जेनी मिथ्यामति नाश पामीने घटनेविषे ज्ञान कला प्रगटी छे, जेणे आत्मारामने उलख्यो छे, ते लोक अपराधी नथी साहुकार छे ॥ २६ ॥

हवे ज्ञानीनी व्यवस्था कहे छेः— अथ ज्ञानी यथाः—

सवैया इकतीसाः— जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसे मोह विभ्रम विरष तीन्यो वढे हैं; जिन्हकी चितौनि आगे उदे स्वान भूसि भागे लागे न करमरज ज्ञान गज चढे हैं; जिन्हिकी समुझिकी तरंग अंग आगममें, आगममें निपुन अध्यातममें कढे हैं; तेई परमारथी पुनित नर आठों जाम, राम रस गाढ करे यहै पाढ पढे हैं ॥२७॥ जिन्हकी चिहुंटी चिमटासी गुन चूंनबेकों कुकथाके सुनबेकों दोउ कान मढे हैं; जिन्हको सरल चित कोमल वचन बोले, सोम दृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढे हैं; जिन्हिके सगति जगि अलख अराधिबेकों परम समाधि साधिबेगो मन बढे हैं; तेई परमारथी पुनित नर आठों जाम, राम रस गाढ करे यहे पाढ पढे हैं २८

अर्थः— जेना हैयामां धर्म ध्यानरूप पावक के० अग्नि प्रगट थयो, तेथी संशय मोह अने विभ्रम ए त्रणे वृक्षरूप छे, ते वढे के० बली गया छे, जेनी चितोनी के० ज्ञानदृष्टि आगल उदयरूप कुतरो भसीने भागी जाय छे, अने ज्ञानरूपी गजराज उपर चढी रहेछे, तेथी कर्मरूप रज लागती नथी, बीजानुं जे आगम अंग छे, तेमां जेनी समजना तरंग उठी रह्या छे एवा आगम के० जैन वाणीमां निपुण थयो, अने अध्यात्म ज्ञानमां पूर्ण थयो छे, तेनेज सम्यक्दृष्टि कहियें, परमार्थने पामनार पुनित के० पवित्र रूप थयो जाणवो. आत्मारामना अनुभव रसमां आठे प्रहर गढे के० संपूर्ण मग्न थई, एज पाठ पढे छे, एटले भणे छे. ॥ २७ ॥ वली जेम चीमटी के० हाथनी चिमटी अथवा चिपीयो तेवडे कई नानी वस्तुने पकडी लइये छइये, तेम पारका गुण चुंटी लेवाने जेनी एवी चपटी छे, अने विकथा सांभलवाने जे बने कानने बंध करी राखे छे, जेनुं चित्त सरल ने निष्कपटी छे, जे निरहंकारीपणे कोमल वचन बोले छे काम क्रोधादिक विकारविना सौम्य दृष्टी राखे छे, वली जे मोम केसेगढेहे के० मीणना घडाजेवुं हृदय कोमल राखे छे, अने पोताना अलख समाधि स्वरूपने साधवाने जेनी सुमति जागी छे, अयोगी अवस्थामां जेनी परम समाधि थई छे, तेने साधवाने जेनो मन वध्यो छे तेज सम्यक दृष्टि परमार्थना पामनार पुनीत के० पवित्र रूप थई रह्या छे, ने तेज आत्मारामना अनुभव रसमां आठे पहोर दृढ मग्न थई एज पाठ पढे छे. ॥ २८ ॥

हवे समाधिनुं स्वरूप कहे छेः-- अथ समाधि वर्णनंः-

दोहराः- राम रसिक अरु रामरस, कहन सुननकों दोइ; जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहि कोइ. ॥२९॥ नंदन वंदन थुति करन, श्रवन चिंतवन जाप; पढन पढावन उपदिसन, बहुविध क्रिया कलाप. ॥ ३० ॥ शुद्धातम अनुभौ जहां, सुभाचार तिहि नांहि; करम करम मारगविषे, शिव मारग शिवमांहि. ॥ ३१ ॥

अर्थः- आत्माराम जे छे ते रसिक के० रस भोक्ता छे, अने राम के० रमवुं ते रसरूप छे, केवांने सांभलवाने रसिकने रस बेउ छे, पण जेवारें एनेविषे समाधि प्रगट थाय छे त्यारे बे पणुं नथी रेतुं. त्यारे तो रसिक अने रस ए बे एकज वस्तछे ॥२९॥राम के० रसिक अवस्था धारतो एटली क्रिया करे छे के, नंदन के० आनंद पामे छे, वंदन के० प्रणाम करे, थुती के० भात भातना गुणनी स्तुती करे छे, अने एवाज गुण सांभली एनुंज चिंतवन करे, एनोज जाप जपे छे, भणे भणावे उपदेशे, एवी रीतें रसिक अवस्थामां भात भातना क्रिया कलाप छे ॥ ३० ॥

पूर्वे कही जे क्रिया तेने करतां करतां जहां शुद्ध आत्मानो अनुभव थाय तहां शुभाचार छुटीजाय, कृत कृत्यपणे ते अयोगी दशामां छे, कर्म जे छे ते कर्म मार्गमांज रहे, एटले संसार मार्गनेविषेज रहे, शुभ कर्म पण संसार मार्गमां छे अने शिव मार्ग ते शिवमांहे एटले शुद्ध आत्माने विषेज छे. ॥ ३१ ॥

चोपाईः- इहि विध वस्तु व्यवस्था जैसी, कही जिनिंद कही में तैसी; जे प्रमाद संयति मुनि राजा, तिन्हिको शुभाचारसों काजा. ॥ ३२ ॥ जहां प्रमाद दसा नहिं व्यापे; तहाँ अवलंब आपनो आपे, ता कारन प्रमाद उतपाती, प्रगट मोक्ष मारगको घाती. ॥ ३३ ॥ जे प्रमाद संयुक्त गुसांई; उठहि गिरहि गिडुककी नांई, जे प्रमाद तजि उद्धत होही; तिन्हिको मोष निकट द्रग सोही. ॥ ३४ ॥ घटमें है प्रमाद जबतांई, पराधीन प्रानी तबतांई; जब प्रमादकी प्रभुता नासै तब प्रधान अनुभो परगासे. ॥ ३५ ॥

अर्थः- ए रीते श्री जिनेंद्र देवे वस्तुनी व्यवस्था कही छे, ने तेवीज आज्ञा प्रमाणथी में पण कही छे, अने जे मुनिराज प्रमाद दशामां छे, तेने तो शुभाचार एटले शुभ क्रियानुं आलंबन लीधाथीज कार्य सिद्धि थाय ॥ ३२ ॥

अने जे मुनिराजने आत्माना अधिक वीर्यांशने लीधे प्रमाद दशा न व्यापे त्यां पोतानुं आलंबन पोते लिये, तेमाटे प्रमाद तो उतपाती छे, अने प्रगट रीते मोक्ष मार्गनो घात करनार छे, अने अंतरायनो करनार छे. ॥ ३३ ॥

गुसांई देशी नाषानो शब्द छे, एनो अर्थ मुनिराज थाय छे, जे मुनिराज प्रमाद संयुक्त छे, ते तो गिडुक के० दडानी रीते उठे छे, ने पडे छे, पण स्वस्थताने पामे नही अने जे प्रमाद छोडीने अप्रमादपणे उठीने उना रहे छे, तेने पोतानी दृष्टी नजीक मोक्ष छे. ॥ ३४ ॥ ज्यांहां सुधी घटमां प्रमाद छे, त्यांसुधी ते पराधीन छे, अने ज्यारे आत्मानी शक्ती जागे छे, त्यारे प्रमादनी प्रजुता नाश पामे छे, त्यारे तो पोताना प्रधान अनुजवनो प्रकाश थाय छे. ॥ ३५ ॥

दोहराः— ता कारन जग पंथ इत, उत शिव मारग जोर ; परमादी जगकों ढूके, अपरमाद सिव ओर ॥ ३६ ॥ जे परमादी आलसी, जिनके विकलप जूरि ; होहि सिथिल अनुजौ विषे, तिन्हिको सिवपथ दूरि ॥ ३७ ॥ जे अविकलपी अनुजवी, शुद्ध चेतना युक्त ; ते मुनिवर लघु कालमें, होहि करमसों मुक्त ॥ ३८ ॥ जे परमादी आलसी, ते अजिमानी जीव ; जे अविकलपी अनुजवी, ते समरसी सदीव॥३९॥

अर्थः— तेमाटे जगतनो मार्ग प्रमादीनी तरफ छे, अने अप्रमादीनी तरफ मोक्ष मार्ग छे, केमके, जे प्रमादी होय ते जगतने जुए अने अप्रमादी मुक्ती तरफ जुए छे ॥ ३६ ॥ जे प्रमादी छे, ते आलशी छे. तेने जूरि के० घणा विकल्प उठे छे, अने पोताना अनुजवमां तेने शिथिलपणुं रहे छे, अने तेने मुक्ति मार्गरूप स्वरूपाचरण दूर छे ॥ ३७ ॥ अने जे विकल्पविना अनुजवमां वसे छे, ने शुद्ध चेतना युक्त छे, ते मुनीश्वर थोडा कालमां कर्मथी मुक्त थाय छे ॥ ३८ ॥ जे प्रमादी अने आलशी छे. तेने अहंबुद्धिथी अजिमानी कहियें. ने जे विकल्प रहित पोताना अनुजवमां छे, तेने तो सदाय समरसी कहियें ॥ ३९ ॥

हवे अजिमानी तथा ज्ञानीनी अवस्था उपर दृष्टांत आपेछेः—

अथ अजिमानी तथा ज्ञानी व्यवस्था कथनः—

कवित्त छंदः—जैसें पुरुष लखे पहार अढि, जूचर पुरुष तांहि लघु लग्ग ; जूचर पुरुष लखे ताकों लघु, उतर मिले दुहुको ज्रम जग्ग, तैसें अजिमानी उन्नतगल, और जीवकों लघुपद दग्ग ; अजिमानीकों कहे तुछ सब, ज्ञान जगे समतारसजग्ग॥४०॥

अर्थः— जेम कोई माणस पहाड उपर चड्यो होय तेने जूचर के० तलोटीपरना माणसो न्हानोछे एम जुए, अने तलोटी वाला माणसने पहाड उपर चडेलो न्हानो जुए, अने पछी पहाड उपर चडेलो हेठे उतरी तलोटी वालाने मले त्यारे बेउनो ज्रम नाना पणानो दूर थाय, तेम अजिमानी पुरुष उंची गरदन राखनारो अन्य जीवने नाना जुए, तुछ जाणे, अने बीजा पुरुषो ते अजिमानी पुरुषने तुछ जाणे,

एम अरपरस विचारमां विषमता रहे छे. ते ज्यारे ज्ञान जागे त्यारे बेउना मनमां विषमता मटीने समपणुं आवी जाय ॥ ४० ॥

हवे एकला अभिमानीनी व्यवस्था कहे छे:— अथ अभिमानी यथा:—

सवैया इकतीसा:— करमके भारी समुझे न गुनको मरम, परम अनीति अधरम रीति गहे है; होहि न नरम चितगरम घरमहुते, चरमकी दृष्टिसों भरम भूली रहै है; आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर नाएहू न मोले मानो पाथरके चहे है; देखनके हाउ भव पंथके बटाउ ऐसें, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे हैं. ४१

अर्थ:—जे करम बंधथी अती भारी छे. द्वेषने गुण जाणेछे, पण गुणनो मर्म जाणतो नथी. अने परम अन्याय तथा अधर्मनी रीत ग्रही राखेछे. चित्तनेविषे नरमास तथा दया परिणाम नथी. द्वेषनो अती घर्म ताप छे, तेथी गरम रहेछे, ज्ञान दृष्टी नथी अने चर्मरूप दृष्टीवडे भरममां भूल्यो फरे छे. कोई विकट आसन बांधे तेने खोले नही, ने मोढेथी वचन बोले नही, मौन व्रती रहे, तेने ज्ञानी महा पुरुष जाणीने कोई माथुं नमावे, तो तेनो सत्कार ने अंग चेष्टा पण न करे, जाणियें पथर थवानीज इछा करतो होय नीवली जेम बालकने भरावववाने हाउ कहीये छइये तेम लोकोने भरावववाने वेष धरी हाउ बनीने बेसे, अने भव भ्रमणना मार्गमां वटाउना सरखो चाले, एरीते माया जालना खाटनारा अभिमानी जीवने उलखीये ॥ ४१ ॥

हवे ज्ञानी जीवनी व्यवस्था कहे छे:— अथ ज्ञानी यथा:—

सवैया इकतीसा:— धीरके धरैया भवनीरके तरैया भयभीरके हरैया वर वीर ज्यों उमहे हैं; मारके मरैया सुवीचारके करैया सुख ढारके ढरैया गुनलोसों लह लहे हैं; रूपके रीझैया सबनैके समुझैया सबहीके लघुनैया सबके कुबोल सहेहैं वामके वमैया दुखदामके दमैया ऐसे रामके रमैया नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥ ४२॥

अर्थ:—धीरजने धरनार, संसार सागरने तरनार, भवभीडने हरनार, मोटा सूरवीरनी परे पोताने साह्य आपवाने उमंगी रह्याछे, कंदर्पने मारनार, भला विचारनुं करनार, सुख समाधिना ढालामां ढलनार, आत्माना गुणनो लव एटले अंस तेमां लहलहि रह्या छे, आत्मरूपना रीझवनार, सर्व नयना सारनो रस समझनार, निरहंकारी पणे सर्वना नाना भाई थई रह्याछे. क्षमावंतपणे सर्वना दुष्ट वचन सहेछे. वाम के० स्त्रीने वमैया के० छोडनार, दुःखनो परंपराना दमनार, एवा आत्मारामने विषे रमनारा मनुष्यने ज्ञानी जीव कहीये ॥ ४२ ॥

हवे शुद्धात्मना अनुनवनी प्रशंसा करेछेः—अथ शुद्धात्म अनुनव प्रसंसाः—

चोपाईः— जे समकिती जीव समचेती; तिन्हिको कथा कहों तुमसेती; जहां प्रमाद क्रिया नहि कोई; निर्विकल्प अनुनौ पद सोई.॥४३॥ परग्रिह त्याग जोग थिर तीनो; करम बंध नहि होइ नवीनो; जहां न राग दोष रस मोहे; प्रगट मोषमारग मुख सोहे. ॥ ४४ ॥ पूरव बंध उदे नहि व्यापे, जहां न नेद पुन्न अरु पापे; दरब नाव गुन निर्मल धारा, बोधविधान विविध विस्तारा. ॥ ४५ ॥ जिन्हिके सहज अवस्था ऐसी; तिन्हिके हिरदे डुविधा केसी; जे मुनिषिपक श्रेणि चढि धाये; ते केवलि नगवान कहाये. ॥४६॥ दोहराः— इहिविधि जे पूरन नये, अष्ट करम वनदाहि; तिन्हिकी महिमा जो लखे, नमे बनारसि ताहि.॥ ४७ ॥

अर्थः— जे समकिती जीव छे ते समचेती के० वीतरागपणे समतावंत छे. अहो नव्य प्राणी. तेनी कथा हुं तमने कहुंछुं. जांहां कोई प्रमादनी क्रिया नथी, तेने निर्विकार निर्विकल्प अनुनव पद कहीये, एटले अनुनवमां विकल्प नथी. ॥४३॥ जहां परिग्रहनो त्याग छे, अने त्रणे जोग स्थिर छे, त्यां नवीन कर्मनो बंध नथी थतो, वली जहां जीवने राग द्वेष रस मोह नथी, तेज प्रगटपणे मोक्ष मार्गनुं मुख के० प्रारंन छे. ॥४४ ॥ वली जहां पुर्वे जे कर्मबंध छे, तेनो उदय नथी, अने जांहां पुन्य पापना नेदनो विचार नथी, अने जांहां साधुना सतावीस गुण द्रव्यपणे नावपणे निर्मल धाराये वही रह्या छे, वली जांहां बोधविधान के० ज्ञानना प्रकार नात नातना विस्तारमां छे. ॥४५॥ जेनी एवी सहज अवस्था थई होय तेना हृदयमां आत्म ओलखवानी डुविधा केम रहे! अने एज अवस्थामां जे मुनिराज क्षपक श्रेणी चढी उर्ध्वे मुख धाये तेतो केवली नगवंत जाणवा. ॥ ४६ ॥

अर्थः— ए रीते करी अष्ट कर्मरूप वनने बालीने पूर्ण आत्मारूपमां जे थयाछे अने तेना महिमाने जे सत् पुरुष होय तेहिज जुएछे, एटले सत्य पणे जाणेछे तेने वणारसीदास नमस्कार करेछे. ॥ ४७ ॥

हवे मोक्ष पदार्थनी उत्पत्तिनो क्रम कहेछेः— अथ मोक्ष उत्पत्ति वर्ननंः—

छप्पय छंदः—नयो शुद्ध अंकूर, गयो मिथ्यात् मूर नशि; क्रमक्रम होत उदोत, सहज जिम शुक्लपक्ष शशि; केवल रूप प्रकासि, नासि सुख रासि धरम ध्रुव; करि पूरन थिति आउ, त्यागि गतनाव परम हुव; इह विधि अनन्य प्रजुता धरत, प्रगटि बूंद सागर नयो; अविचल अखंड अनजय अखय, जीव दरब जगमहि जयो. ॥४८॥

अर्थः—शुद्धतानो अंकुर प्रगट थतां मिथ्यात मूलथी नाश पाम्युं, तेथारे जेम अ

जवालीया परववाडीयामां चंद्रमां क्रमे क्रमे उद्योतवंत थायछे, एरीते आत्मापण क्रमे क्रमे उद्योत थतां केवल ज्ञान रूपनो प्रकाश थाय, अने आत्मानो निश्चल ध्रुव धर्म सुख समुद्र ते जासे, ते पछी आयुष्य कर्मनी स्थिती पूर्ण करीने अने मनुष्य गतिनो नाव छोडीने परमात्मारूपें थाय, एरीते अनन्य प्रभुता एटले सर्वथी श्रेष्ट ता धारण करे, कोनी पेठे तो जेम पाणीनी बुंद बुंद एकठी मली समुद्र थायछे तेम आत्मा गुणना अंस क्रमे क्रमे प्रगट करतो पूर्ण थयो, ते पछी अविचल अ खंम अजय ने अक्षय एवुं जीव द्रव्य जगतनेविषे सदा जयवंत थायछे. ॥ ४८ ॥

हवे अष्ट कर्मनो नाश थयेथी जे आत्माना सहज आठ गुण प्रगट थायछे ते कहेछेः– अथ अष्ट कर्म नाशतें अष्ट गुन प्रकाश वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– ज्ञानावरनीके गये जानिये जु है सु सब, दंसनावरनके गयेतें सब देखिये; वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चा रित्त विसेखिये; आउ कर्म गये अवगाहन अटल होइ. नाम कर्म गयेते अमूरती क पेखिये; अगुरुलघुरूप होई गोत कर्म गये, अंतराय गयेतें अनंत बल लेखियें. ४९

अर्थः–ज्ञानावरणीय कर्म नाश थता लोकालोकमांजे वस्तु छे, ते सर्व जणाय, एटले, केवल ज्ञान प्रकाश थाय, अने दर्शनावरणीय कर्मनो क्षय थवाथी लोकालोकना नाव ने सामान्यपणे जोईये, एटले केवल दर्शनगुण प्रगट थाय, अने वेदनीय कर्मना क्षय थी निराबाध रस उपजे एटले आत्मा बाधपणाथी मुक्त थाय, ते अबाधपणे अनं त सुखरूप गुण उपजे, वली मोहनीय कर्मनो नाश थयेथी विशेषपणे शुद्ध चारित्र प्रगट थाय, एटले यथाख्यात चारित्र स्पष्ट गुण होय, आयु कर्मनाश थयेथी अव गाहनानी सादि अनंत स्थिति थाय, (आयुकर्मगते निश्चला स्थिनिर्जवति) नाम कर्म नाश थयेथी अमूर्त्तिकपणुं जीवनुं शुद्ध स्वरूप उपजे, गोत्र कर्मनो क्षय थयेथी अगुरुलघु गुण उपजे, जेथी जीवमां लघुपणु तथा गुरुपणु न होय, अने अंतराय कर्मनो नाश थयेथी अनंत बल उपजे, एटले अनंत वीर्यपणानो गुण उपजे छे. ए आठ गुण उपजे. ॥ ४९ ॥

इति श्री नाटक समयसारनो बालबोधरूप नवमो मोक्ष द्वार समाप्तः

दोहराः– इति श्रि नाटिक ग्रथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार; अब बरनों संक्षेपसों, सरव विशुद्धीद्वार. ॥ ५० ॥

अर्थः– इति के० संपूर्ण नाटक समये सारविषे मोक्ष द्वारनो अर्थ कह्यो ने हवे दसमुं संक्षेपथी सर्व विशुद्धि द्वारनुं वर्णन करुं छुं ॥ ५० ॥

हवे अंही सर्व उपाधि रहित शुद्ध आत्म स्वरूपनुं वर्नन करे छेः–

सवैया इकतीसाः– करमको करता है भोगनिको भोगता है, जाकी प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है; जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नांहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है; ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है सुभाउ जाको, लोक व्यापी लोकातीत लोकमें महित है; शुद्ध वंस शुद्ध चेतनाके रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥ ५१ ॥ दोहराः– जो निहचे निरमल सदा, आदि मध्य अरु अंत; सो चिद्रूप बनारसी, जगतमांहि जयवंत ॥ ५२ ॥

अर्थः– कर्मनुं कर्त्तापणुं अने सुखदुःखनुं भोगतापणुं एवुं जे लोक व्यवहारमां केवाय छे. ते जेनी प्रभुतामां ईश्वरताई छे. तेमां अहितकारी छे. वली जेनी प्रभुतामां एकेंद्रिय प्रमुख पांच भेदनुं केवुं ते पण अहितकारी छे, सत्य नथी. केमके जे सदा निर्दोष छे, तेना निश्चय स्वभावमां बंध नथी. अने मोक्ष पण नथी, एवो बंध मोक्ष रहित छे. त्यारे ए द्रव्य शुं छे, एवो प्रश्न उठे तेनो खुलासो करे छे के, ए ज्ञाननो समूह जे पुंजतेरूप छे. जेनो स्वभाव ज्ञान गम्य छे, ज्ञान वडे जाणवामां आवे एवो छे, लोकमां सघले स्थले व्यापी रह्यो छे, लोकातीत के० क्षेत्र लोकथी जुदो छे ने लोकमां महित के० पूजनीक उपादेय छे, अनादि कालनो एवोज चाल्यो आवेछे तेथी जेनो शुद्ध अवतंश छे अने शुद्ध चेतनाना रस प्रदेशथी भरपूर छे, एवा जे हंस छे ते परम पुनीतता सहित एटले उत्कृष्ट शुद्धता सहित छे ॥५१॥ जे निश्चय स्वरूपमां सदा निर्मल छे, आदि मध्यने अंत्य अवस्थाने विषे एक रूप छे, ने तेज चिद्रूप छे. तेनी वणारसी स्तुती करेछे के एवा भगवान जगतमां जयवंत थाओ.५२

हवे जीवनुं अभोक्ता पणुने अकर्त्ता पणुं ठरावे छेः– अथ जीव अकर्त्ता वर्ननंः–

चोपाईः– जीव करम करता नहि ऐसो; रस भोगता सुभाउ न जैसो; मिथ्यामतिसों करता होई; गये अज्ञान अकरता सोई ॥ ५३ ॥

अर्थः--जेम जीवने कर्मनो कर्त्ता न कहियें तेम रसनो भोक्ता पण न कहियें; जीव ज्यांसुधी मिथ्यामति वालो छे, त्यांसुधी तो कर्त्तापणुं केवतमा साचो छे. पण ज्यारे ए अज्ञान जायछे. त्यारे जीव अकर्त्तापणे छे एवु स्पष्ट जणाय छे. ॥५३॥

हवे आत्मानो शुद्ध स्वभाव तथा विभावनुं वर्णनः–अथ स्वभाव विभाव वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– निहचे निहारत सुभाउ जाहि आतमाको, आतमीक धर

स परम परगासना; अतीत अनागत वरतमान काल जाको, केवल सरूप गुन लोकालोक नासना; सोई जीव संसार अवस्थामांहि करमको, करतासो दीसे लिये जरम उपासना; यहे महा मोहके पसार यहे मिथ्याचार, यहे नौ विकार यहे व्यवहार वासना ॥ ५४ ॥

अर्थः– निश्चय दृष्टिए जोतां जे आत्मानो आत्मिक धर्म परम प्रकाशरूप सदा स्वजाव छे. एटले निश्चेनयथी अतीत अनागत तथा वर्त्तमान कालमां लोकालोक जासनानो करनार केवल स्वरूप गुण छे. तेज आत्मा संसार अवस्थानेविषे ज्रम उपासनावडे एटले मिथ्यात अज्ञानीनी सेवाने लीधे कर्मना कर्त्तानी पठे देखाय छे. एम मिथ्यातनी सेवामां जे रेवुं ते मोहनो पसार छे, एज मिथ्याचार छे जीवने जव ज्रमणनो एज विकार छे. तथा एज व्यवहार वासना छे ॥ ५४ ॥

हवे जीवनी अजोक्ता अवस्थानुं वर्णन करेछेः–अथ जीव अजोक्ता वर्ननंः–

चोपाईः– जथा जीव करता न कहावै; तथा जोगता नाउ न पावै; है जोगी मिथ्यामति मांही; मिथ्यामती गयेतें ते नाही. ॥ ५५ ॥

अर्थः– जेम जीव कर्त्ता नथी तेम जोक्ता पण नथी, मात्र मिथ्यातमां कर्त्ता जीव छे, ने जोक्ता पण जीव छे, पण मिथ्यात नाश थाय त्यारे जीव कर्त्ता अने जोक्ता नाम धरावतो नथी. ॥ ५५ ॥

हवे नय स्वरूपमां जोक्ता अजोक्ता पणाना लक्षण बतावेछेः–

अथ जोगतापना अजोगतापनाको लक्षनः–

सवैया इकतीसाः– जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धी, सोतो विषे जोग निको जोगता कहायो है; समकिती जीव जोग जोगसों उदासी तातें सहज अजोगता गरंथनिमे गायो है; याही जाति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बुध, परजाउ त्यागि अपनो सुजाउ आयो है; निरविकलप निरुपाधि आतमा अराधि, साधि जोग जुगति समाधिमें समायो है. ॥ ५६ ॥

अर्थः– जगतवासी जे अज्ञानी छे, त्रणे कालविषे परजाय बुद्धि छे, एटले द्रव्यबुद्धि नथी, ने हुं सुखी हुं दुःखी एवी पर्याय बुद्धि करेछे, पण जिन्नपणे शुद्ध आत्म द्रव्यने नही जाणे, एवो अज्ञानी जीव तो विषय जोगनो जोक्ता केवायछे, अने समकिती जीव मनवचनने कायाना योगथी तथा विषय जोगथी उदासीपणे रहेछे,अने शुद्ध आत्म द्रव्यना अनुजवमां मग्न छे, तेथी समकितीने शास्त्रमां सहज अजोक्तापणे गायलो छे, एरीते पंमित छे ते वस्तुनी व्यवस्था अवधारीने ए

टळे वस्तुनो स्वनाव विचारीने परनावने त्यागीने पोताना सहज स्वनावमां आवे छे, तेथी सुखी दुःखी इत्यादि विकल्पविना कर्म संयोगरूप उपाधिविना, एवा आत्माने आराधीने ज्ञान दर्शन चारित्ररूप जोगनी जुगति साधी समाधि एटले सहज स्वरूपमां समायछे. ॥ ५६ ॥

हवे अनोक्ता जीवनी अवस्थानुं वर्णन करेछेः—अथ जीव अनोक्ता वर्ननंः—

सवैया इकतीसाः— चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुन, रतन नंमारि अपहारी कर्म रोगको; प्यारो पंमितनिको हुस्यारो मोख मारगमें न्यारो पुदगलसों उजियारो उपयोगको; जाने निजपर तत्त रहे जगमें विरत्त गहे न ममत्त मन वच काय जोगको; ता कारन ज्ञानी ज्ञानावरनादि करमको, करता न होइ नोगता न होइ नोगको. ॥ ५७ ॥ दोहराः— निरनिलाष करनी करे, नोग अरुचि घट मांहि; तातें साधक सिद्ध सम, करता नुगता नांहि. ॥ ५८ ॥

अर्थः— चेतना चिन्हनो धरनार, निश्चल स्वनाव ज्ञातापणुं तेनो अधिकारी, ज्ञानादिक गुणरूप रत्नना नंमारनो नंमारी छे, कर्मरूप रोगनो विनाश करनार, पंमितनो प्यारो एटले तत्व ज्ञानीने वल्लन, मोक्षमार्गमां हुशीयार के० सावधान, पुजलिक धर्मथी जुदो रेनार, मतिश्रुत प्रमुख उपयोगनुं अजवाळुं जेना हृदयमां थयुंछे, पोताना अने परका सर्व तत्वनो जाणनार, जगतमां विरक्तपणे रेनार, एटले वैरागी, मन वचन ने कायाना योगनी ममता नही राखनार माटे ज्ञानी जीव ज्ञानावरणी प्रमुख कर्मनो कर्त्तापण नथी, अने दुःख सुखना नोगनो नोक्तापण नथी. ॥ ५७ ॥ इछाविना क्रिया करवी, अने घटपिंममां नोगनी रुची नही राखवी, तेथी मुक्तिनो साधक पुरुष सिद्ध समान कह्यो, अने ते कर्त्ता तथा नोक्ता नथी. ॥५८॥

हवे अहंबुद्धि थकी कर्त्तापणु थायछे ते कहेछेः— अथ अहंबुद्धि वर्ननंः—

कवित्तछंदः— ज्यों हिय अंध विकल मिथ्यात धर मृषा सकल विकलप उपजावत; गहि एकंत पछ आतमको, करता मानि अधोमुख धावत; त्यों जिनमती दरब चारित कर, करनी करि करतार कहावत; वंछित मुक्ति तथापि मूढमति, विनु समकित नवपार न पावत. ॥ ५९ ॥ चोपाईः— चेतन अंक जीव लखि लीन्हा, पुदगल करम अचेतन चीन्हा; वासी एक खेतके दोऊ; यदपि तथापि मिले नहि कोऊ. ॥ ६० ॥ दोहराः— निजनिज नाव क्रिया सहित, व्यापक व्यापि न कोइ; करता पुदगल करमको, जीव कहांसों होइ. ॥ ६१ ॥

अर्थः— जेम कोइ हृदय अंधपुरुष विकल मिथ्याधारीने हैयामां विकल्प उप

जावे, ते सर्व जूठा छे ते क्रियावादीनो एकांत पक्ष ग्रहीने आत्माने कर्त्ता मानीने अधोमुख के० नीची गतीने पकडी रह्योछे, एवो जे जिनमती छे ते जाव चारित्र विना अने द्रव्य चारित्रयुक्त करणी करेछे, ने क्रिया करण एटले शुज क्रियानो कर्त्ता पोते केहेवायछे, ते मुक्तिने वांछे तोपण मूढमतिछे, जवनो पार समकित विना पामतो नथी. ॥ ५९ ॥ अने जीवनो अंक के० चिन्ह चेतना जाणवी; अने पुज्ञल तथा कर्म ए बेउने जड जाणवा. चेतन अने अचेतन बेउ एक क्षेत्रावगाहीछे एटले एक क्षेत्रवासी छे, तथापि कोई कोईथी मले एवा नथी. ॥६०॥ जे पदार्थ छे ते पोतपोताना जावनी क्रिया सहित रहे छे, जेमां व्यापी रहे ते वस्तुने व्याप्य कहीये अने व्यापी रहेनार पदार्थने व्यापक कहीये तेथी पुज्ञल व्याप्यमां जीवनुं व्यापकपणुं नथी, माटे पुज्ञीक कर्मनो कर्त्ता जीव क्यांथी थाय अर्थात् न ज थाय. ॥ ६१ ॥

हवे व्यवहारमां जे रीतें जीवनुं कर्त्तापणुं ठरेछे ते जाणवेछेः—अथ कर्त्ता कथनः—

सवैया इकतीसाः—जीव अरु पुज्ञल करम रहे एक खेत, जद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है; लछन सरूप गुन परजे प्रकृति जेद, दुहूमें अनादिहीकी दुविधा व्है रही है; एते परि जिन्नता न जासे जीव करमकी, जौलों मिथ्या जाउ तोलों ओंधी वाउ वही है; ज्ञानके उदोत होत ऐसी सूधी दृष्टि जई, जीव कर्म पिंमको अकरतार सही है. ॥ ६२ ॥ दोहरा.— एक वस्तु जेसी जु हे, तासों मिले न आन; जीव अकर्त्ता करमको,यह अनुजो परवान. ॥ ६३ ॥

अर्थः— जेम आकाश प्रदेशमां पुदगल कर्म अवगाहि रहे छे; तेज आकाश प्रदेशमां जीव प्रदेश पण अवगाहि रहे छे. एम जीव अने पुज्ञल एक क्षेत्रना वासी छे, तथापि चेतननी सत्ता अने जडनी सत्ता ए बे जुदी छे. अनादि कालनी लक्षण जेदवडे स्वरूप जेदवडे गुणपर्यायवडे ने प्रकृति जेदवडे ए बेउनेविषे द्विविधता चाली आवेछे तेम छतां लक्षण प्रमुखनी जिन्नता मिथ्यात्व जावने लीधे जीव अने कर्मनी ज्यां सुधी जासे नही, त्यां सुधी उंधोवायु वहे छे एटले जीवने कर्त्ता मानीये छैये. अने ज्ञाननुं उद्योत थवाथी सम्यक्तनी एवी शुद्धता थई के तेथी कर्म पिंमनो अकर्त्ता जीव सही थयो छे. एम जाण्युं ॥ ६२ ॥ जे वस्तु जेवीरीते छे ते साथे आनके० बीजा स्वरूप वालो वस्तु मलती नथी. एकमेक थती नथी एथी जीव कर्मनो अकर्त्ता छेः ए अर्थ अनुजव प्रमाणथी समजाय छे ॥ ६३ ॥

हवे मूढ जीव कर्मनो कर्त्ता मानी लेय छे ते कहे छेः—अथ मूढकर्त्तायद्कथनः—

चोपाईः— जे दुरमती विकल अज्ञानी; जिन्हि सुरीति पररीति न जानी; माया मगन भरमके भरता; ते जिय भाव करमके करता ॥ ६४ ॥ दोहराः— जे मिथ्यामति तिमरसों, लखे न जीव अजीव; तेई भावित करमके, करता होइ सदीव ॥ ६५ ॥ जे अशुद्ध परिनति धरे, करे अहं परवान; ते अशुद्ध परिनाम के, करता होइ अजान ॥ ६६ ॥

अर्थः— जे जीव दुष्ट बुद्धिवडे विकल छे, अज्ञानी छे, जे पोतानी ने पारकी रीत जाणता नथी माया जालमां मग्न छे, भ्रमनाभरता के० धणी छे, ते जीव भाव कर्मना करनारा छे ॥ ६४ ॥ जे जीव मिथ्यामति अंधकारथी जीव अजीव ने भिन्न पणे जाणता नथी, ते जीव सदाकाल भावित कर्मना कर्त्ता छे, एटले पोतपोताना कर्मनो जे स्वभाव तेनेज भावित कर्म कहिये ॥ ६५ ॥ जे जीव अशुद्ध परिणतिने धरेछे, सर्व क्रियामां अहंकार बुद्धिथी अहं कर्त्ता एवुं प्रमाण करछे, ते जीव अजाण थका अशुद्ध परिणामना कर्त्ता थायछे ॥ ६६ ॥

अथ शिष्य प्रश्नः—

दोहराः— शिष्य कहै प्रभु तुह्म कह्यो, दुविध करमको रूप; दर्व कर्म पुदगल मई, भाव कर्म चिद्रूप ॥ ६७ ॥ करता दरवित करमको, जीवन होइ त्रिकाल; अब इह भावित करम तुम, कहो कौनकी चाल ॥ ६८ ॥ करता याको कौन है, कौन करै फल भोग; के पुदगल के आतमा, के दुहुको संयोग ॥ ६९ ॥

अर्थः— हवे शिष्य प्रश्न पुछे छे के, हे प्रभु तमे कह्युं छे के, कर्मनुं स्वरूप बे प्रकारनुं छे; एकतो पुदगलमय ते पुदगल पिंडरूप द्रव्य कर्म छे, अने बीजुं भाव कर्म छे ते चिद्रूप के० चेतनाविकार रूप छेः॥६७॥ वली स्वामी तमे एवुं कह्युं के द्रव्य कर्मनो करनार जीव त्रणे कालमां नथी, त्यारे भावित कर्म तमे कोनी चाल कहो छो? ॥ ६८ ॥ ए भावित कर्मनो कर्त्ता कोण छे, ने एना कर्म फलनो भोक्ता कोण छे? पुद्गल कर्त्ता भोक्ता छे? के आत्मा कर्त्ता,भोक्ता छे? किंवा पुद्गल अने आत्मा ए बेहुनो संयोग कर्त्ता भोक्ता छे ॥ ६९ ॥

हवे आ प्रश्नतो गुरु उत्तर आपेछेः— अथ गुरु उत्तर कथनः—

दोहराः— क्रिया एक करता जुगल, यों न जिनागम मांहि; अथवा करनी औरकी, और करै यों नाहि ॥ ७० ॥ करे और फल भोगवे, और बने नहि एम;

भो करतासो भोगता, यहे यथावत जेम॥७१॥ भाव कर्म कर्त्तव्यता, स्वयं सिद्ध न हि होइ; जो जगकी करनी करे, जग वासी जिय सोइ ॥७२॥ जिय करता जिय भोगता, भाव कर्म जिय चालि; पुदगल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्या जालि॥७३॥तातें भावित करमकों, करे मिथ्याती जीव; सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहजसदीव॥७४॥

अर्थः– क्रिया करणी एक होय अने तेना करनारा जुगल के० बे एवी वात जिनेश्वरना आगममां नथी कही, तेम पुद्गल अने जीव ए बेउ एक क्रिया करे नही, अथवा बीजानी क्रिया छे अने करनार वली बीजोज छे, एवुं पण छे नही, एटले पुदगलनी क्रिया जीव न करे अने जीवनी क्रिया पुदगल न करे॥७०॥ए रीते करे एक अने तेनुं फल भोगवनार बीजोज होय एवुं बने नही, एवुं जिनेश्वरना आगममां नथी कह्युं, एटले पुद्गलनी क्रियानुं फल जीव भोगवे नही; केमके जे कर्त्ता तेहिज भोगता; जे कर्म करे तेज फल भोगवे, ए वात केवल प्रमाणे खरी छे.॥७१

भाव कर्मनी कर्त्तव्यता के० क्रिया तेतो स्वयं सिद्ध न थाय, एटले भाव कर्म पोतानी मेले सिद्ध नही थाय. तेथी एवुं ठरे छे के जे जगतनी क्रिया करे ते भाव कर्मनो कर्त्ता छे; एटले गमनागमन क्रिया करे तेज भाव कर्मनो कर्त्ता जगत वासी जीव छे॥७२॥जीवज कर्त्ता अने जीवज भोक्ता छे, जीवनी चल विचलताथी भाव कर्म उपजे छे, एथी भावित कर्म जीवनी चाल छे. ए भावित कर्मने पुद्गल करे नही, तेम भोगवे पण नही, एमां जे अद्वैत मतवाला द्विधा राखे छे. ते मिथ्या जाल छे ॥ ७३ ॥ तेमाटे जे मिथ्याती जीव छे, ते भावित कर्मने करे छे. तेणे करी सुख दुःख आपदा संपदा सदा सहजे भोगवे छे ॥ ७४ ॥

हवे एकांत वादिसांख्यमतना वचननुं वर्णन करे छेः– अथ एकांत वादी वर्ननंः–

सवैया इकतीसाः– केई मूढ विकल एकंत पछ गहे कहे आतमा अकरतार पूरन परम है; तिन्हसों जु कोउकहै जीउ करता है तासों, फेरी कहै करमको करता करम है; ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्म घाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोहको भरम है; तिन्हको मिथ्यात दूरि करिबेको कहे गुरु स्यादवाद परवान आतम धरम है ॥ ७५ ॥

अर्थः– कोई मोह मूढ जीव ज्ञानवडे विकल एकांत पक्ष ग्रहीने एम कहे छे के, आत्मा अकर्त्ता छे, परम पूर्ण छे, ते एकांत वादीने कोई एवुं कहे के, आत्मा कर्त्ता छे, तेने सांख्यमति प्रमुख एकांत वादी कहे छे के, कर्मनुं कर्त्ता कर्मज छे. एवा मिथ्यातमां मग्न मिथ्याती जीव ब्रह्म घाती छे. तेमना हैयामां अनादि का

लथी मोह कर्म लाग्युं रहे छे, ते मिथ्याती जीवनुं मिथ्यात दूर करवाने स्याद्वाद रूप जे आत्म धर्म छे. ते धर्मज बधी रीत प्रमाण करी कहे छे ॥ ७५ ॥

हवे जेम स्याद्वाद वस्तु स्वरूप छे तेम कहे छेः—अथ स्याद्वाद कथनः—

दोहाः— चेतन करता जोगता, मिथ्या मगन अजान; नहि करता नहि जोगता, निहचे सम्यकवान ॥ ७६ ॥ सवैया इकतीसाः— जैसें सांख्यमति कहै अलख अकरता है सर्वथा प्रकार करता न होइ कब ही; तैसें जिनमति गुरु मुख एक पक्ष सुनि, याही जाति मानै सो एकंत तजो अबही. जोलों डुरमति तौलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सब ही; जाके घट ज्ञायक सुजाव जग्यो जब ही सो, सोतो जग जालसों निरालो जयो तबही ॥ ७७ ॥

अर्थः— मिथ्यातमां मग्न अजाण थको चेतन कर्त्ता छे. अने जोगता पण छे अने समकेति जीव निश्चेथी कर्त्ता पण नथी अने जोक्ता पण नथी ॥ ७६ ॥

जेम सांख्यमति पोताना मतमां एवी प्ररूपणा करेछे के, जे अलक्षरूप छे ते सर्वथा अकर्त्ता छे, पण क्यारे कर्त्ता थतो नथी, अने सत्व रज तम गुण प्रकृति कर्त्ता छे, एरीते जे सांख्यमतिवाला कहे छे, तेम कोई जिनमती पण कोई गुरुना मुखथी निश्चे नयनो एक पक्ष सांजलीने एमज माने, एटले जीवने अकर्त्ता माने छे. पण श्री जिनेश्वरना मतमां स्याद्वाद पक्ष छे. ते एवुं ठरावे छे के ज्यांहां सुधी डुष्ट बुद्धि मिथ्यामती अहं बुद्धिमां छे, तांहां सुधी जीव कर्मनो कर्त्ता छे; अने सुमती आवेथी सदा अकर्त्ता छे, जेवुं छे तेवुंज अकर्त्ता कह्यो, जेना घटमां पोतानो ज्ञायक स्वजाव ज्यारे जाग्यो ते वखतथीज ते जगजालथी निरालो थयो, तेणे अर्ध पुद्गल परावर्त्तमां संसार जावी मुक्यो ॥ ७७ ॥

हवे एकांत वादी बोधमतीनि बुद्धिनुं वर्णन करेछेः— अथ बोध मति वर्णनं

दोहराः— बोध छिनक वादी कहै, छिनु जंगुर तनुमांहि; प्रथम समे जो जीव है, डुतिय समे सो नांहि ॥ ७८ ॥ ताते मेरे मतविषे, करे करमजो कोइ; सो न जोगवे सरवथा, और जोगता होइ ॥ ७९ ॥

अर्थः— बोध क्षणिक वादी छे, ते एवुं कहे छे के शरीरमां रेहेनारो जे पदार्थ छे ते क्षणजंगुर छे एटले प्रथम समयमां जे जीव पदार्थ शरीरने विषे छे, ते बीजा समयमां न पामियें, एथी सर्व क्षणजंगुर छे ॥ ७८ ॥ वली बोध कहे छे के मारा मनमां एवी श्रद्धा ठरी छे, के जे कोई कर्म करेछे, ते तो कर्मना फलनो जोगता नथी. क्षणजंगुर पणाने लीधे बीजोज जोगता थाय छे ॥ ७९ ॥

हवे एकांत वादी बोधमतीना खंमननो उपदेश करछेः—अथ मतखंमन उपदेशः—

दोहराः—यह एकंत मिथ्यात पष, दूरि करनके काज; चिद विलास अविचल कथा, नाषै श्री जिनराज ॥ ८० ॥ बालापन काहू पुरुष, देख्यो पुर कइ कोइ; तरुन नये फिरिके लख्यो, कहे नगर यह सोइ. ॥ ८१ ॥ जो दुहु पनमें एक थो, तो तिन्हि सुमिरन कीय; और पुरुषको अनुनव्यो, और न जाने जीय. ॥ ८२ ॥ जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध; तब इकांत वादी पुरुष, जैन नयो प्रति बुद्ध. ॥ ८३ ॥

अर्थः— ए जे एकांत क्षणनंगुरपणुं ते मिथ्यात पक्ष छे, तेने दूर करवाने चिदविलास अविचल कथा के० जीवना अचल पदनी वात सामान्य केवलीना राजा श्री जिनेश्वर देव कहेछे. ॥ ८० ॥ कोईक पुरुषे बाल्यावस्थामां एक नगर दीठुं होय ने ते पछी ज्यारे जुवानीमां आव्यो त्यारे फरीथी तेज नगरने तेणे जोयुं त्यारे तेने रेतां रेतां स्मृती आवी के, आ नगर तो में बालपणामां जोयुं हतुं तेज छे. ॥ ८१ ॥ हवे अंहीं जीवना अचलपणानो संनव देखाडेछेः— के, बेहु कालमां जो ते एकज हतो, तेवारे ते पुरुषे बालपणामां ते नगर जोयुं हतुं त्यारे तेने जुवानीमां तेनुं स्मरण थयुं ए वात सत्य छे, एटले बने वखतमां नगर तेज खरुं छे, तेम एक पुरुषनो अनुनव के० नोगवेलुं कार्य तेने बीजो पुरुष जाणी शके नही. ॥ ८२ ॥ ज्यारे आ वात प्रगट सांनली अने जैनना शुद्ध मतनी वात सांनली त्यारे एकांतवादी पुरुषें प्रतिबोध पामीने जैनमत ग्रहण कीधो अने बोधमतने छोडी दीधो. ॥ ८३ ॥

हवे बोधमतीना क्षणनंगुरपणामां सहहणा केम थई ते कहे छेः—

अथ बोध मतीकी सहहना कथनः—

सवैया इकतीसाः— एक परजाय एक समैमें विनसि जाइ, दूजी परजाय दूजै समै उपजति है; ताको छल पकरिके बोध कहे समै समै, नवो जीव उपजे पुरातनकी षति है; ताते मानै करमको करता है और जीव, नोगता है और वाके हिए ऐसी मति है; परजै प्रवानको सरवथा दरब जाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥ ८४ ॥

अर्थः— हर कोई द्रव्यनो एक समयमां जे एक पर्याय छे, द्रव्य क्षेत्र काल नावने लीधे अवस्था नेद छे, तेतो पर्याय ते समयमांज विनाश पामे छे, अने बीजा समयमां बीजो पर्याय उपजे छे, एवी जैननी वाणी छे. ते वातनेज बोध

मतीवाळा निश्चळपणे पकडी राखीने कहे छे के, समय समय नवो नवो जीव उपजे छे, अने पाछला जूना जीवनी हाणी थायछे; वळी आम मानेछे के कर्मनो कर्त्ता कोई बीजो जीवछे अने कर्मनो भोगता कोई बीजोज जीव छे. एम बोधमति कहेछे; द्रव्यना पर्यायतो समयमां फरे छे, तेने बोधमति पर्याय प्रमाणने सर्वथा प्रकारे द्रव्यज जाणे छे. एवा दुर्बुद्धिने अवश्य दुर्गतीज प्राप्त थाय छे. ॥ ८४ ॥

हवे दुर्बुद्धि अने दुर्गतीनु लक्षण कहे छेः—अथ दुर्गति स्थिति लक्षणः—

दोहराः— दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्या चाल; गहि एकंत दुर्बुद्धिसों, मुगति न होइ त्रिकाल ॥ ८५ ॥ कहे अनातमकी कथा, चहे न आतम शुद्धि, रहै अध्यातमसों विमुख, दुराराधि दुर्बुद्धि ॥ ८६ ॥ सवैया इकतीसाः— कायासें विचारि प्रीति मायाहिमें हारि जीति, लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी; चूंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि, त्योंहि पाई गाडे पें न छाडे टेक पकरी; मोहकी मरोरसों भरमको न छोर पावे, धावै चिहु ओर ज्यों बढावे जाल मकरी; ऐसी दुर्बुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूली, फूली फिरे ममता जंजीरनिसों जकरी. ॥८७॥ बात सुनि चौंक उठे बातहिसों भौंकी उठे, बातसों नरम होइ बातहींसो अकरी; निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी; मोख न सुहाइ दोख देखै तहां पैंठि जाई, कालसो डराई जैसे नाहरसों बकरी; एसी दुरबुद्धि भूली झूठके झरोखे झूली, फूली फिरे ममता जंजीरनिसों जकरी॥८८

अर्थः— मिथ्यामतिने दुर्बुद्धि कहियें, अने मिथ्या चालने दुर्गति कहियें, जे दुष्ट बुद्धि छे, ते एकांत मतीने ग्रहणकरी रहेछे, तेने त्रणे कालमां मुक्ति न थाय. ॥ ८५ ॥ हवे दुर्बुद्धिनी व्यवस्था कहेछेः— जे आत्माथी भिन्न होय ते अनात्मा कहिये. तेअनात्मानी कथा करे आत्मानी शुद्धता न जाणे, अने जे आत्मने आश्रय विचार छे तेने अध्यात्म कहियें, ते तेनाथी दुराराध्य के० दुःखे समजायो जाय तेनाथी दुर्बुद्धि जीव विमुख रहे छे ॥ ८६ ॥ दुर्बुद्धिनो विचार कहेछेः—कायासाथे प्रीति विचारे हार जीत करी मायामां गह्यी रहे, हठ पकडी रहे, जेम हारल पक्षी पोताना पगमां लाकडी पकडीज राखे छोडे नही. वळी बीजो दृष्टांत एक छे; जेम कोई एक चोर चुंगलीना बंध देई करी गोहने मेहल अथवा हवेली उपर चडावे छे, ते बंधना जोरथी गोह भुमीने पकडी राखे, ने त्यां पोताना पग घटी राखे, पण जे टेक पकडी ते मूके नही, तेम मोह कर्मनी मरोड लागी तेथी भ्रमनुं ठेकाणुं पामे नही, एटले भ्रम छोडे नही. जेम मकडी जाळ वधारती पसार

ती चारे तरफ दोडे छे, तेम चारे तरफ दोडतो फरे, ए रीते दुर्बुद्धिये जूठी जुठने झरुखे झुली रहेछे, ने ममतारूप दुर्बुद्धिना जंजीरनी बेडीने जकडी रह्यो छे,॥८७॥

वली एवाने कोई अध्यात्मनी वात कहे त्यारे चोंकी उठे, ने नों नों करी उठे, कदाग्रह करे अने पोताना मनने रुचती वातथी नरम थाय ने मनमानती वात न थाय तो प्रकृति आकरी करे, मोक्षमार्गना साधकनी निंदा करे, अने जे हिंसक अधर्म कहेछे, तनी प्रशंसा करे, पोतानी मोटाईने साता सुख समजे असाताने फकीरी जाणे, मोक्षनी वात सुहाय नही, ज्यां कोई दोष जुए त्यां चतुराईनुं अभिमान बतावे, अने मृत्युथी एवो मरे के, जेम नाहीरथी बकरी मरे, ए रीते मरतो रहे एम दुर्बुद्धि जीव जूल्यो फरेछे, ने जूठने झरुखे झुलतो ममतारूप बेडीमां बंधाई रह्योछे.८८

हवे एकांत पक्षीना मतनी स्थापनाउपर अनेकांत स्याद्वादी मतनी प्रशंसा करेछेः—

अथ अनेकांत श्लाघा कथनः—

कवित्त छंदः— केई कहे जीव छिन भंगुर, केई कहे करम करतार ; केई कर्म रहित नित जंपहि, नय अनंत नाना परकार; जे एकंत गहै ते मूरख, पंडित अनेकांत परवधार ; जैसे भिन्न भिन्न मुगतागन, गुनसों गहत कहावे हार. ॥ ८९ ॥

दोहराः— जथा सूतसंग्रहविना, मुक्तमाल नहि होइ; तथा स्याद्वादी विना मोख न सधे कोई. ॥ ९० ॥

अर्थः— कोई बोध मती जेवा तो जीवने क्षण भंगुर कहे छे ; कोई मीमांसक सरखा कर्मने कर्त्ता मानेछे, कोई सांख्यमती सरखा तो सदा जीवने कर्मरहित कहे छे, एरीते अनंत नय नाना प्रकार कहे छे, एमांथी जे एकांत पक्ष ग्रही रहेछे ते तो मूर्ख छे अने पंडित जन जे छे, ते अनेकांत पक्ष ग्रहेछे, जेम एक मालामां मोतीनो समुदाय आपणी आपणी सत्तामां सउ जुदा जुदा छे पण ते सुतरमां परोव्याथी सर्वेनुं एक हार नाम पडे छे,॥८९॥ तेवो अनेकांत मत छे, केम के, सूतरना संगविना मोतीनी माला बने नही, तेम स्याद्वादमत धारण कीधा शिवाय मोक्षनो साधनहार थाय नही. ॥ ९० ॥

हवे मत भेदनुं कारण पांच नय छे तेनुं वर्णन करेछेः— अथ पंच नय वर्ननंः—

दोहरा.— पद सुभाउ पूरवउदे, निहचे उद्दिम काल; पक्षपात मिथ्यात पथ, सरवंगी सिव चाल. ॥ ९१ ॥

अर्थः— कोई पद वस्तु स्वभाव माने कोई पूर्व कर्मनो उदय माने, कोई निश्चय

माने, कोई उद्यम माने, अने कोई काळ माने. एमां पक्षपात करी जे एकनेज माने ते मिथ्यात्व मार्ग केहेवाय. ॥ ए१ ॥

हवे जुदा जुदा मतनी व्यवस्था कहे छेः— अथ मतव्यवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः—एक जीव वस्तुके अनेक रूप गुन नाम, निरजोग शुद्ध पर जोगसों अशुद्ध है; वेद पाठी ब्रह्म कहै मीमांसक कर्म कहे सिवमति शिव कहे बोध कहे बुद्ध है; जैनी कहे जिन न्याय वादी करतार कहे, छहों दरसनमें वचनको विरुद्ध है; वस्तुको सरूप पहिचाने सोइ परवीन, वचनके भेद भेद माने सोई शुद्ध है॥

अर्थः— जीव वस्तु एक अने तेना गुण अनेक छे, रूप अनेक छे, अने नाम अनेक छे, निरजोग छे एटले परसंयोग विना पोताना स्वभावमां रह्यो शुद्ध छे, अने परना संयोगथी अशुद्ध छे. वळी वेद पाठी प्रभावे करी एने ब्रह्म कहेछे. मीमांसक जैमिनीय एने कर्म कहेछे; शिवमती एटले वैशेषिक एने शिव कहेछे. बौधमती एने बुद्ध कहेछे, अने जैनी एने जिन कहेछे, न्यायवादी नैयायकादिक एने कर्त्ता कहेछे, एरीते छए दर्शनमां शुद्ध जीवने कहेवामां एकएकर्थी वचननुं विरूद्ध छे. ए छए दर्शनमां जे वस्तुनुं स्वरूप ओळखे तेज प्रवीण केहेवाय, अने वचनना भेद प्रमाणे समनिरूढ नयनिमत्तें वस्तुमां भेद प्रवीण माने तेज शुद्ध वात छेए२

हवे छए दर्शनना मत स्थापन करे छेः— अथ मतस्थापना कथनः—

सवैया इकतीसाः— वेदपाठी ब्रह्म मानै निहचै स्वरूप गहै, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहतु है; बोधमति बुद्ध मानै सूछम सुभाउ साधै शिवमती शिवरूप काळको हरतु है; न्याय ग्रंथके पढैया थापे करतार रूप, उद्दिम उदीरी उर आनंद लहतु है, पांचो दरसनी तेतो पोषे एकएक अंग, जैनी जिनपंथी सरवंगी नै गहतुहैए३

अर्थः—वेद पाठी के० वेदांती जीव वस्तुने ब्रह्म मानीने निश्चे स्वरूपने ग्रहेछे. एटले एक अद्वैत मत धारेछे. मीमांसक के० यज्ञना करनार जीवने कर्मरूप मानेछे, तेथी उदयरूप थया जे संस्कार तेनुं ग्रहण करेछे. बौधमती जीवने बुद्धमानीने क्षणभंगुरपणाथी सूक्ष्म स्वभाव साधेछे, तेथी वस्तुना स्वभावनेज कर्त्ता मानेछे. शिवमती जे वैशेषिक ते जीवने काळरूप मानेछे. अने शिवने कर्त्ता मानेछे, न्याय ग्रंथना जाणनारा प्रमाणादिक सोळ पदार्थने मानेछे, शुद्ध जीवनेज कर्त्ता मानीने उद्यमनी उदीरणामां चित्तने आनंद करी मग्न रहेछे, एम ए पांचे दर्शन वस्तु स्वभावादिक पांच नयना एक एक अंग पोषेछे, एटले एकांत पक्ष ग्रहेछे. अने जे जैन मार्ग केहेवाए छे, तेतो सर्वांगी सर्व नय ग्रहण करेछे ए३

हवे जे मत स्थापनामां जुदी जुदी बुद्धि कही ते सर्व एक छे, एवुं जणावेछेः—

अथ मत स्थापना एकत्वी कथनः—

सवैया इकतीसाः— निहचै अभेद अंग उदै गुनकी तरंग उद्यमकी रीति लिये उद्धता सकति है; परजायरूपको प्रवान सूछम सुभाउ कालकीसी ढाल परिनाम चक्र गति है; याही भांति आतम दरबके अनेक अंग, एक माने एककों न माने सो कुमति है; टेक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजी जीवे वादी मरे साची कहवति है ॥ ८४ ॥

अर्थः— सर्व जीवमां लक्षण भेद नथी एवुं निश्चय अंग ते साचो तरतम योगें गुणना तरंग उठी रह्या छे तेथी उदय अंग साचो छे, अने जीवनी उद्धत शक्ति छे. त्यां ते प्रवृत्त छे, तेथी उद्यम अंगवडे कर्त्तापणुं साचुं छे, अने पर्याय क्षण क्षणमां जुदा जुदा छे, तेनारूपनुं प्रमाण सूक्ष्म छे. तेथी बोध सूक्ष्म स्वभावने साधेछे, ते पण साचुं अने परिणामनी गति छे, ते फरता चक्रनी शक्ति छे, ते काल द्रव्यनी ढाल छे तेथी इहां कालने कर्त्ता कह्यो ते पण साचो छे, एरीते आत्मद्रव्यमां अनेक अंग पामीये पण एमांथी एकज अंग माने अथवा एक अंग न माने तेनुं नाम कुमति छे, जे एकांत पक्ष छोडीने एक वस्तुमां अनेक अंग खोजे तेनुं नाम सुबुद्धि कहीए, जेम के खोजी जीवे ने वादी मरे ए केवत छे, ते साची छे ॥ ८४ ॥

हवे स्याद्वादनुं रूप कहेछेः— अथ स्यादवाद स्वरूप कथनः—

सवैया इकतीसाः— एकमें अनेक है अनेकहीमें एक है सु, एक न अनेक कछु कह्यो न परतु है; करता अकरता है भोगता अभोगता है उपजे न उपजिति मूए न मरतु है; बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु, भेषको न भाजन पै भेखसो धरतु है; ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतीसो उलट पलट नट बाजीसी करतु है ॥८५॥

अर्थः— एक द्रव्यमां अनेक पर्याय छे, अने अनेक पर्यायमां एक द्रव्य छे, एथी हर कोई वस्तु एकज छे, अथवा अनेकज छे, एम कांई केहेवातुं नथी. व्यवहारमां कर्त्ता छे, निश्चयमां अकर्त्ता छे, व्यवहारथी भोक्ता छे, निश्चयथी अभोक्ता छे, व्यवहारथी उपजे छे, निश्चयथी उत्पत्ति नथी व्यवहारथी मुओ, ने निश्चयथी नथी मुओ, व्यवहारथी बोलेछे, विचारेछे, ने निश्चयनयथी कांइ बोले पण नही, ने विचारे पण नही, अविकल्पी छे, निश्चयथी भेषनुं भाजन के० स्थानक नथी, व्यवहारथी भेषनो धरनार छे. एवो चेतनवंत जे ईश्वर छे, ते पुदगलीक अचेतन

नी संगतीथी उलट पालट थई रह्योछे, जाणे नटनी बाजीनो खेल करतो होय नी तेम खेल करेछे. ॥ ए५ ॥

अथ अनुजव व्यवस्था कथन.

दोहराः— नट बाजी विकलप दसा, नाही अनुजौ जोग; केवल अनुजौ करन को, निर विकलप उपयोग. ॥ ए६ ॥

अर्थः— अनुजवमां आत्मद्रव्यनी जे अवस्था पामिये ते कहेछे. पूर्वे कही जे नट सरखी जीवनी उलट पालट बाजी छे, ते तो विकल्प दशा छे. ए दशा अनुजवमां योग्य नथी निःकेवल अनुजव करवाने निर्विकल्प उपयोग आपवो तेज सत्य छे. ॥ ए६ ॥

हवे अनुजवमां निर्विकल्प उपयोग आपवुं तेनु दृष्टांत कहेछेः—

अथ अनुजो दृष्टांत कथनः—

सवैया इकतीसाः— जेसे काहु चतुर संवारी हे मुगतमाल मालाकी क्रियामें नाना जांतिको विज्ञान है; क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वालो, मोतीनकी शोजमें मगन सुखवान है; तेसें न करे न जुजे अथवा करे सु जुजे, ओर करे ओर जुजे सब नै प्रवान है; यद्यपि तथापि विकलप विधि त्याग जोग निरविकलप अनुजो अमृत पान हैं. ॥ ए७ ॥

अर्थः— जेम कोई चतुर पुरुषे मोतीनी माला समारीने बनावी ने तेमां जात जातनुं विज्ञान छे, पण ते मालानो पहेरनारो तेनी क्रियानो विकल्प जोतो नथी, पण मोतीनी शोजाथी मगन ने सुखवान थई रहे छे, जेम मोतीनी मालामां अनेक विज्ञान छे, तेम अहीं पण अनेक विकल्प छे, आत्मा कर्त्ता नथी, जोक्ता नथी, अथवा कर्त्ता छे, जोक्ता छे, अथवा राग द्वेषादिक करनारा बीजा छे, अने जोगवनारा बीजा छे; ए सर्व नय प्रमाण छे. यद्यपि ए सर्व नय प्रमाण छे, तथापि ए सर्व विकल्प विधि त्यागवा योग्य छे. केमके अनुजव जे छे तेतो निर्विकल्प छे अने अमृतपान समान छे उपादेय छे. ॥ ए७ ॥

हवे स्याद्वादी आत्माने कर्मनो कर्त्ता जे नयथी मानेछे ते कहेछेः—अथ कर्त्ताकथनः—

दोहराः— दरब करम करता अलख, यहु विवहार कहाउ; निहचे जोजे सो दरब, तेसो ताको जाउ. ॥ एए ॥

अर्थः— पुदगल द्रव्यरूप कर्मनो कर्त्ता अलख पुरुष आत्मा छे, ए व्यवहार

मां केवाई शके छे, निश्चय नयमां तो ए वात छे के जेवुं जे द्रव्य होय तेवुं तेनुं नाव स्वरूप होय, एथी पुदगल द्रव्यनी क्रिया पुद्गलवडेज बनेछे. ॥ ए७ ॥

हवे जेवुं विपरीतपणुं बुद्धिमां नासेछे, तेवुं कहेछेः—अथ विपरीत बुद्धिकथनंः—

सवैया इकतीसाः— ज्ञानको सहज ज्ञेयाकाररूप परिनमे यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञान रूप कह्यो है; ज्ञेयज्ञय रूप यों अनादिहीकी मरजाद, काहु वस्तु काहुको सुनाव नहि गह्यो है; एते परि कोउ मिथ्या मति कहे ज्ञेयाकार प्रति नासनिसों ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है; याहि डुरबुद्धिसों विकल नयो मोलत है समुझे न धरम यों नर्ममाहि वह्यो है ॥ एए ॥

अर्थः— ज्ञाननो ए सहज स्वनाव छे के, घट पट प्रमुख ज्ञेय के० जाणवाजोग जे पदार्थ छे. तेनो जे आकार छे, तेजरूपे आत्मानुं ज्ञान परिणमे, यद्यपि ए वात प्रमाण छे तो पण ज्ञान जे छे, ते ज्ञानरूपज कहेवाय पण ज्ञेयरूप न कहेवाय अने जे ज्ञय पदार्थ छे ते ज्ञानमां परिणम्यो छे तोपण ज्ञेयरूपज केवाय, पण ज्ञानरूप न केवाय एवी अनादि कालनी मर्यादा छे, कोई वस्तु बीजी वस्तुनो स्वनाव ग्रहण करे नही, तेम जुदो जुदो स्वनावपण धारण करे नही, एवी मर्यादा बंध वातछे, तेम छतां कोई वैशेषिक प्रमुख मिथ्यामति कहेछे. के ज्ञेय पदार्थना आकार प्रति नासे छे, तेथी ज्ञान पदार्थ अशुद्ध थई रह्योछे, ज्यारे ए अशुद्धपणुं मटी जशे तारे मुक्तिथशे, एज डुष्ट बुद्धिथी मिथ्यात्व मोहनो विकल्प थयो, तेथी अंहि तहिं विकल थईने मोले छे, अने धर्म के० वस्तुनो स्वनाव जाणतो नथी. तेथी न्रममां वह्यो फिरे छे.एए

हवे सर्व पदार्थ पोताना स्वनावमां व्यापीरह्याछे ते कहेछेः—अथव्यापकताकथनंः—

चोपाईः— सकल वस्तु जगमें असुहाई; वस्तु वस्तुसों मिले न काई; जीव वस्तु जाने जग जेती, सोऊ निन्न रहे सबसेती ॥ ४०० ॥

अर्थः— जगतनेविषे सर्व नाव असहाय पणे वर्त्ते छे. कोई कोईनो सहाय कारी नथी, एज अर्थ प्रगट पणे कहे छे, के एक वस्तु बीजी विलक्षण वस्तु साथे मले नही. जगतमां जेटली वस्तु छे, तेटलीने जीव जाणे छे. एटले सर्व ज्ञेय वस्तु जीवना ज्ञानमां परिणमे छे, तोपण जीव सर्व वस्तुथी जुदोज रहे छे, एम पोतपोताना जुदा लक्षण छे तेथी जुदा रहेछे ॥ ४०० ॥

हवे व्यवहारनी केवल देखाडेछेः-- अथ व्यवहार कथनंः--

दोहराः— करम करे फल नोगवे, जीव अज्ञानी कोइ; यह कथनी व्यवहार की वस्तु स्वरूप न होइ. ॥ ४०१ ॥

अर्थः-- कोई अज्ञानी जीव छे, ते कर्मने करेछे अने तेनुं फल पण नोगवेछे, ए केव त व्यवहारमां छे. पण जेवुं वस्तुनुं स्वरूप छे, तेवी केवत नथी ॥ ४०१ ॥

हवे व्यवहारने प्रमाण करे एवी विपरीत बुद्धिनुं वर्णन करे छेः-

अथ विपरीत बुद्धि वर्ननंः-

कवित्त छंदः- ज्ञेआकार ज्ञानकी परिनति, पं वह ज्ञान ज्ञेय नहि होइ; ज्ञेय रूप खट दरव निन्न पद, ज्ञानरूप आतम पदसोइ; जाने नेद नाउ सुविचछन गुन लछन सम्यक दृग जोइ; मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहिकोइ२

अर्थः- जेवो ज्ञेय वस्तुनो आकार छे, तेवी ज्ञाननी परिणती छे. एटले ज्ञान घट पटादिक ज्ञेयना आकार परिणाम छे, पण ज्ञान छे ते ज्ञेय रूप न थाय. जगतमां जे ज्ञेय वस्तु छे ते छ द्रव्य छे तेतो निन्न पद के० जूदा जूदा स्वनावथी केवा योग्य छे, अने जे आत्मापणुं कहियें तेतो ज्ञानरूप छे एवो नावनो नेद छे, ते गुण लक्षण उलखीने जे नलो विचक्षण अध्यात्मनो वेत्ता सम्यक दृष्टी होय तेज जाणे. पण वैशेषिक मति जेवो मूर्ख होय ते ज्ञानमां आकार वि कल्प जोईने कहे अहो आ ज्ञानमां आकार नासे छे तेतो प्रगट कलंक छे. तेने कोई केम लखे नही ॥ २ ॥

हवे मिथ्यामति जीव पोतानी मतीने दृढ करेछेः- अथ मिथ्यामति कथनः-

चोपाईः-निराकार जो ब्रह्म कहावे; सो साकार नाम क्यों पावे; ज्ञयाकार ज्ञान जबताई; पूरन ब्रह्म नाहि तबतांई ॥३ ॥ ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने; नास करनको उदिम ठाने; वस्तु सुनाउ मिटे नहि क्योंही; ताते षेद करे सठयोंही ॥४॥ दोहराः- मूढ मरम जाने नही, गहे इकांत कुपक्ष; स्यादवाद सरबंगमें, माने दक्ष प्रत्यक्ष५

अर्थः- ब्रह्मतो निराकारज छे, ते साकार नाम केम धारण करे, जो ब्रह्मने आ कार मानीये तो साकार केवुं जोये, ते केम बने, जांसुंधी ज्ञेयनो आकार ज्ञानमां प्रति नासे छे, तहां सुधी पूर्ण ब्रह्म न केवाय ॥३॥ ज्ञेय वस्तुनो जे आकार के० प्रति नासछे ते ब्रह्मने मलरूप माने छे, ते मलनो नाश करवाने उद्यम करे, जे वस्तुनो जे वो स्वनाव होय तेवोज रहे पण कदी मटे नही, तेथी मूर्खजे सठ लोकछे ते अमथो जूठो द्वेष करे छे ॥४॥ जे मूर्ख छे ते मर्मनी वातने न ओलखे ने एकांत पक्ष जे जे कुपक्ष छे तेनेग्रहे अने जे माह्यो पुरुष छे, ते स्याद्वाद मतना आश्रयथी सर्वांगमय प्रत्यक्ष पणे माने, एटले निराकार साकार सर्व नय माने ॥ ५ ॥

हवे स्याद्वादने ग्रहण करनार जेसम्यक्ति छे तेनी स्तुती करे छेः—अथ सम्यक स्तुतीः—

दोहराः— शुद्ध दरब अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि; ताते सम्यक् वंतनर, सहज उछेदक नांहि ॥ ६ ॥

अर्थः— सम्यक्तिना हृदयमां जे अनुभव छे, तेज शुद्ध द्रव्यने शुद्ध करे छे. केमके, हृदयमां वस्तु स्वभाव जाणवाथी शुद्ध दृष्टी छे, तेथी जे सम्यकवंत पुरुष छे, ते सहज स्वभावनो उछेदक थतो नथी, एटले सहज भावनो उछेद मानतो नथी

हवे परवस्तुमां परद्रव्यनुं अव्यापक पणुं दृष्टांतवडे दृढ करेछेः—

अथ अव्यापक द्रव्य कथनः—

सवैया इकतीसाः— जैसें चंदकीरन प्रगटि भूमि सेत करे, भूमिसीत होति सदा जोतिसी रहती है; तैसें ज्ञान सकति प्रकासे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पे न ज्ञेयकों गहती है; शुद्ध वस्तु शुद्ध परजायरूप परिनमें, सत्ता परवान मांहि ढाहे न ढहती है; सोतो औररूप कबहो न होई सरब था निहचे अनादि जिनवानी यों कहती है ॥ ७ ॥

अर्थः— जेम शरदपुनमनी रात्री समे चंद्रना किरण प्रकाश वडे पृथ्विने श्वेत रूप करेछे. पण ते चंद्रमानी ज्योती कंइ पृथ्वी बनती नथी, सदा ज्योतीरूप रहेछे, तेम ज्ञान शक्ती एहवी छे के जे हेय उपादेय वस्तुने प्रकाशे त्यारे ज्ञान, ज्ञेय वस्तुने आकारे देखायछे पण ज्ञेय वस्तुनुं स्वरूप ग्रहण करे नही. केमके, जे शुद्ध वस्तु छे ते शुद्ध पर्यायरूप पणेज परिणमे अने जेनी पोतानी सत्ताछे ते जेटलामां वस्तुनुं सद्रूप पणुं छे, तेटला प्रमाण मांहे शुद्ध पर्यायनेज परिणमे छे, पण ए वस्तुनुं स्वरूप ढांक्युं रहे नही, तेतो शुद्ध वस्तु कोईनी संगतीथी सर्व प्रकारे बीजे रूपे न थाय ए वात निश्चयमां छे, एवी अनादि कालनी जिनवाणी कहेछे॥ ७॥

हवे वस्तुनुं यथार्थ स्वरूप कहे छेः— अथ जथा स्वरूप कथनः—

सवैया तेईसाः— राग विरोध उदे तबलों जबलों यह जीव म्रषा मग धावे; ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब कर्म दशा पररूप कहावे; कर्म विलेछि करे अनुभौ तब मोह मिथ्यात प्रवेश न पावे; मोह गये उपजे सुख केवल सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ८ ॥

अर्थः— ज्यांसुधी आ जीव मिथ्यात मार्गमां दोडे छे. त्यां सुधी राग द्वेषनो उदय छे, अने तेथी सत्य मार्गने पामतो नथी. ज्यारे शुद्ध चेतन वस्तुनुं ज्ञान जाग्यो त्यारे तो कर्म दशा जे छे ते पररूप जणाय, अने आत्मा तेथी जुदो जोवामां

आवे. ज्यां चेतननो अनुभव छे त्यां सत्यार्थ पणे जाणवुं होय ते कर्मनुं विलक्षण पणुं करे. एटले भेद विज्ञानवडे भिन्न लक्षण पणे जाणे, अने त्यां मोहरूप मिथ्यात प्रवेश करी शके नही. मोह गयाथी सुख समाधिमां केवल ज्ञान प्रगटे अने त्यारे जीव सिद्ध थाय अने फरीथी जगतने विषे आवे नही ॥ ८ ॥

हवे जेम अनुक्रमें वस्तु स्वरूपने प्रगट पणे स्वभावने वधारे ते कहेछेः—

अथ अनुक्रम वस्तु स्वरूप वर्द्धमानता कथनः—

छपय छंदः— जीव करम संयोग, सहज मिथ्यात रूप धर; राग दोष परिनति, प्रभाव जाने न आपापर; तम मिथ्यात मिटिगयो, भयो समकित उदोत ससि; राग दोष कछु वस्तु, नाहि छिनु माहि गये नसि; अनुभो अभ्यासि सुखराशी रमि, भयो निपुन तारन तरन, पूरन प्रकाशनिहचलि निरखी, बनारसी बंदत चरन ॥ ९ ॥

अर्थः— अनादि काळनो जीवने कर्म साथे संयोग छे. तेथी सहज संबंधे मिथ्यात स्थिति रुपी धारी जीव छे, अने क्यारेक जीव रागमां परिणम्यो रहेछे, अने क्यारेक द्वेषनी परिणतिना प्रभावथी पोताने तथा परने जाणतो नथी. एवामां क्यारेक मिथ्यातरूप अंधकार मटी गयुं ने समकितरूप चंद्रमानो प्रकाश थयो तेथी खबर पडीके रागद्वेष कंइ वस्तु नथी, एटले भली वस्तु नथी. एम जाणी एना अनादरथी राग द्वेष क्षणमां नाश पाम्या अने ते पछी पोताना अनुभवनो अभ्यास कीधो तिवारे तो सहज समाधिरूप सुखराशीमां रमी रह्यो. एरीते निपुण सर्व ज्ञानी, तरण तारण समर्थ प्रभु थयो हवे ए पूर्ण प्रकाश अनंत काळ लगी निश्चल थयो तेना ध्यानने निरखी बनारसी दास ते प्रभुना चरणने नित्य प्रतें वंदेछे. ॥ ९ ॥

रागद्वेषना हेतुनुं शिष्य प्रश्न करछे. गुरु उत्तर आपेछेः—अथ प्रश्नोत्तर कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ शिष्य कहे स्वामी राग दोष परिनाम ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोनहे; पुग्गल करमजोग किधों इंद्रिनिको भोग; किधों धन किधों परिजन किधों भोन हे; गुरु कहे छहों दर्व अपने अपनेरूप, सबनिको सदा असहाई परीनोन हे; कोन दर्व काहु को न प्रेरक कदाचि ताते, राग दोष मोह मृषामदिरा अचोन है ॥१०॥

अर्थः— कोइ शिष्य आचार्यने विनय पुर्वक पुछवा लाग्यो के अहो स्वामी, आत्माने राग द्वेष परिणाम उपजे छे. तेनो प्रेरक निश्चय पणे तमे कोने केरावो छे. एटले आत्माने पुद्गलिक कर्मनो योग छे, तेज इहां हेतु छे, के पंचेंद्रियनो भोग

हेतुछे के धन हेतु छे, के परिवार हेतु छे, अथवा मंदीर हेतु छे? इत्यादिकोमांथी राग द्वेष परिणामनो हेतु कोण छे, ते कहो. गुरु कहे छे, हे शिष्य ए पुद्गल संबंध हेतु नथी, तेम द्रव्य इंद्रिय छे, तेतो पोतपोताने रूपे पोतपोतानी सत्तामां रहे छे, अने सर्व द्रव्योनुं परिणमन सदा असहाई छे, कोई कोईनुं सहाय करतुं नथी. तेथी कोई काले कोई द्रव्य कोईनुं प्रेरक नथी एटले हेतु नथी, माटे राग द्वेष परिणामनो हेतु तो मिथ्यात्व मोहकर्मरूप मदिरानी अचांन केफ उद्धतपणुं छे॥१०॥

हवे कोई मूर्ख राग द्वेष परिणामनुं प्रेरक पुद्गलनुं बल छे एम कहेछे, तेने गुरु समजावे छेः— अथ शिष्य प्रश्न गुरु उत्तर कथनंः—

दोहराः— कोऊ मूरख यों कहै, राग दोष परिनाम ; पुग्गलकी जोरावरी, वरते आतम राम ॥ ११ ॥ ज्यों ज्यों पुग्गल बल करे, धरि धरि कर्मज भेष ; राग दोषको परिनमन, त्यों त्यों होइ विशेष ॥१२॥ इहविधि जो विपरीत पख, गहे सद्दहे कोई ; सो नर राग विरोधसों, कबहू भिन्न न होइ॥१३॥सुगुरु कहै जगमें रहे, पुग्गल संग सदीव; सहज शुद्ध परिनमनको, औसर लहे न जीव ॥१४॥ ताते चिदभावनविषे, समरथ चेतन राउ ; राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यकमेंसिव भाउ॥१५॥

अर्थः— कोई मूर्ख लोक एम कहेछे के, आत्मारामविषे जे राग द्वेष परिणाम छे, ते पुद्गलनी जोरावरीथी छे, एटले एज पुद्गलनुं जोर छे ॥ ११ ॥ जेम जेम कर्म भेख धारीने एटले कर्म वर्गनारूप धारीने पुद्गल द्रव्य आपणुं बल विस्तारेछे, तेम तेम रागद्वेषनुं परिणाम विशेषरूपें थाय छे, एम आत्मानेविषे देखाय छे, ए सांख्यमतिनुं केहेवुं छे ॥ १२ ॥ ए रीते जे सांख्यमतिवाला आवुं विपरीत ग्रहण करेछे, अने सर्दहेछे, ते पुरुष राग द्वेषथी एवी श्रद्धावडे पण कदी जुदो थाय नही ॥१३॥ हवे सतगुरु कहेछे, अरे प्राणी जगतमां पुद्गलना संगमां जीव सदा रहेछे. अनादीथी ए पुद्गलने जीवनुं संश्लेषपणुं छे, तेथी सहज शुद्ध परिणामवालो जीव अवसर न पामे, एटले पोतानुं शुद्ध परिणाम ग्रहि शके नही ॥ १४ ॥ चेतनराय जे छे ते चिद्भावने विषे एटले ज्ञान भावविषे समरथ छे, एटले जाणपणाना कार्यमां समर्थ छे, अने मिथ्यामति निमग्नताथी जाणपणामां राग द्वेष परिणाम देखाय छे, अने जीव सम्यक्त भावमां रहेछे, त्यारे शिव भाव उपजेछे ॥ १५ ॥

हवे ज्ञान भावमां पुद्गलनो भाव व्यापी शकतो नथी तेथी परभावनुं अव्यापक पणुं कहेछेः— अथ अव्यापकता कथनः—

दोहराः— ज्यों दीपक रजनी समै, चिहु दिसि करे उदोत; प्रगटे घट पट रूप में, घट पट रूप न होत ॥ १६ ॥ त्यों सु ज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म; ज्ञेयाकृति परिनमन पे, तजे न आतम धर्म ॥ १७ ॥ ज्ञान धर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोइ; राग विरोध विमोह मय, कबहू नूलि न होइ ॥ १८ ॥ ऐसी महिमा ज्ञानकी, निहचै है घटमांहि; मूरख मिथ्या दृष्टिसों, सहज विलोके नांहि ॥ १९ ॥

अर्थः— जेम दीवो रात्रे चारे दिशाने प्रकाशमान करेछे, अने तेथी घटपटादिक पदार्थ प्रगटेछे, पण दीपकनो प्रकाश घटपटरूप थतो नथी.॥१६॥तेमसुज्ञान जे छे, ते सर्व ज्ञेय वस्तुनो मर्म जाणेछे, तेना ज्ञानमां ज्ञेय पदार्थनो आकार पण परिणमेछे तो पण ज्ञान जे छे ते आत्म धर्म शुद्ध पणुं छांमतुं नथी॥१७॥ ज्ञान धर्मथी जाणपणुं ते सदा अविचल छे. ए जाणपणामां कोई विकार प्रवेश करे नही. राग द्वेषमोहमां जीव वहेछे खरो, तोपण जाणपणाने कही नूल तो नथी ॥ १८ ॥ एवो ज्ञाननो महिमा निश्चे स्वरूपे घटमां छे. पण मूरख मिथ्या दृष्टीथी सहज स्वरूपने विलोकतो नथी ॥ १९ ॥

हवे अनादिकालथी जीवनो मूढ स्वनाव छे ते कहेछेः—अथ मूढ स्वनाव कथनः

दोहराः— परसुनावमें मगन व्है, गने राग विरोध; धरै परिग्रह धारना, करे न आतम सोध ॥ २० ॥

अर्थः— शुद्ध चेतन स्वनावथी बीजा स्वनाव जे छे ते पर स्वनाव छे, तेमां मग्न थईने राग द्वेषमां घेरी रह्योछे, अने एज राग द्वेषथी परिग्रहनी धारणा धरेछे पण आत्मद्रव्यनो सोध करे नही ॥ २० ॥

हवे मूढने कुबुद्धि अने पंमितने सुबुद्धि होय ते कहेछेः-अथ कुबुद्धि तथा सुबुद्धि विवरनः-

चोपाईः— मूरखके घट दुरमति नासी; पंमित हिए सुमति परगासी; दुरमति कुबजा करम कमावे; सुमति राधिका राम रमावे ॥२१॥ दोहराः—कुबजा कारी कूबरी, करे जगतमें खेद; अलख अराधे राधिका, जाने निज पर नेद ॥ २२ ॥

अर्थः— मूर्ख प्राणीना घटमां दुर्मति नासी रहीछे, अने पंमितना हैयामां सुबुद्धि प्रकाश थई रही छे. दुर्बुद्धि जे छे ते कंसराजानी दासी जे कुबजा तेना सरखी छे ते कर्मनी कमाई करेछे; अने सुबुद्धि जे छे ते राधिका सरखी छे. ते आत्माराम नायकने रमाडनारी छे ॥ २१ ॥ कुबजा दासी काली अने कुबडी छे, ते जगतमां खेद प्रयास उपजावे एवा काम करनारी छे, अने सुबुद्धि राधिका

जे छे, तेतो अलख नायकनेज आराधे छे. अने एज माहारो श्रे; इष्ट नायक छे, अने बीजा सर्व पर छे; एवो भेद जाणे छे ॥ २२ ॥

हवे कुबुद्धि अने कुबजानुं एकसरखुं वर्णन करेछेः– अथ कुबुद्धि यथाः–

सवैया इकतीसाः– कुटिल कुरूप अंग लगी है पराए संग, अपनो प्रवान करि आपुहि बिकाई है; गहे गति अंधकीसी सकती कमंधकीसी, बंधको बढाउ करे धंधहीमें धाई है; रांडकीसी रीतिलि ए मांड कीसी मतवारी सांड ज्यों सुछंद डोले भांडकीसी जाई है; घरको न जाने भेद करे पराधिन खेद, याते दुर्बुद्धि दासी कुबजा कहाई है. ॥ २३ ॥

अर्थः–जे कुबुद्धि छे ते मायाथी कुटील छे, तेज कुबजा कुरूप अंग वालीछे, अने कुबुद्धि पारका संगमां लागी रहेछे, तेम कुबजा पण एवीछे. कुबुद्धि पोताना अशुद्ध प्रमाण वडे पोतेज परवस थईछे, अने कुबजा पण तेम वेचाईछे. कबंध एटले मस्तकविना लडाई करे तेनी शक्ती बेफाम होयछे, ते आंधलानी माफक गति लई डोलतो फिरेछे तेम कुबुद्धिने कुबजापण माथा विनानी फिरेछे अने दुर्बुद्धि छे ते कर्मना बंधने वधारेछे, ने धंध के० राग द्वेष वियहमां दोडेछे, तेम दासी पण पारका घर धंधामां दोडती फरेछे. कुबुद्धि पोताना नायकने ओलखती नथी, तेथी रांड जेवी रीती राखेछे, तेम दासीपण नायकविना रांडनी रीतेछे वली सोहागननी रीते मतवारी थकी फरेछे. जेम सांढ जनावर स्वछंदे डोलेछे, अने भांडनी छोकरी लाज विनानी होयछे, तेवी ए कुबजा दासी छे. जेम कुबुद्धि पोताना घरनो भेद जे ज्ञानादिक वित्त छे ते जाणे नही, तेम दासी पण घरनो भेद जाणे नही, ने पराधीन थकी खेद कर्या करे माटे दुर्बुद्धिरूप दासी ते कुबजा दासी सरखीछे॥२३

हवे सुबुद्धि अने राधिका ए बेनुं एक स्वरूप कही देखाडेछेः–अथ सुबुद्धि यथाः–

सवैया इकतीसाः– रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है; प्राची ज्ञान भानकी अजाची है निदानकी सुराची नरवाची ठोर साची ठकुराई है; धामकी खबर दार रामकी रमन हार राधा रस पंथनिमें ग्रंथनि मेगाई है; संतनिकी मानी निरवानी नूरकी निसानी याते सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है. ॥ २४ ॥ दोहराः– वह कुबजा वह राधिका, दोउ गती मति मान; वह अधिकारनि करमकी, यह विवेककी खान. ॥ २५ ॥ दरब करम पुद्गल दसा, भाव कर्म मति वक्र; जो सुज्ञानको परि नमन, सो विवेक गुनचक्र. २६

अर्थः– सुबुद्धि आत्मारूपनी रसीली छे, अने राधा पण रूपनी रसीली छे,अने

भ्रमरूप तालाने खोलवानी कुंची छे. सुबुद्धि शील रूप सुधा समुद्रमां झली रहेछे अने राधा पण तेवी छे, एम ए बेउ शील प्रकृतीयेंकरी महा सुखदायी छे, ज्ञानरूप जानुनो उदय करवाने प्राची के० पूर्व दिशा जेवीछे, निदाननी जाचनारी नथी, एटले निस्ने हीपणे सुबुद्धि अने राधिका छे. निरवाची के० वचन गोचर नथी, एवे ठेकाणे राची रहेछे, जेनी साची ईश्वरता छे धाम के० जे पोतानुं आत्म घर तेनी खबरदार छे, जेनी साथे रमी रहीछे ते राम एटले पोताना इष्टनी साथे रमनारी छे राधा रस पंथ ए टले राधावल्लनीना मार्गना रसग्रंथमां राधानामे ईश्वरनी प्यारी छे, तेवीज सुबुद्धि पण छे एवी संतजननी मानेती छे अने स्वस्थपणे रेनारी अने नूर के० शोजानी नि शाणी छे एवी सुबुद्धि वर्त्तेछे, माटे सुबुद्धिने राधिका राणी कहेवी. ॥ २४ ॥ ए रीते कुबुद्धि कुबजा थई अने सुबुद्धि राधिका थई ए बे पोतपोतानी गति अने मति लीधी रहेछे ते कुबुद्धि जे कुबजा तेतो करम बंधनी अधिकारणी छे, अने सुबुद्धि राधिका तो विवेकनी खाण छे. ॥ २५ ॥ ज्ञानावरणीय आदिक द्रव्य कर्म छे, ते पुद्गलरूप छे अने मतिनी वक्रता छे ते जाव कर्म जाणीए, जे सुज्ञाननो परिणमन होय तेने विवेक गुणनुं चक्र कहीए. ॥ २६ ॥

हवे जाव कर्मना चक्रनी उपर दृष्टांत कहेछेः— अथ कर्म चक्र यथाः—

कवित्त छंदः— जैसे नर खेलार चोपरको, लाज विचार करैं चित चाउ; धरि स बारि सा बुद्धी बलसों, पासाको कुछु परे सु दाउ; तैसें जगत जीव स्वारथको करि उद्यम चिंतवे उपाउ; लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही सुजाउ ॥ २७ ॥

अर्थः—जेम कोई चोपटनो खेल करे. ते पुरुष चित्तमां लाज विचारी खेलवानो चाह राखे, एटले हौंस राखे, पोतानी बुद्धि बलने जुग प्रमुखनो यत्न राखीने त्रिक चोक प्रमुख दाव उपर सारी संजाल राखीने रमे, पण दाव तो पासाने आधीन छे. तेम जगतनो जीव उद्यम करीने पोताना स्वारथनो उपाय चिंतवे, पण पोताना ल लाटमां लख्युं होय तेज फल थाय, कर्म चक्र उदय माफक थाय एनो एज स्वजाव छे २७

हवे विवेक चक्र उपर दृष्टांत कहे छेः— अथ विवेक चक्र यथाः—

कवित्त छंदः— जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब सतरंजकी घात; चले चाल निरखै दोउ दल, मोह राग न विचारे मात, तैसे साधु निपुन शिव पथमें लक्षन लखे तजे उतपात; साधे पुन्य चिंतवे अजै पद, यह सुविवेक चक्रकी वात ॥ २८ ॥ दोहराः— सतरँज खेले राधिका, कुबजा खेले सारि; याके निसिदिन

जीतवो, वाके निसिदिन हारि ॥ २९ ॥ दोहराः— जाके उर कुबजा बसे, सोई अलख अजान; जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यक वान ॥ ३० ॥

अर्थः— जेम कोईमाणस सेतरंजनो रमनार सेतरंजना खेलनी सर्व वात के० युक्ति अने दाव समजेछे. पोताना पराया दल उपर नजर राखी चाल चालें, पोताना परका वजीर हाथी प्रमुख मोहोरा गणतिमां राखी मनमां परने मांत करवो वि चारेछे. तेम साधु लोक पंमित छे, ते मोक्ष मार्गमां खेले. लक्षणथी वस्तुने जोय तेमां उत्पातरूप कार्य होय ते छांमी दे, अने पोतानुं साधन करे, चित्तमां अजेद पद विचारे ए विवेक चक्रनी वात छे ॥ २८ ॥ सुबुद्धि राधिका ते सेतरंज खेली रही छे, अने कुमति कुबजा पासा सरखो खेल खेलेछे. तेमां आ सुमती रा धिका तेनुं विवेक चक्रमां रातदिन जीतवुं थायछे. अने कुमति कुबजा ते कर्म चक्रमां रातदिन हारेछे ॥ २९ ॥ जेना हैयामां कुमति कुबजा वसे, तेतो अलख आत्माना अजाण छे. अने जेना हैयामां सुमति राधिका वसेछे. तेज समकेतवंत बुद्ध कहेतां ज्ञाता कहिये ॥ ३० ॥

हवे ज्यां शुद्धज्ञान छे त्यां शुद्धक्रिया थाय ते कहेछेः—अथ ज्ञानक्रिया सहकार कथन

सवैया इकतीसाः— जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योत दीसे तहां शुद्ध परवान शुद्ध चारित्रको अंस है; ता कारन ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु मर्म, वैराग विलास धर्म वाको सरवंस है; राग दोष मोहकी दसासों जिन्न रहे याते, सर्वथा त्रि काल कर्मजालको विध्वंस है; निरुपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्र गट पूरन परमहंस है; ॥ ३१ ॥ दोहराः—ज्ञायक जाव जहां तहां, शुद्ध बरनकी चाल; ताते ज्ञान विराग मल, सिव साधे सम काल. ॥ ३२ ॥

अर्थः— जे प्राणीविषे जे शुद्ध ज्ञाननी कलानो उद्योत देखायछे, ते प्राणीवि षे तेज वखतमां आत्मानी शुद्धता प्रमाण करीने शुद्ध चारित्रनो पण अंस थाय ते कारणथी जे ज्ञाता होय तेतो ज्ञेय के० हेय उपादेयरूप सर्व जाणवा योग्य वस्तुनो मर्म जाणे, त्यारे ते हेयने छांमे अने उपादेय रूप सर्व जाणवुं तेने ग्रहे छे, एवो वैराग्यना विलासनो स्वजाव सर्व अंसे करी प्रगट थाय. अने वैराग्य आ व्याथी राग द्वेष मोहनी दशाथी प्राणी जिन्न रहेछे, तेथी पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा थायछे, अने वर्त्तमानकालमां कर्म न बांधे, जे प्रकृति छुटी गई ते आगामिक काल मां बांधे नहीं, एम सर्वथाप्रकारे कर्मजालनो विध्वंस थाय. तेवारे राग द्वेषादिक उपाधि रहित आत्म समाधिमां बिराजे तेथी तेने पूरण परमहंस प्रगटपणे क

हिये ॥ ३१ ॥ जिहां ज्ञायक ज्ञाव छे तिहां शुद्ध चारित्रनी चाल पामियें तेथी ज्ञान अने वैराग्य मलीने समकालें शिवमार्ग साधेछे ॥ ३२ ॥

हवे ज्ञानक्रिया उपर अंध पंगुनुं दृष्टांत देछेः– अथ ज्ञान क्रियाको दृष्टांतः--

दोहराः– यथा अंधके कंध परि, चढै पंगु नर कोइ; वाके दृग वाके चरण, होहि पथिक मिलि दोइ. ॥ ३३ ॥ जहां ज्ञान किरिया मिले, तहां मोक्ष मग सोइ; वह जानै पदको मरम, वह पदमें थिर होइ. ॥ ३४ ॥

अर्थः– कोई पांगलो नर जेम कोई आंधलाना खन्ना उपर चढवाथी, पांगला नी आंख अने ते आंधलाना पगथी चाले, त्यारे पंथ मार्ग होय तो बनेना मलवा थी गमन थाय हालवुं चालवुं बने, तेम ज्ञान वैराग्य मलेथी मोक्षमार्गें चलाय ३३ ज्यां ज्ञान अने क्रिया ए बे एकठा थई रहे त्यां मोक्षनो मार्ग थाय. एटले ज्ञानथी वस्तुनो मर्म जाणे अने क्रियाथी पोताना वस्तुस्वन्नावमां स्थिर थाय ॥ ३४ ॥

हवे ज्ञान अने क्रियानुं जेवुं स्वरूप छे तेवुं कहेछेः– अथ ज्ञानक्रियाको स्वरूप

दोहराः– ज्ञान जीवकी सजगता, कर्म जीवकी नूल; ज्ञान मोक्ष अंकूर है, करम जगतको मूल. ॥ ३५ ॥ ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम; कर्म चेत नामें वसे, कर्म बंध परिनाम. ॥ ३६ ॥

अर्थः– ज्ञान छे ते जीवनी सजगतता छे एटले जीवने जगावे छे. कर्म के० क्रिया कार्य करवो ते जीवनी नूल छे. त्यां ज्ञान छे ते मोक्षनो अंकुर छे, एटले मोक्षनो हेतु छे. क्रिया कार्य करवो तेतो नवच्रमणनुं मूल छे ॥ ३५ ॥ चेतना बे प्रकारनी पूर्वे कही छे, तेमां ज्ञानचेतनाना जागवाथी केवल राम प्रगटे ते शुद्ध पर मात्मा प्रगटे छे,अने बीजी कर्मचेतना कहिए तेमां आत्मानो बंधपरिणाम उपजेछे.

हवे ज्ञाननो प्रन्नाव अने क्रियानो प्रन्नाव निन्न निन्न कही देखाडे छेः–

अथ ज्ञानक्रियाको प्रन्नाव निन्न कथनः–

चोपाईः–जबलग ज्ञान चेतना न्नारी, तब लगु जीव विकल संसारी, जब घट ज्ञान चेतना जागी, तब समकिती सहज वैरागी. ॥ ३७ ॥ सिद्ध समान रूप नि ज जाने; पर संजोग न्नाव परमाने, सुद्धातम अनुन्नो अन्यासे, त्रिविध करमकी ममता नासे. ॥ ३८ ॥

अर्थः– ज्यांलगी क्रिया परिणामे करीने ज्ञान चेतना न्नारी थई एटले चेतना कर्मरूप थई, त्यांलगी तो संसारी जीव विकलरूप थई रह्योछे अने ज्यारे घटमां ज्ञान चेतना जागृतरूप थई, त्यारे ते समकिती कहेवायछे ; तेने सहज वैरागी

कहिए. ॥३७॥ अने ज्ञान चेतनाना जाणवाथी पोताना रूपने निश्चय सिद्धसमान जाणे, अने पर पुद्गलना संयोगथी जे भाव उपजे, तेने तो पररूप माने, शुद्धात्म ना अनुभवनो अभ्यास राखे; द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, एवी त्रण जातिना कर्मनी ममता गमावे. ॥ ३८ ॥

हवे ज्ञाता थईने जे पूर्वकालविषे कर्म कीधांछे तेनी आलोयणाछे, अने पोतानी विगतवार कहेछेः— अथ ज्ञाता पूर्व कृत कर्म आलोचन कथनः—

दोहराः—ज्ञानवंत अपनी कथा, कहै आपसां आप; में मिथ्यात दसाविषे, कीने बहु विधि पाप. ॥३९॥ सवैया इकतीसाः—हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताही ताते हम करुना न कीनी जीव घातकी; आप पाप कीने ओरनकों उपदेश दीने हूती अनमोदना हमारे याही बातकी; मन वच कायमें मगन व्है कमाए कर्म, धाए भ्रम जालमें कहाए हम पातकी; ज्ञानके उदे भए हमारी दशा ऐसी भई, जेसी भान भासत अवस्था होत प्रातकी. ॥ ४० ॥

अर्थः- ज्ञान चेतना जागे ते ज्ञानवंत पोतानी कथा पोतानी मेले करे, के में पूर्वकालमां मिथ्यात दशामां बहु जातनां पाप कीधां छे. ॥ ३९ ॥ हमारा हैया मां पूर्वकालविषे महामोहनी विकलता थई, तेथी अमें जीव घातनी करुणा न कीधी, ने निर्दयदशा राखी, पोतानी कायाथी तो पोतेज पाप कीधां अने बीजा ने वचने करी पापनो उपदेश दीधो; अथवा कोईने पाप करतो देखीने में तेनी अनुमोदना करी एवी रीते मन वचन कायाना अशुद्ध व्यवहारमां मगन थईने कर्मनी कमाणी करी मिथ्या जालमां एवी रीते दोडया, तेथी अमे पातकी के हेवाइए छैये; हवे ज्ञाननो उदयथतां हमारी दिशा एवी थई के जेम सूर्यना भास वाथीप्रभात कालनी अवस्था उद्योतवंत थाय, तेम हमारी पण एवी अवस्था थई४०

हवे ज्ञाता ज्ञानना प्रभावथी जेवी आपणी अवस्था जाणे तेवी कहेछे.

अथ ज्ञाता ज्ञान प्रभाव कथनः—

सवैया इकतीसाः— ज्ञान भान भासत प्रवान ज्ञानवान कहे, करुना निधान अमलान मेरो रूप है; कालसों अतीत कर्म चालसों अभीत जोग जालसों अ जीत जाकी महिमा अनूप है; मोहको विलास यह जगतको वास मेंतो जगत सों शुन्य पाप पुन्य अंध कूप है; पाप किन कियो कौन करे करिहै सु कोन, क्रि याको विचार सुपनेकी धोर धूप है. ॥ ४१ ॥

अर्थः—ज्ञानरूप सूर्यनो प्रकाश होवाथी प्रमाण ज्ञानवान के० ज्ञाता पुरुष एम

कहेछे के, माहारुं स्वरूप करुणा निधान छे. तथा सर्वनो पोतानाजेवुंस्वरूप जाणीने सर्वनो हित वत्सल छे. अने अम्लान कहेता निर्मळ छे काळने वश नथी एटले शाश्वत छे. कर्म चाळनो तेने जय नथी, एटले कर्म जेना स्वभावनो नाश करी शके नही, मन वचन अने कायना योगनी जाळ तेथी अजीत छे, अने आ जगतनो वास छे, तेतो मोहनो विलास छे, पण माहारो विलास नथी, जगत कहीए भव भ्रमण तेथी हुं शून्य छुं, गति कर्म जगत करेछे, तेतो मारा स्वरूपमां पाप पुन्य अंधकूप समान छे, एथी पाप कोणे कीधुं, हवे कोण करेछे, आगळ कोण करशे, आ जे क्रियानोविचार दीठामां आवेछे तेतो स्वप्नानी दोरधाव समान मिथ्या व्यवहार छे ॥ ४१ ॥

हवे मिथ्या परिणामनुं वरणन करेछेः— अथ मिथ्यात परिनाम वर्णनः—

दोहराः— मैं यौं कीनौ यौं करौं, अब यह मेरो काम, मन वच कायामें वसे, ए मिथ्यात परिनाम, ॥ ४२ ॥ मन वच काया करम फळ, करम दशा जड अंग; दरवित पुग्गल पिंममें, भावित भरम तरंग ॥ ४३ ॥ तांते भावित धरमसो, करम सुभाउ अपूठ; कौंन करावे को करे, कोसर लहे सब झूठ ॥ ४४ ॥

अर्थः— मैं आवुं कीधुं आम करुंछुं, हवे आ माहारुं काम छे, ते कहुछुं, एरीते ज्ञान चेतना जाग्याविना मन वचन कायामां मिथ्या परिणाम वसेछे,॥४२॥ आ जे मन वचन कायाना जोग छे, ते कर्मनुं फळ छे, अने कर्मनी दशा जडरूप अंग छे, ए जे मन वचन काया छे, ते पुग्गल द्रव्यनो पिंम छे, तेथी आ मिथ्या तरंग भाव उपजेछे, ॥ ४३ ॥ तेमाटे आत्मानो भावित धर्म एटले शुद्ध जाणपणुं, तेथी मिथ्या तरंगरूप कर्म स्वभाव विपरीत छे, तेने करावे कोण अने करे कोण? अने सरल कोण छे, एटले अनुमोदे कोण ए प्रपंच सर्व जुठोछे, ॥ ४४ ॥

हवे आ जोगथी क्रिया होय तेनी निंदा करेछेः— अथ क्रियाकी निंदा कथनः—

दोहराः— करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि; गनी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुष मांहि, ॥ ४५ ॥ सवैया इकतीसाः— करनीकी धरनीमें माहा मोह राजा बसे, करनी अज्ञानभाव राकसकी पुरीहे, करनी करम काया पुग्गलकी प्रती छाया करनी प्रगट, माया मिसरीकी छुरी है, करनीके जालमें उरझि रह्यो चिदानंद करनीकी उट ज्ञान भान दुति दुरी है; आचारज कहे करनीसों विवहारी जीव करनी सदीव निहचै सरूप बुरी हैं. ॥ ४६ ॥

अर्थः— करणी जे क्रिया छे ते सदा अहितनी करनारी छे, मुक्तिने देवा वाळी

नथी, आ क्रियाने आगममां तो बंध पद्धतिमांज गणी छे, तेथी क्रिया महा दुःख सहित छे. ॥ ४५ ॥ क्रियानी भूमिमां महा मोह राजा वसेछे, अने क्रिया छे ते तो अज्ञान भाव राक्षसनी नगरी छे. एटले क्रियामां अज्ञान राक्षस रही शकेछे. अने ए क्रिया छे ते तो कर्मनो पडछायो छे, अने काय योगनो पडछायो छे. अने पुज्ञलनो पडछायो छे क्रिया छे ते प्रगट माया जाल छे, तथा ते साकरनी छरी छे, मीठास आपी मारेछे. आ करणीनी जालमां चिदानंद परमात्मा उरजो के० मग्न थई रह्यो छे, अने क्रियाना ओथे ज्ञानरूप सूर्यनी ज्योति छपी रही छे. श्री आचार्य कहेछे के क्रिया करतो थको जीव व्यवहारीज कहिए. पण निश्चल रूप देखवाथी क्रिया सदा सर्वदा बुरी छे, एटले खोटी छे. ॥ ४६ ॥

हवे पोतानी समज पामे तेने ज्ञाता कहेछेः— अथ ज्ञाता कथनः—

चोपाईः— मृषा मोहकी परिनति फेली, तातें करम चेतना मैली ; ज्ञान होत हम समुझी एती, जीव सदीव भिन्न परसेती ॥ ४७ ॥ दोहराः—जीव अनादि सरूप मम, करम रहित निरुपाधि ; अविनाशी अशरन सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥४८॥

अर्थः— अमारामां पहेला मिथ्या मोहनी परिनति फेलाई छे, एटले मोहथी अशुद्ध थई, त्यारे फेलाणी. तेनो उदय गाढो थयो, तेथी चेतना शुद्ध हती पण अशुद्ध थई, कर्मसहीत चेतना मलीन थई. हवे ज्ञान चेतना प्रगट थतां अमे एटली वात जाणी, के जे जीव छे ते निश्चे परजोगथी न्यारो छे ॥४७॥ अनादि कालथी जे जीव प्राणधारी केहेवायछे. ते मारुं स्वरूप छे ते स्वरूप केवुं छे ते कहेछे. कर्म रहित छे. अने संयोगादिक उपाधि रहितछे. वली विनाश न पामे, सदा ईश्वर छे ; कोईनुं शरण न राखे, अने आ स्वरूप सिद्धसमाधिना सुखमय छे ॥ ४८ ॥

हवे ज्ञानस्वरूप कर्म उपाधिथी भिन्नछे ते कहेछेः— अथ ज्ञान स्वरूपी कथनः—

चोपाईः— में त्रिकाल करणीसों न्यारा, चिदविलास पद जगत उज्यारा ; राग विरोध मोह मम नांही, मेरो अवलंबन-मुझमांही ॥ ४९ ॥ सवैया तेइसाः— सम्यकवंत कहे अपने गुनमें नित्त राग विरोधसुं रीतो , में करतूति करों निरवंछक, मोह विषे रस लागत तीतो ; सुद्ध सुचेतनको अनुभौ करि, में जग मोह महा भड जीतो, मोष समीप भयो अब मो कहुं काल अनंत इही विधि वीतो ॥५०॥ दोहराः— कहे विचछन में सदा, रह्यो ज्ञान रस राचि ; सुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होइ कदाचि ॥ ५१ ॥ पूर्व करम विष तरु भए, उदे भोग फल फूल ; में इन्हको नहिं भोगता, सहज होहुं निरमूल ॥ ५२ ॥

अर्थः– हुं त्रणे काळमां क्रिया करणीथी न्यारो छुं. माहारे कर्मथी संगनथी तो क्रीयाथी संग केम थाय माहारुं पद के० स्वरूप, चिदविलास के० ज्ञानविलास छे, ते जगतमां अजवाळु छे. अने राग द्वेष मोहभाव वर्त्ते छे. तेतो माहारुं स्वरूप नथी. माहारो अवलंब आधार माहारा स्वरूपमां छे ॥ ४९ ॥ समकेती जीव पोताना गुण कहेछे. हुं नित्य प्रत्यें राग द्वेष मोहथी, रीतो के० रक्त एटले रहित छुं. हुं जे क्रिया करुंछु ते राग द्वेष विना वांछारहित करुंछुं. अने जे ए विषय रस छे ते, मोहतीतो के० मने तिक्त लागेछे एटले कडवां लागेछे. शुद्ध पोतानी चेतनानो अनुभव करीने हुं जगतमां मोहरूप महासुभट जीत्यों, माहारुं एवुं स्वरूप पामीने हुं मोक्षने सन्मुख थयो, हवे मने एवी रीतथीज अनंत काळ वीतो एटले अनंत काल लगे एवोज रहुं ए आशंसा छे ॥ ५० ॥ विचक्षण ज्ञानी पुरुष आशंसा करीने कहे के हुं सदा ज्ञान रसमां राची रहुं अने हुं शुद्ध आत्माना अनुभवथी कोइ पण काळमां खलित न थाउं ए आशंसा छे॥५१॥ए पूर्व कृत पुन्यपापरूप जे कर्म छे, ते विष वृक्ष जाणवा अने ते कर्मना उदयनो जे भोग छे ते विष वृक्षना फल फुल छे. हुं आ उदय भोगनो भोक्ता नथी. राग द्वेषथी रहित छुं अनादिकाळना साथे लागेला विषय भोग छे तेसहज निर्मूलथाय ५२

हवे उदासीनताने वैराग्य कहियें तेनो महिमा कहेछेः–अथ वैराग्यमहिमाकथनः–

दोहराः–जो पूरव कृत कर्म फल, रुचिसों भुंजे नांहि; मगन रहे आठो पहुर, शुद्धातम पदमांहि. ॥ ५३ ॥ सो बुध कर्मदसा रहित, पावे मोष तुरंत; भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत. ॥ ५४ ॥

अर्थः– जे पूर्वकाळमां कर्म कर्युं. तेनुं फल उदय थयुं ते फलथी रुचि लगाडी भोगवे नही अने आठ प्रहर शुद्ध आत्मपदमां मगन रहे. ॥ ५३ ॥ तेज पंमित कर्मदशा रहित थईने तरत मोक्षपद पामे, ते पछी आगमिक काळमां अनंत काल लगे परम समाधिनुं सुख भोगवे. ॥ ५४ ॥

हवे ज्ञानि पुरुषनो क्रमे क्रमे महिमा वधे ते कहेछेः– ज्ञानी पुरुष महिमा कथनः–

छप्पय छंदः– जो पूरव कृतकर्म, विरष विष फल नहि भुंजे, जोग जुगतिकारज करंत ममता न प्रजुंजे; राग विरोध, निरोध संग विकलप सबि छंडे, शुद्धातम अनुभौ अभ्यासि सिव नाटक मंडे, जो ज्ञानवंत इह मग चलत, पूरन व्है केवल लहे; सो परम अतींद्रिय सुखविषे, मगन रूप संतत रहे. ॥ ५५ ॥

अर्थः– जो ज्ञाता थईने पूर्व कृतकर्म रूप वृक्षना विष फलने भोगवे नही

एटले इष्ट फलथी रतिन उपजे अनिष्ट फलथी अरति न उपजे एवो ज्ञाता जे छे. ते मन वचन कायाना योगे करी युक्त छे तेथी जोगनी गति के० प्रवृत्तियें कार्य करेछे, पण कार्यविषे ममता प्रजुंजे नही एरीतें राग द्वेषनो विरोध करीने योगना संगथी जे विकल्प उठेछे, ते सर्व छांमि. शुद्ध आत्मामां अनुजवनो अन्यास करीने शिवनाटक के० जे थकी जीवन्मुक्ति होय एवो नाटक मांमे जो ज्ञानवंत पुरुष एहिज मार्गे चाले तो पूरण स्वजाव पामीने केवल ज्ञान पामे पछी केवल ज्ञान पामीने उत्कृष्ट अतींड्रिय सुखनेविषे निरंतर मगन रहे. ॥ ५५ ॥

हवे शुद्ध आत्मा ड्व्य छे तेनुं वर्णन करेछेः—अथ शुद्ध आत्मदर्वेवर्ननः—

सवैया इकतीसाः— निरजै निराकुल निगम वेद निरजेद, जाके परगासमें जगत माईयतु है; रूप रस गंध फास पुदगलको विलास, तासों उदवंश जाको जश गाइयतु है, विग्रहसों विरत परिग्रहसें न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है; सो हे ज्ञान परवान चेतन निधान ताहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है; ॥ ५६ ॥ जैसो नर जेदरूप निहचें अतीत हुंतो, तेसो निरजेद अब जेदको न गहैगो; दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निज थान फिरि बाहिर न वहेगो; कबहु कदाचि अपनो सुजाउ त्यागि करि, राग रस राचिके न परवस्तु गहेगो; अमलान ज्ञान विद्यमान परगट जयो, याही जांति आगम अनंत काल रहेगो. ॥ ५७ ॥ जबहितें चेतन विजाउसों उलटि आपु समां पाइ अपनो सुजाउ गहि लीनो है; तबहीते जोजो लेन जोग सो से सब लीनो, जो जो त्याग जोग सो सो सब छांमि दीनो है; लेवेकों न रही ठोर त्यागिवेकों नांही ओर, बाकी कहा उबस्यो जु कारज नवीनो है; संग त्यागि अंग त्यागि वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धि त्यागि आपा शुद्ध कीनो है ॥ ५८ ॥

अर्थः— जे निर्जय केवाय छे, निराकुल केवाय छे. निगम के० उत्कृष्ट अर्थ केहेवाय छे. वेद के० ज्ञानरूप केहेवाय छे जेनो जेद नथी एवो प्रकाशवंत पदार्थ छे जेमां सर्व जगत समाय छे. अने जे ए रूप रस गंध स्पर्श जे विनाशी पदार्थो छे, तेतो पुजलनो विलास छे, तेना उदवंस के० तेथी रहित जे छे तेनो जसगाइए छे वली जे विग्रह के० शरीर तेथी विरत के० रहित अने ड्व्यजावरूप परिग्रह तेथी जुदो छे. जेमां सदाय त्रणे योगथी रहित पणानुं चिन्ह के० लक्षण पामीए छे एवुं पदार्थ तो ज्यां ज्ञान छे त्यां ते पदार्थ छे तेथी ज्ञान प्रमाण छे. अने चेतननो निधान छे. तेने अविनाशी ईश्वर मानीने मस्तक नमावीए

छे. ॥५६॥ हवे बीजुं पण शुद्धात्म द्रव्य सिद्धनुं वर्णन करेछेः— अतीत कालमां पण शुद्धात्म द्रव्य निश्चेय नयथी अभेद रूप हतो अने व्यवहारनयें भेदरूप हतो हवे केवल रूप पामिने निर्भेद के० भेद रहित जाणीए. हवे एवी दशामां कोण मूर्ख भेद ठरावसे. नैयायिक लोक जे पोतानी परूपणामां समाधि योग आत्माने कर्म रहित मानीने फरी संसारमां अवतार मानीने छे तेने नमस्कार करेछे पण जे कर्म रहित थयो सुख समाधान सहित थयो. पोतानुं स्थानक पाम्यो ते पाछो बाह्य संकटमां केम पडशे. जेम धरतीनो भार उतारवा ईश्वर अवतार लेइने दुःख पामेछे एवुं मिथ्यादृष्टिनी केवतमांछे पण जीव शुद्ध थईने फरी राग रसमां राचि ने कोई कालमां आपणु स्वभाव त्याग करीने पर वस्तुने ग्रहे नही. केमके अम्ला न ज्ञान के० जे ज्ञान फरी करमाय नही एवुं ज्ञान विद्यमान कालविषे प्रगट थयुं तेतो आगमिक कालमां अनंत काल लगी रहेशे. ॥ ५७ ॥ हवे फरीथी अवतार लेवाना कारणनो अभाव कहेछेः— अनादिकालथी चेतन मिथ्यात भावरूप विभावमां रमि रह्यो हतो ते समयप्रस्ताव पामीने, विभावथी उपराठो थई पोतानो शुद्ध स्वभाव हतो ते पोतेज लइ लीधो, तेथी ज्ञान दर्शनादिक भाव लेवा योग्य हतो ते लीधो, अने राग द्वेषादिक भाव त्यागवाजोग हतो ते सर्व त्यागी दीधो ते लेवानुं बीजुं ठेकाणुं रयुं नही, अने त्यागवानुं पण बीजुं ठेकाणुं रयुं नही हवे इहां बाकी नवुं कार्य करवानुं क्यो रह्योछे जे कार्य करवाने फरी अव तार लेवुं पडे जे उपाधिसंग हतो तेतो सर्व त्यजी ने एटले अंग त्याग के० काय योग त्यागिने वचन तरंग त्याग के० वचन योग त्यागीने तथा मनो योग, त्यागिने बुद्धि त्याग के० विकल्प त्यागीने आत्माने शुद्ध करी लीधो ॥ ५८ ॥

हवे बाह्य भेष धरवो ते द्रव्यलिंग कहिए ते एकांतपणे मोक्षनुं कारण नथी ते कहेछेः— अथ एकांत द्रव्यलिंगीकी निंदाः—

दोहराः— शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोइ; ताते कारन मोषको, द्र वलिंगि नहि होइ ॥ ५९ ॥ द्रव्य लिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विग्यान; अष्ट महारिधि अष्ट सिधि, एऊ होहि न ज्ञान ॥ ६० ॥

अर्थः—आत्मा तो शुद्ध ज्ञानमय छे. अने शुद्ध ज्ञानने देह नथी, अने ज्यारे देह नथी त्यारे ज्ञान ने मुद्रा भेष पण कोइ नथी. तेथी मोक्षनुं कारण द्रव्य लिंगहोय नही. एटले भेष लीधे मुक्ति नथी ॥ ५९ ॥ ज्ञानथी द्रव्यलिंग तो प्रगट पणे जुदोज छे. कलाविज्ञान, वचन विज्ञान, ते ज्ञानथी न्यारो छे. तथा आचार, भृत शरीर,

वचन, वाचना, बुद्धि, उपयोग, संग्रह संलीनता, ए अष्ट महा रिद्धि छे. अने अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, इशित्व, वशित्व, ए अष्टमहा सिद्धि छे. ते पण ज्ञान नथी ॥ ६० ॥

हवे एटला महिमावंत स्थानक छे, तो पण ए ज्ञानना स्थानक नथी ते कहेछेः-

अथ ज्ञान अजाव स्थानक कथनः–

सवैया इकतीसाः– जेषमें न ज्ञान नहि ज्ञान गुरु वर्त्तनमें, मंत्र जंत्र तंत्रमें न ज्ञानकी कहानी है, ग्रंथमें न ज्ञान नहिं ज्ञान कवि चातुरीमें वातनिमें ज्ञान नहीं ज्ञान कहा वानी है; तातें जेष गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र वात, इनतें अतीत ज्ञान चेतना निसानी है. ज्ञानहीमें ज्ञाननही ज्ञान उरगोर कहू, जाके घट ज्ञान सोइ ज्ञानको निदानी है ॥ ६१ ॥

अर्थः– जेषमां ज्ञान न पामीए अने गुरुवाई के० गर्वपणुं महोटाइ पणुं ते मां पण ज्ञाननुं स्थानक नथी अने मंत्र तंत्र यंत्रमां ज्ञाननी कहेणी नथी तथा ग्रंथ शास्त्र पढवाथी पण ज्ञान प्राप्त थतुं नथी कवितामां चातुर्यतामां ज्ञान नथी. वातनी चतुराइमां ज्ञान नथी. अने जे वाणी छे ते सुं ज्ञान छे, अर्थात् वाणी पण ज्ञान नथी माटे जेख गुरु वाइ कविताई, ग्रंथ मंत्र यंत्र तंत्र वात ए सर्वथी अतीत के० जुदोज ज्ञान वस्तु छे, ते चेतननी सहिनाणी छे. ज्ञानतो क्यारे जाणवुं. के जे अशुद्ध पणे होय तेतो ज्ञान न कहेवाय, माटे पूर्वें जे स्थानक कह्या तेथी जूदोज कोइ ज्ञान वस्तु छे माटे जेना घटमां ज्ञान प्रगटयुं, तेज ज्ञाननुं मूलकारण छे ॥ ६१ ॥

हवे जे पूर्वे जेष प्रमुखना धारक कह्या तेनी मूढता कहि देखाडे छेः–

अथ जेषादि धारक मूढ यद्दु कथनः–

सवैया इकतीसाः– जेष धरे लोगनिकों वंचे सो धरम ठग, गुरु सो कहावे गुरु वाई जाते चहियें, मंत्र तंत्र साधक कहावे गुनी जादूगर, पंमित कहावे पंमिताई जामें लहिये; कवित्तकी कलामें प्रवीन सो कहावे कवि, वात कही जाने सो पवार गीर कहिये; ए तो सब विषेके जिखारी मायाधारी जीव, इन्हकों विलोकिकें द याल रूप रहिये ॥ ६२ ॥

अर्थः– जेष धरीने लोकोने, ठगे जरमावे ते धर्म ठग कहेवाय, एटले तेने गुरुतानी चाहना होय ते गुरु केवाय. मंत्र यंत्र तंत्रादिक गुणनुं जे साधक होय ते जादूगर केवाय. अने जेमां पंमिताई रही छे. ते पंमित केवाय, कवित चातुरिनी

कलामां जे प्रवीण होय तेतो कवि केवाय, वातो बनावी बनावीने कही जाणे ते पवारगर केवाय एटली अवस्थाना धरनारा छे. ते सर्व इंद्रियविषयना याचक मायाधारी जीव छे. तेने जोईने मनमां एवुं विचारिये के अहो इति आश्चर्य ए बापडा केम पोतानो स्वार्थ खोयछे. एवी रीते तेना उपर दयालरूप थई रहेवुं

हवे जीवना अनुभवनी योग्य दशा कहे छेः— अथ अनुभो जोगता कथनः—

दोहराः— जो दयालता भाव सो, प्रगट ज्ञानको अंग; पें तथापि अनुभो दशा, वरतै बिगल तरंग ॥ ६३ ॥ दरशन ज्ञान चरण दशा, करे एक जो कोइ, थिर व्है साधे मोष मग, सुधी अनुभवी सोइ ॥ ६४ ॥

अर्थः— जे आत्माने शुद्ध दयालता भाव प्रगटेछे. तेतो ज्ञाननुं अंग प्रगट थयुं एम जाणीए. पण अनुभव दशा जे छे. ते तो विगततरंग के० विकल्प रहित वर्त्ते ॥ ६३ ॥ वली दर्शन ज्ञान चारितनी दशाने विकल्प रहित एकपणे आत्माने जुएछे, एज रीते स्थिररूप थईने मोक्ष मार्गने साधे छे तेनेज सुधी के० सुबुद्धिवंत अनुभववंत केहियें ॥ ६४ ॥

हवे निःसंदेह सुद्ध स्वरूप पामवुं तेनो महिमां कहे छेः—अथ अनुभो महिमाकथनः—

सवैया इकतीसाः— जोइ दृग ज्ञान चरणातममें ठटि ठोर भयो, निरदोर पर वस्तुकों न परसे; सुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतामें केलि करे, सुद्धतामें थिर व्है अमृत धारा वरसै; त्यागी तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमकों, करे थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे; सोई विकलप विजई अलप कालमांहि, त्यागि भो विधान निरवान पद दरसे॥६५॥

अर्थः— जे कोई दर्शन ज्ञान चारित्ररूपी आत्मानेविषे ज्ञानने ठेकाणे ठेरावीने वाट बांधे, त्यां निरदोर के० संशय रहित थईने परवस्तुनो स्पर्श न करे त्यां निश्चे नय ग्रहण करीने शुद्धताज विचारे, शुद्धताज ध्यावे अप्रमादि थईने शुद्धतामां केलि करे शुक्ल ध्यानना प्रथम पायामां प्रवेशकरी शुद्धतामां थिर थईने महा आनंदरूप अमृतनी धारा वरषावे, आंही अवयवरूप लक्षण छे. तेथी शरीरना कष्टने त्यागेछे. लीनताथी शरीर कष्ट न जाणे त्यारे स्पष्ट थईने एटले वीर्य फोरवीने आठे कर्मनो स्थान भ्रष्ट करे एटले कर्मोंने सत्ता थकी चलायमान करे अने नष्ट करे के० निर्जरा करे ऐसे औरढुंकसे के० ते जीव कर्मोंने आकर्षिने निर्जरावे ते जीव विकल्प जालनो विजय करीने अल्प कालमांज विधान के० भवे श्रेणिने त्यागी मोक्ष पद देखे एटले पामे ॥ ६५ ॥

हवे शिष्य पुछे छे के ए अनुभव पामवो महा विषम छे ते उपर गुरु शिखावे छेः—

अथ अनुभो शिक्षा कथनः—

चोपाईः— गुन परजैमें दृष्टि न दीजे; निरविकलप अनुभौ रस पीजे; आप समाइ आपमें लीजे; तनपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ६६ ॥ दोहराः— तजि विभाव हुइजे मगन, सुध्धातम पदमांहि; एक मोष मारग यहे, और दूसरो नांहि ॥ ६७॥

अर्थः— आत्माना गुण पर्याय अनेक छे. पण तेमां दृष्टि न देवी. मात्र निर्विकल्प द्रव्यनो अनुभव रस पीवो. आत्मा आधारमां आत्मानो समास करी लेवो एटले लय लगाडवो, एटले आपणे शरीर धारी छीए, ते दशानो काय योग पणुं छे ते मटावी आत्म स्वरूप करीए ॥ ६६ ॥ आत्माना मूल स्वभाव विना बीजो सर्व विभाव पणुं छे, तेहने त्यजीने शुध्ध आत्माना चिदानंद स्वभावमांज मगन थइये, एक अद्वितीय मोक्षनो मार्ग एज छे. तेथी बीजो कोइ मोक्षनो मार्ग नथी॥६७

हवे शुध्ध आत्मस्वरूपना अनुभवविना महाव्रत्तिपण द्रव्यलिंगी जाणवा ते कहेछेः—

अथ द्रव्यलिंगी अवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः— कइ मिथ्या दृष्टि जीव धारे जिन मुद्रा भेष, क्रियामें मगन रहे कहे हम जती हैं, अतुल अखंड मलरहित सदा उदोत, ऐसे ज्ञान भावसों विमुख मूढमति हैं; आगम संभाले दोष टाले विवहार भाले, पाले वृत्त यद्यपि तथापि अविरती हैं, आपुकों कहवे मोष मारगके अधिकारी मोषसों सदीव रुष्ट दुष्ट दुरगति हैं॥ ६८ ॥ दोहराः— जे विवहारी मूढ नर, परजे बुध्धी जीव, तिनको बाहिज क्रीयको, है अवलंब सदीव. ॥ ६९ ॥

अर्थः— कैक जीव मिथ्या दृष्टि छे अने आचार्य उपदेश रसथी जिन मुद्राभेष धारी छे अने साधुनी क्रियामां मगन रहेछे, अने पोताना मनथी अथवा कोईना पुछवाथी अमे जती छइयें एम कहेछे एटले महाव्रत्ति छैयें अने जेनी तुलना नथी एवुं अखंड के० संपूर्ण विभाव मलरहित सदा प्रकाशवंत पोतानुं अनुभवरूप जे ज्ञान भाव छे तेथी विमुख छे माटे मूढमती छे जोपण ते क्रिया करेछे आगम सिध्धांत संभारेछे अने आहारादिकना दोष टाली व्यवहारमां दृष्टि राखेछे एम जद्यपि महाव्रत्त पाले छे तो पण निश्चे नयथी ए अविरतीज कहीए एवा जे जीवछे ते पोते मोक्ष मार्गना अधिकारी लोकमां कहेवायछे. पण मोक्षथी ए सदा रुठयाज रहेछे एटले अभव्यने पण क्रिया केवल नवमा ग्रैव्यकशुद्धि गति कही छे पाछो ए दुष्ट दुर्गतिमां पडेछे. ॥ ६८ ॥ जे कोइ मूर्ख मनुष्य व्यवहार

भाज रहे अने जे जीव पर्याय बुद्धिवंत छे ते सुजगतियो जीव होय तो जलो एवी पर्याय बुद्धि धारेछे तेने तो बाह्य क्रियानो अवलंबन सदाय कह्योछे ॥६९॥

हवे व्यवहारे महामूढ छे तेनुं वर्णन करेछेः— अथ महामूढ वर्ननः—

चोपाईः—जेसे मुगध धान पहिचाने; तुष तंडुलको जेद न जाने; तैसे मूढमती व्यवहारी; लखे न बंध मोष विधि न्यारी.॥७०॥दोहराः—कुमती बाहिज दिष्टिसों, बाहिज क्रिया करंत, माने मोष परंपरा, मनमें हरष धरंत. ॥ ७१ ॥ शुद्धातम अनुजो कथा, कहे समकिती कोइ, सो सुनिके तासों कहे, यह सिवपंथ न होइ ७२

अर्थः—जेम कोइ मननो जोलो पुरुष छे ते धानने तो ओलखे पण तूस अने तंडुल मां जिन्नता छे ते न जाणे तेम जे व्यवहारी मूढमती छे तेतो बंधविधि अने मोक्षविधि जूदी जूदी लखी शके नही केवल विधिज जाणे. ॥७०॥ जे कुमती होय ते पर्याय बुद्धिथी शाता वेदनी पणे समाधि सुख जाणीने बाह्य दृष्टिथी तेनी हेतुरूप बाह्यक्रिया करे अने बाह्यक्रियामां मगन होय तो तेथी तेने निर्जरा मानीने मोक्ष परंपरा माने अने मनमां आनंद पामे. ॥ ७१ ॥ ते मूढने कोइ समकिती जीव शुद्ध आत्मानी अनुजव दशाने मोक्षनुं कारण कहे तो तेनुं वचन सांजलीने तेने एवुं कहे के ए रीतेतो मोक्षमार्ग थाय नही. ॥ ७२ ॥

हवे मूढ तथा ज्ञानीनुं लक्षण कहेछेः—अथ मूढ तथा ज्ञानी लक्षण कथनः—

कवितः— जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रवानहि; ते हिय अंध बंधके करता, परम तत्वको जेद न जानहि; जिन्हके हिये सुमतिकी कनिका, बाहिज क्रिया जेष परमानहि ; ते समकिती मोष मारग मुष, करि प्रस्थान जव स्थिति जानहि. ॥ ७३ ॥

अर्थः— जेना हीयामां देह बुद्धि रहेछे एटले देहधारी ने पण जिन्नपणे जाण तो नथी अने मुनीश्वरनी मुद्रा धारिने क्रियानेज प्रमाण करेछे. तेतो हीयानो अंध छे अने बंधनो करनार छे अने परम तत्वके० मोक्ष तत्वना जेद ने जाणतो नथी अने जेना हीयामां सम्यग दृष्टिने लीधे सुबुद्धिनी करणीका जागी तेतो बाह्य क्रियाने जेष रूप प्रमाण करेछे. तेनेतो समकिती कहीए ते जीव मोक्ष मार्ग ने सन्मुख प्रस्थान के० प्रयाण करी करीने जवस्थितिने निर्भेजांजे छे. ॥ ७३ ॥

हवे संक्षेपथी निःकेवल उपादेयरूप मोक्ष मार्गनो उपदेश दे छेः—

अथ मोक्षको उपदेश संक्षेप मात्र कथनः—

सवैया इकतीसाः— आचारिज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है

कहेंगे हम कितनो! बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप नली, बोलीए सु वचन प्रयोजन है जितनो; नाना रूप जलपसों नाना विकलप उठे, ताते जेतो कारिज कथन नलो तितनो; शुद्ध परमातमको अनुनौ अन्यास कीजे, यहे मोष पंथ परमारथ है इतनो ॥ ७४ ॥ दोहराः– सुद्धातम अनुनोक्रिया, सुद्ध ज्ञान दृग दौर, मुकति पंथ साधन वहै, वाग जाल सब और ॥ ७५ ॥

अर्थः– आचार्यजी शिष्यने कहे छे. अहो शिष्य जिनेश्वरनां वचननो विस्तार तो नय प्रमाण करीने अगम अपार छे. अमे केटलोक कहीए, आहीं बहु बोलवुं ते अमारे मकसुद नथी तेथी चुप रहेवुं तेज ठीक छे, अने जेटलुं प्रयोजन छे. तेटलुंज बोलवुं पण नाना प्रकारनु जल्प के० बोलवुं कहियें तो नाना प्रकारना विकल्प उठेछे तेथी जे एक कार्य छे तेपुरतुंज बोलवुं बस छे, शुद्ध परमात्म द्रव्यना अनुनव योगनुं अन्यास करीए एज मोक्ष मार्ग जाणीए, बधी वातमां एटलोज परमार्थ छे ॥ ७४ ॥ जे क्रियाथी शुद्ध आत्मानो अनुनव थाय तेज क्रियाछे अने शुद्ध ज्ञान दृष्टिनी दोर तेज मुक्ति पंथनुं कारण छे. बीजु सर्व वचनाडंबरछे ॥७५॥

हवे शुद्ध जीव द्रव्यनुं वर्णन करेछेः– अथ शुद्ध जीव द्रव्य बर्ननः–

दोहराः– जगत चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना नास; निर्विकल्प साश्वत सुथिर, कीजे अनुनौ तास. ॥ ७६ ॥ अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरन वीत ममत्व, ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व. ॥ ७७ ॥

अर्थः– जे पदार्थ जगतमां चक्षूजेवुं छे अने आनंदमय छे. जेनी ज्योति ज्ञान अने चेतना छे. जेमां कोई विकल्प नथी नेद नथी. अने शाश्वतो छे तथा स्थिर छे. जे पदार्थनो अनुनव करीए तो मुक्ति पामीए. ॥ ७६ ॥ जे कोईकाले पोताना स्वनावथी चलायमान थाय नही एवो अखंडित ज्ञानमयछे. संपूर्ण समाधिवंत अने ममत्व रहित, इंद्रिय ग्राह्य नही तेथी ज्ञान गम्य छे अने अछेद्य अनेद्यपणाथी बाधा रहित छे तेज आत्म तत्व कहीए. ॥ ७७ ॥

इति श्री नाटक समयसार ग्रंथनो दशम सरव विसुद्धि नामा द्वार बालाबोधरूप संपूर्ण थयो.

दोहराः–सरव विसुद्धी द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ; कुंद कुंद मुनिराजकृत, पूरन नयो गरंथ. ॥ ७८ ॥

अर्थः– जे द्वारमां आत्मानी सर्व विशुद्धि पामिये तेज द्वार कह्यो ते प्रगटप

ऐ मोक्षनो मार्ग कह्यो छे, श्री मंधर स्वामीनी वाणी सांजलीने श्री कुंदकुंदाचार्ये आ ग्रंथ कीधो. एवी संप्रदाय वातछे, ते ग्रंथ संपूर्ण थयो. ॥ ७८ ॥

हवे ग्रंथ कर्तानुं नाम अने ग्रंथनो महिमा कहेछेः— अथ ग्रंथ व्यवस्था कथनः—

चोपाईः— कुंद कुंद मुनिराज प्रवीना; तिन्ह यह ग्रंथ इहालों कीना; गाथा बद्ध सु प्राकृतबानी; गुरु परंपरा रीति बखानी. ॥ ७९ ॥ नयो ग्रंथ जगमें विख्याता; सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता; जे नव रस जगमांहि बखाने; ते सब रसमें सार समाने. ॥ ८० ॥ दोहराः— प्रगट रूप संसारमें, नव रस नाटक होइ; नव रस गर्जित ज्ञानमें, विरला जानै कोइ ॥ ८१ ॥

अर्थः— कुंद कुंद नामे मुनिराज ते अध्यात्ममां प्रवीण थया, ने आचार्ये आ सर्व विशुद्धिनामा द्वार लगि आ ग्रंथ कीधो. ते ग्रंथ प्राकृत गाथाबद्ध जलीवाणी प्रकाशी आ वाणीने गुरु संप्रदायथी अमृत चंद आचार्ये वखाणी ॥ ७९ ॥ आ ग्रंथनी टीका व्याख्यान करवाथी कुंद कुंदाचार्यनो करेलो ग्रंथ जगतमां विख्यात थयो, तेने सांजली ज्ञाता होय ते महा सुख पामे, जगतमां जे नव रस वखाण्या छे, ते सर्व रसमां सार रस ते ए समयसार नाटकमां समाई रह्याछे. ॥ ८० ॥ संसारमा ए वात प्रगट छे के जे नाटक होय ते नव रसमय होय. पण शांतरसमां जे ज्ञान छे. तेमां नवे रस गर्जित छे. तेने तो कोई विरलाज जाणेछे. ॥८१॥

हवे नव रसनुं वर्णन करतां नव रसनां नाम कहेछेः—अथ प्रथम नव रसके नाम

कवित्त छंदः—प्रथम शृंगार वीर दूजो रस, करुना तृतिय जगत सुखदायक; हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छठ्म सुरस बिजत्स विजायक; सप्तम जय अष्टम रस अदजुत नवमो शांत रसनिको नायक; ए नव रस एई नव नाटक, जो जहाँ मगन सोइ तहाँ लायक ८२

अर्थः— प्रथम शृंगार रस, बीजो वीर रस, त्रीजो करुणा रस, ते जगतमां सुखदायक छे. चोथो हास्य रस, पांचमो रौद्र रस, छठो बिजत्स रस, ते विजायक कहेतां चित्तनो जंग करनार छे. सातमो जय रस, आठमो अदभुत रस, नवमो शांत रस छे, ते सर्व रसनो नायक छे, ए नव रस कहिए. ते नव रस नाटक रूप होय. जे प्राणी जे रसमां मगन थई रह्यो छे तेने ते रस लायक छे. ॥ ८२ ॥

हवे नव रसना स्थाई जाव कहेछेः— अथ रस अवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः— सोजामें सिंगार बसै वीर पुरुषारथमें, हियेमें कोमल करुना रस बखानियें; आनंदमें हास्य रुंड मुंडमें बिराजे रुद्र, बीजछ तहां जहां गिलान मन आनिये; चिंतामें जयानक अथाहतामें अदजुत, मायाकी अरुचि ता

में शांत रस मानिये; एई नव रस नवरूप एई नावरूप, इन्हको विलेछन सुद्दष्टि जग जानिये. ॥ ७३ ॥

अर्थः— शोनामां शृंगार रसनो निवास छे. अर्थ साधन रूप पुरुषार्थमां वीर रसनो वास छे. हृदयना कोमळता पणामां करुणा रसनो वास छे. आनंदनी प्राप्तिमां हास्य रसनो वास छे. रण संग्राममां रूंम मूंमपडेलां होय, त्यां रौद्र रसनो वास छे. कोई सुगामणु स्थानक जोई मनमां ग्लानी आवे, त्यां बिनत्स रसनो वास छे. चिंतामां नय रसनो वास छे. जे कोई अथाग अघटमान वस्तु जाणिए त्यां अद्भुत रसनो वास छे. ज्यां मायानी अरुचि होय तहां शांत रसनो वास प्रमाण कहिए. ए नव रस छे ते नवरूप के० संसार रूप पण छे, अने एहिज नव रस नाव के० उत्तम नावरूप पण छे. ए नव रसनो विलेछन के० विवेक जे छे ते तो जगतमां सुद्दष्टिथी जाणीए. ॥ ७३ ॥

हवे एज नव रस नावरूप ज्ञानमां गर्जित छे ते एकज ठेकाणे देखाडे छेः—

अथ नव रस ज्ञान गर्जित एकीनूत कथनः—

छपय छंदः— गुन विचार सिंगार, वीर उद्दिम उदार रुष; करुना सम रसरीति, हासहिरदे उछाह सुख; अष्ट करम दल मलन, रुद्र वरते तिहि थानक; तन विलेछ बीनछ, डुंद डुखदसा नयानक; अदभुत अनंत बल चिंतवत, शांत सहज वैराग धुव; नव रस विलास परगास तब, जब सुबोध घट प्रगट हुव. ॥ ७४ ॥

अर्थः— ज्ञानादिक गुणेकरी आत्म विनूषित देखिये त्यांतो शृंगार रस उपज्यो १ अने आत्मानेविषे निर्जरा प्रमुखनो उद्यम देखिये त्यांतो उदार प्रधान वीर रस छे २, ज्यारे आत्माने उपशम रसनी रीते देखिये त्यारे करुणा रस जाणीए ३, ज्यारे एने अनुनवमां उत्साह अने सुखउपजे छे ते तो हैयामां हास्य रस उपजे छे ४, महा बलवान आठ कर्मना अनंत प्रदेशी दल छे तेनो दलन करतां देखीए तो तहां आत्मा रौद्र रसमयि थई रह्यो छे ५, ज्यारे पुद्गलनुं स्वरूप विचारीये छीए त्यारे बिनत्स रस छे ६, ज्यारे आत्मा पोतानुं स्वरूप न जाणे अने डुंद डुःखदशामां पड्यो छे, त्यारे तो नय रसमां देखीए ७, अनंत वीर्यनुं ज्यारे चिंतवन करीए त्यारे तो आत्मा अदभुत रस पामे ८, ज्यारे राग द्वेष निवारीने सहज वैराग्यने धुव के० निश्चल धारे छे, त्यारे आत्मा शांत रसमय पामीए ९, ए नव प्रकारना नाव रसना विलास नो प्रकाशतो ज्यारे घटमां सुबुद्धि प्रगट थाय त्यारेज थाय. ॥ ७४ ॥

हवे कुंद कुंदाचार्यकृत आ ग्रंथ छे तेनी स्तुति करेछेः— अथ ग्रंथ स्तुतिः—

चोपाईः— जब सुबोध घटमें परगासे, तब रस विरस विषमता नासे, नव रस लखे एक रसमांही, तातें विरस भाव मिटि जांही. ॥७५॥ दोहरा—सब रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ; जाके सुनत प्रवान जिय, समुझे पंथ कुपंथ. ॥ ७६ ॥ चोपाईः— वरते ग्रंथ जगत हित काजा, प्रगटे अमृतचंद मुनि राजा, तब तिन्ह ग्रंथ जानि अति नीका, रची बनाइ संसकृत टीका ॥७७॥ दोहराः— सर्व विशुद्धि द्वारलों, आए करत बखान; तब आचारज भक्तिसों, करे ग्रंथ गुन ज्ञान. ॥ ७८ ॥ चोपाईः—अदभुत ग्रंथ अध्यातम बांनी, समुझे कोऊ विरला ज्ञानी. यामें स्याद्वाद अधिकारा, ताको जो कीजे विसतारा ॥ ७९ ॥ तो गरंथ अति शोभा पावे वह मंदिर यह कलस कहावे, तबचित अमृत वचन गढखोले, अमृत चंद आचारज बोले ॥८०॥ दोहराः— कुंदकुंद नाटकविषे, कह्यो दरव अधिकार, स्यादवादनें साधि में, कहों अवस्था द्वार ॥ ८१ ॥ कहों मुकति पदकी कथा, कहों मुक्तिको पंथ, जैसे घृत कारज जहां, तहाँ कारन दधिपंथ ॥ ८२ ॥ अर्थ स्पष्ट ॥ चोपाईः— अमृत चंद बोले मृदुबानी, स्यादवादकी सुनो कहानी, कोऊ कहै जीव जगमांहीं, कोऊ कहै जीव है नाही ॥ ८३ ॥ दोहराः— एक रूप कोऊ कहै, कोऊ अगनित अंग; छिन भंगुर कोऊ कहै, कोऊ कहै अभंग ॥ ८४ ॥ नय अनंत इह विधि कही, मिले न काहू कोइ, जो सब नय साधन करे. स्यादवाद है सोइ ॥ ८५ ॥ स्याद्वाद अधिकार अब, कहों जैनको मूल, जाके जाने जगत जन, लहै जगत जल कूल ॥ ८६ ॥

अर्थः— हवे संगतनी वात कहेछेः— ज्यारे घटमां सुबोध प्रकाशे छे, त्यारे ए रसस हित छे अने ए विरस छे. एवो विषय ममता भाव छे ते सर्व नाश पामेछे एनो हेतु ए छे के जे नव रस छे तेने एक भाव रसमांज लखे के० जुवे, तेथी विरस भाव मटीने एकज रसमां आत्मानुं रहेवुं थाय. ॥ ७५ ॥ एम सर्व रसोमां गर्भित एक रसमय थयलुं एवुं आ समयसार नाटक नामे ग्रंथ श्री कुंद कुंदाचार्यजीए कह्यो, जेना अर्थ भावने सांभलता प्रमाणिक जीव छे ते मारग कुमारगनो विचार समजे. ॥७६॥ प्रथम जगत वासी जीवोने हितकारी कार्यनो ग्रंथ प्रवर्त्तमान थयो ते पछी अमृतचंद नामा आचार्य प्रगट्या तेणे आ ग्रंथ अति श्रेष्ठ जाणीने आ ग्रंथनी टीका बनावी, गाथानुं रहस्य लइने काव्य बंध कह्यो ते कहीए छीए. ॥ ७७ ॥ श्री अमृतचंदजी एज ग्रंथनुं व्याख्यान करतां सर्व विशुद्धि द्वार

सुधी आव्या. आंही ग्रंथ संपूर्ण थयो जाणी श्री अमृतचंद्र आचार्य भक्तिना वश थी ग्रंथनुं गुण ज्ञान करे छे. ॥ ८८ ॥ आ ग्रंथ अध्यात्म वाणीमां अद्भुत थयो, पण आ ग्रंथने कोई विरला ज्ञानवंत पुरुष समजे, आ ग्रंथमां स्याद्वादनो अधिकार छे ते अल्प बुद्धि स्थूलमतिने समजवो मुशकेल छे तेथी ते स्याद्वादनो जो विस्तार करीये तो सारुं. ॥ ८९ ॥ जेथकी आ ग्रंथ अति शोभा पामे एम विचारी आ ग्रंथरूप मंदिर तेना उपर स्याद्वादनो विस्तार करियें तो ते कलशरूप थाय. त्यारे महारा चित्तमां अमृत जेवा वचन गढी के० धारण थइने खुले एम दोष रहितनी परे श्री अमृतचंद आचार्य बोले छे के ॥ ९० ॥ श्री कुंद कुंदाचार्यना करेला नाटक ग्रंथमां जीव अजीव द्रव्यनो अधिकार कह्यो. हवे हुं स्याद्वाद नयनी अवस्थानो द्वार कहुंछुं. अने साध्य वस्तुनी अवस्थानो द्वार कहुंछु. ॥ ९१ ॥ वाणुमां दोहरानो अर्थ सुलभ छे ॥ ९२ ॥ अमृतचंद आचार्य एवी कोमल वाणी बोल्या के अहो शिष्य स्याद्वादनी कथा हुं कहुंछुं ते सांभलो. कोई अस्तिवादि तो एम कहे छे के जगतमां जीव वस्तु छे, अने कोई नास्तिवादी कहे छे के, जगतमां जीव वस्तु नथी. ॥ ९३ ॥ कोई अद्वैतवादी ब्रह्मने एकरूप कहेछे. कोई नैयायिक वैशेषिक जीवने अगणितपणे कहेछे कोई बौध मतीने लीधे जीवने क्षणभंगुर कहेछे; कोई सांख्य मतीने लीधे जीवने अभंगज कहेछे. ॥ ९४ ॥ अर्थ समजवाना मार्गने नय कहिए, ते समजवाना मार्ग अनंत छे; तेने लीधे नय पण अनंत कहियें; तेमां कोई नय कोई नयने मले नहीं, विरोधी छे. हवे आंही जे सर्व नयनुं साधन करे, एटले सर्व नयने साचा साधिने देखाडे, तेने स्याद्वादि जाणीए. ॥ ९५ ॥ ते स्याद्वादनो अधिकार हवे हुं सर्व कहुं छुं. एज स्याद्वाद आगमनुं मूल छे. जे स्याद्वादना जाण प्रवीण जगतवासी लोक छे ते संसार जलधिनो कांठो पामेछे. ॥ ९६ ॥

हवे नयजालथी शिष्यने संदेह उपज्यो त्यारे प्रश्न करेछेः– अथ शिष्यप्रश्न गुरु उत्तर कथनः–

सवैया इकतीसाः– शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीन के पराधीन, जीव एक है किधौ अनेक मानि लीजिये; जीव हे सदीव किधौ नाहि है जगतमांहि? जीव अविनस्वर के नस्वर कहीजिये, सतगुरु कहे जीव है सदीव निजाधीन, एक अविनस्वर दरव दृष्टि दीजिये, जीव पराधीन छिन भंगुर अनेकरूप, नांहि तहां जहां परजे प्रवान कीजीए. ॥ ९७ ॥

अर्थः— प्रथम शिष्य पुछेछे, स्वामी जीव स्वाधिन छे के पराधिन छे? जीव एक छे के गणतिमां अनेक छे? ए केम मनमां जाणवुं. अने जीव कहेवाय छे तो जगतमां सदायछे के नथी, ए अस्तिपणानो संदेह छे, अने जीव अस्ति के० अविनासी छे के विनाशी छे. हवे आवी रीतना प्रश्न उपर सद्गुरु कहेछे. के हे शिष्य जीव वस्तु जगतमां छे, पण नास्ति न कहीए, अने ते जीव आपणे स्वाधिन छे. अने एक छे यद्यपि गिणतीयें अनेक छे, तो पण लक्षणथी एक छे. अविनाशी द्रव्य दृष्टि दीजे तो एमज छे, अने जो पर्याय नय प्रमाण करीये तो जीव पराधीन छे, कर्माधीन छे. अने अवचित मरण देखतां क्षणभंगुर छे. गत्यादिक देखतां अनेकरूप छे. वली अजीव पदार्थ स्थापनानी अपेक्षाये न थी. अने जहां पर्याय प्रमाण छे तिहां एछे. ॥ ५७ ॥

हवे द्रव्य क्षेत्र काल भावें करीने सर्व वस्तुनुं अस्तिनास्तिपणुं कहेछेः—

अथ दरव क्षेत्र काल भाव अस्तिनास्ति कथनः—

सवैया इकतीसाः—दर्व खेत्र काल भाव चारो भेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानियें, परके चतुष्क वस्तु नासति नियत अंग, ताको भेद दर्व परजाय मध्य जानिये, दरवतो वस्तु खेत्र सत्ता भूमिकाल चाल, सुभाव सहज मूल सकति बखानिये, याही भांती परविकलप बुद्धि कलपना, विवहार दृष्टि अंशभेद परवानिये. ॥ ५८ ॥ दोहराः— है नाही नाही सु है, है है नाही नाहि; यह सरवंगी नयधनी, सबमाने सब मांहि. ॥ ५९ ॥

अर्थः—द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए चारें भेद वस्तुमां विचारीए, त्यांही आपणे वस्तु छे, ते अस्तिरूप मानीए, एटले स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावथी विचारीए त्यारे तो सर्व वस्तु अस्तिरूपें छे, अने जो परवस्तुथी ए चारने विचारियें तो वस्तुनुं नास्तिस्वरूप नीपजे छे. एटले परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावथी सर्व वस्तु नास्तिरूपे छे. नियत अंग के. निश्चेनयथी. अस्ति छे तेनो भेद द्रव्य पर्यायथी जाणवो. ए चार भेदमां द्रव्यथी वस्तु कहीए, वस्तुनी सत्तानी भूमिने क्षेत्र कहियें, वस्तुनी परिणाम चालथी काल कहीए, सहजनी मूलशक्तिने स्वभाव कहीए. ए रीते बुद्धिनी कल्पना करीने परद्रव्य क्षेत्रादिकना जो विकल्प ग्रहण करियें जेम के घट वस्तु ग्रहण करवाथी परद्रव्य परक्षेत्र परकाल परभावनी कल्पनाथी नास्ति छे. ए व्यवहार दृष्टिथी वस्तुना अंश भेद प्रमाण थाय. ॥ ५८ ॥ अने ए नथी एवुं कहेवामां स्वद्रव्यादिकनुं आस्तिपणुं लईने परद्रव्यादिकथी नास्तिपणुं लईए तथा नही ते छे एम

कहेवामां प्रथम परद्रव्यादिकनुं अस्तिपणुं ग्रहीए; छे अने नथीज एम केहेवामां फरी परद्रव्यादिकनुं केवल नास्तिपणुज ग्रहण करियें छे; एथी सात जांगा उपजे छे, आंही सर्वांग नयना धणी स्याद्वादी सर्व वस्तुमां सर्व जांगा माने छे. ॥ ४९९ ॥

हवे चौद नयना जेदथी एकेक जेदे एकांत पक्षीनी जेवी केहेणी छे तेवी कहेछेः—

अथ चतुर्दश नय जेद एकांत पक्ष कथन नाम स्थापनः—

सवैया इकतीसाः— ज्ञानको कारन ज्ञेय आतमा त्रिलोक मेय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है, जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व दर्वमें विनाज्ञेय छेत्र ज्ञान जीव वस्तु नांही है, देह नसे जीव नसें देह उपजत लसें, आतमा अचेतन है सत्ताअंसमांही है, जीव छिन जंगुर अज्ञायक सरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकंत अवस्था मूढ पाही है ॥ ५०० ॥

अर्थः— प्रथम चउद नयना नाम स्थापना कहेछेः—जे ज्ञेय वस्तुमां ज्ञान उपजेछे. तेथी ज्ञाननुं कारण ज्ञेय छे ए नाम छे, १ त्रण लोक प्रमाणे आत्मा छे, तेथी त्रिलोकमय एवुं नाम छे, २ जेम अनेक ज्ञेय छे, तेम ज्ञान पण अनेक छे. ते अनेक ज्ञान ए नामछे. ३ ज्ञानमां ज्ञेयनी छाया छे ते मेलवुं छे. तेथी मेलन ज्ञेय ए नाम छे. ४ ज्यां सुधी ज्ञेय छे त्यां सुधी ज्ञान छे. ज्ञेय उपरांत ज्ञान नथी तेथी ज्यां लगी ज्ञेय ए नामछे ५ सर्व दर्व मयीविज्ञान छे. तेनु तेज नामछे. ६ ज्ञेय क्षेत्रने प्रमाणेज ज्ञान छे, तेथी ज्ञेय क्षेत्रमान ए नाम छे. ७ जीव वस्तु जगतमां नथी. तेथीनास्ति जीव ए नाम छे,८ देहनो नाश थवाथी जीवनो पण नाश,तेथी जीव नाश ए नामछे ए, देह उपजवाथी जीव विराजे छे, तेथी देह त्यां जीवोत्पाद ए नामछे १० आत्मा छे ते अचेतन पदार्थ छे तेथी अचेतन ज्ञाता ए नाम छे ११ सत्ताना अंस ते जीव कहिए छे, पण आत्मा अंस मात्रछे ए नाम छे १२ जीव छे, ते क्षणजंगुर छे तेथी एज नामछे १३, ज्ञान छे ते ज्ञायक स्वरूपमां नथी तेथी अज्ञायक ज्ञान ए नाम छे १४ एवी एवी एकांत अवस्था मूढ लोको पामे छे, ए नयना जेद जाणवा ॥ ५०० ॥

हवे ज्ञाननुं कारण ज्ञेय. एजे प्रथम नय कह्युं तेनो प्रपंच करी देखाडेछेः—

अथ ज्ञानको कारन ज्ञेय प्रथम नय पक्ष कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम समारि जीति, पीछे ताके उपर सु चित्र आछो लेखिये; तैसे मूल कारन प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञान रूप कारज विशेषिये; ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसोई सुजाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय जिन्न

भिन्न पद पेषिये; कारन कारज दोउ एकहीमें निहचे पें, तेरो मत साचो विवहार दृष्टि देखीये ॥ ५०१ ॥

अर्थः— कोई मूढ मीमांसक ते शिष्य लोकने एम समजावे छे के, जेम प्रथम भिंतने समारी होय तोपछी तेना उपर चित्र सारुं थाय, अने नरसी उपर नरसुं चित्र थाय; तेम ज्ञाननी उत्पत्तिनुं कारण मन छे, पण जेवो घटपट प्रमुख पदार्थ होय तेवुंज तिहांज्ञानरूप कार्य विशेष थाय छे, जो घटपदार्थ जाणवा योग्य होय तो घट ज्ञान होय, अने पट पदार्थमां पट ज्ञान होय, तेथी ज्ञाननुं कारण ज्ञेय छे, हवे तेने स्याद्वाद ज्ञानी एम कहेछे के, अहो भाई, जे जेवी वस्तु छे तेनो स्वभाव पण तेवोज छे, जे ज्ञानपदार्थ छे तेनो स्वभाव जाणवानोज छे, अने जे ज्ञेयपदार्थ छे ते जाणवा योग्यज छे, आ अर्थ भेदथी ज्ञान अने ज्ञेय ए बने जुदा पद जाणवा. अहीं जे ज्ञेय कारण पणे कह्यो तेज ज्ञान विकल्पे कह्युं, तेथी घटपटादि जगत छे ते जड पदार्थ दूर रह्या, अने ज्ञान छे तेज सामान्य पणे छे. तेथी निश्चे नयथी तो ज्ञानमां ज्ञेय पामिये, पण व्यवहार दृष्टि आपतां तो ताहारुं मत पण साचुंछे ५०१

हवे बीजा एकांत नय आत्मा त्रिलोकमय छे तेनो प्रपंच देखाडे छेः—

अथ द्वितिय नय आतमा त्रिलोक प्रमानयहु कथनंः—

सवैया इकतीसाः— कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समुझे त्रिलोक पिंड आतम दरव है; याहितें सुछंद भयो डोले मुष हू न बोले कहे याजगतमें हमारोई खरब है; तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न पै जगतको विकासी तोहि याहीते गरव है; जो वस्तु सो वस्तु पररूपसों निराली सदा, निहचे प्रमान स्यादवादमें सरव है; ॥ ५०२ ॥

अर्थः— कोई नैयायिक वैशेषिक मिथ्याति छे. ते ज्ञानने लोकालोक व्यापी मानीने एवुं समजे छे के जीवछे ते विज्ञाननो पिंड छे. अने विज्ञान छे ते लोकालोक व्यापी छे. तेथी आत्मद्रव्य त्रण लोक प्रमाण छे. तेथी पोताने सर्व व्यापी ईश्वर मानीने स्वछंद थयो डोले छे अभिमानमां चढयो थको बीजाने मूर्ख मानीने कोईनी साथे मुखथी न बोले. जो बोले तो एम कहे के आ जगतमां हमारीज खरब के० सर्व रचना छे. हवे तेने स्याद्वाद ज्ञानी कहे छे के अहो भाई जीव जे छे ते जगतथी भिन्न छे पण तेना ज्ञानमां जगतनो विकास छे तेथी ईश्वरपणानो गर्व चढयोछे पण जे वस्तु छे तेतो पोताना स्वरूपमांज रहे छे अने परस्वरूपथी सदा जुदी रहे छे तेथी जगत अने आत्माने निश्चे नयना प्रमाणथी स्याद्वादमां सर्वथा विवरोध पामिए. ५०२

हवे त्रीजो एकांत नय ते ज्ञेयथी ज्ञानना अनेक प्रपंच करि देखाडेछेः—

अथ त्रितीय ज्ञेयसो अनेक ज्ञान कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ पशु ज्ञानकी अनंत विचित्राई देखे, ज्ञेयको आकार नाना रूप विसतर्यो है; ताहीकों विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकंत पक्ष लोकनिसों लर्यो है; ताको भ्रम भंजवेकों ज्ञानवंत कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्यो है; ज्ञायक सु भाई परजाईसों अनेक भयो, जद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्यो है; ॥ ५०३ ॥

अर्थः— कोई पशु के० मूर्ख ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखेछे. तेनो हेतु कहे छे. जगतमां ज्ञेय वस्तु अनंत छे, तेना आकार अनंत छे. ते ज्ञानमां परणमे छे तेथी ज्ञानपण नानाप्रकारथी विस्तरे छे, अने तेना नाना रूप विस्तारने विचारीने ज्ञानकी अनंत सत्ता माने छे. एवो एकांत पक्ष लईने प्रतिवादी लोकथी लडे छे. हवे स्याद्वादी ज्ञानवंत ते एकान्तपक्षीना भ्रम भांजवाने एम कहेछे के, अहो भाई तुं ज्ञानने ज्ञेयनो आकार परणम्यो जाणीने केम भूले छे? ज्ञान छे ते अगम्य वस्तु छे. निराबाध रसथी भर्यो छे. ज्ञाननो ज्ञायक स्वभाव छे, तेथी यद्यपि पर्याय शक्तिथी ज्ञान अनेकरूप थयुं छे. तथापि ज्ञायक स्वभावथी ज्ञानकी एकताज छे, पण ते एकताथी ज्ञान टलतुं नथी. ॥ ५०३ ॥

हवे चोथा नयमां ज्ञानने विषे ज्ञेयनी छायानो प्रपंच देखाडे छेः—

अथ चतुर्थ ज्ञेय छाया पद कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ कुधी कहे ज्ञानमांहि ज्ञेयको आकार, प्रतिभासि रह्यो है कलंक ताहि धोइए; जब ध्यान जलसों परवारिके धवल कीजे, तब निराकार शुद्ध ज्ञानमई होइए; तासों स्याद्वादी कहे ज्ञानको सुभाउ यहे, ज्ञेयको आकार वस्तु नांहि कहा खोइए; जैसे नाना रूप प्रतिबिंबकी झलक दीसे, जदपि तथापि आरसी विमल जोइए. ॥ ५०४ ॥

अर्थः—कोई कुधी के० कुबुद्धि वैशेषिक मतवालो एम कहे छे के, जो जगत वासी जीवना ज्ञानमांज ज्ञेयनो आकार प्रतिभासे छे, ते आकार तो निराकार ज्ञाननुं कलंक उपजेछे. तेने धोई नाखवो जोइए, तेथी निराकारनुं ध्यान लगाडवुं तेतो जल थयुं, ते जलथी प्रक्षालीने ते ज्ञानने उज्वल करियें तेवारें निराकार शुद्ध ज्ञानमय थवाय छे, हवे आंही स्याद्वादी तेने कहे छे. अरे भाई ज्ञाननो एज स्वभाव छे,

के ज्ञेयनो आकार वस्तुमां जासे तो आंही आकार गमावी नाखवानी शुं मतलब छे. जेम आरसीमां नाना रूप प्रति बिंबनो झलकाट देखाय छे तो पण आरसी निर्मल जोइए पण तेने प्रतिबिंबनुं कलंक कोई न कहे. ॥ ५०४ ॥

हवे पांचमो एकांतनय ते ज्यां लगें ज्ञेय त्यां लगें ज्ञान तेनो प्रपंच कही देखाडेछे

अथ पंचम जौलों ज्ञेय तौलों ज्ञान यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिनाम जौलों विद्यमान तौलों ज्ञान परगट है; ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनास होइ, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अलट है; तासों समकितवंत कहे अनुभौ कहान, परजे प्रवान ज्ञान नानाकार नट है; निरविकलप अविनस्वर दरव रूप, ज्ञानज्ञेय वस्तुसों अव्यापक अघट है. ॥ ५०५ ॥

अर्थः— कोई अजाण पुरुष एवुं कहेछे के जेवो ज्ञेयनो आकार तेवुं ज्ञाननुं परिणाम थायछे, तेथी ज्ञेय विद्यमान ज्यां लगी होय, त्यां लगी ज्ञान प्रगट रहेछे अने ज्ञेयनो विनाश थये ज्ञाननो पण विनाश थायछे, एवी वात मिथ्यामतीना हृदयमां मिथ्यानी अलट लागी रहेछे; हवे तेनाथी सम्यकवंत स्याद्वादी अनुभवनी कथा कहेछे. अरे भाई, जेम कोई नट पुरुष छे ते नाना प्रकारना भेष धारीने नाना प्रकारनां नाम धरावेछे, तेम ज्ञानरूप नट छे, ते नाना आकार धरीने पर्याय प्रमाणे बहुरूपी थायछे पण जेवुं नट द्रव्य एक छे तेवुं ज्ञान वस्तु पण निर्विकल्प एक छे, द्रव्यपणे अविनस्वर छे. अने ज्ञान वस्तु ते ज्ञेय वस्तुथी अव्यापक छे, एटले ज्ञेयवस्तु ज्ञान वस्तुमां एक मेक न थाय तेथी ज्ञान ज्ञेयनी एकता अघटती छे ॥ ५०५ ॥

हवे छठ्ठा एकांतनय सर्व द्रव्यमयी आत्मानो प्रपंच कही देखाडे छेः—

अथ षष्टम सर्व दर्वमय आतमा यह कथनः—

सवैया इकतीसाः—कोउ मंद कहे धर्म अधर्म आकास काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें; जाने न मरम निज मानें आपा परवस्तु बंधे दिढ करम धरम खोवे डगमें; समकिती जीव सुद्ध अनुभो अभ्यासे तातें परको ममत्व त्याग करे पग पगमें; अपने सुभावमें मगन रहे आठों जाम, धारा वाही पंथिक करावे मोष मगमें ॥ ५०६ ॥

अर्थः— कोई मूर्ख ब्रह्माद्वैतवादी एवुं कहे छे के जो कोईनां मतमां धर्म अधर्म आकाश काल जीव पुदगल ए छ एद्रव्य कहेवाय छे ते सर्व ब्रह्म छे. तेथी मारुं पणरूप सर्व जगतमां विस्तरि रह्युं छे. बीजो पदार्थ कोई नथी. आंही गुरु शि

थने कहे छे. अहो शिष्य एतो ब्रह्माद्वैतवादी मूढ मती छे, ते पोतानो मर्म जाण तो नथी; अने पर वस्तु छे तेने आत्मा जाणे छे. एवा मिथ्यात्वथी ए दृढ कर्म बां धे छे. अने जगतमां पोतानो धर्म खोवे छे. पोतानो स्वभाव गमावे छे. जे सम केती जीव होय तेतो सोहं बीजना ध्यानथी शुद्ध अनुभवनो अभ्यास करे, तेथी आत्मतत्व शुद्ध पामे. अने पगले पगले परवस्तुनो त्याग करे, अने पोताना शु द्ध स्वभावमां आठे प्रहर मगन रहे, तेथी ज्ञान धारामां वहेनारो मोक्ष मार्गमां चालनारो कहेवाय छे ॥ ५०६ ॥

हवे सातमो एकांत नय जे ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान तेनो प्रपंच कहि देखाडेछे

अथ सप्तम ज्ञेय क्षेत्र प्रमाण ज्ञान यह कथनः–

सवैया इकतीसाः– कोउ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परवान, तेतो ज्ञान तातें कहुं अधिक न और है; तिहूं काल पर छेत्र व्यापी परनयो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्या दृग दौर है; जैन मती कहे जीव सत्ता परवान ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिर मोर है; ज्ञानकी प्रभामें प्रतिबिंबित विविध ज्ञेय, जदपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठौर है ॥ ५०७ ॥

अर्थः– कोई मूर्ख एम कहे छे के जेटलुं ज्ञेय वस्तुनो आकाररूपनुं प्रमाण छे एटले ज्ञेयनो जेटलुं एक नाहानुं मोहोटुं प्रमाण छे. तेटलुं ज्ञाननुं प्रमाण छे. तेथी कोई वधारे बीजो प्रमाण नथी. एम ज्ञानने त्रणे काळमां परक्षेत्र व्यापी अने पर वस्तुथी परिणम्यो, एटले ज्ञेयथी एक मेक थयो ज्ञानने माने छे. पण ज्ञानने आत्मारूप जाणे नहीं; एवी मिथ्या दृष्टिनी दोर छे. हवे तेने जैनमती स्याद्वादी कहे छे. अहो भाई, जेटलां आकाश क्षेत्रमां जीव सत्ता छे तेटलाज प्रमाण ज्ञान छे. अने ज्ञान छे ते घट पटादिक ज्ञेय पदार्थथी अव्यापक छे एज जगतना मस्तके मुगट समान छे. जो पण ए ज्ञाननी प्रभामां नाना प्रकारना ज्ञेय पदार्थ प्रतिबिंबित थई रह्याछे, तोपण ज्ञाननी स्थिति जूदीज छे. अने ज्ञेयनी स्थिति पण जुदीज छे. अने ज्ञाननुंठेकाणुं आत्मा छे ते पण जुदोज छे, अने ज्ञेयना पृथिवी प्रमुख जे ठेकाणा छे ते पण जुदाज छे ॥ ५०७ ॥

हवे आठमो नय नास्तिकवादी एम कहे छे के वस्तु नथी एज एकांत नय छे. तेनो प्रपंच कही देखाडे छेः– अथ अष्टम नास्तिकवादी वस्तु नाही यह कथनः–

सवैया इकतीसाः–कोउ शून्यवादी कहे ज्ञेयके विनास होत, ज्ञानको विनाश होइ कहो केसे जीजियें; तातें जीवितव्यताकी थिरता निमित्त अब, ज्ञयाकार परि

नार्मनिको नास कीजियें; सत्यवादी कहे भैया हूजें नाही षेद खिनज्ञेयसों विरचि ज्ञान भिन्न मानी लीजीयें; ज्ञानकी शकती साधि अनुजो दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजियें ॥ ८ ॥

अर्थः— कोई बौध मतिनो भेद शुन्यवादी एम कहे छे के, ज्ञेय छते ज्ञान उपजे छे, अने ज्ञेयनो विनाश थए ज्ञाननो पण विनाश थाय छे. अहो प्रतिवादी तमेज कहोछो के ज्ञान ते जीवनुं रूप छे. तो ज्ञाननो विनाश थएथी जीव पण विणसी जाय. तो जीववुं केम होय? तेनो उत्तर के जीवितव्यनी स्थिरताने कारण एटले शाश्वत जीव राखवा निमित्त ज्ञानमां जे ज्ञयाकार परिणाम उपजे छे, तेनुं नाश करियें तो जीवनी स्थिरता थाय, हवे ते उपर सत्यवादी जैनी कहे छे. अहो जाई एम खेदमां खिन्न के० आकुलव्याकुल न थावुं. ज्ञेयथी विरचिने उदासीन थईने ज्ञान वस्तु भिन्नज मानी लइयें. ए ज्ञाननी ज्ञायक शकती छे ते शक्तिनुं साधन करीने अनुनव दशामां ए ज्ञायकने आराधिने कर्मने त्यागी परम रस पीजीए॥ ८ ॥

हवे नवमो एकांत नय देहनो नाश थातां जीवनो नाश तेनो प्रपंच कही देखाडेछे

अथ नवम देहके नाश होत जीवको नाश यह कथनः—

सवै इकतीसाः— कोउ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंम, जब देह नसेगी तबहीं जीव मरेगो; छायाको सो छल किधों मायाकोसो परपंच, कायामे समाइ फिरि कायाकों न धरेगो; सुधी कहे देहसों अव्यापक सदीव जीव, समोपाइ परको ममत्व परिहरेगो; अपने सुजाउ आइ धारना धरामे धाइ, आपुमें मगन व्हेके आपा शुद्ध करेगो. ॥ ए ॥ दोहराः— ज्यों तन कंचुकि त्यागसों, विनसे नांहि जुयंग; त्यों शरीरके नासतें, अलख अखंमित अंग. ॥ १० ॥

अर्थः— कोई चारवाक मती क्रूर एम कहे छे के, काया अने जीव बने एक पिंम छे, तेथी ज्यारे देह नाश पामसे त्यारे जीव पण नाश पामशे. जेम वृक्षनो विनास थये तेनी छाया पण विनाश पामे छे, तेम काया अने जीवनी छायानो छल बनी रह्यो छे. अथवा इंद्र जालनी मायानो प्रपंच बनी रह्यो छे, तेथी ते कायामां समाइने एटले दीपकनी परे ओलवाइने पाछो कायाने धरशे नही. हवे तेने सुधि के० पंमित स्याद्वादी कहेछे. अहो जाई जीव छे ते देहथी सदा अव्यापक छे. एटले जीव देह पणे परिणम्यो नथी. आ जीव पोतानो समय प्रस्ताव पामीने परनो ममत्व छोडशे. त्यारे पोताना शुद्ध स्वजावमां आवीने, धारनाधरामेंधाइके एटले स्थिरता रूप जूमिमां रहीने आप स्वरूपमां आपज मगन थईने आत्मानी शु

हता करशे. ॥ ९ ॥ जेम सर्पना शरीर उपर कांचली आवे, ते कांचलीना त जवाथी भुजंग विणशे नही. तेमज शरीरनो त्याग थातां अलष जीव छे ते अखं मित अंगे रहेछे पण जीवनुं विनाश थतुं नथी. ॥ १० ॥

हवे दशमो एकांत नय देह उपजवाथी जीव उपजे तेनो प्रपंच कही देखाडेछेः—

अथ दशम देह उपजत जीव उपजे यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उ पज्यो हे अब आइके; जोलों देह तोलों देहधारी फिर देह नसे, रहेगो अलष ज्योति ज्योतिमें समाइके ; सदबुद्धी कहे जीव अनादिको देह धारी, जब ज्ञान, होइगो कबहीं काल पाइके; तबही सो पर तजि अपनो सरूप भजि, पावेगो परम पद करम नसाइके. ॥ ११ ॥

अर्थः— कोई दुष्ट बुद्धि धरनार एक ममत्व वालो एम कहेछे के, पेहेलो जीव ह तो नही. अने पृथवी, जल, तेज, वायु, ए चार भूतना मिलापथी देह उपज्यो ते मां ज्ञान शक्तिरूप जीव पण आवी उपज्यो. हवे ज्यांसुधी देह वर्ते त्यांसुधी देह धारी नाम धरावे छे अने पाछो देहनो नाश थशे त्यारे अलख पुरुष ज्योति रू पी छे, ते ज्योतिमां समाइ जाशे. हवे सद्बुद्धि स्याद्वादी कहेछे, अहो भाई जीव अना दि कालथी देह धारी मूर्त्तिक छे एटले नवो उपनु नथी. अने ए जीव कोई काले काल लब्धी पामीने ज्ञानी थाशे. त्यारे देहादिक पर वस्तुने त्यागिनें पोताना स्व रूपने भजसे. पछी कर्मोनो नाश करीने परम पदने पामशे. ॥ ११ ॥

हवे अग्यारमो एकांत नय आत्मा अचेतन तेनो प्रपंच विस्तारथी कहे छे.—

अथ एकादशम आतमा अचेतन यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार परिनयो ज्ञान ता तें चेतना असत हे, ज्ञेय के नसत चेतनाकौ नास ता कारन, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत हे; पंमित कहत ज्ञान सहज अखंमित हे, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत हे ; चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रवान जीव तत हे ॥ १२ ॥

अर्थः— कोई पक्षपाती हठवादी जीव कहेछे. ज्ञान छे ते ज्ञेयनो आकार परिण म्यो होय, अने आकार परिणाम असत छे, तेथी चेतना पण असत छे. तेनो हे तु कहे छे, जुओ ज्ञेयनो नाश थाय तेवारें चेतनानो नाश थाय छे. जे सत् वस्तु होय तेनो तो विनाश किवारे पण न थाय. ते कारणथी चेतना असत् थई तेथी

प्रणे कालमां आत्मा अचेतन थयो. एवुं माहारो मत छे. हवे पंमित स्याद्वादी क हे छे अहो नाई ज्ञान वस्तु सहज स्वनावे अखंमित छे, अने ज्ञेयनो आकार धरेछे तोपण ज्ञेयथी विरक्त छे. जेम आरसीमां आकार नासे तोपण ते आकाररूप आर सी न थाय, जो चेतना लक्षणनोपण नाश मानीए तो जीवनी सत्तानो पण ना श थाय, त्यारे जीव वस्तु पण असत् थाय, तेथी जीव तत्व जे छे ते ज्ञान चेतनाना प्रमाणथीज मानीए ॥ १२ ॥

हवे बारमो एकांत नय अंसप्रमाण जीव सत्तानो प्रपंच कही बतावे छेः–

अथ द्वादशम अंस प्रमान सत्ता यह कथनः–

सवैया इकतीसाः– कोउ महा मूरष कहत एक पिंममांहि, जहांलों अचित चित अंग लहलहे हे; जोगरूप नोग रूप नाना कार ज्ञेय रूप. जेने नेद करम के तेते जीव कहे हे; मतिमान कहे एक पिंममांहि एक जीव, ताहीके अनंत नाव अंस फेलि रहे हे; पुग्गलसों निन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विन से थिरता सुनाव गहे है. ॥ १३ ॥

अर्थः–कोई बौधमती महा मूर्ख एम कहेछे के, एक शरीरमां ज्यां लगी अचि त चित अंग के० घटपटादिक अचेतन विकल्प अथवा नर अमर तिर्यंचादि चेतन अं ग ते सचित विकल्प चकचकी रह्याछे, योगपरिणामथी योगरूप नोगपरिणामथी नोगरूप एम ज्ञेयनां नानाप्रकार रूप जेटलां कर्म के० क्रियाना नेद थायछे. ते टलाने जीव संख्या कहेछे, एटले जीव सत्ता अंस प्रमाण थई, हवे बुध्दिवंत स्याद्वा दी एम कहेछे के, अहो नाई एक पिंममां एक जीव छे अने ते जीवना ज्ञान परि णामे करीने अनंत नाव नासनरूप अंस फेली रह्या छे. पण जीव छे ते पुद्गल थी निन्न छे, अने कर्मयोगथी अनिन्न के० निराकुल छे, तेमां नाव अंस अनंत उ पजेछे. अने अनंत विणसे छे पण जीवतो स्थिरतारूपज ग्रही रह्यो छे ॥ १३ ॥

हवे तेरमो एकांतनय क्षणनंगुर जीवनो प्रपंच कही देखाडे छेः–

अथ त्रयोदशम छिननंगुर जीव यह कथनः–

सवैया इकतीसाः– कोउ एक छिनवादी कहे एक पिंममांहि, एक जीव उपजत एक विनसतु है; जाही समै अंतर नवीन उतपति हुइ ताही समै प्रथम पुरातन वसतु हे; सरवंग वादी कहे जेसे जलवस्तु एक, सोइ जलविविध तरंगनि लसतु है तेसें एक आतम दरव गुनपरजेसों अनेक नयो पें एक रूप दरसतु है ॥ १४ ॥

अर्थः– कोई एक क्षणवादी बौध एम कहेछे के एक पिंममां एक जीव उपजे

छे. एक जीव विणसे छे. जे समे पिंडमां नवा जीवनी उत्पत्ति न थाय ते समे पेहलो पुराणो जीव छे ते वसे छे, पछी ते विणसेछे. एम शृंखला बंध उपजे विणसे छे, तेने सर्वांगवादी जैनमती एम कहेछे के अहो नाई, जेम तलाव प्रमुख ज लाश्रयमां जल वस्तु एक छे तेज जल विविध तरंगे करी लसित के० भिन्न भिन्न देखाय छे, तेम एक आत्मा द्रव्य छे ते गुण पर्यायथी अनेक रूप थयो छे तोपण द्रव्यार्थिक नये एक रूपेंज देखीए छे. ॥ १४ ॥

हवे चउदमो एकांतनय ज्ञायक अज्ञायकनो प्रपंच कही बतावे छेः—

अथ चतुर्दशम अज्ञायक ज्ञायक नय यह कथनः—

सवैया इकतीसाः— कोउ बाल बुद्धि कहे ज्ञायक सकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये; ज्ञायक सकति काल पाई मिटि जाई जब, तब अ विरोध बोध विमल वखानिये; परम प्रवीन कहे ऐसी तो न बनें वाही, जैसे बिनुं परगास सूरजन मानिये; तेसें विनुं ज्ञायक सकति न कहावे ज्ञान, यहतो न पछ परतक्ष परवानिये. ॥ १५ ॥

अर्थः— जेनी बालकना जेवी तुछ बुद्धि छे. एवो कोई शुन्य वादी तथागत कहेछे के, ज्यां लगे ज्ञानमां ज्ञायक शक्ति छे, त्यां लगें जगतमां ज्ञान अशुद्ध कहेवायछे, तेनो एज परमार्थ छे, के जे ज्ञायकपणुं छे ते विकल्परूप छे. अने विकल्प थी ज्ञान अशुद्ध थाय छे, तेथी निर्विकल्प ज्ञान शुद्ध छे. ज्यारे नवितव्यताने व शथी पोतानो समय प्रस्ताव पामीने ज्ञायक शक्ति छे ते मटी जाय, त्यारेज विक ल्पना विरोधथी रहित एवुं बोध के० ज्ञान ते विमल के० शुद्ध वखाणीए. हवे एने परम प्रवीण स्याद्वादी कहेछेः— अरे नाई जे तुं ज्ञायक एकतामां विकल्प मानीनें शंका पामेछे, अने ज्ञायक पणुं अशुद्ध मानेछे, ए वात बने नही. जेम प्रका शविना सूर्य मान्यो न जाय, अने प्रकाशथीज सूर्य मान्यो जाय, तेम ज्ञायक श क्तिविना ज्ञानपण कहेवाय नही, जो तमे अनुमानप्रमाणथी तमारो पक्ष साधन करता नथी, तो प्रत्यक्ष प्रमाणथी पण तमारो पक्ष प्रमाण कीधो न जाय, तेथी तमारो पक्ष छे ते पक्षानास छे. ॥ १५ ॥

हवे जेणे चउद एकांत नय हटावी दीधा एवो जे स्याद्वाद तेनी स्तुतिकरेछेः-

अथ स्यादवाद प्रशंसा कथनः—

दोहराः— इह विधि आतम ज्ञान हित, स्यादवाद परवान, जाके वचन बि चारसों, मूरख होइ सुजान ॥ १६ ॥ स्यादवाद आतम सदा, ता कारन बल

वान, शिव साधक बाधा रहित, अषे अखंमित आन ॥१७॥ स्यादवाद अधिकार यह, कह्यो अलप विसतार, अमृत चंद मुनिवर कहे, साधक साधि डुवार ॥१८॥

अर्थः– आवी रीते आत्माना ज्ञाननो हितकारी स्याद्वाद मत छे, तेज प्रमाण जाणवो. जे स्याद्वादनी वचन युक्तिमां पूर्वे मूर्ख होय ते सुजाण थाय. ॥१६ जे स्याद्वाद स्वरूप छे तेज आत्मानी दशा छे. ते कारणथी स्याद्वाद छे ते महा बलवान छे. मोक्षनुं साधक छे, अने कोई युक्तिथी नांगे नही, तेथी ते बाधा रहित छे अक्षय छे. अने सर्व नयमां फेलि रह्यो छे तेथी अखंमित एनी आण छे ॥१७॥ श्री आचार्य एम कहे छे के, आ कंईक स्याद्वादनो अधिकार अल्पविस्तारथी कह्यो हवे श्री अमृतचंद आचार्य बारमो साध्य साधक द्वार कहे छे. ॥ १८ ॥

इति श्री नाटक • समयसारना इग्यारमां स्याद्वाद नामा द्वारनो अधिकार बालाबोध सहित समाप्तः ॥ ॥ ॥ ॥

हवे साध्य वस्तु अने साधक वस्तुनुं स्वरूप देखाडे छेः–

अथ श्री साध्य साधक स्वरूप कथन–

सवैया इकतीसाः–जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अजोगी अमूरतिक परदेशवंत हे; उतपतिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतनत्रयादि गुण नेदसों अनंत हे; सोई जीव दरब प्रवान सदा एकरूप, एसो शुद्ध निहचें सुनाउ विरतंत हे; स्यादवाद मांहि साधि पद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेकों साधक सिधांत हे ॥ १९ ॥

दोहराः– साधि शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत ; साधक अविरत आदि बुध , छीन मोह परजंत. ॥ २० ॥

अर्थः– जे कोई जीव वस्तु छे ते द्रव्यथी अस्तिपणे प्रमेयपणे अगुरु लघु पणे अजोगीपणे अमूर्त्तिक पणे, प्रदेशवंत पणे, प्रवर्ते छे, तेमां जे नास्तिपणुं नही ते अस्तिपणुं जाणवुं, अने प्रमाण ग्रहण करवा योग्य छे, तेथी प्रमेयपणुं छे अपुदगलीक पणाथी अगुरु लघुपणुं छे, इत्यादि धर्म छे. उत्पत्तिरूप पर्यायथी विनाश रूप पर्यायथी अविचलरूपथी ज्ञान दर्शन चारित्र रत्नत्रय कहिए. इत्यादिक गुणोना नेदथी अनंत पणुं लीधो वर्त्ते छे. तेज जीवद्रव्य एकरूपज सदा प्रमाण छे. ते एकरूपने अस्तित्व प्रमेयत्वादिक धर्म करी आगल कह्यो तेज शुद्ध निश्चयनयथी एनो एवो स्वनाव वृत्तांत छे तेज साध्य पद कह्युं एटले साधवालायक वस्तु ते स्याद्वाद अधिकारमां कह्युं. हवे आगल एने साधवानुं सिद्धांत साधकछे

॥ १९ ॥ सुद्ध केवलीनी दशाने साध्य वस्तु कहीए. अथवा महंत सिद्धपणुं ते साध्य वस्तु छे. अने चोथा अविरत गुणठाणाथी मांमीने बारमां क्षीण मोह गुणठाणा पर्यंत नव गुणठाणाना धणी जे बुध के० पंमित छे, ते सर्वने साध्य कहीए.२०

हवे अविरत्यादि साधकनी व्यवस्था कहेछेः— अथ साधक व्यवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः— जाको अधो अपूरव अनवर्त्ति करनको, नयो लाज नई गुरु वचनकी बोहनी; जाके अनंतानुबंध क्रोध मान माया लोज, अनादि मिथ्यात मिश्र समकित मोहनी; सातों परकिति खपी किंवा उपसमी जाके, जगी उरमांही समकित कला सोहनी; सोइ मोक्ष साधक कहायो ताके सरवंग, प्रगटी शगतिगुन थानक आरोहनी. ॥ २१ ॥ सोरठाः— जाको मुगति समीप, नई नव स्थिति घट गई; ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुकता बचन. ॥ २२ ॥

अर्थः— जे जीवने अधो के० यथाप्रवर्त्ति करणनो अने अपूर्व करणनो तथा अनिवृत करणनो लाज थयो, एटले ए सम्यक्त प्राप्तिना त्रण करण छे तेनो लाज थयो, अने जेने गुरु वचननी बोहनी थई एटले गुरु उपदेशनो लाज थयो, तेथी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया अने लोज, तथा अनादिकालनी मिथ्यात मोहनी, मिश्रमोहनी अने सम्यक्त मोहनी, ए सात प्रकृति जेनी क्षय थई, अथवा उपशमी अथवा सातेमां कंइ खपी कंइ उपशमी, एवी जेना हृदयामां सुहामणी समकितनी कला जागी. तेज जीव मोक्षनो साधनारो कहेवाय. तेना सर्व अंगमां एटले बाह्य अभ्यंतर अंगमां गुणस्थानक आरोहणी के० चढवानी शक्ति प्रगटी॥२१॥ जेने नवस्थितिना परिपाकथी मुक्ति समीप थई, अने संसारनी स्थित घटी गई, ते पुरुषनी मनसा शीप समान थई, त्यां सदगुरु ते मेघ समान थयो, ते सदगुरुना वचन तेनी मनसारूप सीपमां अमौलिक मोती जेवा थयां थकां रुचे छे॥ २२ ॥

हवे सदगुरुने मेघनी उपमा कहीने स्तवे छेः— अथ गुरु प्रशंसाः—

दोहराः— ज्यों बरषे बरषा समे, मेघ अखंमित धार, त्यों सदगुरु बानी खिरें, जगत जीव हितकार ॥ २३ ॥

अर्थः— जेम वरसाद कालमां मेघ अखंमित धारायें वरसे. तेमज सदगुरु होय ते जगतवासी जीवने हित कारक अमृत वाणी खेरे छे ॥ २३ ॥

हवे सदगुरुना उपदेश आक्षेपणी धर्म कथा कहे छेः— अथ उपदेश कथनः—

सवैया तेईसाः— चेतनजी तुमजागि विलोकहु लाग रहे कहाँ मायाकि ताँई; आय कहींसुँ कहीं तुम जाउगे माया रहेगि जहाकि तहांई; माया तुह्मारि

न जाति न पाति न वंसकि वेली न अंसकि कांई; दासि किए बिनु लातनि मारत, एसि अनीति न कीजे गुसांई ॥ २४ ॥ दोहराः— माया छाया एक है, घटे बढे छिनमांहि; इन्हकी संगति जे लगे, तिनहिं कहुं सुख नांहि ॥२५॥ सवैया तेईसाः— लोगनिसों कछु नांतों न तेरों न तोसों कछू इह लोगकों नांतो; ए तों रहेरमि स्वारथके रस, तूं परमारथके रस मातो; ए तनसों तनमें तनसे जड, चेतन तूं त नसों नित हांतो; होहि सुखी अपनो बल तोरिकें राग विराग विरोधकों तांतो. ॥ २६ ॥ सोरठाः— जे दुरबुद्धीजीव, ते उतंग पदवी चहे; जे समरसी सदीव, तिन्हकों कछू न चाहिए ॥ २७ ॥ सवैया इकतीसाः— हांसीमें विषाद बसे विद्यामें विवाद बसे, कायामें मरन गुरुवर्त्तनमें हीनता; सुचिमें गिलान बसे प्रापतिमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छबि छीनता; रोग बसे भोगमें संयोगमें वियोग बसे, गु नमें गरव बसे सेवामांहि दीनता; और जगरीति जेती गर्भित असाता सेती, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥ २८ ॥ दोहराः— जिहि उतंग चढि फिरि पतन, नहि उतंग बहिकूप; जिहि सुख अंतर भयवसे, सो सुख है दुखरूप ॥ २९ ॥ जो विलसे सुख संपदा, गये ताहि दुख होइ; जो धरती बहु त्रिणवती, जरे अगनि सों सोई ॥ ३० ॥ इति गुरुउपदेस समाप्तः दोहराः— सबदमांहि सतगुरु कहे, प्रगटरूप जिन धर्म; सुनत विचक्षण सद्दहे, मूढन जानें मर्म ॥ ३१ ॥

अर्थ.— अहो जीव चेतन, तमे मोह निद्रा तजीने जागो, अने सत्य स्वरूप दे खीने मायारूप संपदाने शुं वलगी रह्याछो; पृथिवी प्रमुख अढार भारादीक जे छे तेमां तमे क्यांथी आव्या छो? अने कही दशामां जाशो? अने जेनी सा थे तमे राची रह्याछो, तेतो मायाजाल संपदा ज्यांनी त्यां रहेशे. ए मायाजाल तमा री जाती नथी, तथा पाती नथी अने माया तमारा वंसनी वेली नथी, अने तमा रा अंश के० एक देशनी पण कांई नथी, तेथी तमारे अने मायाने संबंध तो को ई पण नथी. अने तमे पोतानी करीने जाणोछो. तेथी ए कहेवत साची करो छो, के दासी कर्या वगर लात मारो छो, तेथी उतपात थाशे. माटे हे महंत पुरुषो एवी अनीति न करवी ॥ २४ ॥ माया अने छाया एक सरखीज छे. क्षणमां वधे छे अने क्षणमां घटे छे. तेथी ए मायानी संगते जे लागी रहेछे. तेने क्यारे पण सुख थातुं नथी ॥ २५ ॥ आ जे पुत्र कलत्रादिक तुं पोताना जाणे छे. तेतो पारका लोको जेवा छे, ए लोकोनी साथे तारो कांई नातो नथी. अने ए लोकोने पण ता हारी साथे कोई प्रकारनो नातो नथी. ए जे पुत्रकलत्रादि लोको छे तेतो पोता

ना स्वारथना रसथी ताहरी साथे रमी रह्या छे, अने अरे चेतन तुं तो पोतानी चेतना रूप परमारथना रसमां राची रह्यो छुं. वळी ए जे लोको छे ते तारा तनथी तनमय थई रह्या छे, एटले ताहारा शरीरथी मोहीत छे, अने ए शरीर तो जड छे अने तुं तो चेतन छे. तेथी ते जडथी ताहारी सदा भिन्नता छे. माटे राग अने द्वेष रूप मोह कर्मनो नांतो तोमी पोतानुं बळ फोरवीने सुखी था॥ २६ ॥ जे जीव राग द्वेषथी दुष्ट बुद्धि थई रह्यो छे. तेतो इंद्रादिकनी उंची पदवी चाहे छे, अने जे जीव सदाई समरसी भावमां रहे छे. तेने कोई उंच पदवीनी चाहना थाती नथी. ॥ २७ ॥ हांसीने सारी मानीए छे पण तेमां विषवाद वसे छे, विद्याने सारी जाणीए छीए पण तेमां विवाद जगडो वसे छे, कायाने सारी जाणीए छीए पण तेमां मरणदोष छे, गुरुताई के० बडाईने सारी जांणीए छीए, पण तेमां कोईकवारें हीणता छे, पवित्राई सारी जाणीए छीए, पण एने आदि के० अंते दुगछा उपजे छे, प्राप्ति सारी जाणीए छीए पण तेनी साथे हाणी लागी रही छे, जीतवुं भलुं छे पण तेनी साथे हारवुं लाग्युंज छे, ज्ञानीनी सुंदर दशा भली छे पण अंते कांती क्षीण थई जाय छे, भोगनुं सुख सारुं छे, पण तेमां रोगनी उत्पत्ति छे, इष्ट संयोग भलो छे पण तेनी साथे वियोगपण तैयार थई रहे छे, प्रीती भली छे पण तेनीसाथे अप्रीति पण उपजे छे, औदार्यादिक गुणमां गर्व अहंकार वसे छे, राज सेवा सारी छे, पण तेमां दीन पणुं वसे छे, अने बीजी जेटली जगतवासी जीवोनी रीत सारी जाणीए छे, तेतो सर्व अंतर गर्भित अशाता सहित छे. तेथी एकली उदासीनताज शातानी साहेली छे. माटे समरस भावज श्रेष्ट छे ॥ २८ ॥ जे उंचे ठेकाणे चढीने पछी नीचे पडवुं थाय, ते उतंग ठेकाणुं न कहेवाय. पण ते ठेकाणुं कुवा जेवुं कहेवाय, तेम जे सुखना अंदर दुःख वसे छे ते सुख पण दुःखरूप कहेवाय छे॥ २९ केमके सुख संपदा विलसे छे पण पछी तेना नाशथी दुःख थाय छे. जेम तृणोवाली धरती अग्निथी बळी जाय छे. पण तृणविनानी धरती कोई रीते बळती नथी, ए दृष्टांते जाणी लेवुं ॥ ३० ॥ एरीते गुरु उपदेश सुचनीकामात्र संपूर्ण थयुं, सदगुरु जे छे ते जिनधर्मने प्रगट रूप शब्दमांज कहे छे. एटले वचनमां वखाणे छे. ते जिन धर्मने सांभळी विचक्षण पुरुष होय ते सद्दहे छे, अने मूर्ख होय ते तेनो मर्म जाणे नही ३१

हवे कोईकने उपदेशनी रुचिछे, अने कोईकने नथी तेनुं स्वरूप कहे छेः—

अथ उपदेश रुचि अरुचि कथनः—

सवैया तेइसाः— जेसे काहू नगरके वासी द्वे पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट ए

क दुष्ट उरको; दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू ओर पंथिककों पूछे पंथ पुरको; सोतो कहे तुह्मारो नगर हे तुमारे ढिग, मारग दिखावे समुजावे खोजपुर को; एते पर सुष्ट पहिचाने पें न माने दुष्ट, हिरदे प्रमान तेसे उपदेश गुरुको ॥३१॥ सवैया इकतीसाः— जेसे काहू जंगलमें पावसको समो पाई अपने सुनाई महा मेघ बरषतु हे; आमल कषाय कटु तीषन मधूर षार, तेसो रस वाढें जहां जेसो दरषतु हैं; तेसो ज्ञानवंत नर ज्ञानकौ बखान करे, रसको उमाहो है न काहू परष तु है; वहे धुनि सुनि कोउ गहै कोउ रहै सोई, काहूकों विषाद होई कोउ हरषतु है॥ ३२ ॥ दोहराः— गुरु उपदेश कहा करे, दुराराधि संसार; वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ ३४ ॥

अर्थः—जेम कोई नगरना वासी बे पुरुष नगरमांथी निकलीने दिशा भूली गया, ते बे पुरुषमां एक तो सुष्ट के० हैयाना सरल स्वभावनो हतो, अने एक हैयानो दुष्ट हतो, पछी ते बने पुरुष नगरनी समीपज फरवा लाग्या पछी कोई बीजा वाटमार्गुने नगरनो मारग पूछवा लाग्या, त्यारे ते कहेवा लागो जे तमारुं गाम तो तमारी समीप छे, एम कही ते बेनेने मारग देखाडे, अने रुडी रीते पुर के० नग रने खोज करी समजावे, पग बतावे तेमां जे सरल हैयानो छे. तेतो साचुं माने. पण दुष्ट हैयानो छे ते माने नही, तेम गुरुनो उपदेश छे तेपण पुरुषना हैया प्र माणे छे ॥ ३१ ॥ जेम कोई अरण्यमां वरसाद पोतानो समय पामीने स्वभावथी महा मेघ वरषे छे. त्यारे आंबली प्रमुख खाटा रसवाला तथा बावल प्रमुख कसा एल रसवाला, अने लिंबडा प्रमुख कडवा रसवाला, जाल प्रमुख नीख रसवाला, जेठी मध प्रमुख मधुर रसवाला, अने लोण प्रमुख क्षार रस वाला झाडोमां तेउ ना गुण प्रमाणे रस वृद्धि थाय छे, तेम ज्ञानी आचार्य प्रमुख पोताना वचन वर्गणा वचन योगे खिरे के० प्रकाशे छे, ते ज्ञाननुं वखाण करतां पोताना अनुभ व रसमां उमग थई रह्या छे, पण ते वखते कोई योग्य अयोग्य श्रोतानी परिक्षा करता नथी, पछी ते श्रोता पुरुषोमां ते ज्ञाननी ध्वनि सांभलीने कोई तेनी वा णीने ग्रहे छे, कोई सुई रहेछे, निद्रा करे छे, कोई मिथ्यादृष्टिने विषादपण थाय छे, अने कोई सम्यक् दृष्टि छे ते हर्ष पण पामे छे ॥ ३२ ॥ माटे गुरुनो उपदेश शुं करे आ संसारी लोक दुराराध्य छे, समजाववा कठण छे, जे संसारना उदरमां पांच प्रकारनी श्रद्धावाला जीवो छे, ते सदा वसीज रह्या छे. ॥ ३४ ॥

हवे पांच प्रकारना जीवनां नाम कहे छेः— अथ पंच प्रकार यथाः—

दोहराः—मूंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रोचक शुद्ध, ऊंघा दुरबुद्धी विकल, घूंघा घोर अबुद्ध ॥ ३५ ॥

अर्थः—एक तो मुंघा तेतो प्रभु स्वामी छे, बीजा चुंघा के० चतुर छे, त्रीजा सुंघा के० रुचिवंत छे, चोथो उंघाके० दुष्ट दुरबुद्धि छे, अने विकल छे पांचमा घूंघा के० घोर कुबुद्धि छे ॥ ३५ ॥

हवे मूंघानुं लक्षण कहे छेः— अथ मूंघा यथाः—

दोहराः— जाकी परम दशाविषे, करम कलंक न होइ; मूंघा अगम अगाध पद, वचन अगोचर सोइ ॥ ३६ ॥

अर्थः— जेनी उत्कृष्ट दशा वर्णवेली छे, जेमां कोई कर्मरूप कलंक देखाय नही, एवो जे अगम तथा अगाध पद छे एटले सिद्ध पद छे जे वचननो विषय थई शके नही तेने मूंघा कहिये. ॥ ३६ ॥

हवे चुंघानुं लक्षण कहेछेः— अथ चुंघा यथाः—

दोहराः—जे उदास व्है जगतसों, गहे परम रस पेम ; सो चूंघा गुरुके वचन, चूंघे बालक जेम. ॥ ३७ ॥

अर्थः— जे जीव जगतथी उदासी थई रहे छे, अने जे परम दशामां रही तेना प्रेम सवादने ग्रहे छे. एटले उत्कृष्ट दशा चावे छे, तेतो गुरुना वचनने बालकनी परे चुंघे छे. अने पुष्ट थाय छे, ते चुंघा कहेवायछे. ॥ ३७ ॥

हवे सुंघानुं लक्षण कहेछेः— अथ सुंघा यथाः—

दोहराः— जो सु बचन रुचिसों सुनै, हिए दुष्टता नांहि; परमारथ समुझै नही, सो सुंघा जगमांहि. ॥ ३८ ॥

अर्थः—जे रुचियें करी आगमना अंग जे सु वचन तेने सांभले छे. जेना हृदयमां दुष्टता नथी, पण सूक्ष्म तत्वने समझे नही तेने जगतमां सुंघा पुरुष कहीयें.॥३८

हवे उंघानुं लक्षण कहेछेः— अथ उंघा यथाः—

दोहराः— जाकों विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट ; सो उंघा विषई विकल, दुष्ट रिष्ट पापिष्ट. ॥ ३९ ॥

अर्थः—जेने विकथानां वचन हितकारी लागे छे, अने आगम अंग अनिष्ट लागे छे. तेतो विकल विषयी जीव उंघा कहेवाय, दोषवंत रोसवंत पापकर्मी थई रहेछे.

हवे घूंघानुं लक्षण कहेछे.— अथ घूंघा यथाः—

दोहराः— जाके श्रवन बचन नही, नहि मन सुरति विराम; जडता सो जड वत भयो, घूंघा ताको नाम. ॥ ४० ॥ चोपाईः-- मूंगा सिद्ध कहे सब कोऊ; सुंघा उंघा मूरख दोउ; घूंघा घोर विकल संसारी; चुंघा जीव मोष अधिकारी. ॥ ४१ ॥ दोहराः— चूंघा साधक मोषको, करे दोष दुःख नास; लहे पोष संतोष सों, वरनों लछन तास. ॥ ४२ ॥

अर्थः-- जेने वचन नथी एटले एकेंद्रिय छे अने जेने श्रवण नथी एटले बेंरिंद्रिय तेरिंद्रिय, चोरंद्रिय छे. अने जेने मननी सुरता नथी एटले असंज्ञी छे, वली जे विराम के० विरती नथी. अज्ञानरूप जडताथी जडरूप थई रह्या छे. तेने घुंघा कहीए. ॥ ४० ॥ डुंघा पुरुषने तो सहु कोई सिद्ध कहे छे, सूंघा अने ऊघा ए बंने मूर्ख छे, अने घूंघा होय तेतो अघोर अंधारामां विकल संसारी जीव छे. अने चुंघा जीव छे तेतो मोक्षना अधिकारी होय, अने मोक्षना वांछक होय ॥ ४१ ॥ चूंघो छे तेतो मोक्षनो साधक छे, दोष अने दुःखनो नाश करे छे, अने संतोषथी पुष्टता पामे छे, तेनुं लक्षण वरणुं छुं. ॥ ४२ ॥

हवे मोक्ष साधननुं उदाहरण कहेछेः-- अथ साधक लक्षणः—

दोहराः— कृपा प्रसम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग; ए लछन जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग. ॥ ४३ ॥

अर्थः--कृपा जे दया, तथा जे कषायना उदयनुं दबाववुं ते, प्रसम अने संवेग ते मोक्षना अभिलाषनु पद के० स्थानक छे, तथा दम ते इंद्रियदमन, आस्ति एटले जिनोक्त वचन उपर श्रद्धा, एहवो वैरागीभाव छे. एटला लक्षण जेना हृदयमां रहे छे अने सात व्यसननुं त्याग करे तेज साधक होय. ॥ ४३ ॥

हवे साते व्यवसनना नाम कहेछेः—अथ सप्त व्यसन नामः—

चोपाईः— जूवा आमिष मदिरा दारी; आषेटक चोरी परनारी; एई सात व्यसन दुख दाई; दुरित मूल दुर्गतिके भाई. ॥ ४४ ॥ दोहराः—दर्वित ए सातों व्यसन, दुरा चार दुख धाम; भावित अंतर कलपना, मृषा मोह परिनाम. ॥ ४५ ॥

अर्थः— जुगार १, मांस भक्षण २, मदिरापान ३, वेश्या गमन ४ आखेटक के० शिकार खेलवो ५, चोरी करवी ६, परस्त्री गमन ७, ए सात्त व्यसन कहेवाय छे, ते संसारमां दुःखदाई छे. पापना मूल छे अने दुर्गतिना भाई छे. ॥ ४४ ॥ ए जे क्रियारूप साते व्यसन छे ते द्व्यरूप छे. ए दुष्ट आचाररूप दुःख धाम

के० दुःखनुं घरछे. अने जेना अंतरमां वृथा के० जूठा मोह परिणामनी कल्पना के० विचारणा ध्यावमा थाय छे. ते नावित व्यसन कहीए. ॥४५॥

हवे नावित सात व्यसननी व्यवस्था कहेछेः—अथ नावित व्यसन व्यवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः— अशुनमें हारि शुन जीति यहे दूत कर्म देहकी मगनताई यहे मांसनषिवो; मोहकी गहलसों अजाने यहे सुरापान, कुमतिकी रीति गनिका को रस चाखिवो; निरदे व्हे प्राण घात करिवो यहे सिकार, परनारी संग परबुद्धिको परषिवो; प्यारसों पराई सोंज गहीवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विमारि ब्रह्म लखिवो. ॥ ४६ ॥

अर्थः— अशुन कर्मना उदयथी हार मानिये अने शुन कर्मना उदयथी जीत मानिये तेतो जुगार खेलवो छे, देह उपर मगनता रहे तेतो मांस नक्षण जाणवो, मोह कर्मथी मूर्छित थई रह्याथी अजाण थई रह्यो होय तेज सुरापान व्यसन छे, कुबुद्धिनी रीते चालवुं तेतो वेश्याना रसनु चाखवुं छे, निर्दय परिणाम राखीने प्राणघात करवो, तेज शिकार खेलवो छे. पररूप जे पुद्गलादिक तेनी बुद्धिने परखवी तेतो परनारी सेवा व्यसन छे, पारकी सोंज सामग्री उपर प्रीत राखीने प्यार मेलववानो चाह राखे तेज चोरी छे, ए नावित सात व्यसननुं विदारण करवाथी ब्रह्म लख्यो जाय छे. ॥ ४६ ॥

हवे मोक्षना साधकनी व्यवस्था कहेछेः— अथ साधक व्यवस्थाः—

दोहराः— विसन नाव जामें नही, पौरुष अगम अपार; किये प्रगट घट सिंधु मथि, चौदह रतन उदार. ॥ ४७ ॥

अर्थः— जेना चित्तमां व्यसननाव पामिए नही, अने अगम अपार पुरुषातन पामिए, तेणे घटरूप समुद्र मंथन करीने उदार के० अमुल्य चौदे रत्न प्रगट कीधां४७

हवे नावित चौद रत्ननुं वर्णन करेछेः—अथ नावित चौद रतनको बरननः—

सवैया इकतीसाः— लक्ष्मी, सुबुद्धि, अनूनूति, कउस्तुनमनि, वैराग कलपवृक्ष, संत सुवचन है; ऐरावत उद्यिम प्रतीतिरंना, उदैविष कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है; ध्यान चाप प्रेमरीति मदिरा विवेक वैद्य शुद्धनाव चंद्रमा तुरंगरूप मन है; चौदह रतन ए प्रगट होइ जहां तहां, ज्ञानके उदोत घट सिंधुको मथन है. ॥ ४८ ॥

दोहराः— किए अवस्थामें प्रगट, चौदह रतन रसाल, कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकी चाल. ॥ ४९ ॥

अर्थः— सुबुद्धि उपनी तेतो लक्ष्मी उपनी १, आत्मानो अनुनव उपनुं तेतो

कौस्तुजमणि उपनुं २, वैराग उपज्यो तेतो कल्पवृक्ष उग्युं ३, जाषा सुमति उपजी तेतो संख उपज्यो ४, उद्यम उपज्यो तेतो ऐरावत हाथी उपज्यो ५, प्रतीत उपजी तेतो रंजा उपजी ६. कर्मनो उदय तेतो विषय उपज्युं ७, कर्म निर्जरा थइ तेतो कामधेनुं उपजी. ८. आनंद उपज्यो तेतो अमृतघन उपज्युं. ९, ध्यान उपज्युं तेतो चाप के० सारंग धनुष उपज्युं. १०, प्रेमरीत के० प्रेमनी लय उपनी तेतो मदीरा उपनी. ११, विवेक उपनो तेतो धनवंतरि वैद्य उपनुं. १२, शुद्धजाव उपनो तेतो चंद्रमां उपनुं. १३, मन शुद्ध थयुं तेतो सात मुखो अश्व उपनु. १४, एच ऊद रत्नतो त्यां प्रगट थाय छे ज्यां ज्ञाननो उदय थवाथी पोताना ज्ञानरूप घट समुद्रनुं मंथन थाय छे तिहां उपजे छे एम जाणवुं ॥ ४८ ॥ साधनी अवस्थामां ए चौदे रत्न रसाल हतां ते प्रगट कीधा, ए चौद रत्नमां विधि निषेधनी चालमां एटले हेय, उपादेयनी चालमां कंइक त्यागे छे अने कंइक संग्रह करेछे ॥ ४९ ॥

हवे जावित चउद रत्न तेमां आठ रत्न त्यागवा योग्यछे अने छ रत्न ग्रहण करवा योग्य छे ते कहेछेः— अथ अष्ट रतनषट उपादेय कथनः—

दोहराः— रमा, संष विष धनु सुरा, वेद धेनुं हय हेय, नति रंजा गज कल्पतरु, सुधा सोम आदेय ॥ ५० ॥ इह विधिजो परजाव विष, वमे रमे निजरूप, सो साधक शिवपंथको, चिदविवेक चिद्रूप, ॥ ५१ ॥

अर्थः— रमाके० लक्ष्मि तेतो सुबुद्धि १ सुवचनशंष २, उदय विषय, ३ ध्यान धनुष, ४ प्रेम रीत मदिरा, ५ विवेक वैद्य ६ निर्जरा काम धेनुं, ७ मन शुद्धते घोडो, ८ ए आठ अथिर छे तेमाटे छांमवा योग्य छे अने अनुजव मणि, १ प्रतिति रंजा, २ उद्यमहाथी, ३ वैराग्य कल्पवृक्ष, ४ आनंद सुधा, ५ शुद्ध जाव चंद्रमा, ६ ए छ रत्न गृहण करवा योग्य छे. ॥ ५० ॥ आ रीतिथी पररूप जे कर्मादिक जाव छे. तेज विष थयुं. तेनो जे वमन करे छे. अने पोताना स्वरूपमां रमे छे. तेज पुरुष मोक्ष मर्गनो साधक जाणीये जे ज्ञान जावनो जाणनार अने ज्ञान स्वरूपी तेज साधक कहीए ॥ ५१ ॥

हवे मोक्षपदना साधकनी व्यवस्था कहे छेः—अथ साधक व्यवस्था कथनः—

कवित्त छंदः—ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर निरखेदरव सुगुन परजाइ, जिन्हके सहजरूप दिन दिन प्रति, स्यादवाद साधन अधिकाइ, जे केवल प्रतीत मारग मुषचिते चरन रापें ठहराइ, ते प्रविण करिछिन मोह मल अविचल होइ परमपद पाइ ॥५२॥

अर्थः— जेने घट अंतरमां ज्ञाननी दृष्टि जागी तेथी द्रव्यने देखे जाणे ते द

व्यना गुण जाणे. गुणना पर्याय जाणे अने जेने सहज रूपेज एटले नवतव्यताना परिपाकथी दिन दिन प्रत्ये स्याद्वादनुं साधन अधिक थई रह्यो छे. अने जे केवलीना कहेला मारगने सन्मुख थई रहे. एज चित राखे अने एज मारगविषे चरण ठरावी राखे, ते प्रवीण पुरुष मोहरूप मलने क्षीण करी परम पद पामी अविचल थायछे॥५२॥

हवे सम्यक् दृष्टिनी व्यवस्था अने मिथ्यात्व दृष्टिनी व्यवस्था कहेछेः–

अथ सम्यक् दृष्टि मिथ्या दृष्टि व्यवस्थाः--

सवैया इकतीसाः– चाकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिनि सम्यक मिथ्यात नाश करिके; निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिनि, कीनी मोष कारन अवस्था ध्यान धरिके; सोई शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनाशी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके; मिथ्यामति आपनो सरूप न पिछाने तामें, भोले जग जालमें अनंत काल भरिके. ॥ ५३ ॥

अर्थ.– जेम रात्रिनेविषे चकवो फिरतो फरतो रहे छे, तेम संसारमा फिरतां फिरतां जेनो अंत निकट आव्यो, सम्यक पाम्यो. मिथ्यात्वनो नाश करीने राग द्वेपादिक रहित एवी मनसारूप भली भूमिका जेणे साधि लीधी, अने ध्यान धरिने पोतानी अवस्था मोक्षपदना कारणरूपी कीधी, तेज सम्यक दृष्टि शुद्ध अनुभवनो अभ्यासी थयो. एम कर्म रोगने गमावीने अविनासी थयो. एटले जन्म मर्ण टल्यो. सिद्ध थयो, एवी सम्यक दृष्टि पाम्याविना मिथ्याती पोतानुं स्वरूप ओलखे नही. तेथी अनंतकाल भरिके के० लगी जगतनी जालमां भोले ॥ ५३ ॥

हवे जे आत्मानो अनुभव पाम्यो तेनो विलास कहेछेः– अथ अनुभव विलासः–

सवैया इकतीसाः– जे जीव दरवरूप तथा परजायरूप, दोउ नै प्रवान वस्तु सुद्धता गहत है; जे अशुद्धभावनिके त्यागी भए सरवथा विषेसों विमुष व्है विरागता चहत है; जो ग्राहजभाव त्यागभाव दुहूं भावनिको, अनुभौ अभ्यासविषे एकता कहत है; तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोष, मारगके साधक अबाधक महत है. ॥ ५४ ॥

अर्थः– जे कोई जीव द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक ए बे नय प्रमाण करीने वस्तुनी शुद्धताने ग्रहेछे, जे जीव राग द्वेष मोहथी आत्मामां जे अशुद्ध भाव छे तेना सर्वथा त्यागी थया छे, तेथी पांच इंद्रियोना विषयथी विमुख थईने वैरागतामां वर्त्तवा लागेछे, अने जे भावित चोदे रत्नमां छ भाव रत्न ग्रहण करवा योग्य छे. अने आठ भाव रत्न त्यागवा योग्य छे, एटले आठ हेयने छ उपादेय छे, ते अ

नुनवना अभ्यासविषे बंने नावनी एकता करेछे, एटले जे द्रव्यमां दृष्टि रहे अने पर्यायमां दृष्टी न रहे, तेने एकता कहेछे. ते जीव ज्ञान क्रिया जे मोक्ष मार्गनुं कारण कह्युं छे तेना आराधक थया. अने सहजरूपमां मोक्ष मार्गना साधक थया; फरी तेने कर्म बाधा न होय, तेथी अबाधक थया महिमावंत थया पुजनीक थया. ५४

हवे जे ज्ञान अने क्रियाने निन्ननावे माने छे तेने एनी एकता कही देखाडे छेः—

अथ ज्ञान क्रिया एकता कथनः--

दोहराः—विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोष; ता परनतिकों बुध कहे, ज्ञान क्रियासों मोष. ॥ ५५ ॥

अर्थः— अनादि काळनी जे अशुद्धता छे तेनुं जिहां विनाश थायछे त्यां शुद्धतानुं पोषण थायछे. एवी जे आत्मानी परिणति थाय तेज ज्ञाननी क्रिया कहेवायछे तेने बुध के० पंमित पुरुष एवुं कहेछे के ए ज्ञान क्रियाथी मोक्ष थाय. आंही ज्ञान तथा क्रियानी जे डुविधा लखेछे ते शब्दनयथी जाणवी. ॥ ५५ ॥

हवे ज्ञानी व्यवहार नयथी थापना देखाडे छेः— अथ ज्ञान द्रव्य स्थापनाः

दोहराः— जगी शुद्ध समकित कला, वगी मोषमग जोइ; वहे करम चूरन करै, क्रम क्रम पूरन होइ ॥ ५६ ॥ जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम; जेसे दीपक जो धरे, सो उजियारो धाम. ॥ ५७ ॥

अर्थः— जेणे शुद्ध समकेतनी कला जाणी अने जे कला मोक्षना मुखमां जावा लागी. ते पुरुष कर्मने चूरण करीने क्रमें क्रमें पूरण थाय ॥ ५६ ॥ जेना घटमां एवी दशा थई रही छे. ते पुरुषनुं साधक नाम केहेवाय जेम दीवानुं अजवाळुं थएथी घरमां पण अजवाळुं थाय, तेम ज्ञानक्रिया तो मोक्ष साधक छे, पण ज्ञानक्रियाने धरतां पुरुष पण साधक थाय ॥ ५७ ॥

हवे ज्ञाननुं फळ कहेछेः— अथ ज्ञानकला वर्ननः—

सवैया इकतीसाः— जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, नयो परगास शुद्ध समकित नानको; जाकी मोह निद्रा घटी ममता पलक फटी, जान्यो जिन मरम अवाची नगवानको; जाको ज्ञान तेज वग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुष पोष समरस सुधा पानको; ताही सु विचक्षन को संसार निकट आयो, पायो तिनि मारग सुगम निरवानको ॥ ५८ ॥ जाके हिरदेमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमाको अनुनौ प्रगट नयो हे; जाकों संकलप विकलपके विकार मिटि, सदा काल एकी नाव रस परिनयो है; जिनि बंध विधि परिहार मोष अंगी

कार, ऐसो सुविचार पछ सोउ छांमि दयो है; जाकी ज्ञानमहिमा उदोत दिनदिन प्रति, सोइ नवसागर उलंघि पार गयो है ॥ ५९ ॥

अर्थः– जेना घटमां अनादिकाळनो मिथ्यात अंधकार हतो ते गयो, अने शुद्ध सम्यक् रूप सूर्यनो प्रकाश थयो. राग द्वेष मोह निद्रा जेनी घटी गई, ममता रूप पलक लागी हती ते फिटि गई. तेथी जिन अवाची नगवाननो एटले सिद्ध स्वरूपनो मर्म पाम्यो, जेनुं ज्ञान तेज वध्युं एटले प्रकाश थयुं. प्रधान उद्यम जाग्यो अने उपशम रस रूप अमृत पानना सुखनो पोष थयो, ते सु विचक्षण पुरुषने संसार निकट आव्यो, तेणे तो सुगम वातमां मुक्तिनो मारग पाम्यो ॥ ५८ ॥

जेना हृदयमां स्याद्वाद स्वरूपनी साधनाथी शुद्ध आत्मानो अनुनव प्रगट थयो अने जेने संकल्प विकल्पनो विकार बहु नातनो हतो ते मटीने सदा कालमां एक चेतना रस जे एकी नावपणुं छे ते पणे परिणम्यो, तेणे करीने बंध विधिनो परिहार जे संवरनुं धरवो ते थयुछे. अने निस्पृह दशाथी मोक्षनो जे अंगीकार तेना विचारनो पक्ष धार्यो छे ते पक्ष छांमी दीधोछे, जेना ज्ञाननो महिमा दिन दिन प्रते उद्योत थयोछे. तेज जीव नव समुद्र उतरीने पार पहोच्यो एम जाणवुं.॥५९॥

हवे अनुनवीनी व्यवस्था तेज उपादेय छे ते कहे छेः–अथ अनुनो व्यवस्था कथन

सवैया इकतीसाः–अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहियें; दीसे एक नैकी प्रतिक्षनी अपर दूजी नैकों नै दिषाइ वाद विवादमें रहिये; थिरता न होइ विकलपकी तरंगनिमें, चंचलता बढे अनुनौ दशा न लहिये; तातें जीव अचल अबाधित अषंम एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥ ६० ॥

अर्थः– कोई नयथी अस्तिरूप छे, कोई नयथी नास्तिरूप छे. कोई नयथी अनेक कोइ नयथी एक. कोई नयथी स्थिररूप कोई नयथी अस्थिररूप, इत्यादि नाना प्रकार स्वरूपथी जीव कहीए. अहीं एक नय जे स्वरूप साधे छे, त्यां ते नयनो प्रतिपक्षी के० उलटी रीते बीजो नय देखाय छे, तेतो पेला नयथी विपरीतपणुं साधे छे, तेथी जो एकांतनयपणुंज ग्रहीए अने ते उपर बीजो नय नदेखामीयें तो वादविवाद थई जाय. तेथी नय नेद करणीथी कुविकल्पना तरंग उठेते तरंगथी चेतन स्थिर न थाय, अने चंचलतापणुं वधे तेथी अनुनव दशाग्रही न जाय. माटे नय पक्ष तजीने अनुनव अभ्यासने कारणे जीव द्रव्य अचल छे. अबाधित छे, अखंम छे, एक छे एवा स्वरूपनो स्थानक साधिने समाधि सुख ग्रहण करिये ॥ ६० ॥

हवे द्रव्य क्षेत्र काल भावे करीने आत्मानुं अखंडितपणुं कहे छेः—

अथ द्रव्य क्षेत्र काल भाव कथनः—

सवैया इकतीसाः—जेसे एक पाको आंबफल ताके चारि अंस, रसजाली गुठली छीलक जब मानियें; यों तो न बनें पें एसें बने जेसें वहेफल रूपरस गंध फास अखंड प्रवानिये; तेसें एक जीवकों दरव षेत्र कालभाव, अंस भेद करि भिन्न भिन्न न वषानि ये; दर्व रूप षेतरूप कालरूप भावरूप, चारों रूप अलख अखंड सत्ता मानिये॥६१

अर्थः— शिष्य कहेछे. हे स्वामी द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप वस्तुना चार अंशत मे कह्यो छो, त्यां एवुं दृष्टांत आपवुं के, एक आंबफल छे तेना रस, जाली एट ले रेसो गोटली अने छाल ए चार अंस छे, तेमज वस्तुना द्रव्य क्षेत्र काल भाव ए अंश होय के न होय, हवे गुरु कहे छे. हे शिष्य आहीं तुं अंशके० खंड समज्यो ते थी ए दृष्टांत दीधुं. तेतो बने नही पण आंही अखंडपणामां चार अंस लाववा तेनुं दृष्टांत ए छे. के तेज आंब फल छे तेमां रूप, रस, गंध ने स्पर्श ए चारे अखंडप णे प्रमाण करिए ए चार रस छे, तेम एक जीवनुं द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप अंस भेद करीने रस जाली गोठलीने छाल ए खंड खंड वखाणीये नहीं. आंही जे सा ध्यरूप आत्म सत्ता छे ते द्रव्यथी अखंडितपणे, आत्मा द्रव्यरूप छे. अने क्षेत्रथी अखंडपणे असंख्यात प्रदेशाअवगाहपणे छे, कालथी अखंड त्रिकाल वर्त्तिछे भा वथी अखंड ज्ञायक भावपणे छे; एम जीवना चार अंश अखंडपणे मानीये॥६१॥

हवे साध्यपदमां ज्ञान ज्ञेयनुं विशेष पणुं अने अविशेष पणुं कहेछेः—

अथ ज्ञान ज्ञेय विशेष कथनः—

सवैया इकतीसाः—कोउ ज्ञान वान कहे ज्ञान तो हमारो रूप, ज्ञेय षटदर्व सो हमारो रूप नांही हे; एक नैं प्रवान एसें दूजी अब कहों जेसें, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही हे; तेसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ पाही है; ताकारण वचनके भेद भेद कहों कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता मांही हे ॥ ६२ ॥ चोपाईः—स्वपर प्रकाशक सकति हमारी; तायें ब चन भेद भ्रम भारी; ज्ञेय दसा द्विविधा परगासी; निज रूपा पररूपा भासी, ॥ ॥ ६३ ॥ दोहराः— निजरूपा आतम सकति, पररूपा परवस्त, जिनि लखि लीनो पेच यह, तिनि लिख लियो समस्त ॥ ६४ ॥

अर्थः— कोई ज्ञानवंत प्राणी पोताना अनुभव प्रमाणथी एम कहेछे के जे ज्ञा न छे तेतो अमारुं रूप छे. अने जे षट द्रव्य ज्ञेयछे तेतो अमारुं रूप नथी तेथी

ज्ञान अने ज्ञेय विशेष पणामां छे. गुरु कहे छे, एतो एकज नय प्रमाण छे. ह वे बीजा नयथी जेम अविशेष पणुं थाय छे. तेम कहुं छुं. जेम सरस्वती के० वि द्यारूप अर्थ छे. तेम अक्षर के० विद्यारूप अर्थ एकठो रहे. तेम ज्ञाता ते तो मा हारुं नाम थयुं. अने जे ज्ञान छे तेतो चेतनानो विराम के० प्रकार छे. अने जे ज्ञान ज्ञेय पणे परिणम्यो छे. ते तो ज्ञेयरूप शक्ति छे एवी अनंत शक्ति माहारीज पासे छे. ते कारणथी वचन भेद करीने ज्ञान अने ज्ञेयनो भेद कोई जणे कहो प ण बीजो नय देखवाथी ज्ञाननो ने ज्ञेयनो विलास आत्म सत्तामांज छे. तेथी अवि शेष पणुं छे. ॥ ६२ ॥ जेथी हमारी शक्ति एवी छे जे पोतानो प्रकाश करे अने परनो पण प्रकाश करे तेथी स्व पर प्रकासक छे, तेथी ज्ञान अने ज्ञेय ए वचन भे दे जे भेद छे, तेज भारी भ्रम उपजावेछेः पण वस्तु एक छे. ज्ञेय के० जे जाणवा यो ग्य तेतो दशा बे प्रकारे करीने कही. एक तो निजरूपा बीजी पर रूपा कही छे॥६३ आंही जे निजरूप ज्ञेय दशा कहीए ते तो स्वरूप प्रकाशक आत्म शक्ति छे, अने जे बी जी पर रूप ज्ञेय दशा ते परवस्तु छे जेणे एवातनो पेच जाण्युं तेणे तो समस्त जाण्युं६४

हवे एज पेच स्याद्वादमां जोइए ते स्याद्वादरूप वस्तुनुं वर्णन करेछेः–

अथ स्याद्वाद रूप वस्तु वर्ननः

सवैया इकतीसाः-- करम अवस्थामें अशुद्धसो विलोकियत, करम कलंकसों र हित शुद्ध अंग है; उभे न प्रवान समकाल सुद्धासुद्धरूप, एसो परजाइ धारी जीव नाना रंग हे; एकही समेमें त्रिधारूप पें तथापि याकी, अखंडित चेतना सकति स रवंग हे; यहे स्याद्वाद याको भेद स्याद्वादी जानैं, मूरख न माने जाको हियो द ग भंग हे. ॥ ६५ ॥ निहचे दरव दिष्टि दीजें तब एकरूप, गुन परनति भेद भाव सों बहुत हे, असंख प्रदेश संयुगत सत्ता परवान, ज्ञानकी प्रभासों लोकालोकमां न जुत हे, परजे तरंगनिके अंग छिनभंगुर हे, चेतना सकति सो अखंडित अचुत हे, सोहे जीव जगति विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत हे, ॥ ६६ ॥ विभाव सकति परिनतिसों विकल दीसें, सुद्ध चेतना विचारतें सहज सं त हे; करम संयोग सों कहावे गतिको निवासी. निहचें सरूप सदा मुकत महंत हे ज्ञायक सुभाउ धरे लोकालोक परगासी सत्ता परवा न सत्ता परगास वंत हे; सोहे जी व जानत जहां न कौतुको महान जाके कीरति कहान अनादि अनंत हे. ॥ ६७ ॥

अर्थः– कार्मण शरीर सहित आत्मानी कर्म अवस्थामां दृष्टि दईए तो आ त्माने अशुद्ध देखीए छीए. अने कर्म कलंक रहित केवल आत्मामांज दृष्टि द

इए तो जो शुद्ध अंग छे. अने ए बेउनय समकालेज प्रमाण करीए तो शुद्धाशुद्धरूप कह्युं जाय. एमां पर्यायनी धारायें करीने जीवना विचित्र प्रकार छे. शुद्ध अशुद्ध अने शुद्धाशुद्ध ए त्रणरूप आत्माना एकज समे पामीए, यद्यपि एम छे तथापि त्रणेरूपमां आत्मानी अखंडित चेतना शकति सर्व अंगमां जरि रहि छे, तेज स्याद्वाद कहीए, तेनो भेद जे स्याद्वादी होय, तेज जाणे पण जेनुं हइयुं दृगभंग के० सम्यक दृष्टि रहित छे. ते मूर्ख एनो भेद न जाणे. ॥ ६५ ॥ निश्चयनयथी द्रव्य उपर दृष्टी आपियें तो आत्म द्रव्य एकरूप छे अने ए आत्म द्रव्यना गुण परिणतिरूप भेद भावथी जोइयें तो आत्मा बहुरूपे छे अने आत्मानी सत्ता असंख्यात आकाश प्रदेश संयुक्त छे, अने ते सत्ताने प्रमाण आत्मा कह्यो जायछे. अने ज्ञाननी प्रभा विचारीएतो लोकालोक प्रमाण क्षेत्रथी संयुक्त आत्मा कह्यो जायछे, तथा क्षणक्षणमां पर्याय रूप तरंगना अंग विचारीएतो जीव क्षणभंगुरज कहेवाय छे, अने तेने चेतना शक्तिथी विचारीए तो सदा सर्वदा अखंडज कहेवाय, अने अच्युत कहेवाय छे. तेज जीव जगतनो विनायक के० धणी अने जगतमां सारभूत पदार्थ छे. जेनी मोज अने महिमा अपार छे अने अद्भूत छे ॥ ६६ ॥ हवे बीजुं पण स्यादवाद कहेछेः--रागद्वेषादिक विभाव शक्तिथी परिणम्यो देखीए तो आत्मा विकल देखाय छे, अने तेनी शुद्ध चेतनाज विचारीएतो सहज संतरूप दीसे छे, कर्म संजोग सहित आत्मा विचारीये तो चारे गतिनो वासी अने चोरासी लाख योनीनो वासी कहेवाय छे, अने निश्चयनयथी एनुं स्वरूप जो विचारीए तो सदा सर्वदा मुक्तिरूप महंत छे, अने जो एने ज्ञायक स्वभाव धारी विचारीए तो लोकालोक प्रकाशक अमेय कहेवाय, अने जोए आत्मानी प्रकाशवंत सभा विचारियें तो पोतानी सत्ता प्रमाण आत्मा होय, ते जीव वस्तु साध्य छे. जे जहांन के० जगतने जाणेछे, जे महोटो कौतुकी पुरुष छे, जेनी कीर्ति अने कथा अनादि अनंत काल लगी एवीज चालती आवेछे ॥ ६७ ॥

हवे साध्यरूप केवल दशानुं वर्णन करे छेः— अथ केवल दशा वर्ननः—

सवैया इकतीसाः— पंच परकार ज्ञानावरनको नास करि, प्रगटी प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है; ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पें एकतामें रसपगी है; याही भांति रहेगी अनंत काल परजंत, अनंत शकति फोरि अनंतसों लगी है; नरदेह देवलमें केवलमें सरूप सुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिषा समाधि जगी है ॥ ६८ ॥

अर्थः— मति ज्ञानावरण प्रमुख पांच प्रकारना ज्ञानावरणीय कर्मनो नाश करीने प्रसिद्ध के० प्रत्यक्षरूपणे प्रगटी एवी जे ज्ञान ज्योतिनी शिखा जगतमां जगमगी रही छे. ते ज्ञान ज्योतिनी शिखा पोताना ज्ञायकपणारूप प्रजामां नाना प्रकारना ज्ञेयनी अवस्था धरीनें अनेक रूप थई छे, तेपण ज्ञायक पणानी जे एकता छे तेना रसथी मली रही छे. तेज रीते अनंत काल पर्यंत रहेशे. अने अनंत वीर्य फोरवीने अनंत पदथी लागी रहेशे. जेवारे मनुष्यना देहरूप देवलमां शुद्ध केवल ज्ञान स्वरूपें एवी ज्ञान ज्योतिनी सिखा जेवी समाधि छे, ते जागृत थई एटले सर्व विषमता नाव मटि गयो ॥ ६७ ॥

हवे अमृतचंद आचार्य छे ते चंद्रमां छे. अने तेनी कलारूपि त्रण धारा छे, तेनुं जुदा जुदा अर्थथी वर्णन करे छेः—अथ अमृत चंद्र कलाके तीन अर्थ कथनः—

सवैया इकतीसाः— अक्षर अरथमें मगन रहै सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी; अमल अबाधित अलष गुन गावना है, पावना परम शुद्ध नावना है नविकी, मिथ्यात तिमर अपहार वर्द्धमान धारा, जैसी उने जाम लों किरन दीपे रविकी; ऐसी है अमृत चंदकला त्रिधारूप धरे, अनुनो दशा गरंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ६९ ॥ दोहराः— नाम साधि साधक कह्यो, द्वार द्वादशम ठीक, समय सार नाटक सकल, पूरन नयो सटीक ॥ ७० ॥

अर्थः— अमृतचंदनी अनुनव दशारूप कला छे तेतो अक्षर अर्थमां के० मोक्ष पदार्थमां सदाकाल मगन रहे छे, अने जेवी कामधेनुंनी सेवा सुखदायक थाय तेवी सुखदायक छे; अने अमृत चंदनीग्रंथ टीकारूप कला छे तेज पाछला वर्णने करी युक्तछे, अने अमृतचंद कविनी बुद्धि छे, तेतो अक्षर अर्थ के० शब्दार्थ तेमां मगन रहे छे, आगल बीजुं वर्णन पूर्वली रीते जेम अमृत चंदनी अनुनव दशानी कला अने ग्रंथनी टीकानी कला अने कवीकला ए त्रणे कला अमल छे, अबाधित छे, अलख पुरुषना गुणनो गायन करतीज रहे छे तेथी पावन छे, नव्यत्व पणानी परम शुद्ध नावना छे,अने ए त्रणेकला, मिथ्यात्वरूप अंधकारनी अपहरण करनार छे, अने चडते परिणामे छे, जेम चढता बे पोहोर लगी सूर्यना किरण चढता चढता दीपे छे, तेम ए कलापण वधती वधती दीपे छे, एवी अमृतचंद आचार्यनी कला छे ते त्रण प्रकारनुं रूप धारण करे छे, एक तो अनुनव दशा बीजी ग्रंथनी टीका करी ते अने त्रीजी काव्य बंध करतां कविकला कीधी॥६९

साध्य साधीक नामे बारमों द्वार टीक कह्यो, अमृतचंद आचार्यनुं करेलुं कलस रूप समयसार नाटक ग्रंथ टीका समेत संपूर्ण थयुं ॥ ७० ॥

इतिश्री नाटक समयसारनो साध्य साधकनामा बारमु द्वार बालाबोधरूप संपूर्ण थयो. ग्रंथाग्रंथ ८००० मान छे.

हवे ग्रंथनी अंते अमृतचंद्र आचार्य कवि आलोचनाकरेछेः–अथ कविआलोचनः–

दोहराः– अब कविजन पूरव दशा, कहे आपसों आप; सहज हरष मनमें धरै, करै न पछाताप. ॥७१॥ सवैया इकतिसा.– जो में आप छांडि दीनो पररूप गही लीनो, कीनो न वसेरो तहां जहां मेरो थल है; जोगनिको जोगी व्हि करमको कर्ता जयो, हिरदे हमारे राग दोष मोह मल है; ऐसी विपरीति चाल जई जो अतीत काल, सो तो मेरी क्रियाकी ममताताको फल है; ज्ञान दृष्टि जासी जयो क्रिया सों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनको सो छल हैं. ॥७२॥ दोहराः– अमृत चंदमुनिराज कृत, पूरन जयो गरंथ; समयसार नाटक प्रगट, पंचमगतिकोपंथ. ७३

अर्थः– हवे कलसनो करनार कविछे ते पोतानेज पोतानी पूर्वदशा कहेछे. पोताना मर्म जाण्याथी सहज हर्ष उपज्यो छे ते आलोचनामां धारे छे, पण पस्तावो करतो नथी. ॥७१॥ अतीत काले जे महारुं आत्मानुं स्वजाव हतो ते में छांडि दीधो, अने पर जे कर्मादिक पररूप हतो ते में लई लीधो. अने ज्यां समाधिविषे माहारो निवास हतो, त्यां में वास न कीधो. पांच इंद्रियोना विषय जोगनो जोगी थईने कर्मनो कर्त्ता थयो, अमारा हैयामां राग द्वेषरूप महा मोह मल हतो. एवी उलटी चाले चाल्यो तेतो अतीत कालमां वात वीती. एवुं जे कार्य थयुं तेतो मारी क्रियामां ममता राखी तेनुं फल थयुं. हवे तो ज्ञान दृष्टि जासी तेथी क्रियाथी उदासी थयो, अने जे अतीत कालमां अवस्था थई तेतो मोह मिथ्यात निद्रामां स्वपना जेवो खेल थयो.॥७२॥अमृत चंद आचार्यनो करेलो ग्रंथ संपूर्ण थयो. आ समयसार नाटक जे ग्रंथ छे ते प्रगट पणे पंचम गतिके० मुक्तिनो पंथ छे.॥७३॥ इति श्री समयसार नाटक ग्रंथ अमृतचंद आचार्यकृत संपूर्णम् ॥

हवे बणारसीदाश कहेछेः– दोहराः– जाकी जगति प्रजावसो, कीनो ग्रंथ निवाहि; जिन प्रतिमा जिन सारषी, नमे बनारसी ताहि. ॥ ७४ ॥

अर्थः– जेनी जक्तिना प्रजावे करीने गहनार्थ ग्रंथहतो ते निर्वाहकीधो. एवी आ कालमां जिन प्रतिमा छे ते श्रीजिनेश्वर सरषी छे. तेने बणारसीदास नमेछे.

हवे जेवा श्री जिनेश्वर देव महात्म्यवंत छे, तेवी जिन प्रतिमा पण महात्म वंत छे ते कहेछेः— अथ जिन प्रतिमा महात्म्य कथनः—

सवैया इकतीसाः— जाके मुख दरससों जगतके नैननिकों थिरताकी बानी बढी चंचलता विनसी; मुद्रा देखे केवलीकी मुद्रा यादि आवे जहां, जाके आगें इंद्रकी विभूति दिसे तिनसी; जाको जस जंपत प्रकास जगे हिरदेमें, सोई सुद्ध मती होइ हुती जो मलिनसी; कहत बनारसी सु महिमा प्रगट जाकी, सोहे जिनकी सवी हे विद्यमान जिनसी ॥ ७५ ॥

अर्थः— श्री जिन प्रतिमाना मुख दर्शन थवाथी जे तेना भक्तजन छे तेना नयनने कंइ आगल सम्यक् दशा के० संवर दिशा पामेली होय तेनी स्थिरतानी वाणी वधे, अने जे भावपदार्थमां चंचलता होय तेनो नाश थाय. अने पद्मासन स्थित मुद्रा आकार ज्यां देखे, त्यां केवलीनी मुद्रा याद आवे छे. ते केवलीनी मुद्रा एम संभारवामां आवे छे के, जेनी आगल इंद्रनी संपदा छे ते त्रण समान देखायछे, एटले चोसठ इंद्र महिमा करेछे, अने ते दशा सांभलवामां आवे तेवारे त्यां जे केवलीना जश कहेवायछे, तेना गुणनो प्रकाश हैयामां जागेछे, अने त्यां जे पहेली मति सम्यक् दशामां मेली जेवी हती ते शुद्ध थई, तेथी वणारसीदास कहेछे के जिन प्रतिमानी एवी प्रगट महिमा छे के ते विद्यमानजिनेश्वर समानज मानवी ॥७५॥

हवे जिन प्रतिमानो भक्तिवंत छे तेनुं वर्णन करेछेः—अथ प्रतिमा माने ताको वर्णन

सवैया इकतीसाः—जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहरि लसी, विनसी मिथ्यात मोह निद्राकी समारखी; सैली जिन सासनकी फैली जाके घट भयो, गरवको त्यागी षट दरवको पारखी; आगमके अक्षर परे है जाके श्रवनमें, हिरदे भंभारमें समानी बानी आरखी; कहत बनारसी अलप भवस्थिति जाकी, सोइ जिन प्रतिमा प्रवाने जिन सारखी ॥ ७६ ॥

अर्थः— जेना हीयामां सम्यक् दर्शननी लेहेर बिराजमान थई रही छे. अने मिथ्यात मोहनीय रूप निद्रानी मुर्छा ते विनास पामी छे, तथा जेना घटमांथी जिन शासननी सेली के० तत्व समजवामां अने तत्व समझणमां अहं बुद्धिरूप अभिमाननो त्याग थयोछे, अने जे छ ए द्रव्यने परखनारो छे. जेना श्रवणमां आगमना अक्षर पडे छे. एटले सिद्धांत सांभले छे, वली ऋषेश्वरिं आर्ष आर्षित ऋषि संबंधी वाणी ते जिनवाणी कहिये, ते जेना हृदयरूप भंभारमां समाणी छे.

एटले नगी छे, वणारसी दास कहे छे के जेनी नवस्थिति अल्प आवी रही छे, तेज पुरुष जिन प्रतिमाने जिन सरिषी प्रमाण करेछे ॥ ७६ ॥

हवे वणारसी दास पोतानी कथनी कहेछेः— अथ वणारसी कथनः—

चोपाईः— जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे; सीस नमाइ बनारसिवंदे; फिरि म नमांहि विचारे ऐसा; नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ ७७ ॥ परम तत्व परचे इ समांही; गुन थानककी रचना नांही; यामें गुनथानक रस आवे; तो गरंथ अति शोना पावे ॥ ७८ ॥ दोहराः— यह बिचारि संक्षेपसों, गुनथानक रस योज, वरनन करे बनारसी, कारन सिव पथ खोज ॥ ७९ ॥

अर्थः— जिन प्रतिमा छे तेज मनुष्यना राग द्वेष मिथ्यातनुं निकंदन करनार छे, तेथी वणारसीदास मस्तक नमावीने तेने वंदे छे. पछी बनारसीदास मनमां एम विचारे छे के, आ नाटक ग्रंथमां जेवुं परमपद छे तेवुं आहीं कहेछे ॥७७॥

आ ग्रंथमां उपादेयरूप परम तत्व, आत्म तत्वनो परिचय छे. पण गुणस्थानकनी रचना आ ग्रंथमां नथी. हवे जो आ ग्रंथमां गुणस्थानकनो रस आवे तो आ ग्रंथ सारी शोना पामे ॥ ७८ ॥ ए प्रमाणे विचारीने संक्षेप मात्र गुणस्थानकना रसनी योजनो वणारसी दास वर्णन करे छे. ते वर्णन शिवपंथनुं कारण छे अने शिवपंथनी खोजना छे. ॥ ७९ ॥

हवे गुणस्थानकनुं स्वरूप छे तेवुं कहेछेः— अथ गुनथानक सरूप कथनः—

दोहराः— नियत एक विवहारसों, जीव चतुर्दश नेद; रंग जोग बहु विधि नयो, ज्युं पट सहज सुपेद. ॥ ८० ॥

अर्थ.— निश्चे जीव एकरूप छे. अने व्यवहारनयथी जीव चौद नेदे छे. आहीं दृष्टांत आपेछे, जेम वस्त्र सहज रंगमां सफेद छे. पण रंगना जोगथी विचित्र प्रकारना रंगनो थाय तेम गुणस्थानकथी जीवनो तेवो नेद छे. ॥ ८० ॥

हवे चौद गुण स्थाननां नाम कहेछेः— अथ चतुर्दश गुनथानक कथनः—

सवैया इकतीसाः— प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथो अव्रत पंचमो व्रतरंच है; छगो परमत्त सातमो अपरमतनाम, आठमो अपूरव करन सुख संच है; नौमो अनिवर्त्तनाव दशमो सूछमलोन, एकादशमो सु उपसंत मोह वंच है; द्वादशमो छीन मोह तेरहों सजोगी जिन, चौदहों अजोगी जाकी थिति अंक पंच है. ॥ ८१ ॥ दोहराः— वरने सब गुन थानके, नाम चतुर्दश सार; अब बरनों मिथ्यातके, नेद पंच परकार. ॥ ८२ ॥

अर्थः– प्रथम मिथ्यात, बीजो सास्वादन, त्रीजो मिश्र, चोथो अविरत, पांचमो रंच मात्र व्रत एटले देशव्रती, छठो प्रमत्त, सातमो अप्रमत्त एवा नाम छे. आठमो अपूर्वकरण अथवा निवृत्ति बादर, ए बे नाम छे ते आंही सुखनो संच के० मिलाप छे, नवमो अनिवृत्ति बादर, दशमो सूक्ष्म लोभ, अग्यारमो उपसांत मोह, आंही मोहनी वंचना छे एटले मोहथी छुटवुं छे. बारमो क्षीण मोह कहीए, तेरमो सयोगी जिन, ते केवली थयो. चौदमो अजोगी जिन, जेनी स्थिति अ इ उ ऋ ऌ ए ह्रस्व पांच अक्षर जेटली छे. ॥८१॥ एम सर्व चउदे गुण स्थानना नामनु सत्यार्थ वर्णन कीधुं ते शोभे छे. हवे अनुक्रमें पहेला मिथ्यात गुणठाणाना पांच प्रकारथी पांच भेद छे ते कहुंछुं. ॥ ८२ ॥

हवे पांच मिथ्यात्वना नाम कहेछेः– अथ पंच मिथ्यातके नाम कथनः–

सवैया इकतीसाः– प्रथम एकंत नाम मिथ्यात अभिग्रहीक, दूजो विपरित अभिनिवेसिक गोत हैं; तीजो विनै मिथ्यात अनाभिग्रह नाम जाको, चोथो संसे जहां चित भोरकोसो पोत है; पंचमो अज्ञान अनाभोगिक गहलरूप, जाके उदे चेतन अचेतनसो होत है; ए पांचो मिथ्यात भ्रमावे जीवकों जगतमें, इन्हके विनास समकितको उदोत है. ॥ ८३ ॥

अर्थः– पांच मिथ्यात्वमां पेहेलो एकांत पक्षना ग्राही अभिग्रहिक नामे मिथ्यात्व छे. बीजो मिथ्यात पेहेला मिथ्यातथी विपरित छे. तेनुं अभिनिवेसिक एवुं गोत के० नाम छे, त्रीजो विनय मिथ्यात सर्वनो पूजनार छे जेनुं नाम अनाभिग्रहिक छे, चोथो संसयिक मिथ्यात ज्यां चित्त छे ते भ्रमण करतुं रहे भमराना बचानी माफक, पांचमो अज्ञान मिथ्यात, ए अनाभोगीक पणाथी अजाणपणे एकेंद्रियादिकमां गहलरूपी छे. निद्रानी छाकनुं स्वरूपी छे. जेना उदयथी चेतन छे ते अचेतन थई रह्युंछे. जेना नाम लीधा ते एज पांचे मिथ्यात जीवने जगतमां भमावेछे. ए पांचे मिथ्यात्वनुं विनाश थएथी समकेतनो उद्योत थायछे ॥ ८३ ॥

हवे एकांतवादी अभिग्रहीक मिथ्यातनुं लक्षण कहेछेः– अथ एकांत यथाः–

दोहराः– जो इकंत नय पक्ष गहि, छके करावे दक्ष; सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष. ॥ ८४ ॥

अर्थः– साते नयमां हर कोई एक नयनो पक्ष ग्रहीने पोताना जाणपणामां छकी जायछे, अने दक्ष के० तत्ववेत्ता कहेवाय, ते एकांत मतनो स्थापक मीमांसक नैयायक प्रमुख पुरुष छे ते प्रत्यक्षपणे अभिग्रहीक मिथ्याती छे ॥ ८४ ॥

हवे जाणपणामां तो काईक अनेकांतपणुं छे. पण हठथकी विपरीत कहेछे माटे तेनुं लक्षण कहेछेः– अथ विपरीत यथाः–

दोहराः– ग्रंथ उकति पथ उछपे, थापे कुमत सुकीय, सुजस हेत गुरुता ग्रहे, सो विपरीती जीय ॥ ८५ ॥

अर्थः– ग्रंथमां जे कह्यो एवो मार्ग तेने उथापीने नन्हवादिक पोतानी कुमति थापे पोतानी प्रसिद्धि थवाने माटे गुरुता के० आचार्यपणो ग्रहेछे. ते जीव अनेकांतताथी विपरीत थयो तेने आभिनिवेसिक मिथ्यामती कहीए ॥ ८५ ॥

हवे जेनो विनय मिथ्यात छे एवा अनभिग्रहिक मिथ्यातीनुं लक्षण कहेछे अथ विनय मिथ्यात यथाः–

दोहरा– देव कुदेव सु गुरु कु गुरु, गिनें समान जु कोइ; नमें भगतिसों सबनिकों, विनय मिथ्याती सोइ ॥ ८६ ॥

अर्थः– सु देवने अने कुदेवने सु गुरुने अने कु गुरुने जे कोइ समानज गणे छे, अने तामली तापसनीपरें परिणाम प्रवर्ज्या लेइने भक्तिथी सर्वेने नमेछे, पण गुणदोषनी खबर न होय ते विनय मिथ्यात्व कहियें ॥ ८६ ॥

हवे जेना जाणपणामां संदेह छे, ते संशय मिथ्याती कहियें तेनुं लक्षण कहेछे अथ संसय यथाः–

दोहराः– जो नाना विकलप गहे, रहे हिए हेरान; थिर व्हे तत्व न सद्दहे, सो जिय संसयवान ॥ ८७ ॥

अर्थः– जे अपार नय जाल देखिने जीवमां संशय राखे, नानाप्रकारना चित्त विकल्प ग्रहे अने हेरान थई रहेछे. स्थिरता राखीने तत्वने सर्दे नही तेज जीव संशयवंत मिथ्याती कहीये ॥ ८७ ॥

हवे पांचमा अज्ञान मिथ्यातीनुं लक्षण कहेछेः– अथ अज्ञान यथाः–

दोहराः– जाको तन दुख दहलसों, सुरति होति नहिं रंच; गहल रूप वरते सदा, सो अज्ञान तिरयंच ॥ ८८ ॥ पंच भेद मिथ्यातके, कहे जिनागम जोइ; सादि अनादि सरूप अब, कहों अवस्था दोइ ॥ ८९ ॥

अर्थः– शरीरमां दुःखना दहेलथी जेने हेय उपादेयनी, रंचमात्र सुरता रेती नथी, मुर्छित रूपे जे सदा वर्ते छे ते एकेंद्रियादिक तिर्यंच अज्ञान मिथ्याती कहिये ॥८८॥ श्री जिनेश्वरना आगम सिद्धांत जोईने मिथ्यातना पांच भेद कहेछेः-- जे

नी आदि पामीए तेतो आदि मिथ्यात्व कहीए, अने जेनी आदि न पामीए तेतो अनादि मिथ्यात्व कहिये, एवी एवी मिथ्यात्वनी अवस्थानुं स्वरूप हवे कहेछे॥ ७९॥

प्रथम सादि मिथ्यात्वनुं लक्षण कहेछेः– अथ सादि यथाः–

दोहराः– जो मिथ्या दल उपसमे, ग्रंथ भेद बुधि होइ,
फिरि आवे मिथ्यातमें, सादि मिथ्याती सोइ ॥ ८० ॥

अर्थः– जे मिथ्यात मोहनीयना दलने उपसमावीने मिथ्यात्व ग्रंथी भेदीने ज्ञाता समकेती थईने पाछा मिथ्यातमां आवे ते सादि मिथ्यात्व कहीए एना मिथ्यातमां हवे आदि थई तेथी सादि मिथ्याती कहिये ॥ ८० ॥

हवे बीजो अनादि मिथ्यातनुं लक्षण कहेछेः– अथ अनादि यथा कथनः–

दोहराः– जिनि गरंथि भेदी नही, ममता मगन सदीव; सो अनादि मिथ्या मती, विकल बहिर्मुख जीव. ॥ ८१ ॥

अर्थः– जे जीवें मिथ्यात्व ग्रंथी भेदी नथी अने सदासर्वदा काल लगण ममता मांज मगन रहे, ते जीव अनादि मिथ्याती कहीए, अने जे बहिर्मुख रहे जेने परमात्मा द्रव्यनी दृष्टि नथी, ते बहिर्मुख जीव कहीए. ॥ ८१ ॥ इति श्री बणारसीदास कृत नाटक समयसारनेविषे प्रथम गुनस्थानकनो अधिकार संपूर्ण थयो.

दोहराः– कह्यो प्रथम गुण थान यह, मिथ्या मत अभिधान; अलप रूप अब वरनवुं, सासादन गुन थान. ॥ ८२ ॥ सवैया इकतीसाः– जैसें कोउ क्षुधित पुरुष खाइ खीर खांड, वोन करे पीछे के लगार स्वाद पावे हे; तैसे चढि चोथे पांचएके छठे गुनथान काहु उपसमीको कषाइ उदे आवे हे; ताहि समे तहां गिरें परधान दशा त्यागी, मिथ्यात अवस्थाकों अधोमुख व्है धावे हे; बीच एक समे वा छ आवली प्रमान रहे, सोइ सासादन गुनथानक कहावे हे. ॥ ८३ ॥

अर्थः– जेनुं मिथ्यात एवुं नाम छे, ते पेहेलुं गुणस्थानक सूचना मात्र कह्युं, हवे संक्षेप मात्र सास्वादन गुन स्थाननुं स्वरूप कहुंछुं. ॥ ८२ ॥

अर्थः– जेम कोइ क्षुधावंत पुरुष छे ते खीरखांड खाय पछी तेने वमन करेछे ते वमननी पछी पण खीरखांडना भोजननो लगारेक स्वाद पामेछे. तेम कोइ जीव उपशम सम्यक पामीने चोथे अविरत गुनस्थाने रह्यो छे. अथवा उपशम सम्यक पांमताज सरखो समान पाचमां गुणठाणे अथवा छठे गुणठाणे चढयो त्यां समकेतनी उज्वलाता न थई, अने अनंतानुंबंधी उपशमि कषाय हतो ते उदय थयो, ते समयमां ते त्रणे गुण ठाणाथकी ते उपशम सम्यक्ती प्रधान

दशा जे श्रेष्ट दशा तेने त्यागीने फरी मिथ्यात दशाने उंधे मुखे उलटो रहेछे, एटले मिथ्यात्व पामतामां अने सम्यक छूटतामां वचे एक समयकाल प्रमाणे अथवा उत्कृष्ट छ आवलिका प्रमाणे जे सम्यक अंश रहेछे तेनेज सास्वादन गुन स्थानक कहिए. ॥ ९३ ॥ इति द्वितीय गुन थानक समाप्तः

दोहराः— सासादन गुन थान यह, नयो समापत बीय; मिश्र नाम गुन था न अब, बरनन करों त्रितीय. ॥ ९४ ॥ सवैया इकतीसाः— उपसमी समकि ती केतो सादि मिथ्यामती. दुहूनिको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे हे; अनंतानु बंधी चोकरीको उदे नांही जामे, मिथ्यात समे प्रकृति मिथ्यात न रहेहे; जहां सद्दहन सत्यासत्यरूप समकाल, ज्ञान भाव मिथ्या भाव मिश्र धारा वहे हे; जाकी थिति अंतर मुहूरत था एक समे, एसो मिश्र गुन थान आचारज कहे हे

अर्थः— आ बीजो सास्वादन नामे गुणस्थान संपूर्ण थयुं हवे त्रीजुं मिश्र गु नथाननुं वर्णन करुंछुं. ॥ ९४ ॥

अर्थः— उपशम सम्यक्ति मिथ्यात मिश्र अने सम्यक रूप त्रण पुंज करीने ज्यारे मिश्र पुंजमां जीव वर्त्ते, अथवा सम्यकथी पडीने फरी मिथ्यात्वमां आवी सादि मिथ्यात्वी थईने मिश्र पुंज उदय थयाथी मिश्रमां वर्त्ते, ए बेउने मिश्र गुण स्थानक कहियें, केमके मिथ्यात्व सम्यक थको वर्त्ते छे. जेथी संसार अनंतो वधे ते अनंतानुबंधीनी चोकडी कहिए, तेनो जेमां उदय नथी अने मिथ्यातपणुं शमे तथा उपशमेछे, त्यां मिथ्यात्वनी प्रकृतिनो उदय रहेतो नथी. ज्यां समकाले सत्या सत्य रूप श्रद्धा छे. एटले श्रद्धामां साचुं खोटुं बेउ छे तिहां ज्ञान भाव छे, ते मिश्र धारामां वहेछे. अने मिथ्यात्व भाव पण सम्यक धाराथी मिश्रित धारा थकी वहेछे. जेनी उत्कृष्टि स्थित अंतर्मुहूर्त कालनी छे, अथवा जघन्य एक समयनी छे एनुं नाम त्रीजुं मिश्र नामे गुणठाणुं आचार्यजी कहेछे. इति तृतीय गुनस्थान समाप्तः९५॥

दोहराः— मिश्र दशा पूरन भई, कही यथा मति भाषि; अथ चतुर्थ गुनथान विधि, कहों जिनागम साषि, ॥ ९६ ॥

अर्थः— मिश्र गुणठाणानी जेवी दशा छे, ते जेवी पोतानी बुद्धि छे तेवी रीतें भाषारूप कही ते संपूर्ण थई, हवे श्री जिनागमनी शांष लईने चोथा सम्यक्त गुण ठाणानी विधि कहुंछुं ॥ ९६ ॥

हवे चोथा सम्यक गुणठाणानुं वर्णन करेछेः—अथ सम्यक वर्णनः—

सवैया इकतीसाः— केई जीव समकित पाइ अर्ध पुदगल, परावर्त्त काल तांई

चोखे होई चित्तके; कोई एक अंतर मुहूरतमें ग्रंथि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोष वितके; तातें अंतरमुहूरतसों अर्द्ध पुग्गलों, जेते समें होही तेते भेद समकितके; जाही समे जाको जब समकित होई सोई, तबहीसों गुन गहे दोष दहे इतके. ॥ ९७ ॥ दोहराः— अथ अपूर्व अनवर्त्ति त्रिक, करन करे जो कोइ; मिथ्या ग्रंथि विदार गुन, प्रगटे समकित सोइ. ॥ ९८ ॥

अर्थः— सम्यक्त पामीने चित्तनो चोखो थईने अर्द्ध पुदगल परावर्त्त काल लगण संसारमां रहेछे, अने कोईक जीव तो एकज अंतमुहूर्त्त कालमां मिथ्यात ग्रंथी भेदी समक्त पामीने चारे गतिनो मार्ग उलंघन करी मोक्षरूप वित्तना सुख वेदे, पण संसारमां रहे नही तेथी सम्यक्त पामीने जघन्य संसार स्थित एक अंतर मुहूर्तनी छे अने उत्कृष्टि संसार स्थित अर्द्ध पुदगल परावर्त्तनी थायछे, हवे एटली संसार स्थितिनी वचमां एक एक समयनी वृद्धि करता जेटला ते स्थितिना भेद थाय तेटला सम्यक्तना भेद पामीए ए रीते सम्यक्तना घणा भेद पामिये; जे समे जेने सम्यक्तनु उदय होय ते समे ते जीव त्यारथी पोताना गुण ग्रहेछे; अने इतके के० ने संसार अवस्थाना दोषनुं दहन करेछे. ॥ ९७ ॥ अथ के० यथाप्रवृत्ति करण, अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण ते त्रणे करण जे कोई भव्यजीव करे छे त्यां कोईक वखते एक, आयुकर्मविना शाते कर्मनी स्थिति अंत कोडा कोडी सागरोपम प्रमाण रहे, त्यारे यथाप्रवृत्ति करण थाय पछी मिथ्यात ग्रंथी भेदवाथी अपूर्वकरण थाय, अने सम्यक्त प्रगटवाथी अनिवृत्तिकरण थाय, जे कोई ए त्रणे करणे करी मिथ्यात ग्रंथी विदारीने सम्यक्त स्वरूप पामे तेज सम्यक्त कहिये

हवे अष्ट प्रकारथी सम्यक्त विवरण करे छेः— अथ अष्टरूप कथनः—

दोहराः— समकित उतपति चिन्ह गुन, भूषन दोष विनास; अतीचार जुत अष्ट विधि, बरनों बिबरन तास ॥ ९९ ॥

अर्थः— सम्यक्तनुं सरूप, १ सम्यक्तनी उत्पत्ति, २ सम्यक्तनुं चिन्ह, ३ सम्यक्तनो गुण, ४ सम्यक्तनुं भूषण, ५ सम्यक्तना दोष, ६ सम्यक्तनो विनाश, ७ सम्यक्तना अविचार, ८ ए सर्व आठ प्रकार थया, तेनो विवरो करुंछुं ॥ ९९ ॥

हवे प्रथम सम्यक्तनुं सरूप कहेछेः— अथ सम्यक्त यथाः—

चोपाईः— सत्य प्रतीति अवस्था जाकी; दिन दिन रीति गहे समताकी; छिन छिन करे सत्यको साको; समकित नांउ कहावे ताको ॥ ६०० ॥

अर्थः— सत्यमां जेनी प्रतीत छे ते साचानेज सरदहेछे, एवी जेनी अवस्थाछे

अने दिवसे दिवसे वधती वधती क्षमा निर्लोभता प्रमुख समतानी रीत ग्रहण करेछे. एवुं सत्य कार्य पहेलां कदीन कर्युं, तेथी हवे क्षण क्षणमां सत्यनो सा को के० महा कार्य करेछे. ते जावनुं नाम सम्यक्त कहीए ॥ ६०० ॥

हवे सम्यक्तनी उत्पत्ति कहेछेः– अथ उत्पत्ति यथाः–

दोहराः– केतो सहज सुभावको, उपदेशे गुरु कोइ; चिहुँ गतिसेंती जीवकों, सम्यक् दरशन होइ, ॥ ६०१ ॥

अर्थः– नदीने किनारे उभा पाणीना कल्लोल आवता जाताना न्यायथी एट ले सरिडुपल घोलना न्यायथी कोइने सहज स्वभावमांज समकित उपजे, कोई गु रुना उपदेश थकी सम्यक्त उपजे, जे जीव चारे गतिमां सयन निद्रा करी रह्यो हतो तेने जे सम्यक्त उपजे छे ते एवा भन्ना प्रकारथी उपजेछ ॥ ६०१ ॥

हवे जेथी सम्यक्त उपज्युं जाणीए ते सम्यक्तनां लक्षण कहे छेः–अथ लछन यथा

दोहराः– आपा पर परचेविषे, उपजे नहिं संदेह; सहज प्रपंच रहित दशा समकित लक्षण एह ॥ ६०२

अर्थः– आत्मा अने आत्माथी बीजां जे कर्मादिकना पुद्गल छे, एटले बीजा पांचे द्रव्य तेना परिचय प्रतीतिमां, संदेह उपजे नही अने सहज सभावमां आ त्मदशा ते मायानी प्रपंच रहितथाय ए सम्यक्तना लक्षण कहिये ॥ ६०२

हवे सम्यक्तना गुण कहेछेः– अथ गुन यथाः–

दोहराः– करुना वछल सुजनता, आतमनिंदा पाठ; समता भगति विरागता, धरम राग गुन आठ ॥ ६०३ ॥

अर्थः– दया तथा सर्वेनुं हित वांछक पणुं सर्व साथे मैत्री भाव राखवुं आत्मनिं दानुं पठन करवुं, इष्ट अनिष्ट उपर समभावें रहेवो, देव गुरुनी भक्ति, वैरागरस मांज भिज्यो थको रहेवुं धर्मथी राग राखवो. ए सम्यक्तना आठ गुण छे ॥६०३॥

हवे सम्यक्तनां पांच भूषण कहे छेः– अथ पंच भूषण यथाः–

दोहराः– चित प्रभावना भावजुत, हेय उपादयवानि; धीरज हरष प्रवीनता भूषन पंच बखानि ॥ ६०४ ॥

अर्थः– चित के० ज्ञान एटले जिन शासननो जेवी रीतें प्रभाव वधे तेवा भा वमां रहेवुं हेय उपादेयनुं ज्ञानवंत थई, धैर्यमां रहेवुं, सम्यक्तपामीने हर्ष राखवुं, तत्वविचारमां प्रवीणता राखवी, ए पांच सम्यक्तनां भूषण वखाणिए ॥ ६०४ ॥

हवे सम्यक्तना पचीस दोष कहेछेः— अथ पंचवीस दोष यथाः—

दोहराः-- अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष; तीन मूढता संजुगत, दोष पचीसौ एष. ॥ ६०५ ॥

अर्थः-- अष्ट महामद छे, अने आठ मल छे, छ आयतन विशेष छे, अने त्रण मूढता छे; ए सर्व एकठा करीए तो पचीस दोष थाय. ॥ ६०५ ॥

हवे आठ जातना मद कहेछेः-- अथ अष्ट मद यथाः--

दोहराः— जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार; इन्हको गरव जु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार. ॥ ६०६ ॥

अर्थः-- जातिमद, लाभमद, कुलमद, रूपमद, तपमद, बलमद, विद्यामद, तथा अधिकार के० ऐश्वर्यमद ए आठ वस्तुनो जे गर्व करवो तेज आठ प्रकारना मद कह्याछे. ॥ ६०६ ॥

हवे आठ प्रकारना मल कहे छेः— अथ अष्ट मल कथनः—

चोपाईः— आसंका अस्थिरता वांछा; ममता दृष्टि दशा दुरगंछा; वत्सल रहित दोष परभाषे; चित्त प्रभावना मांहि न राषे. ॥ ७ ॥

अर्थः— धर्म उपर अने जिनशासन वचन उपर शंका राखे. धर्ममां स्थिरता नही. स्वर्गादिकनी वांछा धरे, कुटुंबादिकविषे ममत्व भाव राखे, ए धर्म मलीन छे एवी दुगंछा करे, स्वामी वत्सल न करे, पारका दोष प्रकाशे, ज्ञान प्रमुख विविध प्रकारनी प्रभावनामां चित्त न राखे. ए आठ मल जाणवा ॥ ७ ॥

हवे छ आयतन दोष कहेछे ते छ स्थान मिथ्यात्वना कहेछेः—अथ षडायतनयथाः—

दोहराः-- कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म; इनकी करे सराहना, यह षडायतन कर्म. ॥ ८ ॥

अर्थः— कुगुरुने माननार, कुदेवने सेवनार, कुधर्मने माननार, कुगुरु प्रशंसा, कुदेव प्रशंसा, कुधर्म प्रशंसा, ए छएनी प्रशंसा करे ते आयतन कर्म दोष छे.॥८॥

हवे त्रण मूढता दोष कहेछेः-- अथ मूढत्रय यथा कथनः--

दोहराः— देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष; आठ आठ षट तीनि मिलि, ए पचीस सब दोष. ॥ ९ ॥

अर्थः— सुदेव समजे नही ए पेली मूढता, सुगुरुने समजे नही ए बीजी गुरु मूढता. सुधर्मने समजे नही ए त्रीजी धर्म मूढता. ए अविद्यानो पोषक छे ए रीतें आठ मद, आठ मल, छ आयतन, त्रण मूढता, सर्व मली पचीस दोष थया. ९

हवे पांच प्रकार सम्यक्तनो नाश करे ते कहेछेः-- अथ नाश पंचक यथाः--

दोहराः-- ज्ञान गर्व मतिमंदता, निठुर वचन उदगार; रुद्रभाव आलस द सा, नास पंच परकार. ॥ १० ॥

अर्थः-- ज्ञानना गर्वथी, बुद्धिनी मंदताथी, कठण वचनना उदगार के० कहेवाथी, रौद्र भाव धरवाथी, आलसु पणाथी, एवी रीतें पांच प्रकारे सम्यक्तनो नाश थायछे.

हवे दिगंबर संप्रदायथी सम्यक्तना पांच अतिचार कहेछेः-- अथ अतीचारपंचकयथाः-

दोहराः-- लोग हास भय भोग रुचि, अग्रसोच थिति चेव; मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दरसनी सेव॥११॥चोपाईः--अतीचार ए पंच प्रकारा; समल करहि स मकितकी धारा; दूषन भूषन गति अनुसरनी; दसा आठ समकितकी बरनी१२॥

अर्थः-- सम्यक्तनी क्रियाथी मने लोक हससे एवो मनमां भय राखे, पांच इं द्रियना विषयभोगनी रुचि राखे. आगल माहारुं शुं थाशे एवी पोतानी स्थितिनुं चिन्तन करतो रहे. मिथ्यात दर्शनना जे आगम सिद्धांत छे तेनी भक्ति करे, पांच मुं मिथ्या दर्शननी सेवा करे ॥ ११ ॥ ए पांच प्रकारना अतीचार ते सम्यक्त नी उज्वल धाराने मल सहित करेछे, एवी दूषण गतिनी पाछल लागी अने भूष ण गतिने पाछल लागी रहे ए समकितनी आठ दशाने वरणी ॥ १२ ॥

हवे जे सात प्रकृतिना क्षय अथवा उपशमथी सम्यक्त उपजे ते कहेछेः--

अथ सप्त प्रकृति यथाः--

दोहराः-- प्रकृति सात अब मोहकी, कहों जिनागम जोइ; जिन्हको उदै नि वारिके, सम्यक दरशन होइ ॥ १३ ॥ सवैया इकतीसाः-- चारित मोहकी चारि मिथ्यातकी तीनि तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुबंधी कोहनी; बीजी महामान रस भीजी माया मई तीजी, चोथी महालोभ दसा परिगह पोहनी; पांचइ मिथ्यात म ति छठी मिश्र परनति, सातई समें प्रकृति समकित मोहनी; एई षट विंगवनि तासी एक कुतियासी, सातो मोहप्रकृति कहावे सत्ता रोहनी ॥ १४ ॥

अर्थः-- हवे मोहनीयनी सात प्रकृति श्री जिनेश्वरनो आगम जोई कहुंछुं. जे सात प्रकृतिनो उदय निवारवाथी सम्यक्त दर्शन प्रगट थायछे ॥ १३ ॥ मोहनी कर्मना बे भेद छेः-- एकतो चारित्र मोहनी, बीजी मिथ्यादर्शन मोहनी, तेमां चारित्र मोहनीयनी चार प्रकृति, अने मिथ्या दर्शन मोहनीनी त्रण प्रकृति मली सात प्रकृति छे; तेमां प्रथम प्रकृति अनंतानुं बंधी कोहनी के० क्रोधनी, बीजी प्रकृति म हा अभिमानना रसमां भीनो थको रहे ते अनंतानुबंधी मान, अने त्रीजी प्र

कृति महामायामय ते अनंतानुबंधी माया, चोथी प्रकृति महालोभ दशामां परिग्रहनी पोषण करनार ए अनंतानुबंधी लोभ, पांचमी प्रकृति मिथ्यात मोहनी, छठी प्रकृति मिश्रपरिणाम एटले मिश्र मोहनी, सातमी प्रकृति जे छे ते पहेली छए प्रकृतिनुं सम थयो एटले दबाई गई ते सातमी सम्यक्त मोहनी जाणवी, एमां धुरली छ प्रकृतितो विंगवनितासी के० वाघणी जेवी छे एनी गैल लागी तो कांइ छूटती नथी, अने एक सातमी प्रकृति कुतियासी के० कुभार्या जेवी छे तेनोपण भरोसो नथी ए साते मोहनीयनी प्रकृति ते जीवना सद्भावनी रोकनार छे. ॥ १४ ॥

हवे साते प्रकृतिथी सम्यक्तना भेद उपजे ते कहे छेः— अथ सम्यक्त भेद कथन

छप्पय छंदः— सात प्रकृति उपसमहि, जासु सो उपसम मंडित; सात प्रकृति छय करन, हार छायकी अखंडित; सातमांहि कछु षिपहि, कछुक उपसम करि रक्खे; सो छय उपसमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे; षट प्रकृति उपशमइ वा षिपइ, अथवा छय उपशम करे; सातई प्रकृति जाके उदय, सो वेदक समकित धरे ॥ १५ ॥

अर्थः— जेने ए सात प्रकृति उपसमी जाय तेतो उपसमी, पंडित के० ज्ञाता होय तेनुं नाम उपशम सम्यक्त कहीए; अने जे ए साते प्रकृतिनो क्षय करनार होय तेने क्षायकी कहीए, ते अखंडित ज्ञायक सम्यक्त होय, वली ए साते प्रकृतिमां कंई खपावे, कंई उपशमावी राखे, तेतो उपशम लक्षण सहित, तेमां मिश्ररूप सम्यक्त रसने चाखे, ए सातो प्रकृतिमां छ प्रकृति उपशमे अने सातमी सम्यक्त मोहनीय तो प्रकृति उदय आवी वेदे छे. अथवा छ प्रकृति क्षय थईछे अने सातमी वेदे छे. अथवा छ प्रकृतिमां कोई प्रकृतिनो क्षय थयो छे. अने कोइनो उपशम थयोछे, अने सातमी प्रकृति वेदे छे ते वेदक सम्यक्त धारी कहीए ॥ १५ ॥

हवे सर्वे सम्यक्तना नव भेद कहे छेः— अथ नवविधि सम्यक्त वर्ननं:

दोहराः— छय उपसम बरते त्रिविध, वेदक चार प्रकार; छायक उपशम जुग जुगुत, नौधा समकित धार ॥ १६ ॥

अर्थः— क्षयोपशमसमकित त्रण प्रकारनो वर्त्ते छे. वेदक सम्यक्तना चार प्रकार छे, क्षायक सम्यक्तनो एक प्रकार छे अने उपशम सम्यक्तनो एक प्रकार, ए क्षायकने उपशम बेहुना मलवाथी सर्व मली नव प्रकारनो सम्यक्तधारी थाय ॥ १६ ॥

हवे क्षयोपशम सम्यक्तना त्रण प्रकार कहेछेः— अथ क्षयोपशम त्रई यथाः—

दोहराः— चारि षिपहि त्रय उपसमहि, पण षय उपसम दोइ; पै षट उपसम एक यों, षय उपसम त्रिक होइ ॥ १७ ॥

अर्थः—साते प्रकृतिमां अनंतानुबंधीनी चोकडी खपी गइछे, अने त्रण दर्शन मोह नी उपसमी छे, तेने क्षयोपशम सम्यक्त कहिए. अथवा चार अनंतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी ए पांच प्रकृति क्षय गईछे, अने बे उपशमी छे, तेने पण क्षयोपशम सम्यक्त कहीए, अथवा मिश्र मोहनी लगण छ प्रकृति क्षय गई, अने सातमी उपशमावी छे, तोपण क्षयोपशम सम्यक्त कहीए, एम त्रण प्रकारे क्षयोपशम सम्यक्त थाय. हवे क्षयोपशम सहित सम्यक्त मोहनी वेदवाथी जे क्षयोपसम वेदक नीपजे छे तेना बे प्रकार छेः-- अथ क्षयोपशम वेदक द्विक यथा कथनः--

दोहराः-- जहां चारि प्रकरती षिपहिं, द्वै उपसम इक वेद; षय उपसम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद. ॥ १७ ॥ पंच षिपे इक उपसमैं, इक वेदे जिहि ठौर, सो षयउपसम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥ १८ ॥

अर्थः-- ज्यां अनंतानुबंधी चार प्रकृति क्षय थाय छे. अने मिथ्यात मिश्र ए बेउ प्रकृति उपशमेछे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदेछे. आवी दशामां जे क्षयोपशम सहित वेदक समकित थयोछे. तेनो आ प्रथम भेद छे. ॥ १७ ॥ वली ज्यां चार अनंतानुबंधी अने मिथ्यात मोहनी ए पांच प्रकृति खपीछे, अने एक मिश्र मोहनी उपशमी छे. अने एक सम्यक मोहनी वेदे छे. त्यारे क्षयोपशम सहित वेदक समकितनी आ बीजी दशा थई. ॥ १८ ॥

हवे जे क्षायिक सहित वेदकछेः-- अने उपसमसहित वेदक छे. तेनो प्रकार कहे छेः—

अथ क्षायक वेदक उपशम वेदक यथा कथनः-

दोहराः— षय षट वेदे एक जो, ष्यायक वेदक सोइ, षट उपसम इक प्रकृति विद, उपसम वेदक होइ. ॥ २० ॥ खायक उपसमकी दशा, पूरव षट पद मांहि, कही प्रगट अब पुनरुकति, कारन बरनी नांहि. ॥ २१ ॥

अर्थः— ज्यां चारे अनंतानुबंधि अने मिथ्यात मोहनी मिश्र मोहनी ए छ प्रकृति खपी छे. अने एक सम्यक्त मोहनी वेदे छे, त्यारे क्षायिक वेदक सम्यक्त कहिये, अने ए जे पूर्वे छ प्रकृति कही ते जेणे उपशमावी छे, अने एक सम्यक्त मोहनीय वेदे छे, त्यारे उपशम वेदक सम्यक्त कहिये. ॥ २० ॥ क्षयोपशम नामे जे सम्यक्त कहीए, तेनी दशा तो पाछला षटपद के० छपय छंदमां कही छे, तेहां ए सातमां कंईक उपशम करी राखे, एवुं प्रगट कहेलुं छे. तेथी आंहि फरी कहेवाथी पुनरुक्ति दोष लागे ते कारणथी फरी वरणवी नथी. ॥ २१ ॥

हवे सम्यक्तना मूळ भेद चार अने उत्तर भेद नव छे ते कहेछेः– अथ भेद विवरनः–

दोहराः– षय उपसम वेदक षिपक, उपसम समकित च्यारि; तीन च्यारि इक इक मिलत, सब नव भेद विचारि. ॥ २२ ॥

अर्थः–क्षयोपशम सम्यक्त, वेदक सम्यक्त, क्षायक सम्यक्त, उपशम सम्यक्त, एवा मूळ चार भेद समकितना थया. वळी क्षयोपशमना त्रण भेद, वेदकना चार भेद अने क्षायकनो एक भेद, उपशमनो एक भेद, ए सर्व मळी समकितना नव उत्तर भेद थया. हवे निश्चयादिक सम्यक्तनी व्यवस्था कहेछेः–अथ निश्चे व्यवहार सामान्यविशेषः–

सोरठाः– अब निहचें विवहार, अरु सामान्य विशेष विधि; कहों च्यारि परकारि, रचना समकित भूमिकी. ॥ २३ ॥ सवैया इकतीसाः– मिथ्या मति गांठि भेद जगी निरमळ ज्योति, जोगसों अतीत सोतो निहचें प्रवानिये; वहे दुंद दसासों कहावे जोग मुद्रा धरे, मति श्रुति ज्ञान भेद विवहार मानिये; चेतना चिह्न पहिचान आपपर वेदे, पौरुष अलप ताते समान बखानिये; करे भेदाभेदको बिचार विसताररूप हेय गेय उपादेयसों विशेष जानियें. ॥ २४ ॥ सोरठाः– थिति सागर तेतीस, अंतर मुहुरत एक वा; अविरति समकिति रीस, यह चतुर्थ गुन थान इति २५

अर्थः– हवे निश्चेथी अने व्यवहारथी सामान्य विशेषपणो कहेछे सम्यक्तनी भूमिनी चार प्रकारनी रचना छे ते कहेछे. ॥२३॥ प्रथम मिथ्यात ग्रंथी भेदिने जे आत्मानी निर्मळ ज्योति जागी छे. अने जे ज्योति मन, वचन, कायाना जोगथी अतीत छे तेतो सम्यक निश्चेनयथी प्रमाण करीए. बीजुं ते सम्यक ६६ दशाथी वर्तमान थाय छे. एटले बहु विकल्पथी धामधूम दशाथी वर्त्ते छे. त्यारे तो एवुं कहेवाय छे के ए जोग मुद्रा धारी छे आ मति ज्ञानी छे. आ श्रुत ज्ञानी छे. एवा भेद व्यवहारनयथी मानिये छे त्रीजुं ए आत्माना चेतनारूप चिन्ह के० लक्षण जाणीने आत्म द्रव्य अने परद्रव्यने वेदे छे. परंतु अंतरायना उदयथी पुरुष पराक्रम अल्प छे. एटले अविरति छे. तेथी ए सामान्यपणे सम्यक्त कहीए, चोथुं गुण अने गुणिनो भेदाभेद विचार विस्ताररूप करे जेम आत्मा गुणिछे ज्ञानादिक गुण छे. तेना भेदाभेदनो विचार करवो एवा हेय ज्ञेय उपादेयनो विचार राखवो ए विशेषपणे सम्यक्त जाणिए. ॥ २४ ॥ अविरत सम्यकतनी उत्कृष्टि तेत्रीस सागरोपम स्थिति अथवा जघन्यथी एक अंतर मुहूर्तनी स्थिति होय, अविरति सम्यक्तनी रहस्य मर्यादा ए बे प्रकारें होय, ए चोथुं गुणस्थानक समाप्त थयुं. ॥२५॥

हवे पांचमां गुणस्थानकना विवरणनो आरंभ करेछेः—अथ पंचमगुनथानक आरंभ

दोहराः— अब बरनो इकवीस गुन, अरु बावीस अभष्य; जिन्हके संग्रह त्यागसों, सोहे श्रावक पष्य. ॥ २६ ॥

अर्थः— तेमां प्रथम पांचमा गुणस्थानक लायक श्रावकना एकवीस गुण कहुंछुं. अने बावीस अभक्ष छे ते कहुंछुं जे गुणने संग्रह करवाथी अने जे अभक्षने त्यागवाथी श्रावकनो पक्ष गुणसंग्रहीत शोभायमान थाय ते कहुंछुं. ॥ २६ ॥

हवे श्रावकना एकवीस गुणनां नाम कहेछेः—अथ श्रावक इकवीसगुन कथनः—

सवैया इकतीसाः— लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत परदोषकों ढकैया पर उपगारी है; सोम दृष्टि गुन ग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट सीष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरग विचारी है; विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, नदीन न अभिमानी मध्य विवहारी है; सहजै विनीत पाप क्रियासों अतीत एसो. श्रावक पुनीत इकवीस गुन धारी है॥२७॥

अर्थः— लज्जावंत १, दयावंत २, संतमूर्ति ३, प्रतीतवत ४, परदोषनो ढांकनार ५, परउपकारी ६, सोमदृष्टि ७, गुणग्राहक ८, गुरुवाई ९, सर्वेनो वल्लभ १०, सिष्टाचारनुं पक्षी ११, मिष्टवचन बोलनार १२, लंबो विचार विचारे १३, विशेष ज्ञाननो जाणनार १४, शास्त्ररस जाणनार १५, करेला उपकारने जाणे १६, ते उपकारने जाणे १७, धर्मने जाणनार १८, अदीनपणुं ग्रहे अभिमानी रहे नही १९, एवा मध्यम वेहेवारमां रहे. के जेथी सहज स्वभावे विनयवंत होय २०, अने पापक्रियाथी रहित होय २१, एवा पवित्र श्रावक एकवीश गुणना धरनार थाय. ॥ २७ ॥

हवे जघन्य श्रावकने बावीस वस्तु अभक्ष छेः—अथ बावीसअभक्ष वर्ननः—

कवित्त छंदः—उरा घोरवरा निसभोजन, बहु बीजा बेंगन संधान; पींपर वर उंबरि कठूंबरी, पाकर जोफल होइ अजान; कंद मूल माटी विष आमिष, मधु माषन अरु मदिरापान; फल अति तुछ तुसार चलित रस, जिनमत ए बावीस अषान.॥ २८॥

अर्थः— गभोरा हेमा करहा १, काचा धोलना वभा २, रात्री भोजन ३, बहु बीज फल ते दाडम प्रमुख ४, वेगण ५, अथाणुं पाणीमाहेलो ६, पीपलनी पीपी ७, वडवृक्षना फल ८, घोलरना फल ९, कठुंबरनां फल १०, पाकरीनां फल ११, अजाण्यांफल १२, कंदमूलनी जाति सर्वे १३, माटीनीजाति १४, अफीमप्रमुख १५ मांस १६ मधु १७, मांखण १८, मदिरापान १९, बहु तुछ फल काचुं फल २०, हीम २१, जेनो वर्ण, रस, गंध, स्पर्श फरी गयो होय ते चलित रस २२, ए बावीस वस्तु श्री जिनेश्वरना मत धारीने अभक्ष छे. ते खावी नही ॥ २८ ॥

दोहराः— अब पंचम गुन थानकी, रचना वरनो अल्प;
जामे एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प. ॥ २९ ॥

अर्थः—हवे देशविरतीनामें पांचमा गुनथानननी रचना अल्पमात्र वर्णवुं छुं संक्षेपमात्र करीने ते गुणथानमां अग्यार प्रतिमा धारी छे प्रतिमा एवुं नाम चारित्र विकल्पनुं छे. २९

हवे अगीआर प्रतिमाना यथार्थनाम कहेछेः--अथ एकादश प्रतिमा नामकथन

सवैया इकतीसाः— दंसन विशुद्धकारी बारह विरतधारी सामायक चारी पर्व पोसह विधि वहे; सचित्तको परिहारी दिवा अपरस नारी, आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभी व्है रहे; पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त करे सो वस्त न गहे; एते देस व्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिन्हे भगवंतजी कहे ॥ ३० ॥

अर्थः— दर्शन विशुद्धनी करनारी दर्शन प्रतिमा. १, बारे व्रतनी धरनारी विरति प्रतिमा. २, जहां सामायकनो उच्चार छे ते सामायक प्रतिमां. ३ जहां पर्व आव्याथी पोसह करवो ते पोसहप्रतिमा. ४, जहां सचित्त वस्तुनो परिहार कहियें ते सचित्त परिहार प्रतिमा. ५, ज्यां दीवसे स्त्री स्पर्श न करवो ते दिवस अस्पर्श प्रतिमा. ६, आठे प्रहर ब्रह्मचर्यमां रहेवुं ते ब्रह्मचर्य प्रतिमा. ७, सर्व आरंभनो जिहां त्याग करवो ते निरारंभी प्रतिमा. ८, परिग्रहने त्यागवो ते परिग्रह त्याग प्रतिमा, ९, ज्यां पापोपदेश न देवुं ते पापोपदेश त्याग प्रतिमा. १०, कोई आपणा निमित्त आहारादिक वस्तु करे ते ले नही ते उद्देशिक त्याग प्रतिमा. ११, ए अगीयार प्रकारे करीने देश विरत धारी सम्यक्ति जीव कह्या छे तेनी आ इग्यार प्रतिमारूप प्रतिज्ञा भगवंतजी कहे छे ॥ ३० ॥

हवे ए प्रतिमानो अर्थ कहेछेः— अथ प्रतिमा कथनः—

दोहराः— संयम अंस जग्यो जहां, भोग अरुचि परिनाम; उदे प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताको नाम. ॥ ३१ ॥

अर्थः-- जहां संयम चारित्रनो अंस जाग्यो, अने भोग अरूचिना परिणाम थया, त्यां कोई प्रतिज्ञानो उदय थयो तेनुं नाम प्रतिमां कहीए. ॥ ३१ ॥

हवे प्रथम दर्शन प्रतिमानुं विवरण करेछेः-- अथ प्रथम प्रतिमा यथाः--

दोहराः— आठ मूलगुण संग्रहे, कुवसन क्रिया न कोइ; दर्शन गुन निर्मल करे; दर्शन प्रतिमा सोइ ॥ ३२ ॥

अर्थः—आंही पेहेला कह्या छे करुणा वत्सल सुजनता इत्यादिक सम्यक्तना आठ मूल

गुण छे तेनो संग्रह करे, ज्यां साते व्यसननी क्रिया नथी एवा सम्यक्त दर्शनना गुण निर्मल करे, तेज दर्शन प्रतिमा कही इहां व्रत नथी एनो काल एक मासनो छे ॥३२॥

हवे बीजी प्रतिमानो विवरो कहेछेः-अथ द्वितीय प्रतिमा यथाः-

दोहराः- पंच अनुव्रत आदरे, तीन गुण व्रत पाल; सिक्षा व्रत च्यारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल. ॥ ३३ ॥

अर्थः- पांच अणुव्रत, त्रण गुणव्रत अने सामायक धारे १, पोसह धारे २, देशावगासग करे ३, अतिथ संविभाग करे तथा चार शिक्षाव्रत धारे, ते व्रत प्रतिमा जाणवी तेनो काल बे महीनानो छे. ॥ ३३ ॥

हवे त्रीजी सामायक प्रतिमानो विवरो कहेछेः-- अथ तृतिय प्रतिमा यथाः-

दोहराः-- दर्वभाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक; तजि ममता समता गहे, अंतर मुहुरत एक. ॥ ३४ ॥ चोपाईः-- जो अरिमित्र समान विचारे, आरत रूद्र कुध्यान निवारे; संजमसहित भावना भावे; सो सामायकवंत कहावे. ॥ ३५ ॥

अर्थः- दश दोष वचनना टालवा, बार दोष कायाना टालवा, ए द्रव्यविधि अने दश दोष मनना टालवा ते भावविधि जाणवी, तेणे करीने संयुक्त; अने हैया मां एक शो आठ पंचपरमेष्ठी मंत्रनो स्मरण लागो रहे. एम बीजी पण कोई प्रतिज्ञा नी टेक राखीने, ममता तजीने, समता ग्रहण करवी, एम एक अंतरमुहूर्त काल पर्यंत सामायक चारित्र थाय ॥ ३४ ॥ जे कोई शत्रु मित्रने समान विचारे, आर्तध्यान रौद्रध्याननुं निवारण करे, पंच संवर सहित थाय, बार भावना भावे, तेज सामायकधारी श्रावक कहिए; ए त्रीजी प्रतिमा त्रण मासनी होय ॥ ३५ ॥

हवे चोथी पोसह प्रतिमानो विवरो कहेछेः- अथ चतुर्थ प्रतिमा यथा.-

दोहरा.- सामायक कीसी दसा, चार पहर लों होइ;
अथवा आठ पहर रहे, पोसह प्रतिमा सोइ. ॥ ३६ ॥

अर्थः- जे पूर्वे सामायकनी दशा कहीछे तेवी दशा चार प्रहर लगी होय, अथवा तेवी दशा आठ प्रहर लगे रहे, तेज पोसह प्रतिमा धारी श्रावक कहीए, ए चार मासनी प्रतिमा जाणवी इहां आठम चउदश अमास पूनमने दहाडे तथा पर्वदिन आवेथी पोसह करे ॥ ३६ ॥

हवे पांचमी सचित्त परिहार प्रतिमानो विवरो कहेछेः-अथ पंचमी प्रतिमायथाः-

दोहराः- जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर;
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञागीर ॥ ३७ ॥

अर्थः— जे सचित्त भोजननो त्याग करे अने फासु जल पीए, ए रीते जे पुरुष सचित्त वस्तुनो त्याग करे ए पेहेली प्रतिमाथी एटली वधती, क्रिया करे तेतो पांचमी प्रतिमानो धरनार जाणवुं ए प्रतिमा पांच मास सुधी रहे. ॥ ३७ ॥

हवे छठी ब्रह्मचर्यप्रतिमानो विवरो कहेछेः— अथ षष्टी प्रतिमा यथाः—

चोपाईः— जो दिन ब्रह्मचर्यव्रत पाले; तिथि आए निसि दौस संभाले; गहि नौवाभी करै व्रत रक्षा; सो षट प्रतिमा साधक अक्षा. ॥ ३८ ॥

अर्थः— सचित्तनो परिहारि तो प्रथमनीज रीते छे. अने दिवसे ब्रह्मचर्य व धारे पाले. अने पंचमी पर्व आवे दीवसरात्रमां एटले आठ प्रहर ब्रह्मचर्य पाले तिहां नववाडे करीने ब्रह्मचर्यवृत्तनी रक्षा करे. ते पुरुष छठी प्रतिमानो साधनहार होय ते छमास लगणनी जाणवी ॥ ३८ ॥

हवे सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमानो विवरो कहे छेः— अथ सप्तमी प्रतिमां यथाः—

चोपाईः— जो नववाडि सहित विधि साधे; निशिदिन ब्रह्मचर्य आराधे; सो सप्तम प्रतिमाधर ज्ञाता; शील शिरोमनि जगत विख्याता ॥ ३९ ॥

अर्थः—जे श्रावक नववाड सहित जे ब्रह्मचर्यवृत्तनी विधि छे. ते विधियें ज रात दिवस ब्रह्मचर्यने आराधतो रहे. अने जे आगल छ प्रतिमानी क्रिया कही छे तेने तो लीधोज रह्यो छे. एवो जे श्रावक छे. तेतो सातमी ब्रह्मचर्य प्रतिमानो धरनार ज्ञानी पुरुष शील शिरोमणि जगतमां प्रख्याति पामेलो जाणवो ॥ ३९ ॥

हवे आंही प्रसंगथी नव वाडनो विवरो कहे छेः— अथनौवाडि यथाः—

कवित्तछंदः— तियथलवास प्रेमरुचि निरषन, देपरीछ भाषन मधुंवन; पूरवभोगकेलि रसचिंतन, गुरु आहार लेत चितचेन; करि सुचि तन सिंगार बनावत, तियपरजंक मध्यसुखसेन; मनमथ कथा उदरि भरि भोजन, ए नववाभि जान मतजेन ४०

अर्थः— ज्यां स्त्रीउं वसे त्यां वासन करवो, प्रेमरुचि राखीने स्त्रीना अंगोपांग देखेवानहीं, दृष्टिदोषनुं निवारण करीने. आडुं पडडुं आपीने स्त्रीना मधुर वचन सांभले नहीं, पूर्व कालमां जे भोग क्रीडा करी होय तेनो रस चिंतवे नहीं, चितना चेनने अर्थें घृतादिक सहित गरिष्ट आहार लेनहीं, स्नान मंजनथी शरीरने पवित्र करीने शृंगार शोभा सजे नहीं, स्त्रीने सुवाना पलंगमां सुखसेन करे नहीं, मनमथ जे कंदर्प तेनी कथा कहे नही, पेट भरीने भोजन न करे, ए नव वाडो जैन मतमां जाणवी ए बहुज आनंद कारी छे ॥ ४० ॥

हवे आठमी निरारंभ प्रतिमानो विवरो कहे छेः– **अथ अष्टमी प्रतिमा यथाः–**

दोहराः– जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ; सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजे रन थंभ ॥ ४१ ॥

अर्थः– जे कोई श्रावक पाछली सर्व क्रिया करतो थको विवेक सहित विधि विशेष आदरे, अने पापनो आरंभ पोताना हाथे न करे तेतो आठमी निरारंभ प्रतिमानो धरनार श्रावक कुगतिना विजयनो रणथंभ रूप थई रह्यो छे ॥ ४१ ॥

हवे नवमी परिग्रह प्रतिमानो विवरो कहे छेः– अथ नवमी प्रतिमा यथाः–

चोपाईः– जो दसधा परिग्रहको त्यागी; सुख संतोष सहज वैरागी; समरस चिंतित किंचित ग्राही; सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ४२ ॥

अर्थः–जे नवविध परिग्रहनो त्यागी होय, सुख संतोष सहित वेरागी होय, उपशमरसथी भीज्यो रहेतो होय, किंचित ग्राही कहेतां कंईएक असन वशननु ग्रहण करनारो होय अने बीजी क्रिया सर्वे आठमी प्रतिमानी परें होय, ते श्रावक नवमी प्रतिमानो धरनार होय ए प्रतिमा नवमास लगी रहे ॥ ४२ ॥

हवे दसमी पापोपदेश त्याग प्रतिमा कहेछेः– अथ दसमी प्रतिमा यथाः–

दोहराः– परकों पापारंभको, जो न देइ उपदेश; सो दशमी प्रतिमासहित, श्रावक विगत कलेश. ॥ ४३ ॥

अर्थः– नवमी प्रतिमा लगण गृह कुटुंब परिवारने पापनो उपदेशआपे पण आहीं पापारंभनो उपदेश त्यागे ते श्रावकने दशमी प्रतिमासहित जाणिये तेज श्रावक क्लेश रहित थयो एम जाणवुं. ॥ ४३ ॥

हवे अग्यारमी उचितग्राही प्रतिमानो विवरो कहेछेः–अथ अग्यारमी प्रतिमा यथा

चोपाईः– जो सुछंद वरतें तजि डेरा, मठमंडपमहिं करे वसेरा; उचित अहार उदंड विहारी; सो एकादश प्रतिमा धारी.॥ ४४ ॥

अर्थः– जे आपणां घर बार डेरा छांडीने स्वछंद वर्त्ते, अने मठ मंडपमां वास करे, आधाकर्मि आहार त्यागे, योग्य आहार ले अने उदंड व्यवहारी थइ साधु जेवुं थाय, ते अगीआरमी प्रतिमनो धरनार थाय ए श्रावकनी करणी छे. ॥ ४४ ॥

हवे अग्यारमी प्रतिमानी व्यवस्था कहेछेः–अथ एकादश प्रतिमा यथाः–

दोहराः– एकादश प्रतिमा दशा, कही देशव्रत मांहि; वही अनुक्रममूलसों, गही सु छूटी नांहि ॥ ४५ ॥

अर्थः– ए अगीआर प्रतिमांनी दशा पांचमां देशविरति गुणस्थानकमांहे क

ही हवे प्रथमथी जे आगलनी प्रतिमाओ ग्रहण करेली छे तेना अनुक्रमे ग्रहीज रह्यो छे पण तेथी छुटो नथी अने चढति चढति क्रिया करतो रहेछे४५॥

हवे अग्यार प्रतिमा धारीमां जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, दशा कहेछेः—

अथ जघन मध्यम उत्कृष्ट कथनः—

दोहराः— षट प्रतिमा तांई जघन, मध्यम नव परजंत; उत्तम दशमी ग्यार मी, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ४६ ॥

अर्थः— छठी दिवश ब्रह्मचर्य प्रतिमा लगण जघन्य श्रावक होय, अने नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा लगण मध्यस्थ श्रावक थाय. दशमी अगीआरमी प्रतिमानो धणी उत्तम श्रावक होय एटले प्रतिमानुं वृत्तांत कह्युं इति प्रतिमा अधिकार समाप्त

हवे पांचमां गुणस्थाननी स्थिति कहेछेः— अथ पंचम गुनस्थानक स्थितिः—

चोपाईः— एक कोटि पूरव गनिलीजें; तामें आठ वरष घट कीजें; यह उत्कृष्ट काल थिति जाकी, अंत मुहुर्त्त जघन्य दसाकी ॥ ४७ ॥

अर्थः— एक कोटि पूर्ववर्षनी संख्या कीजे तेमां आठ वर्ष घटामीए पछी जे वर्ष रहे ते देश व्रति गुणस्थानकनी उत्कृष्टि कालस्थिति जाणवी, अने आदेशव्रति गुणस्थाननी जघन्यदशानी स्थिति एक अंतर्मुहूर्त्त कालमांन होय ॥ ४७ ॥

हवे एक पूर्वकालनी वर्षसंख्या कहेछेः— अथ पूर्वसंख्या कथनः—

दोहराः— सत्तरि लाख करोड मिति, छप्पन सहस करोडि; एते वरष मिलाइ करि, पूरव संख्या जोडि. ॥ ४८ ॥

अर्थः—सिंतेरलाख कोटि वर्ष एटली मिती के० प्रमाणता उपर छपन हजार कोटि वर्ष मेलवीयें तेवारें पूर्वकालनी जोमिना वर्ष संख्या थाय तेना ७०५६००००००००००. एटला अंक थाय, लोक वेहेवारमां सात लप पांचननील साठ अर्ब कहिए. ॥४८॥

हवे अंतर्मुहूर्त्त कालनो जघन्य उत्कृष्ट प्रमाण कहुंछुंः—अथ अंतमुहुरतप्रमान

दोहराः— अंतर मुहुरत द्वै घडी, कछुक घाटि उतकृष्ट; एक समे एकावली, अंत मुहूर्त्त कनिष्ट. ॥ ४९ ॥ यह पंचम गुनथानकी, रचना कही विचित्र; अब छठम गुनथानकी, दसा कहुं सुनु मित्र ॥ ५० ॥

अर्थः— बे घमीमां एक समय ओछो थाय, त्यारेतो उत्कृष्ट अंतमुर्त्त थाय अने एक आवलीने एक समय ते कनिष्ट के० जघन्य अंतमुहूर्त्त काल होय ए दिगंबर संप्रदायथी छे ॥ ४९ ॥ एम देशव्रति पांचमां गुणस्थाननी विचित्र पुरुषे रचना कहीछे हवे हे मित्र छठा गुणस्थाननी दशा कहुंछुं ते सांभलो ॥ ५० ॥

हवे प्रमत्तनामे छठा गुणगणानी अवस्था कहुछुं:—अथ प्रमत्तगुनस्थानकः—

दोहराः— पंचप्रमाद दशा धरे, अगइस गुनवान; थविर कल्प जिन कल्प जुत, है प्रमत्त गुनथान. ॥ ५१ ॥

अर्थः--धर्मरागादि पांच प्रमादनी दशा धारेछे. अने साधुना अठ्यावीस गुण धारे छे आंही अठ्यावीस गुण कह्या ते दिगंबर संप्रदायथी थिवर कल्पथी थिवरनो आचार अने जिनकल्पथी जिननो आचार तेणेकरी युक्त छे. एम प्रमत गुण स्थान होय

हवे पांच प्रमादना नामनी गणती करेछे.-- अथ पंच प्रमाद यथाः--

दोहराः— धरमराग विकथा वचन, निद्राविषय कषाइ; पंच प्रमाद दसासहित, परमादी मुनि राइ. ॥ ५२ ॥

अर्थः—धर्मउपर राग राखे, विकथा वचन बोले, निद्रासेवे, रस ने इंद्रिप्रमुखना विषय सेवे, कषाय सेवे, ए दशासहित जे मुनिराज होय ते प्रमादी कहीए. ॥ ५२ ॥

हवे श्री मुनिराजना अठावीस मूल गुण कहेछेः--अथ अठाइस मूलगुन कथन

सवैया इकतीसाः-- पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगी चित चेंनको; षट आवशक क्रिया दर्वित भावित साधे, प्रासुक धरामें एक आसन है सेंनको; मंजन न करे केसलुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पें सुगंध स्वास चेंनको; ठाढो करषें अहार लघु भुंजी एकवार, अठाइस मूल गुन धारी जती जैनको ॥ ५३ ॥

अर्थः-- सव्वाउ पाणाइ वायाउवेरमणं इत्यादिक पंच महाव्रत पाले इर्यासुमति प्रमुख पांच सुमति संभालीने करे अने पांच इंद्रिनो जीतनार एटले जेने इंद्रियोनाविषय सेवतां चित्तमां चेन नउपजे, तेथी विषयोनो त्यागी थाय सामायक प्रमुख छ आवश्यकक्रिया छे, ते द्रव्यथी पण साधे अने भावथी पण साधे ए २१ गुण थया फासू पृथ्वी प्रमुख सय्यामां प्रमाणोपेत एक शयन आसन राखे ए २२ गुण थया स्नान न करे केश लोच करे शरीरविषे वस्त्रनो त्याग करे दांतण नकरे स्वासवदननो सुगंध मूखशुण प्रमुख नले, उभो उभो अहारकरे लघुता के० अंतप्रांत आहार भुंजे तेपण एक टेक खाय ए अठावीस मूल गुणनो धरनार जैन दर्शनी जती होय ॥ ५३ ॥ ए दिगमबर संप्रदायथी गुण कह्या छे.

हवे पांच महाव्रत कहेछेः— अथ पंच महाव्रत यथाः—

दोहराः— हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज;
किंचित त्यागी अनुव्रती, सवि त्यागी मुनिराज. ॥ ५४ ॥

अर्थः— जीवघात असत्य चोरी मैथुन परिग्रहसामग्री ए पांचे आश्रवने किंचित त्यागे ते अणुव्रती श्रावक कहिए अने सर्वथा त्यागे ते मुनिराज कहिए॥५४॥
हवे पांच प्रकारनी समिति एटले सावधानपणुं कहेछेः—अथ पंच सुमति यथाः—

दोहराः— चले निरषि जाषे उचित, जषे अदोष अहार;
लेइ निरखि मारे निरखि, सुमति पंच परकार ॥ ५५ ॥

अर्थः— जोईने चाले ते ईर्या सुमति, योग्य वचन बोले ते जाषा सुमति, दूषणरहित आहार लीए ते एषणा सुमति, वस्त्र पात्र निरषीने ले ते अदान सुमति मलमुत्रादिक जोइने परठवे ते पारीठावणीया सुमति, ए पांच प्रकारे सुमति॥५५॥
हवे जे अवश्य करीए ते आवश्यक कहीए तेना नाम कहेछे, अथषमावश्यकयथा

दोहराः— समता वंदन थुति करन, पमिकमनो सझाउ, काउसग्ग मुझाधरन ए षडावसिक जाउ. ॥ ५६ ॥

अर्थः— सामायक धरवी १ गुरुवंदना करवी २ चोवीशजिनेश्वरनी स्तुति करवी ३ अतिचारथी निवर्त्तनाते पडिकमना ४ स्वाध्याय करवी ५ काउसग्गमुझा धरवी ए छ आवश्यक कहीए. ॥ ५६ ॥
हवे थिवर कल्प अने जिनकल्पनो जेद कहेछेः—अथ स्थिविर कल्पी जिनकल्पीः—

सवैया इकतीसाः— थविर कलपी जिनकलपी डुविध मुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत है; दोउ अठाईस मूल गुन के धरैया दोउ सरव तियागी व्है विरागता गहत है; थविर कलपिते जिन्हके सिष्य साषा होई,बेठके सजामें धर्म देसना कहत है; एकाकी सहज जिन कलपी तपस्वी घोर, उदेकी मरोरसुं परिसह सहत है. ॥ ५७ ॥

अर्थः— थिवर कल्पी अने जिन कल्पी ए बे प्रकारना मुनिश्वर होय ए बे वनवासमां रहे. अने बेहु नागारहे ए बे अठावीस मूल गुणना धारनार ए बे सर्वस्व के० सर्व परिग्रहना त्यागी थईने वैरागजाव धरे एवा कह्या पण ते बेमां स्थिवर कल्पी ते कहीए जेने शिष्य शाषा होय, अने सजामां बेसिने धर्म देशना करे अने जे जिन कल्पी होय ते एकाकी होय घोरतपस्वी होय अने कर्म उदयनी मरोरथी जे परिसह उपजे छे ते सहन करे ए दिगमबर संप्रदायिक वचनो छे.॥५७॥
हवे प्रसंगथी बावीस परिसह साधुने सहेवा योग्य तेना नाम कहेछेः—

अथ बावीस परीसह यथा कथनः—

सवैया इकतीसाः—ग्रीषममें धूप थिति सीतमें अंक पचीत, जूषेधरेधीर प्यासे नीर न चहतु है; मंस मसकादिसों न मरें जूमि सैन करें,वध बंध वियामें अमोल व्है र

हतु है; चर्या दुख जरे तिन फाससों न थरहरें, मल दुरगंधकी गिलान न गहतु हैं; रोगनको न करें इलाज एसो मुनिराज, वेदनीके उदे ए परीसह सहतु है. ॥ ५८ ॥

अर्थः— उष्ण कालमां तडकामां आताप सहे, शीत कालमां शीत सहेवाथी चित्तमां कंपे नही, भुख्यो छतां धीरज राखे अनेपणी ग्रहे नही प्यासवंत थको स दोष पाणीनी चाहना करे नही नागा शरीरने मांस मच्छकादि करडे तोपण मरे नही धरतिये सय्या करे मरणांत कष्ट आवे जातजातना वध बंधनादिक कष्ट तेथी अमोल रहे पण चलायमान न थाय चर्या के० विहारनुं दुःख जरे तदरीले विहारमां तथा सयनासनमा कठोर त्रण स्पर्शथी थरहरे नही मेलनी जे दुर्गंध छे तेथी तेनी दुगछा न करे रोगनी वेदना सहे पण तेनो इलाज न करे एवा मुनिराज होय ते वेदनीय कर्मना उदयथी ए इग्यार परिसह उपजे छे तेने सहे छे ॥ ५८ ॥

कुंडलीयाः— एते संकट मुनि लहे, चारित मोह उदोत; लज्जा संकुच दुःष ध रे, नगन दिगंबर होत; नगन दिगंबर होत, श्रोत रति स्वाद न सेवे; त्रियसनमुख हग रोकि, मान आपमान न बेवे; थिर व्हे निर्जय रहे, सहे कुवचन जग जेते; निक्षुक पद संग्रहे, लहे मुनि संकट एते. ॥५९॥ दोहराः—अल्प ज्ञान लघुता लखे मति उतकरष विलोइ, ज्ञानावरन उदोत मुनि; सहे परीसह दोइ ॥ ६० ॥ स हे अदरसन दुरदसा, दरसन मोह उदोत; रोकेउमग अलाजकी, अंतरायके होत.

अर्थः— हवे चारित मोहनीना उदय थवाथी मुनिराज संकट सहेछे ते संक टनी गणतरी कहेछे नगन दिगंबर थई जे लज्जाथी संकोच दुःख उपजे छे तेने धरे. एटले संकटथी न जागे १ वली नगन दिगंबर थइ श्रोत के० इंद्रीयना र ति स्वादने न सेवे, २ स्त्रीना हाव जावथी चुके नही ३ कोइ सत्कार करे कोइ असत्कार करे तेउपर विषम जाव लावे नही ४ कोइ जयथी जागे नही स्थिर र हे निर्जय रहे ५ जगतमां जे कंइ कुवचन छे आक्रोसना वचन छे ते सर्व सहन करे ६ निक्षा ग्रहणथी निक्षुक पद संग्रहे पण ते संकटथी जाजे नही ए सात संकट चारित्र मोहनीना उदयथी मुनि लहेछे ते सहन करे छे ॥ ५९ ॥ हवे जण्याविना अल्पज्ञानथी सर्वमां पोतानी लघुता थाय ते सहन करे पोता ना मतिना उत्कर्षथी उत्कृष्टपणुं जोइने गुरुता सहे, एवी ज्ञानावरणी कर्मनो उ दय थातां अज्ञान परिसह अने प्रज्ञापरिसह ए बे परिसह उपजे छे ते सहन करे ॥६०॥ दर्शन मोहनीयना उदय थवाथी सम्यक् दर्शननी मलिनता उपजे तेनी दुष्ट दशा सहे पण सम्यक् दर्शनथी न जागे अंतराय कर्मनो उदय थवाथी जे

जाजनो उमंग रोकी रहे तेथी अजाजने सहन करे ए बावीस परिसह कह्या॥ ६१॥ हवे जे कर्मथी जे परिसह उपजे ते कहे छे. अथ बावीस परिसह विवरननः—

सवैया इकतीसाः— एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात, ज्ञानावरनीकी दोई एक अंतरायकी; दंसन मोहकी एक द्वाविंसति बाधा सब केई मनसाकी केइ वाकी केई कायकी; काहुकों अलप काहूसों बहोत उनी सात. एकहीं समेमें उदे आवे असहायकी; चर्याथित सज्ञामांहि एक सीत उस्नमांहि एक दोइहोहि तीनि नांही समुदायकी ॥ ६२ ॥ दोहराः— नानाविध संकटदशा, सहिसाधे शिव पंथ, थिविरकल्प जिन कल्पधर, दोऊ सम निगरंथ. ॥ ६३ ॥

अर्थः— अग्याआर संकट तो वेदनी कर्मना उदयथी उपजे छे चारित्र मोहनीय कर्मथी सात बाधा उपजे छे. ज्ञानावरणनी करेली बे बाधा उपजे छे अंतरायनी कीधी एक बाधा उपजेछे दर्शन मोहनीनी करेली एक बाधा उपजे छे, सर्वे मली बावीस बाधा थइ ते बावीसने परिसह कहीए बावीस बाधामां कोई मननी छे कोइ वचननी छे कोइ कायानी छे आ बावीस बाधामाहेली कोइने अल्प एक बे उपजे कोइने बहु उपजे तो एकज समे ओगणीस बाधानुं उदय थाय तेमां असहायनी के० जे बाधा बाधासाथेज बोलेछे पण साथे बने नही त्यारे तेमां एकज बाधा एक समे थई ते असहायनी कहीए. जेम चर्यापरिसह चालवाथी उपजे छे निषेद्या परिसह रहेवाथी उपजेछे शय्या परिसह रहेवाथी उपजे छे. अने शितबाधा तथा उष्ण बाधामां एक समयमां एकज बाधा उपजे तेथी आ पांच परिसहमां एक अथवा बे अथवा त्रण एक समयमां थाय पण समुदायरूप पांचे न थाय. ॥ इति परिसह अधिकार समाप्त थयो इति परिसह अधिकारः—

अर्थः— एवां नाना प्रकारना संकट छे तेनी दशा सहन करीने मुक्तिमार्ग साधे, तेथी थिविर कल्पना धरनार अने जिन कल्पना धरनार ए बेहु निर्ग्रंथ समान छे

हवे थिवर कल्पमां अने जिनकल्पमां कंइ तफावत छे ते कहेछेः—

अथ स्थिविरकल्प जिनकल्प तारतम्य कथनः—

दोहराः— जो मुनि संगतिमें रहे, थविरकल्पि सो जानि; एकाकी जाकी दसा, सो जिनकल्प बषानि. ॥ ६४ ॥ चोपाईः—थविर कलप मुनि कछुक सरागी; जिन कलपी महांत विरागी; इति प्रमत्त गुनथानक धरनी; पूरन भई जथारथ वरनी. ६५

अर्थः— जे मुनीश्वर गछना गणनी संगतमां रहेछे, तेतो थिवरकल्पी जाणीए जेने गणनी निश्रा नथी जेनी एकाकी दशा छे तेतो जिनकल्पी कहिए ॥ ६४ ॥

ए बेउ निर्ग्रंथमां थिवरकल्पनो धरनार कइक सराग दशामां ले, अने जे जिनक ल्पी ले ते महावैरागी ले एटले प्रमत्त गुणगाणानी जे नूमिका बांधी अने यथार्थ साचपणे वरणी ते पूर्ण थई ॥ ६५ ॥

हवे सातमा गुणस्थाननु वर्णन करेले:— अथ सप्तम गुनथानक वर्ननं:—

चोपाई:— अब बरनो सत्तम विसरामा; अप्रमत्त गुनथानक नामा; जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे; धर्मध्यान थिरता परगासे ॥ ६६ ॥ दोहरा:—प्रथम करनचारित्रको, जासु अंत पद होइ, जहां अहार विहार नहि, अप्रमत्त हे सोइ ॥ ६७ ॥

अर्थ:-- मुक्तिरूप मंदिरमां चढतां ते सातमो विसामो ले. अने अप्रमत्त गुणस्थानक जेनुं नाम ले ते हवे वखाणे ले जे गुणस्थानमां धर्मरागादिकेकरी प्रमादनी विधि नासेले, जे पूर्वेला गुणस्थानकमां धर्मध्यान चंचल हतो ते आंही स्थिरपणे प्रकाश करेले. ॥ ६६ ॥ प्रथम गुणस्थानना अंतपदमां एटले लेला समयमां चारित्रमोहनी कर्मने नेदवानो यथा प्रवृत्तिनामे प्रथम करण थयुं. आंही धर्मध्याननी स्थिरता एवी ले के ज्यां अहार विहार क्रिया नथी. ते अप्रमत्त गुणस्थानक होय ए वचन दिगंबर संप्रदायनुं ले. ॥ ६७ ॥

हवे आठमा गुणस्थानकनुं वर्णन कहेले:-- अथ अष्टम गुनस्थानक वर्ननं:--

चोपाई:-- अब बरनो अष्टम गुनथाना. नाम अपूरव करन बखाना, कछुक मोह उपसम करि राखे, अथवा किंचित क्षयकरि नाखे ॥ ६८ ॥ जो परिनाम नये नहि कबहीं, तिन्हको उदो देखिये जबहीं, तब अष्टम गुनथानक होई, चारित करन दूसरो सोई. ॥ ६९ ॥

अर्थ:— जेनुं नाम अपूर्व करण वखाणीए लीए. हवे आंही श्रेणी चढवामां जे उपशमीक थको चढेले तेतो आंही कंइक मोहने उपशमावी राखेले, अथवा जे क्षपक थको चढे ले तेतो आंही चारित्र मोहनो कंइक क्षय करि नांखेले ॥ ६८ ॥ एवुं जे परिणाम पेहेलां कोइ कालमां थयुं नथी ते परिणामनुं ज्यारे प्रगट पणुं देखियेलीए, त्यारेतो आठमुं गुणस्थानक होय तेने लेले समय चारित्र मोहनीय कर्म नेदवाने अपूर्व करण नामे बीजुं करण होय तेनुं नाम निवृत्ति पण ले.॥ ६९ ॥

हवे नवमा गुणस्थाननुं वर्णन करेले:— अथ नवम गुणस्थानक वर्णनं:—

चोपाई:— अब अनवर्त्ति करन सुनुं नाई, जहां नाव थिरता अधिकाई, पूरव नाव चलाचल जेते, सहज अमोल नए सब तेते. ॥ ७० ॥ जहां न ना

व उलटि अध आवे; सो नवमो गुनथान कहावे; चारित मोह जहां बहु छीजा; सो है चरन करन पद तीजा. ॥ ७१ ॥

अर्थः— प्रथम अनिवृत्ति करण गुणस्थाननो व्यवहार कहुं छुं ते सांजलो, जे गुणस्थाननेविषे स्थिरता जावनी अधिकाई छे. अने पूर्वजाव कषायना उदयथी जेटला चलाचल जाव होय तेवा सर्वे आंही सहज अमोल थया छे ॥ ७० ॥ ज्यां जावथी चढीने फरी तिहांथी पडी नीचेना गुणस्थानके न आवे एवो अनिवृत्ति कहेवाय, आंही अनिवृत्तिनो परमार्थ सिद्धांतमां बीजीरीते छे, ते तो नवमुं गुणस्थान कहेवाय, ज्यां चारित्र मोहनीय कर्म घणुंज त्रुटी गयो छे तेज ए चारित्र मोहनीय कर्म जेदवानो त्रीजो अनिवृत्ति करण थयो. ॥ ७१ ॥

हवे दशमु गुन स्थानक कहु छुंः— अथ दशम गुनथानक वर्ननंः—

चोपाईः—कहों दशम गुन थान दुसाखा; जहां सूछम शिवकी अजिलाषा; सूछम लोज दसा जहाँ लहिए; सूछम संपराय सो कहिए. ॥ ७२ ॥

अर्थः— जिहां उपशम्यक् अने क्षपक एवी बे शाखा वर्त्ते छे. जे गुण स्थानमां सूक्ष्म शिव पदवीनी अजिलाषा छे. एवी ज्यां सूक्ष्म लोज दशा पामियें, ते सूक्ष्म संपराय कहीए, संपराय एवुं कषायनुं नाम छे. ॥ ७२ ॥

हवे अग्यारमुं उपसंत मोह नामे गुणथान कहुंछुंः—अने तेनी प्रजुतानुं प्रमाण कहुंछु. अथ एकादशम गुनथान वर्ननः—

चोपाईः--अब उपसंतमोह गुनथाना; कहों तासु प्रजुता परवाना; जहां मोह उपसमे न जासे; जथाख्यात चारित परगासे. ॥ ७३ ॥ दोहराः-- जाहि फरसके जीव गिरि, परें करें गुन रद्द; सो एकादसमी दसा, उपसमकी सरहद्द. ॥ ७४ ॥

अर्थः— जे गुणस्थानमां मोहनीय कर्म सर्वे उपशमी जाय पण उदयमां जासे नही अने यथाख्यात चारित्रनो प्रकाश थईने जेवुं निसंग आत्मानु सहज रूप छे तेवुं प्रगटेछे. ॥ ७३ ॥ जे उपशम श्रेणि चढिने अने जे गुणस्थानने फरसीने अवश्यज जीव तिहांथी पडे अने जे गुण प्रगटे ते सर्व रद करे, ए अगीयारमी दशा थई, एटले उपसंत मोह गुणस्थान थयुं. एटले उपशमनी मर्यादा थई. ७४॥

हवे बारमां क्षीणमोह गुनस्थाननुं वर्णन करुंछुंः--अथ द्वादशम गुनथानक वर्ननंः—

चोपाईः— केवल ज्ञान निकट जहाँ आवे; तहां जीव सब मोह षिपावे; प्रगटे यथाख्यात परधाना; सो द्वादशम छीन गुन थाना. ॥ ७५ ॥

अर्थः-- जे गुणस्थानने केवल ज्ञान निकट आवे छे. अने त्यां जीव सर्व मो

हनीय कर्म खपावीने बीजा पण घाती कर्म सर्व खपावे, अने ज्यां प्रधान उत्कृष्ट यथा ख्यात चारित्र प्रगटे एवा प्रकारथी जे छे ते बारमो क्षीण मोह गुणस्थानक कहीए॥७५ हवे आंही लगण पाछला छगथी मांडी सात गुणस्थानमां उपशम श्रेणीनी अपेक्षाये जेकाल स्थिति छे ते कहेछेः-अथ षट् गुनथानक स्थितिकथन उपशम श्रेणिक अपेक्षा

दोहराः— षट सत्तम अठम नवम; दश एकादश बार, अंतर मुहूरत एक वा, एक समे थिति धार. ॥ ७६ ॥ छीन मोह पूरन भयो, करि चूरन चित चाल; अब सजोग गुण थानकी, बरनों दसा रसाल. ॥ ७७ ॥

अर्थः—छठुं, सातमु, आठमु, नवमु दशमु, अग्यारमु, बारमु, ए सात जे गुणस्थान छे. तेनी स्थिति एक अंतर मुहूर्त्तनी छे. अथवा सात गुनस्थाननी जघन्य एक समयनी स्थिति धारो. ॥७६॥ मोहमय जे चित्तनी चाल हती तेनुं चूर्ण करीने क्षीण मोह गुण स्थानक पूरण थयुं. हवे सजोगीगुन थानकनी रसाल दशानुं वर्णन करुंछुं. ॥७७॥

हवे तेरमा गुणथाननुं वर्णन करुंछुंः— अथ त्रयोदशम गुन स्थानक वर्ननः—

सवैया इकतीसाः-- जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनसगई चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है; प्रगट भयो अनंत दंसन अनंत ज्ञान. वीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है; जामें आउ नाम गोत वेदनी प्रकृति ऐसी एक्यासी चोरासी वा पंचासी परवान है; सो है जिन केवली जगत वासी भगवान, ताकी जो अवस्था सो सजोगी गुन थान है. ॥ ७८ ॥

अर्थः— जे आत्म गुणना घातना करनार एवा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अंतराय, ए घाती कर्मनी चोकडी दुःख दाता हती ते जेनी विनाश थई गई, अने जे आत्माना गुणनो घात न करे एवा वेदनी. आयु, नाम, गोत्र. ए चार अघाति कर्मनी चोकडी रही ते बलेली दोरी समान रही छे. दर्शनावरणीय कर्मक्षय थयाथी जिहां अनंत केवल दर्शन प्रगट थयो. अने ज्ञानावरणी क्षय थयाथी जिहां केवल ज्ञान प्रगट्युं. अंतराय कर्म क्षय थयाथी अनंत वीर्य प्रगट्यो. मोहनीय कर्म क्षय थयाथी अनंत सुखसत्तामय अने समाधि प्रगटी अने जेमां आयु कर्म,नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीकर्म, एचारनी सर्व ८५ प्रकृति रही छे. तेमां कोईना आहारिक शरीर आहारक अंगोपांग, आहारक संघातन, आहारक बंधन,तथा जिननामविना,ऐसी प्रकृती रही छे अने कोईने जिननाम सहित छे. तेथी (८१)रही छे तथा काईने अहारक चतुष्कछे अने जिननामनथी माटे ८४ छे तथा कोईने जिननाम सहित पच्चासी प्रकृतिनुं प्रमान छे. एवी दशानो भरनार जे छे ते

जिन होय केवली होय जगतनुं नगवान होय तेनी जे अवस्था छे तेनेज सयोगी गुणस्थानक कहीए. ॥ ७८ ॥

हवे सजोगी गुणस्थानकवाळानी मुद्रा देखाडेछेः—

सवैया इकतीसाः-जो अमोल परजंक मुद्रा धारी सरवथा अथवा सुकाउसग्ग मुद्रा थिरपाल है; खेत सपरस कर्म प्रकृतिके उदे आए, बिना मग नरे अंतरिक्ष जाकी चाल है; जाकी थिति पूरव करोडि आठवर्ष घाट, अंतरमुहुर्रात जघन्य जग जाल है; सो है देव अठारह दूषन रहित ताकों बनारसी कहे मेरी वंदना त्रिकाल है.७९

अर्थः— जे अमोलपणे सर्वथा प्रकारे पर्यंक मुद्रा धारी होय एटले पद्मासनवाळीने सदा सर्वदा बेसेछे, अथवा काउसग्गमुद्रा स्थिरपणे पाले ए वचन दिगंबर संप्रदायनुं छे, अने क्षेत्र, स्पर्श रूप जे कर्म प्रकृति छे तेनो उदय थयाथी केवली विहार करेछे पण बीजा पुरुषनीपठे चाले नही पण केवली नगवुं नस्याविनाज आकाशमां अधर चालें चाले ए परूपणा दिगंबर संप्रदायनी छे; जे सयोगी गुणस्थाननी स्थिति आठ वर्षे न्यून पूर्वकोटी वर्षनी थाय केमके जन्मथी आठ वर्षलगी केवलज्ञान उपजतो नथी,अने आ गुनथानानी जघन्यस्थिति एक अंतरमुहूर्त्तनी थाय जगतजालमां एटलुंज रहेवुं होय आंही जे एवी अवस्थानो धरनार होय तेतो अढार दूषण रहित देवाधिदेव थाय बनारसीदास कहेछे के तेने मारी त्रिकाल वंदना छे॥७९

हवे अढार दूषणनां नाम कहेछेः— अथ अठारस दोष कथनः—

कुंमलीयाः—दूषन अठारह रहित, सो केवलि संजोग; जनम मरण जाके नहीं, नहिं निंद्रा नय रोग, नहिं निंद्रा नय रोग, सोग विस्मय न मोहमति; जरा खेद परस्वेद, नाहिं मद वैर विषे रति; चिंता नांही सनेह, नाहिं जह प्यास न नूषन; थिर समाधि सुख सहित, रहित अठारह दूषन. ॥ ८० ॥ कुंडलीयाः— वानी जहां निरक्षरी, सप्तधातु मल नांहि; केस रोम नख नहि बढे, परम उदारिक मांहि; परम उदारिक मांहि, जांहि इंद्रिय विकार नसि, जथाख्यात चारित प्रधान थिर सुकल ध्यान ससि; लोकालोक प्रकास, करन केवल रजधानी; सो तेरम गुनथान; जहां अतिशय मयवानी. ॥ ८१ ॥ दोहराः—यह सजोग गुनथानकी, रचना कही अनूप, अब अयोग केवल कथा, कहों यथारथ रूप ॥ ८२ ॥

अर्थः— जे अढार दूषणथी रहित ते सजोगी केवली कहिए जेने जन्म नथी मरण नथी, निंद्रा नथी, नय नथी, रोग नथी, सोग नथी, विस्मय नथी, मोहमति नथी, जरानो खेद नथी, परसेवो नथी १० मद नथी ११ वैर नथी १२ विषय

उपरति नथी १३ चिंता नथी १४ स्नेह नथी १५ जेने तरस लागे नही १६ भूख लागे नही १७ अस्थिरपणुं नथी १८ तेथी समाधिसुख सहित स्थिररूप थायछे, एवा अढार दूषण रहित छे. ए अढार दोष दिगंबर संप्रदायथी छे. सिद्धांत संप्रदायमां १८ दूषण जुदां कह्या छे. ॥ ८० ॥ आ गुणस्थाननी अवस्थामां निरक्षरी वाणी होय ने मस्तकमां अहंकार ध्वनीरूप होयछे; अने शरीरमां सात धातु अने सात धातुना मल थता नथी. ए दिगंबर संप्रदायथी कहेलुं छे. अने जेना शरीरमां केश, रोम, नखनी वृद्धि थती नथी, एतो उदारीक शरीरमां पण एटला दोष नथी, तेथी देवाधिदेव परम उदारीक शरीरमांज कहिए; ज्यां जेने इंद्रियविकार नासी गयाछे, ने ज्यां प्रधान उत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र प्रगट थयुं छे, ज्यां शुक्ल ध्यानरूप चंद्रमा स्थिररूप थयोछे. अने ज्यां लोकालोकना प्रकाशनी करनारी केवल ज्ञानरूप राजधानी बिराजी रही छे; ते तेरमुं संयोगी गुणस्थानक कहिए. ज्यां पांतरीश अतिशय मयवाणी छे.॥८१॥ए सयोगी गुणथाननी सर्वेथी अधिक अनूप रचना कहीछे. हवे अयोगी केवलीनी दशा यथार्थरूप के० जेवीरीते बनीछे तेवी रीतनी कहुंछुं. ८२ हवे चौदमा अयोगी गुणस्थाननुं वर्णन करुंछुं. अथ चतुर्दश गुनस्थानक वर्ननं.

सवैया इकतीसाः– जहां काहू जीवकों असाता उदे साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदे पाइये; मन वच कायसों अतीत भयो जहां जीव जाको जस गीत जग जीत रूप गाइये; जामें कर्म प्रकृतिकी सत्ता जोगी जिनकीसी, अंतकाल द्वेसमेमें सकल खिपाइये; जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रवान सोइ, चौदहो अयोगी गुन थाना ठहराइये. ॥ ८३ ॥

अर्थः– जे गुणस्थानमां कोई जीवने अशाता वेदनीनो उदय छे अने शाता वेदनीयनो उदय नथी, एटले शाता वेदनी सत्तारूप छे. अने कोइने शाता वेदनीनो उदय छे, अने अशाता दुःखरूप उदयमां नथी, एटले सत्तामां छे. अने ज्यां सैलेसी करण करीने मनोयोग, वचनयोग, काया जोगथी जीव अतीत एटले रहित थयो. जेना जशनु वर्णन जगतने जीतवा रूप गाइए छीए एटलो छे अने जेमां जोगी जन केसी के० सजोगी केवलीनी रीते कर्म प्रकृतिनी सत्ता रहिछे. ते अंतकालमां अंतना बे समयमां समस्त खपावेछे. अने जे गुणस्थानकनी स्थिति पंच लघु अक्षर अ, इ, उ, ऋ ऌ ए अक्षर कहेतां जेटलो काल प्रमाण होय एटलो काल प्रमाण स्थिति छे तेज चौदमुं अयोगी ठेरावीए. ॥ ८३ ॥ इति श्री चतुर्दश गुणस्थानक अधिकार बालाबोधरूप समाप्तः

दोहराः-- चौदहगुनथानक दशा, जगवासी जियजूल; आश्रव संवर जाव द्वे, बंध मोक्षके मूलः ॥ ७४ ॥

अर्थः-- जगतवासी जीव अशुद्ध थको जूलमां पड्यो ठे तेनी ए चौद गुण स्थानकथी चोद दशा थाय ठे. आंही तत्व दृष्टिमां जोतां जे आश्रव संवर जाव ठे तेज बंध मोक्षना मूल ठे; एटले आश्रव बंधनुं मूल ठे अने संवर मोक्षनुं, मूलठे हवे आश्रव संवरनी जुदी जूदी अवस्था कहेठे. अथ आश्रव संवर व्यवस्था कथन.

चोपाःई-- आश्रव संवर परनति जोलों; जगत निवासि चेतना तोलों; आश्रव संवर विधि विवहारा; दोऊ जवपथ शिवपथ धारा.॥७५॥आश्रव रूप बंध उतपाता, संवर ज्ञान मोष पद दाता, जा संवरसों आश्रव ठीजे, ताकों नमस्कार अब कीजे.७६

अर्थः— ज्यां सुधी आश्रव संवरनुं परिणाम परिणमे ठे, त्यांसुधी चेतन रूप ईश्वर जगत निवासी थई रह्योठे. आंही आश्रवनी विधि ठे ते व्यवहारमां ठे. अने संवरनी विधि ठेते पण व्यवहारमां ठे.ए उजौ के०बे व्यवहार पंथ ते संसार मार्गनी धारा अने मोक्ष मार्गनी धारा पण ठे. ॥७५॥संसारमां जे बंधरूप उत्पात ठे ते तो आश्रवरूप ठे. अने जे मोक्षपदनो दाता ज्ञान ठे ते संवर रूप ठे. जे संवरथी आश्रव क्षय थयो होय तेने हवे नमस्कार करीए ठीए. ॥ ७६ ॥

हवे ग्रंथनी अंते मंगलाचरण रूप संवर रूपी ज्ञानने नमस्कार करेठेः—

सवैया इकतीसाः--जगतके प्रानी जीवव्हैरह्यो गुमानी एसो, आश्रव असुर डुःख दानी महा जीम हे; ताको परताप खंमिवेको परगट जयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम हे; जाके परजाव आगे जागे परजाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम हे; संवरको रूप धरे साधे शिवराह एसो, ज्ञानी पातसाह ताकों मेरी तसमील हे.७७

अर्थः— जगतना वासी जेटला प्राणी ठे. ते सर्वेने जीतीने जे गुमानी थई रह्यो, एवो आश्रवरूप जे असुर ठे. ते महा डुखदायक ठे. तेनो प्रताप खंमवाने जे ज्ञानरूप बादशाह प्रगट थयो ठे ते केवो ठे के धर्मनो धारण करनारो ठे. अने कर्मरूप रोग गमाववानो हकीम ठे जे ज्ञान बादशाहनां प्रजाव आगल काम क्रोधादिक राग द्वेषरूप पुजलना जाव ठे ते सर्वे नासी जाय ठे; अने नागर के०चतुर ठे, जे पेहेलां कोइ वारे न पामेलो एवो जे नवो सुख समुद्र ते लगण जेनी सीम ठे. संवररूपनो धरनार अने मुक्तिमार्गनो साधनार एवो जे ज्ञानरूपी बादशाह ठे. तेने माहारी सलाम ठे. एटले नाटक करीने ज्ञान बादशाहने मुजरो कीधो ठे. ॥ ७७ ॥

इति श्री समयसार नाटक बालावबोधरूप अर्थ सहीत समाप्त थयो.

चोपई:—नयो ग्रंथ संपूरन जाषा, बरनी गुनथानककी साषा; बरनन ओर कहां लौं कहिये, जथा सकति कही चुप व्हे रहीयें ॥७८॥ लिहए करन ग्रंथ उदधिका; ज्यों ज्यों कहिये त्यों त्यों अधिका; ताते नाटक अगम अपारा; अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ ७९ ॥ दोहराः— समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होइ; तातें कहत बनारसी, पूरन कथे न कोइ. ॥ ९० ॥

सवैया इकतीसाः—जेसे कोउ एकाकी सुनट पराक्रम करि जीते केही नांतिचक्री कटक सों लरनो; जेसें कोउ परविन तारू ज़ुज नारु नर,तरे केसे स्वयंजूरमन सिंधु तरनो; जेसें कोउ उद्दिमी उछाह मनमांहि धरे, करे केसें कारज विधाताको सो करनो; तेसे तुछ मती मोरी तामें कविकला थोरी, नाटक अपारमें कहांलों याहि बरनो? ९१

अथ जीव महिमा कथनः--

सवैया इकतीसाः-- जेसे वटवृक्ष एक तामें फल हें अनेक फल फल बहू बीज बीज बीज वट है, वटमांहि फल फलमांहि बीज तामे वट कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है; तेसे एक सत्तामें अनंत गुण प्रजा प्रजामें अनंत नृत्य नृत्यमें अनंत ठट हे; ठटमें अनंत कला कलामें अनंत रूप, रूपमें अनंत सत्ता एसो जीव नट है. ॥ ९२ ॥ दोहराः— ब्रह्म ज्ञान आकाशमें, उडे समति षग होइ; जथा सकति उद्दिम धरे, पार न पावे कोइ. ॥ ९३ ॥ चोपाईः-- ब्रह्म ज्ञान नन अंत न पावे; सुमति परोछ कहालों धावै; जिहि विधि समयसार जिनि कीनो; तिन्हके नाम धरे अब तीनो. ॥ ९४ ॥

अथ कवि त्रयी कथन नामः--

सवैया इकतीसाः-- कुंदकुंदाचारज प्रथम गाथा बद्ध करे, समेसार नाटक विचारी नाम दयो है; ताहीके परंपरा अमृतचंद नये तिन्ह, संसकृत कलस समारि सुख लयो हे; प्रगट्यो बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अबकिये हें कवित्त हिए बोध बीज वयो है; शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादियों अनादिहिको नयो है.

अथ कविव्यवस्था कथनः-

चोपाईः— अथ कछु कहुं यथारथ वानी; सुकवि कुकविकी कथा कहानी; प्रथम सुकवी कहावै सोई; परमारथ रस बरने जोई. ॥ ९६ ॥ कलपित वात हिए नहिं आने; गुरु परंपरा रीति बखाने; सत्यारथ सैली नहि छंमे; मृषा वादसों प्रीति न मंमे.॥९७॥ दोहराः-- छंद सबद अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रवान; जो इहि विधि रचना रचे सो हे सुकवि सुजान. ॥ ९८ ॥

चोपाईः-- अब सुनु कुकवि कहूं है जेसा; अपराधी हिय अंध अनेसा; मृषा जाव रस वरने हितसों; नई उकति नहि उपजे चितसों. ॥ ९९ ॥ ख्याति लाज पूजा मन आने; परमारथ पथ जेद न जाने; वानी जीव एक करि बूझे; जाको चित जड ग्रंथि न सुझे. ॥ १०० ॥ वानी लीन जयो जग मोले, वानी ममता त्यागि न बोले; हे अनादि वानी जगमांही; कुकवि वात यह समुझे नांही. ॥ १०१ ॥

अथ वानी व्यवस्था कथनः—

सवैया इकतीसाः— जेसे काहू देसमें सलिलधार कारंजकी. नदीसों निकसि फिरि नदीमें समानी हे; नगरमें गौर गौर फेली रही चहूं ओर. जाके ढिग वहे सोई कहे मेरो पानी हे; त्योंही घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहींकी वानी हे; करम कलोलसों उसासकी वयारि वाजे, तासों कहे मेरी धुनि एसो मूढ प्रानी हें. ॥ १०२ ॥ दोहराः— एसे मूढ कुकवि कुधी. गहे मृषा पथ दोर; रहे मगन अजिमानमें, कहे ओरकी ओर. ॥ १०३ ॥वस्तु सरूप लखे नही, बाहिज दृष्टि प्रमान; मृपा विलास विलोकके, करे मृषा गुन ज्ञान. ॥ १०४ ॥

अथ मृपा गुन ज्ञान यथाः—

सवैया इकतीसाः-- मांसकी गरंथि कुच कंचन कलस कहे, कहे मुख चंद जो सलेखमाको घरु हे; हाडके दशन आहि हीरा मोती कहे ताहि, मांसके अधर ओठ कहे विंब फरु हैं; हाड दंम जुजा कहे कौलनाल काम जुधा, हाममहीके थंजा जंघा कहे रंजा तरु हे; योंही जूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि, एते पर कहे हम सारदाको वरु हे. ॥ १०५ ॥ चोपाईः— मिथ्यावंत कुकवि जे प्रानी; मिथ्या तिनकी जाषित बानी; मिथ्यावंत सुकवि जो होई; वचन प्रवान करे सब कोई. १०६ दोहराः-- वचन प्रवान करे सुकवि, पुरुष हदे परवान, दोऊ अंग प्रवान जो, सोहे सहज सुजान. ॥ १०७ ॥ अथ नाटक समयसार व्यवस्था कथनः—

चोपाईः— अब यह वात कहों हे जेसे, नाटक जाषा जयो सु एसें, कुंद कुंद मुनि मूल उधरता, अमृतचंद टीकाके करता. ॥ १०८ ॥ समेसार नाटक सुख दानी, टीका सहित संसकृत वानी, पंमित पढै दृढमती बूझे. अलपमतीकों अरथ न सूझे. ॥ १०९ ॥ पांमे राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटकके मर्मी, तिन्ह गरंथकी टीका कीनी, वालाबोध सुगम करि दीनी. ॥११०॥ इहि विधि बोधवचनिका फैली, समौपाइ अध्यातम सेली, प्रकटी जगतमांहि जिनवानी, घर घर नाटक कथा बषानी. ॥ १११ ॥ नगर आगरामांहि विख्याता, कारन पाइ जए बहुज्ञाता,

पंच पुरुष अति निपुन प्रवीने, निसिदिन ज्ञानकथा रस भीने.॥ ७१२ ॥ दोहराः– रूपचंद पंडित प्रथम, दुतिय चतुर्भुज नाम, तृतिय भगौती दासनर, कौंरपाल गुनधाम. ॥ ७१३ ॥ धर्मदास ए पंच जन, मिलि बेसें इक गेर; परमारथ चरचा करे, इन्हके कथा न और. ॥ ७१४ ॥ कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं और सिद्धांत, कबहूं विंग बनाइके, कहे बोध विरतंत. ॥ ७१५ ॥ अथ विंगयथाः–

दोहराः– चित चकोर करु धरम धरु, सुमति भगौती दास; चतुर भाव थिर ता भए, रूपचंद परगास. ॥ ७१६ ॥ इहि विधि ज्ञान प्रगट भयो, नगर आगरे मांहि; देसदेस महि विस्तर्यो, मृषा देश महि नांहि. ॥ ७१७ ॥ चोपईः– जहां त हां जिनवानी फेली, लषे न सो जाकी मति मेली, जाके सहज बोध उतपाता, सो ततकाल लखे यह बाता. ॥ ७१८॥ दोहराः– घटघट अंतर जिन वसे, घटघ ट अंतर जैन; मत मदिराके पानसों, मतवाला समुझे न. ॥ ७१९ ॥

चोपाईः-बहुत बढाउ कहांलो कीजें, कारजरूप वात कहि लीजें. नगर आगरा माहे विख्याता, वनारसी नामे लघु ज्ञाता. ॥७२०॥ तामें कवित कला चतुराई, कृपा करे ए पंचो भाई, ए परपंच रहित हिय खोले, ते वनारसीसों हसि बोले.॥७२१॥ नाटक समैसार हित जीका, सुगमरूप राजमली टीका, कवित बद्ध रचना जो होई, भाषा ग्रंथ पढे सब कोई. ॥ ७२२ ॥ तब बनारसी मनमहि आनी, कीजे तो प्रगटे जिनवानी, पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी, कवित बंधकी रचना कीनी.॥७२३ सोरहसें तिरानवे विते, आसुमास सित पक्ष वितीते, तिथि तेरसि रविवार प्रवीना. तादिन ग्रंथ समापत कीना. ॥७२४ ॥ दोहरा॥ सुख निधान सकबंध न र, साहिब साहि किरान; सहस साहि सिर मुकुटमनि, साह जहां सुलतान. ॥ ७२५ ॥ जाके राज सुचेनसों, कीनो आगम सार, इति भीती व्यापी नही, यह उनको उपगार. ॥ ७२६ ॥ अब सबका ठीक कथनः–

सवैया इकतीसाः-- तीनसें दसोत्तर सोरठा दोहा छंद दोउ, जुगलसें तेतालीस इकतीसा आने हैं; ढासी सु चोपईये सेंतीस तेइसे सवैये, वीस छप्पै अठारह क वित्त बषाने हैं; सात फुनिही अडिल्ल चारि कुंडलीए मिले, सकल सातसें सत्ताई स ठीकठाने हैं; बत्तीस अक्षरके सलोक कीने ताके लेखे ग्रंथ संख्या सत्रहसें सा तअधिकाने है. ॥ ७२७ ॥ दोहराः-- समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनंत; सोहे आगम नाममें, परमारथ विरतंत. ॥ ७२८ ॥

॥ इति परमागम समयसारनाटक नाम सिद्धांत संपूर्णम् श्री रस्तु ॥

॥ श्रीपार्श्वजिनायनमः ॥

अथ

॥ श्री सम्यक्त्व स्वरूपस्तव बालावबोध सहित प्रारंभः ॥

प्रथम अर्थकर्त्तानुं मंगलाचरण.

श्रीमद्वीरजिनं नत्वा, गुरुश्रीज्ञानसागरं ॥ श्रीसम्यक्त्वस्तवस्यार्थो,- लिखामि लोकभाषया ॥ १ ॥ गुरुपदेशतः सम्यग्किंचित शास्त्रानुसारतः ॥ वृद्धपरंपराज्ञात्वा, क्रियतेबोधिसंग्रहं ॥ २ ॥

अर्थः— श्रीमद्वीरपरमात्माने नमस्कार करीने तथा ज्ञानदृष्टिना दाता परमोपकारी श्रीगुरुना चरणारविंदने नमस्कार करीने पौद्गलिकसुख तथा आत्मिकसुखनो एक अबंध्यहेतु एटले पौद्गलिकसुख तथा आत्मिकसुखने भिन्न भिन्न दर्शावनारो एहवो श्रीसम्यक्त्वगुण. तेनी मूलोत्पत्ति सप्रभेद कहेनारुं सम्यक्त्व पंचवीसीनामे प्रकरण, तेनो अर्थ श्रीगुरु उपदेशथकी तथा कांईक शास्त्रानुसारथकी तथा कांईक वृद्ध परंपराथकी एटले बहुश्रुतोनी वातो सांभलीने मारी बुद्धिने अनुसारे किंचित्मात्र संक्षेपथकी लोकभाषामां वार्तिकरूपे कहुंछुं.

प्रथम सूत्रकारनी गाथा लिखेछेः—

जह सम्मत्त सरूवं, परूविअं वीरजिणवरिंदेण ॥
तह कित्तणेण तमहं, थुणामि सम्मत्त सुद्धिकए ॥ १ ॥

अर्थः— जह के० जेम उपशम क्षायोपशमादि प्रकारे सम्यक्त्वनु स्वरूप श्रीवीर जिनवरेंद्रे परूप्युंछे, गणधरादिकने उपदेस्युंछे, तहकित्तणेण के० तेम किर्तनकरवेकरीने एटले जेरीते श्रीवीरपरमेश्वरें सम्यक्त्व प्राप्तिनी प्रनालिका उपदेशी, तमहंथुणामि के० तेज प्रनालिका गर्भित वीनतियें करीने श्रीवीरपरमात्मानें स्तवीश, एरीतें प्रकरण कर्त्तायें वस्तुनिर्देसात्मकरूप मंगल कर्युं; हवे प्रकरण करवानुं प्रयोजन कहे छेः—ए प्रकरण शावास्ते करेछे के सम्मत्तसुद्धिकए के०सम्यक्त्वनी शुद्धिथवाने अर्थे एटले क्षायिकभावें सम्यक्त्व सुद्धि पामवाने अर्थे करेछे. यदुक्तं आगमेः—थयथुईमं

गलेणं भंतेकिंजणइ? गोयमा, नाणं दंसण चारित्त बोहिलाभं जणइ. व्याख्या—श्री गौतमे वीरपरमेश्वरने पूछ्युं जे थय के० स्तोत्र अने थुई के० चार गाथारूप एट ले परमेश्वरनुं स्तवन तथा थुई करतां केवो लाभ थाय? तेवारें परमेश्वरें कह्युंके हे गौतम. ज्ञान दर्शन चारित्ररूप बोधलाभथाय. एटले रत्नत्रयी पामवानो हेतु थाय केमके निश्चयनये ज्ञान दर्शन अने चारित्र ते अप्रमतभावे होय. तिहांज संपूर्ण सम्यक्त्व कहियें. जंसम्मंतिपासहा तंमोणंतिपासहा जंमोणति इत्यादि आगमनेविषे कह्युंछे, एरीतें सम्यक्त्व शुद्ध करवारूप प्रयोजनने अर्थें एप्रकरण करेछे. ए ग्रंथकरवा नुं प्रयोजन कह्युं ॥ १ ॥ इति प्रथमगाथार्थ ॥

हवे सम्यक्त्व प्राप्तिनी अगाउ जेवी जीवनी अवस्था होय ते
व्यतिकरगर्भित बीजी गाथायें स्तुति करेछेः—

सामि अणाइ अणंते, चउगइ संसारघोरकांतारे ॥
मोहाइ कम्मगुरुठिइ, विवागवसउ भमइ जीवो ॥ २ ॥

अर्थः—हेस्वामि, मारासरिखा संसारीजीव, ते जेनी आदिपण नपामियें अने अंत पण नपामियें तेने अनादि अनंत कहियें, एटले जेनी आदि अंतनथी एवो चतुर्गति भ्रमणरूप संसार, तेहिज जाणियें एक घोर कांतार एटले भयानक अटवी, तेहने विषे मोहाइकम्म गुरुठिई के० मोहनीयादिक आठे कर्मनी उत्कृष्टस्थितिना वि वागवसओ के० विपाक वेदवाना परवशपणाथकी भमइजीवो के० एजीवभ्रमणक करेछे सर्व जीवोनी मूलस्थिति एहवीछे के अनादि निगोदजे सूक्ष्मवनस्पतिकाय जा ति निगोद, तेमां खाणसंपन्न कनकोपल न्याये अनादिना रहेछे; एसर्वजीवोनी मू लस्थितिछे, तेमां अंगुलने असंख्यातमें भागें शरीरहोय, अने बशोछपन्न आवलिका नुं आयुहोय, एटले रोगरहित मनुष्यना एक श्वासो श्वासमांहे सत्तरभव फ़ाफ़ेरा करे, एम केवल तुच्छ आयुष्यवेदतां खुल्लकभवरूपें अनादि निगोदमां चय उपचय एटले तिहांज जन्म मरण करता रहेछे, एरीते सर्व संसारीजीवोने निगोदमां भ टकतां अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्त वीतिगया.॥ २॥

तिहां रहेताथका कोई घुणाक्षरन्यायें नियतकारणना परिपाक थवाथी कोई सम ये एकादिकम बे स अध्यवसायना तरतमयोगथी; तत्तुल्यहलुकर्मि थाय एटले जेम अ क्षर गुणतां गुणतां कोई समयें अचानक कांई नियम सिद्ध थईजाय छे, एम नियत कारणना परिपाकथवाथी ते जीव एक बे इत्यादिक आत्माना अध्यवसायनी तारत

न्यता सहित थयो थको ते अध्यवसायना जेवा परिणाम होय तत्तुल्य के० तेवा परिणामतुल्य हलुकर्मि थायछे. (ए रीते मने उपला न्यायनो खोलासो सुज्यो ते लखी जणाव्यो छे.) ते लघुकर्मिपणानायोगे सूक्ष्म निगोदथी निकलीने बादर निगोदमां आवे तिहां आयुकर्म स्थित्यादिकनी वृद्धिथाय, कोईकरीते बीजाजीवोने दृष्टिगोचर पण आवे, एहवोथाय, बादर शरीर छे माटे स्वकाय परकाय शस्त्रथी छेदन नेदन योगे जो अकाम निर्जराथवा लागी तो तेना योगथी बेइंद्रीयादिकमां आवे, तिहांवली प्राण अने पर्याप्ति तथा इंद्रीय अने शरीरनी वृद्धिथाय इहां कर्मबंध वधतुंथाय केमके जिव्हा इंद्रिय तथा नाषा अने शरीरादिक अधिकरणनी वृद्धिथई राग द्वेष जयोत्पादक नाषा अनेकरस आस्वादनानिलाषी जिव्हाथाय, वलीअनेक जीवने दुःखदायी महोटामां महोटुं बारयोजननुं शरीरथाय, उत्कृष्टआयु बारवर्षनुंथाय, तेणेकरी शुनाशुन अध्यवसायनी पण तरतमता थाय, तो तिहांपण अकाम निर्झरानी बहुलता होय तो, उंचो तेंद्रियादिकमां आवे, अनेजो अधिकरणनायोगे हिंसादिकदोषनी बहुलता थाय, तो फरी एकेंद्रीयमां पण जाय, तिहां वली एकेंद्रियमां उत्कृष्टो अनंत कालरही फरीकोईकवारे कोईक अकाम निर्जराना योगथी विकलेंद्रियमां आवे तिहां बेइंद्री तेइंद्री चौरेंद्री एत्रणे विकलेंद्रीय कहिये इहां जेम जेम इंद्री प्राण अने पर्याप्ति वधे तेम तेम अधिकरण पण वधे.

हवे तिहां जो हिंसादिक कारणोनी वृद्धिथाय तो पाछो पन्नी एकेंद्रियादिकमां आवीजाय, अनेजो सामान्ये रहे तो पोतानी कायस्थितिप्रमाण द्वींद्रियादिकनावेज रहे, अनेजो छेदन नेदनरूप अकामनिर्जरा थायतो तेनेयोगे उंचोपण आवे, इहां विकलेंद्रियथी एकेंद्रियमांजाय अने एकेंद्रियथी विकलेंद्रियमांजाय, एरीतें अनंता फेराथाय, तिहां एकेका फेरामां प्राये अनंतकालपण वहीजाय.

एरीते करतां विकलेंद्रियथी अकामनिर्जराने योगे प्रायें तिर्यंच पंचेंद्रीयथाय, ते तिर्यंच पचेंद्रिना बेनेदछे, एक गर्नज अने बीजा समूर्छिम. तेमां समूर्छिम ने मन न होय तोपण तेमां शरीर प्राण पर्याप्ति आयुप्रमुख अधिकरणनी वृद्धिथाय, तेथी जो हिंसादिक अधिकरणनी बहुलता थई तो पहेली नरके जवुं पडे, अथवा पाछो पन्नी एकेंद्रियादिकमां पण जाय, जो नरकेजाय तो उत्कृष्ट असंख्यात कालसुधी क्षेत्रवेदना परमाधामिकृत तीव्रदुःख तथा परस्परकृत तीव्रदुःख अनुनवे. तथा एकेंद्रियमां गयोतो फरी छेदनादिक अनेक दुःख सहन करे फरी अनंतकाल नमे.

कदाचजो समूर्छिम पंचेंद्रियमां छेदन नेदन सीत तापादिक महादुःख सहन

थी अकाम निर्जराने योगे गर्नज मनुष्य थाय, अथवा गर्नज तिर्यंच पचेंड्रिय था य, ते जेवारे गर्नज पचेंड्रितीर्यंच अथवा गर्नज मनुष्य थाय, तेवारे प्रबल अ धिकरणी थयो, तिहां पांचे आश्रव प्रबलपणे सेवे तिहां प्राण तथा पर्याप्ति पूरणहोय तेनेलीधे त्रिकाल वेदन स्वकीय परकीयना विकल्पजालमां पडे, तेथी उत्कृष्ट कर्मस्थितिनुं धणी थाय, आर्त्त रौद्र ध्याननी प्रबलता थाय, ते डुर्ध्या ननायोगें कर्मस्थिति दीर्घकरे, इहां कोइकजीव प्रबल हिंसादिक कारणनेयोगें सातेनरकोने विषे जाय, अथवा किवारेक मुर्छादिक अधिकरण योगे पाछो एकें ड्रियमां पण जाय, तिहां अनंतकाल रुले.

अथवा किवारेक छेदन नेदन ताडन तर्जन शीत तापादिक सहनकरतो जा ति शरलपरिणामी माटे तीव्रसंक्लेश न करे तो अकामनिर्जराकरी कोइकजीव देवगति पामे, अथवा कोईजीव मनुष्यथाय तेमांजो देव थयोतो अतिशय विषयाशक्तमां माचीने तीव्रसंक्लेशे विषयाशक्त थको मरीने प्रायें तिर्यंच पंचेड्री गर्नजथाय. तिहां बहुल हिंसादिक सेवनकरी नरकेजाय. अथवा पाछोपडी एकेंड्रियचक्रमां जाय, फ री तिहांथी निकली पंचेंड्रियपणुं पामतां उत्कृष्ट कायस्थिति योगे असंख्य पुजल परावर्त्त वीतीजाय.

अथवा कोईदेवमरी मनुष्यथाय, तिहां कारण अपरिपाकपणाथी बहुलतायें अनार्यक्षेत्र अनार्यकुलमां उपजे, तिहां प्रबल कषाय विषयादिक अशुभहेतुना योगे अढारे पापस्थानकसेवी, किवारें सातेनरकोंनेविषे जेवां जेवां कर्म बांधे तेवां तेवां कर्मानुसारे ते ते नरकमां जई उपजवुंथाय, एम यथाबंधी उपजे, तिहां नरक संबंधी आकराडुःख असंख्यकाल पर्यंत सहन करे, ते नरकडुःखना विपाक नव नावनादिक ग्रंथथी जाणवा.

अथवाकोई तो मनुष्यनवपामी घरकुटंबनी तीव्र मूर्छामां मूर्छितथको अज्ञान योगे परिणम्यो तो फरी तिर्यंचगति यावत् एकेंड्रिय चक्रमांपडे, वली ते दशापाम ता अनंतानंत काल व्यतिक्रमीजाय, तथा कोईमनुष्य विशिष्टज्ञानविना मूढचेतना वंत प्रकृतियें सरलथको सहेजे कषायनी मंदतायें मनुष्यपण थाय, तिहांवली का लपरिपाकविना अशुभकारणनी बहुलतानेयोगे मिथ्यात्वादिक अशुभहेतुनी पुष्ट तायें कर्मस्थिति उत्कृष्टिकरे, ते उत्कृष्टकर्मस्थिति लखियेंछेयें ॥ गाथा ॥ मोहेको डाकोडी, सत्तरिवीसंचनामगोयाणं ॥ तीसायराणि चउन्नं, तित्तीसायराइ आ

वस्त ॥ १ ॥ अर्थ ॥ तेकर्मबंध बांधवाना चारहेतुछे, मिथ्यात्व अविरति कषाय अने योग, ए चारहेतुनी प्रबलतायें कर्मस्थिति उत्कृष्टी बांधेछे.

तिहां सर्वकर्मनो उत्पादकपोषक मोहनीय कर्म छे, जेम इंमार्थी मुरगी अने मुरगीथी इंडुं तेम मोहनीयकर्मथी आठेकर्मबांधे, आठे मली मोहनीयकर्मनी पुष्टीकरे, माटे मोहनीयकर्मनी मुख्यताकही, मोहनीयकर्मने राजपदनी उपमाकही, ते मोहनीयकर्मनी अठ्यावीस प्रकृतिमां मिथ्यात्व मुख्य कर्मप्रकृतिछे, समस्त संसारमां सर्वजीवोने समस्त दुःखनोहेतु एकमिथ्यात्वछे. ते मिथ्यात्वमोहनीय एकवारनुंबांध्युं उत्कृष्टो सित्तेरकोडाकोडी सागरोपमसुधी विपाकआपे, तेहनो विपाक अत्यंत मदिरापाननी घुमि सरिखोछे, जेम मदिरानुं पानकरनार पुरुष मित्रने शत्रुनी बुद्धियें मारवादोडे अने शत्रुने हंसीहंसी मलवादोडे.

तेम तीव्रमोहना उदयथी जीवने अजीवजाणे अने अजीवने जीवजाणे तथा धर्मने अधर्मजाणे, अधर्मने धर्मजाणे, मार्गने उन्मार्गजाणे, उन्मार्गने मार्गजाणे, साधुने असाधुजाणे, असाधुने साधुजाणे, मुक्तने अमुक्तजाणे, अमुक्तने मुक्तजाणे, ए दशप्रकारें मिथ्यात्व विपाक आपे.

तथा नामकर्म अने गोत्रकर्म एकवारनुंबांध्युं उत्कृष्टो वीसकोडाकोडी सागरोपम स्थितिरहे, ते नामकर्मनो विपाक चित्रकार सरिखो विचित्रपणे छे केमके जे वर्ण रहित गंधरहित स्पर्शरहित रूपरहित रसरहित अने समस्तदोष रहित, असंख्यातप्रदेशी लोकप्रमाण अखंम अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र स्वरूपी संघयण संस्थान रहित, एवा अरूपी आत्माने एकेंद्रिय बेंद्रिय कुरूपी सुरूपी ठीगणो कुबमो कालो धोलो अतिमहोटो तो हजारयोजनप्रमाण अति सूक्ष्म तो वालनी अणीउपरें असंख्यगोला गोलेगोले असंख्य निगोद निगोदे निगोदे अनंत जीव, इत्यादिक जीवने अन्याख्यान रूप विपाकआपे एवुं ए नामकर्मछे.

गोत्रकर्मनो विपाक कुंनारना नांमा सरखो छे, केमके एजीव जगत् शिरोमणी सिद्धसमान जगतने वंदनीय स्वरूपी छे, तेज जीवने चंमाल मातंग हलालखोर जेने कोई अडके नही कदापि अडके तो जलादिके स्नानकरी शुद्ध थाय, जो विष्टा चर्म हामनुं जक्षण करनारो स्वान घरमां आवे, अथवा तेनो स्पर्श थाय तो तेनी कांई शंका न आणे, शोचपण न करे, अने पंचेंद्रिय तेवली मनुष्य दश प्राणनो धारक, तत्वातत्व सर्व उचित वस्तुनो जाण, सर्व मनुष्य जेहवो मनुष्य शुनाशुन करणी करवा समर्थ, तेहनुं दर्शन स्पर्श अथवा निकट रहेवानी कोई चाह

ना करेनही, तेथी तेने वस्ति बाहिर रहेवुं पडे, ए सर्व विपाक नीच गोत्रना जाण वा तथा उंच गोत्रना विपाक ते जे कोई जीव मूर्ख जड दुष्ट निर्धन निर्गुण कुरूपो कुत्सित होय, अने कुकर्मनो कर्त्ता होय, कर्म चंमाल होय, एवुं छता पण महोटा कुलमां अवतार लीधो होय, तो दोषे नखो पण लोकमां आदर सन्मान सत्कार पामे, जो अशुद्धाचरण देखी निंदा थाय, तोपण अवशर उपर तेहने सउ कोई तेडीने विनयकरे, जे ए महोटा छे, महोटा कुलना छे, ओलादीछे, केटलाक दोष ढाक्या जाय. इति गोत्र कर्मविपाक.

ज्ञानावरणी अने दर्शनावरणी तथा वेदनीय अने अंतराय एचारेकर्मनी स्थि ति एकवार बांध्या त्रीसकोडाकोडी सागरोपम पर्यंत विपाकआपे.

तेमां ज्ञानावरणीकर्म आंखनापाटा समानछे, जेने एकर्मनो तीव्रोदयहोय ते प्राणी कांईज जाणेनही, केमके जीवना सर्व आकाश तथा काल प्रमुख द्रव्यप र्यायथी अनंतगुणा ज्ञानगुणना पर्यायछे, ते सर्वपर्याय ए ज्ञानावरणीकर्म आव र्याछे, एक अक्षरना अनंतपर्यायछे, तेमांहेलो एकपर्यायनुं ज्ञान निगोदिआ जीव ने उपजतांहोय, बाकी सर्वपर्यायनुं ज्ञान ढाक्युंछे, एक अक्षरनो अनंतमो भाग उ घाडोरहे, तेपण द्रव्यस्वभावेरहे, पण कर्मनी रायतिनथी, एक जीवद्रव्य ते बीजा स र्वद्रव्यना द्रव्य गुण पर्यायना त्रिकालिक उत्पाद व्ययनो एकसमयमां ज्ञायक चिदा नंदघनरूपी एहवुं चेतनराजछे. तेने ए ज्ञानावरणीकर्म जडरूप अतिगुप्तकरीनाखे, पण तेहना उपर कोईरीते अनुकंपाकरेनही, काष्टप्रायकरे, चेतनना मुख्य ज्ञानगुण ने आवरे, ए ज्ञानावरणीय कर्मना विपाक जाणवा.

दर्शनावरणीयकर्म वेत्रीसरिखुं दरवान दोढीदार सरिखुं छे, जेम राजाप्रसन्न थ योछतां दरवान खुसी नहोयतो ते अटकावी राखे, पण राजानी भेटकरवानआपे तेम एकर्मनो विपाक जे पूर्वोक्त स्वरूप जीवने अंधकरे, न्यूनइंद्रीय शून्यइंद्रीयकरे बधिर करे सर्व शुभकरणीआदरे, ते अवसरे सर्वघाती निद्रा आवी तेनो शुभनिमित्त व्यर्थकरी नाखे, ए दर्शनावरणीय कर्मनो विपाक जाणवो.

वेदनीयकर्म मधुलिप्त तरवारनी धारा समानछे. तेमां मधुना आस्वाद सरिखी शातावेदनीयछे. अने जीभ छेदायाना दुःख सरिखी अशाता वेदनीयछे. एकर्मना विपाक गर्भगतदुःख जन्मसमयना दुःख समस्त रोगोत्पत्तिनादुःख मरण समय नादुःख वियोगोदयनादुःख विषय अप्राप्तिनादुःख आठ महाभयनादुःख शीतदुःख तापदुःख तथा तिर्यंचना भवमां वध बंधन भारवहन शकटवहन कृषिक्रियागत दुः

ख खासीक्रियाडुःख नासावेधडुःख क्षुधाडुःख प्यासाडुःख मृगयाडुःख असवारी नाडुःख दूरपंथ गमनडुःख जातिवैरीनाडुःख धर्मबुद्धिये हनन समयना डुःख पिंजरामां पडवानाडुःख इत्यादिक अनेकडुःख तिर्यंचगतिमांछे, तथा नरकगतिमां क्षेत्रवेदना शरीरगत अनेक रोगजन्यडुःख परमाधामिकृतडुःख अन्योन्य प्रहरण प्रहार डुःख ए सर्वे अशातोदय वेदनीयना विपाकजाणवा, तथा शातावेदनीयोद यथी सर्वइच्छित खावा पीवानाजोग वली खेलवुं स्त्रीविलास राग रंग सुख सघ्या मान महत्व राजलीला कामनासिद्धि निरोगता इत्यादिक सर्व शातावेदनीयना वि पाक छे. एकर्म जीवना अव्याबाधगुणने बाधकरनारुंछे. समस्त देव मनुष्यना त्रिकालिक पुद्गलिकसुख एकठाकरीने तुल्यनाकरियें तो सिद्धनासुखने अनंतमे नागे पण न आवे, एहवा सहजानंदी जीवने एकर्म शुनाशुन पुद्गलपिंममां रखडावे ए वेदनीयकर्मनो विपाककह्यो.

अंतरायकर्म राजाना नंमारीशरिखुंछे. जेम राजा सुप्रशन्नथई कोईने इव्य आप वानो आदेशकरे, पण जो नंमारी अनुकूल न होय, तोकोईपण निमित्ते विलंबक रीआपे, धकाखवरावे, पण इव्य आपेनही, तेम ए कर्मनाविपाके दान शक्ति न पामे कदापि दानइच्छा न करे अने इच्छाकरेतो उलटो कोई एहवो विकल्पउठे के, जेथकी दानआपवानी बुद्धिज नूलीजाय, पण आपीशकेनही, तेमज लान मेलववाने अर्थे पण घणीज पोतानी बुद्धि केलवी चतुराईथी उद्यमकरे, सर्ववातें खबरदारीराखे, अने कार्यपण सलुखाईमां आवे, जेथकी एवी आशा थायके आ उद्यममां रूडोप्रा प्ति अवश्यथशे तेथी हर्षवंत पण थाय एटलामां कोईलानांतराय कर्मना उदयथी एहवां कारणो आवी बने के जेथकी लानने ठेकाणे उलटो त्रोटोथईपडे, ते ला नांतराय कर्मनो विपाक जाणवो तेमज नोगांतरायकर्मना विपाके नोग न पामे,कदा पि पामे तो रोग शोग नयादिक कारणे नोगवी शकेनही एमज उपनोग वस्तुपण एना उदयथी न पामे, कदापिपामे तो तेनो कोईपण हरकतनेलीधे उपनोग करीशके नही, तेमज वीर्यांतरायना उदयथी शरीर निर्बलतापामे, अनेक औषध रसायन खाय तोपण उलटो कोई कुपथ्यादिकने योगे रोग थाय, डुर्बलतानी वृद्धि थाय, परवसादिकने योगे मननीहोंस मनमांसमें पण चिंतितकार्य करी शकेनही, एरीतें अंतरायकर्मनो विपाक जाणवो.

आयुकर्मनी उत्कृष्टीस्थिति तेत्रीस सागरोपमनीछे, ते एक शुनायु बीजुं अशु नायु ए बे प्रकारेछे, ए कर्म हेड शरिखुंछे, जेम ज्यां लगण हेडमां पग प

इयुंहोय त्यांलगण किहांपण जवाई शकायनही, तेम आयुकर्म बांध्यापछी गमे एटलो धर्मकरणीकरे क्षायिक सम्यक्त्वादिक उपार्जे.तोपण बांधेलीगती अवश्य नो गववीपडे, पण छूटेनही, बीजा कर्मोनोउदय तोअपवर्त्तन संक्रमणादि करण योगे निःफलकरे, पण ए कर्मतो जोगव्याविना छूटेजनही. बीजा शुनाशुनकर्म उंच नी च परिणाम योगें दल वृद्धि हानीथाय, पण एकर्मतो यथाबंधें अवश्य जोगव्युंज जोय; जोपण नरकादिकना दुःखघणाय अनिष्ट लागे, तोपण छुटेनही, एरीते आयुकर्मनो विपाक जाणवो.

एरीतें आठेकर्मनी प्रकृति स्थिति रस अने प्रदेशबंधना परवशपणे अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्त थया जन्ममरणादिरूप, जीषण कांतारमां जम्यो, एम जमतां जमतां कोईकवारें दुर्लन मनुष्यजवादि सामग्रीयोग मल्यो, पण मिथ्यात्वनी प्रबलता हे तुयें अथवा पांचकारणना परिपाकविना किहांपण सम्यक्त्वनी प्राप्ति नथई, केवल जवपूर्णथयो इहां प्रसंगे योगबिंदुग्रंथमां कहेली सम्यक्त्व प्राप्तिनी शैली लखियेंबइयेः-

जे जव्यजीवछे तेने जव्यताना उदयेंकरी अकाम निर्जरायें कर्मखपावतां पांच कारणनी अनुकूलतायेंकरी बे पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहे, तेवारें धर्मशब्द सामा न्ये सद्दहे, जे धर्मशब्द शांजलवा सन्मुख निर्विवेकपणेहोय तेने श्रवणसन्मुखी जा वकहियें, पण तथाविध आदरपीपासाकांईहोयनही पण सहज मिलेतो विमुखनही.

पछे तिहांथी संसार परिभ्रमणकरतो जीव उच्च जावमां आवे, तेवारें दोढपुद्ग ल परावर्त्तरहे मार्गगवेषणा मार्गश्रवण मार्गसन्मुख मार्गानुसारी मार्गप्राप्ति इत्यादि कनाम इहांथी आगेंथाय, धर्मजणीधसे जिनोक्तमार्गनुं श्रवणहोय कोइकरीतें रुचि थाय पण तीव्रजावें गवेषणानहोय, एने मार्गपतित कहियें, एटले मार्गेपड्यो कोइ जवें एवीरुचीथईपणी, संसारपरिभ्रमणकरतां एकपुद्गल परावर्त्तरहे तेवारें जिनमा र्गानुसारीपणुं शुद्धाशुद्धनी गवेषणामात्रहोय, एरीतेकरतां इहां धर्मयौवनकालआ वे न्यायसंपन्न विजवप्रमुख पांत्रीसगुणपामे, मित्रादिकदृष्टी पामवानो अवशर होय, एहने मार्गानुसारी कहियें, इहां षटदर्शननी जिन्नताजाणे, जिनोक्तमार्गें व्यव हारें प्रवर्त्ते, इहांथी मिथ्यात्वमंदपडयुं, तेथी व्यवहारें इव्यधर्मपणपामे, पण सम्यक्त्व प्राप्ति न थाय, इहां पहेला त्रण अनुष्ठाननी प्रबलता होय, सर्वक्रियाकरे तेदेखी बी जा अनेकजीव धर्मपामे, पण पोताने नहोय तेक्रियानुंफल स्वर्गादिकथाय, पण नि र्जरा अर्थे नथाय ॥ २ ॥ इतिद्वितीय गाथार्थ

हवे सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपायकहेछेः—

पढ्ढोवलमाइअट्ठा, पवत्तिकरणेणकोविजइकुणई ॥
पलिआ असंखन्नागुण, कोमिकोमि अरठिइ सेसं॥ ३ ॥

अर्थ ॥ इहां चरम पुद्गलपरावर्तमां मिथ्यात्वनी मंदताथाय तिवारें सम्यक्त्व पामवाना कारण त्रण करणछे, तेनानाम एक यथाप्रवृत्ति बीजोअपूर्व त्रीजोअनिवृत्ति, तेमां इहांप्रथमकरणनो अवसरछे तेकहेछे, ए सम्यक्त्वगुण पामतां सुधीमां सर्वसाधारण आठ दृष्टांतकह्यांछे तेमां यथाप्रवृत्तिकरणकरतां बे दृष्टांतलागे ते दृष्टांतनी आवश्यकोक्त गाथा लिखुंछुं.

"पल्लयगिरि सरिउवला, पिवीलिआ पुरिसपह जरगहीआ ॥कोद्दव जल वत्था णिअ सामाइयलान्नदिट्ठंता ॥ १ ॥ एगाथानोअर्थकहेछे एक पालानुंदृष्टांत, बीजुं पर्वतथी नदिप्रपातस्थानेरहेला पाषाणनुं दृष्टांत, त्रीजुं पीपीलिका ते कोमीनुंदृष्टांत, चोथुं त्रणपंथीपुरुषनुं दृष्टांत, पांचमुं ज्वरग्रहीतनुं दृष्टांत, छठुं मदनकोद्रवनुं दृष्टांत, सातमुं मलिनजल दृष्टांत, आठमुं समलवस्त्रदृष्टांत, ए आठ दृष्टांत सर्व सम्यक्त्वनो लान्न थतासुधीमां लागे, ते यथा स्थानकें लखीसुं, पण इहांतो यथा प्रवृत्तिकरणे बे दृष्टांतलागेछे ते कहिये छैयें.

तिहां सम्यक्त्वपामता करण त्रणछे १ यथाप्रवृत्तिकरण २ अपूर्वकरण ३ अनिवृत्तिकरण; तेमां यथाप्रवृत्तिते 'अनतिक्रम्यकरोतीति' यथाप्रवृत्ति, ए व्युत्पत्तिनो अर्थः—यथाके० जेम अनादिनी चालछे तेमनीतेम प्रवृत्तिनुं करणके० जीवपरिणामनुं प्रवर्तनछे जिहां, तेने यथाप्रवृत्तिकरणकहियें, एटले अनादिनुंजे चाल परिणामछे ते प्रवर्तन फरखुंनथी, अनादिचालें प्रवर्तेछे पण कारणपरिपाकना जोरथी मिथ्यात्वनी मंदताथाय, तेथी पालाने दृष्टांते जेम पूर्वें भर्यो धाननोपालो तेमां थोडुंधाननाखियें अने घणुं धानकाढीयें तेवारें तेपालो कालांतरे खालीथाय तेम कर्मरूप धानेकरी समस्त आत्मप्रदेशरूप पालोभर्योछे तेपालो जीवमे अनाभोगथी एटले इच्छाविना सहजें अकामनिर्जराथी छेदनभेदनादिकथी अशुभविपाकावशरें मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषायनी मंदतानायोगें कर्मविपाकें बहु व्यापक न होय तेवारे कष्टमाफक निर्जराघणीथाय, अने मिथ्यात्व कषायनी मंदता माटे नवाकर्मपण घणाबांधेनही, मंदवीर्यमाटे प्रदेशरश पण थोडुंग्रहणकरे एटले घणी निर्जरा थाय अने बंध अल्पथाय तेथी कर्मस्थिति रूपधान्यनुं पालो घटाडे.

तथा बीजुंदृष्टांत नदीना पाषाणनुं, जेम पर्वतथी नदीधारापडे तिहां नीचेरहे लुं पाषाण तेनदीनी जलधारा पडवाथी अरहों परहों घोलाय अथडाय, ते पाषा ण घोलना घंचनानेयोगें घसाईने घोलघाटमांआवे, फरसमां सुहालोथाय, एरीते स हेज स्वनावेकोईक घाटमांआवे पण कोइए एनो विचारपूर्वक घाट कर्योनथी.

तेम जीवते पाषाणरूप, नदीप्रवाह ते कर्मोदय प्रवाहें पचतो अकाम निर्जराथी पूर्वोक्तन्यायें निर्जरायेंकरी कोइक धर्मप्रवृत्तियोग्य घाटमांआवे. (आकारमांआवे) ए बेदृष्टांतेकरी एकआयुकर्मवर्जिने बाकीसातेकर्मनी उत्कृष्टिस्थितियोग्य बंधप रिणामने घटाडे, तथा पूर्वबंधहोय तेपण निर्जरे, तेवारें सिंतेरकोडाकोडी मिथ्या त्व बांधतोहतो ते परिणाम टलीने पल्योपमने असंख्यातमें नागें न्यून एक को डाकोडीनी स्थितिबंधना परिणाम राखे, तथा पूर्वबंधहोय तेपण सर्व स्थिति घटीने एक कोडाकोडीनी स्थिति सेपरहे, एरीतें एक आयुकर्म मूकी बाकी सा ते कर्मनी स्थितिघटाडीनाखे एटले त्रीसकोडाकोडी स्थितिवाला कर्मोनी ओगण त्रीस कोडाकोडि घटाडी पल्योपमने असंख्यातमेंनागें न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम राखे. ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अने अंतराय ए चार कर्मनी एटली स्थितिराखे, तथा नाम अने गोत्र ए बेकर्मनी उत्कृष्टी वीसकोडाकोडी साग रोपमनी स्थितिमांथी ओगणीस कोडाकोडीघटाडीने पल्योपमने असंख्यातमें ना गें न्यून एक कोडाकोडिराखे, एटलासुधी जे जीवना परिणामनी योग्यताथयी एनुं नाम यथाप्रवृत्तिकरण कहियें; ए करण जीव संसारमां नमतां नमतां अनंतिवार करे, पल्योपमने असंख्यातमेंनागे उंणी एककोडाकोडी सागरोपमनी शातकर्मनी से षस्थितिरही तिहांसुधी यथाप्रवृत्तिकरण कहियें, आगलें ग्रंथीदेशआव्यो खरो पण ए करणयोग्य परिणामे आगल न जवाय इति प्रथमकरण.

बीजुं अपूर्वकरण ते जे पहेला संसार परिभ्रमण करता कदापि एवुं, करण जे जीवपरिणाम विशेष ते पाम्योनथी माटे अपूर्वकरण कहियें; ए अपूर्वकरण परि णामें घन निवड रागद्वेष परिणतीमयी जे ग्रंथी तेने नेदवामांडे, जे नेदे तेह अध्य वसायने अपूर्वकरण कहियें.

त्रीजुं अनिवृत्तिकरण ते जे अध्यवसाय फल प्राप्तिविनानिवर्त्ते पडेनही, एटले पूर्वें आव्योजे अपूर्वकरणरूप परिणाम ते पाछो जायनही तेने अनिवृत्तिकरण कहियें, ते अनिवृत्तिकरणरूप परिणामेकरी जीव सम्यक्त्व पामे ते त्रीजुंकरण इ हां ए त्रण करणनो साखआपवाने कल्पनाष्यनी गाथा लिखेछे "अंतिमकोडा

कोडी, सव्वंकम्माण आउवज्जाणं ॥ पलियाअसंखिज्जइ, नागेखीणेहवइगंठी ॥ १ ॥ गंठित्तिसुदुप्रेउ, कख्कडघणरूढमूढगंठीव ॥ जीवस्सकम्मजणिउ, घणरागदोसपरिणामो ॥ २ ॥ जागंठीतापढमं, गंठीसमइच्छउजवेबीयं ॥अनियट्टी करणंपुण, सम्मत्तपुरक्कडे जीवे ॥ ३ ॥ ए त्रणगाथानो अर्थ लेशमात्र लखियेछे.

आयुवर्जीने सातेकर्मनी अंतिम के० छेहेली कोडाकोडिस्थिति पल्योपमने असंख्यातमेंनागे न्यूनरहे बाकीसर्वेखपीजाय एहवे इहां गंठी कठणस्थानकछे ॥ १ ॥ गंठीकहेवीछे सुदुप्रेउ के० अत्यंतदुःखें नेदवायोग्य कर्कश वक्र गूढ गुप्त कोइ खदिरादि कठीण काष्टनागांठनीपरें जेवीतेवीरीतें नेदाय छेदायनही ए उपमायें अनादिनुं जीवने कर्मजनित घन के० निवड राग द्वेष परिणति संचयरूप ग्रंथी ते वज्रवत् दुर्नेद्यछे ॥ २ ॥ जिहांगंठीछे तिहांसुधीआवे तेने पढम के० प्रथम यथाप्रवृत्तिकरण होय, पछी गंठीसमइच्छउ के० ग्रंथी समर्थनकरतां साम्यर्थवंतथई ग्रंथी नेदतां बीजुं अपूर्वकरण होय; तथा पुण के० वली अनियटीकरण के० अनिवृत्तिकरण ते सम्मत्तपुरक्कडे के० सम्यक्त्व अवश्यप्राप्त नव्यपणे आगलकर्युं जेणे जीवे, एटले सम्यक्त्व अवश्यपामवुं जेना मुखआगल रह्युंछे तेजीवने त्रीजुंकरण होय॥३॥

एरीतें धाननोपालो तथा नदीनुपछर ए बे दृष्टांतें कोइकजीवें यथाप्रवृत्तिकरणें पल्योपमने असंख्यातमेंनागें न्यून एककोडाकोडि सागरोपमनी सातेकर्मनी शेष स्थिति कीधी, एटले सम्यक्त्व प्राप्तिनो निश्चेथयो एरीतें शिष्यबोल्यो तेवारें गुरुक हेछे इहां सम्यक्त्व प्राप्तिनुं निश्चेथयोनथी ते गाथायें करीकहेछे.

तछविगंठीघणराग दोसपरिणइमयं अभिदिंतो ॥
गंठियजीवो विहहा, नलहइ तुह दंसणं नाह ॥ ४ ॥

अर्थः— तछवि के० तिहांपण कांइकउणी एककोडाकोडी स्थिति शेष सातकर्मनी कीधी तोपण अनव्य अथवा दुर्नव्यत्वादिक दूषण ने लीधे हाहाइतिखेदे रागद्वेषपरिणाममईग्रंथीदेशगत जीवपण ग्रंथीने अणनेदतोथको हे नाथ ताहरुं दर्शनजे श्रीमुखे कहेलुं सम्यक्त्वते पामीशकेनही? केमके ए यथाप्रवृत्ति करणछतीतो अनव्यपण आवे एवुं आवश्यक वृत्तिमां कह्युंछे के अनव्यपण कोइक अकामनिर्जराकरतो ग्रंथीदेशसुधीआवे तिहां अरिहंतनी रूद्धीदेखीने अथवा अन्यकोई पुन्यवंतनी इछायें प्रवर्त्तमानथको चारित्रलीये तिहांमात्र श्रुतसामायकनो लाज तेने होय, पण शेष दर्शन सामायिकादिक पामेनही, एम संसारमां नमताथका व्यव

हार रासियाजीवप्रायें जिहांसुधी चरमावर्त चरमकरण न पामे तिहांसुधी अनंतिवार ग्रंथीदेशसुधीआवी पाछापडे ॥ ४ ॥ इतिचतुर्थगाथार्थ.

हवे जीव जे रीतें ग्रंथीनेदे ते रीत कहेछेः—

पल्लिय पविलिय नाएण, कोविपज्जत्त सन्निपंचिंदी॥
नवो अवड्ढपुग्गल, परियट्टवसेस संसारो ॥ ५ ॥

अर्थः—पल्लियपिविलियनाएणके० इहां ग्रंथीदेशपाम्यापछी कोइकजीव अपूर्वकरणकरे ते पंथीजे वाटमार्गु तथा पिपिलीकाजे कीडी तेने नायण के० न्यायें दृष्टांतेंकरे तेदृष्टांत देखाडवाने नाष्यनी गाथाउ लिखुंछुं.

जहइहतिन्निमणुस्सा, जंतडविपहंसहावगमणेणं ॥ कालाइक्कमनीया, तुरंतिपत्तायदोचोरा ॥ १ ॥ दटुंमग्गतडछे, तेएगोमग्गउपडिनियत्तो ॥ बीउंगहियोतइउ, समइकंतोपुरंपत्तो ॥ २ ॥ अडवीनवोमणुस्सा, जीवोकम्मठिईपहोदीहो ॥ गंठीयनयठाणं, रागद्दोसायदोचोरा ॥ ३ ॥ नग्गोठिइपरिवुढ्ढी, गहियोपुणगंठिउगउतइउ ॥ सम्मत्तपुरंएवं, जोइज्जा तिन्निकरणाइ ॥ ४॥ खिईसहावियगमणं. थाणूसरणं तउसमुप्पयणं ॥ ठाणंथाणुसिरेवा उहरणंवामुअंगीणं ॥ ५ ॥ खिइगमणंपिवपढमं ॥ थाणूसरणंचकरणमप्पुव्वं ॥ उप्पयणंपिवतत्तो, जीवाणंकरणमनियट्टिं ॥ ६ ॥ थाणुव्वगंठिदेसो, गंठियसत्तस्सतव्वठाणं ॥ उसरणंपिवतत्तो, पुणोविकम्मठिइविवढ्ढि ॥ ७ ॥

हवे ए सातगाथानो अर्थ किंचितमात्र लिखुंछुं जहइह के० जेमइहां कोइक तिन्निमणुस्सा के० त्रणमनुष्यछे, ते सहावगमणेणं के० स्वनावगमनेकरी सहेजे निःप्रयोजने जंतिपहं के० अटवीपंथेंजायछे ते जातांजातां घणी अटवी उलंघीगया पछी कालाइक्कमनीया के० कालअतिक्रमवेकरी नयपाम्या, एटले असूरवखतें अटवीनो पंथ तेथी मरवालागा, एटलामां तुरंति के० तुरत पत्तायदोचोरा के० बेचोर आवी लागा. ॥ १ ॥ पछी ते त्रणमनुष्यें दटुंमग्गतडछे के० मार्गनेतटे एटले मार्गनेमुखें ढुकडा बे चोरोदेखीने ते के० ते त्रणमांथी एगोमग्गाउ के० एकतो मार्गथकी पाछो निवर्त्यो, एटले पाछोनासीगयो तथा बीउंगहियो के० बीजानेतो ते चोरलोकोये ग्रहणकीधो एटले पकडीलीधो, अने तइयोसमइकंतो के० त्रीजोमनुष्यते चोरोने सम्यक्प्रकारें अतिक्रम्यो, एटले पोतानुं बलवीर्यफोरवी चोरोने हतप्रहतकरी पुरंपत्तो के० पुरप्रतेपहोतो एटले इछितस्थानके निर्जयपणे पहोतो ॥२॥ ए दृष्टांत सम्यक्त्व प्राप्तिमां उपनयनावे उतारेछेः—

अडविभवो के० भवभ्रमणरूप तो अटवीकहियें, तेमां मणुस्साजीवो के० म नुष्य ते त्रण उत्कृष्ट जातना संसारी जीव कहिये, अने कम्मठिईपहोदीहो के० क र्मस्थितिते महोटो दीर्घ मार्गकहियें, तथा गंठियभयठाणं के० ग्रंथीदेश ते भयनुं स्थानक कहियें, वली रागदोसायदोचोरा के० राग अने द्वेषरूप बे चोरजाणवा ॥ ३ ॥ तेत्रणमांथी दुर्भव्य अथवा अभव्यजीव तेतो भग्गो के० पाछो भागो (ना सीगयो) तथा अचरमकरणी अथवा अपरिपक्व कारणीतो ग्रंथीदेशेंजरह्यो, इहां ग्रंथीदेशे भव्य अथवा अभव्य उत्कृष्टो संख्यात असंख्यात कालसुधीरहे पछी भ व्यने शेष अर्द्धपुद्गलपरावर्त्त संसाररह्योहोयतो ग्रंथीभेदे अधिक संसारीपाछोफिरे इहां ग्रंथीदेशें भव्य अथवा अभव्य रह्यांथका द्रव्यश्रुत भिन्न दशपूर्वसुधी पामे द्रव्यचारित्रपामे.

अभव्य पूर्वश्रुत न पामें, केटलाक ग्रंथोने अनुसारें तथा वृद्ध परंपरायेंपण अभ व्यने पूर्वश्रुत न होय, तथा कोइक ग्रंथने अनुसारे लब्धिदशपूर्वसंपूर्णने पूर्वलब्धिक हियें, ते अभव्यने न होय पण शेषहोय, पछी बहुश्रुतकहेतेखरुं. पुरेपुरा दशपूर्व तथा अधिक यावत् चउदपूर्वसुधि जे भणे ते नियमा सम्यक्त्वीहोय केमके कल्प भाष्यमां कह्युंछे यतः चउदस दसय अभिन्ने, नियमासम्मत्तसेसएभयणा ॥ इति तेमाटे उत्कट कारणयोगे बीजो पुरुषतो ग्रंथीदेशेज टकीरह्यो, तथा त्रीजो चरम करणी प्राप्त भव्य सम्यक्त्ववंत वीर्योल्लासवधते राग द्वेश परिणतिरूप ग्रंथीभेदी ने सम्यक्दर्शन रूप नगरेंज पहोचे एम त्रणेकरणनो उपनय जोईआ के० जोडवो॥४॥

हवे त्रणगाथायें पीपीलिकानुं दृष्टांत समजावेछेः- खिइसहाव के० जेमक्षिति जे पृथ्वी तेनाउपरे सहजस्वभावें कीडीफिरेछे गमनकरेछे पण तेमां कोइनी प्रेर णानथी, हवे तेमां एक कीडीतो फरती फरती थाणुजे खीलो अथवा भीतप्रमुख तिहांसुधी आविने वली पाछीफरीजाय, तथा कोइक कीडीतो थाणुजे खीलो भीतते उपरें चढवामांमे तेचढीने थाणुना उपर बेसी रहे, तथा वली कोइक की डी थाणु उपरें चढीने उडीजाय, तथा कोइक कीडी खिलाथी अधवच पाछीउतरे ए मूइंगीणं के० मृदंगीजे कीडी तेनुं दृष्टांत जाणवुं ॥ ५ ॥

हवे एनो उपनय उपमान देखाडेछे, खिइगमणंके० क्षितिगमन एटले कीडीनुं पृथवी उपरें फरवुं खीलाना मूलसुधी आववुं ते पढमंके० प्रथमना यथा प्रवृत्तिक रण सरिखुंछे, तथा कोइक कीडी थाणुंसरणंचके० खीलेचढी ते सरिखुं बीजुं

मपुव्वंके० अपूर्वकरणछे, तथा कोइक कीडी खीलेचढीने तेखीलाथी उपयणंके० उ डीगई ते सरिखुं जीवने त्रीजुं अनिवृत्तिकरण कहियें ॥ ६ ॥

थाणुंवगंठिदेसोके० थाणुंजे खीलो तिहांज टकीरहेवुं ते ग्रंथीदेशें रहेवुं एटले गंठीयसत्तस्सतब्भवठाणंके० ग्रंथीगतजीवनुं कोइकालसुधी तिहां रहेवुंहोय, ते सरिखुंछे, तथा उसरणंपिवतत्तोके० ते खीलारूप गंठीदेशथी ओसरे एटले पाछुफिरे ते पुणोवि के० फरी कर्म्मस्थितिनी वृद्धिकरे फरी उत्कृष्टी कर्मस्थितिवधारे ॥ ७ ॥

ए सातगाथायें बे दृष्टांतकह्या तेणेकरी कोइ संज्ञीपर्यासो पंचेंद्री नव्यजीव मुक्तिजावा योग्यहोय, जेने अवड्ढपुग्गलपरियट्ट के० अर्द्धमात्र पुज्ञलपरावर्त्त शेष संसार बाकी रह्यो होय, एहवो एटले लक्षणेपूरण जे जीव होय ते जीव जे करे ते आगली गाथायें कहेछे ॥ ५ ॥ इति पंचमगाथार्थ.

अपुव्वकरणमुग्गर, घायविहिय दुठगंठिन्नेउसो ॥
अंतमुहुत्तेणगउ, नियट्टिकरणे वि सुज्झंतो ॥ ६ ॥

अर्थः– हवेपूर्वोक्त लक्षणवंत जीव ते ग्रंथीदेशसुधीआवे, तिहां परिणाम निर्मलतानी वृद्धिहोय ते कहेछे, अपुव्वके० पूर्वेकोइवारें पाम्योनही, एहवुंजे परिणाम तेने अपूर्वकरण कहियें, ते अपूर्वकरण कहेवुंछे जे निवड आकरी अत्यंतकठिण एवी पूर्वोक्तरूपजे ग्रंथी तेने नेदवाने मुग्गरके० वज्र सरिखुं छे तेने घायके० घायेंकरीने विहियके० विहित एटले कर्योछे दुष्टग्रंथीनुं नेदजेणे, सोके० तथानूत ते जीव प्रतिक्षणे विशुद्धमान परिणामनी निर्मलता वधते थके अंतर मुहूर्त मात्रमां पूर्वोक्त अनीवृत्ति करणेगयो एटले ग्रंथीनेदकरतां अंतर मूहूर्तलागे तिहां चढते परिणामें ग्रंथीनेदकरी अनिवृत्तिकरणे जाय, इहां अपूर्वकरणनी विशुद्धता थकी अनिवृत्तिकरणनी निर्मलता वशुद्धतरछे, माटे अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणनी निन्नता थई ॥ ६ ॥ इतिषष्टिगाथार्थ.

हवे ते अनिवृत्तिकरणे गयोथको जीव जे करे ते कहेछे

सो तत्थकरणे सुहमोव, वयरी जय जणियपरमआनंदं ॥
सम्मत्तंलहइजीवो, सामन्नेणं तुह पसाया ॥ ७ ॥

अर्थः– ॥ सोतत्थके० तेजीवने तिहां अनिवृत्तिकरणे अती विशुद्ध परिणामना जोरथी मिथ्यात्व मोहनीयना पुंजनीस्थिति बे थाय, तेमां पहेली स्थिति अंतरमुहूर्तवेद्य एटले एक अंतरमुहूर्तमां खपीजाय, एटली स्थितिना मिथ्यात्व मो

हनीय नामा कर्मनादलीया ते महोटीस्थितिजे कोडाकोडी सागरोपममां पल्योपमना असंख्यातमां नागे न्यूनछे ते स्थितिमांथी नजीकखेचीले, एटले बीजी पल्योपमने असंख्यातमेंनागे न्यून एककोडाकोडी सागरोपम प्रमाणहती तेमांथी अंतर मूहूर्तप्रमाण वेद्य नीची खेंचीने जूदीकीधी, बाकी शेषरही तेनुं महोटो पुंज अलगोराख्यो एटले न्हानीस्थिति तथा महोटीस्थितिने वचमां आंतरोपड्यो ते वारे ए बेहुस्थितिनी वचमां जे खाली जगारही तेनेअंतरकरणकहियें एम इहां अनिवृत्तिकरणना जोरथी अंतरकरण करे.

अने प्रथम स्थितिगत दलियाने अंतरमूहूर्तमां खेपवे अने महोटीस्थितिमांथी आवता दलियाने उपशमावे विष्कंनित उदयकरे अंतरमुहूर्त उदयनआवे एवांकरे

एटले अनिवृत्तिकरणे बे कार्यकरे एकतो मिथ्यात्वस्थितिना बेनागकरी अंतरकरणकरे अने बीजुं अंतरमुहूर्तवेद्य प्रथम लघुस्थितिने खपावे एटले अनिवृत्तिकरणनो कालपूरोथाय तेवारे आगल अंतरकरणमां धसे दोडे जाय प्रवेशकरे, तेवारे तिहां अंतरकरणने प्रथमसमये हेनाथ तमारे प्रसादे क्षायिकादिकनीपरें विशिष्टतो नही पण सामान्यपणे अल्पकालीन उपशमनामा समकितपामें. ते सीरीतेंपामें तेनी उपमाकहेछे,रणेसुहमोववैरि जयजणियपरमआणंदंके० जेमसुनटहोय ते रणने विषे वैरीने जीतवाथी परमानंदपामे, तेम अनादिनाजे रागद्वेषरूप महोटाशत्रु तज्जनित गुरुकर्मस्थित्यादि अनंतानुबंधिया चार वैरीने जीतवाथी परमानंद सरिखुं सम्यक्त्व जीवपामे यडुक्तं आवश्यकादिग्रंथे.

पावंति खवेऊणं, कम्माइ अहा पवत्ति करणेणं ॥ उवलनाएण कहमवि, अनिन्नपुविं तउगंठिं ॥ १ ॥ तंगिरिवरंच नेतु, अपुवकरणुग्गवज्जधाराए ॥ अंतोमुहुत्तकालं, गंतुमनियट्टिकरणंमि ॥ २ ॥ पइसमयंसुज्झंतो, खविऊ कम्माइ तत्थबहुआइं ॥ मिछतं मिउईणे, खीणेणुइयंमिउवसंते ॥ ३ ॥ संसारगिम्मतवियो ॥ तत्तोगोसीसचंदणरसोव, अईपरमनिवुंइकरं, तस्संतेलहइसम्मत्तं ॥ ४ ॥

हवे ए चारगाथाओनो अर्थ लिखेछे अनादिकालनुं संसारचक्रमां नमतोथको जीव पावंतिके० पामे, मिथ्यात्वमोहनीयादिक कम्माइके० कर्म्मोने खवेऊणंके०खपावीने ते अहापवत्ति करेऊणंके० यथाप्रवृत्तिकरणेकरीने कर्मो खेपवे, तेनुंदृष्टांत उवलनाएणके० उपलजे पूर्वोक्त नदीना प्रवाहनो पाखाण, तेना दृष्टांतेखेपवे, पछी अनिन्नपुविके० पूर्वेकोइवारें नेदीनथी एवीजे रागद्वेष परिणतिमई मिथ्यात्वग्रंथी तं के० ते ग्रंथीने शीरीतेनेदे के गिरिवरंके० गिरवरजे पर्वतते नेतु के० नेदवाने जेम व

ज्र बलवानछे, तेम अपूर्वकरण परिणामरूप उग्र वज्रधारायें करीने जीव ग्रंथी जे दतो अंतर मुहूर्तकालमां अनिवृत्तिकरणेगयो, पछीते अनिवृत्तिकरणे गयोथको शुं करे तेआगली गाथायें कहेछे ॥ २ ॥

पइसमयंके० प्रतिसमये एटले समय समयप्रते विशुद्धमान परिणामिथको तिहां बहुलाकर्मोने खेपवे, तेवखते जे मिथ्यात्वना दलियां उदयआव्या, तेने क्षयकरे अने जे उदय न आव्या उदयाभिमुख न थया ते दलियाने उपशमावे, एटले उदीरणादिक करणवलें पण विपाकोदय अथवा प्रदेशोदय जे थईशकेनही तेने उपशमाव्या कहियें, एम इहां अनिवृत्तिकरणे केटलाक मिथ्यात्वना दलियाखेपव्या, अने केट लाक उपशमाव्या, अने मिथ्यात्व स्थितिना बे जागकरी विचमां अंतरकरण कर्युं ॥ ३॥ हवे ते अंतरकरण करतां जे थयुं ते आगली गाथायें कहेछे.

संसारगिम्मके० जेम कोईक पंथी जन ग्रीष्मकालमां मध्यान समये निर्जलवनमां सूर्यनापडेला किरणने परितापें पडेला लूना अजडतापेकरी अतिव्याकुल थयो होय, तेने कोई शीतल स्थानकमले वली तिहांकोई बावनाचंदननुं रसछांटे तेवारे ते पंथी सातापामे केवो आनंदमग्न होय.

तेम इहां नव्यजीव रूप पंथी अनादिकालनुं संसाररूप उग्र गीष्म कालें जन्म मरणादिकरूप निर्जलवनमां कषायरूप उग्रतापे पीड्यो रोगशोगादिरूप लू अजड एटले लुख तेणेकरी अलुज्यो (दग्धथयेलुं) अने तृस्नारूप महोटी पीपासा ते णेकरी पराजव्यो थको एवो जव्यपंथी ते अनिवृत्तिकरणरूप शुद्ध शरलमार्ग पामि दूरथी अंतरकरणरूप शीतलस्थानकदेखी हर्षवंतथको धसीतिहां पहोतो, एटले गोशीर्षजे बावनाचंदन तेहनोजे रस तेहनीपरें शीतल अईपरमके० अतिशय परम उत्कृष्ट अनिवृत्तिकरण परम सुखसाताकरण एहवुं तस्संतेके० ते अनिवृत्तिकरणने अंते अने अंतरकरणने प्रथमसमये घनसारवत् शीतल सम्यक्त्वपामे तेवारें अनंतानुं बंधी तथा मिथ्यात्वकृत परिताप सर्व मटीजाय गाढ तृस्ना पीपासा मटीजाय॥४॥

इहां अनादिकालनुं परमशत्रु परम दुःखदातारूप एहवा मिथ्यात्वनुं दुःख अंतर मुहूर्त्तसुधी दफेथाय (दूरथाय) अनादिनो प्रथम दुखांत इहांथयो इहां सिद्धांत सैलीमां कालनिष्ठायें गुणदोष प्राप्ति तथा विरह आश्री चारजांगा कह्यांछे तेना नामकहेछे १ अनादिअनंत २ अनादिसांत ३ सादिसांत ४ सादिअनंत

ए चारजांगानुं अर्थकहेछे जेने मिथ्यात्वादिक अनादिनुंछे अने ते किवारें मटसे पण नही एवा अजव्यादिकने अनादिअनंत प्रथमजांगोछे अने जे जव्यजीवें

प्रथम सम्यक्त्वपाम्युं तेवारें ते जीवें अनादिना मिथ्यात्वनुं अंतकर्युं तेमाटे तेने अनादिसांत बीजोजांगो जाणवो; तथा जे जीव सम्यक्त्वपामी वली सम्यक्त्व वमन करी मिथ्यात्वें गया तेवारें मिथ्यात्वनी आदिथयी, पठी केटलोक काल मिथ्यात्वे रही वली शुनसामग्रीना योगथी फरी सम्यक्त्व पाम्यो तेवारें मिथ्यात्वनो अंतथयो ए त्रीजो सादिसांतनामा जांगोथयो, तथा चोथो सादिअनंतनामा जांगो तेक्षायिक सम्यक्त्वादि क्षायकजावें जेने जे गुण प्रगट थया तेगुण तेने होय पण मिथ्यात्वीने न होय, केमके ग्रंथी जेद कस्यापठी जे मिथ्यात्व होय, ते तो सादिसांत जांगे ज होय, माटे जेने सम्यक्त्वादिक क्षायकगुण प्रगटचा ते सादि, अने ते गुणआव्या जाय नही ते अनंत, एटले जव्य मिथ्यात्वीने त्रणे जांगाहोय, अने अजव्य मिथ्यात्वीने एकज अनादिअनंत जांगोहोय, यडुक्तंः—मिच्छत्तमजवाणं, तमणाइमणंत येमुणेयवं॥जवाणं तमणाइ, सपय्यवसियंतु सम्मत्ते॥१॥अर्थः—अजव्यने मिथ्यात्व अनादि अनंत जांगेहोय, अने जव्यने अनादि सपर्यवसित जांगें मिथ्यात्वहोय इति॥१॥७॥

हवे सम्यक्त्व केटले जेदेंहोय ते आगमनी गाथायें कहेठेः—

तंचेगविहंडविहं, तिविहं तह चउविहंच पंचविहं ॥
तछेगविहं जंतुह, पणीय जावे सु तत्तरुई ॥ ८ ॥

अर्थः—एक प्रकारें बे प्रकारें त्रण प्रकारें चारप्रकारें अने पांच प्रकारे पण आगममां सम्यक्त्व कह्युंठे, ते जेदोना स्वरूप विवरीने कहेठेः—तछेगविहंके० तिहां एकविध सम्यक्त्व ते जंके० जे हे परमेश्वर तुहके० ताहरा पणियंके० प्रकास्या जे जीवादिकजाव पदार्थ तेनेविषे तत्वरुचिहोय अर्थात् परमार्थ बुद्धिहोय, शकल दोषरहित अने शकलगुणे संपन्न एहवा अरिहंतदेवें जाष्युंजे तत्वते सत्यठे, एहवी रुचि परमार्थबुद्धि, तद्रूप आगममां कह्युंठे. 'तमेवसच्चनिस्संकं जंजिणेहिंपवेइयं' इत्यादि रुचिरूप; यडुक्तं योगशास्त्रेः—रुचिजिनोक्ततत्वेषु सम्यक्श्रद्धानमुच्यते जायतेतन्निसर्गेण गुरोरधिगमेनय १

ए उपला श्लोकनो अर्थ करेठेः—श्री जिनेश्वर जाषित जीवाजीवादिक तत्वनेविषे जे सम्यक्श्रद्धान के० निश्चल प्रतीत तेने तत्वरुचि कहियें, ते तत्वरुचि श्रद्धान मिथ्यात्वदलना रसनी मंदतायें जातिस्मरणादिक निमित्तें ईहापोह करतां करतां सहेजे पोतानीमेलें तत्वश्रद्धान पामे ते निसर्ग सम्यक्त्व कहेवाय, अथवा शुजगुरुनी उपाशना करतां सिद्धांतवाणी सांजलतां जे पामे ते उपदेसिक श्रद्धान कहियें ॥ १ ॥ इत्यादिक लक्षण जे तत्वरुचि ते एकविध सम्यक्त्व कहियें ॥ ८ ॥

हवे द्विविध सम्यक्त्व त्रणप्रकारें कहेछेः–

डुविहंतु दव्व नावा, निच्छय ववहारउवि अहवावि ॥
निस्सग्गुवएसाउ, तुहवयण विऊहिंनिद्दिठं ॥ ए ॥

अर्थः– हे जिनेश्वर ताहरा नाष्यांजे द्वादशांग तेना जाण एहवाजे प्रवीण पुरुष तेणे एक द्रव्य सम्यक्त्व अने बीजुं नाव सम्यक्त्व ए बेप्रकारें सम्यक्त्व कह्युंछे, अथवा एक निश्चयसम्यक्त्व अने बीजुं व्यवहारसम्यक्त्व एरीतें पण बे प्रकारकह्याछे. तथा वली एक निसर्गसम्यक्त्व अने बीजुं उपदेश सम्यक्त्व ए पण बे प्रकार कह्याछे. एम त्रण प्रकार द्विविध सम्यक्त्वना ते तुहवयण के० ताहरां वचनना विऊहिंके० वेता एटले आगमार्थना जाण पुरुषें निद्दिठंके० देखाड्याछे. ए

हवे त्रणप्रकारे द्विविधसम्यक्त्वकह्युं तेनालक्षण कहेछेः–

तुह वयणे तत्तरुइ, परमछ मजाणउवि दव्वगयं ॥
सम्मं नावगयं पुण, परमछ वियाणउ होई ॥ १० ॥

अर्थः– हेप्रभु तुह के० ताहरां वयण के० वचननो परमछ के० परमार्थ जे रहस्य तेनो मजाणउवि के० अजाणछे, पण ताहरां वचननेविषे तत्तरुइ के० तत्वरुचिछे, केमके जे राग द्वेष अज्ञान ए त्रण दोषनो नाशथवाथी वीतरागथयाते असत्य नाषण करेनही. माटे श्रीजिन नाषित वचन सर्व सत्यछे, एम ते जाणेछे तो एवीजे तत्वरुचि ते दव्वगयं के० द्रव्यगत सम्यक्त्व कहियें. यडुक्तं सिद्धांतेः–नावेणसद्दहंतो अयाणमाणेविसम्मत्तं, इतिवचनात्. जे सूक्ष्म अर्थने नथीजाणतो एहवा अजाणनेपण जो नावे सद्दहणाछे के जे अरिहंत ते शुद्ध नाषण करनाराजछे एहवी उंघे प्रतीतछे तो अजाणपुरुषने पण द्रव्यथी सम्यक्त्वछे.

बीजुं नावगयं के० नावगत सम्मं के० सम्यक्त्व ते पुण के० वली परमछवियाणउ के० परमार्थना जाणपुरुषने होई के० होय. यडुक्तं सिद्धांतेः–जीवाइ नव पयछे, जो जाणइ तस्स होइ संमत्तं. इतिवचनात्. माटे जे नव्यजीव जीवादिक नवेपदार्थने समस्त नय गंम नंग प्रमाण निक्षेप प्रमुख स्याद्वाद सैलीपूर्वकजाणे, सद्दहे, ते नव्यजीवने नावगत सम्यक्त्व कहियें ॥ १० ॥ एमद्रव्यसम्यक्त्व तथा नावसम्यक्त्व कह्युं

हवे निश्चयव्यवहार रीतें बेप्रकारनासम्यक्त्वनुं लक्षण कहेछेः–

निछयउसम्मत्तं, नाणाइमयप्प स्सुहपरिणामो ॥ इ
यरंपुण तुहसमए, नणियंसम्मत्तहेऊहिं ॥ ११ ॥

अर्थः— ज्ञान दर्शन चारित्ररूप शुद्ध श्रद्धा ज्ञासन रमणता एवंक रत्नत्रयीरू प आत्मानुंजे शुजपरिणाम तेने निच्चयउसमम्मत्तके० निश्चय सम्यक्त्व कहिये, एटले आत्मानेज निश्चय सम्यक्त्व कहियें, केमके आत्मा ने आत्माना गुण ते कांईजूदानथी परिणामे अनन्यछे एकछे गुण गुणी जावें अजेदेज रह्याछे केमके अजेदपरिणामे परिणम्योजे आत्मा ते तद्गुणरूपज कहेवाय. यदुक्तं योगशास्त्रेः— आत्मेवदर्शनज्ञान चारित्राण्यथवायते ॥ यत्तदात्मैवस्वगुणैः शरीरमधितिष्ठति॥१॥

प्रायें अप्रमत्तसाधुने निश्चयनय सम्यक्त्व पूर्णकहेवायछे केमके जेवुं जाण्युं तेवोज त्यागजावछे अने श्रद्धापण तदनुरूपछे माटे स्वरूपोपयोगी जीवने आत्मा तेहिज ज्ञान दर्शन चारित्रछे. कारणके आत्मा रत्नत्रयात्मक अजेदजावें शरीरमां रह्योछे, माटे रत्नत्रयीने शुद्धोपयोगे वर्त्तताजीवने निश्चय सम्यक्त्व कहियें.

तथा इयरके० इतर ते बीजुं व्यवहारसम्यक्त्वछे. ते हे प्रजु तहारा सिद्धांतने विषे सम्यक्त्वना हेतुजे मिथ्यात्वीनु संस्तव परिचय प्रमुख जे अतिचारादिक दोषछे तेना त्यागथी थाय तथा देव गुरु जक्ति बहुमान योगे शासनोन्नति हेउहिं के० हेतुयें थाय. यदुक्तं गुणस्थानक विचारग्रंथेः— देवेगुरुचसंघेच सद्भक्तिशासनोन्नति॥अव्रतो पिकरोत्येव स्थितिस्तूर्येगुणालये ॥ १ ॥ अर्थः— देव गुरु तथा श्रीसंघ तेनी बहुमान सहित जक्तिकरे शासनोन्नतिकरे अविरति गुणगणे रह्योथको पण आगमोक्त विधिमार्गे निरतिचार सम्यक्त्वप्रवृत्ति सहितहोयतेने व्यवहार सम्यक्त्व कहियें ॥ ११ ॥

हवे त्रीजा बे प्रकारें सम्यक्त्व कहेछे तेमां एक निसर्गें सम्यक्त्व प्राप्ति अने बीजी उपदेशजन्य सम्यक्त्व प्राप्ति. इहां शिष्यपूछेछेके निसग्गके० सहेजे सम्यक्त्वनी प्राप्ति केवीरीतेंथाय? तेवारे गुरु दृष्टांत गर्जित सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय कहेछेः—

जल वच्च मग्ग कुद्दव, जराइ नाएण जेणपन्नत्तं॥ नि
स्सग्गुवएसजवं ॥ समत्तं तस्स तुप्न नमो ॥ १२ ॥

अर्थः— ए गाथामां पांच दृष्टांत कह्याछे, तेमां जलनो तथा वस्त्रनो अने कोद्रवनो ए त्रणदृष्टांत आगल पुंज त्रय जावनावसरे कहीबतावसे. अने मार्गनो तथा ज्वरनो ए बे प्रस्तुतछे ते कहेछेः—जेमकोईक पंथी मार्गथी ज्रष्टथयो पछी बीजाकोईना उपदेश पाम्याविनाज जमतो जमतो पोतानीमेले सहेजे मार्गेचढे, अने कोईक पंथ ज्रष्ट थयलो पंथी तथाविध पापना उदयथी कोई सज्जननो योग न मलवाथी मार्ग पामेजनही. तिहांनुंतिहांजरहे अनेत्रीजोपुरुष बीजानेपूछीमार्गेपामे.

तेमज वली ज्वरनो दृष्टांत कहेछेः-- जेम कोईकने तापज्वर आव्यो ते कोईने औषध कर्याविनाज पोतानी मेले जतोरहे, अने कोईकने तो औषध चूर्ण धागादि (दोरादिक) प्रयोगकरवाथी ज्वरजायछे, तथा कोईकनेतो असाध्यज्वर कोईरीतें जायजनही एरीतें ए बे दृष्टांत सम्यक्त्व प्राप्तिविषे जोडवा ते आवीरीतेः--

कोईक शुक्लपक्षी कालादिक कारण परिपाकवंत चरमावर्त्ति चरमकरणी एवो नव्य जीव ते सहेजे आपें आप विचारतेथके सम्यक्त्वपामे ते निसर्ग सम्यक्त्व कहियें; तथा कोईक जीव पूर्वोक्त कालादिक योग्यतावंत होय पण सद्गुरुने योगे उपदेश सांजली अनादिनी नूलमटाडी देव गुरु धर्म सद्दहणारूप सम्यक्त्वपामे तेने उपदेश सम्यक्त्व कहिये. एरीते नाएणके० ए न्यायें (दृष्टांत) द्वारायें निसर्गोद्भव सम्यक्त्व तथा उपदेशोद्भव सम्यक्त्व ते हे प्रज्नु तुमे कह्युं परूप्युं तेमाटे परमोपकारी एहवा तुजने माहरो नमस्कार थाओ ॥ १२ ॥ एम बेप्रकारनुं सम्यक्त्व त्रण रीते कह्युं.

हवे त्रणप्रकारें सम्यक्त्व कहेछेः--

तिविहं कारग रोअग, दीवग नेएहिं तुह मय विऊहिं ॥
खाउवसमोवसमिय, खाइय नेएहिं वा कहियं ॥ १३ ॥

अर्थः-- हेनाथ तुहमय के० तहारा मतना विऊहि के० वेत्ता जे गणधरादिक, तेणे कारक रोचक अने दीपक एम तिविहं के० त्रण नेएहिं के० प्रकारें सम्यक्त्व कह्युंछे, वा के० अथवा क्षायोपशमिक उपशमिक अने क्षायिक एरीतें पण त्रणनेदें सम्यक्त्व कहियंके० कह्युंछे ॥ १३ ॥

हवे कारकादिक सम्यक्त्वना लक्षण कहेछेः--

जं जह नणियं तुमए, तं तह करणं मि कारगो होइ ॥
रोअग सम्मत्तं पुण, रुइमित्त करंतु तुह धम्मे ॥ १४ ॥

अर्थः-- हेनाथ जे जेम यथार्थनावें विधिमार्ग तुमे नणियं के० प्रकाश्यो ते तेमज आज्ञाने अनतिक्रमतोथको एटले तुमारी आज्ञासहित आगमोक्त शैलीपूर्वक यथाशक्तियें दान पूजा व्रत नियमादिक करे तेने कारक सम्यक्त्व कहियें; तथा पुनः के० वली बीजुं रोचक सम्यक्त्व, ते तुहधम्मेके० तहारा धर्मनेविषे रुईमित्तकरतुंके० रुचिमात्रकरे, श्रीजिनोक्त धर्मकरवानी इच्छारहे शुद्धश्रद्धाराखे कोईने धर्म प्रवृत्ति करतोदेखीने रूडुंमाने परंतु पोते नारीकर्मी माटे क्रियानुष्टानादिक करी शके नही तेने रोचक सम्यक्त्व कहियें ॥ १४ ॥

हवे दीपक सम्यक्त्व कहेछेः—

सयमिह मिच्छदिट्ठी, धम्मकहाईहिं दीवइ परस्स ॥
दीवग सम्मत्तमिणं, जणंति तुह संमय मईणो ॥ १५ ॥

अर्थः— सयमिह के० स्वयं पोतेतो मिथ्यादृष्टी अजव्य डुर्जव्य होय, पण अं गारमर्दकाचार्यनी परे धम्मकहाईहिंके० धर्मकथादिकेकरी आदिशब्दथी सामायिक एना अनुष्ठानना अतिशयेंकरीने एटले दंजरचना विशेषेकरी, पर जे बीजा जव्य जड्क जीवोहोय तेने धर्मकरी दीपावे, एटले आगला जीवोना घटमां प्रकाशक रावे, परंतु पोताने अंतरंगपरिणामें श्रद्धानहोय एहवाने हे प्रजु तहारा समयजे सिद्धांत तेना जाणपुरुषो दीपक सम्यक्त्व कहेछे.

इहां शिष्यें प्रश्नकर्युंजे पोते मिथ्यात्वी मिथ्यात्वे वासित अंतःकरण वालाने सम्यक्त्वी केमकहोछो? तेवारे गुरुकहेछे हे शिष्य, जो मिथ्यापरिणामीछे तोपण आ गला प्राणीउने धर्म पमामवानो हेतुथायछे, अथवा शासनोन्नतिकरेछे, माटे कारणे कार्यनो उपचारकरी सम्यक्त्व कहियें, सम्यक्त्वनो हेतुछे माटे सम्यक्त्व कहिये, यडु क्तं सिद्धांतेः—विहियाणुट्ठाणं पुण, कारग मिहरोयगं तु सद्दहणं॥मिच्छदिट्ठीदीवइ, जंत त्तेदीवगं तंतु ॥१॥ अर्थः—विहियाणुट्ठाण के० विहित एटले नीपजाव्युंछे कर्युंछे आग मानुसारें धर्मानुष्ठानजेणे ते कारक सम्यक्त्व कहियें; अने रोयगं के० रोचक सम्यक्त्व ते शुद्धसद्दहणारूप रुचिथाय तेने कहिये, वली मिच्छदिट्ठी के० पोतें मिथ्यादृष्टीथको परने तत्वदीपावे, परने सम्यक्त्व प्रकाशकरे तेने दीपक सम्यक्त्व उपचारें कहिये॥१५

हवे बीजीरीतें प्रकारांतरें त्रणजेद सम्यक्त्वना कहेछेः—

अपुव्वकय तिपुंजो, मिच्छ मुइन्नं खवित्तु अणुइन्नं ॥
उवसामिय अनियट्टि, करणाउ परं खउवसमी ॥ १६ ॥

अर्थः— इहां त्रण सम्यक्त्वनी विगत ए प्रकरणनेविषे प्रकरणकारना आशयथी अवचूरिकारनो आशय जिन्नपमेछे. पण ठीक शब्दार्थ मलतोनथी. माटे आवश्यक विशेषावश्यक अर्थदीपिका सुदर्शनाचरित्र कल्पजाष्य प्रमुखग्रंथोने सम्मत प्रकर णकारनो आशयछे ते विगत लखियेछेः—प्रकरणकारें सिद्धांत तथा कर्मग्रंथिक ए बेहुना अजिप्राय ग्रहणकरी प्रकरण रचनाकरीछे. तेमां सिद्धांतकारनो ए आशय छे जे अनादि मिथ्यादृष्टीने कोई तथाविध सामग्रीनो सद्भाव एटले प्राप्तिथई य थाप्रवृत्तिप्रमुख त्रणकरण करतां अपूर्वकरणना अध्यवसायथी ग्रंथी जेदी शेषमि

थ्यात्व स्थितिना त्रण पुंज करी प्रथम शुद्ध पुद्गलनेवेदे ए त्रणपुंजनी स्थापना करि येछैयेः-(○ शुद्धपुंज ❀ मिश्रपुंज ● अशुद्धपुंज) ते कारणथी उपशम सम्यक्त्वपा म्याविनाज प्रथम क्षयोपशम सम्यक्त्वपामे, तथा वली कोईक नव्यजीव यथाप्रवृत्त्यादिक करणत्रय अनुक्रमें पूर्वोक्तविधियेंकरी अंतरकरणने प्रथम समये उपशम सम्यक्त्वपामे पण उपशमें रह्यो पुंजत्रण करेजनही; अंतरमुहूर्त काल प्रमाण शुद्धनिर्मल अपौद्गलिक उपशमनाववेदी तिहांथी चलायमान थयोथको अवश्य मिथ्यात्वेंजाय; अपरपुंजतो छेनही माटे इल्लिकाने दृष्टांतेफरीपाछो संगणजे मिथ्यात्व स्थानकथी आव्यो तेफरी मिथ्यात्वेंज जाय, जेम इल्लिजे कोईजातनी लट इथल एककाष्टादिक पदार्थथी आगल जावाने चाहनाकरे त्यारे आगलागात्रनुं विक्षेप के० विस्तारवुंकरे, आगला शरीरनाजागने चारेतरफविस्तारनां स्थानक अणपामता पाछीपूर्वस्थानके जिहांथी सरीर उपाडयुंहतुं तिहांजआवे. यदुक्तं कल्पजाष्येः— आलंबणमलहंति जहसंठाणंनमुंचएइलिया ॥ एवंअकयतिपुंजो मिछंचिय उवसमीएइ ॥ १ ॥ ए गाथानो अर्थ सुगम प्रथम लखाइजगयोछे.

एम स्थानांतरगमनना जाव माटे उपशम सम्यक्त्वी मिथ्यात्वेंज जाय ए सिद्धांतिकनो अभिप्रायछे, तथा कर्मग्रंथ वाला एममानेछे के जेकोई अनादि मिथ्यादृष्टी संसारीजीव जेवारें चरमावर्त तथा चरमकरण करवाने अवसरें पहेला सम्यक्त्व प्राप्तिकालेज यथा प्रवृत्त्यादि करणत्रय करवा पूर्वकज अंतरकरणकरे, तिहां उपशम सम्यक्त्वपामी अवश्य त्रणपुंज करे, एटले यथाप्रवृत्तिकरणे ग्रंथीदेशेंआवे, तथा अपूर्वकरणे ग्रंथीनेदकरे, तथा अनिवृत्तिकरणे मिथ्यात्वस्थितिना बे जागकरे, एकअंतरमुहूर्तवेद्य न्हानीस्थितिकरे, बीजी देसूणी कोमाकोडी प्रमाण मह्होटी स्थितिकरे एवी बे स्थितिकरे.

एरीतें बे स्थितिकरी तेमांथी न्हानीस्थिति खेंचीलेई नेवचमां अंतरकरे एटले बे स्थितिनीवचमां खाली जायगारहे एमकरे, पछी न्हानीस्थितिने अनिवृत्तिकरणना अध्यवसायेंकरी खपावीने, पछी अंतरकरण जे बे स्थितीनावचें खाली जायगारहीछे, तेमां प्रवेशकरे, त्यां अंतरकरणमां प्रवेशकरवाने पहेले समयेंज उपशम सम्यक्त्व पामे, ते अंतरकरणओलंघतां अंतर मुहूर्त प्रमाण कालजाय तेनेज उपशम सम्यक्त्व कहियें.

हवे अंतरकरणमां वर्त्ततो औषधसरिखुं जे उपशम सम्यक्त्व, ते सम्यक्त्वेंकरीने कोदरावा धान अथवा मलीनजल अथवा मलीनवस्त्र ए त्रणेना सरिखुंजे मिथ्यात्व मोहनीयकर्म तेने सोधीने त्रणेजागे वेंचीनाखे, तेमां पहेलो जागतो शुद्ध

निर्विष तथा स्वछ निर्मल जाणवो अने बीजोभाग अर्द्धशुद्ध तथा थोडोक गदलुं अने थोडोमलीन जाणवो वली त्रीजो भाग संपूर्ण अशुद्ध यथास्थित तथा कलुष अतिमोहोलो तथा मलीन गलीच जाणवो. हवे ए त्रणे वस्तुना दृष्टांते विवरीने विषदरीतें देखाडेछेः—

जिम मीणसहीत कोद्रव धानने छाशजलादिक औषधनायोगे एकभाग मीणरहीतकर्यो, बीजोभाग अर्द्धशुद्ध कर्यो, अने त्रीजोभाग जेमहतो तेमनोतेमरह्यो, ते अशुद्धछे; तथा जेम कोईक वस्त्रमलीनहतुं ते क्षारादिक औषधनायोगे अतिस्वछ निर्मल थाय, बीजुं थोडाऔषधानो प्रयत्नमाटे थोडुंनिर्मलथाय अने त्रीजुं मलीनज रहे, तथामलीन जलजेमनिर्मल फलादिकनायोगे अतीस्वछथाय, बीजुं थोडुंनिर्मल थाय त्रीजुं मलीनज रहे, एम त्रण दृष्टांतें अंतरकरण गत उपशमसम्यक्त्वरूप औषधनायोगे करी मिथ्यात्वमोहनीयना दलियां मिथ्यात्वरूप मीणमां भर्यांहतां तेनो एक भागतो शुद्धकर्यो मीणरहीत कर्यो, अने बीजोभाग अर्द्धमीणरहीत थयो, एटलामां अंतरमुहूर्तना कालनोसमाप्ति थई तेथीते बीजो भागतो अर्द्धशुद्धथयो अने त्रीजोभाग शुद्धकरवानेतो पोची शक्योज नही तेथी ते त्रीजो भागतो संपूर्ण मिथ्यात्वरूप मीणसहित विषथी भरेलोज रहिगयो.

हवे ते त्रणपुंजनां त्रण नामथयां, तेमां पहेलो शुद्धपुंजते दर्शनमोहनीयकहियें, हवे ते जीव अंतरकरण गत उपशम काल, पूरोथयेथके एटले जेटलोवखत अंतरकरणनो तेटलोज वखत उपशम सम्यक्त्वनोछे ते उपशम सम्यक्त्वनोकाल अंतरमुहूर्त्तप्रमाण पूरोथयेथके जो परिणामनी विशुद्धीरहे तो शुद्धपुंजनो उदयथाय, तेनुंनाम क्षयोपशम सम्यक्त्व कहियें, एटले मिथ्यात्वरूप मीणामां भरेलां दलियांजे शुद्धकर्यां तेहनो उदय क्षयोपशम सम्यक्त्वकहियें.

इहां शिष्य प्रश्नकरेछे के जो निर्विषदलियांकर्यां तोपण जातेंते दलियांपोते मिथ्यात्वनांछे, निर्विषथीतो रस रूप गंधादिक गयुं पण गुणने आवरणकरनारां दलियांतो तेमनां तेमजछे, तो सम्यक्त्वश्रद्धा भासना केमथाय? तेवारें गुरुकहेछे के जेमकोई अभ्रक अथवा अपर पाषाणादिक ते जातेंमलीनहोय तेनेकोई औषधादिक योगेंकरी ते पाषाणादिकमांथी कालासरूप कलुषता काढीनाखे तेवारे ते दल निर्मलथाय, पछीतेने आंतरेजे वस्तुरहीहोय ते सर्वदीठामांआवे, पण छानीरहेनही तेमज इहां दर्शनमोहनीयकर्मना दलमध्ये अशुद्धपरिणतिरूप मिथ्यात्व विषेंकरी मलीनथयेलुं अत्यंतकालासपणुं भरेलुंहतुं ते उपशम सम्यक्त्वरूप औषधनी

महीमाथी दूरथाय, पछी निर्विषदलियांरह्यां ते स्वछ अभ्रपटल सरिखांछे ते निर्म लदलियां कांईश्रद्धा जासनमां विपरिणाम करेनही, तेथी जो जातें मिथ्यात्वदलि यांछे तोपण निर्विषछे (निर्मलछे) तेथी तेने क्षयोपशम सम्यक्त्व कहियें.

यडुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौः--तद्यथेसुप्रदीपस्य स्वछाभ्रपटलेगृहं ॥ नकरो त्यावृति काचि छेवमेतद्भवेरपि ॥१॥ एकपुंजी द्विपुंजी च त्रीपुंजी वानतुक्रमात्; एने पश्चानुपू र्वैलेवुं एटले त्रीपुंजी द्विपुंजी एकपुंजी. दर्शन्युनयवांश्चैव मिथ्यादृष्टिश्चकीर्त्तितः ॥ २ ॥ इहां लोकनेविषे जेम अभ्रखना पडांतरे रहेलुंदीपक सर्वस्थानके उद्योतकरे, पण तिहां अभ्रक जोआडोछे तोपण कांई न्यून प्रकाश दीपकनुं करीशकेनही, ते वीजरीते सोधेला मिथ्यात्वदल तेपण कांई न्यून श्रद्धाकरेनही.

तिहां त्रिपुंजी ते सम्यक्दर्शनी द्विपुंजी ते मिश्रदर्शनी अने एक पुंजी मिथ्या दृष्टिहोय, तथा उपशम सम्यक्त्वथी आगलें जो कांईक उज्वल कांईकमलीन एह वा मिश्रपरिणामथाय तो मिश्रमोहनीयनो उदयथाय, एटले मिश्रपुंजनो उदय आवे अनेजो अनंतानुबंधीना उदय बलथकी अतिमलिन परिणामथया तो मि थ्यात्व मोहनीयनो उदयथाय एटले अशुद्धपुंजनो उदयआवे.

एरीते संसारमां केटलाक त्रीपुंजी केटलाक द्विपुंजी केटलाक एकपुंजी, तेमां क्षयोपशमी त्रिपुंजीहोय तथा मिथ्यात्व क्षय करवाने सम्यक्त्व मोहनीयनी उज्व लताकरे तेवारें द्विपुंजीहोय, अथवा अपुंजी एटले पुंजरहित पण क्षायक सम्य क्त्वीहोय तथा जिवारे मिश्रउवेलन करे अथवा क्षपवे तेवारें एकपुंजीज होय इहां पुंजत्रयनो संक्रम कल्पचाष्ये एमकह्योछे प्रवर्द्धमान परिणामी जे सम्यक्त्वीहोय ते मिथ्यात्व दलिक पुजलने आकर्षीने सम्यक्त्वपुंजमां अथवा मिश्रपुंजमां संक्र मावे तथा मिश्रपुजलने सम्यक्त्वी सम्यक्त्वमां संक्रमावे.

तथा मिथ्यादृष्टी मिश्रपुजलने मिथ्यात्व पुंजमांनाखे अने सम्यक्त्व पुजल मि थ्यात्वपुंजमां संक्रमावे, पण मिश्रपुंजमां न नाखे, तथाचोक्तंः--मिछत्तंमिअखीणे ति पुंजीसम्मदीछिणोनियमा ॥ खीणंमिउमिछत्तं डुएगपुंजीवखवगोवा ॥ १ ॥ एरीतें कर्मग्रंथिकमतें प्रथम उपशम सम्यक्त्वजपामे अने ते उपशमि नीयमा त्रणपुंजकरे; उक्तंच कर्मग्रंथेः-कम्मगंथेसुधुवं पढमोवसमी करेइ पुंज तियं ॥ तवडिउपुणगछइ स म्मेमीसंमिमिछेवा॥१॥ अर्थ सुगमछे. एरीतें सिद्धांतिकमार्गे तथा कर्मग्रंथिकमार्गे भिन्न भिन्न आशय छे ते प्रकरणकरनारे तो बेहुना आशयलेई प्रकरणनी रचना करीछे.

तिहां सिद्धांतकारना आशयें कोई मिथ्यादृष्टी यथाप्रवर्त्त्यादि करणत्रयें करी

अंतरकरणकरे तिहां अंतरकरणमां उपशम सम्यक्त्वपामे पण पुंजत्रय करेनही अं तरमुहूर्त्त उपशम सम्यक्त्ववेदीने पछी मिथ्यात्वेंजाय ए आशय प्रकरणकारें सानमी गाथामां अनिवृत्तिकरणे अंतर करणकरी सामान्ये मात्र उपशम सम्यक्त्वपामे पण पुंजत्रण न कर्यां एमकह्युंछे, वली कोईजीव यथाप्रवृत्तिकरण करी पछी अपूर्वकरणे ग्रंथीनेदी पुंजत्रयकरी अनिवृत्तिकरणे क्षयोपशम सम्यक्त्वपामे ए आशय अपुव्वक यत्तिपुंजो एम सोलमी गाथामां कह्योछे, एटले अनादि मिथ्यादृष्टी प्रथम क्षयोप शम सम्यक्त्वजपामे ए सिद्धांतसैलीछे.

तथा कर्मग्रंथानिप्रायें तो अनादि मिथ्यादृष्टी जीव पहेलां करणत्रयपूर्वक अं तरकरणे उपशम सम्यक्त्वीथईने त्रणपुंजअवश्यकरे. पछी जे पुंजनो उदयथाय ति हांजाय एटले कोई शुद्धपुंजेजायतो क्षयोपशम सम्यक्त्वीथाय तथा जो मिश्रपुंज नो उदय थायतो मिश्रगुणगणेजाय अने अशुद्धपुंजेगयो तो मिथ्यात्वीथाय ए अनिप्राय कर्मग्रंथसेलीनो छे, ते ग्रंथकारें सत्तरमीगाथायें अकयतिपुंजोउस्सर इत्या दि आशयकह्यो, एरीते सिद्धांतिक तथा कर्मग्रंथिक बेहुएमली उपशम सम्यक्त्व पाम वाना बे मार्गकह्या तथा क्षयोपशम सम्यक्त्वपामवाना पण बे मार्गकह्या, एटलीवा त प्रसंगथी कही हवे मूलगाथानो शब्दार्थ लिखियेछे.

अपुव्वकयत्तिपुंजो इत्यादिक अपूर्वकरणे कर्याछे त्रणपुंजजेणे मिच्छजे मिथ्यात्व तेनादल उइस्स के० उदयआव्या तेने क्षेपवीने क्षयकरीने अने अणुइन्नं के० उद य न आव्या जे मिथ्यात्वनादल तेने उपशमावीने अनियट्टीकरणाउ परंखउवसमी के० अनिवृत्तिकरणथी आगल क्षयोपशम सम्यक्त्व पामे ॥ १६ ॥

हवे कर्मग्रंथनी सेलीयें उपशम सम्यक्त्व प्राप्तिनो उपाय कहेछेः—

अकय ति पुंजो ऊसर, दव इलिय दह्व रुक्ख नाएण ॥
अंतरकरणुवसमिउ, उवसमियोवाससेणि गउ ॥ १७ ॥

अर्थः— अकयतिपुंजोत्ति के० जेणे त्रणपुंज पूर्वेकर्यानथी एटले पुंजकर्याथी आगल जेम वनमां दावानल बलतो ऊसरके० उखरखेत्र एटले जिहां खारीजमी न रणरूपहोय अथवा केवल वेलुएटले रेतिनीनूमिहोय सुकी नदीप्रमुखनी. तेने ऊखरनूमिकहियें, तथा जेनूमिउपर पूर्वेंदवलागी गयोहोय अने घासलाकडी तथा रुख्ख के० जाडप्रमुख बली साफथई गयाहोय ते दवदग्ध नूमिकहिये एटले एक ऊ खरनूमि अने बीजी दवदग्धनूमि ए बे ठेकाणा जो बलती इलियके० अग्नीपामें

तो पोतानीमेले उलवाइजाय नाएणके० एन्यायें मिथ्यात्व वेदनरूप जे दावानल ते अंतरकरणरूप ऊखरखेत्रपामीने सहेजे पोतानीमेले उवसमिउके० उपशमि जाय उलवाईजाय तेथी जीव उवसमिउके० उपसम्यक्त्व पामे.

केमके पूर्वे अनिवृत्तिकरणना जोरथी जे जे मिथ्यात्वना दलिया उदयआ व्याते क्षयकीधा अने जे उदयनथी आव्या ते उपशमाव्या, एटले आवता रोकी राख्यां तथा विष्कंभित, उदयकर्या अने वली दूरेंराख्यां एम विचमां अंतरमुहूर्त गम्य निर्मल, प्रदेशोदीरणादि करण ने अयोग्य एहवुं अंतरकरणकीधुं.

इहां शिष्य प्रश्नकरेछे के पूर्वे क्षयोपशम सम्यक्त्व पामवाने अवसरें एम कह्युं हतुं जे उदयआव्या मिथ्यात्वदल ते क्षयकीधां अने उदय न आव्या ते उपशमा व्या ए लक्षणकह्युं हतुं अने वली उपशम सम्यक्त्व काले पण एमजकहोछो तो क्षयोपशम तथा उपशममां कांई, फेरपडयोनही तेमछतां गणतिमां जूदाकेम कहोछो?

हवे गुरु उत्तर कहेछे के क्षयोपशममां तो शुद्धदलियानो उदयछे तेमां कोई मिथ्यात्व पुंजमांथी दलियुंजलीने उदय आवे ते प्रदेशोदयछे इतितत्वं.

हवे ते अनिवृत्तिकरणना बलथी मिथ्यात्वनी एक न्हानी अने एक महोटी एवी बे स्थितिकरी तेमां पेली लघुस्थितिने क्षपवी अने बीजी महोटी स्थितिने दूरथंभावी विचमां अंतरकर्यो, तेमां प्रवेशकरे तेने पहेलेसमयें उपशम सम्यक्त्व होय, पछीते उपशम सम्यक्त्वना जोरथी अंतरमुहूर्त्तमां शेष विष्कंभितउदय मि थ्यात्व स्थिति, तेना शुद्ध अर्द्धशुद्ध अने अशुद्ध एवा त्रणपुंजकरे एटले उपशम सम्यक्त्वनो कालपूरोथयो कहेवाय पछीते जीवना जहेवा परिणामरहे तेवा पुंज नो उदयथाय ए उपशम सम्यक्त्व एकजवार होय अने ए सहज मोक्षनुंबीजछे.

इहां प्रथम सम्यक्त्व पामतां कोईक जीवतो एकलुं सम्यक्त्वज पामीने रहि जाय अने कोईक जीव सम्यक्त्वसाथें देशविरतिपणुं पण पामे अथवा सर्वविरति पणुंपण साथेंज पामे ; यदुक्तं वृहत्शतकचूर्णौः— उवसमसम्मद्दिठी अंतरकरणे ठिओ कोई देस विरयंपि लभेइ कोई पमत्तापमत्तभावंपि सासायणो पुण न किं पि लहेइ इति एनोअर्थ सुगमछे.

इहां उपशमकाल पूर्णथयाथी परिणामनी निर्मलतायें शुद्धपुंजनो उदयआ वे तेथी क्षयोपशम सम्यक्त्वथाय ते वली कालांतरें संका कंखा कुतीर्थिसंसर्ग कु शास्त्र श्रवणादिक अतिचारनी प्रबलताथी मिथ्यात्वदलनी उदीरणाथी मिथ्या त्वे मिश्रितथाय तो तत्काल मिथ्यात्वगुणगणेजाय मिथ्यात्वीथाय ते वली सं

ख्यात् असंख्यात कालांतरे शुन्ननिमित्ते करी, प्रपतित सम्यक्त्वीजीव फरी सम्यक्त्व पामे तेवारेंपण अपूर्वकरणे त्रणपुंजकरी अनिवृत्तिकरणे शुद्धपुंजोदय क्षयोपशम सम्यक्त्वपामे. इहां शिष्यपुछेछे जे पहेला सम्यक्त्व लान्नकालें तो किवारे प्रथम न पाम्या तेमाटे अपूर्वकरणकह्यो पण हमणा तो जे पूर्वेपाम्युं हतुं तेनोज फरीलाज थयो तो तेने शीरीतें अपूर्व कहिये ?

हवे गुरुकहेछे अपूर्वसरिखुं अपूर्व एटले जे वस्तुने थोमाज वखतपामियें पण घणावखत नपामियें तेने अपूर्वजकहियें केमके संसारसंबंधी अन्यपर्याय प्राप्तिनी संख्याथ्यागल ए सीगणतिमांछे माटे एने अपूर्वज कहिये एरीतें वृद्धवचनछे सिद्धांतिक नो ए अनिप्रायछे.

तथा फरी सम्यक्त्वनी प्राप्तिनीपरें देशविरति अथवा सर्वविरति नी प्राप्तिना वखतेपण यथाप्रवृत्ति तथा अपूर्वकरण ए बन्नेकरे पण अनिवृत्तिकरण न करे मात्र अपूर्वकाल समाप्ति समयेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुंपामे जेवारें देशविरति अथवा सर्व विरतिपणुंपामे तेवारे यावत् अंतरमूहुर्त्त लगें तो अवश्य ते जीवना प्रवर्द्धमान परिणामहोय अने अंतमुहूर्त्त वीत्यापछी कोईना प्रवर्द्धमान परिणामथाय अथवा कोईना हीन हीन थाय अने कोई स्वन्नावस्थजरहे.

तथावली जे उपयोगविना सहेजे परिणामनी मलिनताये देशविरतिथी पड्यो अथवा सर्वविरतिथी पड्यो ते फरी परिणामनी निर्मलताने योगें करणकखाविनाज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामे, वलीजे उपयोगेपड्या एटले उपयोगीतोहोय पण पोताना कुमत कदाग्रहादिक दोषेकरी विपर्याशथई कुविकल्प पूर्वक पड्याथका मिथ्यात्वेंगया ते जघन्यथी अंतरमुहूर्त तथा उत्कृष्टो प्रनूत् घणोकालगये थके फरी देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामें ते पूर्वोक्त करण कखाथीज पामे एम कम्मपयमीग्रंथे टीकामां कह्युंछे तथा सिद्धांतिक ने मतें तो विराधित सम्यक्त्वी गृहित सम्यक्त्वथकोपण कदाचकोईक छठीनरकपृथ्वी सुधीपणजाय खरो, अने कर्मग्रंथिक मतेंतो वैमानिक विना अन्यस्थानके न उपजे तेमाटे गृहीत सम्यक्त्ववंत छे एहवुं प्रवचन सारोद्धार वृत्तिमांकह्युंछे.

तथा आवाप्त सम्यक्त्वगुणथी पड्योथको कर्मग्रंथिकना मतेतो उत्कृष्टस्थितिक कर्मप्रकृतिबांधे अने सिद्धांतने अनिप्रायेंतो निन्न ग्रंथिक उत्कृष्टस्थितें कर्मप्रकृति बांधेजनही ए सर्व प्रसंगेंकह्युंछे एटलें अंतरकरणगत उपशम सम्यक्त्वकह्युं.

तथा उवसमियो वा स सेणिगउ के० अथवा उपशम सम्यक्त्व स्वश्रेणीयेहोय

एटले स्वश्रेणिते उपशमश्रेणि चढतांपण होय, यडुक्तं:—उवसमसेढिगयस्सय, होइ उवस्सामिउंउसम्मत्तं, जोवा अकय तिपुंजो, अखविद्दमिछो लहइसम्मं ॥ १ ॥ ए गाथानो अर्थ सुगमछे.

हवे स्वश्रेणिजे उपशमश्रेणी तेनी विधि अनुक्रमे लिखेछे; तिहां प्रथम उपशम श्रेणि चढवायोग्यना लक्षण गुणस्थान क्रमारोह ग्रंथथीलिखियें छैयेः—पूर्वज्ञ शुद्धिमान् युक्तो, ह्याद्यैसंहननैस्त्रिभिः संध्यायन्नाद्यशुक्लांशं स्वाश्रेणीश्रयतेक्रमात् ॥ १ ॥

अर्थः— पूर्वगत श्रुतनो धरनारहोय शुद्धिमान् के० नित्य अप्रमत्त निरतिचारवंत चारित्रियो होय, वली केटलाकने मतेतो अविरत्यादिक चारगुणठाणावाला पण उपशमश्रेणीना प्रारंभक होय, तथा आद्यसंहनन के० वज्रऋषभनाराच ऋषभनाराच नाराच ए आद्यना त्रण संघयणमांथी अन्यतर संघयणी अने ध्यायनाद्यशुक्लांशं के० शुक्लध्याननो प्रथम पाद ध्यातोथको एवोते उपशमश्रेणी मांडवायोग्य तिहां अप्रमत्त गुणठाणे अनंतानुबंधी कषायनी चोकडी तथा मिथ्यात्व मिश्र अने सम्यक्त्व ए त्रणमोहनी मली साते प्रकृति उपशमावीने संज्वलननो लोभवर्जित वीस मोहनीय कर्मनीप्रकृति ते अपूर्वकरण गुणठाणे तथा अनिवृत्तिकरण गुणठाणे उपशमावीने पछी सूक्ष्मसंपराय गुणठाणेलोभमोहनीय प्रकृतिने अणु अणु करी पछी उपशांत मोह गुणठाणे तेहिज अणुरूप लोभप्रकृतिने उपशमावे एम सर्वोपशमकरे. यडुक्तं गुणस्थान क्रमारोहग्रंथेः— अपूर्वादि६एकैक गुणेषु समकक्रमात् करोतिविंशतेशांति लोभाणुत्वंचतत्समं ॥ १ ॥ अर्थ सुगमछे.

तथा इहां उपशमश्रेणीकारक बेप्रकारेहोय एक स्वल्पायु बीजो दीर्घायु तिहां अल्पायुवंत तो श्रेणीसमाप्ति अवसरे मरणपाम्यो थको अहमेंद्रपणे उपजे सरवार्थसिद्धि पर्यंत देवताथाय. यडुक्तः— श्रेण्यारूढकृतेकाले हमेंद्र्ष्वेवगछति पुष्टायुस्तुपशांतांत नयेचारित्रमोहनं ॥ १ ॥ अर्थः— जे स्वल्पायुहोय अने प्रथम संघयणीहोय ते सरवार्थसिद्धिपर्यंत जाय, अहमेंद्रते जेनाउपर कोइनुं हुकमनही एहवा कल्पातीत देवतामां उपजे अने बीजा तथा त्रीजा संघयणवालाते अच्युतांत बारमां देवलोकपर्यंत उपजे पण आगल न जाय.

तथा पुष्टायु सम्यक्त्वी तो उपशांतमोह गुणठाणापर्यंत मोहनीयकर्मनुं पूर्ण उपशमकरे तेवारे उपशम सम्यक्त्व होय, यडुक्तं:—शांतिदृग्वृत्तमोहत्वा दत्रेोपकर्म्मिकानिधौ स्यातांसम्यक्त्वचारित्रे भावश्चोपशमात्मकः ॥ १ ॥ अर्थः—इहां उपशांत मोह गुणस्थानकें दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनोय उपशमावशरें सम्यक्त्व चारि

अते उपशम नावमांहोय तथा नावपण उपशमहोय तथा जेने तद्भवे मोक्षजवुं होय तेने क्षायिक सम्यक्त्व पणहोय, तेने उपशांतमोह गुणठाणे पांचेनाव होय पणतेजुदा जाणवा पण इहांतो केवल उपशमनीज विवक्षाछे तथा इहां उपशां तमोह गुणठाणे चढयो ते अवश्यपडेज. यडुक्तंः—वृत्तमोहोदयंप्राप्यो पशमीच्यवतेत तः ॥ अधकृतमलंतोयं पुनर्मालिन्यमस्नुते ॥ १ ॥ अर्थः— उपशमी चारित्रमोह नीयनो उदयपामीने उपशांतमोह थकी पडे फरी मोहजनित प्रमादनी कलुषता मांपडे ए एमजघटमानछे केमके जेम मोहोलुं गदलुंप्राणी होय तेने कोई औष धनेजोरे मेलहेठोकरियें तेवारें निर्मलजल उपर तरतुंरहे तेपाणी कोई वायुप्रमुख नी प्रेरणानिमित्त पामी फरी गदलुं (मेलुथाय) ए प्रनाव प्रमादोदयनाछे. यडुक्तंः— सुअकेवलीआहारग उजुमइउवसंतगाविउपमाया ॥ हिंमंतिनवमणंतं तयणंतरमेव चउगइया ॥ १ ॥ अर्थः— श्रुतकेवलीजे चउदपूर्वि तथा आहारक शरीरनाधणी वली उजुमईजे मनपर्यवज्ञांनी ऋजुमतीवाला पण विपुलमतीना धणीनही तथा उपशांतमोह इग्यारमां गुणठाणावाला ए सर्वप्रमादना योगथी तेहिजनवने अनं तर अनंतानवभ्रमण चारेगतिमां वासोकरे तेमाटे मोक्षने वांछनार प्राणीयें सर्व था प्रमाद नहीजकरवो.

इहां शिष्यपूछेछे के उपशमीतो अवश्यपडे तो उपशमीने मुक्तिनी योग्यता छे के नथी? गुरुकहेछे सातलव प्रमाण अवशेष आयुवालो उपशमी खंमश्रेणीक थ को अधुरीश्रेणीथकोज पाछोफिरे ते सातमें गुणठाणेआवी फरी क्षपकश्रेणीचढे ते सातलवने निंतर क्षीणमोह बारमें गुणठाणेथई अंतगड केवली थको मोक्षे जाय, इहां सातलवते मुहूर्त्तनो इग्यारमो नागकहियें जेप्राणी तद्भवमोक्षगामी होय ते एकजवार उपशमश्रेणीमांहें उपशमथी उतरी क्षपकश्रेणीयेंचढे अनेजे तद्भव मोक्षगामी नहोय ते एकनवमां बेवारपण कोईकजीव श्रेणीकरे पण तद्भवें सिद्धि वरे नही. यडुक्तं सिद्धांतेः—जीवोडुइक्क जम्मंमि, इक्कसेढी करेइ उवसमगो ॥ खयंपिकज्ञा नोकज्ञा दोवारेउवसामगो ॥ १ ॥ अर्थः— जे जीव एक जन्ममां एकवार उपशमश्रेणी करे ते मोक्षपणपामे अने जे बे वारकरे तेने क्षपकश्रेणीनहोय इहां अचरम शरी री उपशमी पमगाथका प्रथम गुणस्थानकें मिथ्यात्वें जाय यडुक्तं गुणस्थानक मारो हेः—अपूर्वाद्यास्त्रयोप्युर्धः मेकंयांतिसमोद्यता ; चत्वारोपिच्युतायाद्यं सप्तमंचांत्यदेहि नः ॥ १ ॥ अर्थः—उपशमश्रेणीचढतां अपूर्वाद्याके ० अपूर्व अनिवृत्तिने सूक्ष्मसंपराय ए त्रणगुणठाणावाला उंचाचढतां एकेक गुणठाणो चढे एटले अपूर्वगुणथी अनिवृ

त्तिबादरें जाय अने अनिवृत्तिबादरथी सूक्ष्मसंपरायें जाय अने सूक्ष्मसंपरायथी उप शांतमोह गुणठाणे जाय एम एकेकगुणठाणेचढे तथा उपशमथी पडतां अपूर्वादिक चारगुणठाणाथीपडतां मिथ्यात्वेंजाय अथवा अंतदेहीजे चरमशरीरीहोय ते पडतां सातमें गुणठाणे आवी अटके, तेवली सातमागुणठाणाथी फरी क्षपकश्रेणीयेंचढे परंतु जे एकवार उपशमीहोय ते क्षपकश्रेणीकरे पण बेवार उपशमी होयते क्षप कश्रेणी न करे यदुक्तंः—उवसमसेणिचउक्कं जाईजीवस्स आभवं नूणं; तापुणदोणाभ्ने खवगसेणीपुणोएगा ॥ १ ॥ आ संसारमां रहेतोथको जीव मोक्षपामे तिहांसुधी चारवखत उपशमश्रेणीकरे तेवली एकभवमां बेवारकरे अने क्षपकश्रेणीतो आखा संसारमां एकजवारकरे इतिगाथार्थ ॥ एवात प्रसंगेथई. ॥ १७ ॥

हवे क्षपकश्रेणीनुं स्वरूपकहेछे प्रथम क्षायकनी अनुक्रमणिका कहेछेः—

मिछाइखएखइउ सोसत्तगिखीणिठाइबछाऊ ॥
चउतिभवभाविमुक्खो तप्भवसिद्धीविइयरोवा ॥ १८ ॥

अर्थः— पूर्वे सिद्धांताभिप्रायें अपूर्वकरणेकस्याछे त्रणपुंजजेणे ते जीव शुद्ध पुंजोदयें वर्त्ततो यथा कर्मग्रंथाभिप्रायें अंतरकरणगत उपशमबलें कस्याछे त्रणपुंज जेणे ते जीव जेवारे शुद्धविपाकोदय वेदतो एटले क्षायोपशमसम्यक्त्वें वर्त्त तो चोथागुणठाणाथी मांमीने क्षायिकप्रारंभे तिहां प्रथम अनंतानुबंधी चार क षाय तथा मिथ्यात्वमोहनीयपुंज मिश्रमोहनीयपुंज अनेसम्यक्त्वमोहनीयपुंज ए त्रणपुंज अने पूर्वोक्त चार कषाय ए सातेप्रकृतिनो क्षयकरे तेवारें क्षायक सम्य क्त्वीथाय तेना बे भेदछे एक बद्धायुक्षायिक सम्यक्त्वी बीजो अबद्धायुक्षायिक स म्यक्त्वी तिहांजे अबद्धायु एटले जे जीवें आगलाभवनुं आयुबांध्युंनथी एवो क्षा यिक सम्यक्त्वीजीवतो तद्भवेंज मोक्षेंजाय, अने जेणे आवताभवनुं आउखुंबांधीने पछी सातप्रकृति क्षयकरी क्षायक सम्यक्त्व पाम्यो ते जीव त्रणभवें अथवा चार भवें मोक्षजाय तिहांजो देवभवनुं अथवा नरकभवनुं आयु बांध्युंहोय तो त्रीजे भवें मोक्षजाय, तथा असंख्यात वर्षना आउखावंत युगलिया मनुष्य तिर्यंचनुं आयुबांध्युंहोय तो चोथेभवें मोक्षपामे, केमके युगलधर्मि अवश्य देवगतिपामे, ति हांथी चवी मनुष्यथई मोक्षजाय, माटे चारभवकरे. इहां आयुबांध्यापछी कोईजी व क्षायिक सम्यक्त्वपाम्युं तो ते जीव सातप्रकृति क्षयकरीछे एटलेजरहे पण आगल क्षपकश्रेणीचढेनही ते भवेतो क्षायिक मात्रेंजरहे पछी पूर्वोक्तरीतें त्रीजेभ वें अथवा चोथेभवें सिद्धिवरे ए प्रसंगथी वातकही.

हवे क्षपक श्रेणीनुं स्वरूपकहेछेः—अणमिछमिस्ससम्मं अठ नपुंसछिवेयछक्कंच पुमवेयंचखवेई कोहाइएयसंजलणा ॥ १ ॥ गइआणुपुव्विदोदो जाइनामंचजावचउरें दी आयावंउज्जोयं थावरनामंचसुहुमंच ॥ २ ॥ साहारणमपज्जत्तं निद्दानिदंचपय लपयलंच थीणंखवेइताहे ओसंजंचअठन्न ॥ ३ ॥ वी समिकुणनियंठे ॥ दोहेस मएहिं केवलोसेसे पढमेनिद्दंपयलं नामस्स इमाइ पयडीउ ॥ ४ ॥ देवगइ आणुपुव्वी निकविसंघयण पढम वज्जाइ असुयरसंठाण तिछयराहारनामंच ॥ ५ ॥ चरिमेना णावरणं पंचविहंदंसणंचउवियप्प पंचविहमंतरायं खेवित्ताकेवलीहोइ ॥ ६ ॥ इ ति श्रेणीस्वरूपं. ए त्रणप्रकारें सम्यक्त्व कह्युं. ॥ १८ ॥

हवे चार प्रकारे सम्यक्त्व कहेछेः—

चउहाउ सासाणं, गुमाइ वमणुव्व माल पमणुव्व ॥
उवसमिउ उपडंतो, सासाणो मिछ मऽप्पत्तो ॥ १९ ॥

अर्थः-- चउहाउ के० चारप्रकारें सम्यक्त्वहोय ते आवीरीतें के त्रण सम्य क्त्वतो पूर्वेकह्या अने जेवारें तेनीसाथें सासाणं के० सास्वादन नामे सम्यक्त्व नेलीयें तेवारें चारप्रकारें सम्यक्त्वथाय हवेसास्वादननुं स्वरूपकहेछे.

उपशम सम्यक्त्वनो काल अंतरमुहूर्तछे तेमांथी जेवारें कोइकजीवने नवित व्यतानायोगें मिथ्यात्वे अवश्यजावुंछे तेवारें उपशमकालमां उत्कृष्ट ढ आवलिका प्रमाण काल बाकी शेषरह्योहोय अने जघन्यथी एकसमय रह्योहोय अथवा तेनी वचमानो जेजेरहेते मध्यमकाल कहियें एटलो उपशम सम्यक्त्वनो काल शेषरहे तेवारें उपशमावेलाजे अनंतानुबंधी कषायनादल तेनो उदयथाय ते जीवने सम्य क्त्व थकां गोलना वमननीपरें तथा माल पतननीपरें एटले जेम गोलप्रमुख मधु ररसनुं नोजनकरी पाछुं वमनकरे तेवारें नोजन करती वखतेंजे मधुरताना स्वाद नी लेजतहोय तेवी लेजत कांई वमन करती वखतें न होय पण कांईक गल च टयो अनिश्चित स्वादलागे केमके जोपण वमनतोछे तोपण मीठासनुंछे तेम उपश मथी पडयो अने हजी मिथ्यात्वे पहोतुंनथी तेना विचलाकालमां सास्वादन स म्यक्त्व ते गुडवमन सरखोहोय ते वमतां सम्यक्त्वनो अनुनवदेखाडयो अने मा लथकी पडवा शरिखो कालस्थिति देखाडयो, जेम मालथकी पडतां सावधानहोय तोपण बेशुद्धाइथी ते अवश्य नूमी फरसे तेम सम्यक्त्वनी श्रेणीगत सावधान होय तोपण अनंतानुबंधी दलना उदयबलें टकी सकेनही इति तत्वं.

हवे सास्वादन शब्दनो अर्थलिखेछे सहआस्वादेन वर्त्तते इति सास्वादनं सम्यक्त्वनो आस्वादमात्ररहे तेथी सास्वादनकहियें अथवा आके० समस्तपणे शातनकरे पातनकरे मुक्तिमार्गथी भ्रंसकरे ते आशातनकहियें एटले अनंतानुबंधी कषायबले सम्यक्त्वगुणथी भ्रष्टकरेमाटे आशातने ते आशातनसहीत अवस्थहोय माटे साहाशातन कहियें अने प्राकृतसूत्र माटे सासायणकहियें यदुक्तं विशेषावश्यकेः- उवसमसम्मत्ताउ चइकंपमिछंअपावमाणस्स ॥ सासायणसम्मत्तं तय तरालमिछावलियं ॥ १ ॥ एनोअर्थ सुगमछे एरीतें चार प्रकारें सम्यक्त्वकह्युं.॥१ए॥

हवे पांचप्रकारे सम्यक्त्व कहेछेः-

वेयग जुअ पंचविहं ॥ तंचतुडुपुंजखयंमितइयस्स ॥
खयकाल चरमसमए ॥ सुद्धाणु वेयगो होइ ॥ २० ॥

अर्थः- पूर्वे कह्याजे चार सम्यक्त्व तेनीसाथें वेयगके० वेदक सम्यक्त्व जुअके० युक्तकरियें तेवारें पंचविहंके० पांचप्रकारें सम्यक्त्वहोय जे सम्यक्त्वना अत्यंत शुद्धपुजलने वेदीयें अनुजवियें ते वेदकसम्यक्त्वकहियें तेहथी शुद्धपुजलथी अनर्थांतरछे अनेद छे माटे ए सम्यक्त्वपण वेदक कहेवाय एटले जे क्षपकश्रेणी प्रतिपन्न तंचके० ते प्रथम अनंतानुबंधीचोकडी तथा डुपुंजखयंमिके० मिथ्यात्वपुंज अने मिश्रपुंज ए बेपुंज क्षयथयेछते तइयस्सखयकाल चरमसमएके० शुद्ध छहेला सम्यक्त्व पुजना दलियापण उदेरी उदेरी उदयें अनुजवी अनुजवी निर्जरा करतां करतां निठव्युंछे उदीरणा वल जिहां एटले चरमावलिकायें उदीरणा करण लागेनही एटले त्रीजा सम्यक्त्व पुंजने क्षये करता जेवारे छेलो सर्वोदित पुजलग्रास चरम समय वेद्य शुद्धअणुनुं वेदन एटले शुद्धक्षायोपशम पुजलनेवेदे ते वेदक सम्यक्त्व कहियें यदुक्तं विशेषावश्यकेः-वेयगसमत्तंपुण सव्वोइय चरम पुग्गलावछे ॥ खीणे दंसण मोहे, तिविहंमि रकाइयंहोइ ॥ १ ॥ इहां शिष्य प्रश्नकरेछे के तुमे चरम शुद्धग्रासनुं वेदन ते वेदक कहोछो तेवारें क्षयोपशममां अने वेदकमां इयो फेरथयो केमके शुद्धपुंजनुं वेदन बे ठेकाणे सरिखुंछे तो जुडुंनाम केम कहोछो? तेवारे गुरु उत्तरकहेछे के तें साचुंकह्युं पण एमां विशेष एछे के ए वेदक तो अशेष समस्त पुजलानुजव वंत अत्यंत शुद्धछे अने इतरजे क्षयोपशम सम्यक्त्व छे तेतो उदित अनुदित बे पुजल उदयानुजव वंतछे एटलो विशेषछे. परमार्थे जोतांतो क्षयोपशमजछे समस्त मोहनीय क्षयकरवाना कालनो जे चरमसमय

मात्र ते वेदक सम्यक्त्व कहियें. जेम सूक्ष्मलोजना खंम वेदवाथकी सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक कहियें, तेम शुद्धक्षयोपशम पुञ्जना वेदवाथकी वेदक सम्यक्त्व था यठे, एम वेदक सम्यक्त्व सहित सम्यक्त्वना पांचजेद थाय इति वेदकस्वरूपं२०

हवे ए पांचे सम्यक्त्वनो काल कहेठेः—

अंतमुहुत्तो वसमो, ठावलिय सासण वेयगो समउ ॥
साहिय तित्तीसायर, खइउ डु गुणो खउवसमो ॥ २१ ॥

अर्थः— उपशम सम्यक्त्वनो काल उत्कृष्टो अंतरमुहूर्त्तठे, अने सास्वादननो काल उत्कृष्टो ठ आवलिनोठे, तथा वेदक सम्यक्त्वनो काल एक समयठे, अने क्षायिक सम्यक्त्वनो उत्कृष्टकाल सर्वार्थ सिद्धिनी अपेक्षायें साधिक तेत्रीससागरोपमनो ठे, साधिककह्यातेतो मनुष्यजवनी अपेक्षायेंकह्या; केमके क्षायक सम्यक्त्ववंतजीव ते त्रणजव अथवा चारजव उत्कृष्टो संसारमांरहे, उक्तंच पंचसंग्रहेः—तइय चउठे तंमि, जवंमि सिय्यंति दंसणे खीणे ॥ जं देव निरय संखाउ, चरम देहेसु ते हुंति ॥१॥ अर्थः— बद्धायु क्षायकसम्यक्त्ववंतजे होय ते देवगति अथवा नरकगतियें जाय, तेवारें तद्भवांतरें तृतीयजवें मोक्षजाय; तथा कोई क्षीण सप्तकी जो तिर्यंचमांउप जे तो अवश्य असंख्य वर्षना आउषावाला युगल तिर्यंचमां उपजे, पण संख्यात वर्षायु तिर्यंचमां क्षायक सम्यक्त्ववंत न उपजे, पठी तिर्यंचमांथी देवथाय, अने देवमांथी मनुष्यथई मोक्षजाय, अने जे अबद्धायुवंत होय तेतो तेहिजजवें क्षपक श्रेणीपुरीकरी सिद्धथाय, तथा एकजीव आश्री अथवा अनेकजीवआश्री सम्यक्त्व नो उपयोग जघन्यथी तथा उत्कृष्टथी अंतरमुहूर्तज होय. अने क्षयोपशमरूप सम्यक्त्वनी लब्धीतो एकजीवने जघन्य अंतरमुहूर्त अने उत्कृष्टीतो डुगणो के० क्षायकथकी बमणो ठासठ सागरोपम अने मनुष्यजवें अधिकहोय, तेथी उपरांत सिद्धजथाय, एटले बारमादेवलोकसुधी त्रणवार गमनथाय, तिहां उत्कृष्टायु बावीस सागरोपमनुंठे, अने मनुष्यनो जव अधिकगणतां ठासठसागरोपम फार्शनाथाय, अने विजयविमान आश्री बे जव करवापण्णे तिहांपण उत्कृष्टायु तेत्रीस सागरोपमनुंठे, अने मनुष्यजव गणतां साधिक ठासठसागरोपम क्षयोपशम सम्यक्त्वनो कालमानथाय, एम नानाप्रकारना जीवो आश्री सर्वकाल ठाशठ सागरोपमठे, यडुक्तं सिद्धांतेः—दोवारे विजयाइसु, गयस्स तिन्नीअ अच्चुए अहवा ॥ तइ अइरेग नरजविय, नाणा जीवाण सवद्धा ॥ १ ॥ एनोअर्थ सुगमठे ए पांचेसम्यक्त्वनो कालकह्यो.

हवे संसारमांभ्रमण करतां जीव ए पांचे सम्यक्त्वमां कियुं कियुं सम्यक्त्व केट लीवार पामे ते कहेछे:--

उक्कोसं सासायण, उवसमिया हुंति पंचवाराउ ॥
वेयग खयग इक्कसी, असंख वारा खउवसमो ॥ ९२ ॥

अर्थ:--उत्कृष्टो मोक्षावधि सुधी संसारमां भमतां जीव सास्वादन तथा उपशमिक सम्यक्त्व पांचवारपामे, तेमां एकतो प्रथम सम्यक्त्व लाभकालें अंतरकरणगत उपश मिक होय, अने उपशमश्रेणी चारवखतपामे, तिहां चारवखत उपशमनो लाभहोय.

तथा वेदक सम्यक्त्व अने क्षायक सम्यक्त्व ए बे एकजवार पामे अने क्षयोप शम सम्यक्त्वतो मोक्षावधि संसार भमतां असंख्यातिवार पामे; एरीतें सम्यक्त्व प्राप्तिनी संख्या कही, हवे एक भवमां केटलीवार आकर्षहोय ? आकर्षते गुणथी मंद थईने भूमीफरसीने वली सावधानथई गुणनी प्रबलता करे, एटले मूकीने व ली ग्रहण करवुं ते आकर्षकहियें. यदुक्तं आवश्यक सिद्धांते गाथा:– तिन्नंसह सपुहुत्तं ॥ सयप्पुहुत्तंच होइ विरईए ॥ एग भवे आगरिसा ॥ एवइया हुंति नायव्वा ॥ १ ॥ अर्थ:– तिन्नंत के० एक श्रुतसामायक, बीजो सम्यक्त्वसामायक, त्रीजो देशविर तिसामायक, ए त्रणनेविषे एक भवमां सहस्रपृथकत्व होय, बेहजारथी मांमीने नवहजार सुधी सहस्र पृथक्त्व संज्ञाछे, तथा सयप्पुहुत्तं के० शतपृथक्त्व आकर्ष सर्व विरतिमांहोय, बसेंथीमांमी नवसेंसुधी होय, एरीते एकभवमां उत्कृष्टा आकर्ष होय, अने जघन्यथीतो एकज आकर्ष होय ए एकभवना आकर्ष कह्या.

हवे नानाप्रकारना भवमां भमतां गुणपामी पामी पडतां फरी पामतां आकर्ष नी संख्या केटली थाय ते कहेछे. गाथा:– तिन्नं सहस मसंखा, सहस पुहुत्तंच होइ विरईए ॥ नाणा भव आगरिसा, एवइया हुंति नायव्वा ॥ २ ॥ अर्थ:--श्रुत, स म्यक्त्व, अने देशविरति ए त्रणे सामायकवंतने नानाप्रकारना भवभ्रमणकरतां मो क्षजाय तिहांसुधी उत्कृष्टा असंख्याताहजार आकर्ष थाय. तथा सर्वविरतिने ना नाभवें मोक्षजाता सुधीमां उत्कृष्टा पृथक्त्व हजार आकर्षहोय, एरीते सम्यक्त्व प्राप्तिसंख्याने प्रसंगे आकर्ष संख्या कही ॥ ९२ ॥

हवे कया गुणठाणे कियुं सम्यक्त्व होय ते कहेछे:–

बीयगुणे सासाणो, तुरिआइसु अठिगार चउ चउसु ॥
उवसमग खइग वेयग, खाउवसमा कमा हुंति ॥ ९३ ॥

अर्थः– बीयगुणेसासाणोके० सास्वादन सम्यक्त्वते बीजा सास्वादन गुणठाणा मांहेज होय, पण अन्यगुणस्थानके नहोय, अने उपशम सम्यक्त्व ते तुरियाइसु अठिगारचउचउसुके० चोथागुणठाणाथीमांमी आठगुणठाणासुधी होय, अर्थात् चोथागुणथीमांमी इग्यारमां उपशांत मोह नामना गुणठाणासुधीहोय पण अन्य गुण स्थानके नहोय, अने क्षायक सम्यक्त्व इगारसके० इग्यारगुणठाणेहोय, एट ले चोथागुणठाणाथी मांमीने चउदमां अयोगी गुणठाणासुधीहोय अने क्षायोपश म सम्यक्त्व तथा वेदक सम्यक्त्व ए बे सम्यक्त्व चउचउके० अनुक्रमे चार चार गुणठाणानी संख्यासुधी पामियें, अर्थात् वेदक अने क्षायोपशम ए बे चोथागुण ठाणाथी मांमीने सातमां अप्रमत्त गुणठाणासुधीजहोय पण अन्यगुणठाणे न पा मिये एवात सत्ताआश्रीजाणवी पण परमार्थेतो वेदकसम्यक्त्व अने क्षायोपशम सम्यक्त्व ए बे एकज कह्याछे यथा षमसीतप्रकरणेः–वेयग खयग उवसमे, चउरो एगार अठतुरियाइ इति श्रीजिनवल्लभसूरिकृत षडसीतप्रकरणेकह्युंछे, तथा बंधस्वा मित्वमां पण कह्युंछे एरीतें गुणस्थानक निष्ठायें सम्यक्त्वकह्यां.

हवे सम्यक्त्व पाम्यापछी देशविरति सर्वविरति क्षायिकभाव किवारें प्राप्तथा य ते कहेछे, गाथाः– सम्मत्तंमिउलध्धे, पलिय पुहुत्तेण सावउ हुक्षा ॥ चरणोवस म खयाणं, सायर संखंतरा हुंति ॥ १ ॥ अर्थः–पूर्वोक्त भव्यजीव जेवारें ग्रंथीभे दकरी सम्यक्त्वपामे तेवारपछी अंतकोडाकोडीनो स्थितिबंधछे, तेमांथी पलियपहु त्तके० पृथकत्व पल्योपम एटले बे थी मांमीने नव पल्योपम सुधी ओछीकरे, एट ले कोइक बे पल्योपम स्थितिउछीकरे, कोइ त्रण एम यावत् कोइ नव पल्योपम जेटली स्थिति अंत कोडाकोडीमांथी उछीकरें, तेवारें देशविरति गुणस्थानकनो क्षयोपशमथाय एटले भावथी देशविरति तेवारेथाय.

तथा चरणोवसमके० चरणजे सर्वविरतिपणुं तेनो क्षयोपशमतो जे स्थितियें देशविरतिगुण प्राप्तथयुंछे ते स्थितिमांथीपण संख्याता सागरोपमनी स्थिति उछी करे, एटले सर्वविरतिवंत स्थितिबांधेतो अंतकोडाकोडी नवपल्योपमे न्यून जे देश विरतिनी स्थितिछे, तेथीपण संख्याता सागरोपम उछीबांधे, एवा अध्यवसायें कषा यनी मंदताहोय इतितत्वं. तेवार पछी संख्याता सागरोपम खपवाथी उपशमश्रेणी पडीवजे तेवारपछी पण संख्याता सागरोपमनीस्थितिखपवाथी क्षपकश्रेणी पमीवजे.

हवे जे जीव सम्यक्त्व पामीने पाछोपमी मिथ्यात्वेगयो तेफरी सम्यक्त्व कि वारेपामे? केटलो अंतरहोय? तेकहेछे. सम्यक्त्वनुं आंतरु जघन्यथीतो अंतरमुहूर्त

छे; केमके कोइकजीव सम्यक्त्व वमिने पाछो परिणामनी निर्मलताने योगें तदाव रण क्षयोपशमथी अंतरमुहूर्तने आंतरे फरी सम्यक्त्वपामे, तथा कोइकजीव बहु लकर्मी तीर्थंकरादिकनी प्रचूर आशातना करे ते जीव अर्द्धपुद्गल संसारमां प्रवर्ते, संसारमां जन्ममरणकरे, पछे अर्द्धपुद्गलगये फरी सम्यक्त्वपामे, एटले उत्कृष्टथी आं तरुं अर्द्धपुद्गल परावर्तछे. उक्तंच सिद्धांतेः—तिछयरं पवयण सुअ, आयरियं गणहरं महढीयं ॥ आसायंतो बहुसो, अणंत संसारियो होइ ॥ १ ॥ तीर्थंकरनी तथा प्रव चनजे समस्त जैनशासननी अने आचार्यजे गछना अधिपति तेनी तथा गण धरजे त्रिपदी ग्राहक अथवा महोटा प्रजाविक पट्टोधर तथामहर्द्धिकते तप संय म श्रुतादिक अनेक लब्धिसंपन्न तेने ऋद्धिवंत कहियें एटला जीवोनी आसातना एटले तेमना अवर्णवाद बोले निंदाकरे अन्याख्यानबोले ते जीव अनंतसंसारीथा य एटले प्रकरणकारे पांच सम्यक्त्वनुं स्वरूपकह्युं. ॥ २३ ॥

हवे ग्रंथांतरे दशविध सम्यक्त्वरुचिरूप कह्युंछे तेपण इहां प्रसंगें लखियेछइयें य डुक्तंमागमेः— एगविह डुविह तिविहं चउहा पंचविह दसविहं सम्मं ॥ दवाइ कारयाई, उवसमजेएहिंवासम्मं ॥ १ ॥ अर्थः— जे निसंक तत्वरुचि श्रद्धान जि नमार्गनेविषे ते एकविध सम्यक्त्व कहिये अने डुविध सम्यक्त्वते इव्यथी तथा जावथी अथवा निसर्गथी अने अधिगमथी अथवा निश्चयथी अने व्यवहारथी अथवा पुद्गलिक अने अपुद्गलिक एम बे प्रकारेंछे.

त्रणप्रकारें सम्यक्त्वते उपशम, क्षायिक, अने क्षयोपशम अथवा कारक रोचक अने दीपक एपणत्रण जाणवा वली पूर्वोक्त त्रणमां सास्वादन जेलियें तेवारें चार प्रकारें सम्यक्त्वथाय अथवा वेदक युक्तकरियें एमपण चारप्रकारथाय तथा वेदक सास्वादन एबे पूर्वोक्त त्रणसाथें जेलियें तेवारें पांचप्रकारथायएनोविस्तार पूर्वें कह्योछे

तथा दशविध सम्यक्त्वते दशप्रकारनी रुचिवंतजीव ते रुचिजेदे सम्यक्त्वनो जे दकहिये ते दशरुचि केवाने सिद्धांतोक्त गाथालिखेछेः— निसग्गु वेएसरुइ, आण रुईसुत्त बीयरुइ मेव ॥ अनिगम विछाररुई, किरिया संखेवि धम्मरुई ॥ १ ॥ एदशे रुचिना नामकह्यां हवे प्रत्येकें दशेना स्वरूप कहेछे.

नूअछेणाहिगया, जीवाजीवायपुन्नपावंच ॥ सहसंमइआसव, संवरोय रोएउ निसग्गो ॥ १ ॥ जो जिण दिठे जावे, चउविहे सद्दहाइ सयमेव ॥ एमे अनन्नह त्तिय, सनिस्सगरुइत्तिनायवो ॥ २ ॥ अर्थः— नूअछेणके० सद्भूतार्थ एटले छतो जे अर्थ तेहने सहसंमइके० जातिस्मरणादिक बुद्धिविज्ञानेकरी जेजे श्रीजिनेश्वर

जीना दीठा जेजीवाजीव पुण्यपापादिकना नाव ते चनविहेके० ड्व्य देत्र काल नाव नेदे अथवा नाम स्थापना ड्व्य नावनेदे एवं चारेप्रकारें स्वमेव एटले पोता नीमेलेज सद्दहे जे एमजछे पण श्रीजिन नाषित अन्यथानथी एम जिनेश्वरना दीठानावते निश्चलकरे ते निश्चलरुचि निसर्गरुचि जाणवी.

एएचेव नवइठे, जोपरेण सद्दहइ ॥ ठठमठेणजिणेण, नवएसरुइत्तिनायव्वो ॥ ३ ॥ अर्थः– एएके० ए श्रीजिनोक्त सिद्धांतमां कह्याजेजे नाव ते नवइठेके० नपदेशद्वारायें परेणके० परथी एटले ठद्मस्थथी अथवा जिनराजथी सांनलीने अवितथ सद्दहे तेने नपदेश रुचि कहिये.

राग, दोसो, मोहो, अन्नाणंजस्स, वग्गयं, होइ ॥ आणाए रोयंतो, सोखलु, आणारुई नाम. ॥ ४ ॥ अर्थः– जेने रागदोष द्वेषदोष मोह अने अज्ञानदोष क्षयथईगया ते असत्य नबोले केमके ए त्रणदोषठते असत्यबोलाय रागनुंलीधो अथवा द्वेषनुंलीधो अथवा अज्ञानदोषे अणजाणे जुठुंबोले पण जेने त्रणदोष क्षयगया तेसावास्ते जुठुंबोले, हेतुविना कार्यथायनही एटले ए त्रणदोषरहित जे वीतरागपरमात्मा तेनी आज्ञानेविषे अत्यंत आदरहोय ते त्रीजी आज्ञारुचि कहिये.

जो सुत्तमहिज्जंतो, सुएणठं गाहई समत्तं ॥ अंगेण बाहिरेणव, सोसुत्तरुईत्ति नायव्वो. ॥ ५ ॥ अर्थः– सूत्रजे सिद्धांत तेने नणवा तथा सांनलवानी चाहना करे जेम जेम श्रुतअवगाहे तेमतेम सम्यक्त्वरसपामे एटले इग्यारेअंग तथा बार नपांग अने बाहिरेणवके० बाहिरते मूलसूत्रप्रमुख एम जेकालें जे सिद्धांत वर्त्त मानहोय ते सूत्राक्षरनपरें घणीचाहनारहे जे जे किरियाकरे ते सूत्राक्षरने मल तीजकरे ते चोथी सूत्ररुचि कहियें.

एगेण अणेगाई, पयाइं जो सरइन सम्मत्तं ॥ नदएव तेलबिंडु, सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥ ६ ॥ अर्थः– जे नव्यजीव गुरुनामुखथकी एकादि जीवपदनो अर्थ सांनली अनेकपदमां मतिपसारे एटले मूलवात पामीने बीजी अणकहेलीवात पामीजाय नदकजेपाणी तेमां तेलनुं बिंडु पडयो ते जेम विस्तरीजाय तेम थोडुं सांनलीने घणुजाणीजाय ते पांचमी बीजरुचि कहिये.

सोहोइ अनिगमरुई, सुअनाणं जेण अठ्ठठदिठं ॥ इक्कारसमंगाइं, पइन्नगंदिठी वाठअ. ॥ ७ ॥ अर्थः– ते जीवने अनिगमरुचिहोय जेणे इग्यारअंग तथा न पांग अने पइन्नगंके० प्रकीर्णक नत्तराध्ययन प्रमुख तथा दृष्टिवादना गंनीर अ र्थजाणे वली अर्थजाणवानी चाहनाराखे ते ठठी अनिगमरुचि कहियें.

दव्वाण सव्वजावा, सव्वपमाऐहिं जस्सउवलद्धा ॥ सव्वाहिं नयविही हिय, विछाररुइत्ति नायव्वो ॥ ८ ॥ अर्थः– इव्यजे धर्मास्तिकायादिक ठ तेना सर्वजाव जे इव्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय ध्रौव्य तेने सर्वनय जंग प्रत्यक्ष परोक्षादिप्रमाणे स्याद्वाद सैली सहित अनेक सप्तजंगी परुपणायेंजाणे ते सातमीविस्तार रुचि.

दंसण नाण चरित्ते, तव विणए सच्चसमीइ गुत्तिसु ॥ जोकिरिया जावरुइ, सोखलु किरिया रुइनाम ॥ ९ ॥ अर्थः–जेने दर्शन ज्ञान चारित्र तप विनय समिति गुप्तिप्रमुख बाह्य क्रियाथी वणु रंगहोय क्रियाजावमां घणी चाहना रहे तेने आठमी क्रियारुची कहिये.

अणजि गाहिय कुदिट्ठी, संखेव रुइत्ति होइ नायव्वो ॥ अविसारउ पवयणे, अणजि गहियो असेसेसु ॥ १० ॥ अर्थः– जेप्राणी अणजिगहिय के० अनजिग्रहिक कुदृष्टीजे कुमार्गे शांख्यादिक दर्शनोनो आग्रह धरेनही थोडुं कह्याथकी घणुंजाणे कुमतिये पम्नेनही समोविचारे चिलातिपुत्रनीपरें तथा प्रवचनजे जिनागम तेनेविषे घणुं अविसाग्द के० निपुणतो न होय तोपण सरलगुणेकरी कदाग्रह धरेनही जिनमार्गेनी प्रतीत माने तेने नवमीसंक्षेप रुचीकहियें.

जो अछिकाय धम्म, सुअ धम्मंखलुचरित्तधम्मंच ॥ सद्दहइ जिणाजिहियं, सो धम्मंरुइत्ति नायव्वो ॥ ११ ॥ अर्थः– जे जव्यजीव अछिकायधम्मं के० पंचास्तिकायनुं स्वरूप जाणे तथा श्रुतधर्म अने चारित्रधर्म ने बाह्य अंतरंगजावें श्री जिनोक्तमार्ग सद्दहे सकल स्वजाव विजाव स्वरूप जाणे तेने हेयोपादेय जावें यथायोग्य सद्दहे ते दशमी धर्मरुचि कहियें ए दशरुचि ते सम्यक्त्वना जेदछे.

हवे ए सम्यक्त्वगुणनी प्राप्ति ते मिथ्यात्वना त्यागथी थाय ते मिथ्यात्वना जेद पांचछे तेमांजे लौकिक प्रवाहधर्मे जेजे सारंजी सपरिग्रही कुशीलसेवनादिक जे धर्म बुद्धेंग्रह्यो तेहिज सारकरीजाणे तेनुं हठताणे अमारोधर्म तेज सारछे एम कदाग्रहकरे पण मध्यस्थथई परिक्षाकरी शुद्धनेग्रहेनही ते अजिग्रहिक मिथ्यात्व.

जे एम कहेके सर्व दर्शनरुडांछे सर्वने वांदियें पण नंदियेनही एवी पोतानी मंदबुद्धिजे जडतापणुं तेनेलीधे कांचने तथा मणीने सरखाकरे पण परिक्षाकरी शुद्धने ग्रही शकेनही ते बीजुं अनजिग्रहिक मिथ्यात्व.

जे जाणीजोईने जुठुं बोले कुमति कदाग्रहना जोरथी विरुद्ध परुपणाकरी दुरंत संसार वृद्धिकरे जमाली प्रमुख नन्हवनीपरें ते त्रीजुं आजिनिवेशिक मिथ्यात्व.

जे श्री जिनोक्त सिद्धांतना नाव सांजली संशय धरे जे ए केमहसे एम मगम ग्योरहे ते चोथुं सांशयिक मिथ्यात्व कहिये.

जे एकेंद्रियादिक समूर्छम जीवोने अनादिनुं पडगाडे लागोरह्योछे प्राये त्रस त्रीयासुधीतो अनाजोगिकज होय ते पांचमुं अनाजोगिक मिथ्यात्व जाणवुं.

अथवा संसारीजीवोने बीजापण चारप्रकारे मिथ्यात्वहोय ते कहेछे एक देव गत लौकिक बीजो गुरुगत लौकिक त्रीजो लोकोत्तर देवगत चोथो लोकोत्तर गुरु गत तेमां हरी हर शक्ति प्रमुखने माने पूजे ते लौकिक देवगत मिथ्यात्व, ब्राह्मण तापसादिकने गुरुबुद्धमाने पूजे ते लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, वलीजे सप्रजाव जि नबिंबने इंद्रिय सुखने अर्थे माने पूजे ते लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, अनेजे सुसा धुने इहलोक सुख यश मान प्रतिष्टा अथवा धन धान्य पुत्रादिकनी आस्याधरी माने इच्छे दानआपे ते लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व कहियें.

तथा जीवे अजीवसन्ना अजीवेजीव सन्ना मग्गे उमग्गसन्ना उमग्गेमग्गसन्ना सुदेवेअदेवसन्ना अदेवेसुदेवसन्ना सुसाहुसु असाहुसन्ना असाहुसुसाहुसन्ना धम्मे अधम्मसन्ना अधम्मेधम्मसन्ना ए दशप्रकारें विपरीत वासनारूप मिथ्यात्वछे.

तथा जे वली रक्षाबंधन शंक्रांतिपूजन एम एकवर्षमां शतपर्व आराधन ते सर्व लौकिक पर्वगत मिथ्यात्वछे तथा दीवालीप्रमुख कल्याणीकना दिवशें इंद्री यसुखने साधे विशेष पूजारचनादिक करे ते लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्वछे ए सर्व मली एकवीसजेदे मिथ्यात्व ते संसारीजीवोने संसारमां जमाडेछे.

तथा वली धर्मार्थिजीवने चारप्रकारें मिथ्यात्व टालवानो उपयोग राखवो ते कहेछे तेमां प्रथम प्रदेशमिथ्यात्वछे ते जे आत्मप्रदेशें पूर्वबंध मिथ्यात्वनादलियां र ह्यांछे ते सत्तागत अथवा उदयगत दलियांछे ते प्रदेशगत मिथ्यात्वछे ते जेवारे जीव जिनवाणीसांजली यथार्थजावजाणी सद्दहे सकल पुद्गलिकजावने हेयसद्दहे केवल स्वरूपलाजते यथार्थ परिणति परिणमन तेनेज सुखनुंमूलजाणी सद्दहे आदरकरे एवीवांछायें प्रदेशमिथ्यात्व टलीजाय.

बीजुं परिणाम मिथ्यात्व ते जे पोताना प्रमाददोषेकरी शुद्धश्रद्धाफरीने कुश्र द्धाथाय जेम पूर्वधरने निद्रादिक दोषेकरी पूर्वगलीतथाय मरीने निगोदादिकेजाय जेम प्रसन्नचंद राजऋषी दूरवाक्य सांजली चेतनाफरीगइ ते परिणाम मिथ्यात्वक हिये ए मिथ्यात्व ते जिनवाणीनेविषे तीव्रोपयोगी रहेवाथी टलेछे.

त्रीजुं परुपणामिथ्यात्व ते उत्सूत्रजाषवाना जे महोटादोष तेने कहियें एथी अ

नंतसंसार भ्रमणकरे धर्मबीजनो ध्वंसकरे जे सद्दहणा राखीने मरणांत कष्टपडे तो पण श्रीजिनवाणी विरुद्ध प्ररुपणानकरे तेने ए मिथ्यात्वनुं दोषटले.

चोथुं प्रवर्त्तिमिथ्यात्व ते जे मिथ्यात्वनी करणीकरे मिथ्यात्व प्रवर्त्तावे तेने कहियें ए मिथ्यात्व सुसाधु तथा सुश्रावकनी संगति करवाथी तथा रागद्वेषने मंद करी मध्यस्थभावें थइ परिक्षाकरी शुद्धप्रवर्त्तन करवाथी टलेछे.

एमए मिथ्यात्वजेछे ते जगतमां जेटली दुःखनीजातोछे ते सर्वनुं मूलकारणछे कोप्योदुसमन कोप्योव्याल तथा वेताल जे नकरीसके ते दुःख एमिथ्यात्वआपेछे व्याधि मृत्युः दालिद्र तथा वनवासथीपण मिथ्यात्व सेवनते अनंतगुणु दुःखदाइ छे जेणे मिथ्यात्वजीत्यो तेणे सर्वजगतजीत्यो इंद्रादिकनी ऋद्धिपामवी सुलभछे पण मिथ्यात्व टालवुं दुःकरछे तेमाटे आत्मसुखार्थिजीवें विशेषथकी मिथ्यात्व सोधन करवुं निर्मल श्रद्धान करी आठगुणयुक्त संकादिदोष विमुक्त सम्यक्त्व दृढकरवुं.

हवे आठगुणेकरी सम्यक्त्वनी पुष्टीकरे ते आठगुण कहेछे गाथा ॥ निस्संकिय निकंखिय, निवित्तिगिछा अमूढदिठीय ॥ अववुह थिरीकरणे, वछलप्पभावणेअठ ॥ १ ॥ श्रीजिनागमनेविषे सूक्ष्मविचार अतिंद्रियादिक भावजेछे ते साचा सद्दहे पण संदेहसंका नआणे अने सातभय पण मनमां आणेनही ते प्रथम निसंकगुण.

बीजो निकंषागुण जे अन्यदर्शनना कष्ट मंत्र चमत्कारादिक उन्नतदेखी तेनी चाहना नकरे आकंक्षाधरेनही अथवा धर्मना पुण्यरूपफलनी इछा नराखे केमके जिहां इछानी आतुरता तिहांपुण्यरस ओछोथाय जिहां इछा तिहांकर्मबंधछे अने पुण्यतो धर्मक्रियानो वस्तुस्वभावछे तेतो अवश्यजथाय तेने इछारूप दोष तो सामु कमरसकरे अने जे निस्पृहपणे धर्मक्रियानुंफलछे ते निरविधिछे माटे ए निकंषागुणथी धर्मफल वृद्धिनेपामेछे.

त्रीजुं निवितिगछागुण ते जे कर्मसंबंधी फलनो संदेह राखेनही जेम कोई मनुष्य धर्मकरणी करतो कोई पूर्वकृत पापप्रकृतिने उदयदुःखेपीडतो थको मंदबुद्धिनो धणी एमविचारे जे हुंधर्मकरुंछुं तोपण पीडाकेम पामुछुं ए धर्मक्रियानुं फल थासेके नही थाय एवीसंकाधरे पण एम नविचारेजे एतोपूर्वकृत कर्मफल उदय आव्याछे पण वर्त्तमान जे धर्मक्रिया करुंछुं ते आगल अवश्य आवसेज केमके श्रीजिनेश्वरें कह्युंछे कडाण कम्माण न मुरक अत्थि, माटे जे निवितिगछा गुणवंतहोय ते संदेह धरेनही श्रीजिनभद्रगणि खमाश्रमणे कह्युंछे, दुक्खले, तिविहाय रिह विरहउंवावि ॥ नेयग हणत्तणेण, नाणापरणो दुगेणंच ॥ १

अथवा अशुनपुजल एकसरखागणे पण अशुनपुजलेखी डुगंछा करेनही तथा पुण्योदयें शुनसंयोग मिल्याथका खुसीनथाय अहंकार करेनही पापोदयथी अशु नसंयोगमिल्या दिलगीरथायनही ते निविचिगंछा गुणकहियें.

चोथो अमूढदृष्टीगुण ते जे श्रीआगमसिद्धांतमां निगोदप्रमुखना सूक्ष्मविचार सांजलतां मुंफायनहीं जे पोतानी धारणामां आवे ते धारीराखे अने जे धारणाबु द्धिये नआवे तेनुंसद्दहे, तिहां एमविचारेजे सर्वदोषथी विमुक्त एहवा जिनेश्वरते अ न्यथा वादीनहोय. यडुक्तं आगमेंः—असइसडुज्जंबुफिय्या, सवणुमय मवितह ॥ त हाचिंतएमइयं, अन्नहान वयंतिजे॥ १ ॥अणुवकय पराणुग्गह, परायणा जंजिणा जग प्पवरा ॥ जिय राग दोसमो हाय, नन्नहा वाइणो तेण ॥ २ ॥ अर्थः— जेजि नवाणी सांजलतां खबर नपडे. समजवामां नआवे, तेना हेतु लिखेले. कोईक श्रो तातो पूर्वजव कृत ज्ञानविराधन कर्मोदयथयेथके मतिडुर्बलताथी न समजे तिवा रें आचार्य तथा विधि उपदेशक कोई हेतु दृष्टांतादिक वचनेकरी श्रोताना चित्त मां उतारे. एहवा महापुरुषोने विरहे तथा नीतीन्यायना अणजाणवाथकी एटले अनेक नय युक्तिना ग्रहणपणाविना अथवा ज्ञानावरणीकर्मना प्रबलोदयथी न समजे, तेवारें आत्मार्थि अमूढदृष्टी जीव एवो विचारकरे जे हेतु उदाहरण अथवा अनेक युक्तिदृष्टांतें घणा वखत कहेताथकां पण मने सारीपठे समजण पडतीन थी ते म्हारे पूर्वोक्त दोपना योग्यथी जाणवी, पण सर्वज्ञमत तो अवितञ्च सत्य जले, एम कहे तेवारें कोई प्रश्नाकरे जे एकांते जिनोक्त रचनाज सत्यले एवुं तें कि मजाण्युं ? तेवारें अमूढदृष्टी श्रोता उत्तर कहेलेः—अणुवकय के० जे जिनेश्वर ते केवां ले प्रत्युपकारनी चाहनाविना परने अनुग्रह उपकार करवाने तत्परले, तथा जंजि णा के० जे कारणमाटे जिनेश्वरते जगतमां प्रवर के० श्रेष्टले; रूप बल तेजकांति बुद्धि ऋद्धि सिद्धिप्रमुख गुणे सर्वोत्कृष्टले; अने वली जियराग के० जीत्याले मूलथी राग द्वेषने मोहजे अज्ञान ए त्रणदोष जेमांथी गयाले माटे जिनेश्वर अन्यथावादी होयज नही. तेथी परमयथार्थवात ते आगमनीजले ए अमूढदृष्टीनामा चोथोगुण.

पांचमो अववूह गुण ते पोतानी आत्मामां अनंत ज्ञानदर्शनादिक गुणले ते लुपावेनही उदैकडुःख मेटवाने दीनतादिक न नाषे शुद्धसत्ता जेवीले तेवीजकहे अने पुजलिक सुखडुःखते अज्ञानदशा कृत उपाधिले आत्मा ए रागद्वेष उपाधि थी न्यारोले, इमज परजे अन्यसाधक तेमांपणजे गुणहोय ते प्रगटकरीकहे पण लुपावेनही ते पांचमोगुण.

छठो थिरीकरणगुण ते पोताना परिणाम परन्नावमांथी काढी ज्ञानध्यानमां जोडे, नित्ये धर्मक्रियाकरतोहोय ते अवश्य थिरयोगवंत थयोथको करे, पण चप लताना कारणमिले तोपण अथिरपणुं ग्रहेनही. साध्यसाधनथी मगेनही, तथा कोई नव्यप्राणी शुनाशुन कर्मोदयनिमित्ते धर्मथी पमतोहोय तेने सडुपदेशादिक आपी अथवा तेने कोईरीतें सहायीथईने तेनुं परिणाम थिरकरे, पण मगवा न आपे ते छठो स्थिरीकरण गुण जाणवो.

सातमो वत्सलतागुण आ वर्त्तमान शासनमां जे नव्य धर्मरुचि जीवोसाथें सामायक पोसह परिकमण यात्रा पूजादिक धर्मकरणी करताहोय, जेहनी सद्दह णा एकहोय ते पोताना साधर्मी कहियें, तेनी नक्तिकरवी ते वत्सलताकहियें अ थवा सर्वजीव जाते आपणासाह्मीजछे, एकसत्तायें सरखाछे, वास्ते सर्वजीवनी वात्सलता करवी, जीवदयापालवी, अथवा अंतरंगनावें जीवना ज्ञानादिकगुण छे तेने ज्ञानध्यानेकरी पोषवा (पुष्टकरवा) एटले ज्ञान ध्याननो घणो अन्यास करवो ए स्वनिष्ठा वात्सलगुण सातमोछे.

आठमो प्रनाविकगुण ते जैनशासननी उन्नतिकरवी, संघयात्रा रथयात्रा अथवा महोटा तप जप उंली उपधान प्रतिष्ठा पूजादिकना घणामहोत्सवें अढलक दाना दिकनी उदारताकरी जेथी अन्यदर्शनीउंपण अनुमोदनाकरे एवी धारायें धर्म स न्मुखकरे, स्वदर्शननी वृद्धिकरे, घणाजीवोने धर्मजोडावे, एवा कारण मेलवे जेथकी जैनशासनने प्रनावे (दीपावे) ए बाह्यप्रनाविकगुण अथवा पोतानी आत्माना ज्ञानादिकगुण तेने वधारवा पुष्टकरवा ते अंतरप्रनाविक गुण ए प्रनावनागुण आठमो कह्यो.

हवे श्री सम्यक्त्वना सडसठनेद विशुद्ध व्यवहारथी कहेछेः—

तिस्सुद्धि लिंग लरकण, दूसण नूसण पन्नावगागारा ॥
सद्दहण जयण नावण, ठाण विणय गुरु गुणाईयं ॥ २४ ॥

अर्थः— तिस्सुद्धि के० सम्यक्त्वनी त्रणसुद्धिछे, तेमां पहेली मनसुद्धिते श्रीजिन तथा जिनमत ए बे विना अपर सर्व असारछे इम चिंतवे ते मनशुद्धि; बीजी व चनसुद्धि ते श्रीजिनेश्वरनुं आराधन करतां सर्व कार्यनी सिद्धिथायज अने कोई पू र्वकृत दुःकृतना उदयथी जे कार्य न थयुं ते अन्य देवोथी शुंथवानुंछे, माटे अरिहं तनी सेवाथी कामना सिद्धिथायज, वास्ते स्वप्नमांपण अन्यदेवनी प्रार्थना न करुं,

एवुंजे निसंकपणे बोलवुं ते वचनसुद्धि कहियें. त्रीजी कायशुद्धिते कोई पूर्वकृत अशुनोदयथी कोई मिथ्यादृष्टी दुष्टराजा अथवा चोर अथवा दुष्ट देवादिकजेछे ते णे खड्गादिके नेद्यो, जिह्नादिकें यंत्र घाणीप्रमुखे पील्यो, अग्नी प्रमुखे दाझ्यो, एवा महोटा मरणांत कष्टआवे, पण एक श्रीजिनेश्वरविना अपर देवने वज्रजंघनीपरे नमेनही ते कायशुद्धि कहियें.

लिंगके० लिंगत्रणछे. ते कहेछेः–जे श्रीजिनागम सांजलवानी घणीज इछाराखे इंद्रियसुखना अनेककार्यमूकी आगम सांजलवाने तत्परहोय ते प्रथम सुश्रुषा लिंग कहियें. बीजुंलिंगते धर्मकरणी करवाने परमरागहोय जेटला धर्मकरणीयछे तेहिजकार्यमाने बाकी सर्व नवपूरणमाने ते बीजुंलिंग. त्रीजुंलिंगते जे श्रीजिनेश्वर तथा जिनमार्गानुसारी गुरु तेना वैयावच्चमां यथायोग्य निश्चलाजिग्रह रूप नियमें प्रवृत्ते ते त्रीजुंलिंग जाणवुं.

हवे जेथकी हृदयगत् सम्यक्त्व लिखियें जाणियें तेलक्षण पांचछेः--ते कहेछे तेमां पहेलुं लक्षण समछे, तेजेम रागद्वेषनी मंदता, तेम समतानी वृद्धि, सुखदुःखना उदयें हर्षविषाद धरेनही ते समकहियें. एटले समपणेहोय पापोदये पुण्योदयें अव्यापकहोय तेसम नामा प्रथम लक्षण जाणवुं. बीजु संवेग लक्षण ते नित्यें मोक्षाजिलाषरहे, जे जे मोक्षना कारणछे ते ते उपरें आदर घणुंहोय, परजावथी विमुखरहेते बीजुं लक्षण. त्रीजुं निरवेद्यलक्षणते जे सप्तांग सहित एकछत्र राज्यपाम्युंहोय तोपण एमजाणे जे ए बंदीखाने पड्योछुं. ए कारागारथी के वारें बूटीस, सर्व पुद्गलिकनाव ते बंधनरूपगणे, समस्त संसारथी उदासरहे, ते निरवेद्य लक्षण त्रीजुं जाणवुं चोथुं अनुकंपनलक्षण ते जे सर्व संसारीजीव उपरें अनुकंपाधरे, एटले संसारीजीवोना द्रव्यदुःख देखीने तेना उपर परम मैत्रीनावधरी, यथा शक्तियें उपकारकरे, मनमां एवी चाहना राखेजे कोई जीव पाप नकरे कोईजीव दुःखी नथाय, सर्व संसारीजीव द्रव्य जाव दुःखथी बुटे, धर्मपामे महारी शक्तिफुरे तो सर्वने धर्मरुचिवंतकरुं, जेम एना जन्ममरणना दुःखटले, एवी वासनाते अनुकंपा लक्षण चोथुं जाणवुं. पाचमुं आस्तिक्यता लक्षणते श्रीजिनशासन तथा जिनधर्मउपरें परम आसताहोय, परमरंगहोय एरीतें धर्मरंग वासीतहोय ते आस्तिक्यता लक्षण पांचमुं जाणवुं.

हवे पांच दूषण सम्यक्त्वना कहेछेः–तेमां प्रथम संकादूषण ते जे जिनवाणीमां संदेहधरे ते शंकाकहिये. तेना बे जेदछेः–एक देशविषयी बीजो सर्वविषयी. तेमां

सर्वविषयसंका ते धर्मछे के नथी अथवा जिनधर्म सत्यछे किंवा असत्यछे एवी वि चारणाते सर्वथी संकाजाणवी. अने जे देशसंकाते जीव सर्वगतछे के असर्वगतछे पृथ्वीमां जीवपणुं केमठेरे अथवा निगोदादि स्वरूप केम घटमानथाय? कई युक्तिए मानियें अथवा वर्तमानकालें चारित्रछे के नथी इत्यादिक देशसंका जाणवी. तथा पूर्वेंकहीजे सर्वसंका ए बे संका सम्यक्त्वने दूखवे ते संकानामे प्रथम दूषण जाणवुं.

बीजुं कांक्षादूषण. ते जे परदर्शननो अभिलाषधरे तेने आकांक्ष, दूषणकहियें. ते बेप्रकारेछे एक देशथी आकांक्षा बीजी सर्वथी आकांक्षा तेमां सौगतादिक एकज दर्शननो अभिलाषधरे ते तो देश विषय आकंक्षा, अने जे सर्वपाखंमीधर्मेनी आकां क्षाधरे ते बीजी सर्वविषय आकांक्षा, एबीजुंदूषणकह्युं. सम्यक्त्व मलीनकरे ए श्रीजिनागममां अविस्वास रूप दूषणछे.

त्रीजुं वितिगिछादूषण ते जे तपस्यादिक धर्मकरणीकरतां तज्जन्यफलनो संदेह धरे, ए धर्मक्रिया फलसे के नहीफलसे, केमके क्रिया बे प्रकारनी जगतमां देखाय छे, एक फलआपे बीजी अफलपण थाय, आषाढाचार्यनी परे संदेहमांपडे, इहां कोईशिष्यें पूछ्युं जे संकाते संदेहरूपछे, अने आ विचिकछापण संदेहरूप कहोछो तो ए बेमां शोविशेषपणुंछे जेथी भिन्न भिन्नकहोछो एम शिष्ये पुछयाथी गुरुकहे छे संका दूषणते इव्यगुण विषेछे अने विचिकछा क्रिया विषेछे ए त्रीजुं दूषण.

चोथुं प्रशंसादूषण ते कलिंगी तापस सांख्यादिक देखीने अहो ए महोटा त पस्वीछे, इयादिक वर्णन ते आसंसाकहियें, ए प्रसंसाकरतां असज्जुणाकरणे करी स म्यक्त्व मलीनकरे, मुग्धबुद्धि मिथ्यादृष्टी लोकने विषे अत्यादरथाय, मिथ्याधर्मेनी सदापुष्टीथाय, केमके लोककहेके जैनधर्मीपण एनी प्रसंसाकरेछे, तो ए महागुणी छे. इत्यादिक दूषणोथी सम्यक्त्व मलीनथाय ए चोथुंदूषण.

पांचमुं दूषणते जे कुलिंगी अन्यदर्शनी साथें संस्तव परिचयकरे, नित्य भेगार हे, तेनी क्रियाना वर्णन महिमा सांभली श्रद्धादोषदलीथाय, अने तेनी शुलभ क्रियादेखी दर्शन दृढता सिथिलथाय, माटे अन्य दर्शनीनो परिचय त्यजवो ए पांचमुं दूषणछे.

हवे पांच भूषण कहेछेः—प्रथम स्थैर्यभूषणते जे श्रीजिनधर्मने विषे स्थिरताहो य, पण युक्ति कुयुक्ति सांभली चपलचित्त करेनही ते स्थैर्यभूषण. बीजुं प्रभावना भूषणते श्रीजिनशासननी अनेक संघयात्रा पूजा प्रतिष्टादिकना महोत्सव करेते बीजुं प्रभावना भूषण जाणवुं. त्रीजुं भक्तिभूषणते श्रीजिनशासन उपर घणीभक्ति

राखे, जेम कोई दलिड्री रोगी अपराधी कलंकी प्रमुख दोषनिधान महाडुखियो दीन हीननिक्षाचरानुंवस्था अनुनवतो, एवा डुःखी पुरुषने कोई उपकारी साम्यर्थ्यवान पुरुषें करुणालावी तेना सर्वडुःखफेडी महोटा धन धान्य राजक्रुद्धि समृद्धियें स हितकस्यो, हवेते दलिड्रीपुरुषने उपकारना करनार उपर केहवी नक्तिहोय तेथी अधिक नक्ति देव, गुरु, धर्म, उपरेंराखे ते त्रीजुं नक्तिनूषण कहिये. चोथुं नूषण श्रीजिनशासननेविषे कुशलता आगमसैलीयुक्ति प्रयुक्ति हेतुदृष्टांत मांहे अतिनिपु ण ए नूषणवंत क्यांय खलायनही जिहांजाय तिहां आगमनी कुशलताथी अन्य दर्शनीमां जैनमार्ग दीपावे कोई स्थानके हारेनही, परिकर्म्मित बुद्धिबले प्रजुनो मार्गदीपावे घणाने जैनधर्मपमाडे ते चोथुंनूषण.

पांचमुं तीर्थसेवा नूषण ते जे ड्व्यनावथी तीर्थनी सेवामां रसीयोहोय तिहां ड्व्यथी तीर्थ ते श्रीसिद्धाचलादिक पुण्यक्षेत्र जिहां तरतमयोगें घणाजीव सिद्धि वस्या घणाजीव रत्नत्रयीपाम्या घणासम्यक्त्वदृष्टी देवनिवासि ते एवां पुण्यक्षेत्रें अनेक जनसमुदाययुक्त विधिपूर्वक जायछे तिहां ते महापुरुषोना चरित्रने बहुया द करता पुण्यक्षेत्रना योगथी घणा कर्मोनी निर्जराथाय, केमके बंध तथा निर्जरा ते ड्व्य क्षेत्र काल नाव ए चारने अनुकूलता माफक थायछे शुनड्व्यादिक चा रने निमित्ते पुण्यनी वृद्धिथायछे, तेथी निकटसंसारीथायछे. वली अशुनड्व्यादिक चारने योगे संसारडुःख डुर्गतिनी वृद्धिथायछे, माटे कर्मक्षय निमित्तें ड्व्यतीर्थेज वुं अने नावतीर्थ ते द्वादसांगी अथवा चतुर्विध संघ तेनी सेवा नक्तिबहुमान क रतां आत्मा निर्मलथाय, बीजाजीव धर्मपामे ए तीर्थसेवानामे पांचमुनूषणकह्युंछे.

हवे आठप्रनावक कहेछे पावयणी धम्मकही, वाई निम्मित्तउ तवस्सीय ॥ वि ज्या सिद्धो अ कवि, अठेव पनावगा नणिया ॥ १ ॥ अर्थः- पावयणीके० प्रावचनीते जिनमार्गमां कुशल जिनमार्गदीपावे, तेथी प्रनावक कहीयें. बीजुं धर्म कथामां अतिनिपुण होय ते घणा डुर्बोधजीवोने धर्मपमाडे, शासननी उन्नतिवधा रे, माटे बीजो प्रनावकजाणवुं. त्रीजो प्रनावक वादी तेएकवातने शोकडावखततथा पे, वलीतेज शोकडावखत उत्थापे पण किहां खलायनही. प्रतिज्ञा हेतु दृष्टांत यु क्ति कुयुक्तिमां निपुण, एवा तीक्ष्णबुद्धिमान वादी स्याद्वादमां निपुण ते राजद्वारें बहुजनसमक्ष जयपताकावरे, शासनने दीपावे माटे वादीप्रनावकत्रीजो जाणवो चोथो निमित्तनाणी प्रनावक ते जे पूर्वे आम्नायनायोगथी नूत नविष्य वर्तमान कालनी वातकहे ते निमित्त कुशल; कोई तथाविध अवशरे राजद्वारादिकमां शा

सननी उन्नति करवा माटे कोई लानालान गवेषी निमित्तकहे, सर्वप्राणीने चमत्कारपमाडी पोताने अनुकूलकरे, तेअनुकूलपणाथी धर्मनी वृद्धिथाय शासनदीपे, ए चोथो प्रनाविक जाणवो. पांचमो तपसी प्रनावक ते श्रीजिनागमोक्त विधिमर्यादा पूर्वकतपकरे, तेने अनेक कठिण कर्मनी निर्जराथाय, आमोसहीप्रमुख घणी लब्धि उं उपजे, तपस्याना महात्म्यथी इतिउपद्रव देवलादिक सर्व समीजाय, उपासना कष्टविनाश तेने देवता पोतानीमेले आश्रितथई महीनावधारे, एवा शक्तिवंत तपस्वी जिहांविचरे तिहां श्रीजिनशासनदीपावे. माटे प्रनावक कहिये. बहोविद्यासंपन्न प्रनावक ते आकाशगामिनी प्रमुख अनेक विद्यायें संपन्न महापुरुष कोई विषम वेलामां श्रीसंघनो उद्धारकरे, विघ्ननिवारे, दुष्टदमनकरी संघनीरक्षाकरे. शासननेदीपावे, घणाजीवोने धर्मसन्मुखकरे, माटे प्रनाविक कहियें, सातमो सिद्ध प्रनाविक ते जे पूर्व आम्नायें गुरुकृपाथी पाम्यो अंजनसिद्धि चूर्णसिद्धि मंत्रसिद्धि कनकसिद्धि प्रमुख अनेकसिद्धि संपन्न होय, ते कोई विषमताने योगे लानालानदेखी कोई अद्भुत सिद्धिनाबलेकरी संघनो विघ्नदूरकरे, शासननी महोटाई करी देखाडे माटे प्रनाविक कहिये. आठमो कविप्रनावक ते जे जिनमार्गेधर्मने अणदूषवतो समस्त वर्त्तमात श्रुतमां निपुण स्वपर शास्त्रवेता कोई शासनोन्नतिकारणें अथवा कोई विघ्नजय निमित्ते कोई महा गंनीरार्थ अतिशयोक्ति युक्त प्रकश्नरे जे सांनलतांज पंम्मितहोयते चमत्कारपामी अनुकूलथाय, एम ए प्रनावक चिंतितकार्य सर्वकरे शासनोन्नतिकरे माटे प्रनाविक जाणवो ए आठप्रनावक कह्या.

हवे ठ आगार कहेछे तेमां प्रथम आगार रायानियोगेण एटले राजाने आदेशें कांई धर्मविरुद्ध करवुंपडे तेनो आगार, बीजो गणानियोगेण एटले घणालोक न्यात जात प्रमुखना जोरथी विरुद्ध करवुंपडे तिहां प्रतिज्ञा नांगेनही ते बीजो आगार, त्रीजो बलानियोगेण ते कोई महाबलवान बलात्कारे पकडी परवशकरी जोरावरीथी अनक्ष्य प्रमुख मुखमांनाखे खवरावे तेथी प्रतिज्ञा नांगेनही ते त्रीजो आगार. चोथो देवानियोगेण ते कोई दुष्ट देव पोतानी दिव्यशक्तियेंकरी मनुष्यनी चेतना विकलकरे, अथवा अत्यंत मरणांत कष्ट समस्त कुटुंबने आपे ते विकलतामां अथवा कष्टनो मार्यो राजवेठ समान कांई विरुद्ध करवुंपडे तिहां प्रतिज्ञा नांगेनही ए चोथोआगार. पांचमो गुरुनिग्गहेणं ते माता पिता वृद्धन्राता प्रमुखना केहेवाथकी ते समजाव्या न समजे अने जो तेमनुं केहेवुं न करे तो लोक निंदा करे, एम विचारी तेमना केहेवाथकी कांई विरुद्ध करवुंपडे ते पांचमो आगार. बहो

वित्तिकंतारेणं ते वृत्ति कहेतां आजीविका तेहिज महोटा कांतार एटले अटवी ए टले कोई पापोदयथी एवुं द्रव्य क्षेत्रादिक योग मलिजाय के जेथकी आजीविका नी दुर्लजताथईजाय त्रणदिवश पर्यंत जिहांसुधी शक्तिफुरे परिणामटके तिहां सु धीतो टक्योरहे पछे जाणेजे हवे टकासेनही एवुंदेखे तेवारें कोई विरुद्ध कारणे आजीविका करवीपडे ते छठो आगार जाणवो. ए छए आगारतो जे उत्सर्गे पाली शकेनही तेनेछे, पणजे दृढ परिणामी होय ते सावास्ते आलंबनजहे, जे मंदहोय ते लाकडी लेइने चाले तो तेने कोई विरुद्धपण कहे नही.

हवे चार सद्दहणा कहेछे तेमां प्रथम परमार्थजे तत्वार्थ तत्वज्ञान शास्त्ररह स्य तेनो परिचयकरे, केमके तत्वज्ञान पाम्याविना जे उद्यमछे ते कष्टरूपछे, माटे तत्वज्ञान परिचय ए प्रथम सद्दहणाकहियें. बीजी तत्वज्ञाननी सकलपरमार्थनाजा ण जे मुनिराज तेनी सेवाकरे, एवा मुनीने सेव्याविना तत्व प्राप्तिपणनथाय, माटे तत्व ज्ञाननी सेवना ते बीजी सद्दहणाजाणवी. त्रीजी व्यापन्नदर्शनी वर्जन ते व्यापन्नके० गयुंछे दर्शन जेथकी, एटले श्रद्धाभृष्ट थयेला स्वदर्शनी, तेनी संगतन करवी, हीणानी सोबतकरतां साधुजनपण हीणोकेहेवाय, वास्ते दर्शन भ्रष्टनुं संग वर्जवुं ए त्रीजी सद्दहणा जाणवी. चोथी कुदृष्टी संगवर्जन ते मिथ्यात्वी ता पसादिकनी संगतनकरे, रासजसंगे गायकुटाणी माटे धर्मार्थियें कुलिंगीनुं संगवर्ज वुं एचोथी सद्दहणा जाणवी.

हवे छ प्रकारे जयणाकहेछे तेमां प्रथम अन्यदर्शनी जे तापसादिक तथा तेना देवजे ब्रह्मा विष्णु महेस शक्ति प्रमुख २ तथा तेणे ग्रहणकरेलाजे अरिहं तना चैत्य प्रतिमां बद्रिनाथ प्रमुख एटलानी साथे छप्रकारनो व्यवहार नकरवो छ प्रकारनी जयणा कहियें तेनानाम कहेछे एक वंदननकरवुं बीजुं विशेष बहुमान पूर्वक पंचांग प्रणिपातादिक तेने नमन कहीयें ते पण नकरवुं. त्रीजुं दानजे अन्न वस्त्रादिक तेपण जक्तिपूर्वक धर्मसाधनार्थे नआपवुं. उचित अनुकंप जाणीदेवुं ते नी मनाई नथी. चोथुं अनुग्रह प्रदान जे वारंवार तेडीतेडीने देवुं ते पण नकरवुं. पांचमुं आलाप ते बोलाव्याविना आगलथी एकवार बोलवुं तेपण नकरवुं, छठो संलापते वारंवार बोलवुं तेपण नकरवुं. ए छ वाना करतां सम्यक्त्वजाय माटे छ वाना वर्जवा ए छ प्रकारनी जयणा कहियें.

हवे सम्यक्त्वनी जावना कहेछेः—समस्त धर्मनुं मूलते सम्यक्त्वछे एवुं जाववुं ते प्रथम जावना. तथा समस्त धर्मरूप नगरनो द्वार तेपण सम्यक्त्वछे एवुं जाव

वुं ते बीजी जावना. तथा धर्मरूप प्रासादनो पाइयो अथवा पीठते पण सम्यक्त्व जछे एवुं जाववुं ते त्रीजीजावना, तथा सम्यक्त्वते आत्मार्थिकजीवोने निधान अखुट खजानोछे एवुं जाववुं ते चोथीजावना, समस्त धर्मनो आधार ते सम्यक्त्व जछे एवी वासना ते पांचमी जावना जाणवी, तथाधर्मरूप अमुल्यचीजने राखवा तुं जाजनते सम्यक्त्वछे एम जाववुं ते छठी जावना जाणवी.

हवे सम्यक्त्वना छ ठाण कहेछे. शुद्धपद पणामाटे अस्ति ते जीवछे एम दृढ निश्चें जाणवुं ते प्रथम ठाणछे. तथा सास्वत नित्यछे द्रव्यथी किवारे नाशनथी ए बीजुंठाण. तथा पुण्य पापनो कर्त्ता तेपण ए जीवजछे ए त्रीजुंठाण. तथा वली पुण्य पापनो जोक्ता तेपण जीवजछे ए चोथुंठाण. तथा निर्वाण जे मुक्ति सिद्धछे ए पांचमुंठाण. तथा ते मुक्तिपामवानो उपायपणछे ते छठुंठाण. ए छ ठाणाविशेषनी चर्च्या दर्शन सितरी प्रमुख ग्रंथथकी जाणवी. ए छठाणनी अप्रतीत अविश्वास ते मिथ्यात्व जाणवुं. माटे छ ठाण रुडीरीते सद्दहवा आगमरुची गुरुपासेथी धारवा.

हवे सम्यक्त्वनी निर्मलताने अर्थे दशनो विनयकरवो ते कहेछेः- अरिहंत ते विचरता तीर्थंकर १ ज्योतिस्वरूपी सिद्ध २ चैत्यजे प्रजुना देरासर ४ श्रुतसिद्धांत ५ वीतरागनो धर्म ६ मोक्षमार्गना साधक साधु ७ पांचप्रकारना आचार ते पोतेपण पाले अने परने पलावे ते आचार्य ८ जे इग्यारअंग पोते जणे अने परने जणावे ते उपाध्याय ९ पवयणीते चउदपूर्वधर १० दर्शनजे सम्यक्त्व ए दशनो विनयकरवो एदशनो यथायोग्य अनुकूलपणेथयीने विनय करताथका सम्यक्त्व अतिनिर्मल थाय.

विछारं तुह समया, सया सरंताण जवजीवाणं ॥
सामिय तुह प्पसाया, हवेऊ समत्त संपत्ति ॥ २८ ॥

अर्थः—हे स्वामिन् तुहसमया के० तहारा परूप्या सिद्धांतनो विछारं के० विस्तार तेने सया के० सदाकाल सरंताण के० अनुसरतां अज्यासकरतां एवा जवजीवाणं के० जव्यजीवोने तुहप्पसाया के० ताहरा पशायथी सकल सिद्धांतनोपार एवोजे समत्त के० सम्यक्त्व तेनी संपत्ति के० प्राप्ति ते सम्यक्प्रकारे निरावरणजावें हवेउ के० थाउ. ए प्रकरण करनारनी आसीसछे. इति सम्यक्त्वस्तव बालावबोध संपूर्ण मगमत्.

॥ अथ प्रशस्तिलिख्यते ॥

॥ दोहरा ॥ यह विधि समकित गुणतणी ॥ प्रापति आगम मांहि ॥ जाषी नि

सुणी सद्दहे ॥ तस दो डुरगति नांहि ॥ १ ॥ सुरपति सुख लेवो सुगम ॥ सुजन रक्त इक उत्त ॥ डुर्लन नरजव जगतमें ॥ समकित गुण संपत्त ॥ २ ॥ दान दया संयम क्रिया ॥ समकित युत शिव हेत॥नहि तो मंडुक चूर्णपरि॥जव बंधन संकेत ॥ ३ ॥ विण समकित संयम क्रिया ॥ करे अनंती वार ॥ पार न पावे तेह युत ॥ अड जवमें निस्तार ॥ ४ ॥ एक सहित दश गुण वधे ॥ शुन्य अंक कहिवाय ॥ बोधियुक्त गुण सवि क्रिया ॥ नहितो कष्ट कहाय ॥५॥ पुन्यदिशी पूरव जली ॥ जिहाँ उदयाचल थान ॥ कल्याणक सवि जिनतणा ॥ तिण ए दिशि परधान ॥ ६ ॥ सुविहित सूरि गुणे जस्या ॥ (श्री) पुन्यसिंधु सूरीस॥ वाचक ज्ञानसागर तणि ॥ नितु जस नामे सीस ॥ ७ ॥ तास शिष्य पूरव तणा ॥ तीरथ जेटण काज ॥ शुन सकुने सूरतथकी ॥ करि प्रयाण शुन साज ॥ ८ ॥ यमुना सुर तटनी तटे ॥ वंदन श्रीजिनपाय ॥ नगर मगसुदावाद लगि॥ अनुक्रम पहुता जाय ॥ ए ॥ साउसखा गोत्रें जलो ॥ साह सुगाल सु नाम ॥ डुखमां कालें धर्मनो, कस्यो सुगाल सुगाम ॥ १० ॥ समतसिखर गिरिराज पर ॥ वीसे टूंके स्तूप ॥ थापी तिम इकवीसमो ॥ कस्यो प्रसाद अनूप ॥ ११ ॥ पंचम आरे परगडो ॥ कस्यो उद्धार प्रसिद्ध ॥ मानव जव सफलो करी ॥ जगमांहे जश लीध ॥ १२ ॥ तसु सुत नागनिधी जलो ॥ दाता धर्मी दक्ष ॥ राजसजा मंमन समी ॥ अजिनव अजय प्रत्यक्ष ॥ ॥१३॥साह सुला नामे निपुण ॥ आगम रुचि प्रिय धर्म ॥ तास कहणथी ए कियो ॥जापामय स्तव मर्म ॥ १४ ॥ आगे बहुश्रुते बहु लिख्या॥ समकित जेद विशेष ॥ वाकुं लखि जाषा लिखुं ॥ उनमें कूण विशेष ॥ १५ ॥ तोजी तस आसय अगम ॥ हुं उद्मस्थ अयाण ॥ जूल चूक जे मुऊतणी ॥ बुध जन लाजो गण ॥ ॥ १६ ॥ आगम जलधि अपार हे ॥ मुऊ मति नोका तुछ ॥ क्यों निवहे जादो नदी ॥ पकरे जेडी पुछ ॥१७॥ अल्पमति में अज्ञान हुं ॥ जाणुं न बहुत रहस्य॥ कृपाकरी मोपें कृति ॥ करजो शुद्ध अवस्य ॥ १८ ॥ सज्जन मुऊशिरमोर हे ॥ हुं सज्जनको दास ॥ संतकृपाथी मुऊ हुसे ॥ ए सफलो सुप्रयास ॥१ए ॥ कुमति कदाग्रह भ्रमथकी ॥ वितथ लखाणुं जेह ॥ श्रीसंघ साखे मुऊहुउ ॥ मिछाडुक्कड तेह ॥ २० ॥ दूर्लन चारुं अंगमें ॥ समकित एह अमूल ॥ जविजन तस उद्यम करो ॥ जिम शिवसुख अनुकूल ॥ २१ ॥

इतिश्री सम्यक्त्व स्वरूपस्तव बालावबोध सहित समाप्तः

॥ श्रीशासनतिलकाय नमः ॥

॥ अथ श्रीषष्टिशतक बालावबोध व्याख्यासहित प्रारंभः ॥

प्रथम व्याख्याकर्त्तानुं मंगलाचरण.

दोहाः— शासननायक जगतिलो, प्रणमी वीर जिणंद ॥ षष्टीशतक प्रकीर्णनो, अर्थ लिखुं मतिमंद. ॥ १ ॥ अर्थः— शासनना नायक एटले अधिपति, जगतिलो एटले त्रण जगतनेविषे तिलक समान, एहेवा जे श्रीवीरजिनेंद्र, तेमने प्रणाम करीने आ षष्टी शतक प्रकर्णनो अर्थ, मारी मंदमतिने अनुसारे लखुंछुं ॥१॥

मूलप्रकरणकर्त्तानुं मंगलाचरणः—

मूल आर्यावृत्तम्ः— अरिहं देवो सुगुरू, सुद्धं धम्मं च पंच नवकारो ॥ धन्नाणं कयन्नाणं, निरंतरं वसइ हिययम्मि॥१॥दोहाः—धन्य कृतारथके हिये, श्रीअरिहंतसुदेव ॥ सुगुरुवसे जिनधर्मपुनि,पांचनमणनितमेव॥१॥व्याख्याः—अरिहं--देवेंद्रकृत पूजादिकने योग्य, अथवा अ-नथी, रह—छानो कांई पदार्थ जेनाथी; अथवा अ-नथी रह—रथ जेने समीप; अथवा अ- नथी, रह—प्राप्ति पुत्रकलत्र धनादिकनी जेने; अथवा अ- नथी, रह—त्याग आत्मगुणगणनो जेने. एवो देवो—देव, तथा सु—रूडा शोभायमान ज्ञान क्रियावान, गुरू—धर्मशास्त्रार्थनो उपदेश देवावाला अथवा तेनु कथन करवावाला, शुद्धं—निर्मल ते कषायमल रहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्रीजिनभाषित एवो धम्मं—जे दुर्गतिनेविषे पडता प्राणीउने धारे ते श्रीवीतरागनो धर्म जाणवो, पण अन्य हरिहरादिकनो नही, च—समुच्चयार्थे छे, एटले जे पदनी साथे बोलवुं योग्य होय ते पदनी साथे एनाथी बोला यछे. वली पंच—अरहंतादिक पांच परमेष्टी, तत्संबंधी. नवकारो--नमस्कार, ए चारपदार्थ ते धन्नाणं--धन्य जे पुण्यवान प्राणीउ, कयन्नाणं--कृतार्थ प्राणीउंना एटले निवर्त्त जे रागद्वेष तथा मोहरूप गांठी भेदीने निर्मल सम्यक्त्ववान थयाछे, तेउंना हियम्मि—हृदयनेविषे एटले अंतःकरणनेविषे निरंतरं—अंतराय रहित एटले सदासर्वदा वसइ--वसेछे. एथी पापी दरिद्री एवा जे मिथ्यादृष्टि ते उंना हृदयनेविषे वसे नही एवुं सूचन कर्युं. एनो फलितार्थ आछेः-- जे धन्य अ

ने कृतार्थ पुरुषो होय तेमना हृदयनेविषे सुदेव, सुगुरु, शुद्धधर्म तथा पंचपरमेष्टीने नमस्कार ए चार पदार्थो निरंतर वास करी रहेछे, परंतु बीजाना हृदयमां रहेता नथी. ॥ १ ॥

अवतरणः--पोताथी बीजुंकांई नबने तोपण अरिहंत देवनुं आराधन अवश्य करवुं ते कहेछेः— मूलः—जइ न कुणसि तव चरणं, न पढसि न गुणेसि देसि नो दाणं, ता इत्तियं न सक्किसि, जं देवो इक्क अरिहंतो ॥ २ ॥ दोहाः--जो न करे तप दान तूं; न पढे न गुणे तंत ॥ तद आणंद जपो सदा, देव एक अरिहंत ॥ २ ॥ व्याख्याः— जइ-जो तवचरणं— तपचारित्रने तुं न कुणसि— न करी शकतो हो न पढसि— सूत्र तथा प्रकरणादिने भणी शकतो न हो, न गुणेसि—प्रथम भणेला सूत्र अथवा प्रकरणादिकनुं मनन अथवा विचार करी शकतो न हो, अने दाणं— सुपात्रादिकने कांई पण दान देवुं ते नदेसि—तुं दई शकतो न हो ता—तो पण इत्तियं— आटलुं, न सक्किसि— तुं करी शकतो नथी? जं— जे, देवोइक्क अरिहंतो— देव तो एक अरिहंतज अमारे आराधवा योग्य छे, तेनी साथे सुगुरु तथा सुधर्म पण लई लेवा. एनो भाव ए छे के, बीजुं कांई पोताथी बनी शकतुं न होय तोपण अर्हद्देव, गुरु, सुसाधु तथा सुधर्म उपर श्रद्धा राखीने तेमनेज मानवुं ते सर्वोत्तम छे. ॥ २ ॥

अवतरणः—संसारनां दुःखनो नाश करनार मात्र एक वीतरागनो धर्मज छे, बीजो कोई नथी एम कहेछे. मूलः— रे जीव भव दुहाइं, इक्कं चिय हरइ जिणमयं धम्मं ॥ इयराणं पणमंतो, सुह कय्ये मूढ मुसिओसि॥३॥ दोहाः— भव दुष हरन जिनेंद्र मत, धर्म एक रे जीव ॥ परसुर नमतो तूं मुस्यो, सुन कारजमें क्लीव ॥३॥ व्याख्याः—रे जीव—हे जीव इक्कं चिय— एकज जिणमयं— जिनमत ते श्रीवीतराग भाषित धम्मं—धर्म, भव दुहाइ— संसारसंबंधी जन्मजरा मरणादिक दुःखोने हरइ— हरण करेछे एटले नाश करेछे. एमज सुदेव अने सुगुरु पण जाणवा. पण इयराणं—इतर जे वीतराग देवथकी अन्य देव हरि हर ब्रह्मादिक छे तेओनै, सुहकय्ये—पोताने सुख थवाने अर्थे, पणमंतो—प्रणाम करतां मूढ—हे मूर्ख, मुसिओसि—तुं मूसायो छे एटले ठगायो छे एनो फलितार्थः-- सुदेव सुगुरु तथा सुधर्मने मूकीने कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्मने जे सेववुं तेथी कांई कल्याण थतुं नथी. ॥ ३ ॥

अवतरणः— वली पण एज भावनी पुष्टी करेछेः— मूलः— देवेहिं दाणवेहिय, सूउ मरणाउ रक्खिउ कोई ॥ दढ कय जिण समत्ता, बहु अवि अजरामरं

पत्ता ॥ ४ ॥ दोहाः-- सुण्यो न देव रु दानवे, मरणथि राख्यो कोय ॥ बहुत वि अजर अमर थया, निश्चल समकित जोय ॥ ४ ॥ व्याख्याः- देवेहिं- सुरोए, य- तेमज दाणवेहि- असुरोए मरणाओ- मरण थकी कोई- कोईने पण रक्खिओ-रक्षण कर्युं छे एवुं सुओ--सांजल्यामां अथवा दीठामां आव्युं नथी. अने दढकयजिणसम्मत्ता-जेणे निश्चय करी एकजजिन देव सत्य मान्यो छे, अथवा मिथ्यात्वमोह उच्छेदकरूप जे जिनप्ररूपित धर्म तेना तत्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक् दर्शन जेणे निश्चय कर्यो छे, एवा बहुअवि-घणा प्राणीओ अजरामर-मोक्षस्थानने पत्ता-पाम्या, पामेछे अने पामशे. एनो जावार्थः- एवुं क्यांय सांजल्यामां अथवा दीठामां आवतुं नथी के कोईने देवे अथवा दानवे मरणथी बचाव्युं छे, परंतु जेणे श्रीजिननो जाषेलो धर्म पाली सम्यक्त्व पाम्यो छे एवा घणा प्राणीओ मोक्षने पाम्या छे; उपचारथी पामे छे अने पामशे, ॥ ४ ॥

अवतरणः- सम्यक्त्व सकल सुखनुं कारण छे, अने मिथ्यात्व सकल दुःख अथवा अनर्थोनुं कारण छे; तोपण बधा सम्यक्त्वने अंगीकार करीने मिथ्यात्वने केम मूकी देता नथी? ते दृष्टांते करी कहेछेः- मूलः-- जह कुवि वेसा रत्तो, मुसिज्जमाणोवि मन्नए हरिसं ॥ तह मिछ वेस मुसिआ, गयंपि न मुणंति धम्मनिहि॥५॥ दोहाः-जिम वेस्या रत कोइ नर, मने ठगातो सर्म ॥ तिम मिथ्या वेस्या ठग्यो, लखे न गत निधि धर्म ॥ ५ ॥ व्याख्याः-जह-जेम कुवि-कोईक माणस वेसारत्तो-वेस्यानेविषे रक्त एटले आसक्त थयो थको मुसिज्जमाणो-खराब थवा मांड्यो होय एटले वेस्याए तेनुं धन वगेरे स्त्रीना संगथी जेटली हाणी थायछे ते बधुं करवा मांड्युं होय तोपण ते हरिसं-हर्षने मन्नए-मानी लियेछे; तह-तेम मिछ वेस मुसिआ-मिथ्यात्वरूपिणी वेस्याएकरी ठगायला लोकनुं सर्वस्व गयंपि-गयुं छतां पण न मुणंति- जाणता नथी. एनो जावार्थ आ छेः- जे मनुष्यो मिथ्यात्वमां मुंझाई रह्या छे तेओ धम्मनिहिं-चारित्र धर्मनुं निधान जे सम्यक्त्व अथवा धर्मनिधि ते सम्यक्त्वरूप निधान तेनी हाणी थई छतां पण जाणता नथी.

अवतरणः- मिथ्यात्वी जीव धर्मरूप निधाननो नाश थएलो देखता नथी, एवुं पांचमी गाथमां सामान्यपणे कह्युं, तेज आ छठी गाथामां कुलाचार आश्री विशेषपणे कहेछे:- मूलः--लोअ पवाहे सकुल, कमम्मि जइ होइ मूढ धम्मुत्ति ॥ ता मिछाणवि धम्मो,थक्काय अहम्म परिवाडी ॥ ६ ॥ दोहाः- लोक प्रवाह स्वकुल क्रमे, धर्म होय जो बाल ॥ तो धर्मो मिथ्यात्व कुल, थकि अधर्मकी चाल ॥ ६ ॥ व्या

ख्याः— लोअ पवाहे—अजाण लोकोनी विचार रहित जे प्रवृत्ति ते लोकप्रवाह क हियें, ते रूप सकुल कमम्मि— स्वकुलक्रम एटले पोताना वंश परंपरानो आचार पाल्याथी मूढ--हे मूर्ख एटले विवेक विकल, जइ—जो धम्मुनि होइ—धर्म थतो हो य ता—तो मिल्लाणवि—चंडाल, माछीगर, भिल्ल तथा म्लेछादिक अनार्यने पण धम्मे—धर्म थाय ; तथा अहम्म परिवाडी—अधर्मनी परिपाटी एटले पापपद्धति अथवा श्रे णी थक्काय--थाकी एटले एक ठेकाणे रहीने पुन्यपणाने पामी एवुं थशे. एनो नावार्थ आ छेः—हे मूर्ख, जो लोकप्रवाहरूप पोतानो कुलाचार पालवाथी धर्म थतो होय, तो म्लेछ लोकोने पण धर्म थवो जोये. तथा अधर्मनी परिपाटी थाकी एटले लोकमांथी अधर्मनो अनावज थई जवो जोये. माटे जेओ लोकप्रवाहरूप स्वकुलाचारनेविषे धर्मने मानेछे, तेओए म्लेछादिक अनार्योनेविषे पण धर्मनुं स्थापन कर्युं एम थशे ; अने धर्म तथा पाप ए बे पदार्थ जुदा ठरशे नही. ॥ ६ ॥

अवतरणः— एनीज लोक अने लोकोत्तरनेविषे विशेषता बतावे छेः— मूलः लोयम्मि राय नीई, नायं न कुलक्कमम्मि कइयावि ॥ किं पुण तिलोय पहुणो, जिणिंद धम्माहि गारम्मि ॥ ७ ॥ दोहाः—कुलाचार करि जो नही, राजनीतिमें न्याय॥ जैनराजमें तो किसुं, कुलाचार करि नाय ॥ ७ ॥ व्याख्याः— लोयम्मि—लोकनेविषे एवो नायं—न्याय छे के, कुलक्कमम्मि—कुलक्रम एटले कुलाचारनी अपेक्षाए करी कइआवि— कदापि रायनीई—राजनीति न—नथी प्रवर्त्तती ; त्यारे पुण—वली कुलाचारे करी तिलोय पहुणो—त्रिलोक प्रन्नु एहवा जे जिणिंद—जिनेंद्र तेना धम्माहि गारम्मि— धर्मरूप अधिकारनेविषे प्रवृत्ति किं— केम थाय? अपितु नज थाय. अहीं अर्थनी योजना आवी रीते करवीः— कुलनो आचार अवश्य पालवो, पछी ते सारो होय के नरशो होय तोपण तेनो तिरस्कार करवो नहीं, एवी कांई राजनीति पण होती नथी; केमके जो एहेवी राजनीति होय तो धर्म अने अधर्मनी व्यवस्था निन्नपणे थाय नही. माटे राजनीतिनो संबंध कुलाचारनी साथे होतोज नथी. एथी कुलाचार पालवो एहेवो नियम नथी, एटले कुलाचार धर्मथी विरुद्ध होय तो तेनो त्याग करवामां कांई अटक नथी. एवुं लोकमां पण सिद्ध थायछे ; त्यारे त्रिलोकपति जे जिनेंद्र तेना धर्मरूप अधिराजना अधिकारनेविषे कुलाचारना अपेक्षा केम होय ! एटले कुलाचारना आग्रहनेविषे धर्म होतो नथी. एनो नावार्थः— जेम राजानी आज्ञाएकरी राजनीति होयछे, तेम जिनेंद्र देवनी आज्ञाए शुद्ध धर्मरूप अधिराज अथवा अधिकार होयछे ; अन्यथा न होय. ॥ ७ ॥

अवतरण—एवी रीते लोकप्रवाहरूप कुलाचार सेव्याथी जिनधर्मनी पण सिद्धता थती नथी, त्यारे तेथी संसारनी निवृत्तिनो संभव ते शीरीते थाय! ते देखाडेछेः— मूलः— जिण वयण विअन्नूणवि, जीवाणं जं न होइ भव विरई ॥ ताकह अवि अन्नूणं, मिछत्त हयाण पासम्मि ॥ ८ ॥ दोहा ॥ कर्म जिन मत निपुनके, जो भव विरति न होय ॥ तौ मिथ्यात्व हत मूढके, पास विरति किम जोय ॥ ८ ॥ व्याख्याः— जिण वयण वियन्नूणवि जीवाणं—जेओ जिन वचनोना जाणनारा छे, एहेवा केटलाएक जीवोने पण कुगुरु तथा कुग्रहनायोगथी जं- जो भवविरइ—भवविरति एटले संसारनी निवृत्ति न होइ- नथी थती ता—त्यारे मिछत्तहयाण--मिथ्यात्वेक रीने हणायला एहेवा अवि अन्नूणं—जिनागमना अजाण लोकछे तेउने पासम्मि—पासे भवविरति एटले संसारनी निवृत्ति कह--केम थाय! अपितु नज थाय. एनो भावार्थः— केटलाएक जिनागमना जाणनारा मनुष्योने पण कुगुरु तथा कुग्रहजे दुराग्रहतेना प्रसंगथी संसारनी निवृत्ति थती नथी, तो मिथ्यात्वेकरी हणायला जे अजाण लोक, तेउने भवनी निवृत्ति ढुकडी ते केम होय! एटले ते चारित्र धर्म क्यांथी पामे के जेथी कर्मबंध त्रूटे! अर्थात् चारित्र धर्म नज पामे. ॥ ८ ॥

अवतरणः— एवी रीते विरतिनुं दुर्लभपणुं देखाड्युं; हवे अविरति जीवोने जोईने विरति जीवोने शुं थायछे ते कहे छेः— मूलः—विरयाणं अविरए, जीवे दहूण होइ मण तावो ॥ हा हा कह भवकूवे, बुडुंता पिछ नच्चंति ॥ ए ॥ दोहाः--देख अविरती जीवकूं, ताप विरति मन होय ॥ हा हा किम भव कूपमें, बूडत नाचै जोय ॥ए॥ व्याख्याः— अविरए— अविरति जे हिंसादि अढारे पापना सेववा वाला, जीवे— जीवोने दहूण— देखीने विरयाणं— विरतिवंत पुरुषोना मणतावो—चित्तनेविषे करुणारूप ताप होइ— थायछे. तेनुं स्वरूप आवुं छेः— हा हा— खेदनी वात छे. कह— केम भवकूवे--संसाररूप अंधकूपनेविषे बुडुंता—बूडता ते अविरति अपच्चाख्काणी अनाणी प्राणी नच्चंति— नाचेछे एटले नृत्य करे छे अथवा खुशी थायछे. हे आत्मोन्, पिछ— देष, दुर्गतिनुं कारण जे पाप, ते करी करीने बापडा जीवो खुशी थायछे ; एउनुं कल्याण ते अमे केम करी शकीये! एवी रीते अनेक प्रकारे विरतिवंत पुरुषोना मननेविषे ताप अथवा खेद थायछे; पण बीजा कोई प्रकारनो ताप विरतिवंत पुरुषोने थतो नथी. ॥ ए ॥

अवतरणः— अविरतिने जोईने विरतिना मनमां दयाभाव उत्पन्न थायछे, एम कह्युं; हवे बीजा सर्व पापोनुं फल कडवुंज छे, तेमां पण मिथ्यात्वनुं फल अति

दुष्ट छे ते देखाडे छेः— मूलः—आरंज जम्मि पावे. जीवा पावंति तिरक दुक्काइं ॥ जं पुण मिछत्त लवं, तेणं न लहंति जिण बोहिं ॥ १० ॥ दोहाः—आरंज पापे करी, जीव महा दुख पाय ॥ वलि मिथ्यात्व लवे करी, लहे न समकित जाय ॥ १० ॥ व्याख्याः—आरंजजम्मि—जीवने उपद्रव करवो, ते आरंज थकी उत्पन्न थया जे पावे—पाप, ते कस्याथी जीवा—जीवो तिरक दुक्काइं—तीक्ष्ण दुखोने पावंति—पामेछे. एटले दुःखनेज पामेछे पण तेथी सम्यक्त्व न पामे एम नथी थतुं ; किंतु सम्यक्त्व पामवानो तेउने संजव होयछे ; अने प्राप्त पण थाय छे. पुण—परंतु जं-- जो मिछत्त लवं--विपरीत प्ररूपणादिक मिथ्यात्वनो लवमात्र पण जो जीवने आवीने वलगे तो तेणं—तेनां योगथी जिणबोहि—जिनबोधि ते श्री जिनजाषित सम्यक् दर्शन, तेने पर जवे न लहंति—पामतो नथी. एनो जावार्थः—बीजां पापो कस्या छतां पण जवांतरनेविषे सम्यक्त्वनी प्राप्ति थवानो संजव छे, परंतु मिथ्यात्वना लवना संयोगथी जवांतरमां सम्यक्त्वनी प्राप्ति थती नथी माटे बीजां पापो करतां मिथ्यात्व पापनुं वधारे दुष्टपणुं देखाड्युं छे ॥ १० ॥

अवतरणः—जे उत्सूत्र तेज मिथ्यात्व छे ते प्रगट करी देखाडे छेः— मूलः—जिणवर आणा जंगं, उमग्ग उस्सुत्त लेस देसणउ ॥ आणा जंगे पावं, ता जिणमय दुक्करं धम्मं ॥ ११ ॥ दोहाः—देशना य उत्सूत्रकी, होय जिणाज्ञा जंग ॥ आज्ञा जंगे पाप तद, दुःकर जिण धरमंग ॥ ११ ॥ व्याख्याः— उमग्ग उस्सुत्त लेस देसणउ—उन्मार्ग उत्सुत्रनोलेश देखाडवाथी उत्पन्न थयो जे जिणवर आणाजंगं—जिनवरनी आज्ञानो जंग (जंग कह्याथी अत्यंताजाव नही पण जंगनी पठे अथवा खंमनी पठे थायछे ते दुःखनो हेतु होवाथी तेज अहीं जिनाज्ञानो जंग जाणवो) आणाजंगे—जिन आज्ञानो जंग थयाथी पावं—पाप थायछे ; ता—तेथकी जिणमय--जिनमत ते श्री जिनेश्वरनो जाषेलो धम्मं--सम्यक्त्वादिक धर्म ते दुक्कर--दुष्कर छे ; एटले करवो घणो कठण छे. माटे जेम जिन आज्ञानो जंग अथवा खंम न थाय तेम जव्य जीवोए करवुं जोये ॥ ११ ॥

अवतरणः—आ—मर्यादाए करी ज्ञा— जणाय जीवादिक पदार्थो जेथी तेने आज्ञा कहेछे ; एहवी श्रीवीतरागनी वाणी छे. क्षायोपशमिक जाव तजीने उदयिक जावनुं सेवन करवुं ते उन्मार्ग ; अने श्री वीतरागनां वचनोथी जे उलटुं बोलवुं तेने उत्सूत्र कहेछे. तो जिन आज्ञा रहित जे धर्म ते पाप फलनो देनार छे, ते देखाडेछे. मूलः—जिणवर आणा रहियं, वद्धारं तावि केवि जिण दवं॥ वुड्डंति जव समु

हे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १२ ॥ दोहाः– केइ मूढ अन्याय करि, आए भंग जिम थाय ॥ तिम जिण द्रव्य वधारतां, बुडे नवोदधिमांय. ॥ १२ ॥ व्याख्याः– केवि– केटलाएक मोहेण– मोहे करीने अन्नाणी– अज्ञानी शुद्धज्ञान विकल एह वा मूढ– मूर्ख तत्वज्ञानना अजाण जिणवरआणारहियं– जिनवरनी आज्ञाथकी रहित थया थका जिणदवं जिनद्रव्यने– वद्धारंतावि वधारता छतां पण भव समुद्दे– संसार समुद्रनेविषे वुड्डुंति– बुडे छे भमेछे. ॥ १२ ॥

अवतरणः–अंगारकर्मादिक कर्मरूप कुव्यापार पोते कस्याथी अथवा कोईना हा थे कराव्याथी; अथवा देवद्रव्येकरी गृहादिक स्थावर मिलकत खरीद करी अथ वा करावीने भाडे आपवी तथा नीच लोकोने जिनद्रव्य व्याजनी आशाए धीरवा थी; तथा पोते बलवान छतां जोर देखाडीने जबरजस्तीथी कोईनी पासेथी कांई द्रव्य लई लेवुं तथा माली, सुतार, शिल्पी (कडिया) इत्यादिकनी पासेथी वंचनाकरीए टले ठगीने जे देव द्रव्यनी वृद्धि करवी ते जिनआज्ञाथी रहित छे. ए वृद्धि जिन आज्ञा प्रमाणे कहेवाय नही पण जिनआज्ञाथी बाहेर कहेवाय. तथा कुकला एटले नरशी कलाए करी देवद्रव्य वधारवानो शास्त्रोनेविषे निषेध कस्यो छे. घणो लाभ थतो होय तोपण ए द्रव्य कोईने अंग उधार देवानो निषेध कस्यो छे. सुव र्ण तथा रत्नादिकनां आभूषणो राखीने तेना व्याजथी देवद्रव्यनी वृद्धिकरवी कही छे. अने सुकलाएकरी तथा न्यायोपार्जित धनना भागे करी देवद्रव्यनी वृद्धि क रवी एम शास्त्रोमां कह्युंछे. माटेज अयोग्य मनुष्यने देशना देवी नही ते कहेछेः– मूलः– कुग्गह गह गहियाणं, मुद्धो जो देइ धम्म उवएसं ॥ सो चम्मासी कुक्कर, वयणम्मि खिवेइ कप्पूरं ॥ १३ ॥ दोहाः– कुग्रह ग्रह ग्रहि जीवकूं, जो ऋजु ध र्म सुणाय ॥ चर्मभखी कूकरमुखे, सो कर्पूर चवाय ॥ १३ ॥ व्याख्याः– कुग्गह अभिनिवेश मिथ्यात्वरूप जे कुग्रह तद्रूप गह–ग्रह जे भूतादिक तेणेकरी गहिया णं–ग्रहण थएला जे लोको तेओने मुद्धो–मुग्ध जो–जे धम्मउवएसं–धर्मना उ पदेशने देइ–दिये छे; सो- ते चम्मासीकुक्करवयणम्मि–चर्मादिकने भक्षण करनार कूतराना महोमां जाणे कप्पूरं–कर्पूर भोजन खिवेइ–क्षिपति एटले नाखेछे. एनो भावार्थः– जे मनुष्यो दुराग्रहरूप भूतेकरी ग्रसायला छे. तेओने शुद्ध धर्मनी देश ना देवी ते कूतराना महोडामां उत्तम भोजन आपवानी पठेछे; अर्थात् योग्य अधिकारी जोईने धर्मोपदेश करवो ए तात्पर्य छे. ॥ १३ ॥

सिद्धांतथी बाहेर पोतानी मतिए करी कल्पेलो पोते अंगीकार करेलो जे अस

त्य पदार्थ, तेने जूगे उपदेश देईने पुष्ट करवो ते अनिनिवेश मिथ्यात्व कहेवाय छे. अने जे हेय उपादेयना ज्ञानेकरी रहित होय तेने मुग्ध कहेछे.

अवतरणः—अयोग्य पुरुषने उपदेश देवामां रोषनो संजव छे ते कहेछेः—मूलः—रोसो विखमा कोसो, सुत्तं नासंतयस्स धन्नस्स ॥ उस्सुत्तेण खमाविय, दोस महा मोह आवासो ॥ १४ ॥ दोहाः— सूत्र नाषि नर धन्य तस, रोषवि उपशम कोश उत्सूत्रीकी पिण क्षमा, महा मोह घर दोष ॥ १४ ॥ व्याख्याः—सुत्तं नासंतयस्स धन्नस्स—सूत्रनुं नाषण कर्त्ता जे धन्य पुरुष छे, तेनो रोसोवि—रोष एटले क्रोध छे ते पण खमाकोसो--क्षमानो कोश एटले नंडार छे ; अने उस्सुत्तेण--उत्सूत्रेकरी खमावि य—क्षमा पण दोस--दोष अथवा द्वेषरूप छे ; महामोह आवासो--ते महामोह एटले अज्ञाननो आवास एटले महेल छे. एनो नावार्थः--सूत्र नाषी शुद्ध प्ररूप क गीतार्थ पुरुषनो क्रोध पण क्षमानो नंडार छे, केमके, ते शिष्यादिकने शुन सा धननो हेतु छे ; अने उत्सूत्र नाषी अगीतार्थ पुरुषनी क्षमा पण क्रोधनो नंडार छे, केमके, ते शिष्यादिकने अशुन साधननो हेतु छे. ॥ १४ ॥

अवतरणः—कोईक ठेकाणे क्रोध शुननो हेतु थायछे अने क्षमा अशुननो हेतु थायछे माटे जिनधर्मनुं सम्यक् जाणपणुं घणुं कठण छे ते कहेछे. मूलः—इक्कोवि न संदेहो, जं जिण धम्मेण अत्थि मुरक सुहं ॥ तं पुण दुविन्नेयं, अइउक्कड पुन्न रहियाणं ॥ १५ ॥ दोहाः— जो शिवसुख जिणधर्मथी, एकनि नहि संदेह ॥ पुन्य हीणके जाणवो, कठिण मोक्ष सुख तेह ॥ १५ ॥ व्याख्याः— इक्कोवि—एक पण नसंदेहो—संदेह नथी, जं—जो जिणधम्मेण—जिणधर्मनुं आराधन कर्युं छतां मुरकसु हं—मोक्षसुख अत्थि—छे; एटले जिनधर्मना आराधनथी निश्चये करी मोक्ष थायछे एमा एके संदेह नथी. पुण—वली तं—ते जिनधर्म दुविन्नेय—दुःखेकरी जाणवा योग्य छे ; एटले जाणवाने अशक्य छे. ते कोणेजे अइउक्कड पुन्नरहियाणं—अति उत्कट ए टले अति प्रधान सम्यक्त्वरूप पुन्य थकी रहित प्राणी छे तेने, अर्थात् अनिनिवेश मिथ्यात्वीने जिनधर्मनुं सम्यक् जाणपणुं थवुं घणुं कठण छे ए नाव छे. ॥ १५ ॥

अवतरणः—स्त्रीनी चोसठ कला अने पुरुषनी बोतेर कला इत्यादि स्थूल पदार्थोथी जिनधर्मनुं दुर्लनपणुं देखाडे छेः— मूलः— सव्वंपि वियाणिज्जइ, लप्नइ तह चउरि माइ जणमज्झे ॥ इक्कंपि नाय दुलहं, जिण मय विहु रयण सुविन्नाणं ॥ १६ ॥ दोहाः— चतुराई सबही कला, लहिये जगत सुजाण ॥ पिण दुर्लन इक जैन मत, विधी रत्न विज्ञान ॥ १६॥ व्याख्याः-- सव्वंपि—सर्व पण वियाणिज्जइ—लोको

नेविषे जाण्यामां आवेछे, तह–तिम चउरिमाइ–चतुराईपणुं एटले उचित कार्यने विषे कुशलपणुं जणमज्जे–अविवेकी लोकोनेविषे पण लब्भइ दीठामां आवेछे; कांई डुल्लन नथी, केमके संसारनी चतुराई जीवे अनंत वार पामेली छे. परंतु नाय–हे नाई, इक्कंपि–एकज डुलहं–डुल्लन छे एटले डुःखे करी पमाय एवुं जे ते जिणमय विहि रयण सुविआणं–जिनमत संबंधी विधि रत्ननुं जलुं जाणपणुं तथा करवा पणुं तेज एक डुर्लन छे, केमके, विवेकी पुरुषने जिनशासन संबंधी विधिरत्ननुं सम्यक् जाणपणुं तथा करवापणुं संजवे पण बीजाने संजवे नहीं ए जाव छे.॥१६॥

अवतरणः--जिनमतविधिरत्नना सम्यक् जाणपणानुं डुर्लनपणुं देखाम्युं, ते जाणपणानेज सम्यक्त्व कहेछे, माटे हवे सम्यक्त्वनुं डुर्लनपणुं देखाडेछेः-- मूलः-- मिछत्त बहु लयाए, विसुद्ध सम्मत्त कहण नवि डुलहं ॥ जह वर नरवइ चरियं, पाव नरिंदस्स उदयम्मि ॥ १७ ॥ दोहाः-- बहुलताय मिथ्यात्वकी, डुल्लन सुसमकित ध्यान ॥ जिम पापी नृपके उदै, वर नरनाथ कथान ॥१७॥ व्याख्याः– मिछत्त बहु लयाए--मिथ्यात्व तथा मिथ्यात्वीओना बहुल पणाने लीधे, एटले वर्तमान डुषम कालमां देदीप्यमान असंयतपूजा नामे दशमा अछेराना महिमाए करी ड्रव्यलिंगी कुलिंगी तथा तेओना सेवको अजिनिवेशादिक मिथ्यात्वीओ घणा छे माटे विसुद्धसम्मत्तकहणमवि--अजिनिवेश मिथ्यात्व मलरहित निर्मल सम्यक्त्वनुं कथन करवुं पण डुलहं--डुर्लन छे. अहीं दृष्टांत कहेछेः–जह– जेम पावनरिंदस्स उदयम्मि--पापी एटले अन्याई राजानो उदय थयो छतां वरनरवइ चरियं--प्रधान न्यायवंत नृपतिना चरित्रनुं वर्णन करवुं डुर्लन छे तेम ते पण जाणी लेवुं.॥१७॥

अवतरणः--विशुद्ध सम्यक्त्वनुं कथन करवुं पण डुर्लन छे, तथापि उत्सूत्र नाषी ड्रव्यलिंगीनो त्यागकरवो योग्य छे ते कहेछेः-- मूलः-- बहु गुण विज्जा निलओ, उसुत्त नासी तहा विमुत्तवो ॥ जह वर मणि जुत्तो विहु, विग्घ करो विसहरो लोए ॥ १८ ॥ दोहाः-- बहु गुण विद्या गेहजो, तदपि उसूत्री हेय ॥ जिम वर मणिजुत विघ्न कर, विषधर लोक विषेय ॥ १८ ॥ व्याख्याः-- बहु गुण–जोपण घणी आकरी क्रिया करवादिरूप घणा गुण विज्जा–चौद श्रुतरूप विद्यानुं निलओ–घर छे, अथवा बहु गुणवालो विद्यानुं घर छे, तहावि–तोपण उस्सुअनासी–उत्सूत्र नाषण करनारा ड्रव्यलिंगीनो मुत्तवो--त्यागकरवो योग्य छे. एविषे दृष्टांत कहेछेः–जह–जेम वरमणिजुत्तोवि–श्रेष्ट मणि रत्नकरी युक्त छतां पण हु–निश्चय करी विग्घ करो–विघ्नने करनारो एहेवो विसहरो–विषधर जे सर्प ते लोए–लोकने

विषे अथवा लोकोए ढांडवा योग्य छे. एनो नावार्थः—जेम सर्प अमूल्य मणिने धारण करनारो छतां विषमयी होवाथी त्याग करवा योग्य छे ; तेम कोइ पुरुष बहु गुणयुक्त विद्यावान छतां उत्सूत्रनाषी होय तो अवश्य त्याग करवा योग्य छे.॥१८॥

अवतरणः— अतिशय करी जे मोह ते व्यामोह कहेवायछे. तेम उत्सूत्रनाषी इव्यलिंगी जे गुरु ते, कुलक्रमथी चाल्या आवेछे, माटे तेने केम मूकाय! जो हुं त्याग करुं तो सज्जन लोको मारो त्याग करे, अथवा वमाडए अंगीकार करेलो चाल मुकी दैये तो बाप दादानुं नाम जाय, इत्यादिक जे विचार करवो ते स्वजन व्यामोह कहेवायछे ; तेज दर्शावेछेः— मूलः—सयणाणं वामोहे, लोआ घिप्पंति अब लोएण ॥ नो घिप्पंति सुधम्मे. रम्मेहा मोह माहप्पं. ॥ १९ ॥ दोहाः—स्व जन नेह धन लोज करि, सेवै लोक मिथ्यात ॥ रम्य धर्ममें नवि रमै, है अज्ञान उतपात ॥१९॥ व्याख्याः— सयणाणंवामोहे--स्वजनना व्यामोहेकरी, अबलोहे— अर्थना लोनेकरी, एटले मंत्र तंत्रादिकनुं अर्थ जे प्रयोजन अथवा अर्थ जे धन तेना लोनेकरी, लोआ -सामान्य लोक जे छे ते, घिप्पंति--ग्रहण करेछे एटले पो ताने वश करेछे ; अने रम्मे- रमणीय जिन नाषित सुधम्मे--जे सारो धर्म छे ते नोघिप्पंति—ग्रहण करता नथी हा--मोटी खेदनी वात छे ; जुवो मोहमाहप्पं--मो हनुं केटलुं माहात्म्य एटले महिमा छे एनो नावार्थः--स्वजन अथवा धनना लोने करीने लोको मिथ्यात्वनुं सेवन करे छे ; अने रम्य जे जिन धर्म तेने मूकी दिये छे ए मोहनुं महात्म्य छे ॥ १९ ॥

आशंकाः--सर्व लोक मोहने वश थया थका मिथ्यात्वनी सेवना करेछे एम कह्याथी सर्वने अधर्मनो प्रसंग प्राप्त थशे! ए शंकानुं निराकरण करेछेः--मूलः— गिहवावार परिस्सम, खिन्नाण नराण वीसमण ठाणं ॥ एगाण होइ रमणी, अ न्नेसि जिणिंद वर धम्मं ॥ २० ॥ दोहाः— गृह व्यापार परिश्रमे, खिन्न थया नर तांहि ॥ इकनारी विश्राम हे, अन्य जिनागममांहि. ॥ २० ॥ व्याख्याः-- स्त्री पुत्रादिक कुटंब परिवार गिह एटले घरने अर्थे, वावार—दंत लाख रसादिक अनेक विध व्यापार करतां थयो जे परिस्सम—परिश्रम एटले खेद तेणे करी खि न्नाण—खिन्न एटले थाक लाग्याथी आकुल थयला एवा एगाण—एकेक नराण— मनुष्यने वीसमणठाणं—विश्रामनु स्थान ते रमणी—स्त्री होइ—छे. केमके, तेउ नारी कर्मीजीवो छे माटे, अने अन्नेसि—बीजाने एटले सुदृष्टिवंत जीवोने विश्रामनुं स्थान जिणंदवर धम्मं—जिनेंद्रनो नाषेलो प्रधान धर्म छे. अर्थात् जे नारी कर्मी माण

तो छे तेउने स्त्रीनो संग प्रीय लागेछे, अने जे हलुकर्मी माणशो छे तेओने जिन धर्म कर्त्तव्य प्रीय लागेछे ॥ २० ॥

अवतरणः—मूढ तथा अमूढ पेट जरवामां सरखां छे. पण कर्मविपाकेकरी सरखा नथी ते कहेछे. मूलः— तुल्लेवि उअर जरणे, मूढ अमूढाण पिछ सु विवागं ॥ एगाण नरय डुरकं, अन्नेसिं सासयं सुरकं ॥ २१ ॥ दोहाः— सम पिण उदर जरे जुओ मूढ अमूढ विपाक ॥ मूढ लहे नरकादि डुख, निपुण लहे शिव नाक ॥ २१ ॥ व्याख्याः— जेना अरस परस उयर जरणे—उदरनुं जरवुं एटले पेट जरवुं अथवा घरना व्यापार कार्यनुं करवुं ते तुल्लोवि—तुल्य एटले सरखा छे तोप ण मूढ अमूढाण—मूढते अविवेकी अजाणलोक अने अमूढ ते विवेकी धर्मना जाण लोक छे, तेओना विवागं—विपाक एटले कर्मनो शुजाशुज रस ने पिछसु—हे जाई तुं देख; एगाण—एक एक केटलाएक निर्विवेकी महारंजी महापरिग्रही. तथा मि थ्यादृष्टि जीवो छे तेओने नरयडुरकं—नरकनुं डुःख छे. उपलक्षणथी तिर्यंच तथा निगोदनुं डुःख पण जाणवुं. अन्नेसिं—बीजा जे सम्यक्दृष्टि देशविरति धर्मज्ञ विवे की जीवो छे तेओनें सासयंसुरकं मोटी स्थिति आश्री देवलोकसंबंधी शाश्वत सुख छे. उपलक्षणथी परंपराएकरी मोक्षना सुखनो पण संजव छे मूढ तथा अमूढ ना विपाकमां एटलुं फरक छे माटे मूढपणानो त्याग करवो योग्य छे ॥ २१ ॥

अवतरणः—हवे बे गाथाए करी अमूढपणानी प्राप्तिनो उपाय प्रगट करीने कहे छेः— जिण मय कहा पबंधो, संवेग करो जियाण सव्वोवि ॥ संवेगो सम्मत्ते, स म्मत्तं सुद्ध देसणया ॥२२॥ ता जिन आण परेणं, धम्मोसो अव्व सुगुरु पासम्मि॥ अह उचियं सङ्घाओ, तस्सुवएसस्स कहगाओ ॥२३॥ दोहाः— जिनमत कथा प्रबंध सब, जण संवेग उपाय ॥ संवेग तु समकित छते समकित सुद्ध गिराय॥२२॥ तो जिन आण परे धरम, सुणवो सुगुरु सकाश ॥ अथवा तत उपदेशको, कथ क सु श्रावक पास ॥ २३ ॥ व्याख्याः— सव्वोवि— सर्व जिणमय कहा पबंधो— जिन मतनी कथानो प्रबंध अथवा निबंध ते जियाण—हलुकर्मी जव्य जीवोने संवेग करो—संवेग ते मोक्षाजिलाष, तेनो करनार छे. अने संवेगो सम्म त्ते—संवेग ते सम्यक्त्व छतां छे एटले सम्यक्त्व छतां संवेग होय छे. सुद्ध देस णया—उत्सूत्र मल कलंक रहित सुद्ध देशनाए करी सम्मत्त—सम्यक्त्व होयछे. ए नो जावार्थः— हलु कर्मी जीवोने जिन मतनी कथाना सर्व प्रबंधो अथवा स र्वे निबंधो संवेगना जनक छे. ॥ २२ ॥ ता—ते कारण माटे जिनआणपरेणं—

जिनराजनी आज्ञानेविषे जे तत्पर प्रधान छे ते मनुष्ये, सुगुरु पासम्मि–सारा गुरुनी पासे एटले सम्यक् ज्ञान दर्शन तथा चारित्रवान गुरुनी पाशे धम्मो–धर्म सोअव्व–सांजलवुं योग्य छे. अह–अथ एटले जो तेवा मुनि महाराजनो योग न थाय तो उचियं- उचित प्रमाणे तस्सुवएसस्स- ते सुगुरु जाषित धर्म उपदेशनो कहगाओ--वक्ता पण पोतानी मतिथी कहेनार नही एहेवो सड्ढाओ-श्रावक जे धारणादिक गुणेसहित होय तेने समीपे धर्म सांजलवो पण बीजानी पाशेथी सांजलवुं नही एनो जावार्थः--जिनाज्ञा पालनार प्राणीए सुगुरुनी पाशेथीधर्मनुं श्रवण करवुं, तेनो योग न थाय तो कोई धारणादि गुणे सहित श्रावकनी पासेथी सांजलवुं पण अनेरा पासेथी कदी पण सांजलवुं नही. ॥ २३ ॥

अवतरणः– धर्मोपदेश सांजल्याथी सम्यक्त्वादिकनुं जाणपणुं थायछे ते श्रेष्टछे ते कहेछेः-- मूलः-- स कहासो उवएसो, तन्नाणं जेण जाणई जीवो ॥ सम्मत्त मिछ जावं, गुरु अगुरू धम्म लोअ ठिई ॥ २४ ॥ दोहाः– कथा ज्ञान उपदेशते जाणे जाते जीव ॥ समकित अरु मिथ्यात्वनो, जाव त्रिलोक थितीव ॥ २४ ॥ व्याख्याः– सकहा- ते कथा सो उवएसो–ते उपदेश तन्नाणं- ते ज्ञान जेण–जेणे करी जीवो- जीव सम्मत्तमिछजावं--सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वना जाव अथवा स्वरूपने गुरुअगुरू–सुगुरु अने अगुरु एटले कुगुरुना जावने तथा धम्म–जिन धर्मनी स्थितिना जावने अने लोअठिई लोकनी स्थितिना स्वरूपने जाणइ–उपादेय तथा हेयपणे जाणे एनो जावार्थः-- जेणेकरी जीव सम्यक्त्वादिकना स्वरूपने जाणी शके नही ते कथा पण नही ते उपदेश पण नही अने ते ज्ञानपण कहेवाय नही. ज्ञानादि रत्नत्रय संयुक्त ते सुगुरु कहेवाय छे, तेथी विपरीत ते कुगुरु कहेवायछे. रात्रि जोजननी विरति प्रमुख ते धर्मस्थिति कहेवायछे; अने धन धान्यादिके करी प्राये ग्रहस्थ शोजेछे, अथवा लोकविरुद्ध न करवुं ते लोकस्थिति कहेवायछे. ॥ २४ ॥

अवतरणः-- जिन वचन सांजल्याथकी पण केटलाएक जारी कर्मी जीवोनुं मिथ्यात्व जतुं नथी ते कहेछे. मूलः– जिण गुण रयण महा निहि, लद्धूणवि किंन जाइ मिछत्तं ।। अह पत्तेति निहाणे, किवणाण पुणोवि दारिद्दं ॥ २५ ॥ दोहाः– जिन गुण मणि निधि पाय कर, किम न थाय मिथ्यात ॥ निधि पाये पिण कृपणके, वलि दरिद्र विख्यात ॥ २५ ॥ व्याख्याः-- जिण गुण रयण महा निहि–जिनराजना सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादिक गुणरूप रत्नना द्वादशांग सि

द्धांतरूप महा निधिने लहूणवि–पामीने पण एटले सांजलीने पण अनिनिवेश मिथ्यात्वी जीवोनुं मिछत्तं–मिथ्यात्व ते अतत्वश्रद्धारूप किंनजाइ–केम जतुं नथी. एवो शिष्ये प्रश्न कस्यो तेनो गुरु उत्तर आपेछेः– अह–अथ निहाणे पत्ते–रत्न तथा सुवर्णनुं निधान प्राप्त थयुं ढतां पण किवणाण–कृपण पुरुषोनुं पुणोवि–तो पण दारिद्दं–दारिद्र्य केम जतुं नथी, अर्थात् कृपण पुरुषने रत्न अथवा सुवर्णादि कनुं निधान मल्युं ढतां पण तेनुं दारिद्र्य जतुं नथी, तेम जिन गुण रत्न सिद्धांत महानिधिप्रते काने सांजलीने पण जारी कर्मी जीवोनुं मिथ्यात्व जतु नथी॥२५॥

अवतरणः– जेम जिनागम सम्यक्त्वादिक धर्मनु कारण ढे, तेमज जिनना उपदेशेला पर्यूषणादिक रूडा पर्वो पण सम्यक्त्वादिक धर्मनुं कारणढे ते कहेढे. मूलः– सो जयउ जेण विहिया, संवछर चाउमासिय सुपवा ॥ निद्धंधसाण जायइ, जेसि पनावओ धम्ममई ॥ २६ दोहाः– धर्म पर्व संवत्सरी. चतुर्मासि आदेय ॥ थाप्या जेणे जयतु ते, पापी सुमति धरेय ॥ २६ ॥ व्याख्याः– सो–ते जिन जयउ–जयवंता थायो जेण–जेणे संवछर चाउमासिय सुपवा–सांवत्सरक पर्यूषणा पर्व तथा चतुर्मासिक त्रण (उपलक्षणथी चौदस पूर्णमासि अष्टम्यादि ढपर्वि तथा कल्याणिक तिथि रूप पर्वने) विहिया–उत्पन्न कस्या ढे, जेसि–जे पर्वोना पनावाउ–प्रजावथकी निद्धंधसाण–निर्दृस प्राणीयोनी एटले निर्दय प्राणीयोनी पण धम्ममइ–धर्म करवानी मति तथा जिन धर्म प्रशंसवानी मति एटले बुद्धि जायइ–थायढे. एनो जावार्थः– पर्यूषणादिक सुपर्वनेविषे चतुर्विध श्रीसंघ, विशेष पणे चतुर्विध धर्मनेविषे उद्यम करेढे ; तेने जोई निर्दय प्राणीउनी पण जैन धर्म अंगीकार करवानी अथवा प्रशंसवानी मति थायढे, त्यारे दयावंत प्राणीयोनी थाय तेमां शुं कहेवुं ! माटे जेणे सुपर्व थाप्याढे ते जिनराज जयवंता थाओ.॥२६॥

अवतरणः– सुपर्वनेविषे कहीने हवे कुपर्वनेविषे कहेढेः– मूलः– नामंपि तस्स असुहं, जेण निदिठाइ मिछ पवाइ ॥ जेसिं अणुसंगाउ, धम्मीणवि होइ पाव मई ॥ २७ ॥ दोहाः– पाप पर्व जेणे रच्या, अशुन नाम पण तास ॥ धर्मीने पण जेहथी, पाप मतीनो वास ॥ २७ ॥ व्याख्याः– तस्स–तेनुं नामंपि–नाम पण असुहं– अशुन ढे, एटले पाप ढे. जेण–जेणे मिछ पवाइ–मिथ्यात्वना पर्व निदिठाइ–उत्पन्न कस्या ढे अथवा तेनो उपदेश कस्यो ढे. जेसिं– जे पर्वोना अणुसंगाउ–अनुसंग थकी एटले प्रसंग थकी धम्मीणवि–धर्मी लोकोनी पण पाव मई–पाप मति एटले पाप करवानी बुद्धि होइ–थायढे. एनो जावार्थः–होली, धु

लेटी, विजयादशमी, गणेश चोथ, नाग पंचमी, पाप नवमी, [illegible] बारस, तथा धन तेरस इत्यादिक अनेक मिथ्यात्वना पर्वोने दिवसे घणा पाप, उपद्रव, हास्य कुतुहल थाय छे, जेना प्रसंगथी धर्मी पुरुषोनी पण पाप मति थाय छे. त्यारे अधर्मी लोकोनी ते शी वात कहेवी! माटे जे पुरुषे मिथ्यात्व पर्वोनी स्थापना करीछे ते पुरुष नुं नाम पण अशुन जाणवुं; एटले तेनुं नाम लीधाथी पण पाप लागेछे ॥१७॥

अवतरण--उपरनी बे गाथाना अनुसारे तो ज्यारे सुपर्व आवे छे. त्यारे सर्वने धर्ममति उत्पन्न होवाथी बधा धर्मी थवा जोये; अने ज्यारे कुपर्व आवे छे त्यारे फरी तेओनीज पाप बुद्धि थई जवाने लीधे बधा पापी थवा जोये. त्यारे कोईनो स्थायीनाव सिद्ध थशे नही एटले सर्व जन पापी अने धर्मी ठरशे. ए आशंका दूर करवाने उत्तर कहे छेः-- मूलः--मज्झिझ पुण एसा, अणुसंगेणं हवंति गुण दोसा ॥ उक्किठ पुस पावा, अणुसंगेणं न घिप्पंति ॥ १८ ॥ दोहाः- ज्हेवे संगे जे हवो, ते नर मध्यम होय ॥ अति धर्मी अति पातकी, ते तो फिरे न कोय ॥१८ व्याख्याः-- पुण तेमां मज्झिझ- मध्यम पुरुषनी स्थिति एटले मर्यादा एसा-ए छे; अणुसंगेणं- अनुसंगे करीने एटले परना प्रसंगे करीने गुणदोसा- गुणवान तथा दोषवान हवंति-थायछे, एटले गुणीना प्रसंगथी गुणी तथा निर्गुणीना प्र संगथी गुण रहित थाय छे, ए मध्यम पुरुषनी स्थिति छे, परंतु उक्किठ पुणपावा- जे उत्कृष्ट पुण्यवंत धर्मी तथा जे उत्कृष्ट पापी अधर्मी छे ते अणुसंगेणं- पर प्र संगेकरी न घिप्पंति- ग्रहण कर्या जता नथी. एनो नावार्थः- उत्कृष्ट धर्मीने पापीनो प्रसंग थाय तो पण तेनी पापमति थती नथी, अने उत्कृष्ट जे पापी होय तेने धर्मीनो प्रसंग थाय तोपण तेने धर्म मति थती नथी; अने जे मध्यम पुरुष होयछे तेजज न्यूनाधिकताने पामे छे. जे अति पापी तेमज अति पुन्यवान नहोय ते मध्यम पुरुष कहेवाय छे. ॥ १८ ॥

अवतरणः--वली एनेज वली दृढावेछे.--मूलः--अइसय पाविय पावा, धम्मिअ प वेसु तोवि पाव रया ॥ न चलंति सुद्ध धम्मा, धन्ना किविपाव पवेसु ॥१९॥दोहाः-अति शय पापी पापरत, रहे सुपर्वे जेम ॥ पाप कुपर्वे धर्मथी, धन्य चले नहि तेम ॥१९॥ व्याख्याः--जे माटे एम छे तो--तेमाटे अइसय पाविय पावा-अतिशय एटले उत्कृष्ट पाम्युं छे पाप जेणे, एटले जे उत्कृष्ट पापी पुरुष छे, ते धम्मिअपवेसुवि-धर्मी पुरु षो संबंधी पर्यूषणादिक पर्वोनेविषे पण पावरया--पाप रत होयछे, एटले पाप क र्मनेविषे आसक्त रहेछे. किवि- तेमज केटलाएक धन्न--धन्य एटले पुन्यवंत प्राणी

ड पापपर्वेसु--पाप पर्वोनेविषे पण शुद्ध धम्मा--शुद्ध धर्मथकी नचलंति--चलायमा न थता नथी. अने नवीन धर्मी जीवोने स्थिर राखवाने अर्थे दर्शन भ्रष्ट पासत्था दिकनो तथा अन्य दर्शनी कुलिंगीनो प्रसंग पण करता नथी, घणो कहेवाथी शुं

अवतरणः-- जेम सुपर्व अने कुपर्व ए बे प्रकारना पर्व कह्याछे, तेम सुलक्ष्मी तथा कुलक्ष्मी ए बे प्रकारनी लक्ष्मी छे ते बतावेछेः-- मूलः-- लच्छीवि हवइ डुविहा, एगा पुरिसाण खवइ गुण रिद्धि ॥ एगाय उल्लसंती, अपुन्न पुन्नाणु जावाउ ॥ ३० ॥ दोहाः-- लक्ष्मी दोविध एक तो, नर गुण धण क्षयकार ॥ एक दिपावै पुरुषकूं, पाप पुन्य अनुसार ॥ ३० ॥ व्याख्याः--लच्छीवि--लक्ष्मी पण डुविहा--बे प्रकारे हवइ- छे. तेमां एगा--एक तो अज्ञान कष्टादिके करी प्राप्त थएली जे छे ते पुरिसाण--पुरुषोनी गुणरिद्धी--ज्ञानादिक गुणरूप रिद्धिने खवइ--क्षय करेछे, एटले नाश करेछे. य--वली एगा--एक सुपात्र दानादिकेकरी प्राप्त थएली जे लक्ष्मीछे ते पुरुषोनी ज्ञानादिक गुणऋद्धिने उल्लसंती--उल्लासने पमाडे छे एटले वधारेछे. अपुन्न पुन्नाणु जावाउ--पाप धर्मना अनुजाव थकी एटले प्रजावथकी ते लक्ष्मी बे प्रकारे होयछे. अपुन्न--पाप अज्ञान कष्टादिक, तेना प्रजावथी प्राप्त थएली जे लक्ष्मी ते गुणऋद्धिने नाश करेछे; अने पुन्न--पुन्य धर्म सुपात्र दानादिक, तेना प्रजावथकी प्राप्त थएली जे लक्ष्मी ते गुण ऋद्धिनी वृद्धि करेछे. ॥ ३० ॥

अवतरणः-- ते लक्ष्मी लेवा देवामां जेम दोष थायछे तेम कहेछेः-- मूलः-- गुरुणो जट्टा जाया, सड्ढे थुणिऊण लिंति दाणाइं ॥ डुन्निवि अमुणिय सारा, दूसम समयम्मि वुडुंति ॥ ३१ ॥ दोहाः-- जाट थया गुरु श्राद्धने, स्तवी लेत दानादि ॥ तत्व अजाण दुए बुडे, डुसम्म समए प्रादि ॥ ३१ ॥ व्याख्याः--गुरुणो--नाममात्र गुरु केवल बाह्य लिंग रजोहरण मुख वस्त्र धारीने आजीविकानो करनार, जट्टा जाया--जाट थया एटले जाटनी पठे कीर्त्ति वंचनाना बोलनार थया सड्ढे--नाममात्र श्रावकने थुणिऊण--स्तवीने एटले अहो महाजाग्य, पुन्यवंत, अहो कल्पवृक्ष, मनोवंछित पूरक, देवगुरु जक्तिकारक, जिन आज्ञा प्रतिपालक, श्राद्धव्रत धारक, हीन दीनोद्धारक, धीर गंजीर औदार्यादि गुण गणैरलंकृत इत्यादिक स्तवना करीने दाणाइ--असनादि आहार वस्त्र पात्र कंबल पाद पुसणादिक वस्तु लिंति--लियेछे. डुन्निवि--ते बन्ने एटले स्तवना सांजलीने वस्तुने देवावालो ग्रहस्थ अने स्तवना करीने वस्तुने लेवावालो कुगुरु अमुणियसारा--जेउए सिद्धां

तनो सार एटले परमार्थ जाण्यो नथी, तेउ दूसमसमयम्मि–दुःषम कालरूप समु द्रनेविषे वुड्डंति– बूडेछे; एटले नरक निगोदादिकनेविषे प्राये घणा कालसुधीनमेछे३१

अवतरणः– गत गाथामां परमार्थने न जाणनारा बूडेछे एम कह्युं, ते परमार्थने न जाणनारा घणा छे अने परमार्थने जाणनारा थोडा छे ते कारण सहित कहेछे. मूलः– मिछ पवाहे रत्तो, लोओ परमछ जाणओ थोवो ॥ गुरुणो गारव रसिआ, सुद्धं धम्मं निगूहंति ॥ ३२ ॥ दोहाः– मिछ प्रवाहे रत घणा, लोक स्तोक सबुद्ध ॥ गारविरस लंपट गुरु, गोपे धर्म विसुद्ध ॥ ३२ ॥ व्याख्याः– मिछपवाहे–मिथ्या एटले विचार रहित फगानेविषे रत्तो–रक्त एटले आसक्त एवा लोओ– जे लोक छे; ते घणा छे. ते लोकोथकी तथा सम्यक्त्वना पडिवाइ थकी परमछ जाणओ–परमार्थना जाण पुरुषो हमणा घणाज थोवो–थोडा छे; कारण के गारव रसिआ–ऋद्धि रस साता गारवनेविषे रसिक एवा गुरुणो–नाम मात्र गुरुछे; ते सुद्धं धम्मं–निर्मल जिन भाषित तपसंयमरूप धर्ममार्गने निगूहंति–गोपवेछे. केमके, शुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करीश तो मने कोण वांदशे! तथा पूजशे! एवी स्थापना करीने शुद्ध मार्गने प्रकाश करता नथी; माटे परमार्थना जाण पुरुष थोडाछे.३२

अवतरणः– वली बीजो हेतु बतावे छे. मूलः– सव्वोवि अरिह देवो, सुगुरु गुरू भणइ नाम मित्तेणं ॥ तेसि सुरूवं सुहयं, पुन्न विहूणा न पावंति ॥ ३३ ॥ दोहाः– अरिह देव सुगुरू गुरू, नाम मात्र सवि कहत् ॥ ताके सुभग सुरूपकूं, पुन्यहीण नहि लहत् ॥ ३३ ॥ व्याख्याः– परंपरा गत जे श्रावक कुल, तेनेविषे उपजेला ते सव्वोवि–बधाउने पूछीये तो नाममित्तेणं–नामात्रे करीने भणइ–एम कहेछे के, अरिह देवो–अरिहंत जे वीतराग ते देव, सुगुरुगुरु–संविज्ञ गीतार्थ ते गुरु, उपलक्षणथी श्रीवीतराग भाषित श्रुत चारित्ररूप ते धर्म; एम नाममात्र थी कहेछे, केमके, तेसि–ते देव गुरु तथा धर्मनुं सुहयं–सुख दायक इष्टकारी एवुं जे सुरूवं–स्वरूप, तेने पुन्नविहूणा–रूडा पुन्यथी रहित प्राणी न पावंति– पामता नथी, माटे परमार्थना जाण वर्त्तमान कालनेविषे थोडा अथवा कोई विरला छे. ॥ ३३ ॥

अवतरणः– शुद्ध मार्गना उपदेशक तो छे तोपण हमणा परमार्थना जाण पुरुष थोडा केम कहोछो? एवो शिष्यनो संशय दूर करवा निमित्त गुरु कहेछे के अहो भद्र, सांभलः–॥ मूलः– सुद्धा जिण आण रया, केसिं पावाण हुंति सिर सूलं, जेसिं ते सिरसूलं केसिं मूढाण ते गुरुणो ॥३४॥ दोहाः–शुद्ध जिनाज्ञा रत हुवे, कै खलने शिर सूल ॥ जेने ते शिरसूल फुन, ते गुरु सठ अनुकूल ॥ ३४ ॥ व्याख्याः–

जिण आणरया– जिन राजनी आज्ञा पालवानेविषे रक्त एटले सावधान होवाने लीधे सुद्धा– निर्मल चित्तवाला एवा जे संविज्ञ गीतार्थ शुद्ध मार्गोपदेशक छे ते केसिं पावाण–केटलाएक पापी श्रमणोना सिरसूलं–माथानुं सूल हुंति– थायछे; एटले शुद्ध मार्गनी देशना कोईक प्रकारे सांजलीने त्रासने पामे छे. एवा जेसिं– जे पापी श्रमण केवल वेशधारी होय छे, तेउने ते शुद्ध मार्ग उपदेशक पुरुष सिरसूलं–माथाना शूलना जेवा लागे छे. ते–ते पापी श्रमण निःकेवल वेषधारी केसिंमूढाण– केटला एक मूढ अजाण लोकोना गुरुणो–गुरु छे, एटले पूज्य छे. एनो जावार्थः– जे पापी श्रमण पार्श्वस्थी जैनाजास निःकेवल वेष धारी संविज्ञ पक्षीना गुणे करीने पण रहित एवा तथा तेउना सम्यक् ज्ञान विकल एवां जक्त लोक तो घणा होय छे, पण सत्य असत्यना विवेकी परमार्थ कुशल कोई विरलाज होय छे

अवतरणः– अशुद्ध मार्ग प्ररूपक कुगुरुने तथा तेना जक्त लोकोने जोईने ग्रंथकार खेद सहित वचन कहे छे ॥ मूलः– हा हा गुरु अ अकज्जं, सामी न हु अत्थि कस्स पुक्करिमो ॥ कह जिण वयण कह सुगुरु, सावया कह इय अकज्जं ॥३५॥ दोहाः– गुरु अकार्य हानहि घणी, करिये कहा पुकार ॥ सुगुरु श्राद्ध जिन वचन कह, कहा अकार्य असार ॥ ३५ ॥ व्याख्याः– हा हा–अति मोटो खेद थाय छे; गुरु अ अकज्जं–कुगुरुने मानवुं तथा पूजवुं इत्यादिरूप वर्त्तमान समयनेविषे मोटुं अकार्य थाय छे, एवी रीते दयालु सुगुरुनां वचन सांजलीने कोई एक बोल्यो के त्यारे पुकार करो; एटले कोई सुधर्मी राजा प्रमुखनी पाशे फिरियाद करो. त्यारे गुरु कहेवा लाग्या के हे जइ, सामी–सुराजकुलोत्पन्न लोकहित कारक डुर्नीति निवारक कोई राजा नअछी–नथी. तो हु–निश्चये कस्स–कोनी आगल पुक्करिमो–अमे पुकार करिये! माटे फिरियाद करवी निरर्थक छे; एवां गुरुनां वचन सांजलीने वली ते बोल्यो के, त्यारे प्रथम 'हा हा गुरु अ अकज्जं' ए वाक्य तमे केम बोल्या? गुरुए कह्युं एटला वास्ते के, कह–क्यांहां जिणवयणं–सकल नय समूह, अखिल दोष रहित, एवां जिनवचन एटले सर्वज्ञ जाषित वचन, अने कह– क्यांहां सुगुरु सावया– सुगुरु तथा श्रावक अने कह– क्यांहां गुरु अ अकज्जं– सम्यक् ज्ञान क्रिया थकी च्रष्ट अविधि मार्गना उपदेशक, एवा जे कुगुरु, तेउनी सेवनारूप मोटुं अकार्य जे छे ते केटलो अनर्थ कारी छे!! जिनराजना नामादिक लई, तथा अशुद्ध मार्गनी प्ररूपणा करी करीने ते

कुगुरु पोताने तथा पोताना जक्त लोकोने डुर्गतिमां नाखे ठे; एवा करुणा जाव थी 'हा हा गुरु अ अकज्जं' ए वाक्य बोलवामां आव्युं ठे ॥ ३५ ॥

अवतरणः— पूर्वे गाथामां कुगुरुनी सेवनारूप मोटुं अकार्य कह्युं ते यथार्थ जाणीने कोईक हलुकर्मी जव्यजीव ते गुरुनो त्याग करे तेने मूढ लोक डुष्ट कहेठे, ते दृष्टांतेकरि कहेठेः—मूलः—सप्पे दिठे नासइ, लोउ न हु किंपि कोइ अक्खेई ॥ जो चयई गुरु सप्पं, हा मूढा जणइ तं डुठं ॥ ३६ ॥ दोहाः— साप देख नासे कुई, लोक कहे कबु नाहि ॥ कुगुरु सापथी जे नसै, मूढ कहे खल ताहि ॥ ३६ ॥ व्याख्याः—लोउ—लोक सप्पे दिठे—सर्पनेदेखीने नासइ—नाशी जाय तेने कोइ—कोई माणस किंपि—कांई अक्केइ—कहेता न—नथी. हु—निश्चये, एटले तेने कोई एम कहेतो नथी के तुं कायर ठे, बीकण ठे, अथवा नपुंसक ठे इत्यादिक कोई नरशुं वचन कहेता नथी, उलटुं सारुं कहेठे, के तारुं मोटुं जाग्य जे तुं सापनी पासेथी नाशी गयो. अने जो—जे पुरुष कुगुरु सप्पं—कगुरुरूप सर्पने चयइ—त्याग करेठे एटले तेने मूकी दियेठे; हा—इतिखेदे मूढा—मूढ अज्ञानी लोक तं—ते कुगुरुरूप सर्पने मूकी देनारने डुठं—डुष्ट, जाग्यहीण, पोताना बाप दादादि पूर्वजोनी कुलमर्यादानुं उल्लंघन करनार ठे एम जणइ—कहेठे; पण सारुं कहेता नथी; एटले तुं कुगुरुरूप सर्पथी बची गयो ए घणुं सारुं थयुं माटे तुं मोटो जाग्यवान ठे एम कहेता नथी; केमके सर्प अने कुगुरुमां केटलुं अंतर ठे ते तेउ जाणता नथी. ॥३६॥

अवतरणः— हवे सर्प अने कुगुरुमां घणो अंतरायठे ते कहेठेः— ॥ मूलः— सप्पो इक्कं मरणं, कुगुरु अणंताइ देइ मरणाइ ॥ तो वरिसप्पं गहियुं, मा कुगुरू सेवणं जद्दं ॥ ३७ ॥ दोहाः— एक मरणकूं साप दे, कुगुरू मरण अनंत ॥ श्रेष्ट साप ग्रहवुं तदा, कगुरु सेव नहि संत ॥ ३७ ॥ व्याख्याः—सप्पो—सर्प इक्कंमरणं—एकजवार मरणने दियेठे; अने कुगुरु— अगीतार्थ तथा विधिमार्गना अजाण जे कुगुरु ते अनंताइ मरणाइ देइ—अनंतवार मरणने दियेठे; ज्यारे अगीतार्थ कुगुरुनी एवी कथा ठे, त्यारे जे सर्व गुणेकरी रहित कुगुरु होय तेनुं शुं कहेवुं! तो—ते माटे जद्दं—हे जड, सप्पंगहियुं—सर्पने मणिलेवादिकने अर्थे जे ग्रहण करवुं ते वर—श्रेष्ट ठे पण कुगुरुसेवणं—कुगुरुनी सेवा अथवा पूजा मा- करीश मा. अर्थात् हे जड, रखे कुगुरुनी सेवना तुं करे कदापि करवी नही, तुं पोतानुं कल्याण इछनार तथा सरल स्वजावनो होवाथी आ उत्तम सीखामण हुं तने आपुंछुं॥३७॥

अवतरणः—एवी रीते पूर्वे गाथामां सर्पथकी पण कुगुरुने नूंमो कह्यो तेम

छतां तेने लोको गुरुबुद्धिए नमेछे तेनुं कारण शुं? ते छलायाने लीधे मानेछे एम दृष्टांत सहित कहेछे.:— जिण आणा विचयंता, गुरुणो नणिऊण जं न मिग्यंति॥ ता किं कीरइ लोओ, छलिओ गडुरि पवाहेणं ॥ ३० ॥ दोहाः— जिण आज्ञाथी रहितने, गुरुकहि जो शिर नाय ॥ गम्रर प्रवाहे जण छल्यो, तो सुं करिये नाय॥ ॥ ३० ॥ व्याख्याः— जिण आणा— समिति गुप्ति महाव्रतादि जिण नाषित क्रिया अनुष्ठानरूप जे जिनराजनी आज्ञा, तेने विचयंता—विशेषे करी त्याग करनार एवो जे कुगुरु, तेने गुरुणो— गुरु नणिऊण— कहीने एटले जाणीने जं— जो नमिग्यंति—लोक नमेछे, ता—तो किंकरइ—शुं करिये! एनो कोई उपाय नथी. केम के, गडुरि पवाहेणं—गाडरीना प्रवाहनी पठे विचार रहित मूर्ख लोकोनी जे चाल तेणे करीने लोओ—लोको छलिओ—छलाई गया छे. ते जाणे दिग्मूढपणाने, अंधपणाने, बधिरपणाने पाम्या होयनी! एवा ए लोक थई गया छे. तथा तेओने जाणे डुष्टग्रह तथा नूत वलग्या होयनी! तथा तेओनी ऊपर योग चूर्णादिक नाषीने जाणे कोईये वश करी लीधा होयनी! केमके सिद्धांतथी बधुं विपरीत आचारे चालेछे, तेमज बीजाने पण चलावेछे. एवा कुगुरुने गुरु करीने मानेछे माटे ए लोक गाडरीया प्रवाहे करी छलाया छे, तेओने हवे सुधारवानो कांई उपाय विचारमां आवतो नथी. ॥ ३० ॥

अवतरणः—पूर्व गाथामां कह्युं के लोको छलाई गयाछे ते ऊपर कोई एवी आशंका करेके, लोको गुरुने दाक्षिण्यताने लीधे नमता हशे! एटले चतुराईवाला जाणीने नमता हशे! तेने हितोपदेशक गुरु कहेछे के, नाई ए ठेकाणे लोको चतुराईथी रहितछे, ते सांनलः—मूलः—निद्दक्खिन्नो लोओ, जइ कुवि मग्गेइ रुट्टिया खंमं॥कुगुरूण संग चयणे, दक्खिन्नंही महामोहो॥३१॥ दोहाः—लोक अदाक्षणि कोइ जो, मागे रुटिया नाग॥कुगुरु संगत्यागनविषे, दाक्षणता धिग राग॥३१॥ व्याख्याः—निद्दक्खिन्नो—दाक्षिण्यथीरहित लोअ-आ लोको छे, केमके, जइ-जो कुवि-कोई पण नूखेकरी पीडित रांक माणस रुट्टियाखंमं—रोटीनो खंम एटले रोटलीनो एक ककडो मग्गेइ—अन्नदाता, सेठ साहेब इत्यादिक चाटुक वचने करी मागेछे, तो पण तेने ते आपतां नथी, उलटां डुर्वचनो बोलीने कहाडी मूकेछे. अने कुगुरूण संग चयणे—कगुरुनो संग त्यागवाने विषे दक्खिन्नं—दाक्षिण्यपणुं करेछे. एटले एमने मारा बाप दादादिक मानता आवेला छे, वली मारा गछना कहेवायछे; माटे केम छोडाय! एम लोक कुगुरुनी दाक्षिण्यतामां पड्या छे; हा- मोटो खेद छे, महामोहो—ए मोटुं अज्ञान छे के,

दीन दुःखीने एक रोटीनो ककडो आपतां करुण लागेछे, अने दुर्ग–दुर्गति प्रापक जे कुगुरु, तेने अति सरस असन प्रधान वसन प्रमुखेकरी सन्मानेछे; माटे ए मोटुं अज्ञान लोकोनेविषे प्रवर्त्ते छे. ॥ ३९ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां दृष्टीरागी लोकोनुं मूढपणुं कह्युं, हवे तेओना नाम मात्र गुरुनुं मूढपणुं कहेछेः– मूलः– किं जणिमो किं करिम।, ताण हयासाण धिठ दुठाणं ॥ जे दंसिऊण लिंगं, खिवंति न रयम्मि मुद्ध जणं ॥ ४० ॥ दोहाः– नाखे नरके मुग्ध जन, देखाडी मुनि वेष ॥ ते हताश खल धीठने, कहिये किसुं विशेष ॥ ४० ॥ व्याख्याः– ह्यासाण–उत्तरोत्तर कल्याणरूप हणाई छे आशा जेनी एवा धिठ दुठाणं–धीठ एटले अकार्य करवामां अति चतुर अने दुष्ट एटले दोषवाला ताण– तेओने किं जणिमो– शुं कहेवुं! अने किं करिमो– शुं करवुं? जो उपकार करिये तो परघातादि उपद्रव करवाने सावधान थाय; ते आंधला सिंहना नेत्र उघाडवाना दृष्टांते जाणी लेवुं; एटले कोई आंधलो सिंह जोई तेनी ऊपर दया आणीने कोई पुरुष कांई इलाज करीने तेने देखतो करे तो तेनाज प्राण लिये. तेम कुगुरुनी ऊपर उपकार कर्यो होय तो तेना बदलामां अपकार शिवाय बीजो फायदो थवानो नथी. त्यारे कोई कहेशे के तेओनी ऊपर अपकारज करवो तो ते पुण्यवानने अघटित छे; माटे तेओने शुं कहेवुं! अने शुं करवुं कांई कहेवुं! अथवा करवुं उचितज नथी. केमके, जे–जे लिंग–रजोहरण तथा मुख वस्त्रादिक साधुनो वेष तेने दंसिऊण–देखाडीने मुद्धजण–मुग्ध जन एटले विवेक विकल लोक, तेओने नरयम्मि–नरकनेविषे खिवंति–नाखेछे. ॥ ४० ॥

अवतरणः–पूर्व गाथामां कुगुरुउनुं मूढपणुं देखाड्युं, हवे तेउनी स्तुतिने मिषे निंदा करे छेः– ॥ मूलः– कुगुरूवि संसिमोहं, जेसिं मोहाइ चंडिमा दट्ठुं ॥ सुगुरूण उवरि जत्ती, अइ निबिडा होइ जवाणं ॥ ४१ ॥ दोहाः–ते प्रसंसिये कुगुरु पण, जसु मोहादिक देष ॥ सुगुरु परभिवी जीवके, थाए जगति विशेष ॥ ४१ ॥ व्याख्याः– कुगुरूवि- कुगुरुने पण संसिमोहं- हुं- प्रशंसुं छुं; केमके, जेसिं–जेना मोहाइ चंडिमा–मोहादिके करी जे चंडपणुं अथवा, क्रूरपणुं, तेने दट्ठुं–देखीने जवाणं- मोक्षाभिलाषी जव्य प्राणीयोने सुगुरूण उवरि–सुगुरुनी ऊपर अइनिबिडा- अतिदृढ जक्ति होइ–थाय छे. एटला वास्ते कुगुरुनी प्रशंसा करिये छैये, परंतु तेना गुणोनुं वर्णन करी प्रशंसा करता नथी. ॥ ४१ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां जे जव्य जीव कह्या ते सम्यक् दृष्टि जाणवा तेउनुं

सम्यक्त्व उल्लासने पामवानुं कारण कहे छेः– मूलः– जह जह तुट्टइ धम्मो, ज ह जह दुठाण होइ अइ उदउ ॥ समद्दिठि जियाणं ॥ तह तह उल्लसइ समत्तं ॥ ४२ ॥ दोहा ॥ जिम जिम खलनो अति उदे, जिम जिम तूटे धर्म ॥ तिम तिम समकित जीवको, उलसै समकित सर्म ॥ ४२ ॥ व्याख्याः– जह जह–जेम जेम धम्मो–जिन जाषित धर्म तुट्टइ–तूटेछे एटले हाणीने पामे छे, वली जह जह– जेम जेम दुठाण- दर्शन भ्रष्ट, निन्हव, पासत्था, उसन्ना तथा कुसीलियादिक अ ने अन्य दर्शनी त्रिदंमी, परिव्राजक, तथा विप्रादिक दुष्ट लोकोनो अइ उदउ- अ ति उदय एटले अतिशय जोर सत्कार तथा पूजादिक होइ- थाय छे. तह तह– तेम तेम समद्दिठि जियाणं- सम्यक् दृष्टि जीवोनुं सम्मत्तं- सम्यक्त्व उल्लसइ- उ ल्लासने पामे छे, एटले विशेष दीपे छे ए मोटो आश्चर्य छे. शिष्यने गुरु कहे छे के, कांई आश्चर्य नथी, वस्त्र, पात्र, वसति, आहार तथा पोतपोताना श्रावक इ त्यादिनी ऊपर लडी मरशे; अने साधु कहेवाशे. वली कलहना करनार, मारकू टना करनार गुर्वादिक मोटा सत्पुरुषने पण असमाधि उत्पन्न करनारा थशे. दु षम कालमां घणा असंयति थया थका संयति कहेवाशे; अने कोईक विरला धर्मार्थी सुसाधु थशे एवां श्री महावीर स्वामीनां वचन संजारी संजारीने तथा ते पूर्वोक्त लोकोने जोई जोईने श्री वीर वचननी आस्था ते सम्यक्त्वनुं आस्तिक्यता नामे पांचमुं लक्षण दृढ थाय छे. ॥ ४२ ॥

अवतरणः– पूर्वोक्त गाथामां जेम दुष्ट पापी लोकोनो हमणा अति उदय क ह्यो तेम हमणा जिनमतनो अति उदय केम थतो नथी? ते प्रश्नोत्तररूप गाथा एकरी कहेछेः-- मूलः– जअ जंतु जणणि तुल्ले, अइ उदयं जं न जिणमए होइ॥ तं किठ काल संजव, जियाण अइ पाव माहप्पं ॥ ४३ ॥ दोहाः– जग जननी सम जिनमते, जो अति उदय न होय ॥ कलि कालज जणनो अति, पाप म हातम सोय ॥ ४३ ॥ व्याख्याः– जअजंतुजणणितुल्ले–जगतना जीवने मातानी तुल्य, जिणमए–एवो जे जिनमत, तेनो अइ उदयं–अति उदय जं–जो न–नथी होइ–थतो तं–ते किठकालसंजवजियाण–क्लिष्टकाल एटले कलिकालमां उत्पन्न थएला जे जीव तेउना अइपावमाहप्पं--उत्सूत्र देशनादिक दोषरूप अति पापनुं महात्म्य छे. एनो जावार्थः-- जिनमतनो उदय तो श्री दुप्पसह अणगारसुधी व र्त्तशे; तोपण जेवो तीर्थंकर महाराज छतां जिनमतनो उदय हतो, तेवो जिन मतनो अति उदय नथी थतो तेनुं कारण दोष दुष्ट कलिष्ट पंचम कालनेंविषे उ

त्पन्न थया जे जीव पाखंमी लोक, तेना उत्सूत्र देशनादि महात्म्यरूप अति पापनो प्रताप छे. माटे जैन मतनो अति उदय केवी रीते थाय? ॥ ४३ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्युं के जिनमतनो अति उदय थतो नथी ते डुष्ट लोकोना अति पापनुं महात्म्य छे; ते डुष्ट लोको पापे करीने पूर्ण होयछे ते कहेछेः— मूलः— धम्मंमि जस्स माया, मिछत्त गहो उसुत्ति नोसंका ॥ कुगुरूवि करइ सुगुरू, विउसोवि स पाव पुन्नत्ति ॥ ४४ ॥ दोहाः— जिसके माया धर्ममें, लागो ग्रह मिथ्यात ॥ सो उत्सूत्री नरम नह, कहै उलटि सवि वात ॥ ४४ ॥ व्याख्याः— जस्स—जेने धम्मंमि—जिन धर्मनेविषे माया—कपट वर्त्तेछे, एटले पूजा धनादिक लाज यश कीर्त्तिने अर्थे लोकनी दृष्टिए करी जे धर्म करवो ते बधी माया जाणवी ते जेने छे, मिछत्तगहो—अतत्व श्रद्धान मिथ्यात्वनो गृह हठवाद वर्त्तेछे जेने वली उसुत्ति— उत्सूत्र भाषी छे, नोसंका— उत्सूत्र भाषवा थकी नरक निगोदनेविषे अनंत कालसुधी निवास थशे एवी जेने शंका नथी; वली जे कुगुरूवि—कुगुरुप्रते पण सुगुरु—सारो गुरु करइ—करेछे, एटले आ उत्तम गुरु छे एम मानेछे, स—ते विउसोवि—विद्वान छतां पण एटले द्रव्यथकी घणा शास्त्रो भणेलो छतां पण पाव पुन्नत्ति—हिंसादिक अढारे पापेकरी पूर्ण जाणवो.॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्या प्रमाणे जे पापेकरी पूर्ण होय ते कांई पण धर्म कार्य करी शके नही; धर्म कार्य जिनाज्ञा प्रमाणे कर्याथी सुखदायक थाय छे; अन्यथा न थाय ते कहेछेः— मूलः— किच्चंपि धम्म किच्चं, पूया पमुहं जिणिंद आणाए ॥ भूअ मणुग्ग हरहिअं, आणा भंगाउ डुहदायं ॥ ४५ ॥ दोहाः— जिन पूजादिक कार्य पण, सफल जिनाज्ञा थाय ॥ आणा भंगरहित दया, कार्य सवी डुखदाय ॥ ४५ ॥ व्याख्याः— पूया पमुहं—पूजा प्रमुख एटले जिन पूजा, सामायक प्रतिक्रमण, शास्त्राभ्यास, तथा जिनभुवन कराववा प्रमुख धम्मकिच्चं धर्मकृत्य जे किच्चंपि—करवुं तेपण जिणिंद आणाए—जिनेंद्रनी आज्ञाए करी सुखदाई थायछे. भूअमणुग्गहरहिअं—भूत अनुग्रह रहित एटले जीव दयाए करीने रहित जे जिन पूजा तथा सामायकादिक धर्म कार्य करवुं ते जिन आणानो भंग कर्या जेवुं थायछे. माटे सिद्धांतमां कह्युं छे के, वीतरागनी आज्ञानो भंग करवा थकी पूर्वोक्त सर्व धर्मकार्य डुहदायं—जन्म मरणादिक डुःखना देनारां छे. जिन राजनी आज्ञानुं आराधन कर्याथीज मोक्ष थायछे. अने जिनराजनी आज्ञा विराधवा थकी नरकादिक डुःख थायछे. ए जिनागमनुं गुह्य छे. ॥ ४५ ॥

अवतरणः-- जिनाज्ञाविना कष्टादिक जे करवुं ते सर्व संसारनो हेतु थाय छे ते कहे छेः— मूलः- कठं करंति अप्पं, दमंति दवं चयंति धम्मत्थी ॥ इक्कं न चयंति मिछत्त विसलवं जेण बुड्डंति ॥ ४६ ॥ दोहाः-- कष्ट करै आपा दमै, द्रव्य तजे पण जोय ॥ तजे नही मिथ्यात्व लव, बुडे जेहथी लोय ॥ ४६ ॥ व्याख्याः— कठं करंति— लोच करवो, उघाडे पगे चालवुं, धरती ऊपर सूवुं, तथा अणसणादि अनेक प्रकारनुं बाह्य तप, इत्यादिक कष्ट जे छे ते मूर्ख करे छेः अप्पं—आत्माने, एटले मनने तथा इंद्रियोने दमंति—मूर्ख दमे छे, वली दवं—धनादिक द्रव्य तेने धम्मत्थि—धर्मना अर्थी थका जे मूर्ख चयंति— त्यागे छे. पण इक्कं मिछत्तविसलवं—एक मिथ्यात्व उत्सूत्ररूप विषलवने न चयति— मूकी देता नथी. जेण—जे मिथ्यात्व उत्सूत्ररूप विषलवे करी मूर्ख अज्ञानी दुःख समुद्रनेविषे बुड्डंति—बूडे छे; ए मोटी खेदनी वात छे. ॥ ४६ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां उत्सूत्र जाषीनुं मूढपणुं देखाड्युं, हवे शुद्ध पुरुषनो संग करवो अने अशुद्ध पुरुषनो संग त्यागवो ते कहे छे. ॥ मूलः- सुद्ध विहि धम्म राउ, वढइ सुद्धाण संगमे सुअणु ॥ साविय असुद्ध संगे, निउणाण विगलइ अणुदियहं ॥ ४७ ॥ दोहाः- वधे मीत सतसंगथी. वर विधि धरम सुराग ॥ घटे कुसंगे प्रति दिवस, विदुनो पण ते राग ॥ ४७ ॥ व्याख्याः-- सुअणु--हे सुजन, हे धर्मोपदेश योग्य, सुद्धाण--जे शुद्ध पुरुष, सुसाधु, तथा सुश्रावक होय तेनो संगमे--समागम अथवा परिचय कस्वाथी सुद्ध विहि धम्मराउ--शुद्ध विधि ते राग द्वेष मल रहित रत्नत्रयी मोक्ष मार्ग विधि तद्रूप जे जिन जाषित धर्म तेनेविषे राग एटले प्रीति वढइ-- वधे छे एटले वृद्धिने पामे छे. अने हे सुजन, सोविय--ते पण शुद्ध विधि धर्मनो राग, असुद्ध संगे--अशुद्ध पुरुष एटले उत्सूत्र जाषी पासत्थादिकनो संग अथवा परिचय कस्वाथी निउणाणवि--निपुण पुरुषो पण अणुदियहं- निरंतर दिन दिन प्रते गलइ—गले छे एटले हाणीने पामे छे. त्यारे अनिपुण पुरुषोने हाणी थाय तेमां शुं कहेवुं ! माटे उत्सूत्रजाषी पासत्थादिकनो संग सर्वथा वर्जवो ; अने शुद्ध प्ररूपक आचारवंत पुरुषनो परिचय करवो ॥ ४७ ॥

अवतरणः— पूर्वे गाथामां अशुद्ध पुरुषना संगनो त्याग करवो एम कह्युं, एथी एम जाणवुं के जे अशुद्ध पुरुष होय छे ते शुद्ध पुरुषनी ऊपर द्वेष करवा वाला होय छे ; माटे तेना समीपे बलविनाना पुरुषे वसवुं नहीं, ते कहे छेः— मूलः— जो सेवइ सुद्ध गुरु, असुद्ध लोआण सो महा सत्तू ॥ तम्हा ताण सयासे, बल रहिओ

मा वसिय्यासु ॥ ४८ ॥ दोहाः-- शुद्ध गुरू जे सेवतो, ते अशुद्ध जण शत्रु ॥ तो बल रहित वसो नही, ज्हां असुद्ध जण तत्र ॥ ४८ ॥ व्याख्याः- जो-जे लोक सुद्ध गुरु-निर्मल ज्ञान दर्शन चारित्र गुणे गुणवंत गुरु प्रते सेवइ-सेवे छे; सो-ते लोक अशुद्ध लोआण-उत्सूत्र नाषी पासबादिकना दृष्टीरागी नक्त लोक, तेउने म हासत्तू-महा शत्रु एटले वैरीना जेवा लागे छे; तम्हा--ते कारण माटे ताण-ते असुद्ध लोकोना सयासे-समीपे बलरहिउ-धर्म आश्री निर्नय पणुं अने शरीर ध नादिक शक्ति संपन्न एम अभ्यंतर बाह्य ए बे प्रकारना बले करी, रहितजे होय तेणे मा वसिय्यासु-वसवुं नही; केमके, जे द्वेषी माणस होय ते सारा गुणने पण दूषण दिये छे; माटे अशुद्ध लोकोना समीपे वसवुं तेमां घणो उपद्रव रह्यो छे; ते थी बीजे कोई ठेकाणे रहेवुं ते सारुं छे! ॥ ४८ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां खल पुरुषोनी पासे रहेवानुं निवारण कर्युं तेनुं कारण कहेछेः- मूलः- समय विऊ असमत्था, सुसमत्था जत्थ जिणमए अविऊं॥ तत्थ न वड्ढइ धम्मो, पराहवं लहइ गुणरागी ॥ ४९ ॥ दोहाः-- जिन मत विदु असमर्थ जन, जहां समर्थ अजाण ॥ धर्म न वाधै तह लहै, गुणरागी अपमान ॥ ४९ ॥ व्याख्याः- जत्थ-जहां समयविऊ-जिन आगमना जाण पुरुष असम त्था-क्षेत्र कालादिक दोषेकरीने असमर्थ छे, अने जिणमए-जिन मतनेविषे अविऊ-जे अविद छे एटले अजाण छे; ते सुसमत्था-अति कलह, क्लेश तथा मार कूट कर वाने समर्थ छे; तत्थ-तिहां धम्मो-शुद्ध विधि धर्म नवड्ढइ-वृद्धिने पामे नही; उ लटुं गुणरागी-गुणानुरागी पुरुष पराहवं-पराजवने एटले तिरस्कारपणाने लहइ-लहे एटले पामेछे; माटे अशुद्ध पुरुषोना समीपे असमर्थ होय तेणे न वसवुं. ॥४९॥

अवतरणः- जे सामर्थ्यवान उन्मार्गी तथा उत्सूत्री होय तेनो जिनमार्गने विषे प्रवेश करवा देवो नही ते कहेछेः- मूलः- जं न करइ अइ नावं, अमग्ग से वी समत्थउ धम्मे ॥ ता लट्ठं अहकुप्प्या, ता पीडइ सुद्ध धम्मत्थी ॥ ५० ॥ दोहा सबल कुमार्गी धर्ममें, जो न करै अति नाव ॥ तो सुंदर अथ जो करै, तो सुध धर्मि डुष दाव ॥ ५० ॥ व्याख्याः- समत्थउ-मुष्टि चपेटादिक प्रहारनी अपेक्षाए करी कुत्सित समर्थवंत एवो जे अमग्गसेवी-अविधिमार्गी एटले उन्मार्गनो सेव नार, उत्सूत्रनो बोलनार, सम्यक्त्वरहित लिंगधारी लोक तथा तेउना नक्त लोक ते धम्मे-जिन धर्मनेविषे जं--जो अइनावं--अति नावप्रते नकरइ-करे नही; एट ले त्यां पसारो अथवा प्रवेश करे नही; ता-तो लट्ठं--लष्ट छे एटले सुंदरछे अह-

अथ जो ते अविधि मार्गना सेवनार लोक जिनधर्मनेविषे अति जाव एटले प्रवेश कुण्या--करे ता--तो सुद्ध ध मच्छी--शुद्ध धर्मना अर्थी जे जव्य प्राणी वे तेउनेपी डइ--पीडे एटले अवता आल प्रदान डुर्वचन हेलनादिके करी डुःख दिये, माटे ते उ न्मार्गि लोकोनो जिनधर्मनेविषे प्रसार न थाय एटले आववुं न थाय तोज सारुं ५०

अवतरणः-- पूर्व गाथामां कह्युं के, समर्थ उन्मार्गीनो जिनधर्मनेविषे प्रवेश थाय तो ते धर्मार्थीने पीडा करेछे; हवे धर्मार्थी पुरुषोनो कोई पराजव करी श के नही ते कहेछेः-- मूलः - जइ सव्व सावयाणं, एगत्तं जं तु मिच्छवायम्मि ॥ धम्मत्थियाण संदर, ता कहणु पराजवं कुण्या ॥ ५१ ॥ दोहाः-- मिथ्या वादे होय जो, श्रावक जन सब एक ॥ धर्मी जनकूं वर तदा, किम दे डुख अविवेक ॥ ५१ ॥ व्याख्याः- मिच्छवायम्मि--मिथ्यावादनेविषे सव्व सावयाणं--नाम मात्र सर्व श्रावकोनुं जं--जो एगत्तं--एकत्वपणुं वे. तु--वली जइ--जो एकत्वपणुं धर्मवि धिवादनेविषे धम्मत्थियाण--धर्मार्थी पुरुषोनुं होय ता--तो सुंदर--हे सुंदर, हे ज इ, ते नाम मात्र श्रावक लोक धर्मार्थी पुरुषोनो पराजव--पराजव अथवा तिर स्कार तु--इति वितर्के कह--केम कुण्या--करे! अपि तु नज करे. धर्मार्थी पुरुषो नुं पण धर्मविधिवादनेविषे एकत्वपणुं नथी केमके, ए विषम कालनो प्रजाव वे. माटे नाम मात्र जे श्रावक वे ते धर्मार्थी पुरुषोनो पराजव करेछे. एनो जावार्थ आ देरासरनेविषे अमारो तथा अमारा गोत्री होय तेओनो मूल नायकनी पूजा आरती करवानो अधिकार वे; बीजानो अधिकार नथी. तथा चंडिकादि गोत्र देवी देवता अमारा पूर्वज मानता आव्याछे, ते अमे तमारा कह्याथी केम मूकी ये? नगरादिकनेविषे सुविहितनो प्रवेश थतां पूर्वे कोई समये ओछव थयो नथी ते अमे वेगा बतां केम थाय! इत्यादिक जे मिथ्यावाद तेनेविषे नाममात्र श्रावकोनुं जे एकत्वपणुं वे, तेमां विधि चैत्यादिक धर्मविधिवादनेविषे धर्मार्थी पुरुषोनुं संघपट्टोक्त एकत्वपणुं होय तो हे सुंदर, कोई पण धर्मार्थी पुरुषोनो पराजव करी शके नही.

अवतरणः-- पूर्व गाथामां धर्मार्थीनुं वर्णन कह्युं, हवे ते धर्मार्थीने सहाय क रनारा गुणोने कहेछेः-- मूलः-- तं जयइ पुरिस रयणं, सुगुणङ्ढं हेम गिरिवर मह ग्घं ॥ जस्सा सयम्मि सेवइ, सुविहिरउ सुद्ध जिण धम्मं ॥५२॥ दोहाः--सुगुण म हर्घ महा गिरि, जयसों पुरुष रतन्न ॥ जसु आश्रय आचार रत, करै सुधर्म जत न्न ॥ ५२ ॥ व्याख्याः-- तं पुरिस रयणं--ते पुरुष रत्न जयइ--जयवंत वे; अथ वा जयवंत थाओ, जस्स सयम्मि--जेना आश्रये एटले जेना आधारे सुविहिर

उ--सुविधिरत्त पुरुष एटले विधिमार्गेनेविषे तत्पर पुरुष शुद्ध जिणधम्मं कदाग्रहा दिक मल कलंक रहित जिनधर्मप्रते सेवइ- सेवेछे एटले आराधेछे एवो पुरुषरत्न सुगुणई--औदार्य, धैर्य, गंभीर, क्षमा विनयादिक सुष्ठ गुणरूप धनेकरीने सहित छे. वली ते पुरुष रत्न केवो छे? हेम गिरिवर महग्घं--मेरु पर्वतनी परे महर्घ छे एटले अति महोंगो अथवा अमूल्य छे. ॥ ५२ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां कह्युं के, धर्मने सहायता करनारो अमूल्य पुरुष छे; तेनीज फरी पुष्टी करेछेः-- मूलः-- सुरतरु चिंतामणिणो, अग्घं न लहंति तस्स पुरिसस्स ॥ जो सुविहिरय जणाणं, धम्माधारं सया देई ॥ ५३ ॥ दोहाः-- ते सुपुरुषके मूलकूं, सुरतरु मणी न पाय ॥ विधिरत जनकूं जो दिए, धर्म सहा ह्य सदाय॥ ५३ ॥ व्याख्याः-- जो- जे पुरुष सुविहि रयणाणं- सुविधि रत लोको ने धम्माधारं- धर्मनो आधार एटले धर्मनो अवलंब साह्य. देइ- दियेछे, सया- स दा सर्वदा, तस्स पुरिसस्स--ते पुरुषनो अग्घं--अर्घ एटले मूल ते सुरतरु चिंतामणि णो--कल्पवृक्ष चिंतामणिरत्न उपलक्षणथी कामधेनु कामकुंभ छे ते नलहंति--नथी पामता; केमके, ते पुरुषने शिवसुखदायक अमूलक सम्यक्त्व रत्ननी प्राप्ति छे माटे कल्पवृक्ष चिंतामणि प्रमुख छे ते ते पुरुषना मूलने नथी पामता, एटले तेनी तुलना करी शकता नथी. ॥ ५३ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां धर्मने सहाय्य करनार पुरुषना गुणनुं कीर्त्तन थयुं ते सांभलीने ते सत्पुरुषोतो लज्जाने पामेछे; त्यारे तेनुं गुण कीर्त्तन करवामां फल शुं छे एवी शंकानुं निवारण करवानेअर्थे कहेछेः-- मूलः-- लज्जंति जाणि मोहं, सप्पुरिसा नियय नाम गहणेणं ॥ पुण तेसि कित्तणाउ, अम्हाण गलंति कम्मा इ ॥ ५४ ॥ दोहाः-- लाजै निज नामोच्चरे, हुं मानुं सत पुर्ष ॥ वनि त्हेना गुण गाय हम, कर्म टले कटु तुर्ष ॥ ५४ ॥ व्याख्याः-- सप्पुरिसा--सत्पुरुष जे छे ते जोपण नियय नाम गहणेणं--निजक नामनु ग्रहण कर्याथी एटले आ दाता, परोपकार कर्त्ता, इत्यादिक गुणे करी सहित पोतानुं नाम सांभल्याथी लज्जंति--ल ज्जाने पामेछे. जाणिमोहं--एम छे ते हुं जाणुंछुं, तोपण तेसि कित्तणाउ--तेना गुण कीर्त्तन कर्याथी पुण--वली अम्हाण--अमारा कम्माइ--ज्ञानावरणादिक पाप कर्म गलंति--गलेछे, एटले क्षय थायछे, माटे सत्पुरुषना गुण कीर्तन निरंतर करवा.

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां सत्पुरुषोनेविषे रहेला गुणोनुं जे वर्णन करवुं ते निर्जरानो हेतु छे एम कह्युं, हवे आज्ञा रहित धर्म सेवनारनी वार्त्ता कहेछेः--मूल

आणा रहियं कोहाइ संजुयं अप्प संसणहंच ॥ धम्मं सेवं ताणं नय कित्ती नेय धम्मं च ॥ ५५ ॥ दोहाः-- आण नंग क्रोधादि जुत, आप प्रसंस निमित्त ॥ धर्म सेवता लोकने, नही धर्म नहि कित्त ॥ ५५ ॥ व्याख्याः-- आणारहिअं-आश्रव हेय, संवर, उपादेय, ए वीतरागनी आज्ञा तेणे करी रहित, वली कोहाइ संजुयं क्रोधादि संयुक्त एटले क्रोध मान माया लोन ए चार कषाये करीने सहित, तथा अप्प संसणहं--आत्म प्रशंसाने अर्थे पोतानी शोनाने अर्थे ए प्रकारे धम्मं--जिन धर्म प्रते सेवंताणं--सेवनारा लोकोनी नयकित्ती--कीर्त्ति नथी; एटले विवेकी पुरुष जे छे ते तेउनी श्लाघा करता नथी. च--वली नेयधम्मं-- ते धर्म पण नही के जे दुर्गतिमां पमता प्राणीने राखे नही ॥ ५५ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां कह्युं के, आज्ञारहित धर्मना सेवनारनी कर्त्ति नथी होती अने तेउने धर्म पण नथी होतो; तो पण कांईक तो कीर्त्ति तथा धर्म थतो हशे, ए आशंका दूर करवाने कहेछेः- मूलः- इयर जण संसणाए, हिठ्ठ उस्सुत्त नासिए न नयं ॥ ही ही ताण नराणं, दुहाइ जइ मुणइ जिण नाहो॥५६॥ दोहाः- नीच प्रसंसाए नणे, उत्श्रुत धीठ निलाज ॥ जो नावी दुःख तेहने, सो जानै जिन राज ॥ ५६ ॥ व्याख्याः- इयर जण संसणाए-जिनोक्त धर्मना अजाण इतर जन सामान्य लोकोए करेली जे प्रशंसा, तेणे करीने हिठ्ठा-हृष्ट थएला एटले प्रसन्न थया थका उस्सुत्त नासिए--उत्सूत्र नाषण करतां न नयं--जे ने नरकादिकनेविषे नमवानुं नय नथी; ही ही--मोटी खेदनी वात छे. ताण नराणं--ते नरोना अनागत कालसंबंधी दुहाइ--जे दुःख छे, ते प्रते जइ- जो जिण नाहो-जिननाथ मुणइ-जाणे छे; तो पण ते दुःखप्रते समस्त प्रकारे कहेवाने समर्थ नथी, केमके, दुख अनंत छे माटे ॥ ५६ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां उत्सूत्र नाषीने अनंत दुःख थाय छे एम कह्युं, हवे बोधीने अनंत संसार भ्रमणनो नाश थाय छे ते कहे छेः-- मूलः-- उस्सुत्त नासगाणं, बोही नासो अणंत संसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न नासंति ॥ ५७ ॥ दोहाः-- बोधि नाश उत्सूत्रिके, जामण मरण अनंत ॥ प्राण तजे पण धीर तत, नहि उत्सूत्र नणंत ॥ ५७ ॥ व्याख्याः-- उस्सुत्त नासगाणं-जिन राजना वचनथी विरुद्ध ते उत्सूत्र कहेवाय छे, तेनुं नाषण करनार एटले बोलनार, तेने बोहीनासो-श्री जिन धर्मनी प्राप्ति ते बोधी सम्यक्त्व तेनो नाश थाय अने अणंत संसारो--अनंत संसार थाय एटले अनंत कालसुधी चार गतिमां भ्र

मवुं थाय ता—ते कारण माटे पाणच्चएवि—प्राण तज्याथी पण एटले प्राण कंठने विषे आव्या छता पण धीरा- बुद्धिमान जे पंमित पुरुष छे ते उस्सुत्तं—जिन वचन थी विरुद्ध न जासंति- बोलता नथी ॥ ५७ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां उत्सूत्र बोलवुं नही, एटले जे धीर पुरुष होयछे ते उत्सूत्रनुं बोलवुं अविधि जाणीने त्याग करेछे; हवे ते अविधिनी प्रशंसा पण न करवी ते कहेछेः— मूलः— मुद्धाण रंजणछं, अविहि पसंसं कयावि न करिय्या ॥ किं कुल वहुणो कछवि, थुणंति वेसाण चरियाइ ॥ ५८ ॥ दोहाः— अविधि कीर्ति न कर कदा, मुग्ध जन रंजन हेत ॥ शुन कुल वधु किं जी किया, वेस्या चरित थुणंत ॥ ५८ ॥ व्याख्याः— मुद्धाण रंजणत्तं—अजाण लोकोने रंजन करवाने अर्थे अविहि पसंसं—पोतानो गछ मूकी बीजानी पासे जई सामायक पडिकमण शास्त्र श्रवणादिक कांई न करवुं. जेम तेम पूजा सामायकादिक धर्मकृत्य करवुं, विधि अविधि कांई न जोवुं, इत्यादिक जे उत्सूत्र तेरूप अविधिनी प्रशंसा एटले निःकारण जे अविधि करवानी अभिलाषा जे अविधिनी प्रशंसा तेने सत्पुरुष कयावि—कदापि एटले कोई काले पण न करिय्या—करे नही; एज वात दृढ करवाने वास्ते अहीं दृष्टांत कहेछेः— किं—शुं कुलवहुणो— कुलवधु एटले कुलवान स्त्रीओ कछवि— कोई तेकाणे पण वेसाण चरियाइ— पोतानी इछाए चालवुं, सरस आहार करवो, अति उद्भट वेश पहेरवो, परपुरुषने जोगववुं, जोबननो लाज मानवो, इत्यादिक वेस्याना जे चरित ते प्रते थुणंति—स्तवे अथवा वखाणे. अपि तु नहीज वखाणे केम के जो तेना वखाण करे तो कलंक लागे. तेम जे सत्पुरुष छे ते अविधिनी श्लाघा करेज नही. केमके, जो करे तो तेने उत्सूत्रनो कलंक लागे. ५८

अवतरणः— पूर्व गाथामां अविधिनी प्रशंसा ते जिन आज्ञाना भंगनो हेतु होवाथी तेनो निषेध कर्यो, हवे ते जिन आज्ञाना भंगनो भय कोईने होयछे ने कोईने नथी होतो ते कहे छेः— मूलः— जिण आणा भंग भयं, भवसय भीयाण होइ जीवाणं ॥ भवसय अभीरुयाणं, जिण आणा भंजणं कीडा ॥५९॥ दोहाः— भवभयथी अति भीरु जे, आण भंग भय तास ॥ भवभयथकी अभीरुनें, आणा भंग न हास ॥ ५९ ॥ व्याख्याः— भवसय भीयाण— भवसतभीत एटले नरकादिकना शेकडा भवथकी बीहोता एवा जीवाणं— जीव जे छे तेओने जिणआणा भंगभयं— जिन आज्ञाना भंगनो भय होइ—थाय छे; केमके, ते भवसत भीत जीव एवो विचार करेछे के जो राजानी आज्ञानो भंग कर्यो होय तो बंधादिक अने

क प्रकारना दुःखनी प्राप्ति थायछे, तो जिन आज्ञानो भंग करवाथी जीव निश्चे करी नरकादि चार गतिमां प्राए अनंत कालसुधी अनंत दुःख भोगवे तेमां शुं कहेवुं! माटे जिन आज्ञाना भंगनो भय सत्पुरुष भवसतभीतने होयछे, अने भवसय अभीरुयाणं— जे नरकादिक भवना शोकडाथकी नथी बीहोता एवा जे जीव तेओने तो जिण आणाभंजणं कीमा— जिन आज्ञानो भंग करवो, तथा विराधवुं ते क्रीमारूप छे एटले एक हासीरूप छे. ॥ ५९ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्युं के, जे जीवोने भवनी भीति नथी ते जिन आज्ञाने विराधे छे; एथी एम न जाणवुं के, जे शास्त्रोथी अजाण होय छे तेज विराधे छे; अने जे जाण होय ते नथी विराधता! किंतु शास्त्रना जाण होय छे ते पण कोई दुष्ट कर्मना उदयथी जिन आज्ञाने विराधे एमां कांई आश्चर्य नथी ते कहे छेः— मूलः— को असुआणं दोसो, जं सुअ सहियाण चेयणा नहा ॥ धिद्धी कम्माणजउ, जिणोवि लद्धो अलद्धुत्ति ॥ ६० ॥ दोहाः—जोनसि स्तुत युत चेतना, किसो अस्तुतनो दोष॥ धिग् धिग् कर्मनकूं यदा, लभध अलभ जिन पोस॥६०॥ व्याख्याः— सुअ सहियाण—श्रुत सहित जे लोक छे, तेउने एटले घणा सिद्धांतना जाण लोकोनी जं—जो चेयणनहा—चेतना नाशने पामी एटले जिन आज्ञानी श्रद्धाने अभावे अभिनिवेश मिथ्यात्वना उदये करी चेतना विपरीत पणाने पामी तो असुआणं—अश्रुत लोकोनी एटले जे जिनोक्त सिद्धांत भण्या नथी एवा लोक छे तेउनो को दोसो—शुं दोष कम्माण—कर्मने धिद्धि—धिक् धिक् थाउ एटले कर्मने धिकार छे जओ—जे कारण माटे जिणोवि लद्धो—जिन एटले तीर्थंकर, पाम्या छतां पण अलद्धुत्ति- अण लाध्या अथवा अण पाम्या जेवुं थयुं जमालि प्रमुखने, ते सत्य छे केमके, सिद्धांतमां कह्युं छे के, मनुष्य जन्म अने सिद्धांत सांभळवुं दुर्लभ छे. ते कदाच सांभले पण सांभलीने तेनी श्रद्धा आववी परम दुर्लभ छे. केमके, मोक्ष मार्ग सांभळीने पण घणा भ्रष्ट थाय छे ॥ ६० ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कर्मने धिक्कार होजो एम कह्युं, माटे कोईनो उपहास करवो नही ते कहे छेः- मूल -- इयराणवि उवहासं तम जुत्त भाय कुल पसूयाणं॥ एस पुण कोवि अग्गी, जं हासं सुद्ध धम्ममि ॥ ६१ ॥ दोहाः-- करवुं पर उपहास जे ते अयुक्त जिनदास ॥ कुल प्रसूतके अगनि ले धरमविषे जो हास ॥ ६१ ॥ व्याख्याः— भाय—हे भाई इयराणवि उवहासं--इतर सामान्य नीच लोकोनो पण उपहास करवो तं—ते कुल पसूयाणं—कुल प्रसूत एटले कुलीन पुरुषोने अयुत्तं—अ

युक्त ले एटले अघटित ले. पुण--तथा सुद्ध धम्मंमि—निर्मल कषाय मल रहित धर्म नेविषे तथा शुद्ध धर्म छते जं हासं--अज्ञानी लोकोने जे हास्य आवे ले एस— ए कोई अग्गी—वचनथी न कहेवाय; एवो कोईक अग्नि ले केमके, हास्य ले ते क्रोधादि कषायनुं कारण ले ते कोड पूर्व संचित तप चारित्रने बाली जस्म करी नाखे ले, ने जीवने प्रायें उत्कृष्ट अनंत काल सुधी कुंनकारना चाकनी पते संसार कांतारमां जमावे ले. माटे कोईनो उपहास करवो नही ॥ ६१ ॥

अवतरणः-- पूर्व गाथामां कह्युं के जे शुद्ध धर्मनो उपहास करे ते अज्ञानी ले, तेने पण जे सुमण सुजन होय ते, परम हित देवानी इछा करे एम कहेले:— मूलः-- दोसो जिणिंद वयणे, संतोसो जाण मिछ पावम्मि ॥ ताणंपि सुद्ध हियया, परम हियं दाउ मिछंति ॥ ६२ ॥ दोहाः-- मिथ्यात्वे संतोष जस, जिन वर वचने द्वेष ॥ तसु पण सुद्ध मनादिए, परम सुहित उपदेश ॥ ६२ ॥ व्याख्याः— जाण-- जेओने जिणिंद वयणे—जिनेंद्रना हास्य कषायादिक दोष वर्जित जे वचन, तेओनेविषे दोसो --द्वेष वर्त्ते ले. अने मिछपावंमि—हिंसा जाव मिथ्यात्व दर्शन शल्य अढार पाप तेनेविषे संतोसो—संतोष वर्त्तले एटले प्रसन्नता वर्त्ते ले, ताणंपि—तेओने पण सुद्ध हियया—निर्मल ले हृदय जेओना एवा जे पुरुष ते परम हियं दाउं इछंति—सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र मोक्षना उपायरूप परम हित देवाने इछेले. ॥६२॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्युं के, जिनधर्मनो द्वेषी अने मिथ्यात्व पापनो अति रागी होय तेनी ऊपर पण उपकार करवो तेनुं कारण शुं? ते कहेले:-- मूलः— अहवा सरल सहावा. सुअणा सव्वछ हुंति अवियप्पा ॥ लडुंत विसजराणवि, कुणंति करुसं डुजीआणं ॥ ६३ ॥ दोहाः— सरल स्वनावी सजन व्है. निर्विकल्प सब ठौर ॥ नसित साप ऊपर अपी, करे कृपा क्या और ॥ ६३ ॥ व्याख्याः— अहवा—अथवा सरल सहावा—सरल एटले निष्कपट स्वनाव ले जे ओनो एवा जे सुअणा— सुजन एटले संत पुरुष ले ते सव्वछ—सर्व स्थानकनेविषे अवियप्पा—डुष्ट रागद्वेष विकल्प रहित हुंति— होयले. एटले शत्रुमित्रनेविषे समचित्तवर्त्ती होयले. लडुंतविसजराणवि डुजीहाणं—मूकी दीधो ले अथवा वमनकर्यो ले मुखथकी विषनो जर एटले समूह जेणे एवा जे द्विजिन्ह एटले सर्प तेओनी ऊपर पण करुणं—करुणा एटले दया कुणंति—करेले, त्यारे बीजानी ऊपर दया करे तेमां ते शुं कहेवुं! अहो सर्प समान डुर्जन अने विष समान तेओनां डुर्व

चन जाणवा. एवा दुर्जननी ऊपर पण जेने दयाभाव वर्त्तेछे एवा सज्जन परम हित करवानी इच्छा केम नही करे! अपि तु करेज. ॥ ६३ ॥

अवतरणः— पूर्वे गाथामां श्रावकनुं सम्यक्त्व दृढ करवाने कथन कर्युं पण साधुनुं सम्यक्त्व कह्युं नही तेथी एवो विचार थायछे के साधुने सम्यक्त्व हशे? ते शंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— गिहि वावार विमुक्के, बहु मुणि लोएवि न त्थि सम्मत्तं ॥ आलंबण निरयाणं, सढ्ढाणं भाय किं भणिमो ॥ ६४ ॥ दोहाः— गृह व्यापार रहित घणा, मुनि पण समकित हीन ॥ इह सालंबन श्राद्धकूं कहिये किसुं कुलीन ॥ ६४ ॥ व्याख्याः— गिहि वावार विमुक्के—गृहस्थ संबंधी अंगार कम्मादिक अनेक प्रकारना व्यापार कुव्यापार थकी विमुक्त—रहित एटले द्र व्येकरी गृहस्थना व्यापारेकरी रहित एवा जे बहुमुणिलोएवि—घणा जे साधु जन तेउंनेविषेपण नत्थि सम्मत्तं—सम्यक्त्व नथी तो आलंबण निरयाणं—माता पिता नो आग्रह, पुत्र कलत्र भ्रातादिकनो मोह, श्रेष्ठादिकनी दाक्षिणता, इत्यादिक जे आलंबन तेनेविषे निरत—तत्पर एटले पूर्वोक्त आलंबनोएकरी कुदेव कुगुरु तथा कुधर्मने सेवता एवा जे सढ्ढाणं—नाममात्र श्रावक, तेउंनेविषे सम्यक्त्वनी प्राप्ति नो भाय—हे भ्रात, किं भणिमो—शुं अमे कहिये? केमके, जो गृहस्थ व्यापारआलंबन रहित द्रव्य मुनिनेविषे सम्यक्त्वनी नास्ति छे; तो पुत्र कलत्रादिक अनेक आलंबनोएकरी सहित व्याकुल एवा जे नाम श्रावक तेउंनेविषे सम्यक्त्व केम होय! अपि तु न होय ए भाव. ॥ ६४ ॥

अवतरण.— पूर्वे गाथामां सम्यक्त्व पामवानो उद्यम प्रथम करवो एम देखाड्युं, हवे उत्सूत्रनो निषेध करवो ते कहेछेः— मूलः— नसयं न परं कोवा, जइ जीअ उसुत्त भासणं विहियं ॥ तावुड्डिसि निभ्रंतं, निरत्थयं तवफडा डोवं ॥ ६५ ॥ दोहाः— किमहिन उत् श्रुत भाषवुं, उत् श्रुत भाष्युं जोय ॥ तो सहि बूडिस भव्य तूं, निरर्थ जप तप होय ॥ ६५ ॥ व्याख्याः— सयं—स्वयमेव एटले पोतानी बुद्धिए करीने न—उत्सूत्र न बोलवुं; परं—गुर्वादिकनी अपेक्षाए करीने न—उत्सूत्र न बोलवुं, वा—अथवा कोण जाणे केम छे केम नथी! जिनागम अति गंभीरार्थ छे; विधि जोतां तो तीर्थनो उच्छेद थाय; माटे जेम चाले तेम चलाव्या जवुं, एम जे बोलवुं ते उत्सूत्र; इत्यादिक उत्सूत्र बोलवुं नही, तथा कोवा—कोप थकी, उपलक्षणथी मान माया लोभ हास्य भयादिकथी उत्सूत्र न बोलवुं जीअ—रे जीव, जइ—जो उसुत्त भासणं—उत्सूत्रनुं भाषण एटले कथन विहियं—कर्युं

ता–तो संसार समुद्रनेविषे बुड्डिसि– तुं बुडीश. निब्भंत–निश्चे तवफडाडोवं–तपनो फटाटोप एटले आडंबर ते उत्सूत्र बोलवाथकी निरछयं–निरर्थक छे, एटले फोकट छे. माटे तपक्रियाए करीने संसारथी तूं छूटवानो नथी. ॥ ६५ ॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां जेने जिनवचन परिणम्या नथी तेनुं स्वरूप कह्युं, हवे जेने जिनवचन परणम्या छे तेनुं स्वरूप कहेछेः– मूलः– जह जह जिणिंद वयणं, सम्मं परिणमइ सुद्ध हिययाणं ॥ तहतह लोअ पवाहे, धम्मं पडिहाइ नड चरियं. ॥ ६६॥ दोहाः– जिम जिम जिनवच सुमनने, प्रगटे सम्यक् प्रकार॥ तिम तिम लोक प्रवाहमें, धर्म नाति नट चार ॥ ६६ ॥ व्याख्याः– जह जह–जेम जेम सुद्ध हिययाणं- निर्मल हृदयवंत पुरुषोने जिणिंदवयणं–जिनेंद्रनां वचन सम्मं–सम्यक् प्रकारे परिणमइ–परिणमे छे एटले अत्यंत रुचेछे, तह तह–तेम तेम लोअपवाहे– लोक प्रवाहनेंविषे धम्मं– जे आपमतिनो धर्म छे ते नडचरियं– नट चरित एटले नटना खेलनी पठे तेने पडिहाइ– प्रतिभासेछे एटले देखाय छे, तेवा पुरुषोने सम्यक्त्व थाय. ॥ ६६ ॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां जिनेंद्र वचन आश्री कह्युं; हवे तेनुंज दृढपणे कथन करेछेः– मूलः– जाण जिणिंदो निवसइ, सम्मं हिययम्मि सुद्धनाणेणं ॥ ताण तिणं व विरायइ, समिछ धम्मो जणो सयलो ॥ ६७ ॥ दोहाः– शुद्ध ज्ञान कर जसु हिये, सम्यक वशो जिनेश ॥ तसु आगे तृण जिम दिपे, मिथ्या धर्मि अशेष ॥ ६७ ॥ व्याख्याः– जाण हिययम्मि- जेना हृदयनेविषे जिणिंदो–जिनेंद्र तीर्थनाथ सम्मं–सम्यक् प्रकारे सुद्ध नाणेणं–निर्मल ज्ञाने करीने निवसइ– वसे छे; ताण–तेने समिछ धम्मो–मिथ्या धर्म सहित एवा जे सयलो–सकल जणो- लोक छे ते तिणंव–तृणोनी परे अकिंचितुकर एटले कांई हित बल करवा समर्थ नथी एवो ते मिथ्यात्वी लोक विरायइ–विराजे छे, भासेछे एटले देखायछे. ॥६७॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां जेना हृदयमां सम्यक् प्रकारे जिनेंद्र देव वशेछे ते जिनधर्मथकी चलायमान थाय नही, एम देखाडयुं. हवे तेथी जे इतर छे तेनुं स्वरूप कहेछेः– मूलः– लोअ पवाह समीरण, उदंम पयंम चंम लहरीए ॥ दढ सम्मत्त महाबल, रहिआ गुरुआविहल्लंति ॥ ६८ ॥ दोहाः– लोक प्रवाह पवन उदंम, चंम प्रचंम लहरेय ॥ दृढ समकित अति बलविना, गुरुआ पण हल्लेय ॥ ६८ ॥ व्याख्याः– लोअ पवाह समीरण--लोक प्रवाहरूप पवन, तेने उदंड–आगम विरुद्ध अछतां वचनरूप अति ऊंची एवी पयंम–प्रचंड दुःखदायक क्रोध

ना वचनरूप माहोमांहे मलेली श्रेणी जे चंम- रोइ अतिशय नयकारी एवी ल हरीए-लहेरीयोएकरी प्रेरया छतां एवा, वली दढसम्मत्त महाबल रहिआ-दृढ स म्यक्त्वरूप महा बलेकरीने मोटा पराक्रमे करीने रहितछता एवा गुरुआवि- बा ह्य गुणेकरीने मोटा पण ते हल्लंति-हालेछे एटले मोलम मोला थायछे. अमुक एम कहेछे, अने अमुक एम कहेछे तेमां कोनुं खरुं मानिये! आनुं के पहेलानुं! शुं करिये! एवी रीते मोलम मोला थायछे पण तत्व निश्चे करी शकतो नथी. ॥६८॥

अवतरणः- पूर्व गाथामां लोक प्रवाहरूप पवननी लहेरोएकरी जे प्रेरया होयछे ते अज्ञानी होयछे. एम कह्युं, हवे तेनुं स्वरूप कहेछेः- मूलः- जिण मय लव हीलाहे, जं डुःखं पाउणंति अन्नाणी. नाणीण संजरित्ता, जएण हियय थरहरइ ॥ ६९ ॥ दोहाः- जिनमतनी निंदा करी, जो अज्ञानि डुख पाय ॥ ते सांजरि ज्ञानी तणो, जय करि कंपे काय ॥ ६९ ॥ व्याख्याः-जिणमय लवहीलाए-स्या द्वादनी एक लवमात्र हीलनाए करी अन्नाणी-अज्ञानी जीव जं डुक्कं-ज डुःखप्र ते पाउणंति-पामे छे, ते डुखने संजरित्ता-संजारीने अथवा ते संजरित्ता- ते डुःख ने समरीने नाणीण-ज्ञानवान पुरुषोनुं जएण-जयेकरीने हियय-हृदय थरहरइ- थर थर कंपायमान थाय छे; एटले ते अज्ञानी जीवनी ऊपर अनुकंपा आवे छे. अने पोते पण जिनमतनी हीलना थकी घणुंज बीहे छे ए जाव ॥ ६९ ॥

अवतरणः- पूर्व गाथामां जिनमतनी हीलना कयाथी अज्ञानी जीव जे डुःखने पामे छे, ते डुःखने याद करीने ज्ञानी पुरुषनुं हृदय जये करी थर थर कंपे छे एम कह्युं, पण ते ज्ञानीजीव अज्ञानीना दोषने जोता नथी ते कहे छेः-मूलः-रे जीव अना णीणं, मिछदिछीण नियसि किं दोसे ॥ अप्पावि किं न याणेसि, नय्यंइ कछेण सम्मत्तं ॥ ७० ॥ दोहाः- मिथ्यादृष्टि अज्ञानिनो, दोष जुवे शुं योध ॥ नहि जा णे शुं आपने, कष्टे समकित बोध ॥७०॥ व्याख्याः-रे जीव-हे जव्य जीव, अन्ना णीणं मिछदिछीणं-अज्ञानी जे मिथ्यादृष्टि छे तेउना दोसे-जिनमतनी हीलनादिक दोषने किं- शुं नियसि-तुं देखे छे; तुं तादृशी अप्पावि-आत्माने पण किं न या णेसि-शुं नथी जाणतो, जे अनेक वार इव्य थकी जिनमत आश्रीने जिनमतनी हीलना कीधी तेथी में घणां डुःख पाम्यां; एम शुं तुं नथी जाणतो? अर्थात् तुं जाणे छे; वली नय्यंइ-वीतरागना वचनथी जणाय छे; जे सम्मत्तं-सम्यक्त्व दर्शन ते कछेण-कष्टे करी अनेकगमे उपदेश देवाथी पमाय अथवा जणाय छे; पण स हेजे पमाय अथवा जणाय नही. ॥ ७० ॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां कष्टे करीने सम्यक्त्व जणाय छे एम कह्युं, त्यारे शिष्ये आशंका करी के, गोत्र देवतादिक तथा पासत्थादिकने पूजतां लोकवृत्तिए करीने कोईएक खशी जाय तेमां शुं दोष छे? इछा तो शुद्ध जिनधर्मनी छे? एनो उत्तर कहेछेः– मूलः– मिछत्त मायरंतवि, जे इह वंछंति सुद्ध जिण धम्मं ॥ तेग छावि जरेणं, चुत्तुं इछंति खीराई ॥ ७१ ॥ दोहा– आचरता मिथ्यात्वने, जे चाहत जिन धर्म ॥ ज्वर पीडित ते पय पिवा, वांछे विकल विशर्म ॥७१॥ व्याख्याः– मिछत्त मायरंतवि–कुदेव, कुगुरु, कुधर्म सेवनरूप मिथ्यात्वने आचरतां अथवा सेवतां लोकनी वृत्तिए करी कोईएक दिवसे पण जे–जे पुरुष इह–आ जगतनेविषे सुद्ध जिणधम्मं–निर्मल जिन धर्मने वंछंति–वांछे छे, ते पुरुष जरेणं–ज्वरे करीने एटले तापे करीने घछावि–ग्रस्त एटले पीडाता थका पण खीराइ--क्षीरादिकप्रते चुत्तुं–खावाने इछंति–इछेछे, एवा न्याय करेछे. एटले जे मिथ्यात्वप्रते सेवतो थको जिनधर्मनी इछा करेछे ते करवुं तेनुं सर्व जव दुःखने अर्थे छे. ॥ ७१ ॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां मिथ्यात्वने आचरतो छतो पण जे जिनधर्म करवानी इछा करेछे, एम कह्युं, हवे तेना दोष देखाडता छतां दृष्टांत सहित दार्ष्टांत कहेछेः– मूलः– जह केइ सुकुल वहुणो, सीलं मयलंति लिंति कुल नामं ॥ मिछत्त मायरंतवि, वहंति तह सुगुरु केरत्तं. ॥ ७२ ॥ दोहाः– जिम केईक सुकुल वधू, व्रत हत लियकुल नाम ॥ आचरता मिथ्यात्व तिम, वहे सुगुरु अनुगाम.॥ ॥ ७२ ॥ व्याख्याः– जह–जेम केई–कोईएक सुकुल वहुणो–सारा कुलमां उत्पन्न थएली स्त्रीओ सीलं मयलंति– अंग उपांग गोपीने राखवां, पर पुरुषोनी साथें वातो न करवी, अति उद्भट वेष न पहेरवो, नीची दृष्टि करी चालवुं, कामविकारनी कथा न करवी, घरने बारणे ऊना न रहेवुं, बारी गोखलानी बाहर मुख कहाडीने न जोवुं, लाज तथा शरमने मूकीने वातनो विस्तार न करवो. आलस न मोडवुं, जाणी जोईने बगासां न नाखवां, कडकडां न कहाडवां, पर पुरुषने प्रेम सहित न जोवुं, कार्यविना कोई सगावालाने घेर पण न जावुं, इत्यादिक शील आचारने मलीन करती छती लिंतिकुलनामं–सेनापति, गाथापति श्रेष्ठी इत्यादि मोटाना कुलनुं नाम लेती एटले अमे मोटा कुलनी छैए, एम कहेती मोटा कुलने कलंकित करेछे तह–तेम मिछत्त मायरंतवि–कुदेव तथा कुगुरुसेवा, अने उत्सूत्रप्ररूपणादिक मिथ्यात्वने आचरतां छतां पण नामसाधु अने नामश्रावक ते सुगुरु केरत्तं–सौधर्मा स्वामी प्रमुख सुगुरुना केडवापणाप्रते वहंति-- वहेछे एटले धारण

करेछे. अर्थात् पोते उत्सूत्री अनाचारी छतां संविज्ञ गीतार्थ सुगुरुना केडवापणाने धारेछे ते उलटुं आचारवंत गुरुने उत्सूत्री अनाचारी लोकमांहे प्रसिद्ध करेछे पण ते बापडाने अज्ञानने वसे खबर पडती नथी. ॥ ७२ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां मिथ्यात्वनुं आचरण करतां घणा दोष लागेछे एम कह्युं, हवे उत्सूत्रविषे वात कहेछेः-- मूलः-- उस्सुत्त मायरंतवि, ठवंति अप्पं सु साव गत्तम्मि ॥ तेरुद्दरोरघछवि, तुलंति सरिसं धनछेहिं ॥ ७३ ॥ दोहाः-- आच रता उत्सूत्र जे, माने आपसुसद्ध ॥ रांइ दरिद्रे दुःखि ते, तुले साथ सुधनद्ध॥७३॥ व्याख्याः--उस्सुत्त मायरंतवि--अविधिए जिनपूजा सामायक पडिकमणादिक उत्सूत्र प्रते आचरतां छतां पण एटले सेवतां थका अने जे सुसावगत्तम्मि--सुश्रावकपणा नेविषे अप्पं--पोताने ठवंति--स्थापेछे ते--ते पुरुष शुं करेछे ! रुद्दरोरगछवि--रोद्र रोरेकरी एटले अतिशय दारिद्रे करी ग्रस्तछता पण एटले पीडया थका अने धणछेहि सरिसं--धनाढयनी साथे एटले महाधनवाननी साथे तुलंति- तुलना करे छे, एटले पोतें दारीद्री छतां धनाढयनीसाथें बरोबरीपणुं करेछे. ॥ ७३ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां उत्सूत्र बोले ते मूढ कहेवाय एम कह्युं, हवे जे मूढ होय ते न्याय जाणे नही ते कहेछेः-- मूलः-- किवि कुल कमम्मिरत्तो, किवि रत्ता सुद्ध जिणवर मयम्मि ॥ इय अंतरंम्मि पिछह, मूढा नायं न जाणंति ॥ ७४ ॥ दोहाः-- केइ कुलाचारे रता, केइ रत जिन मतमांहि ॥ जुओ भ्रात इति अंतरे, लखे न्याय सठ नाहि ॥ ७४ ॥ व्याख्याः-- किवि--केटलाएक पु रुष छे ते कुलकम्ममि--कुल कर्मनेविषे एटले सत्य असत्य विचार रहित. अ विधि मल कलंक सहित, लोक प्रवाहनेविषे रत्ता--रक्त छे एटले आसक्त छे, अने किवि--केटलाएक पुरुषो छे ते सुद्ध जिणवरमयम्मि--निर्मल अविधि मल कलंकरहित अनेकांत स्याद्वाद जिनवर मतनेविषे रत्ता--रक्त छे एटले सावधान छे; इय--ए प्रकारे अंतरम्मि--पुरुषोमां प्रगट अंतर छतां कुलक्रम मिथ्यात्वनेविषे जे रक्त ते अविवेकी, अने शुद्ध जिनमतनेविषे जे रक्त ते विवेकी, ए प्रकारे पुरुषो मां प्रगट अंतर छे ते मूढा--मूढ ज्ञान विकल प्राणी नायं--न्यायने नयाणंति-- नथी जाणता एटले कुलक्रम छे ते संसारनो हेतु छे, शुद्ध जिनेंद्रमत छे ते मोक्ष नो हेतु छे. ए खरे खरो जे न्याय तेने नथी जाणता. पिछ--हे श्रोताओ तमे जुओ ए केटली आश्चर्यनी वात छे ! ॥ ७४ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां कह्यो जे न्याय ने विपरीतपणे जाणीने कोई एक

जीव मिथ्या दृष्टि पाखंमीउनो संगमात्र मूके पण तेणे कहेलो धर्म मूकी दिये नही ते अयुक्तपणुं छे एम कहे छेः– मूलः– संगोवि जाण अहिउ, तेसिं धम्माइ जे पकुव्वंति ॥ मुत्तूण चोर संगं, करंति ते चोरियं पावा ॥ ७५ ॥ दोहाः– अहि तकारि जसु संग पण, जे तसु धर्म करेय ॥ चोर संग तजि चोरिने, करै पापि न र तेय ॥ ७५ ॥ व्याख्याः– जाण–जे मिथ्यादृष्टि पाषंमीउनो संगोवि–संगपण अहिओ–अहितकारी छे, जन्म जरा मरणादिक दुःखने देवा वालो छे; तेसिं–ते मिथ्यादृष्टि पाखंमी लोकोनुं कथन करेलुं थापेलुं जे धम्माइ–पाप नवमी चामुंडा कालिकादिक पूजना प्रमुख धर्म तेने जे– जे पुरुष पकुव्वंति–अतिशय करीने करे छे ते पावा–पापी जुओ शुं न्याय करे छे! चोरसंगं–चोरना संगने मुत्तूण–मूकीने एटले सूली आरोपण, कान नाशिकादिक छेदन जेमां कांईक संशय हतो ते चोर नो संग मुकीने तेना संगथी संतोष न पामीने पाप मति ते चोरीयं–चोरी पणा प्रते करंति– करेछे; एनो नाव–जेमां शूली देवानो अथवा कान नाशिकादिक छेदन क रवानो कांई पण संशय नथी एवी जे चोरी तेने करे छे जुवो ए केटलो अज्ञान छे.

अवतरणः–पूर्व गाथामां मिथ्यात्वीना धर्मनी स्थापना करे ते पापी कहेवाय एम कह्युं हवे तेज वात विशेषे करी कहे छेः– मूलः– जब पसुमहिस लरका, पव्वं होमंति पाव नवमीए ॥ पूअंति तंपि सढा, हा हीला वीयरायस्स ॥ ७६ ॥ दोहाः– पातक नवमी पर्वमें, पसु मरता जसु पास ॥ तेने पूजित श्राद्ध जन, हा जिन हेला हास ॥ ७६ ॥ व्याख्याः– जब–जे स्थानकनेविषे तथा जे चामुंडा कालिका ज्वाला प्रमुखनी आगल पाप नवमीए पव्वं–पाप नवमी शुक्ल आसु चैत्र संबंधी नवमी तिथी प्रमुख जे पर्व तेनेविषे पसुमहिस लरका लाखो गमे पशु छा ग बोकडा महीस पामा उपलक्षणथी मनुष्य सूकरादिक होमंति–होमाया जाय छे, मराया जाय छे, रुधिरना कर्दम थाय छे. तंपि–ते चामुंमादिक देवीओप्रते सढा–कुल क्रमथी चालतुं आवेलुं ग्रहण कर्युं छे जिनमत जेणे, ते श्रावक लोक पूअं ति–पूजे छे, हाथ जोडे छे, मस्तक नमावे छे, नैवेद्यादिक चडावे छे, जे श्रावक ना म धरावीने एम करे छे ते हा–इति खेदे करी वीयरायस्स–वीतराग देवनी हीला–हीलना एटले निंदा करे अथवा करावे छे; मिथ्यात्वी लोक एम बोले छे जे लगारेक रुधिर थकी पण जे मरे, एक कीडाना मरवाथी बीहे, एवा श्रावक लोको आवी आवीने अमारी चामुंमा देवीने पूजे छे माटे जैनना देवथकी अमारी चामुंडादि

क देवीओ अधिक छे; इत्यादिक हीलना वचन मिथ्यात्वी लोक बोले छे; तेना क राववा वाला ते श्रावको जाणवा ॥ ७६ ॥

अवतरणः— पूर्वे गाथामां हीलनाविषे कह्युं; हीलना छे ते मिथ्यात्व छे; हवे जे मिथ्यात्वनुं आरोपण करेछे, तेणे शुं कर्युं ते कहेछेः— मूलः— जो गिह कुटुंब सामी, संतो मिछत्त रोवणं कुणइ ॥ तेण सयलोवि वंसो, पक्खित्तो नव समुद्दम्मि ॥ ७७ ॥ दोहाः— गृहकुटंब स्वामी छतो, जे थापे मिथ्यात ॥ नाख्यो तेणे वंश सब, नव समुद्रमें भ्रात ॥ ७७ ॥ व्याख्याः— जो—जे गिह कुटुंब सामी संतो—गृह एटले नारी, कुटुंब ते स्वजनादिक एउनो स्वामी अथवा कपरी छतां मिछत्त रोवणं— मिथ्यात्वनुं आरोपण एटले स्थापन कुणइ—करे छे; तेण—ते पुरुषे शुं कर्युं! सयलोवि वंसो—सकल वंस पण नव समुद्दम्मि—संसार समुद्रनेविषे पक्खित्तो प्रक्षेप्यो एटले नाखी दीधो. सिद्धांतमां श्रावकने मिथ्यात्वनो त्रिविध त्रिविध त्याग करवानुं कह्युं छे. ए हेतु माटे घर कुटुंबनो स्वामी छतां जे श्रावक ते मिथ्यात्वनुं आरोपण अथवा स्थापन केम करे! उपलक्षणथी कोईना घेरमां केम करवा दे! अपितु करे पण नही अने कोईने करवा पण दिये नही ॥ ७७ ॥

अवतरणः— पूर्वे गाथामां जे मिथ्यात्वनुं आरोपण करे ते पोताने तथा सकल वंशने नव समुद्रमां नाखे छे एम देखाड्युं, हवे जे मिथ्यात्वने सेवे छे तेने सम्यक्त्व होतुं नथी ते कहे छेः— मूलः— कुंम चउत्थी नवमी, बारस्सी पिंम दाण पमुहाइं ॥ मिछत्त भाव गाई, कुणंति तेसिं न सम्मत्तं ॥ ७८ ॥ दोहाः— बारस नवमी चोथ मृत, पिंम प्रमुख मिथ्यात ॥ जे नर सेवे तेहने, नहि समकित अवदात ॥ ७८ ॥ व्याख्याः— कुंड चउत्थी— गणेश चोथ, करवा चोथ, नवमी—शुक्ल चैत्र आशोनी पाप नवमी बारस्सी— वछ बारस, पिंम दाण पमुहाइं— मुएला पित्रादिकने भोजननुं देवुं इत्यादिक मिछत्त भावगाइ— मिथ्यात्वनो भाव रह्यो छे जेमां, एवा जे लौकिक देवगत तथा गुरुगत मिथ्यात्व, अने लोकोत्तर देवगत तथा गुरुगत मिथ्यात्व, एमज लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, तथा लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व जाणवां ते मिथ्यात्वने जे पुरुष कुणंति—करे छे एटले सेवे छे. तेसिं— ते पुरुषोने न सम्मत्तं—सम्यक्त्व अथवा जिनोक्त तत्वनुं श्रद्धान नथी. ॥ ७८ ॥

अवतरणः— पूर्वे गाथामां जे मिथ्यात्वने सेवे तेने सम्यक्त्वनी प्राप्ति थाय नही एम कह्युं; हवे ते मिथ्यात्वनेविषे पडेला जे कुटुंब तेने कोई एक धीर पुरुष कहाडेपणछे ते सर्वना हितने अर्थे दृष्टांतसहित कहेछेः—मूलः—जह अइकलंमि खु

तं, सगमं कढंति केवि धुरि धवला ॥ तह मिछात कुडुंबं, इह विरला केवि कढं ति ॥ ७९ ॥ दोहाः— जिम कादव खूतो शकट, काढे केइक धोरि ॥ तिम कुटुंब मिथ्यात्वथी, काढे केइ सजोर ॥ ७९ ॥ व्याख्याः— जह— जेम केवि केटलाएक धुरिधवला— प्रधान वृषन ठे ते अइकलम्मिखुत्तं— अति कादवमां खूतेलुं एवुं जे शगमं— शकट एटले गाडुं तेने कढंति--कहाडेडे' तह— तेम इह— आ दूसम आरानेविषे केविविरला— केटलाएक विरला हलुकर्मी आसन्न सिद्धि कदाग्रह रहित पुरुष ठे ते मिछाओ— पूर्वोक्त मिथ्यात्वरूप कादवमांथी कडुबं— पोताना पुत्र कलत्रादिक कुटंब परिवारने कढंति—कहाडेठे, अने जिनजाषित धर्मेनेविषे जोडेठे पण सर्व प्राणी जोडवा समर्थ नथी. ॥ ७९ ॥

अवतरणः-- पूर्वे गाथामां मिथ्यात्वमां पडेला जे कुटुंब तेने कोई विरला पुरुष कहाडे पण बधा कहाडी शके नही एम कह्युं, पण जिनदेवने जोवाथकी सर्व जीव सम्यक्त्व पामशे ते शंका निवारण करवाने वास्ते कहेठेः— मूलः-- जह वहलेण सूरं. महियल पयडंपि नेय पिछंति ॥ मिछत्तस्स य उदए, तहेव न नियंति जिण देवं ॥ ८० ॥ दोहाः— जैसे महितल प्रगट नी. घन युत रवि न दिखाय ॥ तैसे उदय मिथ्यात्वके, नहि दीसत जिनराय ॥ ८० ॥ व्याख्याः— महियल पयडंपि सूरं—घट पटादिक वस्तु देखाडवाथकी महीतल पृथ्वीमंमलनेविषे प्रगट एवो जे सूर्य, तेने पण जह—जेम वहलेण--वादलाए करीने एटले मेघ घटाए करीने लोक नेयपिछंति--नथी देखता. तहेव--तेमज मिछत्तस्सय उदए--पूर्वोक्त मिथ्यात्वनो उदय थयो ठतां जिणदेवं--जिनदेव प्रत्ये लोक न नियंति—नथी देखता, च शब्दथी सुगुरु तथा सुधर्म प्रत्ये पण नथी देखता, जेम वादलाएकरीने सूर्यनो बिंब देखाय नही, तेम मिथ्यात्वना उदयथी सुदेव सुगुरु देखाय नही वादल खशी जाय त्यारे सूर्य देखायठे; तेम मिथ्यात्व टल्याथी जिनदर्शन थाय ठे. एटले तत्वथकी जिनदेवनुं स्वरूप उलखाय ए जाव; पण बीजी रीते नही एम जाणवुं. ८०

अवतरणः-- हवे मिथ्यात्वनो उदय थयाथी जीव मिथ्यात्वनेविषे आसक्त थायठे, अने गुणी पुरुषनेविषे मछर करे ठे, एवा जीव थायज नही तो सारुं ते कहेठेः-- मूलः-- किं सोपि जणणि जाओ, जाणो जणणीइ किं गओ विद्धि ॥ जइ मिछरओ जाओ, गुणेसु तह मछरं वहइ ॥ ८१ ॥ दोहाः-- किम ते जायो जणनिये, जायो तो किं पुष्ट ॥ मिथ्या मगन थयो जदी, तिम गुण मछरि दुष्ट ॥ ॥ ८१ ॥ व्याख्याः-- किं--शुं सो--ते अपिनिश्चे जणणिजाओ— माताए जन्म्यो,

जणणीइ–जो माता ए जाओ–जन्म्यो तो ते विढिं–वृद्धिने किं–केम गओो–पा
म्यो! एटले ते पुष्ट केम थयो! एम केम कहेवु पड्युं! जइ–जो मिछरओो–मि
थ्यात्वनेविषे रत एटले आसक्त एहवो जाओ–थयो वळी जो गुणेसु–सम्यक्
ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुणे युक्त जे पुरुष तेनेविषे तह–तथा समुच्चय अर्थनेविषे
मछरं–मछर इर्षा एटले द्वेषभाव प्रत्ये वहइ–वहेछे, करेछे एटला वास्ते हे शिष्य,
कहेवुं पड्युं जे ते माताए केम जन्म्यो! अने जो माताए जन्म्यो तो केम ते वृ
द्धिने पाम्यो! केमके पूर्वोक्त जे लौकिक लोकोत्तर मिथ्यात्व, तेनेविषे पोते प्रवृ
त्ति कर्याथी परने प्रवृत्ति कराव्याथी अने गुणी पुरुषनेविषे द्वेषबुद्धि कर्याथी प्राए
अनंत भवभ्रमण छे. वळी कुपुत्रनी माता पण प्राए सारी होती नथी, कदाच
कोई सारी होय तो कुपुत्रने जोगे माताने मलिनता आवे माटे कुपुत्र न जन्म्योज सारुं.

अवतरणः– पूर्व गाथानो अर्थसांभळीने कोई बोल्यो के, देव तथा देवी प्रमु
ख आपणने कोई उपद्रव करे नही माटे मानीए छैए. ते शंका दूर करवाने कहेछेः–
मूळः– वेसाण बंदियाणय, माहण डुंबाण जरकसिरकाणं ॥ भत्ताभरकठाणं, वि
याणं जंतिदूरेणं ॥ ८२ ॥ दोहाः– वेस्या ब्राह्मण भाट डुंब, जक्षसिक्ष इन काय॥
भक्ष स्थान स्वभगत छे, विरतीथी अळगाय ॥ ८२ ॥ व्याख्याः– वेसाण–वेस्या
नो बंदियाण–चारण भाटादिक लोकोनो माहण डुंबाण–ब्राह्मण लोकोनो डूंबो
नो, जरक सिरकाणं–जक्ष व्यंतर देव शेष गणेशादिकनो एटले मिथ्या दृष्टि देवी
देवताओनो भत्ता–भक्त अथवा सेवक छे तेज तेओनो भरकठाणं–भक्षने मागवा
नुं स्थानक छे. एटले वेस्या चारण भाटादिक सरिखा जे मिथ्यादृष्टि देव देवीओने
माने अथवा पूजेछे तेओनेज ते आवीने नडेछे अने दुःख दियेछे, ते तेओनीज पाशे
थी भक्ष मागेछे पण विरयाणं–विरति पुरुषोथकी दूरेण–दूर जंति–जायछे. एट
ले ते मिथ्यादृष्टि देव देवीना त्यागी छे; वंदन नमस्कारादिक आदर पण कांई
करता नथी तेथकी ते देव देवीउ दूर जायछे. ॥ ८२ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां विरति पुरुषोथकी मिथ्यादृष्टि देवता दूर जायछे एम
कह्युं, माटे विरति पुरुष शुद्ध मार्गनेविषे सुखे चाले ते कहेछेः– मूळः– सुद्ध मग्गे
जाया, सुहेण गछन्ति सुद्ध मग्गंमि ॥ जे पुण अमग्ग जाया, मग्गे गछंति तं चुज्जं. ॥
॥ ८३ ॥ दोहाः– सुखे सुद्ध मारग चलै, थया सुद्ध मग जेय ॥ जात कुमार्गी मा
र्गमें, चाले अचरज तेय ॥ ८३ ॥ व्याख्याः– सुद्ध मग्गे जाया–शुद्धमार्गनेविषे उ
त्पन्न थया एटले जे शुद्ध परंपराए साधु श्रावकना कुळनेविषे उत्पन्न थया ते

जीव सुद्ध मग्गम्मि—सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप निर्मल जे मोक्षमार्ग तेनेविषे सुहेण—सुखे सुखे गछंति—गमन करेछे. एटले जायछे, एमां कांइ आश्चर्य नथी. पुण—वली जे—जे प्राणी अमग्ग जाया—कुमार्गनेविषे उत्पन्न थया ते एटले अन्य दर्शननेविषे तथा उत्सूत्र नाषी उन्मार्गे चालनार जैनानास नन्हव पासत्था ओसन्नादिकना कुलनेविषे उत्पन्न थया ते जीव सुगुरुना मुखनी वाणी सांनलीने मग्गे—मोक्षमार्गनेविषे गछंति—गमन करेछे अथवा जायछे. तं—ते चुय्यं—आश्चर्य छे ॥७३॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्युं जे कुमार्गनेविषे उत्पन्न थया ते मोक्षमार्गे चाले ते मोटो आश्चर्य छे. एवुं सांनलीने कोई कहेछेके एमां सुं आश्चर्य छे? ए आशंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— मिछत्त सेवगाणं, विग्घसयाइंपि बिंति नोपावा ॥ विग्घ लवंमि विपमिए, दढ धम्माणं पणञ्चंति ॥ ७४ ॥ दोहाः— मिथ्यात्वीके विघन सत, पण बोलत नहि डुष्ट ॥ पडे विघन लव धर्मिके, तो नाचै अघ पुष्ट ॥ ७४ ॥ व्याख्याः— मिछत्त सेवगाणं— मिथ्यात्वनुं सेवन करनार, एटले कुदेव कुगुरु मिथ्यादृष्टि देवी देवताना पूजनारने विग्घसयाइंपि—रोग सोग नय कष्ट मरणादिक शेकडा गमे विघ्न थायछे, पण ते शेकडा विघ्नोना समूह प्रत्ये पावा— जे पापी मिथ्यात्वी लोक छे ते नो—नथी बिंति— बोलता अने दढधम्माणं—दृढ धर्मी पुरुषोने विग्घ लवंमि विपडिए— लवमात्र विघ्न पड्याथी पण एटले लगारेक खास श्वास ज्वरादिक थयाथी पण ते पापी मिथ्यादृष्टि लोक पणञ्चंति—अतिशय करी नाचे अथवा कूदेछे; दृढ धर्मी पुरुषोनो अवर्णवाद बोलेछे माटे जे कुमार्गनेविषे उत्पन्न थईने शुद्ध मार्गनेविषे चाले ते मोटो आश्चर्य जाणवो. केम के कुमार्गमां उत्पन्न थईने सुमार्गे चाले एवो संनव थतो नथी. ॥ ७४ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां कह्युं के जे पापी लोक छे ते दृढ धर्मी पुरुषोने लगारेक विघ्न पडे ते जोईने नाचेछे; केमके, तेपोते उन्मार्गनेविषे उत्पन्न थया एवुं जाणता नथी ते कहेछेः— मूलः—सम्मत्त संजुआणं, विग्घंपि हु होइ उछव सरिछं॥ परमुछवंपि मिछ, त्त संजुअं अइ महाविग्घं. ॥ ७५ ॥ दोहाः— समदृष्टी के विघन पण, उछव सरिखो होय ॥ अति उछव मिथ्यात्व जुत, महा विघ्न नय जोय ॥ ७५ ॥ व्याख्याः— सम्मत्त संजुआणं—सम्यक्त्व सहित पुरुषोने विग्घंपि हु—मरणादिक विघ्न पण निश्चये करी उछव सरिछं—उत्सवना जेवुं होइ—थायछे केमके सम्यक्त्ववान प्राणी आ लोकनेविषे सम संवेगादिक गुणेकरी सदानंदी होयछे. ते मरीने पण प्रधान देवगतिने पामेछे. माटे तेने मरणादिक विघ्नपण उत्सवतु

त्यछे; अने जे मिछत्त संजुअ–मिथ्यात्व संयुक्त छे ते परमुछवंपि–परम उत्कृष्ट उत्सव छतां पण अइ महाविग्घं–अति महा विघ्नभूत छे. केमके मिथ्यादृष्टि जीव महा मोह मिथ्यात्व दवानलने योगे संतप्तात्मा होयछे माटे अहीं दुःखी थईने मरीने दुर्गतिनेविषे जायछे एवी रीने परलोकनेविषे पण दुःखी थायछे ते वात उन्मार्गीमां जे उत्पन्न थाय ते जाणता नथी. ॥ ७५ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां कह्युं के, सम्यक्त्ववान प्राणीने विघ्न पण उत्सवना जेवो थायछे, ते केवी रीते ते कहेछेः– मूलः– इंदोवि ताण पणमइ, हीलंतो नियय रिद्धि विछारं ॥ मरणंते वि हु पत्ते, सम्मत्तं जे न छड्डंति ॥ ७६ ॥ दोहाः– निज संपतकूं हीलतो, नमे इंद पण तास ॥ जे समकित छांमे नही, पडे मरणकी त्रास ॥ ७६ ॥ व्याख्याः– हु–निश्चेकरी मरणंतेवि पत्त–मरणांत समय प्राप्त छतां पण एटले कंठगत प्राण थया छतां पण जे–जे पुरुष सम्मत्तं–जिनोक्त तत्व श्रद्धान सम्यक्त्वने न छड्डंति–नथी मूकता ताण–ते पुरुषोने इंदोवि–देवेंद्र पण पणमइ–प्रणाम करेछे. ते शुं करतो थको प्रणाम करेछे? नियय रिद्धिविछारं–निजक संबंधी एटले पोता संबंधी ऋद्धि समृद्धिनो जे विस्तार तेने हीलंतो–हीलना करतो थको एटले तृण तुल्य मानतो थको प्रणाम करेछे. ॥ ७६ ॥

अवतरणः–पूर्व गाथामां कह्युं के, कंठगत प्राण छतां पण सम्यक्त्वनो त्याग करता नथी एहेवुं दृढपणुं होवानुं कारण शुं छे ते कहेछे.– मूलः– छड्डंति नियय जीयं, तिणंव मुरकछिणो न उण सम्मं ॥ लप्भइ पुणोवि जीयं, सम्मत्तं हारियं कत्तो ॥ ७७ ॥ दोहाः– मोक्षार्थी तृण जिम तजे, निज जीवित न समत्त ॥ जीवित वलि पण पामिये, हर्युं न समकित कत्त ॥ ७७ ॥ व्याख्याः– मुरकछिणो–जे मोक्षनो अर्थी छे ते, नियय जीयं–पोताना जीवितने एटले आयु तथा प्राणने तिणंव–तृणनी पठे छड्डंति–छांमेछे अथवा त्यागी दियेछे. उण–पुनः एटले वली सम्मं–सम्यक्त्वने न–नथी मूकता. शुं जाणीने नथी मूकता? जीयं–जीवित छे ते तो पुणोवि–वली पण लप्भइ–प्राप्त थशे; केमके, 'ज्या सुधी मोक्ष नथी' त्यां सुधी जीवित तो जन्म जन्मनेविषे छे, पण सम्मत्तं हारियं–सम्यक्त्व रत्न हारेलुं कत्तो–क्यांथी प्राप्त थाय केमके सम्यक्त्व रत्न हारेलुं फरीने प्राप्त थवुं अति दुर्लभ छे. एम श्रीवीतरागे कह्युं छे. माटे पोताना जीवितनो त्याग करेछे पण मोक्षनो अर्थी सम्यक्त्वनो त्याग करतो नथी. ॥ ७७ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां सम्यक्त्व हारेलुं फरी प्राप्त थवुं दुर्लभ कह्युं ते तो

ठीक पण ते सम्यक्त्व वडे करीने शुं धनवान नही थाय! ए शंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— गयविहवावि सविहवा, सहिया सम्मत्त रयण राएण ॥ सम्मत्त रयण रहिया, संतेविधणे दरिद्दत्ति ॥ ८८ ॥ दोहाः— विभव रहित पण विभव जुत, समकित रत्न समेत ॥ समकित रहित छते धने, दारिद्री वनप्रेत ॥ ८८ ॥ व्याख्याः— सम्मत्त रयण राएणः— सम्यक्त्वरूप रत्न राज एटले सम्यक्त्वरूप जे चिंतामणि रत्न तेणे करीने सहिया सहित जे पुरुष ते गयविहवावि—गतविभव थई जाय. धन संपदा रहित थई जाय तो पण सविहवा—सहित विभव कहिये एटले धनसंपदाए करी सहित कहिये. केमके, सम्यक्त्वरूप चिंतामणि रत्न जे भाव लक्ष्मी, तेनी पाशे धनधान्यादि बाह्य लक्ष्मी शा हिशाबमां छे! कांई पण हिसाबमां नथी. सम्यक्त्व रत्न मोक्ष सुखनो देनार छे अने बाह्य लक्ष्मी जेछे तेतो सम्यक्त्वविना पुरुषने नरकादिकनी देनार छे. माटे एम कह्युं, अने सम्मत्त रयण रहिया—सम्यक्त्व रत्न रहित जे पुरुष छे एटले जेनी पाशे सम्यक्त्वरूप रत्न नथी ते पुरुष संतेवि धणे—धन छतां पण दरिद्री छे एटले निर्धन छे. ॥ ८८ ॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां सम्यक्त्वनुं विशेषपणुं देखाडयुं माटेज सम्यक्त्व शुद्धिना अवसरे कोई धननी कोटी आपे तोपण सम्यक्त्ववान श्रावक ते अवसरथी चूके नही; ते कहेछेः— मूलः— जिण पूअण पत्थावे, जइ कुवि सड्डाण देइ धण कोडिं॥ मूत्तूण तं असारं, सारं विरअंति जिण पूअं ॥ ८९ ॥ दोहाः— पूजा अवसर श्राद्धकूं, कोइ दिए धन कोडि ॥ ते असार तजि सार जिन, पूजा रचै निचोडि ॥ ८९ ॥ व्याख्याः— जिण पूअण पत्थावे— जिन पूजा करवाना प्रस्तावे एटले अवसरे सड्डाण— सम्यक्त्ववान श्रावक लोको भणि जइ—जो कुवि—कोई इंद्र नरेंद्र धनवान पुरुष धण कोडिं—धननी कोटीने देइ— दिए अथवा आपे तं—ते असारं—असार अथिर धननी कोटीने मुत्तूण—मूकीने सारं—सार प्रधान एवी जे जिण पूअं—जिनराजनी पूजा तेने विरअंति—विशेष पणे विधि पूर्वक रचे एटले करे.॥८९॥

अवतरणः— पूर्व गाथामां जिन पूजा जे छे ते सार छे एम कह्युं; पण विधि पूर्वक जिनपूजा सार जाणवी. अहीं शिष्य आशंका करेछे के, अविधिए केम सार नही? ते शंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— तित्थयराणं पूआ, सम्मत्त गुणाण कारिणी भणिया ॥ साविय मिछत्तयरी, जिण समये देसिया पूआ ॥ ९०॥ दोहाः— दर्शनादि गुण कारिणी, कहि जिनवर पूजाय ॥ वलि मिथ्यात्व करी कही, सा पूजा जिनराय ॥ ९० ॥ व्याख्याः— तित्थयराणं—तीर्थंकर एटले अरिहंतो

नी पूआ–जल पुष्प चंदन धूप दीपादिरूप विधिपूर्वक पूजा ते सम्मत्त गुणाण– सम्यक्त्व ज्ञानादिक गुणनी कारिणी– करवा वाली तथा सम्यक्त्व ज्ञानादिक गुण प्रगट करवाने कारणभूत भणिआ–जिनागममां कही छे. साविय– वली तेपण पूआ– तीर्थंकरनी पुष्प चंदनादिरूप अविधि पूर्वक पूजा ते मिछत्तयरि–मिथ्यात्वनी करनारी जिण समये–जिन आगमनेविषे देसिआ–देखाडी छे. एम जाणीने अहो भइ, तीर्थंकरनी विधिपूर्वकज पूजा करवी श्रेय छे. ॥ ९० ॥

अवतरणः–पूर्व गाथामां जे तत्वने जाणनार होयछे ते विधिपूर्वक जिनपूजा करे एम देखाड्युं; पण एवी रीते तत्वने जाणनार कोण होय छे ते कहेछेः– मूलः– जं जं जिण आणाए, तं चिय मन्नइ न मन्नए सेसं ॥ जाणइ लोयपवाहे, न हु तत्तं सो अ तत्तविऊ ॥ ९१ ॥ दोहाः– जो जो जिन आज्ञा सहित, तेहिज माने जोय ॥ शेष न माने तत्व नह, लोकिके विद् सोय ॥ ९१ ॥ व्याख्याः– जं जं जिण आणाए–जे जे वचन जिन आज्ञाए करीने छे, तं चिय–ते वचननेज मन्नइ–जे पुरुष मानेछे सेसं–ते टाली शेष जिन आज्ञा विरुद्ध जे वचन तेने न मन्नए– नथी मानता वली जे हु–निश्चे लोयपवाहे– लोक प्रवाहनेविषे तत्तं–तत्व मोक्ष साधनरूप सार पदार्थ कांई पण न–नथी. जाणइ–जाणता. सो–ते पुरुष तत्तविऊ–तत्वज्ञानी जाणवो. पण एथी बीजो कोई तत्वनो जाणनथी॥९१॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां कह्यां जे अर्थ, ते प्रगट करवाने अर्थे उपनय सहित निगमन करतां छतां एटले समाप्ति करतां छतां कहे छेः– मूलः– जिण आणाए धम्मो, आणा रहिआण फुडं अहमुत्ति ॥ इय मुणि ऊणय तत्तं, जिण आणाए कुणहु धम्मं ॥ ९२ ॥ दोहाः– आणा रहित अधर्म कुट, धर्म जिनाज्ञा तार ॥ एह तत्व जाणी करो, धर्म जिनाज्ञा सार ॥ ९२ ॥ व्याख्याः– जिण आणाए– जिन आज्ञाए करीने धम्मो– क्षमा दयादिकरूप धर्म छे; आणा रहिआण– जिण आज्ञाए करी रहित जे पुरुष, तेने फुडं– प्रगटपणे अहमुत्ति– हिंसाभूठ प्रकोपादिरूप अधर्म पाप व्यापार छे; इति– पद समाप्तिने अर्थे, इय– ए प्रकारे तत्तं– तत्वने एटले धर्मना स्वरूप अने अधर्मना स्वरूप एटले धर्म अधर्म बन्नेना स्वरूप प्रते मुणिऊण– जाणीने हे भइ, जिण आणाए– जिन आज्ञाए करीने सहित धम्मं– क्षमा दयादिकरूप धर्म प्रत्ये कुणहु– तमे करो. ॥ ९२ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां जिन आज्ञाएकरी धर्म करवो एम कह्युं, हवे जे तत्वज्ञानी सामग्री छतां पण तत्वने नथी सांभलता, नथी जाणवानो उद्यम करता

तेने दोष देखाडतां बतां कहेबेः— मूलः— साहीणे गुरु जोगे जे नहु निसुणंति सुद्ध धम्मत्थं ॥ ते डुठ धिठ चित्ता, अह सुहमा नवजय विहूणा ॥ए३॥ दोहाः— नवजय रहित सुनट तथा, डुष्ट धीठ नर तेय ॥ बते सुगुरु स्वाधीन जे, शुद्ध धर्म न सुणेय ॥ ए३ ॥ व्याख्याः— साहीणे—स्वाधीन पणुं बतां गुरुजोगे—शुद्ध धर्मोपदेशक गुरुनो योग समागम बतां जे—जे पुरुष सुद्ध धम्मत्थं—शुद्ध धर्मार्थप्रते एटले विषय कषाय मलरहित सम्यक् ज्ञान क्रियारूप धर्म परमार्थने हु—निश्चे न नथी, निसुणंति—सांजलता. ते—ते पुरुष केवा बे? डुठधिठ चित्ता—डुष्ट धीठ चित्तवाला जाणवा एटले रागद्वेष मिथ्यात्व कदाग्रह सहित चित्त ते डुष्ट चित्त कहिये; अने वारंवार कहिये तोपण कुचाल बोडे नही ते धीठपणुं; ते धीठपणाए करीने सहित चित्त होय ते धीठचित्त कहिये एवा चित्तवाला अह—अथवा ते केवा जाणवा? नवजय विहूणा—संसार च्रमणरूप संग्रामना जयथकी विहूणा—रहित एवा सुहडा—सुनट एटले योधा जाणवा; घणुं शुं कहिये! दश दृष्टांते दोहेलुं एवुं जे मनुष्यपणुं ते पामीने वली स्वाधीनपणुं पामीने वली तत्वज्ञान प्रकाशिक सदगुरुनो योग पामीने श्रीवीतराग जाषित निर्मल धर्मार्थने सांजलता नथी अने जे सांजलेबे तेनी ऊपर डुष्टजाव करेबे. माटेज कह्युं के ते नवजय रहित एवा सुनट योधाबे.

अवतरणः— हवे गुरु उपदेश सांजल्याथी शुं गुण थाय बे ते कहेबेः— मूलः— सुद्ध कुल धम्म जाइवि, गुणिणो न रमंति लिंति जिण दिरकं ॥ तत्तोवि परम तत्तं तेउवि उवयारउ मुरकं ॥ ए४ ॥ दोहाः— सुकुल धर्म जाती गुणी, पर नर मे लिय सम्म ॥ पढे विसुद्ध चरण पढे, उपकारे शिव रम्म ॥ ए४ ॥ व्याख्याः—सुद्ध कुल धम्म जाइवि—निर्मल कुल धर्म जातिवंत. एवा पण गुणिणो— धैर्य; गंजीर्य, औदार्यादि गुणे सहित एवा पुरुष होय ते गुरु उपदेश सांजल्याथी नरमंति—विषय कषायमां रमता नथी. जिणदिरकं—जिन दीक्षाप्रत्ये एटले सम्यक्त्वने लिंति—ग्रहण करे बे. तत्तोवि—त्यार पढी पण परमतत्तं—परम तत्वने एटले जिनोक्त चारित्र धर्मने ग्रहण करे, तउवि—त्यारपढी पण उवयारओ—उपचारथी एटले शुद्धविधि धर्मोपदेश कर्याथी मुरकं—मोक्षने पामे बे. ॥ ए४ ॥

अवतरणः— वली सदगुरुनो उपदेश सांजल्याथी निश्चे निर्वेद थाय बे ते कहेबेः— मूलः— वन्नेमि नारयाउवि, जेसिं डुरकाइ संजरं ताणं ॥ जव्वाण जणइ हरि हर, रिद्धि समिद्धीवि उद्धोसं ॥ ए५ ॥ नीका नारक जेहनो, डुख सुणि नवि जण केय ॥ हरि हर ऋद्धि समृद्धि पण, तनु उत्कंट जणेय ॥ ए५ ॥ व्याख्याः—

नारयाओवि–नारकी जीवोने पण वन्नेमि–हुं वर्णवुं बुं, एटले वखाणुं बुं. केमके जेसिं– जे नारकी जीवोना डुरकाइ– अनेक प्रकारनां जे डुःख, तेने संजरंताणं–सं जारनार अथवा चिंतन करनार एवा जे नवाण– नव्य जीव, तेना उछोसं–रोम कुपने हरिहर रिद्धि समिद्धी वि–विष्णु शंकरनी रूद्धि समृद्धि छे ते पण जणइ– उत्पन्न करे छे केमके, हरिहरादिकनी रूद्धि समृद्धि छे ते पण नरकादिक डुःखनी हेतु छे. माटे ते देखीने नव्य जीवोनां रोमांच ऊना थाय छे. ॥ ए५ ॥

अवतरणः– एम बे गाथाए करी संवेग निर्वेदनो स्वरूप कह्यो हवे जे ग्रंथोमां एवुं उपदेश छे, एवा उपदेश मालादिक सिद्धांत प्रकरण जे छे तेने सर्व साधु श्रावक माने छे; अने केटला एक कदाग्रही लोक मानता नथी; ते बन्नेना बे गाथाए करी स्वरूप कहेछेः–मूलः–सिरि धम्मदास गणिणा, रइअं उवएस माल सिद्धंतं॥ सव्वेवि समण सढा, मन्नंति पढंति पाढंति॥ए६॥ दोहाः–धर्मदासगणि रचित उप देश माल सिद्धांत॥श्रमण श्राद्ध मानेसवी, पढे पाठवे खांत॥ए६॥ व्याख्याः–सिरि धम्मदास गणिणा श्रीधर्मदास– आचार्यजीए रइअं–रच्युं छे. जे उपएसमाल सिद्धंतं–उपदेशमा ला नामे सिद्धांत प्रकरण तेने सव्वेविसमणसढा–सर्व श्रमण सुसाधु श्राध्य सुश्रा वक जे छे तेउ मन्नंति माने छे, पढंति–पढेछे, अने पाढंति–नणावे छे. ॥ ए६ ॥

मूलः– तं चेव केवि अहमा, छलिया अइमाण मोह नूएण ॥ किरियाए ही लंता, ही ही डुरकाइ न गणंति ॥ ए७ ॥ दोहाः– मान मोह नूते छल्या, अधम केइ किरियाय ॥ तेह मालने हीलता, न गणे नव डुःख नाय ॥ ए७ ॥ व्याख्या अइ माण मोह नूएण–अनिमान मोहरूप नूतडायें करी छलिआ–छलाएला ए टले बेनान थएला एवा अहमा–अधम उत्सूत्र नाषी नीच माणस केवि–केटला एक चेव–निश्चे करीने तं- ते उपदेसमाला प्रकरणने किरियाए–तपादि कष्ट क्रिया ए करीने हीलंता–हीलना करे एटले एहवा प्रकरणमां शुं ज्ञान वैराग्य छे एम निंदा करेछे माटे ग्रंथकर्त्ता कहेछे के हीही–मोटी खेदनी वात छे के, डुरकाइ–न रकादिक जे डुःख छे तेने न गणंति–नथी गणता. एटले श्री धर्मदासगणि प्रमु ख महा पुरुषोना रचेला जे प्रकरण ते सिद्धांतरूप कह्यां छे, तेने जे नथी मान ता ते नरकादिकना डुःखथी नथी बीहीता. एम जाणीने मनमां एवुं थायछे के, तेओनी सी वले थशे? ॥ ए७ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां कह्युं के, उपदेशमालादिक सिद्धांततुल्य प्रकरणनी हीलना करवाथी घणुं डुःख थायछे, ते डुःख कीयुं? ते कहेछेः– मूलः– इअराण

ठक्कुराणवि, आणा जंगेण होइ मरण दुहं ॥ किं पुण तिलोइ पहुणा, जिणिंददेवाइ देवस्स ॥ ९८ ॥ दोहाः– एक मर लघु जूपनी, आण जंगथी थाय ॥ सुंवली त्रिज्जुवन नूपनी, आण हणे कहवाय ॥ ९८ ॥ व्याख्याः– इयराण ठक्कुराणवि–इतर बीजापण ठाकुर सामान्य राजाओनी आणा जंगेण–आज्ञाजंग कखाथी मरण दुहं–मरणादिक दुःख होइ–होयछे. ता तिलोयपहुणो–त्रिलोकना प्रज्जु एटले स्वामी एवा जिणिंद देवाहिदेवस्स–जिनेंद्र देवाधिदेवनी आज्ञा जंग कखाथी अनंत जन्म मरण थाय ते दुःखनुं किंपुण–शुं वर्णन करिये! अनंत दुःख कही शकाय नही संविज्ञ गीतार्थनी परंपराथी चालतो आवेलो जे अर्थ, तेने प्रमाण न करवुं एटले मानवुं नही ते आज्ञा जंग कहेवायछे. ॥ ९८ ॥

अवतरणः–पूर्व गाथामां जिन आज्ञानो जंग कखाथी अनंत दुःख थायछे एम कह्युं, पण जेओ दया धर्मनेविषे उद्यमवान होयछे, तेओने जिन आज्ञाएकरी सुं थायछे ते कहेछेः– मूलः– जग गुरु जिणस्स वयणं, सयलाण जिणाण होइ हिय करणं ॥ तातस्स विराहणया, कह धम्मो कहणु जीवदया. ॥ ९९ ॥ दोहाः– जगहितकर जिनवर वचन, ते कारण जविलोय ॥ तास विराधे धर्म किम, जीवदया किम होय. ॥ ९९ ॥ व्याख्याः– जगगुरु जिणस्स–त्रण जगना गुरु एवा जे श्रीजिनवर, तेमनुं–वयणं–वचन कहेवुं छे? सयलाण जियाण– एकेंद्रियथी लईने जावत् पंचेंद्रिय सकल जीवोने हिय करणं–हित करनार एटले कल्याणनुं करनार होइ–छे. ता–ते कारणमाटे तस्स–ते जिनवचननी विराहणया–विराधना कखाथी एटले खंडना कखाथी नु–इति वितर्के कहधम्मो–धर्म ते क्यांथी! अने कह–क्यांथीणु जीव दया–निज परजीवनी अनुकंपा एटले करुणा अपितु कांईज नथी; जिनवचननी आराधनाएकरीनेज चारित्र धर्म अने दया प्रमाण छे, अन्यथा नथी. ॥ ९९ ॥

अवतरणः– पूर्व गाथामां जिन आज्ञानी विराधना कही, ते जिन आज्ञानो प्रकार देखामतां कहेछेः– मूलः– किरियाइ फमा मोवं, अहियं साहंति आगम विहूणं ॥ मुद्धाण रंजणछं, सुद्धाणं हीलणछाए ॥ १०० ॥ दोहाः– सूत्र रहित दर्शी अधिक, क्रिया तणो मंमाण ॥ रूजु रंजण मुनि हीलवा, फिरे मूढगत त्राण ॥ १०० ॥ व्याख्याः– आगम विहूणं–सिद्धांतोक्त विधियें करीने रहित अने सिद्धांतमांह नथी कह्यो जे प्रकार तेणेकरीने सहित. एटले सिद्धांतमां पुष्प नैवेद्यादिक पूजा करवी, कही छे, ते न करवी एम कहे; वली जिनपूजा सामायक प्रतिक्रमणादिक धर्म कर्त्तव्य विधि पूर्वक करवुं एम कह्युं छे, ते जेम तेम करवुं;

विधि अविध प्रमुखने जोवुं नही एम कहे; इत्यादिक जे उत्सूत्र प्ररूपणा ते आगम विहीण कहिये, एवुं किरियाइं फडाडोवं–बाह्य तप नियम व्रतादि धर्म अनुष्ठानरूप क्रियानो जे फटाटोप एटले आडंबर तेने मुनिराजथी अहियं–अधिक साहंति–साधेछे एटले करेछे; जे निन्हवादिक लिंगिया लोक छे ते. एम करेछे ते शा सारु आडंबर करेछे? मुद्धाण रंजणछं–मुग्ध लोक एटले जिन धर्मना अजाण जोला लोकोना चित्तने रंजन करवाने अर्थे. तथा सुद्धाणं हीलणछाए–शुद्ध पुरुषोनी एटले सिद्धांत जाषित अर्थना कथनार पुरुषोनी हीलना करवाने अर्थे ते अज्ञानी मूढ सम्यक ज्ञान रहित क्रियानो आडंबर अधिकतर देखाडेछे ॥१००॥

अवतरणः–पूर्व गाथामां अशुद्ध धर्म देखाडवावालाने मूढ तथा अज्ञानी कह्युं हवे जे शुद्ध धर्मनुं दान करेछे ते पुरुषो केवा होयछे ते कहेछेः– मूलः– जो देइ सुद्ध धम्मं, सो परमप्पा जयम्मि न हु अन्नो ॥ किं कप्पद्दुम सरिसो, इयर तरू होइ कइयावि ॥ १०१ ॥ दोहाः– शुद्ध धर्मकूं जो दिए, सो जिनराज न और॥ सुरतरु समतरु अन्य क्या! होय कहो किण ठोर ॥ १०१ ॥ व्याख्याः– जो–जे साधु श्रावक सम्यक् दृष्टि कोइ सुद्धधम्मं–निर्मल कषाय मल रहित श्री वीतराग जाषित धर्मप्रते देइ– दिये, सो– ते परमप्पा– परमात्मा छे एटले तीर्थंकरतुल्य छे हु– निश्चय जयम्मि– जगतनेविषे तेनी तुलना करनारो अन्नो– बीजो कोई नथी. ए वातमां कोई वितर्क करे तो तेने एम कहिये के, किं– शुं कप्पद्दुमसरिसो– कल्पवृक्षना जेवो इयरतरू–कोई बीजो वृक्ष कइयावि–कोई काले होइ–थाय! ते कहो. त्यारे ते वितर्क करनरो बोल्यो के कदापि न थाय. माटे तमे कह्युं ते सत्यछे. १०१

अवतरणः–पूर्वे बे गाथामां अशुद्ध धर्म प्रकाशकनी उपेक्षा अने शुद्ध धर्मदायकनी प्रशंसा करवानुं जे जणाव्युं ते तो जे वस्तुनो गुण दोष जाणे ते करे; केम के, ते मध्यस्थ पुरुष होयछे पण जे वस्तुना गुण दोषथी अजाण होय ते मध्यस्थ पुरुषमां गणाय नही ते कहेछेः– मूलः–जे अमुणिअ गुण दोषा, ते कहअ बुहाण हुंति मज्झछा ॥ अह तेवि हु मज्झछा, ता विस अमिआण तुल्लत्तं. ॥ १०२ ॥ दोहाः– जे गुण दोष अज्ञान ते, किम बुधमें बुध होय ॥ अथवा ते बुध होय तो, सम विष अमृत दोय ॥ १०२ ॥ व्याख्याः– जे–जे पुरुष अमुणि अगुणदोसा–वस्तुना गुण अने दोष नथी जाणता, ते–ते पुरुष बुहाण–बुध एटले पंडित पुरुषोनेविषे मज्झछा– मध्यस्थ राग द्वेष रहित समचित्तवाला कहअ–केम हुंति– थाय! एटले जे वस्तुना गुण तथा दोषने जाणतो नथी ते बुध मध्यस्थ पुरुषने तुल्य केम गणाय!

अपितु नहीज गणाय. अह- वली तेवि-तेनेपण हु-जो मज्झ-मध्यस्थ कहिये; एटले वस्तुना अजाण जीवपण जो समचित्तवाला होय ता- तो विसअमिआण- विष अने अमृत बन्नेने तुल्लत्त- तुल्यता थाय. पण एमतो कोई प्रकारे थाय नही. वस्तु धर्मने जे जाणनारो होय तेनेज मध्यस्थ पंडित कहिये. अने वस्तु धर्मनो जे अजाण होय तेने अमध्यस्थ पुरुष कहिये ए भावार्थ. ॥ १०२ ॥

अवतरणः- हवे गुणनो राग अने दोष त्याग पूर्वक उपदेशना मिसे करीने कहे छेः- त्रण तत्व आराधवा योग्य छेः- मूलः- मूलं जिणिंद देवो, तव्वयणं गुरु जणं महासयणं ॥ सेसं पावठाणं, परमप्पाणं च वज्जेमि ॥ १०३ ॥ दोहाः- मूल जिनेश्वर तद्वचन, गुरु जन गाढा सैन ॥ शेष पाप थानक तजूं, निज पर नो दिन रैन ॥१०३॥ व्याख्याः-मूलं-प्रथम जिणिंद देवो--जिनेंद्र देव बीजो तव्वयणं-ते जिनेंद्र देवसंबंधी वचन सिद्धांत त्रीजा महा सयणं-परम हितकारी माटे मोटा स्वजन एहेवा गुरुजणं-गुरुजन एटले ते जिनेंद्र देवना साधु मुनिराज; ए त्रण तत्व सेववा योग्य छे. सेसं- शेष बीजा परमप्पाणं च--पर संबंधी एटले अन्य दर्शनी संबंधी अने पोतासंबंधी एटले लोकोत्तर मिथ्यात्व संबंधी पावठाणं-जे पाप स्थानक छे ते सर्वने वज्जेमि-हुं वर्जु छुं एटले त्याग करुं छुं ॥ १०३ ॥

अवतरणः- कोई कहेशे के, एकनो अंगीकार करवो अने बीजानो त्याग करवो; एम कयाथी तमारामांज राग द्वेषनी प्राप्ति थशे? ते शंका दूर करवाने कहे छेः- मूलः- अम्हाण राग रोसं, कस्सुवरिं नत्थि इत्थ गुरु विसए॥ जिण आणरया गुरुणो, धम्मत्थं सेस वोसरिमो ॥ १०४ ॥ दोहाः- राग रोस किन ऊपरे, नहि हमने छे एक ॥ धर्म हेत जिन आण रत, छे गुरु और विवेक ॥ १०४ ॥ व्याख्याः- अह्मारे रागरोस-राग द्वेष कस्सुवरिं-कोईनी ऊपर नत्थि-नथी. गुरु विसए-गुरु संबंधी वार्त्ता, इत्थ-एम छे. जिण आणरया-जिनराजनी आज्ञामां रत अथवा तत्पर एवा गुरुणो-गुरु धम्मत्थं-मोक्ष साधन जे धर्म तेने अर्थे अमारे सेववा योग्य छे. सेस- शेष एटले बीजा जे जिनराजनी आज्ञाथी बाहिर छे ते सर्वने वोसरिमो-अमे वोसरावीए छैए, एटले त्याग करीए छैए. जे वीतराग नी आज्ञामां होय तेने गुरु मानिये छैये; अने बीजाउनी ऊपर तो अमारे मध्यस्थ भाव वर्त्ते छे. माटे हे भद्र, कोईनी ऊपर अमे राग द्वेष करता नथी.॥१०४॥

अवतरणः- हवे गुरुनेविषे पण राग द्वेषनो अभाव होयछे तेज विशेष पणे कहेछेः- मूलः- नो अप्पणा पराया, गुरुणो कइयावि हुंति सुद्धाणं ॥ जिण वय

ए रयण मंमण. मंमिय सव्वेवि ते सुगुरु. ॥ १०५ ॥ दोहाः— निज पर गुरु न करे कदा, तत्व ज्ञात गत गर्व ॥ जैन वचन मणि मंमणे, मंमित ते गुरु सर्व ॥ ॥ १०५ ॥ व्याख्याः— अप्पणा—ए आपणा गछना गुरुणो- गुरु छे. माटे एमनेज वांदवुं अने एमनी पाशेथीज व्याख्यान सांजलवुं, तथा व्रत पच्चरकाण करवा ; अने पराया—ए परगछना गुरु छे माटे एने वांदवुं नही, एनी पाशेथी व्याख्यान सांजलवुं नही ; व्रत पच्चरकाण कांई न करवुं ; एवी चाल ते सुध्दाणं—सम्यक्दृष्टि श्रावक लोकोनी कइयावि—कदापि नो--नही. हुंति—होय. केमके, जिणवयण रयण मंमण मंमिय- जिन वचनरूप रत्नना मंमन एटले आजूषणे करी जे मंमित विजूषित छे ; ते सव्वेवि—ते सर्वेपण सुगुरु—रूडा गुरु छे ; सम्यक्दृष्टि श्रावक लोकोने वांदवा पूजवा योग्य छे. अने जे जिनवचनथी उपराठा चाले छे ते वांदवा पूजवा योग्य नथी.

अवतरणः— सुगुरुनुंज शामाटे ग्रहण करवुं ! ए शंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— वलि किज्जामो सज्जण, जणस्स सुविसुध्द पुन्नजुत्तस्स ॥ जस्स लहु संग मेवि, सुधम्म बुध्दी समुल्हसए ॥ १०६ ॥ दोहाः— शुध्द पुन्य युत सजन जन, तसु जइये बलिहार ॥ जसु लघु संगमथी हुवे, धर्म बुध्दि विस्तार ॥१०६ ॥ व्याख्याः— सुविसुध्द पुन्न जुत्तस्स--अति निर्मल श्रुत चारित्र धर्मरूप पुन्य, तेणे करी संयुक्त एवा जे सज्जण जणस्स--परम हितकारी होवाथी सज्जन जन एटले साधु जन तेनी. वलि किज्जामो- वली पूजा तथा सेवा अमे करिये छैये ; एटले अमे तेनी बलिहारीये जैये छैये. जस्स- जेनो लहुसंगमेणवि- लघु एटले अल्पमात्र संगम एटले परिचय कर्याथी पण सुधम्म- जिनजाषित धर्मनी बुध्दि- विचारणा समुल्हसए- अति उल्हास एटले अति आनंदने अथवा अति विस्तारने पामेछे. ए कारण माटे सुगुरुज ग्रहण करवा योग्य छे. ॥ १०६ ॥

अवतरणः— सांप्रत सुगुरुनुं वर्णन करवाना अधिकारनेविषे स्मृतिना उपयोग मां आव्या जे श्रीजिनवल्लनसूरीजी, ते सुगुरु होवाथी तेमनी स्तवना करतां कहे छेः— मूलः— अज्जवि गुरुणो गुणिणो, सुध्दा दीसंति तडयडा केवि ॥ पहु जिण वल्लह सरिसो, पुणोवि जिणवल्लहो चेव ॥ १०७ ॥ दोहाः-- केइ आज पिण आकरा, दीसे गुणि गुरु शुध्द ॥ प्रज्ञु जिनवल्लन सारिखो, वलि जिनवल्लन बुध्द॥१०७॥ व्याख्याः— अज्जवि- आजपण एटले चालता समयमां पण गुणिणो- ज्ञानादि गुणेकरीने गुणवंत एवा सुध्दा- दंजरहित अथवा निर्मल चित्तवाला एवा, तडयडा- आकरी तप क्रियाना करवावाला सुका तथा लुरका-एवा, केवि—केटलाएक गुरुणो-

गुरु एटले साधुजन दीसंती- देखीए छैये, नजरे जोइये छैये. उपलक्षणथी सांभली ये छैये. पुणोव—वली पण पहुजिणवल्लह सरिसो--प्रभु जिनवल्लभ सरखोतो जिण वल्लहोचेव- जिनवल्लभजज संभलायछे ; ने तेज कर्ण अचक्षुने दर्शनज थतुं होयनी!

अवतरणः—हवे जिनवल्लभ सूरिना जेवा सर्वोत्कृष्ट पुरुषोनां वचनोथी पण के टलाएकने सम्यक्त्वनी प्राप्ति थती नथी, ते दृष्टांतसहित कहेछेः— मूलः-- वयणे वि सुगुरु जिणवल्लहस्स केसिं न उल्लसइ सम्मं ॥ अह कह दिणमणि तेयं, उलु आणं हरइ अंधत्तं ॥ १०८ ॥ दोहाः— गुरु जिनवल्लभ वचनथी, उलसै सम्मन जास ॥ हरै घूककी अंधता, कैसे भानु प्रकाश ॥ १०८ ॥ व्याख्याः— सुगुरुजिण वल्लहस्स- सुगुरु जिनवल्लभजीना वयणेवि- वचनो छतां पण एटले उपदेश सां भलता छतां पण केसिं- केटलाएक भारीकर्मा जीवोनुं सम्मं- सम्यक्त्व ज्ञान चक्षु न उल्लसइ- उल्लासने पामता नथी एटले ऊघडता नथी अह—अथ एटले एनी ऊपर दृष्टांत कहेछेः-- दिणमणितेयं- सूर्यनुं तेज सर्वत्र प्रकाश करतुं छतां उलु आणं- उलूक एटले घूवड पक्षीनो अंधत्तं--अंधकार कह- केम एटले कया प्रकारे हरइ- हरे एटले दूर करे ; अपि तु नहीज करीशके. ॥ १०८ ॥

अवतरणः— वली जे श्रीजिनवल्लभसूरीनां वचनोथकी भवना स्वरूपने देखता छतां सम्यक्त्वने अंगीकार करता नथी, तेवा पुरुषोना धिठ्ठपणाने धिक्कारता छतां कहेछेः— मूलः— तिहुअण जणं मरंतं, दट्ठूण निअंति जे न अप्पाणं ॥ विरमंति न पावाउ, धिद्धी धिठ्ठत्तणं ताणं ॥ १०९ ॥ दोहाः-- मरता जग जन जोइने, जे न करै वस मन्न ॥ पापथकी विरमे नही, ते नर धीठ अधन्न. ॥ १०९ ॥ व्याख्याः— मरंतं—मरता एवा जे, तिहुअण जणं-- त्रण भवनना जन एटले लो कने दट्ठूण-- देखीने जे— जे पुरुष अप्पाणं— पोतानी आत्माने न निअंति— नथी देखता, अने पावाओ--हिंसा तथा मृषादि पाप व्यापार थकी न विरमंति— विराम पामता नथी, एटले निवर्त्तता नथी ; ताणं— ते पुरुषोना धिठ्ठत्तणं—धीठ पणाने धिद्धी—धिक् धिक् होजो, एटले धिक्कार थाउ. ॥ १०९ ॥

अवतरणः— हवे तेनाज कुस्नेहपणाने कहेछेः— मूलः-- सोएण कंदिऊणं, कु ट्टेऊणं सिरं च उअरंच ॥ अप्पं खिवंति नरए, तं पि हु धिद्धी कुनेहत्तं ॥ ११० ॥ दोहाः-- शोक विलाप करी उदर, शिर कूटी उर देह ॥ नाखै नरके जीवने, धिग् धिग ते कुनेह ॥ ११० ॥ व्याख्याः— सोएण--शोकेकरीने कंदिऊण--आक्रंदन अ थवा विलाप कर्याथी च—वली सिर--मस्तक उअरं--उदर एटले पेट च शब्दथी

नरु एटले नरादिक प्रते कुट्टकणं—कूटी पीटीनै नरए—नरकनेविषे जे अप्पं—आत्माने खिवंति—क्षेपेछे एटले नाखेछे, हु—जे कारण माटे तेनुं जे कुनेहत्तं—कुस्नेहपणुं छे, तंपि--तेने पण धिद्धी--धिक् धिक् होजो एटले धिक्कार थाओ.॥ ११० ॥

अवतरणः-- हवे शोकादिक कीधाथकी उलटो अति दोष होयछे तेज कहेछेः-- मूलः— एगं पिअमरणदुहं, अन्नं अप्पावि खिप्पए नरए ॥ एगंच मालपमणं, अन्नं लगुडेण सिरिघाउ ॥ १११ ॥ दोहाः-- प्रिय मरणनुं एक दुःख, बीजुं नरक मझार ॥ इकतो पडवुं मालथी, बीजो मंम प्रहार ॥ १११ ॥ व्याख्याः— एगं—एक पिअमरणदुहं--पुत्र कलत्रादिक प्रियजन स्वजन लोकोना मरवानुं दुःख अन्नं—बीजुं नरए--नरकनेविषे अप्पा--आत्मा विखिप्पए—विक्षेपिये छेए एटले नाखीये छेए ए मोटो आश्चर्य छे. अहीं दृष्टांतकहेछेः— एगंच--एक तो मालपडणं—एकादि मालथकी पडवुं, अने अन्नं--बीजुं लगुडेण--लाकमीए करीने सिरिघाउ—माथाऊपर घात करवो एटले जे पमचो तेनुं माथुं फोमी नाखवुं ए मोटो अन्याय छे

अवतरणः— एम क्यांथी करे? एवी आशंका करीने हमणा सुगुरुवादिकनुं दुर्लनपणुं प्रगटकरतां छतां कहे छेः— मूलः-- संपइ दूसम काले, धम्मत्थी सुगुरु सावया दुलहा ॥ नाम गुरु नामसड्ढा, सरागदोसा बहू अत्थी ॥ ११२ ॥ दोहाः— धर्मार्थी दूषम समें, दुर्लन साधुने श्राद्ध ॥ नाम साधु श्रावक बहू, हग रागादि सबाध ॥ ११२ ॥ व्याख्याः— संपइ--सांप्रत एटले वर्त्तमान काल दूसम काले--दूसम कालनेविषे धम्मत्थी--श्रीजिन नाषित मोक्ष पद साधक शुद्ध विधि धर्मना अर्थी अनिलाषी एवा, सुगुरु सावया--सुगुरु सु साधुने श्रावक समणोपासक दुलहा--दुर्लन छे; अने सराग दोसा--राग द्वेष करीने सहित एवा, नाम गुरु--सम्यग् ज्ञानादि गुणे करीने रहित केवल नाम मात्र गुरु साधु, तथा नाम सड्ढा--नाममात्र श्रावक तेतो बहु अत्थी-- घणा छे ॥ ११२ ॥

अवतरणः--हवे सुगुरु श्रावकपणानो हेतु कहे छेः-- मूलः-- कहियंपि सुद्ध धम्मं, काहिवि धन्नाण जणइ आणंदं ॥ मिच्छत्तमोहिआणं, होइ रई मिच्छ धम्मेसु ॥ ११३ ॥ दोहाः-- शुद्ध धर्मनी वात पण, धनने रति उपजाय ॥ मिथ्या मोहित मूढने, मिथ्यात्वे रति थाय ॥ ११३ ॥ व्याख्याः-- कहियंपि-- कह्यो छे तोपण सुद्ध धम्मं--निर्मल वीतराग नाषित धर्म एटले विस्तार सहित कहेलो जे जिन धर्म ते काहिविधन्नाण-- केटलाएक धन्य पुरुषोने पण एटले थोमाकज धन्य पुन्यवंत प्राणीउने आणंद -आनंद एटले आत्मिक हर्ष जणइ--उत्प

न्न करेछे ; केमके, धर्मरूप रत्ननो व्यापार करनारा थोडाज होय छे माटे ; अने मिछ त्त मोहिआणं--मिथ्यात्वनेविषे मोहेला एटले मूर्छित थएला जे लोको तेउनी र इ--रति एटले प्रीति मिछधम्मेसु-- मिथ्यात्व धर्मनेविषे होइ--होय छे ; ते अति घ णा छे, माटे सुगुरु तथा सुश्रावकनुं दुर्लनपणुं जाणवुं ॥ ११३ ॥

अवतरणः-- हवे बीजुं आ काळनेविषे जे वर्त्तेछे ते कहेछेः— मूलः— इक्कंपि महादुख्खं, जिण वयण विकण सुद्धहिययाणं ॥ जं मूढा पावाइं, धम्मं नणिक ण सेवंति ॥ ११४ ॥ दोहाः— जिन मत जाण विमल हिये, तास एक गुरु दुःख ॥ धर्म कहीने सेवतो, पापप्रते जो मुरक ॥ ११४ ॥ व्याख्याः— सुद्धहिययाणं— जेनुं निर्मल चित्त छे, एटले सर्व जीवोनेविषे जेने अनुकंपा नाव वर्त्तेछे एवा जे जिणवयणविकण—जिनवचन एटले जिनआगमनेविषे विद्वान एटले अति कुशल पुरुषोने आ काळमां इक्कंपि महादुख्खं—एक मोटुं दुःख होयछे. जं—जे कारणमाटे मूढा- मूर्ख अज्ञानी लोक जे छे ते पावाइं- जीव वधादिक पापप्रते धम्मंनणिक ण- धर्म कहीने एटले देवगत्यादि पुंन्य कहीने सेवंति—सेवेछे, सेवीने ते बापडा दुर्गतिमां पडशे ; ए एक मोटुं दुःख ज्ञानी पुरुषोना चित्तमां वर्त्तेछे. ॥ ११४ ॥

अवतरणः— त्यारे शुं बधाय मूढ पुरुषो छे, किंतु केटलाएक अमूढ पुरुषो पण छे ते कहेछेः-- मूलः— थोवा महाणुनावा, जे जिणवयणे रमंति संविग्गा ॥ तत्तो नवनयनीया, सम्मं सत्तीइ पालंति ॥ ११५ ॥ दोहाः-- महा नाग जिन व चन रत, संवेगी नव नीत ॥ विरला जे समसक्तिए, व्रत पाले श्रुत रीत ॥११५॥ व्याख्याः-- जे--जे पुरुष जिणवयणे--जिन वचननेविषे रमंति—रमे छे, एटले तरु ण सुखी नारी परिवारथी परिवर्यो पुरुष जेम किन्नर देवताना गीत सांजलवाने विषे प्रेम करेछे. तेम जे पुरुष जिन आगम सांजलवानेविषे अतिज प्रेम करेछे; वळी जे संविग्गा--संविज्ञ एटले मोक्षना अनिलाषी छे महाणुनावा—ते महानुनाव पराक्र मवान पुरुष थोवा—थोडाछे. तत्तो--ते पुरुषथी नवनयनीया—नरकादि चतुर्गति संसा रना नयथकी बीना जे पुरुष एवा, वळी सम्मं—जिनोक्त श्रद्धानरूप सम्यक्त्वप्रते सत्ती इ—यथाशक्तिएकरी पालंति--पालता—आराधता एवां पुरुषअतिशयथोडा छे. ॥११५॥

अवतरणः— पूर्व गाथाए करी सम्यक्त्वनुं दुर्लनपणुं देखाड्युं, हवे ते सम्य क्त्वविना धर्मकृत्य निष्फल छे, एम दृष्टांते करीने कहे छेः— मूलः—सव्वंगं पि हु स गडं,जह न चलइ इक्क वडहिला रहियं ॥ तह धम्म फडामोवं, न चलइ सम्मत्त परिहीणं ॥ ११६ ॥ दोहाः— इक धुर विण सर्वांग पण, शकट जेम न चलंत ॥

तेम धर्म मंम्राण सब, विन समकित न फलंत ॥ ११६ ॥ व्याख्याः— इक्क बड दिला रहियं--गाम्रानां पइडां रोकवानी खीलीए करी रहित एवुं, सबंगं सगडं—स र्वांग शकट छतां पण एटले बीजां सर्व अंगेकरी सहित गाडुं छतां पण जह--जे म हु--निश्चे नचलइ—नथी चालतुं तह—तेम. सम्मत्त परिहीणं—सम्यक्त्व रहित ए हेवुं जे धम्मफम्रामोवं—दान दया शील तपादिक धर्मनो फटाटोप एटले जे आम्रंब र ते न चलइ--नथी चालतो, एटले अव्याबाध अक्षय मोक्ष फल नथी आपतो, उलटुं विशेषतर डुखनुं कारण थाय छे ॥ ११६ ॥

अवतरणः— शिष्य वितर्क करेछे के, जे सम्यक्त्वविना अन्य धर्म आम्रंबर छे, ते हितने करता नथी; एवुं वाक्य मिथ्यात्वीनेविषे रोषरूप थशे? ए आशंका दूर करवाने कहेछेः— मूलः— न मुणंति धम्मतत्तं. सत्थं परमत्थ गुणहियं अहियं॥ बालाण ताण उवरिं. कह रोसो मुणिय तत्ताणं ॥ ११७ ॥ दोहाः-- धर्म तत्व श्रुत आत्महित. अहित न जाणे जेह ॥ ते अजाण पर रोष किम, जिनमत कुस ल करेह ॥ ११७ ॥ व्याख्याः— धम्मतत्तं—जेमां जिनोक्त धर्मनुं स्वरूप रहेलुंछे, एवो जे सत्थं— शास्त्रसिद्धांत तेने जे पुरुष नमुणंति— नथी जाणता; वली जे पुरुष परम त्थ गुणहियं— परमार्थ जे मोक्षपद तेनुं साधन सम्यक् ज्ञानादिक गुण तद्रूप जे हित तेने जाणता नथी. वली जे पुरुष अहियं— अहित एटले मिथ्यात्व अविरति कषायादि जवभ्रमणनुं कारणरूप जे अहित तेने नथी जाणता; ताणबालाण— ते बाल अज्ञानी जीवोनी उवरिं—उपर मुणियतत्ताणं—जेउंए जिन धर्म तत्व एटले परमार्थ जाण्यो छे; ते पुरुषोने कहरोसो—रोष केम थाय! अपितु नज थाय केम के, जे ज्ञाता पुरुष होय छे ते द्रव्य तथा जाव ए बे अनुकंपा सहितज होय छे॥११७॥

अवतरणः— हवे जे बाल अज्ञानी लोको छे तेउंनुंज बालपणुं दृष्टांत सहित देखाडे छेः— मूलः— अप्पावि जाण वयरी. तेसिं कह होइ परजिए करुणा ॥ चो राण वंदियाणय, दिठंतेणं मुणेयव्वं ॥ ११८ ॥ दोहाः— जसु वैरी निज आतमा, तसु परदया न होय ॥ याचक चोरतणो इहां, उदाहरण जग जोय ॥ ११८ ॥ व्याख्याः— जाण—जे लोकोनो पोतानो अप्पा— आत्मा पण वयरी— वैरीछे; एट ले शत्रुनी तुल्य छे; केमके हिंसा असत्य अदत्त तथा परदारागमनादि अहित कार्य करेछे माटे, तेसिं--ते बाल अज्ञानी लोकोने परजिए—पर जीवोनी उपर क रुणा—दया कह—केम होइ—थाय! अपितु नज थाय; एटले जेने पोतानो आत्मा पण शत्रुनी पठे शत्रु वर्त्ते छे, तो तेने बीजा जीवोनी उपर दया ते केम वर्त्ते! अ

पितु नहीज वर्त्ते ते चोराण–चोरने वली बंदियाण–बंदिक पुरुषोने एटले परधन अभिलाषी पुरुषोने दिठंतेण–दृष्टांते करीने मुणेयव्वं–जाणवुं एटले जेम चोरादिकनें परनी दया आवती नथी, तेम दुष्टाचारी इह परलोक विरोधकारी, उत्सूत्र भाषी जे होय तेने परजीवनी दया आवे नही. ॥ ११८ ॥

अवतरणः– हवे बाल स्वभावप्रते विचार करीने ते बालना स्वरूप तथा लक्षणने कहेछेः– मूलः– जे रज्ज धणाईणं, कारणभूया हवंति वावारा ॥ तेवि हु अइपावजुया, धन्ना छड्डुंति भवभीया ॥ ११९ ॥ दोहाः– जे छे राज धनादिनो, हेतुभूत व्यापार ॥ ते अति पाप वणिज तजे, उत्तम भव भीतार ॥ ११९ ॥ व्याख्याः– रज्ज धणाईणं–राज एटले राजादि पदवीनो, धणीमादि धनादिकनो आदि शब्दथी शब्दादिक इंद्रियविषयनो कारणभूया–कारणभूत एटले हेतुरूप. एवो जे–जे वावारा–व्यापार हवंति–छे, एटले बाह्य व्यापार शत्रुहनन राजसेवा कृषी कर्म दंतवाणिज्यादि. अने अंतर व्यापार पंचाग्निताप अज्ञान कष्ट क्रियादिरूप तेवि–ते व्यापार पण हु–निश्चय अइपावजुया––नरक निगोदादिकना कारणमाटे अति पापसहित छे एम जाणीने ते व्यापारने धन्ना–जे धन्य पुन्यवंत उत्तम पुरुष छे ते छड्डुंति–छोडेछे एटले त्याग करेछे. ते उत्तम पुरुष केहेवायछेः–भवभीया–भवभीत छे एटले जे संसारथकी बीहीना छे, अने उदास रहेछे तेज महा सत्विछे. ११९

अवतरणः– धन्य पुन्यवंत सत्ववंत जे उत्तम पुरुष छे तेनुं स्वरूप कह्युं ; हवे अधम पुरुष जे हीण सत्वि छे तेनुं स्वरूप कहेछेः–मूलः–बिइयाय सत्तर हिया, धण सयणाईहिं मोहिया लुद्धा ॥ सेवंति पावकम्मं, वावारे उयर भरणठ्ठा ॥ १२० ॥ दोहाः– मोहित धन स्वजनादिके, लुब्ध सत्व करि हीण ॥ पाप भजै व्यापारमें, मध्यम पेटाधीन ॥ १२० ॥ व्याख्याः– बिइयाय–प्रथम उत्तम पुरुष कह्यो, तेनी अपेक्षाएकरीने बीजा जे अधम पुरुष छे ते पावकम्मं–स्वामी द्रोह, विश्वासघात, चोरी, परधन हरणादी तथा अंगार कर्मादि पंदर कम्मादान तथा हिंसादि अष्टादश पापस्थानकने सेवंति–सेवेछे, वावारे–व्यापारनेविषे उयरभरणठ्ठा–उदर एटले पेट भरवाने अर्थे, ते अधम पुरुष केवा छेः– सत्तरहिया–सत्व एटले शुभ पराक्रम रहित एवा, वली ते अधम पुरुषो केवा छेः– धणसयणाईहिं धन स्वजनादिके करीने आदि शब्दथी शब्दरूपादिक इंद्रिय विषये करीने मोहिया–मोहित एटले मूढ थएला एवा, वली ते अधम पुरुष केवा छे? लुद्धा–लोभी एटले लालची अति छे एवा जाणवा. ॥ १२० ॥

अवतरणः— बीजा अधम पुरुषनुं स्वरूप कह्युं हवे त्रीजा अधमाधम पुरुषनुं स्वरूप कहेछेः— मूलः— तइया हमाण अहमा, कारणरहिया अनाणगवेण ॥ जे जंपंति उसुत्तं, तेसिं धिध्दिब पंडिच्चं ॥ १२१ ॥ दोहाः— अधम अधम कारण विना, करि अज्ञान अभिमान ॥ जे उत्श्रुत नाषन करे, धिग धिग तेनुं ज्ञान ॥ ॥ १२१ ॥ व्याख्याः— तइया—त्रीजा अहमाण—अधमोनेविषे अहमा—अधम एट ले त्रीजा अधमाधम पुरुष ते कारण रहिया—धनलाज कुटंब पोषणादि कारण रहि त छतां अनाणगवेण—अज्ञानना गर्वे करीने जं—जे उसुत्तं— उत्सूत्रप्रते जंपंति— जंपेछे अथवा बोलेछे तेसिं—तेना पंडिच्चं—पांडित्यने धिध्दितु—धिक्कार धिक्कार थाओ. धनलाजादि कारणे जे उत्सूत्र बोलवुं, ते दुर्गतिने देवावालुं छे, माटे कारणने लीधे पण उत्सूत्र बोलवानो निषेध छे त्यारे कारणविना तो विशेषपणे निषेधज जाण वो. माटे कारणविना अने अज्ञान अभिमाननी बुद्धिथी जे उत्सूत्र नाषण करेछे ते अधमाऽधम पुरुष जाणवो. तेना पंडितपणाने धिक्कार धिक्कार छे. जे नीचथी पण नीच होय तेने अधमाधम कहिये. ॥ १२१ ॥

अवतरणः— उत्सूत्र बोलनारने शास्त्रकारु अधमाधम कह्यो? अने तेना पंडि तपणाने शास्त्रकारु धिक्कार थाओ एम कह्युं? ते देखाडता छता कहेछेः— मूलः— जं वीरजिणस्स जिओ, मिरई उस्सुत्त लेस देसणओ ॥ सागर कोडाकोडिं, हिंमइ अइनीमनवरण्णे ॥ १२२ ॥ दोहाः— जीव मरीची वीरनो, उत्श्रुत लेस उच्चार॥ सागर कोडा कोडि जो, नमिओ नवकांतार ॥ १२२ ॥ व्याख्याः— जं—जे कारण माटे वीरजिणस्सजीओ—वीर जिनेश्वरनो जीव मिरई—नरत पुत्र मरीचीने नवे उस्सुत्त लेस देसणओ—कपिले ज्यारे वारंवार पूछवा मांम्युं, त्यारे एम बोल्या के, हे कपिल ऋषन्न जिणसाधुओनेविषे पण धर्म छे अने अहीं अमारामां पण धर्म छे; एतद्रूप उत्सूत्रनो जे लेश, तेनी देशना थकी अइनीमनवरण्णे—अति नीम रौद्र नव अरण्य जे संसार कांतार तेनेविषे सागर कोडाकोडी— सागरोपमनी को डाकोडीसुधी एटले एक कोडाकोडी सागरोपमसुधी हिंमइ—हींमेछे एटले नमेछे, एम वर्त्तमान निर्देशनी अपेक्षाए कह्युं, परमार्थे तो नम्योछे एम जाणवुं. ॥ १२२ ॥

अवतरणः— हवे उत्सूत्रनुं निगमन करता छतां कहेछेः— मूलः— ता जइ इमंपि वयणं, वारंवारं सुणित्त समयम्मि ॥ दोसेण अवगणित्ता, उस्सुत्त पयाइ सेवंति ॥ ॥ १२३ ॥ दोहाः— वारवार ए श्रुत वचन, सांजलि जोतो हेय ॥ सेवै बहु उत्सुत्र पद, दोष न मानै जेय ॥ १२३ ॥ व्याख्याः— ता—ते कारणमाटे जइ—जो इमं—ए

प्रत्यक्ष, वयणं–मरीचिउक्त उत्सूत्र वचनो प्रत्ये समयम्मि–सिद्धांतनेविषे वारंवारं–वारंवार सुणीत्त–सुणीने एटले सांजलीने अपि–पण दोसेण–अजिनिवेष मिथ्यात्वादिक दोषेकरी अथवा द्वेषेकरी अवगणित्ता–अवगणनाए करीने एटले अपमानताए करीने उस्सुत्तपयाइ–उत्सूत्रना पदने सेवंति–जे सेवेछे एटले जे बोलेछे. ॥ १२३ ॥

मूलः–ताण कहंजिण धम्मं, कह नाणं कह दुहाण वेरग्गं ॥ कूमाजिमाण पंमिय, नडिया बुडंति नरयम्मि॥१२४॥ दोहाः–तसु जिन धर्म किहां थकी, ज्ञानसु दुःख वैराग॥ कूटमान पंडित नटित, नरके खेलत फाग॥१२४॥ व्याख्याः–ताण–ते पुरुषोने कह–केम जिण धम्मो–जिन धर्म थाय! कह–केम नाणं–यथार्थ ज्ञान थाय! कह–केम दुहाण–नरकादिकनां दुःख थकी वेरग्गं–वैराग्य एटले उदासपणुं थाय! अपितु ते उत्सूत्र जाषीउने जिनधर्मादिक कांई प्राप्तज न थाय. केमके, जिन धर्म आज्ञाए करीने पूर्वे कह्युं छे ते कारण माटे कूमाजिमाण पंमिय–कूड अने अजिमान अथवा कूडा अजिमान अहंकारे करी सहित जे पंमित पणुं ते कूटाजिमान पंडितपणुं कहिये. तेणे करीने ते पुरुष नडिया–नडेला एटले पीडायला नरयम्मि–नरकनेविषे एटले नरकरूप अंधकूपनेविषे बुडंति–बूडे छे. एम जाणीने उत्सूत्र न बोलवुं एज सार छे ॥ १२४ ॥

अवतरणः–हवे जे उत्सूत्र जाषी जीव छे, तेने हितोपदेशनुं दान देवुं नही; केमके, ते ए दान लेवाने अयोग्य छे ते कहे छेः– मूलः– मामा जंपह बहुअं, जे बद्धा चिक्कणेहिं कम्मेहिं ॥ सव्वेसि तेसि जायइ, हिउवएसो महादोसो ॥ १२५ ॥ दोहाः- जे बांध्या खल कर्म करि, ते सबहीके थाय ॥ हित उपदेश सु दोष मय ॥ बहु मानण इण न्याय ॥ १२५ ॥ व्याख्याः– उत्सूत्र जाषी कदाग्रही अयोग्य जीवने बहुअं–घणो हितोपदेश मामा जंपह–कहेवो नही. केमके, जे–जे पुरुष चिक्कणेहिं कम्मेहिं–चीकणा कर्मे एटले अति क्लिष्ट ज्ञानावरणादिक कर्मे करि बद्धा–बांधेला अथवा निगडेला छे. तेसि सव्वेसि–ते सर्वने हिउवएसो–हितोपदेश एटले मोक्ष मार्गनो उपदेश ते महादोसो–महा दोषरूप अथवा महा द्वेषरूप जायइ–थाय छे; माटे अयोग्य जीवने घणो हितोपदेश कहेवो नही ॥ १२५ ॥

अवतरणः– धर्मने अयोग्य जीवने हितोपदेश करवाथी क्लेशमात्र थाय तेनुं कारण कहे छेः– मूलः– हिययम्मि जे कुसुद्धा, ते किं बुज्झंति धम्म वयणेण ॥ ताताण कए गुणिणो, निरत्थयं दमइ अप्पाणं ॥ १२६ ॥ दोहाः– जसु कुसुद्ध मन केम सो, जिन वचने बूजेय ॥ तो तेने अर्थे गुणी, फोकट आत्म दमेय॥१२६॥

व्याख्याः— हिययम्मि—हृदयनेविषे एटले चित्तनेविषे जे- जे पुरुष कुसुद्धा—कुसुद्धछे; एटले अशुद्ध छे: एटले अजिनिवेश मिथ्यात्वादिक दोषरूप कलंक पंके करीने मलिन छे; ते—ते पुरुष किं—केम धम्मवयणेण—जिनधर्मसंबंधी वचने करी बुज्झंति—बोध पामे! अपितु नहीज पामे; ता- ते कारण माटे ताणकए—ते दुष्ट चित्तवालाने अर्थे गुणिणो- ज्ञानादिक गुणेकरी गुणवंत पुरुष छे ते निरत्थयं- निरर्थक एटले फोकट अप्पाणं—आत्माने दमइ- दमेछे, एटले क्लेश उपजावेछे, अहीं फलीतार्थ एम समजवुं के, जे गुणी पुरुष होयछे ते परने गुण करवानी बुद्धिमाटे हितोपदेश कर्त्ता कांई पण पोताने क्लेश माने नही, पछी परने गुण थाओ वा न थाओ. ए गुणीनो सहज स्वजावछे माटे गुणी पुरुषनो कीधेलो उपदेश फोकट नथी ते उपदेश पोताने स्वाध्याय तप छे. १२६

अवतरणः-- गुणी पुरुष एम कहेछे के अहो जव्य, जिनधर्म करवादिक तो दूर रहो, पण एक जिन धर्मनुं श्रद्धान छे तेपण दुःखनुं हरण करनारुं छे; तेज कहे छेः-- मूलः-- दूरे करणं दूरम्मि साहणं तह पजावणा दूरे ॥ जिण धम्म सद्दहाणं, पि तिरकडुरकाइ निठवइ ॥ १२७ ॥ दोहाः—करनो अरु साधन तथा, रहो प्रजावण दूर ॥ शुद्ध धर्म श्रद्धान पिण, हरै कठिण दुखपूर ॥ १२७ ॥ व्याख्याः-- करणं- विधिए करीने दान शील तप जावनारूप जिनधर्मनुं जे करवुं, तेतो दूरे—दूर रहो. तथा साहणं—पूर्वोक्त जिनधर्मनुं साधन एटले कथन करवुं तेपिण दूरम्मि—दूर रहो, तथा पजावणा—प्रावचनी धर्मकथी प्रमुख अष्ट प्रकारना प्रजावकपणे करीने जे जिनधर्मनी प्रजावना करवी एटले जिनधर्मनो महिमा उद्योत करवो तेपण दूरे—दूर एटले छेटे रहो; मात्र जिण धम्मसद्दहाणंपि—जिनजाषित धर्मनुं एक श्रद्धान रुचिपणुं पण तिरक डुरकाइ—तीक्ष्ण दारुण जे नरकादिक दुःख तेने निठवइ—निष्टापेछे एटले नसाडेछे; अर्थात् बीजुं कांई न बने तो पण एक जैनधर्मनुं श्रद्धानकरवुं. १२७

अवतरणः— ते श्रद्धाननुं लक्षण ए के सिद्धांतनुं सांजलवुं, ते सिद्धांत सांजलवानी पोतासंबंधी इछा देखाडता छता कहेछेः— मूलः— कइया होही दिवसो, जइया सुगुरूण पायमूलम्मि ॥ उस्सुत्त लेस विसलव, रहिओ निसुणेसु जिण धम्मं ॥ १२८ ॥ दोहाः— ते दिन क्यारे आवशे, ज्यारे सदगुरु पास ॥ उत्सूत्रांसे रहित जिन, धर्म सुणीसुं खास ॥ १२८ ॥ व्याख्याः— दिवसो—ते दिवस दिवस कहेवाथी ते घडी ते मुहूर्त्त ते पक्ष, ते मास ते वर्ष कइया—क्यारे होही—थशे! जइया—ज्यारे सुगुरूण—सुविहित गीतार्थ धर्माचार्य सुगुरुने पायमूलम्मि—पादमूल एटले समीपे जिणधम्मं—जिनजाषित धर्मने निसुणेसु—हुं सांजलीश. केवो थयो

थको हुं सांजलीश! उस्सुत्त लेसविसलव रहिओ–उत्सूत्रना लेशरूप विषलवेकरी ने रहित बतो एटले गुरुने समीपे सांजलवाथी मनमां रहेला जे उत्सूत्र वाक्य, तेना लेशरूप विषना लवेकरी रहीत थयो थको हुं सांजलीश. ॥ १२८ ॥

अवतरणः– ते दिवस क्यारे थशे एम आसारु कर्युं? गुरुनुं तो कांई डुर्लजप णुं नथी; केमके, गुरु तो जोवामां घणा आवेछे, ते ऊपर कहेछेः– मूलः– दिठा वि केवि गुरुणो, हियए न रमंति मुणिय तत्ताणं ॥ केवि पुण अदिठुच्चिय, रमं ति जिणवल्लहो जेम ॥ १२९ ॥ दोहाः– दीठा पण केइक गुरु, न गमे जाण हियेय॥ केइ अदीठाहि जगमें, जिम जिणवल्लज श्रेय. ॥१२९॥ व्याख्याः– केवि–केटला एक दिठावि–नजरे जोएला पण काने सांजलेलानीशी वात करवी! गुरुणो–साधु समाचारीमांहे निपुण एषणीय आहारना लेवावाला एवा गुरु ते मुणियतत्ताणं–जेणे जिनशासननो तत्वपरमार्थ जाण्यो बे, तेना हियए–हृदयनेविषे नरमंति–रमता नथी एटले रुचता नथी, केमके तेना हृदयनेविषे तो जे सम्यक् ज्ञान क्रिया संवेग गुणे करीने सहित गुरु होय ते रुचेछे, पण एकलुं ज्ञान एकली क्रियादिक वाला रुचता नथी. पुण–वली केवि–केटलाएक अदिठुच्चिय–नही दीठेला ज्ञानक्रिया संवेग सहित गुरु पण रमंति–रमेछे रुचेछे; जेम–जिम जिणवल्लहो–ज्ञान क्रिया संवेग सहित जिनवल्लज सूरि नही दीठेलो अमारा चित्तनेविषे रुचेछे; तेमना रचेला ग्रंथो जोतां तथा तेमना संतानीक साधुनी समीपे तेओना ज्ञान वैराग्य क्रियानुष्टान सांजलतां अति प्रिय लागेछे एम नेमीचंद जंमारी कहेछे. ॥ १२९ ॥

अवतरणः– एम बतां पण जे पुरुष कुगुरुने पण सुगुरुनी पठे माने बे, तेनुं निराकरण करता बता कहेछेः– मूलः–अजया अइ पाविठा, सुद्ध गुरू जिण वरिंद तुल्लत्ति ॥ जो इह एवं मन्नइ, सो विमुहो सुद्ध धम्मस्स ॥ १३० ॥ दोहाः– आरंजी अति पापिने, जिनवर सुगुरु समान ॥ जे जाणे ते जीव जिन, धर्म विमुख बेजान ॥ १३० ॥ व्याख्याः– ते कुगुरु केवा बे? अजया–यत्न रहित बे, एटले षट् जीवनि कायना वद्ध करवानेविषे जे तत्पर बे; ते कारण माटेज अइ पाविठा--अति पापिष्ठ बे; एटले पाप कर्म बांधवानेविषे प्रधान बे एटले मुख्य बे एवा जे कुगुरु बे, तेने पण सुद्ध गुरु जिणवरिंदतुल्लत्ति–निर्मल गुरु गौतम गणधरादिकने सदृश अथवा घणुं शुं कहिये जिनवरेंद तुल्य बे; एवं–ए प्रकारे इह--जगतनेविषे जो कोई मूढ पुरुष मन्नइ--मानेछे एटले जाणे बे; सो--ते पुरुष सुद्ध

धम्मस्स--श्री वीतराग भाषित श्रुत चारित्ररूप निर्मल जे धर्म, तेने विमुहो--विमुख जाणवो एटले अवळा मुखवाळो जाणवो. ॥ १३० ॥

अवतरणः-- धर्मने करतो थको पण धर्मथी विमुखपणुं केम कह्युं ? ए आशंकानुं समाधान करतां कहे छेः-- मूळः-- जो तं वंदसि पुज्जसि. वयणं हीळेसि तस्स रागेणं ॥ ता कह वंदसि पुज्जसि, जणवाय ठिइंपि न मुणेसि ॥१३१॥ दोहाः-- वांदे पूजे जेहने, हीले तेनो वैण ॥ वांदे पूजे किम तदा,जन थिति जूये सैन ॥ १३१ ॥ व्याख्याः-- जो--जे जिनराजप्रते तं--तुं वंदसि--वांदे छे, पुज्जसि--पूजे छे, अने पोताना उत्सूत्र भाषी हीणाचार्य गुरुने रागेणं--रागे करीने तस्स--ते वंदनीयथी तो जिनराजनुंज वळी वयणं--आगमरूप वचन हीळेसि--तेनी तुं हीलना करे छे, एटले निंदा करेछे; रे मूढ, जिनराजनां वचनोनी हीलना करे छे, ता--तो कह--केम जिनराजने वंदसि--तुं वांदेछे, पुज्जसि--तुं पूजेछे; जणवायठिइंपि--रे मूढ, तुं जनवादनी लोक व्यवहारनी स्थिति एटले मर्यादाने पण नमुणेसि-- नथी जाणतो; के जेने वांदिए तेनां वचन जो न मानिये तो वांदवुं तथा पूजवुं व्यर्थ जाणवुं ए भावार्थ छे. ॥ १३१ ॥

अवतरणः-- लोकव्यवहारनी जे स्थिति छे ते कहेछेः-- मूळः-- लोएवि इमं भणियं, जो आराहिज्ज सो न कुविज्जा ॥ मन्निज्ज तस्स वयणं, जइ इच्छसि इच्छियं काउं ॥ १३२ ॥ दोहाः-- कह जन जे आराधिए, न कोपाइये तेह ॥ मानी जो तसु वेन जो, वंछित तुं वांछेह. ॥ १३२ ॥ व्याख्याः-- लोएवि--लोकोत्तरनी तो शी वात! लौकिक व्यवहारनेविषे पण इमं भणियं--एम कह्युं छे; जो--जे देव दानव राजादिक मोटा पुरुष आराहिज्ज--आराधिए, पूजिये, सो--ते देव दानव राजादिकने न कुविज्जा--कुपित न करिये एटले तेने जे वातथी कोप चढे ते वात न करिये. तस्स--ते देव दानव राजादिकनुं वयणं--वचन मानिये एटले प्रमाण करिये. इच्छियं काउं--इच्छित करवाने एटले पोताना मन वंछित पूरण करवाने जइ--जो इच्छसि--तुं इच्छेछे तो ए प्रकारे पुत्र मित्रादिकने लोक व्यवहारनेविषे लोकसी खामण दीए छे; तो लोकोत्तर व्यवहारनी वात तो मोटी छे. ॥ १३२ ॥

अवतरणः-- एम भगवन् वचन सांभळ्या छतां पण धर्म करवाने दोष कहीने हवे त्यांहां जे निश्चल पुरुष छे तेनी स्तवना करतो छतो कहेछेः-- मूळः-- दूसम दंडे लोए, सुदुक्ख सिद्धंमि दुक्ख उदयम्मि ॥ धन्नाण जाण न चलइ, सम्मत्तं ताण पणमामि ॥ १३३ ॥ दोहाः-- दुष्ट उदय दुख प्रगट जन, दूसम दंड छ

तेय ॥ तसु प्रणमुं जे धन्यनो, समकित गुण न चलेय ॥ १३. ॥ व्याख्याः– दू समदंभे–दूषमार्के एटले पांचमा आरारूप दंभ एटले बल मेधा सुख संपत्ति विद्या शुन दीर्घायु निरोगपणुं इत्यादि विसिष्ट वस्तुना नाशरूप दंभ, तेणे करीने दंभाय ला एवा, वली सुडक्क सिद्धम्मि–तीक्ष्ण डुःखे करीने सिद्ध एटले निष्पन्न थएला ए टले नीपजेला एवा, वली डुःखउदयम्मि–शरीरीने मानसी डुःख अति कष्टनो छे उ दय जेने एवा, जे लोए–लोकतेनेविषे तथा ते लोकने थए छते जाणधन्नाण–जे जिन मत जावित मतिवान धन्य पुण्यवाननुं सम्मत्तं–तत्व श्रद्धान सम्यक्त्व न चलइ– नथी चालतुं, ताण–ते पुरुषोने पणमामि–मन वचन कायाए करी हुं नमस्कार करुं छुं. वली हुंमाअवसर्पिणीना प्रजावे जस्मग्रहने उदये प्रगट्यो जे डुषमा आरानेविषे असंयत पूजा नामे दसमो आश्चर्य, तेणेकरी प्राए थयुं जे लोकोनुं विरूप रूप ते संगपट्टादिक बीजा शास्त्रोथी जाणवुं ॥ १३३ ॥

अवतरणः– अहीं कोई आशंका करेके, केटलाएक गुरुउने जोयां छतां पण विवेकी पुरुषोना मनमां रुचता नथी, अने केटलाएक नहीं दीठेला जिनवल्लजसू रिनी परे लोकोना मनमां रुचेछे ते सत्य छे; पण अमे तमने पूछिए छैए के तमे कोई गुरुनी परिक्षा करीने निश्चे कह्यो अथवा जाण्यो छे? तेने नेमीचंद प्रकरण कर्त्ता त्रण गाथाए करीने कहेछेः– मूलः– नियमइ अणुसारेण, ववहार नयेण समय सुद्धीए ॥ कालक्खित्तणुमाणेण, परिक्खिउ माणिउअ गुरु॥१३४॥ दोहाः– समयसुद्धि व्यवहार नय, निजमतिने अनुसार॥ काल क्षेत्र अनुमानथी, सुपरिक्षि त गुरु धार ॥ १३४ ॥ व्याख्याः– नियमइ अणुसारेण–पोतानी स्वाजाविक बुद्धि ना अनुसारे करीने पण अहं बुद्धिए करीने नहीं; ववहार नयेण–महाव्रत समि ति गुप्ती प्रतिलेषणा स्वाध्याय विहारादिक साधुना जे व्यवहार तेणे करीने सम यसुद्धिए–सिद्धांतनी शुद्धिए करीने कालखित्तणुमाणेण–संजम खप करता काल क्षेत्रने अनुमाने करीने उपलक्षणथी इव्य जावने पण अनुमाने करीने घणां गा म नगरादिकनेविषे खोलतां खोलतां कालने उचित जिनपतिसूरिगुरु में परक्खिउ– परिख्या छे; अ–च एटलो वली माणिउ–मान्य कर्युं छे अने सारी रीते जाणी लीधुं छे॥१३४॥ मूलः–तहवि हु नियजडयाए, कम्म गुरु त्तस्स नेव वीससिमो ॥ धन्नाणक यत्थाणं, सुद्ध गुरु मिलइ पुन्नेण ॥१३५॥ दोहाः–तो पण निज जमता करी, न गुरु कर्मे विश्वास॥पुण्ये धन्य कृतार्थने, मिले सुगुरु गुणरास॥१३५॥ व्याख्याः:– जो पण एम छे तहवि–तोपण हुं–निश्चय हुंमा अवसर्प्पिणी कालादिकने जोगे

तादृशविशिष्ट बुद्धि नथी माटे नियजरूयाए—पोतासंबंधी जडपणानो वली कम्मगु रुत्तस्स—प्रथम सुगुरु जोग न थवानी अपेक्षाए करीने कर्मना जारीपणानो नेव—न थीज वीससिमो—अमे विश्वास करता; केमके, पुन्नेण—तादृश विशिष्ट पुन्येकरीने धन्नाण—धन्य पुन्यवंत प्राणीउने कयडाणं—जेणे अर्थ सिद्ध कर्यो छे एटले जेणे बोध बीजरूप अर्थ नीपजाव्यो छे तेने सुद्ध गुरु—बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्मल गुरु मिलइ—मले छे. ॥ १३५ ॥

अवतरणः— वली कोई शिष्यादिक अथवा वादी वितर्क करे छे के एमां तमा रे शुं प्राप्ति थई? तेविषे कहेछेः— मूलः— अहअं पुणो अउन्नो, ता जइ पत्तो अ ह न पत्तो अ ॥ तहवि हु सो मह सरणं, संपइ जो जुग पहाण गुरू ॥ १३६ ॥ दोहाः— वलिहुं अपुन्य तदा जदी, लाधो नवि लाधोय ॥ तेपिण ते मुझ सरण अब, जुग प्रधान गुरु जोय ॥ १३६ ॥ व्याख्याः— पुणो—वली अहअं अउन्नो—हुं अपु न्य छुं एटले तादृश वसिष्ट पुन्येकरी रहित छुं ता—ते कारण माटे जइ—जो पत्तो— पूर्वोक्त गुरु में पाम्यो, अह—अथवा न पत्तोअ—न पाम्यो; तहवि—तोपण हु—निश्चे संप इ—संप्रति एटले वर्त्तमानकालनेविषे जो—जे जुगपहाणगुरु—जुगप्रधान गुरु छे, संविज्ञ गीतार्थ आचार्य छे, उपलक्षणथी तेमनी निश्राए जे उपाध्याय अथवा साधु छे सो—ते मह—अमारे सरणं—शरण आधारछे आत्मगुणवृद्धिने अर्थे विश्रामनुं ठाम छे. १३६

अवतरणः— कोई आशंका करे के, एवी सुगुरुनी प्राप्ति थवाथी पण शुं थयुं? एवो संशय दूर करवाने कहेछेः— मूलः— जिणधम्मं डुन्नेयं, अइसय नाणीहिं न ज्झए सम्मं ॥ तहवि हु समय ठिईए, ववहार नएण नायव्वं ॥ १३७ ॥ दोहाः— सम्यक् जाणे केवली, जैनधर्म डुर्ज्ञेय ॥ तदपि जाणणा योग्य है, श्रुत व्यवहारे तेय ॥ १३७ ॥ व्याख्याः— जिणधम्मं—श्रुत चारित्र लक्षण जिनजाषित धर्म छे ते, डु न्नेयं—डुःखे जाणवा योग्य छे केमके, उत्सर्ग अपवाद निश्चय व्यवहारादिक ग्नेक डागमे नयोए करीने कहेलो छे माटे जिनधर्म डुःखे जाणवा योग्य छे; अइसय नाणीहिं—अवधिज्ञानी चौदपूर्वधर तथा दशपूर्वधरादि अतिशय ज्ञानीओने सम्मं— सम्यक् प्रकारे जिनजाषित धर्म नज्झए—जाणीए छैए पण अनिपुण बुद्धिने गम्य नथी, माटे जिनधर्म डुःखे जाणवा योग्य कह्यो; एम निश्चयनये करीने छे तहवि— तोपण हु—निश्चय समयठिईए—सिद्धांतनी स्थिति मर्यादाए करीने ववहार नएण— सिद्धांतोक्त साधु श्रावक सम्यक् दृष्टिना व्यवहारे एटले व्यवहार नयेकरीने जिनजा षित धर्म नायव्वं—जाणवा योग्यछे, विधिपूर्वक यथाशक्तिए आराधवा योग्य छे. १३७

अवतरणः– कोई आशंका करे के, एम कहेलुं ले ते केम मानवुं? तेने कहे ले:– मूलः– जम्हा जेणहिं नणियं, सुय ववहारं विसोहियं तस्स ॥ जायइ विसुद्ध बोही, जिण आणाराहगत्ताओ ॥ १३८ ॥ दोहाः– शोधित श्रुत व्यवहारनें, निर्मल समकित थाय ॥ जिण आणा राधन थकी, जे कारन जिनगाय ॥१३८॥ व्याख्याः– जम्हा–जे कारणमाटे जिणेहिं–जिन तीर्थंकरोए नणियं–कह्युं ले. सुय ववहारं–श्रुत व्यवहारे करीने एटले सूत्र निर्युक्ति वृत्ति नाष्य चूर्णि ए पांचने श्रुत कहिये; ते श्रुतना व्यवहारे करीने विसोहियं तस्स–चारित्रनी विशुद्धी करनार जे पुरुष, तेने विशुद्ध बोही–विशुद्धबोधी एटले अति निर्मल सम्यक्त्व जायइ–थाय. श्याथी? जिण आणा राह गत्ताओ–श्रुतव्यवहारे करीने चारित्रनी विशुद्धि करवा रूप जिन आज्ञानुं आराधकपणुं थवाथी. ॥ १३८ ॥

अवतरणः– कोई आशंका करे के, तमे कह्युं जे सिद्धांतनी स्थितिए करीने अने व्यवहार नये करीने जिनधर्म जाणवा योग्य ले; एवी रीते कहेवाथी जिन धर्म देखाडवावाला गुरु पण सिद्ध थाय ले; तेम लतां तेनेविषे शी शंका ले? ते नो उत्तर कहेले:– मूलः– जे जे दीसंति गुरु, समय परिरकाइ ते न पुज्जंति ॥ पुणमेगं सद्दहणं, डुप्पसहंतं जउ चरणं ॥ १३९ ॥ दोहाः– जे जे गुरु अब देखिये, ते न मिले श्रुत न्याय ॥ पिण श्रद्धा इक ले चरण, डुपसह अंत गवाय ॥१३९ व्याख्याः– सांप्रतकाले जेजेगुरु–जे जे गुरु धर्माचार्य उपाध्याय साधु दीसंति–देखाय ले; समय परिरकाइ–सिद्धांतनी परिक्षाए करीने एटले सिद्धांत कथित व्यवहार नयनी विचारणाए करीने जे धर्माचार्य गुरु ले ते नपुज्जंति–ते नथी पूराता एटले नथी मिलता परिक्षाने नथी सहन करी शकता; शाथी? सिद्धांत कथित अनुष्ठानने यथार्थपणे न करवाथी. अहीं कोई शंका करे के, एम तो चारित्रनी नास्ति थई? त्यारे ग्रंथकर्त्ता कहेले के, पुणमेगं सद्दहणं–वली अमारे एक जिनवचननुं श्रद्धान ले. जउ जे कारणमाटे सिद्धांतमां कह्युं ले. डुप्पसहंतं–डुप्रसहआचार्य साधु अंतसुधी एटले डुप्रसह आचार्यसुधी चरणं–चारित्र वर्त्तशे. ए अमारे एक श्रद्धानले. माटे अमे चारित्र मानिये लैए. चारित्रनो निषेध करता नथी; पण श्रुत व्यवहारे करीने प्रवर्त्ततो देखीए तो कहियें के, कुगुरुने सुगुरु केम कहेवाय. १३९

अवतरणः– जे श्रद्धान ले ते शुं करवायोग्य ले ते कहेले:– मूलः– ता एगो जुग पवरो, मज्झबमणेहिं समयदिठीए ॥ सम्मं परिरकियव्वो, मुत्तूण पवाह हलबोलं ॥ १४० ॥ दोहाः– तो मध्यस्थ मनेथि इक, युग प्रधान श्रुत न्याय ॥ रूढी

रीते परिखवो, तजि प्रवाह हलवाय ॥ १४० ॥ व्याख्याः– ता– ते कारणमाटे पवाह हलबोलं– लोकप्रवाह संबंधी जे हलबोल विचार रहित जे कलकल तेने, मुत्तूण– मूकीने वली समयदिठीए– श्री आचारांग निसीथ व्यवहारादिक सिद्धां तनी दृष्टिए करीने मज्झत्थमणेहिं– मध्यस्थ राग द्वेष कदाग्रह रहित जेओनां मन छे ते पुरुषोए एगो जुगपवरो– एक जुगप्रवर एटले सम्यक् ज्ञान क्रियाएकरी सहित एक जुग प्रधान आचार्य होय ते सम्मं–सम्यक् प्रकारे परिक्खियव्वो–परखवो निश्चय करवो; पण आचार्यादिकना आचारे करि रहितने आचार्यादिक मानवुं नही.१४०

अवतरणः– कोई आशंका करे के, प्रवाह हलबोलने मूकीने एम कह्युं, पण लोक प्रवाहनो हलबोल जो पोते निपुण होइयें तो शुं करे? एवुं निवारण कर तां कहेछेः– मूलः– संपइ दसमछेरय, नामायरिएहिं जणिय जणमोहे ॥ सुह ध म्मओ निउणवि, चलंति बहु जण पवाहाओ ॥ १४१ ॥ दोहाः– अब दशम चरज नामगणि, जनित नीच जन कर्म ॥ लोक प्रवाहे निपुण पण, पडिआ त जि शुज धर्म ॥ १४१ ॥ व्यख्याः– संपइ–सांप्रत एटले वर्त्तमान डुषमा कालने विषे दसमछेरय– आरंज परिग्रहमां आसक्त सदा ब्रह्मचारी असंयत थका संय त कहेवरावता तेओने जे पूजवुं तथा वंदन नमस्कारादिक करवुं, ते असंयत पूजा नामे दशमो आश्चर्यछे; वली नामायरिएहिं–नाम मात्र आचार्य केवल लिं गोपजीवि ड्व्यथकी ने जावथकी साधुनी क्रियाए करीने रहित दशमो आश्चर्य ने नामाचार्य ए बन्ने जाणिय–जाण्युं छे अथवा उपजाव्युं छे; जण–नीच पामर लोकोने उचित मोहे–मोह एटले अति राग तेने, एवा जे निउणवि–निपुण पण एटले धर्म कर्मनेविषे चतुर पण सुहधम्माउ–शुज शिव कल्याणकारी जिन जाषित जे धर्म तेथकी चलंति–चलेछे; ज्रष्ट थायछे; तो बीजा अनिपुण पुरुषोनी शी वा र्त्ता! केमके, निपुण पुरुष पण धर्मथकी चलेछे, बहु जण पवाहाउ–घणा लोको नो जे प्रवाह गतानुगतिक एटले विवेकरहित बोलवुं चालवुं प्रवर्त्तवुं, तेणे क रीने ते निपुण पुरुष पण जिन धर्मथकी चलेछे पडेछे माटे लोक प्रवाहने मूकी ने छेटे रहेवुं, ज्रष्टाचार नामाचार्यनो पण परिचय न करवो जो जिनधर्म विधिमा र्गनो अजिलाष राख्यो होय तो. ए जाव ॥ १४१ ॥

अवतरणः– एवी रीते जेओ लोक प्रवाहमां पडेला छे तेओनुं डुष्टपणुं देखा ड्युं, हवे जे जिनधर्मथी पडेलानुं आलंबन लिएछे तेनो दोष, अने जे नथी लेतां तेनो गुण बोलता उता कहेछेः– मूलः– जाणिज्ज मिछदिठो, जे पडणा लंबणा

इ गिह्रंति ॥ जे पुण सम्मदिट्ठी, तेसि मणो चडण पयडीए ॥ १४१ ॥ दोहाः- पडना लंबन आचरे, मिथ्यादृष्टि तेथ ॥ जे समदृष्टि तेहनो, मनचडते पगथेय ॥ ॥ १४१ ॥ व्याख्याः- जे-जे पुरुष पडणालंबणाई-पडेला एटले जिनभाषित शुद्ध विधिमार्ग थकी भ्रष्ट थएला पासत्थादिकनी तथा तेउना श्रावक लोकोनी कुप्रवृत्तिनुं बहुमानरूप जे आलंबन तेने गिह्रंति-- ग्रहण करेछे एटले एनीपासे भगवतनो वेष छे, जिनागम भणेछे भणावेछे, तथा संभलावेछे, माटे एने चैत्य वासादि करवाथी शुं बगडेछे? इत्यादिक पडेला पुरुषोनी कुप्रवृत्तिनुं बहुमानरूप जे आलंबन तेने जे पुरुष ग्रहण करेछे, तेने मिच्छदिट्ठी-मिथ्यादृष्टि जाणिज्ज-अहो भव्य, तमे जाणो. पुण-वळी जे-जे पुरुष सम्मदिट्ठी-सम्यकदृष्टि छे, तेसिम णो-तेनुं मन चडणपयडीए-चडती पगथीए वर्त्ते एटले चडते चडते गुणस्थान मार्गे वर्त्ते, पण पापस्थाने वर्त्ते नही; कह्युं छे के जेणे अमृत चाख्युं होय, तेने बाकस बुकसनी रुचि केम थाय? अपितु नहीज थाय. तेम जे सम्यक्त्व रसनो ज्ञाता पुरुष होय ते घणा काळथी सेवेलुं मिथ्यात्वादि पापरूप कुभोजन तेने निंदे अने त्याग करे; पूर्व कर्मना योगथी जो कांई पापरूप कुभोजन सेवेछे तो पण भावथी ते सम्यक्त्वरूप अमृत भोजननेज वांछे छे! अथवा करेछे; केमके, तेणे सम्यक्त्व अमृत प्रथम आस्वादेलुंज छे; माटे पाप कुभोजनने केम वांछे? अपि तु नहीज वांछे. रूडा आलंबन आदरे. पण खोटा आलंबन आदरे नही. एवुं सम्यक्त्ववाननुं लक्षण होय छे ए भाव ॥ १४१ ॥

अवतरणः-- हवे पडेला पासत्थादिक लोकोनुं बाहुल्यपणुं जोईने सुमार्ग तत्पर पुरुषोनो समागम अति दुर्लभ छे, एम देखाडता छता कहे छेः-- मूळः-- सव्वंपि जए सुलहं, सुवन्न रयणाइ वत्थु वित्थारं ॥ निच्चंचिय मेलावं, सुमग्ग निरयाण ज इ दुलहं ॥ १४२ ॥ दोहा.-- सुलभ सकल पि कनकमणि, आदि वस्तु विस्तार मार्ग निपुणनो संग जग, अति दुर्लभ अवधार ॥ १४२ ॥ व्याख्याः-- जए-जग तमांविषे सुवन्न रयणाइ वत्थुवित्थारं--सुवर्ण रत्नादिक वस्तुनो विस्तार सव्वंपि सुलहं अनंत वार पामवा माटे ते सर्व सुलभ छे. पण सुमग्ग निरयाण--सुमार्गनिरता पुरुषोनो एटले जिनभाषित विधिमार्गनेविषे जे तत्पर ते पुरुषोनो निच्चंचिय-नि श्चमेव एटले निरंतरज मेळावं-- मिलाप एटले समागम ते अइदुलहं-- अति दुर्लभ छे; केमके, ते सद्धर्म प्राप्तिनुं कारण छे माटे. ॥ १४२ ॥

अवतरणः-- हवे मार्गतत्पर पुरुषोनो समागम छतां पण जेने अभिमान रु

ठे ठे तेनुं स्वरूप कहे ठेः-- मूलः-- अहिमाणविसोपसमठ यं च थुवंति देव गुरुणो य ॥ तेहिं पि जओ माणो, हीही तं पुव ऊच्चरिअं ॥ १४४ ॥ दोहाः-- मानविषोप समाववा, शुद्ध देव गुरु धर्म ॥ ते सेवे पण मद थयो, हा ते पूर्व कुकर्म ॥ १४४ ॥ व्याख्याः-- देवगुरुणोय-- अढार दोष रहित, द्वादश गुण सहित जे अरिहंत देव तेनी; तथा सप्तविंश गुणालंकृत गुरु सुसाधु तेनी; थुवंति-- स्तवनातथा उत्कीर्त्तना करवी, उपलक्षणथी अन्युत्थान नक्ति वहुमान वंदन नमस्कारादिक करवां ते अइमाण विसोपसोपठ यं च-- जात्यादि अनिमानरूप विषने उपशमाववाने अर्थे ठे, च शब्द थकी मिथ्यात्वादि दोष उपशमाववाने अर्थे ठे, केम के, सुदेव सुगुरुनी स्तुति कखाथी अनिनिवेश कदाग्रह अज्ञान अनिमान टले अने शुद्ध सम्यक्त्वनी प्राप्ति थाय. एम आगममां कह्युं ठे. तेहिंपि-- ते देव गुरुयें करीने जओ-- जो माणो-- मान अनिमान देव गुरुविषे थयो. केम थयो ते कहे ठेः-- आ चैत्य मारा पूर्वजोना ठे, एने मूकीने बीजा चैत्यमां उत्सवादिक करवाने केम जवाय? इत्यादिक देवविषे अनिमान; वली ए गुरु मारे अंगीकार करेला ठे, ए गीतार्थ क्रियावंत गुणवंत ठे. तेविना बीजा गुरुओ नले गुणवान होय तो पण तेनी ऊपर राग धरे नही, उलटुं मछर नाव आणे. इत्यादि गुरुविषे अनिमान थयो; ही ही-- ए मोटी खेदनी वात ठे. तंपुवडुच्चरियं--तेपूर्वनवनुं डुष्कर्म चरित ठे. एटले ते पोतानो दोष ठे. एमां बीजा कोईनो दोष नथी॥१४४॥

अवतरणः-- जेने खोटा अनिमानरूप धन ठे, ते सदैव असद्भुत पदार्थने माने ठे; तेने उपालंन सहित प्रगट दोष जणावीने निर्नत्स्ना करता ठता कहे ठेः-- मूलः-- जो जिणआयरणाए, लोओ न मिलेइ तस्स आयारे ॥ हा हा मूढ करिंतो, अप्पं कह नणसि जिण पणयं ॥ १४५ ॥ दोहाः-- जिन आचरण थकी जुदो, जे जण तसु आचार ॥ रे सठ करतो किम कहै, हुं जिन नगत उदार ॥ १४५ व्याख्याः-- जोलोओ-- जे पासडादिक लोक ठे ते जिण आयरणाए-- जिन नाषित आचरणानी साथे नमिलेइ-- नथी मलता, तस्स-- ते पासडादिकनो जे आयारे-- निजमति कल्पित जे आचार ठे तेने करिंतो-- अंगीकार करतो ठतो हा हा-- मोटी खेदनी वात ठे. मूढ-- हे मूर्ख, अप्पं-- पोताने जिणपणयं-- जिनने विषे सुगुरुने विषे नमस्कार करवावालो, स्नेह करवावालो कह-- केम नणसि-- तुं कहे ठे, जो जिननाषित आचरणाने आचरतो होय तो तारुं कह्युं संनवे; माटे फुठ बोलीने शासारु-- फोकट आत्माने विटंबना करेठे. ॥ १४५ ॥

अवतरणः— अही कोई वितर्क करे के, जिन आचरणा मूकीने कोई पासत्था दिकनी कहेली आचरणा अंगीकार करता हशे, तेनो उत्तर कहेछेः— मूलः— जं चिअ लोओ मन्नइ, तंचिअमन्नंति सयल लोआवि ॥ जं मन्नइ जिणनाहो, तंचिअ मन्नंति किवि विरला ॥ १४६ ॥ दोहाः— जाकूं मानै लोक तस, मानै लोक अनेक ॥ मानै जास जिनेंद्र तसु, माने कोइक छेक ॥ १४६ ॥ व्याख्याः—लोओ—पासत्थादिक लोक जंचिय- जेआचरणाने मन्नई- मानेछे सयल लोआवि—तादृशविवेक विकल सकल लोक पण तंचिअ—ते पासत्थादिकनी नाषेली आचरणाने मन्नंति—मानेछे, जेम लींबडानो कीडो लींबडाने सारुं मानेछे, तेम,वली जिणनाहो—जिननाथ जं—जे आचरणाने मन्नइ—मानेछे, सम्यक् जाणेछे,तेम किवि विरला—केटलाएक विरला हलुकर्मी जीव तंचिअ—ते जिननाषित आचरणनेज मन्नंति—मानेछे, यथाशक्तियें पाले, आराधे छे, जिनधर्म पालवुं ते नदीना पूरनी सांबे जवा बरावर छे. माटे कोईक हलु कर्मी जीव जिननाषित धर्म आचरणने मानेछे किंबहुणा एटले घणुं कह्याथी शुं! ॥ १४६ ॥

अवतरणः— अही कोई वितर्क करे के, लोको प्रायेकरी लोकोनुंज कहेलुं मानेछे, जिनराजनुं कहेलुं मानता नथी, एवो तेओनो स्वनावज छे; ते नले पण जिनराजनुं कहेलुं न मान्या छतां अने लोकोनुं कहेलुं मान्या छतां जे दोष थायछे ते कहे छेः— मूलः— साहंमि आउ अहिओ, बंधसुआईसु जाण अणुराओ ॥ तेसिं नहु सम्मत्तं , विन्नेयं समयनीईये ॥ १४७ ॥ दोहाः— साधर्मीथी अधिक जस, परिजन ऊपर प्रेम ॥ तास न समकित मानिये, आगम नीती एम ॥ १४७ ॥ व्याख्याः—जाण—जेने साहम्मिआउ—सम्यक्त्वादि गुणे करीने जे सरखा ते साधर्मी,कहियें तेथीपण बंधसुआइसु—बांधव पुत्रादिकनेविषे आदि शब्दथी माता पितानार्यादिकनेविषे अहिओ—अधिक अणुराओ—अणुराग स्नेह वर्त्ते छे. तो तेसिं—तेने नहु—नहीज सम्मत्तं—सम्यक्त्व, होय ए वात समयनीईये—सिद्धांतनीतिएकरीने विन्नेयं—विशेषपणे जाणवा योग्य छे. साधर्मीनी साथें कोई प्रकारनो कलह अथवा क्लेश करवो नही. वली साधर्मी सीदातो होय तो तेने सहाय करवुं, केमके, शास्त्रमां कह्युं छे के, संसारमां साधर्मीना जेवुं बीजुं कोई सगपण नथी. साधर्मीनी सेवा नक्तिवात्सलताए करीने सम्यक्त्व विशेष निर्मल थाय. माटे बंधु सुतादिक सर्व स्वजननो अनुराग ते करमबंधनुं कारण ए दोष जाणी साधर्मीनेविषे अधिकतर धर्मानुराग निरंतर राखवो एजश्रेय गुण छे. ॥ १४७ ॥

अवतरणः– एवी रीते लोकाचारने माननारनो दोष प्रगट करीने हवे ते लो काचार संबंधी निषेधनो उपदेश कहेछेः– मूलः– जइ जाणिसि जिण नाहो, लो यायारा विपरकए नूओ ॥ ता तं तं मन्नंतो, कह मन्नसि लोअ आयारं ॥१४७॥ दोहाः– जिनपति लोकाचारथी, जो तुं जाणे निन्न ॥ तो किम लोकाचारने, तुं माने प्रजु मन्न ॥ १४७ ॥ व्याख्याः– जइ–जो जाणिसि–तुं जाणेछे : जिणनाहो– जिननाथ एटले जिनवरेंड़ छे ते लोआयारा–दर्शनभ्रष्ट पासछादिक तथा चतुर्द र्शनी ब्राह्मण परिव्राजक त्रिदंडी तापसादिक जे लोक. तेओना आचारथकी विप रकए नूओ–विपक्षनूत छे. एटले न्यारो छे अथवा ते लोकोना आचारोनो जिन नाथ विपक्ष नूत छे एटले शत्रुरूप छे. एम जो हे जइ· तुं जाणेछे, ता–तो तं– तुं तं–ते जिननाथने मन्नंतो–मानतो अथवा जाणतो छतो लोअआयारं–लोक ना आचारने कह–केम मन्नसि–तुं मानेछे. ॥ १४७ ॥

अवतरणः– तुं लोकाचारने केम मानेछे? एम कह्युं तेनेज फरी दृढ करेछे ; तथा जिनेंडने मान्या थका पण जे मुग्ध लोको छे ते बीजा देवोने मानेछे ते दे खाडता छता कहेछेः–मूलः– जे मन्नेवि जिणिंदं, पुणोवि पणमंति इअर देवाणं॥ मिछत्त सन्निवायग, गछाणं ताण कोविज्जो ॥ १४९ ॥ दोहाः– जिनवरने प्रण मी वली, जे प्रणमे अन देव ॥ सन्निपात मिथ्यात हत, तस कुण वैद इहेव ॥१४९॥व्याख्याः– जे–जे मुग्ध तत्वना अजाण छे, ते जिणिंदं–जिनेंड देवने पण म न्नेवि मानेछे अने पुणोवि–वली पण इयरदेवाणं–इतर जे जिनेंड देवथी बीजा ह रि हर ब्रह्मादिक रागी द्वेषी मिथ्यादृष्टि देव छे तेने पणमंति–प्रणमे छे एटले पूजे छे ; ताण–ते मिछत्तसन्निवायगछाणं--मिथ्यात्वरूप सन्निपात रोगे करि ग्रस्त थएला गलायला अथवा व्याप्त थएलानो कोविज्जो–वैद्य कोण थाय ! अपितु तेनो कोई वैद्यज नथी. केमके, जेने अमृत समान जिन धर्म पुरिस विषसमान मिथ्या धर्म जेवो थयो तेनो हितोपदेशक गुरु वैद्यराज शुं उपाय करे ! ॥ १४९ ॥

अवतरणः– हवे मिथ्यात्वरूप सन्निपात रोगेकरी ग्रस्त थएला शुं करेछे ते कहेछेः– मूलः– एगो अ गुरू एगो वि सावगो चेइआणि विवहाणि; ॥ तछय जं जिणदवं, परुप्परं तं न विछंति ॥ १५० ॥ दोहाः– गुरू एक वलि श्रा ड इक, चैत्य विविध चित्रेव ॥ तामें जो जिनड्व्य ते, दिए परस्पर नेव ॥१५०॥ व्याख्याः–एगोअगुरू–एकज गुरू केमके लिंग आचार एक माटे एक गुरू, एगोवि साव गो–एक पण श्रावक कारणके सर्वना देवगुरु धर्म एक माटे श्रावक पण एक चेइआणि

बिंबाणि– चैत्य देहरासर अथवा जिनप्रतिमा ते विविध अनेक छे; तथापि जिनेंद्र देव सर्वे सरखा माटे चैत्य पण एकज; ए त्रणे एक एक थए थके पण त छय– त्यां एटले ते श्रावकोनी पाशे जं– जे जिणदव्वं– जिन द्रव्य छे; उपलक्षणथी ज्ञान द्रव्य साधारण द्रव्य छे तं–ते द्रव्य परुप्परं–परस्पर एटले माहो मांहे चैत्य ज्ञानादिक कार्य पडेछते न विक्कंति– नथी वेचता एटले नथी आपता; ते लोजी सुखना लालची गुरु निर्मल उपदेश तेने देता नथी; पण उलटुं जेथी अहंकार ममकार पणु वधे तेवो उपदेश करे छे. ए जाव छे ॥ १५० ॥

अवतरणः– एम करतां छतां ते गुरु आदिक छे के नथी? ते विषे कहे छेः– मूलः– ते न गुरू नो सड्ढा, न पूइओ तोहि होइ जिणनाहो ॥ मूढाणं मोह ठिई, सा नज्जइ समय निउणे हि॥१५१॥ दोहाः– ते गुरु नहि श्रावक नही, नहि प्रज्ञु पूजक तेय ॥ मोह थिती मूढोतणी, जाणो श्रुत निपुणेय ॥१५१॥ व्याख्याः– ते– ते नगुरु–तेगुरु नथी केम के, सुख दाक्षिणताएं करीने जिनोक्त निर्मल उपदेश नथी देता माटे तथा नो सड्ढा–ते श्रावकपण नथी; केम के, चैत्यादि द्रव्य चैत्यादि कार्य परत्वाथी ममताने लीधे नथी वेंची आपता माटे ते श्रावकपण नही कहेवाय वली तेहिं–तेणे जिणनाहो–जिननाथ पण नपूइओ होई–पूज्यो नथी एम छे केमके जे ममकारादिक क्लिष्टचित्तवाला यद्यपि पूजादिक करे तथापि तेने पूजादिक करवावाला न कहिये. माटे शिष्य कहेछे तो तेने शुं कहिये? गुरु कहेछे मूढाणं–मूर्खोनी मोहठिई–मोहस्थिति कहिये. सा–तेवात समय निउणेहिं–सिद्धांतमां जे निपुण पुरुषछे तेने नज्जइ–जणाय छे पण बीजा जाणता नथी ॥ १५१ ॥

अवतरणः– पूर्वे गाथामां कह्युं नथी ते गुरु तेजवात प्रगट करता छता कहे छेः–मूलः–सो न गुरू जुग पवरो, जस्स वयणंमि वट्टए जेओ ॥ चिय जवण स ढगाणं, साहारण दव्वमाईणं. ॥ १५२ ॥ दोहाः–चैत्य जुवन वलि श्राद्धजन, साधारण द्रव्यादि ॥ तास जेद जसु वचनमें, तेगुरु छे जगदादि ॥ १५२ ॥ व्याख्याः– जस्स–जेगुरुना वयणंमि–वचने करीने एटले कुटिल उपदेशे करीने तथा पोतासंबंधी चैत्यादि कराववुं ते तमने प्रधान छे, एम साक्षात् उपदेश दीधाथी चियजवण–चैत्यजवनोने विषे एटले जिन प्रासादोने विषेतथा सढगाणं–श्रावकोने विषे वली साहारणदव्व माईणं–साधारण द्रव्यादिकने विषे आदि शब्दथी ज्ञान द्रव्यने विषे जेओ–जेद वट्टए–वर्त्ते छे; एटले अहंकार ममकारनी बुद्धिएकरीने पोता संबंधी चैत्य तथा श्रावकादिक थापीने माहोमांहे जे जगडा करावे छे, जेद

पाडे छे ते जुग पवरो जुग प्रधान गुरु–आचार्य न–नथी केम के, प्रथम जे विशेषण कह्युं ते कुगुरुनुं छे माटे ते जुगप्रधान गुरु न जाणवो ॥ १५२ ॥

अवतरणः–अहीं कोई वितर्क करे के, जेनां वचन थकी चैत्य जवनादिकोनो जेद वर्ते छे, ते जुग प्रवर गुरु न होय; एम जे कह्युं, ते तो तीर्थंकरादिकवर्त्ते ते काले नेविषे युक्त छे; पण हमणा तो जेद विना कोई पण मर्यादा नहोय! ए आशंका दूर करवाने सांप्रतहमणा पण सिद्धांत कथित विधिनेविषे जे पुरुष नथी प्रवर्तता तेओना दोष देखाडता छता कहे छेः– मूलः– संपइ पहुवयणेणवि, जाव न उल्लसइ विहि विवेयत्तं ॥ ता निविड मोह मिछ त्त गंठिया डुठ माहप्पं ॥ १५३ ॥ दोहाः–प्रगटे न विधि विवेक अब, प्रजु वचने पण जाव ॥ ताव निवड मिथ्यात्वनी, गंठिसणो अनुजाव ॥ १५३ ॥ व्याख्याः–संपइ–संप्रति एटले वर्त्तमान कालनेविषे पण पहु वयणेणवि–प्रजु जाषित जे वचन, आगम ते सांजल्याथी जाव–ज्यां सुधी विहिविवेयत्तं–जिन द्रव्यादिकनुं जिनागम उक्त प्रकारे वधारवुं, खरचवुं, रक्षण करवुं, तथा द्रव्य जावे पवित्र थईने आशातना टाली, अनिगम साचवी, जिनपूजा करवी, सुगुरु जक्ति करवी, तथा दोष रहित सामायक प्रतिक्रमण पोषध उपवास करवां, तथा निरतिचार सम्यक्त्व सहित सर्व व्रत पालवां, इत्यादिक विधिविवेक पणुं जेने न उल्लसइ–नथी उल्लासने पामतो, ता–ते कारण माटे ए निविमोहमिछत्तगंठिया डुठ माहप्पं–निविम एटले अतिदृढ मोह मिथ्यात्वनी गांठनुं कोई डुष्ट माहात्म्य छे; एटले प्रजाव छे; एम जाणवुं. केमके छती समर्थाईयें सिद्धांतोक्त विधिनेविषे न प्रवर्त्तवुं ते प्रजुना वचननी आशातना छे. ॥ १५३ ॥

अवतरणः– ते कारण माटे हवे प्रजुवचननी आशातनानुं डुष्टपणुं कथन करतां छतां कहेछेः– मूलः– बंधण मरण जयाइं, डुहाइं तिरकाइं नेअ डुःरकाइं ॥ डुरकाण डुह निहाणं, पहुवयणा सायणा करणं ॥ १५४ ॥ दोहाः– बंधन मरण जयादि डुख, नहि तीक्ष्ण डुख जाण ॥ जे अविनय प्रजु वचननो, ते डुख दोष निधान ॥ १५४ ॥ व्याख्याः– बंधन–दोरडादिके करी बांधवुं, मरण–आयु अथवा प्राणनो नाश, जयाइ–इह लोकादिक सात जय इत्यादिक जे डुरकाई–डुःख छे ते, तिरकाई–तीक्ष्ण एटले आकरा डुरकाई–डुःख नेअ–नथीज थोडाकाल रहेछे पण पहुवयणा सायणाकरणं–प्रजुनां वचननी आसातनानुं जे करवुं, ते डुःरकाण–जन्ममरणादिक डुःखनुं डुहनिहाणं–डुःख निधान छे; एना जेवुं बीजुं कोई संसारमां डुःख नथी ए जाव ॥ १५४ ॥

अवतरणः– एवी रीते आशातनाना करनार संबंधी अनंत दुःख कह्यां, हवे वर्त्त मानकालादि दोष थकी यथोक्त विधि करवाने असमर्थ एवो जे पोतानो आत्मा तेने निंदतां छतां कहे छेः– मूलः– पहुवयण विहिरहस्सं, णाऊणं जाव दीसए अप्पा ॥ ता कह सुसावगत्तं, जं चिन्नं धीर पुरिसेहिं ॥ १५५ ॥ दोहाः–वीर वच न विधि सार लखि, जब निज आतम जोय ॥ तो कहँते गृहि धर्म जे, गृह्यो धीर पुरुषोय ॥ १५५ ॥ व्याख्याः– पहुवयण विहि रहस्सं–प्रभुना वचन सिद्धांत नो जे विधिनो सार तेने नाऊणं–जाणीने जाव–यावत् एटले ज्यांसुधी अमे अप्पा–पोतानो आत्मा दीसए–देखीए छैए. ता–त्यारे एम विचार थाय छे के, मारेविषे कह–क्यांथी सुसावगत्तं–सुश्रावकपणुं धीरपुरिसेहिं–कामदेव अरणक श्रावकादिक धीर पुरुषोए जं चिन्नं–जे आचर्युं ते. ॥ १५५ ॥

अवतरणः– कोई वितर्क करेछे के, जो धीर पुरुषोए अंगीकार करेलुं श्रावक पणुं नथी तो शा कारणथी देवपूजादि अनुष्ठानविधिनेविषे पोताना आत्मा ए प्रकारे पर्यासीए छैए एटले जोडिये छैए? ए आशंकाए करीने कहेछेः– मूलः– जइवि हु उत्तम सावय, पयडीए चडण करण असमत्थो ॥ तहवि पहुवयण कर णे, मणोरहो मज्झ हिययम्मि ॥ १५६ ॥ दोहाः– यदपि सुश्रावक सेढिए, चढण कढण असमर्थ ॥ तदपि मनोरथ मुझहिये, कबहू करूं तदर्थ ॥१५६॥ व्याख्याः– जइवि–जोपण हु–निश्चे, उत्तम सावयपयडीए–पूर्वोक्त उत्तम श्रावकोनी पगथीए एटले श्रेणिए चडण करण असमत्थो–चडण करवाने एटले अरोहण करवाने अ समर्थ एवो हुं छुं तहवि–तथापि एटले तोपण पहुवयण करणे–प्रभुभाषित वच न अंगीकार करवानेविषे एटले श्रीवीतराग कथित जे विधिनुं करवुं तेनेविषे म णोरहो–मनोरथ मज्झहिययम्मि–मारा हृदयमां वर्त्तेछे, एटले जोपण उत्तम श्राव कोनी पदवीने आरोहण करवाने हुं असमर्थ छुं तो पण प्रभुवचन अंगीकार क रवानो मनोरथ मारा हृदयमां वर्त्तेछे, अने पोतानी यथाशक्तिप्रमाणे आराधु छुं, तेमाटे सम्यक्त्व प्राप्ति योग्य कोईएक श्रावकना भेदमां छुं निश्चयतो श्रीवीत राग देव जाणे. ॥ १५६ ॥

अवतरणः– हवे वली ते जिनवचन अंगीकार करवाना मनोरथनी वांछा कर ता छतां कहेछे, जे कारण माटे प्रभुना वचन अंगीकार करवानो अमारा मनमां मनोरथ छेः– मूलः– ता पहु पणमिअ चलणे, इक्कंपत्थेमि परम भावेण ॥ तुह व यण रयण गहणे, अइ लोहोमज्झ हुज्ज सया ॥ १५७ ॥ दोहाः– तो सुन भावे

प्रभुनमत, चरणे जाचूं एक ॥ होय सदा मुज तुम वचन, रतन लोभ अतिरेक. ॥ १५७ ॥ व्याख्याः— ता—ते कारण माटेज पहु—हे प्रभो, श्रीवीतरागदेव, चरणे—तमारा चरण जुगलने पणमिअ—प्रणाम करीने परम भावेण परम उत्कृष्ठ भावथी इक्क—एक वस्तु पडेमि—हुं प्रार्थुं बुं एटले मांगु बुं. ते एक वस्तु तुहवयण रयण गहणे—तमारा वचनरूप दुःख दारिद्र दौर्भाग्यादिक दूर करवाथी रत्ननीपेरत्न, तेनुं ग्रहण करवानेविषे अइलोहो—अतिलोभ एटले अति प्रबलपणुं मज्झ—अमारे हुज्ज—होय सया—सदा. ॥ १५७ ॥

अवतरणः— कोई वितर्क करे के. एवीरीते शासारु इच्छा करवी पडे? पोतानी मेलेज जिन वचनरूप रत्ननुं ग्रहण करवानेविषे लोभ थशे. ? ए आशंका करीने कहेछेः— मूलः— इह मिछवास निक्किठ भावउगलिअ गुरुवि वेआणं ॥ अम्हाण कह सुहाइं, संभाविज्जंति सुमिणेवि ॥ १५८ ॥ दोहाः— मिथ्यावास सुमलिन मन, गत विवेक हममांहि ॥ कहांथि सुख संभाविए, स्वपनविषे पण नाहि॥ १५८ व्याख्याः— इह—ए पांचमां दूषम कालनेविषे मिछवास—मिथ्यात्वनी वासनाए अच्छाए करीने निक्किठ भावउ—निक्कीष्ट एटले अति मलिन भाव परिणाम थयो तेथी गलिअ गुरुविवेआणं— गलायो छे एटले नाशने पाम्योछे तत्व अतत्व संबंधी प्रथग भाव एटले न्यारा न्यारा भाव, जे मोटा विवेक विचार जेना एवा जे अम्हाण— अमे, तेने सुमिणेवि - स्वप्ननेविषे पण सुहाइं— जिनवचनरूप रत्न ग्रहण करवुं ते सुख हेतु माटे सुख ते कह—शा प्रकारे करीने संभाविज्जंति—संभाविए एटले विचारिए अथवा थापिए? केमके, मिथ्यात्वे करीने वासित छे मति जेनी, अने गयो छे मोटो विवेक जेनो तेने तेवुं सुख क्यांथी थाय? ॥ १५८ ॥

अवतरणः—शीरीते क्यांथी होय ते रीत कहेछेः—मूलः—जं जीविअमित्तंपि हु, धरेमि नामं च सावयाणंपि ॥ तं पिपहु महा चुज्जं, इह विसमे दूसमे काले॥ १५९॥ दोहाः— धरुं जो जीवित मात्र पण, नाम श्राद्धनो सार ॥ तेपण अति अचिरज प्रभु, दूसम काल मझार ॥ १५९ ॥ व्याख्याः— इहविसमे दूसमेकाले—आ विषम दूसम कालनेविषे जं—जो जीविअ मितंपि—देश संयमरूप जीवितमात्रने पण कोईक प्रकारना भंगे करीने हु—प्रकटपणे सावयाणंपि—सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रतधारी श्रावकोनो च—वली नामं—नाम मात्रप्रते धरेमि—हुं धारण करुंछुं; तं पि—ते पण पहु—हे प्रभु, हेनाथ महा चुज्जं—मोटो आश्चर्य छे; बीजुं वधारे शुं कहिये? ॥

अवतरणः—ए प्रकारे कालादिकना अनुसारे करीने पोताना स्वरूपने कहीने हवे

पोतानुं जन्म सफल करवाने अर्थे सुगुरुने विनती करता उता कहे छे - मूलः- परिजा विऊण एवं तह सुगुरु करिज्ज अम्ह सामित्तं ॥पहुसामग्गि सुजोगो; जह सहलं होइ मणुअत्तं॥१६०॥दोहाः- इम विचार करि तिम सुगुरु, हमने करो सनाथ॥सुलन होय जिम नरपणुं शिव सामग्री साथ ॥ १६० ॥ व्याख्याः- एवं-दूषमा कालनेविषे जिन नाषित धर्मनुं डुर्लनपणुं छे ए प्रकारे परिजाविऊण-परिजावीने एटले वीचारीने सुगुरु-हे सुगुरु, हे शोनन आचार्य एटले हे सम्यक् ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण संपन्न सुगुरु तह-तेम अथवा ते प्रकार अम्हसामित्तं-अमारा संबंधी स्वामीपणाने करिज्ज-करो एटले ते प्रकारे अमारा ऊपर तमे स्वामीपणुं धारण करो. जह-जेम अथवा जे प्रकारे पहुसामग्गिजोगो-प्रनुदर्शनादिकनी सामग्रीनो एटले प्रनुनाषित धर्मसामग्रीनो सारो योग थाय, ते थएथके मणुअत्तं-मनुष्यपणुं सहलं- सफल होइ-थाय, केमके, संसारमां चार अंग जीवने पामवा डुर्लन छे, तेमां प्रथम मनुष्य पणुं, बीजुं सिद्धांतनुं सांनलवुं, त्रीजुं सिद्धांतने सांनलीने जिन वचननी श्रद्धा करवी, श्रद्धा थया पछी तप संयमने विषे पराक्रम फोरववो; ए चार अंग डुर्लन छे. तेमां प्रथम मनुष्य पणुं डुर्लन कह्युं, पण ते मनुष्य पणुं सफल क्यारे थाय, ज्यारे शेष त्रण अंगनी प्राप्ति थाय माटे हे सुगुरो अमारा ऊपर तमे स्वामीपणुं करो के जेम प्रनु नाषित धर्म सामग्रीनो रूमो जोग थाय, ते थवाथी मनुष्यपणुं सफल थाय? ॥ १६० ॥

अवतरणः-- हवे समाप्तिने अर्थे ग्रंथकार पोतानुं नाम कथन पूर्वक तथा तेना अध्ययनादिकथी थता फलना कथन पूर्वक अने स्मरणनी उपादेयता प्रते एटले तेनुं जे अंगीकारपणुं तेने कहे छेः-- मूलः- एवं नंमारिअ ने, मि चंदरइआउ कइविगाहाउ ॥ विहि मग्गरया नवा, पढंतु जाणंतु जंतु सिवं ॥ १६१ ॥ दोहा नेमिचंद नंमारिकृत, गाथा केइक एम ॥ विधि मग मग्न नविक नणो, लखो लहो शिव क्षेम॥ १६१ ॥ षष्टि शतक प्राकृत थकी, दोधक किया सुनास ॥ दोधक शोधक बुद्धिजन, सेवक मोहन तास ॥ १६२ ॥ व्याख्याः-एवं-ए प्रकारे सज्जन नंमारीनो पुत्र अने जिनेश्वर सूरीनो पिता प्रसिद्ध एवो जे नंमारीअ नेमिचंद-एटले नंमारिक गोत्री नेमिचंद श्रावक तेणे रइआउ-रचित जे कइवि-केटली गाहाउ-गाथा? एकशो ने एकसठ; ते गाथाउने विहिमग्गरया-श्री वीतराग नाषित विधिमार्ग एटले मोक्षमार्गनेविषे रत एटले तत्पर एवा जे नवा-नव्य जीव ते पढंतु-सूत्र थकी नणो, जाणंतु-अर्थ परिज्ञानेकरी जाणो; सूत्रार्थ बेहु सम्यक् प्र

कारे अन्यासीने सिवं–शिवप्रत्ये एटले निरुपद्रव मोक्षने जाउ–पामो. ए ग्रंथ न ण्याथी तथा ग्रंथनो सम्यक् प्रकारे अर्थ जाण्याथी निश्चल सम्यक्त्व थाय छे ; निश्च ल सम्यक्त्वथी क्षायिक ज्ञान चारित्र थाय. ते क्षायिक ज्ञान चारित्रेकरी अनुक्रमे वंछि त अर्थनी सिद्धि थाय. वली वंछित अर्थ छे ते नव्य जीवोने शिव प्राप्तिज जाणवी ; बीजो कोई वंछितार्थ नथी. तथा शिव शब्द ग्रंथना अंते अंगीकार कस्यो ते मंगल अ थवा कल्याणने अर्थे जाणवो. इति गाथार्थ ॥ १६१ ॥ इति श्रीषष्टी शतक समाप्त.

तपोरत्न श्री गुण सुंदर उपाध्यायकृत षष्टी शतकनी टीका ते श्रीशांति सागरजी महाराजजीनी समीपे श्रीराजनगरमध्ये श्री गुरु बुद्धिविजय महाराज जीनो उपासक जे यक्ष गोत्री उंसवाल मोहनलाल, तेणे सांजली धारी विचारीने ते नो किंचित् नावार्थ ग्रहण करीने षष्टी शतकनो अक्षरार्थ केवल नाषारूप बालाव बोध कस्यो ; तेमां श्री वीतरागनां वचनथी जे कांई अधिकुं उछुं विपरीत लखाणुं होय, कोई प्रकारनुं उत्सूत्र लखाई गयुं होय, तथा कोई कानामात्रादि र्हस्व दीर्घनो फरक पड्यो होय, तस्स मिच्छामि डुक्कडं एटले तेनुं जे पाप मने लाग्युं होय, ते मिथ्या फोकट थाउ. वली स्याद्वाद श्री जिनमत निपुण परोपकार स्वनाववाला पुरुषोए मुज अल्पमति उपर अनुग्रह करीने आ षष्टी शतकनो बालावबोध शोधी लेवो एज विनती छे. ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्री षष्टीशतक नामक ग्रंथ दो
हा तथा बालावबोध सहित समाप्त.

॥ श्री वीरपरमात्मायनमः ॥

सकलपंमित चक्रचक्रवर्त्तिपंमित श्रीक्षमाविजयगणि शिष्यमुख्यपंमित परवद मिनीजालतिलक पंमित श्रीजिनविजयगणि गुरुन्योनमः सिद्धि बुद्धि विधायिने श्रीमत् गौतम स्वामिनेनमः

अथ श्री पंमित उत्तम विजयजीकृत संयमश्रेणीनुंस्तवन
अर्थसहित प्रारंनियेछे.

श्रीवर्द्धमानंजिनंनत्वा ॥ वर्द्धमानगुणास्पदं ॥
स्वोपज्ञसंयमश्रेणी ॥ स्तवस्यार्थोवितन्यते ॥ १ ॥

॥ ढाल पहेली प्रथम गोवालातणेनवेजी एदेशी ॥

केवल ज्ञान दिवाकरूजी ॥ सिद्ध बुद्ध सुखदाय ॥ आतम संपद नोगवेजी ॥ वर्द्धमान जिनराय ॥ गुणोदधि शासन नायक वीर ॥ मेरू महिधर धीर ॥ गुणो० ॥ शास० ॥१॥ एआंकणी

अर्थ ॥ समस्त केवलज्ञानावरणी कर्मना क्षयथकी उपनुंजे केवलज्ञान तद्रूप सूर्यछे क्षायकनावें सकलगुण निष्पन्नसिद्धछे समस्त वस्तुस्वनावनुं बुद्धके० जाणछे उपकारीपणे सर्वसुखनुं दातारछे स्याद्वादपणे परिणमित अनंतगुण पर्यायरूप आत्मसंपदाने नोगवेछे एह्वो चोवीसमो तीर्थंकर सामान्य केवलीउंमां राजा सरिखो श्रीवर्द्धमानस्वामी गुणोनोसमुद्र गुणरूप रत्ननी उत्पत्तिनुं स्थानक वर्त्तमान शासननुं अधिपति श्रीवीरपरमेश्वरछे वली उपसर्ग परिसह आवेथके अमिगरह्या माटे मेरूनीपरे धीरछे ॥१॥ एटले वंदनात्मक स्तवनात्मक अने वस्तुनिर्देशात्मक ए त्रणप्रकारना नमस्कारछे तेमां स्तवनात्मक इष्टसमुचित नमस्कारकर्यो ॥ १ ॥

अनुक्रमिँ संयम फरसतोजी ॥ पाम्यो क्षायक नाव ॥
संयमश्रेणी फूलडेजी ॥ पूजुं पद निष्पाव ॥ गु० ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अनुक्रमें उत्तरोत्तर प्रधान संयमस्थानक फरसतोथको यदुक्तं दशाश्रुत स्कंधेः– 'तस्सणंजगवंतस्स अनुत्तरेणंनाणेणं अनुत्तरेणंदंसणेणं अनुत्तरेणंचरित्तेणं अनुत्तरेणंआलएणं अनुत्तरेणंविहारेणं अनुत्तरेणंवीरिएणं अनुत्तरेणंअज्जवेणं अनुत्तरेणंमद्दवेणं इत्यादिक मोहनीय कर्मनुं क्षयकरी उत्कृष्ट संयमस्थानरूप क्षीण मोह गुणस्थानक पाम्यो एहवो श्री वर्द्धमानस्वामी तेना पापरहित चरणकमल ने संयम श्रेणीरूप जावफूलेंकरीने पूजुंछुं० अर्चुंछुं एवंदनात्मक नमस्कार कर्यो॥ २

वाचक जशविजयें रच्योजी ॥ संखेपें सज्झाय ॥ विस्तरि
जिन गुण गावतांजी ॥ जीहा पावन थाय ॥ गु० ॥ ३ ॥

अर्थ ॥ प्रथम संयमश्रेणीनुं सज्झाय तिक्ष्णबुद्धिवालाने गम्यथाय एवुंन्यायवा दिओनेविषे मुकुटमणि समान उपाध्याय श्री जशोविजय गणियें रच्युंछे पण तेनी रचना शंक्षेपेकरीछे माटे विस्ताररुचीने अर्थे विस्तारें संयमस्थानक गर्भित जिनेश्वरना गुण गावतां जीन तथा जन्म पवित्रथाय उत्तमजीवने एवोज मनोर्थ होयछे यदुक्तं चिरसंचिय पावपणासणीए जवसयसहस्समहणीए चोवीसजिनवि णि गायकहा वोलंतुमेदीहा एटले मंगल अजिध्यादिककह्यां ॥ ३ ॥

बारकषाय खय उपशमेजी ॥ सरव विरति गुण ठाण ॥
तेना आदिम ठाणमांजी ॥ पर्यवनुं परिमाण ॥गु०॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे आद्यना बारकषायने क्षयोपशमें एटलेजे दलिक उदयआव्यां तेनुं क्षयकरें अनेजे उदय नथीआव्या तेने उपशमावे अने प्रदेशें उदयआव्याने वेदे एहवी अवस्थायें वर्त्ततायकां अविरति देशविरतिप्रमुख बारकषायने अजावें उपनुंजे सर्ववि रतिरूप छठो गुणस्थानक तेहना सर्वजघन्यमांजघन्य स्थानकमां एटले आदिमजे प्र थम स्थानक तेमां निर्विजाग जाग एटले जेना केवलीनी बुद्धियेंपण एकखंमना बे अंसनथाय एवाजे चारित्रनापर्याय अथवा अंस तेनुं प्रमाण जे संख्या तेकहेछे॥४॥

सरवाकाश प्रदेशथीजी ॥ अनँत गुणा अविजाग ॥
कहतकल्पना जाष्यमांजी ॥ जापे तुं महाँ जाग॥गु०॥५॥

अर्थ ॥ लोकालोकना आकाशप्रदेश जेटलामें अनंतेछे एटले अनंतानी गणना अनंत प्रकारनीछे तेमां लोकालोकना आकाशप्रदेशनी गणनानुं जे अनंतुंछे तेने अनंतगुणो करियें एटला अविजाग छगगुणस्थानकना सर्वथी जघन्यमां जघन्य

स्थानक जे पहेलुं स्थानक तेमांछे एरीतें बृहत्कल्पनाजाष्यमां हे महाजाग्य म हापूज्य तुं कहेछे यडुक्तं तेकत्तियापएसा सव्वागासस्समग्गणा होई, तेतत्तियापएसा अविनागतउ अनंतगुणा. ॥ १ ॥ इति ॥

एरीतें सर्वविरतिगुणस्थानना सर्वथी जघन्यमां जघन्य पहेला संयमस्थानमां एटला निर्विनागहोय ए निर्विनाग सर्वोत्कृष्ट विशुद्ध देशविरति गुणस्थानकना निर्विनागथी समस्त जीव जेटले अनंतेछे तेटले अनंते गुणता जेटला अनंताथा य तेटला जाणवा ग्रंथांतरे एमपण कह्युंछे जे उत्कृष्ट, देशविरति विशुद्धस्थानक ना अविनाग दशहजार असत्कल्पनायें कल्पियें पछी सर्वजीवतो अनंताछे तेनेप ण असत्कल्पनायें एकशत प्रमाणकल्पियें पछीते परस्पर दशहजारने सोगुणाकरि यें तेवारें दशलाखथाय एटला अविनाग सर्वविरतिना प्रथम संयमस्थानकमांछे.॥५॥

नाग अनंते आदिथीजी ॥ बीजे ठाणे वृद्धि ॥ इम
अनंत नागुत्तरेजी ॥ थानकनि होय सिद्धि ॥गु०॥६ ॥

अर्थ ॥ एपहेला संयमस्थानथकी बीजा संयमस्थानकमां अनंतमें नागें वृ द्धिहोय एटले पहेला संयमस्थानकमां जेटला अविनागछे ते जेटलाचउदराजलो कमां जीवछे ते सर्वजीवने सरखेनागें वहेंचीआपता एकजीवनेनागें जेटला संय मना अविनागआवे तेटला अविनागनी पहेला संयमस्थानना अविनागकरतां बीजा संयमस्थानमां वृद्धिथाय एवीरीते बीजा संयमस्थानथी वली त्रीजा संयम स्थानमां पण तेटलाज अविनागनी वृद्धिथाय तेम त्रीजाथी चोथामां यथोत्तर अनंतनाग वृद्धिथाय तेमज आगलपण संयमस्थाननी निष्पत्तिथाय हवे एमवृ द्धि करता करता सर्व केटला संयमस्थानकें एक कंमकथाय तेकहेछे. ॥ ६ ॥

अंगुल नाग असंखमांजी ॥ जे आकाश प्रदेश ॥ तेता
थानक नीपजेजी ॥ कंमक तास निवेश ॥ गु० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ एक अंगुलमात्र आकाशक्षेत्रना असंख्यातमां नागमां जेटला आकाश प्रदेश छे तेटला अनंतनाग वृद्धिना संयम स्थानक नीपजे के० नीपजावियें एटला संयमना स्थानकनो समुदाय तेने आगम परिनाषायें कंमकनी स्थापना कहियें यडुक्तंच कमंतिएछनम्मई अंगुलनागो असंखिज्जो. ॥ ७ ॥

बीजा कंडक गणमांजी ॥ आदि असंख्यांस जाण ॥
तदनंतरनंत नागनाजी ॥ थानक कंमक माण ॥ गु०॥८॥

अर्थ ॥ हवे पूर्वेजे अनंतनागवृद्धिना कंमकनुं स्वरूपबताव्युं ते अनंतनाग वृद्धिकंमकनी स्थापना ने अनंतर बीजो असंख्यातनाग वृद्धिना कंमकनी स्थापना थाय ते आवीरीते जे पूर्वे अनंतनागवृद्धि कंमकना चर्मस्थानकमां जेटला अविनागछे तेथकी आ बीजा कंमकना आदिस्थानकमां असंख्यातमें नागें वृद्धिजाणवी. एटले पहेला कंमकना चरमस्थानकमां जेटला अविनागछे ते असंख्याता लोकाकाश प्रदेशने वहेची आपतां एकप्रदेशने नागे जेटला अविनागआवे तेटला असंख्यातनागनाअंसनी बीजाकंमकना प्रथमस्थानकमां वृद्धिथाय तेने अनंतर वली अनंतनाग वृद्धिना स्थानक कंमक प्रमाणथाय ते केम असंख्यातनाग वृद्धिना प्रथमस्थानथी अनंतमो नागवधे एवुं प्रथम स्थानक तेनुं अनंतमोनाग वृद्धिरूप बीजुं स्थानक एम यथोत्तर कंमकप्रमाण होय एम आगलपण पाछला स्थानथी आगला स्थानमां नागवृद्धि तथा गुणवृद्धि पोतानी बुद्धेजाणवी.॥८॥

इम नंत नाग वृद्धिनेजी ॥ कंमक कंमक मध्य ॥ गण
असंख्यांस वृद्धिनाजी ॥ कंमक माने लद्ध ॥ गु० ॥ ए ॥

अर्थ ॥ एम अनंतनाग वृद्धिना कंमक प्रमाणस्थानक अने असंख्यातनाग वृद्धिनुं एकस्थानक एरीते अनंतनाग वृद्धि कंमक कंमकने विचालें असंख्यनागवृद्धिनुं एकेक स्थानक करतां असंख्यात नाग वृद्धिना स्थानक केटलाथाय ते कहेछे कंमकमानेलद्धके० कंमकप्रमाणेलाधा एटले एक कंमक प्रमाण थयां एटले षट्वृद्धिमांहे असंखनाग वृद्धिरूप बीजीवृद्धि पूरीथई ॥ ए ॥

ते आगेनंत नागनाजी ॥ थानक कंमक मात ॥ तदनंतर
संख्य नागनुंजी ॥ थानक एक विख्यात ॥ गु० ॥ १० ॥

अर्थ ॥ ते असंख्यनागवृद्धि कंमकना चरम स्थानकने आगेके० आगल अनंतर अनंतनाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्रथाय एटले कंमक प्रमाण करियें तेवारपछी संख्यातनागवृद्धिनुं एकस्थानक प्रसिद्धहोय एटले पूर्वेपाश्चातथयेला कंडकना चरमस्थानकमां जेटला अविनागछे.तेने उत्कृष्ट संख्यातपद लायें नागदेतां एकनेनागें जेटलाआवे तेटलावधे एम आगलपण स्वबुद्धे जाणीलेवुं ॥ १० ॥

ते ऊपर द्वय वृद्धिनाजी ॥ जेता ठाण अतीत ॥ ते कीधे
संख्यजागनुंजी ॥ बीज्युं ठाण पवित्त ॥ गु० ॥ ११ ॥

अर्थः—हवेते संख्यातजाग वृद्धिना प्रथम स्थानकने ऊपर द्वयके० बे वृद्धिना स्थानक जेटला अतिक्रम्याछे एटले पूर्वे अनंतजागवृद्धि अने असंख्यातजागवृद्धि एरीते एबेवृद्धिना जेटला स्थानक गयांछे ते सर्वने आ पहेला संख्यातजाग वृद्धि नामा स्थानकने आगळकरियें ते करवापठी संख्यातजागवृद्धिनुं बीजुं स्थानक पवित्र संयम परिणामरूप आवे ॥ ११ ॥

इम वृद्धि द्वय अंतरेजी ॥ कंमक माने इठ ॥ असंसस्‌
स्यातें वृद्धिनाजी ॥ थानकजिनवर पुठ ॥ गु० ॥ १२ ॥

अर्थ ॥ एजरीते आगळपण ते अनंतजागवृद्धि तथा असंख्यातजागवृद्धि ए द्वयके० बे बे वृद्धिना स्थानकने विचमां एकेक संख्यातजाग वृद्धिनुं स्थानक करता कंमक प्रमाणनीपजे हेईष्ट हे प्राणवल्लज ते संख्यातजाग वृद्धिना स्थानक हे जिनवीर हे वीतराग तुमे फरस्या. ॥ १२ ॥

वलि पूरव द्वय वृद्धिनाजी ॥ थानक सरव करेह ॥ आग
ल गुण संख्यातनुंजी ॥ थानक एक धरेह ॥गु०॥ १३ ॥

अर्थ ॥ संख्यातजागवृद्धि कंमकना चरमस्थानकने आगलें पूर्वली बे वृद्धिना जेटला स्थानकगयांछे तेटला सर्वस्थानक करवा एटले करियें तेने आगल संख्यातजागवृद्धिनुं कंमक पुरुंथयुं तेमाटे तेने ठेकाणे संख्यातगुणवृद्धिनुं एकसंयम स्थानकधरे एटले धरियें थापियें एटले पाछल अनंतजागवृद्धिनुं कंमक गयुंछे तेना चरम स्थानकमां जेटला अविजागछे तेने उत्कृष्ट संख्यात गुणाकरियें ते संख्यात गुणा करतां जेटला अविजागथाय तेटला अविजाग प्रथम संख्यातगुणवृद्धिना स्थानकमां वधे एरीते आगळपण स्वबुद्धे जाणवुं. ॥ १३ ॥

इम त्रिक वृद्धिने अंतरेजी ॥ गुण संख्यातना ठाण॥कंम
क माने नीपजेजी॥ जाणे तुं वर नाण ॥ गु० ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एम त्रिकवृद्धिने विचालें एटले पूर्वेजे अनंतजागवृद्धि असंख्यातजागवृद्धि संख्यातजागवृद्धि ए त्रण त्रण वृद्धिना सर्व स्थानकने विचालें एक एक संख्यातगुणनुं स्थानक करियें एम करता संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक कंमक

प्रमाण नीपजे एटले षट्वृद्धि मांहे चोथी संख्यातगुणवृद्धि पूरीथई संयम स्थानक चारित्र परिणामरूप होवाने लीधे अरूपीछे तेमाटे हे सर्वज्ञ ते सर्वेतुं जाणोछे.

पुनरपि त्रिक वृद्धी तणाजी ॥ पूरी थानक सर्व॥असंख्या
त गुण वृद्धिनुंजी ॥ थानक एक अगर्व ॥ गु० ॥ १५ ॥

अर्थः– संख्यातगुण वृद्धिकंमकना चरमास्थानकथी आगल वली त्रणवृद्धिना एटले अनंतनागवृद्धि असंख्यातनागवृद्धि अने संख्यातनागवृद्धि ए त्रणवृद्धिना स्थानक जेटला पूर्वे गयांछे ते सर्व संयमस्थानक पूरीने नीपजावीने ते पछी असंख्यातगुण वृद्धिनुं एक संयमस्थानक आवे माटे हे अगर्व पाश्चात एटले पूर्वे थयला अनंतर कंमक ना चरम संयमस्थानकमां जेटला अविनागछे तेने असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाणे गुणाकार करतां जेटला अविनागथाय तेटला अविनाग प्रथम असंख्यगुण वृद्धिना स्थानकमां वधे ॥ १५ ॥

चउरंतर चउरंतरेंजी ॥ थानक कंमक मेय ॥ असंख्यात
गुण वृद्धिनाजी ॥ पंमित वीर्य वरेय ॥ गु० ॥ १६ ॥

अर्थ ॥ तेवारपछी वली आगलपण चार चार वृद्धिने विचालें एकेक असंख्यातगुण वृद्धिनुं संयम स्थानक नीपजे एम नीपजावतां कंमक मात्र थाय ए असंख्यात गुणवृद्धिना संयम स्थानक एटले असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानक पछी अनंतनागवृद्धि असंख्यनागवृद्धि संख्यातनागवृद्धि संख्यात गणवृद्धि एवां चार वृद्धिना स्थानक कयापछी असंख्यगुणवृद्धिनुं बीजुं स्थानक आवे एरीते चार चार वृद्धिने विचालें एकेंक असंख्यातगुण वृद्धिनुं स्थानक करतां कंमकमा त्र थाय एटले षट वृद्धिमांहे असंख्यगुण वृद्धिरूप पांचमी वृद्धि पूरीथइ ए सर्व संयमस्थानकरूप आत्मगुण ते हे वीर हे परमेश्वर तुमें पंमित वीर्येंकरीने वस्या पाम्या माटे तुमे वंद्य पूज्य स्तुत्यछो तमारी स्तवना करतां एवां गुण पामियें॥१६

उपर वली चउ वृद्धिनाजी ॥ फरसे थानक सार ॥ तद
नंतरनंत गुणनुंजी॥ थानक एक उदार ॥ गु० ॥ १७ ॥

अर्थः– हवेते असंख्यगुणवृद्धि कंमकना चरम स्थानकने उपर वली चारवृद्धिना स्थानक एटले अनंतनागवृद्धि तथा असंख्यनागवृद्धि अने संख्यातनागवृद्धि तथा संख्यातगुणवृद्धि ए चार वृद्धिना सर्व स्थानक फरसे हे सार हे जगत उत्कृष्ठ प्रज्ञु तेवार पछी वली आंतरारहित अनंतगुणवृद्धिनुं एक प्रथम स्थानक

महोटुं आवे एटले पाश्चात्य जे (पूर्वेथयला) अनंतर संयम स्थानकमां जेटला अ विभागछे ते सर्व जीवोनी संख्यारूपजे अनंतोछे ते अनंता साथे अनंतगुणकरतां जेटला अविभागथाय तेटला अविभाग अनंतगुणवृद्धिना प्रथम स्थानकमां वधे.

पंच पंच वुद्धी विचेंजी ॥ ठाण एक इक जोय ॥ इम
अनंत गुण वुद्धिनाजी॥ कंडक माने होय ॥ गु० ॥१८॥

अर्थः-- अनंतगुणवृद्धिना प्रथम स्थानक पछी अनंतर अनंतभागवृद्धि असंख्य भागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यातगुणवृद्धि एवां पांच वृद्धि रूप समस्त संयम स्थानक उपजे तेवारपछी एक अनंतगुणवृद्धिनुं बीजु संयम स्थानक आवे एरीते पांच पांच वृद्धिने विचमां एक एक अनंतगुणवृद्धिनुं स्थानक नीपजे ते ज्ञान दृष्टियें जुउ एम करतां अनंतगुणवृद्धिना संयमस्थानक केटलाथाय ते कहे छे कंडक प्रमाणेहोय एटले अंगुलना असंख्यातमां भागमां जेटला आकाश प्रदेशछे तेनाजेटला अनंतगुण वृद्धिना संयम स्थानक थाय ते कंडक थयुं ॥१८

उपर वली पंच वृद्धिनाजी ॥ फरसे संयम ठाण ॥ प्रव
चन अनुसारें कह्युंजी ॥ षट थानक परिमाण ॥ गु० ॥ १९ ॥

अर्थः– हवे अनंतगुणवृद्धिना चरम स्थानकने उपर वली मूलथकी पांचे वृद्धिना सर्व संयमस्थानक फरसे पण पांचवृद्धि पूरी कर्यापछी प्रसंगे आव्युंजे अनंतगुणवृद्धिनुं स्थानक ते न करवुं केमके षट स्थानक पूरुथयुं तेमाटे, एरीते षट स्थानकना परिमाणनी परुपणा ते प्रवचनअनुसारेके० कल्पभाष्य तथा प्रवचन सारोद्धारनी टीकाने अनुसारे कही॥ १९॥

असंख्य लोकाकाशनाजी ॥ प्रदेश ने परिमाण ॥ इक षट
थानक ऊपरेंजी ॥ ऊठे वलि षट ठाण ॥ गु० ॥ २० ॥

अर्थः– चऊदराज प्रमाण एक लोकाकाशछे एहवा असंख्याता लोकाकाश अलोकमां कल्पीयें तेना जेटला आकाश प्रदेशनुं समूहथाय तेटला प्रदेशने प्रमाणे एक प्रथमनुं मूल षट स्थानक ने ऊपर ऊपर वली बीजा षट स्थानिक ऊपजे एटले असंख्यातिवार ऊपरा ऊपर षट स्थानकथाय ऊक्कंच छठाणग अवसाणे, अन्नं छठाणयं पुनो अन्नं; एव मसंखा लोगा, छठाणाणं मुणेयव्वा ॥ १ ॥ ॥ २०॥

ए संयम गुण ठाणमांजी ॥ जे वरते मुनि सोय ॥ वंद्य
अपर भजना पणेंजी॥ भाष्यकल्पमां जोय॥गु०॥ २१ ॥

८२

अर्थ ॥ ए संयमके० चारित्र गुणस्थानकमां एटले बठागुणगणाना आद्यना स्थानकथी मांमीने यथाख्यात चारित्ररूप चरम स्थानकपर्यंत तेमांजे मुनिराज वर्त्तेढे ते मुनि वांदवायोग्यढे पण वेशमात्रने वांदवानुं प्रयोजननथी ऊक्तंच वे सोवि अप्पमाणो, असंजमपएसु वट्टमाणस्स ॥ किंपरि अत्तियवेसं, विसं न मा रेइ खज्जंतं ॥१॥ इति माटे अपरके० बीजा जे संयमश्रेणीथी बाह्य ते ऊजनायें वंदनीक एटले कारणे वांदवायोग्य पण कारणविना वांदवायोग्यनही ए अर्थ बृहत्क ल्पजाष्यमां जोईलेवुं ऊक्तंच संयम गण ठियाणं, किइकम्मं बाहिराणजइ यवं ॥ २१ ॥

इहां षटस्थानकना नामकहेढे १अनंतजागवृद्धि २ असंख्यजागवृद्धि ३ संख्या तजागवृद्धि ४ संख्यातगुणवृद्धि ५ असंख्यातगुणवृद्धि ६ अनंतगुणवृद्धि एमां जाग तथा गुण वृद्धिकही ते केवी संख्याये ढे ते जाणवाने आगमनी गाथाकहे ढेः— सव्व जिएहिं अनंतं, जागंच गुणं असंख लोगेहिं ॥ जाणअसंखं संखं, संखि ञ्जेणं च जिठेणं ॥ १ ॥ एनोअर्थः— एषटवृद्धिरूप षट स्थानकनेविषे जे अनंत जागनुं स्थानक तथा अनंतगुणनुं स्थानक ए बे स्थानकनी संख्या ते सर्वे चऊद राजलोकमां जेटला जीवनी संख्याढे ते संख्याये जागतथा गुणनीवृद्धि करवी अने असंख्यजागवृद्धि तथा असंख्यगुणवृद्धि ए बे स्थानक ते असंख्यात लोकाकाश प्रदेश नी जेटली संख्याढे ते संख्यायें जाग तथा गुणनीवृद्धिकरवी अने संख्यात जागवृद्धि तथा संख्यातगुणवृद्धि ए बे स्थानक ते उत्कृष्ट संख्यातानी जेटली सं ख्याढे तेटली संख्यायें जाग तथा गुणनी वृद्धिकरवी इतिजाव.

तथा जे संयमस्थानक अनंतजागवृद्धिने पामे ते पाढला संयमस्थानकना जे टला अविजाग होय तेने समस्त जीवोनी जेटली संख्याढे ते संख्यायें जाग आप तां जेटला अविजाग आवे तावत्प्रमाण अनंतजागे अधिक जाणवुं अने जे सं यमस्थानक असंख्यातजाग वृद्धिनेपामे ते पाढला संयमस्थानकना निर्विजाग जा ग जेटलाहोय तेने असंख्य लोकाकाश प्रदेशप्रमाणे जाग आपतां जेटला अविजाग लाजे तावत् प्रमाण असंख्येयजागें अधिकजाणवुं तथा जे संयमस्था नक संख्यातजाग वृद्धिने पामे ते पाढला संयमस्थानकना जेटला अविजागहोय तेने ऊत्कृष्ट संख्यातायें जाग हरता जे अविजाग लाजे तेटला संख्यातजागें अ धिक जाणवुं वली जे संयम स्थानक संख्यातगुण वृद्धिनेपामे ते पाढला संयम स्थानक ना जे निर्विजागजागढे तेने ऊत्कृष्ट संख्यातगुणनी रासियेंगुणता जे अ विजागथाय तावत्प्रमाण संख्यातगुणे अधिक जाणवुं तथा जे संयमस्थानक असं

ख्यात गुणवृद्धिने पामे ते पाछला संयमस्थानना जे अविजागछे तेने असं ख्यात लोकाकाशनाजे प्रदेशछे तद्गुणित करियें तावत् प्रमाण असंख्यातगुणो अ धिक जाणवुं तथा जे संयमस्थानक अनंतगुणवृद्धिने पामेछे ते पाछला संयम स्थानकना जेटला अविजागछे तेने समस्तजीवोनी अनंति संख्यायें गुणतां जेटला अविजाग थाय तावत्प्रमाण अनंतगुणो अधिक जाणवुं. इतिज्ञेयं. ॥ २१ ॥

पट थानक संयम तणाजी ॥ कहेतां स्तवतां वीर ॥ क्ष
माविजय जिन नक्तिथीजी॥ उत्तम लहे नव तीर ॥ गु० ॥२२॥

अर्थ ॥ ए संयमना षटस्थानक कहेतां थकां तथा संयमश्रेणे गर्जित वीर प रमेश्वरने स्तवतां तथा वली क्षमागुणे करीने मोहनुं जेणे विजय कर्योछे, अणुत्तरा ए खंतिए इतिवचनात् एहवा जिनके० वीतराग जे श्रीवीरस्वामि तेनी नक्तिथी उत्तमजीव होय ते नवके० संसारसमुद्रनो पारपामे सिद्धपरमेश्वरथाय एटले पं मित श्री क्षमाविजयगणि तत्शिष्य पंमितश्री जिनविजयगणि तेमनी नक्तिथी मु नि उत्तमविजयजी संसारनो पारपामे एमपण जाणवुं ॥ २२ ॥

अवतरणः– पूर्वोक्त संयमस्थानक समजवाने सुगमथाय तेमाटे श्री वीरप्रभु नी स्तवनाकरतां यंत्रनो बीजोढालकहेछे इति संबंध ॥

ढाल बीजो सुरतीमहीनानीदेशी.

वस्तु स्वनाव प्रकाशक नाशित लोगालोग ॥ वीर जगत
गुरु नोगवे रत्नत्रयीनो नोग ॥ संयमना पट थानिक सूक्ष्म
बुद्धि गम्य ॥ स्व पर विबोधन हेतें थापुं यंत्र सुरम्य ॥ १ ॥

अर्थः– सदसदादिक अनंतधर्मात्मक वस्तुस्वनाव तेनुं प्रकाशक तथा केवल ज्ञानरूप आरसीमां जेने लोकालोकनुं स्वरूप नास्योछे एहवो श्रीवीरपरमेश्वर त्र णजगत्नो गुरु नावरत्नत्रयीनो आस्वाद अनुनवेछे सम्यक्ज्ञान यथार्थविबोध स म्यक्दर्शनं तत्वप्रतीति सम्यक्चारित्रं निजस्वरूप रमण स्थिरतारूप इति रत्नत्रयी स्वरूपं संयमनी षटवृद्धिना स्थानक तीक्ष्ण बुद्धियें गम्यछे तेमाटे पोताने तथा परने समजवाने अर्थें असत्कल्पनायें मनोहर यंत्रथापुंछुं तिहां अनंत नागवृद्धि ने स्थानके मींडुं अने असंख्यातनागवृद्धि स्थानके एकडा संख्यातनागवृद्धि स्था नके बगडा संख्यातगुणवृद्धि स्थानकें त्रगडा असंख्यातगुण वृद्धिस्थानके चोगडा

अनंतगुण वृद्धिस्थानके पांचडा एम असत्कल्पनायें चारमींडायें अनंतजागवृद्धि कंडक चार एकडे असंख्यजागवृद्धि कंडक इत्यादिक संज्ञा जाणवी ॥ १ ॥

जाग अनंतह वृद्धिना ठाणछे कंडक सार ॥ छे यद्यपि ते अ
संख्य ठवुं तस बिंडु चार ॥ असंख्य जाग वृद्धिनुं थानक आ
गल एक ॥ तस ठामें ठवुं एको मन धरी अतिहि विवेक ॥ २ ॥

अर्थ ॥ अनंतजागवृद्धिना स्थानक जलां कंडकमात्र अंगुल असंख्यजागगत आकाश प्रदेश प्रमाणछे एरीते जोपण ते अनंतजाग वृद्धिना स्थानक असंख्याताछे तोपण असत्कल्पनायें तेना चारबिंडु स्थापुंछुं एटले अनंतजागवृद्धिनुं कंडक पुरुंथयुं तेथी आगल असंख्यातजागवृद्धिनुं स्थानक एक आवे तेने ठेकाणे मनमां अत्यंत विवेक धरीने एकडो थापुंछुं ते पूर्वोक्त स्थानकथी जिन्न पाडवा निमित्तें थापुंछुं एम सर्वत्रजाणवुं ॥ २ ॥

चउ चउ बिंडु अंतर इम होय एकाचार ॥ तदनंतर चउ बिंडु
सघलां वीस उदार ॥ आगल जाग संख्यातह वृद्धिनो बीउ
जाण ॥ इम चउ बिया ठवतां मींमां शत परिमाण ॥ ३ ॥
चउ बीआ वीस एका मींमा शत समुदाय॥जागनी वृद्धि मांह
थयां हवे गुण वृद्धि कहाय ॥ संख्यात गुणनी वृद्धिमां तीउ
आदि उदार ॥ इम सवि मींमा अंका विच ठवि तिआ चार ॥४॥

अर्थ ॥ वली आगल अनंतजाग वृद्धिना एक कंडक जेटला स्थानक थाय तेने ठेकाणे चारबिंडु थापीयें आगल असंख्यजाग वृद्धिनुं एक स्थानकछे तेमाटे वली एकडो थापीयें एरीतें चारचार बिंडुने आंतरे जेवारें चार एकडाथाय एटले असंख्य जाग वृद्धिनुं कंडक पुरुंथयुं तेवारपछी आंतरा रहीत छेडानुं अनंत जागवृद्धिनुं कंडक आवे तेने ठेकाणे चारबिंडुथापीयें एटले सघला सरवाले चार एकडाने वीस मिंडाथया ते पछी आगल संख्यातजाग वृद्धिनुं स्थानक एक आवे तेने ठामे बगडानी थापना जाणीये एरीतें चार एकडा गर्जित वीसबिंडु अनंतर संख्यातजाग वृद्धिनुं एक एक बगडो आणतां जेवारें चार बगडाआवे तेवारें संख्यातजागवृद्धिनुं कंडक पुरुंथाय तेवारपछी वली छेडे चार एकडा गर्जित वीस मींडाआवे एम संख्यातजाग वृद्धिपर्यंत सर्व समुदायें मींडा (१००) एकडा (२०) बगडा (४)

एतावता संख्यात नागवृद्धिनुं कंमक एक असंख्यातनागवृद्धिना कंमक पांच अ नंतनागवृद्धिना कंमक पचवीस एटला स्थानक असत्कल्पनायें नाग वृद्धिमांथया हवे गुणवृद्धिमांहे जे स्थानकथाय ते कहेछे. हवे आगल संख्यातगुण वृद्धिनुं ए क स्थानकआवे तेने ठेकाणे एक त्रगडो थापीयें एटले संख्यातगुण वृद्धिमां प्रथम उत्तमस्थानकनो त्रगडोजाणवो एरीते वली पण पूर्वेला चार बगडा वीस एकडा गर्जित शतमिंमा थापीने तेने अनंतर बीजो त्रगडोआवे एरीतें जेवारे चार त्रगडा थाय तेवारें ते चार त्रगडे संख्यातगुण वृद्धिरूप कंमक पुरुंथयुं चोथा त्रगडाने अनंतर वली चार बगडा वीस एकडा अने शत मींडा थापीयें ॥ ३ ॥ ४ ॥

वीस बीआ शत एका पण सय बिंडु मान ॥ असंख्यात गुण
वृद्धिनो चोको धुरि मंमाण ॥ इम चउ चोका आणतां तिक वीस
बिक शत जोय ॥ पण सय एकडा मींडा पंचवीससें होय ॥ ५ ॥

अर्थ ॥ इहां संख्यातगुण वृद्धिपर्यंत सर्वमली त्रगडा चार बगडा वीस अने एक डा शो तथा पांचसें मींमा एटले संख्यातगुण वृद्धिनुं कंमक एक अने संख्यात नाग वृद्धिना कंमक पांच असंख्यातनाग वृद्धिना कंमक पचीस अनंतनाग वृद्धि ना कंमक एकसो ने पचीस थाय तेवार पछी असंख्यातगुण वृद्धिरूप प्रथम स्थान कनो चोगडो मांमीयें फरी चार त्रगडा वीस बगडा एकसो एकडा सहीत पांचसो मीं मा गयेथके वली बीजो चोगडो मांमीयें ए परीपाटीयें जेवारे चार चोगडाथाय एटले असंख्यात गुण वृद्धिनुं कंमक पुरुंथयुं वली चोथा चोगडाने अनंतर चार त्रगमा वीस बगडा एकसो एकडा अने पाचसें मींमा थापीयें तो सर्वमली चार चोगडा वीस त्रगमा एकसो बगडा पांचसें एकडा पचीसोमींमा थाय एटले असंख्यात गु णवृद्धिनुं कंमक एक संख्यात गुणवृद्धिना कंमक पांच संख्यात नागवृद्धिना कंम क पचीस असंख्यात नागवृद्धिना कंमक एकसोपचीस तथा अनंतनागवृद्धिना कंमक बसोने पचीस थया ॥ ५ ॥

हवे अनंत गुण वृद्धि पदे ठवि पंचक चंग ॥ पुनरपि पूरव रीतें
मींडां अंक सुरंग ॥ तिवार पछी पंचक इम पंचक चउ जब
थाय ॥ आगें पण पंचवीससें मींमां अंक कराय ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ हवे अनंतगुण वृद्धिपदेके० अनंतगुण वृद्धिरूप प्रथम स्थानकने ठे काणे एक पांचमोथापीये पुनरपि पूर्वलीरीतें चार चोगमा वीस त्रगमा एकसो बग

डा पांचसो एकमा गर्जित पचवीससो मींम्माथापीयें तेवारपछी बीजो पांचडो था पीयें एरीते अनुक्रमे जेवारें चार पांचडा थपाय तेवारें अनंतगुण वृद्धिरूप कंम्मक पुरुंथाय वली आगलपण चोथा पांचडाने अनंतर चारचोगडा वीसत्रगमा एकसो बगमा पांचसो एकडायें युक्त पंचवीससो मींम्मांकरीयें एटले एक षटस्थानक पुरुंथयुं.

पांचडा चोगडा त्रगडा बगडा एकडा बिंदु॥ षट थानकनां
यंत्रनी संख्या कहे जिनचंद ॥ चउ वीस सय पणसय पंच
वीस सय सार ॥ अंका मींडा गणनां साढा बारहजार ॥ ७ ॥

अर्थः- हवे षटस्थानक मध्ये आंक तथा मिंम्मानी संख्याआवी ते पश्चानुं पूर्वियें कहियेंछे पांचडा चोगडा त्रगडा बगडा एकडा तथा बिंदु तेना समुदायरूप षटस्थानकना यंत्रनी संख्या ते श्री जिनचंद्रके० रूषजादिके कही तेरीते हे वीर परमेश्वर तमे फरसी ते आवीरीते चारपांचडा वीसचोगडा एकसोत्रगडा पांचसो बगडा पचवीसो एकडा अने साढाबारहजारमिंम्मा सरवालेथाय एटले अनंतगुण वृद्धिनुं कंम्मक एक असंख्यातगुण वृद्धिना कंम्मकपांच संख्यातगुण वृद्धिना कंम्मक पंचवीस संख्यातजाग वृद्धिना कंम्मक एकसोपंचवीस असंख्यातजाग वृद्धिना कंम्मक छसोनेपंचवीस अने अनंतजागवृद्धिना कंम्मक त्रणहजार एकसोने पंचवीस ए सर्वमली (३९०६) कंम्मक थयां ए सर्वयंत्रप्रमाणे असत्कल्पनायें लख्युंछे पण परमार्थरीते तो आगला ढालमां कहीसुं ॥ ७ ॥

संयम श्रेणिमां श्रेणि क्षपक लहि सुक्क ध्यान ॥ घाती करमनो
क्षयकरी पाम्यो पंचम ज्ञान ॥ प्रवचनसारनी वृत्तिमां यंत्रनी
ठवणा दीठ ॥ क्षमाविजय जिन वयणथी उत्तम चित्त पविठ ॥८॥

अर्थः-संयमश्रेणी आरोहतां अनुक्रमे क्षपकश्रेणीमां सुक्कध्यान पामीने घातियां चारकर्म क्षयकरतां यथाख्यात चारित्र केवलज्ञान केवलदर्शनरूप रत्नत्रयी पाम्या तदनुक्रमो यथा अप्रमत्तगुणठाणे अनंतानुबंधीनी चोकडी दर्शनमोह त्रिक एवं सातप्रकृति क्षयकरी अपूर्वकरण अनिवृत्ति गुणठाणे चढ्या तिहां अनिवृति ना प्रथमजागने अंते सोलप्रकृति खपावे तन्नाम थावरतिरिनिरयाएव दुगथीणति गेगविगलसाहरंति इति वली बीजाजागने अंते अप्रत्याख्यानी चोकडी तथा प्रत्याख्यानी चोकडी एवं आठप्रकृति खपावे त्रीजेजागे नपुंसकवेद खपावे चोथे जागें स्त्रीवेद खपावे पांचमेंजागे हास्यछक्क खपावे छठ्ठेजागें पुरुषवेद खपावे सात

मेंनागें संज्वलननुं क्रोधखपावे आठमेंनागें संज्वलनमानुमान खपावे अने नवमेंनागें संज्वलननी माया खपावे एरीते नवमें गुणठाणे बीजापायाथी वीसप्रकृति खपावे पछी दशमेगुणठाणे संज्वलननुं लोभ खपावतो शुक्लध्याननुं प्रथक्त्व वितर्क सविचाररूप प्रथमपाद तद्रूप अनलेकरी सकल मोहनीय जस्म शांतकरे पछी क्षीणमोह गुणठाणे चढे क्षायक चारित्रवंतथाय तिहां एकत्व वितर्क अविचाररूप शुक्लध्याननुं बीजोपाद अनुजवी द्विचरम समय निद्राद्विकखपावी चरमसमये ज्ञानावरणीपांच दर्शनावरणीचार अंतरायपांच एवं चउदप्रकृति ने क्षये अनंत चतुष्टी विभूषित सिद्धवधु योग्यथाय इतिश्री सिद्धसेनदिवाकर कृत प्रवचनसारोद्धारनी वृतिमां षटस्थानकना यंत्रनीस्थापनादीठी ते क्षमायें उपलक्षित जे दशविधधर्म तेणेकरी विशेषे जयवंता एवां जिनके० श्रुतकेवली अवधिजिन मनपर्यवजिन जे सुधर्मा स्वामी तेना वयणके० वर्त्तमान आगम तेथी उत्तम साधु साध्वीउने फरसनरूपे तथा उत्तम श्रावक श्राविकाने श्रद्धा मनोरथ रूपें संयमश्रेणी चित्तमांपेठी एटले पंडितश्री क्षमाविजयगणि शिष्यरत्न पंडितश्री जिनविजयगणि ना वचनथी मुनि उत्तमविजयना चित्तमां यंत्रनीस्थापना पेठी एटले स्थिरपणेरही इति ए पण सोचवुं

अवतरणः— प्रथमढाले षटस्थानक परूपणाकीधी बीजाढालें तेनायंत्रनी स्थापनाकरतां स्थूलबुद्धिनेपण सुखेसमजाय तेमकह्युं हवे एकांतरादिक मार्गणायें कोईपूछे तेने सुखे कहीसकियें तेरीते वीरप्रभुनी स्तवनाकरतां अधस्तन स्थान परूपणानो ढाल कहियेंछे इति संबंध जाणवो ॥

ढाल त्रीजो एकवीसानी देशीनो.

आतम रामीरे, शिव विसरामी नित्यनमु ॥ प्रभुजी स्तवतांरे
पाप पोताना निगमु ॥ षटथानिकरे जे अह ठाण परूपणा॥
सुणो सयणारे वयणा कल्पनी जाष्यना ॥ १ ॥ त्रूटकः— आ
दि असंख अंस वृद्धिथी कह्यो ॥ जाग अनंत अंस केटलां॥
हेठथानिक एम पूछत ॥ कइयें कंम्क जेतलां ॥ जाग संख्या
तह गुण संख्यातें ॥ असंख अनंतह गुण वली ॥ तस प्रथ
मथी कहे अध अनंतर ॥ कंम्क माने केवली ॥२॥ इत्यनंतरमार्गणा

अर्थ ॥ शुद्ध निर्मल निकलंक आत्मस्वजाव रमणशील निरुपद्रव्यस्थान क्षेत्रथी उर्ध्व लोकाग्रजावथी निरावरणावस्था तेनेविषे विसरामी एवां श्री वीरप्रभुने नित्य

सदा नमस्कारकरुं ए प्रभुने स्तवतां अनेकनवोपार्जित पोतानाकर्यां खीरनीरनी परे अनेदरह्यां जे पापकर्म तेने निगमु के० गमावुं प्रनोनेमस्कार स्तुतिफल मेतदेव संयम षट स्थानकनेविषे जे अनंतर एकांतरादिक अहगण परू पणाछेतेहे सम्यक्दृष्टी उत्तमसज्जनो तमे सांनलो ए वचन श्रीबृहत्कल्पना नाष्यनाछे. ॥ १ ॥

हे उत्तमजीवो तमे कहोके असंख्यात नागवृद्धिना प्रथम संयम स्थानकथी अनंतनाग वृद्धिना हेठला संयमस्थानक केटलांगयां एम कोई पूछे तेने उत्तर जे अनंतनाग वृद्धिना हेठलास्थानक एक कंमक जेटला गयांछे केमके अनंतनागवृद्धि कंमकपूरुंथयुं तेने अनंतरेंज असंख्यनाग वृद्धिनुं प्रथम स्थानक थयुंछे तेमाटेज एम केवुं. तेमज संख्यातनाग वृद्धिना प्रथम संयम स्थानकथी असंख्यनाग वृद्धिना हेठला संयम स्थानक केटलागयां तथा संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानथी संख्यातनागवृद्धिना हेठला स्थानक तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी संख्यातगुण वृद्धिना हेठला स्थानक वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठला असंख्यातगुण वृद्धिना स्थानक केटला गयां ए रीते कोइ पूछे तेवारे सर्वत्र हेठलना आंतरा रहीत मार्गणायें कंमक प्रमाणे संयम स्थानक केवलीकहे य दुक्तं पंचसंग्रहे सव्वासिं वुढ्ढिणं कंमक मेता अनंतरा वुढ्ढि ॥ इत्यनंतरमार्गणा. ॥ २ ॥

एकांतररे मार्गणा सुणो सवि संतरे॥ नाग संख्यातेंरे मूल था नकथी तंतरे ॥ हेठे थानिकरे नाग अनंतना नापीयें॥ एककं मकरे कंमक वर्गते दापीयें ॥ ३ ॥ त्रूटक ॥ दापीयें गुण संख्या तथी वली ॥ असंख अनंत गुणथी तथा ॥ पढम ठाणथी एक अंतर ॥ कंमक वर्ग कंमक यथा॥ इति एकांतर मार्गणा ॥ एक अंतर मार्गणा कही ॥ सुणो द्यंतर मार्गणा ॥ संख्यात गुण थी हेठथानक अनंत नागना सुनमना ॥ ४ ॥

अर्थ ॥ हवे एकांतर मार्गणा कहेछे ते हे सर्व संतजनो उत्तम पुरुषो तमे सांनलो के एकांतरमार्गणाते सुं जे एकवृद्धि विचमां पडतीमूकीने पृछाकरवी ते एकांतर मार्गणा कहेवाय ते आवीरीते जे संख्यातनाग वृद्धिना मूलके० प्रथम स्थानकथी हेठल असंख्यातनाग वृद्धिनाजे स्थानकगयां तेनी पृछानकरवी अने तेने हेठल वलीजे अनंतनाग वृद्धिना स्थानकगयांछे ते पूछवा एम कोईक एकांतरे पूछे ते

वारे एम कहियें जे एक कंमक अने कंमकवर्ग प्रमाण. जेमां हेठल असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्र गयांछे तेमां एकेका असंख्यातजाग वृद्धि स्थानकने हेठल एकेक अनंतजाग वृद्धिनुं कंमकगयुंछे अने असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक कंमकमात्रछे माटे कंमक कंमक साथें गुणाकार करियें एटले कंमक वर्ग थाय तद्गुणोवर्ग इतिवचनात् अने असंख्यजाग वृद्धि उपरे अनंतजाग वृद्धिनुं एक कंमकथयुंछे तेमाटे एकतो कंमकवर्ग अने तेना उपर वली एक कंमकप्रमाण एटला अनंतजाग वृद्धिना स्थानक गयांछे एम कहेवुं. ॥ ३ ॥

तेमज वली संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठे संख्यातजाग वृद्धिना स्थानकगयां तेमूकीने असंख्यातजाग वृद्धिना स्थानक पूछवा तथा असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठल संख्यातगुणवृद्धिना स्थानक गयां ते मूकीने संख्यातजाग वृद्धिना स्थानक पूछवा तेमज वली अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठल असंख्यातगुण वृद्धिनाजे स्थानकगयां ते पडतामूकीने संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक एकांतर मार्गणायें केटला पामीयें एमकोई पूछे तेने एवुं उत्तर आपियें जे कंमकवर्ग अने उपर एक कंमक जेम पूर्वें कह्याछे तेम कहेवा इति एकांतर मार्गणा यडुक्तं पंचसंग्रहे एगंतराउवुड्ढी ॥ वग्गो कंमस्सकंमंच इति एरीते एकांतर मार्गणाकही हवे द्यंतर मार्गणा सांजलो जे बे वृद्धि वचमां मूकीने पूछीयें ते द्यंतर मार्गणा कहियें ते आवीरीतें के संख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थान कथी अनंतजाग वृद्धिना स्थानक केटला गयां एमपूछवाथी हे शुजमना तेकहियेछे. ॥४॥

कंडक घनरे, कंडक वर्ग दु,गुणो करो ॥ एक कंमकरे तस संख्या मनमां धरो ॥ दुग अंतररे असंख्य अनंत गुणथी लह्यां ॥ अध स्थानकरे पूरव परें जाणो कह्यां ॥ ५ ॥ इति द्विकांतरमार्गणा त्रूटकः- त्रिकें अंतर कोई पूछे ॥ आदि असंख्य गुण वृद्धिथी ॥ हेठें जाग अनंत केरां ॥ ठाण कहो गुरु वयणथी ॥ कंढक वर्गनुं वर्ग कीजे ॥ कंडक घन त्रिक उपरें ॥ कंडक वर्ग त्रिक एक कंडक ॥ होए ते मनमां धरे ॥ ६ ॥

अर्थ ॥ कंमक घन एक अने कंमक वर्ग बे तथा ते उपर एक कंमक एटला स्थानक पामीयें ए सर्व जेला करतां केटली संख्याथाय ते मनमां धरोके० धारणा

करो तेज विवरीने कहेछे इहां पहेलांतो संख्यातगुण वृद्धिना प्रथमस्थानकथी हेठ ला संख्यातभाग वृद्धिना एकेक स्थानकने हेठल प्रत्येकें एकेक कंमकाधिक कंमकवर्ग एटले एक कंमकवर्ग अने एक कंमक ते अनंतभाग वृद्धिना स्थानकनुं पामियें.

अने संख्यातभाग वृद्धि स्थानक कंमक प्रमाणछे माटे कंमकवर्ग जेवारें एक कंमक साथें गुणियें तेवारें कंमक घनथाय अने एक कंमकछे ते कंमक साथें गु णियें तेवारें कंमकवर्ग थाय अने संख्यातभाग वृद्धि स्थानकने हेठलें कंमकवर्ग अने एक कंमक पामियें ए सर्व भेला करतां सूत्रोक्त प्रमाणथाय.

एरीते आगलपण डुगअंतर मार्गणायें असंख्यातगुण वृद्धिना प्रथम स्थानक थी तथा अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी यथाक्रमे हेठली असंख्यातभाग वृ द्धिना तथा संख्यातभाग वृद्धिना संयम स्थानक पूर्वे जेम कह्यांछे तेमजाणो यडुक्तं पंचसंग्रहे कंमं कंमस्स घनो वग्गो डुगुणो डुगंतरा एछ॥६॥ इतिद्विकांतर मार्गणा.

हवे त्रिकांतरमार्गणायें एटले त्रणवृद्धि विचमां मूकीने कोईपूछे के प्रथमजे असंख्यगुण वृद्धिनुं स्थानक तेथी हेठला अनंतभाग वृद्धिना स्थानक केटलाग यां ते सुविहित गीतारथ गुरुना वचन जाण्याहोय तो कहो. एक कंमक वर्गवर्ग एटले जेम असत्कल्पनायें चारआंकने कंमकनी स्थापना करियें तेनोवर्ग करतां चा रचोक सोलथाय वलीतेनो वर्ग करतां बशोने छपन्नथाय ते वर्गवर्ग कहियें एरीते असंख्यातनो समजवो केमके एक कंमकमां असंख्याता स्थानकछे माटे. हवे ए एकतो कंमक वर्ग वर्ग तथा तेनाउपर वली कंमक घन त्रण तथा वली कंमक वर्गत्रण अने वली उपर एक कंमक होय ते सर्व उत्तम श्रद्धा सहीत मनमां राखे

ए संख्या शीरीते जाणीयें तेरीत कहेछे प्रथम असंख्यगुण वृद्धिना स्थानक थी हेठलें संख्यातगुण वृद्धिना स्थानक कंमकप्रमाण गयांछे तिहां एकेका स्थान कने हेठलें प्रत्येके अनंतभाग वृद्धिना स्थानक एक कंमकघन तथा कंमकवर्गबे तथा एक कंमक प्रमाण पामियें तेमाटे ए सर्वने कंमक गुणाकरीने सरवालो करीराखि यें पछी संख्यातगुण वृद्धि कंमकने उपर एक कंमकघन कंमकवर्गबे अने एक कं मकछे ते पूर्वली रासीमां प्रक्षेपीयें तेवारें यथोक्त मानथाय यडुक्तं पंचसंग्रहे कंम स्स वग्ग वग्गो घण वग्ग तिगुणिया कंमं इति ॥ ६ ॥

छठी वृद्धिनारे पहेला ठाणथी हेठलां ॥ बीय वृद्धिनारे थानक पूरव जेतलां ॥ इति त्रिकांतर मार्गणा, चउरंतररे अनंत गुणा

दिम ठाणथी ॥ हेठ थानकरे जाग अनत ना मानथी ॥ ७ ॥
त्रूटक, परिमाणथी ते अष्ट कंडक ॥ वर्गवर्गा षट घना ॥
चार कंडक वर्ग आगल ॥ एक कंडक सोजना ॥ इति चतुरं
तर मार्गणा, पर्यवसाननी मार्गणा ते ॥ षट थानिक पूरे करे ॥
मूलथी संयम ठाण फरसी ॥ वीर विजू केवल वरे ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ एम ठठी अनंतगुण वृद्धिना पहेला स्थानकथी हेठलि बीजी वृद्धिना एटले असंख्यात नागवृद्धिना स्थानक पण पूर्वे जेटलां त्रिकांतर वृद्धिना अनंतर कह्यांछे तेटला जाणवा इति त्रिकांतर मार्गणा

हवे चतुरंतर मार्गणानेविषे अनंतगुण वृद्धिना आदिमके० प्रथम स्थानकथी हेठला स्थानक अनंतजाग वृद्धिना प्रमाणथी केटलाछे ॥ ७ ॥ तेपरिमाणथी आठ कंमकवर्गवर्ग तथा ठ कंमकघन तथा चार कंमकवर्ग तथा उपरें एक कंमक शोजन संयम परिणामरूपछे ए केवीरीते जाणीयें ते समजावेछे.

अनंतगुण वृद्धिना प्रथम स्थानकथी हेठलि असंख्यगुण वृद्धिना स्थानक कंमक प्रमाण गयांछे अने असंख्यगुणना एकेक स्थानकने हेठल अनंतजाग वृद्धिना स्थानक कंमकवर्गवर्गएक तथा कंमकघनत्रण अने कंमकवर्गत्रण वली कंमक एक प्रमाण पामियें तेमाटे ए सर्वने कंमकगुणा करियें जेथाय ते सरवालो करी राखियें तथा असंख्यातगुण वृद्धिने उपरें कंमकवर्गवर्गएक कंमकघनत्रण कंमक वर्गत्रण कंमकएक पामियेंछे ते पूर्वली राशीमां प्रक्षेपियें तेवारें यथोक्त मान थाय यडुक्तं पंचसंग्रहे, अड कंम वग्गवग्गा, चत्तारि वग्गा ठ ग्घनाकंमं ॥ चउ, अंतर बुढीए, हेठ्ठाण परूवणाए ॥१॥ इति, कंमक संज्ञा चारतेने तजुणोवर्ग सोल वर्गः कंमकगुणो घन चोसठ वर्गवर्गो बसो उपन्न घनःकंमकगुणोपि बसो उपन्न यथोचित स्थानके संख्याकरजो इति चतुरंतरमार्गणा.

हवे पर्यवशाननी मार्गणा कहेछे पर्यवशान जे छेहडो तेनी मार्गणा ते षट स्थानक पूरेथये जाणवी ए मूलथीके० धुरथी संयमस्थान फरसीने जगतनुं नायक जे श्रीवीरपरमेश्वर ते केवलज्ञानवर्यो ॥ ८ ॥

उपर मध्यथीरे संयम थानिक जे जजे ॥ ते नियमारे हेठ उ
तरी पुनरपी सजे ॥ अंतर्मुहूर्त्तनीरे बुद्धी हानि अणमां ॥ होय

मुनिनेरे ज्ञानीदेखे ज्ञानमां ॥ए॥ त्रूटक ॥ अप्पबहुअ विचार करतां अनंत गुणना थोडला ॥ तेहथी गुणह असंख्य केरा ॥ कंमक वर्ग कंमक नलां ॥ पच्छानुपूर्वि वुद्धि उत्तर एहन्यायें नावीयें ॥ क्षमाविजय जिन चरण उत्तम नक्तिनावें पावीये ॥१०॥

अर्थ ॥ जे उपरना संयमस्थानक तथा वचमांना संयमस्थानक अनुक्रमे फरसे ते नियमा हेठ उतरीने कालांतरे पुनरपीके० वली सजेके० सावधानथाय संयमश्रेणीपामे यडुक्तं अंतोमुहुत्त मित्तंपि, फासियं हुज्ज जेहि संमत्तं ॥ तेसिंअवह्व पुग्गल, परियट्टो चेव संसारो ॥ १ ॥ जो एमछे तो संयम पाम्यानुं सुं कहेवुं इति अंतरमुहुर्त्त कालप्रमाणे अधस्तन संयमस्थान थकी उपरि स्तन संयमस्थानारोहरूप वृद्धि तथा उपर स्तन स्थानथकी अधस्तन स्थानावरोहरूप हाणी मुनिने थाय ते हे ज्ञानवान वीरपरमेश्वर तमे देखोछो यडुक्तं कल्पनाष्ये गाथाद्वयं एयं चरित्त सेढिं, पडिवज्जइ हेठ कोइ उवरिंवा ॥ जे हेठा पवज्जिइ, सिज्झइ णियमां जहा नरहो ॥ १ मज्झेवा उवरिंवा, नियमा गमणंतु हेठिमं ठाणं ॥ अंतो मुहुत्त वुढ्ढी, हाणीवि तहेव नायव्वा ॥ २ ॥ इति ॥ ए ॥

हवे अल्पबहुत्वनो विचारकरतां अनंतगुण वृद्धिना संयमस्थानक सर्वथकी थोडा जाणवा तेथकी असंख्यातगुण वृद्धिना संयमस्थानक कंमकवर्ग अने एक कंमक जेटलां एटले परमार्थें असंख्यातगुणा पश्चानु पुर्वीयें वृद्धि आगले आगले एरीते नाविये सर्वत्र अनंतर वृद्धिस्थानक असंख्यातगुणा इतिनाव क्षमानाविजय एवा जिनके० वीरपरमेश्वर तेना चरणकमलनी उत्तमविधि युक्त नक्तिना महिमा थकी संयमश्रेणी पामियें नवनिस्तार थइयें संसार समुद्रनो पारपामियें ॥ १० ॥

ढाल चोथो रागधन्याश्री कलसरूप

गायो गायोरे नलें वीर जगतगुरू गायो ॥ एआंकणीछे संयमश्रेणी थानक षटविधठवणा यंत्र बनायो ॥ अहठाण परुपण करतां ॥ मनुज जनम फल पायोरे ॥ नलें० ॥१॥

अर्थ ॥ जगतनागुरु जगतनापुज्य एवा श्री महावीरप्रनु तेने नलेनावेकरी गायो स्तव्यो संयमश्रेणीना स्तवननी संग्रहगाथा कहेता (कहीने) कलस रचीयेछे प्रथम

ढाले संयमश्रेणीना षटस्थानपरूपणा बीजाढाले यंत्रस्थापना त्रीजाढाले अल्पग ण परूपणा करतां मनुष्य जन्मनुं फल पाम्युं ॥ १ ॥

शुद्ध निरंजन अलख अगोचर ॥ एहिज साध्य सुहायो ॥ ज्ञा
नक्रिया अवलंबी फरसो ॥ अनुभव सिद्धि उपायोरे ॥ भले० ॥२॥

अर्थ ॥ शुद्धनिरावरण निरंजन रागद्वेष अंजन रहित अलख लिपि अगोचर ते जे स्वरूप चर्म चक्षुयें जणायनही एवो परमात्मा स्वरूपानंद विलासी परभाव उदासी तेहीज अमारो स्वरूप अमने साध्यपणे सुहायो एटले रुच्यो हे आत्मन् हे जीव सम्यक्ज्ञान सम्यक्क्रिया अवलंबीने फरसो पामो जे स्वस्वरूपना विचारमां मनविसरामपामे अने अपूर्व रसस्वादउपजे एवोजे अनुभव ते सिद्धिनुं उपायछे यदुक्तं नाणकिरियाहिंमुक्खो इतिवचनात् ॥ २ ॥

श्रद्धा ज्ञान लह्यांछे तोपण ॥ जोनवि जाय पमायो ॥
वंध्य तरु उपमते पामे ॥ संयमठाणजो नायोरे भले०॥ ३ ॥

अर्थ ॥ संयमश्रेणीनुं महीमा कहियेछे जे सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान पाम्याछे तोपण जो प्रमादस्थानक नजाय तो वांझीया फलरहीत वृक्षनी उपमापामे केम के जोसंयमस्थानक न आव्योतो राजाश्रेणीक तथा सत्यकी विद्याधरनीपरे जाणवुं.

जम खर चंदन भारनो वाहक ॥ भारनो भागी कहायो ॥ ति
णिपरें ज्ञानी संयम हीनो ॥ सदगतीयें नविजायोरे ॥ भले०॥४॥

अर्थ ॥ जेम गर्दभ बावनाचंदननो भारवहेतोथको भारनो भजनार कहेवाय पण सुगंधनो भोगी न कहेवाय तेम ज्ञानीपुरुष चारित्रविना ज्ञाननो भोगीथाय पण सद्गतीजे मोक्ष तिहांजायनही यदुक्तं जहाखरो चंदन भारवाही ॥ भारस्स भागी नहुचंदनस्स ॥ एवंखुनाणी चरणेणहीणो नाणस्सभागी नहु सुग्गईए ॥१॥

आश्रव त्यागें संवर परिणति ॥ अविरति सरव उठायो ॥ स्व
स्वरूपमां थिरता तेहिज॥ संयम शुद्ध ठहरायोरे ॥ भले०॥५॥

अर्थ ॥ संयमनुं मूलस्वरूप कहियेछे पंचाश्रवने त्यागे पंचसंवर परणतिरूप मनकरणानियमुख्जीववहो ए बार अव्रतिने अभावें पोताना स्वरूपमां स्थिरता रमण निश्चलानुभव तेहीज वीतरागें आगममां शुद्धसंयम ठहरायो. ॥ ५ ॥

अनुभव सुरतरु फलने काजे ॥ कीजें आतम अमायो ॥ सन
मुखभावें जेह प्रवर्त्तन ॥ तेह निवर्त्त निदायोरे ॥ भलें० ॥६॥

अर्थ ॥ अनुभवरूपजे कल्पवृक्ष तेनुंफलजे मोक्ष ते पामवाने अर्थें आत्मा मायारहीत करवो अथवा अनुभवसुखी जीवनमुक्तछे मोक्षने सन्मुखभावें प्रभुमार्गानुसारी जे प्रवर्त्तन तेहिज निवर्त्तननुं उपायछे यदुक्तं निर्जित मदमदनानां वाक्काय मनो विकार रहितानां ॥ विनिवृत्त पराशानां मेहैव मोक्षसुविहितानां. ॥१॥६॥

ज्ञानक्रिया छुग चक्रें शोभित ॥ संयम रथ सुखदायो ॥ अनुभव
धोरी युत शिव नगरे ॥ जाता विघ्ननथायोरे ॥ भलें० ॥ ७ ॥

अर्थ ॥ ज्ञान अने क्रियारूप बे चक्रके० पइडा तेणेकरी शोभित एवो संयमरूप रथ ते सुखदाईछे अने अनुभवरूप धोरियें जोड्यो तदारूढ आत्मा चिदानंदने शिवनगरियें जातां निरावरणथातां विघ्न अंतराय कोईनथाय ॥ ७ ॥

रायसिद्धारथ वंश विभूषण ॥ तिसलाराणीजायो ॥ अजअज
रामर सहेजानंदी॥ ध्यान भुवनमां ध्यायोरे ॥ भलें० ॥ ८ ॥

अर्थ ॥ उदितोदित राजा सिद्धार्थना वंशनो शोभावनारो शील सम्यक्त्व देशविरति एवी त्रिसलाराणीयें जन्म्यो अपुनरावृत्तियें योनिनिर्गम एटले हवे सिद्धावस्था कहीछे जन्मरहित जरामरण रहीत सहेज अकृतृम स्वस्वरूपानंदी एवो वीर परमात्मा तेने ध्यानरूप भाव घरमां ध्याव्यो चिंतव्यो ॥ ८ ॥

संवत नंद निधि मुनि चंदे ॥ देव दयाकर पायो ॥ प्रथम जिने
सर पारण दिवशे ॥ स्तवना कलश चढायोरे ॥ भलें० ॥ ९ ॥

अर्थ ॥ नवनंद नवनिधि सातमुनि एकचंद्र अंकानांवामतोगतीतिवचनात् एटले संवत् १७९९ नावरसमां देवदयानो करनार पाम्यो अथवा तेनुं सासनपाम्यो जे दिवशे प्रथम जिनेश्वर श्री आदिनाथें वरसीतपनो पारणो इक्षुरसें श्रेयांसने हाथें कीधो ते दिवशें सयमश्रेणे गर्भित श्रीवीरप्रभुनुं स्तवनरूप प्रासादनेविषे कलसचढाव्यो एटले संपूर्णकीधो ॥ ९ ॥

विजयदेवसूरीस पटोधर ॥ विजयसिंह सवायो॥ सत्यशिष्याधर
कपूरविजयबुध ॥ क्षमाविजय पुण्य पायोरे ॥ भलें० ॥ १० ॥

हवे गुरुपरंपरा लिखीयेंछे श्रीवीरस्वामिना पांचमां गणधर श्रीसुधर्मस्वामि पहे ला पट्टोधरथया तिहांथी आठपाटलगे निर्ग्रंथबिरुदधारी १ नवमेंपाटे सूरिमंत्र कोटी वार जप्या माटे कोटीबिरुदधारी २ पन्नरमेंपाटें चंद्रसूरि चंद्रवत् घनुसोम्यथया माटे चंद्रगछ कहेवाणा ३ सोलमेंपाटे सांमतनद्राचार्य घणु निर्ममथया वनवासेंरह्या माटे वनवासी बिरुदथयुं ४ छत्रीसमेंपाटे सर्वदेवसूरिथया वडतलें आचार्यपद आ प्युं अने तेना शिष्यजेथया ते वडसाखानीपरें परिवारे वध्या तेवली घणागुणे व ध्या माटे वडगछकहेवाणा ५ चुमालीसमेंपाटे आंबिल वर्द्धमान तपकीधामाटे रा णाजीयें तपाबिरुददीधो तिहांथी तपाकहेवाण ६ अनुक्रमे बासठमेंपाठें आदेयना मधारी श्रीविजयदेवसूरि तत्पटप्रनावक सवाइ विजयसिंहसूरि तेनी साची ग्रहणा शिक्षा आसेवना शिष्याधारी अर्थात् पंमित सत्यविजयगणि गछनायकनी आज्ञा मागी क्रिया उद्धारकीधो श्रीआनंदघनसाथें वनवासरह्या अनेक तपकीधा अनुक्र मेंवृद्धावस्थाजाणीने अनिह्लपुर पाटणमां रहेतां धर्मोपदेशदेतां तेमना शिष्य पं मित कपूरविजय अने पंमित कुशलविजय थयां तेमां श्रीकपूरविजयगणितो अरि हंतप्रतिमा प्रतिष्टादिक अनेक धर्मकार्यकारी प्रनावक थया देश नगर पुर पाटणे विहार करतां करतां रह्या तेमना शिष्य पंमित वृद्धविजयगणि तथा पंमित क्षमा विजयगणि थया तेमां पंमित क्षमाविजयगणि तो देशनाआपवाना गुणेकरी अ नेक नव्यजीवोने उपकारी पवित्र चरण कमल धारी थया ॥ १० ॥

सूरतमांहे सूरय मंमण ॥ श्रीजिन विजय पसायो ॥ विजयद
यासूरिराजे जगपति ॥ उत्तमविजय मल्हायोरे ॥ नलें० ॥ ११ ॥

अर्थ ॥ श्रीसूरतबंदरे सूर्यमंमण पार्श्वनाथनी स्मृति प्रणति महिमायें तथा पंमित श्रीक्षमाविजयगणि शिष्य रत्न संप्रति विद्यमान चिरंजीवी परमोपकारी पं मितश्री जिनविजयगणियें उद्यमकरी मने प्रथम अन्यास कराव्यो ते जेम माता पिता पुत्रने प्रथम पगमांमवा तथा बोलवा शिखवे तेम गुर्वादिके मने उपकारकीधो ए श्री तपागछधिराज नट्टारक श्रीविजयदयासूरिश्वरना राजमां जगत्पति जगत् परमे श्वर श्रीवीरस्वामिने मुनि उत्तमविजयें मल्हायो गायो स्तवनागोचरकीधो ए स्तवन अ मछरी गीतार्थ पुरुषो तमे सोधजो नणावजो नणता नणावतां संयमश्रेणीयें नू षितथइ सदेजानंदपामजो ॥ ११ ॥

इतिश्री संयमश्रेणी गर्भित वीरविनो स्तवनं समाप्तं श्रीरस्तु.

॥ श्री जिनेंद्राय नमः ॥

अथ श्री लोकनालद्वात्रिंशिका बालावबोध सहित प्रारंभः

प्रथम बालावबोध कर्त्तानुं मंगलाचरणः—

श्रीमदाप्तं प्रणम्यादौ, जगत स्थिति दर्शकं ॥
वक्ष्ये लोक विचारस्य, वार्त्तिकं समयानु गम् ॥ १ ॥

व्याख्याः— जगतनी स्थितिना देखाडनारा एटले जगतनी यथार्थ स्वरूप स्थितिना देखाडनारा श्रीवीतराग भगवानने प्रणाम करीने एटले नमस्कार करीने आ लोकना विचारनुं वार्त्तिक समयानुसारे एटले आगमोक्त प्रकारे हुं कहुं छुं॥१॥

जिण दंसणं विणाजं, लोअं पूरंति जम्म मरणेहिं ॥
भमइ जिओणंत भवे, तस्स सरूवं किमवि वुच्छं ॥ १ ॥

व्याख्याः— 'जिण'—जिन एटले श्रीतीर्थंकरदेव, तत्प्रणीत 'दंसण'—दर्शन एटले सम्यक्त्व, दर्शन अथवा तीर्थंकरनुं दर्शन ते मनोवचन तथा काय ए त्रिकरण भावे करी जे देखवुं ते छे. 'विण'—ते विना 'जं'—जे 'जम्ममरणेहि'—जन्म तथा मरणे करी 'लोअ'—लोक एटले सामान्यपणे चौदराज लोकने 'पूरंति'—पूरतो थको 'अणंत भवे'—अनंत भवप्रते 'जिओ भमइ'—जीव भमेछे, 'तस्ससरूवं'—ते लोकनुं स्वरूप, आकार, लांबी, पहोलाई तथा जाडाई 'किमवी'—कांईक स्तोकमात्र 'वुच्छं'—कहुं छुं. ॥ १ ॥

अवतरणः— अनंत प्रदेश अलोकाकाशनेविषे सामान्यपणे अल्पमात्र लोकनो आकार वखाणे छेः—

वइसाह ठाण ठिय पय, कडिठ्ठ कर युग नरागिई लोगो ॥
उप्पत्ति नास धुअ गुण, धम्माइ छ दव्व पडिपुन्नो ॥ २ ॥

व्याख्याः— 'वइसाह'—खवाइओ तेना 'ठाण'—विलोववाना समयनेविषे 'ठिय'—स्थित एटले स्थाप्या छे 'पय'—पद एटले बे चरण जेणे, वली विलोवतां 'कडिठ्ठ'—कटिस्थ एटले कटीनेविषे जे 'करयुग'—हस्थ युगल एवो जे 'नरागिई'—

नराकृति एटले मनुष्यना जेवो जेनो आकार छे, एवो लोक छे तथा विलोववाना अधिकारमाटे नर शब्देकरी प्रायें स्त्री जाणी लेवी. स्त्री ज्यारे छास विलोवेछे, त्यारे बे पग मोकला राखेछे अने कटिप्रदेशनेविषे यथा बंध संकीर्ण थाय तेनी पठे लोक पण हेठल पहोळोछे तथा चढतो मध्य नागनेविषे संकीर्ण छे. वली विलोव तां बन्ने हाथ कटि देशमां राख्यामां आवेछे; त्यारे बे कोणीना वचला नागमां कटि प्रदेशथी हृदयसुधी चढतो विस्तार थायछे. अने मस्तक दिशी संकीर्ण छे. तेम लोक पण मध्य नागथी ऊपर चढतां पांचमा देव लोकसुधी विस्तार पामे लो छे. त्यांथी वली संकीर्ण थायछे. तेमाटे विलोवनारी स्त्रीना आकारनुं दृष्टांत कह्युं छे. हवे ए लोकमां कया कया पदार्थो छे? ते कहेछेः–'उप्पत्ति'–उपजवुं, 'नास'–नाशने पामवुं, 'धुअ'–धुअ एटले निश्चलपणुं अथवा स्थिति ए 'गुण, गुणो जेनेविषे छे, एवा 'धम्मइ'–धर्मास्तिकायादिक 'छदव'–छ द्रव्य एटले पदा र्थ जेमां 'पडिपुन्नो'–परिपूर्ण नया छे. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशा स्तिकाय पुद्गलास्तिकाय जीवास्तिकाय तथा काल ए छ द्रव्य जाणवां ॥ २ ॥

अवतरणः– केटलाएक परदर्शनी एम कहेछे के; लोक ब्रह्माए उत्पन्न कर्यो छे, विष्णु पालना करेछे, महादेव संहार करेछे, शेषनाग काछबो तथा काम धेनु धारण करी रह्यां छे; एम कहेछे तेनुं निराकरण करेछेः–

केणवि न कउ न धउ, ऽणाहारो नहठिउ सयं सिद्धो ॥
अहमुह महमल्लग लघु, तदुवरि संपुम सरिछो ॥ ३ ॥

व्याख्याः– 'केणवि'–कोईए पण 'नकउ'–आ लोक उत्पन्न कर्यो नथी; 'नधउ' कोइए पण धर्यो नथी 'अणाहारो'–निराधार छे. सर्व पदार्थ लोकने आधारे छे; 'नहठिउ'–ए लोक ननजे आकाश तेनेविषे स्थित छे, 'सयंसिद्धो'–तेथी स्वयंसिद्ध छे. ए लोकनो आकार प्रकारांतरे कहेछेः– 'अहमुहं'–अधमुख एटले ऊंधो कीधेलो जे मोटो 'महमल्लग'–महत् मल्लक एटले मोटो सराव, 'त दुवरि'–तेनी ऊपर 'लघु संपुड'–न्हाना सरावनो संपुट कर्यो होय तेनी 'सरि छो'–सदृश एटले तेना सरखो आ लोकनो आकार छे. ॥ ३ ॥

पयतलि सग मझेगा, पण कुप्परि सिरतलेग रज्जु पिहु ॥
सो चउदस रज्जुओ, माघवइ तलाउजा सिद्धी ॥ ४ ॥

व्याख्याः— 'पयतलि'—पदतले एटले पहेलां जे वैशाख स्थान स्थित मनुष्यने आकारे लोक कह्यो; ते पगना तलियाने ठेकाणे चारेदिशिए सात राज प्रमाण पोलो छे; अने मध्य भाग जे पुरुषाकारनेविषे नाभिनुं ठाम छे, त्यांहां एक राज प्रमाण चारे दिशिए पोलो छे. बन्ने हाथनी कोणीना ठामनेविषे पांच राज प्रमाण पोलो छे; अने मस्तकने ठेकाणे एक राज प्रमाण पोलो छे; वली ते लोक हेठली माघवती सातमी नरक पृथ्वीना तलाथी ऊपर यावत् सिद्ध शिलासुधी जोतां चौद राज प्रमाण आ लोक ऊंचो छे ॥ ४ ॥

अवतरणः— हवे पहोलाणनी स्थिति कहेछेः—

सगरज्जु मघवइ तला, पएस हाणीय मझियले एगा ॥
तो वुढ्ढि बंभजा पुण, पण हाणीजा सिवे एगा ॥ ५ ॥

व्याख्याः—माघवती जे सातमी नरक पृथ्वी, तेना तलाथी चारे दिशिनेविषे ए लोक सात राज प्रमाण पहोलो छे; त्यांथी प्रदेशनी हानी करतां ऊपर तिर्यगलोकनी मझी तलनेविषे आवे त्यारे चारे दिशिनेविषे एक राज प्रमाण विस्तार छे. त्यांथी वली ऊपर जातां वृद्धि थाय छे; ते पांचमो ब्रह्म नामे देवलोक छे त्यां चारे दिशाए पांच राज प्रमाण पहोलो छे. त्यांथी वली प्रदेश घटता छे. ते ज्यां सिद्ध शिला छे त्यां चारे दिशिए एक राज प्रमाण पहोलो छे. तथा हाणी वृद्धि जे छे ते तो प्रदेश मात्र कही छे. तो पूर्ण खांडुआ केम मांडिये छैए? त्यां ए विशेष छेः— जे बन्नेपासे प्रदेशनी हाणी छे तोपण ऊतरतां तथा चढतां बन्ने पासाना बे त्रिखूणा लई, अवला सवला जोडी खांडुआमां भेलीए त्यारे खांडुआं पूरां थाय. एम सर्वत्र जाणवुं. हवे विस्तारनो विवरो लखीए छैएः— सातमी नरक पृथ्वी सात राज प्रमाण, छठी साडा छ राज प्रमाण, पांचमी छ राज प्रमाण, चोथी पांच राज प्रमाण, त्रीजी चार राज प्रमाण, बीजी अढीराज प्रमाण तथा पहेली घम्मा नरक पृथ्वी एक राज प्रमाण पहोली छे. चारे दिशिउनेविषे ए विस्तार छे. ऊर्ध्वलोकनो विस्तार आगल कहीशुं. ए मान लोकनाल बत्रीशीने अनुसारे कह्युं छे. ग्रंथांतरनेविषे अन्यप्रकारेपण दीठामां आवेछे. निश्चयनी वार्त्तातो ज्ञानी जाणे. ॥ ५ ॥

अ०ः—हवे लोकनाल मांडवानो उपाय कहेतां प्रथम त्रस नाडीनो विचार कहेछेः—

सगवन्न रेह तिरिच्छं, छवसु पणुड्ढं च रज्जु चउअंसे ॥
इग रज्जु विछरा यय, चउदस रज्जुच्च तसनाडी ॥ ६ ॥

व्याख्याः—सत्तावन रेषा त्रीछी स्थापीयें, वली पांच रेषा ऊभी मांमिए, एम करतां ऊंचपणे चउ खूणा उपन्न खंम थाय; त्रीछी सत्तावन्न रेषा छे. तेमाटे तेना छप्पन खंम थाय छे. ऊभी पांच रेषा छे. तेना त्रीछा चार खांमुआ थाय, चार खांमुए एक राज थाय, तथा ए त्रस नाडी पहोलाईए करी एक राज प्रमाण, अने लांब पणे चौदराज प्रमाण जाणवी. ॥ ६ ॥

अवतरणः— तथा लोकनो मध्य नाल ते त्रस नाडी तेमां बेंद्रियादिक त्रस जीव जन्ममरण पामे छे, माटे त्रस नाडी कहेवाय छे. ए त्रस नाडीनी बाहार जे लोकोनो विस्तार छे, त्यां सूक्ष्म एकेंद्रिय निगोद सर्वत्र व्यापी रह्युं छे. ते बाहारनो विस्तार अधोलोकनेविषे कह्यो हवे ऊर्ध्वलोकनेविषे खांमुआनो विस्तारकहेछेः

उड्ढं तिरिअं चउरो, दुसु छ दुसु अठ दसय इक्किक्के ॥
बारस दोसु सोलस, दोसुं वीसाय चउसु पुढो ॥ ७ ॥

व्याख्याः—ऊर्ध्व लोकनी श्रेणीनेविषे प्रथम रत्नप्रभा नरकपृथ्वी थकी ऊपर जे आठयावीश खांमुआनी श्रेणी छे. तेमां लोकना मध्यथी ऊपर पहेली बे श्रेणीनेविषे चार चार खांडुआ त्रस नाडीनाज छे. पण त्रस नाडीथी बहार नथी. त्यार पछी वली तेथी ऊपर बे श्रेणीनेविषे छ छ खांमुआ छे, एटले चार खांमुआ त्रस नाडीना अने एकेको बन्ने पासानो खांमुओ लेखवतां छ खांमुआ थाय. त्यार पछी ऊपर एक श्रेणीनेविषे आठ खांमुआ छे. ते बबे खांमुआ बे पाशे तेनां चार खांमुआ अने त्रस नाडीना चार खांमुआ ए आठ खांमुआ छे. वली तेनी ऊपर एक श्रेणीनेविषे दश खांमुआ छे. तेबन्ने पासे त्रण त्रण छे, अने त्रसनाडीना चार मली दश थाय छे. त्यार पछी बे श्रेणीनेविषे बार बार खांमुआ छे; त्यार पछी बे श्रेणीनेविषे शोल शोल खांमुआ छे, तेमज चार श्रेणीनेविषे वीश वीश खांमुआ छे. ते बधा पृथक् एटले जुजुआ छे. ॥ ७ ॥

अवतरणः—एवी रीते ऊर्ध्व लोकनेविषे प्रदेशनी वृद्धिना खांमुआ कह्या, एटले अठावीश श्रेणीमां चौद श्रेणी थई; हवे हानीना खांमुआ कहे छेः—

पुणरवि सोलस दोसुं, बारस दोसुं च तिसु दस तिसुछ ॥
छदुसु दुसुं चउ खंमुअ, सव्वे चउरुत्तरा तिसया ॥ ८ ॥

व्याख्याः—वली पंदरमी तथा शोलमी ए बे श्रेणीनेविषे शोल शोल खांमुआ

छे. सतरमी तथा अढारमी ए बे श्रेणीनेविषे बार बार खांडुआ छे. ओगणीश मी, वीशमी तथा एकवीशमी ए त्रण पंक्तिनेविषे दश दश खांडुआ जाणवा. बावीशमी त्रेवीसमी तथा चोवीशमी ए त्रण पंक्तिनेविषे आठ आठ खांडुआ जाणवा. पचीशमी तथा छवीशमी ए बे श्रेणीनेविषे छ छ खांडुआ छे अने सत्यावीशमी तथा अठ्यावीशमी ए बे श्रेणीनेविषे चार चार खांडुआ त्रस माहेलाज छे ॥ ८ ॥

अवतरणः—एवी रीते ऊर्ध्व लोकनी अठ्यावीश श्रेणीना खांडुआनुं मान कह्युं ए प्रमाणे सर्व ऊर्ध्व लोकना खांडुआ त्रणशेने चार थाय छे. वली पण कहेछे:—

उवरीय लोअ मज्झा, चउ चउ ठाणेसु सत्त पुढवीसु ॥
चउर दस सोल वीसा, चउवीस छवीस अडवीसा ॥९॥

व्याख्याः—चौद राज प्रमाणनो मध्य एटले जे वच्चेनो प्रदेशछे, त्यांथी अधोलोक प्रते ऊतरतां सात नरक पृथ्वीनेविषे प्रत्येके प्रत्येके चार चार श्रेणीनेविषे कहे छे ते केम? अधो लोकनी अठ्यावीश श्रेणीमां पहेली नरक पृथ्वीनी चार श्रेणीनेविषे चार खांडुआ छे. तेना शोल खांडुआ थाय छे. बीजी नरक पृथ्वीनेविषे चार श्रेणीए प्रत्येके प्रत्येके दश दश खांडुआ छे. तेने दश गुणा करतां चालीश खांडुआ थाय छे. त्रीजी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमां प्रत्येके प्रत्येके शोल शोल खांडुआ छे. तेना चोसठ थायछे, चोथी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमांनी प्रत्येकमां वीश वीश खांडुआ छे. तेना एंशी खांडुआ थायछे. पांचमी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमां प्रत्येके चोवीश चोवीश खांडुआ छे, तेना छनु थायछे. छठी नरक पृथ्वीए चार श्रेणीमां प्रत्येके छवीश छवीश खांडुआ छे, तेना एकशोने चार थायछे सातमी नरक पृथ्वीनेविषे चार श्रेणीए प्रत्येकमां अठावीश अठावीश खांडुआ छे. तेना एकशोने बार थाय छे. एवी रीते शोल, चालीश, चोशठ, एंशी, छनु, एकशोने चार तथा एक शों ने बार ॥ ९ ॥

अह पण सय बारुत्तर, खंडुअ सोलहिय अडसय सवे ॥
घम्माइ लोकमज्झं, जोयण असंख कोडीहिं ॥ १० ॥

व्याख्याः— अधोलोकना सर्व एकठा खांडुआ गणिए तो पांचशेने बार उपर थाय अने पूर्वे ऊर्ध्व लोकना त्रणसेने चार कह्या तेने साथें मलावीये तेवारे सर्व मली आठशेने शोल खांडुआ थायछे. हवे लोकना मध्यनुं ठाम कहे छेः घम्मा

नामनी प्रथम नरक पृथ्वीनेविषे असंख्यात योजननी कोडी मेरूना मूलनेविषे गोस्तनाकार रुचकथी केवल लोकनो मध्यजाग जाणवो. ॥ १० ॥

अवतरणः—हवे चौद राजनेविषे अधो लोक, तिर्यक् लोक तथा ऊर्ध्व लोक मां कोण कोण रहेछे ते कहे छेः—

सग रज्जु जोयण सया, अढार सुण सगरज्जु माण इहं ॥
अह तिरिय उड्ढ लोआ, निरय नर सुराइ जावुल्ला ॥ ११ ॥

व्याख्याः—लोकना मध्यथी आठमा राजनेविषे समभूतलथी नवशें योजन ऊंचो तथा नवशें योजन हेठल ए अढारशें योजन प्रमाण तिर्यग् लोक कहेवाय छे. त्यारे ऊर्ध्व लोकना सात राज छे. ते अढारशें योजन ऊर्ध्व लोकमां गण्याथी हेठला सात राज ते अधो लोक कहेवाय; आढारशें योजन रहित सातराज प्रमाण ऊर्ध्व लोक कहेवाय छे. हवे अधो लोकनेविषे नारकी प्रमुख, तिर्यक् लोकनेविषे मनुष्यादिक, अने ऊर्ध्व लोकनेविषे देवता प्रमुख वशेछे. यद्यपि जवनपत्यादिक देवता अधोलोकमां वशेछे तथापि नारकी घणा छे, माटे तेज अधोलोके कह्याछे. ११॥

अह लोय निरय असुरा, वंतर नर तिरिअ जोइस तरुग्गी ॥
दीवु दहि तिरिअ लोए, सुर सिद्धा उड्ढ लोगम्मि ॥ १२ ॥

व्याख्याः— पाछली गाथानेविषे 'निरय नर सुराइ'—ए वाक्यमां आदि शब्द आव्यो छे माटे आदिशब्द निरयादि त्रणे शब्दोनी साथे जोडिये. त्यारे निरयादिक नारको असुर देवता अधोलोकमां वशेछे. व्यंतर नर मनुष्यादिक तिर्यंच ज्योतिषी, तरु वनस्पतिकाय अग्निकाय ए असंख्याता द्वीप समुद्ररूप तिर्यक लोकमां वशेछे. सुरादिक सुर देवता, सिद्ध कहिये मुक्त जीव ते सर्व ऊर्ध्व लोकमां रह्या छे.॥१२॥

इक्किक रज्जु इक्कि,क्क निरय सग पुढवि असुर पढमंतो ॥
तह वंतर तडवरि नर, गिरिमाइ अ जोइसा गयणे ॥१३॥

व्याख्याः— एकेक राज प्रमाण एकेक नरक पृथ्वी छे. एटले साते नरके सात राज थया. तथा पहेली नरक पृथ्वीमां असुर एटले जवन पति रहेछे; तथा प्रकारे व्यंतर पण पहेली नरक पृथ्विमां रहेछे. तथा प्रथम पृथ्वीनी ऊपर नर मनुष्य अनेक नगर गिरि एटले मेरु पर्वतादिक पदार्थना समूह छे. चंद्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारा ए पांच प्रकारना ज्योतिषी गयणेके॰ आकाशनेविषे रहेछे.॥१३॥

छसु खंडुगेसु अ दुगं, चउसु दुगं छसु अ कप्प चत्तारी ॥
चउसु चऊ सेसेसु अ, गेविज्ज णुत्तराय सिद्धंते ॥ १४ ॥

व्याख्या.– लोकना मध्यथी ऊपर छ खांडुआना ऊपरला भागनेविषे सौधर्म ईशान ए नामना बे देवलोक छे. एटले अहीं लोकना मध्यथी दोढ राज ऊंचा बे देवलोकछे. वली त्यांथी चार खांडुआ ऊपरना भागनेविषे सनत्कुमार तथा माहेंद्र नामना बे देवलोक छे. त्यांथी छ खांडुआमां अनुक्रमे ब्रह्म, लांतक, शुक्र तथा सह श्रार नामना चार देवलोक छे. त्यारपछी चार खांडुआनेविषे चार देवलोक आनत, प्राणत, आरण, तथा अच्युत नामना छे. बाकीना आठ खांडुआनेविषे नवग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तर विमान छे. तेमां प्रथम चार खांडुआनेविषे नवग्रैवेयकछे ने उपरना चार खांडुआनेविषे पांच अनुत्तर विमानछे. अंतखांडुआना छेडानेविषे सिद्ध शिलाछे.

अवतरणः– एवीरीते ऊर्ध्व लोकनेविषे देवलोकनी स्थिति कही, तेविषे आग मनी साख कहेछे तथा चागमेः–

सोहम्मम्मि दिवड्ढा, अड्ढाइज्जा य रज्जु माहिंदे ॥
चत्तारी सहसारे, पणच्चुए सत्त लोगंते ॥ १५ ॥

व्याख्याः– लोकना मध्यथी सौधर्म देवलोक दोढराज ऊंचो छे; लोकना म ध्यथी माहिंद्र देवलोक अढीराज ऊंचो छे; लोकना मध्यथी सहस्रार देवलोक चार राज ऊंचो छे; लोकना मध्यथी अच्युत बारमो देवलोक पांचराज ऊंचो छे; अने लोकना मध्यथी लोकांत सात राजऊंचो छे. ॥ १५ ॥

सम्मत्त चरण रहिया, सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं ॥
सत्तय चउदस भाए, पंचय सुय देस विरईए ॥ १६ ॥

व्याख्याः– सम्यक्त्व एटले देवनेविषे देवनी सद्दहणा, गुरुनेविषे गुरुनी सद्द हणा, दयामूल धर्मनेविषे धर्मनी सद्दहणा, चरण एटले पंचाश्रवथी विरमण, पां च इंद्रियनो निग्रह, अनंतानुबंधिया क्रोध, मान, माया तथा लोभनो त्याग; मनोदंड, वचन दंड, कायदंड, तेनी विरति एवा जे संयमना सत्तर भेद, तेणेकरी संयुक्त जे चारित्र तेणेकरि रहित एटले मिथ्यात्व कुगुरु, कुदेव, तथा कुधर्मना स द्दहनार अविरति एवा जे संसारी जीव तेने सम्यक्त्व चरण रहित कहिये, एवा जीवो चौद राजलोक प्रते सूक्ष्म तथा बादर जीव योनिमां फरता थका निरविशेष

पणे फरसे एटले चौदराजमां तिलमात्र नूमि अण फरसी न मूके ; श्रुतज्ञानी जे यति छे ते लोकना मध्यथी ऊंचे सात राज फरसे छे ; कारण के, श्रुत ज्ञानी ने उत्कृष्टी गति सर्वार्थ सिद्धि सुधी छे एवुं सिद्धांतमां कह्युं छे. ते सर्वार्थ सिद्धि लोकना मध्यथी कांई एक ऊणा सात राज छे. ते स्तोकमात्र ऊणा होवा थी. सामान्य पणे पूराज गण्यामां आव्या छे. " उवमन संजयाणं, ठववाउ उ कोसउ असव्वड्ठे ' एम कह्युं छे. ' चउदस नागे पंचय, वली देशविरति बारव्रत धर श्रावक ते चौद राजना चौद नागमांथी. पांच नाग ऊर्ध्व लोकना फरशे , केमके, श्रावकनी उत्कृष्टी गति अच्युत नामना बारमा देवलोकसुधी कही छे ते बारमो देवलोक लोकना मध्यथी पांच राज ऊंचो छे. तेमाटे पांच राज कह्या

अवतरणः– हवे प्रथम सुचिरज्जु, प्रतररज्जु, घनरज्जु, तेउना अनुक्रमे प्रमाण कहेतां प्रथम सातमी नरक पृथ्वीनी आदियो मांमीने सुचिरज्जु कहेछेः–

अडवीसा छवीसा, चउवीसा वीस सोल दस चउरो ॥ सुइ
रज्जु सत्त पुढविसु, चउ चउ नइआउ पयर घणा ॥ १७॥

अर्थ ॥ सातमी नरक पृथ्वीनेविषे अगावीश सुचिरज्जु छे, छठी नरक पृथ्वीने विषे छवीश सुचिरज्जु, पांचमी नरक पृथ्वीनेविषे चोवीश सुचिरज्जु, चोथी नरक पृथ्वीनेविषे वीश सुचिरज्जु, त्रीजी नरक पृथ्वीनेविषे शोल सुचिरज्जु, बीजी नरक पृथ्वीनेविषे दश सुचिरज्जु तथा पहेली नरक पृथ्वीनेविषे चार सुचीरज्जु, जे चार खंडु आ श्रेणीबंध, अने पहोलाईए एकज खंडुओ होय तेने सुचिरज्जु कहिये. सातमी नरकपृथ्वी चार खंडुआ ऊंची छे; अने अगावीश खंडुआ त्रीछी ओलीए छे; ए माटे अगावीश सुचिराज जाणवा. एवी सर्वत्र नावना करवी. हवे ए साते नरकपृथ्वीना सुचिरज्जुनुं मान जे एकठोने अगावीश थायछे ते चार नागे करीए तो प्रतर रज्जुनुं मान मले वली ते प्रतर रज्जुनुं आंक चारे नागे देतां जे फलितांक थाय तेटला घनरज्जु जाणवा. चार चार खांडुआ चारे दिशिए एटले अकेक राजलांबो तथा पहोलो अने पाराज जाडो होय ते प्रतररज्जु कहेवाय छे, तथा चार खांडुआ जाडापणे, लांबपणे तथा पोहोलपणे ते घनरज्जु कहिये. पहेला प्रतर रज्जुनेविषे शोल खांडुआ होय घनरज्जुनेविषें चोशठ खांडुआ होय ते आगल कहेवाशे ॥ १७॥

अडवीस सयं छसयरि, अह छप्पं चउ जुया डुसय सव्व ॥
सुइ रज्जु पयर रज्जु, दुतीसि गुण वीस इगवण्णा ॥ १८॥

व्याख्याः– अधो लोकनेविषे पांचशोंने बार खांडुआ छे; तेना चार जाग कर तां प्रत्येक जाग एकशोने अठावीशनो थाय तेटला सुचिरज्जु जाणवा. ऊर्ध्व लोक नेविषे त्रणशेने चार खांडुआ छे तेना चार जाग करतां प्रत्येक जाग छोतेरनो थाय; तेटला सुचिरज्जु जाणवा. ते अधोलोकना एकशोने अठावीश सुचिरज्जु, तथा ऊर्ध्व लोकना छोतेर सुचिरज्जु, ए बन्ने एकठा करिये त्यारे बशोने चार सुचिरज्जु थाय. अधोलोकना एकशोने अठावीश सुचिरज्जुने चार जाग दैये त्यारे बत्रीश प्रतररज्जु थाय; ऊर्ध्व लोकना छोतर सुचिरज्जुने चार जाग दैये तो ओगणीश प्रतररज्जु थाय. ॥१८॥

अवतरणः– हवे घनरज्जुनुं मान कहेछेः–

घणरज्जु अठ दिठा, पउण पणुद्धं उद्धे पउण तेर ॥
घण पयर सूइ रज्जु, खंडुअ चउसठि सोल चउ ॥१९॥

व्याख्याः–अधोलोकना बत्रीश प्रतररज्जु छे; ते चार जागे देतां आठ थाय; माटे अधोलोकनेविषे आठ घनरज्जु जाणवा. ऊर्ध्व लोकनेविषे ओगणीश प्रतररज्जु छे ते चार जागे देतां पोणा पांच घनरज्जु छे. ते उद्धे कहेतां अध तथा ऊर्ध्व लोक ना एकठा करिये तो पोणा तेर घनरज्जु थाय. हवे घन प्रतर तथा सुचिरज्जुनुं मान कहेछेः–चोसठ खांडुआनो एक घनरज्जु थाय, शोल खांडुआनो एक प्रतररज्जु थाय, चार खांडुआनो एक सुचिरज्जु थाय. ए सामान्य प्रकारे दृष्टांत मात्र चतुरस्र लोकनुं परिणाम देखाड्युं; पण लोकनुं स्वरूप वृत्ताकार मल्लकने आकारेछे, ते वृत्ताकारना खांडुआ यंत्रमां लखाय नही, माटे चौरस कह्यो छे. ॥ १९ ॥

अवतरणः–हवे मन कल्पनाए कृत वृत्ताकार लोकनेविषे घनरज्जु, प्रतररज्जु, तथा सुचिरज्जुनुं मान कहेछे, तेमां प्रथम खांडुआनी संख्या केहेछेः–

सयवग्गु सिंगुणे पुण, बिसय गुणयाल हवंति घण रज्जु ॥
सट्ठ पणहत्तरि सयं, सट्ठ तिसठी अद्धुट्ठ कमा ॥२०॥

व्याख्याः– पोताना वर्गथी खांडुआ गणीए. ते आ प्रमाणेः– सातमी माघवती पृथ्वीनेविषे हेठली श्रेणी ए अठावीश खांडुआछे; तेने अठावीशना आंकथी गुणीए त्यारे सातशोनें चोराशी खांडुआ एक श्रेणीमां थाय. एवी चार श्रेणी छे. तेथी सातशोने चोराशीने चारे गुणतां त्रण हजार एकशोने छत्रीश खांडुआ थाय. एम छठी नरक पृथ्वीनेविषे हेठलनी श्रेणीए छवीश खांडुआ छे. तेने छवीश

थी गुणतां बशेंने छोतेर थाय. एवी चार श्रेणीउं छे. तेथी बशेंने छोतरने चार थी गुणतां बे हजार सातशेंने चार घनरज्जुनां खांडुआ थाय. पांचमी नरक पृथ्वीनेविषे हेठलनी श्रेणीए चोवीश खांडुआ छे. तेने चोवीशथी गुणतां पांचशेंने छोतेर थाय. एवी चार श्रेणी छे तेथी पांचशोने छोतरने चारथी गुणतां बे हजार त्रणशेंने चार घनरज्जुना खांडुआ थाय. चोथी नरक पृथ्वीनेविषे छेली श्रेणीए वीश खांडुआ छे तेने वीशथी गुणतां चारशें थाय. एवी चार श्रेणी छे तेथी चारशेने चारथी गुणतां शोलशें घनरज्जुना खांडुआ थाय. त्रीजी नरक पृथ्वीनेविषे छेली श्रेणीए शोल खांडुआ छे. तेने शोलथी गुणतां बशेने छप्पन थाय. एवी चार श्रेणी छे. तेथी बशेने छप्पनने चारे गुणतां एक हजारने चोवीश घनरज्जुना खांडुआ थाय. बीजी नरक पृथ्वीनेविषे छेली श्रेणीए दश खांडुआ छे. तेने दशे गुणतां एकशो थाय. एवी चार श्रेणी छे. तेथी एकशोने चारे गुणतां चारशो खांडुआ थाय. अने पेली नरकपृथ्वीनेविषे छेली श्रेणीए त्रस नाडीना चार खांडुआ छे. तेने चारे गुणतां शोल थाय. एवी चार श्रेणी छे तेथी शोलने चारथी गुणतां चोशठ थाय. त्यारे पहेली नरकपृथ्वीनेविषे घनरज्जुना चोशठ खांडुआ जाणवा. एवी रीते सात नरकपृथ्वीना खांडुआनो वगै करी सर्व अंक एकठा करीए तो अग्यार हजार बशेंने बत्रीश अधोलोकनेविषे घनरज्जुना खांडुआ थाय. हवे ऊर्ध्वलोकनेविषे घनरज्जुना खांडुआनो विचार कहेछेः—ऊपर लोकना मस्तकथी आदि लेवी. ऊपरनी श्रेणीए चार खांडुआ त्रस नाडीना छे. तेने चारे गुणतां शोल थाय. एवी बे श्रेणीउं होवाथी शोलने बमणा करतां बत्रीश घनरज्जुना खांडुआ थाय. तेथी हेठलनी श्रेणीनेविषे छ खांडुआ छे. तेने छ गुणा करतां-छत्रीश थाय. एवी बे श्रेणीउं होवाथी छत्रीशने बमणा करतां बोतेर थाय. पछी आठने आठ गुणा करिये त्यारे चोशठ थाय. एवी त्रण श्रेणीउं होवाथी चोशठने त्रण गुणा करतां एकशोने बाणु थाय. त्यार पछी दशने दश गुणा करिये त्यारे एकशो थाय. एवी त्रण श्रेणीओ होवाथी एकशोने त्रणथी गुणतां त्रणशें थाय. पछी बारने बार गुणा करिये त्यारे एकशोने चुमालीश थाय. एवी बे श्रेणीओ होवाथी एकशोने चुमालीशने बमणा करतां बशेंने अठ्याशी थाय. पछी शोलने शोलथी गुणतां बशेंने छपन थाय. एवी बेश्रेणीओ होवाथी बशेंने छपनने बमणा करतां पांचशेंने बार थाय. पछी वीशने वीशथी गुणतां चारशे थाय. एवी चार श्रेणीओ होवाथी चारशेने चारथी गुणतां शोलशें

थाय. वली त्यांथी घटतां शोलने शोलथी गुणतां बशेने छपन थाय. एवी बे श्रेणीओ होवाथी बशेंने छपनने बमणा करतां पांचशेने बार थाय त्यांथी हेठल बारने बारे गुणतां एकशोने चुमालीश थाय. एवी बेश्रेणीओ होवाथी एकशोने चुमालीशने बमणा करतां बशेने अठाशी थाय. त्यांथी हेठल दशने दशे गुणतां एकशो थाय. एवी एकज श्रेणी होवाथी एकशोज गणवा. त्यांथी हेठल आठने आठे गुणतां चोशठ थाय. एवी एकज श्रेणी होवाथी चोशठज गणवा. त्यांथी हेठल छने छथी गुणतां छत्रीश थाय एवी बे श्रेणीउ होवाथी छत्रीशने बमणा करतां बोतेर थाय. त्यांथी हेठला चारने चारे गुणतां शोल थाय. एवी बे श्रेणीउ होवाथी शोलने बमणा करतां बत्रीश थाय. ए सर्व अंक एकठा करतां उर्ध्वलोकनेविषे चार हजारने चोसठ घनरज्जुना खांडुआ थायछे. तेने पूर्वोक्त अधोलोकना अग्यार हजार बशो बत्रीस खांडुआनी साथें एकठा गणतां पंदर हजार बशोने छनु घनरज्जुना खांडुआ थाय. एवीरीते पोताना वर्गनी साथे गणतां चोशठ खांडुए एक घनरज्जु थाय छे. माटे पंदर हजार बशोछनुने चोशठ नागे वेंचतां बशोने उगणचालीशनो नाग आवे. त्यारे ए वृत्ताकार लोकनेविषे बशेंने उगणचालीश घनरज्जु थाय छे. हवे अधोलोकना तथा उर्ध्व लोकना घनरज्जुउ भिन्न भिन्न करी कहेछेः– 'सड्ड पण हत्तरियं' अधोलोकनेविषे एकशोने साम्नी पचोतेर घनरज्जु थाय छे. 'सड्डति सट्ठीअ दुड्डकमा' ऊर्ध्व लोकनेविषे साडी त्रेसठ घनरज्जु थाय छे. अनुक्रमे ए मान जाणीलेवो. ए बन्ने एकठा करिये त्यारे बशोने उगणचालीश घनरज्जु थाय ॥२०॥

अवतरणः– हवे घनरज्जुना खांडुआना प्रतररज्जु कहे छेः–

चउ गुणिय पयर रज्जु, सत्त डुरुत्तरय डुसय चउपस्रा ॥
अह छढ नव छप्पस्रा, सव्वे चउ गुणिय सुइ रज्जु ॥२१॥

व्याख्याः– अधोलोकनेविषे एकशोने साढी पचोतेर घनराज छे. तेने चारथी गुणतां सातशे ने बे अधोलोकनेविषे प्रतरराज थाय. ऊर्ध्व लोकनेविषे साडी त्रेसठ घनराज छे, तेने चारथी गुणतां बशेंने चोपन प्रतर राज थाय. एम अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना एकठा करिये त्यारे नवशे ने छप्पन प्रतरराज थाय. ए सर्व प्रतर राजने चोगुणा करतां जे अंक आवे ते सूचीरज्जुनुं मान जाणवुं. ॥ २१ ॥

अवतरणः– हवे सूचीरज्जुनुं मान गाथाए करी कहेछेः–

अडवीस सयछुत्तर, दस सोला अठतीस चोवीसा ॥
इय संवग्गिय लोए, तिह रज्जु खंडुआ नेया ॥२२॥

व्याख्याः– अधोलोकनेविषे सातशो ने बे प्रतर रज्जु छे. तेने चोगुणा करतां बे हजार आठशें ने आठसूची रज्जु थाय. ऊर्ध्वलोकनेविषे बशोने चोपन प्रतर रज्जु छे, तेने चोगुणा करतां एक हजारने शोल सूचीरज्जु थाय. तथा अधोलोक अने ऊर्ध्व लोकना एकठा करतां त्रण हजार आठशो अने चोवीश सूची रज्जु थाय. पोताना वर्गे गणित लोकनेविषे त्रिक रज्जु कहिये. एम घनरज्जु तथा प्रतररज्जु तथा सुचीरज्जु ए त्रण राजना खांडुआनी संख्या जाणवी. ॥ २२ ॥ हवे वर्गना अंकथी गणतां जे खांडुआनी संख्या आवे ते संग्रह गाथामां कहेछेः–

एगार सहस डुसया, बत्तीसा चउसहस्स चउसठी ॥ अ
ह उड्ढं सव पन्नर, सहस्स डुन्नि सय छ न्नउआ ॥ २३ ॥

व्याख्याः– अधो लोकनेविषे वर्गने अंकथी गणतां अग्यार हजार बशोने बत्रीश खांडुआ थाय. ऊर्ध्व लोकनी श्रेणी वर्गना अंकथी गणतांचारहजार ने चोसठ खांडुआ थायतेबेहु एकठा करिये त्यारे पंदर हजार बशें ने छपन्न थाय॥२३

अवतरणः– हवे वर्ग करवानो विधि गाथाए करी कहेछेः–

अड छ चउवीस वीसा, सोल दस चऊ अ हुट्ठ चउ छठ॥
दस बार सोल वीसा, सरिसंक गुणाउ चउहि गुणे॥२४॥

व्याख्याः– अही वीस शब्द त्रण ठेकाणे जोडवो. ते आमः– अठावीश, छवीश तथा चोवीश एम जाणवुं. तथा ए माघवती सातमी पृथ्वीथी आदि लईने जे आठवीशादिक अंक त्रीछी श्रेणीनेविषे आवे ते पोतपोतानेसरखे अंके गुणी ए अनेएकठा करिये. पछी तेने चोगुणा करतां जे अंक आवे ते खांडुआनी संख्या जाणवी ते आवी रीतेः– सातमी नरक पृथ्वीने तलेथी अठावीशने अठावीसथी गुणतां सातशेने चोरासीथाय छवीसने छवीशथी गुणतां छशेनेछोतर थाय; चोवीसने चोवीसथी गुणतां पांचशोने छोतेर थाय वीशने वीशथीगुणतां चारशों थाय; शोलने शोलथी गुणतां बशें ने छपन्न थाय; दशने दशथी गुणतां एकशो थाय; अने चारने

चारथी गुणतां शोल थाय; ए साते स्थलना अंकोने एकठा करिये त्यारे बे हजार आ ठशो ने आठ थाय; तेने चोगुणा करतां अग्यार हजार बशें ने बत्रीस थाय. ए अधो लोकना खांडु आ जाणवा. हवे ऊर्ध्व लोकना खांडुआ कहेछेः—चार, छ, आठ, दश, बार, शोल तथा वीश ए अंकोने सरखा अंकथी गुणवा; ते आवी रीतेः—चारने चार गुण कस्याथी शोल थाय. छने छथी गुणतां छत्रीस थाय; आठने आठथी गुणतां चोसठ थाय; दशने दशथी गुणतां एक शो थाय. बारने बारथी गुणतां एक शोने चुमालीस थाय; शोलने शोलथी गुणतां बशोंने छपन थाय; वीसने वीसथी गुणतां चारशे थाय; ए सात स्थलोना अंक एकठा कस्याथी एक हजारने शोल थाय. तेने चारथी गुणतां चार हजार ने चोसठ ऊर्ध्व लोकना खांडुआनी संख्या थाय. पछी अधोलोकना तथाऊर्ध्वे लोकना खांडुआ एकठा करिये त्यारे पंदर हजार बशोने छनु थाय. ॥ ३४ ॥

अवतरणः— वली प्रकारांतरें वर्ग करवानो विधि गाथाए करी कहेछेः—

चउ अडवीसा छप्प, सपयरसरिसंक गुणिय पिंडुमिलिए ॥
सम दीह पिहुवेहा, छक्कमहो खंडुआ नेआ ॥ ३५ ॥

व्याख्याः— लोकना मस्तकनेविषे ऊपरली त्रीछी श्रेणीए चार खांडुआ छे. सातमी नरक पृथ्वीनी छेली श्रेणी अठावीश खांडुआनी छे. एम चारथी आदिलइने छेली छपन्नमी श्रेणी अठावीस खांडुआनी छे एटले पुरुषाकार लोकनेविषे त्रीछी छपन प्रतरनी श्रेणी छे. आदि तथा अंतनी श्रेणीउनुं ग्रहण कस्याथी मध्यनी श्रेणीनुं पण ग्रहण थाय छे; माटे छपन श्रेणी छे. जे श्रेणीनेविषे त्रीछी श्रेणीना जेटला खांडुआ छे, तेटला अंकथी गुणीए; जेमके, सर्वथी ऊपरनी मस्तक श्रेणीनेविषे चार खांडुआ त्रीछा छे. त्यारे चारने चारथी गुणतां शोलथाय एम छपन श्रेणीउ सरखे आंके गणी एकठी करिए त्यारे पूर्वोक्त पंदर हजार बशेंने छनु खांडुवानी संख्या थाय. हवे खांडुआनुं परिमाण कहे छेः— लांबपणे, पोलाइए तथा जाडपणे कुंजीनी पठे सरखा छे. एटले पोला, लांबा तथा जाडा पा राज प्रमाण ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोकना सर्वे एवा खांडुआ जाणवा. ॥३५॥

अवतरणः— हवे वृत्ताकार लोक घन करवानो विधि कहेछेः—

दाहिण पास दुखंडा, जक्कं वामे ठविज्ज विवरीया ॥
नाभी सहिय ति रज्जु, पिहु जाया सत्त दीहुच्चे ॥ ३६ ॥

व्याख्याः— ऊर्ध्व लोकनेविषे त्रस नाडीथकी दक्षिण बाजुए एटले जमणी बाजुना बे खंम, ते आमः—ऊर्ध्व लोकनेविषे ज्यां कोणीनी जगो छे, तेमध्यथी जोतां बारमी श्रेणी छे. ते बारमी श्रेणीथी बे खंम करिये एटले ऊपरला खंमनेविषे शोल श्रेणीओ रहे. एवी रीते दक्षिण बाजूना जे बे खंम छे ते ऊर्ध्व लोकनेविषे त्रस नाडीनी मावी बाजूनेविषे उलटा करी नाखीए. ते आमः— ऊपरना खंमनी कूर्परनी जे दिशा, ते मस्तकनी तरफ करिये; अने हेठला खंमनी कूर्परनी जे दिशा ते लोकना मध्य तरफ करिये. एटले ऊपरलो खंम ऊपरनी दिशाए तथा हेठलो खंम हेठली दिशाए थापीए. त्रस नाडी सहित मावी बाजूए त्रीछा त्रण राज थायछे ते आमः— त्रस नाडीथी बाहार कूर्परने ठेकाणे जमणी बाजूए आठ खांडुआ त्रीछा छे; तेना बे राज अने एक त्रस नाडीनुं राज, एम त्रण राज पोलाईए थायछे; अने लांबपणे तथा उंचपणे सात राज होयछे. ॥ २६ ॥

हिछाउ वाम खंमे, दाहिण पासे ठविज्ज विवरीअं ॥
उवरिम ति रज्जु खंमं, वामे ठाणे अहो दिज्जा ॥ २७ ॥

व्याख्याः— अधो लोकनी त्रस नाडीथी जे मावी बाजूनो आखो खंम छे, ते विपरीत एटले अवलो अथवा उंधो हेठली त्रस नाडीनी जमणी बाजूनेविषे थापीए. एटले अधोलोकनेविषे जमणी बाजूए त्रीछा चार राज, अने लांबपणे सात राज थया ते आ प्रमाणेः— त्रस नाडीथी जमणी बाजूमां आधोलोकनी हेठे बार खांडुआ छे; तेना त्रण राज; अने त्रस नाडीनुं एक राज, एम चार राज थाय. पछी ऊर्ध्वलोकनो मावी बाजूनो त्रीछो त्रण राज लांबो सात राज प्रमाण खंम छे. ते अधोलोकनी जे त्रस नाडी छे तेनी मावी बाजूए दैए, एटले सर्वत्र पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर दिशिओए तथा जाड पणे सातघनरज्जु प्रमाण घन लोक थयो. ॥ २७ ॥

इय संवट्टिय लोउ, बुद्धि कउ सत्त रज्जु माण घणो ॥
सग रज्जु अहिय हिछा, गिएहइ पासाइ पूरिज्जा॥ २८ ॥

व्याख्याः— ए प्रकारे करी इय संवर्त्तित लोक वृत्ताकारे कीधो पण ते लोक वृत्ताकारे; ते केवी रीतेकीधोः—बुद्धिए करी, मन कल्पनाए करी सात राज प्रमाण घन कीधो, तथा सात घनरज्जु थता लांबपणे, पोलपणे तथा ऊंचपणे जे अधिक

खांमुउं थाय ते लईने हेठल जे जगोए ओबु होय ते पासूं पूरिये. एवीरीते चोरस सात घनरज्जु प्रमाण लोक कह्यो पण चोरस नथी. गोलाने आकारे लोक वृत्ताकार बे. पण घनलोक वृत्ताकार लखाय नही. तेमाटे चोरस कीधो बे ॥२८॥

अवतरणः– हवे ए समघन लोकनेविषे घनरज्जु, प्रतररज्जु, सूचीरज्जु अने खांमुआनी संख्या कहे बेः–

घण रज्जु तिसय तेया,ल तेर बावनरीय पयर सूइ ॥
चउपन्न डसी खंमुअ, सहसि गवीसा नवड पन्ना॥२९॥

व्याख्याः– ए वृत्ताकार घनीकृत चोरस लोकनेविषे त्रणशेंने तेतालीश घनरज्जु बे एक हजार त्रणशेने बोतर प्रतर रज्जु बे. पांच हजार चारशेने अठ्यासी सूची रज्जु बे. खांमुआनी संख्या कहेबेः– सातराज प्रमाण घनलोकना खांमुआ एकवीश हजार नवशे ने बावन जाणवा ॥ २९ ॥

अवतरणः– हवे घनरज्जु, प्रतररज्जु, सूचिरज्जु अने घनलोकना खांमुआ आणवानी करणी गाथाए करी कहेबेः–

सगवग्गो सग चउ तिग, गुणिए उन्नयं अदुग्ध खंमु घणा॥
बन्नूसउ सिआलं, चउ गुणिए पयर सुइ अंसा ॥ ३० ॥

व्याख्याः–ए सातघनरज्जु प्रमाण समचोरस जे लोक बे. ते सात सात वर्गथी गणिए ते सप्त वर्ग कहिये. त्यारे सातने सातथी गुणिये, त्यारे उंगण पचास थाय एवी उंगणपचाश घनरज्जुनी सात श्रेणीबे. ते ओगणपचाशने सातथी गुणतां त्रणशोने तेतालीश घनरज्जुनी संख्या थाय. पढी घनरज्जुनो आंक त्रण वार चोगुणो करिये त्यारे अनुक्रमे अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकना प्रतररज्जु, सुचीरज्जु, तथा खांमुआनी संख्या मलेबे ; ते आ प्रमाणेः– त्रणशो तेताली घनरज्जुने चोगुणा करिये त्यारे एक हजार त्रणशेने बोतेर प्रतररज्जु थायबे. ते प्रतररज्जुनो आंक चोगुणो करिये त्यारे पांच हजार चारशे ने अठ्यासी शुचिरज्जु थाय. तथा सुचिरज्जुनो चोगुणो आंक करतां खांमुआनी संख्या एकवीस हजार नवसेने बावन थाय. हवे अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकनी जुदीजुदी घनरज्जु. सुचिरज्जु प्रतररज्जु तथा खांमुआनी संख्या कहेबेः– अधोलोकनेविषे एक से ने बनुं घनरज्जु बे; अने ऊर्ध्व लोकनेविषे एक शो ने सुडतालीश घनरज्जु बे, एने वली त्रण वार चोगुणा करतां अनुक्रमे प्र

तररज्जु, तथा सुचिरज्जुना अंस एटले खांडुआनो मान अधोलोक तथा ऊर्ध्वलोकनेविषे भिन्न भिन्न मिली आवेछे. ॥ ३० ॥

अवतरणः— अधो लोक तथा ऊर्ध्व लोकना खांडुआनो भिन्न भिन्न प्रमाणनो संग्रह करी कहेछेः—

सग चुलसी पण अमसी, इग तीस छतीस तिविस बावन्ना ॥
पण चुअल जुआ बारस, हस्स चउण वइसय छ हिआ॥३१॥

व्याख्याः— अधोलोकनेविषे एक शो ने छनु घनरज्जु छे; तेने चोगुणा करिये त्यारे सातशें ने चोराशी अधोलोकनेविषे प्रतररज्जु थाय. अने ऊर्ध्व लोकनेविषे एक शो ने सुडतालीश घनरज्जु छे. तेने चोगुणा करिये त्यारे ऊर्ध्व लोकनेविषे प्रतररज्जु पांच शो ने अठ्याशी थाय. अने अधोलोकनेविषे त्रण हजार एक शो ने बत्रीश सुचिरज्जु थाय. ऊर्ध्व लोकनेविषे बे हजार त्रण शे ने बावन सुचिरज्जु छे हवे खांडुआनी संख्या कहेछेः— अधोलोकनेविषे पण बार हजार पांचशोने चुमालीस खांडुआछे ऊर्ध्व लोकनेविषे नवहजार चारसो ने आठ खांडुआ छे. अधोलोक तथा उर्ध्वलोकना एकठा खांडुआ करिये तो एकवीश हजार नवशोने बावन पूर्वोक्त संख्या मले. तथा अहीं त्रणशें ने तेतालीश राज कह्यां पण तेना खांडुआ नथी. मात्र बशोने छंगण चालीशराजना खांडुआ छे तेथी एकशोने चार घनरज्जु अधिक छे. तेना खांडुआनो गम नथी. पण एक विशेष छे, के ए घनलोक चोरस कह्यो छे, अने लोक वृत्ताकार छे. त्यारे चारे दिशिना खूणा अधिक थाय; तोपण एवडो अंतर पडे नहीं. पण ए चोरसनुं जे परिमाण कह्युं छे ते अंतरंग वृत्ताकार लोकनुं मान धरीने कह्युं छे. माटे खुणानो भाग अधिक थाय नहीं. पछी प्रकारांतरनी वात तो ज्ञानी जाणे. पण पूर्वोक्त वर्गना आंक गणतां पंदर हजार बशोने छनु खांडुआ थाय. तेने चोशठ भाग देतां घनराज थाय. अधिक खांडुआ नथी त्यारे त्रणशोने तेतालीश राज केम थाय ते गीतार्थे विचारी लेवुं, असंख्यात योजननो एक राज थायछे. अथवा सहस्र भार लोहनो गोलो कोईएक महर्धिक देवतापोतानी शक्तिए करी तेने नीचे नाखी दिये त्यारे ते गोलो छ मास, छ दिवस, छ पहोर; छ घडी अने छ पल जेटला काले नीचे आवीने पडे. तेटलो एक राज थाय. ए चारे दिशिउनेविषे राजनुं प्रमाण थाय ते जाणवुं. ॥ ३१ ॥

इय पयर लिहिय वग्गिय, संवट्टिय लोग सार मुवलब्ध ॥
सुअ धम्म कित्तिअं तह, जय ह जहा भमह न इह निसं ॥३२॥

व्याख्याः– ए प्रकारे करी जे उपन प्रतर, ते प्रकारे लिखित वली संवर्गित एटले वर्गने आंके गणित लोक तेनो सार तत्व ज्ञानविचार यथार्थ पणे लोकस्वरूप सद गुरुथी पामीने ते प्रकारे यत्न एटले उद्यम करवो पूर्वे जे प्रकारे चौद राज लोक नुं प्रमाण कह्युं, ते लोकमां अनंत जन्ममरण पामता थका वारंवार अत्यर्थपणे मां भमो, एवो तीर्थंकर सकल जीव हितकर पारग परमेश्वरनो भव्य जीवने उ पदेश छे. लोकनो सार केवो छेः– ते श्रुतधर्म एटले जे सिद्धांत मार्गमां ज्ञानना बले करी ज्ञानवान तीर्थंकरे कहेलुं छे. ॥ ३२ ॥

श्रीमदाप्तोक्त विधिना, लोकनालस्य वार्त्तिकं ॥ धिमित्र धनराजस्य, गंगाख्य तनुजाकृते ॥ १ ॥ श्रीमत्सहज रत्ते न, व्याख्यात मुदयाब्धिना ॥ असंगत यदुक्तं, विशो ध्य धीधनैर्नृशं ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

इतिश्री लोकनाल द्वात्रिंशिका बालावबोध

समाप्त.

श्री कलीकुंड पार्श्वनाथायनमः

अथ

श्री सम्यक्त्व विचार गर्भित श्री महावीरजिनस्तवन.
बालावबोध सहित प्रारंभ.

मंगलाचरण.

प्रणम्य परमानंद, दायकं जिननायकं ॥ वर्द्धमान चिदानंदं, वर्द्धमान जिधा धरं ॥ १ ॥ श्रीसम्यक्त्वस्तवस्यास्य, बद्धस्य लोकभाषया ॥ बालानामवबोधाय बालाबोधं तनोम्यहं ॥ २ ॥

दोहाः– प्रणमी पद जिनवरतणा ॥ जे जगने अनुकूल ॥ जास पसायें में लह्युं ॥ समकित रयण अमूल ॥१॥ ते जिम वीरें उपदिस्युं ॥ परखद मझि अनूप ॥ तिम हुं वर्णवसुं हवे ॥ समकित सुद्ध स्वरूप ॥ २ ॥

अर्थः–श्री देवाधिदेवना चरणकमल नमीने जेना चरणकमल सकल जीवने हितकारीछे अनुकूलछे जे श्रीवीरपरमात्माना चरणकमलने प्रसादे में पण अमुलक सम्यक्त्वरत्न पाम्युं ॥ १॥ ते सम्यक्त्व जेम श्रीमहावीरें बार परषदामां प्रकास्युं तेम हुं सम्यक्त्वनुं स्वरूप महारीबुद्धिप्रमाणे वर्णवीस ॥ २ ॥

ढाल पेहेलो एबिंमीकिहां राखी एदेशी टीका.

इगविध दुविध त्रिविध चउविधवलि ॥ पणविध दशविधजाणो ॥ ए समकित शिवतरूनुं बीजक ॥ संप्रति परें मन आणोरें ॥ प्राणी समकित शुध आराधो ॥ जेम शिवमारग साधोरे ॥ प्राणी० ॥ सम० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ इगविध तुज आणा रुची दुविहा ॥ द्रव्य भावथी कहिये ॥ निश्चयने व्यवहारे अथवा ॥ समकित दुविध सद्दइयें रे ॥ प्रा० ॥ २ ॥ सद्दहणा सूधी तुज आगम ॥ परमारथ नवीजाणे ॥ समकित द्रव्यथकी तस कहिये ॥ भावथी तत्व वखाणेरे ॥ प्रा० ॥ ३ ॥ मिथ्यापुद्गल शुद्धनु वेदन ॥ समकित द्रव्य कहावे ॥ भावथि तत्व रुचिपण तिमहिज ॥ तत्व रुची परिभावेरे ॥ प्रा० ॥ ४ ॥ पुद्गलरूपी अरूपी अपुद्गल ॥ ए पण द्विविध तुं देखे ॥ क्षायोपशमिक वेदक पुद्गल ॥ शेष अपुद्गल लेखेरे ॥ प्रा० ॥ ५ ॥ निश्चय समकित शुभ, आतमनो ॥ ज्ञानादिक परिणाम ॥

अथवा आतम समकित कहिये ॥ गुण गुणी भेद न गमरे ॥ प्रा० ॥ ६ ॥ मिथ्या दृष्टीतणी संस्तवना ॥ त्यागादिक व्यवहार ॥ वलिय निसर्गपर अधिगमथी॥ बिहुंभेदे निरधाररे प्रा० ॥ ७ ॥ जिम कोई मारग भूलो पंथी ॥ भमतो मारग आवे ॥ कोइक उपदेशादिक योगे ॥ कोइक थाग न पावेरे ॥ प्रा० ॥ ८ ॥ ज्वर पण सहेजे औषध योगे, जाये एक न जाय ॥ मारग ज्वर दृष्टांते समकित ॥ इणि परें द्विविधे थायरे ॥ प्रा० ॥ ए ॥ जाती समरण प्रमुख थकीजे ॥ तास निसर्ग विचारो ॥ गुरुउपदेशादिक थी आव्युं ॥ ते अधिगम चित्तधारोरे ॥ प्र०॥१०॥ कारक रोचक दीपकभेदे ॥ त्रिविधे पण ए भाख्युं ॥ अथवा उपशम क्षायोपशमिक ॥ क्षायिक भेदे दाख्युरे ॥ प्रा० ॥ ११ ॥ तें जिमभाख्युं ते तिमकीधुं ॥ ते कारक तस खास ॥ तुज धर्मोपरि रुचिथी रोचक ॥ नहि, किरिया, अभ्यासरे ॥ प्रा० ॥ १२ ॥ मिथ्या दृष्टि थको पण पोते ॥ धर्मकथादिक सारे ॥ दीपक परें परने दीपावे ॥ ते दीपक उपचारेंरे ॥ प्रा० ॥ १३ ॥ ते समकित जिम फरस्युं जीवे ॥ तिम तुज आगल दाखुं ॥ तुज आगम नय न्याय सुधोदधि ॥ परमारथ रस चाखुंरे ॥ प्राणी समकित सुद्ध अराधो ॥ १४ ॥

अर्थ ॥ एकप्रकारनुं बेप्रकारनुं त्रणप्रकारनुं चारप्रकारनुं पांचप्रकारनुं अथवा दशप्रकारनुं सम्यक्त्वजाणवुं ए सम्यक्त्व मोक्षरूपवृक्षनुं बीजभूतजाणवुं संप्रतिराजानीपरें मनमांचिंतववुं यडुक्तं:— एगविह डुविह तिविहं, चउहा पंचविह दसविहं सम्मं ॥ मुरक तरुबीयभूयं, संपइ रायाव धारिक्का ॥ १ ॥

एकविधते ताहरी आज्ञारुचिरूप बेप्रकारनुं सम्यक्त्वते एकद्रव्य सम्यक्त्व बीजुं भावसम्यक्त्व अथवा निश्चेंसम्यक्त्व अने व्यवहारसम्यक्त्व एपण बेप्रकार कहियें॥२॥

तेमांजे तमेवसच्चंनिस्संकंजंजिणेहिं पवेइयं इत्यादिकसद्दहणासूधीहोय पण परमार्थ कांईनजाणे जीवाजीवादि स्वरूपपण नसमजे तेने द्रव्यसम्यक्त्व कहियें भावेण सद्दहंतो अयाण माणेवि सम्मत्तंमितिवचनात् तथा तमेवसच्चं इत्यादिक सद्दहणासूधीहोय अने नवतत्वादिकना भेदानुभेदपण परमार्थे समजे तेने भावसम्यक्त्व कहियें जीवाइनवपयथ्थे, जोजाणइ तस्सहोइसम्मत्तमिति वचनात् ॥

अथवा रूपी द्रव्यसम्यक्त्व अने अरूपी भावसम्यक्त्व एप्रकारेंपण बेभेदथाय तेज विवरीनेकहेछे मिथ्यात्वना शुद्धपुङ्गलनुंवेदन एटले मिथ्यात्वना त्रणपुंज कह्या छे तेमां जे सुद्ध पुंजनुंवेदवुं तेने द्रव्यसम्यक्त्व कहियें अने भावथी तत्वरुचिहोय तेने भावसम्यक्त्व कहियें ते उपशम क्षायिकादिक जाणवुं ॥ ४ ॥

अथवावली बीजेप्रकारे सम्यक्त्वनुं द्विविधपणु देखाडेछे रूपी अने अरूपी ए बे भेदेजे सम्यक्त्वछे ते आवीरीतेजे एक क्षायोपशम अने बीजुंवेदक ए बे सम्यक्त्वरूपी पुग्दलरूपछे माटेएने रूपी कहियें अने शेष जे क्षायक, उपशम अने सास्वादन ए त्रण सम्यक्त्व पुद्गलरूपनथी माटे एने अरूपी कहियें यदुक्तं विचारपंचासिकायां धम्माधम्मा गासा, जीवाकालोय खाइमंचेव ॥ सासायण उवसमियं, अपुग्गलाई तुएयाई ॥ १ ॥ उरालिय वेउव्विय, आहारग तेयस कुणी मसो ॥ उस्सासंनिस्सासंकम्मण कम्माणिछायतमो ॥ २ ॥ वग्गणअणंतआयव, मिस्सखंधो अचित्त महखंधो ॥ वेयग खाउवसमं, कज्जोय पुग्गलसुएजाणियं ॥ ३ ॥ ए द्विविधपणुपण साक्षात् केवलज्ञाने हे भगवन्तुं देखेछे ॥ ५ ॥

हवे निश्चेंसम्यक्त्व अने व्यवहारसम्यक्त्व ए बे देखाडेछे निश्चयथी निश्चेंनयें ज्ञानादिमय एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्मानो शुभपरिणाम तेहिज सम्यक्त्वकहियें अथवा ज्ञान दर्शन चारित्ररूप आत्मानो परिणाम ते आत्मारूपजछे तेमाटे आत्माज सम्यक्त्व कहियें इहां गुणगुणीनो अभेदोपचार लहियें गुणते ज्ञान दर्शन चारित्रादिक अने गुणीते आत्मा ए बे एकेकथी जूदानथी तेमाटे ए बे ने माहोमांहे भेदनथी अभेदरूपजछे यतः आत्मैव ज्ञानदर्शन चारित्राण्यथवा यतेः यत्तदात्मकएवैष शरीरमधितिष्ठति ॥ ६ ॥

बीजुं व्यवहार सम्यक्त्वते जे मिथ्यादृष्टिसंघाते परिचयप्रमुख छांमे अथवा देवगुरुनी भक्तिप्रमुख साचवे व्यवहारथी सम्यक्त्वना दूषणटाले अने सम्यक्त्वना भूषणआदरे इत्यादिक लक्षणेकरी व्यवहारथी सम्यक्त्वधारि कहियें जेमाटे गुणस्थान क्रमारोहमां कह्युंछे. देवेगुरौच संघेच, सद्भक्तिंशासनोन्नतिं ॥ अव्रतोपि करोत्येव, स्थितिस्तूर्ये गुणालये ॥ १ ॥

अथवा निसर्ग अने अधिगम ए बेभेदपण सम्यक्त्वना कहियें ते देखाडेछे. जेम कोइकपुरुष मार्गथीभूलो कोईना उपदेशविना स्वयंभमतो पोतानीमेलेज पोते मार्गप्रतेपामें एटले पोतानीमेले मार्गआवे अने कोइकतो भूलोथको परनाउपदेशथी एटले बीजोकोई मार्गदेखाडे तेवारें मार्गेआवे अने कोइकतो मूलथी मार्ग पामेज नही एमज भूलोफरे अथवा ज्वरनेदृष्टांते भाववुं जेम कोइकने ताप आवतोहोय ते पण कोइकतो पोतानीमेले परीपाकेजजाय अने कोइक औषधादिकने संयोगें जाय तथा कोइकज्वरतो जायजनही ए दृष्टांते सम्यक्त्वपण कोइकजीवतो जातिस्मरणादिकें पोतानीमेलेजपामे अने कोइकजीव गुरुनाउपदेशथी पामे

तथा कोइकपामेजनही इहांतो मिथ्यात्वरूपज्वरछे ते कोइकने गुरुउपदेशें अथवा सहेजेमटीजाय अने कोइक अनव्यादिकने मटेजनही अने जल वस्त्र कोद्रव दृष्टांत त्रणछे ते पुंजत्रयनेविषे नावसे इहां मार्ग तथा ज्वर ए बेदृष्टांतनो प्रस्तावछे माटे बेज कह्यां ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

हवे सम्यक्त्वना त्रण नेद कहेछे तेमां एक कारक बीजुं रोचक त्रीजुं दीपक अथवा एक क्षायक बीजुं उपशमिक त्रीजुं क्षायोपशमिक ॥ ११ ॥

हवे एना लक्षण कहेछे हे नगवन् हे वीतराग तें जेम कह्युंछे तेमज करवुं एटले ताहरी आज्ञाप्रमाणे चालवुं तेने कारक सम्यक्त्व कहियें अने करनार ते पण कारकसम्यक्त्ववंत थयो तेनेपण कारक सम्यक्त्व कहियें आधाराधेयानेदोपचारें अने रोचक सम्यक्त्व तेतो ताहरा धर्मउपर ताहरा शासनउपर रुचीमात्रनुं करनार एटले धर्मउपर रुचीमात्र होय पण आचरी शकेनही तेमाटे रोचक कहियें॥ १ २॥

त्रीजुं दीपकसम्यक्त्वते पोते मिथ्यादृष्टी अथवा अनव्य अंगारमर्दकादिकनी परें धर्मकथायेंकरी अथवा मातृस्थानानुष्टानातिसयेकरी कोइक प्रकारें जिनोक्त तत्व परने दीपावे वीतरागना वचन परनेप्रकाशे तेथी कोइक सम्यक्त्व पामे दीपकनीपरें पोतानीपासें अंधकार अने परने प्रकाशस्थानीय सम्यक्त्व पमाडे तेमाटे दीपक सम्यक्त्व कहिये एनुं अपरनाम व्यंजक सम्यक्त्वपण कहियें ते मिथ्यादृष्टीनेपण परिणाम परिणमन ते उपचारथी कारणनेविषे कार्यनाउपचारथी सम्यक्त्व कहिये यदुक्तं यथायथा चाचरणं जिनोदितं, तथा तथा यत्र सतिप्रवर्त्तते ॥ तदंगसम्यक्त्वमिदं प्रचक्षते, तथा विशुद्धेःखलुकारकंजिनाः ॥ १ ॥ विहितानुष्टानं प्रतिनावविशुद्धे रतीवविमलायाः ॥ प्ररोचयतीतिकृत्वा रोचकमिदमाह सम्यक्त्वं॥ २॥ स्वयंमिथ्यादृष्टि स्तदपिचजनंधर्मकथयामुहुः सम्यङ्मार्गे नयतिचहितं चैववदति ॥ तदुक्तं सम्यक्त्वं ह्यु पचरितवृत्या जिनमते तथा धर्म्मादीनांप्रकटनतया व्यंजकमिति ॥ ३ ॥ पुनरप्युक्तंः— विहियाणुठाणं पुण, कारगमिहरोयगंतु सद्दहणं ॥ मिछदिठीदीवइ, जंतत्तोदीवगंतंतु ॥ ४ ॥ इति.

ते सम्यक्त्व जेम जीवे फरस्युं अनुनव्युं पाम्युं तेम तमारा आगल वीनवुंछुं ते ताहरा आगमने अनुसारे एटले ताहरा आगमना नयजे नैगमादिकने न्याय शास्त्र संमत्यादिक तद्रूपजे सुधोदधि एटले अमृतसमुद्र तेनु परमार्थजे तद्रहस्य तेहिजरसने चाखुं अनुनवुं एटले तहारा आगमनुं परमार्थ लेइने तेने अनुसारे कहीसुं ॥ १४ ॥ ए पहेलो ढालनुं अर्थ पुरो थयुं.

ढाल बीजो देवतुज सिद्धांत मीगेएदेशी

वीरजिणेसर साहिब सुणजो ॥ निजसेवक अरदासरे ॥ दीन दयाकर ठाकुर आपो ॥ तुह्मचरणे मुज वासरे ॥ वी० ॥ १ ॥ लोकाकाशि रह्यो अविनाशी ॥ लाव अनादि अनंतरे ॥ ए नव चक्र तणा दुःख बहुला ॥ जोगवियां जगवंतरे ॥ वी० ॥ २ ॥ सूक्ष्मनिगोद वस्योहुं स्वामी ॥ अनादि वणस्सइ नामरे ॥ तिहांमे कीध अनंता पुग्गल ॥ परावर्त्तविण स्वामिरे ॥ वी० ॥ ३ ॥ अव्यवहाररासें इम व सिउ ॥ काल अनंतो जोगेरे ॥ कर्मपरिणाम नृपति आदेशे ॥ तादश जव्यता यो गेरे ॥ वी० ॥ ४ ॥ तिहांएकण सासोसासमें कीधां ॥ जवसतरे जाजेरारे ॥ ए दु ख तुजविण कुणठोमावे ॥ स्वामी मुज जवफेरारे ॥ वी० ॥ ५ ॥ व्यवहाररासी लइ उतकर्षे ॥ काल अनंत अनंतोरें ॥ थुल निगोदने पृथवी पाणी ॥ तेज अनि ल त्रस जंतोरे ॥ वी० ॥ ६ ॥ तिहांपण हुं वसिउ तुमपाखें ॥ मिथ्यामतनेजोरे रें ॥ हरिहरदेवकरीमें मान्या ॥ तुं न चढयो मनमोरेरे ॥ वी० ॥ ७ ॥ तेण में छेद न जेदन ताडन ॥ जूष तृषा गुरु जाररे ॥ गर्जवासने जन्म जरा दुख ॥ जोगवि यांनिरधाररे ॥ वी० ॥ ८ ॥ इम चउगइ जवना दुख फरसी ॥ वारअनंती अना णीरे ॥ पालादृष्टांते इगपुग्गल ॥ परावर्त्तस्थिति आणीरे ॥ वी० ॥ ९ ॥ जव्यपणा दिक ने परिपाके ॥ गिरिसरि दुपल न्यायेंरे ॥ अध्यवसाय विशेषकरणजे ॥ अना जोगथी थायरे ॥ वी० ॥ १० ॥ ते त्रिविधे जाख्यु तिहां पहेलुं ॥ यथाप्रवृत्त व ली बीजुंरे ॥ करण अपूरव नामे कहीयें ॥ अनिवृत्त करण ते त्रीजुंरे ॥ वी० ॥ ॥ ११ ॥ यथाप्रवृत्तकरणे आयुविण ॥ सात करम करी खीणरे ॥ कोमा कोमी सायर इगपलनो ॥ असंख्यजाग तिणे हीणरें ॥ वी० ॥ १२ ॥ इहां कर्कस निवि म गुपिलजिम ग्रंथी ॥ जेदन दुक्कर कामरे ॥ कर्मपरिणाम जनित घन जीवनो ॥ रागद्वेष परिणामरे ॥ वी० ॥ १३ ॥ ते ग्रंथी नवीजेदी जीवे ॥ पहेलि इणे संसार रे ॥ वार अनंति अजव्यपण आवे ॥ ग्रंथीलगें निरधाररे ॥ वी० ॥ १४ ॥ जव्य अजव्य रहे तिहां ग्रंथी ॥ संख्य असंख्योकालरे ॥ अरिहंतादिकनी ऋद्धिदेखी ॥ संयमने उजमालरे ॥ वी० ॥ १५ ॥ तिहां लहे श्रुत समायक द्रव्यें ॥ सेष ला ज नही तासरे ॥ तिहांथी ग्रैव्यकेपणजीवे ॥ पण नहि शिवपुर वासरे ॥ वी० ॥ १६ ॥ कोइक जव्य महातम तेहमां ॥ जेहनेजवनो पाररे ॥ निशित कुठार धारें जिम ततषिण ॥ जेदे बल मनोहाररे ॥ वी० ॥ १७ ॥ करण अपूरव परमविशु धे ॥ तिमते ग्रंथी आयरे ॥ जेदीने अंतर मूहूरतमां ॥ अनिवृत्तिकरणे जायरे ॥

वी० ॥ १८ ॥ मिथ्यामोह तणीस्थिति तेहनु ॥ अंतरमुहूरत एकोरे ॥ उदय कृ ण उपरें उलंघी ॥ ते समरथ सुविवेकोरे ॥ वी० ॥ १९ ॥ अनिवृत्ति करण विशे षे अंतर ॥ मुहूरतकाल अनूपोरे ॥ अंतरकरण करे तिहां वेद्यजे ॥ दलिक अनाव सरूपोरे ॥ वी० ॥२०॥ जिमवनदवदग्धे घन उखर ॥ पामी गम उल्हायरे॥ तिम मिथ्या वेदन वनदव सम ॥ अंतरकरणे थायरे ॥ वी० ॥ २१ ॥ अंतरकरण करे मिथ्यातनी ॥ थितियुग कहे जिन न्यानेरे ॥ अंतरकरण थकी थिति हेठी ॥ पहे ली मुहूरत मानेरे ॥ वी० ॥ २२ ॥ तेहथी उपरली थिति बीजी ॥ तिहां प्रथम स्थिति जाणोरे ॥ मिथ्यादलीकनुं वेदन तेहथी ॥ मिथ्यादृष्टी वखाणोरे ॥ वी० ॥ २३ ॥ अंतरमुहूरत ते थितिनाशे ॥ नही मिछादल वेदोरे ॥ अंतरकरणनो प्र थम समय तिहां ॥ लहे उपशम निरवेदोरे ॥वी०॥२४॥ परमानंद मगन होइ नटजि म॥जीती कटक अशेषरे॥न्यायवंत हरषेजिम गाढे॥न्याय धनागम पेखरे॥वी०॥२५॥

अर्थ ॥ हवे बीजाढालनी प्रथमगाथातो सुगमछे माटे बीजीगाथाथी अर्थ क हेछेः— इहां सदैवलोकाकाश प्रतिष्ठित अनादि अपर्यवसित नवचक्राख्य पुरोदर वर्त्ति तेमांहे वर्त्तता एवा पूर्वे सर्वप्राणी अनादिवनस्पतिमां सूक्ष्मनिगोद परपर्याय मांहे अनंता पुद्गलपरावर्त्तलगें जीव रह्यो साथें एकश्वासोश्वासमां सतरनव जाजेरा करे जन्ममरणादिक वेदनाना समूहने अनुनवे तथाविध नव्यप्राणी पण अनंतो काल अव्यवहाररासीमांरही कर्मपरिणाम राजानी आज्ञाथी तथाविध नव्यपणाने नियोगेकरी व्यवहाररासीमांहे प्रवेसकरे.

व्यवहाररासीते कोनेकहियें जे बादरनिगोद पृथ्वी पाणी तेज वायु प्रत्येकवन स्पति अने त्रस तेमांपण अनंतानंत कालसुधीरहे एप्रमाणे सकलडुःखपादप बी जनूत जे मिथ्यात्व तेणेकरी एटला काललगें चारगतिनुं संसार संबंधी छेदन ने दन ताडन नूषातृषादिसहन गुरुनाराक्रमण गर्नवशन जन्म जरा रोग शोकइष्टवियो ग अनिष्टसंयोग इर्षा विषाद मरणादिक दारुणडुःख प्रायें अनंतिवार अनुनवीने पालाने दृष्टांते पालुंते धान्यनरवानुं नाजनविशेषजाणवुं ते जेम कोइकपुरुष ते पालामां थोरुंथोरुं धान्यनाखे अने गणुघणुकाढे ते धान्य केटलेककाले खूटे तेम कर्मधान्यरूप पालामांहे जीव अनानोगथी थोडा कर्मबांधे एटले थोरुंघाले अने घणाकर्मनिर्जरे एटलेघणुंकाढे एरीते छेहलो एक पुद्गलपरावर्त्त जेणे नवस्थिति आणीराखीछे एवुंकोईक चारगति संबंधीजीव ते कथमपि महताकष्ट तथा नव्य त्व परिपाकना वशथकी गिरिसरिडुपल घोलना.कल्प पर्वत नदी पथ्थर घोलना स

मान अनाभोग निर्वर्त्तित एवुं यथाप्रवर्त्तिकरण करणंपरिणामोत्रेतिवचनात् एहवुं अध्यवसायविशेषरूप तेणेकरीने एक आयुवर्ज्जीने सर्वज्ञानावरणादिक सातेकर्म ते नी पल्योपमासंख्येयभागे न्यून एककोटीसागरोपमनी स्थितिछे जेहनी एहवांकरे ते सर्वकर्मनी उत्कृष्ट स्थितिकेटलीछे के जेमांथी बीजीन्यूनकरे ते गाथायेंकरीकहे छे मोहे कोडाकोडी, सत्तरिवीसंचनामगोयाणं ॥ तीसयराणि चउह्णं, तित्तीसयराणि आउस्स ॥ १ ॥ अत्रांतरे जीवने कर्मपरिणामजनित घन रागद्वेषपरिणामरूप क र्कश निविडचिरप्ररूढ गुपिल वल्कग्रंथीनीपरे डुर्जेद अभिन्नपूर्वेगांठीहोय.

तडुक्तं घस्सण घोलण जोगा, जीवेणजयाहविज्ज कम्मठिई ॥ खविया सव्वासा गर, कोडाकोडी पमुत्तूणं ॥ १ ॥ तत्थवियथोवमित्ते, खविये इत्थंतरंमि जीवस्स. ह वइहु अभिन्नपुव्वो, गंठीएवं जिणाबिंति ॥ २ ॥ गंठित्तिसुडुप्रेउ, कक्कडघणरूढगूढ गंठिव जीवस्स कम्मजणिउं, घणरागदोस परिणामो ॥ ३ ॥

ए गांठ सुधी अनव्यपण यथाप्रवर्त्तिकरणेकरी कर्मखपावी अनंतिवारआवे प णगांठने नेदेनही यडुक्तं प्रवचनसारोद्धारे करणं अहापवत्तं, अपुव्वमनियट्टिमेव न व्वाणं ॥ इयरेसिं पढमंचिय, नसुइकरणंति परिणामो ॥ १ ॥

ग्रंथीदेशेंवर्त्ततो नव्य अथवा अनव्य तिहां संख्यात अथवा असंख्यातोकाल रहे तिहांरह्योथको द्रव्यश्रुत भिन्न दशपूर्वेलगें अनव्यनणे ते तीर्थंकरनी ऋद्धिदे खी अथवा स्वर्गसुखादिकनो अर्थिथको जेवारे दीक्षालियें तेवारे पूर्वनणे तेमाटे ज भिन्न दशपूर्वांतश्रुत ते मिथ्याश्रुतपणहोय मिथ्यात्वेंग्रह्यामाटे मिथ्याश्रुत कहे वाय अने जेने चउदपूर्व अथवा संपूर्ण दशपूर्वश्रुतहोय तेने नियमा सम्यक्त्व होय पण कांइकउणा दशपूर्वधरादिकनेविषे सम्यक्त्वनी नजना जाणवी यडुक्तं कल्पनाष्ये चउदस दसय अभिन्ने, नियमा सम्मत्त सेसए नयणा ॥ इति तिहांथी द्रव्यसंयमपाली जैननीक्रियानेबले नवग्रैव्यकेपणजाय पण मिथ्यादृष्टीमाटे संसा रनो पारपामेनही यडुक्तं आवश्यकटीकायां अनव्यस्यापि कस्यचित् यथाप्रवृत्तिक रणतो ग्रंथिमासाद्यार्हदादि विनूतिदर्शनतः प्रयोजनांतरतोवा प्रवर्त्तमानस्य श्रुत सामायिक लानोनवति नशेषलानइति.

एम यथाप्रवर्ति करणेकरीने ग्रंथीलगे नव्यपणआवे अने अनवपणआवे पण अपूर्वकरणादिकतो नव्यनेजहोय अपूर्वकरणे तो पथिक पिपीलिकयोर्ज्ञातं यथा.

जह इह तिन्निमणूसा, जंतम्नविपहं सहावगमणेणं ॥ वेला इक्कमनिया, तुरंति पताय दोचोरा ॥१॥ दट्ठुंमग्ग तडत्थे, तत्थेगोमासउ पडिनियत्तो ॥ बीउगहिउ तइउ,

समइक्कंतो पुरंपत्तो ॥ २ ॥ अडवी नवो मणूसा, जीवाकम्मठिइ तहोदीहो; गंठी यनयठाणं ॥ राग द्दोसाय दो चोरा ॥ ३ ॥ नग्गोठिइ परिवुड्ढी, गहिउ पुण गंठि उ गउ तइउ ॥ सम्मत्त पुरंएवं, जोइज्जा तिन्नि करणाइं ॥ ४ ॥ खिइ लाजावियग मणं, थाणूसरणं तउ समुप्पयणं ॥ ठाणंठाणुसिरेवा, ऊहरणं वा मुअंगीणं ॥ ५ ॥ खिइगमणं पिव पढमं. थाणुं सरणंच करण मपुव्वं ॥ उप्पयणंपिवतत्तो, जीवाणं करण मनियट्टिं ॥ ५ ॥ ठाणुव्व गंठिदेसो, गंठिय सत्तस्स तत्र वठाणं ॥ ऊपरणं पिवतत्तो, पुणोविकम्मठिइविवड्ढी ॥ ७ ॥

एम ए बे दृष्टांते त्रणकरण जाववां एकआयुकर्म्मवर्जिने बीजा सातकर्मनी ऊत्कृष्टी स्थिति खपावी बाकी एककोडाकोडी सागरोपमते पल्योपमने असंख्यातमेंजागें न्यून सातेकर्मनी स्थिति प्रत्येकें आणी राखी.

हवे कोइक महात्मा समासन्न परमनिर्वृत्ति सुख समुल्लसित प्रचुरडुर्निवार वीर्यप्रसर तीक्ष्ण कुठारधारानीपरे अपूर्वकरणरूप आत्मानी परमविशुद्धें यथोक्त स्वरूप ग्रंथीनोजेदकरीने मिथ्यात्वमोहनीय कर्मस्थितिनु अंतरमूहुर्त्त उदयक्षणथी उपरें अतिक्रमिने अनिवृत्तिकरण संज्ञितविशुद्धि विशेषेकरीने अंतरमूहुर्त्तकाल-प्रमाण वेद्यदलिका जावरूप अंतरकरणकरे इहां यथाप्रवृतिकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण नो अनुक्रम आवीरीतेंजाणवुं तेकहेले यथा जागंठी तापढमं, गंठीसमइत्रउ जवेबीयं ॥ अनियट्टीकरणं पुण, सम्मत्त पुरक्खडेजीवे ॥ १ ॥ गंठिंस म इत्रआंत्ति ॥ ग्रंथि समतिक्रामतः निदानस्येत्यर्थः सम्मत्तपुरक्खडेति सम्यक्त्वं पुरस्कृतं येनतस्मिन् आसन्नसम्यक्त्वे एवजीवे अनिवृत्तिकरणं जवतीत्यर्थः

एटले जे करणेकरी गिरिसरि जलवेगालोम्यमान पाषाणनीपरें घंचना घोलनादि केकरीने एकआयुकर्मवर्जि शेष सातेकर्मनी कांइकउणी एक कोडाकोडी सागरोप मनी स्थितिकरतो ग्रंथीदेशलगेआवे ते यथाप्रवृतिकरणकहिये अने जे अध्यवसाये अप्राप्तपूर्वकें घन रागद्वेष परिणतिरूप ग्रंथीने जेदवामांमे ते अपूर्व करण कहियें वली पूर्वप्राप्तथयाजे अध्यवसाय तेने अनिवर्तकें एवां अध्यवसायविशेषे ग्रंथीजेदकरीने सम्यक्त्वपामे ते अनिवृत्तिकरण कहियें हवे अंतरकरण करतिवे लायें मिथ्यात्व मोहनीयकर्मनी बे स्थितिकरे एक अंतरकरणथी हेठली प्रथम स्थिति अंतरमुहूर्त्तप्रमाण बीजी तेथी उपरली बाकीरहेली पल्योपमासंख्येयजाग न्यून कोडाकोडी सागरोपमरूप स्थितिजाणवी.

तेमां प्रथम स्थितिनेविषे मिथ्यात्वदलिक वेदनथी ए जीवने मिथ्यादृष्टीज क

ह्वियें अंतरमुहूर्त्ते वली ते स्थितिगयेथके अंतरकरणनो प्रथम समय तिहांज सम्यक्त्वपामे मिथ्यात्वदलिक वेदनना अनावथीजेम वनमां दवलागोहोय ते जेवारे ऊखरजूमिपामें तेवारें पोतानीमेलें उल्हाइजाय तेम मिथ्यात्व वेदनरूप वनदव तेपण अंतरकरणरूप ऊखरजूमिपामिने उल्हाइजाय तेवारे तेने उपशमसम्यक्त्वनो लाज थाय.

उक्तंच ऊसरदेसंदड्ढि, ल्लियं च विज्झाइ वणदवोपप्प॥ इयमिच्छस्साणुदए, उवसमसम्मंलहइजीवो ॥ १ ॥ टीका ॥ ग्रंथिनेदोहि मनोविघातपरिश्रमादिनिर्दुःखसाध्योवर्त्तते तदाहि सजीवः कर्मरिपुमध्यगतस्तं ग्रंथिंप्राप्यातीव परिश्राम्यति प्रचूतकर्मारातिसैन्यांतकत्वेन संजातखेदत्वात् संग्रामशिरसीवदुर्जयापाकृतानेक शत्रुनरनरेंद्रजटवत्॥ यदुक्तं सम्यक्त्वस्तवे॥सोतव्वरणे सुहम्मो, व वेरिजयजणियपरमआणंदो ॥ सम्मत्तं लहइ जिउ, सामन्नेणं तुह पसाया ॥ १ ॥ टीका ॥ सजीवस्तत्रानिवृत्तिकरणेकृते अंतरे हेनाथ तवप्रसादात् तवसाह्यात् सामान्यतो नतुक्षायिकादिवद्विशिष्टतया सम्यक्त्वं उपशमिकाख्यं लजतेजीवः कइवेत्याह रणे सुहम्मोवेत्ति वेरिजयेन जनितोयः परमानंदस्तंरणे सुजटइव॥तथाहि रणेजटो वैरिजयादानंदमश्नुते तथैव रागद्वेष कर्मस्थित्यादि वैरिजयात्परमानंद कल्पंसम्यक्त्वं लजते जीव. तदुक्तं पावंति खवेऊणं, कम्माइ अहापवत्त करणेणं ॥ उवलनाएण कहमवि, अनिन्न पुविं तउगंठिं ॥ १ ॥ तंगिरिवरंवनेत्तुं अपुव्वकरणुग्गवज्ज धाराए ॥ अंतोमुहुत्तकालं ॥ गंतुंअनियट्टिकरणंमि ॥ २ ॥ पइसमयंसुज्झंतो, खविउंकम्माइतच्छ बहुआइं ॥ मिच्छत्तंमिउइस्से खीणेणुइयंमि उवसंते ॥३॥ संसारगिम्हतविउ, तत्तो गोसीसचंदणरसोव्व ॥ अइपरम निवुइ करं, तस्संते लहइसम्मत्तं ॥ ४ ॥ अतएव जव्यानां मिथ्यात्वस्यानादिसांतत्वं ॥ तदुक्तं मिच्छत्तमजव्वाणं, तमणाइ मणंतयंमुणेयव्वं ॥ जव्वाणंतमणाइ, सपज्जवसियंतु सम्मत्ते॥ए बीजाढालनी सोलमीगाथाथी मांमीने चोवीसमी गाथासुधी नवगाथानो अर्थकह्यो बीजाढालनोअर्थ पूरो थयो.

॥ ढाल त्रीजो सहीरेसमाणी एदेशी. ॥

॥ इणीपरें तुजथी समकित फरस्युं ॥ जेहथी जवजल तरस्युंरे ॥ धनधन तुम सेवा ॥ एथी मन वंछीत फल लेवा ॥ तेकरवा मुज हेवारे ॥ ध० ॥ १ ॥ तिहां कोइ देश विरति तससरसी ॥ सर्व विरतिलहे हरिसीरे ॥ ध० ॥ मिच्छामयण कोदरवा सरिखुं ॥ उपशम ओषधपरखुंरे ॥ ध० ॥ २ ॥ जल वस्त्रादिकनेदृष्टांते ॥ तुज आगम कहेखांतेरे ॥ ध० मिथ्यापुंजकरेत्रणसोधी ॥ उपशमकरीशुनबोधीरे ॥ ध० ॥ ३ ॥ शुद्धने अर्द्ध विशुद्धते बीजो ॥ अविशुद्धे मतरीजोरे ॥ ध० ॥ उपशमथी

पडिउंमनवामे ॥ क्षायोपशमिक पामेरे ॥ ध० ॥ ४ ॥ मिश्र तथा मिथ्यात्वने फर से ॥ करममतीइम हरसेरे ॥ध० ॥बीजुंक्षायोपशमिक कहिये, उपशमपरिपणल हियेंरे ॥ध०॥५॥ मिछापुंजकरीत्रिण निरणे ॥ कोई अपूरवकरणेरे ॥ध०॥ शुद्धपुंज तिहांवेदतोज्ञानी. जिनवचनामृतपानीरे ॥ ध० ॥ ६ ॥ उपशमपाम्याविण तुजना मे ॥ क्षायोपशमिकपामेरे ॥ ध० ॥ यथाप्रवृत्तिकरणत्रयक्रमथी ॥ अंतरकरणेतुज थीरे ॥ ध० ॥ ७ ॥ जेलहेउपशम नवजल तरवा ॥ तसत्रणपुंजन करवारे ॥ ध० आलंबन अलहंती ईयल, जिमसंगाण नमूकेरे ॥ ध०॥ ८ ॥ मिश्रपुंज अणलाभी उपशमे ॥ तिममिथ्याते ढूकेरे ॥ ध० ॥ उपशमसमकितथीतिणिपडिउं ॥ जइ मि थ्या गुण अडिउरे ॥ ध० ॥ ९ ॥ इम सिद्धांतीनिज मत खोले ॥ कल्पनाष्यपण बोलेरे ॥ध०॥ ते त्रणपुंजनुंसंक्रमजाणुं ॥ जिनवयणेमनराखुंरे ॥ ध०॥१०॥ मिथ्या दलिकथीपुद्गल खिंची ॥ समकितदृष्टीविंचीरे ॥ ध० ॥ संकरमावे समकित मीसें॥ शुभपरिणामे हिंसेरे ॥ ध० ॥ ११ ॥ समकितदृष्टी मीस आकर्षी ॥ समकितमां हेहर्षीरे ॥ ध० ॥ संकरमावे मिथ्यादृष्टी ॥ मिथ्यामांगुणदृष्टीरे ॥ ध० १२ ॥ सम कित पुद्गल मिथ्यामांहे ॥ पण मीसें नवि चाहेरे ॥ ध० ॥ मिछाखीण नहीछे जे हने ॥ ते त्रण पुंजछे तेहनेरे ॥ ध० ॥ १३ ॥ मिछाखीण थये दोय पुंजी ॥ मी स खये एक पुंजीरे ॥ ध०॥ क्षायक समकित पुद्गल नाशे ॥ जिन आगम इम भा सेरे ॥ ध० ॥ १४ ॥ सोधित मयण कोद्रवा थाने ॥ समकित पुद्गल मानेरे ॥ ध० ॥ तेहने विरुध तैलादिक पाशे ॥ शुद्धपणु तस नासेरे ॥ ध० ॥ १५ ॥ तिमज कु शास्त्र कुतीर्थिकसंगे ॥ तस किरिया मन रंगेरे ॥ ध० ॥ मिथ्या, मिश्रित समकित जाये ॥ ततक्षण मिथ्या थायरे ॥ ध० ॥ १६ ॥ समकितथी पडिऊंजो पाछुं ॥ वली समकितलहे आछुंरे ॥ ध० ॥ ते त्रण पुंज करे तिहां फेरी ॥ मिछ अपूर विवेरीरे ॥ध०॥१७॥ अनिवृत्तिकरण बलें ते रसीउ ॥ समकित पुंजे वसीउरे ॥ ध०॥ समकित परेजिहां विरतिनेपावे ॥ आद्यकरण बे आवेरे ॥ध०॥ करण अपू रव कालने आगे ॥ विरतिलही तिहां जागेरे ॥ ध० ॥ १८ ॥ अंतर मुहुरतमां तस लाधे ॥ निज परिणामे वाधेरे ॥ ध० ॥ उंचो नियम नही तिहां कोई ॥ वृ द्धि हाणी सम होईरे ॥ ध० ॥ १९ ॥ अनाभोग परिणामनी हाणे ॥ गइ विरति नवी जाणेरे ॥ ध० ॥ अकृत करण थको ते प्राणी ॥ फिरी लहे विरति सुहा णीरे ॥ ध० ॥ २० ॥ आभोगें जे विरतिथी खसिया ॥ तिमज मिथ्यागुणे वसिया रे॥ध०॥अंतरमुहूरतमां लहे आछी॥जघन्य थको फिरी पाछीरे ॥ध०॥२१॥उत्कर्षे ब

हुकालें नाषी ॥ आद्य करणछे सांखीरे ॥ ध० ॥ इणीपरे कर्मप्रकृति वृत्तिमांहे ॥ तिहां जोजो उछाहेंरे ॥ ध० ॥ २२ ॥ कोइ विराधित समकेत फेरी ॥ ते लहे मिथ्या वेरीरे ॥ ध० ॥ छठीनरक लगें ते जाय ॥ समय मतें कहेवायरे ॥ ध० ॥२३ आऊ बंधविना ऊछाहे ॥ फिरी समकित अवगाहेरे ॥ ध० ॥ वैमानिकविण आउ न बांधे ॥ कर्म मती मत सांधेरे ॥ ध० ॥ २४ ॥ समकित पतित कहे मतबांधे ॥ उत्कृष्टी स्थिती बांधेरे ॥ ध० ॥ भिन्न ग्रंथिने आगम न्याने ॥ स्थिति उत्कर्ष न मानेरे ॥ध०॥ २५ ॥ इणीपरें भेद मतांतर जाणे ॥ पण संदेह न आणेरे ॥ ध० निःशंकित तुज वयण आराधे ॥ न्यायें तस गुण वाधेरे ॥ ध० ॥ २६ ॥

अर्थः– हवे त्रीजाढालनो अर्थ कहेछे हवे प्रथम सम्यक्त्व पामतां कोइक जीव सम्यक्त्वनी साथेंज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुं पामे ॥ उक्तंच शतकवृहच्चूर्णौ ॥ उवसम सम्मद्दिट्ठी, अंतरकरणेठिउं कोइ ॥ देसविरयंपिलहइ, कोइपमत्ताप मत्तभावंपि सासाणोनकिंपिलभेइति. पछी ते ओषधसमान उपशम सम्यक्त्वे करीने कोईक जल वस्त्रने दृष्टांते मिथ्यात्व मोहनीयकर्म सोधीने त्रण प्रकारेकरे ते कहेछे १ शुद्धपुंज २ अर्द्धविशुद्धपुंज ३ अविशुद्धपुंज.

ते त्रण पुंजमांथी जेवारे शुद्ध पुंजनो उदय होय तेवारे शुद्धमिथ्यात्व पुद्गल वेदनथी क्षायोपशम सम्यक्त्व कहियें तेनुं लक्षण कहेछे जेम कोद्रवा धोयाथकां केटलाक मयणारहित थाय अने केटलाक लिगारेक मयणावालारहे अने केटलाक तो मयणासहीतज रहे अथवा पाणीपण केटलुक स्वछ निर्मल थाय अने केटलुक निर्मल तथा मेलुं रहे तथा केटलुकतो मेलुजरहे तेमज वस्त्रपण धोयाथकां कोइक निर्मलज थाय कोइक अर्द्ध मलीन रहे अने कोइकतो आखु मलीनजरहे.

ए पूर्वोक्त दृष्टांते त्रण पुंजपण छे तेमां जेवारे शुद्धपुंजनुं उदय होय तेवारे तेना उदयना वशथकी जीवने विशुद्ध अरिहंतना तत्वनी श्रद्धाहोय तेथी ते जीव क्षायोपशमिक सम्यक्त्व पामे अने जेवारें वली अर्द्धविशुद्ध पुंजनो उदय होय तेवारे ते उदयनावशथकी जीवने अर्द्धविशुद्ध अरिहंतभाषीतनुं तत्व श्रद्धान होय तेवारे एजीव सम्यक् मिथ्यादृष्टी एटले मिश्रदृष्टीवंत कहिये अने जेवारें अशुद्धपुंजनो उदय होय तेवारें जीवने मिथ्यादृष्टीज कहियें तेवारें ते उदयनावशथकी वीतरागना शासनउपरें सर्वथा रुची नज होय.

यथाप्रवृतिकरणादिकरणत्रय अनुक्रमे अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वपामे त्रणपुंज तोजीव सर्वथा नजकरे तेमाटे उपशम सम्यक्त्वथी पडयो अवश्यमिथ्यात्वेज जाय.

हवे कर्मग्रंथिकनुं मतकहेछे कर्मग्रंथवाला एममानेछे के अनादि मिथ्यादृष्टीजीव स म्यक्त्वलाजनकाले यथाप्रवर्त्यादिक करणत्रय पूर्वक अंतरकरणकरे तिहां उपशम सम्य क्त्वपामे तिहांत्रणपुंज अवश्यकरे तेकारणमाटेज उपशमथी पड्योजीव क्षायोपश मिकसम्यक्त्वपामे अथवा मिश्रपुंजेजाय अथवा मिथ्यात्वेजाय एचारगाथानो अर्थछे.

हवे पांचमीगाथाथी मांमीने नवमीगाथासुधी वली सिद्धांतिकनुंमत कहेछे कोई अ नादि मिथ्यादृष्टी तथाविधसामग्रीना सद्भावें अपूर्वकरणेकरी त्रणपुंजकरे पछी शु द्धपुंजना पुद्गलनेवेदतो जीव उपशम सम्यक्त्व पाम्याविना प्रथमथीज क्षायोपश मिक सम्यक्त्वपामे अने बीजा घणाजीवतो यथाप्रवर्त्यादिक करणत्रय अनुक्रमे अंतरकरणे उपशम सम्यक्त्वपामे माटे त्रणपुंजतो जीव सर्वथानजकरे उपशमथी पड्यो अवश्यमिथ्यात्वेज जाय ॥ यदुक्तं कल्पजाष्ये ॥ आलंबण मलहंताजह सठाणं न मुंचएइलिया ॥ एवं अकयतिपुंजो, मिछंचिय उवसमीएई ॥ १ ॥ जेम गात्रसमु त्क्षिप्तकरेथके इलिकाजे गामरते बीजास्थानकरूप आलंबनने अणपामति पोतानुं स्वस्थाननमूके गात्रसंकोची तेजस्थानके रहे तेम उपशम सम्यक्दृष्टी उपशम स म्यक्त्वथीपड्यो त्रणपुंजकरयानथी माटेमिश्रपुंज अने शुद्धपुंजलक्षण स्थानांतर अणपामतो वलीतेहीज मिथ्यात्वपुंजे आवे एसिद्धांतिकनुं मत कह्युं॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥ ९॥

हवेपुंजत्रयनुसंक्रमण कहेछे कल्पजाष्यमां एमकह्युंछे के सम्यक्दृष्टीजीव मि थ्यात्वदलिकथकी पुद्गलआकर्षि प्रवर्द्धमान परिणामथको सम्यक्त्वपुंजमांहे अथ वा मिश्रपुंजमांहे संक्रमावे अने मिश्रपुद्गलने सम्यक्दृष्टी सम्यक्त्व पुंजमांहे संक्र मावे अने मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वपुंजमां संक्रमावे तथा सम्यक्त्वपुद्गल पण मिथ्या त्वमांहेज संक्रमावे पण मिश्रमांनसंक्रमावे यदुक्तं मिछत्तासंकंती अविरुद्धा होइ सम्म मीसेसु ॥ मीसाउवादोसुं, सम्मामिछंन उणमीसं ॥ १ ॥ जेनो मिथ्यात्वक्ष यपाम्युंनथी ते सम्यक्दृष्टी नियमा त्रिपुंजीजहोय अने मिथ्यात्वक्षीणथयेथके द्विपुंजीजहोय अने मिथ्यात्व तथा मिश्रबेक्षीणथयेछते एकपुंजीजहोय अने स म्यक्त्वपुंज क्षयकरेथके क्षपक एटले त्रणेपुंजनोक्षय करयाथकां क्षायिक सम्यक्त्व वंत होय ॥ यदुक्तं कल्पजाष्ये मिछत्तेमिश्रखीणे, तीपुंजीसम्मदिठिणोनियमा ॥ खीणं मित्र मिछत्तेदुएगपुंजीवखवगोवा ॥ १ ॥ जे सम्यक्त्वपुद्गल ते सोधित मदनकोद्र वा समानजाणवा तथा जेम सोधेला कोद्रवा विरुधतैलादिके जाव्याथका फरीथा ठा मयणालाथाय तेम सम्यक्त्वपुद्गलने विरुधतैलादिक समान कुतीर्थसंसर्ग कु शास्त्रश्रवणादिक मिथ्यात्वेकरी वासीतकरयाथकां ततक्षण मिथ्यात्विथाय.

वलीते सम्यक्त्वथी पडवडियो फरी सम्यक्त्वपामे तेवारे शीरीते पामे तेकहे छे प्रथम पडवडिया केटलाहोय अने ते केइगतिमांजाने ते कहेछे.

अनविय चउछ्रणंते, पंचमए दंसणाइ परिवडिया ॥ सेसाउसिद्धिमाइ, अठ्म णंतंमि तेवीसं ॥ १ ॥ मतांतरेप्येवं ॥ अनविय चउछ्रणंते, पंचंमिसमाइ परिवडी सिद्धा ॥ सेसाअठमणंते, पढ्ढमूलवणाइ बावीस ॥ २ ॥ चत्तारिय वाराउ, चउदस पुव्वीकरेइआहारं ॥ संसारंमिवसंतो, एगनवे डुन्नि वाराउ ॥ ३ ॥ तिछ्रयररिद्धिदंस ण, सुहुमपयछ्रावगाहणाहेउं ॥ संसयवुछेयछं, गमणंजिणपायमूलंमि ॥ ४ ॥ स मउजहन्नमंतर, उक्कोसेणंहवंति छम्मासा ॥ आहारसरीराणं, उक्कोसेणं नवसह स्सा॥५॥ जंनरए असुराई, पुढवाइसु सयल विगल तिरिएसु ॥ वंतर जोइविमाणे, सुपत्तेयइमेअसंखिज्जा ॥ ६ ॥ सियसंखसियमसंखा, मणुएसु अणंतया वणेनवरं ॥ परिवडिअगया आहा, रगविलप्पंति इह समए ॥ ७ ॥

जेवारेपण सम्यक्त्वथी पड्यो फरीपाछुं सम्यक्त्वपामे तेवारें पण अपूर्वकरणेकरी पुंजत्रणकरीने अनिवृत्तिकरणेकरी सम्यक्त्व पुंजेजाय एटले क्षायोपशम सम्यक्त्व पामे इहां कोई पूछेजे अपूर्वकरण तो पूर्वें केवारेपण एवो परिणाम न आव्योहोय अने प्रथम नवोआवे तेने कहियें करणंपरिणामविशेष इतिवचनात् अने अ पूर्वकरणतो ग्रंथीनेदेआव्योहतो तेहीज वली परिणामे फरी आव्यो तेवारे अपू र्वपणु केमथयुं ? तेने उत्तरकहेछे अपूर्वमिवापूर्वस्तोक वारमेवलाभादितिवृद्धाः अपूर्व नीपरें अपूर्व थोमावारज पाम्या माटे. फरीअपूर्वकहियें जेम कोइक पदार्थ पुत्र ध नरत्नादिक पूर्वेंथोमुंपाम्याहोय ते फरीपामे तोपण तेने अपूर्व करीजमाने तेम अ पूर्वकरणरूप परिणामपण जीवने थोमीवारज आव्योछे तेमाटे तेपण अपूर्वज कहियें ए सिद्धांतनुं मतजाणवुं.

हवे सम्यक्त्वपाम्यानीपरे जेवारे कोइजीव देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुपा मे तेवारेपण यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण ए बे करणकरे पण अनिवृत्तिकर ण करेनही अपूर्वकरणनो अंतरमुहूर्तरूप काल समाप्तिने अनंतर समयेज देश विरति सर्वविरति पडिवज्या, पछी अनंतर अंतरमुहूर्तलगे ते जीवने अवश्य प्रव र्द्धमान परिणामहोय पछी अंतरमुहूर्त्त उपरांत नियमनही कोइप्रवर्द्धमान परिणा मिथकोजरहे अने कोइ स्वनावस्थजरहे तथा कोइ हीनपरिणामिपणथाय तेवली अनाजोगे कोइक परिणामनी हाणीथकी देशविरति अथवा सर्वविरति थकी पडया ते अकृतकरणा एवतांजनंतेके० यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण कर्याविना

नाज वली देशविरति अथवा सर्वविरतिपणुपामे अने जेजीव आनोगेकरी पडया अने अनोगेंकरीनेज मिथ्यात्वेंगयां ते जघन्यथी अंतरमुहूर्त्तें अने उत्कर्षथी घणे काले यथोक्त करणपूर्वकज एटले पूर्वोक्त बन्नेकरणोकरीनेज देशविरति अथवा सर्वविरतिपणु वली फरीथीपामे एवुं कर्मप्रकृतिनी वृत्तिमां कह्युंछे ए दशमीगाथाथी मांमीने बावीसमी गाथासुधी तेरगाथानुं अर्थजेलो कह्युं ॥ २२ ॥

हवे सिद्धांतनुंमत अने कर्मग्रंथनुंमत निन्ननिन्नकहेछे तेमां प्रथम सिद्धांतिक नामतेतो विराधित सम्यक्त्वी सम्यक्त्वथी पडयो फरी सम्यक्त्व पाम्योथकोपण कोइक छठीनरकसुधीजाय अने कर्मग्रंथिकनामतेंतो छते सम्यक्त्वे वैमानिकविना बीजाठेकाणानुं आयुबांधेजनही यडुक्तं सम्मत्तंमिउलद्धे, विमाणवज्जं न बंधए आउ ॥ अहवन्न समत्त जहो, अहवन बंधाउ उपुव्वि ॥ १ ॥ वली कर्मग्रंथिकनेमतेंतो सम्यक्त्वपामीने पडयो तेजीव उत्कृष्टस्थितिनी कर्मप्रकृतिबांधे तथा सिद्धांतिक मतेतो निन्नग्रंथीवालाने उत्कृष्टीस्थितिनो बंधजनहोय.

यदुक्तं सैद्धांतिक मतेहि विराधित सम्यक्त्वे गृहीतेनापि सम्यक्त्वेन षष्ट पृथिवीयावत्कोप्युत्पद्यते अने कार्मग्रंथीकमतेतो वैमानिकेन्योन्यत्रनोत्पद्यते तेनगृहीतेनेत्युक्तं प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ अवाप्तसम्यक्त्वश्चतत्परित्यागे ॥ कार्मग्रंथिकमतेतो उत्कृष्टस्थितीः कर्मप्रकृतीर्बध्नाति सिद्धांतिकानिप्रायतस्तुनिन्नग्रंथेरुत्कृष्टः स्थितिबंध एवनस्यादित्यादिन्नेद मतांतरे जाणे पण हठताणेनही जे जेम वीतरागनी आज्ञाहोय तेम प्रमाणकरे पण संदेहनआणे तेजीव ताहरी आज्ञानुं आराधक जाणवोए त्रेवीसथीमांमी छवीसमीगाथासुधी त्रीजाढालनो अर्थपूरोथयो.

॥ ढालचोथो विनयवहोसुखकार अथवा सानिनइ नोगीरहो एदेशीछे. ॥

॥ दर्शन मोह विनाशथीजी ॥ जेनिर्मल गुणगण ॥ ते समकित उंघे कह्युंजी ॥ ते नवियण हित आणरे ॥ जिन जी तुज आणासुरंग ॥ मुऊ नगमे मिथ्यासंगरे॥ जि० ॥ १ ॥ ए आंकणी ॥ मिछा दरसण मोहनीजी ॥ उपशमि उपशमजाण ॥ धुरग्रंथी नेदे कह्युंजी ॥ उपशमश्रेणी प्रमाणरे ॥ जि० ॥ २ ॥ नाश उदीरण मिछनोजी ॥ अनुदीरण समगम ॥ क्षयउपशमथी उपजेजी ॥ क्ष्योपशमिका नामरे ॥ जि० ॥३॥ त्रिविधि मोह विनासथीजी ॥ त्रीजुंक्षायिकनाम ॥ क्षपकश्रेणी चढतांहुएजी ॥ जेहथी शिवपुर गमरे ॥ जि० ॥ ४ ॥ विपाक प्रदेशें वेदवुंजी ॥ द्विविध उदय विष्कंन ॥ उपशमतुं तेहने कहेजी ॥ आगममां थिरथंनरे ॥ जि० ॥ ५॥ नाश विपाकोदय थकी जी ॥ वेदन तेहनुंरे नाम ॥ उपशमि ते नवि संजवेजी ॥

क्षायोपशमिक गमरे ॥ जि० ॥ ६ ॥ मिछा पुग्गल वेदवाजी ॥ शुद्ध अशुद्ध तिहां दोय ॥ विपाक प्रदेशोदय थकीजी ॥ अनुक्रमे समजी जोयरे ॥ जि० ॥ ७ ॥ अण चउक्कग मिछा तणाजी ॥ पुंज खपावीरे होय ॥ शुद्धपुंज खपतां तिहांजी ॥ अंतिम पुग्गल होयरे ॥ जि० ॥ ८ ॥ तस वेदन तेहने कह्युंजी ॥ वेदक चोथुंरे नाम ॥ उपशम वमतां पांचमुंजी ॥ सासादन गुण धामरे ॥ जि० ॥ ९ ॥ अंतरमुहूरत एकनीजी ॥ उपशम स्थिति उवेष ॥ उत्कर्षे षट आवली जी ॥ जघन्य समय होय शेषरे ॥ जि० ॥ १० ॥ अशुद्धपुंज जावा तणीजी॥ इछायें तिहां तास॥अण कसाय उदयें हुयेजी ॥ जेहथी उपशम नाशरे ॥ जि० ॥ ११ ॥ उपशमथी पडतांथकाजी ॥ न गयो मिछारे जाव ॥ तावत सासादन कह्युंजी ॥ उपशम स्वाद सहावरे ॥ जि० ॥ १२ ॥ अंतरमुहूरत कालनीजी ॥ उपशम स्थिति गुणखाण ॥ सासादन षट आवलीजी ॥ वेदक समय प्रमाणरे ॥ जि० ॥ १३ ॥ स्थिति सागर तेत्रीसनीजी ॥ साधिक क्षायक जाण ॥ बमणी स्थिति एहथी कहीजी ॥ क्षायोपशमिक ठाणरे ॥ जि० ॥ १४ ॥ उपशम सासादन कह्युंजी ॥ आजव वेलारे पंच ॥ वेदक एक वेला हुयेजी ॥ तिमहिज क्षायक संचरे ॥जि०॥१५॥ वार असंख उत्कर्षथीजी ॥ क्षायोपशमिक होय ॥ हवे तस गुण ठाणा कहुंजी ॥ सांभलजो सहु कोयरे ॥ जि० १६॥ उपशम अडगुण ठाणमांजी, अविरत गुण पदरेख ॥ क्षाइक गुण ठाणे सवेजी ॥ आदिम त्रणविणशेषरे ॥ जि० ॥ १७ ॥ अविरति गुणठाणा थकीजी ॥ जावत सत्तम ठाण ॥ एक वेदक बीजु इहांजी ॥ क्षायोपशमिक जाणरे ॥ जि० ॥ १८ ॥ सासादन सासादनेजी ॥ नाषे अंग उवंग ॥ न्याये शिवसुख ते लहेजी ॥ जशतुज आण अभंगरे ॥ जि० ॥ १९ ॥

अर्थः— हवे चोथा ढालनो अर्थकहेछे तेमां प्रथम बारगाथालगें उपशमादिक पांच सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेछे दर्शनमोहनीयना विनाशथकी जे आत्माने निर्मल गुणस्थानक उपजे ते निर्मल सम्यक्त्व कहियें ते उपशमादिक पांचप्रकारनुंछे.

हवे उपशमसम्यक्त्व ते कोने कहियें ते उलखावेछे उदीरणामिथ्यात्वनो क्षयथयाथी अने अनुदीरणा मिथ्यात्वनो उपशमथयाथी एटले विपाकप्रदेश वेदनरूप द्विविधें उदयने विष्कंभपणे करीने नीपनुं ते उपशम सम्यक्त्व कहीयें.

उदीर्णस्य मिथ्यात्वस्य क्षयेसत्यनुदीर्णस्य उपशमेविपाकप्रदेशवेदनरूपस्य द्विविधस्याप्युदयस्य विष्कंभणेन निर्वृत्तिं, उपशमिकं तदोपशमिकं सम्यक्त्वं द्वि

धा ग्रंथिभेदसंभवं उपशमश्रेणि संभवंच ग्रंथिभेदसंभवंप्रसिद्धं उपशमश्रेणिसंभवं सम्यक्त्वं श्रीजिनभद्रगणिप्रणितगाथाभिरेव विभाव्यते.

उपशमसम्यक्त्व बे प्रकारनुंछे एकग्रंथीभेदेउपनुं बीजुंउपशमश्रेणीथी उपनुं तेमां ग्रंथीभेदनुं स्वरूपतो बीजाढालमां कह्युंछे अने प्रसिद्धपणछे अने उपशमश्रेणीथी उपनुंजे सम्यक्त्व तेनुं स्वरूपतो श्रीजिनभद्रगणि कृत गाथायेंज भावियेछे.

यदुक्तं उवसामग सेढीए, पठ्ठवउ अप्पमत्तविरउत्ति ॥ पज्जवसाणे सोवा होइ पमत्तोअविरउवा ॥ १ ॥ अन्नेभणंति अविरय, देसपमत्तापमत्तविरयाणं ॥ अन्नय रो पडिवज्जइ, दंसण समयंमि अनियट्टी ॥ २ ॥ संजलणाईण समो ॥ जुत्तो संजो अणोदउजेउ ॥ तेपुव्वंचिय समिया ॥ नणुसम्मत्ताइ लाभंमि ॥ ३ ॥ आचार्यो आसिखउवसमोसि, समो हुणा भणइ कोविसेसोसिं, नणुखीणंमि उइन्ने ॥ सेसोवसमे खउवसमो ॥४॥ सोचेव तणूवसमो ॥ उइए खीणंमि सेसए समिए॥सुहुमोदय यामीसे ॥ नतूव समिए विसेसोयं ॥ ५ ॥ वेएइ संत कम्मं ॥ खउवसम्मेसु नाणुभावंसो ॥ उवसंत कसाउ पुण, वे एइन संतकम्मंपि ॥ ६ ॥ संजोअणाइयाणं ॥ नणूदउ संजयस्स पमिसिद्धो ॥ सच्चमिह सोणुभावं ॥ पडुच्च न पएस कम्मंतु ॥७॥ भणियं च सुए जीवो ॥ वेएइ नवाणुभाव कम्मंतु ॥ जं पुण पएस कम्मं ॥ नियमा वेएइ तं सव्वं ॥ ८ ॥ नाणुदियं निज्जरए ॥ नासंत मुदेइ जं त कुवसम्मं ॥ सव्वंपएसकम्मं ॥ वेएउं मुच्चए सव्वो ॥ ९ ॥ किह्दंसणाइ घाउ ॥ न होइ संजोअणाइ वेययउ ॥ मंदाणु भावयाए ॥ जहाणु भावंपि विकइंचि॥१०॥ निच्च मुइन्नंपि जहा ॥ सयल चक भाणिणो तदावरणं ॥ नविघाय मंदयाए ॥ पएस कम्मं तहा तेयं ॥ ११ ॥

हवे क्षायोपशमिकनुं स्वरूप कहेछे उदीरण मिथ्यात्वमोहनीयने विपाकोदयेंकरीने वेदितपणामाटे क्ष्यकरेथके अने अनुदीरण मिथ्यात्व मोहनीयने उपशमावे थके ए क्ष्य अने उपशमरूप ते क्षायोपशम सम्यक्त्व कहियें इहां पूर्वपक्षकरीने चर्चक पूछेछे के कहोजी क्षायोपशमिक अने उपशमिक सम्यक्त्वनो शो विशेषपणुछे केमके उदीरण मिथ्यात्वनोक्ष्य अने अनुदीरण मिथ्यात्वनो उपशम ए तो बेहुनेविषे समानछे तेमछता बेहुना जूदाजूदा नाम केम कहोछे एकनाम केम के हेतानथी एम पूछनारने उत्तर कहेछे सांभलो क्षायोपशम सम्यक्त्वनेविषे शुद्धमिथ्यात्वपुंजना पुद्गल विपाकोदयें वेदीयें छे अने अशुद्धमिथ्यात्व पुंजना पुद्गल प्रवे

शोदय वेदीयेंछे अने उपशमसम्यक्त्वनेविशेतो वली सर्वथा कांइयेंपण नथीवेदता एटलुं विशेषपणुं उपशम अने क्षायोपशमनुं जाणवुं.

यडुक्तंः– आसि खउवसमोसिंसमोहुणा नणइ कोविसेसोसिं; तणु खीणंमि उइन्ने ॥ सेसोवसमे खउवसमो ॥१॥ सोचेवनणूवसमो ॥ उइए खीणंमि सेसएसमि ए॥सुहुमोदय यामीसे ॥ नतूव समिए विसेसोयं ॥२॥ वेएइ संतकम्मं खउवसम्मे सु नाणु नावंसो ॥ उवसंत कसाउ पुण ॥ वेएइन संतकम्मंपि ॥३॥ इत्याद्युक्त मस्ति.

हवे क्षायक सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेछे सम्यक्त्व मिश्र अने मिथ्यात्वपुंजरूप त्रिविध दर्शनमोहनीयनुं निःशेष क्षयलक्षण क्षायक सम्यक्त्वकहिये ते क्षायकसम्यक्त्व क्षपकश्रेणीपडिवजतानेहोय यडुक्तं॥ खीणे दंसण मोहे, तिविहंमि विजव नि आण नूयंमि ॥ तिप्पच्चवायमतुलं, सम्मत्तं खाइयं होइ ॥ १ ॥ ते क्षायकसम्यक्त्व क्षपकश्रेणीने विषे आवीरीतेहोय ते कहेछे.

यडुक्तं॥ पढम कसाये समयं, खवेइ अंतो मुहुत्त मित्तेणं ॥ तत्तुच्चिय मिच्छत्तं, त उअ मीसं तउसासं ॥ १ ॥ बद्धाउ पडिवन्नो, पढम कसाय रकए जइ मरिज्जा ॥ तो मिच्छत्तोदयउ, विणज्ज नुज्जो न खीणंमि ॥ २ ॥ तंमिम उज्जाइ दिवं, तप्परिणामो असत्तए खीणे ॥ उवरय परिणामो पुण, पच्छा नाणा मई गइउ ॥ ३ ॥ खीणंमि दंसणतिए, किंहोइ तउति दंसणाईउ ॥ नन्नइ सम्मदिठ्ठी, समत्त खए क उ सम्मं ॥ ४ ॥ निद्दलिय मयण कुद्दव, रूवं मिच्छत्त मेव सम्मत्तं ॥ खीणं न उ जोनावो, सद्दहणा लरकणो तस्स ॥ ५ ॥ सो तस्स विसुध्धयरो, जायइ सम्मत्त पुग्गल रकयउ ॥ दिठ्ठिव सएह सुध्ध,प्र पमल विगमे मणूसस्स ॥ ६ ॥ जह सुध्ध जलाणुगयं, दहुं सुध्धं जलरकए सुतरं ॥ सम्मत्त सुध्ध पुग्गल, परिरकए दंसणं एवं ॥ ७ ॥ तंमिअ तइय चउछे, नवंमि सिझंति खइय सम्मत्ते ॥ सुर निरय जुगलि सुगई, इमंतुजिणकालिय नराणं॥८॥ पडिवत्तीए अविरय,देस पमत्तापमत्तविरयाणं॥ अन्नयरो पडिवज्जइ, सुक्कज्झाणोव गयचित्तो ॥९॥ इति क्षायक सम्यक्त्व स्वरूप.

हवे वेदकसम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेछे वेदकसम्यक्त्वते क्षपकश्रेणी पडिवर्जनारने होय चारअनंतानुबंधीया कषाय तथा मिथ्यात्व अने मिश्र ए बे पुंज खपावेथके अने सम्यक्त्वपुंज खपावतोहोय एटले सम्यक्त्वपुंजना छेलापुद्गल खपाववाने उजमालथयो ते सम्यक्त्वनापुंजनुं वेदनकाल तेना चरमसमयनेविषे चरमपुद्गलनुं वेदवुं तेनुंनाम वेदक सम्यक्त्व कहिये; जेम सूक्ष्मलोजना खंम वेदनथी सूक्ष्मसंपराय कहिये तेम जाणवुं. यडुक्तं सम्मत्त चरम पुग्गल, अणुनवणावेयगंबिंति इति वचनात्.

हवे सास्वादन सम्यक्त्वनुं स्वरूपकहेछे पूर्वोक्त परमनिधान लाभ समानजे उपशम सम्यक्त्व तेनो अंतरमूहूर्त्तजे काल ते कालमांथी उत्कृष्टथी शेष छ आवलिका प्रमाण काल रह्यो होय अने जघन्यथी एकसमय अविशेषहोय तेवारें अशुद्धपुंजे जावानी इछायें कोइकने महा विनोषिकोल्लान कल्प अनंतानुबंधियानो उदयहोय ते अनंतानुबंधीने उदयें सम्यक्त्व वमतो गुलवमननीपरें अथवा मालपतननीपरे सम्यक्त्वने आस्वादे थातेथके सास्वादन सम्यक्त्वहोय एटले उपशमसम्यक्त्ववंत उपशमथी पमतोथको जिहांसुधी हजी मिथ्यात्वगुणगणो नथी पाम्यो तिहांलगें सास्वादन सम्यक्त्व कहियें तडुक्तं उवसम सम्मत्ताउ, चयउ मिछं अपाय माणस्स॥सासायण सम्मत्तं, तयंतरालं मिछा वलिया॥१॥ एरीते चोथाढालनी बारगाथासुधी पांच सम्यक्त्वनुं स्वरूपकह्युं हवे वली कांइकतेनोजविशेष कहेछे.

सम्यक्त्व ते सुं कहिये जे मिथ्यात्व विकारनुं अणउपजावनारो एहवो कोइ अतिशुद्ध अध्यवशायविशेष आत्मानुं परिणमन तेनेज सम्यक्त्व कहियें तेनाभेद क्षायक वेदक उपशमिक सास्वादन क्षायोपशमिक भेदव्याख्यान गाथायेंकहेछे.

खीणे दंसण मोहे, तिविहंमि विखाइयं भवेसम्मं॥वेयग मिह सव्वोइय, चरमि लय पुग्गल ग्गासं ॥ १ ॥ उवसम सेढि गयस्सउ, होई उवसामियंतु सम्मत्तं ॥ जोवा अकयतिपुंजो, अ खविय मिछो लहइसम्मं ॥२ ॥ उवसम सम्मत्ताउं, चय उमिछं अपाव माणस्स ॥ सासायण सम्मत्तं, तयं तरालं मिछा वलिया ॥ ३ ॥ मिछत्तंज मुइन्नं, तंखीणं अणुइयं च उवसंतं ॥ मीसीभावपरिणयं, वेइज्जं तंखउव समं ॥ ४ ॥ इत्यादि बारगाथाउनो अर्थ कह्यो.

हवे ए पांच सम्यक्त्वनी स्थिति कालमानादिक कहेछे तेमां उपशमसम्यक्त्वनो अंतरमुहूर्त्त स्थितिकालछे सास्वादननुं उत्कृष्टो छ आवलिकानुं अथवा जघन्यथी एक समयकालछे वेदकनो एक समय क्षायकसम्यक्त्वनो साधिक तेत्रीस सागरोपमकाल क्षायोपशम सम्यक्त्वनुं साधिक छाशठसागरोपमनुं काल जाणवुं.

एक सास्वादन सम्यक्त्व अने बीजुं उपशमसम्यक्त्व ए बे उत्कृष्टा पांचवार आवे तथा वेदक अने क्षायिक ए बे सम्यक्त्व एकवारज आवे अने क्षायोपशम सम्यक्त्व असंख्यातिवार आवे. यडुक्तं अंतमुहुत्तो वसमो, छावलि सासाण वेयगो समउ ॥ साहिय तित्ती सायर, खइउ दुगुणो खउवसमो ॥ १ ॥ उक्कोसं सासायण, उवसमिया हुंति पंचवाराउ ॥ वेयग खइगाइक्कसि, असंखवारा खउवसमो २

हवे प्रसंगागत कांइ विशेषता कहेछे सामायक चार प्रकारनुंछे सम्यक्त्व सा

मायक श्रुतसामायक देशविरतिसामायक अने सर्वविरतिसामायक तेमां जे सम्य क्त्साचोभावते सम्यक्त्वसामायक श्रुतसिद्धांतनुं जाणवुंते श्रुतसामायिक देशथकी विरमवुं ते देशविरतिसामायक सर्वथकी विरमवुं ते सर्वविरतिसामायक एरीते चार सामायक छे तेमां सम्यक्त्वसामायक श्रुतसामायक देशविरति सामायक ए त्रणने उत्कृष्ट आकर्ष एटले जे प्रथमपणे मूक्यानुं ग्रहण ते एकभवमां सहस्रपृ थक्त्व एटले बेहजारथी मांमीने नवहजारसुधी होय अने सर्वविरतिने शतपृथ क्त्व एटले बशोथी मांमीने नवसोसुधी होय ए उत्कृष्टथी कह्युं, ने जघन्यथी एक ज आकर्ष सर्वने होय ए एकभवआश्रयी कह्युं. यडुक्तं तिह्नं सहस पुहुत्तं, सय पुहुत्तंच होइविरईए ॥ एगभवे आगरिसा, एवइया हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

हवे नानाभव आश्री आकर्ष कहेछेः—ए उपरना त्रणसामायकने सर्वभवनेविषे उत्कृष्टा असंख्याता सहस्र पृथक्त्व आकर्ष थाय अने सर्व विरति सामायकने सर्व भवमां सहस्र पृथक्त्व आकर्ष होय ए सर्वभव आश्री कह्युं. यडुक्तं तिह्नं सहस मसंखा, सहस पहुत्तंच होइ विरईए ॥ नाणभवे आगरिसा, एवइयाहुंति नायव्वा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

हवे ए पांचसम्यक्त्वने गुणठाणाकहेछे बीजे सास्वादन गुणठाणे सास्वादन स म्यक्त्विहोय अने चोथाथीमांमीने अग्यारमां गुणठाणालगे आठगुणठाणा उप शम सम्यक्त्वीने होय अने चोथाथीमांमी चउदमांलगें इग्यारगुणठाणा क्षायक सम्यक्त्विनेहोय अने चोथाथीमांमी सातमांगुणठाणालगे चारगुणठाणा वेदक अ ने क्षायोपशमसम्यक्त्विनेहोय. यडुक्तं बीयगुणे सासाणो, तुरियाइसु अठिगार चउ चउसु ॥ उवसमग खइग वेयग, खाउवसमा कमाहुंति ॥ १ ॥

हवे चउदगुणठाणानोअर्थ लेशमात्र गाथायेंज कहीदेखाडेछे गाहा ॥ जीवाइ पयछेसु, जिणोव इछेसु जा असद्दहणा ॥ सद्दहणावि य मिछा, विवरीय परूवणा जाय ॥ १ ॥ संसय करणं जंपिअ, जंतेसु अणायरो पयछेसु, तं पंचविहं मिछं, त द्दिठिमिछविठीअ ॥२॥ उवसम अद्धाइ ठिउ, मिछ पमत्तो तमेयगं तुमणो ॥ सम्मं, आसायंतो, सासायण सो मुणेयव्वो ॥ ३ ॥ जह गुम दहीणिवि समा,इ भाव सहि याणि हुंति मीसाणि ॥ भुंजं तस्सतहोभय, दिठीउमीस दिठीउ ॥ ४ ॥ तिविहेविहु सम्मत्ते, थेवावि नविरइजस्स कम्मवसा; सो अविरउ त्तिभन्नइ देसे पुण देसविरई उ ॥ ५ ॥ विगहा कसाय निद्दा, सद्दाइरउ भवे पमत्तुत्ति ॥ पंच समिउत्ति गुत्तो, अ पमत्त जई मुणेयव्वो ॥ ६ ॥ अप्पुव्वं अप्पुव्वं, जहुत्तरं जोकरेइ ठिकंमं ॥ रसकंमं म

ग्घार्यं, सोहोइ अप्पुव्व करणुत्ति ॥ ७ ॥ विनिवट्टंति विसुद्धि, सम्मग दइठवि जंमि अन्नन्नं ॥ तत्तोनियट्टिगाणं, विवरीय मउवि अनियट्टी ॥ ८ ॥ थूलाण लोह खंमा ण बेअगो बायरो मुणेयव्वो ॥ सुहुमाण होइसुहुमो, उवसंतेहिं तु उवसंतो ॥ए॥ खीणंमि मोहणिज्जे, खीण कसाउ सजोगि जोगित्ति ॥ होइ पत्तो अतउ, अपम त्तो होइहु अजोगी ॥ १० ॥ अविरय सासण मिच्छा, परजविया नउण सेस गु णगाणा ॥ मिछस्स तिन्नि जंगा, आवलियं होइ सासाणं ॥ ११ ॥ तित्तीसयर च उछं, पुव्वाणं कोडि ऊण तेरसमं ॥ लहु पंचरकर चरिमं, अंतमुहू सेसगुण गाणा ॥ १२ ॥ ए चोथाढालनो १७–१८–१ए–ए त्रण गाथानो अर्थ कह्यो.

॥ ढाल पांचमो शांतिसुधारस कुंममां तुंरमे मुनिवर एदेशी. ॥

धन धन शासन ताहरुं ॥ माहरुं जिहांमन लीनरे ॥ क्षण पण तसविण न विरहे ॥ जिमजल नर विण मीनरे ॥ धन० ॥ १ ॥ देशविरति दरशणथकी ॥ प लिय, पुहुत्तमां जाणिरे ॥ अनुक्रमे चरणश्रेणीविहुं ॥ संख्यसायर गुण खाणिरे ॥ धन० ॥ २ ॥ तेहिज नवेंहुए तेहने ॥ जेहनेसत्तगखीणरे ॥ चउतियजव उत्कर्ष थी ॥ पुव्वबद्धाउने पीणरे ॥ धन० ॥ ३ ॥ बद्धायु सुर नरगनुं ॥ तेहने तियजव तंतरे ॥ आउ असंख्यनर तिरितणु ॥ तसपण चउजवें अंतरे ॥ धन० ॥ ४ ॥ स मकित स्थितिहोए ओगथी ॥ अंतरमूहूरत एकरे ॥ साहिय खउवसमासिरी ॥ सायर छासहि छेकरे ॥ धन० ॥ ५ ॥ इग अथवा बहु आसरी ॥ दरसणनो उप योगरे ॥ जघन्य उत्कृष्ट थकी कह्यो ॥ अंतरमूहूरत जोगरे ॥ धन० ॥ ६ ॥ दरस णलब्धि शुन सुरलता ॥ क्षयोपशमादिक रूपरे ॥ अंतरमूहुरत माननी ॥ जघ न्यथी कहेजिनजूपरे ॥ धन० ॥ ७ ॥ छासठ सायर सविमली ॥ नरजव हिय उ तकृष्टरे ॥ तेहथी उर्द्ध जो नविदिए ॥ समकित रयणने पृष्टरे ॥ धन० ॥ ८ ॥ ते निश्चय शिवपदलहे ॥ ए एकजीवने योगरे ॥ जीवनानाश्रित सर्वदा ॥ दरस णनो उपयोगरे ॥ धन० ॥ ए ॥ अंतरमूहुरत एकनुं ॥ जघन्य अंतरमन आणरे॥ अर्द्ध पुजल परावर्त्तनुं ॥ तस उत्कृष्ट परिमाणरे ॥ धन० ॥ १० ॥ जीव नानाश्रि त नवि होए ॥ समकित अंतर लेशरे ॥ तत्र आवश्यक वृत्तिमां ॥ ए अधिकार विशेषरे ॥ धन० ॥ ११ ॥ दशविध सहज उपदेशथी ॥ उपशम प्रमुख जे पं चरे ॥ अहव निसग्ग रुइ जेदथी ॥ दशविध तस परपंचरे ॥ धन० ॥ १२ ॥ नि सग्गुवएस आणारुइ ॥ सुत्त बीयरुइ अनिरामरे ॥ अनिगमा जोग किरियारुई ॥ संखेव धम्म रुइ नामरे ॥ धन० ॥ १३ ॥ गुरुउपदेशविण सहेजथी ॥ जिनवय

णे परतीतरे ॥ जेहने तेहने जाणजो ॥ प्रथम निसर्ग रुचि रीतरे ॥ धन०॥१४॥ तेसवि गुरुउपदेशथी ॥ सद्दहे जे जण आपरे ॥ ते उपदेशरुचि नर कह्यो ॥ इम तुज आगम थापरे ॥ धन० ॥ १५ ॥ कारण प्रमुख अजाणतो ॥ मुझ जिन आणाज खेमरे ॥ तस्य आणारुचि तुंकहे ॥ माष तूषादिक जेमरे ॥ धन० ॥ १६ ॥ सूत्र नणतो समकितलहे ॥ प्रसन्न प्रसन्न परिणामरे ॥ गोविंद वाचकनीपरे ॥ सुत्तरुई तसनामरे ॥ धन० ॥ १७ ॥ देशरुई खउवसमथी ॥ सवरुई विस्तारिरे ॥ उदकमां तेलबिंदुपरे ॥ बीयरुइ नवतारिरे ॥ धन० ॥ १८ ॥ अनिगमरुई सुअनाणने ॥ अरथथकी अवगाहेरे ॥ अंगपइन्न प्रमुखजे ॥ शास्त्र सवेनिरवाहेरे ॥ धन०॥ ॥ १९ ॥ इव्यना नाव जाण्याजिणे ॥ सर्व प्रमाणे असेसरे ॥ सर्वनयेतिम तसकह्युं ॥ विस्तार रुई अकलेशरे ॥ धन० ॥ २० ॥ दंशणनाण चारित वली ॥ तिमतिनयो नमकामरे ॥ सुमति गुपतिकिरियारुचे ॥ तेकिरिया रुइनामरे ॥ धन० ॥ २१ ॥ आगम कोविद नवीहुए ॥ कुमय कुदिठ्ठीवि जुत्तरे ॥ संखेवरुई तेहने कह्युं ॥ जिमचिलातिय पुत्तरे ॥ धन० ॥ २२ ॥ धम्म अधम्म प्रमुख दव ॥ चरण सुय धम्मना नेदरे ॥ जेजिन नाषित सद्दहे ॥ तेधम्मरुई निरवेदरे ॥ धन० ॥ २३ ॥ एदशविध दरशण कह्युं, उत्तराध्ययनमजाररे ॥ अध्ययने ते अडवीसमें ॥ न्यायसागर सुखकाररे ॥ धन० ॥ २४ ॥

अर्थ ॥ हवे पांचमा ढालनो अर्थ कहेछे जेटली कर्मस्थिति छते पूर्वे सम्यक्त्वपणुं पाम्योछे तेमांहेथी पल्योपम पृथक्त्व लक्षण स्थितिनाखंम खपावेथके श्रावकपणुं देशविरतिपणुंपामे तेवारपछी ते कर्मस्थितिमांथीपण संख्यात सागरोपम कर्मस्थितिखंम खपावेथके चारित्र उदय आवे तेवारपछी पण वली संख्यात सागरोपम स्थितिखंम खपावेथके उपशमश्रेणी पडिवजे वली तेवारपछी पण संख्यातसागरोपम खपावेथके क्षपकश्रेणी थाय. तडुक्तं सम्मत्तंमि उलद्धे, पलिय पुहत्तेण सावगो हुज्जा ॥ चरणोव सम खयाणं, सायर संखंतराहुंति॥ १ ॥

हवे कांइक लेशमात्र श्रेणीस्वरूपकहेछे पूर्वनोजाण पूर्वगतश्रुतनो धरनार अप्रमत्तगुणनुंधणी आद्यनात्रण संघयणमाहेला संघयणनोधणी तेशुक्लध्याननाचारपायाछे तेनांनाम कहेछे पृथक्त्ववितर्कविचार एकत्व वितर्क विचार सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति समुछिनक्रियानिवृत्ति तेमाहेला पृथक्त्ववितर्कविचार नामेप्रथमपायो ध्यातोउपशमश्रेणी पडिवजे. यडुक्तं पूर्वज्ञः शुद्धिमान् युक्तोह्याद्यैः संहननैस्त्रिनिः ॥संध्यायन्नाद्य शुक्लांशंस्वांश्रेणिं श्रयतिक्रमात् ॥१॥ अन्यनेमतेंतो अविरतादिकपण श्रेणी आरंनकछे.

वली तेवारपछी अप्रमत्तांतगुणठाणे अनंतानुबंधीनी चोकडी अने त्रणमोहनीय ए सातप्रकृति उपशमावी एकसंज्वलननुं लोनवर्जि बाकी मोहनीयकर्मनी जे वीसप्रकृतिरही ते आठमे अपूर्वकरण तथा नवमें अनिवृत्तिबादर गुणठाणे उपशमावे पछी सूक्ष्मसंपरायने विषे लोननुं अणुअणुकरीने उपशांतमोहनेविषे तेहिज लोनने उपशमावे. तडुक्तं अपूर्वादि द्वयेकैक, गुणेषु शमकः क्रमात् ॥ करोति विंशतेःशांतिं लोनाणुत्वंच तन्नमं ॥ १ ॥

तिहां प्रथम संघयणवालोतो उपशमश्रेणी अपरिसमाप्ते एटले श्रेणीपूरीकस्या विना मरेतो पंचानुत्तरविमानेजाय अने जो पुष्ट आउषावालोहोय तेवली उपशांतमोहलगें मोहनीय उपशमावे तिहां उपशमसम्यक्त्वहोय अने उपशमनाव चारित्रहोय ए बे उपशमनावना होय ए उपशमिक अवश्यपडे.

तडुक्तं शांतदृग् वृत्तमोहत्वादत्रौपशमिकानिधे ॥ स्यातां सम्यक्त्वचारित्रे नावश्चोपशमात्मकः ॥ १ ॥ पततिचाय मवश्यं ॥ यत्तः ॥ वृत्तमोहोदयं प्राप्योपशमीच्यवते ततः ॥ अधःकृतमलंतोयं पुनर्मालिन्यमश्नुते ॥ २ ॥ अपिच ॥ सुअ केवलि आहारग, उजुमइ उवसंतगाविहुपमाया ॥ हिंमंति नव मणंतं, तयणंतरमेव चउगइया ॥ ३ ॥

इहां शिष्यपूछेछे स्वामी उपशमिकने तेहिजनवें मोक्षहोय किंवानहोय तेवारे गुरुकहेछेके होयपणखरुं तेकेमके सातनव अवशेषायुहोय एवो कोइ उपशमिक खंमश्रेणी करीनेज पाछोवले ते सातमेगुणठाणेआवीने वली क्षपकश्रेणीपडिवजे ते शातनवमां क्षीणमोहीथइ अंतगडकेवलीथाय पण एटलोविशेषजे एकवारज उपशमश्रेणी पडिवज्योहोय ते क्षपकश्रेणीपामे अने क्षपकश्रेणीपण पमिवजे पण जे बे वखत उपशमश्रेणी पमिवज्योहोय तेने तेहिजनवें क्षपकश्रेणी नथाय.

तडुक्तं जीवोहु इक जम्मंमि, इक्कसिं उवसामग्गो ॥खयंपि कुज्ञा नोकुज्ञा॥ दोवारे उवसामगो ॥ १ ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आनवं नूणं ॥ ता पुण दो एगनवे, खवग स्सेणी पुणो एगा ॥ २ ॥ उक्तंच सप्ततिका चूर्णौ ॥ जोदोवारे उवसम, सेढिंपमिवज्ञइ तस्स नियमात्तम्मि नवे, खवगसेढि नछिजो इक्कसिं उवसमसेढि पमिवज्ञइ तस्स खवगसेढि विहुज्ञत्ति.

ए कार्मग्रंथिकनो अनिप्रायछे अने आगमनो अनिप्रायतो आवीरीतेछे जे एकनवनेविषे एकजश्रेणी पडिवजे. यडुक्तं कल्पनाष्ये॥एवं अप्परि वडिए, सम्मत्ते देव मणुअज्ञम्मेसु ॥ अन्नयर सेढिवज्ञं, एगनवेणंच सव्वाइं ॥ १ ॥ सव्वाइं के० सर्वे

देशविरत्यादिकहोय. अन्यत्राप्युक्तं ॥ मोहोपशमएकस्मिन् नवे द्विःस्यादसंततः ॥ यस्मिन् नवे उपशमः क्षयोमोहस्य तत्रतु ॥ १ ॥

इहां शिष्य पूछेछे कहोस्वामी संयतने अनंतानुबंधियानुं उदय निषेध्योछे तो तेनुउपशम केवीरीते घटमानथाय ए संसयदूरकरो गुरु कहेछे हे माहानुनावतेतो अनुनागकर्म अंगीकारकरीने निषेध्योछे पण प्रदेशकर्मआश्रीने निषेध्योनथी तेमाटे प्रदेश कर्मोदयनुं इहां उपशम जाणवो तेवारे फरी शिष्यबोल्यो जोतमे संयतने प्रदेशकर्मोदयनो उपशमकह्यो तो अनंतानुबंधिआना उदयथी दर्शननोविघात केम नथीथतुं तेवारे गुरुकहेछे एना प्रदेशकर्मना मंद अनुनवपणामाटे तेम कोइकने अनुनागकर्मनो अनुनवपण अत्यंत विघात न करे जेम संपूर्ण मत्यादिक चतुर ज्ञानीने मत्यादि ज्ञानावरणोदय अत्यंत विघात नथी करतुं इत्यादिक दृष्टांते दर्शननो विघात न थाय.

तथाचान्यधायि परमगुरुणाः— जीवेणंनंते सयंकंम्म कम्मंवेएइ गोयमा अछेगइयं वेएइ अछेगइयं नोवेएइ सेकेणछेणंपुछा गोयमा डुविहे पन्नत्ते तंजहा पएसकम्मेय अणुनागकम्मेय तिछणंजं पएस कम्मं ते नियमा वेएइ तिछणं जं अणुनागकम्मं तं अछेगइयं वेएइ अछेगइयंनोवेएइ इत्यादि. हवे वली विशेषथी कांइक उपशमश्रेणीनुंज स्वरूप ग्रंथांतरथी कहेछे त्यां प्रथमथी अनंतानुबंधीनी उपशमना कहियेछें.

अविरति सम्यक्त्वदृष्टी देशविरती प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो अन्यतमअन्यतमयोगनेविषे वर्त्ततो तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या मांहे अन्यतमलेश्या सहीत साकारोपयोगे उपयुक्त सागरोपम कोडाकोडीमांहे स्थितिसत्कर्माकरणकालथी पूर्वें पण अंतरमूहुर्त्तकाललगें अवदायमान चित्तसंतति एवो अवतिष्टेतिम अवतिष्टतोथको वली परावर्त्तमान प्रकृतिप्रतें शुनजबांधे पण अशुननबांधे वलीजे अशुन प्रकृतिनुंरस चउगणुंहोय तेने बे गणुकरे अने जे शुनप्रकृतिनुरस बे गणुहोय तेने चउगणुकरे वली स्थितिबंधनेविषे पण पूर्णपूर्णथयेथके अन्यस्थितिबंधप्रते पूर्वपूर्वेस्थितिबंधनी अपेक्षायें पल्योपमासंख्येयनाग हीणोकरे.

ए प्रकारें करणकालथीपूर्वे अंतरमूहुर्त्तकाललगे रहीने तेवारपछी अनुक्रमे त्रण करणप्रत्येके अंतरमूहूर्त्तना तेप्रते करे ते आवीरीते जेम यथाप्रवृत्तिकरण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण वली चोथो उपशांतकाल तिहां यथाप्रवृत्तिकरणनेविषे प्रवेशकरतो प्रतिसमये अनंतगुणवृद्धि विशुद्धप्रवेशकरे वली तिहांपण पूर्वोक्त शुद्ध

प्रकृतिबंधादिकजकरे पण वली स्थितिघात रसघात गुणश्रेणी गुणसंक्रमण प्र तेनकरे केमके ते प्रतिसमय योग्य विशुद्धि नथी.

वली नानाजीवनी अपेक्षायें असंख्येय लोकाकाशप्रदेशमान अध्यवसाय स्था नकहोय वली छगण वढियाहोय बीजुं वली प्रथमसमयनी अपेक्षायें बीजासम यनेविषे अध्यवशायस्थानिक विशेषाधिकहोय तिहांथीपण त्रीजासमयनेविषे वि शेषाधिकहोय ए प्रकारें जिहांलगें यथाप्रवृत्तिकरणनुं चरमसमयथाय तिहांलगें केवुं एम अपूर्वकरणनेविषे पण जाणवुं. एटलामाटेज ए अध्यवशायस्थानक स्था पतांथकां विषम चतुरस्र क्षेत्रप्रते आस्रणेव्यापे तेनी स्थापना.

१२०००००००००००१६. इहां कल्पनायें बे पुरुष समकालें करण पडिवज्या
१०००००००००१५. विवक्षियें तिहां एक सर्वजघन्य विशोधि श्रेणी पडि
८०००००००००१४. वज्यो अने बीजो सर्वोत्कृष्टविशोधि श्रेणी पडिव
६००००००००१३. ज्यो तिहां पहेलाजीवने प्रथम समयनेविषे जघन्य
४०००००००११. विशुद्धि सर्वथी अल्प जाणवी तिहांथी बीजासमयने
३००००००९. विषे जघन्यविशोधि अनंतगुणी तिहांथी त्रीजा समयने
२०००००७. विषे जघन्यविशोधि अनंतगुणी ए प्रकारे त्यांलगे कहेवुं जि
१००००५. हांलगे यथाप्रवृत्तिकरणना कालनो संख्यातमोनाग गयोहोय

तेवारपछी संख्येयनाग गयेथके चरमसमयनी जघन्यविशुद्धिना समीपथकी प्रथम समयनेविषे बीजाजीवनी उत्कृष्टीविशुद्धी अनंतगुणी तेवारपछीपण जेमाटे जघ न्यविशुद्धि स्थानकथी निवर्त्यो तेवारपछी उपरलु जघन्यविशुद्धिस्थानक अनंतगु णो तेवार पछी द्वितीय समयनेविषे उत्कृष्टी विशुद्धी अनंतगुणी तेथी ऊपलुंज घन्यविशुद्धि स्थानक अनंतगुणुं तिहांथी तृतीय समयनेविषे उत्कृष्टविशुद्धि अनंत गुणी ए प्रकारें ऊपरनुं वली हेठलु एकेकु विशुद्धिस्थानक अनंतगुणपणे बे जीव ने तिहांलगे जाणवुं जिहांलगें यथाप्रवृत्तिकरणना चरमसमयनेविषे जघन्यविशु द्धि स्थानक तेथी शेष उत्कृष्टा जे विशुद्धिस्थानक अनुक्तरह्यांछे ते निरंतर अनं तवृद्धे तिहांलगें जाणवा जिहांलगें चरमसमयनेविषे उत्कृष्ट विशुद्धिस्थानक ए यथाप्रवृत्तिकरण कह्युं.

हवे अपूर्वकरण कहियेछे त्यां अपूर्वकरणनेविषे प्रतिसमयें असंख्येय लोकाकाश प्रदेशप्रमाण अध्यवशाय स्थानकहोय प्रतिसमयवली छगणवलियाहोय तिहांप्रथम समयनेविषे जघन्यविशुद्धि सर्वथीथोडी तेवली यथाप्रवृत्तिकरणना चरमसत्क उत्कृ

ष्टविशुद्धि स्थानकथी अनंतगुणी तिहांथी प्रथमसमयनेविषेज जघन्यविशुद्धि अनं तगुणी तिहांथीपण तेहिज प्रथम समयने विषेज उत्कृष्टविशुद्धि अनंतगुणी.

त्यांथी पण बीजासमयनेविषे जघन्यविशुद्धि अनंतगुणी त्यांथीपण तेहिज बी जासमयनेविषे उत्कृष्टविशुद्धि अनंतगुणी त्यांथीपण वली त्रीजासमयनेविषे जघ न्यविशुद्धि अनंतगुणी ए प्रकारें जघन्य अने उत्कृष्टविशुद्धिस्थानक अनंतगुणवृ द्धि त्यांलगेंजाणवा ज्यांलगें अपूर्वकरणना चरमसमयनेविषे जघन्यथी उत्कृष्टविशु द्धि अनंतगुणी. स्थापनाचेयं एअपूर्वकरणनेविषे प्रवेशकरतोजीव स्थितिघात रस
२५००००००००२५ घात गुणश्रेणी गुणसंक्रम अने अन्यस्थितिबंध प्रते
२३०००००००२४ समकालें आरंभे. त्यांस्थितिघात कहेतांछतां कर्मना अग्रि
२१००००००२२ मभागथकी उत्कृष्टथी प्रभूतसागरोपम शतपृथक्त्व मात्र अ
१९०००००२० ने जघन्यथी पल्योपमसंख्येयभागमात्र स्थितिखंमनादलिकप्रते
१७००००१८ खंमे वली हेठलीजे स्थिति खंमासे नही तिहांप्रक्षेपे अंतरमूहुर्त्त कालें उकेरे (खंडे) पूर्वोक्तप्रकारेज वली निक्षेपे ए प्रकारें अपूर्वकरणना कालनेविषे घणास्थितिखंम सहस्रव्यतिक्रमें तेमछतांपण अपूर्वकरणना प्रथमसमयने विषे जे स्थिति सत्कर्महतु ते तेनाज चरमसमयनेविषे संख्येयगुणहीनथयुं ए स्थितिघातकह्युं.

हवे रसघात कहेछे अशुभप्रकृतिनाजे अनुभाग सत्कर्म तेना अनंतमभाग प्रते मूकीने शेषअनुभागनुं अंतरमुहूर्त्तकालमां विनासकरे खपावीनाखे त्यांथी वली पण ते पूर्वे मूक्यो जे अनंत भाग तेनो पण अनंत भाग मूकीने शेष अनुभाग प्रते अंतरमुहूर्त काले खपाडे. एरीते अनेक सहस्र अनुभाग खंम ते एकस्थितिखंम नेविषे व्यतिक्रमे उलंघेतेस्थितिखंमनेसहस्रे अपूर्वकरणपरिसमाप्ति थायएरसघातकह्युं

हवे गुणश्रेणी कहेछे अंतरमुहूर्त्तस्थितिनी उपरलीजे स्थितिवर्त्तेछे तेमांथी द लिकलेइने उदयावलिकानी ऊपरली स्थितिमां प्रतिसमयें असंख्यातगुणपणे निक्षेपे तद्यथा प्रथम समयनेविषे स्तोक बीजासमयनेविषे असंख्यातगुणु त्रीजा समयनेविषे असंख्यातगुणु एप्रकारें त्यांलगेंजाणवुं ज्यांलगें अंतरमुहूर्त्तनो छेलो समय आवे ते अं तरमुहूर्त्त अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरणना कालथकी किंचित्मात्र अधिकजाणवुं ए प्रथमसमयनेविषे लीधांजे दलिक तेनो निक्षेपविधि एप्रकारें छे के द्वितीयादी समयग्रहीत दलिकनो पण निक्षेप कहेतो बीजुं गुणश्रेणी रचनाने अर्थे प्रथम समयनेविषे जे दलिक ग्रहीयें तेथोडुं तेथीपण बीजा समयनेविषे असं ख्यातगुणु तेथीपण त्रीजा समयनेविषे असंख्यातगुणु एप्रकारें त्यांलगें जाणवुं

ज्यांलगें गुणश्रेणी करवानुं चरमसमय आवे त्यांलगे; अपूर्वकरणना समयनेविषे वली अनिवृत्तिकरणना समयनेविषे अनुनवतांने अनुक्रमे क्षयपामतां गुणश्रेणी दलिक निक्षेपथाकते बेहुयेवली ऊपर वधेनही ए गुणस्थान कह्युं.

हवे गुणसंक्रम कहेछे अपूर्वकरणना प्रथम समयनेविषे अनंतानुबंधियादिक अशुनप्रकृतिना जे दलिक परप्रकृतिनेविषे संक्रमावे ते स्तोक तेवार पछी बीजा समयनेविषे परप्रकृतिमां असंख्यातगुणु संक्रमावे त्यांथीपण त्रीजासमयनेविषे असंख्यातगुणुं संक्रमावे ए प्रकारें त्यांलगेकहेवुं ज्यांलगे छेहलो समयआवे, तिम अन्यस्थितिबंध कहेतां अपूर्वकरणना प्रथमसमयनेविषे अन्यज अपूर्वस्थितिबंध आरंनियें स्थिति बंध अने स्थितिघात ए बे समकाले जे पुराथाय ते अन्यस्थितिबंध जाणवुं ए प्रकारे पांच पदार्थ अपूर्वकरणमां होय प्रवर्त्ते ए अपूर्वकरण कह्युं.

हवे अनिवृत्तिकरण कहियेछे जेमां प्रवेश करनार सर्व तुल्यकालना धणीनुं एकज अध्यवसायस्थानिक होय ते आवीरीते के अनिवृत्तिकरणना प्रथमसमयेंजे वर्त्तेछे अने जे वर्त्या अनेजे वर्तसे तेमर्वेनु एकजरूप अध्यवसायस्थानक होय तेमज बीजा समयनेविषेपण जे वर्त्या वर्तेछे अने वर्तसे तेपण सर्वेनुं एकजरूप अध्यवसाय स्थानकहोय पण एटलोविशेषजे प्रथम समयनावी विशोधिस्थानकनी अपेक्षायें बीजा समयमां अनंतगुणहोय ए प्रकारे त्यांलगें कहेवुं ज्यांलगें अनिवृत्तिकरणनो चरमसमयआवे. एटला माटेज ए करणनेविषें पेठा तुल्यकालनाधणी जेप्राणी ते संबंधी अध्यवसाय स्थानिकने परस्पर निवृत्ति अने व्यावृत्तिनथी तेमाटेज एनु अनिवृत्तिकरण एवुं नाम कहिये.

वली ए करणनेविषे जेटलासमय तेटला अध्यवसाय स्थानकहोय पहेला बे अध्यवसायस्थानकथी आगला अध्यवसायस्थानक अनंतगुणवृद्धहोय ए मुक्तावलीने स्थाने स्थापवा: इहांपणप्रथमसमयथी आरंनीने पूर्वोक्त पांचपदार्थ समकाले प्रवर्त्ते ए करणनाकालना असंख्याताजाग गयेथके एकजागथाकतेथके अनंतानुबंधियानेहेतुं आवलीकामात्रमूकीने अंतरमूहुर्त्तप्रमाण अंतरकरणप्रतें अनिनवस्थिति बंधाद्धासमान अंतरमूहुर्त्तप्रमाण कालेंकरे.

वली अंतरकरण सत्कदलिक उत्कीर्यमाण बंधाद्धानी परप्रकृतिमां प्रक्षेपे प्रथमस्थितिगतदलिक आवलिकामात्र वेद्यमान परप्रकृतिमांहे स्तबुक संक्रमावे अंतरकरणकरेथके द्वितीयसमयनेविषे अनंतानुबंधीयानी उपरली स्थितिनुंदलिक उपशमाववाने अर्थे आरंने.

ते आवीरीते प्रथमसमये स्तोक उपशमावे तेथी द्वितीयसमयें असंख्यातगुणु वली तृतीयसमये असंख्यातगुणु एम ज्यांलगें अंतरमूहूर्त्तनुंकाल त्यांलगेंकहेवुं एटलेकाले सर्व अनंतानुंबंधिया उपशम्या उपशमिताते धुंकहियें जेमरेणुनु निकर एटले समूहते पाणीनाबिंदुआना समूहे सिंच्यो घणादिके कूटयो निस्पंदहोय ते म कर्मरेणुनुं समूहपण विशोधिरूप सलिलप्रवाहे सिंचीने अनिवृत्तिकरणरूप घणथी कूटयोथको संक्रमण उदय उदीरणा निधत्त निकाचना एटला कारणोने अयो ग्यथाय एप्रकारें केटलाक अचार्योना मते अनंतानुबंधीयानी उपशमनाकही.

वली बीजातो एमपणकहेले के अनंतानुंबंधीयानी उपशमनानहोय पण विसं योजना एटले क्षपणाहोय ते आवीरीते इहां श्रेणी अणपडिवज्यापण अविरति तथा विरति चारेगतीवालालेवा ते आमः— जेम नारकी तथा देवताते अविरतिस म्यक्दृष्टी अने तिर्यंच तथा मनुष्यतेमां अविरति सम्यक्दृष्टी तथा देशविरतिसम्य क्दृष्टी अथवा सर्वविरति ते अनंतानु बंधियानी विसंयोजनाने अर्थे यथा प्रव त्यादिक त्रणकरणकरेते करणीनी वक्तव्यता सर्व पाछलकह्याप्रमाणे जाणवी पण इहां एटलो विशेषजे अनिवृत्तिकरणमां प्रवेश कर्योथको अंतरकरण करेनही. उ क्तंच कर्मप्रकृतौ॥चउगइया पज्जत्ता, तिन्निविसंजोयणे विसंजोयं ॥ तिकरणहितीहि सहिया, नंतरकरणं उव समोवा ॥ १ ॥ एनी अक्षरगमनिका चारगतीना नारकी तिर्यंच मनुष्य देवता सर्व पर्याप्तियेंअपर्याप्ता एवां अविरति देशविरति अने सर्ववि रतिए त्रणेमां अविरति सम्यक्दृष्टी तो चारेगतीना तथा देशविरति तिर्यंच अथवा मनुष्य अने सर्वविरति तो मनुष्यज संयोजनना अनंतानुबंधीयाप्रते विसंयोजे एटले विनाशे ते यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति बादरेसहितथको विना से पण इहां एटलो विशेषजे एक अंतरकरण न कहेवुं अथवा उपशम न कहेवो एटले उपशम अनंतानुबंधियानो न होय पण कर्मप्रकृति अभिहित स्वरूपे उद्धल ना संक्रमणे करीने हेतु आवलिकामात्र प्रते मूकीने उपर निरविशेष अनंतानुंब धियानुं विनाशकरे अने आवलिकामात्रतो स्तिबुकसंक्रमे करीने वेद्यमान प्रकृतिने संक्रमावे एटले अनंतानुबंधियानी विसंयोजनाकही.

हवे दर्शनत्रिकनी उपशमना कहियेछे तेमां मिथ्यात्वनी उपशमना मिथ्यादृ ष्टीनेहोय सम्यक्त्वनी तथा मिश्रनी उपशमना वेदक सम्यक्दृष्टिनेजहोय; तेमां मिथ्यादृष्टीने मिथ्यात्वनी उपशमना प्रथम सम्यक्त्व उपजावतांनेहोय ते आवी रीतेः— जे संज्ञीसर्वपर्याप्तियें पर्याप्तो करणकालथीपूर्वेंपण अंतरमुहूर्त्तकालसुधि प्र

तिसमयें अनंतगुणवृद्धिविशुद्धीए प्रवर्द्धमान अजव्यसिद्धिक विशुद्धिनी अपेक्षायें अनंतगुण विशुद्धिसहीत मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान अने विजंगज्ञान एमाहेलो अन्यतम साकारोपयोग तेनो उपयोगी अन्यतम योगनेविषे वर्त्तमान जघन्यपरिणामे तेजोलेश्यानेविषे मध्यमपरिणामे अने पद्मलेश्यानेविषे उत्कृष्टपरिणामे शुक्ललेश्यानेविषे वर्त्ततो मिथ्यादृष्टी चारेगतीमाहेलो नारकी तिर्यंच मनुष्य अथवा देवता सागरोपमकोडाकोडीमांहे जेने कर्मस्थितिनी सत्ताछे तेने मिथ्यात्वनी उपशमना प्रथमसम्यक्त्वउपजावतां होय इत्यादिक पूर्वोक्त त्यांलगेंकहेवुं ज्यांलगें यथाप्रवृत्तिकरण अने अपूर्वकरण परिपूर्णहोय त्यांलगे: पण इहां एटलोविशेष जे अपूर्वकरणमां गुणसंक्रम न केवो तोसुंकेवो स्थितिघात, रसघात स्थितिबंध गुणश्रेणी एटलावानाज केवा गुणश्रेणीनी रचनापण उदय समयथी आरंजीने जाणवी. तेवारपछी अनिवृत्तिकरणनेविषे पण एमजकहेवुं अनिवृत्तिकरणकालनां संख्याताजाग गयेथके अने एक संख्यातमजाग अवशेषरहेथके अंतरमूहुर्त्तमात्र हेठुंमूकीने मिथ्यात्वनुं अंतरकरण अंतरमूहुर्त्तमात्र प्रमाण प्रथम स्थितिथी कांइक समधिक अथवान्यून अजिनवस्थिति बंधाद्धासमान अंतरमूहुर्त्तकालेंकरे अंतरकरणसत्क वली दलिकप्रतें उकेरीने प्रथमस्थिति अने द्वितीयस्थितिमां प्रक्षेपे प्रथमस्थितिनेविषे प्रवर्त्ततो उदीरणाप्रयोगेकरीने जे प्रथमस्थितिगत दलिकछे तेने समाकर्षिने उदयनेविषे प्रक्षेपे ते उदीरणा अने वलीजे द्वितीयस्थितिना पासाथी उदीरणाप्रयोगेंज दलिकाकर्षिने उदयनेविषे प्रक्षेपेए उदीरणापण पूर्वसूरियें विशेषप्रतिपत्तिनेअर्थे आगालइत्युच्यते एवुंकहियें.

उदय उदीरणायेंकरीने प्रथमस्थितिप्रतें अनुजवतो त्यांलगेंगयो ज्यांलगे आवलिकाद्वयविशेषरहेछे तेरहेथके आगलव्यवछेदीयें तेवारपछी केवलउदीरणाज प्रवर्त्ते तेपणत्यांलगें ज्यांलगें शेष आवलिकानहोय अने आवलिकाशेषहोय तेवारें उदीरणापण निवर्त्ते तेवारपछी केवल उदयआवलिकामात्र अनुजवे आवलिकामात्रना चरमसमयनेविषे वली द्वितीयस्थितिगत दलिकप्रते अनुजागजेदेकरीने सम्यक्त्व मिश्र मिथ्यात्व ए त्रणप्रकारेकरे.

उक्तंच कर्म्मप्रकृतिचूर्णौ ॥ चरमसमय मिछदिठीसेकाले उवसमसम्मदिठीहोहीइ ताहेविइयठिइ तिहाणुजागंकरेइ तंजहा सम्मत्तंसम्मामिछत्तं मिछत्तं चेति स्थापना एएए तिवारपछी अनंतरसमयनेविषे मिथ्यात्वनाउदयना अजावथी उपशमिक सम्यक्त्व पामे.

उक्तंच कर्म्मप्रकृतौ मिछत्तुदयेखीणे, जहए सम्मत्त मोवसमियंसो ॥ लंनेण ज स्स लप्रइ, आयहिय मलद्ध पुव्वंजं ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं जात्यंधस्ययथापुंसश्चक्षुर्न्मीलेशुनोदये ॥ सद्दर्शनं तथैवास्य, सम्यक्त्वेसतिजायते, ॥१॥ आनंदो जायतेऽत्यंतं सात्विकोस्य महात्मनः ॥ सद्व्याध्यपगमेय द्व्याधितस्य सदौषधात् ॥ २ ॥ ए प्रथम सम्यक्त्वनुं लान मिथ्यात्वना सर्वोपशमनथकी थाय. उक्तंच सम्मत्तपढमलंनो, सव्वोवसमाइति ए सम्यक्त्व पडिवजतो कोइकतो देशविरतिसहित पडिवजे अने कोइक सर्वविरति सहित पमिवजे.

उक्तंच पंचसंग्रहे ॥ सम्मत्तेणं समगं, सव्वंदेसंच कोविपमिवज्जे ॥ बृहच्छतक बृहच्चूर्णावप्युक्तं उवसम सम्मदिट्ठी, अंतरकरणो ठिउ कोइ ॥ देसविरइं पिलहेइ, कोइ पमत्ता पमत्त नावंपि ॥ १ ॥ ससाणो पुणनाकिंपिलहेइति तेमाटे देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त संयतनेविषेपण मिथ्यात्व उपशांतलाने.

हवे वेदकसम्यक्दृष्टीनेविषे त्रण दर्शनमोहनीयनी उपशमना विधिकहियें छे इहां वेदक सम्यक्त्वदृष्टीजीव संयमनेविषे प्रवर्त्ततोथको अंतरमूहुर्त्तमात्रकाले दर्शनत्रिकउपशमावे ते उपशमावताने वली करणत्रिकादिकनी विधि जेम कर्म्म प्रकृतिनीटीकामां कहीछे तेमज जाणवी.

एम उपशांतदर्शनमोहनीयत्रिक चारित्रमोहनीयने उपशमाववा वांछतो वली पण यथाप्रवृत्यादिक त्रणकरणेकरी उपशमावे ते करणनुस्वरूप पूर्वेनीपरेंजाणवुं पण केवल इहां यथाप्रवृत्तिकरण ते प्रमत्तगुणठाणे जाणवुं तेमज अपूर्वकरण अपूर्वगुणठाणे अने अनिवृत्तिकरण अनिवृत्तिबादरगुणठाणे तथा सूक्ष्मसंपरायगुणठाणे जाणवुं इहां पण स्थितिघातादिक पूर्वेनीपरे प्रवर्त्ते पण एटलोविशेष जे इहां सर्व अशुनप्रकृति अबध्यमाननो गुणसंक्रम प्रवर्त्ते एम कहेवुं अपूर्वकरणकालनो संख्यातमोनाग गयेथके निद्राप्रचलाना बंधनो व्यवछेद होय तेवारपछी प्रनूत स्थितिखंम सहस्र गयेथके अपूर्वकरण कालना संख्यातानाग गया होय एक अवशेष रह्योहोय वली इहां अंतराले देवगति देवानुपूर्वी पंचेंद्रियजाति वैक्रियशरीर वैक्रियांगोपांग अहारक शरीर अहारकांगोपांग तेजस कार्मण समचतुरस्त्र वर्णचतुष्क अगुरुलघु उपघात पराघात उच्छ्वास त्रस बादर पर्याप्त प्रत्येक प्रशस्तविहायोगति स्थिर शुन सुनग सुस्वर आदेय निर्माण तीर्थंकर असंज्ञी ए त्रीसप्रकृतिनुं बंध व्यवछेद थाय.

तेवार पछी स्थितिखंम पृथक्त्व गयेथके अपूर्वकरण कालना चरमसमयनेविषे

हास्य रति नय जुगुप्सानो बंधव्यवछेद थाय हास्य रति अरति शोक नय जुगुप्सा नो उदय होय सर्वकर्मना देशोपशमना निधत्त निकाचनाकरणनो व्यवछेदहोय.

त्यांथी अनंतर समयनेविषे अनिवृत्तिकरणमां प्रवेश करे त्यांपण स्थितिघाता दिक पूर्वनीपरेकरे तेवारपछी अनिवृत्तिकरणकालना संख्यातानाग गयेथके दर्शन सप्तकविना शेष मोहनीयनी एकवीसप्रकृतिनुं अंतरकरण करे त्यां चार संज्वलन माहेलो अन्यतमवेद्यमान संज्वलननो अने त्रण वेदमाहेलो अन्यतमवेद्यमान वेदनी पहेली स्थिति स्वोदय कालप्रमाण ए बे काडतां शेष एकादश कषाय अने आठ नोकषायनी आवलिकामात्र पोताना उदयकाल प्रमाण. वली चारसंज्वलना अने त्रण वेदछे तेमां स्त्रीवेद नपुंसकवेदनो उदयकाल सर्वस्तोक स्वस्थाने वली मा होमांहेतुल्य तेथी पुरुषवेदनो संख्येयगुणो तेथी संज्वलनना क्रोधनो विशेषाधिक तेथी संज्वलनना माननो विशेषाधिक तेथी संज्वलननी मायानो विशेषाधिक तेथी संज्वलनना लोजनुं विशेषाधिक एम इहां अनिवृत्तिकरणनेविषे घणु कहेवुं छे ते ग्रंथगौरवना नयथी नथी कहेता केवल विशेषार्थें कर्मप्रकृतिनी टीकाजोवी

वली अंतरकरण करीने तेवारपछी नपुंसक वेदने अंतरमुहूर्तमात्रमां उपशमा वे तेवारपछी अंतरमुहूर्त्तमात्रे स्त्रीवेदने उपशमावे तेवारपछी अंतरमुहूर्तमात्रे हा स्यादिषट्क उपशमावे ते समयनेविषे पुरुषवेदनो बंध उदय उदीरणानो व्यवछेद थाय तेवारपछी समयऊण आवलिकाद्वयें पुरुषवेदने उपशमावे तेवारपछी सम कालें अंतरमुहुर्त्तमात्रे अप्रत्याख्याना वरण प्रत्याख्यानावरण ए बे क्रोधने उपशमावे तेवारपछी तदुपशांतेंवली ते समयेज संज्वलनना क्रोधना उदय उदीरणानो व्य वछेद होय पछी समयऊण आवलिकाद्विके संज्वलननाक्रोधने उपशमावे तेवार पछी अंतरमुहुर्त्तमात्रें अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरणनुं मान समकालें उप शमावे ते उपशमेथके वलीते समयेज संज्वलनना मानना बंध उदय उदीरणा नो व्यवछेदहोय तेवारपछीवली समयऊण आवलिकाद्विके संज्वलनामानने उ पशमावे तेवारपछी समकालें अंतरमूहुर्त्तमात्रे अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावर ण ए बे मायाने उपशमावे तदुपशांतेवली ते समयेज संज्वलननी मायानो बंध उदय उदीरणानो व्यवछेदहोय तेवारपछीवली समयऊण आवलिका द्विके संज्वलननीमायाने उपशमावे तेवारपछी समकाले अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्याना वरण ए बे लोजने उपशमावे ते समयेज संज्वलनना लोजनो बंध उदय उदीरणानो व्यवछेद थाय तेवारपछी संज्वलना लोजने उपशमावतो

तेना त्रण नाग करे तेमांथी बे नागने समकाले उपशमावे त्रीजा नागना संख्या तारवंम करे तेपण जूदे जूदे कालनेदें उपशमावे वली संख्याता खंमना किट्टीएवुं अपरनाम ठे तेना चरमखंमना असंख्याता खंमकरी सूक्ष्मकिट्टी एवुं अपरनामकरे

तेवारपठी समय समयनेविषे एकेको खंमकरे ते उपशमावे इहांवली दर्शनस प्तक उपशमेथके निवृत्तिबादर एवुंनामकहियें त्यांथी ऊंचु अनिवृत्तिबादरकहियें ते ज्यांलगें लोजनो असंख्येय अंतिम चरमखंमआवे त्यांलगे कहिये. ए अठावीसनेदें जिन्नमोहनीयनी उपशमनाकही.

हवे गाथानोअर्थ विवरियेंठे इहां बन्नेश्रेणीना स्वरूपमां प्रथम उपशमश्रेणीनुं स्वरूपकहेठे उपशमश्रेणीनुं प्रारंनक अप्रमत्तसंयमी ज होय अने बीजातो एमकहे ठेके अविरति देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो गमेतेहोय अने श्रेणीपरिस मामें पण श्रेणीथी पडे तेवारे वली पाठो अविरति देशविरति प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो अन्यतम गमेते होय. ते पहेलो समकाले अनंतानुबंधिया क्रोध मान माया लोजने उपशमावे तेवारपठी मिथ्यात्व तथा सम्यक्मिथ्यात्व अने संम्यक् दर्शन ए त्रण समकाले उपशमावे तेवारपठी अनुदीर्णे पण नपुंसकवेद उपशमावे तेमां जो पुरुष प्रारंनक होय तो प्रथम नपुंसकवेद पठी स्त्रीवेद पठी हास्यषट्क उपशमावीने पठी पुरुष वेद उपशमावे.

अने जो स्त्री प्रारंनिका होय तो प्रथम नपुंसकवेद पठी पुरुषवेद पठी हास्यादि षट्क पठी स्त्रीवेद उपशमावे अने जो नपुंसक प्रारंनक होय प्रथम ए अनुदीर्णे पण स्त्रीवेद उपशमावे पठी पुरुषवेद पठी हास्यादि षट्क तेवारपठी नपुंसकवेद उपश मावे पठी बे क्रोध एकांतरीत संज्वलन विशेष क्रोधांतरित सदृशतुल्य उपशमावे.

एटले एनो ए अर्थठे जे अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बे क्रोध क्रोध पणे सरखा समकालें उपशमावे तेवारपठी एकलो संज्वलननोक्रोध उपशमावे प ठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बेमान शमकालें उपशमावे पठी संज्वल ननुंमान उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण ए बे मायाने सम काले उपशमावे पठी संज्वलनीमाया उपशमावे पठी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्या ख्यानावरण ए बे लोन समकाले उपशमावे तेवारपठी संज्वलननुं लोन उपश मावे इहां उपशमश्रेणीनी स्थापनाकरवी.

इहां चर्चकपूठेठे के कहोजी संज्वलनादिकने उपशमघटेठे पण अनंतानुबं धियाने तो सम्यक्त्व प्राप्तिथई त्यांज उपशमाव्याठे तो इहांअनंतानुबंधियानुं उ

प्रशम केम घटमानथाय ह्वे गुरु उत्तरकहेछे दर्शनपमिवजतां त्यांअनंतानुबंधिया नो क्षयोपशमहतो अने इहांतो उपशमछे तेमाटे विरोधनथी वली शिष्यबोल्यो क्ष योपशम अने उपशममां शोविशेषछे गुरुकहेछे ज्यां क्षयोपशमछे त्यांतो उदीरणानु क्षय अने अनुदीरणानु विपाकानुभवनी अपेक्षाये उपशमछे अने वली प्रदेशानुभ वथीतो उदयछेज अने उपशमनेविषेतो प्रदेशानुभवपणनथी. यदाहपीयूषपाथोधिः वेएइसंतकम्मं, खउवसमिए ज्ञनाणुनावंसो ॥ उवसंत कसाउ पुण, वेएइ नसंत कम्मंपि ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं उवसंतं कम्मंजं, नतउ कड्ढेइ नदेइ उदएवी ॥ नय गमयई परमग्गइ, नचेवउकड्ढएतंतु ॥ १ ॥ एगाथानो लेशमात्रअर्थ कहेछे सर्वोप शमेजे उपसम्युं ते मोहनीयकर्मछे बीजाकर्मने सर्वोपशमनथी सव्वोवसमो मोहस्स चेवेति वचनात् तेनुं अपकर्षण पण नथाय.

एटले मोहनीयकर्म अपवर्त्तनाकरणेकरीने स्थितिरसेकरी हीनपण कोइ करीश केनही अपिशब्दने निन्नक्रमपणामाटे उदयेंपण ते दिये एटले ते वेदेपणनही उ पलक्षणथी उदयने अविनाजावी उदीरणाने विषेपण नदीये एपणजाणवुं.

वली बध्यमान सजातीय परप्रकृतिप्रतें संक्रमणकरणेकरीने नगमें संक्रमावे प णनही वली तेकर्म्मेउपशमाव्युंथकुं उत्कर्षपणनही एटले उद्वर्त्तनाकरणेकरीने स्थि तिरसेंकरी वधारेपणनही निधत्ति निकाचन तो पूर्वं अपूर्वकरणकालेंज निवृत्तिछे तेमाटे इहां उपशांतपणे तेनु निषेध नकरीयें इहां शिष्यपूछेछे कहोजी संयतने अ नंतानुबंधियानुं उदय निषेध्योछे तो तेनुं उपशम केवीरीते घटमानथाय? तेवारे गु रुकहेछे के तेतो निश्चें अनुनागकर्म अंगीकारकरीने तेनुं उदयनिषेध्योछे पण प्रदेश कर्मआश्रीने अनंतानुबंधियानुं उदय निषेध्योनथी.तथा चान्यधायि परमगुरुणा जीवे णंभते सयंकर्म कम्मं वेएइ गोयमा इत्यादिक पाठपूर्वें एज तवनमां कहीगया छैये.

तेमाटे इहां प्रदेशकर्मानुनवना उदयनो उपशमजाणवो तेवारे वली शिष्यबो ल्यो जो एमसंयतने अनंतानुबंधियानो उदयहोय तो तेथी दर्शननो विघातकेमन थाय गुरुकहेछे प्रदेशकर्मनुं मंद अनुनवछे तेथी दर्शननो विघातनथाय तेम कोइ कने अनुनागकर्मानुनवेपण अत्यंत विघात नकरे जेम संपूर्ण मत्यादि चतुर्ज्ञानी ने मत्यादि ज्ञानावरणोदय विघातनथी करता तेम जाणवो तेवारपछी सूक्ष्मलो न चरम किट्टिनो उपशम थयेथके संज्वलननो लोज उपशांतथाय. यदुक्तं अणदं स नपुंसि च्छीवेय छक्कंच पुरिस वेयंच ॥ दोदोएगं तरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥ १ ॥ ते समयेज ज्ञानावरण पंचक दर्शनावरण चतुष्क अंतराय पंचक यशः

कीर्त्ति उच्चैर्गोत्र एटली प्रकृतीनोबंध व्यवछेदथाय तेथी अनंतर समयनेविषे ए उपशांत कषाय गुण होय ते जघन्यथी एकसमयमात्र अने उत्कर्षथी अंतरमूहुर्त्तकाल लगे. तेथी ऊर्ध्वं नियमा ए उपशामक अवश्यपडे, तेपडवुं बे प्रकारेछे एक नवने क्षये बीजुं कालनेक्षये त्यांनवक्षय मरतानेहोय अने कालक्षय उपशांतनो काल पूर्णथये होय जे कालक्षयें पडेतेतो जेम चढ्यो तेमजपडे ज्यांज्यां बंधउदय उदीरणा व्यवछिन्नछे त्यांत्यांपडतोथको तेपाछा आरंभीयें एटलालगेपडतो थको क्यां लगेपडे ज्यांलगे प्रमत्तसंयतगुणठाणोछे त्यांलगेपडे. वली कोइकतो तेथीपण हेठला बे गुणठाणेजाय अने कोइक सास्वादन भावपणपामे.

वली जे नवक्षयेपडे ते प्रथमसमयेज सर्व बंधनादिक करणप्रवर्त्तावे ते करणना नामकहेछे बंधन संक्रमण उद्वर्तना अपवर्त्तना उदीरणा उपशमना निधत्ति निकाचना.

हवे ए बंधनादिक आठेना अर्थ कहेछे कर्म्मपुद्गलने जीवना प्रदेशसाथे अग्निलोह पिंमनीपरे अन्योन्य मलवुं ते बंधन कहियें वली प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशने अन्यकर्मरूपपणे रह्याछे तेने अन्यकर्मरूपे व्यवस्थापन करवुं ते संक्रमण कहिये तथा जे स्थिति अने अनुभागनुं वधारवुं ते उद्वर्त्तना कहियें अने स्थिति तथा अनुभागनुं घटाडवुं ते अपवर्त्तना कहियें तथा जे कर्म पुद्गलने अकालप्राप्तने उदयावलिकानेविषे प्रवेश न करवुं ते उदीरणा कहियें वली कर्म्मपुद्गलने उदीरणा निधत्ति निकाचना करणने अयोग्यपणे व्यवस्थापवुं ते उपशमना कहियें तथा उद्वर्तना अपवर्त्तना ए बे करण मूकीने बीजाकरणने अयोग्यपणे व्यवस्थापवुं ते निधत्ति कहियें समस्त कर्मने अयोग्यपणे व्यवस्थापन करवुं ते निकाचनाकहियें एटले आठकरण माहेलो कोइ करण न लागे ते निकाचनाकहियें.

यदुक्तं कर्मप्रकृतिवृत्तौ॥बंधण संकमणु व,ट्टणाय अपवट्टणा उदीरणया ॥ उवसामणा निहत्ति, निकायणा चित्ति करणाइं ॥ १ ॥ तत्रबंधोनामकर्म पुद्गलानां जीवप्रदेशैः सहवन्ह्ययस्पिंमवदन्योन्यानुगमः १ संक्रमः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां अन्यकर्म्मरूपतयास्थितानामन्यकर्म्मरूपेण व्यवस्थापनं २ स्थित्यनुभागयोर्बृहत्करण मुद्वर्तना ३ तयोरेव ऱ्हस्वीकरणमपवर्तना ४ कर्म्मपुद्गलानामकालप्राप्तानामुदयावलिकायां प्रवेशनमुदीरणा ५ कर्म्मपुद्गलानामुदीरणानिधत्तिनिकाचनाकरणायोग्यत्वेनव्यवस्थापनमुपशमना ६ उद्वर्तनाऽपवर्तनावर्ज्जशेषकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापनं निधत्तिः ७ समस्तकरणायोग्यत्वेन व्यवस्थापनंनिकाचना ८ इति करणाष्टकस्वरूपं प्रकृतिवृत्तिगतं स्थानांगवृत्तावपि संक्रमण

स्वरूपं त्वेवं यांप्रकृतिं बध्नाति जीवस्तदनुजावेन प्रकृत्यंतरस्थं दलिकं वीर्यविशेषे ण यत्परिणमयति ससंक्रमः तत्रप्रकृतिसंक्रमः सामान्यलक्षणावगम्यः मूलप्रकृती ना मुत्तरप्रकृतीनां वास्थितेर्थ्यडुत्कर्षणमपकर्षणं वा प्रकृत्यंतरस्थितौवा नयनं सस्थितिसंक्रमः अनुजागसंक्रमोप्येव मेव यत्कर्म्मद्रव्यमन्य प्रकृति स्वजावेन परिणामेन परिणम्यते सप्रदेशसंक्रमः कर्म्मणि कर्म्मांतरानुप्रवेशः संक्रम करणात् उक्तंच मूलप्रकृत्यजिन्नाः संक्रमयति गुणतउतराः प्रकृतीः ॥ नचात्मा मूर्तत्वादध्यव सायप्रयोगेण १ तथा मतांतरं ॥ मोत्तूण आउअंखलु, दंसणमोहंचरीत्तमोहंच ॥ सेसाणं पयडीणं, उत्तरविहिसंकमोजणिउं ॥ २ ॥

उत्कृष्टथी एक जवनेविषे बेवार उपशमश्रेणी पडिवजे तेने नियमा ते जवने विषे क्षपकश्रेणी न होय अने जे एकवार उपशमश्रेणी पडिवजे तेने क्षपकश्रेणी पण होय उक्तंच सप्ततिकाचूर्णौ जोदोवारे उवसम, सेढिंपडिवऊइ तसानियमा॥तंमि जवेखवग.स्से ढीनञ्जिजोइक्कस्सिं॥१॥उवसम सेढिंपडिवऊइ, तस्सखवगसेढिहुऊत्ति॥

ए कर्मग्रंथीनो अजिप्राय कह्यो अने सिद्धांताजिप्रायेंतो एकजवमां एकजश्रेणी पडिवजे. उक्तंच कल्पाध्ययने॥ एवं अप्पडिवडिए, सम्मत्ते देव मणुअ जम्मसुरा॥ अन्नयर सेढिवऊं, एगजवेणंच सवाइं ॥ १ ॥ इहां सवाइंके० सर्व सम्यक्त्वि देश विरत्यादिक अन्यत्राप्युक्तं मोहोपशम एकस्मिन् जवेद्विः स्यादसंततः॥ यस्मि न् जवेतूपशमः क्षयोमोहस्य तत्रनइति उपशमश्रेणिः

हवे क्षपकश्रेणीनुं स्वरूपकहेडे इहां क्षपकश्रेणीनुं पडिवजणहार मनुष्य आठ वर्षथी उपरनो अविरत देशविरत प्रमत्त अप्रमत्त ए माहेलो कोइ अन्यतम अत्यं त विशुद्धपरिणामि उत्तम संघयणवालो पूर्वनोजाण अप्रमत्त शुक्लध्यानोपगतें पण पडिवजे अने बीजातो धर्मध्यानोपगतेंज पडिवजे एमकहेडे पडिवजवानुं अनुक्र म कहेडे अविरति देशविरति प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत ए माहेलोकोइ अन्यतम प्रथम अंतरमूहुर्त्ते अनंतानुबंधियानी चोकडी समकाले खपावे तेनो अनंतमजा ग मिथ्यात्वमांसंक्षेपीने तेवारपडी मिथ्यात्व तदंशेसंघातेज समकाले खपावे जेम अतिसंजृत दावानल निश्चें अर्द्धदग्धें इंधणांतरपामिने बेउनेबालेडे तेरीते ए क्षपक, पण तीव्रशुजपरिणाम पणाथी सावशेष अन्यत्र प्रक्षेपीने खपावे एमज वली स म्यक्त्व मिथ्यात्व, पण खपावे तेवारपडी एजअनुक्रमे सम्यक्त्वनेपण खपावे वली सम्यक्त्वनो चरमस्थितिखंम उत्कीर्णथके ए क्षपककृतकरण एवुं कहिये एकृतक रणाद्धाननेविषे वर्त्ततो कोइक कालपण करीने चारगतिमांहे अन्यतमगतियें उपजे.

वली लेश्यानेविषे पण पूर्वे शुक्ललेश्यानेविषे हतो अने तमणा अन्यतम ले श्यानेविषेजाय तेमाटे प्रस्थापक मनुष्य अने निष्टापक चारेगतिनेविषेहोय. उक्तंच पठ्ठवयगोय मणुस्सो, निठ्ठवगो चउसुविगईसु. इहांजो बद्धायु क्षपकश्रेणीप्रतें आ रंजे तो अनंतानुबंधियाना क्षयथी अनंतरमरण संजवतो व्युपरमेंविरमे तेवारप ठी कदाचित् मिथ्यात्वनाउदयथी वली अनंतानुबंधियाने उपचिणे पाठा आरंजे केमकेअनंतानुबंधिनुं बीजजे मिथ्यात्व ते हजी विनाश पाम्युं नथी माटे. अने जेणे मिथ्यादर्शन क्षयकर्युंठे ते उपचिणेनही अनंतानुबंधिया फरीपाठा प्रारंजेनही एट ले अनंतानु बंधियानु बंधकरेनही केमके मिथ्यात्वरूप बीज नथी तेमाटे.

वली क्षीणसप्तक तो अप्रतिपतित परिणाम माटे अवश्यदेवतामां उप जे अने प्रतिपतित परिणामतो वली नानापरिणाम संजवे तेमाटे जेवो परिणाम होय तेवी चारेगतिमाहेली अन्यतमगति उपजे. उक्तंच बद्धाऊ पडिवन्नो, पढम क सायरकए जइमरिज्जा ॥ तोमिछ्त्तोदयउ, विणिज्ज नूउन खीणंमि ॥ १ ॥ तंमिमऊजाइ दिवं, तप्परिणामोय सत्तए खीणे ॥ उवरय परिणामोपुण, पञ्चानाणा मईगइउ॥ २॥ बद्धायुपण जो तिवारेकालनकरे तोपण सप्तकक्षीण थयो थको नियमारहे पणव ली चारित्रमोहनीय खपाववाने यत्न नकरे. उक्तंच बद्धाऊ पडिवन्नो, नियमा खीणं मि सत्तएगाइत्ति. इहां कोइपूठेजे मिथ्यादर्शनादिकनो क्षयथयो तेवारे ए क्षपकने सम्यक्त्व रहीत कहियें किंवा सम्यक्त्वसहीत कहीये त्यारेगुरुबोल्या सम्यक्दृष्टीज कहियें फरी परबोल्यो जे कहोजी सम्यक्दर्शननो परिक्षयथयो तो सम्यक्दृष्टीपणुं क्यांथीहोय फरी गुरुकहेठे मयणालाटाली चोखाकस्या एवाजे कोइवा ते समान अपनीत मिथ्यात्वजाव एवा मिथ्यात्वना पुजल तेहिज सम्यक्दर्शन कहिये तेने प रिक्षयेंवली तत्वश्रद्धान लक्षण परिणाम पम्योनथी तेमाटे साहमु श्लक्ष्णाभ्रप टल टलवाथी चक्षुदर्शननीपरे विशुद्धितरहोय.

यदाह जाष्यसुधांजोधिः ॥ खीणंमिदंसणतिए, किंहोइ तउनिदंसणाईए ॥ जन्नइ सम्मदिठी, सम्मत्तखए कउ सम्मं ॥ १ ॥ तिबिलीय मयण कुद्दव, रूवंमिछ्त्तमेव सम्मत्तं ॥ खीण तउजोजावो, सद्दहणा लरकणोतस्स ॥ २ ॥ यदिवा ॥ जह सुद्ध जलाणुगयं, डुद्धं सुद्धं जलरकएसुतरं ॥ सम्मत्त सुद्ध पुग्गल, परिरकए दंसणं ए वं ॥ ३ तम्मिय तइय चउठे, जवंमि सिज्झंति खइय सम्मत्ते ॥ सुरनर जुगली सु गई, इमंतु जिण कालिय नराणं ॥ ४ ॥

ए प्रकारे क्षीणसप्तकीनेविषे सम्यक्त्व पामियें जोवली अबद्धायु क्षपकश्रेणीने

आरंभे तोसप्तकक्षीणथये नियमा अनुपरत परिणामज चारित्रमोहनीय खपाऽवाने यत्नप्रते आरंभे. उक्तंच भाष्यकृता ॥ इयरो अणुवरउच्चिय, सयलिंसमाणेति तिहांजे सकलश्रेणीप्रतेकरे तेवा क्षपकने निजनिज भवनेविषे सुरायु नरकायु तिर्य्यगायु ए त्रण आउषाव्यवछेद्याजहोय. उक्तंच ॥ सुरनरय तिरिय आउ. नियय भवे सव्वजी वाणमिति एहिज कहेछे देवायु नारकायु तिर्यगायु लक्षणजे आयुत्रय ते क्षपक स्वरुप सम्यक्दर्शन अवशेषछे एहवोज अप्रत्याख्यानावरण अने प्रत्याख्यानावर ण कषायरूप आठप्रकृति ते समकाले खपाववाने अर्थे आरंभे ए प्रकृति अर्द्धख पावेथकेज अंतराले नामकर्मनी तेरप्रकृति अने त्रण दर्शनावरणनी मली सोलप्र कृति खपावे तेना नाम कहेछे एकेंद्रियजाति, बेइंद्रियजाति, तेंद्रियजाति, चउरिंद्रि यजाति, स्त्यानर्द्धिकत्रिक ते निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, थिणद्धीए, स्त्यानर्द्धिरूप, उद्योतनाम तिर्यक्द्विक, नरकद्विक, थावरनाम, सूक्ष्मनाम, साधारण नाम, आ तप नाम, तेवारपछी आठ कषायनुं जेटलुं अवशेष रह्युं होय ते खपावे ए सर्व अंतरमूहुर्त्तमात्रे खपावे ए सूत्रादेश जाणवो.

वली बीजा एमकहेछेके प्रथम सोलप्रकृतिज खपाववानेअर्थे आरंभे केवल अपांतराले आठकषायने खपावे पछी सोलप्रकृतिखपावे पछी नपुंसकवेद पछी स्त्री वेद पछी हास्यादिषट्क पछी पुरुषवेदना त्रणखंडकरे तेमांबेखंड समकालेखपावे अने त्रीजोखंड तो संज्वलनना क्रोधमांहेआक्षेपे एक्रम पुरुषप्रतिपत्ति होयतेवारेजाणवो.

अने स्त्रीप्रारंभिकाहोय तो प्रथम नपुंसकवेदकखपावे पछी पुरुषवेद पछी हा स्यादिषट्क पछी स्त्रीवेदखपावे अने जेवारे नंपुसक प्रारंभकहोय तेवारे ए क्षपक अनुदीर्णपण प्रथम स्त्रीवेदखपावे पछी पुरुषवेद पछी हास्यादिषट्क पछी नपुंसक वेद खपावे तेवारपछी संज्वलनना क्रोध मान माया लोभ लक्षण प्रत्येके अंतर मूहुर्त्तमात्र काले पूर्वोक्तरीते खपावे श्रेणी परिसमाप्ति कालपण अंतरमूहुर्त्तनोज छे अंतरमूहुर्त्तना असंख्याताभेदछे त्यां लोभना चरमखंडना संख्याताखंड करी ने पृथक् कालभेदेकरी तेने खपावे वली तेनो चरमखंड तेना असंख्याताखंडक रे तेपण समयसमय एकेको खंडखपावे.

इहां क्षीण दर्शन सप्तक निवृत्तिबादर कहिये त्यांथी उंचो अनिवृत्तिबादर ज्यांलगें चरमलोभखंडने खपावे त्यां लगें जाणवो त्यांथी उर्ध्ववली असंख्येय खं डप्रते खपावतो सूक्ष्मसंपराय कहियें ते ज्यांलगे चरमलोभनो अणुउं क्षयथाय त्यांलगेजाणवो, त्यांथी ऊर्ध्वतो यथाख्यात चारित्रियो कहियें तेवली महत्प्रतरण

परिश्रांतनीपरे मोहसमुद्रप्रतेतरीने विसामोलिये त्यारपछी छद्मस्थवीतरागगुणस्था नक आवे तेना द्विचरम समयनेविषे निद्रा तथा प्रचला ए बे खपावे पछी चरमसमयनेविषे पांच अंतराय पांच ज्ञानावरणीय चार दर्शनावरणीय खपावे तेने क्षये निर्म्मूलोच्छेदे केवलज्ञानीथाय केवलज्ञानपामे. यदाहुः श्रीमदाराध्यपादाः चरमे नाणावरणं, पंचविहं दंसणं चउवियप्पं॥ पंचविह मंतरायं, खवइत्ता केवली होइ॥१॥

एटले एम कह्युंजे अविरत्यादिक गुण माहेलो गमेते प्रथम संघयणी सुविशुद्ध परिणामवंत क्षपकश्रेणीप्रते चढयो गुणठाणाने अनुक्रमे अनंतानुबंधियादिकप्रते उक्तप्रकारे करीने खपावतो ज्यांलगे क्षीणमोहना चरमसमयनेविषे विघ्नपंचक ज्ञानावरण पंचक दर्शनावरण चतुष्क खपावीने सर्व संख्यायें ज्ञानावरण पंचक दर्शनावरण नवक मोहनीयनी अठावीस आउखानी त्रण नामकर्मनी तेर अंतराय पंचक ए प्रमाणे त्रेसठ प्रकृति खपावीने केवली थाय ते भगवान भवस्थकेवल लोकालोक सर्व सर्वात्माये अविकल विमल केवलज्ञानेदेखे, पणएवुं क्यारेथयुं नथी अने थातुंपणनथी तथा थासेपणनही जे भगवान् नदेखे. यदाहुःश्रीमदाराध्यपादाः संभिन्नं पासंतो, लोगमलोगंच सव्वउ सव्वं॥ तं नत्थिजं नपासइ,भूयं सव्वं भविस्संच॥१॥

ए प्रकारे सयोगी केवली थयो त्यां जघन्यथी अंतरमूहुर्त्त अने उत्कृष्टो देशे ऊणा पूर्वकोडीलगे विहरीने अयोगी केवली गुणठाणुंचढी तेनाद्विचरम समयने विषे बहुतेर अने चरमसमयनेविषे तेर एम पच्यासी प्रकृती खपावीने शिव अचल अरुज अक्षय अव्याबाध अमंदानंद रत्नसार पामे. यदुक्तं कर्म्मग्रंथे शतकांते॥ अणमिछ मीस सम्म,त्त आउ इग विगल थीण तिगुजोयं ॥ तिरि नरय थावरदुगं साहारायव अडनपुंछी ॥ १ ॥ छग पुंसं संजलणा, दोनिद्दा विग्घवरण खय नाणी ॥ देविंद सूरि लहियं, सयगमिणं आय सरणठा ॥२॥ इति क्षपकश्रेणीसमाप्त

हवे क्षायक सम्यक्त्वनुं स्वरूप कहेछे चार अनंतानुबंधिया अने त्रण मोहनीय ए सात प्रकृतिक्षयकरीने जेणे क्षायक सम्यक्त्व पाम्युं तेणे जो सम्यक्त्वपाम्या पूर्वे देवायु अथवा नरकायु बांध्युं होय तो त्रणभवे मोक्षे जाय अने जो मनुष्य अथवा तिर्यंचनुं आयुबांध्युं होय तो चार भवे मोक्षे जाय केमके मनुष्य तथा तिर्यंचनुं आयु बांध्युं होय तो नियमा असंख्याता आयुषावाला युगलियानुंज बांध्यु होय पण संख्याताआउखा वाला मनुष्य अथवा तिर्यंचनुं जेणे आयु बांध्यु होय तेतो सर्वथा क्षायिक सम्यक्त्व तेभवें पामेज नही.

युगलियानाभवपछी देवतानो भव तेपछी मनुष्यनो भव पामीनेसीजे एरीते स

म्यक्त्वपाम्याना नव सहीत चारजव करे अने जेणे कोइपण गतिनुं हजी आउ षुंबांध्युं न होय अने क्षायक सम्यक्त्वपामे तो ते जीव तेजजवे क्षपकश्रेणी पूरी करी ने सिद्ध थाय. उक्तंच पंचसंग्रहादौ तइय चउछे तम्मिय, जवंमि सिझंति दं सणे खीणे ॥ जंदेव नर असंखा,उ चरम देहेसु ते हुंति ॥ १ ॥ ए त्रीजी अने चोथी गाथानो अर्थ छे.

एक जीवनी अपेक्षायें अथवा नानाजीवनी अपेक्षायें सम्यक्त्वोपयोग जघन्यथी अने उत्कृष्टथी अंतरमुहूर्तज होय अने क्षायोपशमरूप सम्यक्त्व लब्धितो एक जीवने जघन्य अंतरमुहूर्त्त अने उत्कृष्टी छाशठ सागरोपम मनुष्यजवे अधिक होय ते उपरांत सम्यक्त्वथी पमेनही तो नियमासीजे ए एकजीव आश्रीने कह्युं अने नानाजीवआश्रीतो क्षायोपशम सम्यक्त्व सदासर्वदा होय. यदुक्तं दोवारे विजया इसु, गयस्सतिन्नचुए अहव ताइं ॥ अइरेगं नरजवियं, नाणा जीवाण सव्वद्धा ॥ १ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ए ॥ एटली गाथाउनो अर्थ छे.

हवे सम्यक्त्वनुं अंतरते सम्यक्त्वथीपमीने पाछुं फरी सम्यक्त्वपामे तो केटले कालें पामे इत्यादिक स्वरूप कहेछे ते अंतर जघन्यथी तो अंतर मुहूर्त्तछे एटले कोइकजीव सम्यक्त्व गयापछी वली पाछुं तदावरणना क्षयोपशमथी अंतरमुहूर्त्त मात्रेज सम्यक्त्व पामे अने उत्कृष्टथी आशातना प्रचुरने अर्द्धपुजलपरावर्त्तनुं अंतर पडे उक्तंच तिछयर पवयणसुअं, आयरियं गणहरं महड्ढीअं ॥ आसायंतो बहुसो, अणंत संसारिउहोइ॥१॥इहां कांइकन्यून अर्द्धपुजल परावर्त्तरूपअनंतसंसारजाणवो.

हवे ते पुजलपरावर्त्त केतलेकालेहोय तेनुं स्वरूप कहेछे अनंति अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणीए एक पुजलपरावर्त्तहोय तेवा पुजल परावर्त्त अनंता अतीतथया अ ने अनंता अनागतथसे हवे ए पुजलपरावर्त्त द्रव्य क्षेत्र काल जाव जेदे चारप्रकारे थाय तेवली एकेको सूक्ष्म अने बादर एबे प्रकारे करता आठप्रकार थायते कहेछे.

तेमां प्रथम द्रव्यथी सूक्ष्म अने बादर ए बे जेदकहेछे औदारिकपणे वैक्रियपणे तेजसपणे जाषापणे सासोश्वासपणे मनपणे कार्म्मणपणे ए सातपणे सर्वचतुर्द सरज्जु गत परमाणुउप्रते आत्मा फरसे तेवारे द्रव्यथी बादर पुजलपरावर्त्त थाय यदुक्तं स्तोत्रादौ औदारिक वैक्रिय ते, जस जाषाप्राणचित्तकर्म्मतया ॥ सर्वाणुपरि णतेर्म्मे, स्थूलोजूत् पुजलावर्त्तः ॥ १ ॥ अन्यत्राप्युक्तं जाषोच्छ्वासमनस्तेजः, क र्म्मौदारिकवैक्रियाः ॥ स्पष्ट्वायत्पुजला मुक्ता, द्रव्यतः सैष बादरः ॥ १ ॥

ए औदारिकादिक सात मांहेथी एकेक औदारिक शरीरादिकपणे प्रत्येके सर्वचतु

देस रज्जुगत परमाणुउप्रते जीवफरसीने अनुक्रमेमूके तेवारे द्रव्यथी सूक्ष्म पुद्गल परावर्त्तथाय एटले चउदराजलोकमाहेला सर्वपरमाणु पुद्गलने औदारिकशरीरपणे परिणमावे पछीवली तेमज सर्वपरमाणुपुद्गल वैक्रियशरीरपणे परिणमावे एमज तेजस शरीरपणे भाषापणे सासोश्वासपणे मनपणे कार्म्मणशरीरपणे प्रत्येके अनुक्रमे आत्मापरिणमावे तेवारे द्रव्यथी सूक्ष्मपुद्गल परावर्त्तथाय अने केटलाएक आचार्यने मतेंतो ए सातमाहेला औदारिक वैक्रिय तेजस ने कार्म्मण ए चारशरीर माहेलुं गमेते एकशरीरपणे सर्वपुद्गल परमाणुआ प्रते आत्मा अनुक्रमे फरसीने मूके पणइहां व्युत्क्रमे फरस्याते लेखामां गणायनही जे अनुक्रमे फरस्यातेज परमाणुआ लेखामांगणाय तेवारे द्रव्यथी सूक्ष्मपुद्गलपरावर्त्तथाय यदुक्तं तत्सप्तकैककेनच, समस्त परमाणु परिणतेर्यस्य: संसारे संसरतः सूक्ष्मोमेजिनतदावर्त्तः॥१॥ मतांतरेतु सूक्ष्मस्त्वेकेन कायेन स्पृष्टासर्वेपि पुद्गलाः येनुक्रमेण मुक्तास्तेगण्यंते व्युत्क्रमेणतुः॥१॥

हवे क्षेत्रथी सूक्ष्म अने बादर ए बे प्रकारनो पुद्गल परावर्त्त कहेछे जेटला लोकाकाशना प्रदेश छे तेटला सर्व आकाशप्रदेशें जीवमरणपामे एटलासर्वे मरणेकरीने जीव क्रमोत्क्रमे जेम तेमकरीने फरसे एटले जेटला लोकाकाशनाप्रदेशछे तेटला सर्वआकाशप्रदेश जेम तेम मरणेकरी फरसे तेवारे क्षेत्रथी स्थूल पुद्गल परावर्त्तथाय

अने जेवारें एक आकाशप्रदेशनेविषे जीवमरीने तदनंतर बीजा आकाशप्रदेशनेविषे मरे तेवारे ते मरणाश्रित आकाशप्रदेश लेखामांगणाय पण तृतीयादिक आकाशप्रदेशेमरे ते आकाशप्रदेश लेखामांगणायनही जोडना पासेना आकाशप्रदेशेमरे तेहिज आकाशप्रदेश लेखामांगणाय एम अनुक्रमें सर्वलोकाकाशना प्रदेश मरणेकरीने फरसे तेटलेकाले क्षेत्रथी सूक्ष्मपुद्गल परावर्त्तथाय यदुक्तं लोकाकाशप्रदेशाये म्रियमाणेन जंतुना ॥ क्रमोत्क्रमेण संस्पृष्टाः, सस्थूलः क्षेत्रतोभवेत्॥ ॥१॥ मृत्वाक्षेत्रेयदेकत्र, म्रियतेतदनंतरं॥ क्रमेणजीवः सर्वत्र, क्षेत्रेसूक्ष्मः सउच्यते २

हवे कालथी सूक्ष्म अने बादर पुद्गलपरावर्त्त कहेछे जेटला उत्सर्प्पिणीनेविषे समयहोय तेटला समय क्रमे अने उत्क्रमे अनुक्रमे अने अननुक्रमे जीव मरणेकरीने व्यापे फरसे तेवारे कालथी स्थूलपुद्गल परावर्त्त थाय.

अने ते उत्सर्प्पिणीने पहेले समयेमरीने वली बीजी उत्सर्प्पिणीनाबीजे समये मरे तेवारे ते समयलेखामांगणाय पण बीजी उत्सर्प्पिणीने त्रीजे अथवा पहेलेसमयें मरे ते लेखामां गणाय नही वलीत्रीजी उत्सर्प्पिणीने त्रीजेसमयेमरे तो तेसमये लेखामां गणाय पण पहेले बीजे चोथे प्रमुख समयमांमरे तेलेखामां

नावे एरीते जेटला एक उत्सर्प्पिणीना समयहोय तेटलासर्व समय अनुक्रमे मरणे करीने फरसे तेवारे तेटले काळें काळथी सूक्ष्मपुद्गल परावर्त्तथाय यडुक्तं यावंत उत्सर्प्पिण्यांस्युः, समयास्तान् स्वमृत्युना ॥ क्रमोत्क्रमेणव्याप्नोति, सस्थूलः कालतो नवेत् ॥ १ ॥ प्रथमे समये मृत्वोत्सर्प्पिण्यांस्तदनंतरं ॥ म्रियते यदि सर्वत्र, क्रमात्सूक्ष्मःसकालतः ॥ २ ॥

हवे नावथी सूक्ष्म अने बादर पुद्गलपरावर्त्त कहेछे इहां जगतमां एक समयने विषे जे पृथवीकायादिकनाजीव सूक्ष्म अग्नीकायमां उपजेछे ते जीव केटलाउपजेछे असंख्येय लोकाकाशप्रदेश राशीप्रमाण उपजेछे एटले अलोकमांहे चउदराजलोकना जेवा असंख्याता लोक कल्पीयें ते असंख्याता चउदराजलोकना जेटला आकाशप्रदेशथाय तेटलाजीव एकसमयनेविषे पृथ्वीकायादिकमांथीचवीने सूक्ष्म अग्नीकायनेविषें उपजेछे ते जे पृथिव्यादिकथी अने बादर अग्निकायथी चवीने एकसमयनेविषे सूक्ष्म अग्निकायपणे उपजेछे ते लेवा पण जे सूक्ष्मअग्निकायपणे पूर्वेउपनाछे वली तेहिजमरीने सूक्ष्मअग्निकायपणे उपजेछे ते लेवानही केमके ते तो पूर्वेज सूक्ष्मअग्निकायपणे रह्याछे ते केटलाछे एकसमयनेविषे जे सूक्ष्म अग्निकायनाजीव उपजेछे तेथी असंख्यातगुणा पूर्वे उपना सूक्ष्मअग्नीकायना जीवछे तेकेमके एक सूक्ष्मअग्निकायनोजीव उपनोथको अंतरमूहुर्त्तसुधी जीवेछे अने अंतरमूहुर्त्तमां जेटला समयछे ते समयसमयमां प्रत्येके पूर्वोक्त असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाण सूक्ष्म अग्निकायपणे जीवो उपजेछे तेमाटे एकसमयमां सूक्ष्मअग्निकायना जे जीवउपजेछे तेथी एजकायनेविषे पूर्वे उपजेलाजीव असंख्यातगुणाछे.

एटले एकसमयनेविषे उपना ते तथा अंतरमूहूर्त्तमांहे जे पूर्वे उपनाछे तेसर्व भेलाकरीयें तेनीजे संख्याथाय ते सर्वसंख्याथी तेजजीवोनी कायस्थिति एटले तेहिज कायनेविषे मरीने अवतरवुं तेरूप कायस्थिति असंख्यातगुणीछे केमके एकेक सूक्ष्म अग्निकायनाजीवनी असंख्येय उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणी प्रमाण काय स्थिति कहीछे माटे. वलीते कायस्थितिथीपण संयमस्थानक अने अनुनागबंधस्थानक प्रत्येकें असंख्यातगुणाछे एटले कायस्थितिथी संयमस्थानक असंख्यातगुणा अने अनुनागबंधस्थानकपण असंख्यातगुणाछे अने ए बे माहोमांहे तो तुल्यछे एटले जेटला संयमस्थानक तेटलाज अनुनागबंध स्थानकछे अने कायस्थितिनी परे असंख्याता स्थितिबंधछे अने एकेक स्थितिबंधनेविषे असंख्याता अनुनागबंध स्थानकछे. तेनोज स्वरूप कहेछे.

अनुभागबंध स्थानकते कोनेकहियें ? एक कषायिक अध्यवसायेंकरीने ग्रह्याजे कर्मपुद्गल तेनुं विवक्षित एकसमय बंध रस समुदाय परिमाण तेने अनुभागबंध स्थानककहीयें ते अनुभागबंधस्थानक केटलाछे तो के चउदराजलोक जेवो एकलोकाकाश तेवा असंख्याता लोकाकाश अलोकमां कल्पीये तेना जेटलाप्रदेशछे तेना जेटलाछे ते अनुभागबंधस्थानकना निष्पादक एटले नीपजावनार जे कषायोदयरूप अध्यवसाय विशेष ते पण अनुभागबंध स्थानक कहियें तेपण तेटलाजछे जेटलेकाले क्रमोत्क्रमे करीने सर्व अनुभागबंधाध्यवसायनेविषे वर्त्ततोथको जीव मूउ होय तेवारे तेटलेकाले बादर भाव पुद्गलपरावर्त्तथाय.

कोइकजीव सर्वजघन्य कषायोदयरूप अध्यवसाय स्थानकनेविषे मरणपाम्यो तेवारपछीजो तेहिजजीव अनंताकालपछी पण ते प्रथम स्थानकथकी अनंतरबीजा अध्यवसाय स्थानकनेविषे वर्त्ततोथको मरणनेपामे ते मरणने लेखामांगणियें पण बीजा उत्क्रमनावी अनंतामरण पण लेखामां न आवे एरीते अनुक्रमे सर्व अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थानक जेटलेकाले मरणेकरीने फरसे तेटले कालें सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त्त कहियें इहां क्षेत्रथकी सूक्ष्म पुद्गलपरावर्त्त मार्गणानेविषे लेवुं ने बीजा पुद्गलपरावर्त्तनो परूपणा मात्रछे.

यदुक्तः— एक समयंमि लोए, सुहुमगणिजिआउ जे उपविसंति ॥ तेहुंति असंखलोग, पएस तुल्ला असंखिज्जा ॥ १ ॥ तत्तो असंख गुणिया, अगणिक्कायाउ तेसि कायठिई ॥ तत्तो संयम अणुभाग बंधठाणाणि संखाणि ॥ २ ॥ ताणिमंतरेण जया, पुठाणि कमुक्कमेण सव्वाणि ॥ भावंमि बायरोसो, सुहुमो अक्कमेण बोधव्वो ॥ ३ ॥ अन्यत्राप्युक्तं ॥ भावेथ समये जीवाः पृथ्वीकायपुरस्सराः ॥ सूक्ष्मेषु तेजःकायेषु यावंतः प्रविशंतिहि॥१॥ इहते स्युरसंख्येय लोक प्रदेशतुल्यकाः॥असंख्यातास्ततः पूर्वोत्पन्नाः कायस्थितिस्ततः ॥ ततःस्थानान्यसंख्यानि संयमाध्यवसाययोः ॥ तानिस्पृष्टेयदाजीवः किलगच्छन् भवांतरे ॥ ३ ॥ बादरोव्युत्क्रमेणायं ज्ञेयः सूक्ष्मक्रमेणतु ॥ अत्रक्षेत्र परावर्त्तेणा धिकारःपरैर्नतु. ॥ ४ ॥

ए प्रकारे सम्यक्त्वरहित थको एणेजीवे अव्यवहार रासीमांहे एवां पुद्गलपरावर्त्त अनंताकखा तेहिजजीव महनाकष्टे व्यवहाररासोपाम्यो त्यां व्यवहारराशीमां पण केटलाक कालसुधीरहेछे माटे हवे इहां प्रसंगे कायस्थितिनुं कांइक स्वरूपकहेछे.

तिर्यंचनी गति असंन्निया एकेंद्री वनस्पति अने नपुंसक एटला मांहे एक आवलिकाने असंख्यातमेंभागें जेटलासमयहोय तेटला पुद्गलपरावर्त्त उत्कृष्टोरहे एक

आवलिकाना पण असंख्यातासमय अने आवलिकाना असंख्याताभागनापण अ संख्याता समय जाणवा कारणके असंख्यातुं असंख्याते भेदेछे.

हवे व्यवहाररासीमां आव्यापछीपण सूक्ष्मपणे केटलो कालरहे ते कहेछे पृ थ्वी अप तेज वाउ अने वनस्पति ए पांच सूक्ष्ममां सामान्यपणे अ‍ संख्या लोकाकाश प्रदेशप्रमाण उत्सर्प्पिणी अने अवसर्प्पिणी काललगे रहे एक मांज रहे तोपण एटलोज काल अने पांचसूक्ष्ममांरहे तोपण एटलोज कालजाणवो.

हवेबादरमां सामान्यपणे रहेतो केटलो कालरहे तेकहेछे बादरमां अने बादरवनस्प तिमां अंगुलने असंख्यातमेभागे जेटलाप्रदेशहोय तेटलां उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीका ललगेरहे अनेबादरनिगोदमां अढीपुद्गल परावर्त्तरहे अनेपृथ्वीकाय अपकायतेउकाय वाउकाय प्रत्येक वनस्पतिकाय अने निगोदमां सित्तेर कोडाकोडी सागरोपम लगेरहे.

हवे विगलेंद्री अने सामान्यपणे पर्याप्तोबादर एकेंद्री एमां केटलोकालरहे ते कहेछे बेंद्री तेंद्री चोरेंद्रीमां संख्यातावरस सहस्रसुधीरहे अने सामान्यपणे पर्याप्तोबा दर एकेंद्री माटी पाणी वायरो प्रत्येक वनस्पति मांपण संख्यातावरस सहस्र सुधिरहे.

हवे बादरपर्याप्ता अग्निकाय अने विगलेंद्री तेनो कांईक विशेषकहेछे बादर अग्निकायनी भवस्थिति उत्कृष्टीतो त्रणअहोरात्री अने कायस्थिति उत्कृष्टीतो निरंतर सर्वभवकाल संकलनायें संख्याता दिवसनी जाणवी अने बेइंद्रीमांहे भव स्थिति बारवर्षनी अने कायस्थिति सर्वभव काल संकलनायें संख्याता वरस होय अने तेंद्रीमांहे उगणपचासदिवश भवस्थिति ते एकभवनो उत्कृष्टो आउखानोकाल छे अने कायस्थिति सर्वभवसंकलनायें संख्यातादिवशनी छे वली चउरंद्रीमां उत्कृ ष्टी छ महीनानी भवस्थिति एकभवआयुरूपछे अने कायस्थिति तो संख्याता मही नानी छे अने त्रस मांहेतो बे सहस्रसागरोपम संख्यातेवरसे अधिक कायस्थितिछे.

हवे पंचेंद्रीनुं सामान्य विशेषपणे कायस्थितिनुं स्वरूपकहेछे पंचेंद्रीमांहे पंचें द्रीपणेजीवरहेतो उत्कृष्ट एकहजार सागरोपम जाजेरुंरहे अने देव तथा नारकी मां भवस्थिति अने कायस्थिति तेपण तेंत्रीससागरोपमज जाणवा सन्नीया अने पुरुषवेदमांहे वशे सागरोपमथी मांडीने नवशे सागरोपम जाजेरानी कायस्थिति छे सन्निया तिर्यंच सन्निया मनुष्यमांहे त्रणत्रण पल्योपम सातपूर्वकोडी सहित कायस्थितिहोय अने स्त्रीवेदमांहे एकशोदशपल्योपम अने पूर्वकोडी पृथक्त्वें अ धिक एटली कायस्थितिहोय तथा स्त्रीवेद अने नपुंसकवेदमां जघन्यतो एकसम य ते उपशमश्रेणीवालाने होय अने शेषबीजाथाकताने जघन्यकाल अंतरमूहूर्त्त

अपर्याप्ताने जघन्य अने उत्कृष्टो पण अंतर मुहूर्त्तकाल पर्याप्ता सूक्ष्म अने बादर अनंत कायने जघन्य अने उष्कृष्टो अंतरमूहुर्त्तज काल जाणवो.

यदुक्तं कायस्थिति विचारस्तोत्रे अववहारियमझे, नमिऊण अणंत पुग्गल परट्टे ॥ कहविवहाररासिं, संपत्तोनाहतइविय ॥ १ ॥ उक्कोसंततिरियगइ, असंन्नि एगिंदिवण नपुंसेसु ॥ नमिउ आवलि असंखि, नागसमपुग्गल परट्टी ॥ २ ॥ सामन्नं सुहमत्त, उस्सप्पिणिउ असंख्यलोगसमा ॥ नमिउ तहपिहुसुहमे. पुढविज लजलण पवणवणे ॥ ३ उहेण वायरत्ते, तह बायरवणस्सई सुताउ पुणो ॥ अंगुलअसंखनागो, दोसमुपरट्टयनिगोए ॥ ४ ॥ बायरपुढविजलजलण, पवणं पत्तेय वणनिगोएसु ॥ सत्तरि कोडाकोडी, अयराणंनाह नमिउहं ॥ ५ ॥ संखिज्जवास स हसे. बितिचउरिंदीसुउहउअतहा ॥ पज्जत्त बाय रेगिंदिनूजलानिल परिनेसु ॥६॥ बायरपज्जिगबिति चउ, गिंदिसुसंखदिणवास? उमासा; संखिज्जवास अहिया. तसेसुदोसागरसहस्से ॥ ७ ॥ अयरसहस्संअहियं, पणिंदिसुतितीसअयरसुरनिरए ॥ सन्निसुनइपुरिसेसु, अयरसयपुहुत्तमप्पहियं ॥ ८ ॥ सन्नितिरिनरेसु पुढो,पल्लतिगं सत्त पुव कोडिजुअं ॥ दसहिय पलिय सयं, थी सु पुव्वकोडि पुहुत्तजुअं ॥ ९ ॥ इबि नपुंसे समउ, जहन्नो अंतो मुहुत्तसेसेसु ॥ अपज्ज सुक्कोसंपिय,पज्ज सुहम थूल अणंतेवि ॥ १० ॥ ए कायस्थितिकही

हवे प्रसंगागत नवसंबंध परस्परे नवगणनारूप कहेछेः—परनवनुं अने तेनवनुं उत्कृष्ट अने जघन्य आयुने जेदेकरी चारनांगाथाय तेकेवीरीतेके ज्यां अवतरे त्यां उत्कृष्ट अने परनवनुंपण उत्कृष्ट, ज्यां अवतरे त्यां जघन्य अने परनवनुंपण जघन्य, ज्यां अवतरे त्यां उत्कृष्ट अने परनवनुं जघन्य, ज्यां अवतरे त्यां जघन्य अने परनवनुं उत्कृष्ट, ए चारनांगाजीवने नवगणनाये जाणवा.

सन्निउमनुष्य अने संन्नितिर्यंच ठ नरकमां उत्कृष्टो एकांतरित आठ नवसुधि जाय; सन्निउ मनुष्य अने सन्निउ तिर्यंच ते नवनपति व्यंतर ज्योतषी अने आठमां देवलोकसुधी आठनव एकांतरित उत्कृष्टोजाय अने जघन्यतो बे नवजाणवा; तिर्यंच सातमीनरके सातवारजाय अने पूरण आउषे पांचवारजाय, अने जघन्यतो त्रणनवथाय, नवग्रैवेयक अने आनंत प्राणत आरण तथा अच्युत ए चारेदेवलोक लगे सातनवहोय; चारअनुत्तरमां पांचनवहोय, जघन्यतो त्रणनव होय, अनेसर्वार्थसिद्ध जघन्य अने उत्कृष्ट त्रणनवहोय, सातमीपृथ्वीये बेनवजघन्य, अने उत्कृष्टपण बे नवजहोय, इहां सर्वत्र पर्याप्ता मनुष्यजाणवा.

युगलिया तिर्यंच तथा मनुष्य ते नवनपति व्यंतर ज्योतषी अने बे देवलोकना देवतामांजाय, पण इहां उत्कृष्ट अने जघन्यबेजनवहोय, असंन्निउ पर्याप्तोतिर्यंच ते प्रथमनरके अने नवनपति तथा व्यंतरमां उत्कृष्ट तथा जघन्य बेजनवहोय.

आठदेवलोकना देवता अने ठ नरकनानारकी ते पर्याप्ता अपर्याप्ता सन्निआ तिर्यंच तथा मनुष्यमां उत्कृष्टा आठनवकरे, सातमि नरकना नारकी तिर्यंचमां ठ नवकरे अने पूरण आउषे चारनवकरे, नवग्रैवेयकना देवता अने नवमांथी बार मांदेवलोकसुधीना चार देवलोकना देवता पर्याप्ता संन्निया मनुष्यमां ठ नवकरे.

चार अनुत्तर विमानना देवता मनुष्यमां चारनवकरे अने जघन्यथी बे नवकरे, तथा सर्वार्थसिद्धिना देवताने जघन्य अने उत्कृष्ट बेज नवहोय; नवनपति व्यंतर ज्योतषी अने बे देवलोकना देवताने माटी पाणी प्रत्येक वनस्पतिमां जघन्य अने उत्कृष्ट बे नवहोय. असंख्याता आउषावाला युगलिया तिर्यंच अने मनुष्यमांहें संन्निउ असंन्निउ तिर्यंच अने संन्निउ मनुष्य मिथ परस्परें बेनवजाणवा.

माटी पाणी वायु अने अग्नि एना जीव वनस्पति पृथ्व्यादिकमांहे मिथ परस्परें असंख्यातो कालरहे, अने पृथ्व्यादिकजीव वनस्पतिमांहे असंख्यातोकालरहे अने वनस्पतिनाजीव वनस्पतिमांहे अनंतोकालरहे, विगलेंडीनाजीव पांचपृथ्व्यादिकमांहे संख्यातो कालरहे पांच पृथ्व्यादिकना जीव विगलेंडियमा संख्यातो काल रहे; विगलेंडीनाजीव विगलेंडीमांहे संख्यातो कालरहे, उत्कृष्टआउषे त्रिन्नांगें आठ नवजाणवा, जघन्यतो सघले बे नवजाणवा.

संन्निया असंन्निया तिर्यंच तथा मनुष्यने विगलेंडीअने पांच पृथ्व्यादिकमां आठनवथाय, मनुष्य अने तिर्यंचमांहे विगलेंडीअने पृथ्व्यादिकना जीव आठनवआवे, ए चिहुंनांगें जाणवा; वली वायु अने अग्नीमां मनुष्यने उत्कृष्ट अने जघन्य तो बेज नवहोय, एरीते परनव अने ते नवना आयुनो संबंध तेनी बंधस्थिति चिहुंनागे जघन्य अने उत्कृष्ट अनुक्रमे कही.

उक्तंच तत्रैव कायस्थितिविचार स्तोत्रेः– परनव तप्नवआऊ, लहु गुरु चउनंगि सन्निनरतिरिउ ॥ नरयठगे उक्कोसं, इकंतर नमइ अठनवे ॥ १ ॥ नवणवणजोइ कप्प,ठ गेविइय अडनवाउ डु जहन्ना; सगसत्तमीइतिरिउ, पण पुसासु यतिजहन्ना ॥ २ ॥ गेविज्ञाणय चउगे, सग पणणुत्तर चउक्किति जहन्ना ॥ पज्ज तरोति सवठ डुहाडुनवत मतमाइ पुणो ॥ ३ ॥ डुजुगलिय तिरियमणुआ ॥ डुनवा नवणजोइ कप्पडुगे ॥ रयणप्पह नवणवणे, डुह डुनव असन्नि पजतिरिउ ॥ ४ ॥ पज स

न्नि तिरिनरेसुय, सहसारंता सुराय ह्नुनिरया ॥ अडजव सत्तम निरया, तिरिये ठ जव चऊपुस्सा ॥ ५ ॥ पज सन्निनरे ठ जवा, गेविज्जाणय चउक्कदेवाय ॥ चउणुत्त रे चउ जवा ॥ डुजहन्न डुहावि सव्वहा ॥६॥ जूजल वणे सु डुजवा, डुहावि जव णवण जोइस डुकप्पा ॥ उमियाउतिरि नरेतह, मिय सन्नियरति सन्निनग ॥ ७ ॥ जूजल पवग्गि मिहवणा, जुवाइ सुवणेसु अजवाई ॥ पूरंति असंख जवि, वेवणीएसु, अणंतजवे. ॥८॥ पण पुढवाइ सुविगला, विगलेसु अ जवाइ विगलि संखजवे ॥ गुरु आउति जंगेपुण, जवठ सव्व जहन्ना ॥ ए ॥ मिहसंन्नियर तिरिनरा, विगलजुवाइ सुयनर तिरिसुए ए ॥ अमजवा चउजंगे, डुह पवणग्गिसु नराड जवा ॥ १० ॥ परतप्पवाउ माणा, इह पउसंवेह कणबंधठिई ॥ किन्निय विन्नविउमलं, चउजंगे ज हनुको सकमा ॥ ११ ॥ ए दशमीगायानो अर्थछे. नानाजीवनी अपेक्षायें अंतर नहोय इत्यादिक आवश्यकवृत्तिमां कह्युंछे ए इग्यारमी गाथानो अर्थ छे.

अथवा एहिज सम्यक्त्व अनेकविध कहियें यदाहुः एगविह डुविह तिविहं, चउहा पंचविह दसविहं सम्मं ॥ दक्का इकारगाइ, उवसम जेएहिं वासम्मं ॥१॥ एगविहं सम्मरुई, निसग्ग हिगमेहिं तं जवे डुविहं ॥ तिविहं तंखइगाइ, अहवावि हुकार गाईयं ॥ २ ॥ खइयाइ सासणजुअं, चउहा वेयग जुअं तुपंचविहं ॥ तंमिछ्वरम पुग्गल, वेयणाउ दसविहंएवं ॥ ३ ॥

अथवा उत्तराध्ययनना अगावीसमां अध्ययनमां ए पण दशप्रकार कह्याछे निसग्गुवेएसरुई, आणरुई सुत्त बीयरुइ मेव ॥ अजिगम विछ्वाररुई, किरिया संखेव धम्मरुई ॥ १ ॥ जूअछेणा हिगया, जीवाजीवाय पुन्न पावंच ॥ सहसमुइ आसव संव, रोय परोएइ उनिसग्गो ॥ २ ॥ जोजिणदिठेजावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ॥ एमे अन्न न हत्तिअ, सनिसग्गरुइत्ति नायव्वो ॥ ३ ॥ ए ए चेवहुजावे, उवइठेजो परेण सद्दहई ॥ ठउमछे णजिणेण व, उवएसरुइत्ति नायव्वो ॥ ४ ॥ रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयंहोई ॥ आणाए रोयंतो, सोखलु आणारुईनाम ॥५॥ जोसुत्तमहिज्जंतो, सुएण उगाहईउ सम्मत्तं ॥ अंगेण बाहिरेणव, सोसुत्त रुइत्ति नायव्वो ॥ ६ ॥ एगेण अणेगाई, पयाइ जो पसरेइ उसम्मत्तं ॥ उदएवतिल्लबिंदू, सो बीयरुइत्ति नायव्वो ॥ ७ ॥ सोहोइ अजिगमरुई, सुअनाणं जेण अछ्वउदिठं ॥इक्कारस अंगाइं ॥ पइन्नगं दिठिवाउअ ॥ ८ ॥ दव्वाण सव्वजावा ॥ सव्वपमाणेहिंजस्स उवलद्धा ॥ सव्वाहिं नयविहीहिं, विछ्वाररुइत्ति नायव्वो ॥ए॥ दंसण नाण चरित्ते, तवविणए सव्वसमिइ गुत्तीसु ॥ जोकिरिया जावरुई, सोखलु किरिया रुईनाम

॥१०॥ अणनिग्गहिय कुदिट्ठी, संखेवरुइत्ति होइनायव्वो ; अविसार उपवयणे, अण तिग्गहियो अ सेसेसु ॥११॥ जो अत्थिकायधम्मो, सुअरवलुचरित्त धम्मंच; सद्दहइ जिणाभिहियं, सोधम्म रुइत्ति नायव्वो ॥ १२ ॥ हवे ए गाथानो विषमार्थ लेशमात्र कहेछे भूअत्थत्ति सद्भूताअमीअर्थाइ सद्भूतार्थत्वे न सहसमत्या जातिस्मृति प्रति जादिरूपथा सद्भूत ए अर्थ जाणवाने प्रथम सप्तभंगीनुं स्वरूप कहेछे.

सिअ्रा अत्थि सिअ्रा नत्थि, अत्थि नत्थि सिअ्रा पुणो ॥ सिअ्रा चेव अवत्तव्वो, छु गंविहिनिसेहउ ॥ १ ॥ सिअ्रा अत्थि अवत्तव्वो, चेवंविहिनिसेवउ ॥ सिअ्रा अ त्थिसिअ्राणत्थि, अवतव्वो सिअ्रा तहा ॥२॥ सत्तभंगी जिणुद्दिठा, सव्वभावेसुसम्मया

हवे एनो अर्थ कहेछेः– सकल पदार्थ पोतपोताना रूपे द्रव्य क्षेत्र काल अने भावेकरी छता छे जेम घट पोताने रूपे द्रव्यथकी माटीनो अथवा सोना रूपा त्रांबा प्रमुखनो छे, क्षेत्रथकी राजनगरनो उपनोछे कालथकी शीतकालनो उपनोछे भावथी स्यामरूपछे एरीते सर्व द्रव्यपदार्थ द्रव्य क्षेत्र काल भावथी पोतपोताने रूपे छताछे ते स्यादस्तिलक्षण सप्तभंगीनो प्रथमभेद जाणवो.

अने सकलपदार्थ पररूपे द्रव्य क्षेत्र काल अने भावथी नथी जेम घटते वस्त्र रूपेनथी द्रव्यथी जलरूपेनथी क्षेत्रथी स्तंभतीर्थनो उपनोनथी कालथी उष्णकाल नो उपनोनथी भावथी रक्तरूपेनथी एम सर्वपदार्थ पररूपे द्रव्य क्षेत्र काल अने भावथी नथी, ए स्यान्नास्तिलक्षण सप्तभंगीनो बीजो भेदजाणवो.

सकल पदार्थ अनुक्रमे विचारता स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावेछताछे, अने परद्रव्य क्षेत्र काल भावे अछताजछे, जेम घट स्वद्रव्य क्षेत्र कालभावे पूर्वोक्तरीते छतोछे अने परद्रव्यादिके अछतोछे एमसर्वपदार्थ भाविये, ते स्यादस्ति स्यान्नास्ति लक्षण सप्तभंगीनो त्रीजो भेदजाणवो.

तथावली सर्वपदार्थ स्वद्रव्यादिकेछता अने परद्रव्यादिके अछताछे पण ते ए केकाले विधिनिषेध वचने छतो अछतो कही सकीयेनही, केमके एवो कोईशब्दन थी जे छता अछता लक्षण बे गुणने बोले, ए युगपद्विधिनिषेधथी अवक्तव्यलक्ष ण सप्तभंगीनो चोथोभेद जाणवो.

तथा सर्वपदार्थ स्वद्रव्यादिकेछता पण पर्यायथी अछता माटे समकाले विधि निषेध कल्पनायें अवक्तव्यछे. जेम सुवर्णमयमेरु द्रव्यरूपे सास्वतो अने पर्यायरूपे असास्वतो पण एककाले सास्वतो असास्वतो कही सकिये नही. ए स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सप्तभंगीनो पांचमोभेद जाणवो.

सर्वपदार्थ परद्रव्यादिकेनथी पण स्वरूपे ढलापणाथी एकेकाले निषेध विधि कल्पनायें अवक्तव्यजछे जेम सेलमी गोल खांड एने परस्परें यद्यपि भिन्नपणुंजछे, अने माधुर्यपणानो अंतरपणछे, अने सेलडीपणे एक्यछे, पण भिन्न अभिन्न एकेकही सकीयेनही, ए स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सप्तभंगीनो छगोभेद जाणवो.

सर्वपदार्थ स्वद्रव्यादिकेछताछे अने परद्रव्यादिके अछताछे पण समकाले विधि निषेध कल्पनायें अवक्तव्यजछे, जेम घट स्वद्रव्यादिके पोतानेरूपेछे अने पटादिकनी अपेक्षायेनथी, माटे एक समयेंसद्रूप अने अणकहेवायोग्यपणेछे एम एकपदार्थनेविषे स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव लक्षण सप्तभंगीनो सातमोभेदजाणवो.

एकपदार्थनेविषे ए कल्पना केमघटे? त्यांदृष्टांतः-जेम कोईकने दूधनोनियमछे ते दूधविना दधिप्रमुख सर्वजातनो गोरसलिये. अने जेने दहिनो नियम छे ते दहि विना सकल गोरस लिये. अने जेने गोरसनोनियमछे तेने दुधदहीप्रमुख समस्तगोरसकल्पेनही, तेमजे पूर्वे एकभेद स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यमेव लक्षण देखाडया तेने संकलितरूप सातमाभेदनो अंतर जाणवो एमए सप्तभंगी श्रीजिनेंद्रदेवे उपदेशी ते सर्वपदार्थनेविषे सम्मतछे ते सप्तभंग्यादि जेने सम्यक्प्रकारेरुचे. जे जेमकह्युं ते तेम सद्दहे. सहसम्मत्या जातिस्मरणदिके स्वप्रतिभायेकरीने रुचे ते निसर्ग रुचि सम्यकत्वकहिये ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

धर्मास्तिकायादिक षटद्रव्यना समस्तभाव एकत्व पृथक्त्वादिक अशेष पर्यायरूप ने प्रत्यक्षादिकप्रमाणे जेनो जिहांव्यापार तिहां तेजप्रमाणे प्रतीति प्रसिद्ध जेणे पाम्याछे, अनेवली सर्वनयविधियें नैगमादिकभेदे द्रव्यनासर्वभाव जाण्याछे ते विस्ताररुचि प्रमुखने धर्मे धर्मीना अभेद उपचारे विस्ताररुचि सम्यक्त्व कहिये.

हवे कांईक प्रमाण अने नयनी विशेषता कहेछेः-त्यांप्रथम प्रमाण एटलेसुं? ते कहेछेः-प्रमानुंकरण ते प्रमाणकहियें. जे 'यथार्थानुभव प्रमा' यथार्थज्ञान ते प्रमा कहिये. ते प्रमानुं करण अतिशयितकारण ते प्रमाणकहिये ते जैनमते एकप्रत्यक्ष अने बीजो परोक्ष ए बे प्रमाणछे. अने नास्तिकमति एकप्रत्यक्षप्रमाणजमाने तथा सुगत बोध कणाद अने वैशेषिक प्रत्यक्ष ने अनुमान ए बे प्रमाणमाने पारमार्ष सांख्य, प्रत्यक्ष अनुमानने शब्द ए त्रणप्रमाणमाने. अक्षपादनैयायिक प्रत्यक्ष अनुमान उपमान अने शब्द ए चारप्रमाणमाने. प्रभाकर, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति ए पांच प्रमाणमाने, भट्ट, प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति अने अभाव ए छ प्रमाणमाने यदुक्तं रत्नाकरावतारिकायां चार्वाकोध्यक्षमेकं सु

गतकरणजुजां सानुमानंसशाब्दं; तद्भेनंपारमार्थः सहित मुपमयातत्रयं विकपादः॥ अर्थापत्त्या प्रनाक्र दूवदतिचनिखिलंमन्यतेनज्ञ एतत्साजावंद्वे प्रमाणे जिनपति स मये स्पष्टतो स्पष्टतश्च ॥ १ ॥

वली जैनमते प्रमाणनुं लक्षणकहेले:—सम्यग्ज्ञानं प्रमाणंतद्विधा प्रत्यक्षेतरजे दात् अवधिमनः पर्य्यायादावेक देशप्रत्यक्षं केवलंसकलप्रत्यक्षं मतिश्रुतेपरोक्षे वली त्रीजुं प्रमाणनुं लक्षणांतरकहेले:—सकलवस्तुसाधकं प्रमाणं प्रमीयते परिछिद्यते व स्तुतत्वं जैनज्ञानेनत्प्रमाणं तद्विधा सविकल्पेतरजेदात् सविकल्पं मानसं तच्चतुर्वि धं मतिश्रुतावधिमनः पर्य्यायरूपं निर्विकल्पं मनोरहितं केवलज्ञानमिति प्रमाण स्यव्युत्पत्तिः प्रमाणेन संग्रहीतार्थैकांशोनयः श्रुतविकल्पोविज्ञानुरजिप्रायोवानयः ना नास्वजावेभ्यो व्यावृत्तकस्मिन् स्वजावे वस्तुनयति प्राप्नोतीतिवानयः.

ते नयना सातजेदले:—नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र शब्द समभिरूढ एवंजूत समस्तपदार्थ ते सामान्य विशेषोजय धर्मरूपले. तेमां सामान्यते घटत्वादिक प्रमुख जात्यादिरूपले, अने विशेषते सुवर्णमयघट मृन्मयघट पमव्यक्त्यादिरूपले इत्यादि क नैगमनय वस्तुने उजयात्म सामान्यविशेषरूप मानेले जेमाटे सामान्यते विशेष विनानहोय अने विशेषते सामान्यविना नहोय.

संग्रहनय तो वस्तुने सामान्यरूपज मानेले. केमके सामान्यथकी व्यतिरिक्त कोइ विशेष नथी. आकाशनाफूलनीपरे वनस्पतिविना कोई निंब आम्रादिकनथी देखाता अने जे देखायले ते सर्व वनस्पतिरूपले, जेम हस्तायंतर्जावी अंगुली प्रमु ख हस्तादिकथी दूरनथी हस्तादिरूपजले.

व्यवहारनयतो पदार्थने विशेषात्मकज विशेषरूपज मानेले. विशेषथकी निन्न कोइ सामान्यनथी खरविषाणनीपरे दृष्टांतदेखाडेले:—कोइकहसेजे वनस्पतिलेवीहो य तेवारें निंबाम्रादिक नामलीधाविना सुं लइशकिये! अपितु कांइनज लइशकाय अने नामलीधुं तेवारे तो विशेषजथयो व्रणपिंमपादलेपादिक लोकप्रयोजन त्यां पण विशेषनोज उपयोगले नामलेइने कहेले के अमुक औषधकरो तेवारेज ते औषधथाय पण मात्र औषधजकरो एमकेवाथी, औषधकोइ करतोनथी तेणेकरी विशेषथीकांइ सामान्यजुडुनथी सर्व विशेषरूपजले.

ऋजुसूत्रनयतो अतीत अनागत वस्तु नमाने, केवल वर्त्तमान स्वकीयहोय तेज माने, अतीत अनागत अने परकीय वस्तुयें कार्यसिद्धिनथाय, अबतुं आकाश कम ल तेनीपरें जाणीलेवुं. अने नाम स्थापना द्रव्य ने जाव ए चारनिक्षेपाले. तेमांहे

जो नावनिक्षेपोमाने, बीजा त्रणनिक्षेपा नमाने, तेमज आगला आगला नयपण नमाने तेपण एक नावनिक्षेपोज माने.

शब्दनयेतो अनेक पर्यायेकरी एकज अर्थमाने. जेम कुंन कलश घटादिक अनेक शब्द घटव्यक्तिरूप एक अर्थबोलेछे.

समनिरूढनयतो पर्यायनेदथी निन्न निन्न अर्थमानेछे. कुंन कलश घट एनो जुदोजुदो अर्थछे. अने घटपटादिकनीपरें जो पर्यायनेदे पण वस्तुनो नेदनहोय तो कुंन अने घटनोपण पर्यायांतर नहोय.

एवं नूतनयतो एक पर्यायानिधेय वस्तुपण स्वकीय कार्य करतुं होय तो माने जो कार्य अणकरतुं पण वस्तुमानिये तो घटनेविषे पटनो व्यपदेश केम न थाय.

ए सातेनय यथोत्तर विशुद्धछे ते एकेकाना शो शो नेदछे. एम सातनयना सातसो नेद थाय. एवं नूत अने समनिरूढ ए बे नयोनो शब्द नयमां अंतर्नाव थाय त्यारे पांच नयना पांचशे नेद थाय. ते द्रव्यास्तिक तथा पर्यायास्तिक ए बे नयमां सर्व नयेनो अंतरनाव थायछे एटले प्रथमना चारनय द्रव्यास्तिकमां आवे अने पाछला त्रणनय पर्यायास्तिकमां आवे.

यडुक्तं श्री अनुयोगद्वारसूत्रेः—नयसरूपं सेकिंत नयेनये सत्तमूलनया पन्नत्ता णेगमे संगहे ववहारे उज्जुसुए सद्दे समनिरुढे एवंनूते. तत्रणेगेहिं माणे, हिं मिण इतिणेगमस्स नीरुत्ती ॥ सेसाणंपि नयाणं लखमिणमो सुणेहवोछं १ संगहिय पिंमियत्थं संगहवयणं समासउबिंति; वच्चइ विणिछियत्थं, ववहारो सवदवेसु २ पच्चुप्पन्नगणही, उज्जुसूउनय विहिमुणेयवो ॥ इछई विसेसित्तं, पच्चुप्पन्नं नयो सद्दो ॥३॥ वछ्उ संकमणं, होइ अवछ्नये समनिरूढे ॥ वंजण अछ तडुनयं, एवं नूएविसेसेइ ॥४॥ नायंमि गिण्हियवे, अगिण्हियवंमि चेव अछंमि ॥ जइव मेव मेवइ, इनो उवएसोसोनउ नाम ॥ ५ ॥ सवेसिंपि नयाणं, बहुविहवत्तव संनि सामित्ता ॥ तं सव नय विसुद्ध, जं चरणगुण छिउसाहू ॥६॥ एगं निचं निरवय, व मक्रियं सव गंच सामन्नं ॥ निस्सामन्नत्ताउ, नछिविसेसो खपुप्फंच ॥ १ ॥ नेगंनिच्च मणिववि, सावयव सक्रियंच निन्नगयं ॥ तुल्लत्ता तुल्लत्तण, सवि संसंतं समासन्नं ॥२॥२०॥

ज्ञान दर्शन चारित्र तप समित्यादिक क्रियाजे सम्यक्त्वने बले रुचे ते क्रिया रुचि सम्यक्त्व कहिये ए एकवीसमीगाथानो अर्थछे.

अननिगृहीत अनंगीकृत कुदृष्टी सौगतादिक मतरूपछे जेणेवली अविशारदः प्रवचने प्रवचनाननिज्ञोपि एटले प्रवचननेविषे माह्योनथी अने शाक्यादिक प्रवचननेविषे

चिलातीपुत्रनीपरे अनाग्रही के० आग्रह रहितछे ते संक्षेपथी तत्वजावतोधको तेने संक्षेपरुचि सम्यक्त्व कहिये.

कुमत ते कोने कहिये क्रियावादी अक्रियावादी अज्ञानवादी विनयवादी प्रमुखनुं जे मत तेने कुमन कहिये परपाखंमानि सर्वज्ञप्रणीत पाखंमव्यतिरिक्तानि तेषांउघतस्त्रीणिशतानि त्रिपष्ट्यधिकानि नवंतु.

यडुक्तं आवश्यक बृहद्वृत्तौः–असीइसयकिरियाणं अकिरियाणंचहोइ चुलसीइ, अन्नाणिअसत्तट्ठिं, वेणइयाणंचबत्तीसं ॥१॥ अस्याव्याख्या असीइ सयंकिरियाणंति अशीत्युत्तर शतंक्रियावादिनां तत्रनकर्त्तारं विनाक्रियासंनवति तामात्म समवायिनीं वदंतिये तच्छीलाश्चते क्रियावादीनाल्लेपुनरात्माद्यस्तित्व प्रतिपत्तिलक्षणाः अमुनोपायेनाशीत्यधिक शतसंज्ञाविधेया जीवाजीवाश्रव बंधसंवर निर्ज्जरा पुण्य अपुण्य मोक्षाख्या नवपदार्थान् विरचय्य परिपाटयाजीव पदार्थस्याधः १ परपरनेदावुपन्यसनीयौंतयोरधोनित्य १ अनित्य (२) नेदौतयोरप्यधःकाले १ श्वरा २ त्म ३ नियति ४ स्वनाव ५ नेदाः पंचन्यसनीयाः पुनश्चेत्थंविकल्पाःकर्त्तव्याः अस्तिजीवः स्वतः नित्यः कालतइत्येकोविकल्पः विकल्पार्थश्चायं विद्यतेखल्वअयं आत्मास्वेन रूपेण नित्यश्च कालवादिनः उक्ते नैवाभिलापेनद्वितीयोविकल्पः ईश्वरकारिणिनः तृतीयोविकल्पः आत्मवादिनः पुरुषएवेदं सर्वमित्यादि नियतिवादिन श्चतुर्थोविकल्पः स्वनाववादिनः एवंस्वतइत्यऽत्यजतालब्धाः पंचविकल्पाः परतइत्यऽत्यजताइत्यनेनापि पंचैव लभ्यंते नित्यत्वाऽपरित्याग परित्यागेन चैतेदशविकल्पाः एवं अनित्यत्वेनापि दशैवएते विंशति जीवपदार्थेनलब्धाः अजीवादिस्वष्वष्टसुएवमेव प्रतिपदं विंशतिविकल्पानामतो विंशतिर्नवगुणशतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनामिति अकिरियाणंचहोइचुलसीइति अक्रियावादिनां नवंति चतुरशीतिनेदाइति नह्किस्यचिदवस्थितस्य पदार्थस्य क्रियासमस्ति तद्भावे एवावस्थितेरनावादित्येवंवादिनो अक्रियावादिनस्तथा चाहुरेके क्षणिकाः सर्वसंस्कारा अस्थितानांकुतः क्रियाभूतिर्येषां क्रियासैवकारकं सैव वोच्यते इत्यादि एतेचात्मादि नास्तित्वप्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन चतुरशीतिर्वेक्रव्या एतेषां पुण्यापुण्यवार्ज्जित पदार्थ सप्तकान्यसत्त्वथंवजीवस्याधः स्वपरविकल्पनेदद्वयोपन्यासः असत्वादात्मनो नित्यानित्यत्वनेदानस्तः कालादीनांतुपंचानां षष्टीय दृच्छान्यस्यतेपश्चाद्विकल्पाभिलापः नास्तिजीवःस्वतः इत्येकोविकल्पः एवमीश्वरादिभिरपियदृच्छावसानैः सर्वैश्चषड्विकल्पाः तथा नास्तिजीवः परतः कालतइतिषढेवविकल्पाः एकत्रद्वादशएवमजीवादिष्वपिषट्सुप्रतिपदं द्वादशविकल्पाः एकत्र सप्तद्वाद

श गुणाश्चतुरशीतिर्विकल्पा नास्तिकानामिति अन्नाणिअसत्तछित्ति अज्ञानिकानां स प्तषष्टिर्नेदाइति तत्र कुत्सितं ज्ञानमज्ञानं तदेषामस्तीत्यज्ञानिकाः नन्वेवंलघुत्वात्प्र क्रमस्यप्रागबहुव्रीहिणा नवितव्यं ततश्चज्ञानाइतिस्यात्नैषदोषः ज्ञानांतरमेवाज्ञा नंमिथ्यादर्शनसहचरितत्वात् ततश्चजानिशब्दत्वात् गौरखरवदरण्यमित्यादिवऽद ज्ञानिकत्वमिति अथवाऽज्ञानेनचरंति तत्प्रयोजना वा अज्ञानिकाः असंचित्यकृत बंधवैकल्पादिप्रतिलक्षणा अमुनोपायेन सप्तषष्टिर्ज्ञातव्या तत्रजीवादिनवपदार्थान् पूर्वबध्यवस्थाप्यपर्यंतेचोत्पत्तिमुपन्यस्याधः सप्तसदादय उपन्यसनीयाः सत्व? म सत्वं २ सद् असत्वं ३ अवाच्यत्वं ४ सदवाच्यत्वं ५ असदवाच्यस्वं ६ सदसदवाच्य त्वं ७ प्रमितिनैकैकस्यजीवादेः सप्तविकल्पाः एतेन नवसप्तकास्त्रिषष्टिः उत्पत्तेश्चत्वा र एव विकल्पास्तेष्वसत्त्वं १ असत्वं २ सदसत्वं ३ अवाच्यत्वं ४ चेतित्रिषष्टि मध्येक्षिप्ता सप्तषष्टिर्नवति कोजानातिजीवः सन्नित्येकोविकल्पः ज्ञातेनवाकिं एवमस दादयोपिवाच्याः उत्पत्तिरपि किंसतोअसतः सदसतो अवाच्यस्येति कोजानात्येतन्नक श्चिदपीत्यनिप्रायः वेणइयाणंच बत्तीसंति वैनयिकानां द्वात्रिंशन्नेदा विनयेनचरंति विनयो वा प्रयोजनमेषामिति वैनयिका एतेच अनवधृतलिंगाचारशास्त्राविनय प्रतिपत्तिलक्षणा अमुनोपायेन द्वात्रिंशदवगंतव्याः सुरनृपति ज्ञातियति स्थविरा धममातृपितॄणां प्रत्येकं कायेन वाचामनसादानेनच देशकालोत्पन्नेन कालेन विनयः कार्यइत्येतेचत्वारोनेदाः सुरादिष्वष्टसुस्थानेषु एकत्र मीलिता द्वात्रिंशदिति सर्वसं ख्यापुनरेतेषां त्रीणिशतानित्रिषष्ट्यधिकानि नवति.

अन्यत्रापिउक्तः—आस्तिकमतमात्माद्या नित्यानित्यात्मकानवपदार्थाः कालनि यतिस्वनावेश्वरात्मकृतिनः स्वपरसंस्थाः १ कालयदृच्छानियतीश्वरस्वनावात्मतश्चतुर शीतिः नास्तिकवादिगणमतं नसंति सप्तस्वपरसंस्थाः २ अज्ञानिकवादिमतं नवजी वादिन् सदादिसप्तविधान्; नावोत्पत्ति सदसद द्वैतावाच्यांश्चकोवेत्ति ३ वैनयिमतं विन यश्चेतो वाक्कायदानतः कार्य्यः सुरनृपतियति ज्ञातिस्थविराधममातृपितृषुसदा ४ ए तेषां प्रशंसानकार्य्या पुण्यनाज एतेषु लब्धमेनिर्जन्मेत्यादिलक्षणा एतेषांमिथ्या दृष्टित्वात् ए बावीसमी गाथानोअर्थछे.

अस्तिकायतेसुं कहिये अस्तयः प्रदेशाः संति अस्येत्यस्तिकायः धर्मास्तिकाय अधर्मा स्तिकाय आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय ए पांचनेअस्तिकाय कहिये.

धर्मोगत्युपष्टंनादिस्तंश्रुत धर्म्मं चवा सामायिकादिधर्म्मेरुचिर्धर्म्मेषु पर्य्याय ज्येष्टधर्म्मो वा श्रुतधर्म्मादौरुचिरस्येतिकृत्वा ए दशप्रकारनुं सम्यक्त्व मोक्षतरुनुं बी

जनूतछे संप्रतिराजानेविषेजाणवुं यडुक्तं एगविह डुविह तिविहं, चउहा पंचविह दसविहं सम्मं ॥ मुक्क तरु बीय नूछं, संपइरायावधारिज्जा ॥ १ ॥ सर्व एगा थानो अर्थ विवखोछे.

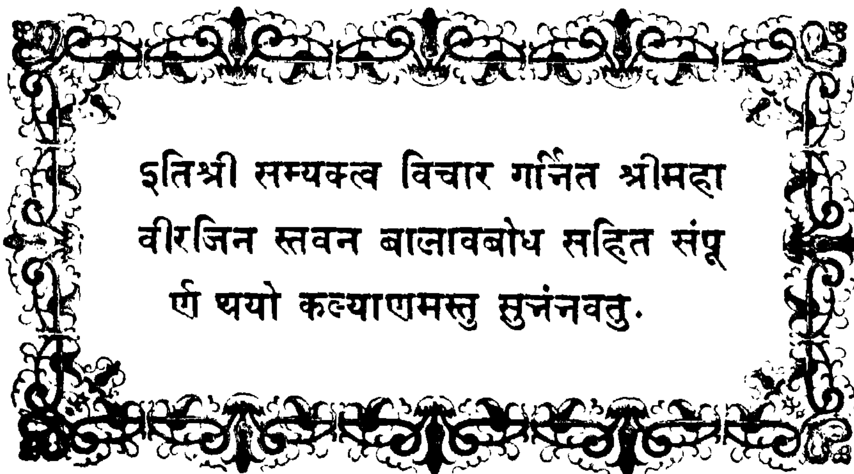
हवे शिष्यबोल्यो स्वामी एक प्रकारनुं सम्यक्त्व संप्रतिराजाने घटेछे अथवा बे प्रकारनुं संनवछे पण त्रण प्रकारनुं घटमान नथी केमके पहेलातो उपशम सम्यक्त्वनो संप्रतिराजानेविषे संदेहछे, ते उपदेश प्रथमतो ग्रंथीनेदे होय अथवा उपशमश्रेणीयेंहोय त्यां प्रथमतो तेना लाजनो संदेहछे एटले तेवखने संप्रतिराजायें ग्रंथिनेदकरी उपशमसम्यक्त्व पाम्युं होय एवा निश्चयनुं संदेहछे अने बीजुं उपशमश्रेणीयें उपशम सम्यक्त्व होय ते उपशमश्रेणीतो तेकाले विछेद पामीछे अने क्षायकपण न घटे केमके क्षपकश्रेणीपण विछेदपामिछे तेथी संप्रतिराजानेविषे क्षायोपशम सम्यक्त्वज संनवेछे परिशेषानुमानेकरीने कारकादिनेद थकीपण त्रिविधपणु इहां संनवतोनथी आद्यनेदद्वयनो संनवछे पण कारक रोचकनो संनव छते पण मिथ्यात्व सछलित दीपकाख्य तृतीयनेदनो असंनवछे अने चारप्रकारनुं पण सम्यक्त्व सर्वथा नघटे तेतो उपशम क्षयोपशम क्षायिक अने चोथुं सास्वादनमांहे नेलियें तेवारे चारनेदथाय ते उपशमसम्यक्त्वथकी पडताथकां अनंतानुबंधियाने उदयछता मिथ्यात्वप्रतें जावावांछतो एवाजीवने सास्वादन सम्यक्त्वनुं धारणहसे तेतो अनंतानुबंधियानोउदय तेणे कवलितपणामाटे कलुषपणुछे अने पांचप्रकारनुं सम्यक्त्वपण संप्रतिराजानेविषे नघटे केमके वेदकसम्यकत्वना अनावथी एटले वेदकतो क्षायकपामति वेलायें क्षयोपशमनो चरमपुजल ग्रासवेदताने होय तेतो संप्रतिराजानेविषे संनवियेनही वली क्षायिकसम्यक्त्वनी प्राप्तिनाअनावथी ए दशविध निसर्गरुच्यादिक पण सर्व तिहां संप्रतिराजानेविषे घटतानथी सर्वनेद एकस्थले संनवेनही तेमछता एटला प्रकारना सम्यक्त्वनुंधारण संप्रतिराजाना दृष्टांते तमे केमकह्युं एम शिष्यपुछ्युं.

हवे गुरु उत्तरकहेछे केसम्यक्त्वतो संप्रति राजानीपरे निश्चलधरवुं ते वली शास्त्रनीते परूप्यमाण परूपित्तोथको एकादिनेदेहोय इत्येवमेवयोज्यं एनो अर्थ एमजकरवो तथाच सर्वनिरवद्यमिति जेम सर्व समंजसहोय एगविहे इत्यादिक सम्यक्त्वनेद गाथावृत्तिनो ए सर्व अर्थजाणवो उत्तराध्ययनमांपण अठावीसमें अध्ययने दशप्रकारनुं सम्यक्त्वकह्युंछे निसग्गुवएसरुईत्यादि ए तेवीसमी तथा चोवीसमी गाथानो अर्थछे.

वेदहयाद्रींदु १७७४ मितेवर्षे राजादिनगरस्थेन ॥ विबुधोत्तमाद्धि शिशुना न्यायादिजलधिना नाम्ना ॥ १ ॥ सम्यक्त्वस्तवनस्या ऽस्यलोकभाषानिबद्धबंधस्य ॥ स्वपरेषाम् स्मृतिहेतो, रकारि बालावबोधोयं ॥ २ ॥ युग्मं ॥ शास्त्रविरुद्धंकिंचि दुपयुक्तं बुद्धिमांद्यतो मयका ॥ तत्संशोध्यं विबुधैरुपकारपरैर्महामतिभिः ॥ ३ ॥

ढालछठो माइ धन्नसुपनतुंदेशी.

जडजनपणपोते सिंच्युकालनबोले ॥ तससंगतिलोहुं तेहनेपणतसतोले ॥ तेम हुं गुणहीणो तोपण दास तुमारो ॥ अवगुणउवेपी प्रभुजी पारउतारो ॥ १ ॥ तुं गुणमणि दरिउं उद्धरिउं जगजेणे ॥ मुजकांइनताख्यो तुज संगतिनही तेणे ॥ अलगो तांहिंविलगो तुंमुज दिलथीदेव ॥ अविचलपदआपो ॥ ढीलतणीसीटेव ॥२॥ नहीतो मुजदावे नहीमूकुंकरुंसोर ॥ जालीदिलभींतर घालीकरसुंजोर ॥ जासोकिम दीधा, विणशिवसुखजिनराज ॥ सहेजे जो देशो तो रहेशे तुमलाज ॥ ३ ॥ अविनयमुजखमजो हुंहुं मूढअयाण ॥ करतांनविआवे वीनतडोजिननाण ॥ बालक जेमबोले कालोगहिलोबोल ॥ ते मातपितामन, लागे, अमृततोल ॥ ४ ॥ इणिपरे प्रभुस्तविउं समकितलेशविचारे ॥ आगमअनुसारे मुजमतिने अनुहारे ॥ संवतरुतुरसमुनि चंद्रसंवत्सरजाणी ॥ १७६६ ॥ भादरवेमासे सीतपंचमीगुणखाणि॥ ॥५॥ श्रीतपगछनायक श्रीविजयरत्नसूरिंद ॥ सुरगुरुजश आगलें करजोडेमतिमंद ॥ तसराजेपंभित उत्तमसागरसीस ॥ कहेन्यायसागर प्रभु पूरोसंघजगीस ॥ ६ ॥



॥ श्री तीर्थनायकाय नमः ॥

॥ अथ श्रीषड्द्रव्यस्वरूप प्रारभ्यते ॥

छ द्रव्यमां पहेलुं जीवद्रव्य छे तेमां चेतना पदार्थ छे. अहीं चेतना ते उपयोग कहिये. तेउपयोग बे प्रकारनो छेः—एक साकार ने बीजो निराकार. तेमां साकार ते ज्ञान अने निराकार ते दर्शन जाणवुं. ए ज्ञान तथा दर्शननो विचार जूजुवो छे, ते आगळ कहेवाशे, त्यांथी जाणी लेवो. ते जीव बे प्रकारना छेः—एक सिद्ध अने बीजा संसारी. तेमां जे अष्ट कर्म रहित थया छे ते सिद्ध जाणवा. तेना पंदर भेद छे ते आप्रमाणेः—

(१) तीर्थंकर विद्यमान छतां जे संसारने तरीने मुक्तिने पाम्या छे ते चतुर्विध संघ अथवा प्रवचनवक्ता प्रथम गणधरादिक जाणवा. यदुक्तं सिद्धांतेः— "तिथ्थं भंते तिथ्थं तिथ्थं करे तिथ्थं गोयमा, अरहा ताव नियमा तिथ्थंकरे तिथ्थंपुणो वा उवणो समण संघो पढम गणहरोवा" एवी रीते तीर्थसिद्ध जाणवा.

(२) जे तीर्थ थपनाविना तथा तीर्थनो विच्छेद थया पछी मुक्तिने पाम्या छे, ते मरुदेवी प्रभृति, श्रीचंद्र प्रभु तथा श्रीसुविधिनाथ स्वामीना मध्य समयने विषे धर्म विच्छेद थयो छतां केटलाएके जातिस्मरणथी दीक्षा लीधी ने सिद्ध थया ते अतीर्थ सिद्ध जाणवा. (३) जे अष्ट महाप्रातिहार्य चोत्रीस अतिशय पात्रीस वाणीगुणे, तीर्थंकर पद भोगवीने सिद्ध थया ते श्रीऋषभ देव भगवान प्रमुख सर्व तीर्थंकर सिद्ध जाणवा. (४) जे तीर्थंकर पद पाम्याविना सिद्धावस्थाने पाम्या ते सामान्य केवली अतीर्थंकर सिद्ध जाणवा. (५) जातिस्मरणादिकें बोध पामी मोक्षे गया ते स्वयंबुद्धि सिद्ध जाणवा. (६) जे कोई बाह्य प्रत्यय देखीने ते निमित्त बोधने पामीने मुक्त थया ते प्रत्येकबुद्ध सिद्ध जाणवा.

आशंकाः—त्यारे स्वयंबुद्ध अने प्रत्येकबुद्धमां विशेषता शुं छे?

उत्तरः—बोधि, श्रुति, लिंग तथा उपधि ए चार प्रकारना भेद छे. स्वयंबुद्ध ते जोतिस्मरणे करी अथवा अवधि ज्ञाने करी बाह्य प्रत्यय दीठाविना बोधने पाम्या छे, ते जेम तीर्थंकर तथा अतीर्थंकरमां व्यतिरेकपणुं छे ते अधिकार अहीं पण जाणी लेवो. तीर्थंकर साक्षात त्रीजे भवे कह्या छे माटे; अने प्रत्येकबुद्ध तो बाह्यकरण वृषभ तथा इंद्रध्वजादिक देखीने बोध पाम्या छे, पण ते नियमे एकाकी

विचरे छे ए प्रथम प्रत्येक बोधिभेद छे. अने स्वयंबुद्धने पूर्वाधीत श्रुत होय तो तेने देवता लिंग आपे, अथवा गुरुनी समीपे जइने लिंग धारण करेछे. लिंग ते साधु वेष रजोहरणादिक जाणवा तथा ते जो एकाकी विचरवाने समर्थ होय तो एकाकी विचरे छे, नही तो गछमांज विचरे छे. अने जो पूर्वाधीत श्रुत न होय तो अवश्य गुरुनी पाछे जइने वेष ग्रहण करे; अने तेनी साथे विचरे ए नियम छे. अने प्रत्येकबुद्ध तो पूर्वभवाधीत श्रुतज्ञानीज होय छे, ते जघन्यथी अग्यार अंग तथा उत्कृष्टथी कांइक न्यून दश पूर्व भणेलो जाणवो. एने लिंग देवता दिए छे; अथवा लिंगरहित पण होयछे. एम श्रुति तथा लिंग ए बे भेद मली त्रण भेद थया. अने स्वयंबुद्धने पात्रादिक दशविध उपधि होयछे एम कह्युं छे, ने प्रत्येकबुद्धने तो जघन्यथी बे प्रकारनोज उपधि कह्यो छे; तथा उत्कृष्टथी नव प्रकारनो उपधि पण कह्यो छे. ए वस्त्रविना पण उपधिना भेद जाणवा.

(७) जे बुद्ध एटले आचार्यना कहेला उपदेशथी बोधने पामीने दीक्षा लई अनुक्रमे मोक्षने पामे ते बुद्धबोधित सिद्ध जाणवा.

(८) जे स्त्रीनुं लिंग अथवा चिन्ह छतां मुक्तिलक्ष्मिवश्या छे ते स्त्रीलिंग सिद्ध. ते लिंग त्रण प्रकारनुं छेः—एक जेने फुंफमदाहनी पठे पुरुषनी अभिलाषा होय; बीजुं शरीर निर्वृत्ति नितंब तथा स्तनभागादिक जेने होय; अने त्रीजुं नेपथ्यते तिलक, तंबोल, नेत्रांजन, वस्त्र, हार, डोर अने नूपुरादि लक्षण बाह्यकृत शृंगाररूप होय छे. ए त्रण लिंग छे तेमानुं अत्र शरीरनिर्वृत्ति लक्षण लिंग ग्रहण करवुं. ते छतां चारित्रनी प्राप्ति थईने जे केवलावस्था पामीने मोक्षजाय ते स्त्रीलिंग सिद्ध कहेवाय छे. आशंकाः— वेदनी वर्जना शासारु करी छे?

उत्तरः— वेद छतां यथाख्यात चारित्र तथा केवल ज्ञाननी प्राप्ति थती नथी. माटे तेनो नवमे गुणठाणे अभाव थाय. तोज ऊपरलां गुणठाणाप्रत्ये आरोह थई शकेछे. अने त्यार पछी सर्व घातिक कर्मोनो क्षय करेछे माटे वेद लक्षण लिंग वर्ज्य छे. अने शृंगार लक्षण पण कांई प्रधान नथी. केमके, शोले शृंगार सजीने सिंहासन ऊपर बेठेली छतां शुभ ध्याने भावना भावती थकी स्त्री केवलज्ञान पामेछे. तेम शृंगार रहित थई थकी पूर्वोक्त अवस्थाए करीने पण केवलज्ञान पामेछे. माटे शृंगार मोक्षनो रोधक नथी. शरीरनो आकार तो विशेषेकरी रोधक होयज नही; केमके, ज्यां सुधी मनुष्य गतिनेविषे मनुष्यनुं आयुष्य होय छे, त्यां सुधीज ए चिन्ह होयछे.

आशंकाः— (दिगंबरी) स्त्रीने मोक्षनी प्राप्ति थतीज नथी. केमके, मोक्ष थवुं ते चारित्रने आधीन छे. ते चारित्र स्त्रीने उदय आवे नही. केमके, स्त्रीने सर्वथा पुरुषविना रहेवाइ शकातुं नथी. स्त्रीना अंगोपांग सर्वथा पुरुषने अभिनवकारीछे; तेथी ते ऊघाम्मां रखाई शकातां नथी; अने ते ढांकवाने अर्थे वस्त्र धारण करवां पडेछे. वस्त्र राख्याथी परिग्रह थायछे, अने परिग्रहवाला मनुष्यने मूर्छानो संभव होयछे: ज्यांसुधी जेने मूर्छा छे त्यांसुधी तेने संयमनी प्राप्ति थती नथी; माटे स्त्रीने चारित्रनी प्राप्ति न थाय; अने चारित्रविना मोक्षनी प्राप्ति ते केम थाय? वली संसारमां सर्वोत्कृष्ट पदवीनी प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट अध्यवसायथी थायछे, एवात दिगंबर तथा श्वेतांबर बधाने सम्मत छे. ते सर्वोत्कृष्ट पद बे प्रकारनुं छेः— एक सर्वोत्कृष्ट पद दुःखनुं स्थानिक छे ने बीजुं सर्वोत्कृष्ट पद सुखनुं स्थानिक छे. तेमां सर्वोत्कृष्ट दुःखनुं पद सातमी नरक पृथ्वीनी प्राप्ति छे, अने सर्वोत्कृष्ट सुख ते मोक्ष पदनी प्राप्ति छे. तेमां सप्तम नरक पृथ्वीनेविषे स्त्रीनुं गमन थई शके नही एम सिद्धांतोमां कह्युं छे, ज्यारे एवुं पाप उपार्जित वीर्य स्त्रीने होतुं नथी त्यारे मोक्षपदनुं उपार्जन करवा जेवुं मनोवीर्य ते स्त्रीने क्यांथी होय! माटे स्त्रीने मोक्षनो संभव नथी. वली स्त्रीए पूर्वे भवांतरनेविषे माया मोहनीयकर्मनुं उपार्जन कर्युं होयछे के जेथी स्त्रीवेद मलेछे, माटे स्त्री मायावीज होयछे. ते कारण माटे ते स्वाभावे कुटिलज होयछे. एवा न्याये करीने स्त्रीने चारित्रनी प्राप्ति थाय नही. वली साधु तो वनवासी होयछे, ज्यां घणा मनुष्यादिकनो संघट्ट होय, त्यां साधु रहे नही. केमके, त्यां ज्ञान तथा ध्याननो व्याघात थायछे. अने स्त्रीथी तो एकाकी रहेवातुं नथी. ज्यां वसति होय त्यांज रहेवाई शकायछे. केमके, स्त्रीने एकाकी विचरतां तेना शीलमां विघ्न पडेछे; घणामां रहेतां प्रतिबंध नमेछे; अने राग द्वेषमां पडेछे, माटे स्त्रीने चारित्र पण नही ने ते चारित्रना अभावे मोक्ष ते क्यांथीजहोय!

उत्तरः— (श्वेतांबरी) स्त्रीने वस्त्रनो परिग्रह कहेवो नही. जेनी ऊपर मूर्छा होयछे ते परिग्रह कहेवायछे, मूर्छाविना परिग्रह कहेवायनही यतः "मुछा परिग्गहो वुत्तो" एम श्रीसिद्धांतमां कह्युंछे. ते कारण माटेज भरतचक्रवर्त्ति, षट्खंडनो भोक्ता, चोसठ हजार अंतेउरी सहित दर्पण सदनमां बेठो छतां तथा सर्व अलंकारेकरी अलंकृत छतां केवलज्ञान पाम्यो छे. केमके, ते वस्तुथकी मूर्छाथी रहित हतो. ते माटे जीवनेमोटो परिग्रह तो ममत्वभाव छे. अने जे ममत्व भावथकी रहित छे तेने तो धनधान्यादि संपत्ति पण बाध करी शकती नथी. जो ए

म न मानिये तो संसारनेविषे सर्व दरिद्री मनुष्योने केवल ज्ञाननी प्राप्ति थईने मोक्षनो प्रसंग आवशे. केमके, तेनी पाशे कोई समये पण एक कोडीमात्रनो परिग्रह होतो नथी. तेम छतां तेवा प्राणीउतो संसारमां घणा रजडता दीठामां आवे छे, पण तेउनी पाशे मूर्छारूप मोटो परिग्रह होयछे; माटे तेउने शुद्ध दशा प्रगट थती नथी. वली श्रीवीतरागे बे कल्प कह्याछेः—एक जिन कल्पने बीजो स्थविर कल्प. तेमां जिनकल्पनो स्त्रीने संजव नथी, परंतु स्थविर कल्पनो संजव छे.

पूर्वपक्षमां कह्युं छेके, उत्कृष्ट पदनुं बाधक मनोबल छे, ते स्त्रीने होतुं नथी. माटे जेम स्त्री सातमे नरकेजती नथी तेम ते मोक्षनेविषे पण न जई शके! ए युक्ति पण समीचीन नथी, एवो पण कांइ नियम नथी. केमके, केटलाएक पुरुषादिकने क्षेत्र खेडवानुं सामर्थ्य होयछे पण शस्त्राभ्यास करवानुं सामर्थ्य नथी होतुं तेथी शुं थयुं! कोईने कोईएक कर्मनी फुरणा न थयाथी शुं बीजां कर्मोनी फुरणानो पण अजाव समजवो के? एम छतां जो हठकरी बेशशो तो बीजी घणी वातोमां विरोध आवशेः जेमके वधुमां वधुपाप उपार्जिने भुजपरिसर्प्पनीचे बीजी नरक पृथ्वी सुधीज जायछे अने पक्षीउ त्रीजी नरकपृथ्वी सुधी जायछे. अने वधारेमां वधारे पुण्य उपार्जिने ऊपर ते बन्ने जातिवाला प्राणीउ सहस्रार देवलोकसुधी जायछे. इहां मनोबल तो बन्नेनुं सरखुं छे. त्यारे अधोगमन थोडुं अने ऊर्ध्व गमन घणुं केम थायछे! माटे एवो नियम न कहेवो. एवी रीते स्त्रीजातिनो पण एवो स्वजाव छे के उत्कृष्ट पाप उपार्जन करे तो छठी नरकपृथ्वी सुधीज जाय; परंतु उत्कृष्ट संवरनी प्राप्ति थयाथी मोक्षनी प्राप्ति तो थायज.

वली पूर्वपक्षमां कह्युं के, स्त्रीने मायामोहनीय कर्मनी अधिकताने लीधे चारित्र उदय आवे नही; ए वात यद्यपि सत्य छे, तथापि स्त्रीने मोहनीयकर्मनो उपशम तथा क्षय होयछे; एनो कोईनाथी अनंगीकार थाय नही. अने सर्वथा स्त्रीने मोहनीयकर्मनो क्षय अथवा उपशम थतोज नथी एवुं तो तमाराथी पण केवासे नही. केमके, अनंतानुबंधी कषायनो उपशम अथवा क्षय थाय त्यारेज सम्यक्त्वनी प्राप्ति थायछे. अने अप्रत्याख्यानीय कषायनो उपशम अथवा क्षय थाय त्यारेजदेशविरतिपणुं प्राप्त थायछे. एम तो तमे पण अंगीकार करोछो त्यारे स्त्रीमां सर्व विरतिपणुं केम मानता नथी! तथा गोमटसारनी गाथामां स्त्रीने मोक्ष कह्योछेः— " अमयाला पुंवेया, इत्थीवेयाय हुंति चालीसा; वीसन पुंसग वेया, समए एगेण सिझंति. " एवो पाठ तमारा सिद्धांतोमां पण दीठामां

आवेछे तेमज कर्मग्रंथ, तथा गुणस्थान क्रमारोहनो विचार करतां प्रसिद्धपणे स्त्रीने मोक्षनो संभव थायछे. जेमके, नवमा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानकसुधी त्रणे वेदनो उदय होयछे त्यां हासठ प्रकृतिउ उदयने पामे छे. पछी सूक्ष्म संपराय दशमा गुणस्थानकमां पण हासठ प्रकृतिउनोज उदय होयछे; एमां त्रण वेद तथा संज्वलननो क्रोध मान ने माया ए छ प्रकृतिउ होती नथी. एवीरीते उदयाधिकारमां कह्युं छे. ए ऊपरथी जाणवुं जोइये के जो सर्वविरति चारित्र स्त्रीने न होय तो नवमा गुणस्थानकसुधी केम पहोची शके, माटे स्त्रीने सर्वविरतिपणुं मानवुंज जोइए छे. ए विषे सारीरीते विचार करी जोजो.

वळी पूर्व पक्षमां कह्युं के, स्त्रीने एकाकी विचरवानो अधिकार नथी; केम के एकाकी विचरवाथी तेना शीलमां विघ्न पडवानो संभव थाय. अने जो पंचनी साथे विचरे तो ममत्वभाव थाय. ए उक्ति पण विचाररहित छे; केम के एकाकी विचरतां पण जो मन शुद्ध होय तो कांई पण शीलनो भंग थतो नथी. स्त्रीउने विषे तो एवुं धैर्य होयछे के तेने देवो पण मोलायमान करी शकता नथी. तेम पंचनेविषे विचरतां ममत्व पण संभवे नही; केमके जो तेना मनमां वीतरागावस्था होय तो संसारमां जीवने जे सरागपणुं बंधननो हेतु छे. ते जो उपशमने पाम्यो तो पछी तेने वन तथा घर बन्ने सरखां छे. ए कांई जीवने बंधनना हेतु थता नथी. बंध ते एक रागादि लक्षण अशुद्ध उपयोग छे. इत्यादिक विचार करतां तथा श्रीवीतरागनी आज्ञा जोतां तो स्त्रीने मोक्ष थायछे. माटे एवा हठनो त्याग करवो उचित छे. एवी रीते स्त्री सिद्ध जाणिये.

(ए) जे पुरुषना लिंगवडे सिद्धस्थाने पहोचे छे ते पुरुषलिंग सिद्ध. ते लिंग पण पूर्वनी पठे त्रण प्रकारनां छेः– वेद, शृंगार ने आकार. तेमां वेद त्याग करवा योग्य छे. केम के, वेद छतां निश्चेकरी मोक्षनी प्राप्ति थायज नही. शृंगार छतां क्वचित् मुक्ति थायछे ने क्वचित् नथी पण थती. तथापि शृंगार अप्रधानज छे अने आकार छतां मोक्ष थाय छे माटे ते पुरुष लिंग सिद्ध कहिये.

(१०) जे नपुंसक लिंगे सिद्धत्व पामे छे ते नपुंसक सिद्ध; ते लिंग पण पूर्वोक्त रीते त्रण प्रकारनां छेः—वेद, शृंगार ने आकार. तेमां वेद अने शृंगार बे त्याग करवायोग्य छेः अने आकारनेविषे मोक्ष थायछे माटे ते ग्रहण करवा योग्य छे. ते आकार पण त्रण प्रकारनो छेः– एक इंद्रिय छेदी, एटले वृषणादिक भंग करेला, बीजा इंद्रिय अवयवसहित एटले बाल्यावस्थानेविषे कामादिक कु

चेष्टायें करी इंद्रियनुं मूलथकी बल गमावीने नपुंसक थया होय ते. अने त्रीजा जे जन्मथीज नपुंसक थया होय ते. ए त्रणेने लोको नपुंसक कहेछे. परंतु परमार्थ जोतां पहेला बे ने नपुंसकपणुं नथी. केमके, तेउनेविषे पुरुष वेदनो अभिलाष होयछे; भोगने अर्थे स्त्रीनी इच्छा करे छे; परंतु पुरुषनी इच्छा करता नथी. पण शुं करे के तेउनां अवयव सावचेत होतां नथी. तेथी योनि भोग न थाय. एउ नपुंसक पणाने बीजी कुचेष्टाथी पाम्या छे; माटे पुरुषवेद छे, नपुंसक वेद नथी. नपुंसक वेद तो जे जन्म जात होयछे तेनेज कहिये. ते नपुंसकने पुरुष तथा स्त्री ए बन्नेने भोगववानी अभिलाषा थायछे; माटे तेज वास्तविक नपुंसक कहेवाय. अत्रवृद्ध आचार्य एम कहेछे के, जे स्वभावे जन्मजात नपुंसक होय तेने चारित्र आवे नही, त्यारे तेने मोक्ष पदनी प्राप्ति ते केम थाय ! माटे कृत्रिम नपुंसक लेवो. अने नवीन आचार्य एम कहेछे के, जे कृत्रिम होय ते नपुंसक न कहेवाय. जेने नपुंसक वेद उदयागत होय तेनेज नपुंसक कहिये. कृत्रिमने तो पुरुष वेद उदयागत होयछे, तेथी तेने तो पुरुषवेदज कहिये. एनुं विवेचन करी लेवुं. एवा नपुंसकलिंगे जे मोक्ष थया ते नपुंसक सिद्ध कहेवाय छे.

(११) जे रजोहरण तथा मुखवस्त्रिका प्रमुख छतां कैवल्य पद पामे ते स्वलिंग सिद्धकहेवायछे. (१२) जे तापसादिक प्रमुख बीजा चिन्हवान छतां लोकांत स्थित थयाछे ते अन्य लिंग सिद्ध जाणवा. (१३) जे भरत प्रभृति गृहस्थ वेषधारी छतां लोकना मस्तकनेविषे स्थित थएला छे ते गृहि लिंगी सिद्ध जाणिये. (१४) जे एक समयनेविषे एकलोज सर्वोत्कृष्ट सुखना धामने पाम्यो होय ते एकाकी सिद्ध छे. (१५) अने जे एक समयनेविषे अनेक जीवो सिद्धत्व पाम्या होय ते अनेक सिद्ध कहेवाय छे. वली जे सिद्धावस्था पाम्या वच्चे बीजो कोई समय थई गयो न होय किंतु तेज समयछे ते अनंतर सिद्ध कहिये; अने जेने सिद्धावस्था पाम्याने समयथी उपरांत काल थई गयो होय ते परंपर सिद्ध कहिये. इत्यादिक सिद्ध जीवोना भेद छे.

हवे बीजा संसारी जीवोविषे आम समजवुंः—ते संसारी जीव बे प्रकारनाछेः—एक स्थावर बीजा त्रस. तेमां स्थावर पांच प्रकारना छेः—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय वाउकाय ने वनस्पतिकाय. ए पांचेना वली सूक्ष्म अने बादर ए बे बे भेद छे. अने त्रस जीवो चार प्रकारना छेः—बेंद्रिय, तेंद्रिय, चउरिंद्रियने पंचेंद्रिय तेमां पंचेंद्रिय चार प्रकारना छेः—देव, मनुष्य, नारक ने तिर्यंच. ए बधा जीवोविषे सविस्तर जीववि

चारादि प्रकरणोमांथी जाणीलेवुं. ए जीव अनंतछे; तेह्नां चेतन गुणछे. तथा नारकादि पर्याय छे. जे गुणवंत तथा पर्यायवंत होय तेने द्रव्य कहिये. गुण पर्याय द्रव्य मिति वचनात्. एवी रीते जीव द्रव्य जाणवुं.

अजीव द्रव्यविषे विचार.

अजीव द्रव्य पांच प्रकारनुं छेः– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय ने काल. तेमां जे गतिपर्याय ने नजनारा जीव तथा पुद्गलोने सहाय्यकारी होय ते धर्मास्तिकाय. ज्यां ज्यां धर्मद्रव्य छे त्यां त्यां जीव तथा पुद्गलोनी गति थायछे. जेम के, अलोकनेविषे ए द्रव्य नही होवाथी त्यां तेओनी गति थती नथी. ए विषे दृष्टांतः– जेम मत्स्यनी गतिने सहाय्यकारी जल छे. एटले ज्यां ज्यां जल होय त्यां त्यां मत्स्यनी गति थई शकेछे; ते मत्स्य ज्यारे जलथी बाहार स्थलनेविषे आवे त्यारे तेनी गति थई शकती नथी. केमके, त्यां जल सहायकारी नथी माटे. तेम धर्मास्तिकाय, पण जीव तथा पुद्गलोनी गतिने सहायकारी छे. ए धर्म द्रव्य यद्यपि एकज छे. तथापि नयना नेदेकरी एना त्रण प्रकार छेः– संग्रह नयेकरी, व्यवहार नयेकरी तथा रुजुसूत्र नयेकरी. तेमां व्यवहार नये करी धर्मास्तिकाय द्रव्य असंख्यात प्रदेशात्मक धर्मास्तिकाय एक छे. तेम व्यवहार नयेकरी पोतानी बुद्धिए करी परिकल्पित ते धर्मास्तिकायना बे नाग, त्रण नाग, चार नाग इत्यादि घणा देश छे. अने रुजुसूत्र नये करी असंख्यात प्रदेशना प्रत्येक प्रदेशने धर्मास्तिकाय कहिये, एटले खंध, देश तथा प्रदेश एने धर्मास्तिकाय कहियें. एनो गति लक्षण गुण छे; अने अगुरुलघु लक्षण पर्याय छे.

अधर्मास्तिकाय ते स्थितिना पर्यायने नजनारा जीव अने पुद्गलोने सहाय्यकारी जाणवुं. ज्यां ज्यां अधर्मास्तिकाय होयछे, त्यां त्यां जीव तथा पुद्गलोनी स्थिति थई शके छे. जेम के, अलोकनेविषे ए द्रव्य नही होवाने लीधे जीव तथा पुद्गलोनी स्थिति थई शकती नथी. एविषे दृष्टांतः–स्थितिना पर्यायने सेवन करनारो जे पथिक, तेने छाया सहकारी छे. एटले आ संसारमां देशाटन करतां मार्गनेविषे थकित थई पीडाने पामेलो जे जीव, ते ज्यां वृक्षनी सारी छाया होय छे, ते स्थले विश्राम करीने साताने पामे छे. तेम ज्यां अधर्मास्तिकाय द्रव्य छे, त्यां जीवो विश्रामने पामी रह्या छे. ए द्रव्य पण पूर्वोक्त रीते नयना नेदे त्रण प्रकारनुं छेः–तेमां संग्रह नयेकरी असंख्य प्रदेश स्वरूप एक खंध छे; व्यवहार नयना मते ए द्रव्यनो एकज खंध छतां तेना बुद्धि परिकल्पित द्विनाग तथा त्रिनाग प्रमुख

घणा भेद थायछे. अने ऋजुसूत्र नये करी एना जेटला प्रदेश छे ते प्रत्येक अधर्मास्तिकाय कहेवायछे. एनो स्थिति लक्षण गुण छे, अने अगुरु लघु लक्षणपर्याय छे.

आकाशास्तिकाय ते जीवादिक पांच द्रव्यनुं भाजन जाणवुं. केम के, ए द्रव्य नेविषे पोतपोताना स्वरूपे सकल द्रव्यो व्यापी रह्यांछे. ते बे प्रकारनुं छेः–एक लोकाकाश ने बीजो अलोकाकाश. तेमां चौद राज उच्छित लोक कहेवायछे. ते अनियत प्रमाण पहोलो छे. परंतु घन करिये तो लांबो तथा पहोलो देशौन सप्त रज्जु प्रमाण समान थायछे. अने अलोक अनंतो छे. ने ते गोलकाकार छे. समस्त पदार्थो लोकनेविषे होय छे, माटे अलोक शून्य छे. एना पण पूर्वनीपठे त्रण भेद थायछेः– तेमां संग्रह नयेकरी अनंत प्रदेशात्मक लोकालोक प्रमाण एक खंध छे; व्यवहार नयेकरी बुद्धिपरिकल्पित बे भाग, त्रण भाग तथाचतुर्भागादिक अनेक प्रदेश छे; अने ऋजुसूत्र नयेकरी ते प्रत्येक प्रदेशरूप जाणवुं. एम एना पण खंध, देश तथा प्रदेश ए त्रण भेद थया. एनो अवकाश लक्षण गुण छे; अगुरुलघु पर्याय छे.

काल ते नव जीर्णोपादक जाणवो. ए सकल पुद्गलोनेविषे नवीनता तथा जीर्णता होयछे तेनो सहकारी कारण छे.

आशंकाः– नवीनता तथा जीर्णता थवी एतो पुदगलनो स्वभावज छे, तेमां कालनुं शुं काम छे? पुदगलो पोतानी मेलेज नवीन पर्यायोने धारण करेछे, तेमज जीर्ण पर्यायोनुं पण भजे छे. केम के, पुदगल अने जीव ए बन्ने परिणामी द्रव्य छे; एवुं श्री भगवाने कह्युं छे. जे पूर्वावस्थानो विनाश अने उत्तर अवस्थानु उत्पादन तेने परिणाम कहेछे. एटले पर्यायनो उत्पाद तथा विनाश थायछे; परंतु द्रव्यथी उत्पाद तथा विनाश कहेवाय नही. एवी रीते पुद्गलनेविषे परिणामपणुं होवाथी स्वयं उत्पाद तथा विनाशरूप नवीनता तथा जीर्णता पर्यायने पामी रह्या छे. कांई द्रव्यनो सवर्था नाश तथा उत्पाद थतो नथी त्यारे काल द्रव्यनी अधिक कल्पना ते शासारु करवी जोये?

उत्तरः– यद्यपि नवीनता तथा जीर्णता जे पुदगलना पर्याय छे ते पुदगलने विषेज छे. तथापि त्यां निमित्त कारण काल द्रव्य छे. केमके, नियते करी होय छे. परंतु अनियत पणे कहीं होतुं नथी. जेमके, चंपक, अशोक तथा सहकार प्रमुख वनस्पतिनेविषे कुसुम संपदा, काले थाय छे; महा हिमकण मिश्रित शीतल पवन काले थायछे; मेघवृष्टि, घनगर्जित, तथा विद्युत् झात्कारादिक कालेकरी थाय छे; तेमज ऋतुविभाग, बाल कुमार तथा यौवनावस्था, तथा पलित गमादि

क पण काले करी थायछे. इत्यादिक व्यवस्थानेविषे काल सहकारी छे. अने जो काल निमित्त कारण न होय तो सर्व वस्तु व्यवस्था रहित थई जाय. जेमके, वसंत ऋतु आव्या विनाज चंपक, अशोक तथा सहकार प्रमुख वनस्पतिनेविषे फल फूल आवे; ऋतुउं आगल पाछल थई जाय; बाल्यावस्थानेविषे जरा थाय; जरावस्थामां बाल्यावस्था थाय; यौवनावस्था प्राप्त थयाविना बालिकाज गर्भ धारण करे; इत्यादिक अव्यवस्था, कालद्रव्य नही मान्याथी थइ जाय. एटले बधुं विपरीतज थयां करे. पण तेम तो कांईज थतुं नथी; तेथी काल निमित्त कारणछे. केमके सर्व पोतपोतानी कालमर्यादाएकरी थायछे. माटे पुद्गलनानेविषे नवजीर्णतानो आपादक काल छे. ते काल एक प्रदेशी समय लक्षण छे. ते समय पण जे वर्त्तमान वर्त्तेछे ते लेवो. केमके, अतीत समयनो विनाश छे अने अनागत समयनो उत्पाद थयो नथी. ते वर्त्तमान समय पण अनंतो छे. जेटला पुंजल द्रव्यना पर्याय छे ते प्रत्येकनेविषे एकेक वर्त्तमान समय छे. तेमाटे यद्यपि एक छे तथापि अनंतनेविषे लागेलो होवाथी अनंतो कहेवाय छे.

आशंकाः- (अन्यतीर्थी) एक छतां अनंतनी साथे केम लागेछे?

उत्तरः- जेम तमे सत्ताने एक मानता छतां ते अनेक द्रव्यपर्यायनेविषे रहेल मानो छो! तेम ए पण मानी लेवुं. जेने तमे सत्ता कहोछो तेने अमे वर्त्तमान समय कहियें छैयें. मात्र नामनो फेर छे.

आशंकाः-समयतो एक छे अने पूर्वापर कोटी विनिर्मुक्त छे. त्यारे आवलिकादि व्यवहार केम थशे? तेतो असंख्यात समय मलेछे, त्यारे एक आवलिका थायछे.

उत्तरः- अहीं बे नय छेः- एक निश्चय ने बीजो व्यवहार. निश्चय ते परमार्थनी साथे मलेछे अने व्यवहार ते लौकिकविषे होयछे. तेमां निश्चय नये करीतो एक समय लक्षणकाल छे; अने व्यवहार नयेकरी आवलिकानी कल्पना छे. ते असद्भूत कल्पनाएकरी कहिये छैयेः- असंख्यात समय मले त्यारे एक आवलिका थायछे; तेवी एक कोडी सडसठ लाख सितोतेर हजार बशेने शोल आवलिका थाय त्यारे एक मुहूर्त्त थाय. यथा समयावली मु० ए सर्व व्यवहारे करीनेज कहेवायछे. परंतु परमार्थ जोतां तो सर्व कल्पना छे. ए समय लक्षण काल पिसतालीश लाख योजन प्रमाण समय क्षेत्रनेविषे छे; पण बाहार नथी. ते परमार्थ जाणीलेजो. ज्यां आदित्य गतिछे, त्यांज काल व्यवहार छे. ए अधिकार विवाह प्रज्ञप्ति सूत्रनी वृत्तिमां श्रीअभयदेवसूरिए कह्योछे. यतः "आदित्य ग

ते स्तद्व्यंजकत्वात्. कालनुं व्यंजक आदित्यगमन ते ज्ञापक छे. अने बाहारना द्वी पनेविषे आदित्यनुं गमन नथी; त्यां स्थिर छे. आशंकाः— काल तो मात्र मनुष्य क्षेत्रनेविषेज छे, तेथी बाहार नथी एवुं तमारा कहेवा उपरथी थयुं. त्यारे बाहा रना द्वीपोनेविषे तथा स्वर्ग नरकनेविषे कालनी केम खबर पडे? उत्तरः— मनुष्य क्षेत्रनी अपेक्षाए करीनेज त्यां कालनो व्यवहार कहेवाय छे. अत्र समय ते द्रव्य जाणवुं; द्रव्य परावर्त्तन लक्षण गुण जाणवो; अने अगुरु लघु पर्याय जाणवो.

एविषे दिगंबरी आम मानेछेः— "लोकाकाशनेविषे जेटला आकाश प्रदेश छे, तेनेविषे एकेक कालनो अणु छे. एटले असंख्यात कालना अणु छे. एवुं श्री ने मीचंद्र सिद्धांतिए द्रव्य संग्रहमां कह्युं छे. यतः लोआगास पएसे, इक्केक जे ठि याहु इक्किका; रयणाणं रासीमिव, कालाणु असंख दव्वाणि. तेवा असंख्यात का लाणुनुं संमेलन थाय त्यारे एक समय कहेवायछे. समय ते पर्याय छे. ते अणु पण सूर्यमंडलभ्रमिलक्षण निमित्त कारण पामीने एकठामलेछे त्यारे समय नीप जेछे. जेम चक्रभ्रमि निमित्त कारणनी जोगवाई पामीने मृत्पिंडनो घडो नीपजे छे. तेवी रीते एपण जाणी लेवुं"

एने श्वेतांबर दूषण दियेछेः— एम जो मानिये तो छगे अस्तिकाय थशे. केम के, जेने खंध, देश तथा प्रदेश होय तेने अस्तिकाय कहेछे. अही समय ते खंध द्विभाग कल्पनारूप देश तथा कालाणु ते प्रदेश ठरेछे. एम मान्याथी विपरीतता थशे. अने अस्तिकाय तो पांचज छे. अने कालने तो श्वेतांबर तथा दिगंबर को इपण अस्तिकाय कहेता नथी

पुद्गल द्रव्य जे वस्तु पूर्ण तथा गलन धर्मयुक्त होय ते जाणवुं- एटले कोइ एक खंधनेविषे पुद्गल पूराता होयछे, अने कोइएक खंधनेविषे गलन एटले वीख राईजता होयछे. एवुं कालादि कारण पामीने थायछे. एवो पुद्गलोनो स्वभावज हो यछे, तेना चार भेद छेः—खंध, देश प्रदेश ने परमाणु. तेमां प्रथम खंधना अनंत प्रकार छेः— बे प्रदेश एकठा थयाथी द्विप्रदेशी खंध, त्रण प्रदेशो मल्याथी त्रिप्रदे शी खंध, एम यावत् संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी तथा अनंत प्रदेशी खंध जाणी लेवा तेमज देश पण द्विभाग तथा त्रिभाग लक्षण जाणी लेवो.

आशंकाः—खंधमां घणा परमाणु आवी मले छे माटे त्यां देश व्यवहार संभवे छे; केम के, तेना जेटला देश करिए तेटला थई शकेछे. जेम के, कोईएक खंध अ र्धो अर्ध करिये तेने बे देश कहिये; एम त्रण विभाग कर्याथी त्रण देश थाय; ते

यावत् चार, पांच, संख्यात, असंख्यात तथा अनंत सुधी थई शकेछे, एवी रीते जे वडो मोटो खंध होय तेना अनुसारे देशनी कल्पना थई शके छे. परंतु मात्र बे प्रदेशिउज खंध होय तेनेविषे देशविभाग केम थई शके? केम के, तेमां तो मात्र बे परमाणुउंनुं ज मेलन होय छे. तेने ज्यारे बे प्रदेशोनी कल्पना थाय त्यारे खंध परिणामनेविषे देश तथा प्रदेश ए बन्नेनो व्यवहार सिद्ध होवाथी तेमां देश कीयोने प्रदेश कीयो समजवो ?

उत्तर.–देश अने प्रदेशमां कांई सर्वथा भेद नथी केम के, खंधनेविषे द्विभाग त्रिभागादिक अवयव छे, तेने देश कहेछे. ते देश पण बे प्रकारनो छेः–एक सांश छे, बीजो निरांश छे. एटले जे सांश छे तेने पण देश कहिये ने जे निरांश छे तेने पण देश कहिये. तेम निरांशने प्रदेश पण कहे छे. प्रकृष्ट जे देश तेने प्रदेश कहिये; एटले जेमां बीजो कोई अंश मले नही तेने प्रदेश कहेवो. ए माटे बे प्रदेशीआ खंधनेविषे देश पण बे कहिये; ने प्रदेश पण बे कहिये. एटले जे बे प्रदेश छे तेनेज बे देश कहिये. बे प्रदेशी खंधनेविषे सांश देश न थाय; किं तु निरंश देश ज थायछे. तथा त्रण प्रदेशी खंधनेविषे एक बे प्रदेशीउ खंध ते देश थाय; बीजो एक प्रदेशीयो थाय. परमाणु अर्द्धा अर्द्ध न थाय. केमके, श्रीवीतराग देवे परमाणुने अछेद्य तथा अभेद्य कह्यो छे. माटे त्यां जे बे प्रदेशीउ देश कह्यो ते सांश जाणवो; अने जे एक प्रदेशीउ देश ते निरंश जाणवो. एम सर्व ठामे खंधनेविषे विचारी लेवुं' जेटला खंधना जे अवयवछे ते देश कह्या ने तेज प्रदेश कहिये प्रदेश ते निःप्रदेशीय अवयव जाणवा अने सप्रदेशी अवयवने देश कहेछे ने ज्यां सप्रदेशी अवयवनो संभव नहोय त्यां निःप्रदेशीय अवयवने पण देशज कहेछे. ते बे प्रदेशीया खंधनेविषे प्रसिद्धपणे जाणवो. तथा एक देश प्रदेश लक्षण व्यवहार ते ज्यारे खंधरूपे परिणम्यो होय त्यारे तेने परमाणु पुंज कहिये. तथा जे खंधपणे परिणामने पाम्या नथी ने प्रत्येके प्रत्येके एकाकी रह्या छे. तेने परमाणु कहिये. अही प्रसंगथी कालनी स्थिति मर्यादा लिखिये छैयेः–एक परमाणु बीजा परमाणुनीसाथे न मलीने खंधभावने न पाम्यो होय किंतु एकाकीज रह्यो होय, तेनो जघन्यथी एक समय काल ने उत्कृष्टथी असंख्यातो काल जाणवो. त्यार पछी वली खंधरूप परिणामने पामेछे. एम एक परमाणु आश्री समजवुं. पण सर्व परमाणु आश्रीतो अनंतो काल जाणवो. एवुं कोइ समये पण जणाशे नही, जे समये सर्व परिमाणुओ खंधपणे परिणामने पामेला होय, ज्यारे जोई

थुं त्यारे लोकनेविषे अनंतानंत परमाणु छूटा दीठामां आवेछे. अने जे एकाकी खंध रहेछे तेनी स्थिति जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी असंख्यात कालनी होय छे. पुद्गलसंयोगनी स्थिति उत्कृष्टी असंख्यात कालथी अधिक होय नही. ए पण एक काल आश्री जाणवुं सर्व काल आश्रीतो सर्व कालनुं अवस्थान जाणवुं. केमके एवो कोई पण काल होतो नथी के जे काले सर्व लोक खंधथी शून्य होय. एम विचारी लेवुं. एकालनी स्थिति कही हवे कालनी मर्यादा आम छेः— परमाणु, एकाकी भावनो त्याग करीने अन्य परमाणु द्व्यणुक त्रिअणुकादि साथे मलीने खंध भावने पाम्या छे, ते पाछा पूर्वना परमाणु भावने पामे एटले एकाकी थाय तेमां जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी असंख्यातो काल जाणवो.

आशंकाः— अनंत प्रदेशीया खंधनेविषे जे संयुक्त परमाणुउ छे ते असंख्यात कालसुधी उत्कृष्टपणे ते खंधनेविषे रहेछे. ते खंधनो ज्यारे भंग थायछे त्यारे ते मांथी लघु खंध निष्पन्न थायछे. तेमां पण ते परमाणुउ असंख्यात कालसुधी रहेछे. एवी रीते एक खंधना अनंत खंध थई शकेछे. ते प्रत्येक खंधमां असंख्यात कालसुधी परमाणुनी स्थिति होवाथी अनुक्रमे अनंत कालनो संभव थायछे; त्यार पछी ते एकाकी पणाने पामेछे. एवी रीते अनंत कालनो अंतर पण संभवेछे. त्यारे असंख्यात कालनोज अंतर केम कहोछो? उत्तरः—अरे भाई, जो एटला कालसुधी पुद्गलनो संयोग रहेतो होय तो एम संभवे पण पुद्गलनो संयोग तो असंख्यात कालसुधीज रहेछे. तदनंतर वियोग थई जायछे.

आशंकाः— परमाणु खंधनी साथे मलेलछे ते खंधविनाश पामेतो असंख्यात काल उपरांत विनाश पामेछे एटलेज ए सूत्र चरितार्थ थयो. पण ते विवक्षित परमाणुनुं आश्रयिभूत खंधनो वियोग थये ते परमाणुने सुं. ते माटे एमके, परमाणुनो खंधने विषे अथवा अन्यपरमाणुनी साथे संयोग थयोछे तेनो पाछो वियोग पण असंख्याते काले थायछे. उपरांत रहे नही.

आशंकाः एकाकी परमाणु पणे करी केवी रीते वियोग कहोछो?

उत्तरः— सूत्रना प्रमाणे करी कहिये छैए. एटले श्री व्याख्यात प्रज्ञप्ति प्रमुख सूत्रनेविषे कहेलुं छे के परमाणु वली परमाणुपणे भजे तो पाछो उत्कृष्ट असंख्याते काले भजे तेमज जे बे परमाणुआ मलीने खंध थयो छतां तेनो विध्वंस थया पछी फरी ते बन्नेनो संयोग जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी अनंत काले थायछे.

लोकनेविषे अनंत परमाणुउ छे; अनंत द्व्यणुक खंध छे; एम त्र्यणुक, चतुर

णुक, संख्याताणुक, असंख्याताणुक अने अनंताणुक; एटली जातिना खंध छे ते सर्व अनंत अनंत प्रत्येके प्रत्येके छे. तेनी साथे प्रत्येके प्रत्येके उत्कृष्ट काल स्थितियें जो मिले, तो तेनो वियोग थतां पण अनंत काल थाय त्यारे पछी फरी ने विस्रसा परिणामे; ते पुद्गल संयोग थाय; माटे अनंत काल कह्यो छे.

हवे वली प्रसंगथी क्षेत्रस्थिति लखिये छैये.—परमाणु एक आकाशना प्रदेशने रोकेछे. पण बीजा प्रदेशने रोकी शके नही. एटले जेवडो आकाश प्रदेश छे तेव डो परमाणु छे, परंतु आटली विशेषता छे के, आकाशनो प्रदेश अमूर्तिक छे ने परमाणु मूर्तिक छे, माटे बे प्रदेशमां पण समावेश थाय. त्रण प्रदेशमां पण स मावेश थाय एम यावत् संख्यात तथा असंख्यात प्रदेशमां पण तेउनो समावे श थई शकेछे, ते खंध पण असंख्यात प्रदेशी तथा अनंत प्रदेशी जाणवा, बे प्र देशी खंध जघन्यथी एक प्रदेशमां समाई सके; अने उत्कृष्टथी बेज प्रदेशने रोके छे, तेमज त्रिप्रदेशी उत्कृष्टथी त्रण प्रदेश रोकेछे, ए प्रमाणे जे खंध जेटला प्रदे शनो होय ते तेटलाज आकाशना प्रदेशने उत्कृष्टथी रोकेछे, तथा जघन्यथी सर्व नेविषे एकज प्रदेश कहेवो, तथा अनंत प्रदेशी खंध उत्कृष्ट पणे असंख्यात प्रदेशने रोकी शकेछे पण अनंतने रोके नही केम के, लोकाकाशना अनंत प्रदेश छेज नही.

आशंकाः—एक आकाश प्रदेशमां अनंत प्रदेशीआ खंधनो समावेश केम थाय.

उत्तरः—आकाशनेविषे अवगाह गुणछे, तेणेकरी ज्यां एक पुद्गल छे त्यांज अ नंत पुद्गलोनो समावेश थई शकेछे जेम एक प्रदीप प्रभानेविषे अनेक प्रदीप प्रभा नो समावेश थई जायछे. तथा जेम एक पारद कर्षनेविषे सुवर्ण शत कर्ष समाई जायछे एवो पुद्गलनो धर्म छे माटे एक आकाशना प्रदेशमां अनंतपरमाणु. अनं त द्व्यणुक, अनंत त्र्यणुक अनंत संख्याताणुक. अनंत असंख्याताणुक तथा अ नंत अनंताणुक खंध छे, ते पोतपोताना स्वभावे करी रह्या छे.

आशंकाः—समग्र लोकनेविषे एक खंधनी अवगहना केम थाय ?

उत्तरः—खंध द्रव्यनो विचित्र स्वभाव छे, कोई तो लोकनो संख्यातमो भाग अवगाही रहेछे; कोइ लोकनो असंख्यातमो भाग अवगाहीने रहेछे; अने कोईक तो समग्र लोकने अवगाहे छे, ते पण वली असंख्य प्रदेशीउ तथा अनंत प्रदे शीउ खंध जाणवो, केमके संख्यात प्रदेशीउ कोई असंख्यात प्रदेशने रोकी शके नही एम श्री प्रज्ञापना सूत्रमां कह्युं छे, कोईएक अनंत प्रदेशीउ खंध एक समयमां स कल लोकने अवगाही रहेछे; ते केवल समुद्घातनी पछे जाणी लेवुं, ते आ प्रमा

एः—कोईएक अचित्त महास्कंध विश्रसा परिणामेकरी पहेला समये असंख्याता योजन विस्तार सहित दंड करी बीजा समये कपाट करे; त्रीजा समये थाणु करे; चोथा समये प्रतर पूरणा करे; ते करीने समस्त लोकमां व्यापी रहे; पछी पांचमा समये प्रतर संहरे, छठा समये थानक जाजे; सातमां समये कपाट जाजे; आठमा समये दंड संहरीने खंड खंड थाय; एमां चोथो एक समय कह्यो, ते सकल लोकने विषे व्यापी रहेवाविषे जाणवुं, एनुं वर्णन श्रीविशेषावश्यकमां पण विशेषें करेलुंछे.

अशंकाः—(बौद्ध मतानुसारी) एक आकाश प्रदेशनेविषे रहेला एक परमाणुने बीजा छ प्रदेशनी फरसना होय छे. जे समये पूर्व दिशाने फरसे छे तेजस्वरूपे पश्चिम दिशाने फरसतो नथी. तेथी अपर स्वरूपे फरसे छे एवुं जणायछे केमके, जो तेज स्वरूपे फरसे तो षट् दिग्संबंध संभवे नही. अने षट् दिग्संबंध तो लोक प्रसिद्ध छे जेम के, आ पश्चिम दिग्संबंध, आ पूर्व दिग्संबंध, तथा आ उत्तर दिग्संबंध प्रमुख छ ए दिग्संबंध भिन्न भिन्न कहेवा अन्यथा षट् दिग् फरसना केम कहेवाई शकाशे? अने परमाणु तो निरंश छे, माटे एक अंशनेविषे छ संबंध भिन्नभिन्न केम थाय? ए कारण माटे परमाणुने सांश कहेवुं जोये. त्यारेज भिन्नभिन्न स्वरूपे षट् दिशाओनी फरसना घटमान थशे.

उत्तरः—(जैनी) परमाणु तो निरंशज छे. सांश कहेवायज नही. परंतु पुद्गल परमाणुनेविषे अचिंत्य परिणाम शक्ति होवाथी तेणेकरी नैरंतर्यपणे छ दिशानीसाथे रह्योछे. अने छ दिशाओनी फरसना करे छे. पण अंशेकरी फरसना न समजवी. (वली बौद्धने कांईक विशेष पूछेछे.) तमे केम ज्ञानना संताननेविषे एकज क्षणने कारण कार्यभाव संबंध मानोछो? पूर्व ज्ञान जनक जे क्षण ते पण निरंश छे तेम छतां तेमां बे अंशनी कल्पना करोछो. जे अंशे करी कारणसंबंध छे, तेज अंशेकरी कार्यसंबंध नथी; अने जे अंशेकरी कार्यसंबंध छे तेज अंशेकरी कारण संबंध नथी. ए तमारी युक्तिये तमाराज गलामां फासी आवे छे माटे एम मानवुं जोये छे के, क्षणतो निरंश छे पण वस्तु व्यावर्त्तनेकरी कार्यकारण भाव संबंधनी कल्पना थई शके छे. एम परमाणुनेविषे पण विचार करीलेवो.

हवे वली प्रसंगथी क्षेत्रवगाहनी स्थिति लखीये छैएः—जे आकाश प्रदेशनेविषे जे पुद्गलद्रव्य रह्युं छे ते एक प्रदेशावगाढ, संख्य प्रदेशावगाढ, अथवा असंख्य प्रदेशावगाढ जघन्यथी एक समयसुधी रहे; ने त्यार पछी एक प्रदेशावगाढ ते द्विप्रदेशावगाढ थायछे, अने द्विप्रदेशावगाढ ते त्रिप्रदेशावगाढ थायछे ते उत्कृष्टथी तो अ

संख्यात काल पछी थाय परंतु अनंत कालसुधी एकावगाढपणे रहे नही; एवो एनो स्वभावज छे. हवे अवगाहनुं अंतर लखिये छैएः-जे परमाणु ए करीने जे आकाशनो प्रदेश अवगाहित थएलो होय तेज ठेकाणे जघन्यथी एक समय अने उत्कृष्टथी असंख्यात कालसुधी रहेछे. त्यार पछी वली बीजा प्रदेशनी अवगाहना करेछे. एम फरतो फरतो फरि तेज आकाश प्रदेशनेविषे उत्कृष्टथी असंख्यात काले आवीजाय छे. केमके, आकाशना असंख्यात प्रदेशज छे.

आशंकाः- मूल प्रदेशनो त्याग करी बीजा असंख्यात आकाश प्रदेशीय अनंतवार फरसीने पछी पाछो आवीने मूलनो प्रदेश फरसतां अनंतकालनुं अंतर संजवेछे. तेम छतां असंख्यात कालनुंज अंतर कहेवानुं कारणशुं?

उत्तरः- पुद्गलनो एवो स्वभावज होयछे के, ते असंख्यात कालसुधी फरीने पाछो तेज आकाश प्रदेशनी अवगाहना करेछे.

हवे पुद्गलना गुण कहिये छैएः- जेणेकरी वस्तु, अलंकृत एटले शोभायमान दीठामां आवे तेने वर्ण कहेछे. तेना पांच प्रकार छेः-कृष्ण, नील, श्वेत, पीतने रक्त. ए बधा पुद्गलने विषे होयछे. अही कोईक नैयायिक छठो विचित्र वर्ण पण मानेछे. ते पांच वर्णोना संयोगथी उपजे छे तेने सर्वथा भिन्नज कहेछे, पण ते भिन्न नथी.

गंध बे छेः- एक सुगंध बीजो दुर्गंध. अत्र कोई त्रीजो विचित्र गंध पण माने छे. ते पण संयोगथी उत्पन्न थायछे. परंतु भिन्न नथी.

रस पांच छेः- तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल तथा मधुर. कोईक लवणने छठो रस कहेछे. परंतु तेनो मधुर रसनेविषे अंतरभाव छे. ते आ प्रमाणेः- सर्व भोजन तैयार कर्युंछतां तेमां यद्यपि बीजा सर्व द्रव्योनुं मेलन होय छे तथापि जो एक लवणनुं प्रक्षेपण कर्युं न होय तो ते भोजन मधुर लागतुं नथी. एटला माटे लवणने पण मधुरज कहेवुं.

स्पर्श आठछेः- कर्कश, मृदु, गुरु लघु, उष्ण, शीत, स्निग्ध ने रूक्ष. ए आठ फरस पुद्गलनेविषे होयछे. एम सर्व मली वीश गुण पुद्गलना जाणवा. तेउमांना पांच गुण एक परमाणुनेविषे मली आवेछे. ते आवी रीतेः- पांच वर्णोमांनो गमे ते एक वर्ण, पांच रसमांनो गमे ते एक रस, बे गंधमांनो गमे ते एक गंध, अने आठ फरसमांना चार फरस नथी होता. ते आः- कर्कश, मृदु, गुरु ने लघु ए चार स्पर्श सुक्ष्म परमाणुनेविषे न होय अने शीत, उष्ण, स्निग्धने रूक्ष ए चारमां पण विरोधी बे गुण एक प्रदेशनेविषे न होय. जेम के, शीतनो विरोधी उष्ण

गुण छे तथा स्निग्धनो विरोधी रुक्ष गुण छे. ते माटे अविरोधि बे गुण होय शीत स्निग्ध अथवा शीत तथा रुक्ष अथवा उष्ण स्निग्ध अथवा उष्ण ने रुक्ष, एम विपरीत पणे पण थई शकेछे. माटे परमाणु एक अंश छे. तेमां अविरोधी बे फरस लेवा. एवी रीते पांच गुण एक परमाणुनेविषे जाणवा. बे प्रदेशीआ खंधनेविषे उत्कृष्टथी दश गुण होयछे. केमके तेमां भिन्न भिन्न बे वर्ण, बे रस, बे गंध तथा चार अविरोधी स्पर्श ते ए बे जूदा जूदा प्रदेशनेविषे होय ए दशगुण बे परमाणुना जाणवा. एम त्रिप्रदेशी खंधनेविषे उत्कृष्टथी बार गुण होयछे, ते आ प्रमाणेः—एक वर्णने एक रस ए बे गुण द्विप्रदेशी खंधना करतां एमां अधिक होय छे. केमके त्रण प्रदेश होवाथी गंध तो प्राये बेज छे, अने फरसतो सूक्ष्म परिणामे चारज होयछे. तथा चार प्रदेशीआ खंधनेविषे उत्कृष्टथी चौदगुण होयछे. तेमां चार वर्ण चार रस ने बाकीनासर्व पूर्वोक्त रीते जाणवा. पंच प्रदेशीआ खंधनेविषे पांच वर्ण, पांच रस, बे गंध, तथा चार फरस ए शोळ गुण होयछे. एम संख्यात प्रदेशीओ खंध, असंख्यात प्रदेशीओ खंध तथा अनंत प्रदेशीओ खंध जेटली वारसुधी सूक्ष्म परिणाम पणे परिणाम्यो होय छे त्यांसुधी तेओनेविषे उत्कृष्टथी शोळ गुण होयछे. अने जघन्यथी तो पूर्वे जे पांच गुण परमाणुनेविषे कहेला छे तेटलाज अनंत प्रदेशीया खंधनेविषे पण होय छे.

हवे बादर परिणाम कहियेछैएः—बादर परिणामनेविषे जघन्य तो सात गुण होय छेः—गुरु, कर्कश, अथवा मृदु, लघु, ए बे स्पर्श अविरोधी लेवा; अने पांच गुण मूलगा लेवा अने उत्कृष्टथी तो वीश गुण होयछे हवे एना पर्याय कहियेछैएः--पर्याय ते एक गुण कृष्ण तेम एक गुण नीलादिक पण जाणवा जेम के, एक परमाणुमां सर्व जघन्य पणे कृष्ण वर्ण होय तो ते एक गुण कालो कहिये. पछी वली तेथी बमणी कालाश ते द्विगुण कृष्ण कहिये एम यावत संख्यात गुणो, कालो असंख्यात गुणो कालो तथा अनंत गुणो कृष्ण वर्ण होयछे; एप्रमाणे सर्व पर्यायो जाणवा. एम नील तथा पीतादिकनेविषे पण एजरीते जाणी लेवुं.

आशंकाः--गुण अने पर्यायनेविषे भेद शुं छे? जे गुण कह्या तेने पर्याय कहोछो.

उत्तरः-- गुण तथा पर्यायनेविषे कांईक भेदछे. "सह भाविनो गुणाः क्रमभाविनः पर्यायाः" जे सदैव सहवर्त्ती छे एटले वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श, ते गुण जाणवा ए सामान्यपणे मूर्त्तिमंत द्रव्यथी एक देश भिन्न न होय माटे गुण कहेवायछे, अने जे अनुक्रमे होय ते सदा सहभावी न होय तेने पर्याय क

हिये जेम के, एक गुण कालत्वादिक ते द्विगुण कालत्वादिक अवस्थाथकी निवर्त्ते छे, तथा द्विगुण कालत्वादिक त्रिगुण कालत्वादिक अवस्थाथकी निवर्त्तनने पामे छे एम पूर्व पूर्व पर्यायनुं निवर्त्तन एटले नाश अने उत्तर उत्तर पर्यायोनो आविर्भाव एटले उत्पत्ति थायछे तेने पर्याय कहिये ए प्रमाणे एक गुण रस तथा द्विगुण रसादिक; तेमज एक गुण गंध तथा द्विगुण गंधादिक, वली एक गुण कर्कश तथा द्विगुण कर्कशादिक, अने स्पर्शना पर्याय पण जाणी लेवा.

हवे पुद्गल संस्थान कहेछेः—गोल संस्थान ते मोदकवत्, वर्तुल संस्थान ते वलयवत्, लंब संस्थान ते दंडवत्, अंश संस्थान ते शृंघाटकवत्, चतुरस्र संस्थान ते अयोघनवत्, जाणी लेवां ॥ इति जीवादि षट् द्रव्यस्वरूप ज्ञयं ॥

अथ द्रव्य लक्षण कथ्यतेः—अनुष्टुप् वृत्तम्. प्रणम्य परमात्मानं, कर्मक्लेशविवर्जितम् ॥ द्रव्याणां लक्षणं वक्ष्ये, जैनेंद्रमतदीपिदं ॥ १ ॥

जे वस्तु कालत्रयनेविषे वर्त्ते छे तेने सत् कहियें ने तेज द्रव्य जाणवुं. ते सत् शब्दनुं लक्षण आवुं छेः— "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं हि सत्" जे वस्तु पर्यायनी अपेक्षाए कथंचित उपजे छे. वली कथंचित् जघन्यथी समयांतरे तथा उत्कृष्टथी असंख्याता काल पछी ते वस्तु पर्यायनी अपेक्षाए विनाशने पामे छे, अने तेज वस्तु द्रव्यथी क्यारे पण उत्पन्न न थाय, तेम विनाश पण पामे नही. किंतु सदा सर्वदा कायम होय तेने सत् कहेछे. तदुक्तं श्रीमतिचंद्रे "ध्रौव्योत्पादव्ययोपेतं, द्रव्यं कालत्रये स्थितम्; द्रव्यतस्तत्र सत्वं हि, जन्मनाशौ च पर्ययात्." तत्र दृष्टांतः जेम एक जीव द्रव्यनेविषे नारक पर्यायनो विनाश होय, अने नर पर्यायनो उत्पाद होय पण जीव द्रव्य तेज छे. तेनो मूलथी उत्पाद तथा विनाश होतो नथी. सदा सर्वदा शाश्वत छे. तथा पुद्गल द्रव्यनेविषे मृत्पिंड, स्थास, कोश, कुशूल, शिवक, छत्र, घट तथा कपाल प्रमुख पर्यायोनो उत्पाद तथा विनाश थायछे; ते कालादिकनी जोगवाई पामीने थायछे. ते आ प्रमाणेः—प्रथम पुद्गल परमाणु विस्रसा परिणामेकरी मृदुआकारे परिणामने पामेछे, तेनो कुंभकारना योगथी मृत्पिंड थायछे; त्यार पछी ज्यारे चक्रनी उपर चडेछे त्यारे ते चक्रभ्रमि निमित्त कारणनी योगताथी स्थास परिणामने पामेछे; पछी हस्त प्रक्षेपादिक लक्षण तथा पुरुष व्यापार लक्षण निमित्त कारणनी योगताथी कोश परिणामने भजेछे, पछी तेज कुशूल तथा शिवक परिणामे थायछे ते छत्रक ज्यारे पृथु, बुध्न, कंबु, तथा ग्रीवक परिणामने पामेछे त्यारे घट कहेवाय छे. तथा ते

वळी घटनोदन मुद्गराद्यभिघात थकी कपाल परिणामने पामे छे, त्यारे कपाल माला कहेवायछे. एटले पूर्व पूर्व पर्यायोनो विनाश थतो जायछे ने उत्तरोत्तर पर्यायोनो उत्पाद थतो जायछे. पण पुद्गल द्रव्य सदा शाश्वतज छे. जो ते सत्ता पुद्गलादिक द्रव्यनी न मानिये तो उत्पाद तथा विनाश निरर्थक थाय. जो वस्तु थी कांई छेज नही तो उत्पत्ति शानी थाय? अने जेनी उत्पत्ति थती नथी तेनो विनाश पण थतो नथी, यथा षड्द्रव्य. जे विनाश थायछे तेज उत्पन्न थाय छे; अने जेनो विनाश न थाय तेनी उत्पत्ति पण न थाय. माटे उत्पाद, विनाश तथा सत्ता ए एकज छे. तथोक्तं श्रीमतिचंद्रैः "उत्पादः केवलो नास्ति, विनाशोपि न केवलः; किंतु सत्तासमाक्रांतो नापि सत्ता च तांविना, १ यदुत्पन्नं च तन्नष्टं यन्नष्टं तच्च जन्मयुक्, यच्च वस्तु नचोत्पन्नं, दृष्टं नष्टं कदापिन. २ कालादिपंच सामग्रीं, प्राप्य द्रव्येषु पर्ययाः; उत्पद्यंते विपद्यंते, जलकल्लोलवज्जले. ३"

आशंकाः--तमे जे पूर्व पूर्व पर्यायनो विनाश मानो छो तेविनाशनुं अपर नाम अभाव छे. माटे ते सर्वथा प्रकारे भावथी भिन्न छे. किंवा अभिन्नछे जो सर्वथा भावथी भिन्न मानिये तो अवस्तु स्वभाव थाय, अवस्तु स्वभावनी सिद्धता थयाथी कोई कार्यनी सिद्धि थशे नही. तथोक्तं श्रीमतिचंद्रैः--तुच्छरूपोहि यो भावः सकथं कार्यसाधकः; अदारिद्रं भवेद्विश्वं, सचेद्यदि फलेग्रहिः १ तथा भावनेज सर्वथा अभाव कहेशो, तो भावनी प्रतीतिनो लोप थशे. अने तेम थयाथी सर्व जगत् शून्य ठरशे. त्यारे तमे अभाव ते शाने कहोछो ?

उत्तरः--भावथकी कथंचित् भिन्न अभाव होयछे. जे सर्वथा भिन्न कहेवाय नही. अने सर्वथा अभिन्नपण न कहेवाय. ते कथंचित् भिन्न कहिये ते आवी रीतेछेः-समस्त वस्तुउनेविषे बे अंश होयछेः--एक सदंश ने बीजा असदंश तेमां पर्यायनी अपेक्षाये अतीत तथा अनागत पर्यायने असदंश कहेछे. ने वर्त्तमान पर्यायने सदंश कहे छे. ए सदंश भावरूप कहेवायछे.अने असदंश अभावरूप कहेवाय छे. अभावनुं लक्षण न्याय शास्त्रमां आवी रीते कह्युं छेः--द्रव्यपर्यायोभयात्माभाव इति" एटले जे अभाव ते पण द्रव्य अने पर्यायथी भिन्न नथी. जे भाव स्वभाव तेअभावछे. तेना चारप्रकार छेः--प्रागअभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यंताभाव ने अन्योन्याभाव. तेमां प्रथम प्रगभावनुं लक्षण आ प्रमाणेः--यन्निवृत्तावेवकार्यस्यउत्पत्तिः सोस्यप्रागभावः जे पर्यायनेविषे विनाशेकरीने अवश्य अपरपर्यायनी उत्पत्ति थाय छे ते उत्पद्यमान उत्तर पर्यायथी पूर्वे जे विनाशी पर्याय छे तेने प्रागभाव कहेवो. अत्र दृष्टांतः--

जेम क्षीरना विनाशथी दधिनो उत्पाद थायछे. माटे दूधनेविषे दहीनो प्रागभाव कहेवाय. जेनो पूर्वे अभाव होय तेने प्रागभाव कहेछे. ज्यांसुधी दधिरूप पर्याय थयुं नथी त्यांसुधी तेनो क्षीरनेविषे प्रागभाव छे. एम मृत्पिंडने घटनो तथा तंतुपुंजने पटनो पण प्रागभाव संबंध जाणी लेवो. हवे प्रध्वंसाभावनुं लक्षण आ प्रमाणेः–यदुत्पत्तौ कार्यस्यावश्यं विप्रतिपत्तिः सोस्यप्रध्वंसाभावः जे पर्याय उत्पन्न थयाथी जे पर्यायोनो अवश्य करी विनाश थायछे, ते विनाशी पूर्वे पर्यायथी उत्तर पर्यायनेविषे प्रध्वंसाभाव कहेछे. अत्र दृष्टांतः जेम दूधना विनाशथी अवश्ये करी दधिज होय छे. तेथी दहीनेविषे दूधनो प्रध्वंसाभाव कहेवाय. तेम मृत्पिंडना विनाशथी अवश्ये करी घट; तथा तंतुपुंजना विनाशथी अवश्येकरी पटनी उत्पत्ति होयछे; तो ते घटने तथा पटने प्रध्वंसाभाव कहेछे. एटले जे पूर्वपूर्व पर्याय होय तेनेविषे प्रागभाव कहेछे, ने उत्तर उत्तर पर्याय होय तेनेविषे प्रध्वंसाभाव कहेछे. एम वळी दधिथी तक्रनो उत्पाद होवाथी दधिने प्रागभाव कहेवाय; अने तक्रने प्रध्वंसाभाव कहेवाय. एटले पूर्वे क्षीररूप पर्यायनी अपेक्षाएकरी दधिने प्रध्वंसाभाव कहेछे अने उत्तर तक्ररूप पर्यायनी अपेक्षाकरी दधिने प्रागभाव कहेछे.

आशंकाः– एक वस्तुनेविषे बे धर्म केम संभवे?

उत्तरः– वस्तु, अनंत धर्मात्मक होयछे. जेम के, एक पुरुषनेविषे भ्रातृ, भर्तृ पुत्र, पौत्र, तथा दौहित्र प्रमुख घणा धर्मो होयछे. एटले पुत्रनी अपेक्षाए पिता कहेवायछे; भाईनी अपेक्षाए भ्राता कहेवाय छे; स्त्रीनी अपेक्षाए भर्त्ता कहेवाय छे; मातानी अपेक्षाए पुत्र कहेवाय छे; पुत्रना पुत्रनी अपेक्षाए पौत्र कहेवायछे अने पुत्रीना पुत्रनी अपेक्षाए करी दौहित्र कहेवायछे; परंतु पुरुष एकज होयछे तेम अत्र पण जाणवुं. हवे अन्योऽन्याभावनुं लक्षण आप्रमाणेः–स्वरूपांतरात्स्वरूपव्यावृत्तिरितरेतराभावः। तत्र दृष्टांतः– जेम गाय ने अश्व ए बे पदार्थो छे; तेमां गायना स्वरूपनी नास्ति अश्वनेविषे छे; ने अश्वना स्वरूपनी नास्ति गायनेविषे छे. एम अन्योन्य एटले परस्परनेविषे एकेकनो जे अभाव छे ते अन्योऽन्याभाव जाणवो. एना चार नाम छेः–अन्योऽन्याभाव, इतरेतराभाव; परस्पराभाव तथा अन्यापोह भाव. हवे अत्यंताभावनुं लक्षण आ प्रमाणेः– कालत्रयापेक्षणीयतादात्म्यपरिणामनिवृत्तिरत्यंताभावः एटले वस्तुनेविषे तादात्मिकपणे जे परिणामनो त्रण कालनेविषे अभाव, तेने अत्यंताभाव कहिये. तत्र दृष्टांतः– जेम एक चेतन आत्मतत्व छे ते क्यारे पण अचेतन थयो नथी; थतो नथी

ने थशे पण नही एमज जड धर्मवाळा पुद्गलनेविषे क्यारे पण वस्तुत्वे चेतनपणुं संभवे नही, एटले तादात्म्य भाव थाय नही; संयोगी भावे तो ए पुद्गल अनंतिवार चेतन थया छे; थायछे, ने थशे; माटे चेतन वस्तुनेविषे तादात्मिक भावे अचेतनवस्तुनो अत्यंताभावछे. तथा अचेतनवस्तुनेविषे तादात्मिकभावे चेतनवस्तुनोअत्यंताभावछे.

आशंकाः—घट तथा पटनेविषे अत्यंताभाव मानवामां शुं हरकत छे? केमके, घट ते पटात्मा नथी ने पट ते घटात्मा नथी.

उत्तरः—ए तारुं कहेवुं यद्यपि सत्य छे. तथापि एवुं त्रणे काळनेविषे संभवे नही. केमके घटाकारे परिणामने पामेला जे पुद्गल द्रव्य ते कोई समये पटाकार परिणामने पामेछे, अने पट पुद्गलो घटाकारे परिणमे छे, माटे तेनेविषे अत्यंताभाव कहेवाय नही. किंतु अन्योऽन्याभाव कहिये. एना संग्रहना श्लोक कहेछेः—क्षीरे दध्यादि यन्नास्ति प्रागभावः सउच्यते; नास्तिता पयसोदध्नि प्रध्वंसाभावलक्षणं. १ गवि योश्वाद्यभावश्च, सोन्योन्याभाव उच्यते, शशशृंगादिरूपेणात्यंताभावस्तु भण्यते. २ नचावस्तुत एवस्युर्भेदास्ते नास्य वस्तुनि॥ इति जैनमतेभावो, भाविनोवस्तुरूपकः ३ एटले श्रीजैनमतनेविषे भाव स्वभाव अभाव कह्यो अने नैयायिक, वैशेषिक तथा मीमांसकादिक दर्शननेविषे अभाव ते भावथी भिन्न पदार्थ माने छे; ते मिथ्यावादि जाणवा. चार्वाक मती तो अभाव पदार्थने मानताज नथी; तेओने पण अनिष्टनी प्राप्ति छे. तथोक्तं अकलंकाचार्यैः—कार्यद्रव्यमनादि स्यात्, प्रागभावस्य निन्हवे॥ प्रध्वंसस्यच कार्यस्य, प्रोच्यते नित्यतां व्रजेत्॥१॥एक रूपं भवेद्विश्व, मन्यापोहव्यतिक्रमे॥ भवेद्धानिः स्वधर्मस्याऽ त्यंताभावप्रलापने॥२॥ एनो अर्थ श्रीसमंतभद्र स्वामीए अष्ट सहस्री टीकामां आवी रीते कह्यो छेः—ते माटे अहो चार्वाक, जो तुं प्रागभाव मानशे नही, तो कार्य द्रव्यनी अनादि थशे अने घट पटादिक जे कार्य द्रव्यछे, तेनी आदि तो बाळ गोपाळ सर्वने विदित छे, १ जो प्रध्वंसाभाव नही मानशे; तो कार्य द्रव्यनो विनाश संभवशे नही. सर्व द्रव्य नित्य ठरशे ने कार्य द्रव्यनो विनाश तो सकळ लोकमां प्रसिद्ध छे, २ जो अन्यापोह नही मानशे तो समस्त वस्तुउनुं एक रूप ठरशे, अने वस्तु तो सर्व भिन्न भिन्न स्वभावेज दीठामां आवे छे, ३ जो अत्यंताभाव नही मानशे तो कोई स्वधर्म सिद्ध थशे नही, चेतन जे आत्मा ते कोई समय अचेतन थई जशे ने जे जडात्मक पुद्गल ते कोई समय सर्वथा चेतनात्मक थई जवानो संभव थशे ते एम तो कोई काळे थायज नही. ४ माटे सर्वत्रैव अभाव मानवो. ते पण वळी अभाव स्वभाव मानवो;

पण जे तुछस्वनाव मानवुं ते पण अनिष्ट छे. श्री चिंतामणि शास्त्रनेविषे पूर्व प क्षीए कह्युं छे के, दृष्टस्तावदयं घटोनच पतन् दृष्ट स्तथा मुद्गरो दृष्टा कर्परसंह तिः परमितो नावोन दृष्टोपरः स्वाधीना कलशस्य केवलमियं दृष्टा कपालावली ते नानाव इति श्रुतिः क निहिता किंचात्र तत्कारणम् " अहो नैयायको, प्रथम नूत लनेविषे जे घट दीठो, ते उपर मोगर पात दीठो, त्यार पछी खापरां दिठां, पण एटलाथी बीजो अनाव कोई दीठो न कहेवाय, तेम छतां तुं कहिश के, में घटने विषे अनाव दीठो ते फूठो छे. तेनी तो कपालावली दीठी कहेवाय; पण अनाव दीठो कहेवाय नही माटे अनाव एवी स्तुति ते कई रहेछे ! ते मानवानुं शुं कारण छे माटे कपालावलीनेज अनाव कहिये के जेथी सकल वात सुधरे॥ इति द्रव्यलक्षण

हवे नय स्वरूप कहेछे. तेमां नैगम नय अंशग्राही छे. ए वस्तुना अंशने संपूर्ण वस्तुज मानेछे. जेमके, सूक्ष्म निगोदिया जीवमां अक्षरना अनंतमा नाग जेटलुं ज्ञान, छतां तेने सिद्ध समान माने छे! अने तेरमां तथा चौदमां गुणस्थानने विषे वर्त्तता सिद्ध मनुष्योने कर्मनो एक अंश छतां संसारी कहेछे.

संग्रह नयवमे सत्तानुं ग्रहण थायछे. सर्व जीव सरखा छे. सत्ता गुण घटे नही.

व्यवहारनये करी जीव अने पुद्गलना नेद कहेवायछेः–जेमके, जीवना बे नेदः– सिद्धने संसारी तेमां संसारीना बेनेदः– अयोगी ने सयोगी सयोगीना बे नेदः– छद्मस्थने केवली छद्मस्थना बे नेदः– क्षीणमोहने उपशांत मोह, उपशांत मोहना बे नेदः– अकषाई अने सकषाई सकषाईना बे नेदः– सूक्ष्मसकषाई ने बादर सकषाई बादर सकषाईना बे नेदः–अनिवृत्ति बादर ने निवृत्ति बादर. निवृत्ति बादरना बे नेदः– श्रेणी प्रतिपन्न ने श्रेणी अप्रतिपन्न. श्रेणी अप्रतिपन्नना बे नेदः– अप्रमत्त ने प्रमत्त. प्रमत्तना बे नेदः–सर्व विरति ने देशविरति, देशविरतिना बे नेदः– विरति ने अविरति. अविरतिना बे नेदः–सम्यक्त्वीने मिथ्यात्वी. मिथ्यात्वीना बे नेद नव्यने अनव्य. नव्यना बे नेदः–ग्रंथि नेदीने अग्रंथि अनेदी. ग्रंथी नेदीना बे नेदः–परित्त संसारीने अपरित्त संसारी. एम पुद्गलना पण बबे नेद थाय छे ते आ प्रमाणेः– अणु ने स्कंध तेमां स्कंधना बे नेदः– सूक्ष्म स्कंध ने बादर स्कंध. ए बन्नेना वली बबे नेद छेः–सचित्त खंध ने अचित्त खंध. ए बन्नेना पण बबे नेद छेः–जीवगृहीत ने अजीवगृहीत. एवी रीते अनेक नेदोनुं विवेचन करी लेवुं.

जे वमे वर्त्तमान काले वर्त्तमान नावनुं ग्रहण थाय ते ऋजुसूत्र नय जाणवुं. जेम के, साधुपणे वर्त्ते ते साधु कहेवायछे; अने जे साधु छतां पण अव्रतीपणे व

नतो होय तेने गृही कहेछे. जे अक्षररूप नाम मुखे कहे ते शब्द नय जाणवो. जे गुणनी उपमाने ग्रहण करे नही, पण गुण सहित अर्थांतरनी ग्रहण थती वस्तुने वस्तु पणे कहेवी ते समभिरूढ नय कहेवायछे. जेम के, केवल ज्ञानादि गुण प्राप्त थयाथी सिद्ध कहेवो, अने जे गुणपर्याय सहित संपूर्ण अवस्था प्राप्त वस्तुने वस्तु कहेवी. जेम सिद्ध स्थानिक प्राप्त जीवने सिद्ध कहेवो ते एवंभूतनय जाणवो. एम छएद्रव्यने सातेनय पोताना उपयोगथी लगाडवा.

हवे चार निक्षेपा कहेछेः—वस्तुना नाम मात्रनो अंगीकार ते नामनिक्षेपो. एटले निर्गुण तथा गुणसहित वस्तुनी विचारणा न करवी. अने जेवस्तुने आकार पणे अंगीकार करवी ते स्थापना निक्षेपो; उपयोगविना वस्तुनुं संपूर्ण ग्रहण करवुं ते द्रव्यनिक्षेपो अने गुण सहित वस्तु प्रमाण करवी निर्गुण वस्तुनुं ग्रहण करवुं नही ते भाव निक्षेपो इत्यादिक प्रकारे समस्त नय भंग. प्रमाण निक्षेप परक्षेप सहित, शुद्ध चेतन परमानंदमयी, महानंदी, ज्ञान ज्ञायक, सकल कर्मोपाधि रहित लोकालोक वेत्ता, स्वज्ञानादि गुण समूह कर्त्ता, अनंत अविगम अक्षय अव्यय, ध्रुव, महारसी, सर्व दर्शी, गुणवान, मोक्ष कारण, मोह महाज्ञान ज्ञायक, ध्यान ध्याता ध्येय, एक एकत्व ज्ञानगम्य. स्वल्पबुद्धिने अगोचर छे; एवो माहरो परमात्मा मुझने ध्येय, उपादेय, मोक्षनो बीज छे; बीजो जे सर्वपर वस्तुनो संयोगछे, ते माहराथी न्यारो हेय रूप संस्कार छे; संबंधछे, पण माहरो नथी एवीरीते मोक्षार्थी सम्यक्त्वीजीवे ध्याववुं.

हवे मोक्ष प्राप्तिनुं क्रम लखे छेः--सकल कर्म क्षय लक्षण मोक्ष छे. ते मोक्षने अर्थे चार अघाती कर्म खपाववां. ते चार अघाती कर्म शाथी खपाववा ? केवल ज्ञानादि चार गुणोथी खपाववां. ते केवल ज्ञानादि गुण शाथी उपजेछे ? घन घाती कर्म खपाववाथी उपजे छे. ते घाती कर्म शाथी खपाववां ? यथाख्यात चारित्रथी खपाववां, यथाख्यात चारित्र शाथी थाय ? लोभ मोहनीयना क्षयथी थाय लोभमोहनीय शाथी खपाय ? सूक्ष्मसंपरायचारित्रथी. सूक्ष्मसंपराय चारित्रनुं कारण कोण छे? त्रण संज्वलननो क्षय. त्रण संज्वलना खपाववानुं कारण कोण छे ? अपूर्व करण परिणाम. अपूर्व करण परिणामनुं कारण कोण ? दर्शन मोहनीयनो क्षय, एम दर्शन मोहनीय खपाववानुं कारण सर्व विरति छे सर्व विरतिनुं कारण प्रत्याख्यानीय चार कषायोनुं खपवुं छे; प्रत्याख्यान खपवानुं कारण देश विरति छे; देशविरतिनुं कारण अप्रत्याख्यानीय चार कषायनुं खपवुं छे; अप्रत्याख्यानीय क्षय थवानुं कारण सम्यक्त्व छे; सम्यक्त्वनी कारणोत्पत्ति सात प्रकृतिओना क्षयथी

थायछे, अथवा क्षयोपशमथी थायछे सात प्रकृतिउना क्षयादिकनुं कारण अपूर्व करण छे; अपूर्व करणनुं कारण मुहूर्त्तस्थिति क्षय छे; मुहूर्त्तस्थिति क्षयनुं कारण यथा प्रवृत्ति करण छे; यथा प्रवृत्ति करणनुं कारण सात कर्मस्थिति घात छे; सात कर्म स्थिति घातनुं कारण मंद कषायता छे; मंद कषायतानुं कारण आत्मवीर्य गुणना पर्याय गर्भित विशुद्धता नामे पर्याय छे, एवा अनुक्रमे कर्म क्षयथी गुण प्रकाश ने गुण प्रकाशथी कर्म क्षय छे, ते कारण माटे ज्ञाता प्राणीये गुण प्रकाशनो उद्यम करवो जोइये ते उद्यम श्रुतज्ञानथी थाय छे, हेयोपादेयनी परिज्ञाने श्रुत ज्ञान कहेछे. ते श्रुतज्ञानना बे भेद छेः-- एक शुद्ध श्रुतज्ञान ने बीजुं अशुद्ध श्रुत ज्ञान. तेमां शुद्ध श्रुतज्ञानना बे भेद छेः—स्वरूप श्रुतज्ञान ने पररूप श्रुतज्ञान. वली अशुद्ध श्रुतज्ञानना पण बे भेद छेः— शुभ अने अशुभ एवीरीते जीवाऽजीवादि षट् पदार्थो सदाकाल शाश्वता पोतपोताना गुणपर्यायेंकरी वर्त्तेछे. इति मोक्षप्राप्तिस्वरूपं

अथ आत्मप्राप्ति विधि लिख्यतेः—जे कारण माटे आत्मस्वरूप प्राप्तिविना कदा काले पण मोक्ष प्राप्ति थती नथी. जेम कोई पुरुष नगर नाम स्वरूप जाणतो होय तो अन्यने पूछीने ते नगर प्रत्ये पहोचे छे. तेम आ जीवने मुकावनार सम्यक् ज्ञान छे. उक्तंचः— “ विरया सावज्जाउ, कसाय हीणा महव्वय धरावि ; सम्म दिठी विहीणा, कयावि मुक्खं न पावंति.” सर्व सावद्यथी विरम्या होय, कषाय क्रोधादिक रहित होय, पंच महाव्रतरूप बाह्य चारित्रेकरी सहित होय, तो पण सम्यक्दृष्टि रहित थका कदा काले पण मोक्ष पामे नही. गाथाः—“ नय भंग पमाणेहिं, जो अप्पा साय वाय भावेण ; जाणइ मोरक सरूवं, सम्मदिठीय सो णेउ ” ते जीव सम्यक्दृष्टि जाणवो के जे, पोतानो आत्मा मोक्षस्वरूप मोक्षमयी परमानंदमयी अचल अविनाशी अनंत अनादि अबंध स्याद्वाद भावे, जाणे माने सद्दहे अनुभवे, ते सम्यक्दृष्टि कहिये. ते सात नयेकरी जाणे. तेना मूल बे स्वभाव छेः— एक द्रव्य स्वभाव ने बीजो पर्याय स्वभाव. तेमां द्रव्य स्वभाव कोने कहिये ? जे गुण अने पर्यायनो आश्रय होय तेने द्रव्य कहिये. ते द्रव्य बे प्रकारनुं छेः—एक साधारण ने बीजुं असाधारण. तेमां अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं प्रमेयत्वं, तथा अगुरुलघुत्वं ए सामान्य एटले साधारण गुण छे ; अने बीजा असाधारण गुण ते धर्मास्तिकायने गति चालण गुण, अधर्मास्तिकायने स्थिति गुण, आकाशास्तिकायने अवगाहगुण, कालमां परावर्त्तनाना गुण, पुद्गल द्रव्यनेविषे वर्ण, गंध, रस ने स्पर्श गुण ; जीव द्रव्यनो चेतना लक्षण ज्ञान गुण, दर्शनगुण चारित्रगुण ने

असाधारण गुण. तथा साधारण

स्वनाव पर्याय ते अगुरुलघु विकाररूप छे तेना षट्गुणी वृध्द हाणमय बार
बारे पर्याय छए द्रव्यने समान छे. अने बीजो नेद जे विनाव पर्याय ते
द्रव्यने तथा जीव द्रव्यनेज छे. तथा शुध्द द्रव्यार्थिक नये करी. आपणो
सिध्द समान अष्ट गुणधारी छे. पर्यायनये स्वनावपर्यायेकरी सदासिध्दसमान
शांत पर्याये करी अज्ञान संबंध संसारी छे. नैगम नयेकरी अल्पग्राही छे.
ात प्रदेशे करी सर्व जीव सिध्द छे. संग्रह नये करी सत्ताग्राही छे. सर्व जीव
वरूप छे. व्यवहार नयेकरी नेद विनंजना कारी जे जीवना बबे नेद छेः—एक
बीजो संसारी. संसारिना बे नेदः— एक सयोगी बीजो अयोगी. सयोगीना
ः— एक छद्मस्थ बीजो केवली. छद्मस्थना बे नेदः— एक क्षपक बीजो उप
; इत्यादि. तथा ऋजुसूत्र नयेकरी तेजीव जे परिणामे परिणमतो वर्त्ते, तेसमये
र तेवोज कहिए यथा ममतामयी परवस्तुमानतो चेतन अज्ञानी कहिये, सम
ो सिध्द समान. पोतापोताना आत्माने ध्यावे तेसमये ते सिध्द कहिये. शब्द
करी नामादि सिध्दने पण सिध्द कहिये. समनिरूढ नयेकरी ते पर्यायने ग्रहे एटले
ध्द पर्यायवंत सिध्द कहिये. एवंनूत नयेकरी जे संपूर्ण गुण पर्यायने ग्रहे एटले
ताने क्रिया करतो अचल ते लीजीये. यथा सिध्द स्थानिक प्राप्त जीवने सिध्द
हिये. एम सर्व वस्तुनेविषे सात नय जाणवा. नय ते जे द्रव्य अनेक धर्म वचने
री सात नंग स्यादस्ति, स्वद्रव्य क्षेत्र नावत्वेन यथा स्वद्रव्य चेतन गुण अनंत छे,
स्वक्षेत्र ते चरम शरीर त्रिनागन्यून अथवा असंख्यात प्रदेश समान चेतनत्व; स्वकाल
ते उत्पाद व्ययस्वरूप, अगुरुलघु पर्यायनो परिणमन, स्वनाव ते ज्ञान दर्शन चारित्र
वीर्य, इति एगुणेकरी जीवद्रव्य उतोछे. स्यान्नास्ति परद्रव्य क्षेत्र काल नावत्वेन परद्रव्य
अचेतना, परक्षेत्र पांचेद्रव्य पोतपोतानी अवगाहनासमान जडतारूप, परकाल ते
पोतानो अगुरुलघु पर्याय, परनाव ते, पोतपोतानो विशेषगुण ; एवीरीते पर द्रव्या
गुण चेतननेविषे नथी. ए कारण माटे नास्ति छे. अने स्यादस्ति नास्ति ए बन्ने
एक समये छे. स्यादवक्तव्यते आ कारणमाटे छेः--कोईपण समये एकांत वच
ह्यो जाय नही. केमके, वचन ते असंख्यात समयात्मक छे. अने आत्म
समयमां अनंत गुण पर्यायमयी छे, अने स्यादस्ति अवक्तव्यं स्यादनेकां
तेनुं अवक्तव्यपणुंछे. एमज स्यादूनास्ति अवक्तव्यं. तथा स्यादस्तिनास्ति
ं ते स्याद्वादपणे अस्ति नास्ति समय काल एक समये वचन

आत्मा स्याद्वाद जावेकरी जाण.

ना आठ पक्ष छे:—नित्य, अनित्य, एक, अनेक, सत्, असत्, वक्तव्य
क्तव्य. पोताना चेतना गुणेकरी आत्मा नित्य छे; अगुरुलघु पर्यायेकर
अनित्य छे; एमद्रव्यथी नित्यानित्यछे; ज्ञायक गुणेकरी आत्मा एकछे;
त प्रदेशपणेकरी आत्मा अनेकपणे छे; एम द्रव्यपणे एकानेक छे, स्वद्रव्य पर
आत्मा सत् छतो छे; परद्रव्य पर्यायेकरी आत्मा असत् अछतो छे; एम वस्तु
सत् असत् छे; द्रव्यपणे वक्तव्यछे एक समये एकठो कथन योग्य नथी माटे
अवक्तव्य छे; एम ए परकीय अपेक्षाए स्याद्वाद होय; अने स्वअपेक्षाएकरी
ता नित्यछे, अगुरुलघु पर्याये अनित्यछे. चेतना एकछे. असंख्यात प्रदेश अनेक
त्यत्वमां नित्यत्व सत् छे; अनित्यत्व असत् छे. अनित्यत्वमां अनित्यत्व सत् छे
नित्यत्व असत् छे. एकत्वमां एकत्व सत् छे. अने अनेकत्व असत् छे. अनेक
अ... त्व सत् छे; ने एकत्व असत् छे. नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, एम
वचन व्यक्त छे. एक समये अव्यक्त छे. एम वस्तु स्वरूप एक समये
नित्यछे. तेज समये एकछे ने तेज समये अनेक छे. एम सत् ने असत् छे.
व्यक्त ने अव्यक्त छे. ए आठ पक्ष एक पक्षमां एक समये रह्या छे. एवीरीतें स
द्वादपणे छ द्रव्यने जाणी, अने छ द्रव्यथी चेतन लक्षण जीव द्रव्य पोतानो ज्ञा
दर्शन चारित्र वीर्यमयी अविनाशी छे. अनंत परमानंदमयी एवो पोतानो आत्म
उपादेयकरी ध्यावो एप्रकारे आत्मानुं मोक्ष कारण मोक्षमयी सर्दहे. स्याद्वादप
पोताना आत्माने जाणे मानेतेज सम्यक्त्वी कहेवाय तेविना मिथ्यात्वी कहेवाय.

हवे सम्यक्त्वीने आठ गुण उपजेछे ते कहेछे:— प्रथम निःशंक गुण ते जेने
शंका, भय तथा शोक होय नही तेने जाणवो; एटले ज्ञाताने आलोकनो भय
थाय नही. केमके, ते सम्यक्त्वी सुख, दुःखनेतो, पुन्य तथा पापनुं फल जाणेछे.
ते आत्माने पुन्य तथा पापथी भिन्नकरी ध्यावेछे. माटे आ लोक तथा परलोकनो
ज्ञाताने भय नथी. तथा ज्ञाताने वेदनानुं भय पण व्यापे नही. ते वेदना क
कर्म गुण छे. अने मारो आत्मा तो ज्ञानमयी छे, वली ज्ञाता, पोताना आ
अमर तथा अविनाशी करी ध्यावे छे. माटे तेने मरण भय होतो नथी.
ता, पोताना आत्माने अक्षय अनंत गुणी जाणेछे माटे तेने चोरभय
पोताना आत्माने अज्ञानतारूप दुःखनो छोडवनार एवो पोतानो श
छे माटे तेने अशरण भय नथी. ज्ञाता पोताना आत्माने सदा